* ओ३म् *

यजुर्वेद संहिता

भाषा-भाष्य

(प्रथम खण्ड)

भाष्यकार

श्री पण्डित जयदेवजी शर्म्मा,

विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक

आर्य-साहित्य-मण्डल, अजमेर

मुद्रक

दि डायमण्ड जुबिली प्रेस, अजमेर

प्रथमावृत्ति २००० } सं० १९८६ विक्रमाब्द सन् १९३० ई० { मूल्य ४)

ये अर्वाङ् मध्य उत वा पुराणं वेदं विद्वांसमभितो वदन्ति।
आदित्यमेव ते परि वदन्ति सर्वे॥

जो उरे, बीच में और पुराण रूप से 'वेद विद्वान्' का वर्णन करते हैं वे सब 'आदित्य' का ही वर्णन करते हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद मे व्रात्य प्रजापति की आसन्दी का वर्णन करते हुए लिखा है।

"ऋच· प्राञ्चस्तन्तवो यजूंषि तिर्यञ्चः॥" अथर्व० १५।३।६॥

ऋचाएं ताना के तन्तु हैं और यजुर्वेद बाना के तन्तु है। इस प्रकार प्रजापति की बैठने की पीढ़ी का वर्णन किया गया है। इन सब स्थानों पर भिन्न २ नामो से भी किसी एक ओर ही निर्देश किया गया है। सर्व- [illegible] स्कन्भ, आदित्य, गरुत्मान्-सुपर्ण और ब्रह्म आदि ये सब एक ही [illegible]र के नाम हैं। इसी प्रकार—

कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत॥ अथर्व० १९।५४।३॥

काल से ऋचाएं [illegible]न्न हुईं और काल से 'यजु' उत्पन्न हुआ। वह काल परमेश्वर ही है। तमृचश्च सामानि च यजूंषि च ब्रह्म च अनुव्य[illegible]न्। (अथर्व० १५।६।८।) उस व्रात्य प्रजापति के पीछे ऋचाएं साम, [य]जुगण और ब्रह्म अर्थात् चारों वेद चले। इस स्थल पर व्रात्य प्रजापति वही परमेश्वर है। उससे चारों वेद उत्पन्न हुए यह वेद भगवान् का [illegible]य है। उस यज्ञमय परमेश्वर का स्वरूप क्या है? और वर्त्तमान मे प्रचलित यज्ञ कैसे हैं यह बतलाना बहुत अधिक स्थान की अपेक्षा करता है। तो भी इतना कह देना पर्याप्त है कि कर्मकाण्ड के यज्ञ उस महान् विराट् यज्ञपुरुष के प्रतिनिधि या उसके स्वरूप निदर्शक मात्र है। जैसे ये वेद उस महान् यज्ञ का वर्णन करते हैं उसी प्रकार ये इन यज्ञों का भी प्रतिपादन करते हैं। यजुर्वेद में लिखा है।

सुपर्णोऽसि गरुत्मांस्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुः बृहद्रथन्तरे

पक्षौ स्तोम आत्मा छन्दांᳫसि अङ्गानि यजूᳫंषि नाम। साम ते तनूर्वामदेव्यं यज्ञायज्ञियं पुच्छं धिष्ण्याः शफाः। सुपर्णोऽसि गरुत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत।

तू सुपर्ण गरुत्मान् है। तेरा शिर त्रिवृत् स्तोम है। आंख गायत्र साम है। बृहत् और रथन्तर दोनो पक्ष है। स्तोम आत्मा है। छन्द (अथर्ववेद) अंग हैं, यजुर्गण नाम हैं। वामदेव्य साम तनु है। यज्ञायज्ञिय साम पुच्छ है। धिष्ण्य अग्नियें शफ हैं।

इसमें 'सुपर्ण गरुत्मान्' मे ही चारों वेदों का वर्णन है। कर्मकाण्ड दृष्टि से इसी मन्त्र से श्येनाकार वेदी मे होने वाले यज्ञ का वर्णन भी स्पष्ट हो जाता है। इस 'सुपर्ण' रूप परमेश्वर का वर्णन वेद स्वयं करता है—

सुपर्णं विप्रा कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।

ऋ० १० । ७ । ४ । ५

विद्वान् पुरुष स्तुतियों द्वारा एक सुपर्ण की भी ब[illegible] प्रकार की [illegible] कर लेते हैं।

इस 'सुपर्ण' नाम यज्ञ का कितना विस्तार है इस विषय में ऋग्[illegible] का मन्त्र है।

षट्त्रिंशांश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांᳫसि च दधत आद्वादशम्।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्त्तयन्ति॥६॥

ऋ० १० । ११४ । ६ ॥

उपांशु और अन्तर्याम, इन्द्रवायव आदि द्विदैवत्य तीन ग्रह, [illegible]ामन्थियों के दो ग्रह, आग्रयण, उक्थ, और ध्रुव ये तीन, १२ ऋतु ग्रह, ऐन्द्राग्न, और सावित्र दो, वैश्वदेव दो, मरुत्वतीय तीन, माहेन्द्र एक, आदित्य और सावित्र दो, वैश्वदेव, पात्नीवत और हारियोजन, ये तीन, इस प्रकार ये ३६ ग्रह या यज्ञांग और इनके साथ, अत्यग्निष्टोम में अंशु, अदाभ्य, दधिग्रह और षोडशी ये चार मिलकर कुल ४० ग्रह या यज्ञांगो

को और प्रउग आदि १२ शस्त्रों तक गायत्री आदि समस्त छंदों को धारण करते हुए विद्वान् लोग यज्ञ का विविध प्रकार से ज्ञानपूर्वक निर्माण करके 'रथ' अर्थात् रमण करने योग्य रस स्वरूप परमेश्वर के स्वरूप को ही ऋक् और साम दोनों द्वारा दो अश्वों से रथ के समान यज्ञरूप में विधान करते हैं।

यह कर्मकाण्ड रूप से कहे यज्ञ का वर्णन करके अध्यात्म यज्ञ का वर्णन भी वेद (ऋ० ११४ । ८) स्वयं करता है।

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमान. सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ।

पञ्चदश उक्थ सहस्रों प्रकार के देहों में सहस्रों रूप होकर विराजते हैं। जितना विस्तार द्यौ और पृथिवी का है वहां तक उसी ब्रह्म का विस्तार है। उसके महान् सामर्थ्य भी सहस्रों प्रकार के हैं, जितना ब्रह्म का स्वरूप विशेष २ प्रकार से स्थित है उतनी ही वाणी भी विस्तृत है। इस देह में १५ अंग या उक्थ हैं ये चक्षु आदि पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय और ५ भूत।

परन्तु क्योंकि ब्रह्म अनन्त है, इससे वाक् वेदवाणी भी अनन्त ज्ञानवती है। प्रतिदेह मे वही यज्ञ का स्वरूप है। वेदिगत यज्ञ तो उसका प्रतिनिधि मात्र है। यजुर्वेद द्वारा उन अंगों के समस्त कार्य और व्यवस्था का वर्णन किया जाता है। जैसा स्वयं श्रुति कहती है—

'यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहाः ॥ यजु० १९ । २८ ॥
सत्यं यज्ञेन । यज्ञो यजुर्भिः । यजु० २० । १२ ॥

फलत., हम इस परिणाम पर पहुंच गये कि यजुर्वेद में अंग अंगी और इनके कार्यों का वर्णन होना चाहिये। यज्ञ' स्वयं एक प्रजापति है। समस्त विश्व मे परमेश्वर, राज्य में राजा, गृह में गृहपति, कुल मे कुलपति या आचार्य और देह में आत्मा या मुख्य प्राण ये सभी 'प्रजापति' के स्वरूप

हैं। ये सब अंग स्वयं एक 'अंगी' या एक सुव्यवस्थित जीवित शरीर (body) की रचना करते हैं। अंग, घटक अवयव मुख्य अंगी के आधार होकर उसी के अधीन हैं। वे 'ग्रह' कहाते हैं। उनका ही वर्णन यजुर्वेद मे किया गया है।

हमारा विचार है कि यजुर्वेद के मन्त्रों की योजना या व्याख्या मुख्य पांच दृष्टियों से होती है। पांच ही वेद संहिताओं के व्याख्या प्रकार माने गये हैं। जैसा कि तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है।

अथात· संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्याम:। पञ्चस्वधिकरणेषु। अधिलोकम्। अधिज्यौतिषम्। अधिविद्यम्। अधिप्रजम्। अध्यात्मम्। ता महासंहिता इत्याचक्षते। अथाधिलोकम्। पृथिवी पूर्वरूपम्। द्यौरुत्तररूपम्। आकाशः संधिः। वायु: संधानम्। इत्यधिलोकम्। अथाधिज्यौतिषम् अग्निः पूर्वरूपम्। आदित्य उत्तररूपम्। आपः संधिः। वैद्युतः संधानम्। इत्यधिज्यौतिषम्। अथाधिविद्यम्। आचार्य: पूर्वरूपम् अन्तेवास्युत्तररूपम्। विद्या संधि। प्रवचनं संधानम्। इत्यधिविद्यम्। अथाधिप्रजम्। माता पूर्वरूपम्। पिता उत्तररूपम्। प्रजा-संधि:। प्रजननं संधानम्। इत्यधिप्रजम्। अथाध्यात्मम्। अधरा-हनुः पूर्वरूपम्। उत्तरा हनुरुत्तररूपम्। वाक् संधि.। जिह्वा संधानम् इतीमा महासंहिता.॥

संहिता की उपनिषद् यह है कि पांच अधिकरणों में एक ही संहिता की पांच प्रकार से व्याख्या होने से पांच महासंहिताएं बनती हैं।

अधिलोक, अधिज्योतिष, अधिविद्य, अधिप्रज, और अध्यात्म। अधिलोक में पृथिवी, सूर्य, और आकाश और वायु का विशेष वर्णन होगा। अधि लोक में सूर्य, पृथिवी, आकाश और वायु का, अधिज्योतिष में अग्नि, आदित्य, जल, और विद्युत् का। अधिविद्य मे आचार्य, अन्तेवासी,

विद्या और प्रवचन इनका वर्णन होगा। अधिप्रज में पिता, माता, प्रजा और प्रजनन इनका वर्णन होगा। इसमें में भी समष्टि व्यष्टि भेद से राजा पृथिवी, प्रजा, प्रजापालन आदि का वर्णन भी सम्मिलित हो जाता है।

इन पांचो अधिकरणों की यथावत् पृथक् व्याख्या कर देना यह बड़े भारी ज्ञान और प्रतिभा का कार्य है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने से यजुर्वेद के मन्त्रों की व्याख्या इन पाचो रूप से हो जाती हैं। जिनका दिग् दर्शन हमने भाष्य में स्थान २ पर किया है। हमने मुख्य रूप से राजा प्रजा एवं प्रजा-पालन के कार्यों पर ही अधिक प्रकाश डाला है। पाठक उसी दृष्टि से इस भाष्य का स्वाध्याय करेंगे।

इसके अतिरिक्त यजुर्वेद के सम्बन्ध मे ब्राह्मण ग्रन्थो मे भी नीचे लिखे विशेष विचार विचारणीय हैं जिनसे यजुर्वेद के स्वरूप समझने के लिये बड़ी सहायता प्राप्त होती है।

(१) यजुषा ह वै देवा अग्रे यज्ञं तेनिरे अथ ऋचा अथ साम्ना। तदिदमप्येतर्हि यजुषा एवाग्रे यज्ञं तन्वतेऽथर्चोऽथ साम्ना। यज्जो ह वै नाम एतत् यद् यजुरिति। शत० ४।६।७।१३॥

विद्वान् लोगों ने पहले 'यजुः' से ही प्रथम यज्ञ किया फिर ऋग् से और फिर साम से। 'यजु' भी यज्ञ के साधन होने से ही 'यजु' कहाते हैं।

(२) ऋग्भ्यो जातं वैश्यं वर्णमाहुः। यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम्। सामवेदो ब्राह्मणानां प्रसूतिः। पूर्वे पूर्वेभ्यो वचः एतदूचुः॥ तै० ब्रा० ३।१२।९॥

ऋग्वेद के मन्त्रों से वैश्य वर्ण, और वैश्योचित वृत्तियों और उनके सम्बन्ध के नाना शिल्पों की उत्पत्ति हुई है। यजुर्वेद क्षत्रिय अर्थात् क्षात्र बल के कार्य करने वाले के उचित कर्त्तव्यो का उपदेश करता है। सामवेद ब्राह्मणोचित स्तुति उपासना का मूल कारण है। पूर्व के विद्वान् पूर्व के शिष्यों को ऐसा ही उपदेश करते थे।

(३) यमो वैवस्वतो राजा इत्याह । तस्य पितरो विशः । त इमे समासत इति स्थविरा उपसेमता भवन्ति । तानुपदिशति यजूंषि वेदः । सोयमिति ॥

यम वैवस्वत राजा है । उसकी प्रजाएं पितृगण, पालक जन हैं। वे ये लोग हैं । स्थविर, वृद्ध जन उपस्थित होते हैं । उनका यजुर्वेद है ।

यह उद्धरण भी यजुर्वेद को राजा प्रजा के राष्ट्र पालन के कर्त्तव्यों का उपदेश करने वाला वेद निश्चय कराते हैं ।

यजुर्वेद के शाखा भेद

शौनकीय चरणव्यूह के अनुसार—

(१) यजुर्वेदस्य षडशीतिर्भेदा भवन्ति । तत्र चरका नाम द्वादश भेदा भवन्ति । चरकाः, आह्वरकाः कठाः, प्राच्याः, प्राच्यकठाः, कपिष्ठलकठाः, चारायणीया, वारायणीया, वार्त्तान्तवीयाः, श्वेताश्वतराः, औपमन्यवः, पाताण्डिनीयाः, मैत्रायणीयाश्च ।

(२) तत्र मैत्रायणीया नाम षड् भेदाः भवन्ति । मानवा वाराहा दुन्दुभाश्च्छागलेया हारिद्रवीयाः श्यामायनीयाश्चेति ।

(३) तत्र तैत्तिरीयका नाम द्विभेदा भवन्ति । औखेयाः । खाण्डिकेयाश्चेति । तत्र खाण्डिकेयाः पञ्चभेदा भवन्ति कालेता शाट्यायनी हैरण्यकेशी भारद्वाजी आपस्तम्बी चेति ।

(४) तत्र प्राच्योदीच्यनैर्ऋत्यवाजसनेया नाम पञ्चदश भेदा भवन्ति, जाबाला, बोधायानाः, काण्वाः, माध्यंदिनेयाः, शाफेया स्तापर्नीयाः, कपोला, पौण्डरवत्साः, आवटिकाः परमावाटिकाः, पाराशराः, वैणेया अद्धा बौधेयाः ॥ *

---

* यजुर्वेदीय चरणव्यूह में—(१) तत्र मैत्रायणीयाः नाम सप्त भेदाः भवन्ति । मानवाः दुन्दुभाः चैकेयाः वाराहा हारिद्रवेयाः श्यामाः श्यामायनीयाश्च ।

अर्थ—यजुर्वेद को ८६ भेद होते है। उनमें चरकों के १२ भेद होते हैं (१) चरक, (२) आह्वरक (३) कठ (४) प्राच्य, (५) प्राच्यकठ, (६) कपिष्ठलकठ, (७) चारायणीय, (८) वारायणीय, (९) वार्त्ता-न्तवीय, (१०) श्वेताश्वतर (११) औपमन्यव, (१२) पाताण्डिनीय (१३) मैत्रायणीय। मैत्रायणीय के फिर छः भेद होते हैं (१) मानव, (२) वाराह, (३) दुन्दुभ, (४) छागलेय, (५) हारिद्रवीय, (६) श्यामायनीय। तैत्तिरीयों के मुख्य दो भेद हैं। औखेय और खाण्डिकेय। खाण्डिकेयो के पाच भेद कालेत, शाट्यायनी, हैरण्यकेशी, भारद्वाजी, आपस्तम्बी।

उनमे भी प्राच्य, उदीच्य, नैर्ऋत्य इन दिशा के वासी वाजसनेय शाखा के मानने वाले विद्वानो के भी १५ भेद होते हैं। वाजसनेय, जाबाल, बोधायन काण्व, माध्यन्दिनेय, शाफेय, तापनीय, कपोल, आवटिक, परमावटिक, पाराशर, वैणेय, अद्ध और बौधेय।

इस प्रकार ८६ पहली और १५ ये सब मिलकर १०१ यजुर्वेद की शाखाएं हो जाती हैं। जैसा महाभाष्यकार पतञ्जलि ने लिखा है—"एक-शतमध्वर्युशाखाः॥" अर्थात् १०१ शाखा यजुर्वेद की हैं, यह वचन पूर्ण हो जाता है।

यजुर्वेदीय चरणव्यूह में*—मैत्रायणीय के ७ भेद लिखे हैं। उसमें 'छागलेय' न पढकर श्याम और चैकेय दो शाखाओं को विशेष कहा है।

---

(२) तैत्तिरीयका नाम द्विभेदा भवन्ति। औख्याः खाण्डिकेयाश्चेति तत्र खाण्डिकेया नाम पञ्चभेदा भवन्ति। आपस्तम्बाः, बौधायनाः, सत्याषाढाः, हैरण्यकेशाः, काट्या-यनाश्चेति। तत्र कठानमुपगानविशेषाश्चतुश्चत्वारिंशदुपग्रन्थाः।

(३) वाजसनेया नाम सप्तदशभेदा भवन्ति। जाबाला बौधेयाः काण्वा माध्य-न्दिना. शापीया स्तापायनीयाः कापाला' पौण्ड्रवत्सा आवटिका परमावटिका वारायणीया वैधेया वैनेया औधेया गालवा वैजयाः कात्यायनीयाश्च।

और तैत्तिरीय खाण्डिकेय शाखा के आपस्तम्ब, बौधायन, सत्याषाढ, हैरण्यकेश, और कात्यायन ये पांच भेद लिखे हैं।

और वाजसनेयों के १७ भेद माने हैं। जिनमें बौधेय शापीय तापायनीय, औधेय, पौण्ड्र वत्स, वैधेय, वैनेय, आदि कुछ नाम अक्षरभेद से आये हैं और औधेय, गालव वैजय, कात्यायनीय ये नाम विशेष है।

परन्तु चरणव्यूह परिशिष्ट में भी १०१ शाखाओं को गिनाया नहीं गया है। जब इसकी तुलना अन्य चरण व्यूहों से करते हैं तो शाखाओं के नामों मे और भी अधिक भेद प्रतीत होता है। अथर्ववेद के परिशिष्टो मे विद्यमान चरणव्यूह में इस प्रकार लिखा है—

तत्र यजुर्वेदस्य चतुर्विंशतिर्भेदा भवन्ति। तद्यथा। काण्वाः। माध्यंदिना। जाबाला। शापेया। श्वेताः। श्वेततरा। तास्रायणीया। पौर्णवत्साः। आवटिका। परमावटिका। हाप्या। धौप्या। खाडिका। आह्वरका। चरका। मैत्रा। मैत्राणीगा। हारीतकर्णाः। शालायनीयाः। मर्चकठा। प्राच्यकठा। कपिष्ठलकठा। उपलाः। तैत्तिरीयाश्चेति।

जब इन तीनों चरणव्यूहों की तुलना करते हैं तो उनमे परस्पर बड़ा भेद है। अथर्व परि० चरणव्यूह में १२ भेद ही गिना कर छोड़ दिये हैं। इन नामों में से कुछ नाम शुक्ल शाखा के हैं और कुछ नाम कृष्ण शाखा के है। इससे कुछ निर्णय नहीं हो सकता कि ये शाखा भेद किस प्रकार हुए। शौनकीय चरण व्यूह परिशिष्ट के टीकाकार पण्डित महिदास ने 'नृसिंह पराशर' नाम ग्रन्थ का उद्धरण उठा कर कुछ अन्य शाखाओं का भी उल्लेख किया है जैसे— याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, मूलघटक, बाणस सहवास गोत्रपण्डित, समानुज, गयावल, त्रिदण्ड आदि, देश और ग्राम भेद से नाना नाम हो गये। अग्निपुराण में लिखा है—

एकोनद्विसहस्रं तु मन्त्राणां यजुषस्तथा
शतानि दशविप्राणां षडशीतिश्च शाखिकाः ।
काण्व माध्यंदिनी संज्ञा कठी माध्यकठी तथा ।
मैत्रायणी च संज्ञा च तैत्तिरीयाभिधानिका
वैशम्पायनिकेत्याद्याः शाखा यजुषि संस्थिताः ॥

अर्थ—एक कम दो सहस्र यजुर्वेद में मन्त्र हैं तथा ८६ शाखाएं हैं १००० ब्राह्मण हैं। काण्व, माध्यंन्दिनी भी, माध्यकठी, मैत्रायणी, तैत्तिरीया, वैशम्पायनी इत्यादि यजुर्वेद की नाना शाखाए हैं।

विष्णु-भागवत पुराण में लिखा है—

तासां स चतुरः शिष्यानुपाहूय महामतिः ।
एकैकां संहितां ब्रह्मन्नेकैकस्मै ददौ विभुः ॥
पैलाय संहितामाद्यां बह्वृचाख्यामुवाच ह ।
वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥
साम्नां जैमिनये प्राह तथा छंदोगसंहिताम् ।
अथर्वाङ्गिरसीं नाम स्वशिष्याय सुमन्तवे ॥

पराशर से सत्यवती में अंशांशकला से भगवान् ने उत्पन्न होकर वेद को चार प्रकार का किया। वर्ग २ मे ऋग्, यजु, साम, इनके राशियों को उद्धृत करके चार संहिताएं बनायी। उसने चार शिष्यों में से एक २ को एक २ संहिता प्रदान की। पैल को बह्वृच् नामक (ऋग्वेद) वैशम्पायन को निगद' नाम यजुर्वेद। सामों की छंदोग संहिता जैमिनी को और अपने शिष्य सुमन्तु को अथर्वांगिरसी नामक संहिता दी। आगे यजुर्वेद के विषय में लिखा है—

वैशम्पायनशिष्या वै चरकाध्वर्यवोऽभवन् ।
यच्चेरुर्ब्रह्महत्यांहःक्षपणं स्वगुरोर्व्रतम् ॥

वैशम्पायन के शिष्य चरकाध्यर्यव थे। जिन्होंने अपने गुरु के लिये ब्रह्महत्या के पाप के निमित्त प्रायश्चित्त का आचरण किया इसी से वे 'चरकाध्वर्यु कहाये।

इस सम्बन्ध मे प्राय. सभी पुराणो में इस कथा को इस प्रकार से वर्णन किया है कि ब्रह्महत्या के निमित्त वैशम्पायन के शिष्य याज्ञवल्क्य ने अहंकारपूर्वक कहा कि मैं ही समस्त व्रताचरण कर लूंगा और ये शिष्य तो 'अल्पसार' हैं इस पर गुरु वैशम्पायन ने क्रुद्ध होकर अपनी पढ़ायी समस्त विद्या माग ली। याज्ञवल्क्य ने वह सब वमन कर दी। और उसके अन्य शिष्य मुनियो ने तित्तिरि पक्षी बनकर, लोलुप होकर उस वमन को लिया। याज्ञवल्क्यने उसके पश्चात् आदित्य की उपासना करके यजुंगण को प्राप्त किया। इस सम्बन्ध में भागवत (का० १२ अ० ६। ७२, ७४॥) में लिखा है—

> एवं स्तुतः स भगवान् वाजिरूपधरो हरिः
> यजूंष्ययातयामानि मुनयेऽदात् प्रसादितः।
> यजुर्भिरकरोच्छाखा दश पञ्च शतैर्विभुः।
> जगृहुर्वाजसंन्यस्ता काण्वमाध्यन्दिनादयः॥

इस प्रकार स्तुति करने से प्रसन्न होकर वाजि'रूप धर कर हरि (सूर्य) ने याज्ञवल्क्य मुनि को 'अयातयाम यजुर्गण' प्रदान किये। सैकड़ो यजुषो से उस विद्वान् ने १५ शाखाए कीं। 'वाज' अर्थात् केसरों या रश्मियो या वेग से प्रदान की उन शाखाओ को काण्व मध्यन्दिन आदि विद्वानों ने ग्रहण किया।

भागवत के इस लेख के समान ही प्राय अन्य पुराणों भी लेख हैं याज्ञवल्क्य का गुरु से पृथक् होकर सूर्य से यजुर्वेद को प्राप्त करने की कथा प्राय सर्वत्र समान रूप से मिलती है। इससे कुछ पुराणों के अनु-

सार ये परिणाम निकल सकते हैं । (१) याज्ञवल्क्य द्वारा प्राप्त यह यजुर्व. व्यासद्वारा व्यस्त यजुर्वेद से अवश्य पृथक् हो । अर्थात् वैशम्पायन को व्यास ने वह यजुर्वेद नहीं पढ़ाया हो । (२) व्यास और वैशम्पायन के पूर्व भी यजुर्वेद स्वतन्त्र रूप से शुद्ध विद्यमान हो । और (३) व्यास के अतिरिक्त भी यजुर्वेद अन्य विद्वानों के पास विद्यमान हो ।

पुराणों की कथा मे यजुर्वेद इस चमकते रवि की उपासना से प्राप्त हुआ यह अन्ध-विश्वास बहुत प्रबल है । हमें यह बुद्धिविरुद्ध प्रतीत होता है । इस अन्ध विश्वास को अन्य पुराणों ने भी विचित्र २ प्रकार से पुष्ट किया है । जैसे वायु और ब्रह्माण्ड पुराण (अ० ६१) में लिखा है—

तत. स ध्यानमास्थाय सूर्यमाराधयद् द्विज
सूर्यब्रह्म यदुच्छिन्नं खं गत्वा प्रतितिष्ठति
ततो यानि गतान्यूर्ध्वं यजूंष्यादित्यमण्डले ।
तानि तस्मै ददौ तुष्ट सूर्यो वै ब्रह्मरातये ॥

याज्ञवल्क्य ने ध्यान लगा कर सूर्य की आराधना की । और 'सूर्य' वेद जो उस समय लुप्त होकर केवल आकाश मे ही विद्यमान था उनमे २ जो यजुः ऊपर सूर्य में चले गये थे वे ही सूर्य ने प्रसन्न होकर ब्रह्मराति अर्थात् याज्ञवल्क्य को प्रदान किये ।

यह कल्पना केवल इस शंका को निवारण करने के लिये की गयी है कि जड़ सूर्य मे से यजुर्गण कैसे निकले और वहां आये कहा से ? इ भी एक शका उठती है कि सूर्य ने याज्ञवल्क्य को किस प्रकार उपदेश किये । इसके समाधान के लिये पुराणकारों ने यह कल्पना की है कि सूर्य स्वयं अश्व का रूप होकर आया और उसने अश्व रूप से याज्ञवल्क्य को वे का उपदेश कर दिया । जैसा श्रीधर ने भागवत के 'जगृहुर्वाजसन्यस्ता. पद के व्याख्यान में लिखा है—जगृहुः अधीतवन्त रविणा अश्वरूपेण

कहिये वेदों की यह हत्या या ब्रह्महत्या ही हो गयी थी। समस्त ऋषियों के सामने यह विचारणीय समस्या उपस्थित हुई कि पुन इस दोष को कैसे हटाया जाय। योगी याज्ञवल्क्य ने पुन शुद्ध संहिता प्राप्त करने का भगीरथ यत्न किया हो, इस मत भेद से ही उसने कदाचित् वैशम्पायन कुल को छोड़कर वाजसनेय ऋषि के कुल में दीक्षा ली हो।

तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण् ॥ पा० ४ । ३ । १०२ ॥

तित्तिरि आदि शब्दों से 'तेन प्रोक्तम् अधीयते' इस अर्थ में 'छण्' प्रत्यय होता है। तित्तिरिणा प्रोक्तमधीयते तैत्तिरीया। तित्तिरि आचार्य से कहे प्रवचन को पढ़ने वाले छात्र तैत्तिरीय कहाये और वह प्रवचन 'तैत्तिरीय' कहाया। इसी प्रकार पाणिनि ने अन्य भी कई आचार्यों का पता दिया है। जैसे—शौनकादिभ्यश्छन्दसि पा० ४ । ३ । १०६ इस सूत्र के शौनकादिगण में शौनक, वाजसनेय (साङ्गरव) शार्ङ्गरव, साम्पेय, (सावेय) शोप्पेय शाखेय, खाडायन, स्तम्भ (स्कन्ध) देवदर्शन

(देवदत्तशठ रज्जुभार रज्जुकण्ठ कठशाठ (कशाय) कषाय, तल (तलवकार) तण्ड, पुरुपासक पुरुपासक) अश्वपेज (अश्वपेज) * ये नाम भी परिगणित है। इनमे वाजसनेय' ऋषि का नाम है। उसके शिष्य वाजसनेयी कहाते हैं। इससे अश्वरूप सूर्य से याज्ञवल्क्य ने यजुषो को ग्रहण किया इत्यादि कल्पना वाजसनेय' होने मे असत्य प्रतीत होती हैं। शापेय, खाडायन, तलवकार आदिशाखा कारो के नाम भी स्पष्ट हैं।

पाणिनीय सम्प्रदाय मे प्रसिद्ध यह बात है कि —

(१) वैशम्पायन के ६ शिष्य थे आलम्बि, पलङ्ग या फलिंग, कमल ऋचाभ, आरुणि, तारड्य, श्यामायन, कठ, कलापी ।

(२) कलापि के चार शिष्य थे हरिद्रु छगली, उलप, और तुम्बुरु।

(३) चरक वैशम्पायन काहा नाम था।

इन नामों मे याज्ञवल्क्य का कोई नाम नहीं आता। याज्ञवल्क्य अति प्राचीन प्रतीत होता है। याज्ञवल्क्य प्रोक्त ब्राह्मण शतपथ भी प्राचीन प्रतीत होता है। चाहे काशिका कारने याज्ञवल्क्य को प्राचीन ब्राह्मणकारो से अर्वाचीन माना है। परन्तु महाभाष्यकारने याज्ञवल्क्य को प्राचीन ब्राह्मणकार के तुल्यकाल ही माना है। फलतः शुक्ल और कृष्ण नाम होने का कोई अन्य ही कारण है।

सर मोनियर विलियम ने अपने प्रसिद्ध कोश मे कृष्ण, शुक्ल होने का यह कारण लिखा है कि कृष्ण यजुर्वेद ब्राह्मण भागो से मिश्रित होने से वह 'कृष्ण' है और यजुर्वेद में ऐसा न होकर शुद्ध मन्त्र संहिता है अत. 'शुक्ल' है। इस कथन में भी हमें बहुत गहराई नहीं पता लगती। एक यह भी विचार है कि वेदव्यास 'कृष्ण' द्वैपायन कहाते थे। उनका नाम कृष्ण' था उस नाम से ही कदाचित् उनकी शिष्यपरम्परा में प्रसिद्ध वेदशाखा

---

* कोष्ठगत नाम काशिकाभिमत हैं। और साथ के दीक्षिताभिमत है।

कृष्ण शाखा है और इससे इतर वाजसनेय शिष्यपरम्परा में प्रसिद्ध वेद शुक्ल शाखा हैं। पुराणों ने जो लिखा है कि याज्ञवल्क्य ने सूर्य से उन यजुर्गण को प्राप्त किया 'यानि वेत्ति न तद् गुरुः' जिनको उनका गुरु नहीं जानता था महिदास पण्डित ने इसका भी यही भाव लिया है कि तेषां व्यासेनानुपदिष्टत्वात् इति भावः। अर्थात् उनको व्यास ने उपदेश नहीं किया। उक्त पण्डित ने शुक्ल और कृष्ण होने का एक कारण यह भी बतलाया है।

वेदोपक्रमणे चतुर्दशी पौर्णिमाग्रहणात् शुक्लयजुः।
प्रतिपदायुक्तपौर्णिमाग्रहणात्कृष्णयजुः ॥

अर्थात् वेदोपक्रम कार्य में चतुर्दशी को पूनम मानने से वे शुक्ल यजु कहाये और प्रतिपत् से युक्त पूनम मान लेने से दूसरों के कृष्ण यजु कहाये। परन्तु यह कारण तुच्छ एवं एकदेशी है। ब्राह्मण ग्रन्थों में 'शुक्ल' और 'कृष्ण' के सम्बन्धी नीचे लिखे उद्धरण प्राप्त होते हैं वे भी इस विषय पर कुछ प्रकाश डाल सकते हैं।

(१) तद् यच्छुक्लं तद् वाचो रूपम्। ऋचो अग्नेर्मृत्योः। सा या सा वाग् ऋक् सा। अथ योऽग्निर्मृत्युः सः। अथ यत्कृष्णं तदपां रूपम् अन्नस्य मनसः यजुषः ॥ तद्यास्ता आपोऽन्नं तत्। अथ यन्मनो यजुस्तत्। जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण १। २५॥

जो शुक्ल है वह वाणी का रूप है। ऋक् और मृत्यु का भी श्वेत रूप हैं। वाणी ही ऋक् है। अग्नि मृत्यु है। कृष्ण रूप जलों का अन्न और मन का है। आपः भी अन्न है, मन यजु है। यह 'कृष्ण' और 'शुक्ल' का आध्यात्मिक विवरण है। अध्यात्म में वाणी शुक्ल है और मानस संकल्प कृष्ण है। 'आप' ये अन्न हैं, अर्थात् जिस प्रकार शरीर में मानस बल ही अन्न के बने शरीर में क्रियाऽऽधान करता है और उसी प्रकार वेदवाणियों को यजुर्वेद ही कर्मकाण्ड में नियुक्त करता है।

(२) यज्ञो हि कृष्णः । स यः स यज्ञः । तत्कृष्णाजिनम् ॥ यज्ञ ही कृष्ण है । यज्ञ कृष्णाजिन हैं । इस संकेत से भी कदाचित् यज्ञ में विनियुक्त यजुर्वेद को 'कृष्ण यजुर्वेद' कहा गया हो । और यजुर्वेद की शुद्ध संहिता को शुक्ल कहा गया हो ।

(२) असौ वा आदित्यः शुक्रः । श० ६ । ४ । २ । २१ ॥ एष वै शुक्रो य एष तपति । शत० ४ । ३ । १ । २६ ॥ आदित्य ही शुक्र है । शुक्र वह है जो यह तप रहा है ।

(३) तत्र ह्यादित्यः शुक्र श्चरति । आदित्य शुक्र रूप होकर विचरता है । इससे आदित्य 'शुक्र' होने से आदित्य से प्राप्त यजुर्गण शुक्र या 'शुक्ल यजु' कहाये ।

आदित्य को परमेश्वर का वेदमयस्वरूप हम पहले लिखे आये हैं । शुद्ध यजुर्वेद परमेश्वर से ही प्राप्त हुआ है इस कारण इस का नाम 'वाजसनेय' संहिता है । इस विषय पर प्रकाश डालने वाली नीचे लिखी ऋचा है जो ऋग्वेद अथर्व वेद दोनों में समान रूप से है ।

यदा वाजमसनद् विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ॥
बृहस्पतिं वृषभं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥

ऋ० १० । ६७ । १० ॥

जब बृहस्पति विद्वान्, वेदज्ञ पुरुष 'विश्वरूप वाज' परमेश्वर के विश्वमय ज्ञान, वेद को प्राप्त करता है और वह तेजोमय मोक्ष या उत्कृष्ट पदों को प्राप्त करता है तब उस पर मेघ के समान ज्ञान के प्रदान करने वाले उस 'बृहस्पति' विद्वान् पुरुष को नाना प्रकार से (आसा ज्योतिर्बिभ्रतः) मुख से ज्ञानरूप ज्योति को धारण करते हुए नाना विद्वान् पुरुष (वर्धयन्त) उसकी ही महिमा को बढ़ाते हैं । यहां बृहस्पति शब्द आचार्य और परमेश्वर दोनों का वाचक हो सकता है ।

इस मन्त्र में विद्वान् आचार्य एवं परमेश्वर का उच्च पदपर विराजना और उससे ज्ञान प्राप्त करने वाले विद्वानों का उसकी विद्या को फैलाने का वर्णन प्रतीत होता है। पूर्ण वेदमय ज्ञान को 'विश्वरूप वाज' शब्द से कहा प्रतीत होता है। जो विद्वान् उस वाज को स्वयं प्राप्त करे और दूसरों को सम्भाग करे, वितरण करे वह विद्वान् वेद के अनुसार 'वाजसन' कहावेगा उसके शिष्य वाजसनेय कहवेंगे। इस समाख्या से गुरुपरम्परा से परमेश्वर (आदित्य) से प्राप्त शुद्ध यजुर्वेद यह शुक्ल यजुर्वेद है इसमें सदेह नहीं है। यज्ञ क्रियाओं में विनियुक्त हो जाने पर ब्राह्मणादि प्रवचनों से संयुक्त अन्य शाखा यज्ञमय होने से कृष्ण कहाई ऐसा प्रतीत होता है। अभी यह विषय और भी अधिक अनुशीलन चाहता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस पर कुछ भी प्रकाश नहीं डाला।

शाखा नामों की तुलना से भी हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि परस्पर में नामों का कोई मेल नहीं है। शुद्ध नाम भी नहीं मिलते। इन शब्दों के शुद्ध रूपों की आशा केवल व्याकरण से तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में आये नामों से हो सकती है। परन्तु सब के वर्णन में एकता नहीं हैं। चरणव्यूहों तक में भेद है। एक चरणव्यूह में वाजसनेय शाखा के १५ भेद हैं तो दूसरे में १७ भेद हैं। इसी प्रकार अन्यों में भी भेद है।

कठों की विशेष शाखाएं

कठों की भिन्न २ शाखाओं का उल्लेख नहीं है। तो भी इतना संकेत मिलता है कि—

"कठानां पुनर्यान्याहुः चत्वारिंशच्चतुर्युतान् ॥"

अर्थात् कठों के ४४ उपग्रन्थ कहे हैं। उनका कुछ पता नहीं चलता इसी सम्बन्ध में वेदों के निष्णात श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर ने स्वप्रकाशित

यजुर्वेद की भूमिका में लिखा है 'तत्र कठानां चतुश्चत्वारिंशदुपग्रन्था:' इस चरण व्यूह के लेख से इनको भी शाखा ही समझा है। और उनका लेखन न होने से उनको गणना के अयोग्य बतलाया है। परन्तु पण्डित महिदास ने कठों के ४४ उपग्रन्थो को ४४ अध्याय स्वीकार किया है। फलत. उनके यजु संहिता में ४४ अध्याय थे। ऐसा प्रतीत होता है। अब तो केवल पांच संहिताएं ही प्राप्त होती हैं।

(१) काठक सहिता (२) मैत्रायणी संहिता। (३) तैत्तिरीय संहिता। (४) वाजसनेय माध्यंदिन संहिता। और (५) कारव संहिता। इन पाचो में से पहली तीनो की रचना समान है। और तीनो ब्राह्मण भाग से युक्त हैं। शेष दो कारव और माध्यदिन दोनों बहुत अधिक समान है परन्तु तो भी इन दोनों मे मन्त्रों की न्यूनाधिकता पाठ, क्रम, प्रवचन आदि मे भेद है। इसी प्रकार वाजसनेय सहिता के माध्यंदिनी और कारव शाखाओं में भेद है। परन्तु यह भेद बहुत भेद नही है। दोनो पर एक ही सर्वानुक्रम सूत्र है। दोनों का एक ही शतपथ ब्राह्मण है। शाखा भेद से ब्राह्मण-संहिताओ मे भी यत्किञ्चित् भेद है।

निगद् और अयातयाम

अब प्रश्न यह है कि क्या वैशम्पायन को महर्षि व्यास ने जिस यजुर्वेद का उपदेश किया वह भिन्न था और याज्ञवल्क्य ने जो यजुर्गण आदित्य से प्राप्त किये वे भिन्न थे ? यदि दोनो के भेद था तो दो यजुर्वेद सिद्ध होते है। परन्तु वेद ईश्वरोक्त होने से उनको दो नही माना जा सकता। हमारा अपना विचार है कि दोनों यजुर्वेद एक ही थे। कथाकारो ने स्पष्ट लिखा है।

वैशम्पायनसंज्ञाय निगदाख्यं यजुर्गणम् ॥

अर्थात् वैशम्पायन को 'निगद' नाम यजुर्वेद दिया। 'निगद' का

अर्थ शुद्ध 'मन्त्र पाठ' है। यास्क को जहां मन्त्र की विशेष व्याख्या नहीं लिखनी होती वहां वह 'निगदेनैव व्याख्याता' लिखकर छोड़ देता है। महाभाष्यकार भी 'निगद' शब्द को केवल मन्त्र पाठ के लिये प्रयुक्त करते हैं।

यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते
अनग्निरिव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्।

पातञ्जलमहाभाष्ये पस्पशान्हिके।

'बिना समझे केवल जो वेदपाठमात्र पढ़ा जाता है वह बिना जले काष्ठ के समान कभी विद्या का प्रकाश नहीं होता इस वेदज्ञान के लिये व्याकरणादि अंगों का पढ़ना आवश्यक है।' हमारी पूर्व विवेचना से यह भी स्पष्ट है कि चरक वैशम्पायन का निज नाम था। उसको व्यासदेव कृष्ण ने शुद्ध यजुर्मन्त्रों का उपदेश किया यह स्पष्ट है। परन्तु यज्ञ में विनियुक्त करके ब्राह्मण से संवलित हो जाने पर पुनः वही कृष्ण' द्वैपायनप्रोक्त मन्त्र पाठ शुद्ध नहीं रहा। पुन. याज्ञवल्क्य की गुरु परम्परा में वह शुद्ध पाठ युक्त यजुर्वेद था वह बाद में भी बराबर शुद्ध मन्त्र मात्र ही रहा। इसलिये वह ही अभी तक यजुर्वेद माना जाता रहा है। महर्षि दयानन्द ने भी इसी कारण से उसी शाखा को शुद्ध यजुर्वेद स्वीकार किया है। ऐसा प्रतीत होता है।

याज्ञवल्क्य ने 'अयातयाम' यजुषों को प्राप्त किया इसका तात्पर्य यह है कि यजुष् इतने शुद्ध यजुष् थे कि मानों जिनको अभी एक प्रहर भी नहीं बीता हो। अर्थात् 'सदा से रहनेवाले', जो कभी पुरातन न हों, ऐसे सारवान् जिनका ज्ञानरस कभी क्षीण न हो।

भागवत के भाष्यकार श्रीधरस्वामी ने 'अयातयामानि' का अर्थ 'अयथावदविज्ञातानि' किया है, अर्थात् जिनका अन्य विद्वानों ने उस समय ठीक प्रकार से ज्ञान नहीं किया था।

वाजसनेय शाखानामों की तुलना

चरणव्यूह (यजु)	चरणव्यूह (शौनक)	चरणव्यूह (अथर्व)	विष्णु पु०	ब्रह्माण्ड पु०	हेमाद्रि	वायु०
वाजसनेयाः	वाजसनेयाः		वाजसनेयाः			
जाबाला	जाबाला.	जाबालाः	जाबालाः	जाबालाः	जाबालाः	
	बौद्धायनाः		बौधायनीया	बौद्धकाः	बौधायनीयाः	
काण्वाः	काण्वाः	काण्वा	काण्वाः	कण्वाः	काण्वाः	काण्वा·
माध्यंदिनाः	मौध्यंदिनेयाः	माध्यंदिनाः	माध्यंदिना'	मध्यंदिनाः	माध्यंदिनाः	मध्यंदिना·
शापीयाः	शाफेयाः	शापेया.	शापेयाः	शापेयीः	शापेया.	
तापायनीयाः	तापनीयाः			तापनीयाः		
कापालाः	कपोला·	कपालाः	कपालाः		कपाला	
पौण्ड्रवत्साः	पौण्डरवत्साः	पौर्णवत्साः	पौण्ड्रवाः		पौण्डवाः	
आवटिका	आवटिका	आवटिकाः	रसारविकाः	आरविकाः	रसारविकाः	आटविकाः
परमावटिकाः	परमावटिकाः	परमावटिकाः	परमारविकाः		परमारविकाः	
पाराशरीयाः	पाराशराः		पाराशराः		पाराशराः	
वैनेयाः	वैणेयाः					
	अद्धाः		अद्धाः	अद्धाः	अदध्या	

बौधेयाः	बौभ्रेयाः		बौधेयाः	वैधेया.	बांधेयाः	वैधयाः
गालवा				गालवा'		गालवाः
यैजया						
श्रौवेया.						
कात्यायनीयाः						
		ताम्रायणीया'		ताम्रायणा'		ताम्रायणा.
						शालिन
						विद्गिधा
						उद्दला
				वात्सा		वात्स्या.
						शैपिरी
						पर्णा
						वीरणा
						परायणा
				केतका	सुपायिनः	शप्या
					प्रयोध्या.	
					श्रयोधेया.	

वाजसनेयों की सारणी देखने से प्रतीत होता है कि नामों में बड़ा भेद हैं। जाबाल सर्वत्र है। बौद्धायन, बौधायन, बौद्धक, बौधायनीय इतने नाम भेद हैं। जिनमें शुद्ध नाम बोधायन, प्राप्त होता है। इसके श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र, गृह्यसूत्र भी मिलते हैं। काण्वशाखा भी सर्वत्र समान है इस शाखा, की संहिता, सर्वानुक्रम, तथा ब्राह्मण भी प्राप्त है। शापीय शाफेय, शापेय, शापेयी ये नाम उपलब्ध होते हैं। शौनकादिगण में 'शापेय' और 'सावेय' दोनों नाम उपलब्ध होते हैं। तापायनीय, तापनीय दोनों नाम हैं। कपाला', कपोलाः दोनों नाम प्राप्त हैं। सम्भवतः ये कलापी की प्रोक्त कालाप शाखा है जिसके अध्येता 'कालाप' कहाते थे। कलापी की वैशम्पायन के शिष्यों में गणना है। आवटिक, और आटविक और अटवी तीनों नाम प्राप्त हैं 'रसारविक' यह विकृत नाम भी मिलता है। इसी प्रकार परमावटिक परमारविक दोनों नाम मिलते हैं। सम्भवतः परमाटविक नाम शुद्ध हैं। अटवीका अर्थ अरण्य है। स्यात् आरण्यकाध्यायी आटविक परमाटविक कहाते हों। 'ट' और 'र' के लेखसाम्य से पाठ भेद होकर परमारविक भी कहा गये हों। पराशर सर्वत्र समान है। अद्ध और 'ऋद्ध' दोनो मे अ और ऋ वर्णलिपि के समानता से बदले दीखते हैं। बौधेय, बोधेय' वेधेय भी इसी प्रकार हैं। गालव केवल एक चरणव्यूह और ब्रह्माण्ड और वायु पु० में मिलते हैं। वैजव केवल एक चरणव्यूह में हैं। औधेय और कात्यायन भी एक ही में है। कात्यायनीय श्रौत और गृह्यसूत्र मिलते हैं। 'ताम्रयणीय' भी तीन स्थानों पर प्राप्त हैं। केवल' शाखा एक स्थान में वत्स और वात्स्य ब्रह्माण्ड और वायु पु० में ही है। शालीन, विदिग्ध, उद्दल, शौषिरी पर्णी वीरणी परायण, और अप्य ये केवल वायु पु० में मिलते हैं। जिनमे उद्दल उद्दालकोक्त शाखा प्रतीत होती हैं। वंश ब्राह्मण में उद्दालक अरुण का शिष्य है। 'शिरीष' कुमुदादिगण और वराहादिगण (पा० ४।२।८०) में पठित है। विदग्ध या विजग्ध भी वराहादिगण में पठित है। शौरषि और शैपिरी एक ही हैं, वर्णव्यत्यय हो गया है। शिशिर शब्द का इससे

कोई सम्बन्ध नहीं। पर्णी, और वरणा दोनो शब्द वरणादिगण (पा० ४।२।८८।) में पढ़े हैं। हेमाद्रिप्रोक्त ऋद्ध्य अयोध्य, अयोधेय, शब्द हैं इनमें से भी योधेयादि गण में यौधेय शब्द पठित हैं। इस गण पाठ से यद्यपि हम विशेष कोई परिणाम नहीं निकाल सकते परन्तु क्योंकि इनमें बहुत से प्राचीन आर्ष नाम भी पढ़े हैं इस सहयोग से सम्भवत ये शब्द शाखाकारों के मूल नाम हों। यही विकृत होकर स्थान २ पर दीखते हैं ऐसा विचार उत्पन्न होता है। अगले गवेषणाचतुर विद्वान् इससे कोई विशेष स्थिर परिणाम प्राप्त करें।

अभीतक शुक्र शाखाओ के विषय में यह विचार प्राय देखने में आता है कि याज्ञवल्क्य के ही १५ शिष्यों ने १५ शाखाएं चलादी हैं। परन्तु हमें यह विचार बहुत अधिक महत्व का नहीं जंचता है। हमारे विचार में इन समस्त शाखाकारो का याज्ञवल्क्य से कोई सीधा साक्षात् सम्बन्ध नहीं हैं। वे कदाचित् उसके एक कालिक शिष्य भी नहीं थे। क्योंकि शतपथ के वंशब्राह्मण में बहुत से शाखाकारों के नाम आते हैं जैसे याज्ञवल्क्य जिसका दूसरा नाम वाजसनेय भी कहा जाता है वह स्वयं उद्दालक का शिष्य है। उसका शिष्य आसुरि है। उद्दालक की प्रवर्त्तित शाखा का उल्लेख 'उद्दल' नाम से वायु पुराण में प्राप्त है। याज्ञवल्क्य से ६ पीढ़ी पूर्व वाजश्रवा नाम गुरु हैं। कदाचित् उनका दूसरा वाजसन' नाम हो इससे भी इस शाखा का नाम वाजसनेय चलना सम्भव है। इस वंश के सब से प्रथम गुरु 'आदित्य' का नाम है इससे ये 'आदित्य' स प्राप्त यजुर्वेद कहे जाते हैं। शिष्य परम्परा से अनन्त शिष्यों के पास पहुच कर भी उनका ज्ञानरस वैसा का वैसा ही सारिष्ठ रहा इससे 'अयातयाम' कहाये। 'पाराशर' एक शाखाध्यायी हैं। परन्तु वंशब्राह्मण में पाराशरीपुत्र वार्कारुणीपुत्र के शिष्य और भारद्वाजीपुत्र के गुरु हैं। इसी प्रकार ब्रह्माण्डपुराण मे 'वत्स' और वायु पु० में वात्स्य शाखा का नाम लिखता है भारद्वाजीपुत्र का शिष्य वात्सीपुत्र था। इसी प्रकार द्वितीय वंशब्राह्मण में शाण्डिल्य का शिष्य वात्स्य है। और जातूकर्ण्य का पाराशर्य है। चरणव्यूह, ब्रह्माण्ड और वायु

में गालव शाखा का नाम लिखा है। वंश ब्राह्मण में विदर्भी कौण्डिन्य का शिष्य गालव है। बौद्धायन, बोधायन, आदि का प्राय सभी ने उल्लेख किया है। वंशब्राह्मण (१) में शालकायनी पुत्र का शिष्य बोधी पुत्र है। इसी प्रकार यदि सभी अन्य शिष्य परम्पराओ का पता लग जाय तो और शाखाओं के प्रवर्त्तकों का विवरण भी स्पष्ट हो सकता है।

मैत्रायणीय के ७ भेद

चरणव्यूह (यजुः)	चरणव्यूह (शौनकः)	चरणव्यूह अथर्व	विष्णु०	वायु०
मानव	मानव		मानव	
वाराह	वाराह		वाराह	
दुन्दुभ	दुन्दुभ		दुन्दुभ	
छागलेय			छागेय	
हारिद्वीय	हारिद्रवेय	हारीतकर्णी	हारिद्रवीय	
श्यमायनीय	श्यामायनीय		श्यामायनीय	श्यामायनि
	श्याम		श्याम	
	चैकेय			

मानव, वाराह, दुन्दुभ हारेद्रवाय, श्यामयनीय, ये शाखा सर्वत्र समान हैं। छागलेय का दूसरा नाम छागेय हैं। छगलिनो ढिनुक्। पा० ४। ३। १०६॥ में 'छागलेयिनः' ऐसा पाणिनिसिद्ध प्रयोग शाखाध्यायी शिष्यों के लिये आता है। छगली, कलापी के चार शिष्यों मे से एक है। श्यामायन वैशम्पायन के शिष्यों में है, उसके शिष्य 'श्यामायनी' कहाये हैं। हरिद्रवीयों का पूर्व भी लिख आये हैं। उसका ब्राह्मणों में वर्णन आता है। अथर्व चरणव्यूह मे 'हारितकर्णी' लिखा है। यह वंश ब्राह्मण मे भारद्वाजी-पुत्र का शिष्य हारीतकर्णी पुत्र है। श्याम शाखा का उल्लेख यजु० चरणव्यूह और विष्णु पु० ने किया है। चैकेय भी अज्ञात सा नाम है।

चरक शाखा के द्वादश भेद

चरणव्यूह (यजु)	चरणव्यूह शौनक	चरणव्यूह अथर्व	विष्णु०	वायु०	ब्रह्माण्ड	हेमाद्रि
चरका.	चरका	चरका'	चरकाः	चरका.		चरकाः
आह्वरका'	आह्वरकाः	आह्वरकाः				छरका
कठा'	कठा		कठा			कठा
प्राच्यकठा.	प्राच्यकठा'	प्राच्यकठाः	प्राच्यकठा			प्राच्यकठाः
कपिष्ठलकठा'	कपिष्ठलकठाः	कपिष्ठलकठाः	कपिष्ठलकठाः			कपिष्ठलकठाः
चारायणीया	चारायणीयाः					नारायणीयाः
वाराय्रणीयाः	वारायणीयाः					
वार्त्तान्तवेया'	वार्त्तान्तवीयाः					
श्वेताश्वतरा.	श्वेताश्वतरा.	श्वेततराः	श्वेताश्वतराः			श्वेताश्वतराः
औपमन्यवा	औपमन्यवा'					
पाताण्डिनीया.	पाताण्डनीया					मैत्रायणा
मैत्रायणीया.	मैत्रायणीयाः	मैत्रायणीया	मत्रायणाः			हारिद्रवीयाः श्वेता.

इन नामों में बहुत कम भेद है। हेमाद्रिने 'करकाः' लिखा है। पं० महीदास ने चरकाध्वर्युओं को वरकाध्वर्यु इस नामान्तर से भी लिखा है। हेमाद्रि ने नारायणीय नामान्तर दिया हैं। वरतन्तु से 'वारतन्तवीय' शब्द व्युत्पन्न होता है। चरणव्यूहों में यह शब्द विकृत कर दिया है। 'चारायण' आचार्य का नाम प्राचीन अर्थशास्त्रो में उपलब्ध होता हैं। कठ वैशम्पायन के साक्षात् शिष्य थे। पाणिनि सम्प्रदायने वैशम्पायन को ही चरक माना है।उसके ९ शिष्य माने हैं। आलम्बि, पलङ्ग, कमल, ऋचाभ, आरुणि, ताण्ड्य श्यामायन कठ और कलापी। प्रचलित इन १२ नामों में केवल कठ और चरक का पता चलता है। बाकी सब वैश्यम्पायन के साक्षात् शिष्य नहीं हैं। वरतन्तु सम्प्रदाय का नाम चरकों में हैं परन्तु वह न वैशम्पायन के शिष्यों में और न कलापी के शिष्यों में हैं। वे स्वतन्त्र आचार्य प्रतीत होते हैं। वारायणिय को हेमाद्रि ने नारायणीय लिखा है। इस नाम से यजुर्वेद का पुरुष सूक्त और उस का अगले अध्याय के द्रष्टा ऋषि नारायण हैं। और तैत्तिरीयारण्यक में नारायणोपनिषत् भी हैं। कदाचित् वही इस शाखा के प्रवर्तक हों। श्वेताश्वतर शाखा की इसी नाम से उपनिषद् प्राप्त है। निरुक्तकार यास्कने औपमन्यव का उल्लेख किया है। पातण्डिनीय या पाताण्डनीय यह नाम विकृत हैं। वैशम्पायन के नव शिष्यो में ताण्ड्य का नाम हैं। इसके शिष्य ताण्डिन्' कहाते हैं। अग्नि पुराण ने एक वैशम्पायनी शाखा का भी स्वीकार किया है। 'मैत्रायणी' शाखा की संहिता उपलब्ध है। आह्वरक शाखा का पता नहीं चला। कठ वैशम्पायन के शिष्य प्रसिद्ध हैं। देशभेद से प्राच्यकठ और गोत्र भेद से कपिष्ठल कठों का भेद हुआ है। हरिद्रु कलापी का शिष्य है। उससे हारिद्रवीय शाखा चली, इसका उल्लेख हेमाद्रि ने किया है।

तैत्तिरीयों के शाखा-भेद

तैत्तिरीयों के मुख्य दो भेद हैं। औखेय और खाण्डिकेय। पाणिनि ने तित्तिरि वरतन्तु और खण्डिक, उख इन चारों का नाम एकही स्थान पर रख दिया है। तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्। वे चारो स्वतन्त्र आचार्य प्रतीत होते हैं। तित्तिरि के शिष्य तैत्तिरीय, खण्डिक के शिष्य खाण्डिकीय और उख के शिष्य औखीय और वरतन्तु के 'वारतन्तवीय' कहाते हैं। तित्तिरि वैशम्पायन के शिष्य नहीं थे। फिर उनकी शाखा कृष्ण क्यों कहाई यह विचारणीय हैं।

खाण्डिकेयों के पांच भेद

चरणव्यूह (यजुः)	चरणव्यूह (शौनकः)	विष्णु
कालेता		कोलया
शाट्यायनी	काव्यायनाः	
हैरण्यकेशी	हैरण्यकेशा	हिरण्यकेशाः
भारद्वाजी		भारद्वाजाः
आपस्तम्वी	आपस्तम्वाः	आपस्तम्वा.
	बौधायनाः	बोधायनीयाः
	सत्याषादा	

खाण्डिकेयो के पांच भेद हैं आपस्तम्ब, बौधायन, सत्याषाढ़, हिरण्य केश और काव्यायन आपस्तम्ब मुनिप्रोक्त धर्म, गृह्य और श्रौत सूत्र और यज्ञ परिभाषा सूत्र उपलब्ध है। परन्तु वाजसनयो में भी एक बौद्धायन और 'बौधेय' नाम आते हैं। वंशब्राह्मण में सालकायनीपुत्र का

शिष्य बौधीपुत्र मिलता है। हिरण्यकेशी संहिता प्राप्त है। इस शाखा के मानने वाले मिलते हैं। मानव गृह्यसूत्र हिरण्यकेशीय शाखा के हैं। कदाचित् पूर्वोक्त मानव शाखा मैत्रायणीयों का भेद होकर भी हिरण्य-केशीयों मे सम्मिलित हो। 'कात्यायन' शाट्यायन शब्द का अपभ्रष्ट स्वरूप प्रतीत होता है। शौनक चरणव्यूह में शाट्यायन का नाम है। इस नाम का श्रौतसूत्र प्राप्त है। ब्राह्मणो में भी स्थान २ पर यह नाम आता है। भारद्वाज का गृह्यसूत्र प्राप्त है। इसका वंशब्राह्मण मे भी कई वार नाम आया हैं। सत्याषाढ़ों का श्रौतसूत्र उपलब्ध है। और शेष शाखा के भेदों का उल्लेख कहीं नही मिलता। इन सब भेदों के अतिरिक्त। अथर्व परिशिष्ट चरणव्यूह मे 'उपल' शाखा का नाम है शुद्ध शब्द 'उलप' प्रतीत होता है। वह कलापी के चार शिष्यों मे से है। वहां ही ताम्रायणीय नाम भी है। शुद्ध शब्द 'तौम्बुरविण' प्रतीत होता है। 'तुम्बुरु' कलापी के चार शिष्यों मे हैं। वायुपुराण मे आरुणि और आलम्बि दो नाम और मिलते है। अरुण उद्दालक के गुरु हैं। दूसरे, वैशम्पायन के नव शिष्यो में एक 'अरुण' है उसके शिष्य भी आरुणि कहाये। 'आलम्बी' वैशम्पायन के नव शिष्यों मे एक हैं। और वंश ब्राह्मण में आलम्बायनीपुत्र का शिष्य आलम्बी पुत्र है।

इस प्रकार बहुत से नाम वंशब्राह्मणों मे मिल जाते हैं और वेही नाम शिष्यों मे भी मिलते हैं। अतः किसमे शाखा नाम चला, नहीं कहा जा सकता। कदाचित् प्राचीन नामों को ही पीछे मे किसी भी रूढि के वश शिष्यादि रूप से कल्पित कर लिया हो। या एक ही नाम के बहुत से हो गये हों इत्यादि सभी समस्याएं अन्धकार में हैं। स्वल्प स्थान मे हमने बहुत से नामो का दिग्दर्शन मात्र करा दिया है। आगे निर्णय करना विद्वानों का कार्य है। शतपथ ब्राह्मण तथा बृहदारण्यक उपनिषत् मे जो वंश ब्राह्मण दिये है उनकी शिष्य परम्परा नीचे देते हैं।

(१) शतपथान्तर्गत वंशब्राह्मण। (शत० १४ । ६ । ४)

१. आदित्य। २. अम्भिणी। ३. वाक्। ४. काश्यप नैध्रुवि। ५. काश्यप. शिल्प। ६. कश्यप हरित.। ७. असितः वार्षगण। ८ जिह्वावान् बोध्यागः। ९. वाजश्रवाः। १०. कुश्रिः। ११ उपवेशि। १२ अरुण। १३. उद्दालक। १४. याज्ञवल्क्य। १५. आसुरि.। १६. आसुरायण। १७. प्राश्नीपुत्र (आसुरिवासी)। १८. कार्शकेयी पुत्र.। १९. साञ्जीवीपुत्र.। २०. प्राचीनयोगी पुत्र। २१. भालुकीपुत्र। २२ वैदभृतीपुत्र.। २३ क्रौञ्चुकीपुत्रः। २४ राथीतरीपुत्र। २५. शाण्डिलीपुत्र। २६. भाण्डुकीपुत्र.। २७. माण्डुकायनीपुत्रः। २८. जायन्तीपुत्रः। २९ आलम्बायनीपुत्र। ३० आलम्बीपुत्र। ३१ सांकृतीपुत्र। ३२ शौङ्गीपुत्रः। ३३. आर्त्तभागीपुत्र.। ३४ वार्कारुणीपुत्र। ३५ पाराशरीपुत्र। ३६ भारद्वाजीपुत्र। ३७. वात्सीपुत्र। ३८ गौतमीपुत्र.। ३९. आत्रेयीपुत्र ४०. गौतमीपुत्र। ४१. वार्षगणीपुत्र.। ४२. शालङ्कायनीपुत्र। ४३. बौधीपुत्र। ४४ कौत्सीपुत्र। ४५ काश्यपीबालाक्या माठरीपुत्र.। ४६ शौनकीपुत्र। ४७ पैङ्गीपुत्र। ४८ भारद्वाजीपुत्र। ४९ हारि(त)कर्णीपुत्र.। ५० मौषिकीपुत्र। ५१ वाडेयीपुत्र। ५२ गार्गीपुत्र। ५३ पाराशरीकौण्डिनीपुत्र। ५४. गार्गीपुत्र.। ५५ वात्सीमाण्डवीपुत्र.। ५६. भारद्वाजीपुत्रः। ५७. वयम्।

(२) वंशब्राह्मण (शत० १४ । ५ । १९—२२)

१ स्वयंभुब्रह्म। २. परमेष्ठी। ३. सनक। ४. सनातनः। ५. सनारु। ६. व्यष्टि। ७ विप्रजित्ति। ८. एकर्षि। ९ प्रध्वंसनः। १०. प्राध्वंसनो मृत्यु.। ११ दैव. अथर्वा। १२. दध्यङ् आथर्वण। १३. अश्विनौ। १४. त्वाष्ट्र विश्वरूप। १५. त्वाष्ट्र आभूति। १६. आयास्य आङ्गिरसः। १७. सौभर पन्था। १८. वत्सनपात् बाभ्रव। १९. विदर्भी कौण्डिन्य.। २०. गालव.। २१. कुमारहारीतः। २२.

काण्यः कैशोर्यः । २३. शाण्डिल्यः । २४. वात्स्य । २५. गौतमः । २६. माण्टिः । २७ आत्रेय. । २८ भारद्वाज । २९. भारद्वाज. । ३०. आसुरिः । ३१ औपजन्धनिः । ३२. त्रैवणिः । ३३. आसुरायण यास्कः । ३४. भारद्वाज । ३५. जातुकर्ण्य. । ३६. पाराशर्य । ३७. पाराशर्यायणः । ३८. घृतकौशिकः । ३९. कौशिकायनिः । ४०. सायकायनः । ४१. औपजन्धनिः । ४२. त्रैवणिः । ४३. सौकरायण । ४४. काषायणः । ४५ बलाकाकौशिकः । ४६. भारद्वाज । ४७. गौतमः आसुरायण । ४८ भारद्वाज । ४९. जातूकर्ण्य. । ५०. पाराशर्य । ५१. सैतवः । ५२. अग्निवेश्यः कौण्डिन्य । ५३. कौण्डिन्य । ५४. कौण्डिन्यः । ५५. और्णवाभः । ५६. कौण्डिन्यौ । ५७. कौण्डिन्यायन. । ५८. पौतिमाष्यायणः । ५९. रैभ्यः । ६०. जैवन्तायन शौनकः । ६१ रौहिणायन । ६२. शाण्डिल्यः । ६३. वैष्टपुरेयः वैजपायनः । ६४. गौतम वैजवापः । ६५. शाण्डिल्यः । ६६. औदवाहिः । ६७. भारद्वाज. । सांकृत्यः । ६८. पाराशर्यः । ६९. वात्यः । ७०. गौतमः । ७१. शौर्पणाय्य. ।

(३) वंशब्राह्मण (बृहदा उप० ६ । ५)

१. स्वयंभु ब्रह्म । २. प्रजापतिः। ३. तुर. कावषेय. । ४. राजस्तम्बायनः। यज्ञवचा. । ५. कुश्रि. । ६. वात्स्यः । ७. शाण्डिल्य; । ८. वामकक्षायणः। ९. माहित्थि. । १०. कौत्सः । ११. माण्डव्यः । १२. माण्डूकायनिः । १३. सांजीविपुत्रः । (शेष (१) वंश ब्राह्मण मे देखो)

प्रस्तुत भाष्य

प्रस्तुत भाष्य मे यह यत्न किया गया है कि जहां तक सम्भव हो सरल, बुद्धिगम्य प्रस्फुट अर्थ. पाठकों को विदित हो। अन्य पक्षों को भी प्रस्तुत भाष्य में यथास्थान संक्षेप से स्वल्प से ही दर्शाया गया है। कर्मकाण्ड के प्रकरण की हमने स्वय उपेक्षा की है। क्योंकि

उसके विवरण के लिये सब्राह्मण मूलमन्त्र के व्याख्यान की आवश्यकता है। उसके लिये विशाल ग्रन्थ अपेक्षित हैं। जिन पक्षों पर महर्षि दयानन्द ने अपने आकर भाष्य में प्रकाश डाला है उनको पिष्टपेषण जान कर विशेष रूप से नहीं दर्शाया गया। महर्षि के पदार्थ-भाष्य की तुलना प्राचीन किसी भाष्य से भी नहीं की जा सकती। क्योंकि वे यज्ञपक्षीय हैं और महर्षि का पदार्थ-भाष्य सर्वतो भद्र है। भाषान्तर कार बहुत से स्थलों पर महर्षि के भावो को सुसयत भाषा मे स्पष्ट करने में असमर्थ रहे हैं। बहुत से स्थलों पर भाव विकृत भी कर दिया है। पदार्थ भाष्य में महर्षिदयानन्द ने जितने पक्षो को दर्शाने का कौशल दर्शाया है भाषान्तरकारों ने उसपर विशेष विचार नहीं किया है। कुछ स्थल महर्षि के भाष्य में विचार योग्य हैं। उनपर मत भेद हो जाना स्वाभाविक है। महर्षि दयानन्द मार्गदर्शी गुरु हैं। इसमे तानिक भी सदेह नहीं।

भूमिका में जितने अशों को दर्शाया है उससे अतिरिक्त विशेष वक्तव्य विषय अगले खण्ड की भूमिका में दर्शाये जावेगें। और बहुत से विषय महर्षिदयानन्द ने स्वयं अपनी ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में दर्शा दिये हैं। उनको सर्व विदित जानकर यहां पिष्टपेषण नहीं किया गया। यही शैली पूर्व के खण्डो की भूमिकाओं में भी समझना चाहिये।

मैं मनुष्य हूं, निर्भ्रान्त नहीं हू। सर्वज्ञ भी नहीं हूं। और किसी भी मनुष्यसीमा में स्थित व्यक्ति को सर्वज्ञ, निर्भ्रान्त, तथा एकान्त प्रमाण भी नहीं मानता हूं। सब पूर्वाचार्यों को और उनके वैदिक मार्ग में यथाशक्ति किये यत्न को वेद की रक्षा के निमित्त जान कर मान और आदर का पात्र समझता हूं। मत-भेद होने से कोई विद्वान् अशिष्टोचित अनादर का पात्र नहीं हो सकता। किसी पूर्वाचार्य ने भी अगलों के लिये वेद मार्ग पर विचार करने और स्वतन्त्र भाष्य बनाने का निषेध नहीं किया। और न किया जा सकता है।

यह मेरा परिश्रम गुण ग्राहियो के लिये लिये है। दुर्भाव से भाष्य पर दुर्दृष्टि करने वालों के लिये मैंने कुछ नहीं किया है। इस में सन्देह नही कि दोषदर्शन करने मे निपुण खलो के लिये इसमे सहस्रों कल्पित दोष दीखेगे। परन्तु गुणग्राही सज्जनो को मेरे सहस्रो दोपों में से भी गुण दिखाई देगें। और वे उसको अपने स्वभाव के अनुसार हंस के समान अवश्य ग्रहण करेंगे। उपसंहार में मै सज्जनों और दुर्जनों के स्वभावो का कुछ वर्णन पूर्व विद्वानों के शब्दों मे करता हूं जिससे पाठक शीघ्र ही इस भाष्य पर किये सदालोचनो और कदालोचनों का भेद और उनके कर्त्ताओ का विवेक कर सकेंगे।

सज्जनों के गुण

(१) नागुणी गुणिनं वेत्ति गुणी गुणिषु मत्सरी।
गुणी च गुणरागी च विरलः सरलो जनः॥

गुणहीन पुरुष गुणवान् को नहीं पहिचान सकता। गुणवान् होकर भी पुरुष गुणवानों से इर्षा करता है। परन्तु स्वय गुणवान् और दूसरों के गुणो का प्रेमी सरल सज्जन विरला ही होता है।

(२) मुखेन नोद्गिरत्यूर्ध्वं हृदयेन नयत्यधः।
जरयत्यन्तरे साधुर्दोषं विषमिवेश्वर॥

सज्जन पुरुष दूसरे के दोष को मुख से ऊंचे नही बोलता। वह उसको नीचे हृदय तक भी जाने नहीं देता। वह बीच ही मे ऐसे नष्ट कर देता है जैसे शिव ने कण्ठ में ही गरल रख लिया।

(३) शून्येऽपि गुणवत्तामातन्वानः स्वकीयगुणजाले।
विवराणि मुद्रयन् द्रागूर्णायुरिव सज्जनो जयति॥

गुण न होने पर भी अपने गुणों से गुण बतलाकर दूसरो के छेदों को मूदने वाला सज्जन मकड़ी के समान सर्वोत्कृष्ट है।

(४) अमृतं किरति हिमांशुर्विषमेव फणी समुद्गिरति ।
गुणमेव वक्ति साधुर्दोषमसाधु प्रकाशयति ॥

चन्द सदा अमृत बरसाता है, सांप विष उगलता है, सज्जन गुण बखानता है, दुर्जन दोष दिखाया करता है।

(५) दोषोगुणाय गुणिनां महदपि दोषाय दोषिणां सुकृतम् ।
तृणमिव दुग्धाय गवां दुग्धमिव विषाय सर्पाणाम् ॥

गुणग्राहियों को दूसरे के दोष भी गुण से भासते हैं, दोषदर्शियों को बड़ा उपकार भी दोष ही जंचता है। गौवें तृण खा कर भी दूध बनाती हैं और सर्प दूध पीकर भी विष घोलते हैं।

(५) नम्रत्वेनोन्नमन्त परगुणकथनैः स्वान् गुणान् ख्यापयन्त ।
सन्त- साश्चर्यचर्या जगति बहुमता -कस्य नाभ्यर्चनीया ॥

सज्जन विनय से झुककर ही ऊंचे चढ़ते हैं वे दूसरे के गुण वर्णन करके ही अपने गुण प्रकाशित करते है। ऐसे आश्चर्यजनक जीवनचर्या वाले सज्जन किसके आदरणीय नहीं।

दुर्जन-स्वरूप ।

(१) खलः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥

दुष्ट पुरुष दूसरे के सरसों के बराबर भी छेदों को देखा करता है और अपने बेल फल के समान बड़े छेदों को भी नहीं देखता।

(२) न विना परवादेन रमते दुर्जनो जनः ।
काकः सर्वरसान् भुक्त्वा विना ऽमेध्यैर्न तृप्यति ॥

दुर्जन पुरुष विना परनिन्दा के नहीं चैन लेता। कौआ सब उत्तम रस खा कर भी विना गन्दगी खाये नहीं तृप्त होता।

(३) संत्यज्य शूर्पवद् दोषान् गुणान् गृह्णाति पण्डितः ।
दोषग्राही गुणत्यागी पल्लोलीव हि दुर्जनः ॥

छाज के समान सज्जन दोषों को त्याग कर गुणों को ग्रहण करता है। छालनी के समान दुर्जन दोषों को लेकर गुणों का त्याग कर देता है।

(४) दुर्जनो दोषमादत्ते दुर्गन्धिमिव सूकरः ।
सज्जनश्च गुणग्राही हंसः क्षीरमिवाम्भसः ॥

दुर्जन दोष ही पकड़ता है जैसे सूअर मल पर ही जाता है। सज्जन गुण ही ग्रहण करता है जैसे हंस जल में से भी दूध लेलेता है।

(५) वृथाज्वलितकोपाग्नेः परुषाक्षरवादिनः ।
दुर्जनस्यौषधं नास्ति किंचिदन्यदनुत्तरात् ॥

व्यर्थ कोपाग्नि भड़काने वाले, कठोर वचन बोलने वाले दुर्जन का औषध सिवाय मौन के दूसरा नहीं।

इस प्रकार सज्जन दुर्जन की विवेचना के मननसे ही समस्त पाठक सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करेंगे। मनुष्य होने के कारण प्रभु की परम वाणी के अत्यन्त गूढ़ अर्थों को मैं प्रकट करने में कितनी त्रुटियां कर सकता हूं इसको मैं ही जानता हूं। और उस अनन्त ज्ञानमय प्रभु की वाणी के पद २ में भरे अनन्त तत्व ज्ञान को सीमा से बांधने में हमारे इन परिमित पदों और क्षणसीमित मानस संकल्पों का क्या सामर्थ्य? यह तो सब केवल ब्रह्मयज्ञ को कर्त्तव्य समझ कर अपने ही अन्तस्तल को सुखी करने के लिये किया गया है। जो सहृदय मेरे इस प्रयास के साथ २ अपने स्वाध्याय रूप ब्रह्मयज्ञ का सम्पादन करेंगे उनको भी यदि कुछ सन्तोष प्राप्त हो तो इससे अधिक सुख का विषय और क्या है? विद्वान् वाचकों से हमारा निवेदन यह है कि मेरे इस प्रयास मे वे जो त्रुटियां पावें मुझे स्वयं उनसे सूचित करें जिससे अगले संस्करणों में उन त्रुटियों को

दूर करके इस ग्रन्थ को और भी अधिक उत्तम बनाकर ऋषिऋण से मुक्त हो सकूं। अन्त में ईश्वर से प्रार्थना है कि वह स्वयं यज्ञपुरुष मुझे इस पवित्र वेदाध्ययनरूप तप और वेदचिन्तन रूप महान् ब्रह्मयज्ञ में सफल करें। अन्त में पुनः भवभूति के शब्दों में निवेदन है कि—

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्तु ते किमपि ? तान् प्रति नैष यत्नः ॥

एवं भट्ट कुमारिल के शब्दों में

आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते ॥

तथा—गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः ॥

अजमेर, केसरगंज,
फाल्गुन कृष्णा, अष्टमी
१९८६ वैक्रमाब्द।

विद्वानों का अनुचर—
जयदेवशर्मा विद्यालंकार
मीमांसातीर्थ।

विषय-सूची

प्रथमोऽध्यायः (पृ० १-३०)

द्वितीयोऽध्यायः (पृ० ३१-६०)

वरुण और राजा के कर्त्तव्य ।(४) विद्वान् अग्रणी की स्थापना और पक्षान्तर में परमेश्वर की स्तुति ।(५)राजा के तेजस्वी होने का उपदेश ।(६) ब्रह्माण्ड और राष्ट्र की तीन बड़ी शक्तियों की तुलना । राजा, अधिकारी और प्रजाओं का उचित अधिकार । (७) राजा का अभिषेक और राष्ट्र चालकों के वेतन रूप स्वधा ।(८)परमेश्वर और राजा की आज्ञा का पालन । (९) दूतस्थापन, सत्पुरुष रक्षा, ऐश्वर्य प्राप्ति । (१०) आत्मबल, सत्य आशीर्वाद, और ज्ञान की याचना ।(११) उत्तम माता पिता की शिक्षा की प्राप्ति और उत्तम स्वास्थ्य । (१२) यज्ञपति के रक्षा की प्रार्थना । (१३) विद्वान पुरुष का यज्ञ सम्पादन । (१४) अग्नि स्वरूप तेजस्वी पुरुष की वृद्धि और उसके अधीनों की वृद्धि । (१५) विजयलाभ, ऐश्वर्यवृद्धि, द्वेषी पुरुष का पराजय, युद्धोपयोगी सेना बल की वृद्धि । (१६) विद्वान् प्रजाओं के लिये राजा का अभिषेक, उसकी रक्षा, उत्तम राज्य की प्राप्ति । तथा आधिभौतिक यज्ञ का वर्णन । (१७) (१८) व्यवहार कुशल पुरुषों द्वारा राष्ट्र की सीमाओं की रक्षा ।(१९) अग्नि और वायु नामक दो अधिकारी । (२०) दुःख, अविद्या, पाप, से रक्षा, सुख शान्ति, उत्तम ज्ञान की प्राप्ति । (२१) वेदमय देव का स्वरूप । (२२) आधिभौतिक यज्ञ और राष्ट्र का वर्णन । (२३) यज्ञ का स्वरूप । (२४) शुद्ध मनन शक्ति, तेज और ऐश्वर्यों की वृद्धि और शुद्धि की प्रार्थना । (२५) व्यापक परमेश्वर और राष्ट्र में व्यापक राजशक्ति का वर्णन । (२६) परमेश्वरसे तेज और बल की प्रार्थना । २७) उत्तम गृहस्थ होने की प्रार्थना । (२८ व्रत पालन । (२९) उत्तमों का पालन और दुष्टों का दमन । (३०) नीच लोगों का निर्वासन । (३१ वृद्धजनों को प्रसन्न रखना । (३२) उनका आदर । ३३ उत्तम, सन्तान उत्पन्न करना, उत्तम पुरुष बनाना । (३४) उत्तम पदार्थों से पिता, माता, वृद्ध जनों का तर्पण ।

तृतीयोऽध्यायः (पृ० ६१–६६)

(४) यज्ञ, अग्नि का उपयोग, और ईश्वर उपासना । (५)

अग्न्याधान, राजा का स्थापन और गृहस्थ कर्म का महत्व। (६-८) सूर्य और पृथ्वी का सम्बन्ध। (६. १०) प्रातः सांय के हवन मन्त्रों में ईश्वर-उपासना और भौतिक तत्व। (११) उत्तम मन्त्र का उपदेश। (१२) सूर्य, राजा और परमेश्वर। (१३) विद्युत् अग्नि, तथा राजा और सेना नायक दोनों का वर्णन। (१४) उच्चपद की प्राप्ति। (१५) उच्चपद-प्राप्त राजा, और विद्वानों का संग। (१६) विद्वानों द्वारा शक्तियों का दोहन (१७) आयु की याचना। (१८) वीर बलवान् होकर दीर्घ जीवन की प्राप्ति। (१६) तेज की प्राप्ति। (२०) उत्तम अन्न का भोजन। (२१, २२) प्रजाओं और पशुओं का सम्पन्न होकर बसना। (२३) ईश्वर और राजा का स्वरूप। (२४) राजा का परमेश्वर के समान प्रजा के प्रति पिता के तुल्य होने का उपदेश। (२५) उसका प्रजा का रक्षक होने का कर्त्तव्य। (२६) उससे, ज्ञान, न्याय, दुष्टदमन की याचना करना। (२७) राजा का उत्तम संकल्प। (२८) राजपद पर योग्य की नियुक्ति। (२६) राजा का कर्त्तव्य। (३०) विद्वान् से रक्षा की प्रार्थना। (३१) सुव्यवस्थित राष्ट्र। (३२) उसमें दुष्टों के दमन का लक्ष्य (३३) विद्वानों के लक्षण। (३४) राजा का कर्त्तव्य, प्रजा का पोषण, (३५) पापनाशक परमेश्वर राजा। (३६) राजा का अपराजित रथ, (३७) प्रजा पशु, अन्न, इनकी रक्षा। (३८) सम्राट् का प्रजा को ऐश्वर्य, और बल देने का कर्त्तव्य, (३६) गृहपति राजा का कर्त्तव्य, (४०) अग्रणी, नेता विद्वान का कर्त्तव्य, (४१, ४२, ४३) गृहपति और गृहजनों और प्रजा और अधिकारी जनों का परस्पर परिचय, सद्भाव, अभय होना। (४४) उत्तम विद्वानों का आमन्त्रण। (४५) दुश्चरित्र का त्याग। (४७) कर-व्यवस्था। (४७) श्रमी, कर्मकर और वेतनों की व्यवस्था। (४८) राजा के कर्त्तव्य। (४६) व्यापार और विनियय करने के नियम। (५०) परस्पर विनियम और साख। (५१) विद्वानों के कर्त्तव्य उत्तम पदार्थ प्रस्तुत करना, राजा का काम रक्षा करना। (५२) सर्वनिरीक्षक राजा का आदर। (५३) मानस शक्ति की

शुद्धि के उपाय। (५४) दीर्घजीवन के लिये ज्ञानवृद्धि के उपाय।
(५५) ज्ञान और दीर्घायु की प्राप्ति। (५६) ज्ञानवान् होकर प्रजासम्पन्न होना। (५७) राजा के हाथ पांव श्रमी जन। (५८) दुःखनाशक उपाय। (५९) सब प्राणियों को सुख और रोगनाश करना। (६०) बन्धनमोचन। (६१) वीरों का कर्त्तव्य। (६२) त्रिगुण आयु। (६३) प्रजा अन्न, धन, पुष्टि आदि के घातक कारणों से प्रजा की रक्षा।

चतुर्थोऽध्यायः (पृ० १००–१३७)

(१) देवयजन में प्राप्त होकर बाधाओं को दूर करना आप्तों से रक्षा।(२) आप्त जनों के कर्त्तव्य. दीक्षा और तप, (३), घृत और आदित्य के दृष्टान्त से राजा का कर्तव्य। (४) उपास्य देव से पवित्रता की प्रार्थना। (५) विद्वान् पुरुषों से आशीर्वाद की याचना (६) यज्ञ का सम्पादन व्रत, प्रजाप्रति के पांच यज्ञ। (७) अध्यात्म यज्ञ और आधिभौतिक यज्ञ (८) ईश्वर और राजा का वरण और ऐश्वर्य की प्राप्ति। (९) यज्ञ की समाप्ति तक रक्षा की प्रार्थना। (१०) बल, शरण, और कृषि की प्रार्थना। (११) व्रताचरण, प्रजा प्राप्ति और दीर्घायु और रक्षा। (१२) वीर्यरक्षा, प्रजापालन। (१३) जलों के दृष्टान्त से आप्त पुरुषों का वर्णन। (१४) राजा को सावधान होने का उपदेश। (१५) मन, आयु, प्राण, चक्षु आदि शक्तियों की पुन प्राप्ति। (१६) स्तुत्य ईश्वर और राजा से ऐश्वर्य की याचना। (१७) मन और वाणी शक्ति से ईश्वरोपासना। (१८) वाणी की साधना। (१९) वाणी का वर्णन। (२०) विद्युत् का वर्णन। (२१) पृथ्वी, ब्रह्मशक्ति, विद्युत् और राष्ट्र शक्ति का वर्णन। (२२) राजा प्रजा के परस्पर कर्त्तव्य। (२३) वेदवाणी, विद्युत्, और पत्नी का वर्णन। (२४) राजा का अधिकार दान। (२५) (२६) ईश्वर की स्तुति। राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (२७) अष्टप्रकृति राज्यव्यवस्था। (२८)

दुश्चरित-बाधन । (२६) उत्तम मार्गों से चलने का उपदेश । (३०) राजा के रक्षा आदि कर्त्तव्य । (३१) राजा के नाना उपमान । (३२) राजा को सर्वप्रिय होने का उपदेश । (३३) प्राण और अपान तथा बैलों के समान दो धुरन्धरों की नियुक्ति । (३४) विजय, दुष्ट-दमन की सुव्यवस्था का उपदेश । (३५) (३६) परमेश्वर का स्वरूप तथा राजा का वर्णन । (३७) ईश्वर और राजा का वर्णन ।

पञ्चमोऽध्यायः (पृ० १३८–१८०)

(१) योग्य पुरुष की उत्तम पद पर नियुक्ति और अन्न का उत्तम उपयोग । (२) अग्नि के दृष्टान्त से राजा और प्रजा की उत्पत्ति । (३) स्त्री पुरुषों को परस्पर प्रेम से रहने का उपदेश । (४) अग्नि के दृष्टान्त से राजा का कर्त्तव्य । (५) राजा के कर्त्तव्यों का उपदेश । (६) व्रत, दीक्षा ग्रहण । (७) राष्ट्र और राजा का सम्बन्ध ब्रह्मरस और योगी । (८) राजा की शक्ति का वर्णन । (९) पृथ्वी पर राजा का कर्त्तव्य । (१०) सेना और वाणी का वर्णन । (११) राष्ट्र की चारों ओर से रक्षा । (१२) वाणी और राजव्यवस्था का वर्णन । (१३) राजा को उपदेश, यज्ञ और ईश्वर का वर्णन । (१४) योगाभ्यास । (१५) (१६) परमेश्वर की महान् शक्ति । (१७) (१८) स्त्री पुरुषों को उपदेश । (१९) (२०) व्यापक ईश्वर की महान् शक्ति । (२१) ईश्वर का वर्णन और राजा का उच्च पद । (२२) स्त्री तथा सेना के कर्त्तव्य । (२३) घातक प्रयोगों का निवारण (२४) राजा के उच्च पदाधिकार (२५) (२६) दुष्टों और शत्रुओं का नाश । (२७, २८) राजा के कर्त्तव्य । (२९) ऐश्वर्य सम्पत्ति पर राजा का स्वत्व । (३०) इन्द्र का पद । (३१, ३२, ३३) राजा के कुछ उच्च अधिकारसूचक पद । (३४) विद्वान् अधिकारी पुरुषों के कर्त्तव्य (३५, ३८) राजा के कर्त्तव्य । (३९) सेनापति, राजा के कर्त्तव्य । (४०) (४३) गुरु शिष्य और राजा और प्रजा के परस्पर व्रत पालन की प्रतिज्ञा ।

षष्ठोऽध्यायः (पृ० १८१-२१७)

सप्तमोऽध्यायः (पृ० २१८-२६७)

और न्यायकर्त्ता का पद। (९) मित्र और वरुण पद, अध्यापक और अध्येता का वर्णन। (१०) मित्र और वरुण, ब्राह्मण और क्षत्रिय गण। (११) सूर्य चन्द्र के समान राजा और प्रजा के परस्पर प्रेम युक्त व्यवहार (१२) (१३) मदमत्त पुरुष के दमन के लिये योग्य अधिकारी की नियुक्ति। पक्षान्तर में योगी का वर्णन। (१४) राजा की उच्च स्थिति, पक्षान्तर में ईश्वर और आचार्य का वर्णन। (१५) राजा और उसके सहायक। (१६) बालक के दृष्टान्त से राजा का वर्णन। पक्षान्तर में चन्द्र का वर्णन, (१७) आक्रामकों के नाशक पुरुष की नियुक्ति। (१८) दुष्टमथनकारि पुरुष का नियोजन। (१९, २३) अधिकारी गण। (२०) मुख्य पदपर सर्वोच्च अधिकारी। (२१) सोम, राजा का वर्णन (२२) इन्द्रपद का वर्णन। (२३) मित्र और वरुण पद का वर्णन। (२४) वैश्वानर सम्राट। (२५) सम्राट् का अभिषेक (२६) उच्चपद प्रदान। (२८) शरीर के अंगों और प्राणों से राज्यांगों की तुलना। (२९) नियुक्त अधिकारियों का राजा से परिचय। (३०) संवत्सर के ऋतु, मासों की तुलना से राज्य पद विभाग वर्णन। (३१, ३२) नायक और सेनापति के इन्द्र और अग्नि पदों पर नियुक्ति। (३३, ३४) विद्वान् पुरुषों की नियुक्ति। (३५, ३६, ३७, ३८) मरुत्वान् इन्द्र, सेनापति का वर्णन। (३९ ४०) महेन्द्र पद, (४१ ४२) जातवेदा, राजा, और परमेश्वर और सूर्य। (४३) मार्गदर्शक विद्वान् और परमेश्वर (४४) प्रजाओं और सेनाओं का वर्गों में विभाग और, प्रजाओं का निरीक्षण और सदस्यों द्वारा व्यवस्था। (४५) उत्तम पुरुष की नियुक्ति। (४६) अधीन पुरुषों को सुवर्णादि का प्रदान। (४७) देने का प्रयोजन।

अष्टमोऽध्यायः (पृ० २६८–३१५)

(१) राज पदपर नियुक्त पुरुष का नियन्त्रण तथा अधिकार। पक्षान्तर में विवाहित गृहस्थ को उपदेश। (२)राजा का वैश्यों पर अधिकार और गृहस्थ का

कर्त्तव्य । (३) राजा का मेघ के समान कर्त्तव्य । चतुर्थाश्रमी का कर्त्तव्य । तथा पक्षान्तर में गृहस्थ को उपदेश । (४) विद्वान गृहस्थों का कर्त्तव्य । (५) विद्वान और गृहस्थ पुरुषों के कर्त्तव्य । (६) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति । (७) सावित्र पदपर नियुक्ति । (८) समस्त विद्वानों के ऊपर एक योग्य पुरुष की नियुक्ति । पक्षान्तर में गृहस्थ का कर्त्तव्य । (९) प्रजा का कर्त्तव्य, राष्ट्र की ऐश्वर्यवृद्धि । पक्षान्तर में पत्नी का कर्त्तव्य । (१०) राजा प्रजा तथा पति पत्नी का परस्पर मिलकर ऐश्वर्य भोग करना (११) रथ में अश्वों के ऊपर सारथी के समान सञ्चालक पुरुष की नियुक्ति, राज्य तन्त्र के समान गृहस्थ तन्त्र । (१२) राजा के अधीन प्रजा का राष्ट्र भोग । (१३) राजा का प्रजा के दोषों को दूर करने का कर्त्तव्य । (१४) उत्तम वैद्य के कर्त्तव्य । (१४) उत्तम नेताओं का कर्त्तव्य । (१५—१७) नाना अधिकारियों के कर्त्तव्य । (१८, १९) अधिकारी और प्रजाओं के कर्म । (२०) उत्तम पुरुष को उच्च पद पर बुलाना । (२१) राष्ट्रपति के कर्त्तव्य । (२३) ऋजु मार्ग का उपदेश । (२४) प्रत्येक गृह में विद्वान् की योजना । (२५) गृहपति, यज्ञपति, राष्ट्रपति का स्वागत । (२६) आप्त प्रजाओं और उत्तम गृहपत्नियों के कर्त्तव्य । (२७) प्रजा का अपने दोष परित्याग । (२८, २९) राजा की गर्भ से उपमा । (३० नाना पदों से युक्त वशा नाम राज्यशक्ति का वर्णन । पक्षान्तर मे नाना पदों वाली वेदवाणी । (३१) उत्तम रक्षक । (३२) राजा प्रजा और पतिपत्नी का परस्पर कर्त्तव्य । (३३, ३४, ३५, ३६,) षोडशी इन्द्र का वर्णन । (३७) सम्राट् राजा का वर्णन । (३८) अग्नि, आचार्य, और नेता का वर्णन । (३७) (३९) इन्द्र पदपर योग्य बलवान् पुरुष का स्थापन । (४०) तेजस्वी सूर्य के समान राजपद (४१) पत्नी और पृथ्वी द्वारा अपने योग्य पालक पति का धारण । (४२) गौ, स्त्री, पृथिवी के नाना गुणों का वर्णन । (४३, ४४, ४५, ४६,) शत्रुमर्दक इन्द्र का वर्णन विश्वकर्मा इन्द्र का

वर्णन। (४७) राजा, इन्द्र का वर्णन। (४८) राजा को भय-प्रदर्शन। (४६, ५०) सदा सावधान रहने योग्य राजपद। (५१) शासकों का कर्त्तव्य। (५२) दीर्घजीवन और मोक्ष का ध्येय। (५३) पर्वत और सूर्य के दृष्टान्त से सेनापति का वर्णन, (५४, ५६) प्रजापति के कर्त्तव्य भेद से भिन्न २ रूप। पक्षान्तर में सोमयाग का वर्णन। (६०, ६३) यज्ञ और राष्ट्र का वर्णन।

नवमोऽध्यायः (पृ० ३१५—३५२)

(१) राष्ट्रमय यज्ञ का सम्पादन। (२ ३, ४,) इन्द्र की स्थापना। (५) संग्राम विजयी पुरुष की सर्वोपरि पदप्राप्ति। (६) जलोषधि के समान राजा का वर्णन। (७) वायु, मन, गन्धर्वों के समान वेगवान् अश्व का आयोजन। (८) वेगवान् अश्व का वर्णन, शिल्पयन्त्र, (६) वेगवान् सेनापति का वर्णन। (१०) उत्तम राजा के शासन में सुख प्राप्ति। (११) सैनिकों को बड़े सेनापति की सहायता का उपदेश। (१२) उनका संग्राम-विजय में सहायतांगदान। (१३) वीर सैनिकों को उपदेश। (१४) अश्वरोही का कार्य, (१६) अश्वा रोहियों के कर्त्तव्य। (१७) उनका आज्ञाश्रवण और चालन का उपदेश। (१८) उत्तम मार्गों से आगे और रक्षा करने का उपदेश। (१६) सैनिकों को पवित्र कार्य की दीक्षा। (२०) सूर्य के १२ मासों के समान प्रजापति के १२ स्वरूप। (२१) यज्ञ से आयु, प्राण आदि का बलवान् बनाना। (२२) ऐश्वर्य की वृद्धि। मातृ-पृथिवी का आदर, राष्ट्रशक्ति के नियमन और कृषि सम्पत्ति की वृद्धि। (२३) प्रजा की सम्पन्नता और शासकों को अप्रमाद का उपदेश। (२४, २५,) प्रजापालक का कर्त्तव्य। (२६, २७,) मुख्य विद्वान् ब्राह्मण की सर्वोपरि स्थापना। (२८) विजयी नेता का कर्त्तव्य। (२६) न्यायाधीश आदि के कर्त्तव्य। (३०) राजा का ईश्वर, विद्वान् पुरोहित, राजसभा के अधीन अभिषेक (३१-३४) १७ प्रकार के अक्षय

बलों से राष्ट्र का वशीकार । (३४, ३६,) राजा और उसके नाना प्रकार के नायकों की प्रतिष्ठा । (३६) शत्रु सेनाओं का विजय । (३८) दुष्ट पुरुषों का वध ।(३९, ४०,) राजा या इन्द्र आदि उच्च पदोंपर स्थापना और सिंहासनारोहण ।

दशमोऽध्यायः (पृ० ३५३–३८४)

राज्याभिषेक । (१) अभिषेक करने हारे योग्य जलों की प्रजाओं से तुलना । (२–४) राष्ट्रप्रद प्रजाओं के प्रतिनिधि रूप जलों से राज्याभिषेक । सिंहासनारोहण । राजा की तेजस्विता का वर्णन । (६, ७,) राजोत्पादक प्रजाएं । (८) बालकोत्पत्ति से राजोत्पत्ति की तुलना । (९) गृहपति के समान राष्ट्रपति । (१०–१४) दुष्टों का नाश । राजा की रक्षा । (१५) राजा की शोभा । (१६) सूर्योदय के समान मित्र और वरुण दोनों का उदय ।राजा का सिंहासना रोहण । (१७) ऐश्वर्य और तेज से अभिषेक । (१८) राजाभिषेक का प्रस्ताव । (१९) अभिषेक वर्णन । (२०) अधिकार-प्रदान । (२१) योग्यता और अधिकारवर्णन । (२२) राष्ट्र संयमन का उपदेश । (२३) राजा की प्रतिष्ठा । (२४) अधिकार पद-स्तुति । (२५) ईश्वरार्पण । (२६) राजगद्दी का वर्णन । (२७) सम्राट् वरुण । (२८) उसके कर्त्तव्य (२९) योग्य पुरुषों को मध्यस्थ होने का उपदेश । (३०) उन्नतपद प्राप्ति । (३१) बल परिपाक करने का उपदेश । (३२) अन्न के दृष्टान्त से शत्रु नाश, और राष्ट्रसाधन । (३३) स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (३४) राष्ट्र के व्यापक शक्तिमान् दो मुख्याधिकारियों के कर्त्तव्य ।

एकादशोऽध्यायः (पृ० ३८५–४४६)

अग्रणी नायक का वर्णन । परमेश्वर प्रकाशमान, आदित्य योगी का वर्णन । सात्विक ज्ञानी का कर्त्तव्य । राजा का कार्य । (२) योग द्वारा ज्ञान प्राप्ति ।

पक्षान्तर में राजा का कर्त्तव्य । (३, ४) विद्वान् ज्ञानवान् पुरुष का कर्त्तव्य । राजा का कर्त्तव्य । (५) एकाग्र होकर ज्ञान का विचार और विद्वानो से ज्ञान का श्रवण । (६) सब का नेता अग्रणी परमेश्वर और राजा । (७) विद्वान् नेता का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में प्राण की शक्ति । (८) क्षत्रपति की स्वीकृति । (९) वज्र का वर्णन । नर रत्न की प्राप्ति । पक्षान्तर मे वाणी का वर्णन । (११) अग्नि, वज्र और वाणी का वर्णन । तेजस्वी होने का उपाय । (१२) उत्तम पद की प्राप्ति । न्यायकारी पद पर नियुक्ति । (१३) दो उत्तम अधिकारियों का यो य विद्वान् पुरुष को नियुक्त करना । (१४) ऐश्वर्यवान् पुरुष को उच्च स्थानों पर बैठाना । (१५) गणपति पद पर योग्यपुरुष की योजना । (१६) तेजस्वी, सम्राट् नेता का वर्णन । (१७) सूर्य और विद्वान की तुलना । (१८ विद्वान नेता की योग्य अश्व से तुलना । (१९) वीर नेता का कर्त्तव्य । (२०) राजा का विराट् रूप । उसको ऊपर उठने का आदेश । (२१) उत्तम राजा के शासन में उत्तम नर रत्नों का उत्पत्ति । (२२, २३) योग्य नेता का योग्य आदर । (२४) राजा को उत्तेजित करके उसे अग्नि के समान तेजस्वी बनाना । (२५) अग्नि सेनापति का वर्णन । (२६) उसके अधीन वीर पुरुषों की नियुक्ति । (२७) अग्नि के समान सेनापति का वर्णन । (२८) नेता का प्राप्त करना । (२९) नायक की समुद्र से तुलना । (३०) राजा प्रजा का परस्पर सम्बन्ध । (३१) गृहस्थ के समान राजा के राज्य का वर्णन । (३२) नेता के अग्नि, से तुलना । (३३) वृत्रहन्ता नेता की शक्ति वृद्धि । (३४) विजयार्थ उत्तेजना । (३५) योग्य पदाधिकारी का कर्त्तव्य । (३६) होतृ पदपर विद्वान् की नियुक्ति, उसके लक्षण और कर्त्तव्य । (३७) अग्नि नेता के लक्षण । योग्य अधिकारी । राजा को तेजस्वी, सौम्य होने का उपदेश । (३८) प्रजाओं के कष्ट निवारण का उपदेश । (३९) विदुषि स्त्री, और पक्षान्तर में प्रजा का अपने पालक पति के प्रति कर्त्तव्य ।

(४०) राजकीय पोशाक को धारण करने का उपदेश । (४१) आदर-पूर्वक उन्नत पद पर आना । (४२) सूर्य से राजा की तुलना । (४३) गर्भगत बालक से नवाभिषिक्त राजा की तुलना । अश्व और राजा का दृढ़, ऐश्वर्यवान्, आशुकारी होना । (४५) राजा का प्रजाओं के लिये कल्याण-कारी, कृपालु होना । (४६) तेजस्वी राजा की विद्युत् वाले मेघ से तुलना । (४७) राजा, सेनापति और वीर सैनिकों की वायु और ओषधियों से तुलना । (४८) ओषधियों और प्रजाओं का वर्णन । (४६) प्रजा की गृहपत्नी से तुलना । (५०-५१, ५२) आप , जलों, विद्वानों और पक्षा-न्तर में स्त्रियों के कर्त्तव्य । (५३) प्रजाओं के आरोग्य के लिये उत्तम विद्वान् की नियुक्ति । (५४) सूर्य की रश्मियों से वीर सैनिकों और विद्वानों की तुलना । (५५, ५६,) सिनीवाली, स्त्री और प्रकृति का वर्णन । पक्षा-न्तर में राजसभा का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में ब्रह्मशक्ति । (५७) हाण्डी के दृष्टान्त से पृथ्वी का वर्णन । मानवों की उत्पत्ति की भूमि और स्त्री का वर्णन । (५८) वसु, रुद्र, आदित्य नामक विद्वानों और निवासियों शासकों, व्यापारियों के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य । (५९) विदुषी माता का वर्णन । (६०) वसु आदि विद्वानों का कर्त्तव्य । (६१) राजसभा का कर्त्तव्य । योग्य राजा और सभापति का प्राप्त करना । पक्षान्तर में विदुषी माताओं का कर्त्तव्य, प्रजा का धारण पोषण । (६२) प्रजा, पृथिवी, और स्त्री का अधिकार । (६३) योग्य पति, और राष्ट्रपति का कर्त्तव्य, (६४) पृथ्वी और पक्षान्तर में स्त्री का कर्त्तव्य । (६५) विद्वानों का कर्त्तव्य । (६६) आत्मिक शक्ति या और उनके प्रयोग का उपदेश । (६७) ऐश्वर्य के निमित्त ईश्वर और राजा का आश्रय । (६८) पतिपत्नी और राजा प्रजा का परस्पर कर्त्तव्य । (६९) पृथिवी, उखा और आसुरी माया, की तुलना से स्त्री और राष्ट्रप्रजा का वर्णन । (७०) वीर्यवान् पुरुष और पक्षान्तर में तेजस्वी का वर्णन । (७१) स्वयंवरण का उत्कृष्ट सिद्धान्त,

पक्षान्तर में राजा का निर्बलों की रक्षा का कर्त्तव्य। (७२) अग्नि, पति, और राजा का दृष्टान्त रूप से वर्णन, (७३) दूरस्थ शत्रुओं के विजय करने का उपदेश, (७४) उपजापकारिणी संस्था का वम्री के दृष्टान्त से वर्णन। (७५) अश्व के दृष्टान्त से राजा को पोषण करने का प्रजा का कर्त्तव्य, (७६) वेदी के केन्द्र में अग्नि के समान पृथ्वी पर राजा का स्थापन और वर्धन। (७७) राजा का आग्नेय स्वरूप, (७८, ७९) दांतों और दाढ़ों के दृष्टान्त से दुष्टों के नाशकारी दमन का वर्णन। (८०) हिंसक शत्रुओं का नाश। (८१) ब्राह्म बल के साथ क्षात्र बल की वृद्धि। (८२) ब्राह्म और क्षात्र बल से शत्रुबल का विनाश।

द्वादशोऽध्यायः (पृ० ४४७–५१६)

(१) सूर्य समान राजा का वर्णन। (२) बालक और सूर्य के दृष्टान्त से राजा का धारण पोषण। (३) सूर्य के समान तेजस्वी राजा। (४) श्येन के दृष्टान्त से राजा और राष्ट्र के अंग प्रत्यंग का वर्णन। (५) राजा को नाना अधिकार प्रदान और नाना कर्त्तव्यों का उपदेश। मेघ के दृष्टान्त से राजा के कर्तव्य। (६) राजा, गृहपति का नाना समृद्धियों की प्राप्ति। (८) पुनः ऐश्वर्यप्राप्ति। (९, १०) देशान्तरों से भी ऐश्वर्य आहरण। (११) ध्रुव पद पर राजा का स्थापन। (१२) पाशमोचक वरुण, श्रेष्ठ अधिकारी राजा। (१३) सूर्य के समान राजा का अभ्युदय। (१४) उसके नाना पद और आदर। (१५) पुत्र के समान पृथ्वी माता के प्रति राजा की स्थिति और कर्त्तव्य। (१६) तेजस्वी शत्रुदमनकारी परंतप राजा का वर्णन। (१७) उसको सर्व कल्याणकारी होने का उपदेश। (१८) विद्वान्, नायक और सूर्य की तुलना। (१९) उसके तीन प्रकार के तेजों का वर्णन। (२०, २१) और्वानल और विद्युत् के समान राज पद का वर्णन। (२२, २३) सूर्य के समान, दाता, पालक, बलवान्, तेजस्वी राजा का वर्णन। (२४) अग्नि के समान राजा का वर्णन।

(२५) सूर्य के समान राजा का वर्णन । (२६) सेनापति और राजा का परस्पर सम्बन्ध । (२७) शत्रु-उच्छेद के लिये सेनापति का स्थापन । (२८) सूर्य समान तेजस्वी पुरुष का वर्णन । (२६, ३०) उसको प्रस्तुत करना उसका गुण वर्णन । (३१) उसके श्रेष्ठ कर्तव्य । (३२) शत्रु पर प्रयाण और राजा के त्राण के उपदेश । (३३,३४) प्रजावत्सल विजयी राजा का आदर । (३५) स्त्रियों के स्वयंवर के समान योग्य राजा को प्रजा का स्वय वरण करना, आदर करना, और उसकी शक्ति को बढ़ाना । पक्षान्तर में स्त्रियों का गर्भ धारण का कर्तव्य । (३६) गर्भोत्पत्ति के समान राजोत्पत्ति का वर्णन । (३७, ३८) जीवात्मा और राजा का वर्णन । (३६) माता की गोद में बालक के समान पृथ्वी पर राजा की सिंहासन पर स्थिति । (४०) समृद्धि प्राप्ति, विजय । (४२) निन्दा और स्तुति में राजा का कर्तव्य । पक्षान्तर में ज्ञानी पुरुष का कर्तव्य । (४३) सत्यासत्य का निर्णय, न्यायकारिता का उपदेश । (४४) विद्वानों का पुन. शक्ति उत्तेजन । (४५) चरों और प्रणिधियों का नियोजन । पक्षान्तर में विद्वानों को आदेश । (४७) विद्वानों, राजा के आश्रितों के प्रति कर्तव्यों का उपदेश । (४८) मुख्य विद्वान् का वर्णन । (४८) ज्ञानवान् पुरुष का सूर्य के समान सर्वद्रष्टा का पद । (४६) ज्ञानी पुरुष का शिक्षा का कार्य । (५०) विद्वानों का प्रेमयुक्त, द्रोहरहित होकर रहने का उपदेश । (५१) विद्वान् पुरुष और पक्षान्तर में अध्यापक का कर्तव्य । (५२) ऐश्वर्य वृद्धि का उपदेश । (५३) चेतना के समान राजसभा का वर्णन । पक्षान्तर में स्त्री का वर्णन । (५४) राजसभा, पक्षान्तर में स्त्री का वर्णन, (५५) सूर्य की रश्मियों से प्रजाओं और पक्षान्तर में स्त्रियों की तुलना और उनके कर्तव्य, (५६) वेद वाणियों के समान प्रजाओं का राजा को बढ़ाना, समुद्र से राजा की तुलना, (५७) दम्पती और राजा प्रजा और पक्षान्तर में मित्रों को प्रेम पूर्वक रहने का उपदेश । (५८, ५६) पुरोहित, अधिपति

का कर्त्तव्य । (६०) दम्पति, मित्रों और युगलों का कर्त्तव्य । (६१) उखा पृथ्वी, प्रजापति के परस्पर कर्त्तव्य, पक्षान्तर में सूर्य पृथिवी का वर्णन । (६२) चारों और डाकुओं को दमनकारी दण्ड शक्ति निर्ऋति का वर्णन । पक्षान्तर में पत्नी और अविद्या का वर्णन । (६६) सूर्य के समान साक्षी राजा का कर्त्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन । (६७) योगाभ्यास और पक्षान्तर में कृषिका उपदेश । (६८–७२) कृषि का उपदेश । (७३) योगियों का वर्णन । पक्षान्तर मे और पशुपालन व्यवहार । (७४) पति पत्नी आदि के दृष्टान्तो से प्रेम वर्त्ताव का उपदेश । (७५) ओषधियों के १०७ धाम । पक्षान्तर में मर्मों का ज्ञान । (७६) ओषधियों, प्रजाओं और वीर सैनिकों का वर्णन, उनके गुण, उनके व्यवहार, तथा उनकी प्राप्ति, उनके कर्त्तव्य । (१०२) परमेश्वर और पक्षान्तर में राजा का वर्णन । (१०३) पृथ्वी और स्त्री का कृषि एवं सन्तानोत्पत्ति का कर्त्तव्य । (१०४) तेज और वीर्य का धारण । (१०५) अन्न और ज्ञान, से आपत्तियों को दूर करना, (१०६) तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य । अन्यों को तेज और ज्ञान का प्रदान करना ।(१०७) तेजस्वी का सूर्य के समान वर्णन । (१०८) राजा प्रजा का परस्पर पोषण । (१०९) प्रजा की पशु सम्पदा से वृद्धि । (११०, ११७) राजा के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में विद्वान् और गृहपति के कर्त्तव्य ।

त्रयोदशोऽध्यायः (पृ० ५१७–५५८)

(१) उत्तम विद्वानों के अधीन राजा का रहना । (२,३) ब्रह्म शक्ति का वर्णन । (४) प्रजापति का स्वरूप । (५) शरीर गत प्राणों में वीर्य के समान तेजस्वी राजा की स्थिति । (६–८) सर्पण स्वभाव दुष्टों का दमन । पक्षान्तर मे गुप्तचरों को नियोजन । (९) बल प्राप्त कर दुष्टों का दमन करना और मातङ्ग बल से प्रयाण । राज्यवृद्धि और शत्रु को तीव्रास्त्रों से नाश करने का उपदेश । (१०) वीर सैनिकों का तीव्र धावा, तीव्र अश्वारोहियों का धावा, अशनि नामक अस्त्रों का प्रयोग । (११) प्रजा के कष्ट का श्रवण करके राजा का

दूत प्रेषण और प्रजापालन का यत्न । (१२) प्रजा के अप्रथादायी शत्रुओं पर आक्रमण और उनको भस्म कर डालने का आदेश । (१३) दिव्यास्त्रो का निर्माण, तथा शत्रुओं के रसद की रोक का उपदेश । (१४) सूर्य के समान राजा का करग्रहण । (१५) सूर्य के समान सेनापति का कर्त्तव्य । (१६) पृथ्वी राजशक्ति, और पक्षान्तर में स्त्री का सुरक्षित रहने का वर्णन । (१७) नौका के दृष्टान्त से प्रजा और पृथ्वी, पक्षान्तर में स्त्री का वर्णन । (१८) पृथिवी और स्त्री । (१६) उनके रक्षक पति का वर्णन । (२०,२१) दूर्वा के दृष्टान्त से राजशक्ति, पक्षान्तर में स्त्री का वर्णन ।(२२,२३) सूर्य के समान प्रजा की अभिलाषा पूर्ण करने वाला राजा । (२४) तेजस्वी राजा और समृद्ध तेजस्विनी प्रजा । (२५) वसन्त से राजा की तुलना । (२६) अपादा, सेना का वर्णन, पक्षान्तर में पत्नी का कर्त्तव्य । (२७–२६) वायु जल, ओषधि, दिन, रात्रि, भूमि, सूर्य, वृक्ष, गौ आदि समृद्धि के मधुर होने की प्रार्थना । (३०) राजा का कर्त्तव्य प्रजा को सदा सुखी रखना । (३१) पूर्व के सज्जनों के मार्गानुसरण का उपदेश । (३२, ३३) समृद्धि की वृद्धि, व्यापक शक्तिमान् राजा का वर्णन । (३४) पृथ्वी की सम्पदा-वृद्धि के उपाय । पक्षान्तर में स्त्री, गार्हस्थ्य का महत्व । (३५) प्रजापति और प्रजा, पक्षान्तर में पति और पत्नी के परस्पर एक होकर अन्न, बल, तेज, यश, प्रजा की वृद्धि करना । सम्राट् और स्वराट् का वर्णन । (३६) राजा और विद्वान् योगी का अर्थों, योग्य पुरुषों और प्राणों पर वश । (३७) अश्वों के समान योग्य पुरुषों की नियुक्ति । (३८) नदियों से वाणियों की तुलना, आत्मा का अग्नि और ज्ञान धाराओं का घृत धाराओं से तुलना । यज्ञ और अध्यात्म यज्ञ का वर्णन । (३६) उत्तम विद्वान् पुरुष की उत्तम उद्देश्यों के लिये नियुक्ति । (४६) उस उत्तम पुरुष की सूर्य और स्वर्ण से तुलना । (४१) सूर्य और मुख्य शिरोमणि की तुलना । (४२) उसका कर्त्तव्य । (४३) संवत्सर के समान राज सभा के सदस्यों

सहित सभापति के कर्त्तव्य । (४४) परमेश्वरी शक्ति के पालने का आदेश । (४५) विद्वान् ज्ञानी की रक्षा का उपदेश । पक्षान्तर में परमेश्वर की पूजा का उपदेश । (४६) सूर्य समान नेता और परमेश्वर । (४७–५१) पशु गण की रक्षा, मनुष्य, अश्व आदि एक शफ, गौ आदि दुधार पशु, भेड़, बकरी, इनकी रक्षा और हिंसकों के नाश का आदेश । (५२) प्रजा के कष्टों का श्रवण करना उनका दुखों से त्राण (५३) नाना पदों पर योग्य नेता की स्थापना । (५४–५८) दिशा भेद से प्राण भेद से, और ऋतुभेद से राजा, आत्मा और सूर्य संवत्सर, बलों विद्वानों और यज्ञांगों के अनुरूप राष्ट्रांगो का वर्णन ।

चतुर्दशोऽध्यायः (पृ० ५५९–५९०)

(१) उखा, पृथिवी, पक्षान्तर में स्त्री का वर्णन, (२) प्रजा को, स्त्री के समान शिक्षण का उपदेश । (३) सुख, रण, विजय एवं प्रजापालन के लिये राजा की स्थापना । पक्षान्तर में पति के कर्त्तव्य । (४) पतिपत्नी और राजा और पृथ्वी निवासिनी प्रजा का परस्पर आदान प्रतिदान । (५) राज शक्ति और पक्षान्तर में गृहपत्नी का वर्णन । (६) ग्रीष्म के समान राजा का वर्णन । (७) राजा और शासकों का प्राणों के दृष्टान्त से वर्णन । पक्षान्तर में गृहस्थ का स्थापन । (८–१०) प्राणादि के पालन की प्रार्थना । (९) वयस् और छन्दस् का दृष्टान्तों से स्पष्टीकरण । (११) राजा सेनापति या पुरोहित का कर्त्तव्य प्रजापालन । (१२) राजा विश्वकर्मा, पक्षान्तर मे पति । (१३) राजशक्ति के दिशा भेद से नाना रूप, एवं स्त्री के नाना गुण । (१४) राजा विश्वकर्मा और पति के कर्त्तव्य । (१५, १६) वर्षा शरद् के दृष्टान्त से राजा का वर्णन । (१७) आयु प्राण आदि की रक्षा । (१९) मा, प्रमा आदि शक्तियों का वर्णन । (२०) अग्नि आदि देवताओं का वर्णन । (२१, २२) नियामक राजशक्ति का वर्णन । (२३)

राजा के नाना स्वरूप । (२४,२६) राष्ट्र की नाना समृद्धियों के स्वरूप। (२७) हेमन्त, राजा का वर्णन । (२८–३१) नाना प्रकार की ब्रह्मशक्ति, और राष्ट्र व्यवस्थाओ का देह की व्यवस्थानुसार वर्णन ।

पञ्चदशोऽध्यायः (पृ० ५९१–६३९)

(१, २) सेनापति और राजा के कर्त्तव्य। शत्रुओं का पराजय, प्रजा का शिक्षण । (३) सुव्यवस्थित राष्ट्र और उत्तम राजा का स्वरूप । (४. ५) ईश्वर के नाना सामर्थ्यों और राजा के नाना सामर्थ्यों का वर्णन । (६, ७) नाना ऐश्वर्यों और कर्त्तव्यो पर नाना उपायो से वश करने का उपदेश । (८, ९) 'प्रतिपद्' आदि पदाधिकारो का वर्णन । (१०, १०) दिग्-भेद से और ऋतु-भेद से सूर्य के समान राजा के प्रताप का वर्णन । (२०) शरीर में प्राण के समान राजा का वर्णन । (२१) अग्रणी, नायक सेनापति का वर्णन । (२२) राजा की उत्पत्ति । (२३) उसका स्वरूप। सूर्य के समान परतप राजा । (२५) वन्दनीय परमेश्वर और स्तुत्य राजा का वर्णन । (२६) दावानल के समान उग्र राजा । (२७) सदा जागरणशील तेजस्वी राजा । (२८) अग्नि के समान राजा का शक्ति-पुंज होना । (२९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६) तेजस्वी पुरुष की स्तुति । (३७) शत्रुनाश का उपदेश । (३८) कल्याणकारी होने का उपदेश । (३९, ४०) संग्राम में विजयी होने का उपदेश । (४१) सर्वाश्रय राजा का कर्त्तव्य । (४२) सर्वशरण राजा । (४३) शक्तिमान् सर्वाल्हादक राजा । (४४) यज्ञ रूप, प्रजापति । (४५) रथी के समान राष्ट्रसञ्चालक राजा । (४६) सेनाओं के स्वामी को सुचित्त होने का उपदेश । (४७) देदीप्यमान अग्नि के समान राजा की तेजस्विता का वर्णन । (४८) अग्नि के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यप्रद राजा । (४९) सर्वोच्च पदपर ज्ञानी अग्रणी नेता की स्थापना । (५०) भाई, पुत्र, कलत्र आदि सहित उत्तम नेता का अनुसरण करना । (५१) न्यायकर्त्ता का

पद और सत्य प्रकाशन का कर्त्तव्य । (५२) प्रमादरहित तेजस्वी नायक । (५३) विद्वानों का मिलकर मर्यादाओं का निर्माण करना । राजा के आश्रय रहकर स्त्री पुरुषों का फलना फूलना । (५४) सावधान होकर राज्य सम्पादन और उत्तम कर्म करना । (५५) उत्तम मार्ग से प्रजा और गृह का चलाना । (५६) ऐश्वर्य वृद्धि । (५७) शिशिर से राजा की तुलना । (५८) राजा प्रजा का उत्तम सम्बन्ध । पक्षान्तर में स्त्री पुरुष का वर्णन । (५९–६१) राजा के कर्त्तव्य । (६२) वीर सेनापति की अश्व और अग्नि से तुलना । (६३) राजशक्ति का वर्णन । (६४) परमपद, और राजशक्ति और राष्ट्र । (६५) राजा का स्वरूप ।

षोडशोऽध्यायः (पृ० ६४०–६७६)

रुद्राध्याय । (१) राजा रुद्र के मन्यु, इषु और बाहुओं को 'नमः' इसकी स्पष्ट व्याख्या । (२, ३, ४) रुद्र की शिव तनु, शान्तिकारिणी राजव्यवस्था । (५) देह के भिषक् के समान राष्ट्रदेह का भिषक् राजा । (६) तेजस्वी राजा, सेनापति और उसके अधीन रुद्र, उग्र शासक या सैनिक । (७) सेनापति का स्वरूप । पक्षान्तर में आत्मा और ईश्वर का वर्णन । (८) नीलग्रीव, सहस्राक्ष, सेनापति और उसके वीर योद्धा । (९) धनुष से बाणप्रक्षेप । (१०) वीर का सशस्त्र रूप । (११) शस्त्रों से रक्षा की प्रार्थना । (१२) राजा के शस्त्र प्रजा को कष्टप्रद न हों । (१३) उग्र होकर भी प्रजा को सुख दे । (१४) शक्तिशाली की शक्तियों का आदर । (१५, १६) प्रजा की अभय प्रार्थना । (१७, ४६) नाना रुद्रों की नियुक्ति । उनका मानपद, अधिकार एवं नियन्त्रण । (४७) सेनापति से पीड़ित न करने की प्रार्थना । (४८) उसके अधीन सुख से सम्पन्न होकर रहने की प्रार्थना । उसका सर्व दुःखहर स्वरूप । (५०) उसका प्रजा पर कृपा बनाये रखना । (५१) राजा का सुचिर होकर प्रजा का

पहरा देना। (५२) प्रजा की पीड़ा को नाश करना। (५३) सेनापति के सहस्रों आयुध। (५४) असंख्य रुद्रों के बलों का विस्तार। (५४, ६३) नाना रुद्र अधिकारियों का वर्णन। (६४, ६६) नाना रुद्रों का अधिकार मान, आदर।

सप्तदशोऽध्यायः (पृ० ६७७-७५०)

(१) वैश्यों का कर्त्तव्य। प्रजा के प्रति राजा का सौम्य भाव। मरुतों का विवेचन। अश्मा का विवेचन। (२) कोटि २ प्रजा, पशु, सम्पदाओं की वृद्धि। (३) राष्ट्र के घटक अंगरूप कामधेनु प्रजाएं। (४, ५) सेवाल के दृष्टान्त से राजा की रक्षा शक्ति का वर्णन। (६) मंडूकी के दृष्टान्त से प्रजा का वर्णन। उसमें राजा का अवतरण और उसका कर्त्तव्य। (७) राजा का राष्ट्र में सेना कटकों का (छावनी) स्थापन। (८) तेज, प्रभाव से शासन। (९) राष्ट्र का धारण। (१०) प्रजा को ज्ञानवान् करना, तथा शत्रु विजय द्वारा राष्ट्र की वृद्धि। (११, १२) राजा के तेज, बल और प्रभाव का आदर। उच्च मान, आदर प्रदान। (१३) विद्वानों का वार्षिक उपहार और वेतन। (१४) ब्रह्मज्ञानी विद्वानों का पवित्र रूप। (१५) पवित्र राजा और विद्वान्। (१६) अग्नि के समान तीक्ष्ण राजा। (१७) मुख्य राजा का अधीनों के प्रति कर्त्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (१८) राष्ट्र या साम्राज्य की उत्पत्ति विषयक विवेचना। पक्षान्तर में सृष्टि-उत्पत्ति विषयक मीमांसा। (१९) विराट्स्वरूप सम्राट्। पक्षान्तर में परमेश्वर का विराट् रूप। (२०) राजा प्रजा की उत्पत्ति की विवेचना। पक्षान्तर में द्यौ, पृथिवी की उत्पत्ति की विवेचना। (२१) विश्वकर्मा राजा का अवरों को पदाधिकार प्रदान और परमेश्वर का वर्णन। (२२) शत्रु पक्ष को मोह में डालने वाली नीति से राज्य शासन के उपदेश। पक्षान्तर में परमेश्वर की अद्वितीय

व्यवस्था। (२३) सर्वपालक, कल्याण कृत् विश्वकर्मा और ईश्वर। (२४) राजा का सेनापति नियोजन। (२५) विद्वान राजा का राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों का शासन करना। पक्षान्तर मे परमेश्वर का वर्णन और पक्षान्तर में विद्वान् को स्त्री पुरुष को सम्बन्धित करना। (२६) विश्वकर्मा, सबका पोषक राष्ट्र निर्माता। सात प्राणों के समान सातो प्रकृतियो का नियामक। पक्षान्तर में ईश्वर का वर्णन। (२७) पिता आदि पदपर एवं शासकों का एक व्यापक नामधारक राजा, पक्षान्तर में समस्त देवों का एक नामधा परमेश्वर, अध्यात्म मे आत्मा। (२८) राजा के उत्तम मन्त्रियों के कर्त्तव्य। प्रजाओं को उन्नत करना। (२९) सर्वोत्कृष्ट पद की मीमांसा। (३०) सर्व वशकर्त्ता केन्द्रस्थ राजा का वर्णन। (३१) अवर्णनीय राजा का रूप। (३२) राजा के चार रूप। (३३) राजा का उग्ररूप सेनापति रूप से इन्द्र का वर्णन। (२८-३३) पक्षान्तर मे परमेश्वर का वर्णन। (३४) सैनिकों का सेनापति के सहयोग में विजय का उपदेश। (३५) विजयी, वशी राष्ट्रपति का वर्णन। (३६) महारथी का कर्त्तव्य। (३७, ३९) दूसरो के बल का ज्ञान करके शत्रु पर आक्रमण का उपदेश। (४०) व्यूह की व्यवस्था (४१, ४२) विजय घोष। (४३) वीरों को उत्तेजना (४४, ४५) भयंकर सेना का शत्रु पीड़न का कार्य। (४६) उग्र अजेय सैनिक। (४७) शत्रु पर भ्रमोत्पादक प्रयोग। (४८) शस्त्रों के गिरते हुए सेवा समितियों के कर्त्तव्य। (४९) वर्म, अन्नौषधि से रक्षा। (५०) सेनापति का राजा के प्रति कर्त्तव्य। (५१) नेता सेनापति का अधीनों के प्रति कर्त्तव्य। (५२, ५३) राजा का कर्त्तव्य। (५४) यज्ञपति, राष्ट्रपति की रक्षा। पक्षान्तर में स्त्रियों का कर्त्तव्य। (५५) यज्ञ और युद्ध की तुलना। (५६) यज्ञ और युद्ध का समान वर्णन। (५७) तुरीय यज्ञ का वर्णन तीनों पक्षों में। (५८) राजा के कर्त्तव्य और परमेश्वर का स्तुति। (५९) सूर्य और पक्षान्तर में

राजा का वर्णन। (६०) राजा गृहपति और योगी का वर्णन। (६१) राजा की स्तुति और पक्षान्तर में ईश्वर की महिमा। (६२) नायक के कर्त्तव्य भरण और पालन। (६३, ६४) राजा के निग्रह और अनुग्रह के कर्त्तव्य। (६५, ६६) सूर्य और नायक की तुलना। (६७) 'स्वर्ज्योति' मोक्ष प्राप्ति का लक्ष्य। (६८) उत्तम सम्राज्य, पक्षान्तर मे मोक्ष लोक का वर्णन (६९, ७०) राजा और पक्षान्तर में उत्तम अध्यात्म ज्ञानी का कर्त्तव्य। (७१) सहस्राक्ष राजा और परमेश्वर। (७२) उत्तम पालक राजा, सुपर्ण और गरुत्मान् का वर्णन। (७३, ७४) राजसभा का वर्णन। (७५) सभा का कार्य सञ्चालन। पक्षान्तर में ईश्वरोपासना। (७६, ७७) तेजस्वी सभापति विद्वानों से युक्त विचारसभा। (७८) विचारक सदस्य के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में गुरूपासना और सत्य ज्ञान प्राप्ति। (८०) विद्वानों का वर्णन। (८१) ऋत आदि सात प्रकार की विवेचना। (८२) मुख्य सात सेना विभाग के नायक। (८४) सात पालक गण। (८५) प्रजा के सात मुख्य अंग। (८६) देवी प्रजा का स्वरूप। (८७) सम्राट् पद की प्राप्ति और राष्ट्र का उपभोग। (८८) तेजस्वी राजा की मेघ से तुलना। (८९) राजा, मेघ, परमेश्वर और गृहपति के पक्ष में मधुमान् ऊर्मि का वर्णन। (९०) चतुरंग बल से युक्त सेनापति। चतुर्वेदवित् विद्वान् (९१) राजा, यज्ञ, आत्मा, शब्द और परमेश्वर इन पक्षों में महान् देव का स्वरूप (९२) त्रिविध घृत का दोहन। (९३) घृत की धाराओं का अध्यात्म, राज्य और जलधाराओं के पक्षों में योजना। (९६) घृतधाराओं की उत्तम स्त्रियों से तुलना। (९७) उनकी कन्याओं से तुलना। (९८) यज्ञ और राष्ट्र का वर्णन। राजा और ईश्वर पक्ष में उत्तम राष्ट्र सुख, परमानन्द की प्राप्ति।

अनुभूमिका

उपवेद

वेदों के उपवेदों के विषय में भी बड़ा मत भेद है। महर्षि दयानन्द संस्कारविधि में लिखते है कि—"ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद, जिसको वैद्यक शास्त्र कहते हैं जिसमें धन्वन्तरिजी कृत सुश्रुत और निघण्टु तथा पतञ्जलित ऋषिकृत चरक आदि आर्षग्रन्थ हैं ..यजुर्वेद का उपवेद धनुर्वेद जिसको शास्त्रास्त्र विद्या कहते हैं। जिसमें अङ्गिरा आदि ऋषिकृत ग्रन्थ हैं जो इस समय बहुधा नहीं मिलते। पुनः सामवेद का उपवेद गान्धर्व वेद जिसमें नारद संहितादि ग्रन्थ हैं...अथर्ववेद का उपवेद अर्थवेद जिसको शिल्प शास्त्र कहते हैं जिसमें विश्वकर्मा त्वष्टा और मयकृत संहिता ग्रन्थ हैं।" इसी लेखानुसार शौनकीय चरणव्यूह परिशिष्ट में लिखा है—

ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदो यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः साम-वेदस्य गान्धर्ववेदोऽथर्ववेदस्यार्थशास्त्रं चेत्याह भगवान्व्यासः स्कन्दो वा (ख० ४)

इसपर महीदास पण्डित ने लिखा है—धनुर्वेदो युद्धशास्त्रम्। गान्धर्व-वेदः संगीत शास्त्रम्। अर्थशास्त्रं, नीतिशास्त्रं शस्त्रशास्त्रं विश्वकर्मादिप्रणीतं-शिल्पशास्त्रम्।

सुश्रुत में लिखा है—'आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।' गोपथ ब्राह्मण में लिखा है—सदिशोऽन्वैक्षत ..ताभ्यः पञ्च वेदा-न्निरमिमत सर्पवेदं पिशाचवेदमसुरवेद मितिहासवेदं पुराण वेदमिति। प्राच्य, एवदिशः सर्पवेदं निरमिमत दक्षिणस्याः पिशा-चवेदं प्रतीच्या असुरवेद मुदीच्या इतिहासवेदं ध्रुवायाश्चोर्ध्वा-याश्च पुराणवेदम्॥ गो० पू० १। १०॥

शतपथ (१३।४।३।५–१५) में लिखा है—(१) मनुर्वैवस्वतो राजा... तस्य मनुष्या विशः अश्रोत्रियाः गृहमेधिनः...ऋचो वेदः। (२) यमो वैवस्वतो राजा .तस्य पितरो विशः ..स्थविरा ...यजूंषि वेदः। (३)वरुण आदित्यो राजा ..तस्य गन्धर्वा विश . .युवानः शोभनाः अथर्वाणो वेद ।(४)सोमो वैष्णवो राजा ..तस्याप्सरसो विश ...युवतयः शोभनाः... आङ्गिरसो वेदः। (५) अर्बुदः काद्रवेयो राजा तस्य सर्पा विशः . सर्पाश्च सर्पविदश्च...सर्पविद्या वेदः। (६) कुवेरो वैश्रवणो राजा रक्षांसि विश. . सेलगाः पापकृतः...देवजनविद्या वेदः...(७) धान्वो राजा... तस्य असुरा विश....कुसीदिन....मायावेद । (८) मत्स्य सांमदो राजा...तस्य उदकेचरा विशः...मत्स्याश्च मत्स्यहनश्च...इतिहासो वेदः॥ (९) तार्क्ष्यो वैपश्यतो राजा...वयांसि च वायोविद्यिकाश्च...पुराणं वेदः। (१०) इन्द्रो राजा...देवा विशः श्रोत्रिया अप्रतिग्राहकाः...सामानि वेदः।

इसी प्रकार आश्वालायन और शाङ्खायन श्रौतसूत्रों भी ४ वेद और उपवेदों की गणना की है। परन्तु इनमें कौन सा उपवेद किस किस वेद का है यह निर्देश नहीं हैं। केवल चरणव्यूह परिशिष्ट ने ही भेद दर्शाया है। वह भेद कोई विशेष महत्व का नहीं पता लगता क्योंकि आर्षग्रन्थ सुश्रुत में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद स्वीकार किया है। और भी कतिपय उपवेद बने जिस प्रकार भरत मुनि का नाट्यवेद प्रसिद्ध है। वह उसको यजुर्वेद से निकला स्वीकार करते हैं। चरणव्यूहोक्त यजुर्वेद तथा अथर्ववेद के उपवेदों पर दृष्टि करें तो धनुर्वेद, और अर्थवेद एक दूसरे के सहयोगी हैं। धनुर्वेद युद्धशास्त्र है और अथर्ववेद में नीति शास्त्र, शस्त्रास्त्र शास्त्र और शिल्पशास्त्र तीनों सम्मिलित हैं। असुर वेद या मायावेद धनोपार्जन की विद्या है वह अर्थवेद से भिन्न नहीं है। आंगिरस वेद, विषवेद या सर्पवेद, ये सभी आयुर्वेद में सम्मिलित हैं। उन ही अंग उपांग विद्याओं के अधिक विस्तार हो जाने से उनके पृथक् २ नाम हो गये हैं।

यजुर्वेद में राज्यशासन, शासन विभागों, राष्ट्र विजय राज्याभिषेक, तथा युद्धादि का वर्णन पर्याप्त विद्यमान है। इसलिये उसका मुख्य अंग-विद्या धनुर्वेद सुतरां उपयुक्त है। इस में वैशम्पायन मुनिकृत नीतिप्रकाशिका और वसिष्ठ और विश्वामित्र कृत धनुर्वेद आदि उत्तम उपयोगी ग्रन्थ हैं।

राज्य विषयक रचनाओं आदि का स्थान २ पर जो हमने अपने भाष्य में वर्णन किया है वह अभी और भी बहुत विचारने योग्य है। यजुर्वेद का केवल राजनीति की दृष्टि से तथा राज्यपालन की दृष्टि से और भी उदार भाष्य होने की आवश्यकता है। और इस विषय पर हमारा विचार एक ऐसे विशद ग्रन्थ लिखने का है जिसमें यज्ञों का वर्णन अंग प्रत्यंग रूप से करते हुए उसमें से किस प्रकार राजधर्म, समाजधर्म तथा वर्णाश्रम धर्मों की उत्पत्ति हुई है यह सब दिखलाया जावे। और वेदों का उन सबपर किस प्रकार प्रभुत्व है यह भी उसी ग्रन्थ में पूरी तरह से दिखाया जा सकेगा। जिसका दिग्दर्शन हम कुछ अगले खण्ड की भूमिका में दिखावेंगे।

विषय सूची को हमने प्रत्येक मन्त्र का संक्षिप्त विषय लिखते हुए सुगम कर दिया है कि यजुर्वेद में किस रीति से राजनीतिशास्त्र का कितना अधिक वर्णन है और उसी के गर्भ में राज्य के समान ही ब्रह्माण्ड के राजा परमेश्वर, गृह के राजा गृहपति और देह के राजा आत्मा एवं द्यौ, अन्तरिक्ष, और पृथिवी के राजा क्रम से सूर्य, वायु, और अग्नि एवं प्रतिनिधि वाद से सोम, वरुण, आदि नामों से राजा आदि का वर्णन किस प्रकार किया है। भाष्य को धैर्य से और मनन पूर्वक देखने से विदित हो जायेगा।

विद्वानों का अनुचर
जयदेवशर्मा विद्यालंकार
मीमांसातीर्थ।

शुद्धाशुद्ध पत्र ।

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
२३	७	विधुत्	विद्युत्
२७	२२	सप नाक्षित्	सपत्नक्षित्
३८	११	दूध्व ऽध्वर	दूर्ध्वोऽध्वर
४०	२३	धारण किया	धारण किये या पुष्टिकर सृष्टि जनक वीर्य को धारण करनेवाले
९०	६	की	को
१०९	६	(विष्णो)	(विष्णो)
११०	१४	व न	वन
१४९	९	राजा	राजन् !
१९५	२२	सवापर	सर्वोपरि
२०९	५	०द्योवकू र्मि०	०द्योव ऊर्मि
२२७	१८	पृ वी	पृथ्वी
२८४	९	आसुयम्	असुर्यम्
२९५	३	(मिय)	(मयि)
३३०	९	सव	सब
३३६	३	अशु	अप्सु
३४०	१२	यन्त्रिय	यन्त्रिये
३५०	१३-१६	बध	वध

पृ०	पं०	अशुद्ध	शुद्ध
३८६	११	सूर	सूरेः
३६८	१३	अशस्त्र	अशास्त
४४३	१५	आस्यै	आस्ये
४६५	५	अनुघुन्	अनुघून्
५७६	१३,१५	करती, (आरोचन्)	करते (ओरोचने)
५१०	८	सीदम्	सेदिम्
५१६	६	गृहणामि	गृह्णामि
१२५	१६	राचा	राजा
५७६	१८	मन्त्री	यन्त्री
६२१	१३	पुन	पुत्र
६३३	२२	प्रजोत्पालन	प्रजोत्पादन
६५७	८	कायला	कोयला
७१२	४	बृहस्पतिः	बृहस्पतिः
७१८	६	विश्व	विश्वा

दृष्टिदोष से और भी ऐसी बहुत सी त्रुटियां रहनी सम्भव हैं उनको पाठक स्वयं बुद्ध्यनुसार सुधार कर ठीक कर लें ।

॥ ओ३म् ॥

यजुर्वेदसंहिता*

प्रथमोऽध्यायः

† प्रजापति परमेष्ठी प्राजापत्य, देवा वा प्राजापत्या ऋषय ।

॥ ओ३म् ॥ [1]इषे त्वोर्जे त्वा वायवं स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्म्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं [2]प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वंस्तेन ईशत माघशंꣳसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ॥ १ ॥

शाखा वायुरिन्द्र सविता च देवता । (१) स्वराट् बृहती । मध्यम (२) ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभ स्वर ।

भा०—हे परमेश्वर ! (इषे) अन्न, उत्तम वृष्टि आदि पदार्थों की प्राप्ति और (ऊर्जे) सर्वोत्तम पुष्टिकारक रस प्राप्त करने के लिये (त्वा त्वा) तेरी उपासना करते हैं । हे प्राण और प्राणिगण ! तुम (वायव स्थ) सब वायु रूप हो, वायु द्वारा प्राण धारण करते हो । (व.) तुम सब का (सविता) उत्पादक परमेश्वर ही (देव·) वह परम देव, सब सुखों और पदार्थों का प्रकाशक और प्रदान करने वाला है । वह तुम को (श्रेष्ठतमाय) अत्यन्त श्रेष्ठ, सबसे उत्तम (कर्म्मणे) कर्म

---

*—इषेत्वादि ख ब्रह्मान्त विवस्वानपश्यत् इति सर्वानु० ।

†—परमेष्ठी प्राजापत्यो दर्शपूर्णमासमन्त्राणामृषि । देवा वा प्राजापत्या । इति सर्वा० ।

परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषि । सविता देवता । द० ।

निःश्रेयस प्राप्ति के लिये (प्र अर्पयतु) पहुंचावे, प्रेरित करे। और हे (अघ्न्या.) कभी न मारने योग्य, इन्द्रियस्थ प्राण गण, एवं यज्ञयोग्य गौवो ! और पृथिवी आदि लोको ! आप सब (आप्यायध्वम्) खूब परिपुष्ट होवो। तुम (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष या राजा के लिये (भागं) भजन करने योग्य या प्राप्त करने योग्य भाग हो। तुम (प्रजावतीः) प्रजा, वत्स पुत्र आदि सहित, (अनमीवाः) रोगरहित, (अयक्ष्मा.) राजयक्ष्मा से रहित रहो। (वः) तुम पर (स्तेनः) चोर डाकू आदि दुष्ट पुरुष (मा ईशत) स्वामित्व प्राप्त न करे। (अघशंसः) पाप की चर्चा करने वाला, दूसरों को पाप हिंसा आदि करने की प्रेरणा करने वाला नीच पुरुष भी (वः मा ईशत) तुम पर स्वामी न रहे। हे गौवो ! तुम (गोपतौ) गौ अर्थात् गौओं और भूमियों के पालक राजा और रक्षक पुरुष के अधीन (ध्रुवा·) स्थिररूप से (बह्वी·) बहुत संख्या मे (स्यात) बनी रहो। हे विद्वान् पुरुष ! तू भी (यजमानस्य) यज्ञ करने हारे, दान देने वाले आत्मा, और यज्ञकर्त्ता श्रेष्ठ पुरुष के (पशून् पाहि) पशुओं की पालना कर। शत० १।७।१।१-७॥

वसोः॑ प॒वित्र॑मसि॒ द्यौर॑सि पृथि॒व्य॒सि मा॒तरि॑श्वनो घ॒र्मो॑ऽसि वि॒श्वधा॑ असि। प॒र॒मेण॒ धाम्ना॒ दृꣳह॑स्व॒ मा ह्वा॒र्मा ते॑ य॒ज्ञप॑तिर्ह्वार्षीत्॥२॥

वायुर्खा यज्ञश्च च यज्ञो वा देवता। स्वराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धवतः स्वर·॥

भा०—हे यज्ञपुरुष ! परमेश्वर ! तू (वसोः) सब संसार को बसाने हारे, सब में व्यापक रूप से वसने वाले, श्रेष्ठ कर्म, यज्ञ का (पवित्रम्) पवित्र परम पावन स्वरूप है। (द्यौः असि) तू द्यौ. सबका प्रकाशक है और सबका आश्रय है, तू (पृथिवी असि) पृथिवी के समान सब से महान् सबका आश्रय होने से 'पृथिवी' है। तू ही (मातरिश्वन·) अन्तरिक्ष में निर-

२—यज्ञो देवता। द०। 'विश्वधा परमेण' इति काण्व०।

न्तर गति करने वाले वायु का (घर्मः असि) संचालन करने वाला है और इसी कारण (विश्वधाः असि) समस्त प्राणियों का पोष कया धारण करने हारा है । तू (परमेण धाम्ना) परम, सर्वश्रेष्ठ धाम, तेज, धारण सामर्थ्य से (दृहस्व) बढ़, वृद्धि को प्राप्त है । हे परमात्मन् ! तू (मा ह्वाः) हमें कभी मत त्याग । (यज्ञपतिः) यज्ञ का पालक, स्वामी, यजमान पुरुष भी (ते) तुझ से कभी (मा ह्वार्षीत्) वियुक्त न हो ॥ शत० १ । ७ । १ । ६-११ ॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥ ३ ॥

वायुः पयः प्रश्नश्च सविता च देवता. । भुरिग् जगती । निषादः स्वरः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! आप (वसोः) सब को बसाने हारे और श्रेष्ठ कर्म और सब में बसने वाले वसु आत्मा के (पवित्रम्) परम पवित्र करने वाले और उसको (शतधारम्) सैकड़ों प्रकार से धारण पोषण करने वाले हो । हे परमेश्वर ! आप (वसोः) सब को बसाने वाले श्रेष्ठ कर्म और सब में बसने वाले आत्मा का (सहस्रधारम्) सहस्रों प्रकार से धारण करने वाले होकर उसको (पवित्रम्) पवित्र करने वाले (असि) हैं । हे पुरुष ! (सविता देवः) सर्वोत्पादक सर्व प्रेरक सर्वप्रद परमेश्वर (त्वा) तुझको (शतधारेण) सैकड़ों धारण शक्ति से या धारण पोषण करने वाले समर्थ्य से युक्त (सुप्वा) उत्तम रीति से पवित्र करने वाले (पवित्रेण) पावन सामर्थ्य से (पुनातु) पवित्र करे । हे पुरुष ! तूने (काम्) किस २ वेदवाणी या ईश्वर की परम पावनी किस २ शक्ति का (अधुक्षः) गौ के समान पुष्टि-प्रद रस प्राप्त किया है और तू किस से परम बल प्राप्त किया करता है ? शत० १ । ७ । १ । १४-१७ ॥

३—सविता देवता । द० ।

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः ।
इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳरक्ष ॥ ४ ॥

गौरिन्द्रो विष्णुश्च देवता. । अनुष्टुप् । गान्धार स्वर ॥

भा०—'काम् अधुक्षः' इस प्रश्न का उत्तर देते हैं। (सा) वह परमेश्वरी शक्ति जिसका प्रकाश वेद द्वारा किया है वह (विश्व-आयु.) समस्त संसार का जीवन रूप है। (सा) वह परमेश्वरी शक्ति (विश्व-कर्मा) विश्व को रचने वाली, सब का निर्माण करने वाली है। (सा) वह परमेश्वरी शक्ति (विश्व-धाया·) समस्त जगत् को अपना परम रस पान कराने और सब को धारण पोषण करने हारी है। हे यज्ञ! (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के (भागम्) भजन करने योग्य, सेवनीय स्वरूप (त्वा) तुझ को (सोमेन) सोम, सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक आनन्द रस से (आतनच्मि) दृढ़ करता हूं। हे (विष्णो) सर्वव्यापक परमेश्वर! आप (हव्यम्) इस आत्मा के ग्रहण करने योग्य विज्ञान और समर्पण करने योग्य आत्मा की (रक्ष) रक्षा करो। शत० १ । ७ । १ । १७-२१ ॥

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् ।
इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ ५ ॥

अग्निर्देवता । आर्ची त्रिष्टुप् । धैवत स्वर ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानोत्पादक! अग्रणी! सब के नेता परमेश्वर! हे (व्रतपते) सब व्रतों के, शुभकर्मों के स्वामिन्! मैं (व्रतम्) व्रत, पवित्र कर्म का (चरिष्यामि) आचरण करूंगा। (तत्) उसको पालन करने में मैं (शकेयम्) समर्थ होऊं। (मे) मेरा (तत्) वह सब व्रताचरण (राध्यताम्) पूर्ण हो, सफल हो। मैं (इदम्) यह व्रत धारण करता हूं कि (अहम्) मैं (अनृतात्) असत्य, मिथ्याभाषण, मिथ्याज्ञान और

४—'सोमेनातनच्मि' इति काण्व० ।

मिथ्या आचरण से और ऋत अर्थात् सत्यमय वेद के विपरीत अनृत से दूर रह कर (सत्यम्) सत्य को (उपेमि) प्राप्त होऊं ॥ शत० १ । १ । १ । ११ ॥

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति । कर्मणे वां वेषाय वाम् ॥ ६ ॥

स्रुक् शूर्पश्च प्रजापतिर्वा देवता । आर्ची पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

भा०—[प्रश्न] हे पुरुष ! तू जानता है कि (त्वा) तुझको कार्यों में (कः) कौन (युनक्ति) प्रेरित करता है ? [उत्तर] हे पुरुष ! (त्वा) तुझको (सः) वह परमेश्वर ही (युनक्ति) उत्तम कार्य और सन्मार्ग में प्रेरित करता है । [प्र०] (त्वा) तुझ को वह परमेश्वर (कस्मै) किस प्रयोजन के लिये (युनक्ति) नियुक्त करता है ? [उ०] (त्वा) तुझ को वह परमेश्वर (तस्मै) उस उस, उत्तम २ कार्य सम्पादन के लिये (युनक्ति) नियुक्त करता है । हे स्त्रीपुरुषो ! और गुरुशिष्यो ! वह परमेश्वर (वाम्) तुम दोनों को (कर्मणे) उत्तम कर्म करने के लिये प्रेरित करता है । और वह (वाम्) तुम दोनों को (वेषाय) सर्वशुभगुणों के प्राप्त करने और पूर्ण जीवन प्राप्त करने के लिये या सर्व व्यापक परमात्मा को प्राप्त करने के लिये (युनक्ति) नियुक्त करता है ॥ शत० १ । १ । १ । ११-२२ ॥ १ । १ । २ । १ ॥

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ता अरातयः । उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ७ ॥

रक्षोघ्न ब्रह्मणो वा देवता । प्राजापत्या जगती । निषादः स्वरः ॥

भा०—(रक्षः) विघ्नकारी दुष्ट स्वभाव के पुरुष को (प्रत्युष्टम्) भली प्रकार जांच २ करके संतप्त करो । (अरातयः) दानशीलता से रहित परद्रव्यापहारी, निर्दयी पुरुषों को (प्रत्युष्टाः) ठीक २ विवेचन करके

७—यज्ञो देवता । द० । रक्षोघ्न ब्रह्म देवता इति सायण का० भा० । रक्षः, लिंगादन्तरिक्ष देवतेति अनन्त० । उरु ब्रह्म रक्षोघ्न सर्वत्रेति सर्वा० ।

संतापित करना चाहिये। (रक्षः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष (नि तप्तम्) खूब तप्त हो। और (अरातयः) शत्रु भी (निः-तप्ताः) खूब संतप्त हों और इस प्रकार पृथिवी रूप समस्त यज्ञवेदि को दुष्ट विघ्नकारियों से रहित करके पुनः मैं (उरु) विस्तृत, महान् (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष प्रदेश को भी (अनु एमि) अपने वश करूं, और दुष्टों का पीछा कर उनका नाश करूं ॥ शत० १। १। २। २–४॥

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः।
देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम् ॥८॥

धूर्नोऽग्निश्च देवताः। अतिजगती। निषाद स्वरः॥

भा०—हे राजन्! वीर पुरुष! तथा हे परमात्मन्! तू (धूः असि) समस्त शत्रुओं का विनाशक एवं शकट के धुरा के समान प्रजा के भार को उठाने में समर्थ है। तू (धूर्वन्तं) हिंसा करने हारे को (धूर्व) विनाश कर। और (तम्) उसको (धूर्व) मार दण्ड दे (यः) जो (अस्मान्) हमको (धूर्वति) वध करता है। और (तं धूर्व) उसको नाश कर (यम्) जिसको (वयम्) हम (धूर्वामः) विनाश करते हैं। हे वीर पुरुष तथा हे परमात्मन्! (देवानाम्) देव-विद्वान् पुरुषों को (वह्नितमम्) सब से उत्तम, वहन करने वाला, उनका भार शकट के समान अपने ऊपर उठाने वाला, (सस्नितमम्) राष्ट्र को मलिन स्वभाव के दुष्ट पुरुषों से शुद्ध करने हारा, (पप्रितमम्) सब का सर्वोत्तम पालन करने हारा, (जुष्टतमम्) सब को सर्वोत्कृष्ट प्रेम करने वाला, (देवहूतमम्) विद्वान् पुरुषों को सर्वोत्तम उपदेश करने हारा, सब को प्रेम से अपने प्रति बुलाने हारा है। हम तेरी नित्य उपासना करें॥ शत० १। १। २। १०–१२॥

८—अग्निर्देवता। द०। '०धूर्व त य०' इति काण्व०।

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते युज्ञपतिर्ह्वार्षीत् ।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥९॥

अनो ब्रीहियवादयो रक्षो हविर्विष्णुश्च देवता । त्रिष्टुप् । धैवत स्वर ॥

भा०—हे यज्ञ! प्रजापते! तू (अह्रुतम्) कुटिलता से रहित (हविर्धानम्) अन्न और ज्ञान का आधार और उसका आश्रयस्थान है। हे यजमान! यज्ञशील पुरुष! तू (दृंहस्व) ऐसे यज्ञ को सदा बढ़ा। (मा ह्वाः) तू उसको त्याग मत कर। हे यज्ञ! (ते) तेरा (यज्ञपतिः) यज्ञ पालक, स्वामी पुरुष (मा ह्वार्षीत्) तुझे त्याग न करे। हे यज्ञ! (त्वा) तुझे (विष्णुः) व्यापक सूर्य या परमेश्वर (क्रमताम्) शासन करता, तुझे रचता और तुझ पर अधिष्ठातारूप से विद्यमान है। वह इस ब्रह्माण्ड रूप शकट या महान् यज्ञ में शासक है। वह ही (उरु वाताय) महान् जीवनप्रद वायु और प्राणियों के प्राण-समष्टि के संचालन करने के लिये विद्यमान है। (रक्षः) जीवन के विघ्न करने हारा दुष्ट हिंसक (उपहतम्) मार दिया जाय। (पंच) पांचों अंगुलियां जिस प्रकार किसी पदार्थ को पकड़ती हैं उसी प्रकार पांचों जन यज्ञ में एकत्र होकर (यच्छन्ताम्) दुष्टों का निग्रह करें और जीवनोपयोगी सुखों का संग्रह करें। लोग अन्न सम्पादक यज्ञ को बढ़ावें, उसको कभी न त्यागें। व्यापक सूर्य सर्वत्र फैले, जिससे खूब वायु बहे और रक्षोगण, जीवननाशक पदार्थ नष्ट हों और पांचों जन मिल कर उन राक्षसों का दमन करें॥ शत० १।१।२।१२-१२॥

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसुवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥ १० ॥

अग्नीषोमौ सविता च देवता । भुरिग् बृहती । मध्यम स्वर ॥

९—विष्णुर्देवता । द० ।

१०—'देवानामसि सस्नितम वन्हितम पप्रितम ०' इति काण्व०

भा०—हे अन्न आदि ग्राह्य पदार्थ ! (त्वा) तुझको (देवस्य) सर्वप्रदाता (सवितुः) सर्वप्रेरक, सर्व दिव्य पदार्थों के उत्पादक परमेश्वर या राजा के (प्रसवे) उत्पन्न किये इस ससार मे या उसकी आज्ञा मे रह कर (अश्विनोः बाहुभ्याम्) अश्वियो, स्त्री पुरुषो या यज्ञसम्पादक विद्वानो या सूर्य और चन्द्र की बाहुओं अर्थात् ग्रहण करने वाले सामर्थ्यों द्वारा और (पूष्णः) पुष्टिकारक प्राण के (हस्ताभ्याम्) ग्रहण और विसर्जन करने के सामर्थ्यों द्वारा (अग्नये जुष्टम्) अग्नि अर्थात् जाठर अग्नि के सेवन करने योग्य और (अग्नि-सोमाभ्याम्) अग्नि और सोम, अग्नि और जल इन द्वारा (जुष्टम्) सेवित, या सेवन करने योग्य सुपक्व अन्न को (गृह्णामि) ग्रहण करूं ।

राजा के पक्ष में—अग्नि = राजा या क्षात्र बल और सोम = ब्राह्मण इन दोनों के अभिमत अन्न आदि पदार्थों को अश्वियो स्त्री पुरुषों या राजा, ब्राह्मण विद्वानो के बाहुबल और पूषा अर्थात् पुष्टिकर भागदुघ् नामक कर-संग्राहक अधिकारी के हस्तों, ग्रहण करने के सामर्थ्यों द्वारा सर्वप्रेरक ईश्वर के राज्य में ग्रहण करूं ॥ शत० १ । १ । २ । १७ ॥

भूताय त्वा नारातये स्वराभिविख्येषन्दृꣳहन्तां दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि । पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्या उपस्थेऽग्ने हव्यꣳ रक्ष ॥ ११ ॥

हविः सूर्यगृहहव्यान्यग्निश्च देवता । स्वराड् जगती । निषाद स्वर ॥

भा०—हे अन्न या अग्ने ! या हे राजन् ! मैं (त्वा) तुझको (**भूताय**) उत्पन्न प्राणियो के हित के लिये उत्पन्न करता हूं । (अरातये न) दान न देने के लिये, या किसी श्रेष्ठ कार्य मे व्यय न होने के लिये नहीं, या शत्रु के हित के लिये नही, प्रत्युत सबके कल्याण के लिये स्थापित

११—अग्निर्देवता । द० । '० हव्य रक्षस्व ०' इति काण्व० ।

करता हूं। मैं पुरुष (स्वः) सुखकारक परमात्मा के परम तेज को (अभि-विख्येषम्) निरन्तर देखूं । मेरे (दुर्याः) घर और घर के समस्त प्राणी (पृथिवीम्) पृथिवी पर (दृहन्ताम्) सदा बढ़ें, उन्नति करें। और मैं (ऊरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष में भी (अनु एमि) जाऊं और उस पर भी वश करूं। हे (अग्ने) सब के अग्रणी, ज्ञान प्रकाशक पुरुष ! (त्वा) तुझ को राजा के समान (पृथिव्याः) पृथिवी के, पृथिवीवासी पुरुषों के (नाभौ) केन्द्र में, मध्य में सब को व्यवस्थासूत्र में बांधने के कार्य में और (अदित्याः) इस अविनाशी, अखण्डित राजसत्ता या पृथिवी के (उपस्थे) पृष्ठ पर (सादयामि) स्थापित करता हूं। हे अग्ने ! पर संतापक ! तू (हव्यम्) हव्य, ग्रहण करने योग्य, एवं ज्ञान योग्य समस्त अन्न आदि पदार्थों की (रक्ष) रक्षा कर। शत० १।१।२।२०-२३ ॥

प॒वित्रे॑ स्थो वैष्ण॒व्यौ॑ सवि॒तुर्वः॑ प्रस॒व उत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑। देवी॑रापो अग्रेगुवो अग्रेपु॒वोऽग्र॑ इ॒मम॒द्य य॒ज्ञं न॑य॒ताग्रे॑ य॒ज्ञप॑तिꣳ सु॒धातुं॑ य॒ज्ञप॑तिं देव॒युव॑म् ॥ १२ ॥

पवित्रे आपः सविता च देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ।

भा०—(पवित्रे स्थः) हे सूर्य और जल तुम दोनों पवित्र करने हारे मल आदि के शोधक हो। उसी प्रकार हे प्राण और उदान ! तुम इस देह में पवित्र गति करने वाले हो। तुम दोनों (वैष्णव्यौ) इस संसार और देहमय यज्ञ में वर्त्तमान रहते हो। हे जलो ! और प्राण उदान और व्यान तुम तीनों ! (वः) तुम को (सवितुः) समस्त दिव्य पदार्थों के उत्पादक प्रेरक सूर्य और समस्त इन्द्रियों के प्रेरक आत्मा के (प्रसवे) शासन या प्रेरक बल पर (अच्छिद्रेण) छिद्ररहित, (पवित्रेण) शोधन करने वाले, छाज से जैसे अन्न स्वच्छ किया जाता है उसी प्रकार (सूर्यस्य रश्मिभिः) निरन्तर पृथ्वी तल पर पड़ने वाली रश्मियों, किरणों द्वारा

(उत् पुनामि) ऊपर लेजा कर मैं और भी पवित्र करता हूं, शुद्ध करता हूं। तब वे (आपः) जल (देवीः) दिव्यगुण युक्त होकर (अग्रेगुवः) अग्र अर्थात् समुद्र=अन्तरिक्ष में व्यापक और (अग्रेपुवः) अन्तरिक्ष या वातावरण को ही पवित्र करने वाली हो जाते हैं। हे पवित्र जलो! तुम (अद्य) अब, सदा (इमम् यज्ञम्) उस महान् ईश्वरनिर्मित ब्रह्माण्डमय यज्ञ को (अग्रे नयत) सब से श्रेष्ठ पद पर प्राप्त कराते हो। और (सुधातुम्) समस्त संसार को भली प्रकार धारण करने वाले उस (यज्ञपतिम्) यज्ञ के स्वामी परमेश्वर और (देवयुवम्) दिव्य पृथिवी आदि पदार्थों को बनाने और रचने हारे (यज्ञपतिम्) यज्ञपति परमेश्वर को (अग्रे नयत) सबसे उत्तम पदपर स्थापित करते हो।

राजा के पक्ष मे—(पवित्रे स्थः) हे राजा और प्रजा तुम दोनों ही राष्ट्र को परिशोध करने हारे (वैष्णव्यौ) व्यापक राज्यव्यवस्था के अंग हो। मैं पुरोहित (वः सवितुः प्रसवे उत्पुनामि) तुम प्रजाजनों को प्रेरक राजा की प्रेरणा और शासन द्वारा उन्नत करता हूं। (अच्छिद्रेण पवित्रेण) बिना छिद्र के छाज से जैसे अन्न शुद्ध किया जाता है और (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की रश्मियों से जिस प्रकार जल और वायु शुद्ध होते हैं। इसी प्रकार (अच्छिद्रेण) त्रुटि रहित, बिना छल छिद्र के पवित्र व्यवहार और सूर्य के समान कान्तिमान प्रतापी राजा के रश्मि अर्थात् प्रजाओं को बांधने वाली व्यवस्थापक रासों से राष्ट्र को शुद्ध करूं। (देवी. आपः) दिव्य गुणयुक्त विद्वान् आप्तपुरुष (अग्रे-गुवः) सब कामों में अगुआ हों और (अग्रेपुवः) आगे सबके मार्गदर्शक हों। हे (आपः) आप्त पुरुषो! आप लोग (अद्य इमं यज्ञं अग्रे नयत) अब इस परस्पर संगत सुव्यवस्थित राष्ट्र को आगे उन्नति के मार्ग पर ले चलो। (सुधातुं देवयुवम् यज्ञपतिम् अग्रे नयत) राष्ट्र के उत्तम रूप से धारक, पालक पोषक विद्वानों के प्रिय, यज्ञपति राष्ट्रपति को आगे ले चलो॥ शत० १।१।३।१—७॥

¹युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ । ²अग्नये त्वा जुष्टम्प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टम्प्रोक्षामि । ³दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि³ ॥ १३ ॥

आपोग्निषोमौ पात्राणि इन्द्रश्च, यज्ञो वा देवता । (१) निचृदुष्णिक् । षड्ज (२) विराट् गायत्री । (३) भुरिग् उष्णिक् । ऋषभ ।

भा०—हे प्रजा के आप्त पुरुषो ! (युष्मा) तुम लोगों को (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, सूर्य जिस प्रकार मेघ के साथ संग्राम करने और उसको छेदन भेदन करने के अवसर पर ग्रहण करता है उसी प्रकार (वृत्रतूर्ये) राष्ट्र पर आवरण या घेरा डालने हारे शत्रु के वध करने के संग्राम कार्य में (अवृणीत) वरण करता है । और (वृत्रतूर्ये) घेरा डालने वाले या राष्ट्र की सुख सम्पत्ति के वारक दुष्ट पुरुष के साथ होने वाले संग्राम में ही (यूयम्) तुम लोग भी (इन्द्रम्) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् प्रतापी पुरुष को अपना नेता, स्वामी (अवृणीध्वम्) वरण किया करो । आप सब आप्त जन (प्रोक्षिता. स्थ) वीर्य और धन आदि द्वारा उत्सिक्त, सम्पन्न, विशेष रूप से दीक्षित, जलसे स्वच्छ या युद्ध में निष्णात होकर रहो। (२) हे वीर पुरुष ! (अग्नये जुष्टम्) अग्रणी नेता के प्रेमपात्र (त्वा) तुझ को (प्रोक्षामि) अभिषिक्त करता हूं, दीक्षित करता हू. (अग्निषोमाभ्याम्) अग्नि और सोम, क्षत्रिय और ब्राह्मण या राजा और प्रजा दोनों के हित के लिये या दोनों के बलों से (जुष्टम्) सम्पन्न (त्वा) तुझ वीर, उत्तम पुरुष को (प्रोक्षामि) जलों द्वारा अभिषिक्त करता हूं । (३) हे (आप) आप्त पुरुषो ! आप सब लोग मिलकर इस उत्तम पुरुष को (दैव्याय कर्मणे) देवों से या देव, राजा द्वारा सम्पादन करने योग्य कर्म, राज्य-व्यवहार के लिये (शुन्धध्वम्) शुद्ध करें, नाना जलों से अभिषिक्त करें ।

१३—(१) इन्द्र (३) यज्ञो देवता । द० ।

और (देवयज्यायै) देवों, विद्वानों द्वारा परस्पर संगत होकर करने योग्य व्यवस्था कार्य के लिये तुझे अभिषिक्त करें। राजा प्रजा के प्रति कहता है—हे प्रजाजनो ! आप्त पुरुषो ! (यद्) यदि (वः) तुम में से जो कोई लोग (अशुद्धाः) मलिन, अशुद्ध, त्रुटिपूर्ण हो कर (पराजघ्नुः) शत्रुओं से पराजित हो कर पछाड़ खागये हैं तो (इदम्) यह मैं इस प्रकार (वः) आप लोगों को (तम्) उस त्रुटि के दूर करने के लिये (शुन्धामि) विशुद्ध, त्रुटि रहित करता हूं ।

राजा प्रजा के आप्त पुरुषों को संग्राम के निमित्त वरे। प्रजाएं राजा को वरें। राजा प्रजा के निमित्त भर्त्ती हुए वीर पुरुषों को भी दीक्षित करे। राजा राज्यकार्य को देवकार्य या ईश्वरीय सेवा जान कर शुद्ध चित्त होकर अभि-षिक्त हों। और राजा अपने समस्त कार्यकर्त्ताओं को त्रुटि रहित करे। शत० १ । १ । ३ । ८ । १२ ॥

शर्म्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूता अरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ १४ ॥

यज्ञो देवता । स्वराड् जगती । निषादः स्वरः ॥

भा०—हे राजन् ! (शर्म असि) जिस प्रकार घर सुखदायी होता है उसी प्रकार तू प्रजा के लिये सुखप्रद है। (रक्षः) तेरे द्वारा ही विघ्न-कारी राक्षसों को (अवधूतम्) नीचे दबा कर नष्ट किया जाता है। (अरातयः अवधूताः) हमारे अधिकार और संपत्ति को हमें न देने हारे, अदानशील, दुष्ट पुरुष भी मार दिये जावें। तू सचमुच (अदित्याः) इस अखण्ड अविनश्वर, अदिति पृथिवी की (त्वक् असि) त्वचा के समान है। अर्थात् जिस प्रकार त्वचा देह की रक्षा करती है उसी प्रकार बाह्य आघातों से तू पृथिवी निवासी प्रजा की रक्षा करता है। (त्वा) तुझ को (अदितिः) यह पृथिवी वासी प्रजाजन (प्रति वेत्तु) प्रत्यक्षरूप में जानें।

हे राजन् तू ! (वानस्पत्यः) वनस्पति के बने (अद्रि) कभी भी न टूटने वाले मूसल के समान दृढ़ है। अथवा (वानस्पत्यः) वनस्पतियों का हित-कारी जिस प्रकार मेघ बरसता है उसी प्रकार तू प्रजा के प्रति सुखों का वर्षक (अद्रि) और अभेद्य रक्षक है। (ग्रावा असि) जिस प्रकार दृढ़-शिला अन्न आदि पदार्थों को चूरा २ कर देती है उसी प्रकार तू भी शत्रुओं को चकनाचूर कर देता है। तू (पृथुबुध्नः) विशाल मूल वाला, दृढ़ आधारवाला है॥ (अदित्या) अदिति, पृथिवी और उसके ऊपर बसने वाली प्रजा का (त्वक्) त्वचा के समान सवरणकारी रक्षक लोग भी (त्वा) तुझे (प्रति वेत्तु) प्रत्यक्षरूप से जानें॥ शत० १। १। ४-७॥

[1]अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनन्देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्य' स इदन्देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व। [2]हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि॥ १५॥

हविर्मुसलं वाक्, पत्नी च यज्ञो वा देवता (१) निचृत् जगती, निषाद (२) याजुषी पंक्ति। पञ्चम स्वर॥

भा०—हे प्रजा के पालक यज्ञमय प्रजापते ! राजन् ! तू (अग्ने तनूः असि) अग्नि का स्वरूप है। अग्नि के समान साक्षात् अग्रणी और दुष्टों का तापकारी है। (वाचः विसर्जनम्) वेद आदि वाणियों और स्तुतियुक्त वाणियों के त्याग करने, भेंट करने का स्थान है। (त्वा) तुझ को हम प्रजाजन (देववीतये) देव, विद्वानों के रक्षा के निमित्त (गृह्णामि) स्वीकार करते हैं। तू (वानस्पत्य) वनस्पति अर्थात् काष्ठ के बने मूसल के समान शत्रुनाशक और (बृहद्ग्रावा असि) बड़ा भारी ग्रावा पाषाण के समान शत्रु के दलन करने वाला है। (इदम्) यह (देवेभ्य)

१५—०'बृहन्ग्रावासि'०, '०शमि हव्य ॅ शमीष्व०' इति काण्व०।

यज्ञो देवता। द०।

देव विद्वान् पुरुषों के उपकार के लिये (हविः) ग्रहण करने योग्य अन्न या भोग्य पदार्थ है। (स) वह तू राजा उसको (शमीष्व) शान्तिदायक रूप में तैयार कर। (सुशमि) उत्तम रीति से दुःखशमन करने के लिये (शमीष्व) उसको उत्तम रीति से तैयार कर। हे (हविष्कृत्) अन्न आदि पदार्थों के तैयार करने वाले सत्पुरुष ! तू (एहि) आ। हे (हविष्कृत् एहि) अन्न आदि पदार्थों को तैयार करने वाले पुरुष ! तू आ ॥ शत० १ । १ । ४ । ८-१३ ॥

'कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इषमूर्जमावद त्वया वयꣳ संघातं संघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः ²सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ १६ ॥

वाक् शूर्पं हवी रक्ष तण्डुलाश्च वायुः सविता च देवता (१) ब्राह्मी त्रिष्टुप्, धैवत, (२) विराड् गायत्री। षड्ज. ॥

भा०—हे वीर राजन् ! तू (कुक्कुटः) चोर डाकुओं को नाश करने वाला और (मधुजिह्वः) मधुर जिह्वावाला अर्थात् मधुर वाणी बोलने हारा (असि) है। तू हमें (इषम्) अन्न आदि भोग्य पदार्थ या प्रेरक आज्ञा वचन (ऊर्जम्) परम विद्यादि पराक्रम तथा अन्यान्य बलकारी पदार्थों को प्राप्त करने का (आ वद) उपदेश कर। लोगों को अन्नादि उत्पन्न करने की आज्ञा दे। (त्वया) तुझ वीर अग्रणी राजा के द्वारा (वयम्) हम (संघातं संघातम्) शत्रुओं को मार मार कर (जेष्म) विजय करें। (वर्षवृद्धम् असि) जिस प्रकार सूप की सींकें वर्षा से बढ़ी होने के कारण वह सूप वर्षवृद्ध है उसी प्रकार हे ज्ञानी

१६—'सघाते सघाते०', ०'प्रतिपूता अरातय०'। ', ० प्रतिगृह्णातु हिरण्य पाणिरच्छिद्रेण 'पाणि' इति काण्व०

पुरुष तू भी वर्षों में अधिक आयु होने से वर्षवृद्ध है। (वर्षवृद्धं त्वा) उस वर्षों में बूढ़े, दीर्घायु, एवं वृद्ध अनुभवी तुझ पुरुष को (प्रतिवेत्तु) प्रत्येक पुरुष जाने। जिस प्रकार सूप अन्न को फटक कर भूसी को पृथक् कर देता है उसी प्रकार हे ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध पुरुष तेरे विवेक और युक्ति द्वारा (रक्षः) प्रजा में विघ्नकारी दुष्ट पुरुष (पराभूतम्) दूर हों, और (अरातयः) शत्रुगण भी (परापूता.) पछोड़ २ कर दूर कर दिये जांय। इस प्रकार (रक्षः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुष जब (अपहतम्) ताड़ित हो तब (वायु) वायु जिस प्रकार छाज से गिराये अन्न में से भूसी को दूर उड़ा देता है और अन्न पृथक् हो जाता है उसी प्रकार हे प्रजागण ! आप्त पुरुषो ! (व.) तुम्हारे बीच में (वायुः) व्यापक, ज्ञानी पुरुष ही (वि विनक्तु) धर्म अधर्म का, बुरे भले का विवेक करे। जिस प्रकार पुनः सुवर्णादि से धनाढ्य पुरुष द्रव्य देकर अन्न को हाथों से भर कर उठा लेता है उसी प्रकार (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण-कङ्कण को हाथ में धारण करने हारा (वः सविता देवः) तुम्हारा प्रेरक, सूर्य के समान उज्ज्वल, प्रतापी राजा (व.) तुम सब प्रजाजनों को (अच्छिद्रेण पाणिना) छिद्र रहित हाथों से, त्रुटिरहित साधन से (प्रतिगृभ्णातु) स्वीकार करे, रक्षा करे॥ शत० १।१।४।१८-२४॥

धृष्टिरस्यपाऽग्ने अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादंᳬसेधा देवयजं वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृंᳬह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय॥ १७॥

उपदेश कपालान्यग्निश्च देवता। ब्राह्मी पंक्ति। पञ्चम स्वर।

भा०—हे धनुर्विद्या में विद्वान् राजन् ! वीर पुरुष ! राष्ट्र में समीप २ के नाना स्थानों में छावनियें बनाकर बैठने हारे ! तू (धृष्टिः असि) शत्रु को धर्षण करने,

१७—०'उपदधामि द्विषतो वधाय' इति काण्व०।

उसको पराजित करने में समर्थ है। अत. हे अग्ने ! शत्रुसंतापक राजन् ! तू अपने से विपरीत (आमादम्) कच्चे, अपरिपक्व आयु वाले जीवो को खाने वाले, या कच्चे मांसखोर, संतापक पुरुष को या रोगादि ज्वर को (जहि) विनाश कर। और (क्रव्यादम्) जो अग्नि, क्रव्याद, क्रव्यमांस को खाय, वह चिता आदि की अग्नि और उसके समान अन्य अमंगलकारी, प्रजाघातक विपत्तिकारी संतापक जन्तु को भी (नि. पेध) दूर कर। (देवयजं वह) देव विद्वानों और वायु और जल आदि को परस्पर संगत करके सुख वर्धन करने वाले विद्वान् पुरुष को (वह) राष्ट्र मे ला, बसा। तू (ध्रुवम् असि) ध्रुव--स्थिर है, इस कारण तू (पृथिवीम् दृंह) पृथिवी को दृढ़ कर, पालन कर। (ब्रह्मवनि) ब्राह्मणों को वृत्ति देने वाले, (क्षत्रवनि) क्षत्रियों को वृत्ति देने वाले और (सजातवनि) अपने समान वीर्यवान् पुरुषो को भी वृत्ति देने वाले तुझ अखिल ऐश्वर्य के स्वामी पुरुष को (भ्रातृव्यस्य) शत्रु के (वधाय) वध करने के लिये (उपदधामि) स्थापित करता हूं।

[1]अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षन्दृᳪह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। [2]धर्त्रमसि दिवन्दृᳪह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। [3]विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्य उपदधामि चितस्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ १८ ॥

अग्निर्देवता। (१) ब्राह्मी उष्णिक्, ऋषभ। (२) आर्चीत्रिष्टुप् धैवत (३) आर्ची पङ्क्ति। पञ्चम।

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! शत्रुसंतापक और प्रजा के अग्रणी नेता: राजन् ! तू (ब्रह्म) वेद और वेदज्ञ पुरुष, ब्राह्मणों के (गृभ्णीष्व) अपने आश्रय में ले। और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष मे स्थित वायु आदि

१८—०'द्विपतो वधाय०' इति काण्व०।

पदार्थों और उसमे विचरने वाले प्राणियों और उसकी विद्या के वेत्ता पुरुषों अथवा अन्तरिक्ष के समान शासक श्रेणी के प्रजाजन को (दंह) उन्नत कर। (ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवनि उपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय) इत्यादि पूर्ववत् ॥ (धर्त्रम् असि) तू राष्ट्र के धारण करने में समर्थ है । तू (दिवम् दंह) द्यौलोक, उसमें स्थित, प्राणि, दिव्य शक्तियों और द्यौलोक के समान उच्च कोटि के प्रजाजनों को उन्नत कर (ब्रह्मवनि त्वा० इत्यादि) पूर्ववत् । हे राजन्! (त्वा) तुझे (विश्वाभ्यः आशाभ्यः) समस्त दिशाओं और उनके वासी प्रजाओं के लिये (उपदधामि) स्थापित करता हूं । हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग भी (चित स्थ) प्रजा को ज्ञान देने हारे और स्वयं ज्ञानवान् हैं । अतएव आप लोग (ऊर्ध्वचितः स्थ) सब से ऊपर रह कर सब को ज्ञानवान् करने में कुशल हो । आप लोग (भृगूणाम्) पाप और पापियों को भून डालने वाले (अंगिरसाम्) अंगारों के समान जाज्वल्यमान, तेजस्वी पुरुषों के (तपसा) तपश्चर्या से (तप्यध्वम्) तप करो ॥ शत० १ । २ । ४ । १०--१३ ॥

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु । धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिव स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ १९ ॥

अग्निर्दृषतशम्या, उपलाश्च देवता । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे राजन् (शर्म असि) तू समस्त प्रजा का सुखदायक शरण है। (अवधूत रक्ष) तेरे द्वारा राष्ट्र के विघ्नकारी राक्षस गण मार भगाये। (अरातय अवधूता) शत्रुगण भी पछाड़ दिये । तू (अदित्या) अखण्ड पृथिवी का (त्वक् असि) त्वचा के समान उस पर फैल कर उसकी रक्षा करने हारा है । (त्वा) तुझे (अदिति) यह समस्त पृथिवी (प्रतिवेत्तु)

१९—'दिवस्कम्भन्यसि' इति काण्व० ।

प्रत्यक्षरूप से अपना स्वामी स्वीकार करे। हे वेदवाणि! या हे सेने! तू (पर्वती) पालन करने के बल और ज्ञान से युक्त (धिषणा) शत्रुओं का धर्षण करने मे समर्थ (असि) है (अदित्याः त्वक्) अदिति, पृथिवी की त्वचा, उसको संवरण, पालन करने वाली प्रभुशक्ति (त्वा प्रतिवेत्तु) तुझे प्राप्त को और स्वीकार करे। हे प्रभुशक्ते! तू (दिव स्कम्भनीः असि) द्यौलोक के समान प्रकाश या सूर्य के समान प्रकाश युक्त तेजस्वी विद्वानों का आश्रयभूत (असि) है। तू भी (पार्वतेयी) मेघ की कन्या विजुली के समान अति बलवती या मेघ से उत्पन्न वृष्टि के समान सब का पालन करने वाली, सब सुखो की वर्षक, उत्तम फल प्राप्त कराने हारी है। (पर्वती) पूर्वोक्त सेना (त्वा प्रति वेत्तु) तुझे प्रत्यक्षरूप से प्राप्त करे, स्वीकार करे॥ शत० १।२।१।१४-१७॥

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धान्देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि॥ २०॥

हविः सविता आज्य च देवता। विराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवत स्वर॥

भा०—अन्न और घृत की उपमा से राज्यशक्ति का वर्णन करते है— (धान्यम् असि) हे राजन् जिस प्रकार अन्न समस्त प्रजाओं का धारण पोषण करता है उसी प्रकार तू भी प्रजा को धारण पोषण करता है। इसलिये (देवान् धिनुहि) जिस प्रकार अन्न शरीर के प्राणों को तृप्त करता है उसी प्रकार तू देव अर्थात् शिल्पी, विद्वानों और सत्तावान् राजपुरुषों को तृप्त, प्रसन्न कर। (प्राणाय त्वा, उदानाय त्वा व्यानाय त्वा) जिस प्रकार अन्न को प्राण शक्ति, उदान शक्ति, और व्यान शक्ति की वृद्धि के लिये खाते हैं उसी

२०—'०देवान् धिनुहि यज्ञ धिनुहि यज्ञपतिं' धिनुहिमा यज्ञन्य प्राणाय०। प्रतिगृह्णात हिरण्यपाणिरच्छिद्रेण० इति काण्व०।

प्रकार हे राजन्! तुझ को प्राण अर्थात् राष्ट्र के जीवन धारण के हेतु, बल की प्राप्ति, उदान अर्थात् आक्रमण, चढ़ाई और पराक्रम के लिये और व्यान अर्थात् समस्त राष्ट्र में शुभ अशुभ कर्मों और विद्याओं के फैलाने के लिये, और (दीर्घाम् प्रसितिम् अनु आयुषे धाम्) जिस प्रकार दीर्घ विस्तृत उत्तम कर्म-सतति के अनुकूल, उत्तम कर्म-बन्धन के अनुरूप दीर्घ जीवन के लिये अन्न को खाते हैं उसी प्रकार हे राजन्! तुझ को भी हम (दीर्घाम्) दीर्घ, अति विस्तृत (प्रसितिम्) उत्कृष्ट रूप से प्रबंध करने वाली राज्य व्यवस्था के (अनु) प्रति लक्ष्य करके राष्ट्र के (आयुषे) दीर्घ जीवन के लिये तुझ को राष्ट्रपति के पद पर हम स्थापित करते हैं। हे प्रजागण! जिस प्रकार अन्नों को (हिरण्यपाणि. सविता देव) सुवर्ण आदि धन को हाथ में लेने वाला, धनाढ्य पुरुष (अच्छिद्रेण पाणिना) विना छिद्र के हाथ से अन्न को स्वीकार कर लेता है, संग्रह करता है, उसी प्रकार हे प्रजाजनो! (व) तुम्हारा (सविता) उत्पादक और प्रेरक शासक (हिरण्यपाणि.) सुवर्ण कंकण को हाथ में रखने वाला, सुवर्णालंकृत, धनैश्वर्यसम्पन्न, राजा तुम को (अच्छिद्रेण) छिद्ररहित, त्रुटिरहित, पूर्ण बलयुक्त (पाणिना) पाणि = हाथ से या सत्य व्यवहार से (प्रतिगृभ्णातु) स्वीकार करें, तुम्हें अपनावे और तुम्हारी रक्षा करे। और हे राजन्! जिस प्रकार अन्न को स्थिर जीवन धारण करने और चक्षु आदि इन्द्रियों को नित्य चेतन रखने के लिये स्वीकार किया जाता है, उसी प्रकार हम प्रजाजन (त्वा) तुझ को (चक्षुषे) प्रजा के समस्त व्यवहारों को देखने के लिये, निरीक्षक रूप से प्रजा में विवेक बनाये रखने के लिये नियुक्त करते हैं। और हे राजन्! जिस प्रकार (महीनाम् पय असि) घृत, गौवों के दुग्धों का भी पुष्टिकारक अंश है उसी प्रकार तू (महीनां) बड़ी शक्तिशालिनी विशाल प्रजाओं का (पयः असि) पुष्टिकारक, स्वत वीर्यमय अंश है॥ शत० १।२।५।१८-२२॥

[१]देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। [२]संवपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन। सꣳरेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ २१ ॥

हविरापो यज्ञो वा देवता । (१) गायत्री । ऋषभ । (२) विराट् पक्ति । पचम ॥

भा०—(देवस्य) देव (सवितुः) सर्वोत्पादक ईश्वर के (प्रसवे) शासन में या उसके बनाये संसार में (अश्विनो) ब्राह्मण-क्षत्रिय या प्रजा और राजा की बाहुओं से और (पूष्णः) पुष्टिकारक, सर्व पोषक वैश्यगण के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) तुझ को (संवपामि) स्थापित करता हूं। राष्ट्ररूप यज्ञ मे (आप) ओषधीभि सम् पृच्यन्तान्) जल जिस प्रकार ओषधियों से मिलाये जाते हैं उसी प्रकार दोषो के नाश करने वाले विद्वान् सदाचारी (आप) आप्त, सत्य व्यवहार युक्त प्रजाजन (सम् पृच्यन्ताम्) मिलें। (ओषधय) ओषधियें जिस प्रकार (रसेन सम् पृच्यन्ताम्) वीर्यवान्, उत्तम रस से युक्त हों उसी प्रकार दोष दूर करने वाले पुरुष के सारूप बल से युक्त किये जायं। (जगतीभिः रेवतीः सम्) और जिस प्रकार जगती अर्थात् ओषधियों के साथ रेवती अर्थात् शुद्ध जल मिल कर विशेष गुणकारी हो जाते हैं उसी प्रकार (जगतीभि.) निरन्तर गमन करने वाले दूरगामी रथ आदि साधनों के साथ (रेवती) धनैश्वर्य सम्पन्न प्रजाएं युक्त होकर रहें। वे यानों द्वारा बराबर व्यापार करें। और (मधुमतीभि मधुमती सं पृच्यन्ताम्) जिस प्रकार मधुर रस वाला ओषधियां मधुर रस वाली ओषधियों से मिला दी जाती हैं उसी प्रकार (मधुमती) मधु=ज्ञान से समृद्ध प्रजाएं मधु अर्थात् अध्यात्म आनन्द से सम्पन्न तत्व ज्ञानी पुरुषों से मिलें और आनन्द लाभ करें॥ शत० १ । २ । ६ । २-२ ॥

२१ —०'जगतीभि स मधुमती ०' इति काण्व० ।

इसी मन्त्र में परस्पर विवाह सम्बन्ध करने के निमित्त भी प्रजाओं मे गुणवान् पुरुष समान गुण की स्त्रियों से सम्बन्ध करके पुत्र लाभ करें, इसका भी उपदेश किया जानो । इसका सम्बन्ध आगे दर्शावेंगे ।

[1]जनयत्यै त्वा सं यौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् [2]अग्निष्टे त्वचं मा हिंꣳसीद् देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥२२॥

हविराज्य पुरोडाश· प्रजापतिसवितारौ च देवता । (१) स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवत , (२) गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे यज्ञरूप प्रजापते ! पुरुष ! (त्वा) तुझ को (जनयत्यै) नाना प्रकार के ऐश्वर्य और पुत्र आदि उत्पादन करने में समर्थ पृथ्वीरूप स्त्री के साथ (सं यौमि) मिलाता हूं । गृहस्थ बन जाने पर दोनो का भोग्य सम्पत्ति मे भाग है । उसमें से (इदम्) यह आधा भाग (अग्ने) अग्रणी पुरुष का है । (इदम्) यह आधा भाग (अग्नीषोमयो) अग्नि और सोम, पुरुष और स्त्री दोनों का है । हे पुरुष तुझ को (इषे त्वा) इच्छा-नुरूप वीर्य और अन्न आदि समृद्धि प्राप्त करने के लिये नियुक्त करता हूं । हे पुरुष ! तू (धर्मः असि) तू तेजस्वी, वीर्य सेचन मे समर्थ, साक्षात् यज्ञरूप प्रजापति है । तू (विश्वायु) समस्त प्राणियों की आयु रूप या पूर्णायु हो । तू (उरुप्रथा) बहुत विस्तृत होने में समर्थ हो । अत (उरु प्रथस्व) खूब अधिक विस्तृत हो । अर्थात् हे गृहस्थरूप यज्ञ ! (ते यज्ञपति प्रथताम्) तेरा यज्ञपति स्वामी गृहस्थ पुरुष प्रजाद्वारा खूब फले । हे स्त्री ! (ते त्वचम्) तेरे शरीर के अंगों को (अग्नि) तेरा अग्रणी, पति, स्वामी (मा हिंसीत्) विनाश न करे, कष्ट न दे । (सविता देव) प्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझे (वर्षिष्ठे) अति सम्पन्न (नाके) सुखमय लोक में (श्रपयतु) परिपक्व करे ॥ शत० १ । २ । ६ । ३–४ ॥

२१—'मा हिंसीदन्तरिद्द रक्षोऽन्तरिता अरातय । त्वा०' इति काण्व० ।

उसी प्रकार यह मन्त्र यज्ञपति राजा और पृथिवी और राज्यलक्ष्मी के पक्ष में भी स्पष्ट है ।

मा भेर्मा संविक्थाऽ अतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् । त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ २३ ॥

पुरोडाशः त्रितद्वितैकताः अग्निर्वा देवता बृहती । मध्यम. ॥

भा०—हे पुरुष ! (मा भे) तू मत डर । (मा संविक्थाः) तू उद्विग्न मत हो । (यज्ञ) गृहस्थ रूप यज्ञ (अतमेरुः) सदा ग्लानि-रहित, अनथक, सदा बलवान् रहे । और (यजमानस्य) यज्ञशील पुरुष की (प्रजा) प्रजा, सन्तान भी (अतमेरु) कभी ग्लानियुक्त, मलिन, निर्बल न (भूयात्) हो । हे गृहपते ! (त्वा) तुझ को मैं (त्रिताय) तीन वेदों मे पारंगत और (द्विताय) दो वेद में पारंगत और (एकताय) एक वेद में पारंगत पुरुष के लिये (संयौमि) नियुक्त करता हूं अथवा त्रित=माता, पिता और गुरु के निमित्त, द्वित=माता पिता और एकत=केवल परमात्मा की सेवा में नियुक्त करता हूं । राजा को भी ऐसा ही उपदेश है । तू भय मत कर, उद्विग्न मत हो । राष्ट्रमय यज्ञ ग्लानि रहित हो । राजा, प्रजा ग्लानिरहित' सदा प्रसन्न रहें । त्रित अर्थात् शत्रु । मित्र और उदासीन तीनों के लिये, द्वित अर्थात् सन्धि, विग्रह और एकत अर्थात् एक चक्र-वर्ती राज्य के लिये तुझे नियुक्त करता हूं । अथवा प्रजा में विद्यमान, त्रित अर्थात् उत्तम, मध्यम, अधम या तीन वर्णों के लिये द्वित अर्थात् स्त्री पुरुष, पति पत्नी, एकत अर्थात् एकान्त सेवी मोक्षार्थी लोगों के हित के लिये नियुक्त करता हूं ॥ शत० १ । २ । ७ । १–५ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददेऽध्वरकृतं देवेभ्य इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः । सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ २४ ॥

सविता, स्फ्यश्च द्यौर्विद्युतौ वा देवते । स्वराड् ब्राह्मी पक्तिः पञ्चमः ॥

भा०—(देवस्य त्वा इत्यादि) पूर्ववत् [१ । २१] हे शस्त्र ! राजा प्रजा को बाहुओ ! और पोषक राजा के हाथों से सर्वप्रेरक सविता राजा के (प्रसवे) शासन में (आददे) तुझ खड्ग को मैं ग्रहण करता हूं। तू (देवेभ्य) देव या विद्वानों के निमित्त (अध्वरकृतम्) राष्ट्रयज्ञ के सम्पादन के लिये या पराजित न होने के लिये ही बनाया गया है। तू (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवान् राजा का (दक्षिणबाहु असि) दायां हाथ है अर्थात् दायें हाथ के समान सबसे बड़ा सहायक है। हे विद्युत् के घोर अस्त्र ! तू (सहस्रभृष्टिः) हज़ारों को भूंज डालने में समर्थ है। (शततेजा) तुझ में सैकड़ों तेज और ज्वालाएं दीप्त होती हैं। तू (वायु असि) वायु के समान दूर तक फैलने वाला (तिग्मतेजा) सूर्य के समान तीक्ष्ण तेजस्वी और (द्विषत बध) शत्रु का नाश करने वाला परम हथियार है।

पृथिवि देवयजन्योषध्यास्ते मूलम्मा हिंꣳसिषं व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २५ ॥

वेदि पुरीष सविता च देवताः। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवि ! हे (देवयजनि) देवगण, पृथिवी, तेज, वायु आदि के परस्पर संगत होने के आश्रयभूत ! एवं देव-विद्वानों और राजाओं के यज्ञ की स्थलि ! मैं (ते) तेरे ऊपर बसी (ओषध्या) यव आदि ओषधियों के (मूलम्) मूल को (मा हिंसिषम्) विनाश न करू। इसी प्रकार (ओषध्या मूलम्) ओषधिरूप प्रजा के मूल का नाश न करूं। हे पुरुष ! तू (गोष्ठानम्) गौ आदि पशुओं के स्थान और (व्रजं गच्छ) सत्पुरुषों के गमन करने के निवासस्थान को प्राप्त हो अर्थात् पशुपालन के कार्य में लग अथवा (व्रजं गच्छ) सज्जनों के जाने के योग्य मार्ग से जा और

२५—'पृथिव्यै वर्मासि पृथिविदेवयजन्यो०' इति काण्व० ।

(गोष्ठानं गच्छ) गो-लोक या वाणी के स्थान अध्ययनाध्यापन आदि के कार्यों में लग। हे पृथिवि ! (ते) तेरे ऊपर (द्यौः) आकाश या द्यौलोक से मेघ आदि (वर्षतु) निरन्तर उचित काल में वर्षा करे। हे (देव सवितः) सर्व प्रजापालक, शासक, राजन् ! (परमस्यां पृथिव्याम्) परम, सर्वोत्कृष्ट पृथिवी में भी (यः) जो दुष्ट पुरुष (अस्मान् द्वेष्टि) हम से द्वेष करता है और (यं च) जिसके प्रति (वयम्) हम भी (द्विष्मः) द्वेष करते हैं, उस शत्रु को (शतेन पाशैः) सैकड़ों पाशों से (बधान) बांध। (अतः) इस बन्धन से (तम्) उसको (मा मौक्) कभी मत छोड़। शत० १। २। २। १६ ॥ परस्पर पृथिवी निवासी प्रजा का नाश न करें ॥ लोग कृषि और गोपालन करें। राजा दुष्टों का नाश करे, उनको कैद करे।

[१]अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्बध्यासं व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬशतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। [२]अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजङ्गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याᳬशतेन पाशैर्योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ २६ ॥

असुरो वेदि• सविता च देवता: (१) स्वराड् ब्राह्मी पङ्क्ति , (२) भुरिक् ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(पृथिव्यै) इस पृथिवी या पृथिवीवासिनी प्रजा के हित के लिये (अररुम्) दुष्ट, हिंसकस्वभाव शत्रु को (देवयजनात्) देव-विद्वानों के यज्ञस्थान से (अप बध्यासम्) मैं क्षत्रिय पुरुष दूर मार भगाऊं। (व्रजं गच्छ० इत्यादि) पूर्ववत्। हे (अररो) प्रजापीड़क असुर पुरुष ! तू (दिवं) द्यौलोक, स्वर्ग या सुख को (मा पप्तः) मत प्राप्त कर। हे

२६—'अपाररुं बध्यासं पृथिव्यै देवयजनात्। व्रज०' इति काण्व०।

पृथिवि ! (ते) तेरा (द्रप्स) उत्तम रस (द्याम्) आकाश की तरफ़ (मा स्कन्) शुष्क न हो । (व्रज गोष्ठानं गच्छ० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥ २७॥

विष्णुर्वेदी च यज्ञो वा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

भा० — हे यज्ञमय प्रजासघ ! (त्वा) तुझ को (गायत्रेण छन्दसा) गायत्री छन्द से अर्थात् ब्राह्मणों के ज्ञानकार्य से मैं (परिगृह्णामि) स्वीकार करूं, तुझे अपनाऊं। (त्वा) तुझ को (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द से अर्थात् क्षत्रियों के क्षत्रकर्म से (परि गृह्णामि) स्वीकार करता हूं और (जागतेन छन्दसा) जगती छन्द से अर्थात् वैश्यकर्म व्यापार से (परिगृह्णामि) स्वीकार करता हूं, अपनाता हूं। अर्थात् राजा को पृथ्वी के पालन रूप राष्ट्रमय यज्ञ-कार्य के लिये विद्वान् लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्गों के पुरुष प्रसन्नतापूर्वक अपना राजा स्वीकार करें, हे पृथिवी ! तू (सुक्ष्मा च असि) उत्तम भूमि है। (शिवा च असि) कल्याणकारिणी, सुखकारिणी है। (स्योना च असि) तू सुखदायिनी है। (सुषदा च असि) तू सुखपूर्वक बसने और बैठने योग्य है। (ऊर्जस्वती च असि) तू उत्तम अन्न रस से युक्त है। और तू (पयस्वती च) दूध और घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से युक्त है ॥ शत० १ । २ । ३ । ६–११ ॥

गायत्रच्छन्दा वै ब्राह्मणः । तै० १ । १९ । ६ ॥ ब्रह्म गायत्री क्षत्रं त्रिष्टुप् । शत० १ । ३ । ५ । ५ ॥ त्रैष्टुभो वै राजन्यः । ऐ० १ । २८ । ८ । २ ॥ त्रिष्टुप् छन्दा वै राजन्यः । तै० १ । १ । ९ । ६ ॥ क्षत्रं त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ जागतो वै वैश्यः ऐ० १ । २८ ॥ जागता पशवः । कौ ३० । २ ॥ जगती छन्दा वै वैश्यः । तै० १ । १ । ९ । ९ ॥

इसके अतिरिक्त अध्यात्म में विष्णु रूप प्रजापति की उपासना के लिये उसके विराट् शरीर के तीन भाग करने चाहियें। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ। वे क्रम से गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती छन्द नाम से कही जाती हैं।

या वै सा गायत्र्यासीदियं वै सा पृथिवी। श० १।४।१।३४॥ गायत्रोऽयं भूलोकः॥ कौ० ८।६॥ त्रैष्टुभमन्तरिक्षम्। श० ८।३।४। ३१॥ जागतोऽसौ द्युलोकः। कौ० ८।६॥

आधिदैविक पक्ष में—गायत्रं वा अग्नेश्छन्दः। का० १।३।५।४॥ त्रैष्टुभो हि वायुः। श० ८।७।३।१२॥ जगती छन्द आदित्यो देवता। श० १०।३।२।६॥ जागतो वा एष य एष तपति। कौ० २५।४॥

अध्यात्मिक पक्ष में—इस शरीर के शिर, उरस् और जघन भाग उक्त तीन छन्द हैं। गायत्रं हि शिरः। श० ८।६।२।६॥ उरस्त्रिष्टुप्। ष० २।३॥ श्रोणी जगत्यः। श० ८।६।२।८॥

विद्वत्पक्ष में—वसु, रुद्र और आदित्य रूप तीन छन्द हैं। गायत्री वसूनां पत्नी। गो० ३।२।६॥ त्रिष्टुप् रुद्राणां पत्नी। गो० ३०।२।६॥ जगत्यादित्याना पत्नी। गो० उ०।२।६॥

शरीर में प्राण, अपान, व्यान तीन छन्द हैं। गायत्री वै प्राणः। श० १।३।५।१५॥ अपानस्त्रिष्टुप्। ता० ७।३।८॥ अयमवाङ् प्राण एष जगती। श० १०।३।६।६॥ प्रजननसंहिता में वीर्य, प्रजनन, स्त्रीप्रजनन ये तीन छन्द हैं। इत्यादि समस्त प्रकरणों में परमेश्वर, पुरुष, राजा, राष्ट्र, समाज, अधिभौतिक अन्नोत्पत्ति आदि सब यज्ञ शब्द से लिये जाते हैं। पृथिवी शब्द से पृथिवी, प्रजा, स्त्री, प्रकृति, चिति आदि पदार्थ लिये जाते हैं। इति दिक्॥

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम्।

यामेरंयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासो अनुदिश्य यजन्ते। प्रोक्षणीरासादय द्विषतो वधोऽसि ॥ २८ ॥

अवत्सार ऋषिः । चन्द्रमाः प्रैषः स्फ्यो यज्ञो वा देवता । विराड् ब्राह्मीपक्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

भा०—हे (विरप्शिन्) महापुरुष ! (क्रूरस्य) घोर (विस्रुप) योद्धाओं की नाना चालों से युक्त युद्ध के (पुरा) पूर्व ही (जीवदानुम्) समस्त प्राणियों को जीवन प्रदान करने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी और पृथिवी निवासिनी प्रजा को (उद् आदाय) उठाकर, उन्नत करके (याम्) जिसको समस्त (धीरास) धीर, बुद्धिमान् पुरुष (स्वधाभि:) स्वय अपने श्रम से धारण उत्पादन करने योग्य या स्व अर्थात् आत्मा, शरीर को धारण पोषण करने में समर्थ अन्नों द्वारा (चन्द्रमसि) सब के आह्लादक, चन्द्र के समान, सर्वप्रिय राजा के अधीन (ऐरयन्) सौंप देते हैं (ताम् अनु दिश्य) उसको लक्ष्य करके उसको ही परम वेदी मानकर (धीरास:) धीर पुरुष (यजन्ते) यज्ञ करते हैं या परस्पर संगति करते या संघ बना २ कर रहते हैं। हे राजन् ! तू (प्रोक्षणी:) उत्कृष्ट रूप से सेवन करने वाले सुख के साधनों और योग्य विद्वान् प्रजाओं को या शत्रु पर अग्नि बाण आदि की वर्षा करने वाले शस्त्रास्त्रों को या (अप:) आप्त पुरुषों और जलों को तू (आसादय) स्वीकार कर और पुनः शस्त्र लेकर तू (द्विषतः) शत्रुओं का (वध:) वध करने में समर्थ (असि) हो ॥ शत० २ । ३ । १८ । २२ ॥

'प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै

२८—(२८-३१) यज्ञो देवता इति । द० । '०तां धीरासो०, '०यजन्ते द्विषतो०' इति काण्व० ।

सम्मार्ज्मि । [२]प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः । अनिशिताऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥ २९ ॥

रक्ष. स्रुचौ यज्ञो वा देवता । (१) भुरिग्जगती धैवत । (२) त्रिष्टुप् षड्जः ॥

भा०—(प्रत्युष्टं रक्ष) राक्षस, विघ्नकारी लोग जो राज्यारोहण और राष्ट्रशासन के उत्तम कार्य में विघ्न करते हैं उनको एक एक करके दग्ध कर दिया जाय । (अरातय प्रति-उष्टा) शत्रु जो प्रजा को उचित अधिकार नहीं देते वे भी एक २ करके जला दिये जायं । (रक्ष नि तप्तम्) विघ्नकारियो में प्रत्येक को खूब संतप्त किया जाय और (अरातय नि तप्ता) दूसरो का उचित अधिकार आदि न देने हारे पुरुषों को खूब अच्छी प्रकार पीड़ित किया जाय । हे राजन् हे ! शस्त्रधारिन् ! और हे (सपत्नाक्षित्) शत्रुओं के नाशक ! तू अभी (अनिशित असि) तीक्ष्ण नहीं है । तुझ (वाजिनम्) बलवान् , अश्व के समान वेगवान् , संग्राम में शूर एवं घुड़सवार वीर को (वाजेध्यायै) वाज अर्थात् संग्राम के प्रदीप्त करने के (सम् मार्जि) मांजता हूं, तीक्ष्ण करता हूं, उत्तेजित करता हूं । (प्रत्युष्टं रक्ष ० इत्यादि पूर्ववत्) । सेना के प्रति--हे सेने ! तू (सपत्नक्षित्) शत्रु को नाश करने हारी है तो भी तू अभी (अनिशिताऽसि) तीक्ष्ण नहीं है । (त्वा वाजिनीम्) तुझ बलवती, संग्राम करने में चतुर सेना को (वाजेध्यायै सम् मार्ज्मि) सग्राम को प्रदीप्त करने के लिये उत्तेजित करता हूं ।

यज्ञ में स्रुच्, स्रुव इन दो यज्ञपात्रों को मांजते हैं । इन दोनों का पतिपत्नी भाव है । इसी प्रकार सग्राम मे शस्त्र, शस्त्रवान् , एवं सेना सेनापति का ग्रहण है ॥ शत० १ ॥ ३ । ४ । १-१० ॥

२९—यज्ञो देवता इति । द० । ०'सम्मार्ज्मि' इति काण्व० ।

अदि॑त्यै॒ रास्ना॑सि॒ विष्णो॑र्वे॒ष्योऽस्यू॒र्जे त्वाऽद॑ब्धेन त्वा॒ चक्षु॒षाव॑प-श्यामि अ॒ग्नेर्जि॒ह्वासि॑ सु॒हूर्दे॒वेभ्यो॒ धाम्ने॑ धाम्ने मे भव॒ यजु॑षे यजु॑षे ॥ ३० ॥

योक्त्रमाज्य च यज्ञो वा देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे सेने ! तू (अदित्यै) अदिति, पृथिवी के (रास्ना) समस्त उत्तम पदार्थ, रूप रसों को ग्रहण करने वाली या उसको बांधने या वश करने वाली (असि) है। तू (वेष्य असि) व्यापक प्रभु राजा के व्यापक विस्तृत बलरूप हैं। (त्वा) तुझ सेना को मैं सेनापति (अदब्धेन) हिंसा रहित (चक्षुषा) आंख से (अवपश्यामि) देखता हूं। हे बल ! तू (अग्नेः) अग्नि, युद्धाग्नि या अग्रणी राजा की (जिह्वा) जीभ, ज्वाला के समान तीक्ष्ण है। (देवेभ्यः) देव, उत्तम पुरुषों, युद्ध क्रीड़ा करने वाले सुभटों के लिये (सुहूः) उत्तम रूप से आहुति देनेवाली है। तू (मे) मेरे (धाम्ने धाम्ने) सर्व स्थानों, नामों और जन्मों तथा (यजुषे यजुषे) प्रत्येक यज्ञ या श्रेष्ठ कर्म या प्रत्येक युद्ध के लिये रक्षक हो ॥ शत० १।२।४।१२–१७ ॥

[१]स॒वि॒तुस्त्वा॑ प्रस॒व उत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । स॒वि॒तुर्वः॑ प्रस॒वऽउत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । [२]तेजो॑सि शु॒क्रम॑स्य॒मृत॑मसि॒ धाम॒ नामा॑सि प्रि॒यं दे॒वाना॒मना॑धृष्टं देव॒यज॑नमसि ॥ ३१ ॥

आप आज्य च यज्ञो व देवता (१) जगती । निषाद । (२) अनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—आजि अर्थात् युद्ध के उपयोगी शस्त्रों के प्रति कहते हैं। जिस प्रकार निरन्तर गिरनेवाली सूर्य की किरणों से अन्न आदि को शुद्ध

३०—'०रास्नासीन्द्राण्यै सहनन। विष्णोर्वेष्योस्यू०" ०अग्ने जिह्वा सुभूर्देवेभ्य० इति काण्व०।

३१—'०देवयजनम्' ॥ इति काण्व०। अत परमेको मन्त्रोऽधिकः काण्व०, परिशिष्टे द्रष्टव्य।

किया जाता है उसी प्रकार हे शस्त्रास्त्रबल ! (सवितुः प्रसवे) सर्व प्रेरक राजा के शासन में (अच्छिद्रेण पवित्रेण) विना छिद्र के शोधन करने हारे साधन से और सूर्य की रश्मियों से तुझे (उत्पुनामि) अच्छी प्रकार शुद्ध करता हूं, तुझे चमकाता हूं । अन्य अस्त्रों के प्रति भी (वः) तुम सबको भी (सवितुः प्रसवे० इत्यादि) पूर्वोक्त प्रकार से स्वच्छ करता हूं । पुनः उसी बलयुक्त शस्त्र के प्रति हे शस्त्र ! तू (तेजः असि) तेज है, (शुक्रम् असि) तू शुक्र, वीर्य है । तू (अमृतम् असि) अमृत है । (धाम नाम असि) तेरा नाम धाम, धारण करने वाला तेज है या राज्य का धारक और शत्रु को दबाने वाला है । तू (देवानां प्रियम्) देव अर्थात् युद्धविजयी राजाओं का प्रिय और (अनाधृष्टम्) कभी धर्षित या पराजित न होने वाला (देव-यजनम् असि) देवों अर्थात् युद्ध-यज्ञ करने वालों का साधन है ॥ शत० १ । ३ । ४ । २४–२८ ॥ १ । ३ । ५ । १–१८ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

[आद्ये ऋचश्चैकत्रिंशत्]

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालंकारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते

यजुर्वेदालोकभाष्ये प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः

१—३४ परमेष्ठी प्राजापत्य, देवा प्राजापत्या, प्रजापतिर्वा ऋषि ॥

॥ ओ३म् ॥ कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदि-रसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ॥ १ ॥

यज्ञो देवता । निचृत् पंक्ति । पञ्चम ॥

भा०—हे यज्ञ ! यज्ञमय राष्ट्र या राजन् ! तू (कृष्णः असि) 'कृष्ण' अर्थात् सब प्रजाओं को अपने भीतर आकर्षित करने वाला और (आखरेष्ठ) चारों ओर से खोदी हुई खाई के बीच में स्थित दुर्ग के समान सुरक्षित है। अथवा हे क्षेत्र तू हलादि से कर्षित और कुदाल आदि से खोदे गये स्थान में है। (अग्नये) अग्रणी नेता के लिये (जुष्टम्) प्रेम से स्वीकृत (त्वा) तुझको मैं (प्रोक्षामि) जल आदि से सींचता या अभिषिक्त करता हूं। हे पृथिवि ! तू (वेदि असि) वेदी है। तुझसे ही सब पदार्थ और सुख प्राप्त होते हैं। (त्वा) तुझको (बर्हिषे) कुश आदि ओषधि के लिये (जुष्टम्) उपयोगी जानकर (प्रोक्षामि) जल से सींचता हूं। हे ओषधि आदि पदार्थो ! तुम (बर्हि असि) जीवनों की और प्राणियों की वृद्धि करते हो, अत (स्रुग्भ्य) प्राणियों के निमित्त (जुष्टम्) सेवित, उपयुक्त (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि) सेवन करता हूं।

हवन पक्ष में—(कृष्णः) अग्नि और वायु से छिन्न भिन्न और आकर्षित होकर खोदे हुए स्थान में यज्ञ किया जाता है। अग्नि के निमित्त घृत आदि से सेचन करता हूं। वेदि को अन्तरिक्ष के लिये सींचित करूं जल को स्रुचादि के लिये प्रोक्षित करूं।

१—इध्मवेदिबर्हिषो देवता । सर्वा० । प्रजापतिः परमेष्ठी ऋषि । द०।

स्रुच —इमे वै लोका स्रुच ॥ तै० ३ । ३ । १ । २ ॥

गृहस्थ पक्ष में —(कृष्णा) आकर्षणशील यह गृहस्थाश्रम (आखरेष्ठ.) एक गहरे खने हुए गढ़े में वृत्त के समान गड़ा है । उसमें उस यज्ञ को अग्नि पुरुष के लिये उपयुक्त उसको पवित्र करता हूं । यह स्त्री वेदि है । उसको (बर्हिषे) पुत्र प्राप्त करने या प्रजावृद्धि के लिये अभिषिक्त करता हूं । (बर्हि.) प्रजाएं अति वृद्धिशील हैं उनको (स्रुभ्य) लोक लोकान्तरों में बसने के लिये दीक्षित करूं । प्रजा वै बर्हि । कौ० ५ । ७ ॥ ओषधयो बर्हि । ऐ० ५ । २ ॥

संवत्सररूप यज्ञ में—सूर्य कृष्ण है । 'आखर आषाढ़ मास है । अग्नि= अग्नि वेदि=पृथ्वी । बर्हि=शरत । स्रुच.=वायुएं या सूर्यकिरण हैं । इसी प्रकार भिन्न २ यज्ञों में कृष्ण आदि शब्दों के यौगिक अर्थ लेने उचित हैं ॥ शत० १ । ३ । ६ । १-३ ॥

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णोस्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानाम्पतये स्वाहा ॥ २ ॥

यज्ञो देवता । स्वराड् जगती । निषाद ॥

भा०—भूमि को छिड़क कर उस पर आसन बिछाकर राजा आदि का स्वागत करने का उपदेश करते हैं। पर्जन्यरूप प्रजापते ! तू (अदित्यै) अदिति पृथिवी को (व्युन्दनम् असि) गीला करने वाला है । हे प्रस्तर, राजन् ! क्षात्रबल ! तू उस व्यापक वा (विष्णा.) विष्णुरूप यज्ञ या राष्ट्र की (स्तुप) शिखा (असि) हो । हे पृथिवी ! (ऊर्णम्रदसम्) ऊन के समान कोमल (देवेभ्यः) देव, विद्वान् पुरुषों के लिये (स्वासस्थाम्) उत्तम रीति से बैठने और बरतने के योग्य (त्वा) तुझको (स्तृणामि) आसन आदि से आच्छादित

२—आप: प्रस्तरो वेदिरग्निश्च देवता । सर्वा० ।

करता हूं। हे प्रजापुरुषो! (भुवपतये स्वाहा) भू अर्थात् पृथिवी के स्वामी, राजा, अग्रणी नेता के लिये (सु-आहा) उत्तम आदरपूर्वक वाणी कहकर उसका आतिथ्य करो। (भुवनपतये) भुवन—लोक के पालक पुरुष के लिये (स्वाहा) आदर वचनों का प्रयोग करो। (भूतानां पतये) भूत, उत्पन्न प्राणियों के पालक पुरुष के लिये (सु आहा) उत्तम रूप से आदर करो। क्षत्रं वै प्रस्तरः ॥ श० १ । ३ । ४ । १० ॥

यज्ञपक्ष में—यज्ञ पृथिवी पर जल वर्षाता है, उलूखल आदि यज्ञ की शिखा है। वेदि में विद्वान् बैठें। जीवोत्पादक, पृथिवी भुवनों और भूतों के पालक परमेश्वर की स्तुति करें।

[1]गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परि दधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। [2]इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। [3]मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परि धत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः ॥ ३ ॥

परिधयोऽग्निर्वा देवता। (१) भुरिग् आर्ची त्रिष्टुप्। (२) आर्ची पङ्क्तिः। (३) पङ्क्ति। (२,३) पञ्चमः ॥

भा०—हे राष्ट्रमय यज्ञ! (त्वा) तुझको (गन्धर्व) गौ अर्थात् पृथिवी के समान गौ, वाणी को धारण करने वाला (विश्वावसु.) समस्त विश्व को बसाने हारा या समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी सूर्य के समान विद्वान्, (विश्वस्य अरिष्ट्यै) समस्त संसार के सुखों के लिये (परि दधातु) चारों ओर से तुझे पुष्ट करे, तेरी शक्ति की वृद्धि करे। हे विद्वन्! सूर्य! राजन्! तू (यजमानस्य) यज्ञ करने हारे यज्ञपति की (परिधिः) चारों ओर से रक्षा और पोषण करने के कारण 'परिधि' (असि) है। हे विद्वन्! तू (अग्नि)

(३) 'अग्निरिड ईडित इति' काण्व० ॥

सूर्य के समान आगे मार्गप्रदर्शक और (इडः) स्तुति योग्य और (ईडितः) सब प्रजाओं द्वारा स्तुति किया गया है । तू (इन्द्रस्य) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा का भी (विश्वस्य) समस्त विश्व के (अरिष्ट्यै) कल्याण और रक्षा के लिये (दक्षिणः बाहुः असि) दायां, बलवान् बाहु अर्थात् सेनापति रूप में परम सहायक है (यजमानस्य परिधिः असि) यजमान, राष्ट्ररक्षक राजा का तू रक्षक है । तू भी (ईडित. अग्नि.) स्तुति योग्य सर्वलोक से आदर प्राप्त हो । हे राजन् ! (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, मित्र, सबका स्नेही, हितैषी न्यायकर्त्ता और वरुण, दुष्टों का नाशक, दण्ड का अधिकारी दोनों (त्वा) तेरी (ध्रुवेण धर्मणा) अपने ध्रुव, स्थिर, धर्म, कानून या धर्मशास्त्र द्वारा (विश्वस्य अरिष्ट्यै) समस्त लोक के सुख के लिये (परिधत्ताम्) रक्षा करें। (यजमानस्य परिधिरसि इत्यादि०) पूर्ववत् ॥ शत० । १ । ३ । ७ । १-४ ॥

वीतिहोत्रन्त्वा कवे द्युमन्त॑ꣳ समिधीमहि । अग्ने॑ बृहन्तमध्वरे ॥४॥

विश्वावसुरग्निर्देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन्, दीर्घदर्शिन् ! मेधाविन् ! विद्वन् ! (वीतिहोत्रम्) नाना यज्ञों में विविध प्रकार के ज्ञानों से सम्पन्न (द्युमन्तम्) दीप्तिमान्, तेजस्वी (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् अग्रणी ! (अध्वरे) अहिंसामय अथवा अजेय इस राष्ट्रपालनरूप यज्ञमें (बृहन्तम्) सबसे बड़े (त्वा) तुझको हम (सम् इधीमहि) भली प्रकार और भी प्रदीप्त, तेजस्वी और तेज.सम्पन्न करें ।

ईश्वर के पक्ष में और भौतिक अग्नि के पक्ष में स्पष्ट है । हे क्रान्तविज्ञान अग्ने ! तुझ तेजोमय को हम यज्ञ में दीप्त करते हैं । हे ईश्वर ! ज्ञानमय तेजोमय तुझे ज्ञानयज्ञ मे हम हृदय-वेदि में प्रदीप्त करते हैं ।

**स॒मिद॑सि सूर्य॑स्त्वा पु॒रस्ता॑त् पातु॒ कस्या॑श्चिद॒भिश॑स्त्यै ।
स॒वि॒तुर्बा॒हू स्थ॒ ऽऊर्ण॑म्रदसन्त्वा स्तृणामि स्वासस्थन्दे॒वेभ्य॒
आ त्वा॒ वस॑वो रु॒द्राऽआ॑दि॒त्याः स॑दन्तु ॥ ५ ॥**

यज्ञो देवता । निचृद् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे यज्ञ के स्वरूप प्रजापते राजन् या राष्ट्र ! (सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार इस महान् ब्रह्माण्डमय यज्ञ को प्राची दिशा से रक्षा करता है उसी प्रकार तू भी (त्वा) तुझको सूर्य के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष (पुरस्तात्) आगे से (कस्याश्चित्) किसी प्रकार की भी अर्थात् सब प्रकार के (अभिशस्त्यै) अपवाद से (पातु) बचावे । हे राजन् ! (समित् असि) अग्नि के सयोग में आकर जिस प्रकार काठ और सूर्य के संयोग में आकर जिस प्रकार वसन्त ऋतु चमक जाती और खिल उठती है उसी प्रकार विद्वान् के योग से तू भी तेजस्वी होजाता है । इसलिये तू 'समित्' है। आगे से रक्षा करने वाले सूर्य के समान विद्वान् (सवितुः) सर्व प्रेरक की तुम राजा और प्रजा ये दोनों (बाहू स्थ) दो बाहुओं के समान हो । हे आसन के समान सर्वाश्रय राजन् ! (ऊर्णम्रदसं त्वा) ऊन के समान कोमल तुझको (स्तृणामि) फैलाता हूं । (देवेभ्यः) देव-विद्वानों के लिये (सु-आसस्थम्) उत्तम रीति से बैठने, आश्रय लेने योग्य हो । (त्वा) तुझ पर (वसवः) वसु नामक विद्वान्, गृहस्थ (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने में समर्थ अधिकारीगण, (आदित्याः) ४८ वर्ष के आदित्य ब्रह्मचारीगण, (आ सदन्तु) आकर विराजें ।

ब्रह्माण्ड यज्ञ में बल, वीर्य दो सूर्य के बाहु हैं । यज्ञमें अग्नि आदि आठ वसु और ११ प्राण और १२ मास आकर विराजते, महान् यज्ञ का सम्पादन करते हैं । उसमें वसन्त समित् है । सूर्य उस महान् यज्ञ की

५—अग्निसूर्यविधृतयो देवताः । सर्वा० ।

प्राची दिशा से रक्षा करता है। तीन ओर से पूर्वोक्त ३ मन्त्र में कही तीन परिधि, तीन लोक रक्षक हैं ॥ शत० १ । ३ । ७ । ७-१२ ॥

[1]घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदम्प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद। [2]प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद। ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ॥६॥

विष्णुर्देवता (१) ब्राह्मी त्रिष्टुप्। (२) निचृत् त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—यज्ञ में तीन स्रुच् होते हैं जुहू, उपभृत् और ध्रुवा, ये तीनों ब्रह्माण्ड में तीन लोक द्यौः, अन्तरिक्ष और पृथिवी है। राष्ट्र में राजा भृत्य और प्रजा हैं। उनका वर्णन करते हैं। हे राजन्! तू (जुहूः) समस्त प्रजागण से शक्ति लेने वाला और सब को सुख प्रदान करने में समर्थ (घृताची असि) घृत अर्थात् तेज:, पराक्रम से युक्त है। (जुहू नाम्ना) तेरा नाम 'जुहू' है। (सा) वह राजशक्ति (इदम्) इस राजभवन और राज्यसिंहासन या पदरूप (प्रियं सदः) अपने प्रिय आश्रयस्थान, गृह और आसन पर अपने (प्रियेण धाम्ना) प्रिय, अनुकूल धाम अर्थात् तेज से युक्त होकर (आसीद) विराजमान हो। हे राष्ट्र के अधिकारी वर्ग! तुम भी (घृताची असि) तेज से सम्पन्न हो। (नाम्ना उपभृत्) नाम से तुम 'उपभृत' हो, क्योंकि राजा तुमको अपने समीप रख कर भृति या वेतन द्वारा पोषण करता है। (सा) वह अधिकारीगण रूप प्रकृति भी (इदम्) इस अपने (प्रियम् सदः) प्रीतिकर, अनुकूल गृह और आसन पर (प्रियेण धाम्ना) अपने प्रीतिकर अनुकूल धाम, तेज से युक्त होकर (आसीद) विराजमान हो। हे

६—जुहूपभृद्-ध्रुवाहविपश्च विष्णु र्वा देवता। सर्वा०। ०जुहूर्नाम०, ०प्रिये ॥दसि सीद०, ०यज्ञन्यम् ॥ इति काण्व०।

प्रजागण ! तू भी (घृताची असि) घृत के समान पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों और तेजोमय रत्न, सुवर्ण आदि पदार्थों को प्राप्त करने और कराने वाले तेजस्वी हो। (नाम्ना ध्रुवा) नाम से तुम ध्रुवा अर्थात् सदा पृथिवी के समान स्थिर हो। (सः) वह तू भी (इद प्रियं सदः) अपने प्रिय अनुकूल भवनों और आसनों पर (प्रियेण धाम्ना) अपने प्रिय तेज सहित (आसीद) विराजमान हो। (प्रियेण धाम्ना प्रिय सद आसीद) सब कोई अपने अपने भवन, आसन और पद पर अपने प्रिय अनुकूल तेज से विराजें। (ऋतस्य योनौ) ऋत अर्थात् सत्य ज्ञान के योनि अर्थात् आश्रयस्थान, सर्व-आश्रय पर (ता) वे तीनों और उनके आश्रित समस्त उत्तम उपादेय न्यायकारी ईश्वर के आश्रय पर (ता) वे तीनों और उनके आश्रित समस्त उत्तम उपादेय पदार्थ भी (ध्रुवा असदन्) ध्रुव, स्थिर रहें। हे (विष्णो) व्यापक प्रभो (ता पाहि) उनकी रक्षा कर। (यज्ञं पाहि) यज्ञ की रक्षा कर। (यज्ञपतिम् पाहि) यज्ञ के पालक स्वामी की रक्षा कर। (मां यज्ञन्यम्) यज्ञ के नेता प्रवर्तक मेरी रक्षा कर॥ शत० १।३।७।१४ १६॥

राजप्रकृति, अधिकारी-प्रकृति और प्रजाप्रकृति तीनों उचित आसनों पर विराजें और अपने २ अधिकारों का भोग करें॥

अग्ने॑ वाजजिद्वाजं॑न्त्वा सरिष्यन्तं॑ वाज॒जित॒ꣳ सम्मा॑र्ज्मि ।
नमो॑ दे॒वेभ्यः॑ स्व॒धा पि॒तृभ्यः॑ सु॒यमे॑ मे भूयास्तम् ॥ ७ ॥

यज्ञो देवता । भुरिक् पंक्ति । पञ्चमः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! राजन् ! तू (वाजजित्) वाज अर्थात् संग्राम का विजय करने हारा है। (वाजम्) संग्राम के प्रति (सरिष्यन्तम्) गमन करने की इच्छा करते हुए (वाजजितम्) युद्ध के विजय करने हारे (त्वा) तुझको मैं (सम् मार्ज्मि) सम्मार्जन करता हूं, तुझे परिशुद्ध करता या

७—अग्निर्देव पितरौ स्रुचौ च देवताः। सर्वा० ॥

भली प्रकार अभिषिक्त करता हूं । हे विद्वान् पुरुषो! (देवेभ्यः) युद्ध क्रीड़ा करने वाले वीरों के लिये (नमः) अन्न है। (पितृभ्यः स्वधा) पालक, राष्ट्र के अधिकारियों के लिये यह (स्वधा) उनके शरीर रक्षा की वेतन आदि सामग्री उपस्थित है। राजप्रकृति और शासक अधिकारी प्रकृति दोनों (मे) मुझ राष्ट्र पुरोहित के अधीन (सुयमे) उत्तम रूप से राष्ट्र को नियन्त्रण करने में समर्थ, एव सुखपूर्वक मेरे अधीन, मेरे द्वारा भरण पोषण करने योग्य एवं सुव्यवस्थित, सुसयत (भूयास्तम्) रहें ॥ शत० १ । ४ । ६ । १५ ॥ तथा शत० १ । ५ । १ । १ ॥

अस्कन्नमद्य देवेभ्य॒ऽआज्य॑ᳬ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वाव॑ क्रमिषं वसु॑मतीमग्ने ते च्छा॒यामुप॑स्थेषं विष्णो॒ स्थान॑मसीत॒ऽइन्द्रो॑ वी॒र्य॒मकृणोदू॒र्ध्व॒ऽध्व॒रऽआस्था॑त् ॥ ८ ॥

विष्णुर्देवता । विराट्पक्ति । पञ्चम स्वरः ॥

भा०—(अद्य) आज मैं (देवेभ्यः) देव, विद्वान् पुरुषों और अपने प्राणों के लिये (अस्कन्नम्) विक्षोभरहित, वीर्यसम्पन्न (आज्यम्) घी आदि पुष्टिप्रद पदार्थों या तेज को (सम् भ्रियासम्) संग्रह करूं। हे (विष्णो) विष्णो! व्यापक परमेश्वर वा यज्ञ या राजन्! (अंघ्रिणा) गमन करने के साधन वा चरण द्वारा (त्वा मा अवक्रमिषम्) तेरा उल्लंघन न करूं अर्थात् तेरी आज्ञा का उल्लंघन न करूं। हे (अग्ने) ज्ञानवान्! (ते) तेरी (छायाम्) प्रदान की छाया या आश्रयरूप (वसुमतीम्) वसु, वास करने वाले जीवों से पूर्ण और ऐश्वर्य से पूर्ण पृथिवी को (उपस्थेषम्) प्राप्त होऊं। हे यज्ञ! राष्ट्र! तू (विष्णोः स्थानम् असि) विष्णु व्यापक, पालक राजा का स्थान है। (इत) इस यज्ञ के द्वारा ही (इन्द्रः) सूर्य, वायु और मेघ के समान (वीर्यम्)

८—स्रुचौ विष्णुरग्निरिन्द्रश्च देवताः। सर्वा०। '०अस्कन्नयमद्याज्य देवेभ्य सम्भ्रियासम्०' इति काण्व० ॥

बल का कार्य (अकृणोत्) करता है। वह (अध्वरः) हिंसारहित, अहिं-सनीय सबका पालक (ऊर्ध्वः अस्थात्) सबके ऊपर विराजमान है।

राजा के पक्ष में—(अद्य देवेभ्यः) आज देवों, शासक अधिकारियों, विद्वानों और युद्धवीरों के लिये (अस्कन्नम्) विक्षोभ रहित, वीर्यसम्पन्न (आज्यम्) आजि, संग्राम की हितकारी सामग्री को मैं राजा (संभ्रियासम्) धारण करूं। हे (विष्णोः) राष्ट्र में शासन व्यवस्था द्वारा व्यापक राजन्! मैं प्रजाजन (त्वा) तेरा (अघ्रिणा) पैर से, गमन साधनों से (मा अवक्रामिषम्) कभी उल्लंघन न करूं, तेरा अपमान न करूं। हे (अग्ने) यज्ञ वेदि में अग्नि के समान पृथिवी मे प्रदीप्त तेजस्विन् राजन्! (ते वसुमतीम्) तेरे अधीन शासक होकर, वसु=विद्वानों, वसु=प्राणियों और वसु=ऐश्वर्यों से पूर्ण इस (छायाम्) आश्रयस्वरूप आच्छादकरूप पृथिवी या शरण को (उपस्थेषम्) प्राप्त करूं। हे पृथिवि! (इतः) तू यज्ञ-वेदि के समान (विष्णोः) व्यापक राजा का आश्रयस्थान (असि) है। (इतः) इस राष्ट्रशासन रूप यज्ञ के द्वारा ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वीर्यम्) वीरोचित कार्य को (अकृणोत्) करता है। वह राजा ही (ऊर्ध्वः) सब से ऊपर विराजमान रहकर (अध्वरः) किसी से भी हिंसित न होकर एवं अपने बल पराक्रम से सब शत्रुओं को कम्पायमान करता हुआ (अस्थात्) सब पर शासक रूप से विराजता है॥ शत० १।५।१।२।३॥

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतान्त्वान्द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः॥ ९॥

इन्द्र आज्यमग्निर्वा देवता। जगती। निषादः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान दूरगामी, प्रकाशक, सर्व पदार्थों को अपने भीतर लेनेहारे व्यापक राजन्! तू (होत्रम्) अग्नि जिस प्रकार

९—अग्निर्देवता। द०। ०'अवतां त्वा द्यावा०' इति काण्व०।

यज्ञ का सम्पादन और रक्षण करता है उस प्रकार तू (होत्रम् वेः) सबको अपने भीतर लेने व राष्ट्र की सुव्यवस्था कर के, संग्रह करने के कर्म की और (दूत्यम्) दूत के सन्धिविग्रह आदि कर्म की (वेः) रक्षा कर। (द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी जिस प्रकार ब्रह्माण्ड के महान् यज्ञ की रक्षा करते हैं उसी प्रकार द्यौ और पृथिवी 'द्यौः' प्रकाशरूप, ज्ञानी न्याय विभाग और पृथिवी बड़ी राज्य सत्ता दोनों अथवा स्त्री, पुरुष, राजा प्रजाएं दोनों (त्वाम्) तेरी (अवताम्) रक्षा करें। और (त्वम्) तू (द्यावा पृथिवी) पूर्व कहे द्यौ और पृथिवी दोनों की (अव) रक्षा कर। तू (देवेभ्यः) देव-विद्वानों के लिये (सु-इष्टकृत्) शोभन और उनके इच्छानुकूल कार्य करने हारा हो। (आज्येन) जिस प्रकार 'आज्य' घृत आदि पुष्टिकारक तेजोमय पदार्थ (हविषा) अन्न आदि चरु से (इन्द्र) वायु, अधिक गुणकारक (भूत्) हो जाता है उसी प्रकार (आज्येन हविषा) बलकारी, संग्रामोपयोगी (हविषा) अन्न और शस्त्रादि सामग्री से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (भूत्) समर्थ होता है। (सु आह) वेदवाणी इसका उपदेश करती है। (ज्योतिः) जितने ज्योतिर्मय, सुवर्ण आदि कान्तिमान्, बल पराक्रम के पदार्थ हों वे (ज्योतिषा) ज्योतिर्मय तेजस्वी राजा के साथ (सम्) संगत हों। रत्न आदि पदार्थ यशस्वी राजा को प्राप्त हों। अथवा (ज्योतिषा) तेजस्वी विद्वान् लोक समूह के साथ (ज्योतिः) प्रकाशवान् राजा सदा (सम्) संगत रहे॥ शत० १।८।१।४-७॥

मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माकꣳ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा॥ १०॥

इन्द्रो मघवा देवता। भुरिग् ब्राह्मी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

१०—एषा वा आशी। जीवेय, प्रजा मे स्यात्, श्रियं गच्छेयम्। शत० १। ८। १। ३६॥ मयीदमाशीः प्रतिगृह्णाम् इति सर्वानु०। मयीदं नः सन्त्वाशिषः इति काण्व०। इत्यतःपर ३१ तमो मन्त्रः पठ्यते। काण्व०।

भा०—(इन्द्र.) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (मयि) मुझमें (इदम्) शुद्ध, ज्ञानरूप, प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होने योग्य (इन्द्रियम्) तेज और इन्द्र व आत्मा के सामर्थ्य, आत्मबल को (दधातु) धारण करावे। (अस्मान्) हमें (मघवानः) अति अधिक सुवर्ण, विद्या और बल आदि धनों से पूर्ण (रायः) अनेक ऐश्वर्य (सचन्ताम्) प्राप्त हों। (अस्माकम्) हमारी (आशिषः) सब कामनाएं और इच्छायें (सत्याः सन्तु) सत्य, सफल और धर्मयुक्त (सन्तु) हों। (पृथिवी माता) पृथिवी के समान विशाल अन्न-दात्री (माता) ज्ञानदात्री पालन करने वाली माता (उपहूता) स्वयं आदर से युक्त हो। और (पृथिवी माता) यह विशाल सुखदात्री माता (माम्) मुझको (उपह्वयताम्) उपदेश करे और उसके पश्चात् (अग्नीध्रात्) अग्नि ज्ञानोपदेशक आचार्य के स्थान या पद से (अग्निः) ज्ञानी, उपदेष्टा मुझे (स्वाहा) उत्तम उपदेश करे।

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता मूर्त्ति. पृथिव्यास्तु भ्राता स्वो मूर्तिरात्मनः॥ मनु०॥

शत० १।८।१।४०-४२॥

उप॑हूतो॒ द्यौष्पि॒तोप॒ मां द्यौष्पि॒ता ह्व॑यताम॒ग्निरा॑ग्नी॑ध्रा॒त्स्वाहा॑। दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। प्रति॑गृह्णाम्य॒ग्नेष्ट्वा॒स्ये॑न॒ प्राश्ना॑मि॥ ११॥

द्यावापृथिवी, सविता, प्राशित्र च देवताः। बृहती। मध्यमः॥

भा०—(द्यौः पिता) अब जिस प्रकार आकाश वृष्टि या सूर्य आदि वर्षा करके समस्त प्राणि संसार का पालन करता है उसी प्रकार बालकों को सब प्रकार के सुख देनेवाला पिता भी (उपहूतः) शिक्षित हो और मान

११—महत्व प्रतिष्ठान्त बृहस्पतिरागिरमोऽपश्यत्। अत. परमष्टौ मन्त्राः काण्व-शाखायामधिकाः पठ्यन्ते,। ते परिशिष्टे द्रष्टव्याः।

और आदर का पात्र हो । (माम्) मुझको (द्यौः पिता) वह सब सुख-वर्षक पिता भी (उपह्वयताम्) शिक्षा प्रदान करे । और उसके पश्चात् (अग्नीध्रात् अग्निः) आचार्य पद से आचार्य (सु-आह) उत्तम ज्ञानोपदेश करे । अथवा (अग्नीध्रात् अग्निः सु आह) जिस प्रकार अग्न्धीध्र=जाठर अग्नि के स्थान से अग्नि अर्थात् जाठर अग्नि अन्न को उत्तम रीति से ग्रहण करता और उत्तम रस प्रदान करता है । उसी प्रकार आचार्य हमें उत्तम ज्ञान-रस प्रदान करे । हे अग्ने ! (देवस्य सवितुः) सर्वोत्पादक, देव परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पादित इस जगत् में मैं (अश्विनोः) अश्विन्, प्राण और अपान के (बाहुभ्याम्) बाहुओं से और (पूष्णः) पूषा, पोषक समान वायु के (हस्ताभ्याम्) शोधन और सब अंगों में रस पहुंचा देने के दोनों बलों से (त्वा) तुझ अन्न को (प्रति गृह्णामि) ग्रहण करूं । और (त्वा) तुझ (अग्ने.) कभी मन्द न होने वाले जाठर-अग्नि के (आस्येन) मुख से (प्राश्नामि) अच्छी प्रकार भोजन करूं ॥ शत० १ । ७ ४ । १३-१५ ॥

एतन्ते॑ देव सवितर्य॒ज्ञं प्रा॑हु॒र्बृह॒स्पत॑ये ब्र॒ह्मणे॑ । तेन॑ य॒ज्ञम॑व॒ तेन॑ य॒ज्ञप॑ति॒न्तेन॒ माम॑व ॥ १२ ॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषि. । विश्वेदेवाः सविता वा देवता । भुरिग् बृहती । मध्यमः ॥

हे (देव सवितः) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक (देव) प्रकाशक, सर्वप्रद, परमेश्वर (ते) तेरे उपरोक्त (यज्ञम्) यज्ञ का (प्राहु.) विद्वान् लोग नाना प्रकार से वर्णन करते हैं। यह यज्ञ (बृहस्पतये) बृहती वेदवाणी के पालक (ब्रह्मणे) ब्रह्म अर्थात् वेदज्ञान के ज्ञाता विद्वान् के लिये है । (तेन) उस ही महान् यज्ञ के द्वारा (यज्ञम्) मेरे इस यज्ञ की (अव) रक्षा कर । (तेन) उस महान् यज्ञ द्वारा (यज्ञपतिम् अव) यज्ञ के परिपालक स्वामी की भी रक्षा कर । (तेन माम् अव) और उससे मेरी भी रक्षा कर ॥ शत० १ । ७ । ४ । २१ ॥

१२—सविता देवता । द० ।

एते वै यज्ञमवन्ति ये ब्राह्मणाः शुश्रुवांसोऽनूचानाः एते ह्येनं तन्वते, एनं जनयन्ति ॥ शत० १ । ८ । १ । २८ ॥ विद्वान् ब्राह्मण इस यज्ञ का सम्पादन करते हैं ।

मनो॒ जू॒तिर्जु॑षता॒माज्य॑स्य॒ बृह॒स्पति॑र्य॒ज्ञमि॒मन्त॑नो॒त्वरि॑ष्टं य॒ज्ञꣳ सम॒मन्द॑धातु । विश्वे॑ दे॒वास॑ इ॒ह मा॑दयन्ता॒मो३म्प्रति॑ष्ठ ॥ १३ ॥

बृहस्पतिराङ्गिरस ऋषिः । बृहस्पतिर्विश्वेदेवाश्च देवता ॥

भा०—(जूतिः) अति वेगवान्, वेग से समस्त कार्यों मे लगने वाला अथवा उत्तम ज्ञानयुक्त, सावधान (मनः) मन ज्ञानसाधन, अन्तःकरण (आज्यस्य) आज्य, ज्ञान-यज्ञ के योग्य समस्त साधनों को (जुषताम्) सेवन करे, अभ्यास करे । (बृहस्पतिः) वेदवाणी का परिपालक या बृहत् महान् राष्ट्र का पालक विद्वान् (यज्ञम् इमम्) इस यज्ञ को (तनोतु) सम्पादन करे । वही विद्वान् ब्रह्मवित् (इमम्) इस (अरिष्ट) अहिंसित, हिंसारहित, एवं विघ्न रहित (यज्ञम्) यज्ञ को (सम् दधातु) उत्तम रीति से धारण करे, उस में विघ्न और विच्छेद होने पर भी उसको भली प्रकार जोड़ दे । (इह) इस लोक में, राज्य में और यज्ञ में (विश्वे) समस्त (देवासः) देवगण, विद्वान् पुरुष (मादयन्ताम्) हर्षित हों, प्रसन्न रहें, आनन्द लाभ करें । (ओ३म्) हे ब्रह्मन्, विद्वन् ! (प्रति-स्थ) तू प्रस्थान कर, प्रयाण कर, विजय लाभ कर ॥ शत० १ । ७ । ४ । २२ ॥

[1]ए॒षा ते॑ऽअग्ने स॒मित्तया॒ वर्ध॑स्व॒ चा च॑ प्यायस्व । व॒र्द्धि॒षी॒महि॑ च व॒यमा च॑ प्यासिषीमहि । [2]अग्ने॑ वाजजि॒द्वाजं॑ त्वा ससृ॒वाꣳसं॑ वाज॒जित॒ꣳ सम्मा॑र्ज्मि ॥ १४ ॥

अग्निर्देवता । (१) अनुष्टुप् गान्धारः । (२) निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

१३—'०मनोज्योति०' इति काण्व० ।

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्नि के समान प्रकाशक, शत्रुसंतापक एवं अग्रणी ! जिस प्रकार आगको लकड़ी बहुत अधिक प्रकाशित करती है। (एषा) यह (ते) तेरे लिये (समित्) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होने की विद्या या कला है (तया) उससे अथवा (एषा) यह पृथिवी और प्रजा ही (ते समित्) तेरे प्रदीप्त और तेजस्वी होने का साधन है। (तया वर्धस्व) उससे तू बढ़। (आप्यायस्व च) और खूब पुष्ट हो। (वयम्) हम प्रजाजन भी तुझ से (वर्धिषीमहि) बढ़ें और (आप्यासिषीमहि च) सब प्रकार से वृद्धिशील, हृष्ट पुष्ट, समृद्ध हों। हे (अग्ने) अग्ने ! राजन् ! सेनापते ! तू (वाजजित्) वाजत् अर्थात् ऐश्वर्य एवं संग्राम को जीतने हारा है। (वाजं ससृवांसम्) युद्ध में प्रयाण करने वाले और (वाजजितम्) युद्ध के विजयी तुझको (संमार्ज्मि) भली प्रकार अभिषिक्त करता हूं ॥ शत० १।८।२।४-६ ॥

[1]अ॒ग्नीषोम॑यो॒रुज्जि॑ति॒मनूज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वेन॒ प्रोहा॑मि। अ॒ग्नीषो॒मौ॒ तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि। इ॒न्द्रा॒ग्न्योरुज्जि॑ति॒मनूज्जे॑षं॒ वाज॑स्य मा प्रस॒वेन॒ प्रोहा॑मि। [2]इ॒न्द्रा॒ग्नी तमप॑नुदतां॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मो वाज॑स्यैनं प्रस॒वेनापो॑हामि ॥ १५ ॥

अग्नीषोमौ, इन्द्राग्नी च देवता. । (१) ब्राह्मी बृहती । मध्यमः । (२) अतिजगती । निषाद ॥

भा०—(अग्निषोमयोः) अग्नि, शत्रुसंतापक, अग्रणी, सेनापति और सोम और चन्द्र के समान शान्तियुक्त, आह्लादकारी या सर्वप्रेरक आज्ञापक राजा दोनों के (उत्-जितिम्) उत्तम विजय के (अनु) साथ मैं भी (उत् जेषम्) उत्तम विजय लाभ करूं। मैं (माम्) अपने को (वाजस्य) युद्धोपयोगी (प्रसवेन) उत्कृष्ट सामग्रीयुक्त ऐश्वर्य से (प्र ऊहामि) और आगे बढ़ाऊं। (अग्नीषोमौ) पूर्वोक्त अग्नि और सोम (तम् अपनुदताम्)

उसको दूर मार भगावे (यः अस्मान्) जो हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है और हमसे प्रेम का व्यवहार नहीं करता। और (यं च) जिसको (वयम्) हम (द्विष्मः) द्वेष करते हैं। (वाजस्य प्रसवेन) युद्ध के सेना बल के उपयोग ऐश्वर्य से ही मैं उस शत्रु को (अप ऊहामि) दूर फेंक दूं, उखाड़ दूं। इसी प्रकार (इन्द्राग्न्योः) इन्द्र और अग्नि, वायु और विद्युत् के समान कंपा देने और जड़मूल से पर्वतों को उखाड़ देने वाले बलवान् अस्त्रों और अस्त्रज्ञों के (उज्जितिम् अनु) उत्कर्ष के साथ साथ मैं राजा (उत् जेषम्) उत्कृष्ट विजय लाभ करूं। (वाजस्य प्रसवेन मा प्रोहामि) युद्ध के उपयोगी सेना-बल के ऐश्वर्य से मैं अपने को आगे बढ़ाऊं। (इन्द्राग्नी तम् अप नुदताम्) पूर्वोक्त इन्द्र और अग्नि उसको दूर मार भगावें। (यः अस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्म) जो हमसे द्वेष करे और जिससे हम द्वेष करें। (एनम्) उस दुष्ट शत्रुको युद्ध के योग्य (वाजस्य प्रसवेन) बल, वीर्य, उत्तम २ अस्त्र साधन से (अप ऊहामि) मैं दूर भगा दूं।

[1]वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। [2]व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि॥ १६॥

द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ च देवताः। निचृदार्ची पंक्तिः पञ्चमः। (१) विराट् त्रिष्टुप्। (२) धैवतः॥

भा०—हे राजन्! (त्वा) तुझको (वसुभ्यः) वसु नामक राष्ट्र में बसने वाली वसुओं, प्रजाजनों, ब्राह्मणों (रुद्रेभ्यः) शत्रुओं को रुलाने वाले बलवान् शस्त्रास्त्र कुशल क्षत्रिय वीरों और (आदित्येभ्यः) आदान प्रतिदान

‘मरुतां० आवह’ इत्यस्यक पर्वऋषिः प्रस्तरो देवता। मरुतां कपिर्बृहतीप्रास्तरीमिति सर्वा०।
“०व्यन्तु वयो रिप्तो रिहाणा मरुतां पृषतीर्गच्छ०”। चक्षुष्पा असि० इति काण्व०।

करने वाले वैश्यों के लिये अथवा वसु, रुद्र, आदित्य, इन तीन प्रकार के ब्रह्म-निष्ठों के हित के लिये प्रजापति रूप से अभिषिक्त करता हूं। (द्यावापृथिवी संजानाथाम्) द्यौ और पृथिवी दोनों को मजाएं (त्वा संजानाथाम्) तुझे अपनावें (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, सूर्य और मेघ (त्वा) तुझे और तेरे राष्ट्र की (वृष्ट्या अवताम्) वृष्टि द्वारा रक्षा करें। (रिहाणाः) नाना प्रकार की स्तुति करने हारे विद्वान् जन (वयः) गान करने वाले पक्षियों के समान (अक्रम्) प्रकाशमान प्रतापी बलशाली तेरे पास, तेरी शरण में (व्यन्तु) आवें, तुझे प्राप्त हों। (मरुताम्) मरुत्, वायुओं के वेग से चलने वाले (पृषती:) सेनाओं को तू प्राप्त हो। और तू हे राजन् ! क्षत्रिय (वशा) अपने वशीभूत (पृश्निः) रसों का ग्रहण करने वाली भूमि के समान होकर तू (दिवं गच्छ) द्यौलोक को—उत्तम राज्य को प्राप्त हो। (ततः नः) वहां से हमें (वृष्टिम्) ऐश्वर्य सुखों की वर्षा को (आवह) प्राप्त करा। हे (अग्ने) अग्ने ! तू (चक्षुः-पाः असि) हमारी दर्शन शक्ति की रक्षा करने हारा है। (मे चक्षुः पाहि) मेरे देखने के साधन चक्षु और विद्वानों की रक्षा कर ॥ शत० १ । ८ । ३ । १२ । १६ ॥

यज्ञपक्ष में—८ वसुओं, ११ रुद्रों और १२ आदित्य, १२ मासों के लिये मैं यज्ञ करता हूं। सूर्य का प्रकाश और भूमि ये दोनों उत्तम रीति से जानें। मित्र और वरुण, सर्वप्राण बाह्य वायु और अन्तस्थ उदान वायु दोनों (वृष्ट्या) शुद्ध जल वर्षण द्वारा संसार को रक्षा करते हैं। जिस प्रकार पक्षी अपने स्थान को जाते हैं उसी प्रकार अर्चना करते हुए हम यज्ञ में आवें। (वशा पृश्निः) कामित आहुति अन्तरिक्ष में जाकर (मरुतां दिवं गच्छ) वायुओं के संग्रह से द्यौलोक में सूर्य के तेज से मिले। तब वह (वृष्टिम् आवह पृषतीः) वर्षा लावें, वह नदियों, नाड़ियों में बहे। (अग्निः) भौतिक अग्नि, दीपक जिस प्रकार आंख को अन्धकार से बचाता है उसी प्रकार सूर्य भी आँखों का रक्षक है, वह हमारी चक्षुओं की रक्षा करे ॥ शत० १ । २ । ३ । १२—१६ ॥

**यं परिधिं पर्यधत्थाऽअग्ने देवपणिभिर्गुह्यमानः ।
तन्तऽएतमनुजोषं भराम्येष मेत्त्वदपचेतयाताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम् ॥ १७ ॥**

देवल ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी राजन् ! स्वयं (देवपणिभिः) विद्वानों और व्यवहार-कुशल व्यापारियों द्वारा (गुह्यमानः) सुरक्षित रहते हुए (यम्) जिस (परिधिभिः) राष्ट्र को चारों ओर के आक्रमण से बचाने वाले सेनानायक आदि शासक को (परि अधत्थाः) राष्ट्र की सीमाओं पर नियुक्त करते हो (ते) तेरे द्वारा नियुक्त (तम्) उस (एतम्) इस 'परिधि' नामक सीमापाल को (जोषम्) प्रेमपूर्वक (अनुभरामि) तेरे अनुकूल बनाता हूं। जिससे (एषः) वह (त्वत्) तुझसे (मा इत्) कभी भी न (अपचेतयातै) बिगड़े। तेरे विपरीत न हो। हे (परिधि-नायक) दो सीमापालो ! तुम दोनों भी (अग्ने. प्रियम् पाथः) अग्नि राजा के प्रिय, पान या पालन करने योग्य अन्न आदि भोग्य पदार्थ या राष्ट्र को (अपि इतम्) प्राप्त करो ॥ शत० १ । ८ । ३ । २२ ॥

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः । इमां वाचमभि विश्वे गृणन्त आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट् ॥ १८ ॥

सोमसद्म. सोमशुरमो वा ऋषि. । विश्वेदेवाः देवता. । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—हे विद्वन् बलशाली राजा के नियुक्त अधिकारी पुरुषो ! आप लोग (इषा) ज्ञान, प्रेरक आज्ञा और शासन बल से (बृहन्तः) बड़े

१७—सवदस्व । श्रावय । श्रौषट् । स्वगा दैव्या होतृभ्य. । स्वस्तिर्मानुषेभ्यः । इत्यधिकानि यजूंषि इत. पूर्वं पठ्यन्ते । शत० । (च०) 'नेत्त्वदप' इति पाठभेद ।

१८—परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिः । द० । '.० परिधयश्च देवाः' इति काण्व० ।

शक्तिशाली और (प्रस्तरेष्ठाः) उत्तम आसन और आस्तरणों या पदों पर अधिष्ठित होने वाले (देवाः) युद्ध में चतुर, व्यवहारज्ञ, विद्वान्, तेजस्वी और रखने योग्य (परिधेयाः च) रक्षा करने के लिये चारों ओर हो। आप लोग (सत्त्वभागाः स्थ) उत्तम ऐश्वर्य के भागी बनो। आप (विश्वे) सब लोग (इमाम्) इस प्रयत्न (वाचम्) वेदमय न्यायवाणी को (अस्मिन् बर्हिषि) इस न्यायासन या ज्ञानयज्ञ में (आसद्य) बैठकर (मादयध्वम्) हम सबको प्रसन्न करो और (वट्) समस्त सुखों को प्राप्त करने वाली वाणी और क्रिया से (सु आहा) उत्तम उपदेश करो और यश प्राप्त करो ॥ शत० १ । २ । ३ । २५ ॥

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम् । यज्ञ नम॑श्च त॒ऽउप॑ च य॒ज्ञस्य॑ शि॒वे सन्ति॑ष्ठस्व स्वि॒ष्टे मे॒ सन्ति॑ष्ठस्व ॥ १६ ॥

शूर्प, यजमान् ऋषिः, उद्बालवान्, धानान्तर्वान्, एते पञ्च ऋषय । स्रुचौ, यज्ञोऽग्निवायू वा देवते । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे अग्नि और वायु ! अग्नि के समान शत्रुसंतापक और वायु के समान वेगवान्, एवं राष्ट्र के प्राणभूत राजपुरुषो ! आप दोनों (घृताची स्थः) घृत तेज को धारण करने वाले हो। आप राष्ट्रशासन रूप यज्ञ में (धुर्यौ) अग्नि वायुके समान ही समस्त शासन भार के धुरा को उठाने में समर्थ हो। आप दोनों (पातम्) राष्ट्र का पालन करो। आप दोनो अग्नि और वायु के समान ही (सुम्ने=सुमने) उत्तम ज्ञानपूर्ण एवं सुखप्रद हो। (मा) मुझको (सुम्ने) सुख में या शुभमति में (धत्तम्) धारण करो, रखो। हे (यज्ञ) पूजनीय प्रभो ! (ते च) तुझे हम नमस्कार करते हैं। और तू (उप च) खूब परिपुष्ट होओ। हे राजन् ! प्रभो ! आप

१६—उत्तरार्धस्य सूर्य यजमानः, ऋषिरुद्दालवान्, धनान्नवान् इत्येते ऋषय इत्युव्वट.। अस्य मन्त्रस्य शूर्पयज्ञान्, कृषिरुद्दालवान् धानान्तर्वान् इति पञ्च ऋषयः । यज्ञो देवता । इति महीधरः ॥ प्रजापतिः परमेष्ठी ऋषिः । अग्निवायू देवते । द० ॥

(यज्ञस्य) यज्ञ के (शिवे) कल्याणकारी स्वरूप में (सं तिष्ठस्व) उत्तम रीति से स्थित हो। (मे) मेरे (सु-इष्टे) उत्तम इष्ट कार्य में (सं तिष्ठस्व) लगा रह ॥ शत० १ । ८ । ३ । २५ ॥

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषन्नः पितुं कृणु। सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ २० ॥

गार्हपत्यदक्षिणाग्नी सरस्वती च देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे (अदब्धायो) अनष्टजीवन ! अमृत ! प्रभो ! सुरक्षित जीवन वाले या जीवनों की रक्षा करने हारे स्वामिन् ! हे (अशीतम) सर्वव्यापक ! सर्वत्र विद्यमान ! आप (मा) मुझको (दिद्यो.) अति प्रदीप्त वज्र या कठोर दारुण दण्ड-रूप दु.ख से (पाहि) रक्षा करो । (प्रसित्यै पाहि) भारी बन्धनकारिणी अविद्या या पाप-प्रवृत्ति से मेरी रक्षा करो । (दुरिष्ट्यै पाहि) दुष्ट जनों की संगति से बचाओ । (दुरद्मन्यै पाहि) दुष्ट अन्न के भोजन से रक्षा करो। (नः) हमारे (पितुम्) अन्नको (अविषम् कृणु) विष रहित करो । (योनौ) घर में (सुषदा) उत्तम रूप से विराजने योग्य भूमि हो । (अग्नये स्वाहा वाट्) उस ज्ञानवान्, अग्नि के समान प्रतापी स्वामी से यह उत्तम प्रार्थना है । यह हमें उत्तम फल प्राप्त करावे । (संवेशपतये स्वाहा) उत्तम रीति से बसने वाले पृथिवी आदि लोकों के पालक से यह उत्तम प्रार्थना है । (यशः-भगिन्यै) यश ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाली (सरस्वत्यै) वेदवाणी से (स्वाहा) हम उत्तम ज्ञान प्राप्त करें ॥ शत० १ । ७ । २ । २० ॥

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्ते[illegible] मे वेदो भूयाः ।

२०—अग्निसरस्वत्यौ देवते । द० । अत. पर द्वौ मन्त्रावधिकौ काण्वशाखागतौ परिशिष्टे द्रष्टव्यौ ।

देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वातै धाः ॥ २१ ॥

प्रकृतो, मनसस्पतिश्च ऋषी । वेद. प्रजापतिर्देवता । भुरिग् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः ॥

भा० हे (देव) सब पदार्थों के देने और उनका प्रकाशन करने हारे परमेश्वर ! (येन जिस ज्ञान से (त्वं) तू (वेद) समस्त संसार के पदार्थों और विज्ञानों को जानता और सब को जनाता है, इसी से तू (वेदः असि) स्वयं भी 'वेद' स्वरूप है। उसी कारण, उसी वेदमय ज्ञानरूप से तू (देवेभ्यः) ज्ञानप्रकाशक विद्वानो के लिये भी स्वयं (वेदः) वेद या ज्ञान रूप से (अभवः) प्रकट होता है । (तेन) उसी ज्ञानरूप में हे परमेश्वर ! आप (मह्यम्) मेरे लिये (वेदः) 'वेदमय' ज्ञानमय रूप से (भूयाः) प्रकट हो । (देवाः) देव, ज्ञान के प्रकाश करने हारे पुरुष (गातुविदः) पदार्थों के यथार्थ गुणो को जानने वाले, एवं गातु अर्थात् गमन करनेयोग्य मार्ग को जानने वाले होते है । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (गातुम्) गातु, सब पदार्थों के यथार्थ स्वरूप या उत्तम भाग का ज्ञान करने वाले, मार्गोपदेशक वेद का (वित्त्वा) ज्ञान करके (गातुम्) उपदेश करने योग्य यज्ञ या संसार की सत् व्यवस्थाओं को (इत) प्राप्त होवो, उसको अपने वश करो । हे (मनसः पते) समस्त संकल्प विकल्प करने वाले समष्टिरूप मनके परिपालक प्रभो ! हे (देव) प्रकाशक ! (इमम्) इस संसार रूप यज्ञ को (वाते) वायु रूप महान् प्राण के आधार पर आप (धाः) धारण कर रहे हो । (सु आहा) यही समस्त संसार की वायु रूप सूत्रात्मा तुझ में उत्तम आहुति अर्थात् धारणव्यवस्था है ॥

अध्यात्म मे—ज्ञानकर्ता, सब विषयो के ज्ञान का उपलब्धिकर्ता आत्मा 'वेद' है । देव इन्द्रियों को भी वही ज्ञान करता है । गातु अर्थात्=ज्ञान या

२१—उत्तरार्धस्य मनसस्पतिर्ऋषि । वातो देवता । सर्वा० । वामदेव ऋषिः प्रजापतिर्देवता । इति द० ॥

शरीर। गात्र=मनसस्पति, आत्मा। वात=प्राण। यज्ञ=मानस यज्ञ या शरीर। योजना स्पष्ट है ॥ शत० १ । ६ । २ । २३–२८ ॥

सं ब्रुहिरङ्क्ताᳬ हुविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः। समिन्द्रो विश्वदेवेभिरङ्क्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ॥२२॥

लिंगोक्ता। इन्द्रो वा देवता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(बर्हिः) यह महान् अन्तरिक्ष (घृतेन) घृत के साथ और (हविषा) हवि, होम करने योग्य चरु के साथ (सम् अङ्क्ताम्) संयोग करे। (आदित्यैः) आदित्य की किरणों से (वसुभिः) अग्नि, वायु आदि आठ जीवन संचारक तत्वों से और (मरुद्भिः) वायुओं, प्राणों से भी (सम् अङ्क्ताम्) भली प्रकार युक्त हो। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् आत्मा और परमेश्वर (विश्वदेवेभिः) समस्त इन्द्रियों और समस्त दिव्य पदार्थों से (सम् अङ्क्ताम्) संयुक्त हो। (यत्) जब २ (स्वाहा) उत्तम आहुति हो तब २ (दिव्य नभः) दिव्य जल (गच्छतु) बहे ॥

राष्ट्र पक्ष में—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (बर्हिः) बढ़नेवाले राष्ट्र को (घृतेन) तेजोमय, प्रदीप्त, दोषरहित अन्न से संयुक्त करे। उसको आदित्य, वसु, मरुत्, अर्थात् वैश्यों, वसु=बसने हारे जीवों और मारणकर्मा, तीव्र योद्धाओं से सुसज्जित करे। इस राष्ट्र को (यत्) जब (विश्वदेवेभिः) सब विद्वान् अधिकारियों से युक्त करे तब (दिव्यं नभः गच्छतु) दिव्य परस्पर संगठन, संयनन या व्यवस्था को राष्ट्र प्राप्त हो। (सु आहा) वह राष्ट्र उत्तम कहे जाने योग्य है ॥ शत० १ । ६ । २ । २३ ॥

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि ॥ २३ ॥

प्रजापती रक्षश्च देवता। निचृद् बृहती। मध्यमः।

२२—वामदेव ऋषिः। द० ॥

भा०—हे यज्ञ ! यज्ञमय कर्मबन्धन ! (त्वा) तुझको (कः विमुञ्चति) कौन मुक्त करता है ? (त्वा सः विमुञ्चति) तुझको वह जिसने यज्ञ समाप्त करलिया है, मुक्त करता है ? (कस्मै त्वा विमुञ्चति) तुझको वह किस प्रयोजन से मुक्त करता है (त्वा) तुझको वह (तस्मै) उस लोकोत्तर ब्रह्मानन्द को प्राप्त करने के लिये मुक्त करता है । हे यज्ञ से प्राप्त सत् अन्न ! तू (पोषाय) आत्मा शरीर को पुष्ट करने हारा है और हे दुष्ट पापमय अन्न ! तू (रक्षसां भागः असि) दुष्ट पुरुषों के सेवन करने योग्य है ।

अथवा—[प्रश्न] हे पुरुष ! (त्वा) तुझको कर्मबन्धन के दुःख से (कः) कौन (विमुञ्चति) विशेष रूप से मुक्त करता है । [उत्तर] (सः) वह सर्वोत्तम परमेश्वर ही (त्वा) तुझको कर्मबन्धन से मुक्त करता है । [प्र०] (त्वा कस्मै विमुञ्चति) वह परमेश्वर तुझे किस कार्य के लिये या किस हेतु से मुक्त करता है । [उ०] (तस्मै त्वा विमुञ्चति) तुझे उस महान् मोक्ष प्राप्ति के लिये मुक्त करता है । [प्र०] ये सब संसार के उत्तम पदार्थ और कर्मसाधनाएं किसके लिये हैं ? [उ०] ये समस्त कर्मसाधनाएं (पोषाय) आत्मा को पुष्ट करने के लिये हैं । [प्र०] तब ये कर्मफल, भोग विलास आदि किसके लिये हैं । [उ०] हे विलासमय तुच्छ भोग ! तू (रक्षसाम्) विघ्नकारी, मुक्तमार्ग के बाधक लोगों के (भागः) सेवन करने योग्य अंश (असि) है ॥ शत० १ । ७ । २ । ३३ ॥

सं वर्चसा पर्यसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन ।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ २४ ॥

त्वष्टा देवता । विराड् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हम लोग (वर्चसा) तेज, (पयसा) पुष्टि, (तनूभिः) दृढ़

२४—' विलीष्टम् ' इति शत० । इत आरभ्य आ अध्यायपरिसमाप्ते ऋषिः स एवेति दयानन्द, । प्रजापति. परमेष्ठी वामदेवो वेति सन्दिह्यते ।

शरीरों और (शिवेन मनसा) कल्याणकारी शुद्ध चित्त या मनन शक्ति से (सम् ३ अगन्महि) भली प्रकार संयुक्त रहें। (सुदत्रः) उत्तम २ पदार्थों का दाता (त्वष्टा) सर्वोत्पादक परमेश्वर हमें (रायः) समस्त ऐश्वर्य (विदधातु) प्रदान करे और (तन्व.) हमारे शरीर में (यत्) जो कुछ (विलिष्टम्) विपरीत, अनिष्टजनक, प्राणोपघातक पदार्थ हों उसको (अनुमार्ष्टु) शुद्ध करे, दूर करे ॥ शत० १ । ६ । ३ । ६ ॥

[1]दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो[2]ऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। [3]पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठाया अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ॥ २५ ॥

विष्णुर्देवता. । (१) निचृदार्षी । (२) आर्ची पंक्ति । (३) जगती । निषादः ॥

भा०—(दिवि) द्यौ. महान् आकाश मे (विष्णु.) विष्णु, व्यापक परमेश्वर (जागतेन छन्दसा) जागत छन्द से, जगती की रचना करने वाले बल से (वि अक्रस्त) नाना प्रकार से व्यापक है और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (विष्णु) व्यापक परमेश्वर (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द अर्थात् तीनों लोकों के पालक व्यापार से (वि अक्रंस्त) व्यापक है। वहा वायु, मेघ, विद्युत् रूप से प्रकट है और (पृथिव्याम्) पृथिवी में विष्णु (गायत्रेण छन्दसा) गायत्र छन्द अर्थात् प्राणों की रक्षा करने वाले बल, अन्न आदि रूप से (व्यक्रंस्त) व्यापक है। इसी प्रकार उसी विष्णु, व्यापक, सर्व शक्तिमान् परमात्मा के अनुकरण में राजा, प्रजापति एवं समस्त यज्ञ भी द्यौलोक में जागत छन्द से अर्थात् स्वर्ण रत्नादि ऐश्वर्य मे वैश्यों के बल से और अन्तरिक्ष में त्रैष्टुभ छन्द से अर्थात् तीनों वर्णों की रक्षारूप क्षात्रबल

से और पृथिवी निवासी जनता में गायत्र छन्द अर्थात् ब्राह्मणोचित बल से व्यापक रहे। सब पर अपना शासन रक्खे और हमारा शत्रु (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो हमसे द्वेष करता है और (यं वयं द्विष्मः) जिसको हम द्वेष करते हैं वह (ततः) उन २ लोकों से और उन २ स्थानों से (अस्मात् अन्नात्) इस उपभोग योग्य अक्षय अन्न आदि पदार्थ से और (अस्यै प्रतिष्ठायै) इस भूमि के ऊपर प्राप्त प्रतिष्ठा से (निर्भक्तः) सर्वथा भाग रहित करके निकाल दिया जाय। तब हम (स्वः) सुखमय लोक को (अगन्म) प्राप्त हों। और ज्ञान समृद्धि को (सं अभूम) भली प्रकार प्राप्त हो॥

अपने लक्ष्यभूत उद्देश्य के बाधकों को दूर करके यज्ञ द्वारा तीनों लोकों पर विजय करके सुख समृद्धि विद्या आदि प्राप्त करने का उपदेश है॥ शत० १।७।३।११।१४॥

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि।
सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥ २६॥

ईश्वरो देवता। उष्णिक् छन्द। ऋषभः॥

भा०—हे परमेश्वर! तू (स्वयंभूः असि) किसी की अपेक्षा विना किये, स्वतन्त्र समस्त जगत् के उत्पादन, पालन और संहार मे स्वयं समर्थ है। तू सब से (श्रेष्ठः) प्रशंसनीय (रश्मिः) परम ज्योति अथवा रश्मि, सब को अपने वश में करने वाला है। तू (वर्चोदाः असि) सूर्य के समान तेज का देनेहारा है। (मे वर्चः देहि) मुझे तेज प्रदान कर। मैं भी (सूर्यस्य) सूर्य के समान सब चराचर जगत् के प्रेरक उत्पादक परमेश्वर के (आवृतम्) उपदेश किये आचार या व्रत का (अनु आवर्त्ते) पालन करूं। अर्थात् जिस प्रकार सूर्य नियम से दिन रात का सम्पादन करता है और सबको प्रकाश

२६—ईश्वरो देवता। द०।

देता और तपता है उसी प्रकार मैं नियम से सोऊं, जागूं, तेजस्वी बनूं, तप करूं। सूर्य के व्रत का पालन करूं ॥ शत० १ । ६ । ३ । १६ । १७ ॥

¹अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेहं गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः। ²अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ॥ २७ ॥

अग्निर्देवता । (१) निचृत्पङ्क्तिः । पञ्चमः । (२) गायत्री । षड्जः ॥

भा० – हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! नेतः ! आचार्य ! हे (गृहपते) गृहपालक ! हे (अग्ने) अग्ने ! (त्वया गृहपतिना) गृह के पति अर्थात् पालकरूप तेरे बल से (अहम्) मैं (सुगृहपतिः भूयासम्) उत्तम गृह का स्वामी हो जाऊं और (त्वं) तू (मया गृहपतिना) मुझ गृहपति के साथ, मेरे द्वारा (सुगृहपतिः भूयाः) उत्तम गृहपति हो। इस मन्त्र से गृहस्थ एक दूसरे के उत्तम गृहपति होने में सहायक हों, यह भी वेद ने उपदेश किया। हे परमेश्वर ! (नौ) हम स्त्री और पुरुष (गार्हपत्यानि) गृहपति और गृहपत्नी दोनों के करने योग्य समस्त कर्त्तव्य (शतं हिमाः) सौ बरसों तक (अस्थूरि सन्तु) दोनों द्वारा मिलकर किये जाया करें। अर्थात् एक बैल से जुती गाड़ी चल नहीं सकती, वह 'स्थूरी' कहाती है। हमारे कार्य 'अस्थूरी' एक बैल से जुते शकट के समान विघ्न युक्त न हों, प्रत्युत स्त्री-पुरुष रूप दो भारवाही बैलों से युक्त शकट के समान निर्विघ्न सत्-मार्ग पर चलते रहें। मैं (सूर्यस्य आवृतम्) सूर्य के व्रत को (अनु आवर्त्ते) पालन करूं, उसके समान सब का प्रेरक, पालक, होकर नियमपालक, ज्ञानप्रकाशक तेजस्वी, तपस्वी होकर रहूं ॥

अग्ने व्रतपते व्रतमंचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि। इदमहं यऽएवास्मि सोऽस्मि ॥ २८ ॥

अग्निर्देवता । भुरिक् उष्णिक् । ऋषभः ॥

२८—इत्यन्ताः दर्शपूर्णमासमन्त्राः। अतः परं पितृयज्ञः। प्रजापतेरार्षम्। सर्वा०।

भा०—हे (अग्ने) अग्ने परमेश्वर ! हे (व्रतपते) व्रतों के पालक परमेश्वर ! आचार्य ! मैंने (व्रतम्) व्रत को (अचारिषम्) पालन किया (तत् अशकम्) उस व्रत का पालन करने में मैं समर्थ हुआ । (मे) मेरा (तत्) वही व्रत (अराधि) सिद्ध हुआ । (इदम् अहम्) मैं साक्षात् (य एव अस्मि) जो भी अब बन गया हूं (सः अस्मि) वही यथार्थ शक्ति रूप आत्मा मैं हूं । इस मन्त्र से व्रत विसर्जन करते हैं ॥ शत० १ । ७ । ३ । २३ ॥

अग्नये॑ कव्य॒वाह॑नाय॒ स्वाहा॒ सोमा॑य पितृ॒मते॒ स्वाहा॑ ।
अप॑हता॒ असु॑रा॒ रक्षा॑ꣳसि वेदि॒षदः॑ ॥ २६ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । मन्त्रोक्ता अग्निसोमसुरा देवता ॥

भा०—(कव्यवाहनाय) कवि, क्रान्तदर्शी विद्वानों के हितकारी अन्न या ज्ञान को धारण करने वाले (अग्नये) अग्नि, मार्गदर्शक, तेजस्वी आचार्य एवं विद्वान् के लिये (सु-आहा) उत्तम अन्नदान करो और आदरपूर्वक वचन बोलो । (पितृमते सोमाय स्वाहा) पिता, माता और गुरुजनों से युक्त सोम, ज्ञानवान्, नवयुवक विद्वान् ब्रह्मचारी जिज्ञासु के लिये (स्वाहा) उत्तम अन्न का दान और आदरपूर्वक सुन्दर वचन का प्रयोग करो । (वेदिषदम्) वेदि में अर्थात् पृथिवी में समस्त उपयोगी, उत्तम पदार्थ के लाभ करा देने वाली इस यज्ञभूमि में विद्यमान (रक्षांसि) दूसरों के पीड़ाकारी, स्वार्थी, विघ्नकारी (असुरा.) केवल असु, प्राणों में रमण करने वाले अर्थात् इन्द्रियों के विषय भोगों में ही जीवन का व्यय करने वाले, विषयविलासी पुरुषों को (अपहताः) मार कर दूर भगा दिया जाय ॥

भौतिक पक्षमें कव्यवाहन, ज्ञानी पुरुषों के कार्यों को चलाने वाले अग्नि को उत्तम रीति से प्रयोग करके ऋतु और पालकों से युक्त सोम राजा या प्रधान पुरुष के आदर द्वारा दुष्ट पुरुषों को नाश किया जाय ॥

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति ।
परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टाँल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ॥ ३० ॥

कव्यवहनोग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(ये) जो लोग (रूपाणि) रुचिकर पदार्थों को (प्रतिमुञ्चमानाः) त्यागते हुए (असुराः) केवल प्राण अर्थात् इन्द्रियों के भोगों में रमण करते (सन्तः) हुए (स्वधया) अपने बलसे या पृथिवी के शासन बल सहित (चरन्ति) विचरण करते हैं और (ये) जो (परापुर) दूर दूर तक बड़े २ अपने पुर बनाते हैं और (निपुरः) नीचे भूमि में अपने पुर बढ़ाते अथवा जो (परापुर) परित्याग करने योग्य काम्य स्वार्थों को पूर्ण करते और (निपुर) जो नीच निकृष्ट वासनाओं को पूर्ण करते हैं अथवा (परापुरः निपुरः) स्थूल और सूक्ष्म देहों को (चरन्ति) पोषण करते हैं (अग्निः) अग्नि, दुष्टों का सन्तापक राजा अग्रणी नेता (तान्) उन लोगों को (अस्मात् लोकात्) इस लोक से (प्र नुदाति) निकाल दे ॥

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम् ।
अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ॥ ३१ ॥

पितरो देवताः । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(अत्र) यहां, इस स्थान में, गृह में, देश में, लोक में (पितरः) पालन करनेहारे गुरु, विद्वान् पुरुष, माता पिता एवं वृद्धजन और देश के पालक अधिकारीगण (मादयध्वम्) आनन्द, प्रसन्न रहें और स्वयं औरों को भी वे सुप्रसन्न करें । (यथाभागम्) अपने उचित भाग के अनुरूप अर्थात् अपने अधिकार, मान, पद एवं शक्ति, योग्यता के अनुकूल (आवृषायध्वम्) सब प्रकार से हृष्ट पुष्ट हों और औरों को भी आनन्दित करें । (पितरः अमीमदन्त) पालक वृद्धजन खूब हर्षित प्रसन्न हों और (यथाभागम् आ वृषायिषत) अपनी शक्ति योग्यता एवं पद के अनुरूप हृष्ट पुष्ट भी हों ॥

'नमो॑ वः पितरो॒ रसा॑य, नमो॑ वः पितर॒ः शोषा॑य नमो॑ वः पितरो॒ जी॒वाय॒ नमो॑ वः पितरः स्व॒धायै॒ नमो॑ वः पितरो घो॒राय॒, नमो॑ वः पितरो म॒न्यवे॒ । ²नमो॑ वः पितर॒ः पितरो॒ नमो॑ वो गृ॒हान्नः पितरो दत्त स॒तो वः पितरो देष्मै॒ तद्वः पितरो॒ वास॒ः ॥ ३२ ॥

लिंगोक्ता देवता. पितर (१) ब्राह्मी बृहती । (२) निचृद् बृहती । पञ्चम. ॥

भा०—हे (पितरः) राष्ट्र के पालक पुरुषो ! वृद्ध जनो ! (रसाय) ब्रह्मानन्द रस और ज्ञानरस के लिये (व नमः) आप लोगों का हम आदर करते हैं । (शोषाय) आप लोगो का जो शोषण अर्थात् दु.खो का निवारण और शत्रुओं का कमजोर करने का सामर्थ्य है उसके लिये (वः नम.) आपका हम आदर करते हैं । (जीवाय) आपके प्रजा को जीवन धारण कराने के सामर्थ्य के लिये (वः नमः) आप लोगो को हम नमस्कार करते हैं । (स्वधायै) स्वयं समस्त राष्ट्र के धारण करने के सामर्थ्य के लिये और अन्न उत्पन्न करने के सामर्थ्य के लिये (वः नमः) आप लोगों को हम आदर करते हैं । (घोराय) आप लोगों के प्रति भय दिलाने वाले घोर, युद्ध करने के सामर्थ्य के लिये (व. नमः) आप लोगों को हम नमस्कार करते हैं । (मन्यवे) आप लोगों के मान बनाये रखने वाले उच्चता के भाव के लिये अथवा आपके दुष्टों और देश का यश कीर्त्ति के नाशको के प्रति उत्तेजित हुए क्रोध के लिये (वः नमः) आप लोगो को हम नमस्कार करते हैं । हे (पितरः) पालक वृद्ध शासक जनो ! आप लोग हमारे और समस्त राष्ट्र के पालक हो, अतएव (व. नम.) आप का हम आदर सत्कार करते हैं । (पितर. नमो व.) हे पालक पुरुषों ! आप लोगों को हम नमस्कार एवं सत्कार करते हैं। हे (पितरः) पालक जनो ! (नः) हमारे (गृहान्) गृह के निवासी स्त्री आदि बन्धुओं के प्रति (दत्त) उनको उचित पदार्थ एवं विद्या और शिक्षा प्रदान करो और हे (पितरः)

वृद्ध गुरुजनो ! हम लोग (व.) आप लोगो को (सत·) अपने पास, विद्यमान नाना अन्न, धन, वस्त्र आदि पदार्थ (देष्म) प्रदान करें। हे (पितर) पालक जनो ! (वः) आप लोगों के लिये (एतत्) यही (वास) शरीर आदि आच्छादन करने योग्य उत्तम वस्त्र एव निवास गृह है। आप इसे स्वीकार करें ॥

उव्वट, महीधर दोनो ने यह मन्त्र ऋतुओं परक लगाया है। हे ऋतुओ ! (नमो व रसाय) आपके रसरूप वसन्त को नमस्कार है। (व शोपाय नम) आपके सुखाने वाले ग्रीष्म को नमस्कार है। (व जीवाय नम) जीवन के हेतु वर्षाओं को नमस्कार है। (व. स्वधायै नम.) आपके अन्नोत्पादक शरत् के लिये नमस्कार है। (व घोराय नम.) आपके घोररूप हेमन्त को नमस्कार है। (मृत्यवे नमः) शिशिर को नम. ॥

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत् ॥३३॥

पितरो देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—पुत्रो का पालन करने मे समर्थ गृहस्थजनो ! आप लोग (गर्भम्) गर्भ का (आधत्त) आधान करो और फिर (पुष्कर स्रजम्) पुष्टिकर पदार्थों के द्वारा बने शरीर वाले, सुन्दर (कुमारम्) बालक को (आधत्त) बराबर पालन पोषण करो (यथा) जिससे (इह) इस लोक मे वह आपका गर्भ में अहित वीर्य एव बालक ही (पुरुष असत्) पूर्ण पुरुषरूप होजाय। गृहस्थ लोग पुरुषो को उत्पन्न करने के लिये गर्भाधान करें। उसका गर्भ में पुष्टिकारक पदार्थों से पालन करे और उसे शिक्षित कर पूर्ण पुरुष बनावे। आचार्य पक्ष में—हे (पितर) पालक आचार्य आदि जनो (गर्भम्) गर्भ के समान ही (पुष्कर-स्रजम्) पद्म की माला धारण किया विद्यार्थी कुमार को अपने विद्यारूप सावित्री के गर्भ मे धारण करो। जिससे वह पूर्ण विद्वान् पुरुष हो जाय। इसी प्रकार शासक जन राजा को अपने भीतर आदरपूर्वक रक्खें, जिससे वह बलवान् बना रहे॥

ऊर्ज्जं वह॑न्तीर॒मृतं॑ घृ॒तं पयः॑ की॒लालं॑ परि॒स्रुत॑म्।
स्व॒धा स्थ त॒र्पय॑त मे पि॒तॄन्॥ ३४ ॥

आपो देवता । भुरिग् उष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—हे (आपः) आपः ! आप्त पुरुषो ! प्राप्त पुत्रादि जनो ! आपः- जल के समान स्वच्छ उपकारक पुरुषो ! (ऊर्जम्) उत्तम अन्न रस (अमृतम्) रोगहारी, जीवनप्रद (घृतम्) तेजोदायक, घृत (पयः) पुष्टिकारक दुग्ध (कीलालम्) अन्न और (परिस्रुतम्) सब प्रकार से स्रवित रससे युक्त, पके फल एवं ओषधि विधि से तय्यार किये उत्तम रसायन आदि इन सब को (वहन्तीः) धारण करते हुए (मे पितॄन्) मेरे पालक वृद्धजनों को (तर्पयत) तृप्त करो । आप (स्वधाः स्थ) अब स्वयं अपने आपको और अपने वृद्ध, पालक, सत्कार योग्य पुरुषों को भी अपने बलपर धारण पोषण करने में समर्थ हो ॥

अन्न पक्षमें=(ऊर्जं) उत्तम अन्नरस, (अमृतम्) जीवनशक्ति, (घृतम्) घी, तेज, (पयः) दूध, पुष्टिकारक पदार्थ, (कीलालम्) भोज्य अन्न, (परिस्रुतम्) आसव आदि तीव्र सूक्ष्म औषध इन सब तत्वों को धारण करने वाले (आपः) जल हैं। वे ही 'स्वधा' चरम अन्न हैं। उनसे हे पुरुषो ! (मे पितॄन् तर्पयत) मेरे प्राणों को तृप्त करो ॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

[आद्ये ऋचश्चैकत्रिंशत्]

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डित-जयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

१—८ अग्न्याधेयमन्त्राणां प्रजापतिर्देवता अग्निर्गन्धर्वाश्च ऋषयः ॥

॥ ओ३म् ॥ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥ ऋ० ८ । ४४ । १ ॥

विरूप आङ्गिरस ऋषि । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(समिधा) प्रदीप्त करने के साधन काष्ठ से जिस प्रकार अग्नि को तृप्त किया जाता है उसी प्रकार (सम-इधा) अच्छी प्रकार तेजस्वी बनाने वाले साधन से (अग्निम्) अग्नि, आत्मा, गुरु, परमेश्वर की (दुवस्यत) उपासना करो और (अतिथिम्) सर्वव्यापक, अतिथि के समान पूजनीय उसको (घृतैः) अग्नि को जिस प्रकार क्षरणशील, पुष्टिकारक घृत आदि पदार्थों से जगाया जाता है उसी प्रकार उद्दीपन करने वाले तेजःप्रद साधनों के अनुष्ठानों से उसको (बोधयत) जगाओ और (आस्मिन्) उसमें (हव्या) सब पदार्थों, ज्ञानस्तुतियों और कर्मों को और कर्मफलों को आहुति के रूप में (आ जुहोतन) निरन्तर त्याग करो ॥

भौतिक अग्नि में—हे पुरुषो ! (समिधा दुवस्यत) काष्ठ से उसकी सेवा करो, घृताहुतियों से उसको चेतन करो और उसमें चरु पुरोडाश आदि आहुतिरूप से दो । इसी प्रकार यन्त्रकला आदि में भी अग्नि के उद्दीपक पदार्थों से अग्नि को जलाकर (घृतैः) जलों द्वारा उसकी शक्ति को और भी चैतन्य करके उसे यन्त्रादि में आधान करे ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥२॥
ऋ० ५ । ५ । १ ॥

वसुश्रुत ऋषि । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्ज ॥

२—सुश्रुत ऋषि । द० ।

भा०—(सु-सम्-इद्धाय) खूब अच्छी प्रकार प्रदीप्त (शोचिषे) प्रकाशमान, ज्वालामय, अन्यों के भी दोष निवारण में समर्थ (जात-वेदसे) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक, प्रज्ञावान्, ऐश्वर्यवान् (अग्नये) अग्नि, परमेश्वर, विद्वान् एवं राजा में (तीव्रम्) अतितीव्र, दोषनिवारक (घृतम्) आज्य, जल और उपायन एवं बलदायक या जयप्रद पदार्थ (आ जुहोतन) सब प्रकार से प्रदान करो ॥

तन्त्वा॑ सुमिद्भि॑रङ्गिरो घृतेन॑ वर्द्धयामसि ।
बृहच्छो॑चा यविष्ठ्य ॥ ३ ॥ ऋ० ६ । १६ । ११ ॥

भरद्वाज ऋषि । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे अग्ने ! अंगिरः ! व्यापक, ज्ञानवान्, प्रकाशक ! (त्वा) तुझे (तम्) उस परम प्रसिद्ध, परम उच्च, परमेश्वर को (सम्-इति) उत्तम प्रदीप्त, प्रकाशित होने के साधन योग आदि द्वारा और (घृतेन) आत्मा के प्रकाशक तेज और तप द्वारा (वर्धयामसि) बढ़ाते हैं। हे (यविष्ठ्य) युवतम, सदा सर्वशक्तिमान् ! संसार के समस्त पदार्थों के सयोग विभाग करने में अनुपम बलवाले ! (बृहत्) महान् होकर (शोच) खूब प्रकाशित हो। अग्निपक्षमें—हे प्रकाशक अग्ने ! तुझे समिधा और घृत से बढ़ावें और तू पदार्थों के विभाजक बल से युक्त, खूब प्रकाशित हो ॥

उप॑ त्वाग्ने हुविष्म॑तीर्घृताचीर्य॑न्तु हर्यत । जुषस्व॑ सुमिधो॒ मम॑ ॥४॥

प्रजापतिर्ऋषि । अग्नि । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (हर्यत) सब कार्यों के प्रापक या दर्शनीय ! कमनीय ! कान्तियुक्त। हे अग्ने ! (उप) तेरे समीप (घृताची) घृत से युक्त, (हविष्मती:) हवि, अन्न आदि से युक्त (समिध) समिधाएं (यन्तु) प्राप्त हों उन (मम) मेरी (समिधः) समिधाओं को (जुषस्व) सेवन कर। हे अग्ने ! आत्मन् ! मेरी (हविष्मतीः) ज्ञानमय (घृताची.) तेजोमय (समिधः)

प्रकाशित होने के साधन तपस्या, विद्याभ्यास, जप, योग आदि सब तेरी प्राप्ति के लिये हों, उनको तू स्वीकार कर ॥

'भूर्भुवः स्वः' द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ ५ ॥

अग्निवायुसूर्या पृथिवी च देवता । (१) दैवी बृहती । (२) निचृद्बृहती । मध्यम स्वर ॥

भा०—(भूः) यह पृथ्वी लोक (भुवः) अन्तरिक्ष और (स्वः) वह द्यौलोक और (भू) ब्राह्मण, (भुवः) क्षत्रिय, (स्व.) वैश्य और (भू·) आत्मा, या स्वयं पुरुष (भुवः) प्रजा, पुत्र आदि (स्वः) पशुगण इनके हित के लिये मैं (भूम्ना) अति अधिक महान् ऐश्वर्य और सामर्थ्य से और अधिक प्रजाजनों से उसी प्रकार युक्त होजाऊं जैसे (द्यौ·) यह महान् आकाश नक्षत्रों से, परमैश्वर्य युक्त है और (पृथिवी इव) पृथिवी जिस प्रकार विशाल है, सबको आश्रय देती है, उसी प्रकार की (वरिम्णा) विशालता से मैं भी युक्त होऊं । हे (पृथिवि) पृथिवि ! हे (देवयजनि) देव-विद्वानों के यज्ञ करने के आश्रयभूत ! (ते तस्याः) उस तेरी (पृष्ठे) पीठ, पृष्ठ पर (अन्नादम्) समस्त अन्नों के भोग करने वाले (अग्निम्) अग्निरूप प्रजापति राजा को (आदधे) स्थापित करता हूं । अथवा-हे स्त्री और हे वेदि ! तू (भूम्ना) अपनी महती शक्ति से (द्यौः इव) आकाश के समान गुण रूप नक्षत्रों से सुशोभित है और (वरिम्णा पृथिवीव) उत्तम गुणों से पृथिवी के समान उदार पुत्रादि उत्पत्तिकारक पालक और गृहका आश्रय है । हे (देवयजनि पृथिवि) विद्वान् द्वारा पूजनीय पृथिवी के समान योग्य भूमि (अन्नादम् अग्निम्) अन्न का भोग करने वाले या कर्म फल के भोग करने वाले अग्नि, जीवात्मा को मैं (अन्नाद्याय) भावी जीवन

५—०'भूम्ना भूमिरिव वरिम्णा' इति काण्व० ।

के कर्मफल भोग के लिये ही वीर्य रूप से तुझ में (आदधे) आधान करता हूं ॥ शत० का० २ । ८ । १—२८ ॥

आयङ्गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः । पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥ ६ ॥

ऋ० १० । १८९ । १ ॥

सार्पराज्ञी कद्रूर्ऋषिका । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(अयम्) यह (गौः) गमनशील (पृश्नि:) रसों को और समस्त ज्योतियों को अपने भीतर ग्रहण करने हारा, आदित्य (मातरम् पुरः) प्राणियों के उत्पादक मातृरूप पृथिवी के ऊपर नित्य प्राची दिशा मे (असदत्) विराजता है । (अक्रमीत्) चारों ओर व्याप्त है और (पितरम्) सबके पालक (स्वः) आकाश को भी (प्रयत्) अपने निज वेग से जाता हुआ (असदत्) उसको भी व्याप्त करता है ॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती । व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥७॥

ऋ० १० । १८९ । २ ॥

वायुरूपोऽग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

भा०—(अस्य) इस महान् अग्नि की ही (रोचना) वायुरूप ज्योति, दीप्ति है जो (अन्तः) शरीर के भीतर, इस ब्रह्माण्ड के भीतर (प्राणात्) प्राण रूप होने के पश्चात् (अपानती) अपान का स्वरूप धारण करती है । वही (महिषः) अनन्त महिमा से युक्त होकर (दिवम्) द्यौलोक को या प्रकाशमान सूर्य के तेज को (वि अख्यत्) विशेष रूप से बतलता है । अर्थात् ब्रह्माण्ड में वही वायु स्वयं प्रबल चलता और ऊपर उठता और मन्द होता और नीचे आता है । शरीर में वही प्राण, पुन अपान रूप में बदलता है । परन्तु यह उसी महान् अग्नि का तेज है, ब्रह्माण्ड मे सूर्य की शक्ति से वायु नाना गतियों से चलता है । और शरीर में जाठर अग्नि के बल से प्राणों की विविध गति होती है ॥

त्रिꣳशद्धाम विराजति वाक् पतङ्गाय धीयते।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥८॥ ऋ० १० । १८ । १८९ । ३ ॥

अग्निर्देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—ईश्वररूप अग्नि । जो प्रकाशक अग्नि (त्रिंशत्) तीस (धाम) धारक पदार्थों को (विराजति) व्याप्त होकर उनको प्रकाशित करता है उसी (पतङ्गाय) व्यापक परमेश्वर के लिये (वाक्) वेद-वाणी (धीयते) पढ़ा जाता है और उसको (प्रति वस्तोः) प्रतिदिन (द्युभिः) प्रकाशमान पदार्थों के द्वारा (अह) निश्चय से (धीयते) ध्यान, मनन करना चाहिये ॥

'त्रिंशत् धाम '-दिन रात्र के ३० मुहूर्त (उव्वट)। जो वाणीदिन के तीसों मुहूर्त प्रकाशित होती न केवल वह अग्नि (पतङ्ग) के लिये है प्रत्युत प्रतिदिन उत्सवों के साथ भी वह बात उसी 'पतङ्ग' के लिये ही है। महीधर-या मास के तीसों दिन जो वाणी 'पतङ्ग' के लिये है वह प्रति दिन उत्सवों में भी उसी के लिये है ॥ उक्त ६-८ शत० २ । १ । ४ । २९ ॥

दयानन्द-जो अग्नि प्रतिदिन तीसों धर्म्मों के धारक पदार्थों को प्रकाशित करता है उस स्वयगतिशील, अन्यों के प्रेरक अग्नि को धारण करना चाहिये। ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र, प्रजापति, इनमें से अन्तरिक्ष वह आदित्य अग्नि को छोड़ शेष ३०। पतङ्ग=अग्नि परमेश्वर है ॥

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा । अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा । ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ ९ ॥

अग्निसूर्यौ देवते । पङ्क्ति । मध्यम । अग्निर्ज्योतिरिति द्वयस्य तक्षा ऋषि । ज्योतिः सूर्य इत्यस्य जीवलश्चैलकिश्च ऋषी ।

८—इत पर एको मन्त्रोऽधिक काण्व० परिशिष्टे द्रष्टव्य.।

९—विशेषतश्च अग्निर्वर्च इत्यस्यास्तक्षा ऋषि । ज्योति सूर्य इत्यस्याजीवलश्चैलकिर्ऋषि । सर्वा० । इतःपर मेको मन्त्रोऽधिक काण्व० पठित परिशिष्टे द्रष्टव्य ।

भा०—(अग्निः ज्योतिः) अग्नि ज्योति स्वरूप है और (ज्योतिः अग्निः) समस्त ज्योति अग्निरूप है। (स्वाहा) यह ज्योति स्वरूपता ही अग्नि के अपनी महिमा का प्रत्यक्ष वर्णन है। (सूर्यः ज्योतिः) सूर्य ज्योति है। (ज्योतिः सूर्यः) ज्योति ही सूर्य है। (स्वाहा) यही उसके अपने महत्व का उत्तम स्वरूप है। इस देह मे (अग्निः वर्चः) अग्नि ही तेज है (ज्योतिर्वर्चः) ज्योति ही तेज है। (स्वाहा) यही उसका अपना उत्कृष्टरूप है। (सूर्यः वर्चः ज्योतिः वर्चः) सूर्य तेज है, ज्योति तेज है। (स्वाहा) यही उसका अपना महत्वपूर्ण रूप है। (ज्योतिः सूर्यः सूर्यः ज्योतिः स्वाहा) ज्योति सूर्य है और सूर्य ही ज्योति है। यही उसका यथार्थ महत्वरूप है ॥

स्वाहा—स्वो वै महिमा आह इति। स्वाहा इत्येवाजुहोत्। शत० १। २। ४। ६॥ यह मेरा ही महत्व या उत्कृष्टरूप है इस बात को 'स्वाहा' शब्द कहता है। प्रजापति की अपने उत्कृष्टरूप अग्नि सूर्य, ज्योति और वर्चस्, ये हैं और ये सर्वत्र प्रकट होकर अपने महत्व को दर्शाते हैं। इसका व्याख्यान-विस्तार शतपथ मे देखें। शत० कां० २। २। ४, ५॥ 'स्वस्य अहानमस्तु' इति स्वाहा इत्युव्वटः। अपने स्वरूप का नाश नहीं होता यह 'स्वाहा' का अर्थ है। स्वं प्राह इति वा स्वाहुतं हविर्जुहोति इति वा। निरु० ॥

अथवा—(अग्नि) ज्ञानमय परमेश्वर (ज्योतिः) सर्वप्रकाशक है और (ज्योतिः) प्रकाशमय (अग्निः) भौतिक अग्नि के समान ही परमेश्वर सब पदार्थों का ज्ञापक अग्नि है। यह (स्वाहा) सत्य बात है। (सूर्यः) सब संसार मे व्यापक और उसका ज्ञाता परमेश्वर (ज्योतिः) वेद द्वारा समस्त विद्याओं का उपदेष्टा 'ज्योति' है। वह भी (ज्योतिः) पृथिवी आदि पदार्थों के द्योतन या प्रकाशन करने वाले (सूर्य) सूर्य के समान

तेजोमय है। (स्वाहा) यही वास्तविक बात है। (अग्निः) सर्वविद्या-प्रदाता आचार्य (वर्चः) सब पदार्थों का दीपक, ज्ञापक विद्याप्रदाता है, वह (ज्योतिः) सब पदार्थ प्रकाशक (वर्चः) तेज के समान ही सब विद्याओं का प्रकाशक है। (स्वाहा) इस प्रकार ही सत्य जानो। (सूर्यः) सब व्यवहारों का प्रवर्तक प्राण ही (वर्चः) सबका प्रकाशक है। (ज्योतिर्वर्चः) सर्व पदार्थों का द्योतक तेज ही है (स्वाहा) यह सत्य ज्ञान है। (सूर्यो ज्योतिः) सूर्य ही सब पदार्थों का ज्योति अर्थात् प्रकाशक है और प्रकाशक ज्योति ही सूर्य है। यही (स्वाहा) उसकी अपनी महिमा का स्वरूप है ॥

[1]सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा। [2]सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥ १० ॥

प्रजापतिर्ऋषिः। (१) अग्निः (२) सूर्यः। (१) गायत्री, (२) भुरिग् गायत्री। षड्जः स्वरः ॥

भा०—(अग्नि) यह भौतिक अग्नि जिस प्रकार (देवेन सवित्रा) सर्व प्रकाशक, सर्व व्यवहारप्रवर्तक, सर्वोत्पादक परमेश्वर के बल से (सजूः) सब पदार्थों को समान भाव से सेवन करता है। (इन्द्रवत्या) इन्द्र, वायु से युक्त (रात्र्या) रात्रि या आच्छादनकारिणी शक्ति से युक्त होकर (सजूः) समस्त पदार्थों को समान रूप से अपने भीतर लीन करता है, उसी प्रकार (अग्निः) प्रकाशक अग्नि, सर्वेश्वर परमात्मा (जुषाणः) सबको प्रेम करता हुआ या सबको सेवन करता हुआ (अग्नि) भौतिक अग्नि के समान ही परमेश्वर (स्वाहा) अपनी महिमा या महत्व शक्ति से (वेतु) सर्वत्र व्याप्त है और (देवेन) सर्व प्रकाशक (सवित्रा) सर्वोत्पादक परमेश्वर के बल से सूर्य (सजूः) सर्वत्र समान भाव से व्याप्त होता है और वही

१०—इत पर मन्त्रचतुष्कं काण्व० पठितं परिशिष्टे द्रष्टव्यम्।

(इन्द्रवत्या) प्रकाशमय (उषसा) उषा या प्रभा के साथ (सजूः) समान भाव से व्याप्त होता है, उसी प्रकार (सूर्यः) सर्व प्रेरक परमेश्वर सबको (जुषाणः) प्रेम करता हुआ (स्वाहा) अपनी महान् शक्ति से सर्वत्र (वेतु) व्यापक है, सबको अपने भीतर लिये है ॥

अग्निहोत्र पक्षमें—देव सविता परमेश्वर की उत्पादित सृष्टि के साथ मिल कर और इन्द्रवती रात्रि अर्थात् विद्युत् शक्ति से युक्त रात्रि से मिल कर हवि आदि को अग्नि अपने भीतर ले। इसी प्रकार ईश्वरीय शक्ति से युक्त और प्रकाश युक्त उषा से होकर सूर्य चरुद्रव्यों को अपने भीतर ले ॥

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये। आरेऽअस्मे च शृण्वते ॥११॥

[११–३०] बृहदुपस्थानमन्त्राणां देवा ऋषयः। गोतम ऋषिः। अग्निर्देवता।
निचृद् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(अध्वरं) जिसको शत्रुगण परास्त न कर सकें ऐसे अध्वर, अहिंसक सर्वपालक राष्ट्र यज्ञ में (उप प्रयन्तः) पहुंच कर (अस्मे च) हमारे वचनों को (दूरे च) समीप और दूर भी (शृण्वते) श्रवण करने वाले (अग्नये) अग्रणी नेता, राजा के हित के लिये (मन्त्रम्) उत्तम विचार वेदानुकूल विज्ञान वाक्य को (वोचेम) उच्चारण करें, कहें ॥

यज्ञपक्ष मे—यज्ञ मे आते हुए हम ईश्वर की उपासना के लिये मन्त्रों को उच्चारण करें। वह हमारा दूर पास सर्वत्र सुनता है ॥ शत० २। ३। ४। १० ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्।
अपाᳯरेताᳯसि जिन्वति ॥ १२ ॥

विरूप ऋषिः। अग्निः। निचृद् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(दिवः) द्यौलोक से या प्रकाशवान जगत् मे जिस प्रकार (मूर्धा) सबके शिरोभूत, सबसे ऊपर (अग्निः) सूर्य, सबका प्रवर्त्तक

और प्रकाशक है उसी प्रकार (अयम्) यह (ककुत्) सबसे महान् सर्व श्रेष्ठ (पृथिव्या पतिः) पृथिवी का भी स्वामी राजा है। वह (अपां) समस्त प्रजाओं के (रेतांसि) समस्त वीर्यों को (जिन्वति) स्वयं ग्रहण करता, वश करता है॥

ईश्वर पक्षमें—(अग्निः) सर्वस्वामी ईश्वर, (मूर्धा) सर्वोपरि विराजमान है। वह (दिवः ककुत्) द्यौ, आकाश और सूर्य आदि से भी महान् और जलों के वीर्यों, उत्पादक सामर्थ्यों को (जिन्वति) पुष्ट करता है, शक्तिमान् बनाता है। सूर्य के पक्षमें—(अपाम् अग्निः दिवः मूर्धा, पृथिव्याः ककुत् पतिः) यह अग्नि सूर्य, द्यौ लोक का शिर पृथिवी का सबसे बड़ा पालक है। वह (अपां रेतांसि जिन्वति) समस्त जलों, प्राणियों के उत्पादक वीर्यों को पुष्ट करता है॥ शत० २। ३। ४। ११॥

उभा वा॑मिन्द्राग्नी॒ऽआहु॒वध्या॑ऽउ॒भा राध॑सः स॒ह मा॑द॒यध्यै॑।
उ॒भा दा॒तारा॑वि॒षाᳬ र॑यी॒णामु॒भा वाज॑स्य सा॒तये॑ हुवे वाम् ॥१३॥

भरद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (इन्द्र-अग्नी) इन्द्र और अग्ने! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन्! हे (अग्ने) शत्रुसंतापक अग्ने! अग्रणी! सेना नायक! (वाम् उभा) तुम दोनों को (आहुवध्यै) अपने पास बुलाने के लिये और (उभा) दोनों को (राधसः) नाना ऐश्वर्य के द्वारा (सह) एकत्र (मादयध्यै) आनन्द लाभ करने के लिये (हुवे) मैं बुलाता हूं। (उभा) तुम दोनों (इषाम्) अन्नों और (रयीणाम्) ऐश्वर्यों के (दातारौ) प्रदान करने वाले हैं। (उभौ) आप दोनों को (वाजस्य) उत्तम अन्न के (सातये) प्राप्ति और भोग के लिये (वाम्) तुम दोनों के (हुवे) बुलाता हूं। दोनों को आदरपूर्वक स्वीकार करता हूं। विद्युत् अग्नि के पक्षमें—परस्पर के बुलाने, वार्तालाप,

१३—०'दातारा इषा॰' इति काण्व०।

दूरस्थ देश से सन्देश आदि देने और धनैश्वर्य के परस्पर मिलकर भोग करने के लिये समस्त कामनाओं और ऐश्वर्यों के प्रदाता वीर्यवान्, या बल-युक्त कार्यों की सिद्धि के लिये अग्नि और विद्युत् शक्तियो को मैं (हुवे) स्वयं अपने वश करता हूं ॥ शत० २ । ३ । ४ । १२ ॥ अथवा, इन्द्र=सूर्य और अग्नि ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः ।
तञ्जानन्नग्नऽआरोहाथा नो वर्धया रयिम् ॥ १४ ॥

देवश्रवोदेववातौ भारतौ वा ऋषी । अग्निर्देवता । स्वराड् अनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे अग्ने ! (ते) तेरा (अयम्) यह (योनिः) मूल आश्रय स्थान, (ऋत्वियः) ऋतुओं, राजकर्त्ताओं और सदस्यो में आश्रित है। (यत) जहां से (जात.) तू सामर्थ्यवान् होकर (अरोचथा.) प्रकाशमान होता है। हे (अग्ने) अग्ने ! राजन् ! (तत्) उस अपने मूल-कारण को (जानन्) भली प्रकार जानता हुआ ही तू (आरोहथाः) ऊंचे पद सिंहासन पर आरूढ़ होता है। तू (नः) हमारे (रयिम्) ऐश्वर्य को (वर्धय) बढ़ा।

ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य । ऐ० १ । १ । १३ ॥ ऋतवो वै विश्वेदेवा. । शत० ७ । १ । १ । ४२ ॥ ऋतवः उपसदः शत० १० । २ । ५ । ७ ॥ ऋतव एते यदृतव्या' । श० ८ । ७ । सदस्या ऋतवोऽभवन् । तै० ३ । १२ । ६ । ४ ॥ शत० । २ । ३ । ४ । १३ ॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽअध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ १५ ॥

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अयम्) इस अग्नि के समान शत्रुसन्तापक (प्रथम·) सर्व-श्रेष्ठ पुरुष को (इह) इस राष्ट्र में (धातृभिः) राष्ट्र के धारण करने

वाले पुरुषों द्वारा (धायि) अधिकारी रूपमें स्थापित करते हैं। यह (होता) सबको अपने वश मे लेने वाला, (यजिष्ठः) सबको संगतिकारक (अध्वरेषु) यज्ञों में यज्ञशील होता के समान (अध्वरेषु) संग्रामों में (ईड्यः) स्तुति के योग्य है। (यम्) जिस (अप्नवानः) प्रजा, सन्तान वाले सत्कर्मवान् (भृगवः) तपस्वी पुरुष, वानप्रस्थ पुरुष जिस प्रकार वनों में नाना प्रकार से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं, उसी प्रकार वे (विशे विशे) प्रत्येक प्रजासंघ में (चित्रम्) पूजनीय (विभ्वम्) विशेष सामर्थ्यवान् पुरुष को (विरुरुचुः) विशेष रूप से प्रदीप्त करते हैं ॥ शत० २।३।४।१४॥

अस्य प्रत्नामनु द्युतंꣳशुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः।
पयः सहस्रसामृषिम् ॥ १६ ॥

अवत्सार ऋषि । गौः पयो वा देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(अस्य) इस अग्निरूप परमेश्वर की (प्रत्नाम्) अति पुरातन, अनादि सिद्ध (द्युतम्) द्युति, कान्ति, तेज, शक्ति को (अह्रयः) आकाश में रश्मियों द्वारा फैलने वाले प्रकाशमान तेजोमय सूर्य आदि (शुक्रम्) शुक्र, कान्तिमय तेज के रूपमें (दुदुह्रे) दोहते हैं, प्राप्त करते हैं। वे मानो, सर्व कामदुघा परमेश्वर रूप गौ से (सहस्रसाम्) सहस्रों कार्यों को सम्पादन करने वाले (ऋषिम्) सब के प्रेरक, स्वयं गतिशील (पयः) पुष्टिकारक दुग्ध के समान बल और वीर्य को (दुदुह्रे) प्राप्त करते हैं॥

राजपक्षमें—(अह्रयः अस्य प्रत्नाम् द्युतम्, शुक्रम् ऋषिम्, सहस्रसाम् पयः दुदुह्रे) दूर २ तक प्रज्ञा द्वारा पहुंचने वाले विद्वान् इस राजा के प्रत्न=श्रेष्ठ कान्ति या वीर्य को ऋषि, व्यापक या निरीक्षक शक्ति को और (सहस्राम्) हज़ारों को, अन्न वस्त्र शरण देने वाली शक्ति और पुष्टिकारक बल को गाय से दूध के समान प्राप्त करते हैं। हज़ारों कार्यों के

१६—'वत्सार' इति सर्वा० ।

साधक प्रदीप के समान पदार्थदर्शक अनादि सिद्ध कान्ति को अग्नि से विद्वान लोग प्राप्त करते हैं ॥ शत० २ । ३ । ४ । १५ ॥

तनूपा अ॑ग्नेसि त॒न्वं मे पाह्यायुर्दाऽअ॑ग्नेऽस्यायु॑र्मे देहि वर्चोदा ऽअ॑ग्नेसि वर्चो॑ मे देहि । अग्ने॒ यन्मे॑ तन्वा ऊ॒नंतन्म॒ऽआपृ॑ण ॥१७॥

अग्निर्देवता: । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! परमेश्वर ! तू (तनूपा. असि) हमारे शरीरों की रक्षा करनेहारा है । तू (मे) मेरे (तन्वम्) शरीर की (पाहि) रक्षा कर । हे (अग्ने) अग्ने ! (आयुर्दा असि) तू आयुष् जीवन का देने वाला है (मे आयुः देहि) मुझे आयु प्रदान कर । हे (अग्ने) अग्ने (वर्चोदा असि) तू वर्चस् तेजको देने वाला है तू (मे वर्चः देहि) मुझे तेज का प्रदान कर (यत् मे तन्व) और जो मेरे शरीर में (ऊनं) न्यूनता हो (मे) मेरी (तत्) उस न्यूनता को (आपृण) पूर्ण कर । शरीर-रक्षक, जीवनरक्षक, बल, तेज के दाता, राजा से भी ऐसी प्रार्थना सम्भव है । वह हमारे शरीर की न्यून बल की पूर्ति अपनी सद् व्यवस्था से करे । निर्बलों का बल राजा है ॥ शत० २ । ३ । ४ । १७–२० ॥

इन्धा॑नास्त्वा श॒तꣳ हिमा॑ द्यु॒मन्त॒ꣳ समि॑धीमहि वय॑स्वन्तो वय॒स्कृत॒ꣳसह॑स्वन्तः सह॒स्कृत॑म् । अग्ने॑ सपत्न॒दम्भ॑न॒मद॑ब्धासो॒ऽअदा॑भ्यम् । चित्रा॑वसो स्व॒स्ति ते॑ पा॒रम॑शीय ॥ १८ ॥

अग्निर्रात्रिश्च देवता: । निचृद्ब्राह्मी पंक्ति: । पञ्चम ॥

भा०—हे राजन् ! अग्ने ! (द्युमन्तं) प्रकाशमान्, तेजस्वी (वयस्कृतम्) आयु के बढ़ाने और देने वाले (सहस्कृतम्) बल के देनेवाले (सपत्न

१७—१७–१९ अवत्सार ऋषि । द० ॥

१८—चित्रावसो इत्यस्य ऋषय, ऋषि: । रात्रिर्देवता आहवनीयोपस्थानमन्त्रा ११–१८ एते । म० ॥

दम्भनम्) शत्रुओं के नाशक (अदाभ्यम्) किसी से भी न मारने योग्य, सर्वविजयी। (त्वा) तुझको (वयस्वन्त) हम दीर्घायु (सहस्वन्त) बलवान् और (अदब्ध-स) शत्रुओं से कभी न मारे जाकर, अक्षुण्ण रहकर (शत-हिमा) सौ वर्षों तक (इन्धाना) तुझे प्रदीप्त और अधिक दीप्तिमान् करते हुए (सम् इधीमहि) हम भी अग्नि के समान तुझे बराबर बढ़ाते और कीर्ति मे उज्ज्वल ही करते रहें। हे (चित्रावसो) नाना प्रकार के ऐश्वर्यवाले (स्वस्ति) तेरा कल्याण हो। (ते) तेरे (पारम्) पालन और पूर्ण करने वाले सामर्थ्य का मैं सदा (अशीय) भोग करू।

ईश्वर पक्ष में—हे अग्ने परमेश्वर! हम अहिंसित, दीर्घायु, बलवान् रहकर सौ वर्षों तक तेरे ही प्रकाशवान स्वरूप को प्रकाशित करें। तेरी कृपा से (पारं स्वस्ति अशीय) सर्व दु खों को पार करके सुख भोग करें। इसी प्रकार अग्नि को भी दीर्घायु, बलकारक जीवन के शत्रुओं के नाशकर रूप में प्रदीप्त करके उसको अपने उद्योग में लाकर समस्त सुख को प्राप्त करें॥ शत० २।३।४।२१-२३॥

सं त्वम॑ग्ने॒ सूर्य॑स्य॒ वर्च॑सागथा॒: समृ॑षी॒णाᳬ स्तु॒तेन॑। सं प्रि॒येण॒ धाम्ना॒ सम॒हमायु॑षा॒ सं वर्च॑सा॒ सं प्र॒जया॒ सᳬ रा॒यस्पो॑षेण ग्मिषीय॥ १६॥

अग्निर्देवता। जगती। निषाद॥

हे अग्ने राजन्! (त्वम्) तू (सूर्यस्य वर्चसा) सूर्य के तेज से (सम् अगथा.) युक्त हो। (ऋषीणाम्) मन्त्र द्वारा ऋषियो, विद्वानों के (स्तुतेन) प्रस्तुत, उपवर्णित सत्य ज्ञान से भी (सम् अगथा) युक्त हो। (प्रियेण धाम्ना) प्रिय धाम, स्थान, नाम और जन्म इन तीनों प्रिय धामों, तेजों से (सम्) संयुक्त हो और मैं तेरी रक्षा मे रहकर (आयुषा) आयु से (वर्चसा) तेज से (प्रजया) प्रजा से और (रायस्पोषेण) धनैश्वर्यों की पुष्टि द्वारा (सं ग्मिषीय) संयुक्त होऊं।

ईश्वर पक्ष में—ईश्वर सूर्य के समान तेजोमय ऋषियों के मन्त्रों द्वारा स्तुति किया गया है एवं प्रिय धारण सामर्थ्य से युक्त है। वह मुझे आयु, तेज, प्रजा, धन आदि दे। इसी प्रकार आचार्य तेजस्वी, ज्ञानी हो वह शिष्य को आयुष्मान्, तेजस्वी, प्रजावान्, ऐश्वर्यवान् बनावे ॥ शत० २।३।४।२४॥

अन्ध॒ स्थान्धों वो भक्षीय॒ मह॑ स्थ॒ महो॑ वो भक्षीयोर्ज॒स्थोर्जं॑ वो भक्षीय रा॒यस्पो॑षस्थ रा॒यस्पोषं॑ वो भक्षीय ॥ २० ॥

आपः गावो वा देवता। भुरिग्बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे (आप) जल के समान समस्त अन्न आदि पदार्थों के उत्पादक प्रजाजनो ! आप्त पुरुषो ! आप लोग अथवा हे (गावः) गौओं एवं उनके समान सर्वोत्पादक भूमियो ! आप (अन्धःस्थ) अन्न हो। (व) तुम्हारे (अन्ध) अन्न को मैं (भक्षीय) खाऊं, प्राप्त करूं। आप (मह स्थ) वीर्य रूप हो (व मह. भक्षीय) तुम्हारे वीर्य का मैं भोग करूं। (ऊर्ज. स्थ) तुम उत्तम अन्न रस रूप हो (व ऊर्ज भक्षीय) तुम्हारे बलकारी रस का मैं भोग करूं। (रायस्पोष स्थ) ऐश्वर्य के द्वारा प्राप्त पुष्टिरूप हो (वः राय पोषं भक्षीय) आपके द्वारा मैं ऐश्वर्य की पुष्टि को प्राप्त करूं। अथवा अन्न आदि नाना पदार्थों को ही सम्बोधन करके उनके सारे भाग प्राप्त करने की प्रार्थना करली जाय। अथवा सर्वोत्पादक गौओं को सब कुछ मानकर उनसे उन सब पदार्थों की प्रार्थना है ॥ शत० २।३।४।२५ ॥

रेव॑ती र॒मध्व॑म॒स्मिन्योना॑व॒स्मिन् गो॒ष्ठे॒ऽस्मिँल्लो॒के॒ऽस्मिन् क्षये॑। इ॒हैव स्त॒ माप॑गात ॥ २१ ॥

विश्वेदेवा गावो वा देवताः। उष्णिक्। ऋषभः ॥

२०—याज्ञवल्क्य ऋषि। आपो देवता। द० ॥

२१—याज्ञवल्क्य ऋषि.। विश्वेदेवा देवता। द०। अस्मिन् लोकेऽस्मिन् गोष्ठे। इति काण्व० ॥

भा०—हे (रेवती) धन सम्पन्न समृद्ध प्रजाओ ! आप लोग (अस्मिन् गोष्ठे) इस गोष्ठ, गौ वाणियों के निवास स्थान या भूमि के आश्रयभूत (अस्मिन् क्षये) इस सब के बसाने वाले घरके समान आश्रयप्रद राजा पर निर्भर रहकर इस राष्ट्र में (रमध्वम्) आनन्द पूर्वक रहो। (इह एव स्त) यहां ही रहो। (मा अपगात) यहां से दूसरे देश मत जाओ ॥ गो पक्ष में—हे गौवो ! तुम इस गोशाला और घर में रहो, यहां से दूर मत होओ ॥ शत० २ । ३ । ४ । २६ ॥

[१]स॒ꣳहि॒तासि॑ विश्वरू॒प्यूर्जा॑ मा वि॑श गौप॒त्येन॑ ।
[२]उप॑ त्वाग्ने दि॒वे दि॑वे॒ दोषा॑वस्तर्धि॒या व॒यम् ।
नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि ॥ २२ ॥

वश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः । गौरग्निश्च देवताः । (१) भुरिगासुरी गायत्री, । (२) गायत्री । षड्ज, ॥

भा० - हे गौ ! तू संहिता असि) भली प्रकार से घरों में बांधली जाती है । तू ही (विश्वरूपी) नाना प्रकार के पशुओं के रूप धारण करने वाली है, उनकी प्रतिनिधि है । तू (ऊर्जा) अन्न-सम्पत्ति और (गौपत्येन) गौओं के पति या स्वामित्व के यश के साथ (मा विश) मुझे प्राप्त हो ॥

प्रजा के प्रति राजा--हे प्रजे ! (विश्वरूपी) तू नाना रूप की है, समस्त प्रकार के जनो-प्राणियों से युक्त है । तू (संहिता असि) भली प्रकार व्यवस्था में बद्ध है । (ऊर्जा) बल से और (गौपत्येन) पृथ्वी के स्वामित्व के साथ (मा विश) मुझे प्राप्त हो ॥

हे (अग्ने) अग्ने राजन् ! परमेश्वर ! हे (दोषावस्त) अपने तेज से रात्रि रूप अन्धकार को आच्छादन करने हारे ! हम (दिवे दिवे) प्रतिदिन (धिया) अपनी बुद्धि और कर्म से (नम भरन्त) नमस्कार करते हुए या अन्नादि पदार्थ प्राप्त कराते हुए (त्वा उप एमसि) तुझे प्राप्त हों ।

अथवा–हे परमेश्वर प्रतिदिन हम धारणद्वारा तेरा ध्यान करते हुए तुझे प्राप्त हों ॥ शत० २ । ३ । ४ । २६ ॥

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् । वर्द्धमानꣳ स्वे दमे ॥२३॥

वैश्वामित्रोमधुच्छन्दा ऋषि । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्ज ॥

भा०--(राजन्तम्) सर्वत्र यश और प्रताप से प्रकाशमान (अध्वराणाम्) शत्रुओ से न नाश होने योग्य दुर्ग और उत्तम रक्षा के उपायों के रक्षक, (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (दीदिविम्) प्रकाशक, (स्वे दमे) अपने दमन कार्य मे (वर्धमानं) सबसे अधिक बढ़ने वाले तुझ राजा को हम अन्न का उपहार करते हुए प्राप्त हो ।

ईश्वर पक्ष में—यज्ञो के रक्षक ऋग्वेद के प्रकाशक, परम मोक्षपद में विद्यमान, सर्वोपरि राजमान परमेश्वर की हम उपासना करे ।

अग्नि पक्ष में—इसी प्रकार प्रकाश या अग्नि को हम अपने घर में हवि से पुष्ट करें ॥ शत० २ । ३ । ४ । २७ ॥

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव । सचस्वा नः स्वस्तये ॥२४॥

वैश्वामित्रो मधुच्छन्दाऋषि । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे राजन् ! अग्ने ! प्रभो ! अग्रणी पुरुष ! (स) वह तू (सूनवे) पुत्र के लिये पिता के समान (सूपायन भव) सुखपूर्वक प्राप्त होने योग्य, शरण के समान पालक हो और (नः स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिये (न सचस्व) हमें प्राप्त हो । राजा प्रजा के प्रति पिता के समान हो । उनके कल्याण के लिये कार्य मे नियुक्त हो । ईश्वर के प्रति स्पष्ट है ॥

अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ॥२५॥

[२५--२८] बन्ध्वादयश्चत्वार ऋषय., अग्निर्देवता । भुरिग बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्रणी, राजन्! (त्वं नः अन्तमः) तू हमारे सबसे निकट (उत) और (त्राता) रक्षक (शिवः) सुखकारी और (वरूथ्यः) हमारे गृहों के लिये हितकारी वरूथ=सेना का पति है। तू (अग्निः) सबका नेता होकर भी (वसुः) सबको बसाने वाला और (वसुश्रवाः) धन ऐश्वर्य के कारण महान् कीर्त्ति से सम्पन्न है। (अच्छ नक्षि) हमे भली प्रकार उत्तम रूप में प्राप्त हो और हमें (द्युमत्तमम्) अति उज्ज्वल, (रयिम्) धन ऐश्वर्य (दाः) प्रदान कर॥

ईश्वर पक्ष में—हे परमेश्वर तू हमारे (अन्तमः) निकटतम या प्राण-दाताओं मे सबसे श्रेष्ठ है। त्राता, कल्याणकर, सर्व गुणवान् है। तू (वसुः) सर्वत्र बसने वाला, सबको बसाने वाला सर्वत्र व्यापक है। तू हमें सर्वोत्तम उज्ज्वल ऐश्वर्य दे॥

तन्त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णोऽअघायतः समस्मात्॥ २६॥

अग्निः। स्वराड् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (शोचिष्ठ) ज्वालायुक्त अग्नि के तेज से अति देदीप्यमान! हे (दीदिव) प्रकाशयुक्त तेजस्विन्! अग्ने! राजन्! (नूनम्) निश्चय से हमें (तम्) परम प्रसिद्ध (त्वा) तुझसे (सखिभ्यः) अपने मित्रों के लिये भी (ईमहे) याचना, प्रार्थना करते हैं। (सः) वह तू (नः) हमें हमारे अभिप्राय को जान, अथवा वह हमें (बोधि) ज्ञान प्राप्त करा और हमारे (हवम्) स्तुति और प्रार्थना को (श्रुधि) श्रवण कर। (नः) हम (समस्मात्) सब प्रकार के (अघायतः) पापाचारी, अत्याचार करने वाले हिंसक पुरुष से (उरुष्य) बचा। ईश्वर के पक्ष में स्पष्ट है॥ शत० २।३।४।३१॥

२६—सुबन्धुर्ऋषिः। द०।

इडु एह्यदितु ऽएहि काम्या ऽएत॑। मयि॑ वः कामुधर॑णम्भूयात् ॥२७॥

इडा गौर्वाग्निर्देवता । विराड् गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (इडे) इडे ! पृथिवी ! अन्न दात्रि ! (आ इहि) हमें तू प्राप्त हो । हे (अदिते) अखण्डित ! राज्यशासनव्यवस्थे ! अथवा पृथिवी ! (आ इहि) तू हमे अखण्ड चक्रवर्त्ती राज्य शासन के रूप में प्राप्त हो। हे पुरुषो ! प्रजाजनो! (वः कामधरणम्) आप लोगो की समस्त अभिलाषों का आश्रय (मयि भूयात्) मेरे पर निर्भर हो ॥ शत० ३ । २ । ४ । ३४ ॥

सोमान॑ᳬस्वर॑णं कृणुहि ब्रह्मणस्पते । कुक्षीव॑न्तुं यऽऔ॑शिजः ॥२८॥

सुन्ध्वादयो ब्रह्मणस्पति मेधातिथिर्वा ऋषि. । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । विराड् गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) हे ब्रह्म=वेदशास्त्र के पालक ईश्वर वा आचार्य तू (य) जो (औशिज) कान्ति या प्रताप से उत्पन्न तेजस्वी और प्रतापी है उसको ही (सोमानं) सबका प्रेरक सोम (स्वरणम्) सबका आज्ञापक, सन्मार्ग उपदेशक और (कक्षीवन्तम्) उत्तम कार्य, उत्तम नीति सम्पन्न, विद्या, राज्यप्रबन्ध आदि कार्य में, रथ में अश्व के समान, नियुक्त (कृणुहि) कर। तेजस्वी पुरुष को विद्वान् लोग राष्ट्र का नेता, प्रवर्तक आज्ञापक और प्रभुपद पर नियुक्त करे ॥

ईश्वर पक्ष में—हे ईश्वर जो मैं सब विद्या का अभिलाषी हूं मुझको सबका साधक, सर्व विद्योपदेशक बना ॥ शत० ३ । २ । ४ । ३५ ॥

२७—श्रुतबन्धुर्ऋषि । ०'काम्य एहि । इति काण्व० ।

२८—ब्रह्मणस्पतिर्ऋषिरिति महीधर । बृहस्पतिर्देवतेति दयानन्दः। बृहस्पतिरेव ब्रह्मणस्पतिरिति उव्वट, । प्रबन्धुर्ऋषिः । द० ।

यो रे॒वान्यो॑ऽअमीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्द्ध॑नः ।
स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः ॥ २६ ॥

ब्रह्मणस्पतिर्मेधातिथिर्वा ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । गायत्री । षड्जः ।

भा०—हे ब्रह्मणस्पते ! (यः) जो (रेवान्) धनवान्, ऐश्वर्यवान्, (अमीवहा) रोगों और शरीर और मानस दोषों को दूर करने हारा, (वसुवित्) धनों, रत्नों का ज्ञाता अथवा (वसुवित्) राष्ट्र के वासी समस्त प्रजाजनों का ज्ञाता या प्राप्त करने वाला, उनको अपनाने वाला या वसुवित् वासस्थान नगर ग्रामादि एवं लोक लोकान्तरों का ज्ञाता प्राप्त-कर्त्ता, उन परवशी, (पुष्टिवर्धन) शरीरों की पुष्टि को बढ़ाने वाला, ईश्वर राजा, वैद्य या हितकारी पुत्र मित्र है और (यः) जो (तुरः) शीघ्रकारी, विना विलम्ब के यथोचित काल में कार्य सम्पादन करता है (सः) वह (नः) हमें (सिषक्तु) प्राप्त हो, वह हमें संयोजित करे, संगठित करे, वह हमें मिलाये रखने में समर्थ है । धनादिसम्पन्न, रोग, दोष अपराधों को दूर करने में समर्थ प्रजापोषक, प्रजारंजक, तुरन्त कार्यकर्त्ता अप्रमादी राजा हो वही प्रजा को संगठित कर सकता है । ईश्वर के प्रति विशेषण स्पष्ट हैं । उव्वट के मत में, उक्त विशेषणों वाला पुत्र हमें प्राप्त हो ॥ शत० २ । ३ । ४ । ३५ ॥

मा नः॒ शꣳसो॒ऽअर॑रुषो धू॒र्तिः प्रण॒ङ् मर्त्य॑स्य ।
रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३० ॥

ब्रह्मणस्पतिर्मेधातिथिर्वा ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । निचृद् गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) वेद के पालक प्रभो ! (अररुषः) अदान-शील, अराति, शत्रु का (शंसः) अनिष्टचिन्तन और (धूर्तिः) धूर्तता,

३०—[३०-३३] सप्तधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । द० ॥

हिंसाजनक प्रयोग (नः) हम तक (मा प्रणक्) न पहुंचे । तू (न) हमें (रक्षः) बचा । अथवा हे परमेश्वर (नः शंस मा प्रणक्) हमारी स्तुतियें नष्ट न हों और (अररुष मर्त्यस्य धूर्त्ति) शत्रु का हिंसा प्रयोग हमें न प्राप्त हो । उससे (न रक्ष.) हमारी रक्षा कर ॥ शत० २ । ३ । ४ । ३६ ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षम्मित्रस्यार्यम्णः दुराधर्षं वरुणस्य ॥३१॥

सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यः । विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(मित्रस्य) मित्र, (अर्यम्णः) अर्यमा और (वरुणस्य) वरुण (त्रीणाम्) इन तीनों का (महि) बड़ा (द्युक्षम्) ज्ञान प्रकाश और न्याय का आश्रयभूत (दुराधर्षम्) एवं अभेद्य, अछेद्य (अव) पालन या राज्य, प्रजापालन कार्य (अस्तु) हो । राज्य शासन में मित्र, सबको मरने से त्राण करने वाला, रक्षा विभाग, अर्यमा, न्यायविभाग, वरुण, शत्रुदमन एवं योद्धृवर्ग इन तीनों द्वारा किये गये प्रजा पालन के कार्य नीति न्यायपूर्वक और शत्रुओं और द्रोहियों द्वारा अभेद्य हों जिसको कोई तोड़ न सके । भौतिक पक्ष में प्राण, सूर्य और बल इनका पालन कार्य हमें सदा प्राप्त हो ॥ शत० २ । ३ । ४ । ३७ ॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥३२॥

सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यः । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(तेषाम्) उन राष्ट्रवासी प्रजाओं के (अमा चन) घरों में और (अध्वसु) मार्गों में और (वारणेषु) शत्रु, चोर, व्याघ्र आदि के निवारण करने वाले कार्यों में ही (अघशंस) पापयुक्त कामों की शिक्षा देने वाला दुष्ट षड्यन्त्रकारी पुरुष और (रिपु) शत्रु, पापीजन (न, न ईशे) बल नहीं पकड़े, अथवा । पूर्वोक्त मित्र, वरुण, अर्यमा आदि के घर, मार्ग युद्ध आदि में दुष्ट पुरुष घात नहीं लगा सकता ॥ शत० २ । ६ । ४ । ३७ ॥

ते हि पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३३॥

सत्यधृतिर्वारुणिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(ते) वे मित्र, अर्यमा और वरुण पूर्वोक्त (अदितेः) अखण्ड शासन या पृथिवी के (पुत्रासः) पुत्र अर्थात् पुरुषों को पापदु खो से त्राण करने वाले है जो (मर्त्याय) मनुष्य को (जीवसे) जीवन लाभ के लिये (अजस्रम्) अविनाशी (ज्योतिः) प्रकाश का (प्र यच्छन्ति) प्रदान करते है। भौतिक पक्ष मे--वे (अदितेः) अखण्ड परमेश्वरी शक्ति के पुत्र, उससे ही उत्पन्न हैं वे मनुष्य को अविनाशी चेतना, जीवन प्रदान करते हैं ॥ शत० २ । ३ । ४ । ३७ ॥

कुदा चुन स्तुरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवुन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ३४ ॥

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । पथ्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! प्रभो ! आप (कदा चन) कभी भी (स्तरीः न असि) हिंसक नहीं है। कभी प्रजा का द्रोह नहीं करते और (दाशुषे) आत्मसमर्पण करने वाले पुरुष को (सश्चसि) सदा सुख प्रदान करते है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (ते देवस्य) तुझ राजा, विजिगीषु का (दानम्) दान, (इत् नु) ही निश्चय से (उप पृच्यते) सदा हमे प्राप्त होता है और (भूयः इत् नु उपपृच्यते) खूब ही और बार बार, बराबर हमें मिलता और सम्पन्न करता है। राजा प्रजा का घातक न हो, प्रत्युत प्रजा पर अपना ऐश्वर्य बराबर प्रदान करे। अपनी सम्पत्ति से प्रजा को लाभ पहुचावे ॥ शत० २ । ३ । ४ । ३८ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३५ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । सविता देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—राजा के पक्ष में—(सवितुः) समस्त देवों के प्रसविता उत्पादक और उत्कृष्ट शासक, आज्ञापक, प्रेरक (देवस्य) विजेता महाराज के (तत्) उस (वरेण्यम्) अति श्रेष्ठ (भर्गः) पाप के भून डालने वाले तेज को हम सदा (धीमहि) धारण करें, सदा अपने ध्यान में रक्खें (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को और समस्त कार्य-व्यवहारों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग पर संचालित करता है ॥

ईश्वर पक्ष में—समस्त जगत् के उत्पादक और संचालक उस देव परमेश्वर के सर्वश्रेष्ठ, पापनाशक तेज को हम धारण करें (यः नः प्रचोदयात्) जो हमें सन्मार्ग में सदा प्रेरित करे ॥ शत० २ । ३ । ४ । ३९ ॥

परि ते दूडभो रथोऽस्माँ२ ऽअश्नोतु विश्वतः ।
येन रक्षसि दाशुषः ॥ ३६ ॥

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(येन) जिससे हे राजन्! (दाशुषः) दानशील, करप्रद प्रजा जनों की (रक्षसि) रक्षा करता है, वह (ते) तेरा (दूडभः) अपराजित, अविनाशी, अजेय (रथः) रथ, युद्ध का साधन रथ, वज्र, बल और ज्ञान है, वह (अस्मान्) हमें (विश्वतः) सब ओर से (अश्नोतु) व्याप्त रहे, सब ओर से प्राप्त हो, हमारी रक्षा करे ॥

ईश्वर पक्ष में—जिस ज्ञान और वीर्य से वह समस्त उपासकों की रक्षा करता है वह उसका ज्ञान और बल हमें सब ओर से प्राप्त हो ॥ शत० २ । ३ । ४ । ४० ॥

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳬ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः ।

३६—०विश्वत । समिद्धो मासमर्धय प्रजया च धनेन च ॥ इति काण्व० ।

नर्य प्रजां मे पाहि शंस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुम्मे पाहि ॥३७॥

आसुरिरादित्यश्च ऋषि । गार्हपत्याहवनीयदाक्षिणाग्नयो देवताः । ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—(भूः भुवः स्वः) प्राण, उदान और व्यान इनके बल पर मैं पुरुष (प्रजाभिः) पुत्र पौत्र आदि सन्तानों से (सुप्रजाः) उत्तम सन्तान वाला (स्याम्) होऊं । (वीरैः) वीर्यवान्, शूरवीर पुरुषों से मैं (सुवीरः स्याम्) उत्तम वीर होऊ और (पोषैः) पुष्टिकारक धन ऐश्वर्य और अन्न आदि पदार्थों से मैं (सुपोषः) उत्तम पुष्टि युक्त धन आदि सम्पन्न होऊं । हे (नर्य) नरों पुरुषों के हितकारिन् ! तू (मे प्रजाम् पाहि) मेरी प्रजा का पालन कर । हे (शस्य) स्तुति योग्य (मे पशून् पाहि) मेरे पशुओं का पालन करो और हे (अथर्य) संशयरहित, ज्ञानवन् ! (मे पितुम् पाहि) मेरे अन्न की तू उत्तम रीति से रक्षा कर । प्रत्येक प्रजाजन उत्तम सन्तानों, वीर पुरुषों और धनादि से सम्पन्न हो और राजा भी उत्तम प्रजा, वीर पुरुषों और रत्नों से युक्त हो । वह राजा और प्रजा दोनों पशु और अन्न की रक्षा के लिये हितकारी, उत्तम, ज्ञानी और गुणवान् पुरुषों को नियुक्त करें । परमेश्वर से भी यही प्रार्थना समुचित है ॥ शत० २ । ४ । १ । १–५ ॥

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम् ।
अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽआ यच्छस्व ॥ ३८ ॥

आदित्य आसुरिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् छन्दः । गांधारः ॥

भा०—(विश्ववेदसम्) समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामी और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वसुवित्तमम्) सब से अधिक धनों, ऐश्वर्यों को

३७—वामदेव ऋषिः अग्निर्देवता इति दयानन्द । ३७–४४ क्षुन्णकोपस्थमन्त्राः । सर्वाः नर्येत्यादिप्रवत्स्यपःस्थान मन्त्राः ३७–४३ पर्यन्तीः तेषामासुररादित्यश्चर्षी । ०जा प्रजया भूयासम् । सु० । ०पशून्मे पाहि इति काण्व० ॥

३८—आसुरिति विदयानन्दः ।

प्राप्त करने वा कराने वाले या हम में से सबसे अधिक ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले श्रेष्ठ पुरुष को हम (आ अगन्म) प्राप्त हों, उसकी शरण में जाँय और कहें—हे (अग्ने) हमारे अग्रणी पुरुष ! तू (सम्राट्) हमारे में सब से अधिक प्रकाशमान, सम्राट् है । तू (द्युम्नम्) धन और अन्न को और (सहः) समस्त बल को (अभि अभि) सब ओर से (आ यच्छस्व) एकत्र कर और हमें प्रदान कर और प्रजा को प्राप्त करा ॥

ईश्वर पक्ष में—(विश्ववेदसम् वसुवित्तमम् आ अगन्म) सर्वज्ञ, ईश्वर परमात्मा की शरण मे हम आवें । वह परम सम्राट् हमे धन, अन्न और, बल दे ॥ शत० २ । ४ । १ । ७, ८ ॥

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः ।
अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ॥ ३९ ॥

असुरिरादित्यश्च ऋषी । अग्निर्देवता । भुरिग् बृहती न्यङ्कुसारणी । मध्यमः ॥

भा०—(अयम्) यह (अग्नि) हमारा अग्रणी, नेता, राजा, (गृहपतिः) हमारे घरों का पालक होने से गृहस्वामी के समान और (गार्हपत्य.) गार्हपत्य अग्नि के समान समस्त गृहस्वामियों से सयुक्त है अथवा राष्ट्र-रूप गृह का स्वामी है । वह (प्रजायाः) समस्त प्रजा के (वसुवित्तमः) समस्त ऐश्वय प्राप्त करन वालों में सब से श्रेष्ठ है । हे (अग्ने) अग्रणी ! ज्ञानवन् ! हे (गृहपते) गृह के स्वामिन् ! (द्युम्नम् सहः, अभि, आयच्छस्व) तू बल और अन्न और धन ऐश्वर्य को सब प्रकार से नियत कर और हमें प्राप्त करा । राजा अन्य समस्त गृहस्थ प्रजा के संयुक्तशक्ति से स्थापित होकर स्वयं भी गृहस्थ रहे । वह भी सब के समान गृहस्थ, सब का स्वामी, सब के लिये अन्न और धन का आयोजक हो । ईश्वर पक्ष में-वह सबके गृहों का स्वामी, उपास्य है, वह भी महान् गृहपति है । वह सबको अन्न, बल दे ।

३९—आसुरिरितिदया० । ०प्रजावान् वसुवित्तमः । इति काण्व० ।

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः ।
अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सह ऽआयच्छस्व ॥ ४० ॥

आसुरिरादित्यश्च ऋषी । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—(ऊ र) यह (अग्नि') अग्रणी नेता पुरुष (पुरीष्य) लक्ष्मी और ऐश्वर्य प्राप्त करने और प्रजा को पुष्ट करने योग्य कर्मों का साधक इन्द्र या राजपद प्राप्त करने योग्य है, देवों या राजाओं, प्रजाओं के भी ऊपर वश-कारी है और वह (रयिमान्) ऐश्वर्यवान् और (पुष्टिवर्धन) प्रजा के बल और ज्ञान को बढ़ाने वाला है। हे (अग्ने) अग्ने राजन्! हे (पुरीष्य) पुरीष्य! इन्द्रासनयोग्य पुरुष! (द्युम्न अभि सह. अभि आयच्छस्व) धन और बल को हमें प्राप्त करा।

पुरीष्य.—पुरीष्य इति वै तमाहुर्यः श्रियं गच्छति । समानं वै पुरीष च करीषं च । श० २ । १ । १ । ७ ॥ पुरीषम् इयं पृथिवी । श० । १२ । ५ । २ । ५ ॥ ऐन्द्र हि पुरीषम् । श० ८ । ५ । ४ । ६ ॥ आत्मा के पक्षमें—पुरीतत् पुरीष्यम् । श० ८ । ४ । ४ । ६ ॥ ईश्वर पक्ष में—दिशः पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १७ ॥ सूर्यपक्ष में—नक्षत्राणि पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १४ ॥ शरीर के अग्निपक्ष में—मांस पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १७ ॥ जाठराग्नि पक्ष में—अन्न पुरीषम् । श० ८ । १ । ४ । ५ ॥ इत्यादि ॥

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रतऽएमसि ।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ॥ ४१ ॥

आसुरिरादित्य' शयुश्च ऋषय । वास्तुर्देवता । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चम. ॥

भा०—हे (गृहा') गृहस्थ पुरुषो! आप लोग (मा बिभीत) मत डरो, हम सैनिक राजपुरुषों से भय मत करो। (मा वेपध्वम्) मत कांपो,

४१—आसुरिर्ऋषिः । वास्तुरग्निर्देवता । इति दया० ।

दिल में मत घबराओ। जब हम (ऊर्जं) विशेष बल (बिभ्रतः) धारण करते हुए (एमसि) आवें और मैं राजा या अधिकारी पुरुष भी (ऊर्जम्) बल (बिभ्रद्) धारण करता हुआ (सुमनाः) शुभ मन से और (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि से युक्त होकर (मनसा मोदमानः) अपने मन से प्रसन्न होता हुआ (गृहान्) गृहों को, गृहस्थ पुरुषों को (एमि) प्राप्त होऊं। प्रजाजन राजपुरुषों को देख कर भय न करें। राजा के अधिकारी प्रसन्न, उत्तम चित्त होकर प्रजाजनों के पास जावें।

येषा॑म॒द्ध्येति॑ प्र॒वस॒न्येषु॑ सौमन॒सो ब॒हुः।
गृ॒हानुप॑ह्वयामहे॒ ते नो॑ जानन्तु जान॒तः ॥ ४२॥

शयुर्ऋषिः। वास्तुपतिरग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गाधारः॥

भा०—(प्रवसन्) दूर प्रवास में रहता हुआ पुरुष (येषाम्) जिनकी (अधि-एति) याद किया करता है और (येषु) जिनके बीच में (बहुः) बहुत अधिक (सौमनसः) परस्पर शुभचित्तता, एवं सुहृद्भाव है उन (गृहान्) गृहस्थ पुरुषों को हम उनके ही कृतज्ञ पुरुष (उपह्वयामहे) उनको पुकारते हैं। (ते) वे (नः जानतः) हम जानकार लोगों को पुनः (जानन्तु) जानें, पहचानें। हम दूसरे नहीं, राज-कारणों से दूर जाकर भी हम तुम्हें भूले नहीं, प्रत्युत् तुम्हारे पास प्रेम भाव से आते हैं॥

उप॑हूता॒ऽइ॒ह गाव॒ऽउप॑हूता॒ऽअ॒जाव॑यः।
अथो॒ऽअन्न॑स्य की॒लाल॒ऽउप॑हूतो गृ॒हेषु॑ नः।
क्षेमा॑य वः॒ शान्त्यै॒ प्रप॑द्ये शि॒वꣳ श॒ग्मꣳ शं॒योः शं॒योः ॥ ४३॥

शयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः। वास्तुपतिर्देवता। भुरिग् जगती। निषादः॥

भा०—(इह) यहां, राष्ट्र में और गृह में (गावः) दुधार गौवें (उपहूताः) हमें प्राप्त हों। (अजावयः उपहूताः) बकरियां और भेड़ें प्राप्त हों। (अन्नस्य) प्राण धारण करने में समर्थ भोग्य पदार्थों में से (कीलालः)

उत्तम अन्न आदि पदार्थ (नः) हमारे (गृहेषु) घरों में (उपहूत) प्राप्त हो। हे गृहो! गृहस्थ पुरुषो! (वः) तुम लोगों के पास मैं (क्षेमाय) आप लोगों की कुशल क्षेम, रक्षा के लिये और (शान्त्यै) विघ्नों और विघ्नकारियों को शान्त करने और सुख प्रदान करने के लिये (प्रपद्ये) तुम्हें प्राप्त होऊं। (शयोः शयोः) सुख शान्तिदायक, प्रत्येक उपाय से (शिवम् शग्मम्) कल्याण और सुख ही प्राप्त हो॥

प्रघासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः।
करम्भेण सजोषसः॥ ४४॥

[४४–६३] प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतो देवता। गायत्री। षड्ज॥

भा०—हम लोग (प्रघासिनः) उत्तम अन्न के भोजन करने हारे (रिशादसः) हिंसकों के विनाशक और (करम्भेण) उत्तम कर्म करने हारे पुरुष के साथ (सजोषसः) प्रेम करने वाले (मरुतः) विद्वान्, शूरवीर प्रजा के पुरुषों को (हवामहे) अपने घरों पर बुलावें, निमन्त्रित करें अथवा (करम्भेण सजोषसः) करम्भ=यवमय अन्न से तृप्त होने वाले पुरुषों को अपने यहा बुलावें॥ शत० २।५।२।२१॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये।
यदेनश्चकृमा वयमिदन्तदवयजामहे स्वाहा॥ ४५॥

प्रजापतिर्ऋषिः। मरुतो देवता। स्वराड् अनुष्टुप्। गाधारः॥

भा०—(वयम्) हम (यद् एनः) जो पाप, अपराध, अयुक्त काय, निषिद्धाचरण (ग्रामे) ग्राम में करें, (यत् अरण्ये) जो बुरा काम जगले में करें, (यत् सभायाम्) जो बुरा कार्य हम सभा मे करे और जो काम हम (इन्द्रिये) आख, नाक, कान और मन में भी, उनकी कुचेष्टा और दुरि-

४४—अथातश्चातुर्मास्यमन्त्रा. आ अध्यायपरिसमाप्तेः।

च्छारूप से (चकृम) करें (तत्) उसको हम (अवयजामहे) सर्वथा त्याग दें। (स्वाहा) यह प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रति दृढ़ भावना किया करे॥ शत० २।५।२।२५॥

'क्षत्रं वा इन्द्रो विशो मरुतः'। क्षत्रं वै निषेद्धा, विशो निषिद्धा आसन्निति॥ शत० २।५।२७॥

मो षू णऽइन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्मा ते शुष्मिन्नवयाः।
महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः॥ ४६॥

अगस्त्य ऋषिः। इन्द्रो मरुतश्च देवता। भुरिक् पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! राजन् ! (अत्र) इस राष्ट्र में रहते हुए (नः) हमें (मा) सर्वथा मत मार, मत कटा। (सु) प्रत्युत उत्तम रूप से रक्षा कर। हे (शुष्मिन्) बलशालिन् ! (हि) निश्चय से (देवैः) देव, विजयशील सैनिकों सहित (ते) तेरा (अवयाः) पृथक् भाग (अस्ति) है। अर्थात् अन्नादि पदार्थों के लिये राजा अपना कर प्रजा से नियत भाग में लेले। उसके लिये वह प्रजा का संग्रामों में नाश न करे। (यस्य) जिस (मीढुषः) नाना सुखों के प्रवर्षक, उदार राजा के लिये (यव्या) यवों, अन्नों के बने उत्तम पदार्थ ही (महः चित्) बड़ी भारी पूजा सत्कार है और जिस (हविष्मतः) अन्न से सम्पन्न या अन्नादि से सम्पन्न (मरुतः) प्रजा-गणों या मारणशील सैनिक अधिकारीगण की (गीः) हमारी वाणी ही (वन्दते) वन्दना करती है, उनको अभिवादन करती है उस तुझ इन्द्र के लिये हमारा अवश्य पृथक् भाग है। प्रजा राजा को उत्तम अन्नों से सत्कार करे और अधिकारियों को आदर से नमस्कार करे और वे उसी को अपना पर्याप्त सत्कार समझें॥ शत० २।५।२।२८॥

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा।

देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ॥ ४७ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः स्वरः ॥

भा०—(कर्मकृत) काम करने वाले पुरुष (वाचा सह) अपनी वाणी से (मयोभुवः) परस्पर एक दूसरे को सुख शान्ति प्रदान करते हुए (कर्म) काम (अक्रन्) करें और हे (कर्मकृतः) काम करने वाले कर्मचारी पुरुषो ! (देवेभ्यः) देवों, विद्वान् राजा आदि धनदाता पूज्य पुरुषों के लिये (कर्म कृत्वा) काम या सेवा करके (सचाभुवः) परस्पर साथ मिलकर एक दूसरे के सहाय से सामर्थ्यवान् होकर प्रसन्नता पूर्वक (अस्तं प्रेत) अपने अपने घर को जाया करो ॥ शत० २ । ५ । २ । २९ ॥

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतम्पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि ॥ ४८ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । यज्ञो देवता । ब्राह्मी अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अवभृथ) अवभृथ ! सबको नीचे से ऊपर तक भरण करनेहारे ! हे (निचुम्पुण) निचुम्पुण ! सर्वथा मन्द मन्द गति चलनेहारे ! अथवा नीचे स्वर से सभ्यता पूर्वक कहनेहारे ज्ञानी पुरुष ! तू (निचेरुः) सब ज्ञानों को भली प्रकार संग्रह करने हारा और (निचुम्पुणः असि) सर्वथा मन्द २, अति शान्ति से सर्वत्र पहुंचने हारा या अति शान्ति से वार्तालाप करनेहारा है । मैं भी (देवैः) देवों, अपने इन्द्रिय आदि प्राणों से अथवा विद्वानों के द्वारा (देवकृतम्) देवों, युद्ध विजयी सैनिकों द्वारा (एनः) युद्ध से किये घात प्रतिघात आदि के अपराध को (अव अयासिषम्) दूर

४७—अगस्त्य ऋषिः । ६० ॥

४८—और्णवाभ ऋषिः । द० । १ चुपमदागयामातौ (भ्वादिः) निपूर्वादतः उणः प्रत्ययः । नीचैरस्मिन् क्वणन्ति इति ।

करता हूं। (मर्त्यैः) साधारण मनुष्यों के द्वारा (मर्त्यकृतम् एनः अव अयासिषम्) मनुष्यों के किये पाप को दूर करूं। हे (देव) देव! राजन्! (पुरुराव्णः) अति अधिक रुलाने वाले, अति कष्टदायी (रिषः) हिंसक शत्रु पुरुष से तू (पाहि) हमारी रक्षा कर। राजा सबका पालन और अति शान्ति से शनैः २ सब कार्य करे। अधिकारी लोगों के अपराधों की उनकी व्यवस्था द्वारा दूर करे और प्रजा के अपने लोगों से प्रजा के परस्पर घात को रोके। बाहर के कष्टदायी शत्रु से राजा प्रजा की रक्षा करे। यज्ञ पक्ष में—हे ज्ञानवन्! आप ज्ञान से शुद्ध हैं और अन्तर्यामी भीतर ही भीतर उपदेश करते हैं। (देवैः देवकृतमेनः अयायासिषम्) इन्द्रियों की तपस्या से इन्द्रियगत पापों को दूर करूं। पुरुषों द्वारा पुरुषों के दोष दूर करूं। परमात्मन्! आप हमारी पाप से रक्षा करें॥ शत० २।५।२।४७॥

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जंꣳ शतक्रतो॥ ४६॥

और्णवाभ ऋषिः। यज्ञो देवता। अनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

भा०—हे (दर्वि) देने योग्य पदार्थों को अपने भीतर लेने वाली पात्रिके! (पूर्णा) तू पूर्ण होकर, भरी भरी (परा पत) दूसरे के पास जा। (सुपूर्णा) खूब पूर्ण होकर, भरी भरी ही (पुन.) फिर (आ पत) हमे भी प्राप्त हो। हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने में समर्थ इन्द्र! राजन्! (वस्ना इव) विक्रय करने योग्य पदार्थों के समान ही हम (इषम्) अन्न और मन चाहे सभी पदार्थ और (ऊर्जम्) अपने बल पराक्रम का भी (विक्रीणावहै) विनिमय करें, लें, दें। व्यापार में परिमाण पूरा पूरा दे और पूरा पूरा लें। इस प्रकार अन्न और मन चाहे सभी पदार्थ और परिश्रम को भी अदला बदला करें।

यज्ञ पक्ष में—भरकर चमस डालें और फिर उत्तम वृष्टि आदि फल

भी खूब प्राप्त हों। अन्न आहुति अग्नि में दें और विनिमय में उत्तम रस-बल और अन्नोत्पत्ति प्राप्त करें।

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे।
निहारं च हरासि मे निहारन्निहराणि ते स्वाहा॥ ५०॥

और्णवाभ ऋषिः। इन्द्रो देवता। भुरिग् अनुष्टुप्। गान्धार स्वरः॥

भा०—व्यापार के लेन देन का नियम दर्शाते हैं। (मे देहि) तुम अपना पदार्थ मुझे दो तो मैं भी (ते ददामि) तुम्हें अपना पदार्थ दूं। (मे निधेहि) तुम मेरा पदार्थ धारो, गिरवी रक्खो तो (ते निदधे) मैं तुम्हारे पदार्थ को भी अपने पास रक्खूं (निहारं च) और तू यदि पूर्ण मूल्य का ये पदार्थ (मे हरासि) मेरे पास ले आवो तो (ते) तेरे द्रव्य का भी (निहारं) पूर्ण मूल्य (निहराणि) चुका दूं। (स्वाहा) इस प्रकार सत्य-वाणी, व्यवहार द्वारा व्यापार किया जाता है अथवा इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपना पदार्थ प्राप्त करे। लोग सत्यवाणी पर विश्वास करके परस्पर लें दें, उधार करें और मूल्य चुकाया करें॥ शत० २। ५। ३। १६॥

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया ऽअधूषत।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥५१॥

गोतमो राहूगण ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् पंक्तिः। पञ्चमः स्वरः॥

भा०—(स्वभानव) स्वतःप्रकाश, आत्मज्ञानी पुरुष (अक्षन्) अन्न का भोजन करें। (अमीमदन्त) सबको प्रसन्न करें और स्वयम् भी तृप्त हों। (प्रियाः) सब प्रिय, प्रेम पात्र होकर (अव अधूषत) सबके दुःखों को दूर करें और (विप्राः) विशेष ज्ञान से परिपूर्ण, विपश्चित्, ज्ञानी पुरुष (नविष्ठया) अति प्रशस्त, नई, नई, पुनः (मती) मति, मनन

५०—'०ते दधौ! निहार निहरामिते निहार निहरान्नि मे स्वाहा।' इति काण्व०।

द्वारा (अस्तोषत) ईश्वर के एवं अन्य पदार्थों के सत्यगुणों का वर्णन करें। हे (इन्द्र) इन्द्र! राजन्! सेनापते! तू (ते) तेरे, अपने (हरी) हरणशील घोड़ों के समान बल और पराक्रम को भी (योज नु) इस राज्य कार्य मे संयोजित कर। विद्वान् लोग सब पदार्थों का उत्तम उत्तम ज्ञान प्रस्तुत करें और राजा बल पराक्रम द्वारा उनका उपयोग करे॥ शत० २।६।१।३८॥

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि। प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो यासि वशाँ२ऽअनु योजा न्विन्द्र ते हरी॥ ५२॥

गोतमो राहूगण ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराट् पंक्तिः। पञ्चमः स्वरः॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (सुसंदृशम्) उत्तम रूप से सब को देखने हारे (त्वा) तुझको (वयं) हम (वन्दिषीमहि) अभिवादन करते हैं। तू (पूर्णबन्धुर) पूर्ण रूप से सबका पालने हारा, एवं सबको व्यवस्था में रखने हारा होकर (स्तुत.) सबसे प्रशंसित होकर (नूनम्) निश्चय से (वशान् अनु) कामना योग्य समस्त पदार्थों को (प्रयासि) प्राप्त कर और हे (इन्द्र) राजन्! तू अपने (हरी) रथ मे अश्वों के समान दूरगामी एवं नाना पदार्थ प्राप्त कराने वाले बल पराक्रम दोनो को (योज नु) नियुक्त कर। अर्थात् जिस प्रकार रथ पर सब उपकरण लगा कर ही अपने घोड़े जोड़ता है, उसी प्रकार राष्ट्र मे सब व्यवस्था करके अपने बल पराक्रम का प्रयोग कर॥ शत० २।६।१।३३॥

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन। पितॄणां च मन्मभिः॥५३॥

बन्धुर्ऋषिः। मनो देवता। अतिपादनिचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(नाराशंसेन) विद्वान् नेता मनुष्यों के कथाप्रवचन सम्बन्धी (स्तोमेन) गुणानुवाद से और (पितॄणां च) पालन करने वाले ज्ञानी गुरु-

५३—०न्वाहुयामहे ०इति काण्व०।

जनों के (मन्मभि·) ज्ञानसाधन, प्रमाणों या मनन करने योग्य मन्तव्यों द्वारा हम लोग (मन) मन को, अपने ज्ञान और संकल्प विकल्प करने वाले अन्त करण की शक्ति को (आह्वामहे) बढ़ावें। बड़े पुरुषों के जीवनो और अनुभवो और उनके युक्ति परम्परा और ज्ञानमय उपदेशों से हम अपने ज्ञान को बढ़ावें ॥ शत० २ । ६ । १ । ३९ ॥

आ न ऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ ५४ ॥

बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । विराड् गायत्री । षड्ज स्वरः ॥

भा०—(न) हमें (पुन) वार २ (क्रत्वे) उत्तम विद्या और उत्तम कर्म, अनुभूत संस्कार को पुन. स्मरण के लिये और (ज्योक् च) चिरकाल तक (जीवसे) जीवन धारण करने के लिये और (सूर्यम्) सबके प्रेरक सूर्य के समान ज्योतिर्मय परमेश्वर के (दृशे) देखने के लिये (मन.) मन; शक्ति या ज्ञानशक्ति (आ एतु) प्राप्त हो ॥ शत० २ । ६ । १ । ३९ ॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रातꣳ सचेमहि ॥ ५५ ॥

बन्धुर्ऋषिः । मनो देवता । निचृद् गायत्री । षड्ज स्वर· ॥

भा०—हे (पितर) पालक पूजनीय पुरुषो ! (दैव्य जन) देवों, विद्वानो में सुशिक्षित या देव परमेश्वर मे निष्ठ आचार्य या देव, ईश्वरीय दिव्य शक्तियो, ईश्वर प्रदत्त आध्यात्म प्राणों का वशीकर्त्ता, विज्ञ (जन.) जन (न.) हमे (पुनः) पुन' २ (मन) ज्ञान (ददातु) प्रदान करे। हम लोग (जीवं) जीवन और (व्रातम्) उत्तम व्रतों, कर्मों को (सचेमहि) प्राप्त हों। अर्थात् राज्य के पालक लोगों के प्रबन्ध से विद्वान् पुरुषों से हम ज्ञान प्राप्त करें, दीर्घ जीवन जीवे और सत्कर्म करें ॥ शत० २ । ६ । १ । ३९ ॥

वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥ ५६ ॥

वन्धुर्ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

भा०—हे (सोम) सबके प्रेरक राजन् ! परमेश्वर ! (वयम्) हम (तव) तेरे (व्रते) बनाये शासन कर्म में वर्त्तमान रह कर और (तनूषु) अपने शरीरों और आत्माओं में (तव) तेरे दिये (मनः) ज्ञान को (बिभ्रतः) धारण करते हुए (प्रजावन्तः) प्रजा पुत्र आदि से युक्त होकर (सचेमहि) सुख प्राप्त करें ।

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा ।
एष ते रुद्र भाग ऽआखुस्ते पशुः ॥ ५७ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । निचृदनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्ट जनों के रुलाने हारे राजन् ! (ते एषः भागः) तेरा यह सेवन करने योग्य अंश है । (तं) उसको (स्वस्रा) अपनी भगिनी, सेना और (अम्बिकया) माता, पृथिवी के साथ (जुषस्व) स्वीकार कर । (स्वाहा) यह हमारा उत्तम त्याग है । हे (रुद्र) विद्वन् ! राजन् ! (ते) तेरा (एषः) यह (भागः) सेवन करने योग्य अंश है । (आखुः) भूमि को चारों ओर धातुओं, ओषधियों के खोदने वाले खनक लोग (ते) तेरे निमित्त नाना पदार्थों के (पशुः) देखने वाले हैं । वे तेरे लिये अभिमत लोह आदि धातु और ओषधि आदि पदार्थ प्राप्त कराते हैं । अथवा हे रुद्र ! विद्वन् ! (एष ते भागः) यह तेरा सेवन करने योग्य भाग है । (स्वस्रा अम्बिकया) उत्तम विवेककारिणी वेदवाणी से उसका विवेक करके (जुषस्व) सेवन करो । (ते पशु आखुः) तेरा दर्शनकारी चित्त ही सबको चारों ओर खनन करने हारा है, वह तेरा पशु है । वह तुझे सर्वत्र पहुं-

५७—वन्धुर्ऋषि । द० ।

चाने वाला साधन है । अध्यात्म में – हे रुद्र ! प्राण ! यह अन्न तेरा भाग है । इसे विवेककारिणी वाणी के साथ भोग कर । चारों तरफ व्याप्त वायु या प्राण ही तेरा पशु, तेरे वाहन के समान है ॥ शत० २ । ६ । २ । १० ॥

अवं रुद्रमदीमह्यवं देवंत्र्यम्बकम् । यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । विराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने वाले (त्रि-अम्बकम्) तीनों कालों में ज्ञानमय, वेद वाणी से तीन रूप अथवा उत्साह, प्रज्ञा, नीति आदि तीन शक्तियों से युक्त (देवम्) राजा से (अदीमहि) अपने समस्त कष्टों का अन्त करवावें । (यथा) जिससे वह (नः) हमें (वस्यसः) अपने राष्ट्र का सबसे उत्तम वासी, (करत्) बनावे और (यथा) जिससे वह (नः) हमें (श्रेयसः) सबसे श्रेष्ठ पदाधिकारी (करत्) बनावे और (यथा) जिससे वह (नः) हमें (वि-अवसाययात्) उत्तम व्यवसाय वाला, दृढ निश्चयी, कर्म में सफल यत्नवान् बनावे ॥ शत० २।६।२।११॥

ईश्वर पक्ष में—हम उत्पत्ति, स्थिति, तप आदि तीन शक्तियों से युक्त ईश्वर से अपने दुःख दूर करावें, वह हमें सर्वश्रेष्ठ बनावे ॥ शत० २ । ६ । २ । ११ ॥

**भेषजमसि भेषजङ्गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् ।
सुखम्मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥**

प्रजापतिर्ऋषिः । रुद्रो देवता । स्वराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (रुद्र) रुद्र ! तू (भेषजम् असि) समस्त रोगों को दूर करने में समर्थ है । अतः (गवे) गौओं (अश्वाय) घोड़ों और (पुरुषाय)

५८—[५८, ५९] बन्धुर्ऋषिः । द० ।

५९—'००सुगां मेषाय०' इति काण्व० ।

पुरुषों के लिये भी तू (भेषजम्) उनके रोगों का नाशक है। तू ही (मेषाय) मेष, मेढ़ा पुरुष और (मेष्यै) मेढ़ी या स्त्री के लिये भी (सुखम्) सुखकारी है। अध्यात्म मे गौ-ज्ञानेन्द्रिय। अश्व-कर्मेन्द्रिय। पुरुष-देह। मेष-आत्मा। मेषी-चितिशक्ति। इन सबके कष्टों का वारक, वह रुद्र प्राण और प्राणों का प्राण परमेश्वर है॥ शत० २। ६। २। १२॥

त्र्य॑म्बकं यजामहे सुग॒न्धिं पु॑ष्टि॒वर्ध॑नम्।
उ॒र्वा॒रु॒कमि॑व॒ बन्ध॑नान्मृ॒त्योर्मु॑क्षीय॒ मामृता॑त्।
त्र्य॑म्बकं यजामहे सुग॒न्धिं प॑ति॒वेद॑नम्।
उ॒र्वा॒रु॒कमि॑व॒ बन्ध॑नादि॒तो मु॑क्षीय॒ मामुत॑: ॥ ६० ॥

वसिष्ठ ऋषि। रुद्रो देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः॥

भा०—(त्रि-अम्बकम्) तीन शक्तियों से सम्पन्न (सुगन्धिम्) उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाले (पुष्टिवर्धनम्) प्रजा के पोषण कार्य को बढ़ाने वाले राजा का हम (यजामहे) सत्संग करें, साथ दें, उसका आदर करें। जिससे मैं प्रजाजन (मृत्यो. बन्धनात्) मृत्यु के बन्धन से (उर्वारुकम् इव) लता के बन्धन से पके खरबूजे के समान (मुक्षीय) स्वयं मुक्त रहूं, (अमृतात् मा) और अमृत अर्थात् जीवन से मुक्त न होऊं। इसी प्रकार (सुगन्धिम्) उत्तम मार्ग मे प्रेरणा करने वाले (पतिवेदनम्) पालक पति को प्राप्त कराने वाले (त्र्यम्बकम्) वेदत्रयी रूप ज्ञान से युक्त राजा का (यजामहे) हम आदर करते हैं। जिससे मै (उर्वारुकम् इव) लताबन्धन से खरबूजे के समान (इतः बन्धनात्) इस बन्धन से (मुक्षीय) मुक्त हो जाऊं। (मा अमुत.) उस परमार्थिक सम्बन्ध से न टूटूं। ईश्वर पक्ष मे—शक्तित्रय से युक्त परमेश्वर की हम उपासना करें जिससे मै मृत्यु के बन्धन से मुक्त होऊं और अमृत अर्थात् मोक्ष से दूर न होऊं। परम पालक को प्राप्त कराने वाले इस ईश्वर की पूजा करें जिससे हम इस देह बन्धन से छूटें, उस परम मोक्ष से वञ्चित न रहें। स्त्रियें भी प्रार्थना करती हैं--उत्तम पति प्राप्त कराने वाले

परमेश्वर की हम उपासना करते हैं कि इस पितृ-बन्धन से छूटें और उस पतिबन्धन से वियुक्त न हों॥ शत० २ । ६ । २ । १२ । १४ ॥

एतत्ते॑ रुद्रावसं तेन॑ प॒रो मूज॑व॒तोऽती॑हि । अव॑ततधन्वा॒ पिना॑कावसः॒ कृत्ति॑वासा॒ऽअहि॑ᳪसन्नः शि॒वोऽती॑हि ॥ ६१ ॥

वशिष्ठ ऋषि. । रुद्रो देवता । भुरिगास्तारपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वर ॥

भा०—हे (रुद्र) शत्रुओं के रुलाने वाले शूरवीर ! (ते) तेरा (एतत्) यह (अवसम्) रक्षण सामर्थ्य है, (तेन) उससे (पर.) उत्तम सामर्थ्यवान् होकर (मूजवतः) घास, वन आदि वाले महा पर्वतों को भी (अतिइहि) पार करने में समर्थ है । तू (अवतत-धन्वा) धनुष कसे, (पिनाकावसः) शत्रुओं को दमन करने में समर्थ बल से युक्त होकर (कृत्तिवासाः) चर्म के समान आच्छादन वस्त्र धारण किये हुए (नः) हमें (अहिंसन्) न विनाश करता हुआ (शिवः) सुखपूर्वक (अतीहि) गुजर जा ॥ शत० २ । ६ । २ । १७ ॥

त्र्या॒यु॒षं ज॒मद॑ग्नेः क॒श्यप॑स्य त्र्यायु॒षम् ।
यद्दे॒वेषु॑ त्र्यायु॒षं तन्नो॑ऽअस्तु त्र्यायु॒षम् ॥ ६२ ॥

नारायण ऋषि । अग्निर्देवता । उष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—(जमदग्नेः) नित्य प्रज्वलित, तीव्र जाठर अग्नि से युक्त या देदीप्यमान चक्षु वाले पुरुष को जो (त्र्यायुषम्) तिगुणी आयु प्राप्त होती है और (कश्यपस्य) कश्य अर्थात् ज्ञान के पालक पुरुष को जो (त्रि-आयुषम्) त्रिगुण आयु प्राप्त होती है (यत्) और जो (देवेषु) देव, विद्वान्

६१—'एतेनरुद्रावसेन परो०' इति काण्व० । अत्र परमन्तु काण्व० अधिकम् परिशिष्टे प्रष्टव्याम् ॥

६२—रुद्रो देवता । द० । कश्यपस्य त्र्यायुष जमदग्ने०, यद्देवानां० तन्मे० इति काण्व० ॥

पुरुषों मे (त्रि-आयुषम्) त्रिगुण आयु है (तत्) वह (त्रि-आयुषम्) त्रिगुण आयु (नः अस्तु) हमें भी प्राप्त हो ॥

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिंसीः। निर्वर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ॥ ६३ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । क्षुरो देवता । भुरिग् जगती । निषादः ॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलानेहारे राजन् ! तू राष्ट्र के लिये (शिवः नाम असि) मङ्गलकारक, कल्याणस्वरूप है, (स्वधितिः) स्वयं अपने आपको धारण करने की शक्ति या खड्ग या वज्र (ते पिता) तुझे उत्पन्न करने वाला, तेरा पालक, 'पिता' है । (ते नमः अस्तु) तुझे हमारा आदरपूर्वक नमस्कार हो । (मा मा हिंसी.) मुझ, तेरे अधीन प्रजाजन को मत मार । मैं (आयुषे) दीर्घ आयु को प्राप्त करने के लिये (अन्नाद्याय) अन्न आदि भोग्य पदार्थ की भोग शक्ति की प्राप्ति के लिये, (प्रजननाय) उत्कृष्ट सन्तान उत्पन्न करने के लिये, (रायः पोषाय) धन की वृद्धि के लिये, (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम प्रजा को प्राप्त करने के लिये, (सुवीर्याय) और उत्तम बल वीर्य के लाभ के लिये, तुझ रोदनकारी तीक्ष्ण स्वभाव के उग्र पुरुष को अपने ऊपर आघात करने के कार्य से (निवर्त्तयामि) निवृत्त करता हूं, रोकता हूं । अर्थात् राजा को प्रजा के आयु, सम्पत्ति, अन्न, धन, पुष्टि, प्रजा और वीर्य की वृद्धि के लिये उनके नाशक कार्यों से निवृत्त रहना चाहिये । वह प्रजा को न मारे, प्रजा उसका आदर करे, वह प्रजा के लिये कल्याणकारी हो ॥

६३—नारायण ऋषिः । रुद्रो देवता । द० । अस्य स्थानेऽन्यन्मन्त्रद्वय काण्व० परिशिष्टे द्रष्टव्यम् ॥

परमेश्वर के पक्ष में—ईश्वर 'शिव' है, मङ्गलमय है। वह अविनाशी और दुःखहन्ता होने से 'स्वधिति' है। हे पुरुष! वह तेरा पिता है। उसको नमस्कार है। वह हमें नाश न करे। आयु आदि के लिये मैं उसके आश्रय होकर सब कष्टों को दूर करूं।

॥ इति तृतीयोऽध्यायः ॥

[तत्र त्रिषष्टिर्ऋचः]

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालङ्कारविरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

१—२७ प्रजापतिर्ऋषिः ॥

॥ ओ३म् ॥ एदमगन्म देवयजनम्पृथिव्या यत्र देवासोऽअजुषन्त विश्वे। ऋक्सामाभ्याᳬ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम। इमा आपः शमु मे सन्तु देवीः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬ हिᳬसीः ॥ १ ॥

प्रजापतिर्ऋषि। देवयजन प्राय ओषधि क्षुरश्च देवता[1]। विराड् ब्राह्मी जगती, त्र्यवसाना अत्यष्टिर्वा छन्द.। निषाद स्वरः ॥

भा०—हम (पृथिव्या.) पृथिवी के बीच (इह) इस प्रत्यक्ष (देवयजनम्) विद्वान् ब्राह्मणों के यज्ञ करने और राजाओं के शासन कर्म करने के स्थान पर (आ अगन्म) प्राप्त हों। (यत्र) जहा (विश्वे देवासः) समस्त देव, विद्वान् ब्राह्मण और राजा लोग (अजुषन्त) आकर बसें। वहां (ऋक्-सामाभ्याम्) ऋक्, विज्ञानमय वेदमन्त्र और साम गायन मय सामगान दोनों उपायों से और (यजुर्भिः) परस्पर संघ बनाने के विधानरूप यजुर्मन्त्रों से (संतरन्त.) समस्त बाधाओं को पार करते हुए (राय.पोषेण) धन की वृद्धि अर्थात् अत्यन्त अधिक ऐश्वर्य और (इषा) प्रचुर अन्न प्राप्त करके (सम् मदेम) हम सब आनन्दित और सन्तुष्ट होकर रहें। (इमाः आपः) ये दिव्य गुणवाले जल एवं आप्त पुरुष (मे शम् उ सन्तु) मेरे लिये शान्तिदायक हों हे (ओषधे) ओषधे ! रोगनिवारक ओषधे ! या दोषों से रक्षा करने में समर्थ ! जलों के भीतर या उनसे उत्पन्न ओषधि के समान तीव्र स्वभाव के राजन् ! तू हमें (त्रायस्व) रक्षा कर। हे (स्वधिते) स्वधिते ! स्व=अपने बल से राष्ट्र

१—अत परमग्निष्टोमो महीद्यौः० [अ० ८ । ३२] पर्यन्तम्।

को धारण करने में समर्थ वज्रमय या वज्र के समान क्षत्रबल से सम्पन्न ! शस्त्रबल से युक्त राजन् ! (एनं मा हिंसी.) इस मुक्त प्रजाजन को या राष्ट्र को मत विनाश कर ॥ शत० का० ३ । १ । १ । ११, १२-१७ ॥

आपो॑ अ॒स्मान्मा॒तर॑: शुन्धयन्तु घृ॒तेन॑ नो घृत॒प्व॑: पुनन्तु । विश्व॑ꣳ हि रि॒प्रम्प्र॒वह॑न्ति दे॒वीः । उदिदा॑भ्यः शुचि॒रापू॑तऽएमि । दी॒क्षात॒पसो॑स्त॒नूर॑सि॒ तान्त्वा॑ शि॒वाꣳ श॒ग्माम्परि॑दधे भ॒द्रं वर्ण॒म्पुष्य॑न् ॥ २ ॥

आपो वासश्च देवताः । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । अत्यष्टिर्वा छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

भा०—(अस्मान्) हम (आप.) जलों के समान स्वच्छ (मातरः) ज्ञान करने हारे या माता के समान पालन करने वाले आप्तजन (शुन्धयन्तु) शुद्ध करें, जैसे जलधाराएं शरीर को शुद्ध करती हैं और माताएं अपने स्नेह और उपकार से हृदय के पापको नष्ट करती हैं वैसे ही आप्त ज्ञानी पुरुष हमें आचार में पवित्र करें । वे (घृतव.) घृत, दीप्ति या तेजोमय अंश से पवित्र करने वाले आप्त जन (न.) हमें अपने (घृतेन) घृत से जिस प्रकार शरीर के विष नाश हो जाते हैं उसी प्रकार (पुनन्तु) पवित्र करें । (देवी·) दिव्य गुणवाली माताओं, जल-धाराओं, नदियों के समान और देवियों के समान आप्त जन भी (विश्वम् रिप्रम्) समस्त पाप को (हि) भी (प्रवहन्ति) धो बहाते हैं । (आभ्यः इत्) इनसे ही (आपूत) सब प्रकार से पवित्र होकर मैं (उत् एमि) उत्कृष्ट पदको प्राप्त होऊं । जैसे जलों से स्नान करके मनुष्य शुद्ध वस्त्र पहनता है, वैसे ही आप्त-जनों से अपने पाप से मुक्त होकर अपने शरीर और आत्मा को स्वच्छ कर लेता है । हे वास. ! वस्त्र के समान आच्छादक शरीर ! आत्मा के वासस्थान ! तू (दीक्षातपसोः) दीक्षा अर्थात् सत्पथ पर दृढ़ता से रहने के उत्तम व्रतधारण और तपस्=तपस्या का बना (तनूः असि)

शरीर है । (तां) उस (त्वा) तुझको (शिवाम्) कल्याणकारिणी (शग्माम्) सुखदायिनी, आरोग्य पवित्र को मैं (भद्रं वर्णं पुष्यन्) सुखकारी, उत्तम वर्ण को, उत्कृष्ट जीवन स्थिति को पुष्ट करता हुआ (परि दधे) धारण करूं । स्नान के बाद पुरुष जैसे दीक्षा के निमित्त विशेष स्वच्छ वस्त्र पहने उसी प्रकार दीक्षा और तप से शरीर को शुद्ध करके अपने जीवन को उच्च करे और ज्ञान की नदी रूप आप्तजनों के उपदेशों में स्नान करें ॥

राजा के पक्ष में--आप्त पुरुष हमारे माता के समान पालक अपने तेज से हमें पापों से बचावे । मैं राजा उन आप्तजनों द्वारा शुद्ध पवित्र होकर उदय को प्राप्त होऊं । इस तप से प्राप्त पृथिवी को अपने शरीर के समान धारण करूं और उत्तम वर्ण को पुष्ट करूं ॥ शत० ३ । १ । २ । १०-२० ॥

म॒हीना॒म्पयो॑ऽसि वर्च्चो॒दाऽअ॑सि॒ वर्च्चो॑ मे देहि ।
वृ॒त्रस्या॑सि क॒नीन॑कश्चक्षु॒र्दाऽअ॑सि॒ चक्षु॑र्मे देहि ॥ ३ ॥

मेघो वा नवनीतमञ्जन च देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—मेघ या नवनीत, घृत या आदित्य के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य का वर्णन करते हैं । (महीनाम् पय असिः) हे सूर्य तू ! (महीनां) पृथिवियों पर (पय) जल बरसने का कारण है । अथवा, हे मेघ ! तू पृथिवी पर जल बरसाता है । हे नवनीत तू गौओं के दूध से उत्पन्न है । हे राजन् ! तू (महीनां) पृथिवीवासिनी प्रजाओं का (पयः असि) पुष्टिकारक सार भाग है । हे राजन् ! तू (वर्चोदाः असि) वर्च., तेज का प्रदान करने हारा है (मे वर्चः देहि) मुझे वर्चस्, तेजोबल प्रदान कर । तू (वृत्रस्य) राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को भी (कनीनकः) आंख में पुतली के समान देखने वाला है । तू (चक्षुर्दा. असि) चक्षु अर्थात् आंख का देने वाला है । (मे चक्षुः देहि) मुझे चक्षु प्रदान कर ॥

३—मेघो वा देवता । द० ।'०वृत्रस्य कनीनकासि०' इति काण्व० ।

मेघ पक्ष में—जिस प्रकार सूर्य मेघ को भी अपने तेज से छिन्न भिन्न कर देता है। उसी प्रकार राजा शत्रु को छिन्न भिन्न कर उसकी माया को खोल देता है। सूर्य चक्षु को दर्शन शक्ति देता है उसी प्रकार राजा भी प्रजा को मार्ग दिखाता है ॥

ईश्वर पक्ष में—(महीनाम्) तू महती, बड़ी बड़ी शक्तियों का (पयः) परम सार, उनका भी परम पोषक बल है। हे तेजस्वी! तू मुझ उपासक को वर्चस् प्रदान कर। तू आवरणकारी वृत्र-अज्ञान को भी अपनी ज्ञानज्योति से चमका कर नाश कर देता है सर्वद्रष्टा, सबको ज्ञानचक्षु प्रदान करता है, मुझे भी चक्षु प्रदान कर ॥

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥ ४ ॥

प्रजापतिसवितारौ परमात्मा वा देवता। निचृद् ब्राह्मी पंक्ति। पञ्चमः ॥

भा०—(चित्-पतिः) समस्त चेतनाओं, चेतन प्राणियों और समस्त विज्ञानों का पालक परमेश्वर (मा पुनातु) मुझे पवित्र करे। (सविता देवः) सबका उत्पादक उपास्य देव (अच्छिद्रेण) छिद्र रहित, अविनाशी, (पवित्रेण) निर्दोष, (पवित्रेण) परम पालक, सबको शुद्ध करने वाले अपने स्वरूप से और (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) तेजोमय किरणों से (मा) मुझे, मेरे अन्तःकरण और देह को (पुनातु) पवित्र करे। हे (पवित्रपते) पवित्र पुरुषों के पालक, शुद्धात्माओं के स्वामिन्! (पवित्रपूतस्य) पवित्रगुणों से परिपूत, शुद्ध (तस्य ते) उस तेरी कृपा से पवित्र हुआ मैं (यत्कामः) जिस कामना को करके (पुने) अपने आपको पवित्र करूं (तत्) मैं उसको (शकेयम्) पूर्ण कर सकूं ॥

आ वो देवासऽईमहे <u>वा</u>मम्प्रयत्यध्<u>व</u>रे ।
आ वो देवासऽआशिषो <u>य</u>ज्ञियासो हवामहे ॥ ५ ॥

देवा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः स्वरः ॥

भा०—हे (देवासः) देवगण, विद्वान् पुरुषो ! (प्रयति) उत्तम सुख और उत्तम फल देने वाले (अध्वरे) अविनाशी और हिंसारहित पालनात्मक शासनरूप यज्ञ में (वः) आप लोगों से (वामम्) प्राप्त करने योग्य उत्तम कार्य सम्पादन करने की (ईमहे) याचना करता हूं । हे (देवासः) विद्वान् ब्रह्मज्ञानी पुरुषो ! हे (यज्ञियासः) यज्ञ करनेहारे ! (वः) आप लोगों से (आशिषः) मन की आशाओं या इच्छाओं की (याचामहे) हम याचना करते हैं ॥

स्वाहा <u>य</u>ज्ञम्मनसः स्वाहोरोरुन्तरि॑क्षात् ।
स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬ्स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥ ६ ॥

यज्ञो देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धार स्वरः ॥

भा०—मैं प्रजापति, प्रजा का पालक (मनसः) मन से (यज्ञम्) यज्ञ का (स्वाहा) उत्तम वेदोक्त वाणी के मनन द्वारा (आरभे) यज्ञ सम्पादन करूं । (उरोः) विशाल (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (स्वाहा) उत्तम आहुति द्वारा (यज्ञम् आ रभे) यज्ञ सम्पादन करूं । (द्यावापृथिवीभ्याम्) द्यौः, ऊपर का विस्तृत आकाश और समस्त पृथिवी मण्डल दोनों से (स्वाहा) दोनों की शक्तियों को परस्पर में आदान प्रतिदान की क्रिया से (यज्ञम् आरभे) यज्ञ को सम्पादन करता हूं और मैं (वातात्) वात-वायु से, प्राण के निश्वास उछ्वास क्रिया द्वारा अथवा समुद्र से मेघों को लेकर भूमि पर उत्तम रीति से वर्षण क्रिया द्वारा (यज्ञम् आरभे) यज्ञ करता हूं ॥

६—'०रभे॥' इति काण्व० ।

दुदोह गां स यज्ञाय सस्याय मघवा दिवम् ।
सम्पद्विनिमयेनोभौ दधतुर्भुवनद्वयम् ॥ रघु० ।

अर्थात् परमेश्वर पांच यज्ञ करता है । (१) मानसयज्ञ, सबको अपने संकल्प बल से चला रहा है और वेदवाणी द्वारा सबको उपदेश करता है । (२) अन्तरिक्ष यज्ञ, उसमें नित्य मेघों का उठना और लीन होना । (३, ४) द्यावापृथिवीयज्ञ, सूर्य का जल खेंचना और पृथ्वी पर वर्षा की आहुति होना । (५) वातयज्ञ, वायु का मेघों को धारण करना, बिजुली का गिराना या प्राणापान यज्ञ । यह सब परमात्मा स्वयं करता है ।

[१]आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा । [२]आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशंभुवो द्यावापृथिवीऽउरो अन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ॥ ७ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अग्न्यब्द्यावापृथिव्यन्तरिक्षबृहस्पतयो देवताः । (१) पङ्क्तिः, पञ्चम , (२) आर्ची बृहती । मध्यम ॥

भा०—अध्यात्म यज्ञ और आधिभौतिक यज्ञ का वर्णन करते हैं । (आकूत्यै) अपने सकल्पों या अभिप्राय को प्रकट करने वाले, (प्रयुजे) इन्द्रियों को अपने ग्राह्यविषयों में और अभिप्राय को प्रकट करने के लिये मन द्वारा विवेचन पूर्वक वाणी और अन्य कार्यों में शरीर के अन्य अंगों को प्रयुक्त करने वाले (अग्नये) ज्ञानमय चेतन अग्नि अर्थात् चेतन आत्मा को (स्वाहा) अपने 'स्व' आत्मा रूप से कहो। (मेधायै) मेधा='मे-धा' अर्थात् मुझ आत्मा की धारणावती बुद्धि रूप और (मनसे) ज्ञान करने की शक्ति या संकल्प विकल्प करने वाली शक्ति रूप (अग्नये) पूर्वोक्त इन्द्रियों के नायक रूप (स्वाहा) आत्मा का ज्ञान करो । (दीक्षायै तपसे अग्नये

७—०पृथिवी उर्वन्तरिक्ष । इति काण्व० ।

स्वाहा) दीक्षा व्रत धारण करने और 'तप' अर्थात् तपस्या करने वाली शक्ति रूप (अग्नये) अग्नि का अपने आत्मा की शक्ति रूप से ज्ञान करो। (सरस्वत्यै पूष्णे अग्नये स्वाहा) सरस्वती, वाणी अर्थात् शब्दोच्चारण करने वाली शक्ति और पूषन्-शरीर को निरन्त पुष्ट करने वाली शक्ति रूप अग्नि, चेतन शक्ति को 'स्व' अपनी आत्मा जानो। अर्थात् आत्मा की ही ये निज शक्तियां हैं। आकूति प्रयोग, मेधा मनस, दीक्षा, तप, सरस्वती और पुष्टि। इनके रूप में प्रकट होने वाले अग्नि को तुम (स्वाहा) स्वयं अपने आत्मा जानो और (देवीः) दिव्य शक्तियों से युक्त (आपः) आप-जल, जो (विश्वशम्भुवः) समस्त जगत् की शान्ति को उत्पन्न करती हैं और (द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी, सूर्य और भूमि, (अन्तरिक्ष) और अन्तरिक्ष अर्थात् वायु जिस प्रकार इन सबमें विद्यमान (बृहस्पतये) उस महान् शक्ति के परिपालक परमेश्वर के लिये हम (हविषा) अग्नि में जिस प्रकार इन पञ्चभूतों की शुद्धि के लिये ओषधि आदि चरु को आहुति देते हैं, उसी प्रकार हविः-सत्य ज्ञान और प्रेम भाव से (विधेम) उपासना करें (स्वाहा) यह भी एक महान् यज्ञ है। अथवा (हविषा स्वाहा विधेम) हवि अर्थात् सत्य प्रेमभाव से स्वाहा-उत्तम स्तुति, वाणी का (विधेम) प्रयोग करें। ईश्वर की उत्तम स्तुति करें॥ शत० ३। १। ४। ९-१७॥

विश्वो॑ देवस्य॑ नेतुर्मर्त्तो॑ वुरीत स॒ख्यम् ।
विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ ८ ॥

स्वस्त्यात्रेय ऋषिः। ईश्वर सविता देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः स्वरः॥

भा०—(विश्व) समस्त (मर्त.) मनुष्य लोग (नेतुः) अपने नेता (देवस्य) ईश्वर और राजा के (सख्यम्) मित्रता को (वुरीत)

८—ईश्वरो देवता। द०।

वरें, चाहें (विश्वः) और सब (राये) धन ऐश्वर्य के प्राप्त करने लिये (इषुध्यति) वाण, शस्त्रास्त्र धारण करें और सभी (द्युम्नम्) धन को (पुष्यसे) शरीर और आत्मा की पुष्टि, बल वृद्धि के लिये (वृणीत) चाहें (स्वाहा) यही उसका उत्तम सत् उपयोग है। या उस धनको उत्तम कार्य में त्याग करें।

(विश्वो राये इषुध्यति) सभी धनकी याचना करते हैं ॥ [उव्वट-महीधर] शत० ३ । १ । ४ । १८ । २३ ॥

ऋक्सामयोः शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृचः। शर्म्मासि शर्म मे यच्छ नमस्तेऽस्तु मा मा हिᳬसीः ॥ ६ ॥

कृष्णाजिन विद्वान् वा देवता । आर्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे कृष्ण और शुक्ल विद्याओ ! क्रियात्मक और ज्ञानात्मक विद्या या कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड तुम दोनो (ऋक् सामयो) ऋग्वेद और सामवेद इन दोनों के भीतर से उत्पन्न (शिल्पे स्थः) विशेष कौशल रूप हो। (ते वाम्) तुम दोनों को मैं (आरभे) आरम्भ करता हूं। अभ्यास करता हूं। (ते) वे तुम दोनों (मा) मुझे (अस्य उदृच. यज्ञस्य) इस उत्तम ऋचाओं, वेद मन्त्र और ज्ञानों से युक्त यज्ञ के समाप्ति तक (मा पातम्) मुझे पालन करें। हे शिल्पपते ! (शर्म असि) तू शरण है। (मे शर्म यच्छ) मुझे सुख प्रदान कर, हे विद्वन् ! राजन् शिल्पस्वामिन् ! (ते नमः अस्तु) तुझे मैं आदरपूर्वक नमस्कार करता हूं। (मा) मुझको (मा हिंसीः) विनाश मत कर ॥

यज्ञ में कृष्णाजिन यज्ञ के दो अङ्गों को स्पष्ट करता है, कृष्ण और शुक्ल। इन दोनों को ऋक्, साम दोनों का शिल्प ही है। कदाचित् कर्मकाण्ड (Practicl) और ज्ञानकाण्ड (Thoritical) दो स्वरूपों को

६—[६-१५] आंगिरस ऋषि । विद्वान् देवता । द० ॥

दर्शाने के लिये पूर्व में दो शाखा भी प्रचलित हुई हों। वेद के दोनों अङ्गों से राज्य शासन रूप यज्ञ की पूर्ति के लिये प्रार्थना है। उसके संचालक पुरुष का आदर और उससे रक्षा की प्रार्थना है॥

अध्यात्म में—शुक्लगति और कृष्णगति, देवयान और पितृयाण और ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग दोनों ऋक् और साम के प्रतिपादित शिल्प=शील आचार विधान हैं। उनको हम (आ यज्ञस्य उदृचः) यज्ञ=आत्मा की ऊर्ध्वगति तक करते रहें। हे परमात्मन् ! यज्ञ ! तू सबका शरण है। तुझे नमस्कार करते हैं। तू हमें (मा हिंसीः) मत मार, हमारी रक्षा कर॥

उक्त दो गतियों के विषय में उपनिषदों में—'द्वे सृती अशृणवम्' इत्यादि वर्णन है और 'शुक्लकृष्णे गती ह्येते' इत्यादि गीता में भी स्पष्ट किया है॥

शतपथ में—इस भूमि लोक और उस द्यौलोक दोनों को सम्बोधित किया है कि वे ऋक्, साम दोनों के शिल्प अर्थात् प्रतिरूप हैं। उन दोनों के बीच में जैसे हिरण्यगर्भ सुरक्षित है, माता पिता के बीच में जैसे गर्भगत बालक सुरक्षित है उसी प्रकार जीवनयज्ञ की समाप्ति तक ऋक् साम दोनों का अभ्यास मेरी रक्षा करे। छत और फर्श के समान दोनों का गृह बना है। वही हमारा शरण है। वह शरण हमें सुख दे। हमें विनाश न करें॥ शतपथ ३।२।१।१८॥

[1]ऊर्गस्याङ्गिरस्यूर्णम्रदा ऊर्जं मयि धेहि। सोमस्य नीविरसि विष्णोः शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्याः कृषीस्कृधि। [2]उच्छ्रयस्व वनस्पत ऊर्ध्वो मा पाह्यᳬहस॒ऽआस्य यज्ञस्योदृचः॥ १०॥

आंगिरस ऋषय। यज्ञो मेखला नीवि वासः कृष्णा विषाणा दण्डश्च यज्ञो वा देवता।
(१) निचृदार्षी, निषाद, (२) साम्नी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

१०—०ऊर्जं मेयच्छ। इति काण्व०। यज्ञो देवता। द०॥

भा०—हे (आंगिरसि) अंगिरस् आदित्य या अग्नि से उत्पन्न होने वाली पृथिवी ! तू (ऊर्णम्रदा उर्ग् असि) ऊर्णा=आच्छादन, अन्धकार का नाश करने वाली, प्रकाशरूप (उर्ग् असि) बलरूप है । अथवा ऊनके समान कोमल, होकर भी बड़ी बलवती है । तू (मयि ऊर्जं धेहि) मुझ में बल या अन्नादि पदार्थ प्रदान कर । तू (सोमस्य) सर्वप्रेरक आदित्य या पर्जन्य की (नीविः) अच्छी प्रकार लाकर एकत्र करने वाली (असि) है । (विष्णो) व्यापक जल का (शर्म असि) शरण, आश्रय स्थान है और (यजमानस्य) शर्म) यज्ञ करने वाले पुरुष या इस महान् जलवृष्टि द्वारा अन्नोत्पादन करने वाले यज्ञपति का भी (शर्म) शरण या आश्रय है । (इन्द्रस्य योनिः असि) हे सूर्य के किरण ! (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यशील मेघ की तू (योनिः) उत्पत्ति स्थान है । हे पुरुष ! तू हमारे (कृषीः) खेतियों को (सुसस्याः) उत्तम सस्य से युक्त (कृधि) कर । हे (वनस्पते) वनस्पते ! सेवन करने योग्य जल आदि पदार्थों के पालक पर्जन्य । तू (उत् श्रयस्व) ऊपर आ । (ऊर्ध्वः) ऊंचा होकर (अस्यै यज्ञस्य उदृचः आ) इस यज्ञ की समाप्ति पर्यन्त (अंहसः पाहि) पाप से रक्षा कर ।

मेखला पक्ष में—हे आंगिरसि, विद्वानों की रची मेखले ! तू बलरूप है, मुझे बल दे । सोम-ब्रह्मचारी या वीर्य की रक्षिका ग्रन्थि है । विष्णु व्यापक वेद और यजमान आत्मा की शरण है । इन्द्र=आचार्य की 'योनि' उत्पादक है । हे दण्ड ! तू आ । मेरे व्रत की समाप्ति तक तू मेरी रक्षा कर ॥

शिल्पविद्या पक्ष में—हे वनस्पते विद्वन् ! जो (आंगिरसी) विद्वानों द्वारा उत्पादित (उर्णम्रदा) प्रकाशकारिणी (ऊर्क्) अन्नोत्पादक बलवती शिल्प विद्या है वह मुझे बल दे । वह (सोमस्य नीविः) नाना पदार्थों की आश्रय है । (विष्णोः) विद्वान् को सुखकारी है । ऐश्वर्यवान् होने का कारण है । उसके बल पर उत्तम सम्पन्न खेतियों को पैदा कर । हे विद्वन् !

तू स्वयं उन्नति कर। हमें पापफल दुःख से बचा। इस उत्तम यज्ञ की पूर्त्ति कर॥

[1]व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः। दैवीन्धियम्मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नो असद्वशे। [2]ये देवा मनोजाता मनोयुजो दक्षक्रतवस्तेनोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा॥ ११॥

यज्ञो धी प्राणापानौ अध्यात्मम्, अधिदवत अग्निमित्रावरुणा वादित्यो विश्वे देवा देवता'।
(१) स्वराड् ब्राह्मी, गान्धार स्वरः। (२) आर्षी उष्णिक्। ऋषभ स्वर'॥

भा०—हे पुरुषो! आप लोग (व्रतं कृणुत) व्रत करो, धर्माचरण पालन करने का दृढ़ संकल्प धारण करो। (अग्निः ब्रह्म) ब्रह्म, वेदज्ञान और वह ज्ञानमय परमेश्वर ही महान् अग्नि, मार्गप्रदर्शक, विश्वप्रकाशक, ज्ञानप्रदाता तुम्हारा अग्रणी आचार्य है। (यज्ञः अग्नि.) वही सब का पूजनीय अग्नि है। वही (यज्ञियः) सब देव पूजाओं के योग्य स्वयं (वनस्पतिः) व. न, आत्माओं जीवों का परिपालक प्रभु है। हम (दैवीम्) देव परमेश्वर की प्रदान की हुई, दिव्यगुण सम्पन्न ध्यान धारणावती, (सुमृडीकाम्) उत्तम सुख प्राप्त कराने वाली, (वर्चोधाम्) तेजोदायिनी, (यज्ञवाहसम्) यज्ञ, पूज्य परमेश्वर तक पहुंचा देने वाली (धियम्) ध्यान धारणावती योग समाधि से प्राप्त प्रज्ञा की (मनामहे) याचना करते हैं। वह (सुतीर्था) इस संसार से सुखपूर्वक तरानेहारी, भवसागर के पार पहुंचानेहारी, ब्रह्ममयी प्रज्ञा (नः) हमारे (वशे) वशमें (असत्) रहे और (ये) जो (देवाः) देव, इन्द्रियगण (मनोजाताः) मन या मननशक्ति, विषय ग्रहण करने में समर्थ और (मनोयुजः) मनके साथ

११—' व्रत कृणुत व्रत कृणुत व्रत कृणुत। अग्नि '०,' वर्चोदा विश्वधायस सु० ' इति काण्व० ॥

युक्त होकर (दक्षक्रतवः) बलपूर्वक कार्य करने और ज्ञान करने में समर्थ हो जाते हैं (ते नः अवन्तु) वे प्राण भी हमारी रक्षा करें। (ते न. पान्तु) वे हमारा पालन करें। (तेभ्यः) उनको भली प्रकार आत्मा में आहुति करें। उनको अपने भीतरी आत्मा के वश, अन्तर्मुख करलें। अथवा (ये देवा) जो विद्वान् ज्ञानी लोग (मनोजाता.) विज्ञान या मनन द्वारा सामर्थ्यवान् होकर (मनोयुज.) अपने मनको परब्रह्म विज्ञान में योग द्वारा जोड़ते हैं वे (दक्षक्रतवः) शरीर, आत्मा–बल और प्रज्ञाओं से सम्पन्न हो जाते हैं। (ते न. अवन्तु ते न. पान्तु) वे हमारी रक्षा करें, वे हमें पापों से बचावें। (तेभ्य. स्वाहा) उन ब्रह्मज्ञानी विद्वानों के लिये हम अन्न आदि का प्रदान करें, उनका आदर करें या उनसे हम उत्तम वेद-उपदेश ग्रहण करें ॥ शत० ३।२।२।१–१८॥

श्वात्राः पीता भवत यूयमापो अस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः। ता अस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः ॥ १२ ॥

आपो देवता । ब्राह्मी अनुष्टुप् । गान्धार. स्वरः ॥

भा०—हे (आप.) आप्त पुरुषो ! हे जलों के समान स्वच्छ बुद्धि-वाले आप्त पुरुषो ! जिस प्रकार जल (श्वात्रा.) अति शीघ्रगामी पान करने योग्य होते हैं उसी प्रकार आप लोग भी (श्वात्राः) प्रशस्त धन और ज्ञान से युक्त और ज्ञानरस के पान करने वाले ही (भवत) बने रहो और जिस प्रकार जल (अन्त उदरे) पेट के भीतर (सुशेवा) सुख से सेवन करने योग्य होते हैं उसी प्रकार आप लोग (अस्माकम्) हमारे बीच में (सुशेवा.) सुख से सेवा करने योग्य हैं और जिस प्रकार जल (अयक्ष्मा) यक्ष्मा, रोग रहित (अनमीवा) कष्टकर रोगों से भी रहित और (अनागस.) निष्पाप, पवित्र होकर हमें अति स्वादु प्रतीत होते हैं उसी प्रकार (ताः)

वे आप्त प्रजाजन भी (अयक्ष्माः) राज-रोगों से रहित, (अनमीवा) नीरोग, (अनागसः) निष्पाप (देवीः) दिव्यगुणों से युक्त और (ऋतावृधः) सत्यज्ञान को बढ़ाने वाले (अमृताः) अमृत, पूर्ण शतायु दीर्घजीवी होकर (अस्मभ्यम्) हमें (स्वदन्तु) सब प्रकार के सुख प्रदान करावें ॥ शत० ३ । २ । २ । १९ ॥

इ॒यं ते॑ य॒ज्ञिया॑ त॒नूर॒पो मु॑ञ्चामि॒ न प्र॒जाम्। अ॒ꣳहो॒मुचः॒ स्वाहा॑कृताः पृथि॒वीमावि॑शत पृथि॒व्या सम्भ॑व ॥ १३ ॥

लोष्ठ मूत्र आपो वा देवता । भुरिग् आर्षी पंक्तिः । पञ्चम स्वर ॥

भा०— हे पुरुष ! (इयं) यह (ते) तेरी (यज्ञिया तनू) यज्ञ के योग्य या यज्ञ अर्थात् आत्मा के निवास के योग्य होकर जिस प्रकार (अपः), प्राणों या जलों का त्याग नहीं करती प्रत्युत उनको अपने भीतर धारण करती है, उसी प्रकार मैं पुरुष भी (प्रजाम् न मुञ्चामि) प्रजा का परित्याग नहीं करता और हे आप्त पुरुषो । हे प्राणो ! जल जिस प्रकार (पृथिवीम् आविशन्ति) पृथिवी के भीतर प्रवेश कर जाते हैं उसी प्रकार तुम भी (अंहोमुच) आत्मा से उसके किये बुरे पापकर्मों को छुड़ाने वाले और (स्वाहाकृताः) वेदवाणी द्वारा उत्तम यज्ञानुष्ठान करने हारे सब शरीर में अन्नादि का आदान करने वाले प्राण जिस प्रकार पृथिवी के विकार देह में प्रविष्ट है उसी प्रकार (पृथिवीम् आविशत) पृथिवी में स्थिर गृह आदि बनाकर रहो और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर हे पुरुष ! तू (सम्भव) भली प्रकार अपनी प्रजा उत्पन्न कर ॥ शत० २ । २ । २ । २० ॥

अग्ने॒ त्वꣳसु जा॑गृहि व॒यꣳ सु म॑न्दिषीमहि।
रक्षा॑ णो॒ऽअप्र॑युच्छन् प्र॒बुधे॑ नः॒ पुन॑स्कृधि ॥ १४ ॥

अग्निर्देवता । स्वराडार्च्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (अग्ने) शत्रुसतापक अग्ने ! राजन् ! (त्वं) तू (सु) भली प्रकार (जागृहि) जाग, प्रमाद रहित रह कर पहरा दे । (वयं) हम (सु) अच्छी प्रकार निश्चिन्त होकर (मन्दिषीमहि) सोवें । (न.) हमारी (अप्रयुच्छन्) प्रमाद रहित होकर (रक्ष) रक्षा कर (पुन) और फिर हमें (प्रबुधे) जागृत दशा में (कृधि) करदे, जगादे ॥

ईश्वर पक्ष में—हे ईश्वर तू बराबर जागता है, हम अविद्या में सोते हैं। तू बेचूक हमारी रक्षा कर, हमें पुन प्रबोध, सत्य ज्ञान के लिये चैतन्य कर। प्राण के पक्ष में—हम समस्त इन्द्रियां सोती हैं, प्राण जागता है। वह हमारी रक्षा करता है, पुन. निद्रा के बाद हमें चैतन्य करता है ॥ शत० ३ । २ । २ । २२ ॥

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राण· पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रम्मऽआगन् । वैश्वानरोऽदब्धस्तनूपाऽअग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात् ॥ १५ ॥

अग्निर्देवता । भुरिग् ब्राह्मी बृहती । मध्यम स्वर ॥

भा०—शयन के बाद (मे मन.) मेरा मन (पुन. आगन्) मुझे पुन प्राप्त होता है । (पुनः मे आयु.) आयु मुझे पुन प्राप्त होता है । (पुन प्राण) प्राण मुझे पुन प्राप्त होता है । (पुन चक्षु) चक्षु मुझे फिर प्राप्त होता है । (मे श्रोत्रम् पुनः आ अगन्) मुझे श्रोत्र, कान पुन· प्राप्त होता है । (वैश्वानर) समस्त नरदेहों में प्राणों के नेतारूप से विद्यमान वैश्वानर जीवात्मा (अदब्ध) अविनाशी (तनूपा) शरीर का स्वामी (अग्नि) अग्नि-अग्रणी राजा के समान है, वह (न') हमें (अवधात्) निन्दनीय (दुरितात्) दुष्टाचरण से (पातु) बचावे । ईश्वरपक्ष में भी स्पष्ट है कि रात्रि समय में वैश्वानर परमेश्वर अविनाशी है, वह हमारे

१५—'० मागात्' इ, ० '० अग्निर्मा० ' इति काण्व० ॥

शरीरों का रक्षक 'तनूपा' है, वह हमें सब निन्दनीय पाप से बचावे। मरण के पश्चात् पुनः जीवन प्राप्ति के अवसर पर भी मन, आयु, प्राण, देह, चक्षु, श्रोत्र आदि हमें पुन प्राप्त हों और ईश्वर हमें पाप से बचावे। इसी प्रकार प्रलय काल ब्राह्मरात्रि होती है, उसमें भी जीव सुप्त दशा में रहते हैं। उसके पश्चात् पुन. ब्राह्म रात्रि के प्रारम्भ में हम जीवों को आयु आदि प्राप्त होते हैं। परमेश्वर ही सब के शरीरों को बचाता है। वह हमें पाप से बचावे॥ शत० ३।२।२।२३॥

त्वम॑ग्ने व्रत॒पाऽअ॑सि दे॒वऽआ मर्त्ये॒ष्वा। त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑ रास्वेय॑त्सोमाभूयो॒ भर दे॒वो नः॑ सवि॒ता वसो॑र्दा॒ता वस्व॑दात्॥ १६॥

वत्सऋषि। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पक्ति। पञ्चम॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने, परमेश्वर! अथवा राजन् अग्रणी! हे (देव) देव! राजन्! (त्वम्) तू (व्रतपाः) समस्त व्रतों, उत्तम कर्मों का पालक, उनको निर्विघ्न समाप्त होने में रक्षक (असि) है। तू हे देव! (सत्येषु) सत्य में और (यज्ञेषु) यज्ञों में भी (आ ईड्यः) सब प्रकार से स्तुति योग्य, वन्दनीय है। हे (सोम) सोम! सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक! (इयत् रास्व) हमें इतना अर्थात् बहुत परिमाण में प्रदान कर अथवा तू (इयत् रास्व) हमारे पास प्राप्त होकर हमें धन प्रदान कर और (भूय भर) और भी अधिक दे। (न.) हमें (वसोः दाता) वसु, जीवन और धन का देने हारा है। वही (वसु अदात्) सब प्रकार जीवनोपयोगी धनैश्वर्य (अदात्) प्रदान करे।

ए॒षा ते॑ शुक्र त॒नूरे॒तद्वर्च॒स्तया॒ सम्भ॑व॒ भ्राजं॑ गच्छ। जूर॑सि धृ॒ता मन॑सा जुष्टा॒ विष्ण॑वे॥ १७॥

हिरण्यमाज्य वाक् च, अग्निर्वा देवता। आर्ची त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः॥

१६—[१६-३६] वत्सऋषिः। द०। ऋ० ८। ११। १॥
१७—अग्निर्देवता। द०॥

भा०—हे (शुक्र) शुचिमान्, ज्योतिष्मान्, वीर्यवान् पुरुष ! (एषा ते तनू.) यह तेरा शरीर है । (एतद् वर्चः) यह तेज है । (तया सम्भव) इस देह से तू मिल कर एक होजा । (भ्राजं गच्छ) प्रकाशमान् सोम परमेश्वर या प्राण, जीवन को प्राप्त हो । हे वाणी या चितिशक्ति ! तू (जू. असि) 'जू' सबके सेवन करने योग्य, सबके प्रेम को उत्पन्न करने वाली है । तू (मनसा) मन, मनन और विज्ञान से (धृता) धारण की गई उसके वशीभूत रह कर (विष्णवे) यज्ञ सम्पादन करने या व्यापक परमात्मा के भजने में (जुष्टा) लग जाती है । जूरित्येतद् ह वा अस्या. वाच· एकं नाम । मनसा वा इयं वागृधृता मनो वा इदं पुरस्ताद्वाच इत्थं वेद, मा एतदवादीः, इत्यलग्लामिव वै वाग् वेदद् यन्मनो न स्यात् ॥ शत० ३ । २ । ४ । ११ ॥ 'जू' यह वाणी का एक नाम है । मन इस वाणी को वश रखता है । वाणी बोलने के पूर्व मन विचार करता है । ऐसा बोल, ऐसा मत बोल । यदि मन न हो तो वाणी गड़बड़ बोल जाती है ॥

महर्षि दयानन्द के विचार से—हे शुक्र ! विद्वन् ! तेरी जो यह विष्णु यज्ञ या परमेश्वर की उपासना के लिये जो यह तेरा शरीर है जो तू ने धारण किया और सेवन किया है उससे तू (जूः) वेगवान् होकर इस तेज को धारण कर । प्रकाश या तेज को धारण कर और विज्ञान से पुरुषार्थ को प्राप्त कर ॥

तस्यास्ते सुत्यसवसः प्रसुवे तुन्वो युन्त्रमंशीय स्वाहा ।
शुक्रमसि चन्द्रमस्युमृतमसि वैश्वदेवमसि ॥ १८ ॥

हिरण्यवान् विद्युत् देवता । स्वराट् आर्षी बृहती । मध्यमः ॥

१८—विद्युत् देवता । द० । '०तनु यन्त्रम० । शुक्रमसि चन्द्रमस्य०' इति काण्व० ॥

भा०—हे वाणि ! या हे चितिशक्ते ! चेतने ! (सत्यसवसः) सत्य को उत्पन्न करने वाली, सत्यभाषिणी वा सत्य–सत् आत्मा से उत्पन्न होने वाले या आत्मा को अपना मुख्य उत्पत्तिस्थान रखने वाली (ते तस्याः) उस तेरे (प्रसवे) उत्पादित ऐश्वर्य में (तन्वः) शरीर के (यन्त्रम्) यन्त्र को (अशीय) प्राप्त करूं। अथवा (सत्यसवसः प्रसवे) सत्यैश्वर्यवान् परमेश्वर के बनाये इस संसार में (तस्याः ते) हे विद्युत् या वाणि तेरे (तन्वः) विस्तृत शक्ति को (यन्त्रम्) नियमन करने वाले साधन या विशेष उपकरण को मैं प्राप्त करूं, (स्वाहा) और उसका उत्तम रीति से उपयोग करूं। वाणी और चेतना शक्ति के नियमनकारी बलरूप आत्मा का स्वरूप बतलाते हैं। शरीर रूप यन्त्र के नियामक बल ! वीर्य ! आत्मन् अथवा विद्युत् आदि यन्त्र के नियामक शक्ते ! तू (शुक्रम् असि) शुक्र, अति दीप्तिमान् है। (चन्द्रम् असि) आह्लादक है। (अमृतम् असि) तू अविनाशी है। (वैश्वदेवम् असि) समस्त दिव्य पदार्थों में सूक्ष्म रूप से विद्यमान है॥ शत० ३ । २ । ४ । १२–१५ ॥

चिद॑सि म॒नासि॒ धीर॑सि॒ दक्षि॑णासि क्ष॒त्रिया॑सि य॒ज्ञिया॒स्यदि॑तिरस्युभय॒तःशी॒र्ष्णी। सा नः॑ सु॒प्राची॑ सु॒प्रती॒च्येधि मि॒त्रस्त्वा॑ प॒दि ब॑ध्नीतां पू॒षाध्व॑नस्पा॒त्विन्द्रा॒याध्य॑क्षाय ॥ १६ ॥

वाग् विद्युद्रूप सोमक्रयणी च देवता । भुरिग् ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

भा०—हे वाक्शक्ते ! तू (चित् असि) शरीर की चेतना है। (मनः असि) तू मननकारिणी, संकल्प विकल्प करने वाली, पदार्थों का ज्ञान करने वाली है। (धी असि) तू ध्यान करने वाली, ज्ञान के धारण करने वाली है। (दक्षिणा असि) बलकारिणी शक्ति है, यज्ञ में दक्षिणा के समान शरीर में बल का प्रदान करने वाली है। (क्षत्रिया असि) राष्ट्र में जिस प्रकार

१६—(उ०) 'सुप्रतीची भव' इति काण्व० ॥

प्राणशक्ति है, उस प्रकार शरीर में चेतना है। (यज्ञिया असि) यज्ञ में जिस प्रकार दीप्तिमान अग्नि उपास्यदेव है, उसी प्रकार शरीर में समस्त प्राणों की उपास्य शक्ति यह चेतना है। (अदिति असि) पृथ्वी जिस प्रकार अखण्ड भाव से सबका आश्रय है, उस प्रकार यह भी शरीर में अखण्ड अविनाशी है जो शरीर के नाश होने पर भी नाश नहीं होती। (उभयतः शीर्ष्णी) जिस प्रकार प्रसव काल में गौ के गर्भ से बच्चा आधा बाहर आने पर आगे और पीछे दोनों ओर दो सिर वाली होजाने से वह 'उभयतः शीर्ष्णी' कहाती है उसी प्रकार यह चेतना भी ज्ञान प्रसव-काल में उभयतः शीर्ष्णी है। उसका एक अंश बाहर पदार्थ का ज्ञान करता है और दूसरा अंश भीतर मनन करता है। या बाह्य पदार्थों और भीतरी सुख दुःख आदि दोनों का ज्ञान करती या बाह्य चक्षु इन्द्रिय आदि उसके एक मुख हैं और भीतरी इन्द्रिय मन उसका दूसरा मुख है। (सा) वह तू हे चितिशक्ते (नः) हमें (सुप्राची) उत्तम रीति से आगे आये पदार्थों पर जाने और उसका ग्रहण करने वाली और (सु प्रतीची) उत्तम रीति से प्रत्येक, भीतरी आत्मतत्व तक पहुंचने वाली (एधि) है। (मित्रः), मित्र-तेरा प्रेमी, स्नेही प्राण जैसे गाय को पैरों से बांधते हैं, उसी प्रकार (त्वां) तुझे (पदि) ज्ञान साधन में बांधे अथवा (मित्रः) स्नेह आत्मा तुझे (पदि) ज्ञेय, ध्येय पदार्थ या ज्ञानमय ब्रह्म में (बध्नीताम्) लगावे और (पूषा) पुष्टिकारक प्राण ही (इन्द्राय अध्यक्षाय) उसके ऊपर अध्यक्ष रूप से विद्यमान इन्द्र-आत्मा के स्वरूप की प्राप्ति या ज्ञान करने के लिये (अध्वनः) उस तक पहुंचने वाले योग या ज्ञान मार्ग से उसकी (पातु) रक्षा करे। अर्थात् प्राणायाम के बल पर उस चितिशक्ति के ध्येय विषय पर बांधे और उसको विचलित होने से बचावे।

विद्युत् पक्षमें—वह (चित्) आकर्षण शक्ति से पदार्थों को मिलाने वाली (मनः असि) स्तब्ध करने वाली (दक्षिणा) बलवती, (क्षत्रिया)

आघात करने वाली (यज्ञिया) परस्पर मिलाने वाली, रसायन योग उत्पन्न करने वाली, (उभयतः शीर्ष्णी) Positive and Negative धन और ऋण नामक दो सिरों वाली, वह (सुप्राची) उत्तम प्रकाश करने वाली, (सुप्रतीची) समान जाति की विद्युत् से परे हटने वाली, (मित्रः) रसायन भोगों का मेलक पुरुष उसे (पदि) आश्रयस्थान, विद्युत् घट आदि में बद्ध करे। (पूषा) पोषक, उसकी शक्ति को बढ़ाने वाला, मार्ग में विलीन होने से दुर्वाहक लेपों द्वारा सुरक्षित रक्खे। जिससे (अध्यक्षाय इन्द्राय) मुख्य ऐश्वर्यवान् राजा के या बलकारी यन्त्र के समस्त कार्य सिद्ध हों। राजा की राष्ट्रशक्ति भी, संचयकारिणी, स्तम्भनकारिणी, राष्ट्रधारिणी, बलवती क्षात्रबल से युक्त है, मित्र राजा उसकी व्यवस्था करें पूषा अधिकारी, इन्द्र राजा के लिये उसकी मार्गों पर रक्षा करे। शत्रुगण विशेष मार्गों से आक्रमण न करें॥ शत० ३। २। ४। १५-१०॥

[1]अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योनु सखा सयूथ्यः। [2]सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वावर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि॥ २०॥

सोमक्रयणीवाग्विद्युत्च देवते। (१) साम्नी जगती। निषाद स्वर।
(२) भुरिगार्षी उष्णिक्, ऋषभ स्वर॥

भा०—हे चितिशक्ते या वाक्शक्ते! (त्वा) तुझे (माता) पदार्थों का प्रमाणों द्वारा ज्ञान करने वाला पुरुष या आत्मा (अनुमन्यताम्) अपने अनुकूल ज्ञान कार्य में प्रेरित करे (पिता) तेरा पालक पिता (भ्राता) तेरा पोषक भ्राता (सगर्भ्यः) एक ही शरीर रूप गर्भ में विद्यमान (सयूथ्या) इन्द्रियों और अमुख्य प्राणों के यूथ में विद्यमान (सखा) तेरे ही समान ज्ञान करने में सामर्थ, प्राण, मन और अन्तःकरण सब (अनु, अनु, अनु) तेरे अनुकूल होकर, यथार्थ रूपसे ठीक २ (मन्यताम्) ज्ञान करें। हे (देवि) प्रकाशमयि देवि! सब इन्द्रियों को चेतनांश और प्राण

प्रदान करने वाली ! तू (इन्द्राय) इन्द्रियों के प्रवर्तक आत्मा के विशेष सुख के लिये (सोमम्) सबके प्रेरक (देवम्) परम प्रकाशमय उपास्यदेव परमेश्वर को (अच्छेहि) प्राप्त हो। (त्वा) तुझको (रुद्रः) सबको रुलाने वाला प्राण (त्वा) तुझको प्रेरित करे और हे जीव ! तू (सोमसखा) सोम उस सर्वोत्पादक परमेश्वर का मित्र होकर या उसके समान शुद्ध बुद्ध मुक्त आनन्दमय होकर (पुनः) फिर मुक्ति काल समाप्त होने पर (एहि) इस संसार में आ ॥

अथवा—उपासक मोक्षाभिलाषी के लिये कहा गया है कि-ब्रह्म के मार्ग में जाने के लिये मुझे तेरी माता, तेरे पिता, तेरे (सगर्भ्यः भ्राता) सहोदर भाई, एक श्रेणी के मित्र अनुमति दें और हे देवि ब्रह्मविद्ये ! तू (इन्द्राय सोम देवमच्छा इति) परमैश्वर्य प्राप्ति के लिये देव सोम विद्वान् को प्राप्त हो। (रुद्रः त्वा वर्तयतु) हे देवि विद्ये ! तुझको रुद्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी ग्रहण करे। हे पुरुष ! या हे विद्ये ! तू (सोमसखा) ईश्वर की सहवर्ती होकर हमें पुनः प्राप्त हो ॥

विद्युत् पक्ष में—माता उत्पादक कला, पिता पालक यन्त्र, भ्राता पोषक या धारक यन्त्र जो तुझे अपने गर्भ में ग्रहण कर सके, (सयूथ्यः सखा) समान रूप से तुझे अपने से पृथक् करने वाला आकाश भीतरी पोलयुक्त पात्र में सब अनुकूल रूप में तेरा स्तम्भन करें ॥

वस्व्यस्यदितिरस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि ।
बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके ॥ २१ ॥

वत्स ऋषिः । वाग् विद्युत् सोमक्रमणी गौर्वा देवता । विराडार्षी बृहती ।
मध्यम स्वर ॥

भा०—हे पृथिवि ! (वस्वी असि) तू वस्वी, वसु-शरीर में वास करने वाले जीवों को बसाने वाली (असि) है। (अदितिः असि) तू अखण्ड

ऐश्वर्य वाली, नित्य अविनाशिनी है । तू (आदित्यासि) आदित्य आदान करने वाली, सबको अपने में धारण करने वाली, आदित्यों द्वारा सेवित है । (रुद्रा असि) सबको रुलाने वाली प्राणों के समान रोदनकारी, दुष्ट पीड़क, शासकों द्वारा सेवित है । (चन्द्रा असि) सब को आह्लादकारिणी है । (त्वा) तुझे (बृहस्पतिः) विद्वान् योगी (सुम्ने) उत्तम ब्रह्ममय आनन्द में (रम्णातु) रमावे, प्रेरित करे । (रुद्रः) मुख्य प्राण, जीवात्मा (वसुभिः) अन्य प्राणों सहित उनके साधना बल से तुझको प्राप्त करना चाहता है ॥

ब्रह्मशक्ति पक्ष में—वह सर्व वसु=लोको में व्यापक, अखण्ड प्रकाश-मयी, सर्व रोदनकारी या वेद द्वारा उपदेष्ट्री, सर्वाह्लादिका है ॥ वह परमेश्वर बृहस्पति उसे उत्तम आनन्दरूप में या ज्ञानरूप मे प्रेरित्त करता है । वही रुद्र ईश्वर उसको समस्त वसुओं, जीवों सहित अपनाता है, चाहता है ॥

विद्युत् पक्ष में—वस्वी, ऐश्वर्यवती, अविनाशिनी, प्रकाशवती, रुद्रा, शब्दकारिणी, आह्लादिका है । विद्वान् उसके सुख से किये जाने के कार्यों में या उत्तमरूप से पदार्थों के स्तम्भन कार्यों में लगावे । रुद्र, विज्ञानोपदेष्टा वसु, निवासियों सहित उसको चाहते हैं ॥

राष्ट्रशक्ति पक्ष में—जनों को बसानेवाली, अखण्ड शक्ति सबकी वशयित्री, दुष्टों को रुलाने वाली, सर्वाह्लादिनी है । राजा सुखमय राष्ट्र में रमण करे । वह रुद्र राजा वसुओं सहित उस शक्ति को प्राप्त करे । इसी रूप से ये विशेषण पृथ्वी के भी हैं । सोमयोग में सोमक्रमणी गौ के लिये यह मन्त्र है । यहां सोम=राजा और गौ पृथिवी ॥

आ॒दि॒त्यास्त्वा मू॒र्द्धन्नाजि॑घर्म्मि देव॒यज॑ने पृथि॒व्याऽइ॒डाया॑स्प॒दम॑सि

घृतवत् स्वाहा । अस्मे रमस्वास्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः ॥ २२ ॥

आन्यवाग्विद्युतौ लिंगोक्ता गौर्वा देवता । ब्राह्मीपंक्ति । पञ्चम स्वर ॥

भा०—हे विद्वन् ! बलवन् बाहुपराक्रमशालिन् पुरुष ! (त्वा) तुझको (पृथिव्याः) पृथिवी के (देवयजने) देवों, विद्वानों के एकत्र होने के स्थान रूप (अदित्या) अदिति, अखण्डशासनव्यवस्था के (मूर्धन्) शिर पर या मुख्यपद पर (आजिघर्म्मि) प्रदीप्त या सुशोभित करता हूं। हे (देवयजने) देवों के संगमस्थान, सभा गृह या हे सभास्थ विद्वान् पुरुषो ! तुम (इडायाः) अन्नस्वरूप, अन्न के देनेवाली पृथिवी के (पदम्) प्राप्त करने वाली, प्रतिष्ठा, पद (त्वम् असि) तुम ही हो । तुम भी (स्वाहा) उत्तम ज्ञान से ही (घृतवत्) तेजोमय हो । हे राजन् ! (अस्मे रमस्व) तू हम में प्रसन्न होकर रह । (अस्मे ते बन्धु) हम प्रजाजन तेरे बन्धु हैं। (त्वे रायः) तेरे समस्त ऐश्वर्य (मे राय) हमारे भी ऐश्वर्य हैं। (वयम्) हम प्रजाजन (राय पोषेण) धन, ऐश्वर्य के पुष्टि, बल से (मा वियौष्म) वियुक्त न हों । (तोतो रायः) ज्ञानवान् आपके भी बहुतसे ऐश्वर्य हों । वीर पुरुष को विद्वत्सभा के सभापतिपद पर मूर्धन्य बनाकर राज्य पालन के लिये नियुक्त करें। उसकी प्रतिष्ठा करें । उसको जीवन के सब सुख दें । राजा और प्रजा दोनों एक दूसरे के ऐश्वर्य की वृद्धि करें ॥

'इडायाः पदम्', 'देवयजनम्' यहां विद्वानों के संगतिस्थल या 'सभाभवन' पद से समस्त सभास्थ विद्वानों का जहत्स्वार्था लक्षणा से ग्रहण होता है । अंग्रेज़ी में भी 'House' या भवन शब्द से समस्त सभासदों का ग्रहण होता है ॥ शत० ३ । ३ । १ । ४–१० ॥

२२—(उ०) 'त्वेरायो अस्मे यय' । इति काण्व० ॥

समंख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा । मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीरं विदेय तव देवि संदृशि ॥ २३ ॥

आशी वाग्विद्युतौ, गौर्वा देवता । आस्तारपंक्ति । पञ्चमः स्वरः ॥

भा०—(देव्या धिया) दिव्यगुण युक्त, प्रकाश ज्ञानवती (धिया) प्रज्ञा से (सम् अख्ये) विवेक करके मैं कथन करूं, उपदेश करूं । (दक्षिणया) अति ज्ञानयुक्त, अज्ञाननाशक बलवती और (उरुचक्षसा) अति अधिक देखने वाली दर्शन शक्ति से देख भालकर मैं (सम् अख्ये) सत्य बात का उपदेश करूं । हे (देवि) देवि ! सर्व सत्य प्रकाश करने, दर्शाने वाली वेदवाणी ! (तव संदृशि) तेरे दिखाये उत्तम सम्यक् दर्शन में रहते हुए (मे आयुः) मेरे जीवन को तू (मा प्रमोषीः) विनाश मत कर । (मा उ अहं तव) और न मैं तेरे जीवन का नाश करूं और मैं (वीरं विदेय) वीर पुरुषों का लाभ करूं । वैदिक व्यवस्था से विवेक पूर्वक राष्ट्र के शासन का निरीक्षण करूं । वह राजा व्यवस्था का नाश करे और व्यवस्था राजा के अधिकार का नाश न करें और वीर पुरुष राजा को प्राप्त हों ॥

विद्युत् पक्ष में—उस प्रकाशवती धारक विद्युत शक्ति के प्रकाश से हम अन्धकार दूर करके देखे । विद्युत् के आघात हमें नाश न करे । न हम विद्युत् का नाश करें । उसके प्रकाश में हम शक्तियुक्त पदार्थों का लाभ करें ॥

पत्नी के पक्ष में—धारण पोषण में समर्थ देवी कार्यकुशल दीर्घदर्शिनी पत्नी के द्वारा मैं समस्त कार्यों का निरीक्षण करूं । मैं उसके और वह मेरे जीवन का नाश न करे उसके सम्यग् दर्शन में वीर पुत्र का लाभ करूं । इसी प्रकार देवी, विद्वत्सभा के पक्ष में भी योजना करनी चाहिये ॥ शत० ३ । ३ । १ १२-१६ ॥

[1]एष ते गायत्रो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽइति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाᳬसाम्राज्यंगच्छेति मे सोमाय ब्रूतात्। [2]आस्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा वि चिन्वन्तु ॥ २४ ॥

लिंगोक्ता., सोमो यज्ञो वा देवता । (१) ब्राह्मी जगती । निषादः स्वर. ।
(२) याजुषी पंक्ति । पञ्चमः स्वर ॥

भा०—राजा को अधिकार प्रदान। हे विद्वन् मण्डल ! (मे सोमाय) सबके प्रेरक मुझ सोम को (इति ब्रूतात्) इस प्रकार स्पष्ट करके बतलाओ कि (एष ते गायत्रो भागः) हे राजन् ! तेरा यह गायत्र=ब्राह्मणों का भाग है। इसी प्रकार (मे सोमाय इति ब्रूतात्) मुझ राजा को यह बतलाओ कि (एष ते त्रैष्टुभो भाग) त्रैष्टुभ अर्थात् क्षात्रबल सम्बन्धी यह तेरा भाग है और (एष ते जागतो भाग) यह इतना वैश्य सम्बन्धी तेरा भाग है और मुझ सोम राजा को यह आज्ञा दो कि (छन्दो-नामानां) छन्द=प्रजाके पालन और दुष्टों के दमन के समस्त उपायों के (साम्राज्यम्) समस्त राजाओं के ऊपर सर्वोपरि विराजमान महाराज के पद को तू (गच्छ इति) प्राप्त हो। अथवा-प्रत्येक प्रजा के प्रतिनिधि अपना कर या अंश देते हुए बीच के प्रधान पुरुष से कहें, (इति) यह (मे) मेरा वचन (सोमाय ब्रूतात्) सोम राजा को कहो कि हे राजन् (एष ते गायत्रो भाग.) ब्राह्मणों की तरफ़ से यह तेरा सेवनीय अंश है। (एष ते त्रैष्टुभो भाग) यह तेरा क्षत्रियों की तरफ से अंश है। (एष ते जागतो भाग) यह वैश्यों की ओर से तेरा भाग है। (छन्दो नामानाम्) छन्द अर्थात् समस्त राष्ट्र के अधिकार पदों और नाम अर्थात् नमन करने के अधिकारों में से सबसे ऊंचे

२४—'०छन्दोमानाना साम्राज्य गच्छतादिति०' इति काण्व० ।
१ वृषा वै सोमो योषा पत्नी । इति शत० ॥

साम्राज्य पदको तू प्राप्त हो। प्रजाजन कहे–हे राजन्! तू (अस्माकः असि) हमारा ही है। (शुक्र) अति तेजस्वी शरीर में वीर्य के समान सभी राष्ट्र शरीर में तेजस्वी पदार्थ, एवं शासनपद और इसी प्रकार इन्द्र आदि सब अधिकार भी (ते ग्रह्यः) तुझे ही स्वीकार करने योग्य हैं और (विचित.) विशेष रूप से या विविध प्रकार से चुनने वाले ज्ञानी पुरुष भी (त्वा) तुझको ही (विचिन्वन्तु) विशेष रूप से आदर योग्य पद पर चुनें, वरण करके तुझ जैसे योग्य पुरुष को खोज खोज कर अपना राजा बनावें॥ शत० ३।३।२।१–८॥

[1]अभि त्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भाऽअदिद्युतत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत [2]सुक्रतुः कृपा स्वः। प्रजाभ्यस्त्वा प्रजास्त्वानुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि॥ २५॥

सविता सोमश्च देवते। ब्राह्मी जगती। निषादः स्वरः निचृदार्षी गायत्री। षड्जः स्वरः॥

भा०—(त्यम्) उस (ओण्योः सवितारम्) द्यौ और पृथिवी के उत्पादक (सत्यसवम्) सत्रूप से व्यक्त जगत् के उत्पादक या सत्यज्ञान के प्रदाता (कविक्रतुम्) क्रान्तदर्शी, सर्वोपरि ज्ञान से युक्त (रत्नधाम्) सूर्य आदि समस्त रमणीय पदार्थों के धारक (मतिं) ज्ञानरूप (अभिप्रियम्) सर्वप्रिय, (कविम्) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (देवम्) देव–परमेश्वर की (अभि-अर्चामि) स्तुति करता हूं (यस्य) जिसका (अमतिः) परमरूप (भा) तेजोमय (ऊर्ध्वा) सब से ऊपर (अदिद्युतत्) प्रकाश करती है और जो (सवीमनि) उत्पन्न होने वाले संसार में (हिरण्यपाणिः) तेजोमय,

१ 'शुक्रस्ते गृह्यः' इति दयानन्दसम्मतः पाठः। 'ग्रह्य' इति शत० अन्यत्र च सर्वत्राभिमतः॥

अति रमणीय, कार्य कुशल हाथों वाला होकर समस्त पदार्थों को (अमिमीत) बनाता है और जो (सुक्रतु) सब से उत्तम प्रज्ञावान् और शिल्पी है और जिसकी (कृपा) सर्वोच्च शक्ति या कृपा (स्वः) सबकी प्रेरक और तापक है या जिसकी कृपा ही परम मोक्षमय सुखमय है। हे परमेश्वर (त्वा) तुझे (प्रजाभ्यः) समस्त प्रजाओं के लिये उपास्य बतलाता हूं। (त्वा प्रजा अनुप्राणन्तु) समस्त प्रजाएं तेरी शक्ति से नित्य प्राणधारण करें और (त्व) तू (प्रजा) समस्त जीव प्रजाओं को अपनी शक्ति से (अनुप्राणिहि) प्राण धारण करा ॥

राजा के पक्ष में—(अभ्यो. सवितारं त्व देव कविक्रतुम्) राजाओं या शासकों और जासूसों अथवा पुरुष स्त्री दोनों के ससारों के प्रेरक प्रज्ञावान् मेधावी, सत्य न्याय का प्रदाता, रमणी गुणों के धारक, प्रिय मननशील क्रान्तदर्शी राजा को, हम पूजा या आदर करें जिसकी (अमतिर्भा) अगम्य कान्ति सब से ऊपर विराजती है और जो सुवर्णादि धन परवश करके सदाचारी होकर सुखमय राज्य बनाने में समर्थ है। हे पुरुष (त्वा प्रजाभ्य.) तुझे प्रजाओं के हित के लिये हम राजा नियुक्त करते है। (त्वा प्रजा अजतु प्राणन्तु) तेरे आधार पर प्रजाएं जीवित रहें। (प्रजाः त्वम् अनुप्राणिहि) प्रजा की वृद्धि पर तू भी अपना जीवन धारण कर ॥ शत० ३ । ३ । २ । ११-१९ ॥

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन । सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्णः परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ॥ २६ ॥

यज्ञो लिङ्गोक्ता अजा सोमो वा देवता । भुरिग् ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

२६—'सग्मेते गौरस्मै' इति उव्वट महीधराभिमतः पाठो निर्णयसागरीय. । 'सग्मेते गोरस्मे' इति शत०, द०, सात०, काण्व० । 'चन्द्र त्वा चन्द्रेण० शुक्र-शुक्रेणाम्० ' इति काण्व० ॥

भा०—राजा-प्रजा के परस्पर के व्यवहार को स्पष्ट करते है। हे राजन्! (शुक्रं) शरीर में वीर्य के समान राष्ट्र में बलरूप से विद्यमान (त्वा) तुझको मैं राष्ट्रवासी प्रजाजन (शुक्रेण) अपने तेजोमय सुवर्ण-रजतादि अर्थबल से या अपने भीतर विद्यमान शरीर बल से ही (क्रीणामि) अदला बदली करते हैं, ग्रहण करते हैं और (चन्द्रेण) अपने चन्द्र आह्लादकारी धन ऐश्वर्य के द्वारा (त्वां चन्द्रम्) तुम सर्व प्रजारञ्जक पुरुष को (क्रीणामि) अपनाते स्वीकार करते हैं और (अमृतेन) अपने अमर आत्मा द्वारा (अमृतम्) अमृत, अविनाशी तुझको स्वीकार करते हैं। (ते) तेरे (राज्ये) चक्रवर्ती राज्य में (गो.) इस पृथिवी से उत्पन्न (अस्मे चन्द्राणि) हमारे समस्त प्रकार के धन ऐश्वर्य (ते) सब तेरे ही है और तू साक्षात् (तपसः) तप का (तनूः) विग्रहवान्, शरीरी रूप (असि) है, अर्थात् शत्रु और दुष्टजनों का तापक एवं प्रजा के सुख के लिये समग्र तपस्या करने से साक्षात् तपःस्वरूप है और तू (प्रजापतेः) प्रजा के पालन करने वाले पिता या परमेश्वर के (वर्णः) महान् प्रजा पालन के कार्य के लिये हमारे द्वारा वरण करने योग्य है और (परमेण) परम, सर्वोत्तम (पशुना) गौ, हाथी सिंह इत्यादि रूप से (क्रीयसे) समस्त प्रजाओं द्वारा स्वीकार किया जाता है, माना जाता है अथवा तुझे प्रजा अपने सर्वोत्तम पशु धन देकर अपना रक्षक स्वीकार करती हैं। मैं, हम प्रजाजन (सहस्रपोषम्) हजारों धन समृद्धि सम्पदाएं प्राप्त करके (पुषेयम्) पुष्ट होवें॥

मित्रो न॒ऽएहि सुमित्रध॒ऽइन्द्र॑स्योरुमावि॑श दक्षि॒णमु॒शन्नु॒शन्त॑ᳬ स्यो॒नः स्यो॒नम्। स्वान॒ भ्राजाङ्घा॑रे॒ बम्भा॑रे॒ हस्त॒ सुह॑स्त॒ कृशा॑नवे॒ते वः॑ सोम॒क्रय॑णा॒स्तान्र॑क्षध्वं॒ मा वो॑ दभन्॥ २७॥

सोमः सोमरक्षका धिष्ण्याः, विद्वान् वा देवता। भुरिग् ब्राह्मी पक्तिः। पञ्चमः॥

२७—०'कृशानो। एते'० इति काण्व०।

भा०—अष्ट प्रधान या अष्ट प्रकृति राज्यव्यवस्था का वर्णन करते हैं। नरोत्तम ! तू (मित्र इव) प्रजाको मरण से त्राण करने वाले सूर्य के समान पालक (सुमित्रध) उत्तम २ मित्रों, सहायकों का धारण पोषण करने हारा होकर (न एहि) हमें प्राप्त हो। हे राजन् ! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर या ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति के (दक्षिणम्) दायें या बलवान् (उशन्तम्) कामना युक्त (स्योन) सुखप्रद (उरुम्) विशाल, बहुतों को आश्रय देने में समर्थ पद को (आविश) प्राप्त कर। हे (स्वान) प्रजा के उपदेष्टा, हे (भ्राज) शस्त्रास्त्रों से परम शोभायमान। हे (अघो) अघं= पाप के शत्रो, पापी पुरुषों के दमनकारिन् ! हे (हस्त) शत्रुओं के युद्ध में हनन समर्थ सेनापते ! हे (सु-हस्त) उत्तम २ पदार्थ शिल्प द्वारा रचने में समर्थ विश्वकर्मन् ! हे (कृशानो) दुर्बलों या कृशों के उज्जीवक ! अथवा शत्रुओं के कर्शन करने हारे, उनके बल को नीति द्वारा तोड़ने हारे सात मुख्य पदाधिकारी पुरुषो ! (एते) ये सब प्रजास्थ पुरुष या प्रतिनिधिगण ! (व) तुम सबको (सोम-क्रयणाः) सोम, राजा को नाना प्रकार से स्वीकार रहे हैं। (तान् रक्षध्वयम्) उन सबको आप लोग रक्षा करें और वे (व) तुम सबको (मादयन्) विनाश न करें॥

[1]परि माग्ने दुश्चरिताद्बाधस्वा मा सुचरिते भज।
[2]उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृताँ २ऽअनु॥ २८॥

अग्निर्देवता। (१) साम्नी बृहती, मध्यम.। (२) साम्न्युष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर अथवा शत्रु सन्तापक राजन् ! तू (मा) मुझको (दुश्चरिताद्) दुष्ट आचार से (परि बाधस्व) सब ओर से हटा। और (मा) मुझको (सुचरिते) उत्तम चरित्र में (भज) स्थापित कर। मैं (अमृताम् अनु) अमृत आत्मोपासक जीवनमुक्त या दीर्घायु पुरुषों के अनुगामी होकर (सु-आयुषा) सुदीर्घ आयु से युक्त (आयुषा) जीवन से

मुक्त होकर (उद् अस्थाम्) उत्तम मार्ग में स्थिर रहूं ॥ शत० ३ । ३ । ३ । १४ ॥

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम् ।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥ २९ ॥

अग्नि पन्था वा देवता । निचृदार्षी गान्धारः ॥

भा०—हम लोग (स्वस्तिगाम्) कुशलपूर्वक उत्तम स्थान तक पहुंचाने वाले (अनेहसम्) चोर आदि हत्याकारी उपद्रवों से रहित (पंथाम्) उस मार्ग पर (प्रति अपद्महि) चला करें । (येन) जिससे सभी लोग (विश्वा.) सब प्रकार की (द्विषः) द्वेष करने वाली शत्रु सेनाओं को (परिवृणक्ति) दूर कर देते और (वसु विन्दते) नाना ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं ॥ शत० ३ । ३ । ३ । १ । १८ ॥

[1]आदित्यास्त्वगस्यादित्यै सदऽआसीद । अस्तभ्नाद् द्यां वृषभोऽ अन्तरिक्षममिमीत वरिमाणं पृथिव्याः । [2]आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥ ३० ॥ ऋ० ८ । ४२ । १ ॥

कृष्णाजिनः सोमो वरुणश्च देवताः । (१) स्वराड् याजुषी त्रिष्टुप्, (२) विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्द. ॥

भा०—हे राजन् ! तू (आदित्या.) अदिति पृथिवीस्थ प्रजा का (त्वग् असि) त्वचा के समान उसका रक्षक है । तू (आदित्यै) अदिति पृथिवी के लिये (सदः) गृह के समान शरण होकर (आसीद) विराज । (वृषभ.) वर्षणशील मेघ या सूर्य जिस प्रकार (द्याम् अस्तभ्नात्) द्यौलोक को धारण करता है और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को भी व्याप्त करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (वृषभ.) सर्वश्रेष्ठ प्रजा पर उनके काम्य सुखों की

२९—अग्निर्देवता । द० । द्यामृषभो इति काण्व० ॥

वर्षा करने वाला होकर राजा (द्याम् अन्तरिक्षम् अस्तभ्नात्) द्यौ, आकाश और अन्तरिक्ष और उसमें होने वाले ऐश्वर्यों को अपने हस्तगत करे। और वही (पृथिव्या परिमाणम्) पृथिवी के विशाल परिमाण को भी (अमिमीत) स्वयं मापले, उसका पूरा ज्ञान रखे। वही (सम्राड्) महाराजाओं का महाराजा, सम्राट् होकर (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों पर (आसीदत्) अधिष्ठाता होकर रहे, उन पर अधिकार करे। (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ राजा के (तानि) यही (विश्वा) सब नाना प्रकार के (व्रतानि) कर्तव्य हैं।

ईश्वर के पक्ष में—हे ईश्वर ! तू पृथ्वी का रक्षक है, द्यौ और अन्तरिक्ष में व्यापक उसको थामने वाला है। पृथिवी के विस्तार को जानता है। अन्तरिक्ष में समस्त भुवनों को स्थापित करता है। ये सब महान् कार्य उस परमेश्वर के ही हैं, दूसरे के नहीं ॥

सूर्य-वायु के पक्ष में—वायु पृथ्वी का आवरण है। उसका घर सा है। सूर्य, द्यौ अन्तरिक्षस्थ पिण्डों को थामता और पृथ्वी को प्रकाशित करता है। सब भुवनों को स्थापित करता है। यही महान् परमेश्वर के महान् कार्य हैं।

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय ऽउस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ ॥३१॥

वरुणो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०--राजा के उपमानों का समुच्चय करते हैं। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर (वनेषु) वनों के ऊपर उनके पालन करने, उन पर जलादि वर्षा करने के लिये (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष और उसमें स्थित वायु और मेघों को (विततान) तानता है, जिससे वे खूब बढ़े। और (अर्वत्सु) वेगवान् अश्वों और बलवान् पुरुषों में (वाजम्) बल, वीर्य और अन्न प्रदान करता है। (उस्रियासु) नदियों में जल, गौओं में दूध और सूर्य-किरणों

मे सूक्ष्म पुष्टिकारक बल रखता है। (हृत्सु क्रतुम्) हृदयों में दृढ़ सकल्प को धारण कराता है। (दिवि सूर्यम्) आकाश में प्रकाशवान् सूर्य को स्थापित करता है। (अद्रौ) पर्वत पर (सोमम्) सोमवल्ली को या (अद्रौ) मेघ में (सोमम्) सर्वसृष्ट्युत्पादक जल को (अदधात्) वैश्वा नर अग्नि के समान अग्नि अर्थात् अग्रेणीनेता को भी स्थापित करता है। अर्थात् परमात्मा ही प्रजाओं में नेता को अधिक शक्तिमान् बना कर उसको उत्तम उत्तम कर्तव्य भी सौंपता है। वह अन्तरिक्ष के समान सब पर आच्छादक, रक्षक रहे। अश्वों में वेग के समान संग्रामों में विजयी रहे। गौओं में दूध के समान निर्बलों का पोषण करे। हृदयों में दृढ़ संकल्प के समान प्रजा में स्थिरमति हो। आकाश में सूर्य के समान सबको प्रकाश दे। ज्ञान दे। मेघ में स्थित जल के समान सबको प्राणप्रद, अन्नप्रद हो। वह परमात्मा सबको उपास्य है जिसने ये सब पदार्थ भी रचे॥

सूर्य॑स्य॒ चक्षु॒रारो॑हा॒ग्नेर॒क्ष्णः क॒नीन॑कम्।
यत्रैत॑शेभि॒रीय॑से॒ भ्राज॑मानो विप॒श्चिता॑ ॥ ३२ ॥

अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गाधारः॥

भा०—हे राजन्! तू (यत्र) जहां कहीं भी (विपश्चिता) विद्वान् पुरुषों के साथ अपने (एतशेभिः ईयसे) घोड़ों से जाय वहां ही तू (सूर्यस्य [प्रकाश इव]) सूर्य के प्रकाश के समान लोगों की आखों पर (आरोह) चढा रह, उनको शक्ति देकर उन पर अनुग्रह कर। और रात्रि के समय (अग्नेः [प्रकाश इव]) अग्नि के प्रकाश के समान (अक्ष्णः कनीनकम् आरोह) लोगों की आख की पुतली पर चढ़, अर्थात् अन्धकार में आख जिस प्रकार सदा चमकती आग या दीपक पर ही जाती है उसी प्रकार लोगों की आखों की पुतली तेरी ओर ही लगी रहे, अर्थात् तू उनकी

३२—'०कनीनकाम्।' इति काण्व०॥

आखों पर लक्ष्य के समान बना रह । प्रजाओं को अन्धकार में भी प्रकाश दे और मार्ग दर्शा ॥

ईश्वर पक्ष में—(यत्र) जहा और जब भी (एतशैः) व्यापकता, सर्वज्ञत्वादि गुणों से (भ्राजमान.) देदीप्यमान होकर (विपश्चिता) विद्वान् पुरुष द्वारा (ईयसे) बतलाया जाता है । वहा और उसी समय तू हे ईश्वर ! (सूर्यस्य चक्षु. आरोह, अग्ने. कनीनकं आरोह) दिन में सूर्य के प्रकाश के समान और रात्रि में अग्नि के प्रकाश के समान चक्षु और आंख की पुतली पर चढते हो और उन पर अपना अधिकार करते हो अर्थात् तुम्हीं उनको ज्ञान मार्ग दिखाते हो । इसी प्रकार मुख्य प्राण अपने जीवन प्रदाता आदि गुणों से ज्ञापित होकर हमें मार्ग दिखाती है, प्रकाश देती है ॥

[1]उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनुश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ ।
[2]स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ॥ ३३ ॥

सूर्यविद्वांसौ नड्वाहो वा देवता । (१) भुरिगार्षी पंक्ति· । पञ्चम ।
(२) याजुषी जगती । निषाद ॥

भा०—(एतौ) ये दोनों (धूर्षाहौ) पृथ्वी का भार धारण करने में समर्थ और प्रजाओं को बसाने वाले (अवीरहणौ) अपने राष्ट्र के वीर पुरुषों को नाश करने वाले और (ब्रह्मचोदनौ) ब्रह्मज्ञान या वेदविज्ञान को उन्नत करने वाले राजा, अमात्य या दोनों विद्वान् पुरुष हैं (अनश्रू) आँसुओं से, क्लेश विपत्तियों और बाधा पीड़ा से रहित, सुप्रसन्न चित्त से रहने वाले उन दोनों को (युज्येथाम्) गाड़ी में बैलों के समान राष्ट्र सचालन के कार्य में नियुक्त किया जाय । हे उक्त दोनों समर्थ नरपुंगवो ! आप दोनों (यजमानस्य) दानशील, धार्मिक, उदार प्रजाजन के (गृहान्)

३३—'अनश्च्यू' इति दयानन्दभाष्य गतः पाठश्चिन्त्य· । च्यु हसन सहनयोः चुरादिः । अथवा च्युङ्गतौ भ्वादिः । 'उस्रा एत धूर्वाहौ०' इति काण्व० ॥

घरों के (स्वस्ति गच्छतम्) सुखपूर्वक प्राप्त होओ, अथवा उनको सुख कल्याण प्राप्त कराओ ॥

देह पक्ष में—(उस्रौ एतौ) आत्मा के देह में निवास के हेतु प्राण, अपान सुप्रसन्न (अवीरहणौ) शरीर के समर्थ अंगों का नाश करनेवाले (ब्रह्मचोदनौ) ब्रह्म, आत्मा के प्रेरक दोनों को योगाभ्यास में लगाओ । वे यजमान, आत्मा के देह को सुख से प्राप्त हों या सुख प्राप्त करावें । इसी प्रकार सूर्य और वायु ब्रह्माण्ड में (ब्रह्मचोदनौ) अन्न को प्राप्त करानेवाले उनको अपने शिल्पकार्यों में लगावें । बैलों के पक्ष में स्पष्ट है ॥

'अनश्च्यू' इति महर्षिसम्मतपाठः । (अनश्च्यू अनः=च्यू १) 'अनस' शकट को 'च्यु' उठाने वाले राष्ट्र रूप शकट को दूर अथवा शकट को लेजाने वाले । अथवा स्त्री पुरुषों पर भी यह मन्त्र लगता है । (अवीरहणौ) वीर-पुत्रों का नाश न करने वाले (ब्रह्मचोदनौ) वेद का स्वाध्याय करने वाले (अनश्रू) आंसू न बहाने वाले, परस्पर सुप्रसन्न, (धूर्षाहौ) गृहस्थ के भार को सहने में समर्थ, (उस्रौ) एकत्र वसने वाले, अथवा (उत्सर्पिणौ) उन्नत मार्ग पर जानेवाले दोनों को (युज्येथाम्) गृहस्थ में लगाया जाय । ऐसे युवा युवति, यजमान यज्ञशील, धार्मिक पुरुष के घरों पर आवें और सुख प्रदान करें ॥

[1]भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभिधामानि । [2]मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृका अघायवो विदन् । [3]श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नौ सꣳस्कृतम् ॥ ३४ ॥

यजमान सोमो वा देवता । (१) भुरिगार्षी गायत्री । षड्ज । (२) भुरिगार्ची बृहति मध्यमः । (३) विराड् आर्ची । गान्धार ॥

३४—यजमानो देवता । द० ॥

भा०—हे (भुवः पते) पृथ्वी के पालक राजन् ! तू (मे) मुझ राष्ट्रवासी प्रजाजन के लिये (भद्रः) कल्याण करने और सुख पहुंचाने वाला (असि) है (विश्वानि धामानि) समस्त राष्ट्र के अन्तर्गत स्थानों या पृथ्वी पर विद्यमान देशों को (अभि प्र च्यवस्व) प्राप्त हो, उन पर आक्रमण करके विजय कर । ऐसी दशा में (त्वा) तुझको (परिपरिणः) पर्यवस्थाता, तुझे घेर लेने वाले शत्रुगण या आक्रामक, चोर डाकू लोग (मा विदन्) न पकड़ सकें, तुझ तक न पहुंचे और (परिपन्थिनः) शत्रु लोग, दस्युजन (त्वा मा विदन्) तुझे न जान पावें । और (अघायवः) तुझ पर हत्या आदि का पाप करने की इच्छावाले (वृकाः) चोर लोग (मा त्वा विदन्) तुझे न पावें । तू उन पर (श्येन भूत्वा) श्येन होकर, अर्थात् शिकार पर जिस प्रकार बाज़ झपटता है उस प्रकार, उन पर (परापत) दूर तक आक्रमण कर और विजयी होकर आ । या (श्येनो भूत्वा परापत) श्येन बाज के समान शीघ्रगामी होकर उनके फन्दों से छूट आ । (यजमानस्य) सत्संग करने योग्य पूजनीय विद्वान् पुरुषों के (गृहान् गच्छ) गृहों को या उनसे बसे द्वीप, देश देशान्तर को प्राप्त हो । (नौ) हम प्रजाजन और तुझ राजा दोनों का (तत्) वह विजयोपयोगी युद्धोपकरण रथ आदि सब (सुसंस्कृतम्) उत्तम रीति से सुसज्जित हो । या (नौ तत् सुसंस्कृतम्) हमारा परस्पर-वह सब शासन और विजय कार्य उत्तम रीति से हो ॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳ सपर्यत ।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शꣳसत ॥ ३५ ॥

सूर्यो देवता । निचृदार्षी जगती । निषादः स्वरः ॥

भा०—(मित्रस्य) सबके मित्र, सबके स्नेही, सबको मरण से बचाने वाले (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ, सर्वदु:खवारक, सबसे वरण करने योग्य, (चक्षसे) सर्वद्रष्टा उस परमेश्वर को (नमः) हम नमस्कार करें । (महः

देवाय) महान् उस सर्वप्रद, सर्वदर्शी, सर्वप्रकाशक परमेश्वर के (तत् ऋतम्) उस सत्यस्वरूप, सत्य ज्ञान की (सपर्यतः) पूजा करें । (दूरे दृशे) दूर २ के पदार्थों को भी दिखाने वाले (देवजाताय) दिव्यगुणों से प्रसिद्ध या देव-विद्वानों द्वारा प्रसिद्ध या पृथिवी अग्नि वायु सूर्य आदि दिव्य पदार्थों के उत्पत्तिस्थान उस (केतवे) सर्वप्रज्ञापक, ज्ञानस्वरूप, चित्स्वरूप, (दिवः पुत्राय) प्रकाशस्वरूप, सर्वपवित्रकारक या समस्त दिव्य, द्यौ-लोक या तेजोमय पदार्थों के पवित्रकारक, संस्कारक, प्रकाशक या उसमें व्यापक (सूर्याय) सबके प्रेरक, चराचररूप परमैश्वर्य के कारणभूत परमेश्वर के (शंसत) गुणों का गान करो ।

राष्ट्रपक्ष में—मित्र, वरुण दोनों अधिकारियों का आदर कर, मार्गदर्शी देव, विद्वान् पुरुष या राजा के 'ऋत' ज्ञान या कानून का आदर करो । दूरदर्शी विद्वानों और राजाओं में शक्तिमान् ज्ञानी, दिव्य वेदवाणी के पुत्र उसके विद्वान् ज्ञानसूर्य के गुणों की प्रशंसा करो ॥

वरु॑णस्योत्तम्भ॑नमसि॒ वरु॑णस्य स्कम्भ॒सर्ज॑नी स्थो॒ वरु॑णस्य ऋत॒सद॑न्यसि॒ वरु॑णस्य ऽऋत॒सद॑नमसि॒ वरु॑णस्य ऽऋत॒सद॑न॒मासी॑द ॥ ३६ ॥

वरुण सूर्यो वा देवता । विराड् ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (वरुणस्य) वरण करने योग्य, इस श्रेष्ठ जगत्-ब्रह्माण्ड का (उत् तम्भनम्) ऊपर उठानेहारा बल है । हे परमेश्वर ! तू (वरुणस्य) इस ब्रह्माण्ड का (स्कम्भसर्जनी स्थः) खम्भे के समान आश्रय देने और 'सर्जनि' उत्पन्न करने या प्रेरणा देने, दोनों प्रकार का बल रूप (स्थः) है । अथवा (स्कम्भसर्जनी स्थः) या जगत् के या आवरणकारी वायु के, आधार शक्तियों, मूल तत्वों को सर्जन और प्रेरण करनेवाले दोनों बलरूप हैं । हे परमेश्वर ! तू ही (वरुणस्य) सर्वोपरि विराजमान सूर्य के

३६—सूर्यो देवता । द० । ०'सदनीमासीद' इति काण्व० ॥

भीतर विद्यमान (ऋतसदनी) ऋत अर्थात् जलों को धारण और लोकों के आकर्षण करनेवाली शक्ति है । (वरुणस्य ऋतसदनम् असि) वरुण, समस्त उत्तम पदार्थों के (ऋतसदनम्) यथार्थ सत्य ज्ञान का आश्रय है । हे परमेश्वर ! तू (वरुणस्य ऋतसदनम्) वरुण—सर्व उत्तम गुणों के सत्यज्ञानों के आश्रय को (आसीद) स्वय प्राप्त करने और अन्यों को प्राप्त करानेहारा है ॥

राजा के पक्ष में—हे विद्वान् पुरुष ! तू 'वरुण' वरण करने योग्य सर्व श्रेष्ठ राजा का 'उत्तम्भन' ऊपर उठाने वाला, आश्रयभूत है । हे विद्वत्सभाओ ! तू वरुण राजा का (स्कम्भसर्जनी स्थः) आधारभूत, अन्य शासक पदाधिकारी जनों को धारण करनेवाली या शासन के धारण करनेवाली और व्यवस्था नियम को बनाने और चलानेवाली दो राजसभा हो । एक राजनियम निर्मात्री 'लेजिस्लेटिव', दूसरी सचालिका 'एक्ज़िक्यूटिव' सभा, और हे तीसरी सभे ! तू (ऋतसदनी असि) ऋत, ज्ञानों का आश्रयभूत विद्वत्-सभा या ज्ञानसभा है, और हे सभाभवन ! तू (वरुणस्य ऋतसदनम् असि) सर्वश्रेष्ठ स्वयंवृत राजा के ऋत या राज्यशासन का मुख्यस्थान, केन्द्र या सिंहासन या उच्च सभापति का अधिकारासन है । हे सर्वश्रेष्ठ पुरुष ! तू (ऋतसदनम् आसीद) उस शासन और न्याय के उत्तम आसन पर विराज-मान हो । सबको न्याय प्रदान कर ॥

सूर्य के पक्ष में—वह वरुण अपने वरणकारी ग्रह मण्डल का आरम्भक है । उसको थामने और गति देनेवाला है, उसकी शक्ति का केन्द्र स्वयम् ऋत अन्न, जल आदि का आश्रय है ।

या ते॒ धामा॑नि ह॒विषा॒ यज॑न्ति॒ ता ते॒ विश्वा॑ परि॒भूर॑स्तु य॒ज्ञम् ।
ग॒य॒स्फानः॑ प्र॒तर॑णः सु॒वीरोऽवी॑रहा॒ प्र च॑रा सोम॒ दुर्या॑न् ॥ ३७ ॥

गोतमो राहूगण ऋषिः । सोमो यज्ञो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

३७—यज्ञो देवता । द० ॥

भा०—हे सोम राजन्! परमेश्वर (या धामानि) जिन स्थानों को (हविषा) आदान अर्थात् साधक या वश करने के साधनों को (यजन्ति) तेरे सैनिक प्राप्त कर लेते हैं, (ता) उन (ते) तेरे (विश्वा) सब पर तू (यज्ञम्) यज्ञ=शासन, सबके संगमस्थान, शासन, सभाभवन का (परिभूः) सब प्रकार से समर्थ अधिकारी होकर (अस्तु) रह। और तू (गयस्फानः) अपने प्रजा के पुत्र, धन और गृह ऐश्वर्य आदि की वृद्धि करता हुआ, (प्रतरणः) नाव के समान उनको सब कष्टों से पार करता हुआ (सुवीरः) उत्तम वीर भटों से युक्त, (अवीरहा) वीरों को व्यर्थ युद्ध-कलहों में नाश न करता हुआ (दुर्यान्) हमारे गृहों को (प्रचर) प्राप्त हो, हमसे परिचय प्राप्त कर॥

ईश्वर पक्ष में—हे ईश्वर! जिन तेरे बनाये धारणशील आश्रय पदार्थों, मूल तत्वों को विद्वान् जन (हविषा) ग्राह्य या दातव्य पदार्थ या कार्य-साधक पदार्थ से (यजन्ति) मिलाते हैं उन (ते) तेरे बनाये समस्त पदार्थों को हम भी मिलावें, प्राप्त करें और जो तेरा (गयस्फानः) ऐश्वर्य-वर्धक (सुवीरः) उत्तम बलयुक्त (अवीरहा) कातर मनुष्यों का नाशक (यज्ञम्) यज्ञ है, उस पर तू (परिभूः) सब प्रकार से शासक है। हे सोम, सर्वेश्वर या विद्वन् तू स्वयं यज्ञ का सम्पादन कर गृहों को प्राप्त हो, गृह के कार्यों को सम्पादन कर। अथवा—हे परमेश्वर! तू (या ते विश्वा धामानि) जितने तेरे धाम, धारण सामर्थ्यों और तेजों को विद्वान् लोग (हविषा यजन्ति) ज्ञानपूर्वक उपासना करते हैं। (ता विश्वा ते) वे सब तेरे ही सामर्थ्य हैं। और तू (यज्ञम् परिभूः अस्तु) यज्ञ, समस्त प्राणों के संगमस्थान आत्मा के ऊपर भी वश करने हारा है। आप (गयस्फानः प्रतरणः सुवीरः) प्राण, पुत्र, धन, गृह आदि के वर्धक, दुःखों से पार उतारने वाले, उत्तम बलशाली, (अवीरहा) वीर पुरुषों के नाश न करने और कातरों के नाश करने वाले हैं। हे (सोम दुर्यान्

नः प्रचर) सोम राजन् हमारे भी द्वारों से युक्त इस अष्टचक्रा नव द्वारा पुरी के हृदयों में प्रकट होइये ।

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

[तत्र सप्त त्रिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डित-जयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

१—४३ प्रजापतिर्ऋषि ॥

॥ ओ३म् ॥ अ॒ग्नेस्त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा॒ सोम॑स्य त॒नूर॑सि॒ विष्ण॑वे॒ त्वा॒ति॑थेराति॒थ्यम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा श्ये॒नाय॑ त्वा सोम॒भृते॒ विष्ण॑वे त्वा॒ग्नये॑ त्वा रायस्पोष॒दे विष्ण॑वे त्वा ॥ १ ॥

विष्णुर्देवता । स्वराड्ब्राह्मी बृहती । मध्यमः स्वरः ॥

भा०—हे अन्न या हे योग्य पुरुष ! तू (अग्नेः तनूः असि) अग्नि का स्वरूप है । (विष्णवे त्वा) तुझको राज्य शासन रूप यज्ञ या व्यापक राज्यव्यवस्था के कार्य के लिये प्रदान करता हूं । हे जल, तू (सोमस्य तनूः असि) सोम का शरीर है । (त्वा विष्णवे) तुझको मैं व्यापक, प्रजा-पालक के लिये प्रदान करता हूं । हे जल ! तू (अतिथे) अतिथि के लिये (आतिथ्यम् असि) आतिथ्य है । अर्थात् अतिथि के समान पूजनीय राजा के निमित्त है । (त्वा) तुझे (विष्णवे) विष्णु, व्यापक राज्य-शासन के लिये (श्येनाय त्वा) श्येन=बाज के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले (सोमभृते) सोम-राष्ट्र को पालन पोषण करने वाले के लिये (त्वा) तुझे नियुक्त करता हूं । (विष्णवे त्वा) व्यापक या प्रजा के भीतर पूज्य-रूप से रहने वाले (अग्नये) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाशक या शत्रुतापक और (रायः पोषदे) धन की समृद्धि और पुष्टि प्रदान करने वाले (विष्णवे त्वा) विष्णु, समस्त कार्यों में मुख्य रूप से वर्तमान पुरुष के लिये (त्वा) तुझे नियुक्त करता हूं ॥

भौतिक पक्ष में—हे हवि ! तू अग्नि विद्युत् का दूसरा स्वरूप है । (विष्णवे त्वा) तुझे यज्ञ-पदार्थों के संश्लेषण विश्लेषण के लिये प्रयुक्त

१—[१–१४] गोतम ऋषिः । द० ॥

करूं। तू सोम, जगत् के उत्पन्न पदार्थ या रस का विस्तारक है। तुझे (विष्णवे) व्यापक वायु के लिये प्रयुक्त करूं। और हे हवि ! अन्न तू (अतिथेः आतिथ्यम् असि) विना तिथि के आये विद्वान् अतिथि के आतिथ्य सत्कार करने के योग्य है और व्याप्तिशील, विज्ञान प्राप्ति के लिये तुझे प्रयोग करता हूं। (श्येनाय त्वा) श्येन के समान शीघ्र जाने के लिये, (सोमभृते विष्णवे त्वा) सोम, ज्ञान या प्रेरणासामर्थ्य या राजा के अपने कर्म पालन पोषण करने वाले या राष्ट्रपोषक, सर्वकर्मकुशल, सर्व-विद्या के पारंगत पुरुष के लिये तुझे प्रयुक्त करूं। (अग्नये) अग्नि की वृद्धि के लिये तुझको प्रयुक्त करूं। (रायस्पोषदे विष्णवे त्वा) विद्या, धन, ऐश्वर्य की पुष्टि, समृद्धि प्राप्त कराने वाले (विष्णवे त्वा) सद्गुण विद्या आदि की प्राप्ति के लिये भी तेरा प्रयोग करूं॥ शत०॥

अर्थात् यज्ञ, विद्वान्, अतिथि, शूरवीर, शत्रुविजयी पुरुष, राष्ट्रपालक धनैश्वर्य का प्रदाता ये सब 'विष्णु' हैं और उनके लिये राष्ट्र की भिन्न २ प्रकार के भोग्य, आदर योग्य पदार्थ प्रदान करें। उनको उचित योग्य पुरुष सहायक दिये जायं और उन कार्यों के लिये उत्तम योग्य पुरुष नियुक्त करें। इस प्रकार ५ प्रकार के विष्णु हैं। १ अग्नि विष्णु, २ सोम विष्णु, ३ अतिथि विष्णु, ४ श्येन विष्णु, ५ रायस्पोषद अग्नि विष्णु। इन के लिये ५ प्रकार की विशेष हवि या अन्नादि सामग्री प्रस्तुत करें। जैसे शरीर में आत्मा प्रजापति पांच प्राण, जैसे संवत्सरमय सूर्य के पाच ऋतु वैसे राजा प्रजापति के ये पांच विष्णु अर्थात् पांच विभाग हैं जहां राजा अपने कोश और अन्न को प्रदान करे॥

[1] अग्नेर्जनित्रमसि। वृषणौ स्थ उर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवा असि।
[2] गायत्रेण त्वा छन्दसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा मन्थामि

जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि ॥ २ ॥

शकन, दर्भतृणे, अधरोत्तरारण्यौ, अग्निश्च, विष्णुर्यज्ञो वा देवता । (१) आर्षी गायत्री । षड्जः । (२) आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! तू (अग्नेः जनित्रम् असि) जिस प्रकार अग्नि को उत्पन्न करने के लिये नीचे काष्ठखण्ड रक्खा होता है, उस पर अग्नि उत्पन्न होती है उसी प्रकार तू भी (अग्नेः) अग्नि के समान शत्रुतापक राजा का (जानित्रम्) उत्पन्न करने वाला, उसका भोग्य रूप अन्न है । हे शत्रुहिंसक सेनापति और मन्त्रिन् ! तुम दोनों (वृषणौ स्थः) जिस प्रकार पुत्र को उत्पन्न करने वाले माता पिता दोनों वीर्य सेचन क्रिया में समर्थ होते हैं उसी प्रकार तुम दोनों भी (वृषणौ) सूर्य वायु के समान राजा के समस्त कार्यों में बल प्रदान करने वाले हो । हे राजसभे ! (उर्वशी असि) तू उस विशाल राष्ट्र को वश करने में समर्थ है । हे राजन् या सभापते ! तू (पुरूरवाः असि) बहुत से पुरुषों तक अपना ज्ञानमय उपदेश पहुंचाने में समर्थ सुवक्ता, उपदेष्टा है । हे राजन् ! (त्वा) तुझको (गायत्रेण छन्दसा) ब्राह्मणों, विद्वान् पुरुषों के रक्षा बल से (मन्थामि) मथता हूं । (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुप्, अर्थात् क्षात्र बल से मथता हूं । (त्वा जागतेन छन्दसा मन्थामि) तुझको जागत अर्थात् वैश्य के बल से मथता हूं ॥

पुत्रोत्पत्ति पक्ष में—जिस प्रकार हे वीर्य रूप हवि ! तू अग्नि चेतना का उत्पतिस्थान है, शरीर मे (वृषणौ स्थः) सेचन समर्थ स्त्री पुरुष हैं । उर्वशी स्त्री है, पुरुरवा पुरुष पति है । उसी प्रकार यह सूर्य का तेज ही विद्युत का उत्पति स्थान है । सूर्य और वायु जल को आकाश में सेचन करते हैं, उर्वशी विद्युत् है । उसका पालक मेघ पुरुरवा महान् गर्जन करता

२—विष्णुर्यज्ञो देवता । द० ॥

है। गायत्री आदि पृथिवी, अन्तरिक्ष द्यौ.लोक के भिन्न २ व्यापार से वह मंथित होती है ॥

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ३ ॥

यज्ञो देवता । पङ्क्ति. । पञ्चमः स्वर. ॥

भा०—हे स्त्री और पुरुष तुम दोनो ! (नः) हममें (सचेतसौ) समान चित्त वाले (अरेपसौ) पापरहित (समनसौ) एक समान ज्ञान या सकल्प विकल्प वाले (भवतम्) होकर रहो। तुम दोनों (यज्ञम्) एक दूसरे के प्रति परस्पर दान या परस्पर के संग को (मा हिंसिष्टम्) विनाश मत करो। (यज्ञपतिम्) इस यज्ञ के पालक को भी नाश मत करो। (जातवेदसौ) धन और ज्ञान से युक्त होकर (अद्य) आज से (न) हमारे लिये (शिवौ) कल्याण और सुखकारी (भवतम्) होकर रहो। इसी प्रकार अध्यापक शिष्य, राजा प्रजा, राजा सचिव आदि पर भी यह मन्त्र समान रूप से लगता है ॥ शत० ३ । ४ । १ । २०–२३ ॥

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऽऋषीणाम्पुत्रो अभिशस्तिपावा । स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳसदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा ॥ ४ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—जो (अभिशस्ति-पावा) चारों तरफ़ से होनेवाला, घातक विपत्ति से बचानेवाला (ऋषीणाम् पुत्र) वेदार्थवक्ता ऋषियों का पुत्र या शिष्य होकर (अग्नौ) अग्नि में जिस प्रकार (अग्नि·) अग्नि (प्रविष्टः) प्रविष्ट होकर और अधिक प्रदीप्त हो, उसी प्रकार (अग्नि.) अग्नि के समान तेजस्वी, तपस्वी और ज्ञानी होकर (अग्नौ) ज्ञान और तेज से

३—०'सचेतसा अरेप० ' इति काण्व० ॥

सम्पन्न गुरु के अधीन उसके चित्त में (प्रविष्टः) प्रविष्ट होकर (चरति) व्रत का आचरण करता है या अपने जीवन सुखों का, या अन्न आदि का भोग करता है और (देवेभ्यः) देवों, विद्वानों के लिये (हव्यम्) अन्न और (सदम्) निवासस्थान (स्वाहा) उत्तम वचन, मधुरवाणी सहित आदर-पूर्वक (अप्रयुच्छन्) प्रदान करने में कभी आलस्य न करता हुआ (चरति) जीवन पालन करता है। हे मनुष्य ! तू (स) वह (स्योनः) सर्व सुख-कारी (सुयजा) उत्तम यज्ञ दान कर्म से (इह) इस लोक में (यज) यज्ञ कर, दान पुण्य के कार्य कर ।

राजा सबका रक्षक विद्वानों का पुत्र होकर मानो अग्नि में अग्नि के समान प्रविष्ट होकर खूब तेजस्वी होकर विचरता है। वह प्रमाद रहित होकर उत्तम रीति से दान करे। अपने अधिकारी देव पुरुषो को उनका वेतन आदि देने में भी और विद्वानों को अन्न वस्त्र देने में आलस्य न करे ॥ शत० ३ । ४ । १ । २ । ५ ॥

[1]आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शक्वन॒ऽओजिष्ठाय । [2]अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशस्त्यभिशस्तिपाऽअनभिशस्तेन्यमञ्जसा सत्यमुपगेषꣳ स्विते मा धाः ॥ ५ ॥

वायुविद्युद् आज्य च देवता । (१) आर्षी उष्णिक् । ऋषभः ।
(२) भुरिगार्षी पंक्तिः । पञ्चम ॥

भा०—हे सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम पुरुष ! मैं (त्वा) तुझको अपना (आपतये) चारों तरफ से, सब प्रकार से रक्षक होने के लिये, (परिपतये) सब स्थानों पर पालकरूप से, (तनूनप्त्रे) शरीर के रक्षकरूप से, (शक्वने) शक्तिमान्, (शाक्वराय) शक्तिशालियों के भी ऊपर उनके अधिपतिरूप से

५—विद्युद् देवता । द० । 'आपतये त्वा । गृह्णामि परिपतये त्वा गृ०', ०शक्मन्नोजि०' 'सुविते मा धाः' इति काण्व० ॥

विराजने के लिये (गृह्णामि) तुझे स्वीकार करता हूं । हे राजन् सब से मुख्य उत्कृष्ट पुरुष ! तू (अनाधृष्यम्) कभी भी पराजित न होने वाला (देवानाम्) देव, युद्धविजेता पुरुषों का (ओजः) शरीर में ओज के समान परम बल है । जो (अनभिशस्ति) कभी विनाश नहीं किया जा सकता, (अभिशस्तिपा) सब बाधाओं, पीड़ाओं और आघातों से रक्षा करने वाला और (अनभिशस्तेन्यम्) विपत्ति, घातप्रतिघात से रहित, निर्विघ्न मार्ग में सबको लेआने, पहुंचा देने वाला है । (अञ्जसा) जल्दी ही या स्पष्टरूप से, प्रकाश रूप से मैं (सत्यम्) अपने सत्य परिपालन के व्रत को (उपगेषम्) प्राप्त होऊं। हे राजन् ! तू (स्विते मा धाः) सज्जनों से प्राप्त होने योग्य उत्तम मार्ग में स्थापित कर ॥

सब लोग अपने राष्ट्र को अजय बना लेने के लिये सत्य शपथ पूर्वक अपने से श्रेष्ठ शक्तिशाली पुरुष को उक्तरूप से अपना सर्वस्व स्वामी वरण करें और उससे द्रोह न करने की प्रतिज्ञा करें । वह उनको उत्तम मार्ग में रक्खे । आधिभौतिक में वायु, अध्यात्म मे प्राण और परमेश्वर पक्ष में भी यह मन्त्र समानरूप से है । इसी मन्त्र से आचार्य का वरण भी शिष्य करे ॥ शत० ३ । ४ । २ । १०–१४ ॥

अग्ने॑ व्रतपा॒स्त्वे व्र॑तपा या तव॑ त॒नूरि॒यꣳ सा मयि॒ यो मम॑ त॒नूरे॒षा सा त्वयि॑ । स॒ह नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्यनु॑ मे दी॒क्षान्दी॒क्षा-प॑ति॒र्मन्य॑ता॒मनु॒ तप॒स्तप॑स्पतिः ॥ ६ ॥

अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मीपङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

भा०—हे अग्ने ! आचार्य ! अथवा परमेश्वर वा राजन् ! आप (व्रतपाः) व्रतों के, सत्य धर्माचरण और प्रजाओं के परस्पर व्यवहार शासन व्यवस्थाओं के पालक हैं, (त्वे) तेरे अधीन मैं (व्रतपाः) व्रतों का

६—'०या मम०' इति काण्व० ॥

पालन करनेहारा होऊं। (तव) आपकी (या) जो (तनूः) विस्तृत शरीर शक्ति है (इयं) यह (सा) वह शक्ति (मयि) मुझ पर शासन करे और (या) जो (मम) मेरे में (तनूः) व्यापक सामर्थ्य है (सा) वह (त्वयि) तुझ में, तेरे अधीन रहे। हे (व्रतपते) व्रतों के पालक ! (नौ) हम दोनों के (व्रतानि) समस्त व्रत (सह) एक साथ रहें। (दीक्षापतिः) दीक्षा का पालक (मे) मुझे (दीक्षाम् अनुमन्यताम्) दीक्षा ग्रहण करने की अनुमति प्रदान करे और (तपः पतिः) तपश्चर्या का पालक, आचार्य और परमेश्वर (तप) मुझे तपो व्रत ग्रहण करने की अनुमति दे। राजा और उसके अधीन प्रतिज्ञाबद्ध भृत्य, सेवक, सहायक एवं सेनापति, सैनिक और आचार्य, शिष्य परस्पर ऐसे प्रतिज्ञा करें। शिष्य इस प्रार्थना से दीक्षा ले तप का पालन करे ॥ शत० ३। ४। ३। १-६ ॥

¹अ॒ꣳशुर॑ꣳशुष्टे देव सोमाप्या॑यता॒मिन्द्रा॑यैकधन॒विदे॑। आ तु॒भ्यमिन्द्र॒ प्याय॑ता॒मा त्वमिन्द्रा॑य प्याय॒स्व। ²आप्याय॑या॒स्मान्त्स॒खीन्त्स॒न्या मे॒धया॑ स्व॒स्ति ते॑ देव सोम सु॒त्याम॑शीय। एष्टा॒ रायः॒ प्रेषे भगा॑य॒ऽऋ॒तमृ॑तवा॒दिभ्यो॒ नमो॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॑म् ॥ ७ ॥

सोमो देवता। (१) आर्षी बृहती। मध्यमः। (२) आर्षी जगती। निषादः ॥ प्रकृतिर्वा छन्दः ॥

भा०—हे (देव सोम) प्रकाशस्वरूप सोम ! सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर या परब्रह्मानन्द ! (ते अंशुः अंशुः) तेरा प्रत्येक अंशु, तेरी प्रत्येक व्यापक शक्ति (एकधन विदे) एक विज्ञान मात्र धन को लाभ करने वाले, (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त ज्ञानसम्पन्न आत्मा को (आप्यायताम्) बढ़ावे, उसको शक्ति प्रदान करे। (इन्द्रः) और वह इन्द्र (तुभ्यम्) तुझे

७—अग्निर्देवतेति माधव। लिंगोक्ता इति० सर्वा०। ०'सुत्यामुदृचमशीय'। ०'नमः पृथिव्यै'। इति काण्व० ॥

(आप्यायताम्) बढ़ावें, (त्वम्) तू (इन्द्राय) इन्द्र को (आप्यायस्व), बढ़ा ! (अस्मान् सखीन्) हम मित्रों को भी (सन्न्या मेधया) सत् स्वरूप परमेश्वर तक पहुंचाने वाली मेधा, धारणावती प्रज्ञा से (आप्यायय) बढ़ा, तृप्त कर । हे (देव सोम) प्रकाश स्वरूप सोम । योग समाधि द्वारा प्राप्त ब्रह्मानन्द रस ! हम (स्वस्ति) सुखपूर्वक (ते) तेरे (सुत्याम्) आनन्द रसकी प्राप्ति को (अशीय) लाभ करें । हे सोम परमेश्वर ! (आ इष्टाः) सब प्रकार से इष्ट (रायः) ऐश्वर्यों को । (इषे) अन्न और उत्तम कामना और (भगाय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (प्र) उत्तम रीति से प्राप्त करें । (ऋतवादिभ्यः) सत्यवादी पुरुषों से हम (ऋतम्) सत्य ज्ञान प्राप्त करें और (द्यावापृथिवीभ्याम्) द्यौ और पृथिवी से हम (नमः) अन्न प्राप्त करें ॥

राष्ट्र पक्ष में—हे सोम राष्ट्र ! तेरा एक अंशु एक मात्र धन के स्वामी राजा को बढावें, या उसके लिये बढे । तुझे इन्द्र राजा बढावे । तू राजा के लिये वृद्धि को प्राप्त हो । हमारे मित्र राष्ट्र को (सन्न्या मेधया) सन्मार्ग-में लेजाने वाली बुद्धि से बढ़ा । सुख पूर्वक हम तेरी (सुत्या) प्रेरक आज्ञा, या शासन व्यवस्था में रह कर इष्ट धनों को प्राप्त करें । उत्तम अन्न ऐश्वर्य लाभ करें । सत्यज्ञानियों से ज्ञान और द्यौ पृथिवी में से अन्न प्राप्त करें । इसी प्रकार हे सोम ! हे शिष्य ! एक मात्र विज्ञान के धनी आचार्य के लिये तेरा प्रत्येक अंग बढ़े, तुझे वह बढ़ावे, तू उसे बढ़ावे । हमारे स्नेहियों को सन्मार्गगामिनी बुद्धि से बढ़ा । तेरी ज्ञान प्राप्ति में हम धन प्राप्त करें । तू ज्ञानियों से ज्ञान प्राप्त कर । द्यौ और पृथिवी से बल, धन, अन्न प्राप्त कर । इस प्रकार भिन्न २ प्रकरण में मन्त्रार्थ जानना चाहिये ॥

[1]या ते॑ऽअग्नेऽयःश॒या त॒नूर्वर्षि॑ष्ठा गह्वरे॒ष्ठा । उ॒ग्रं वचो॒ऽअपा॑-वधीत्त्वे॒षं वचो॒ऽअपा॑वधीत् स्वाहा॑ । [2]या ते॑ऽअग्ने रजःश॒या त॒नूर्वर्षि॑ष्ठा गह्वरे॒ष्ठा । उ॒ग्रं वचो॒ऽअपा॑वधीत्त्वे॒षं वचो॒ऽअपा॑वधीत्

स्वाहा। या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचो अपावधीत्त्वेषं वचो अपावधीत् स्वाहा ॥ ८ ॥

अग्निर्देवता । (१) पूर्वस्य विराड् आर्षी बृहती । (२) निचृदार्षी बृहती । मध्यम. ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! राजन् ! (या) जो (ते) तेरी (तनूः) व्यापक शक्ति (अयः शया) अयस्=अर्थात् निम्न श्रेणी की प्रजाओं में प्रसुप्त रूप मे विद्यमान, (वर्षिष्ठा) नाना सुखों की वर्षा करने वाली (गह्वरेष्ठा) प्रजा के हृदयों में बसी है. वह शत्रुओ के (उग्रं वचः अपावधीत्) उग्र भयकारी वचन का नाश करती है । और (त्वेषं वचः) प्रदीप्त क्रोध पूर्ण वचन को (अपावधीत्) नाश करती है । उसी प्रकार हे अग्ने ! (या ते तनूः) जो तेरी विस्तृत शक्ति (रजः शया) रजस्, अर्थात राजस, क्रियाशील मध्यम श्रेणी के लोगों में व्याप्त है वह भी (वर्षिष्ठा) अति सुख वर्षक या बड़ी विस्तीर्ण और (गह्वरेष्ठा) निगूढ़ है । (उग्रं वच० इत्यादि) वह भी शत्रु के भयंकर और तीखे वचनों का नाश करती है । इसी प्रकार हे (अग्ने) राजन् ! (या ते तनूः) जो तेरी विस्तृत शक्ति (हरि-शया) हरणशील या ज्ञानवान् पुरुषों के भीतर या हरणशील, पशु और सवारियों में, (वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा) अति विस्तृत और निगूढ़ रूप से विद्यमान है वह भी (उग्रं वच. अपावधीत्, त्वेषं वच. अपावधीत्) शत्रु के उग्र और तीक्ष्ण वचनों का नाश करती है । (स्वाहा) वह शक्ति राजा का उत्तम वचन ज्ञान रूप ही है ॥

विद्युत् और अग्नि पक्ष में—हे अग्ने ! तेरी जो (तनूः) शक्ति (अयः शया) लोहादि धातु में है और तेरी शक्ति (रजःशयाः) सूक्ष्म परमाणुओं में विद्यमान है और जो (हरिशया) तीव्रगतिमान् विद्युत्, प्रकाश, ताप आदि में विद्यमान है वह (वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा) अति बलवती और बहुत

निगूढ है। वह भी (उग्रं) अति भयंकर (वचः) शब्द (अपावधीत्) उत्पन्न करती है। (त्वेषं वचः अप अवधीत्) तीव्र वचन या शब्द या तेजोमयरूप उत्पन्न करने में समर्थ है। (स्वाहा) वह शक्ति उत्तम रीति से सब पदार्थों के भीतर विद्यमान है ॥

परमेश्वर के पक्ष में—हे अग्ने! परमात्मन्! जो तेरी शक्ति (अयःशया) दिशाओं में या इस भूलोक में, (रजशया) समस्त लोकों में और (हरिशया) द्यौलोक या आदित्य में व्यापक है वह (वर्षिष्ठा) सबसे महान् और (गह्वरेष्ठा) सबके भीतर गुप्तरूप से विद्यमान है। वह (उग्रं-वच. अपावधीत्) बड़े वलवान् वचन या विज्ञान को प्रकट करती है। (त्वेषं वच अपावधीत्) वह बड़े तीव्र वचन अर्थात् सुतीक्ष्ण ज्ञान को प्रकट करती है ॥ शत० ३ । ४ । ४ । २३–२५ ॥

इस मन्त्र में कुछ शब्दों के स्पष्टीकरण नीचे लिखे उद्धरण, से स्पष्ट करते हैं—'अयः'=दिशो वा अयस्मय्यः। तै० ३ । स ६ । ५ । विशः एतद् रूपं यदय. । श० १३ । ३ । २ । १६ ॥ भूलोकस्य रूपमयस्मय्यः । तै० ३ । ७ । ६ । ५ ॥ 'रज.'–द्यौर्वै तृतीयं रज । श० ६ । ७ । ४ । ५ ॥ इयं रजता । तै० १८ । ७ । ८ ॥ अन्तरिक्षस्य रूप रजता. । तै० ३ । ७ । ६ । ५ ॥ राष्ट्रं हरिणः । श० १३ । २ । ६ । ८ ॥ हरिणी हि द्यौः । श० १४ । १ । ३ । २७ ॥ विड् वै हरिणी । तै० ३ । ६ । ७ । २ ॥ हरिश्रियः पशवः । तां० १५ । ३ । १० ॥

[१]तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । [२]विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअङ्गिर आयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभोनामाग्ने ऽअङ्गिर आयुना [३]नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो

नामाग्नेऽअङ्गिर ऽआयुंना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे । ४अनु त्वा देववीतये ॥६॥

पृथिवी अग्निश्च देवते । (१) भुरिगार्षी गायत्री छन्दः । षड्जः । (२) भुरिग् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः । (३) । निचृद् ब्राह्मी जगती, निषादः स्वर । याजुषी अनुष्टुप्गाधारः ॥

भा०—(१) (तप्तायनी मे असि) हे पृथिवि ! तू तप्त, भूख आदि से पीड़ित या आधिदैविक उत्पात, हिम वर्षा, आतप आदि से पीड़ित पुरुप को अयन अर्थात् शरणरूप में प्राप्त होनेवाली है । अथवा 'तप्त' प्रतप्त या ताप देनेवाले अग्न्युत्पादक पदार्थों को देनेवाली है । तू (वित्त-अयनी मे असि) हे पृथिवि ! मेरे समस्त वित्त, धन ऐश्वर्य आदि भोग्य पदार्थों और ज्ञातव्य पदार्थों के अयनी अर्थात प्राप्त करानेवाली है । (मा) मुझको (नाथितात्) संताप, पीड़ा से (अवतात्) बचा । (व्यथितात् मा अवतात्) व्यथा, कष्ट, शत्रुओं और दुष्ट जीवों के आक्रमण आदि से बचा । (नभः नाम) नभः, सब प्रजाओं को अपने अधीन बांधने वाला, अथवा दुष्टों को बांधने वाला (अग्निः) अग्रणी नेता पुरुष (नभः नाम) 'नभस्' नाम से प्रसिद्ध है, वह तुझे (विदेत्) प्राप्त करे । हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी नेता पुरुष ! हे (अङ्गिरः) शरीर में रस या प्राण के समान समाज शरीर के प्राणभूत पुरुष ! तू (आयुना नाम्ना) समस्त प्राणियों को एकत्र कर मिलाने और रक्षा करने द्वारा होने से 'आयु' है, उसी 'आयु' नाम से प्रसिद्ध होकर (इहि) यहां प्राप्त हो । (यः) जो तू (अस्याम्) इस (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (असि) सामर्थ्यवान् है और (यत्) जो (ते) तेरा (अनाधृष्टं) शत्रुओं से न धर्षण किया जाने योग्य, दुःसह (यज्ञियम्) परस्पर संगतिकरण करने का

६—तप्तायनी चत्वारि पार्थिवानि । सर्वा० । '०मा व्यथितमवता न्मा नाथितम्' । 'विदेरग्ने०' ०'दधे विदेरग्नेर्न०' । इति काण्व० ॥

बल कर्म है (तेन) उससे (त्वा) तुझे (आदधे) स्थापित करूं। इसी प्रकार (नभः नाम अग्निः विदेत्) सबको व्यवस्था में बांधने वाला अग्रणी इस पृथिवी को प्राप्त करें। हे नभ नाम वाले अग्ने ! हे अङ्गिरः ! ज्ञानवान् ! तू 'आयु' नाम से प्रसिद्ध है। तू सबको एकत्र करने में समर्थ है। तू (द्वितीयस्याम् पृथिव्याम् असि) दूसरी पृथिवी, अन्तरिक्ष में भी सामर्थ्य-वान् है। वहां जो तेरा अप्रतिहत बल है उससे तुझे स्थापित करूं। इसी प्रकार हे अग्ने ! तू 'नभ' नामक है (अङ्गिरः) सूर्य के समान तेजस्वी तू सबको जीवनों का प्रदाता 'आयु' इस नाम से (तृतीयस्याम् पृथिव्याम् असि) तीसरी पृथिवी-द्यौ में सूर्य के समान तेजस्वी है। हे राजा (अना धृष्टं नाम यज्ञियम्) जो अप्रतिहत, अविनाशी बल है (तेन त्वा दधे) उससे तुझे स्थापित करूं और (देववीतये) देव, विद्वान्, शक्तिमान पुरुषों की रक्षा के लिये दिव्य पदार्थों के प्राप्ति या भोग के लिये भी (त्वा अनुदधे) तुझे पुनः स्थापित करूं। अर्थात्—पृथिवी में जल नामक 'नभ.' अग्नि है, अन्तरिक्ष में, वायु या विद्युत् और द्यौलोक में सूर्य तीनों 'नभः' हैं। उनके समान राजा शक्तिशाली, सबको मिलाने घुलाने वाला, तेजस्वी प्राणप्रद होकर 'आयु' नाम से प्रजा को प्राप्त हो। विद्वान् पुरोहित उसको अप्रतिहत, सर्वोच्च तेज से सम्पन्न करे, उसे राज्य पर स्थापित करे। वह उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों पर शासन करे और समस्त देव, विद्वान्, शक्तिमान् पुरुषों की रक्षा करे ॥

विद्युत् पक्ष में—विद्युत् मेरे लिये वित्तायनी, ऐश्वर्य के देनेवाली और धनप्रद है। वह ऐश्वर्य से या पीड़ा से हमें रक्षा करे। वह प्रकाशरूप होने से 'नभ.' है। वह शरीर में जाठर अग्निरूप में अंगिरा है। वह जीवनप्रापक होने से 'आयु' नाम से हमें प्राप्त है। उसको मैं अविनाशी रूप जीवन सम्पादक ब्रह्मरूप से यज्ञाग्नि के समान धारण करूं। भौतिक अग्नि 'नभः' अन्तरिक्षस्थ जल को प्राप्त करे। वह अंगार में स्थित होने से 'अंगिरा'। जीवनप्रापक, नाना वस्तुओं को प्राप्त करानेवाला होने से 'आयु' है। इसी

प्रसिद्ध नाम से वह हमें प्राप्त होवे। वह द्वितीय पृथिवी अर्थात् अन्तरिक्ष में है। उस यज्ञ सम्बन्धी अग्नि को मैं धारण करूं। तीसरा अग्नि सूर्य 'नभः' आकाश को प्राप्त है। वह (अंगिराः) व्यापक है। वह भी सर्व पदार्थ प्रापक होने से 'आयु' कहाता है। उसी प्रसिद्ध नाम से हमें प्राप्त हो। वह तृतीय कक्षा में विद्यमान भूमि अर्थात् द्यौलोक में है। उस नाना शिल्प विद्याओं के उपयोगी होने वाले यज्ञिय अग्नि को हम दिव्य गुणों के प्राप्त करने के लिये स्वीकार करें, अपने वश करें।

सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑ कल्पस्व सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑ शुन्धस्व सि॒ꣳह्य॑सि सपत्नसा॒ही दे॒वेभ्यः॑ शुम्भस्व ॥१०॥

गोतमः प्रजापतिर्वा ऋषिः । उत्तरवेदिर्देवता । ब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः स्वरः ॥

भा०—हे सेने ! तू (सपत्नसाही ३) शत्रुओं का विजय करनेवाली (सिंही ३) उनका नाश करनेवाली (असि ३) है। तू (देवेभ्यः) देव राजाओं के लिये (कल्पस्व) शक्तिशाली होकर रह। तू उनके लिये (शुन्धस्व) समस्त कण्टकों को शोधन कर, तू (देवेभ्यः शुम्भस्व) देव, राजाओं को शोभित कर, उनकी शान का कारण बन ॥

वाणी के पक्ष में—तू दोषों के नाश करने और शब्दों के धारा प्रवाह बरसाने या उच्चारण करने से 'सिंही' है और प्रेम सिचन द्वारा, शत्रुओं पर भी अपना अधिकार कर लेने से 'सपत्नसाही' है। तू देव दिव्य गुणवाले पुरुषों, विद्याभ्यासियों और शूरवीर पुरुषों को (कल्पय) समर्थ कर, और (देवेभ्यः शुन्धस्व) देव धार्मिकों को शुद्ध कर। और (देवेभ्यः शुम्भस्व) सुशील पुरुषों को सुशोभित कर। यज्ञ में यह उत्तर वेदी है जो स्त्री और पृथिवी की भी प्रतिनिधि है। इससे उन पक्षों में भी इसकी योजना करनी चाहिये।

१०—वाग् देवता । द० । वेदि० । सर्वा० ॥

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निःसृजामि ॥ ११ ॥

वाग उत्तरवेदिरापश्च देवता । निचृद् ब्राह्मी । धैवतः स्वरः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (इन्द्रघोष) इन्द्र विद्युत् के घोष या गर्जना के समान गर्जना उत्पन्न करने वाले आग्नेयास्त्र का ज्ञाता पुरुष (वसुभिः) राष्ट्र के सुखपूर्वक बसने में कारण रूप, शत्रुनिवारक योद्धाओं द्वारा (पुरस्तात् पातु) आगे से रक्षा करे । (प्रचेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् पुरुष (रुद्रः) शत्रुओं को रुलाने में समर्थ बड़े २ सत्ताधारी सर्दार, नृपतियों क्षत्रिय राजाओं के सहित (पश्चात्) पीछे से (त्वा पातु) तेरी रक्षा करे । (मनोजवा) मनके वेग के समान वेगवान्, तीव्रगति वाला, अतिशीघ्रगामी रथों का अध्यक्ष, अथवा मानस ज्ञान और विचार से आगे बढ़ने वाला अतिविवेकी पुरुष (पितृभिः) पालन या रक्षा करने में समर्थ वृद्ध ज्ञानी, विचारवान्, ठण्डे दिमाग से सोचने वाले विद्वान् पुरुषों के साथ (त्वा) तुझ राष्ट्रवासी जनको (दक्षिणतः पातु) दक्षिण अर्थात् दायें से रक्षा करे। और (विश्वकर्मा) समस्त प्रकार के शिल्पों को रचनेहारा पुरुष विश्वकर्मा (आदित्यः) आदित्य, ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले, व्यवहारकुशल वैश्यों द्वारा (उत्तरतः त्वा पातुं) उत्तर अर्थात् बायें से तेरी रक्षा करे । और मैं राजा (इदम्) इस प्रकार (तप्तम्) तपे हुए खूब क्रोध और रोष से पूर्ण शत्रु के आक्रमण को न सहन करने वाले (वा) उनको वारण करने वाले बलको (यज्ञात्) सुसंगठित देश से (बहिर्धा) बाह्य देश की रक्षा के लिये (निःसृजामि) नियुक्त करूं ॥

राष्ट्र की रक्षा के लिये वीर सुभट, राजा, नरपति लोग, विचारवान्

११—वाग् देवता । द० । उत्तर वेदि. आपश्च । सर्वा० ।

पुरुष और शिल्पी और व्यापारी अपनी २ दिशा में रक्षा करें और उग्र, तीव्र या तप्त स्वभाव के लोगों को राष्ट्र की रक्षार्थ बाहर की छावनियों में लगावें ॥

इसके अतिरिक्त—(इन्द्रघोष) परमेश्वर की वेदवाणी का उपदेश हमारी आगे से रक्षा करे। प्रेचता उत्कृष्ट ज्ञानी पुरुष रुद्र ब्रह्मचर्यवान् पुरुषों सहित हमें पीछे से बचावे। 'मनोजवा' मनन बलवाले लोग ज्ञानी पालकों द्वारा दायें से और आदित्य ब्रह्मचारियों से (विश्वकर्मा) वह सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर बायें से रक्षा करे। अध्यात्म में इन्द्र घोष, आत्मा का भीतरी मुख्य प्राण। वसु गौण प्राण। 'प्रचेताः' बुद्धि। मनोजव=मन, विश्वकर्मा, आत्मा। वसु, रुद्र, पितर, आदित्य ये सभी प्राण हैं। इनकी सहायता से वे शक्तियां हमें बचावे। (तप्तं वाः) क्रोध, शोक और दुःख को हम अपने यज्ञ अर्थात् आत्मा से बाहर करें ॥

सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳह्यस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा। भूतेभ्यस्त्वा ॥१२॥

वाक् स्रुक् च देवते। भुरिग् ब्राह्मी पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे वाक्! तू (स्वाहा) उत्तम रूप से अचारण करने योग्य और (सिंही असि) अविद्या का नाश करनेवाली होने से 'सिंही' है। तू (सिंही असि) 'सिंही' क्रूरता अर्थात् अज्ञान का नाशक है तू (आदित्यवनिः) बारह मासों को प्राप्त होनेवाली, उनका वर्णन करनेवाली ज्योतिष् विद्या जिस प्रकार उनका उत्तम वर्णन करती है। उसी प्रकार प्रजा के भीतर, कर-आदान करने वाले १२ प्रकार के राजाओं को उचित रीति से वर्णन करनेवाली (स्वाहा) वाणी है। तू भी (सिंही असि) उनके क्रूरता का नाश करती है। तू (ब्रह्मवनि) ब्राह्मणों को प्राप्त होती और (क्षत्रवनिः)

१२—भूतेभ्यः स्रुक्। सर्वा० ॥

क्षत्रियों को प्राप्त होती है । तू भी (स्वाहा) उत्तम उपदेशमयी वाणी है। और (सिंही असि) चोर दस्युओं के नाशक होने और अज्ञान का नाश करनेवाली होने से या शत्रुओं के पराभव करनेवाली होने से नीतिरूप 'सिंही' है । तू (सिंही) प्रजा के समस्त दुःखदायी चोर आदि दुष्ट और रोगों के नाश के उपाय बतलाने वाली होने से सिंहीरूप से ही (सुप्रजा-वनी) उत्तम प्रजाओं को प्राप्त कराने वाली (असि) है । तू (स्वाहा) उत्तम उपदेश देनेवाली होकर (रायस्पोषवनि) ऐश्वर्य समृद्धि को प्राप्त करानेवाली है । (सिंही असि) तू सब दुःखों को नाश करनेवाली 'सिंही' है । तू (स्वाहा) उत्तम ज्ञानोपदेश करनेवाली होकर (यजमानाय) विद्वानों के पूजा सत्कार करने हारे दानशील पुरुष के समीप (देवान्) विद्वान्, ज्ञानी, देव पुरुषों को प्राप्त कर । हे वाणि ! मैं तुझे (भूतेभ्यः) समस्त प्राणियों के उपकार के लिये प्रयोग करूं ॥

राजशक्ति या व्यवस्था के पक्ष में—तू शत्रु नाशक सिंही है । (स्वाहा) उत्तम रीति से प्रयोग की जाकर (आदित्यवनिः) तू आदित्य–विद्वानो या आदित्य अर्थात् धनसंग्रही वैश्यों को वृत्ति देनेवाली है । तू (ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः) ब्राह्मणों और क्षत्रियों की वृत्ति देती है । तू (सुप्रजावनिः रायस्पोषवनिः) उत्तम प्रजाओं का वृत्ति देनेवाली, धन समृद्धि के देनेवाली है । तू सर्वदा नाशक 'सिंही' है । तू (स्वाहा) उत्तम रीति से प्रयोग की जाकर ही (यजमानाय) दानशील राजा के पास (देव) विद्वानों, विजयी सुयोद्धाओं को प्राप्त कराती है (भूतेभ्यः त्वा) तेरा उत्तम उपयोग मैं समस्त प्राणियों के हित के लिये करूं । राज शासनव्यवस्था भी एक विद्या या दण्ड नीति है वही यहां सिंही, वाग्रूप में कही गई है ॥

यदसुराणां लोकानादत्त तस्मादादित्यः । तै० ३ । ७ । २१ । २ ॥
एष उद्यन् एव क्षत्रं वीर्यमादत्त तस्मादादित्यो नाम श० २ । १ । २ । १८ ॥

असौ वा आदित्यः पाप्मनोऽपहन्ता श० १३ । ८ । १ । ११ ॥ आदित्य लोकस्तद्दिव्यं क्षत्रम् । सा श्री । तद् ब्रध्नस्य विष्टपम् तत् स्वाराज्यमुच्यते ॥

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षन्दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि ॥ १३ ॥

यज्ञो देवता । भुरिगार्षी अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (ध्रुवः असिः) तू निश्चल, स्थिर है । तू (पृथिवीं दंह) पृथिवी को, राज्य की भूमि को, पृथिवीवासी प्रजा को बढ़ा, विस्तृत कर, उन्नत कर । तू (ध्रुवक्षित् असि) ध्रुव या स्थिर पदार्थों को या स्थिर पदाधिकारियों को, स्थिर स्थायी कार्यप्रबन्धों, नियमों को स्थापन करने वाला है । तू (अन्तरिक्षम् दंह) अन्तरिक्ष को और उसमें विद्यमान शक्ति मेघ, वायु आदि पदार्थों को (दंह) बढ़ा, उन पर वशकर के उन शक्तियों को अधिक लाभदायक कर । तू (अच्युतक्षित् असि) अच्युत, विनाश रहित, स्थिर सिंहासन पर विराजमान, या नाशरहित स्थिर पदों या पदार्थों का स्थापक है । तू (दिवं दंह) द्यौलोकस्थ प्रकाश आदि पदार्थ को और अधिक शक्तिशाली कर । तू (अग्ने) अग्नि, विद्युत् आदि तेजोमय पदार्थ को (पुरीषम्) पूर्त्ति करने वाला है । अथवा (अग्नेः पुरीषम् असि) अग्नि, शत्रुओं के संताप देनेवाले महान् सामर्थ्य या सेनाबल का 'पुरीष' एकमात्र परमेश्वर्यवान् या प्राणरूप राजा है । अथ यत् पुरीषं स इन्द्रः । श० १० । ४ । १ । ७ ॥ स एष प्राण एव यत् पुरीषम् । श० ८ । ७ । ३ । ६ ॥

यज्ञ पक्ष में—यज्ञ, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यौ तीनों लोकों को बढ़ावे । स्थिर पदार्थों को प्रदान करे । वह (अग्ने पुरीषम् असि) अग्नि विद्युत् आदि की और पशु सम्पत्ति की पूर्त्ति करो । अध्यात्म यज्ञ पक्ष में—हे आत्मन् !

१३—यज्ञो देवता । द० । 'अग्ने' सम्भारा गुल्गुल्वादयः । सर्वा० ॥ ०दृꣳहाग्नेर्भस्मासि पुरीषमसि ।' इति काण्व० ॥

शरीर के पृथिवी भाग और, अन्तरिक्ष, मध्य भाग, द्यौः, मस्तक तीनों को पुष्ट कर। स्थिर अंगों में निवास कर, तू जाठर अग्नि का भी प्राण या प्रणेता है। ईश्वर पक्ष में—वह ध्रुव नित्य परमात्मा तीनों लोकों को बढ़ाता, विस्तार करता है। वह सब नित्य पदार्थ आकाश आदि में व्यापक हैं। वह अग्नि तेजोमय सूर्यों का पुरीष=प्रणेता प्राण या राजा है।

युञ्जते मन॑ उत युञ्जते धियो विप्रा विप्र॑स्य बृह॒तो वि॑प॒श्चितः। वि होत्रा॑ दधे वयुना॒विदेक॒ ऽइन्म॒ही दे॒वस्य॑ सवि॒तुः परि॑ष्टुतिः॒ स्वाहा॑ ॥ १४ ॥

श्यावाश्व ऋषिः। सविता देवता। स्वराडार्षी जगती। निषादः ॥

भा०—(बृहत) उस महान् (विपश्चित) सर्वज्ञ, अनन्त विद्या के भण्डार, (विप्रस्य) मेधावी, विविध कामों को पूर्ण करने वाले नाना फलप्रदाता, परमेश्वर के ध्यान में (विप्रा·) मेधावी, (होत्रा.) अपने आत्मा की उसमें आहुति करने वाले, या प्राणापान की आहुति देने वाले पुरुष उसमें अपने (मन. युञ्जते) मन को योग द्वारा युक्त करते हैं। (उत) और (धिय) अपने बुद्धियों, वाणियों और समस्त कर्मों या चेष्टाओं या क्रियाओं को (युञ्जते) उधर ही लगा देते हैं। वे उसका (विदधे) विशेष रूप से वर्णन करते हैं। या मैं उसका (विदधे) विशेष रूप से या नाना प्रकार से वर्णन करूं। वह (वयुनावित्) समस्त उत्तम कर्मों और विज्ञानों का ज्ञाता (एक. इत्) एक ही है। उस (सवितु) सब के उत्पादक, सर्वप्रेरक (देवस्य) देव, सर्वद्रष्टा, सर्व-प्रदाता परमेश्वर की (मही परिस्तुति.) बड़ी भारी स्तुति, या महिमा है। (स्वाहा) वह सत्य वाणी का उपदेष्टा है, या सत्यवाणीस्वरूप है॥

राज पक्ष में—सब विद्वान् अपने में सबसे अधिक विद्वान् ब्राह्मण, मेधावी के प्रति अपने और कर्मों को जोड़ें, उसके अधीन रहें। वह सब

शासन कार्यों का ज्ञाता होकर रहे। उसी सब के प्रेरक, देव, विद्वान राजा की आज्ञा सर्वोत्तम रीति से पालन हो ॥

यज्ञ में—मुख्य ब्रह्मा को करके सब ऋत्विज् अपना ध्यान उसकी ओर रखें। वह सबका ज्ञाता, सबका आज्ञापक रहे। यज्ञो वै प्रजापतिः ॥

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥ १५ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः। विष्णुर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री। षड्ज ॥

भा०—(विष्णुः) चर और अचर समस्त जगत् में व्यापक परमेश्वर (इदं) इस समस्त जगत् को (विचक्रमे) विविध रूपों में व्याप्त होकर रचता है और उसने (त्रेधा) तीन प्रकार से इसमें (पदम्) अपने ज्ञान या स्वरूप को (निदधे) स्थापित किया है। और (पांसुरे) जिस प्रकार धूलिमय देश में कोई पदार्थ लुप्त रहता है और बड़ा यत्न करने पर ढूंढने से प्राप्त होता है उसी प्रकार (अस्य पदम्) उसका वह गूढ़ स्वरूप भी (समूढम्) खूब गूढ़ है, सर्वत्र व्यापक है, और मनन निदिध्यासन द्वारा जानने योग्य है। (स्वाहा) उसका उत्तम रीति से ज्ञान करो और उसकी उपासना करो ॥

सत्व, रजस्, तमस् इन तीनों रूपों में परमेश्वर अपनी सर्वत्र शक्ति प्रकट करता है और चतुर्थ निर्गुण रूप भी प्रकृति के परमाणुओं के भीतर ही खूब सूक्ष्म रूप में व्यापक है। [विशेष विवेचना देखो साम-भाष्य० पृ० ७५९] ॥

इरावती धेनुमती हि भूतꣳसूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ॥१६॥

वसिष्ठ ऋषि। विष्णुर्देवता। स्वराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवत ॥

१५—'समूल्हम०' इति काण्व०।

१६—०'विष्ण एते'० इति काण्व०।

भा०—हे (विष्णो) सर्वव्यापक परमेश्वर ! आप (एते) इन दोनों (रोदसी) द्यौ और पृथिवी को (वि-अस्कम्ना.) विशेष रूप से थाम रहे हो । और (अभित.) सब ओर से (मयूखै) जैसे किसी पदार्थ के चारों ओर खूंटियों या कीलें लगा कर उनमें तान दिया जाता है उसी प्रकार आपने (स्वाहा) अपनी धारण शक्ति से (पृथिवीम्) पृथिवी को भी (दाधर्थ) धारण किया है । ये दोनों द्यौ और पृथिवी आकाश और भूमि (इरावती) अन्न और जल से पूर्ण, (धेनुमती) दुग्ध देने वाली गौओं और रसप्रद रश्मियों से पूर्ण, (सूयवसिनी) उत्तम अन्न चारे से पूर्ण (भूतम्) हैं । और (मनवे) मननशील पुरुष को सब प्रकार के पदार्थ (दशस्या) प्रदान करती है । अथवा, (दशस्या=दशस्याय) देने योग्य (मनवे) ज्ञान के लिये (एते) ये सब हम सबको बतलावें ।

दम्पति के पक्ष में—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (इरावती धेनुमती सुयवसिनी मनवे दशस्या भूतम्) अन्न गोओं और चारे आदि नाना पदार्थों से समृद्ध होकर ज्ञानवान् पुरुष के लिये दानशील रहो और हे विष्णो ! प्रजापते पुरुष । तू (रोदसी व्यस्कभ्ना) अपने पूर्वज पिताओं और अगली सन्तान इन दोनो को थाम । और (मयूखै.) किरणों से (स्वाहा) स्वयं वरण पूर्वक (अभित. पृथिवीं दाधर्थ) सब ओर से अपने प्रजोत्पत्ति की एक मात्र पृथिवी रूप स्त्री को धारण पोषण कर । यही योजना राजाप्रजापक्ष में समझनी चाहिये । वे दोनों अन्न पशु आदि से समृद्ध हों और राजा पृथिवी को (मयूखैः) करों द्वारा पालन करे ॥

मयूखै —माङ् ऊखो मय च उणादि सूत्रम् । मिमीते मान्यहेतुर्भवति इति मयूख । किरण कान्ति करो ज्वाला वा । इति दयानन्दः ॥

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं यज्ञं

नयतं मा जिह्वरतम् । स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्ये ऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ॥ १७ ॥

असद्युरौ हविर्धाने, विष्णुर्वा देवता । स्वराट् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों (देवश्रुतौ) दिव्य विद्याओं में प्रसिद्ध, विद्वानों के बीच प्रसिद्ध, अथवा विद्वानों से बहुत शिक्षा प्राप्त होकर (देवेषु आ घोषतम्) देव, विद्वानों के बीच में अपने गृहस्थ धारण करने के उत्तम संकल्प को आघोषित करो, ऊंचे स्वर से निवेदित करो । आप दोनों (प्राची) सदा उत्तम, ऊंचे मार्ग पर, प्रकाश की ओर जाते हुए (प्र इतम्) आगे बढ़ो और (अध्वरं) हिंसा रहित शुभ कर्म का (कल्पयन्ती) अनुष्ठान करते हुए आप दोनों (यज्ञम्) यज्ञ को, आत्मा को, या गृहस्थ कार्य को, या परस्पर की संगति को (ऊर्ध्वम्) ऊंचे पदतक (नयतम्) पहुंचा दो और परस्पर (मा जिह्वरतम्) कभी कुटिलता का व्यवहार मत करो। और (स्वं) अपने (गोष्ठं) बात चीत (आ वदतम्) एक दूसरे को कहो, परस्पर सुख से वार्तालाप करो । या (स्वं गोष्ठम् आवदतम्) दोनों के अपने धन और गौशाला आदि स्थानों को अपना स्वीकार करो । (देवी दुर्ये) दिव्य रमण योग्य, सुखदायी घरमें रहते हुए (आयुः) अपने जीवन को (मा निर्वादिष्टम्) नष्ट मत करो । (प्रजाम्) अपनी प्रजा सन्तान को (मा निर्वादिष्टम्) नष्ट मत करो । (अत्र) इस संसार में । (पृथिव्याः) पृथिवी के (वर्ष्मन्) वृष्टि युक्त, हरे, भरे लम्बे चोड़े प्रदेश में (रमेथाम्) दोनों आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करें । राजा प्रजा, गुरु शिष्य आदि सब युगलों को यह उपदेश समान है ॥

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।

१७—वसिष्ठ ऋषि । विष्णुर्देवता । ब्र० । देवश्रुतावद्धुरौ । सर्वा० ॥

योऽअस्कभायदुत्तरꣳसुधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥ १८ ॥

औतथ्यो दीर्घतमा ऋषिः । विष्णुर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यः) जो (पार्थिवानि) पृथिवी या अन्तरिक्ष में विदित, या पृथिवी के (रजांसि) समस्त लोकों को (विममे) नाना प्रकार से बनाता है और (यः) जो (उत्तरं सधस्थम्) ऊपर के लोकों को या उत्कृष्ट कारण को भी (अस्कभायत्) थाम रहा है, अपने वश में करता है। और जो (विचक्रमाणः) विविध रूप से क्रमण करता हुआ, सर्वत्र कारण के अवयवों को विविध प्रकार से संयुक्त करता हुआ (त्रेधा) तीन प्रकार से तीनों लोकों में, अग्नि, वायु, सूर्य इन तीन शक्तियों द्वारा सर्वत्र व्यापक होता हुआ, वह (उरुगायः) महान् व्यापक, सबका स्तुत्य, या सबको वेद द्वारा समस्त पदार्थों का उपदेष्टा है। उस (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (नुकम्) ही (वीर्याणि च) वीर्यों या नाना सामर्थ्यों का (प्रवोचम्) उत्तम रीति से प्रवचन करूं, औरों को सिखाऊं और हे पुरुष ! उस (विष्णवे) परमेश्वर की उपासना के लिये (त्वा) तुझको मैं उपदेश करता हूं ॥

दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरन्तरिक्षात् । उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ॥ १९ ॥

विष्णुर्देवता । निचृदार्षी जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

भा०—हे (विष्णो) यज्ञरूप प्रजापते ! चराचर में व्यापक परमेश्वर ! (दिवः) आकाश, विद्युत् अग्नि से (उत वा महः) बड़ी भारी (पृथिव्याः) और पृथिवी से, हे (विष्णो) परमेश्वर ! (उरोः) विशाल (अन्तरिक्षात्)

१९–२१ दीर्घतमा ऋषिः । द० ॥

अन्तरिक्ष से तू हमारे (उभा हस्ता हि) दोनों हाथों को (वसुना) ऐश्वर्य से (आ पृणस्व) पूर दे । (दक्षिणात्) दायें (उत) और (सव्याद्) वायें से भी तू हमें नाना प्रकार का धन (आ प्रयच्छ) प्रदान कर । हे परमेश्वर ! (त्वा) तेरी हम (विष्णवे) यज्ञ या उपासना के निमित्त प्रार्थना करते हैं । अथवा (विष्णवे) आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष से समस्त ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले विष्णु, व्यापक परमेश्वर के लिये (त्वा) तुझ पुरुष को मैं उपदेश करता हूं ॥

राजा के पक्ष में—वह तीनों लोकों से ऐश्वर्यमय विज्ञान और धन का संग्रह करके प्रजा को प्रदान करे । हे पुरुष ! मैं तुझे ऐसे राज्य के कार्य में नियुक्त करूं ॥

प्र तद्विष्णु॑ स्तवते वी॒र्ये॑ण मृ॒गो न भी॒मः कु॑च॒रो गि॑रि॒ष्ठाः ।
यस्यो॒रुषु॑ त्रि॒षु वि॒क्रम॑णेष्वधिक्षि॒यन्ति॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ २० ॥

औतथ्यो दीर्घतमा ऋषि । विष्णुर्देवता । विराड् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(यस्य) जिसके (उरुषु) महान् (त्रिषु विक्रमणेषु) तीन प्रकार के विक्रम, तीन लोक या सत्व, रजस, तमस् त्रिगुणात्मक सर्ग में (विश्वा भुवनानि) समस्त उत्पन्न होने वाले पदार्थ और लोक (अधि-क्षियन्ति) निवास करते हैं । (तद्) वह (विष्णु) व्यापक परमेश्वर अपने महान् (वीर्येण) सामर्थ्य के कारण (कुचरः) वनादि में विचरने वाले (गिरिष्ठा) पर्वतों के वासी (भीम. मृगः न) भयानक व्याघ्र या सिंह के समान (कुचरः) पृथिव्याकाशादि में व्यापक (गिरिष्ठा) समस्त वेदवाणियों में प्रतिपाद्यरूप से स्थित (प्र स्तवते) सबसे उत्कृष्टरूप से वर्णन किया जाता है या वह (प्र स्तवते) सबको उपदेश देता है ॥

राजा के पक्ष में—जिस राजा के महान् प्रज्ञा, उत्साह और शक्ति तीन प्रकार के विक्रमों के वश में समस्त लोक प्राणी बसते हैं वह वनचर

गिरिगुहावासी सिंह के समान भया वह अपने वीर्य के कारण ही स्तुति को प्राप्त होता है ।

विष्णो॑ र॒राट॑मसि॒ विष्णोः॒ श्नप्त्रे॑ स्थो॒ विष्णोः॒ स्यूर॑सि॒ विष्णो॑र्ध्रु॒वो॑ऽसि । वै॒ष्ण॒वम॑सि॒ विष्ण॑वे त्वा ॥ २१ ॥

विष्णुर्देवता ॥ भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे जगत् ! तू (विष्णोः रराटम् असि) विष्णु, व्यापक परमेश्वर से उत्पन्न होता और उसके द्वारा वेदरूप से प्रकाशित किया जाता है । हे जड़ और चेतन दोनों प्रकार के पदार्थो ! तुम दोनो (विष्णोः) विष्णु, व्यापक परमेश्वर के (श्नप्त्रे स्थः) दो प्रकार की शुद्ध शक्तियें हो । हे वायो ! तू सब प्राणियों के भीतर (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के शक्ति से ही (स्यूः असि) सीनेवाला परम सूत्र है । हे आत्मन् ! तू (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के सामर्थ्य से ही (ध्रुवः असि) सदा ध्रुव, अविनाशी है । हे समस्त जगत् ! (वैष्णवम् असि) तू उसी परमेश्वर का बनाया हुआ है । हे पुरुष ! (त्वा विष्णवे) तुझको मैं व्यापक परमेश्वर की अर्चना के लिये नियुक्त करता हूं ।

राजपक्ष में—(विष्णोः) व्यापक राज्यव्यवस्था का हे राजन् ! तू (रराटम् असि) ललाट मस्तक भाग है । हे दोनों विद्वानो ! तुम उस राज्य के मुख्य भाग हो । हे पुरुष ! तू राज्य का सीवन करने वाला हो ! हे राजन् ! तू (विष्णोः ध्रुवः असि) राज्य का ध्रुव, संस्थापक स्तम्भ है । हे राज्य के प्रजाजन ! या राष्ट्र ! तू (वैष्णवम् असि) विष्णु अर्थात् यज्ञ सम्बन्धी है या उस (विष्णवे त्वा) तुझे उस व्यापक शासन के लिये ही व्यवस्थित करता हूं ।

[1]दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । [2]आद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वा अपि॑ कृन्तामि । बृ॒हन्न॑सि

'बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ॥ २२ ॥

सविताश्वि-रक्षौघ्नभुपरवाश्च यज्ञो वा देवता । (१) साम्नीपक्ति । पञ्चम
(२) भुरिगार्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे स्त्री ! (सवितुः) सर्वोत्पादक (देवस्य) परमेश्वर के (प्रसवे) इस ऐश्वर्यमय संसार में (अश्विनोः) स्त्री पुरुष, जायापति की बाहुओं और (पूष्णः) पुष्टिकारक पोषक पति के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (आददे) स्वीकार करता हूं । हे स्त्रि ! तू (नारी असि) नारी गृहस्थ के समस्त कार्यों की नेत्री है और (अहं) मैं पुरुष तेरा पति (इदम्) यह इस प्रकार से (रक्षसां ग्रीवा. अपि कृन्तामि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों की गर्दनों को काटूं । हे विद्वान् पुरुष ! तू (बृहन् असि) हम में सबसे बड़ा, ज्ञानवृद्ध है । तू (बृहद्-रवा) बडा भारी उपदेशक है । तू (इन्द्राय) इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा को (बृहतीं वाचम् वद) बृहती वेदवाणी का उपदेश कर ॥

सेना के पक्ष में—राजा के राज्य में मैं सेनापति उस 'नारी' अर्थात् मनुष्यों की बनी सेना को अपने वश करूं । मैं दुष्ट पुरुषों की गर्दन काटूं । विद्वान् पुरुष राजा को वेदवाणी या राज नीति का उपदेश करें ॥

'रक्षोहणं बलगहनं २वैष्णवीमिदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि ३यं मे सबन्धुर्यमसबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्याङ्किरामि ॥ २३ ॥

वलग उत्कृत्या कृत्या वा विष्णुर्यज्ञो वा देवता (१) याजुषी बृहती (२) स्वराड्
ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः ॥

२२—'० रक्षसो ग्रीवा०' इति काण्व० ।

२३—यज्ञो देवता । दया० । इदमह तद्वलगमुद्वपामि (४), कृत्यां किरामि इति काण्व० ।

भा०—पूर्व मन्त्र से 'इन्द्राय बृहतीं वाच वद' इसकी अनुवृत्ति आती है। हे विद्वान् पुरुष ! तू (रक्षोहणम्) राक्षस, दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाली (वलगहनम्) बलग-हन्' अर्थात् गुप्त हिंसा के प्रयोगों को विनाश करने वाली (वैष्णवी) यज्ञ, परस्पर सगतिकारिणी राष्ट्रनीति रूप (बृहतीम्) विशाल वेदवाणी का (वद) उपदेश कर। (अहम्) मैं (इदम्) इस प्रकार (तम् वलगम्) उस गूढ़ हिंसा प्रयोग को (उत् किरामि) खोद कर परे करूं, (यम्) जिस हिंसाकारी प्रयोग को (मे) मेरा (निष्ट्य) सन्तान, पुत्र आदि, (यम्) जिस गुप्त घातक प्रयोग को (अमात्य) मेरा पुत्र और जिसको अमात्य मन्त्री, या मेरे गृहका कोई सम्बन्धी या मेरा साथी, मेरे विपरीत (निचखान) गाड़े। इसी प्रकार (यम्) जिसको (मे समान) मेरे बल विद्या में समान या (असमान) मेरे असमान, न्यून या अधिक बलशाली पुरुष (निचखान) गाड़े (तम् वलगम्) उस गुप्त, सवृत घातक प्रयोग को भी (इदम् अहम्) मैं इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से (उत् किरामि) खोद डालूं। (मे सबन्धु) मेरे कुलशील आदि में बन्धु के समान और (यम्) जिस गुप्त प्रयोग को (असबन्धु) बन्धु जनों से दूसरा व्यक्ति (निचखान) गाड़े (इदम्) यह (अहम्) मैं (त वलगम्) उस गुप्त घातक प्रयोग को भी (उत्किरामि) उखाड़ दूं और (यम्) जिस गुप्त प्रयोग को (सजात) मेरे साथ उत्पन्न भ्राता सहोदर भाई और (यम्) जिस घातक प्रयोग को (असजात) सहोदर भ्राता आदि से अतिरिक्त आदमी (निचखान) गाड़ दे (तम्) उसको भी मैं (इदम्) यह प्रत्यक्ष रूप में (उत् किरामि) उखाड़ दूं। इस प्रकार मैं सब (कृत्याम्) घातक गुप्त क्रिया को (उत् किरामि) उखाड़ दूं, निर्मूल कर दूं॥

इस मन्त्र में महर्षि दयानन्द का 'बल-गहनम्', 'बलगहन्' इत्यादि पाठ स्वीकार करना चिन्ता का विषय है॥

वलग=वल वल्ल संवरणे। संवृतरूपेण गच्छति इति वलगः। शतपथ [का० ३। ५। ४। ३ ७-१४] में 'वलगा कृत्या' का वर्णन किया है। यह वह कृत्या है जिसका अथर्ववेद का० १०। १। ३१ तथा ५। ३१। १-१२। में वर्णन किया गया है॥

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा॥ २४॥

उपरवा सूर्यविद्वासौ वा देवता। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्। गाधार.॥

भा०—हे राजन्! तू (स्वराट्) स्वयं सर्वोपरि विराजमान, (सपत्नहा) शत्रुओं का नाश करने वाला (असि) है। तू (अभिमातिहा) अभिमान करने वाले, गर्वीले शत्रुओं का हन्ता और (सत्रराट्) सत्रों, यज्ञों में विद्वत्सभाओं, या एकत्र परस्पर की रक्षा करने वाले संघों में सर्वोपरि विराजमान (असि) होता है। हे राजन्! तू (रक्षोहा) राक्षस, विघ्नकारी पुरुषों का नाशक होकर (जनराड् असि) समस्त जनों पर राजा के समान विराजता है। तू (अमित्रहा) अमित्र, न स्नेह करने वाले शत्रुओं का नाशक होकर (सर्वराट् असि) समस्त प्रजाओं व राजा के रूप में विराजमान होता है॥

[१]रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽव नयामि वैष्णवान् रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान् रक्षोहणौ वां [२]वलगहना ऽउप दधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ॥ २५॥

विष्णुर्यज्ञो वा देवता। (१) ब्राह्मी बृहती। मध्यमः।
(२) आर्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

२४—सूर्यविद्वासौ देवते। द०। स्वरासि औपरवाणि चत्वारि। सर्वा०। '०राकसि०' (४) इति काण्व०॥

२५—'रक्षोहणो वलगहन' (४) इतिकाण्व०।

भा०—(वैष्णवान्) विष्णु, सर्वव्यापक यज्ञमय, राष्ट्र के पालक (रक्षोहण.) राक्षसों के नाशकारी (वलग-हनः) शत्रु के घातक प्रयोगों को नाश करने वाले (वः) आप लोगों को मैं (प्रोक्षामि) अभिषिक्त करता हूं। (अव-स्तृणामि) आप सब वीर पुरुषों को अपनी रक्षा में रखता एव सुरक्षित रखता हूं। हे प्रधान अधिकारियो ! आप दोनों भी (रक्षोहणौ वलग-हनौ) राक्षसों और इनके गुप्त घातक प्रयोगों के नाशक हो। तुम दोनों को (उपदधामि) मैं अपने समीप के पद पर नियुक्त करता हूं और इसी प्रकार पूर्वोक्त गुणवान् दो वीरों को (पर्यूहामि) विवेक से निश्चित करके उचित पद पर नियुक्त करता हूं। यही (वैष्णवी) विष्णु अर्थात् यज्ञ के स्थापना और रक्षा की उचित रीति है। हे राष्ट्र ! तू (वैष्णवम् असि) विष्णु, राज्यपालनरूप सद्व्यवस्था का स्वरूप है। और हे शासक वीर, अधिकारी पुरुषो ! आप लोग भी (वैष्णवा· स्थ) विष्णु, प्रजापति राजा के उपकारक भाग हो। अध्यात्मपक्ष में शतपथ ने इन इन्द्रियों को विष्णुरूप आत्मा के उपकारक, रक्षोघ्न संवरणकारी अज्ञान का नाशक माना है। उनमें प्राणों का स्थापन प्रोक्षण है, उनमें चेतना का स्थापन अवनयन है, लोमादि लगाना अवस्तरण है, उनमें दो जबाड़े स्थित है, उनको दृढरूप से स्थापित करना पर्यूहण है। वहा शरीरमय अध्यात्म यज्ञ का वर्णन है ।

इसमें महर्षि दयानन्द ने 'बल-गहनः' 'बलगहनौ' इत्यादि पाठ स्वीकार किया है ।

[1]देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्या॑म्पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् । आद॑दे॒नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वाऽ अपि॑ कृन्तामि । [2]यवो॑ऽसि य॒वया॒स्मद् द्वेषो॑ य॒वयारा॑तीर्दि॒वे त्वा॒ ऽन्तरि॑क्षाय त्वा पृथि॒व्यै त्वा॒ शुन्ध॑न्ताँल्लो॒काः पि॑तृ॒षद॑नाः पितृ॒षद॑नमसि ॥ २६ ॥

यज्ञो औदुम्बरी पितरश्च यज्ञो वा देवता । (१) आर्षी पक्तिः । पचम. । (२) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

२६—शुंधन्तापित्ये । सर्वा० । यज्ञः । द० । ०रक्षसा ग्रीवा० इति काण्व० ॥

भा०—(१) (देवस्य त्वा०० अपि कृन्तामि) व्याख्या देखो अ० ५। म० २२ ॥ (२) हे राजन् तू (यव असि) तू हमारे शत्रुओं को दूर करने में समर्थ है। अत. तू 'यव' है। तू (अस्मत्) हम से (द्वेष.) द्वेष करनेवालों को या ईर्षादि दोषो को (यवय) दूर कर। और (अराती) शत्रुओं को जो हमें कर नहीं देते हैं उनको भी (यवय) दूर कर। (पितृषदनाः) पिता, पालक, ज्ञानी पुरुषों के पदों पर विराजमान देश के पालक (लोका:) समस्त लोक प्रजाजन हे राजन्! त्वा) तुझे (दिवे) द्यौलोक मे सूर्य के समान स्थापन करने के लिये (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्ष में वायु के समान और (पृथिव्यै) पृथिवी के हित के लिये (शुन्धताम्) शुद्ध करें, अभिषेक करे। तू स्वयं (पितृषदनम् असि) समस्त प्रजा के पालक पुरुषो का आश्रय है।

उद्दिवꣳस्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनिं रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥२७॥

औदुम्बरी यज्ञो वा देवता। ब्राह्मी जगती छन्दः। निषाद. स्वरः॥

भा०—हे राजन् (दिवम्) द्यौलोक या प्रकाशमान पिण्डों को या प्रकाश को जिस प्रकार सूर्य उठा रहा है। उस प्रकार तू भी (उत् स्तभान) प्रकाश या ज्ञान और उत्तम पुरुषों को ऊपर स्थापित कर। (अन्तरिक्षम् पृण) अन्तरिक्ष को जिस प्रकार वायु पूर्ण कर रहा है उसी प्रकार अन्तरिक्ष को या मध्यम श्रेणी के लोगों को पूर्ण कर या पालन कर। और तू (पृथिव्याम्) इस पृथिवी पर (दृंहस्व) राष्ट्र की वृद्धि कर। (द्युतान) देदीप्यमान, तेजस्वी, पुरुष (मारुतः) वायु के समान प्रबल होकर (त्वा) तुझको (मिनोतु) संचालित करे। (मित्रावरुणौ) मित्र न्यायकर्त्ता और वरुण, दुष्टों का वारक दोनों अधिकारी जन भी (ध्रुवेण

धर्मणा) अपने ध्रुव, स्थायी, सामर्थ्य से (त्वा मिनुताम्) तुझे सञ्चालित करें । (त्वा) तुझको (ब्रह्मवनि) ब्रह्म, ब्राह्मणों का पोषक, (क्षत्रवनि) क्षात्रबलत्र का पोषक (रायस्पोषवनि) धनों के, ऐश्वर्यों को पुष्ट के करने वाला (पर्यूहामि) जानता हूं, एवं नियत करता हूं । तू (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान और विद्या बल को (दृंह) बढ़ा । (क्षत्रं दृंह) क्षात्रबल को व वीर्य को बढ़ा । (आयु दृंह) आयु को बढ़ा । (प्रजाम् दृंह) प्रजा की वृद्धि कर ॥

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात् । घृतेन द्यावापृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ॥ २८ ॥

द्यावापृथिव्यौ इन्द्रश्च यज्ञो वा देवता । आर्षी जगती । निषाद ॥

भा०—हे पृथिवी अथवा हे महान् शक्ति ! तू (ध्रुवा असि) तू ध्रुव, सदा स्थिर है । उसी प्रकार (अयं) यह (यजमानः) यजमान, दानशील या संगतिकारक व्यवस्थापक राजा भी (अस्मिन् आयतने) इस आयतन, गृह, प्रतिष्ठा के स्थान पर (प्रजया) प्रजा और (पशुभिः) और पशुओं सहित (ध्रुव भूयात्) ध्रुव, स्थिर होकर रहे । हे (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि ! तुम दोनों (घृतेन) तेज, घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों से (पूर्येथाम्) पूर्ण होवो । अथवा हे पृथिवी और सूर्य या प्रजा और राजन् ! एवं पति और पत्नि ! तुम दोनों आकाश और भूमि के समान पुष्टिकारक पदार्थों से पूर्ण रहो । हे राजशक्ते ! तू (इन्द्रस्य) परमैश्वर्यवान् राजा के लिये या ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के लिये (छदिः) छदि अर्थात् छत हो । उसको सब दुखों और आघातों से बचानेवाली आड़ हो । हे राजन् ! तू (विश्वजनस्य छाया) सब श्रेणियों के मनुष्यों के लिये (छाया) छाया, शरण या आश्रय (असि) है ।

२८—'–वासि ध्रुवोऽस्मिन् यजमान आयतने भूयात्० ' इति काण्व० ॥

परि॑ त्वा गिर्वणो॒ गिर॑ऽइ॒मा भ॑वन्तु वि॒श्वत॑: ।
वृ॒द्धायु॒मनु॒ वृद्ध॑यो॒ जुष्टा॑ भवन्तु॒ जुष्ट॑यः ॥ २६ ॥

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रो ऋषि. । इन्द्र ईश्वरः ! सभाध्यक्षौ वा देवते । अनुष्टुप् ।
गान्धारः ॥

भा०—हे (गिर्वणः) समस्त वाणियों, स्तुतियों को भजन करने वाले ! उनके उपयुक्त पात्र (इमा गिर) ये समस्त वाणियां (विश्वतः) सब प्रकार से (त्वा परि) तेरे ही लिये (भवन्तु) हों । (वृद्धायुम्) वृद्ध, दीर्घजीवी, वृद्ध पुरुषों से युक्त या महापुरुष तुझको (अनु) लक्ष्य करके ही (वृद्धयः) ये सब बढ़ी हुई सम्पत्तियां और (जुष्टयः) तृप्त करनेवाली भोग सम्पत्तियां भी (जुष्टाः भवन्तु) प्राप्त हों ॥

ईश्वरपक्ष में—हे ईश्वर ! समस्त स्तुतियों के पात्र ! ये सब स्तुतियां तेरी ही हैं । ये सब सम्पत्ति ऐश्वर्य भी तुझे ही प्राप्त हैं ।

इन्द्र॑स्य स्यू॒रसीन्द्र॑स्य ध्रु॒वोऽसि ऐ॒न्द्रम॑सि वैश्वदे॒वम॑सि ॥ ३० ॥

इन्द्रो विश्वे देवताः ईश्वरसमाध्यक्षौ वा देवते । आर्च्युष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—हे सभापते ! हे राजन् ! तू (इन्द्रस्य) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजपद का (स्यूः) सूत्र के समान सीकर उसे दृढ़ करनेवाला है । जिस प्रकार सूत्र वस्त्र के खण्डों को सीकर दृढ़ कर देता है उसी प्रकार राजा भी राष्ट्र के भिन्न २ ऐश्वर्यवान् भागों को सीकर दृढ़ कर देता है । (इन्द्रस्य) इन्द्र, राजा के पद को तू (ध्रुवः) ध्रुव, उसको स्थापन करनेवाला या उस पर स्थिररूप से विराजने वाला है । हे राजसिंहासन पद ! या हे राष्ट्र !

२६—ईश्वरसमाध्यक्षौ देवते । द० । अनिरुक्ता ऐन्द्री । सर्वा० । २०-३५ मधुच्छन्दा ऋषि । द० ॥

३०—ईश्वरसभाध्यक्षौ । द० ॥

तू (इन्द्रम्) इन्द्र का पद (असि) है। तू (वैश्वदेवम् असि) समस्त देव, विद्वान् पुरुषों को सम्मिलित एक सामूहिक मानपद है।

इसी प्रकार ईश्वर पक्ष में—ईश्वर, इन्द्र आत्मा को अपने साथ सीनेवाला उसको ध्रुव आश्रय, उसका प्रेमी, स्वयं ऐश्वर्यवान्, सर्व देवों का हितकारी है॥

विभूरसि प्रवाहणो वह्निरसि हव्यवाहनः।
श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः॥ ३१॥

धिष्ण्या अग्नयो देवता । विराडार्च्यनुष्टुप् । गान्धार.॥

भा०—हे राजन् ! तू (विभू असि) विशेष ऐश्वर्य और सामर्थ्य से युक्त और (प्रवाहण) महानद नौका या रथ के समान सब प्रजाओं के भार को अपने ऊपर उठा लेने में समर्थ है। और हे विद्वन् ! (वह्नि) जिस प्रकार अग्नि समस्त (हव्यवाहन.) आहवनीय पदार्थों को वहन करता है उसी प्रकार तू सभी राज्य के पदार्थों और कार्यों को वहन करने में समर्थ और (हव्य वाहनः) ग्राह्य पदार्थों और समस्त ज्ञानों का धारण करनेहारा (असि) है। हे विद्वन् ! तू (श्वात्र.) ज्ञानवान्, सर्वत्र पहुंचने वाला या कल्याणकारी, (प्रचेता·) प्राण के समान सबको चेतना देनेवाला, सबका शिक्षक और ज्ञानदाता है। हे विद्वन् ! तू (विश्ववेदा) जिस प्रकार सब प्राणियों में वायु समस्त विश्व के पदार्थों में व्याप्त है उसी प्रकार तू भी सबको प्राप्त करनेवाला है, सर्वज्ञाता या सब धनों का स्वामी और (तुथ असि) तू ज्ञान का वर्धक या सबको ऐश्वर्य बांटने वाला है। इस प्रकार यहां चार विशेष पदाधिकारियों या राजा के ही चार स्वरूपों का वर्णन है॥

तुथो ह स्म वै विश्ववेदा देवानां दक्षिणा विभजतीति। तैत्ति०।

शिवा ह्यापस्तस्मादाह श्वात्रा. स्थेति। श० ३। ७। ४। १६॥

उशिगसि कविरङ्घारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वाञ्छुन्ध्यूरसि मार्जालीयः । सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि प्रतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदन ऋतधामासि स्वर्ज्योतिः॥३२॥

आहवनीयो वहिष्पवमानदेशा , चात्वाली , शामित्रः, औदुम्बरीय अग्निर्वा देवता ।
स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत ।

भा०—हे राजन् ! तू (उशिग्) सबका वश करने हारा एवं कान्तिमान्, तेजस्वी और (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी (असि) है । तू (अंघारिः) अघ अर्थात् पापी कुटिल जीवों या पापों का अरि शत्रु है । और (बम्भारिः) पापी दुष्ट पुरुषों का बांधने वाला या सबका भरण पोषण करने में समर्थ है । तू (अवस्यूः) अपने नीचे के समस्त कार्य कर्त्ताओं को सिये रहता या परस्पर संयुक्त किये रहने में समर्थ या (अवस्यू) रक्षा करने में समर्थ है और (दुवस्वान्) अन्न या सेवा करने योग्य ऐश्वर्य गुण से युक्त है । तू (शुन्ध्यूः) स्वयं शुद्ध, निष्पाप और (मार्जालीयः) अन्यों का भी शोधन करने हारा, पापों को पता लगाकर उनका दण्ड देकर पापों का शोधने हारा (असि) है । तू (परिषद्य.) परिषद् विद्वानों की सभा में विराजने हारा है, उस द्वारा राजा बनाया जाता है और तू (पवमानः) सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य के बल से पवित्र करने वाला है । तू (नभः) सबको परस्पर बांधने, संगठित करने हारा या चोरादि को वध दण्ड देने वाला या उनको बांधने वाला और (प्रतक्वा)[1] उनको खूब अच्छी प्रकार पीड़ा देने वाला (असि) है । तू (मृष्ट.[2]) सबको सेचन करने हारा, सबका पोषक या सहिष्णु और तितिक्षु और (हव्यसूदनः)[3] समस्त अन्नों और ऐश्वर्य के पदार्थों को क्षरित करने वाला, सबको प्रदान करने

३२—१ तकि कृच्छ्र जीवने भ्वादिः । २. मृषु सेचने, सहने च, भ्वादी । मृषति तिक्षियाम चुरादि. । ३ षूद क्षरणे चुरादि । भ्वादिश्च। अग्निर्देवता।८०॥

वाला (असि) है । (ऋतधामासि) सत्य का धारण करने वाला सत्य का आश्रय और और जलके धारण करने में समर्थ सूर्य के समान (स्वर्ज्योतिः) आकाश मे चमकने वाला साक्षात् सूर्य है या (स्वःज्योतिः) शत्रुओं का उपताप देने हारे प्रचण्ड भानु के समान (असि) है । ये ही सब विशेषण ईश्वर के भी हैं ।

समुद्रोऽसि विश्वव्यंचा ऽअजोऽस्येकंपादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोस्यृतस्य द्वारौ मा मा सन्ताप्तमध्वंनामध्वपते प्र मां तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ॥ ३३ ॥

ब्रह्मासन, शालाद्वार्य., प्राजहित , सद , द्वार्ये, सूर्यश्च अग्निर्वा देवता ।
ब्राह्मी पंक्ति । पञ्चमः ॥

भा०—हे विद्वन् ! और हे ईश्वर ! तू (विश्वव्यचा) समस्त विश्व में व्यापक, अपने समस्त राष्ट्रवासी जनों मे व्यापक, उनको प्राप्त और (समुद्रः असि) समुद्र के समान, अगाध ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न और समुद्र के समान गंभीर और अक्षय है । हे ईश्वर ! तू (एकपात्) एकस्वरूप, एकमात्र अद्वितीय, या अपने एक चेतन रूप में ही समस्त विश्वको धारण करने हारा और (अज असि) कभी शरीर में बद्ध होकर उत्पन्न न होने वाला, अनादि है। हे राजन् ! तू भी (एकपात् अजः असि) एकछत्र राजा के रूप मे ज्ञात, और राष्ट्र में व्यापक है । हे ईश्वर ! तू (बुध्न्यः) सब के मूल आश्रय में विराजमान और (अहि असि) अविनाशी कभी विनाश को प्राप्त नहीं होता । हे सेनापते ! तू राष्ट्र का (बुध्न्यः) आश्रय और (अहिः) किसी से न मारने योग्य, सब से अधिक बलवान् है । हे ईश्वर ! तू (ऐन्द्रम् असि, वाग् असि) इन्द्र, ऐश्वर्यमय है और तू वाणी, ज्ञान

३३—"बुध्न्य. सम्राडसि० ०सूदन [३२] समूद्रोसिविश्ववेदा उतातिरिक्तस्य प्रतिष्ठा ।' इति० काण्व० ॥

मय वेदरूप है। हे विद्वन्! तू इन्द्र के पद का स्वामी और वाक्, सबका उपदेष्टा, आज्ञापक है। हे ईश्वर! तू (सदः) सबका आश्रय स्थान है। हे विद्वत्सभे! तू भी (सद असि) स्वयं परिषद् या विद्वानों का आश्रय स्वरूप है। हे (ऋतस्य) सत्य व्यवहार के (द्वारौ) द्वार भूत दण्ड कर्त्ता और न्यायकर्त्ता! तुम दोनों! (मा) मुझ सत्यवादी प्रजाजन को (मा संताप्तम्) कष्ट मत दो, पीड़ित मत करो। हे (अध्वपते) समस्त मार्गों के स्वामिन्! (मा) मुझको (अध्वनाम्) सब मार्गों के (प्र तिर) पार उतार दे। (अस्मिन्) इस (देवयाने) देव विद्वानों के चलने योग्य (पथि) मोक्ष मार्ग में (मे) मेरा (स्वस्ति भूयात्) सदा कल्याण हो। हे राजन्! तेरे इस (देवयान) विद्वानों के जाने योग्य सदाचार रूप मार्ग में या राजोचित मार्ग में चलते हुए मेरा सदा कल्याण हो।

मि॒त्रस्य॑ मा॒ चक्षु॑षेक्षध्व॒मग्न॑यः सग॒राः सग॑रा स्थ॒ सग॑रेण॒ नाम्ना॒ रौद्रे॒णानी॑केन पा॒त मा॑ग्नयः पिपृ॒त मा॑ग्नयो गोपा॒यत॑ मा॒ नमो॑ वोऽस्तु॒ मा मा॑ हिꣳसिष्ट ॥ ३४ ॥

ऋत्विजोऽग्निर्वा देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—उक्त सब विद्वान पुरुष और अधिकारी जन अग्निरूप हैं। उनको राजा स्वयं अग्नियों को यजमान के समान स्थापित करता है और उनके प्रति कहता है। हे (अग्नयः) विद्वान पुरुषो! (मा) मुझको (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (ईक्षध्वम्) देखा करो। हे (सगराः) विद्योपदेश के सहित ज्ञानी पुरुषो! आप लोग (सगराः स्थ) सभी समान रूप से ज्ञानवान् एवं स्तुति के पात्र हो। आप लोग अपने (सगरेण) ज्ञान उपदेश सहित (नाम्ना) नमन करने वाले, शिक्षाकारी बल

३४—ऋत्विज । सर्वा० । 'अग्नयः सगरा.० ०पिपृत माग्नयो नमो वोऽस्तु०' इति काण्व० ॥

और (रौद्रेण अनीकेन) शत्रुओं को रुलाने वाले सैन्य से (मा पात) मेरी रक्षा करो। हे (अग्नयः) अग्नि के समान प्रकाशवान्, ज्ञानी पुरुषो ! (मा पिपृत) मेरा पालन करो और मेरी न्यून शक्तियों की पूर्ति करो। हे (अग्नय·) आगे सेनापति रूप में या अग्रणीरूप में चलने हारे अग्रगण्य नेता पुरुषो ! आप लोग (मा गोपायत) मेरी रक्षा करो। (व· नमः अस्तु) आप लोगों को मैं सदा नमस्कार या आप लोगों को राष्ट्र में सदा (नम·) नमनकारी वज्र बल, प्राप्त हो। तो भी (मा मा हिंसिष्टम्) आप लोग मेरा कभी घात मत करें।

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषांदेवानाᳬंसमित् त्वᳬं। सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य ऽउरु यन्तासि वरूथᳬंस्वाहा। जुषाणो ऽअप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा॥ ३५॥

क्रतुर्भार्गवऋषिः। विश्वेदेवाः सोमोग्निर्वा देवता। निचृद्ब्राह्मी पंक्तिः। पञ्चमः।

भा०—हे राजन् ! तू (विश्वरूपं ज्योतिः असि) नानारूप से प्रकाशित होने वाला या सब प्रकार का ज्योति प्रकाशक, सूर्य के समान तेजस्वी है। और (विश्वेषां देवानाम्) समस्त देवों, विद्वानों और राज-पदाधिकारियों को (सम्-इत्) अच्छी प्रकार तेजस्वी बनाने और चमकाने वाला है। हे (सोम) सब के प्रेरक राजन् ! तू (तनूकृद्भ्य·) शरीरों के नाश करने वाले (द्वेषोभ्य) और परस्पर द्वेष कलह करने वाले और (अन्यकृतेभ्य·) अन्य अर्थात् शत्रुओं से किये गये या लगाये गये गूढ़ शत्रुओं से भी राष्ट्र को बचाने के लिये (उरु वरूथम्) शत्रु के वारण करने में समर्थ विशाल सेना बल को (यन्तासि) नियमन करता है। (सु-आहा) तेरे निमित्त हमारा यह उत्तम त्याग है (आज्यस्य) आज्य, घृत के समान

३५—अग्निर्देवता। द०। क्रतुर्भार्गव ऋषि·। सर्वा०।

३५—अगस्त्यऋषि। द०॥

पुष्टिकारक या आजि, संग्राम योग्य बलवीर्य को (जुषाणः) सेवन एवं प्राप्त करता हुआ (अन्तु) आप्त राजा (स्वाहा) उत्तम व्यवस्था से, इस उत्तम आहुति को (वेतु) प्राप्त करे।

ईश्वर पक्ष में—सब देवों, दिव्य पदार्थों का प्रकाशक, 'विश्वरूप' ज्योति परमेश्वर है। हे सोम परमेश्वर ! हमारे शरीर के नाशक और अन्य सब द्वेषों को भी नियमन करने वाला तू ही स्वयं बड़ा भारी बल है। तू ही सर्व व्यापक समस्त आज्य=बल वीर्य का स्वामी होकर हमें भली प्रकार प्राप्त है।

अग्ने नयं सुपथा॑ रा॒येऽ अ॒स्मान्विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्। यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठान्ते नम॑ऽउक्तिं विधेम ॥ ३६ ॥

अगस्त्य ऋषि, अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः।

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ज्ञानवान् पुरुष ! राजन् ! हे (देव) देव ! विद्वन् ! तू (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) प्रशस्त कर्मों और मार्गों, ज्ञानों और प्रजाओं को (विद्वान्) जानता हुआ (राये) धन, ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (अस्मान्) हमें (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नय) ले चल। और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) पाप को (युयोधि) दूर कर। (ते) तेरे लिये हम (भूयिष्ठाम्) बहुत २ (नम उक्तिम्) नमस्कार वचन, स्तुति आदि और आदरसूचक वचन (विधेम) प्रयोग करें।

ईश्वर के पक्ष में स्पष्ट हैं।

अ॒यं नो॑ऽअ॒ग्निर्वरि॑वस्कृणोत्व॒यं मृधः॑ पु॒रऽए॑तु प्रभि॒न्दन्। अ॒यं वाजा॑ञ्जयतु॒ वाज॑साताव॒यꣳ शत्रू॑ञ्जयतु॒ जर्हृ॑षाणः॒ स्वाहा॑ ॥३७॥

अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

३७—'०वाजसाता अय०' इति काण्व०।

भा०—(अयम्) यह (अग्नि) अग्नि अग्रगामी, नेता पुरुष सेनापति ! (न) हमारी (वरिव) रक्षा (कृणातु) करे। अथवा (न. वरिव कृणोतु) हमारे लिये ऐश्वर्य प्रदान करे। और (अयम्) यह (मृध) संग्राम सम्बन्धी (पुर· प्रभिन्दन्) गढ़, पुरों, नगरों को तोड़ता हुआ (एतु) आवे। अथवा (मृध प्रभिन्दन्) संग्रामों को विजय करता हुआ (पुर. एतु) आगे बढ़े। और (वाजसातौ) संग्राम के कार्य मे (वाजान्) संग्रामों को और (वाजान्) धन, अन्न व ऐश्वर्य को भी (जयतु) विजय करे। और (जहृषाण.) खूब प्रसन्न हो होकर (स्वाहा) उत्तम आहुति, पराक्रम करता हुआ (शत्रून् जयतु) शत्रुओं को जीते।

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ३८ ॥

विष्णुर्देवता। अनुष्टुप्। गाधारः॥

भा०— हे (विष्णो) विद्या आदि गुणों में व्यापक ! अथवा शत्रु के गढ़ों में और पूर्ण राष्ट्र में प्रवेश करने में चतुर ! सेनापते ! तू (उरु विक्रमस्व) खूब अधिक विक्रम पराक्रम कर। (न) हमारे (क्षयाय) निवास के लिये (उरु) बहुत अधिक ऐश्वर्य एवं विशाल राष्ट्र का (कृधि) उत्पन्न कर। (घृतयोने) घृत से जिस प्रकार अग्नि बढ़ता है उसी प्रकार घृत अर्थात् दीप्ति और तेज के आश्रय भूत राजन् ! तू भी खूब (घृतं पिब) अग्नि के समान घृत=तेज, पराक्रम का पान कर, उसको प्राप्त कर। और (यज्ञपतिम्) जिस प्रकार विद्वान् जन यज्ञपति, यजमान को पार कर देते हैं उसको तार देते हैं, उसी प्रकार तू भी (यज्ञपतिम्) यज्ञरूप सुव्यवस्थित, सुसंगत राष्ट्र के पालक राजा को (स्वाहा) अपनी उत्तम वीर्याहुति से (प्र प्र तिर) भली प्रकार विजय कार्य के पार कर दे

¹देव॑ सवितरे॒ष ते॒ सोम॒स्तᳪ रक्ष॑स्व॒ मा त्वा॑ दभन्। ²ए॒तत्त्वं॑ देव सोम दे॒वो दे॒वाँ२॥ उपा॑गा ऽइ॒दम॒हं म॑नु॒ष्या॒न्त्स॒ह रा॒यस्पोषे॑ण॒ स्वाहा॒ निर्वरु॑णस्य॒ पाशा॑न्मुच्ये ॥ ३९ ॥

सोमसवितारौ देवते। (१) साम्नी बृहती। मध्यम। (२) आर्षीपङ्क्तिः, पञ्चमः॥

भा०—विजय करने के अनन्तर सेनापति राजा के प्रति कहे—हे (देव) देव, राजन्! हे (सवित) सब के प्रेरक और उत्पादक! (एषः सोमः) यह सोम, ऐश्वर्य समूह या राष्ट्र (ते) तेरा है। उसकी (रक्षस्व) रक्षा कर। इस रक्षा कार्य मे (त्वा) तुझको शत्रुगण (मा दभन्) न मार सकें। हे (देव) सुखप्रद ऐश्वर्यों के दाता राजन्! हे (सोम) ऐश्वर्य मय सबके प्रेरक! राजन्! तू (देवः) सब के अधिकार प्रदान करने हारा राजा, देव होकर (देवान्) अन्य अपने आधीन उसी प्रकार के राज शासकों को (उप अगाः) प्राप्त हो।

राजा का वचन—(अहम्) मैं (इदम्) इस प्रकार (रायः पोषेण सह) धनैश्वर्य की वृद्धि, पुष्टि के सहित (मनुष्यान्) राष्ट्र के मनुष्यों के प्रति (स्वाहा) अपने को राज्य रक्षा के कार्य में उत्तम रीति से आहुति करता हूं। और (वरुणस्य पाशात्) वरुण के पाश से अपने आपको (निर्मुच्ये) मुक्त करूं। अथवा (इदम् अहम् रायः पोषेण सह मनुष्यान् स्वाहा वरुणस्य पाशान् निर्मुच्ये) इस प्रकार मैं राजा धनैश्वर्य की वृद्धि के साथ २ सब मनुष्यों को (स्वाहा) अपने सत्यवाणी के प्रयोग से वरुण अर्थात् सबको दुख में डालनेवाले दुष्ट जन के पाश से छुड़ादूं। अथवा (वरुणस्य-पाशान् निर्मुच्ये) इस राज्याभिषेक के हर्ष में जो अपराधी वरुण अर्थात् दण्डधर राजा के पाशों में फंसे हुए हैं उन सबको छोड़ता है। राज्याभिषेक के अवसर पर राजा अपने बहुत से अपराधियों को बन्धन से मुक्त करते हैं। इसका यह मूल प्रतीत होता है॥

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियꣳ सा मयि । यथायथं नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिरमꣳस्तानु तपस्तपस्पतिः ॥ ४० ॥

अग्निर्देवता । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—नियुक्त शासक जन राजा से अधिकार पद की दीक्षा इस प्रकार लेते हैं-हे अग्ने ! राजन् ! हे (व्रतपा.) समस्त व्रत अर्थात् राज्य कार्यों को पालन करनेहारे (त्वाम्) । तुझको हम वचन देते हैं कि (या) जो (एवं) तेरे (व्रतपाः) व्रतों, राज्य कार्यों और परस्पर के सत्य प्रतिज्ञाओं के पालन करनेवाला (तनू.) स्वरूप (मयि) मुझ में (अभूत्) है (एषा सा) यह वह (त्वयि) तुझ मे भी हो । (यो=या उ) और जो (मम) मेरा (तनूः) स्वरूप (त्वयि) तुझ में (अभूद्) विद्यमान है (सा इयम्) वह यह (मयि) मेर मे हो, अर्थात् राजा के शासकरूप से सौंपे अधिकार जो वह अपने अधीन अधिकारियों को प्रदान करता है वे राजा के ही समझे जांय । और जो अधिकार राजा के हैं वे कार्यनिर्वाह के अवसर पर अधिकारियों के समझें जांय, इस प्रकार राजा और राजकर्मचारी एक दूसरे के अधीन होकर रहें । हे (व्रतपते) व्रतो के पालक राजन् ! हम दोनों के (व्रतानि) कर्त्तव्य कर्म (यथायथम्) ठीक ठीक प्रकार से, उचित अधिकारों के अनुरूप रहें । (दीक्षापति.) दीक्षा अर्थात् अधिकारदान का स्वामी तू राजा (मे) मुझे (दीक्षाम्) योग्य पदाधिकार की प्राप्ति की (अनु अमंस्त) अनुमति दे । और (तपस्पति.) तप अर्थात् अपराधियो को सन्तप्त करने या दण्ड देने के सब अधिकारों का स्वामी राजा मुझको (तपः) दण्ड देने के भी अधिकार की (अनु अमंस्त) उचित रीति से अनुमति दे ॥

राजा और उसके अधीन शासकों का सा ही सम्बन्ध गुरु शिष्य का है । वे भी परस्पर इसी प्रकार प्रतिज्ञा करते हैं । हे अग्ने ! आचार्य ! तू व्रत

४०—० मात्वापि याममम ० इति काण्व० ॥

का पालक है। तेरे भीतर जो विद्या का विस्तार है वह मुझे प्राप्त हो। मेरा विद्याभ्यास एवं हृदय तेरे भीतर रहे। हम दोनों के व्रत ठीक २ रहें! समस्त दीक्षाओं के लिये दीक्षापति, आचार्य एवं परमेश्वर अनुमति दे। तपस्पती, हमारे तपों की अनुमति दे। हमें वह दीक्षाएं दे और तपस्याएं करने का आदेश दे ॥

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि।
घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥ ४१ ॥

भा०—व्याख्या देखो म० ३८ ॥

अत्यन्याँ२॥ अगान्नान्याँ२ऽ उपागामर्वाक्त्वा परेभ्योऽविदम्परोऽवरेभ्यः। तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ॥ ४२ ॥

वनस्पतिः कुशतरुण परशुश्च अग्निर्वा देवता। स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(अन्यान् अति अगाम्) तेरे से भिन्न और शत्रु राजाओं को मैं अति क्रमण कर दूं और (अन्यान्) अन्य नाना राजाओं के समीप भी मैं (न उत अगाम्) न जाऊंगा। (परेभ्यः) परे के, अर्थात् दूर के राजाओं की अपेक्षा (त्वा) तुझे (अर्वाक्) समीप और (अवरेभ्यः) तेरी अपेक्षा अवर, निकृष्ट जनों की अपेक्षा तुझे (परः) उत्कृष्ट जानकर ही (त्वा अविदम्) तेरे समीप प्राप्त हुआ हूं। हे (देव) देव राजन्! हे (वनस्पते) महावृक्ष के समान छायाप्रद आश्रयवृक्ष! शरण्य! (देवयज्यायै) देवों, अन्य विद्वानों का परस्पर संगति लाभ करने के लिये (तम् त्वा जुषामहे) उस तेरी ही हम सेवा करते हैं। (देवाः) और देव, राजा और विद्वान् लोग भी (देवयज्यायै) देव विद्वानों की परस्पर संगति लाभ क लिये

४२—'०परेभ्यः परोवरीः। इति काण्व०' ॥

ही (त्वा जुषन्ताम्) तुझे प्राप्त हों । हम लोग तो (विष्णवे) वह यज्ञ रूप राष्ट्रपालन जिसमें सब प्रजाएं प्रविष्ट हैं उस पद के लिये (त्वा) तुझे नियुक्त करते हैं । हे (ओषधे) दुष्टों को दण्ड प्रदान करने वाले राजन् ! तू (त्रायस्व) हमारी रक्षा कर । हे (स्वधिते) अपने ही बल से समस्त राष्ट्र की रक्षा करनेहारे हे शस्त्रवन् ! तू (मा एनं हिंसी) इस राष्ट्र को या इस पुरुष की हत्या मत कर ॥

गुरु के प्रति शिष्य—हे आचार्य ! मैं (अन्यान् अति अगाम्) अन्य अविद्वान् या अन्य ज्ञानी लोगों को छोड़कर तेरे पास आया हूं और (अन्यान् न उप अगाम्) दूसरों के पास नहीं गया हूं । बहुत उत्कृष्टों से कम और अन्य ज्ञानियों की अपेक्षा श्रेष्ठ जान कर तेरी शरण आता हूं । 'देवयज्य' अर्थात् ईश्वरोपासना के लिये हम तेरी शरण हैं और विद्वान् भी इसी निमित्त तेरे पास आते हैं ॥

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिᳬसीः पृथिव्या संभव । अयᳬ हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय । अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्रवल्शा वि वयᳬ रुहेम ॥ ४३ ॥

वनस्पतिर्यज्ञो वा देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे शस्त्र और अस्त्र गण ! या उनके धारण करने हारे पुरुष ! तू (द्याम्) द्यौ, आकाश को और उसके निवासी लोकों को (मा लेखीः) विनाश मत कर अर्थात् विद्वान् पुरुषों को मत नाश कर । इसी प्रकार (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को और उसके प्राणियों को (मा हिंसीः) मत विनाश कर । (पृथिव्या सम्भव) पृथिवी और उसके वासी प्राणियों से प्रेम भाव से मिल कर रह । हे राजन् ! (अयम् स्वधितिः) यह शस्त्र (तेतिजानः) अति तीक्ष्ण होकर भी (त्वा) तुझको (महते

४३—यज्ञो देवता । द० । वनस्पति । सर्वा० । 'दिव मा ले०' इति काण्व० ॥

सौभगाय) बड़े भारी सौभाग्य के लिये (प्रणिनाय) नियुक्त करता है। (अतः) इसलिये हे (देव) राजन्! आप वृक्ष के समान ही (शत वल्श.) बहुत से अंकुरों के समान बहुत से कार्य सामर्थ्यों से युक्त होकर (वि रोह) नाना मार्गों में उन्नति और प्रतिष्ठा को प्राप्त हो और (वयम्) हम सब भी (सहस्रवल्शाः) सहस्रों शाखाओं सहित (वि रुहेम) नाना प्रकार से फलें फूलें ॥

॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

[तत्र त्रयश्चत्वारिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डित जयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ [1]दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे᳖ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑पू॒ष्णो हस्ता॑भ्या॒माद॑दे॒ नार्य॑सी॒दम॒हꣳ रक्ष॑सां ग्री॒वा अपि॑कृन्तामि । [2]यवो॑ऽसि य॒वया॒स्मद् द्वेषो॑ य॒वयारा॑ती [3]र्दि॒वे त्वा॒ऽन्तरि॑क्षाय त्वा पृथि॒व्यै त्वा॒ शुन्ध॑न्ताँल्लो॒काः पि॑तृ॒षद॑नाः पि॑तृ॒षद॑नमसि ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५, मं० २६ ॥

[1]अ॒ग्रे॒णीर॑सि स्वावे॒शऽउ॑न्नेतॄ॒णामे॒तस्य॑ वित्ता॒दधि॑ त्वा स्थास्यति [2]दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता मध्वा॑नक्तु सुपिप्प॒लाभ्य॒स्त्वौष॑धीभ्यः । द्यामग्रे॑णास्पृक्ष॒ऽआन्तरि॑क्षम्मध्ये॑नाप्राः पृथि॒वीमु॒पर॑ेणादृꣳहीः ॥२॥

शकल सविता, चात्वाल, यूपश्च सविता वा देवता । (१) निचृद् गायत्री । षड्जः । (२) स्वराट् पंक्ति । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! हे सभाध्यक्ष ! तू (अग्रेणीः असि) तू शिष्यों को गुरु के समान आगे ले चलनेवाला अग्रणी है । तू (उत् नेतॄणाम्) ऊपर ऊंचे मार्ग में ले चलनेवाले, उत्तम कोटि के नेताओं को भी (स्वावेशः) उत्तम रीति से सन्मार्ग में ले चलने और स्थापित करनेवाला है । तू (एतस्य) इस महान् राष्ट्र के पालन कार्य को (वित्तात्) भली प्रकार जान या प्राप्त कर । (देवः सविता) सबका प्रेरक महान् देव, राजा या परमेश्वर (त्वा अधि स्थास्यति) तेरे पर भी अधिष्ठाता के रूप में विद्यमान

१—सर्वानुक्रमण्या नास्ति । पूर्वोक्तत्वात् । 'रक्षसो ग्रीवा' इति काण्व० ॥

२—'पृथिवीमपरेण' इति महीधराभिमतः पाठः । शाकल्य ऋषिः, सविता देवता । द० ॥ दिव्यग्रेणा० इति काण्व० ॥

रहेगा । और वही (त्वा) तुझको (मध्वा) मधुरगुण या मधुविद्या, ज्ञान से (आनक्तु) आञ्जे, चमकावे विद्वान् करे । और वही (त्वा) तुझको (सुपिप्पलाभ्यः) उत्तम फलवती (ओषधीभ्यः) दाहजनक सामर्थ्य को धारण करने और दोषो को नाश करने वाली क्रियाओं से भी (आनक्तु) प्रकाशित करे । तू (अग्रेण) अपने अग्रगामी यश या सर्वोत्कृष्ट गुण से (द्याम् अस्पृक्षः) द्यौलोक या सूर्य को या प्रजा के उत्कृष्ट भाग को वशकर, छू, स्पर्श कर, सूर्यलोक के समान बन । (मध्येन) अपने मध्य, बीच के साधारण कार्यों से (अन्तरिक्षम् अप्राः) अन्तरिक्ष को, प्रजा के मध्यम जनों को पूर्ण कर, पालन कर । और (उपरेण) अपने शेष नीचे के भाग से या उत्कृष्ट नियत व्यवस्था से (पृथिवीम्) पृथिवी लोक के, या प्रजा के तीसरी श्रेणी के लोगों को (अदृंहीः) दृढ़ कर ॥

अथवा—अग्र से द्यौ अर्थात् विद्या और राजनीति को उन्नत कर, शेष बल से धर्म को और नियम से राज्य को पुष्ट कर ॥

[1]या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गाऽअयासः । [2]अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमम्पदमवभारि भूरि । [3]ब्रह्मवनिं त्वा क्षत्रवनिं रायस्पोषवनि पर्य्यूहामि ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह ॥ ३ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । यूपो विष्णुश्च देवता । (१) आर्षी उष्णिक् । (२) साम्न्युष्णिक् । ऋषभः । (३) निचृत् प्राजापात्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे सभाध्यक्ष राजन् ! (ते) तेरे (या) जिन २ (धामानि) सुखों को, धारण करानेवाले राज्य प्रबन्ध के सामर्थ्यों को हम लोग (गमध्यै) स्वयं प्राप्त होने के लिये (उष्मसि) कामना करते हैं (यत्र)

३—'ता वा वास्तून्यूष्मसि०', '०वृष्णः' इति ऋ० । 'अत्राहैत पुरु०' इति काण्व० ॥

जिनमें (भूरिश्रृङ्गाः) अति अधिक प्रकाशमान (गावः) किरण और बड़े बड़े सींगोंवाली गौवें हमें (अयासः) प्राप्त हों । अथवा जिनके द्वारा हमें बहुत सी ज्ञानोपदेश युक्त वाणियां प्राप्त होती हों । (अत्र अह) इसमें ही (उरुगायस्य) अति अधिक स्तुति के योग्य (विष्णोः) विष्णु, व्यापक, ईश्वर प्रभु के (परमम् पदम्) परम पद (भूरि) बहुत अधिक (अव भारि) निरन्तर पुष्ट होता है ॥

अथवा—राजगृह कैसे हों—हे राजन् ! हम (या ते धामानि गमध्यै उष्मसि) तेरे योग्य जिन विशेष सभा आदि भवनों प्राप्त करना चाहते हैं वे ऐसे हों (यत्र भूरिश्रृङ्गाः गावः अयासः) बहुत प्रदीप्त किरणें आया करती हों । (उरुगायस्य विष्णोः तत्) अधिक स्तुतिभजन, प्रशंसनीय विष्णु, व्यापक सार्वभौम राज्य का वही उत्कृष्ट परमपद (अत्र अह अव भारि) यहां ही, इन महाभवनों में ही विराजता है । (३) मैं तुझको (ब्रह्मवनि, क्षत्रवनि, रायस्पोषवनि) ब्राह्मणों, क्षत्रियों और ऐश्वर्य से पुष्ट वैश्यों को यथोचित वृत्ति को विभाग करनेवाला (पर्यूहामि) जानता हूं । तू (ब्रह्म दृंह) ब्राह्मण बल को बढ़ा, (क्षत्रं दृंह) और क्षात्रबल को पुष्ट कर, (आयुः दृंह) प्रजा की आयु को बढ़ा और (प्रजां दृंह) प्रजा की भी वृद्धि कर ॥

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ४ ॥ ऋ० १ । २२ । १९ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे जनो ! (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (कर्माणि) उन नाना कार्यों को जगत् की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय और व्यवस्था के कार्यों को (पश्यत) देखो (यतः) जिनके द्वारा वह (व्रतानि) नाना नियमों को (पस्पशे) बांधता है । वह परमेश्वर (इन्द्रस्य) आत्मा का (युज्य)

समाधि में उसके प्राप्त होने वाला (सखा) उसका मित्र है। अथवा हममें से प्रत्येक ईश्वर का मित्र है ॥

राजा के पक्ष में—(विष्णोः कर्माणि पश्यत) हे राजसभा के सभासदो ! राष्ट्र के व्यापक शक्तिवाले राजा के उन कर्मों को निरीक्षण करो। (यतः) जिनसे वह नाना नियमों को (पस्पशे) बांधता है। तुममें से प्रत्येक (इन्द्रस्य) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा का (युज्यः) योगदायी (सखा) मित्र है ॥

तद्विष्णोः परमं पदꣳ सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ५ ॥ ऋ० १ । २२ । २० ॥

ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

भा०--(सूरयः) वेद के विद्वान् पुरुष (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के (तत्) उस (पदम्) पद को जो (दिवि) प्रकाश में (चक्षुः इव) चक्षु के समान (आततम्) व्यापक है अथवा (दिवि) आकाश में (चक्षुः इव) सूर्य के समान व्यापक है उसको ही (परमम्) सर्वोत्कृष्ट (पदम्) पद, प्राप्त होने योग्य परम धाम का (पश्यन्ति) साक्षात् करते हैं ॥

राजा के पक्ष में—विष्णु राष्ट्र के व्यापक उस राजा के ही परम पद को विद्वान् प्रजा के प्रेरक नेता पुरुष आकाश में सूर्य के समान तेज से व्याप्त होने वाला, देखते हैं ॥

[1]परिवीरसि परि त्वा दैवीर्विशो व्ययन्तां परीमं यजमानꣳ रायो मनुष्याणाम्। [2]दिवः सूनुरस्येष ते पृथिव्याँल्लोक आरण्यस्ते पशुः ॥ ६ ॥

यूपः स्वरुश्च विद्वांसो वा देवताः। (१) आर्च्युष्णिक्। ऋषभः। (२) भुरिक् साम्नी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! (त्वं) तू (परिवीः असि) समस्त विद्याओं

५—दीर्घतमा ऋषिः। विद्वांसो देवताः। द० ॥

को प्राप्त करनेवाला, अथवा प्रजा की चारों ओर से रक्षा करनेवाला, या प्रजाओं द्वारा चारों ओर से आश्रय किये जाने योग्य है। इसी कारण (त्वा) तुझको (दैवी विशः) देव, राजासम्बन्धिनी, विद्वानगण (विश.) प्रजाएं (परिव्ययन्ताम्) चारो ओर से अधीन अधिकारीरूप में घेर कर बैठें। (इयं) इस (यजमानम्) राष्ट्र की व्यवस्था करनेहारे यजमान या दानशील इसको (मनुष्याणाम्) मनुष्यों के उपयोगी (राय) ऐश्वर्य भी (परि-व्ययन्ताम्) चारों ओर से प्राप्त हों। हे राजन् ! तू (दिव) प्रकाशमय सूर्य से (सुनू) उत्पन्न होनेवाले किरण समूह के समान तेजस्वी (असि) है। और (एष) यह (पृथिव्या) पृथिवी पर निवास करनेवाला (लोक.) समस्त लोक, भूलोक, या जन भी (ते) तेरा ही है। तेरे ही अधीन है। (आरण्य पशु.) अरण्यवासी समस्त पशु जाति भी (ते) तेरी ही सम्पत्ति है ॥

उपावीरस्युप देवान्दैवीर्विशः प्रागुरुशिजो वह्नितमान्।
देव त्वष्टर्वसु रम हव्या ते स्वदन्ताम् ॥ ७ ॥

तृण पशवश्च त्वष्टा वा देवता। आर्षी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—हे सभापते ! राजन् ! तू (उपावीः असिः) प्रजा के नित्य समीप रहकर उनका पालन करनेवाला रक्षक है। (दैवीः विशः) देव, राजा की दिव्य, या उत्तम गुणवाली (विश) प्रजाएँ (उशिजः) कान्तिमान् तेजस्वी (वह्नितमान्) राज्य कार्य भार को उत्तम रीति से वहन करने वाले, समर्थ (देवान्) देव, विद्वान् पुरुषों को (उप प्र अगु) प्राप्त हों। हे (देव) देव ! राजन् ! हे (त्वष्टः) प्रजाओं के दुःखों को काटनेहारे तू (वसु) पशु, प्रजा और नानाविध सम्पत्तियों का (रम) उपभोग कर। (हव्या) नाना प्रकार के भोजन करने योग्य अन्न और भोग्य पदार्थ (ते)

७—मेधातिथिर्ऋषिः त्वष्टा देवता। द० ॥

तुझे (स्वदन्ताम्) आस्वाद दें। अथवा (ते हव्या स्वदन्ताम्) तेरे नाना भोग्य पदार्थों को प्रजाएं भोग करें। विद्वांसो हि देवाः ॥ शत० ३ । ७ । ३ । ९–१२ ॥

[1]रेवती रमध्वं बृहस्पते धारया वसूनि । [2]ऋतस्य त्वा देवहविः पाशेन प्रतिमुञ्चामि धर्षा मानुषः ॥ ८ ॥

पशवोबृहस्पतिर्देवता । (१) प्राजापत्यानुष्टुप् ऋषभः । निचृत् प्राजापत्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (रेवतीः) ऐश्वर्य पशु और धन से सम्पन्न प्रजाओ ! आप लोग (रमध्वम्) खूब आनन्द प्रसन्न होकर विचरण करो । हे (बृहस्पते) बृहती वेद वाणी के पालक विद्वान् पुरुष ! आचार्य ! तू (वसूनि) नाना ऐश्वर्यों को और पशु सम्पत्ति को भी (धारय) धारण कर । और (ऋतस्य पाशेन) ऋत, सत्य ज्ञान और न्याय के पाश से (त्वा) तुझे (देवहविः) देवों विद्वानों के प्राप्त करने योग्य विज्ञान और चरित्र ही (प्रतिमुञ्चामि) धारण कराता हू । तू हे विद्वन् ! (मानुष) मनुष्य, मननशील होकर (धर्ष) सब अज्ञानों को धर्षण कर, बलपूर्वक वश कर ॥

राजा के पक्ष में—प्रजाए राष्ट्र में आनन्दित रहें । हे बड़े राष्ट्र के पालक ! तू समस्त ऐश्वर्यों को धारण कर । ऋत, सत्य न्याय के पाश या व्यवस्था से देवोचित हविः अर्थात् आदान योग्य कर, बलि आदि के द्वारा बाधता हूं । तू अब मनुष्य होकर भी प्रजा के भीतर के दुष्ट पुरुषों और शत्रुओं और प्रजाओं को परास्त कर ॥

[1]देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । [2]अग्नीषोमाभ्यां जुष्टं नियुनज्मि । अद्भ्यस्त्वौषधीभ्योऽनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः । अग्नी-

---

८—दीर्घतमा ऋषिः । बृहस्पतिर्देवता । द० । ०'धर्षान्मानुषः' इति काण्व० ॥

षोमा॑भ्यां त्वा जुष्ट॒ प्रोक्षा॑मि ॥ ६ ॥

सविता अश्विनौ पूषा च देवता. । (१) प्राजापत्या वृहती । मध्यमः ।
(२) पक्ति धैवत. ॥

भा०—हे शिष्य ! और हे राजन् ! (त्वा) तुझको (देवस्य सवितु॰) देव, सर्वप्रकाशक, सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पादित जगत् और शासन में (अश्विनो. बाहुभ्याम्) सूर्य और चन्द्रमा के प्रकाशमान् तेजस्वी (बाहुभ्याम्) पापबाधक शक्तियों या बाहुओं से और (पूष्णा.) सब के पोषक पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान धारण और आकर्षण से स्वीकार करता हूं । और (अग्नीषोमाभ्याम्) अग्नि, अग्रणी, सेनानायक और शान्तस्वभाव, न्यायाधीश दोनों से (जुष्टम्) युक्त तुझको (नि युनज्मि) राज्य कार्य में नियुक्त करता हू । और (त्वा) तुझको (अग्नी षोमाभ्याम् जुष्टम्) अग्नि और सोम, सेनापति और न्यायाधीश से युक्त अथवा अग्नि के समान सन्तापकारी और सोम, चन्द्रमा के समान आल्हाद-कारी भयानक और सौम्य गुणों से युक्त (त्वा) तुझको (अद्भ्य) जलों और उनके समान आप्त पुरुषों और (ओषधोभ्यः) तापजनक, तीव्र रसयुक्त ओषधियों से (प्रोक्षामि) अभिषेक करता हूं । या (अदभ्य ओषधीभ्य त्वाम् प्रोक्षामि) आप्त पुरुषों और प्रजाओं के हित करने के लिये तुझे अभिषिक्त करता हू । (त्वा माता। अनुमन्यताम्) तुझे इस महान् राज्याभिषेक के लिये तेरी माता अनुमति दे । (पिता अनुमन्यताम्) पिता तुझे अनुमति दे । (भ्राता अनु) भाई तुझे अनुमति दे । (सगर्भ्यः) एक ही गर्भ में सोनेवाला, सहोदर (अनु) तुझे अनुमति दे । (सयूथ्य) एक जनसमुदाय में तेरे साथ रहने वाला साथी या सहपाठी या सहवर्गी पुरुष और (सखा) तेरा मित्रगण तुझे (अनु) अनुमति दे। इसी प्रकार आचार्य

६—०धीभ्यः प्रोक्षाण्यनुत्वा० । इति काण्व० ॥

शिष्य को भी स्वीकार करे, जलों और ओषधियों से अभिषिक्त करे। और अपने अधीन लेते हुए उसे कहे कि तेरी माता, पिता, तेरे भाई, सहोदर, सहवर्गी, मित्र आदि तुझे आचार्याधीन विद्या प्राप्ति के लिये दीक्षित होने की अनुमति दें ॥ शत० ३ । ७ । ४ । ३–५ ॥

आपो वै सर्वे देवाः ॥ शत० १० । ५ । ४ । १४ ॥ अग्नेर्वा आपः सुपत्न्यः ॥ शत० ६ । ८ । २ । ३ ॥ आपो वरुणस्य पत्न्यः । तै० १ । १ । ३ । ८ ॥ ओषधयो वै देवाना पत्न्यः ॥ श० ६ । ५ । ४ ॥

[1]**अपांपेरुरस्यापो देवीः स्वदन्तु स्वात्तञ्चित्सद्देवहविः । [2]सन्ते प्राणो वातेन गच्छताᳬं समङ्गानि यजत्रैः सं यज्ञपतिराशिषा ॥१०॥**

आप शुश्च देवता (१) प्राजापत्या बृहती। मध्यमः। (२) निचृदार्षीबृहती। मध्यमः।

भा०—हे दीक्षाप्राप्त राजन्! या शिष्य! तू (अपाम्) समस्त आप्त पुरुषों का (पेरुः) पालन करने वाला (असि) है। (देवीः आपः) देव, दानशील, तत्वदर्शी (आपः) आप्त पुरुष (सु-आत्तम्) सुखपूर्वक प्राप्त की हुई अथवा (स्वात्तम्) आस्वादन करने योग्य भोग्य, आनन्दप्रद, (चित्) उत्तम (सत्) श्रेष्ठ पुरुषों, या राजा के योग्य हविः अर्थात् अन्न आदि उपादेय पदार्थों का स्वयं (स्वदन्तु) भोग करें और तुझे भी भोग करावें। (आशिषा) सब बड़ों के आशीर्वाद से (ते प्राणः) तेरा प्राण (वातेन) वायु के साथ मिल कर अनुकूल रूप से (सं गच्छताम्) गति करे। अर्थात् तेरा प्राण वायु के समान बलवान हो। और (अंगानि) तेरे समस्त अंग या तेरे राष्ट्र के समस्त अंग (यजत्रैः) विद्वान्, पुरुषों द्वारा यज्ञ के अंगों के समान (सगच्छन्ताम्) शिक्षा, और पोषण द्वारा उत्तम रीति से वर्तें। और तू (यज्ञपति) समस्त राष्ट्रमय यज्ञ का पालक होकर (आशिषा सं गच्छताम्) उत्तम आज्ञाओं और आशीर्वाद से युक्त हो ॥ शत० ३ । ७ । ४ । ६–९ ॥

१०—०'सदन्तु' ०स, 'यजमान आशिषा' इति काण्व० ॥

घृतेनाक्तौ पशूंस्त्रायेथाᳬ रेवति यजमाने प्रियं धा आविश। उरोरन्तरिक्षात्सजूर्देवेन वातेनास्य हविषस्त्मना यज समस्य तन्वा भव। वर्षो वर्षीयसि यज्ञे यज्ञपतिं धाः स्वाहा देवेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ॥ ११ ॥

स्वरुशासौ, वाक्तृणम्, देवाश्च वातो वा देवता। भुरिगार्ची उष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों (घृतेन अक्तौ) घृत=तेज और स्नेह से युक्त होकर (पशून्) पशुओं का (त्रायेथाम्) पालन करो। हे (रेवति) ऐश्वर्यवति वाणि या भाग्यवती स्त्री! तू (यजमाने) इस यजमान देवोपासक या सगति करने हारे पुरुष में (प्रियम् धा.) उसका प्रियाचरण कर और (आविश) उसमें प्रविष्ट हो। अर्थात् उसका ही एकाङ्ग होकर रह। अथवा हे स्त्री! तू (रेवति यजमाने) ऐश्वर्य और सौभाग्य सम्पन्न यजमान गृह पति के आश्रय रह कर उसका (प्रियं धाः) प्रिय आचरण कर और (आविश) उसके भीतर एकचित्त होकर रह। (देवेन) देव, दिव्यगुणसम्पन्न (वातेन) प्राण के साथ (सजू.) इसकी सहसंगिनी, मित्र के समान होकर (उरोः अन्तरिक्षात्) विशाल अन्तरिक्ष से जिस प्रकार वायु सब की रक्षा करता है उसी प्रकार बडे २ सकट से तू उसकी रक्षा कर। और (अस्य) इसके (हविष) हवि, होमयोग्य अन्न आदि पदार्थों से (त्मना) स्वय भी (यज) यज्ञ कर। अथवा (अस्य हविषा त्मना यज) इसके अन्न को स्वय भी अपने उपभोग में ला और (अस्य तन्वा) उसके शरीर से ही तू (सम् भव) सगत होकर पुत्रलाभ कर, उससे एक होकर रह उसके विपरीत आचरण मत कर। हे (वर्षो) सब सुखों के वर्षक, सब सुखों की दात्रि! (वर्षीयसि यज्ञे) अति विस्तीर्ण, बडे भारी गृहस्थ रूप यज्ञ में (यज्ञपतिम्) यज्ञ को पालन करने में समर्थ गृहपति को (धाः) स्थापित कर। (देवेभ्यः स्वाहा) यज्ञ के पूर्व ही आये देवों,

विद्वानों का प्रेमवचनों से सत्कार करो और (देवेभ्यः स्वाहा) यज्ञ के पश्चात् भी आदर वाणी से विद्वानों का आदर सत्कार करो ॥

राज्य पक्ष में—हे शास अर्थात् शासक और हे स्वरो ! दुष्टों के दण्ड द्वारा उपतापक ! तुम घृत अर्थात् तेज से युक्त रहो। हे रेवति ! वेदवाणि ! तू यजमान राजा में प्रिय मनोहर रूप को धारण कर। अन्तरिक्ष में जिस प्रकार वेगवान् वायु सब प्राणियों को जीवन देता उनपर शासन करता है, उसी के समान शासक होकर उस राजा के (हविषः रमना) आज्ञापक आत्मा के साथ (यज) संगत हो। सकल सुःखों के वर्षण करने हारे इस राष्ट्रमय महान् यज्ञ में यज्ञ पति की रक्षा कर। हे राजन् ! समस्त विद्वान् ब्राह्मणों और शासकों का उत्तम वाणियों से आदर कर ॥

इसी प्रकार यजमान के यज्ञ कर्त्ता भी उसकी इसी प्रकार सेवा करें, उसके अनुकूल होकर रहें, उसको हविसे यज्ञ करें, यज्ञ पति की स्थापना करें और यज्ञ में आये विद्वानों का आदर करें ॥ शत० ३। ८। ६। १–१६ ॥

माहिर्भूर्मा पृदाकुर्नमस्तऽआतानानर्वा प्रेहि ।
घृतस्य कुल्याऽउपऽऋतस्य पथ्याऽअनु ॥ १२ ॥

रज्जु यज्ञःश्च विद्वांसो वा देवता ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (अहिः) सर्प के समान कुटिल मार्ग पर चलने वाला या अकारण क्रोधी (मा भूः) मत हो। और तू (पृदाकुः) मूढ़ के समान अभिमानी, या व्याघ्र के समान हिंसक, या पृदाकू=अजगर के समान अपने सङ्गी को हड़पजाने वाला, उसके प्राणों का नाशक (मा भूः) मत हो। स्त्री पुरुष को और प्रजा राजा को कहती है कि हे (आतान) हे यज्ञसम्पादक पुरुष ! हे प्रजा के सुख को भली प्रकार विस्तार करने वाले पुरुष ! या सुख के विस्तारक ! (ते नमः) हम तेरा आदर करते हैं। (अनर्वा प्रेहि) तू आ

१२—०'पथ्याउप०' इति काण्व० ॥

और जिस प्रकार (घृतस्य) घृत आदि पुष्टिप्रद पदार्थ या घृत=जल की धारा अर्थात् सत्कारार्थ इन जलों को मुख आदि प्रक्षालन के लिये (उप इहि) प्राप्त हो, स्वीकार कर। और (ऋतस्य) ऋत, अन्न के (पथ्या) खानेयोग्य भोजनों को भी (अनु) पीछे स्वीकार कर। अथवा (ऋतस्य पथ्याः अनु) सत्य ज्ञान के मार्गों को तू अनुसरण कर ॥

राजा के पक्ष में—हे राजन्! तू सर्प के समान कुटिलाचारी और अजगर के समान प्रजाभक्षी मत बन। हे विस्तृत राष्ट्र शासक! तेरा हम प्रजाजन आदर करते हैं। तू (अनर्वा) विना सवारी, या विना अश्वसेना या विना शत्रु के विचर। जलकी धाराओं पर पुष्टिकर पदार्थों की धाराओं को प्राप्त हो और सत्य के मार्गों का अनुसरण कर ॥ शत० ३। ८। २। १-३ ॥

वर के गृहद्वार पर भी उसकी स्वयंवरा कन्या और गृहपति के आने पर उसकी गृह पत्नी भी उसी प्रकार आतिथ्य करे यह वेद का उपदेश है ॥

देवीरापः शुद्धा वोड्ढ्वꣳसुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ १३ ॥

आपो देवताः। निचृदार्षी अनुष्टुप्। गान्धारः स्वरः ॥

भा०— हे (आप) आप्तगुणों से युक्त या प्राप्त होने योग्य, या जलों के समान स्वच्छ (देवी) देवियो, विदुषी स्त्रियो! आप लोग (शुद्धाः) शुद्ध आचरण वाली होकर (वोड्ढ्वम्) स्वयंवर पूर्वक विवाह करो। और तुम कन्याजन! (देवेषु) विद्वान् पुरुषों में ही (सु परिविष्टाः) उत्तम रीति से उनके अर्धाङ्गिनियों के रूप मे उनको प्रदान की जाओ। कन्यायें उत्तर दें—हे विद्वान् पुरुषो! (वयम्) हम कन्याएं (सु परि विष्टाः) विद्वान् पुरुषों के हाथों दी जावे। पुरुष कहें (वयम्) हम (परिवेष्टारः) विवाह करने वाले (भूयास्म) हों। उनका पाणिग्रहण करें ॥

राजा प्रजा पक्ष में—राजा कहता है—हे प्रजाओ! तुम शुद्ध रूप से

आज्ञा को धारण करो और (देवेषु) विद्वानों के आश्रय में सुख से वस कर रहो। प्रजा कहे-हम सुख से हैं। राज गण कहें—हम प्रजा जनों के उत्तम रक्षक बनें। अर्थात् राजा प्रजा का व्यवहार स्वयंवृत पति पत्नी के समान हो॥ शत० ३। ८। २॥

वाचं॑ ते शुन्धामि प्राणं ते॑ शुन्धामि॒ चक्षु॑स्ते शुन्धामि॒ श्रोत्रं॑ ते शुन्धामि॒ नाभिं॑ ते शुन्धामि॒ मेढ्रं॑ ते शुंधामि पा॒युं ते॑ शुन्धामि च॒रित्रां॑स्ते शुन्धामि॥ १४॥

विद्वांसो देवताः॥

भा०—स्त्री स्वयंवर के अवसर पर पति को कहती हैं—और इसी प्रकार गुरुजन अपने शिष्यों को भी कहते हैं—(ते वाचम् शुंधामि) मैं तेरी वाणी को शुद्ध करती हूं। (ते प्राणान् शुन्धामि) मैं तेरे प्राण को शुद्ध करती हूं। (ते चक्षु शुन्धामि) तेरी आंख को शुद्ध करती हूं। (ते श्रोत्रं शुन्धामि) तेरे कान को शुद्ध करती हूं। (ते नाभिम् शुन्धामि) तेरी नाभि को शुद्ध करती हूं। (ते मेढ्रं शुन्धामि) तेरे प्रजननाङ्ग को शुद्ध करती हूं। (ते पायुम् शुन्धामि) तेरे पायु अर्थात् गुदा भाग को शुद्ध करती हूं और (चरित्रान् शुन्धामि) तेरे चरणों और आचरणों को भी शुद्ध करती हूं। जितने भी सम्बन्ध आपस के भेद भाव रहित निष्कपटता के हैं वहां २ परस्पर एक दूसरे के समस्त अंगों को पवित्र करें। पत्नी पति के और पति पत्नी के और गुरु शिष्य के, समस्त अंगों को पवित्र और शुद्ध आचारवान् बनाने की प्रतिज्ञा करें। विवाह पद्धति में कन्याहुति द्वारा उसी उद्देश्य को पूर्ण किया जाता है। उपनयनादि में गात्र स्पर्श द्वारा आचार्य भी वही कार्य करता है॥

इसी प्रकार प्रजा भी राजा की वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, नाभि

१४—पशुर्देवता। सर्वा०॥

लिङ्ग, गुदा, चरण आदि सब को पवित्र करे। उसको पाप में पैर न रखने दे ॥

मनस्त आप्यायतां वाक्त ऽआप्यायतां प्राणस्त ऽआप्यायतां चक्षुस्त ऽआप्यायताᳬ श्रोत्रं त ऽआप्यायताम्। यत्ते क्रूरं यदास्थितं तत्त ऽआप्यायतां निष्ट्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनᳬ हिᳬसीः ॥ १५ ॥

विद्वांसो देवताः। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। पञ्चम ॥

भा०—हे मनुष्य! (ते मनः) तेरा मन, संकल्प विकल्प करने वाला चित्त (आप्यायताम्) बढ़े, शक्तिशाली हो। (ते वाक्, प्राणः, चक्षु. श्रोत्रम् आप्यायताम् ४) तेरी वाणी प्राण, चक्षु, कान, ये समस्त इन्द्रियां शक्तिमान् हों और (यत्) जो (ते) तेरा (क्रूरम्) क्रूर स्वभाव है वह (नि. स्त्यायताम्) दूर हो। और (यत्) जो (आस्थितम्) तेरा स्थिर निश्चय या स्थिर स्वभाव है वह (आप्यायताम्) वृद्धि को प्राप्त हो, बढ़े। और (तत्) वह भी (ते) तेरा (शुध्यतु) शुद्ध हो। (अहोभ्य.) सब दिनों के लिये (शम्) शान्ति और कल्याण, सुख प्राप्त हो। हे (ओषधे) ओषधि त्याग और औषधियों के प्रयोक्ता वैद्य लोगो! (त्रायस्व) तुम इसकी रक्षा करो। हे (स्वधिते) शस्त्र या हे शस्त्रधारी पुरुष! (एनम्) इस मनुष्य को (मा हिंसीः) मत मार॥

गुरु शिष्य पक्ष में—हे (ओषधे) दोषों को दूर करने में समर्थ गुरो! तुम इस शिष्य की रक्षा करो। और हे (स्वधिते) शिष्याओं को शिष्य को अपने पुत्र के समान पालने हारे गुरो और आचार्याणि! तुम (मा एनं हिं सी.) इस शिष्य को व्यर्थ ताड़ना मत करो।

१५—पशुर्देवतेति सर्वा०। ०'निष्ट्यायता' इति काण्व० ॥

राजा के भी मन वाणी आदि शक्तियां बढ़े और शस्त्रधारी रक्षक उसका घात न करें ॥ शत० ३ । ८ । २ । १२ ॥

रक्षसां भागोऽसि निरस्तꣳ रक्षऽइदमहꣳ रक्षोऽभितिष्ठामीदमहꣳ रक्षोऽवबाधऽइदमहꣳ रक्षोऽधमन्तमो नयामि । घृतेन द्यावापृथिवी प्रोर्णुवाथां वायो वे स्तोकानामग्निराज्यस्य वेतु स्वाहा स्वाहाकृतेऽऊर्ध्वनभसं मारुतङ्गच्छतम् ॥ १६ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते । ब्राह्म्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे दुष्ट कर्म के करनेवाले ! दुराचारिन् ! तू (रक्षसाम्) दूसरों के कार्यों का नाश करके अपने स्वार्थ की रक्षा करनेवाले, नीच पुरुषों का ही (भाग: असि) भाग है अर्थात् तू उनके आचरणों और नीच स्वभावों का सेवन करता है एवं उनका आश्रय है । इसलिये (रक्षः) ऐसा स्वार्थी दुष्ट पुरुष (निरस्तम्) नीचे गिरा दिया जाय । (अहम्) मैं (इदम्) इस प्रकार (रक्षः) दुष्ट पुरुष के (अभितिष्ठामि) ऊपर चढ़ाई करूं, उसका मुकाबला करूं । मैं (इदम्) इस प्रकार अभी, बिना विलम्ब के, (रक्षः अवबाधे) राज्य कार्य के विघ्नकारी पुरुष को नीचे गिराकर दण्डित करूं । (इदम्) और शीघ्र ही इस प्रकार से (रक्षः) राक्षस, विघ्नकारी दुष्ट पुरुष को (अधमं तमः) नीचे गहरे अन्धकार में या अन्धेरी कोठरी में (नयामि) घोर दु:ख भोगने के लिये भेजदूं । और हे (द्यावापृथिवी) पिता, माता एवं पुरुष और स्त्री और गुरु, शिष्य ! जिस प्रकार द्यौ और पृथिवी (घृतेन) जल से या प्रकाश से आच्छादित रहती है । उसी प्रकार तुम दोनों (घृतेन) घृत आदि पुष्टिप्रद पदार्थ, वीर्य सामर्थ्य और ज्ञान से (प्र-ऊर्णुवीथाम्) अच्छी प्रकार सम्पन्न रहो । हे

१६—रक्षो, द्यावापृथिवी, वायुः अति वपाश्रपण्यौच देवताः । सर्वा० । '०प्रोर्णाथा वायो वेस्तोकानाम् । जुषाणोऽग्निरा०' इति काण्व ॥

(वायो) ज्ञानवन् ! जिस प्रकार वायु जल के सूक्ष्म कणों को अपने भीतर वाष्परूप में ग्रहण करलेता है उसी प्रकार तू भी (स्तोकानाम्) अत्यन्त सूक्ष्म ज्ञानों और सूक्ष्म २ तत्वों को भी (वेः) ज्ञान कर। और (अग्नि) अग्नि जिस प्रकार आज्य अर्थात् घृत को प्राप्त होकर प्रकाशमान होजाता है उसी प्रकार या सूर्य जिस प्रकार जल को ग्रहण करता, हे विद्वान् पुरुष ! तू भी (अग्नि) अग्नि के स्वभाव का होकर, स्वयंप्रकाश होकर (आज्यस्य) अज, अविनाशी परमात्मविषयक ज्ञान को अथवा आनन्द, ज्ञान, प्राणबल, सत्य तत्व, वीर्य या वेद ज्ञान को (वेतु) प्राप्त करे। और (स्वाहा) यही सब से उत्तम आहुति है। या वह उत्तम यश को उत्पन्न करता है। हे (स्वाहाकृते) इस प्रकार उत्तम उपदेश-ज्ञान की परस्पर आहुति प्रदान या ग्रहण करनेवाले स्त्री पुरुषो ! (ऊर्ध्वनभसम्) जिस प्रकार अग्नि घृत को ग्रहण करके प्रज्वलित करता और वायु उसके सूक्ष्म कणों को ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार ऊपर के जल से युक्त वायु को दोनों आकाश और पृथिवी प्राप्त कर लेते हैं। उसी प्रकार तुम दोनों (ऊर्ध्वनभसम्) सर्वोच्च, सबके परम बन्धनकारी (मारुतम्) सबके जन्म मरण के कर्त्ता या प्राणस्वरूप परमेश्वर का (गच्छतम्) ज्ञान करो, उसको प्राप्त करो ॥

राज प्रजा के पक्ष में—राजा प्रजा (घृतेन) तेज से, ऐश्वर्य से एक दूसरे को आच्छादित करे। वायु स्वभाव प्रजा स्वल्प २ पदार्थों का भी संग्रह करे। अग्नि राजा युद्धोपयोगी ऐश्वर्य को प्राप्त करे। एक दूसरे को (स्वाहा) उत्तम आदान प्रतिदान करे। इस प्रकार (स्वाहाकृते) आदानप्रतिदान करनेवाले हे राजा और प्रजाओ ! तुम दोनों (ऊर्ध्वनभसम्) ऊपर सबपर बांधनेवाले एक नियन्तारूप (मारुतम्) मरुद्गणों, समस्त सेनाओं या वैश्यों के महान् बल को प्राप्त करो ॥ शत० ३ । ८ । २ । १३-२२ ॥

इ॒दमा॑पः॒ प्रव॑हताव॒द्यञ्च॒ मल॑ञ्च॒ यत्। यच्चा॑भिदु॒द्रोहानृ॑तं॒ यच्च॑ शे॒पेऽअ॑भी॒रुण॑म्। आपो॑ मा॒ तस्मा॒देन॑सः॒ पव॑मानश्च मुञ्चतु॥१७॥

आपो देवता। निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। गाधारः॥

भा०—हे (आपः) जलों के समान शान्त स्वभाव, एवं मलशोधक विद्याओं को प्राप्त करनेहारे आप्त पुरुषो ! (अवद्यं च) जो निन्दनीय कर्म और (यत् मलं) जो मल, मलिन कार्य है और (यत् च) जो कुछ मैं (अभिदुद्रोह) दूसरे के प्रति द्रोहकार्य, द्वेष, घात, वैर आदि करूं और (यत् च) जो (अनृतम्) असत्य भाषण करूं और जो (अभीरुणम्) निर्भय होकर मैं (शेपे) दूसरे को कोसूं, निन्दाजनक अपशब्द कहूं उस सब मल को आप लोग (इदम्) बहुत शीघ्र (प्रवहत) जलों के समान बहाकर दूर करो और मुझे स्वच्छ करदो। और (आपः) वे आप्त पुरुष और (पवमानः च) पवित्र करनेहारा, या सूर्य या वायु के समान अन्न को तुष से पृथक् २ करदेनेहारा व न्यायकारी पुरुष (मा) मुझको (तस्मात्) उस पाप से (मुञ्चतु) छुड़ावें॥

[1]सं ते॒ मनो॒ मन॑सा॒ सं प्रा॒णः प्रा॒णेन॑ गच्छताम्। [2]रेड॑स्य॒ग्निष्ट्वा॑ श्रीणा॒त्वाप॑स्त्वा॒ सम॑रिण॒न्वात॑स्य त्वा॒ ध्राज्यै॑ पू॒ष्णो रꣳह्या॑ऽऊ॒ष्मणो॑ व्यथिष॒त्प्रयु॑तं॒ द्वेषः॑॥ १८॥

अग्निर्देवता। (१) प्राजापत्यानुष्टुप्। गाधार। (२) दैवी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे मनुष्य ! (ते मनः) तेरा मन अन्तःकरण (मनसा) मन, मनन सामर्थ्य या विज्ञान से युक्त हो और (प्राणः) प्राण (प्राणेन) प्राण बलसे (सं गच्छताम्) युक्त हो। अथवा स्त्री पुरुष, राजा प्रजा और

१७—अय मन्त्रः शतपथे नास्ति। इदमापः प्रवहत यत्किंच दुरितं मयि यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृत। इति काण्व०॥

१८—हृदय, वसा, द्वेषश्च देवताः। सर्वा०॥

गुरु शिष्य परस्पर प्रतिज्ञा करते हैं कि (ते मनः मनसा सं गच्छताम्) तेरा मन मेरे मन से मिलकर रहे । (ते प्राणः प्राणेन संगच्छताम्) तेरा प्राण मेरे प्राण से मिलकर रहे ॥

द्यौ और पृथिवी से उत्पन्न अन्न के पक्ष में—हे अन्न ! भोजनयोग्य पदार्थ ! तू (रेट्=लेट् असि) तू आस्वादन करने योग्य है । (त्वा अग्नि श्रीणातु) तुझे अग्नि परिपक्व करे । (आपः त्वा सम् अरिणन्) जल तुझमें मिलें (त्वा) तुझको (वातस्य) वायु के (ध्राज्यै) वेगवती, तीव्र गति और (पूष्णः) परिपोषक सूर्य के (रंह्यै) प्रचण्डता की (उष्मणः) उष्णता से (व्यथिषत्) तपाया जाता है । और इस प्रकार (द्वेषः) अप्रीतिकर, बुरे पदार्थ तुष आदि को तुझ से (प्रयुतं) पृथक् कर दिया जाता है ॥

इसी प्रकार शिष्य के पक्ष में—(रेट् असि) तू ज्ञानवान् होने योग्य है । अग्नि, आचार्य तुझे ज्ञान में परिपक्व करे । आप्त पुरुष तेरे संग रहें । वात अर्थात् प्राण के तीव्रगति और परिपोषक सूर्य के प्रचण्डता की उष्णता से अर्थात् तप से तुझे तपस्या करायी गयी है । अतः हे सहनशील मेरे भीतर से (प्रयुतं द्वेषः) प्राणियों के प्रति तेरे हृदय में बैठे द्वेषभाव को पृथक् कर दिया गया है ॥

राजा प्रजा पक्ष में और योद्धा पक्ष में—(रेट्) शत्रुओं का तू नाशक है । अग्नि, अग्रणी सेनापति युद्धाग्नि तुझे परिपक्व करे । या (वातस्य त्वा ध्राज्यै) वायु के प्रचण्डवेग और (पूष्णः रंह्यै) सूर्य के प्रचण्ड गति के प्राप्त करने के लिये (त्वा आपः सम् अरिणन्) जलों के समान शान्त स्वभाव के विद्वान् पुरुष तुझे प्रेरित करें । या ऐसे जल तुझे प्राप्त हों । तेरी (उष्मः) अपनी प्रचण्डता से (प्रयुतम्) लाखों (द्वेषः) द्वेषकारी शत्रु (व्यथिषत्) पीड़ित हों ॥ शत० ३ । ८ । ३ । ९—२४ ॥

घृत घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशः प्रदिशऽआदिशो विदिशऽउद्दिशो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ १६ ॥

विश्वेदेवा देवताः । ब्राह्म्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (घृतपावानः) घृत=जल के और घृत आदि के पान करनेहारे पुरुषो ! आप लोग (घृतम् पिबत) घृत, जल और घी आदि पुष्टिकारक पदार्थों का पान करो। अथवा हे (घृतपावानः) परम तेज के पालन करनेहारे पुरुषो। तुम लोग 'घृत' अर्थात् राजयोग्य परम तेज को धारण करो॥

[घृत शब्द वेद मे नाना प्रकार से प्रयुक्त होता है जैसे-एतद्वा अग्नेः प्रियं धाम यद् घृतम् । शत० ६ । ६ । १ । ११ ॥ घृतं वै देवानां वज्रं कृत्वा सोममघ्नन् । गो उ० २ । ४ ॥ देवव्रतं वै घृतम् । तां० १८ । २ । ६ ॥ रेतःसिक्तिर्वै घृतम् । घृतमन्तरिक्षस्य रूपम् । श० ७ । ५ । १ । ३ ॥ अन्नस्य घृतमेव रसस्तेज । मै० २ । ६ । १५ ॥ तेजो वा एतत्पशूनां यद् घृतम् । तै० ८ । ३० ॥]

अग्नि अर्थात् राजा का तेज, राष्ट्र को प्राप्त करने के लिये शस्त्रबल, देव का व्रत अर्थात् राजा के निमित्त निर्धारित कर्तव्य, गृहस्थों का वीर्य-सेचन आदि कर्तव्य पालन, अन्न का परम रस और पशु सम्पत्ति ये सब पदार्थ सामान्यतः 'घृत' हैं। उनको पान करने या पालन करने में समर्थ पुरुष इन वस्तुओं का पान अर्थात् प्राप्त करें और उसका उपयोग करें। (वसां वसापावानः पिबत) हे 'वसा' को पान करनेवालो ! तुम 'वसा' को पान करो ॥

'वसा'—श्रीर्वै पशूनां वसा। अथो परमं वा एतद् अन्नाद्यं यद् वसा। श० १२ । ८ । ३ । १२ ॥

१६—विश्वेदेवाः दिशश्च देवताः । सर्वा० ॥

अर्थात्—हे पशु सम्पत्ति और उत्तम अन्न समृद्धि के पालनेहारे पशु पालक और वैश्यजनो! आप लोग (वसां पिबत) आप उत्तम पशु सम्पत्ति और उत्तम अन्न आदि खाद्य पदार्थों का पान करो, उपभोग करो उनसे प्राप्त दूध, दही मक्खन और नाना लेह्य चोष्य पदार्थ बनाकर खाओ। हे अन्नादि पदार्थो! (अन्तरिक्षस्य हविः असि) तू अन्तरिक्ष की हवि अर्थात् प्राप्त और संग्रह करने योग्य पदार्थ है॥

वैश्वदेवं वा अन्तरिक्ष। तद्यदेनेनेमाः प्रजाः प्राणत्यश्चोदानत्यश्चान्त रिक्षमनुचरन्ति) अन्तरिक्ष विश्वेदेव का रूप है अर्थात् समस्त प्रजाएं अन्तरिक्ष हैं। पूर्वोक्त घृत और वसा अर्थात् उत्तम अन्न, वस्त्र, शस्त्र और पशु सम्पत्ति ये पदार्थ विश्वेदेव अर्थात् समस्त प्रजाओं का हवि अर्थात् उपादेय अन्न है। इसलिये (स्वाहा) इनको उत्तम रीति से प्राप्त करना चाहिये, इनका प्राप्त करना उत्तम है। इन सब पदार्थों को (दिशः) समस्त दिशाओं से, (प्रदिशः) उपदिशाओं से, (आदिशः) समीप के देशों से और (विदिशः) विविध दूर २ के देशों से और (उद्दिशः) ऊंचे पर्वती देशों से अर्थात् (दिग्भ्यः) सभी दिशाओं या देशों से (स्वाहा) भली प्रकार प्राप्त करना चाहिये। और नाना देशों को भेजना भी चाहिये॥

वीरों के पक्ष में—वीर लोग 'अन्तरिक्ष की हवि हैं' अर्थात् दोनों देशों के बीच में लड़कर युद्ध यज्ञ में आहुति होने के योग्य हविरूप हैं अर्थात् वहां उनका उपयोग है। वे भी दिशा उपदिशा, दूर समीप के सभी देशों को प्रस्थित हों, वहां विजय करें॥ शत० ३।८।३।३१-३५॥

ऐन्द्रः प्राणोऽअङ्गेऽअङ्गे निदीध्यदैन्द्रऽउदानोऽअङ्गेऽअङ्गे निधीतः। देव त्वष्टर्भूरि ते सꣳसमेतु सलक्ष्मा यद्विषुरूपम्भवाति। देवत्रा यन्तमवसे सखायोऽनु त्वा माता पितरो मदन्तु॥ २०॥

सेनापतिर्देवता। याजुष्य उष्णिहः। ऋषभः॥

२०—०निधीत ऐन्द्र० निदीधे।' इति काण्व०॥

भा०—जिस प्रकार (ऐन्द्रः) इन्द्र अर्थात् जीव सम्बन्धी (प्राणः) प्राण, चेतना (अङ्गे अङ्गे) अङ्ग अङ्ग में, प्रत्येक अङ्ग में (निदीध्यत्) निरन्तर प्रकाशित या चेतनारूप से विद्यमान रहती और गति करती या क्रीड़ा करती है । और जिस प्रकार (एन्द्रः उदान) जीव की एक शक्ति उदान भी (अङ्गे अङ्गे) प्रत्येक अङ्ग में (निधीतः) निरन्तर स्थिर रहती है उसी प्रकार (ऐन्द्र. प्राण.) राष्ट्र में भी प्राण के समान ऐन्द्र=अर्थात् इन्द्र राजा का उत्कृष्ट बल राष्ट्र के (अङ्गे २ निदीध्यत्) प्रत्येक अङ्ग में विराजमान हो, उज्ज्वलरूप मे विद्यमान हो । और इसी प्रकार (ऐन्द्रः उदानः) राजा के उत्तम सामर्थ्य उसको उन्नत करनेवाला बल भी (अङ्गे अङ्गे निधीतः) राष्ट्र के प्रत्येक अंग में स्थापित किया जाय । हे (देव) देव ! हे विजिगीषो ! राजन् सेनापते ! हे (त्वष्टः) शत्रुओं के बलको काटने वाले, हे प्रजापते ! और गृहपते ! हे वीर पुरुष ! (ते) तेरा (यत्) जो (सलक्ष्म) एक ही चिह्न या लक्षण को धारण करनेवाला, एक ही पोषाक पहनने वाला (विषुरूपम्) नाना प्रकार का सेना बल है वह (भूरि) बहुत अधिक मात्रा में (सम् एतु) एकत्र हो । (देवत्रा) देवों, राजाओं के बीच (यन्तम्) गमन करते हुए (त्वा अनु) तेरे पीछे २ चलनेवाले (सखायः) तेरे सुहृद् राजा लोग (अवसे) तेरी रक्षा के लिये चलें और (माता पितरौ) तेरे माता पिता भी (त्वा अनु) तेरे उन्नति के साथ (मदन्तु) हर्षित हों । अथवा तेरे मित्रगण तेरे माता पिता को हर्षित करें ॥

गृहपति पक्ष में—हे (त्वष्टः) गृहपते ! वीर्यनिषेक्त ! (यत्) जब (सलक्ष्मा) तेरे ही समान लक्षणोंवाली तेरी धर्मपत्नी (विषुरूपं भवाति) विपुरूप अर्थात् सन्तानरूप से नाना रूप होजाय तब वह (भूरि) बहुत अधिक (सम् , सम् एतु) तुझे सन्तान आदि सहित प्राप्त हो । (देवत्रा यन्तं सखायः माता पितरौ च त्वा अनु मदन्तु) और विद्वानों के बीच तेरे मित्र और माता पिता तुझे देख २ कर प्रसन्न हों । अथवा-(सलक्ष्मा ते भूरि

सं समेतु) हे वीर्य निषेक करने में समर्थ युवा पुरुष (ते) तेरे समान लक्षणों वाली स्त्री तुझे प्राप्त हो । (यत्) जिससे वह (विपुरूपं, भवति) नाना सन्तानों से नाना रूप हो । शेष पूर्ववत् ॥ शत० ३ । ८ । ३ । ३६ ॥

'त्वष्टा'—इन्द्रो वै त्वष्टा । ऐ० ६ । १० ॥ त्वष्टा वै रेतः सिक्तं विकरोति । श० १ । ८ । २ । १० । ३ ॥ रेतः सिक्तिर्वै त्वाष्ट्रं । कौ० १६ । ६ ॥

स॒मु॒द्रङ्ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ऽन्तरि॑क्षङ्गच्छ॒ स्वाहा॑ दे॒वꣳ स॑वि॒तार॑ङ्गच्छ॒ स्वाहा॑ । मि॒त्रावरु॑णौ गच्छ॒ स्वाहा॑ऽहोरा॒त्रे ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ छन्दा॑ꣳसि गच्छ॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वी ग॑च्छ॒ स्वाहा॑ य॒ज्ञं ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ सोमं॑ गच्छ॒ स्वाहा॑ दि॒व्यं नभो॑ गच्छ॒ स्वाहा॒ग्निं वै॑श्वान॒रङ्ग॑च्छ॒ स्वाहा॒ मनो॑ मे॒ हार्दि॑ यच्छ॒ दिवं॑ ते धू॒मो ग॑च्छतु॒ स्व॒र्ज्योतिः॑ पृथि॒वीं भस्म॒नापृ॑ण॒ स्वाहा॑ ॥ २१ ॥

सेनापतिर्देवता । याजुष्य उष्णिहः । ऋषभः ॥

भा०—(समुद्रं गच्छ स्वाहा) हे सेनापते ! तू (स्वाहा) उत्तम नौका आदि विद्या से तैयार किये, उत्तम उपाय से (समुद्र गच्छ) समुद्र की यात्रा कर । विमानविद्या द्वारा बनाये विमान आदि उत्तम उपाय से (अन्तरिक्षम् गच्छ) अन्तरिक्ष को प्राप्त कर, उसमें जा । (सवितारम् देवम् गच्छ स्वाहा) ब्रह्मविद्या से प्रकाशस्वरूप सविता, सर्वोत्पादक परमेश्वर को (गच्छ) प्राप्त हो । (स्वाहा मित्रावरुणौ गच्छ) योग विद्या से मित्र और वरुण, प्राण और उदान को वश कर । (स्वाहा अहोरात्रे

२१—'हार्दियच्छ' इत्यन्तो । मन्त्रः शत० । दिवन्ते०—स्वाहा' शतपथे नास्ति । लिंगोक्ता समुद्रादयो स्वरुश्च देवता । इति सर्वा० । समुद्र गच्छ स्वाहा देव १० सवितार गच्छ स्वाहा अन्तरिक्ष० । ०सोम गच्छ स्वाहा यज्ञ गच्छ स्वाहा नभो दिव्य०, हार्घच्छ । दिव ते धूमो गच्छत्वन्तरिक्ष ज्योतिः । इति काण्व० ॥

गच्छ) कालविद्या से दिन और रात्रि का ज्ञान कर। (स्वाहा छन्दांसि गच्छ) वेद वेदाङ्ग की विद्या से समस्त ऋग्, यजु., साम और अथर्व चारों वेदों का ज्ञान कर। (स्वाहा द्यावापृथिवी गच्छ) आकाश, खगोल, भूगोल और भूगर्भ विद्या से द्यौ और पृथिवी, आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों का ज्ञान कर। (स्वाहा यज्ञं गच्छ) उत्तम उपदेश से यज्ञ, अग्नि-होत्र, राज्यशासन आदि कार्यों को जान। (स्वाहा सोमम् गच्छ) उत्तम उपदेश द्वारा समस्त ओषधियों के परम रस व परम वीर्य को प्राप्त कर, उसका ज्ञान कर। (स्वाहा दिव्यं नभः गच्छ) उत्तम विद्या द्वारा दिव्य गुणयुक्त नभः आकाश के भागों को या जलों को जान। (स्वाहा अग्निम् वैश्वानरम् गच्छ) उत्तम विद्योपदेश द्वारा वैश्वानर अग्नि, जाठर अग्नि, अथवा सूर्य से प्राप्त अग्नि का ज्ञान कर॥

हे परमात्मन्! (मे) मेरे (हार्दि) हृदय में प्राप्त होने योग्य (मनः) उत्तम ज्ञान (यच्छ) प्रदान कर। हे अग्ने! अग्रणी सेनापते! (ते धूमः) जिस प्रकार अग्नि का धूआं आकाश में चला जाता है, उसी प्रकार (ते) तेरा (धूमः) शत्रुओं को कंपा देने वाला सामर्थ्य (दिवं गच्छ) प्रकाशमान सूर्य को प्राप्त करे अर्थात् प्रकाशित हो। तेरी (ज्योतिः) ज्योति.=यश, (स्व·) सूर्य को प्राप्त हो, अर्थात् यह सूर्य के समान प्रकाशित हो। और तू (पृथिवीम्) पृथिवी को (भस्मना) अपने तेज और शत्रु को दबानेवाले आतङ्क से (स्वाहा) उत्तम नीति से (आपृण) पूर्ण कर। 'भस्मना' भस भर्त्सनदीप्तयो.। इत्यत. सार्वधातुको मनिन्॥

अर्थात् उत्तम २ विद्याओं द्वारा, और उत्तम विद्योपदेशों द्वारा समुद्र अन्तरिक्ष आदि को प्राप्त हो। अथवा हे राजन्! तू (स्वाहा समुद्र गच्छ) उत्तम आदान योग्य गुणों से समुद्र को प्राप्त हो अर्थात् तू समुद्र के समान गम्भीर रत्नों का आश्रय हो। तू अन्तरिक्ष को प्राप्त हो अर्थात् अन्तरिक्ष के समान पृथिवी का रक्षक बन, सूर्य के समान सब का प्रेरक राजा बन,

प्राण उदार के समान राष्ट्र का जीवन बन। दिन रात्रि के समान कार्य सञ्चालक और विश्रामवाला बन। इसी प्रकार वेदों के समान ज्ञानमय, द्यावापृथिवी के समान सबका आश्रय, यज्ञ के समान सब का पालक, सोम के समान रोगनाशक आकाश या जल के समान व्यापक और शान्ति-दायक, वैश्वानर अग्नि के समान सर्वहितकारी नेता, बन ॥ शत० ३। ८।४।१०-१८॥ ३।८।५।१-६॥ यह मन्त्र प्रजोत्पत्ति पक्ष में शतपथ मे व्याख्यात है। जिसका अभिप्राय है कि महान् परमेश्वर का वीर्य जिस प्रकार समुद्र अन्तरिक्ष, सूर्य, मित्रवरुण द्यौ पृथिवी आदि नाना पदार्थों में परिवर्तित है, उसीप्रकार हे वीर्य ! तू भी माता के गर्भाशय में जाकर शरीर के ही नाना भागों में परिवर्तित हो ॥

[1]मापो मौषधीर्हिंᳬसीर्द्धाम्नो धाम्नो राजँस्ततो वरुण नो मुञ्च। यदाहुरघ्न्याऽइति वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च। [2]सुमित्रिया नऽआपऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥ २२॥

वरुणो देवता। ब्राह्मी (१) स्वराड् उष्णिक्। ऋषभः।
(२) विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! हे (वरुण) वरुण! सर्वश्रेष्ठ प्रजाओं और आप्तों द्वारा वरण करने योग्य! तू (आपः) आप्त प्रजाजनों को और (ओषधीः) दुष्टों के दोषों का नाश करने वाले, सामर्थ्यवान् वीर्यवान् पुरुषों को, (मा हिंसीः) मत नाश कर। अथवा (आपः ओषधीः मा हिंसीः) राष्ट्र में जलों, कूप तड़ाक आदि, ओषधि, अन्न आदि के खेतों और वनों का नाश मत कर। उनकी रक्षा कर। और (धाम्नः धाम्नः) प्रत्येक स्थान से (नः) हमें (मुञ्च) भय से मुक्त कर, हमे स्वतन्त्र रख। (यत्) जब २ हम हे (अघ्न्याः) न मारने योग्य गौ और ! विद्वान् ब्राह्मण गण! हे (वरुण) सर्व श्रेष्ठ दोषवारक! (इति) इस प्रकार कहकर हम (शपामहे) आगे

अपराध न करने की शपथ लें (तत) तब उस अपराध के दण्ड से (नः) हमें (मुञ्च) मुक्त कर । (न) हमारे लिये (आपः) समस्त जल और (ओषधयः) ओषधियां और आप्त पुरुष और दण्ड दाता अधिकारी-जन (नः) हमारे (सुमित्रियाः) उत्तम स्नेहकारी मित्र के समान वर्त्ताव करने वाले (सन्तु) हों । और वे ही (तस्मै) उस मनुष्य के लिये (दुर्मित्रियाः) दु.खदायी हों (यः) जो (अस्मान्) हमें (द्वेष्टि) द्वेष करता है और (यं च वयं द्विष्मः) जिससे हम द्वेष करते हैं ॥

'आपः'–आपो वै सर्वे देवाः । श० १० । ५ । ४ । १४ ॥ आपो वरुणस्य पत्न्यः । तै० १ । १ । ३ । ८ ॥ अग्निना वा आप सुपत्न्यः । श० ६ । ८ । २ । ३ ॥ मनुष्या वा आपः चन्द्रा. । श० ७ । ३ । १ । २० ॥

'ओषधी '—ओषं धय इति तत ओषधय समभवन् । तेज और ताप को धारण करने वाला 'ओषधि' है ॥

गृहपति पक्ष में यही मन्त्र व्याख्यात होता है । जिससे स्त्रियें और गर्भिणिएं अदण्ड्य होती हैं ॥ शत० ३ । ५ । १० । ११ ॥

हविष्मतीरिमाऽआपो हविष्माँ२ऽ आविवासति ।
हविष्मान्देवोऽअध्वरो हविष्माँ२ऽ अस्तु सूर्यः ॥ २३ ॥

आप यज्ञः सूर्याश्च देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—(इमाः आप.) ये जल सदा (हविष्मतीः) हवि, अर्थात् ग्रहण करने योग्य रस और अन्न से युक्त हो उनको (हविष्मान्) हविः, उत्तम गुण और ज्ञान से सम्पन्न पुरुष (आविवासति) प्रयोग में लावे, उपयोग करे । अथवा—(इमा.) इन (हविष्मती) ज्ञान से समृद्ध प्रजाओ और आप्त पुरुषो या यज्ञादिक आप्त कर्मों को (हविष्मान् आविवासति) ज्ञान जल और अन्न से समृद्ध पुरुष ही सेवन करता है । (देवः) देव, साक्षात् राजा (अध्वर·) शत्रुओं से न पराजित होने वाला

(हविष्मान्) ग्रहण करने योग्य राष्ट्र से युक्त हो। और (सूर्यः) वह सूर्य के समान रश्मियों से युक्त तेजस्वी होकर (हविष्मान् अस्तु) अन्नादि उपयोगी पदार्थों से सम्पन्न हो ।

यज्ञ में ये आपः, 'वसतीवरी' कहाती हैं जो 'वसति' अर्थात् राष्ट्र के नगर, ग्राम आदि में बसी श्रेष्ट प्रजाओं की प्रतिनिधि हैं।

अथवा—(हाविष्मान्) हवि, ग्रहणशक्ति से सम्पन्न वायु जिस प्रकार (हविष्मती आपः आविवासति) रस वाले जलों को अपने भीतर लेता है उसी प्रकार (अध्वरः देव हविष्मान्) अपराजित राजा स्वयं बल शाली होकर समस्त प्रजाओ को अपने वश रखे। और इसी प्रकार 'अध्वर' हिंसा रहित यज्ञ जिस प्रकार अन्नवान् है और जिस प्रकार सूर्य अपने रस ग्रहण की शक्तिरूप हवि को धारण करता है उसी प्रकार राजा भी अन्न आदि से समृद्ध हो ॥ शत० ३ । ६ । २ । १०+१२ ॥ इसी प्रकार प्रत्येक गृहपति को भी हविष्मान् और पत्नी को हविष्मती और वीर्यवान्, वीर्यवती, होने का उपदेश है । इस मन्त्र में 'आप' कन्या हैं क्योंकि उनको वरण द्वारा प्राप्त किया जाता है। उनके प्रतिनिधि भी 'वसतीवरी' हैं क्योंकि बसना चाहने वाले नवयुवकों को वे वरण करती हैं। और स्वंयवरा कन्या 'सूर्या' कहाती है। वरण योग्य पुरुष 'सूर्य' कहाता है ॥

[1]अग्नेर्वोऽपन्नगृहस्य सदसि सादयामीन्द्राग्न्योर्भागधेयी स्थ मित्रावरुणयोर्भागधेयी स्थ विश्वेषां देवानां भागधेयी स्थ । [2]अमूर्याऽउप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥२४॥

ऋ० १ । २३ । १७ ॥

अग्निर्देवता । (१) आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । (२) त्रिपाद् गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे स्वंय वरण करने हारी कन्याओ ! मैं तुम्हारा पिता

(व) तुम सब को (अपन्नगृहस्य) विपत्तिरहित गृह वाले पुरुष के (सदसि) गृह में (सादयामि) स्थापित करूं। तुम (इन्द्राग्न्योः) इन्द्र और अग्नि, इन्द्र=आचार्य और अग्नि=ज्ञानवान् गृहस्थ अथवा इन्द्र राजा शक्तिशाली पुरुष और ज्ञानवान् पुरुषों के (भागधेयी स्थ) भाग, अर्थात् सेवन करने योग्य अंश को धारण करती हो अर्थात् उनके योग्य हो। अथवा उनके सेवन करने योग्य अन्न आदि के धारण करने हारी हो। (मित्रावरुणयो भागधेयी. स्थ) मित्र, स्वस्नेही पुरुष और वरुण, पापों से निवारण करने वालों के भागों या अन्नादि पदार्थों को धारण करने वाली हो। (विश्वेषां देवानाम्) समस्त देव, विद्वान पुरुषों के (भागधेयीः स्थ) भोग्य अन्न आदि पदार्थों को धारण करने वाली हो। और ऐसी ही, इन्द्र, आचार्य, अग्नि, ज्ञानवान् पुरुष, मित्रजन, पाप निवारक हितैषी, समस्त विद्वानों के लिये अन्नादि से उनका सत्कार करने वाली बनी रहो॥

(या) जो गृहस्थ वधुएं (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (उप) समीप रहें और (याभि· सह) जिनके साथ (सूर्यः) सूर्य जैसा तेजस्वी पुरुष निवास करे (ताः) वे (न.) हमारे (अध्वरम्) अजेय राष्ट्र की शक्ति को (हिन्वन्ति) बढ़ाने वाली हो॥

राजा के पक्ष में—हे आप्त प्रजाओ ! तुमको (अपन्नगृहस्य सदसि सादयामि) जिसका गृह अर्थात् वश करने की शक्ति कभी कष्ट नहीं होती ऐसे राजा के सदस् अर्थात् राजसभा में स्थापित करता हूं। आप सब इन्द्र राजा और अग्नि सेनापति दोनों के (भागधेयी.) प्राप्तव्य अंश को धारण करती है, इसी प्रकार मित्र, न्यायकर्त्ता और वरुण, दुष्टों के दमनकारी अधिकारियों के भी भागों को धारण करती हो। तुम समस्त (देवानाम्) राज्य शासकों के भागों को धारण करती हो। और जितनी आप्त प्रजाएं (सूर्ये उप) सूर्य समान तेजस्वी राजा के समीप, उसके आश्रय हैं और जिनके साथ

तेजस्वी राजा सदा विद्यमान है, वे प्रजाएं राष्ट्र की वृद्धि करती हैं। अर्थात् प्रजा राज्य के सब विभागों को धन आदि से पालन करे और उनका व्यय दे। राजा प्रजा परस्पर मिल कर रहें तो राष्ट्र की वृद्धि होती है॥ शत० ३।६।२।१३—१७॥

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा।
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ॥ २५॥

सोमो देवता। आर्षी विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे कन्ये! मैं तुझे (हृदे) हृदय वाले, प्रेम से युक्त, पुरुष के लिये, (मनसे) मन वाले या ज्ञानी, (दिवे) प्रकाश वाले, तेजस्वी और (सूर्याय) सूर्य के समान कान्तिमान्, वरण करने योग्य पुरुष के हाथ [यच्छामि] प्रदान करता हूं। और तू हे कन्ये! (इमम्) इस वरण योग्य (अध्वर) अपराजित, अहिंसक (ऊर्ध्वम्) उत्कृष्ट पद पर स्थित पुरुष को (दिवि) ज्ञान प्रकाश में स्थित (देवेषु) देव विद्वानों के बीच में (होत्राः) जो आहुति देने वाले या दान देने योग्य गृहस्थ पुरुष हैं उनके नियम में (यच्छ) बांध। अथवा वरण करने हारी कन्या वर के प्रति कहती है। मैं (हृदे त्वा मन से दिवे त्वा, सूर्याय त्वा वृणोमि) अपने हृदय, चित्त, और प्रकाश या सुख के और अपने प्रेरक पति बनाने के निमित्त वरण करती हूं। (इमम् ऊर्ध्वम् अध्वरम्) तू इस गृहस्थ रूप यज्ञ को (दिवि) सुख लाभ के लिये (देवेषु) विद्वान पुरुषों में से भी जो (होत्राः) ज्ञान ऐश्वर्य प्रदान करने वाले यज्ञशील पुरुष हैं उनको (यच्छ) प्रदान कर, उनके अधीन कर॥

राजा के पक्ष में—हे राजन् तेरे हृदय मन, तेज और राज पद के लिये तुझे हम प्रजाएं वरण करती हैं। ज्ञान, प्रकाश में जो विद्वानों में भी

२५—ऊर्ध्वो ऽध्वर० इति काण्व०॥

(होत्राः) उत्तम दानशील उदार पुरुष हैं तू इस राष्ट्रमय यज्ञ को उनके अधीन कर ॥ शत० ३ । ६ । ३ । १—५ ॥

[1]सोमं राजन्विश्वास्त्वं प्रजाऽउपावरोह विश्वास्त्वां प्रजाऽउपावरोहन्तु । [2]शृणोत्वग्निः समिधा हवं मे शृण्वन्त्वापो धिषणाश्च देवीः । श्रोता ग्रावाणो विदुषो न यज्ञꣳ शृणोतु देवः सविता हवं मे स्वाहा ॥ २६ ॥

सोमो राजा देवता । (१) गायत्री । षड्जः । (२) आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (सोम राजन्) सोम, सर्वप्रेरक राजन् ! सर्व उत्तम गुणों से प्रकाशमान ! सर्वोपरि विराजमान ! (त्वम्) तू (विश्वा प्रजाः) समस्त प्रजाओं के (उप अवरोह) अधीन होकर रह । और (विश्वा प्रजाः) समस्त प्रजाएं (त्वा उप अवरोहन्तु) तेरे अधीन होकर रहें । अर्थात् तुझ पर शासन प्रजा का हो और तेरा शासन प्रजा पर रहे ॥

(समिधा) उत्तम काष्ठ या इंधन से जिस प्रकार अग्नि प्रदीप्त और प्रबल हो जाता है उसी प्रकार (सम्-इधा) उत्तम तेज या सेना बल से प्रतापी (अग्निः) अग्रणी, या सेनापति (मे) मेरी, मुझ वेदज्ञ विद्वान् की (हवम्) हव, आज्ञा को (शृणोतु) सुने । और (आपः) आप्त प्रजाएं और (देवी.) विदुषी (धिषणाः) ज्ञान, और बुद्धि के प्रदान करने वाली श्रेष्ठ प्रजाएं भी (मे हवम्) मेरी आज्ञा को (शृण्वन्तु) सुनें । हे (ग्रावाणः) ज्ञान पूर्वक विवेचन करने वाले गुरुजनो ! आप लोग भी (विदुषः= विद्वांस यज्ञं न) यज्ञ परमेश्वर को, जिस प्रकार उसके विद्वान् लोग श्रवण करते हैं उसी प्रकार मेरे राष्ट्र रूप यज्ञ, के विषय में (श्रोत) श्रवण करो । और (सविता देवः) समस्त देवों, अधीन राजाओं का उत्पादक, प्रेरक राजा भी (मे हवम्) मेरे हव अर्थात् आज्ञा (शृणोतु) श्रवण करे । (स्वाहा) यही उत्तम वेदानुकूल व्यवस्था है ॥

'उपावरोह, उपावरोहन्तु' इन दोनों का अर्थ धातु, उपसर्ग साम्य से एक ही होना चाहिये। महीधर और उव्वटने 'उपावरोह' का अर्थ किया है 'आधिपत्याय तिष्ठ। (उपावरोहन्तु) प्रत्युत्थानादिभि. प्राप्नुवन्तु।' यह ठीक नहीं। 'धिषणा'—धी सादिन्यो वा धीमानिन्य इति निरु० २। ४॥ 'विदुष.,' अत्र विभक्तिव्यत्यय प्रथमार्थे द्वितीया। शत० ३। ६। ३। ६–१४॥

देवीरापो ऽअपान्नपाद्योवऊर्मिर्हविष्यऽइन्द्रियावान् मदिन्तमः। तं देवेभ्यो देवत्रा दत्त शुक्रपेभ्यो येषाम्भाग स्थ स्वाहा॥ २७॥

आपो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवत॥

भा०—हे (देवी. आप·) दिव्य, उत्तम गुणवान् विद्वान्, आप्त प्रजाजनो! (य) जो (वः) तुम मे से (अपां नपात्) प्रजाओं मे से ही उत्पन्न, प्रजाओं के हित को नष्ट न होने दे, ऐसा (ऊर्मि) जलों के बीच तरङ्ग के समान उन्नत (हविष्य) अन्न आदि से सत्कार करने योग्य (इन्द्रियावान्) समस्त इन्द्रियों से सम्पन्न, अथवा इन्द्र अर्थात् राजपद के योग्य, ऐश्वर्य, वैभव और बल सामर्थ्य से सम्पन्न (मदिन्तम) शत्रुओं को पराजय और अपने राष्ट्र को हर्षित करने में सब से अधिक समर्थ है उसको (देवेभ्य.) समस्त राजगण और विद्वान् पुरुषों के हितार्थ और (शुक्रपेभ्य) शुक्र अर्थात् वीर्य का पालन करने वाले आदित्य ब्रह्मचारियों, योगियों और सत्य ज्ञान के पालन करने वाले विद्वानों के लिये अथवा शुक्रप अर्थात् प्रजाओं के पालन करने वाले अथवा शुक्रप अर्थात् शुक्र, आदित्य व्रत के पालक उन पुरुषों के लिये (देवत्रा) समस्त राजोचित अधिकार (दत्त) प्रदान करो। (येषाम्) जिनमें से आप लोग भी (भागः स्थ) एक श्रेष्ठ भाग हो। शत०॥

'मदिन्तम'—मदी हर्षग्लेपनयो.। मदयतीति मदी सोतिशयितो मदिन्तम। नाद्घस्येति नुम्।

२७—०'देवत्रा दात शु०' इति काण्व०॥

'शुक्रपेभ्य'। एष वै शुक्रो य एस आदित्यस्तपति । श० ४ । ३ । २६ ॥ अस्य अग्नेर्वा एतानि नामानि घर्म अर्क शुक्र ज्योति सूर्य । श० ६ । ४ । २ । २५ ॥ सत्यं वै शुक्रम् । श० ३ । ६ । ३ । २५ ॥ शुक्रा ह्याप. । तै० १ । ७ । ६ । ३ ॥

कार्षिरसि समुद्रस्य त्वा क्षित्या ऽउन्नयामि ।
समापो ऽअद्भिरग्मत समोषधीभिरोषधीः ॥ २८ ॥

प्रजा देवताः । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे वैश्यवर्ग ! तू (कार्षिः असि) समस्त भूमि पर कृषि कराने में समर्थ है । अथवा हे प्रजावर्ग ! और हे राजन् ! हे पुरुष ! (कार्षिः असि) परस्पर एक दूसरे को आकर्षण करने में समर्थ है । (त्वा) तुझको मैं परमेश्वर या राजा (समुद्रस्य अक्षित्यै) प्रजाओं के उत्पत्ति स्थान, इस राष्ट्रवासी वर्तमान ९ ओं का कभी नाश न होने देने के लिये (उत् नयामि) उच्च आसन पर बैठाता हूं । (आपः अद्भिः) जल जिस प्रकार जलों से मिलकर एक होजाते हैं उस प्रकार प्रजाओं में स्त्रियें प्रेमपूर्वक पुरुषों को (सम् अग्मत) प्राप्त हों । (ओषधीभि ओषधीः सम् अग्मत) ओषधियां जिस प्रकार ओषधियों से मिलकर अधिक गुणकारी और वीर्यवान् होजाती हैं उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष तेजस्वी पुरुषों से एवं तेजस्वी पुरुष तेजस्विनी स्त्रियों से मिलें और अधिक तेजस्वी सन्तान उत्पन्न हों ।

इसी प्रकार गृहस्थ पक्ष में—हे पुरुष तू (कार्षि असि) कृषक के समान अपनी सन्तति के खेती करने में समर्थ एवं स्त्री को अपने प्रति प्रेम से आकर्षण करनेहारा है । समुद्र=अर्थात् प्रजाओं के उद्भवरूप मानव समुद्र को नित्य बनाये रखने के लिये तुझे उन्नत पद देता हूं । जलों में जैसे जल मिलजाएं उस प्रकार पुरुष स्त्रियों से प्रेमपूर्वक ही विवाहित होकर सगत हों । और (ओषधीभिः ओषधीः) जिस प्रकार एक गुण की

२८—आज्यम्, आपश्च देवता । सर्वा० ॥

ओषधियां परस्पर मिलकर अधिक वीर्य को उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार बलवीर्य युक्त स्त्री पुरुष मिलकर अधिक गुणवान् सन्तति उत्पन्न करें ॥ शत० ३ । ७ । ३ । २६ । २७ ॥

यमग्ने पृत्सु मर्त्यमवा वाजेषु यं जुनाः ।
स यन्ता शश्वतीरिषः स्वाहा ॥ २९ ॥ ऋ० १ । २७ । ७ ॥

मधुच्छन्दा ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नेत ! राजन् ! (यम् मर्त्यम्) जिस पुरुष को तू (पृत्सु) सग्रामों में (अव) रक्षा करता है और (वाजेषु) संग्रामों में (यम्) जिसको (जुना) भेजता है (स) वह पुरुष ही (शश्वती.) निरन्तर आजीवन प्राप्त होने योग्य (इष.) अन्न आदि वृत्तियोग्य पदार्थों को यन्ता) प्राप्त हो । (स्वाहा) यह सबसे उत्तम व्यवस्था है । अर्थात् जो पुरुष सग्रामों में बचकर आजाय और जो सग्रामों में भेजे जायँ राजा उनकी चिरकालिक या आजीवन या पुश्तैनी वृत्ति बांध दे । यह उत्तम व्यवस्था है । पेन्शन आदि देने का यही वैदिक आदेश है ॥ शत० ३ । ७ । ३ । २२ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे रावासि गभीरमिममध्वरं कृधीन्द्राय सुषूतमम् । उत्तमेन पविनोर्जस्वन्तं मधुमन्तं पयस्वन्तं निग्राभ्या स्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा ॥ ३० ॥

मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन् ॥ ३१ ॥

सविता देवता । स्वराडार्षी पक्तिः । पञ्चम ॥ ३० ॥
प्रजा सभ्या राजानो देवता । उष्णिहः । ऋषभ ॥ ३१ ॥

३०–३१–रावा इत्यस्य ग्रावा, निग्राभ्या इत्यादि मन्त्रस्य आपो देवता । सर्वा० ॥

भा०—हे सेना समूह से सम्पन्न राजन्! मैं (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक परमेश्वर के (प्रसवे) राज्य शासन मे (अश्विनो) सूर्य चन्द्रमा दोनों के (बाहुभ्याम्) शान्तिदायक और संतापकारी सामर्थ्यों द्वारा और (पूष्णः) पुष्टिकारक अन्न के (हस्ताभ्याम्) मधुर एवं गुणों द्वारा (आददे) तुझे ग्रहण करता हूं। तू (रावा असि) समस्त पदार्थों का प्रदान करनेहारा है। (इमम् अध्वरम्) इस राष्ट्ररूप यज्ञ को (गभीरम्) गम्भीर, समुद्र के समान गम्भीर अगाध ऐश्वर्यवान् और (इन्द्राय सुसूतमम्) इन्द्र, परमैश्वर्यवान् राजा के लिये खूब ऐश्वर्य बल एवं शक्ति के उत्पन्न करनेवाला (उत्तमेन पविना) उत्कृष्ट पवित्र अर्थात् वज्रस्वरूप, शस्त्रों के राजबल से इस यज्ञ को (ऊर्जस्वन्तम्) उत्तम बलयुक्त (मधुमन्तम्) अन्नादि खाद्य पदार्थों से समृद्ध (पयस्वन्तम्) दूध आदि पुष्टिकारक पदार्थ और गाय बैल आदि पशुओं से सम्पन्न (कृधि) बना।

हे प्रजाजनो! आप लोग (निग्राभ्या स्थ) मुझ राजा से राज्यव्यवस्था द्वारा वश करने योग्य हैं। आप लोग (देवश्रुतः) देव अर्थात् राजा और विद्वान् पुरुषो की आज्ञा और उपदेश के श्रवण करने वाली हो। अतः मै राजा तुम्हें आज्ञा देता हूं कि-(मा तपर्यत) मुझे कर आदि द्वारा तृप्त करो, संतुष्ट करो॥ २०॥ (मे मनः तर्पयत) मेरे मनको तृप्त करो। (मे वाचं तर्पयत) मेरी वाणी को तृप्त करो। (प्राणं मे तर्पयत) मेरे प्राण को तृप्त करो। (मे चक्षुः तर्पयत) मेरी चक्षुओ को तृप्त करो। (मे श्रोत्रं तर्पयत) मेरे कान को तृप्त करो। (मे आत्मानं तर्पयत) मेरे आत्मा को संन्तुष्ट करो। (मे प्रजाम् तर्पयत) मेरी प्रजा पुत्र पौत्र आदि को सन्तुष्ट करो। (मे पशून् तर्पयत) मेरे पशु, रथ, वाहन, अश्व, गौ, महिष आदि को संतुष्ट करो। (मे गणान्) मेरे आधीन शासकवर्गों को और सेनागण को (तर्पयत) सन्तुष्ट करो। और ऐसा तृप्त करो कि (मे गणाः) मेरे सैनिक

और शासक वर्ग (मा वितृषन्) नाना पदार्थों के लिये तरसते न रहें, भूखे प्यासे न रहें ।

इन्द्राय त्वा वसुमते रुद्रवतऽइन्द्राय त्वादित्यवत इन्द्राय त्वाभिमातिघ्ने । श्येनाय त्वा सोमभृतेऽग्नये त्वा रायस्पोषदे ॥ ३२ ॥

सभापती राजा देवता । पञ्चपाद्ज्योतिष्मती जगती । निषाद ॥

भा०—हे सोम ! राजन् ! सभाध्यक्ष अथवा राष्ट्र ! (त्वा) तुझको मैं (वसुमते) वसु, ऐश्वर्यवान् प्रजाजनों से युक्त (इन्द्राय) इन्द्रपद के लिये और (रुद्रवते) शत्रुओं को रोदन कराने वाले रुद्र, वीर पुरुषों से सम्पन्न (इन्द्राय) परमैश्वर्य युक्त इन्द्र पद के लिये और (आदित्यवते) आदित्य के समान तेजस्वी अथवा आदान प्रदान करने हारे वैश्यगणों से युक्त (इन्द्राय) इन्द्र अर्थात् परमैश्वर्य पद के लिये और (अभिमातिघ्ने) अभिमान करने वाले शत्रुओं के नाशक (इन्द्राय) पराक्रमी इन्द्र पद के लिये और (सोमभृते) सोम रूप, राष्ट्र का भरण पोषण करने वाले (श्येनाय) श्येन-बाज़ पक्षी के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले सेनापति पद के लिये और (राय पोषदे) धनैश्वर्य को पुष्टि देने वाले (अग्नये) अग्रणी पद के लिये (त्वा ५) तुझ अमुक २ वीर, विद्वान्, ऐश्वर्यवान्, पराक्रमी, गुणवान् पुरुष को पदाधिकारी बनाता हूं । इस प्रकार राजा पांच पदों के लिये पांच योग्य शासक पुरुषों को नियुक्त करे ।

यत्ते सोम दिवि ज्योतिर्यत्पृथिव्यां यदुरावन्तरिक्षे ।
तेनास्मै यजमानायोरु राये कृध्यधि दात्रे वोचः ॥ ३३ ॥

सोमो देवता । भुरिगार्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे सोम ! सर्व राष्ट्रप्रेरक राजन् ! सभाध्यक्ष ! (ते) तेरा (यत्) जो (दिवि ज्योति) सूर्य में अर्थात् सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी

३२—सोमो देवता । सर्वा० ॥　३३—०'यदुरा अन्त०' इति काण्व० ॥

रूप से रहने में जो तेज है और (यत् पृथिव्याम्) जो तेरा तेज पृथिवी पर अर्थात् पृथिवी के समान सर्वाश्रय बने रहने में जो तेरा पराक्रम है और (यद् उरौ अन्तरिक्षे) जो विशाल अन्तरिक्ष अर्थात् वायु के समान सबके प्राणों का स्वामी होने में जो तेरा तेज है (तेन) उससे (अस्मै यजमानाय) इस यज्ञ सम्पादन करने वाले राष्ट्र यज्ञ के कर्त्ता, (उरु राये) महान् धनादि ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र के लिये समस्त कार्य (कृधि) तू सम्पन्न कर। और (दात्रे) तुझे अधिकार और वेतन आदि देने वाले इस राष्ट्र के लिये ही तू (अधिवोचः) अधिकार पूर्वक आज्ञा प्रदान किया कर। शत० ३ । ६ । ४ । १२ ॥

श्वात्राः स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्त्ताऽअमृतस्य पत्नीः ।
ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत ॥ ३४ ॥

यज्ञो देवता । स्वराड् आर्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग ही (श्वात्राः) विशेष नियम में बद्ध जलधाराओं के समान शीघ्र कार्य सम्पादन करने में समर्थ (स्थ) हो। और तुम लोग (राधो गूर्त्ता.) राधस्=धन ऐश्वर्य को प्रदान करने वाले और (अमृतस्य पत्नीः) अमृत, अन्न और जल का उचित रूप से पालन करते हो। हे (देवी.) विद्वान् या धन दान करने वाले (ताः) वे प्रजाजन (देवत्रा) देव अर्थात् योग्य उत्तम राजाओं और शासक पुरुषो के हाथ (इम यज्ञम्) इस राष्ट्रमय यज्ञ को (नयत) प्राप्त कराते हो। और आप लोग (उपहूता) आदर पूर्वक बुलाये जाकर (सोमस्य) इस राष्ट्र से उत्पन्न उत्तम फल का या राजा के इस राज्य का (पिबत) पान करो, आनन्द प्राप्त करो।

गृहस्थ पक्ष में—(श्वात्राः) विद्युत् के समान शीघ्र कार्य करने वाली, कार्य दक्ष (वृत्रतुरः) मेघ को जिस प्रकार विजली फाड़ देती है उसी

३४—निग्राभ्या देवता. । सर्वा० ॥

प्रकार विघ्न के नाश करने वाली (राधोगूर्त्ता) धन के बढ़ाने वाली (अमृतस्य सोमस्य पत्नी.) अमर, सदा स्थिर राजा की पत्नियों के समान अमृत रस या अन्न की पालन करने वाली गृहपत्नी (देवी) देविया (देवत्रा) अपने देव-तुल्य पतियों के आश्रय रहकर (इमं यज्ञ नयत) इस गृहस्थ यज्ञ को पूर्ण करें, निबाहें। और वे (उपहूता. सोमस्य पिबत) आदरपूर्वक यज्ञ में बुलाई जाकर सोम आदि ओषधियों के रसका पान भी करें।

शतपथ में—यह वर्णन 'निग्राभ्या-आप' का है। उनका विशेषण 'श्वात्रा' और 'वृत्रतुर' है। इससे वे शीघ्र कार्य करने वाली, वेगवती, शत्रुओं के नाश करने वाली, अमृत, सोम रूप राजा की रक्षक हैं। अर्थात् जब तक उनका प्रेरक सेनापति या राजा मरता नहीं तब तक वे उसकी रक्षा पर डटी रहती हैं। वे ही (राधोगूर्त्ता) समस्त धन ऐश्वर्य प्राप्त कराती हैं। वे समस्त देवो, विद्वान् शासकों के बीच में राष्ट्र को स्थापन करतीं और आदरपूर्वक निमन्त्रित होकर राज्य के उत्तम फलों का उपयोग करें। 'वृत्रतुर' एतानि वृत्रमघ्नन्।

'सोमस्य पिबत' तदुपहूता एव प्रथमभक्षं सोमस्य राज्ञो भक्षयन्ति। शत० ३।९।४।१६।

माभेर्मा संविक्था ऽऊर्जं धत्स्व धिषणे वीड्वी सती वीडयेथा-मूर्जं दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः॥ ३५॥

द्यावापृथिव्यौ देवते। भुरिगार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे राजन्! और हे प्रजागण! तू (मा भेः) भय मत कर। (मा संविक्था) तू भय से कंपित न हो। तू (ऊर्जं धत्स्व) 'ऊर्ज' बल को धारण कर। हे राजा और प्रजा तुम दोनों! (धिषणे) एक दूसरे का आश्रय होकर आकाश और पृथिवी या सूर्य और पृथिवी के समान दोनों (वीड्वी सती) वीर्यवान्, बलवान्, दृढ, हृष्ट पुष्ट होकर (वीडयेथाम्)

एक दूसरे का बल बढ़ाओ। और अपने को बलवान् करो। इस प्रकार युद्धादि के अवसर पर भी यद्यपि राजा पर आक्रमण होगा तब भी प्रजा और राजा दोनों के बलिष्ठ होने पर (पाप्मा हतः) पाप करने वाला दुष्ट शत्रु पुरुष ही मारा जाय। (न सोम) सोम, सर्वप्रेरक राजा या राष्ट्र का नाश नही होता। शत० ३ । ६ । ४ । १६–१८ ॥

गृहस्थ पक्ष में—हे पुरुष और हे स्त्री ! तुम दोनों गृह के पालन के कार्य में मत डरो। भय से कम्पित मत होओ। एक दूसरे के आश्रय और (धिषणे) बुद्धिमान और आत्मसन्मान, बलवान्, (वीड्वी) वीर्यवान् होकर सदा बलवान् व दृढ़ बने रहो और ऊर्ज, पराक्रम को धारण करो। इस प्रकार समस्त पाप नष्ट हो जायगा। और 'सोम' अर्थात् परस्पर का गृहस्थ सुख या आह्लाद कभी नष्ट नहीं होगा।

प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिश ऽआधावन्तु।
अम्ब निष्पर सम॒रीर्विदाम् ॥ ३६ ॥

सोमो देवता। उष्णिक्। ऋषभ. ॥

भा०—हे राजन्! (त्वा) तेरी शरण में (प्राक्) पूर्व (अपाक्) पश्चिम, (अधराक्) दक्षिण और (उदक्) उत्तर (सर्वतः) इन सब ओर से (दिशः) समस्त दिशाओं के प्रजाजन (आधावन्तु) आवें और कहें। हे (अम्ब) हमारे प्रेमी ! (नि. पर) हमें सब प्रकार से पालन कर। (अरीः) समस्त प्रजाएं (त्वा) तुझे अपना स्वामी, माता के समान पालक (सम् विदाम्) भली प्रकार जाने ॥ शत० ३ । ६ । ४ । २१ ॥

गृहस्थ पक्ष में—हे (अम्ब) बच्चों की माता ! तेरे पुत्र सब दिशाओं से तेरे पास आवें, कहें हमें पालन कर। समस्त प्रजाएं तुझे अपनी माता ही जानें।

त्वम॒ङ्ग प्रशंꣳसिषो दे॒वः शविष्ठ॒ मर्त्यम्। न त्वद॒न्यो मघवन्नस्ति मर्डि॒तेन्द्र॒ ब्रवीमि ते॒ वचः ॥ ३७ ॥ ऋ० १ । ८४ । १९ ॥

गोतम ऋषि । इन्द्रो देवता । भुरिगार्षी अनुष्टुप् । गाधार ॥

भा०—हे (अङ्ग) हे (शविष्ठ) सब से अधिक शक्तिमन् ! तू (देवः) विजिगीषु राजा होकर (मर्त्यम्) मनुष्यमात्र को (प्रशंसिष) उत्तम शिक्षा प्रदान कर, उत्तम उपदेश कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वत् अन्यः) तेरे से दूसरा कोई (मर्डिता न) कृपालु, उन पर दया करने वाला, सुखकारी नहीं है । हे (इन्द्र) इन्द्र ! राजन् ! मैं (ते) तुझे (वच) उत्तम वेदानुकूल राजधर्म के वचनों का उपदेश करता हूं ॥ शत० ३ । ६ । ४ । २४ ॥

परमेश्वर पक्ष में—हे परमेश्वर (शविष्ठ) सर्वशक्तिमन् ! तू समस्त (मर्त्यम्) मानव जाति को (प्र) सब से प्रथम (शासिष) उपदेश करता है । (त्वदन्य.०) तेरे से दूसरा कोई सुखकारी दयालु नहीं है । (ते वच. ब्रवीमि) तेरे ही-वेद वचनों का म सर्वत्र उपदेश करूं ।

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

[तत्र त्रयश्चत्वारिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थ-विद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ वाचस्पतये पवस्व वृष्णो ऽअंशुभ्यां गभस्तिपूतः । देवो देवेभ्यः पवस्व येषां भागोऽसि ॥ १ ॥

प्राणो देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (वाचःपतये) आज्ञा करने वाली वाणी के पालक अर्थात् स्वामी के लिये (पवस्व) पवित्र हो, उसकी आज्ञा पालन करने के निमित्त दत्तचित्त होकर चित्त से वैर आदि के भावों को त्याग कर । (वृष्णः) सूर्य के (गभस्तिपूतः) किरणों से जिस प्रकार वायु पवित्र होकर वाचःपति प्राण के लिये शरीर में जाता है इसी प्रकार (वृष्णः) समस्त सुखों के वर्षक, राजा के (गभस्तिपूतः) ग्रहण करने के सामर्थ्य, तेज या प्रताप से पवित्र होकर और उसके (अंशुभ्याम्) दोनों प्रकार की बाह्य और आभ्यन्तर शक्तियों से पवित्र होकर तू स्वयं (देव) देव, दानशील, एवं विजिगीषु होकर (येषाम्) जिनका तू (भागः असि) स्वयं सेवनीय अंश है । (देवेभ्यः) उन, देव, विद्वानों के उपकार के लिये (पवस्व) शुद्ध पवित्र होकर काम कर । जिस पुरुष को प्रथम राज कार्य में नियुक्त करे उसको अपने वाचस्पति अर्थात् अपने ऊपर के आज्ञादाता के प्रति स्वच्छ रहना चाहिये वह उसकी आज्ञा का कभी उल्लंघन न करे । वह स्वयं विद्वान् , उनके ही निमित्त उसको बद्ध करे । राजा से लेकर अन्तिम कर्म करने तक यही मन्त्र लागू हो पदाधिकारी स्वयं भी 'देव' अर्थात् राजा के स्वभाव का हो ।

अध्यात्म में—अंशु प्रजापति आत्मा के दो भाग प्राण और उदान हैं ॥ वायु उन द्वारा गृहीत होकर वाचस्पति आत्मा मुख्य प्राण के लिये शरीर में गति करता है । वह स्वयं एक मुखगत 'देव' या कर्मेन्द्रिय होकर अन्य

अंगों के या इन्द्रियों के लिये शरीर में गति करता है। इसी प्रकार राजा और मुख्य नियुक्त पुरुष भी अपने अधीन पदाधिकारियों के लिए पवित्र निष्कपट होकर काम करे। शतपथ में यह ग्रहों के प्रकरण मे लिखा गया है। 'ग्रह' का अर्थ है राज्य को वश करने के निमित्त विशेष विभाग का अधिकारी। वे सब सोम राजा के ही अधिकार को बाट कर रहते हैं॥ शत० ४। १। १। ८—१२॥

यद् गृह्णाति तस्माद् ग्रह। श० १०। १। १। ५॥ त सोमम् अघ्नन्। तस्य यशो व्यगृह्णात ते ग्रहा अभवन्। यद्वित्त (यज्ञं) ग्रहैर्व्यगृह्णात तद् ग्रहाणा ग्रहत्वम्। ए० ३। ९॥ अध्यात्मम्—अष्टौ ग्रहा। प्राण जिह्वा, वाक् चक्षु, श्रोत्रम् मनो, हस्तौ त्वक् च। श० १०। ६। २। १॥ प्राणा वै ग्रहा। श० ४। २। ४। १३॥ अङ्गानि वै ग्रहा। श० ४। ५। ६। ११। अर्थात्—जो ग्रहण करे सबको वश करे वह 'ग्रह' है। सोम को प्राप्त करके उसके विस्तार के टुकड़े २ कर दिये, राजा के अधिकार को विभक्त कर दिया, वे राजा के अधीन विभागों के अध्यक्ष 'ग्रह' होगये। यज्ञ अर्थात् प्रजापति राष्ट्र को विभक्त कर दिया वे 'ग्रह' हैं। शरीर में प्राण 'ग्रह' है अङ्ग 'ग्रह' है।

गभस्ति—गा भसति अदन्ति दीप्यन्ते वा गभस्तय इति देवराज। गृहेर्गभस्तिरिति माधव।

मधुमतीर्न॒ऽइष॑स्कृधि यत्ते॒ सोमादा॑भ्यं॒ नाम॒ जागृ॑वि॒ तस्मै॑ ते सोम॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒ स्वाहो॒र्वन्तरि॑क्ष॒मन्वे॑मि॥ २॥

सोमो देवता। निचृदार्षी पङ्क्ति। पञ्चम स्वर॥

२—कृध्यन्तस्य प्राण उपांशुग्रहरूपो देवता। स्वाहाकारस्य अग्नि। उर्वन्तरिक्षमित्यस्य रक्षो देवता। सर्वा०।

भा०—हे राजन् ! (न) हमारे लिये (मधुमतीः) मधुर रस से युक्त (इषः) अन्नों को (कृधि) उत्पन्न कर। अथवा हे (मधुमतीः) अपनी (रायः) प्रेरक आज्ञाओं को (मधुमतीः) बल से युक्त कर। (यत्) क्योंकि हे (सोम) सर्व प्रेरक राजन् ! (ते नाम) तेरा नाम, तेरा स्वरूप या तेरा नमाने या झुकाने या दमन करने का सामर्थ्य भी (अदाभ्यम्) कभी विनाश नहीं किया जा सकता, तोड़ा नहीं जा सकता और वह (जागृविः) सदा शरीर में प्राण के समान जागता रहता है। (तस्मै) इस कारण से हे (सोम) सर्वप्रेरक राजन् ! (ते सोमाय स्वाहा) तेरे निमित्त हमारा यह आत्मत्याग है। अर्थात् हम पदों पर नियुक्त पुरुष सर्व प्रकार से तेरे अधीन हैं। राजा अपने अधीन पुरुषों और प्रजाओं को अपने प्रति ऐसा वचन सुनकर स्वयं भी कहे (स्वाहा) यह मेरा भी तुम्हारे लिये आत्मोत्सर्ग रूप आहुति है। अथवा अपनी वश करनेवाली शक्ति या प्रतिष्ठा से मैं अब (उरु अन्तरिक्षम्) विशाल अन्तरिक्ष को (अनुएमि) अनुसरण करता हूं। अर्थात् जिस प्रकार अन्तरिक्ष समस्त पृथिवी पर आच्छादित है इसी प्रकार मैं समस्त प्रजा पर समयरूप से शासक बनता हूं। जिस प्रकार वायु सबका प्राण है उस पर सब जीते हैं इसी प्रकार मेरे आश्रय पर समस्त प्रजाएं जीवन धारण करें। अथवा (अन्तरिक्षम् अन्वेमि) अन्तरिक्ष अर्थात् प्रजा और राजा के बीच के शासक मण्डल पर भी मैं अपना अधिकार करता हूं। वे प्रजा की रक्षा करने से 'रक्षोगण' है उनका वश करने के लिये राजा उन पर पूरा वश रक्खे।

स्वाहा—स प्रजापतिर्विदांचकार स्वो वै मा महिमा आहेति, स स्वाहे त्येवा जुहोत्। श० २। २। ४। ६॥ हेमन्तो वै ऋतूनां स्वाहाकारः हेमन्तो हि इमाः प्रजा स्व वशमुपनयते। श० १। ५। ४। ५॥ अन्तं हि स्वाहाकार। श० ६। ६। ३। १७॥ प्रतिष्ठा वै स्वाहाकृतयः। ए० ४॥

'अन्तरिक्षम्'—तद्यदस्मिन् इदं सर्वमन्तस्तस्मादन्तर्यक्षम्। अन्तर्यक्षं ह वै नामैतत् तदन्तरिक्षमिति परोक्षमाचक्षते। जै० उ० १।२०।४॥ ईक्षं हैतन्नाम तत. पुरा अन्तरा वा इदमीक्ष मभूदिति तस्मादन्तरिक्षम्॥ शत० ७।१।२।२३॥ अन्तरिक्षायतनाहि प्रजा.। ता० ४।८।१३॥ असुराः रजताम् अन्तरिक्षलोके अकुर्वत। ऐ० १।२३॥

अर्थात्—प्रजापति का अपना बड़ा सामर्थ्य या ऋतुओं में तीक्ष्ण प्रहार करनेवाले राजा का हेमन्त या पतझड़ का सा रूप है। 'जो प्रजाओं को अपने वश करने का सामर्थ्य या अन्न या प्रतिष्ठा हैं ये स्वाहा के रूप हैं। भीतर सबका निरीक्षक पूजनीय, 'अन्तरिक्ष' है। भीतरी निरीक्षक पदाधिकारी 'अन्तरिक्ष' है। चांदी या धन के द्वारा बंधे अधिकारीमण्डल भी 'अन्तरिक्ष' हैं। शत० ४।१।१।१-५॥

स्वाङ्कृतोऽसि विश्वेभ्य ऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्य. पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु स्वाहा त्वा सुभव सूर्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यो देवांशो यस्मै त्वेडे तत्सत्यमुपरिप्रुता भङ्गेन हतोऽसौ फट् प्राणाय त्वा व्यानाय त्वा॥ ३॥

विद्वासो देवता। विराट् ब्राह्मी जगती। निषाद.॥

भा०—हे राजन्! (इन्द्रियेभ्य) इन्द्रियों के हित के लिये जिस प्रकार आत्मा (दिव्येभ्य.) आकाश या प्रकाशमान लोकों के लिये जिस प्रकार सूर्य स्वय अपने तेज से प्रकाशमान है उसी प्रकार (पार्थिवेभ्य) पृथिवी के निवासी राजागण या प्रजा लोगों के हित के लिये तू (स्वाङ्कृत) स्वय अपने सामर्थ्य से राजा बनाया गया (असि) है। (त्वा मन· अष्टु) तुझे मन अर्थात् शुद्धविज्ञान प्राप्त हो। अथवा—तुझे मननशील मन्त्री प्राप्त

३—'स्वा० सूर्याय' अस्य उपांशुर्देवता। 'देवे अभ्य' इत्यस्य देवा, फडन्तस्य सोमांशु.। प्राणाय त्वेत्यस्य ग्रह। व्यानापत्वे त्यभ्योपांशुर्देवता। सर्वा०। '०स्वभवस्सूर्याय' ०यस्मै त्वेळे०॥ परिप्लुता० इति काण्व०।

हो। अथवा जिस प्रकार समस्त चक्षु आदि इन्द्रियों पर मन अधिष्ठाता है उसी प्रकार समस्त लोकों पर मनके समान, सर्वविचारक और प्रेरक पद तुझे प्राप्त हो। हे (सुभव) उत्तम सामर्थ्य से युक्त उत्तम कुलजात ! उत्तम पद पर विराजमान ! हे सुजात ! मैं विद्वान् पुरुष (त्वा) तुझको (सूर्याय) सूर्य के पद के लिये नियुक्त करता हूं। अर्थात् सूर्य जिस प्रकार तेजस्वी और आकर्षक होकर सब ग्रहों को प्रकाशित और व्यवस्थित करता है उसी प्रकार समस्त प्रजा और शासकों को व्यवस्थित करने के लिये तुझे वरता हूं। और (मरीचिपेभ्य. देवेभ्यः) मरीचि, किरणों से जिस प्रकार सूर्य पृथिवी के जलों को चूस लेता है उसी प्रकार अपने मरीचि=मृत्युदायक, त्रासकारी साधनों से प्रजा के अन्न धनों को चूसनेवाले 'देव' विजुगीष राजाओं के लिये, उन पर वश करने के लिये भी (त्वा) तुझे नियुक्त करता हूं। हे (देव) देव ! राजन् ! हे (अंशो) अंशो ! हे प्रजापते ! (यस्मै) जिस कारण से (त्वा ईडे) मैं तेरी स्तुति करता हूं या तेरी मैं इतनी प्रतिष्ठा करता हूं (तत्) वह तेरा (सत्यम्) सत्य है, सत्य का पालन, न्यायस्थापन तेरा धर्म या व्रताचरण ही है। अर्थात् राजा राष्ट्र के सत्यधर्म या क़ानून का पालन करता है, उसका यह सत्यपालन का कर्त्तव्य ही उसकी स्तुति और पूजा का कारण है। और (उपरिप्रुता) सत्य की मर्यादा को लांघजाने वाले (भङ्गो न) नियमोल्लङ्घन व सत्य के रौंद डालने से (हत.) ताड़ित होकर (असौ) अमुक असत्य मार्गगामी, विपरीत राजा (फट्) विध्वंस होने योग्य है, उसे मार दिया जाय। हे राजन् (त्वा) तुझको (प्राणाय) शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में समस्त कार्यों के सञ्चालन के लिये और (त्वा) तुझको (व्यानाय) शरीर में विभक्त होकर नाना कर्मेन्द्रियों के चालक व्यान के समान राष्ट्र में विविध कार्यों के चलने के लिये नियुक्त करता हूं ॥ शत० ४। १। १। २२-२८ ॥

'मरीचिपेभ्य '—मृङ् प्राण त्यागे (तुदादि) अस्मादीचि (उणा०) 'अंशो'—प्राण एवांशुरुदानोऽदाभ्य । चक्षु एवांशु श्रोत्रमदाभ्य प्रजापतिर्वा एष यदंशु । श० ४ । ६ । १ । १ ॥ अंशुर्वै नामग्रह स प्रजापतिः । ४ । १ ॥ १ । २ ॥ सोऽस्य एष आत्मैव । ४ । ६ । २ । १ ॥ 'सत्यम्' त्रयी सा विद्या तत्सत्यम् । श० ८ । ५ । १ । १८ ॥ सत्य दा ऋतम् । श० ७ । ३ । १ । २३ ॥ यो वै धर्म सत्य वै तत् । सत्य वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति । धर्मं वा वदन्त सत्य वदतीति । श० १४ । ४ । २ । २६ ॥ समूलो ह वा एष परिशुष्यति य एवानृतं वदति ॥ बृहदा० उप० ॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्य॒न्तर्य॑च्छ मघवन् पा॒हि सोम॑म् ।
उ॒रु॒ष्य रा॒य ऽएषो॑ यजस्व ॥ ४ ॥

इन्द्रो मघवा देवता । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—हे मघवन्! ऐश्वर्यवन्! तू (उपयामगृहीत असि) तू 'उपयाम' इस समस्त पृथिवी के शासन द्वारा गृहीत है । तुझे समस्त पृथ्वी देकर उसके बदले में तुझे राज कार्य में लगाया गया है । हे (मघवन्) ऐश्वर्य सम्पन्न! तू (अन्त यच्छ) राष्ट्र का भीतर से नियन्त्रण कर और (सोमम् पाहि) सोम राजा या राष्ट्र की रक्षा कर । (राय उरुष्य) समस्त पशु आदि ऐश्वर्यों की रक्षा कर और (इष) अन्नों को (आयजस्व) प्राप्त कर अर्थात् प्रजा से अन्नादि रूप में करले । और भूमि को प्राप्त कर । शत० ४ । १ । २ । १५ ॥ 'उपयाम '—इयं पृथिवी वा उपयाम । इय वा इदमन्नाद्यमुपयच्छति पशुभ्यो मनुष्येभ्यो वनस्पतिभ्य. । श० ४ । १ । २ । ८ ॥

अध्यात्म में—हे साधक! तू (उपयामगृहीत.) स्वीकृत यम नियमादि द्वारा गृहीत है । प्राणादि को भीतर वश कर । योग सिद्ध ऐश्वर्य रूप सोम का पालन कर । ऋद्धि सिद्धि रूप ऐश्वर्य और इच्छाओं को भी रक्षा कर ॥

४—'रायोवेषो'० इति काण्व० ॥

अ॒न्तस्ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी द॑धाम्य॒न्तर्द॑धाम्यु॒र्व॑न्तरि॑क्षम्।
स॒जूर्दे॒वेभि॒रव॑रैः॒ परै॑श्चान्तर्या॒मे म॑घवन् मादयस्व ॥ ५ ॥

मघवा ईश्वरो देवता । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चम ॥

भा०—हे मघवन्! इन्द्र! राजन्! (ते अन्त.) तेरे शासन के भीतर (द्यावा पृथिवी) द्यौ और पृथिवी दोनों को (दधामि) स्थापित करता हूं । और (ते अन्त.) तेरे ही शासन के भीतर (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को भी (दधामि) स्थापित करता हू । अर्थात् तीनो को तेरे वश मे रखता हू अथवा तुझे तीनों का पद प्रदान करता हूं। वह 'द्यौ' सूर्य के समान, सब का प्रकाशक, एवं समस्त सुखो का वर्षक, पृथिवी के समान सब का आश्रय और अन्तरिक्ष के समान उनका आच्छादक हो । और (अवरै.) अपने से नीचे के (देवेभि.) कर देनेवाले माण्डलिक राजाओ के साथ (सजू) प्रेमयुक्त व्यवहार करता हुआ, उनका प्रेम पात्र होकर और (परै च) अपने से दूसरे शत्रु राजाओं के साथ मित्रभाव करके (अन्तर्यामे) अपने राष्ट्र के भीतरी प्रबन्ध में (मादयस्व) समस्त प्रजाओं को सुखी, प्रसन्न कर ।

'अन्तर्याम '—यद्वा अनेन इमाः प्रजा यतास्तस्मादन्तर्यामो नाम। सोऽस्य अयमुदानोऽन्तरात्मन् हित. । श० ४ । १ । २ । २ ॥ तेन उ ह असावादित्य उद्यन्नेव इमाः प्रजा न प्रदहति तेनेमा प्रजास्त्राताः । श० ४ । १ । २ । १४ ॥

प्रजा का भीतरी प्रबन्ध विभाग 'अन्तर्याम' है । उसके प्रबल होने पर राजा बहुत बलिष्ठ होकर भी अपनी प्रजाओं को नाश नही करता । इस भीतरी प्रबन्ध में राजा अपने अधीन राजाओं और शत्रु राजाओं से सन्धि करके उनके साथ एकमति होकर मित्रभाव से रहता और अपनी उन्नति करता है इसीसे उसकी प्रजा सुरक्षित रहती हैं॥ शत० ४ । १ । २ ॥

५—मघवा देवता । 'सर्वा'० । ०न्तरिक्षमन्वेमि ॥ इति काण्व० ॥

स्वाङ्कृतो॑ऽसि विश्वे॑भ्यऽइन्द्रि॒येभ्यो॑ दि॒व्येभ्य॒: पार्थिवेभ्यो॒ मन॑स्त्वाष्टु स्वाहा॑ त्वा सुभव॒ सूर्या॑य दे॒वेभ्य॑स्त्वा मरीचि॒पेभ्य॒ऽउदा॒नाय॑ त्वा ॥ ६ ॥

मघवा इन्द्रो योगी वा देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

भा०—(स्वाङ्कृत असि० ०मरीचिपेभ्यः) इस भाग की व्याख्या देखो (अ० मन्त्र ३) (उदानाय त्वा) हे राजन्! अथवा हे उसी के समान बलशालिन् ऐश्वर्यवान् पुरुष! तुझको शरीर में उदान के समान राष्ट्र में उपराजा के पदपर नियुक्त करता हूं। अथवा राजा को ही दोनों पद दिये जाय ॥ शत० ४ । १ । २ । १७–२७ ॥ यह दूसरा पुरुष भी राजा का सहयोगी उपराजा समझना चाहिये।

अध्यात्म में—वह मुख्य प्राण के शक्ति सामर्थ्य से इन्द्रियों के लिये हे (सुभव) योगिन्! (त्वं स्वांकृत असि) तू स्वांकृत, स्वयं सिद्ध अनादि आत्मा है। तू समस्त इन्द्रियों और दिव्य और पार्थिव बल प्राप्त करने में समर्थ है। (मनः त्वा अष्टु) योग द्वारा मनन शक्ति तुझे प्राप्त हो। (सूर्याय) सूर्य के समान तेजस्वी होने के लिये (मरीचिपेभ्यः देवेभ्यः) रश्मियों के पालक देव, दिव्य पदार्थों के समान तेजस्वी होने के लिये और (उदानाय) उदान की साधना या उदान के जय से उत्कृष्ट जीवन और बल का साधन करने के लिये तुझे उपदेश करता हूं ॥ शत० ४ । १ । २ । १७–२४ ॥

आ वा॑यो भूष शुचिपा॒ऽउप॑ नः स॒हस्रं॑ ते नि॒युतो॑ विश्ववार। उपो॑ ते॒ऽअन्धो॒ मद्य॑मयामि॒ यस्य॑ देव दधि॒षे पू॑र्व॒पेय॑ वा॒यवे॑ त्वा ॥ ७ ॥　　ऋ० ७ । ९२ । १ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । निचृत् जगती । निषादः ॥

६—'उदानाय त्वा' इत्यस्य ग्रहो देवता । '०स्वभवस्सूर्याय' इति काण्व० ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान देश में तीव्र गति से जानेवाले और शत्रु पर तीव्र गति से आक्रमण करनेहारे और शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में जीवन या अधिपति रूप से स्थित राजन् ! हे (शुचिपा) सब व्यवहार में शुद्धता और निष्कपटता, छल छिद्र रहितता के पालन करनेवाले ! सत्य के और धर्म के पालक ! राजन् ! हे (विश्ववार) समस्त प्रजाओं से राजपद पर वरण किये गये ! अथवा सबके रक्षक ! तू (नः) हमारे (उप) समीप (आ भूष) सुशोभित हो। (ते नियुत सहस्रम्) तेरे अधीन सहस्रों नियुक्त पुरुष अश्व या अश्वारोही हैं। (ते) तेरे (मघम्) तृप्ति करनेवाले (अन्धः) अन्न को मैं (उपो अयामि) तुझ तक प्राप्त कराता हूं। जिसको हे (देव) राजन् ! तू (पूर्वपेयम्) सबसे प्रथम पान या ग्रहण (दधिषे) करता है। (त्वा) तुझ शक्तिशाली पुरुष को (वायवे) वायु के समान सर्वाश्रय, सर्वरक्षक पदपर नियुक्त करता हूं। योग्य शक्तिशाली पुरुष को वायु पद पर स्थापित करे।

अध्यात्म में—हे वायो ! प्राण ! तू शरीर में शुद्धता, दोषनाशक गुणको पालन करता है, शुद्ध कान्ति बनाये रखता है, तू समस्त प्राणियों का पालक है। तू सदा (आ भूष) शरीर में गति कर। (ते सहस्रं नियुतः) तेरे हजारों प्रवेश द्वार या या व्यापन के साधन है। तेरे लिये मैं तृप्तिकारक अन्न नित्य प्राप्त करता हूं। हे देव प्राण ! तू इस अन्न को सबसे प्रथम ग्रहण करता है। अन्न को वायुरूप प्राण के लिये ग्रहण करते हैं। शत० ४। १। ३। १–१८॥

अयं वै वायु योयं पवते। एष वा इदं सर्वं विविनक्ति। यदिदं किञ्च-विविच्यते। श० १। १। ४। २२॥ वायुर्वै देवनामाशु सारसारितमः। तै० ३। ८। ७। १॥ योयं वायु पवते सैष सोम। श० ७। ३। १। १॥ वायुर्वा उग्र। श० ६। १। ३। १३॥ वायुर्वा उपश्रोता गो। उ०

२ । १६ ॥ तस्य वायो मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

वायुपदपर अधिष्ठित पुरुष सत्यासत्य का विवेक करता है । वह सबसे तीव्रगामी, बलवान्, उग्र है, सबसे ममताशून्य, युद्धशक्ति का अध्यक्ष है ।

यगिो के पक्ष में—योगी वायु या प्राण के समान व्यापक, यम आदि का पालक, सब आनन्दों को वरणकर्त्ता, उसको हम तृप्तिकर अन्न दें । जिसके आधार पर वह श्रेष्ठ योगबल प्राप्त करता है ।

[1] इन्द्रवायूऽइमे सुताऽउप प्रयोभिरागतम् । इन्दवो वामुशन्ति हि । [2] उपयामगृहीतोऽसि वायवऽइन्द्रवायुभ्यां त्वैष ते योनिः सजोषोभ्यां त्वा ॥ ८ ॥ ऋ० १ । २ । ४ ॥

मधुच्छन्दा ऋषि । इन्द्रवायू देवते । (१) आर्षी गायत्री । (२) आर्षी स्वराड् गायत्री । षड्ज स्वर ॥

भा०—हे (इन्दवायू) इन्द्र और हे वायो ! हे सनापते ! और हे न्यायकर्त्त । दोनों (प्रयोभि) बेग से चलने वाले अश्वों से तुम दोनों (उप आ गतम्) आओ । (इमे) ये (सुता) उत्तम रीति से प्रेरित, अपने पदों पर स्थापित (इन्दव.) ऐश्वर्यवान् और शीघ्रगामी पुरुष (वाम्) तुम दोनों को (हि) निश्चय से (उशन्ति) चाहते हैं । हे राजन् ! तू (उपयामगृहीतः असि) उपयाम, अर्थात् पृथ्वी के प्रजाजनों द्वारा स्वीकृत है । तुझे (वायवे) पूर्व कहे वायु पद या विवेचक पद के लिये नियत करता हू । और (त्वा) तुझको (इन्दवायुभ्याम्) इन्द्र, सेनापति और वायु, विवेचक, उपद्रष्टा पद के लिये भी नियत करता हूं । (ते एष योनि) तेरा यह आश्रयस्थान या पद है । (त्वा) तुझे (सजोषोभ्याम्) प्रेम सहित, इन्द्र और वायु पद पर अधिष्ठित दोनों शासकों के पद पर शासक नियत करता हू । इन्द्र वायु आदि पद कार्य भेद से भिन्न २ होकर भी सामान्य रूप से राजा के ही पद के भिन्न २ विभक्तरूप हैं ।

योगी पक्ष में—हे (इन्द्रवायू) योग के उपदेष्टा और अभ्यासी जन तुम दोनों को (इमे सुता इन्दव. वाम् उशन्ति) ये समस्त उत्पादित पदार्थ चाहते हैं, तुम इन सहित आओ। हे योग के जिज्ञासो ! तू उपयाम अर्थात् योगाङ्गों द्वारा स्वीकृत है उनमें अभ्यस्त है। तू वायु ! अर्थात् योग विचक्षण हो। यह योग ही तेरा (योनिः) दुःखवारक शरण है ॥ शत० ४ । १ । ३ । १६ ॥

[१] अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोमऽऋतावृधा । ममेदिह श्रुतꣳहवम् । [२] उपयामगृहीतोऽसि मित्रावरुणाभ्यां त्वा ॥ ९ ॥

ऋ० २ । ४१ । ४ ॥

गृत्समद ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । (१) आर्षी गायत्री । (२) आसुरी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—मित्र और वरुण पदाधिकारियों का वर्णन करते हैं। हे (ऋतावृधा) ऋत सत्य व्यवस्था को बढ़ानेवाले या सत्यधर्म की व्यवस्था से स्वयं बढ़नेवाले (मित्रावरुणा) मित्र सबसे स्नेह करनेवाले ब्राह्मण गण और (वरुण) वरुण, सब दुष्टों के वारण करनेवाले क्षत्रिय (अयं सोम) यह सोम सर्व प्रेरकरूप से राजा (सुतः) बनाया गया है। (इह) इस अवसर पर (मम इत्) मेरे ही (हवम्) आज्ञा या अभ्यर्थना का (श्रुतम्) श्रवण करो। हे राजन् ! (त्वा) तुझे (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और वरुण पद के भी वश करने के लिये उन पर शासक रूप से नियुक्त करता हूं।

अध्यापक और अध्येता के पक्ष में—वे दोनों ऋत=ज्ञान को बढ़ाने वाले है। उनका सोम, योगैश्वर्य है। वे दोनों मित्र और वरुण हैं। शिष्य मित्र के समान है, आचार्य उसको पाप से निवारक होने से वरुण है। अथवा आचार्य सुहृत् है और छात्र गुणदोषवारक होने से वरुण है। अध्यात्म में ज्ञान और बल दोनों मित्र और वरुण हैं। क्रतुदक्षौ ह वा अस्य मित्रावरुणौ

एतन्वध्यात्मं स यदेव मनसा कामयत इदं मे स्यादिदं मे कुर्वीय इति स एव क्रतुरथ यदस्मै तत्समृद्ध्यते स दक्ष । मित्र एव क्रतुर्वरुणो दक्ष । ब्रह्मैव मित्र. क्षत्रं वरुण. । अभिगन्ता एव ब्रह्म कर्त्ता क्षत्रिय. । इत्यादि । शत० ४ । १ । ४ । १—७ ॥

राया वयꣳससवाꣳसो मदेम हव्येन देवा यवसेन गावः। तां धेनुं मित्रावरुणा युवं नो विश्वाहा धत्तमनपस्फुरन्तीमेष ते योनिर्ऋतायुभ्यान्त्वा ॥ १० ॥　　ऋ० ४ । ४२ । १० ॥

त्रसदस्युर्ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । ब्राह्मी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र और हे वरुण ! हे ब्राह्मणगण, और हे क्षत्रगण ? जिस रसपान कराने वाली वेदवाणियों की व्यवस्था के अनुसार (वयम्) हम लोग (राया) ऐश्वर्य का (ससवांस.) विभाग करते हुए जैसे (देवाः) देव, विद्वानगण अपने अभिलषित ज्ञान से और (गाव यवसेन) गौ आदि पशु जिस प्रकार दैनिक चारा पाकर प्रसन्न होते हैं उसी प्रकार प्रसन्न हों (ताम् धेनुम्) उस धेनु सर्वरस पिलाने वाली वाणी, गौ और पृथिवी को (युवम्) आप दोनों (विश्वाहा) सब दिन, नित्य (अनपस्फुरन्तीम्) विना कष्ट के, व्यथारहित रूप से, उसे बिना तड़ पाए (धत्तम्) उसका धारण पोषण करो । या उसको ऐसे पालन करो कि वह कष्ट पाकर किसी और के पास न चली जाय । हे राजन् ! (एष ते योनिः) तेरा यही ब्राह्मण और क्षत्रियगण, मित्र और वरुण दोनों आश्रय स्थान हैं (ऋतायुभ्याम् त्वा) अर्थात् सत्य ज्ञान और आयु अर्थात् निर्विघ्न दीर्घ आयु दोनों के प्राप्त करने के लिये (त्वा) तुझ योग्य पुरुष को नियुक्त करता हूं । शत०—४ । १ । ४ । १० ॥

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्ष-

तम् । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥ ११ ॥ ऋ० १ । २२ । ३ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (अश्विना) हे सूर्य और चन्द्र या सूर्य और पृथिवी के समान परस्पर नित्य मिले हुए राजा और प्रजाजनो ! या स्त्री पुरुषो ! (या) जो (वाम्) तुम दोनों वर्गों की (मधुमती) मधुर, आनन्दप्रद, रस से युक्त (सूनृतावती) उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण (कशा) वाणी है (तया) उससे (यज्ञम्) इस राष्ट्र रूप यज्ञ को (मिमिक्षतम्) सेचन करते रहो, उससे इसमे निरन्तर आनन्द की वृद्धि करते रहो । हे योग्य पुरुष ! राजन् ! (उपयाम-गृहीत. असि) देश के शासन द्वारा तू बद्ध है । (त्वा) तुझको (अश्विभ्याम्) देश के स्त्री और पुरुष दोनों की उन्नति के लिये नियुक्त करता हूं । (एष-ते योनि.) तेरे लिये यही आश्रय है । (त्वा) तुझको (माध्वीभ्याम्) मधु, उत्तम रस के प्रदान करने वाली, नीति और शक्ति दोनों के लिये प्रतिष्ठित करता हूं ।

शिष्य अध्यापक के पक्ष में—वे दोनों सूर्य चन्द्र के समान प्रकाशित हैं उनकी मधुमयी, ज्ञानमयी मधुरवाणी उनके ज्ञान यज्ञ को बढ़ावे । यही उनका आश्रय है । शत० ४ । १ । ५ । १५ ॥

[१] तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदꣳ स्वर्विदम् । प्रतीचीनं वृजनं दोहसे धुनिमाशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे । उपयामगृहीतोऽसि शण्डाय त्वैष ते योनिर्वीरतां पाह्यपमृष्टः शण्डो देवास्त्वा शुक्रपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १२ ॥ ऋ० ५ । ४४ । १ ॥

काश्यपो वत्सार ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । (१) निचृदार्षी जगती । निषाद । (२) पक्तिः । पञ्चम ॥

१२—'दोहसे गिराशु' इति ऋ० ॥

भा०—हे राजन् ! तू (प्रत्नथा) अपने से पूर्वकाल के, (पूर्वथा) अपने से पूर्व या अधिक बलशाली राजाओं के, (विश्वथा) समस्त देशों के और (इमथा) इन प्रत्यक्ष वीर पुरुषों के समान (ज्येष्ठतातिम्) सब से ज्येष्ठ, उत्तम गुणशाली, (बर्हिषदम्) उच्च आसन पर विराजमान, (स्वर्विदम्) तापकारी बल और तेज के धारण करनेवाले (प्रतीचीनम्) शत्रु के प्रति चढ़ाई करनेवाले, (वृजनम्) शत्रुओं को वारण करनेवाले, (धुनिम्) शत्रुओं के कपा देनेवाले, उनको धुन डालनेवाले (आशुम्) अति शीघ्रकारी सिद्धहस्त (तम्) उस प्रसिद्ध विख्यात पुरुष को (यासु) जिन जिन दिशाओं और प्रजाओं में (दोहसे) पूर्ण करता है उनमें ही तू उसके अनुकूल होकर (अनुवर्धसे) स्वयं वृद्धि को प्राप्त होता है। अथवा ऐसे बलवान् पुरुष को साथ लेकर जिन प्रजाओं में तू स्वयं बढ़ता है उनके तू (प्रतीचीन वृजन दोहसे) शत्रु के प्रतिगामी बलको प्राप्त करता है। हे वीर पुरुष ! राजन् ! (उपयामगृहीत. असि) तुझे उपयाम, अर्थात् पृथिवी निवासी प्रजातन्त्र ने स्वीकार किया है। (शण्डाय त्वा) बलके कारण पदयुक्त पुरुष के कम्पन के निमित्त (त्वा) तुझको इस पद पर नियुक्त करते हैं। (एष ते योनि) तेरे लिये यही पद है। तू (वीरताम्) अपने वीर्य, वीरस्वभाव या वीर जनों की (पाहि) रक्षाकर । (शण्ड.) बलके मद में मत्त पुरुष भी (अपमृष्ट.) प्रजा से पृथक कर दिया जाय। और (शुक्रपा.) वीर्य के पालन करनेवाले, बलवान् (देवा) युद्ध विजयी पुरुष भी तुझसे स्नेह करें। या तेरे लिये कार्य करें। और हे प्रजे ! या हे राजशक्ते ! इस प्रकार तू (अनाधृष्ट. असि कभी शत्रुओंद्वारा दबाई, या पीड़ित नहीं हो सकती। शत० ४। २। १। ६॥

योगी के पक्ष में—हे योगिन् ! तू (उपयामगृहीतोऽसि) योग के यमादि अंगों में अभ्यस्त हो। यही तेरा आश्रय है। इनसे (अपमृष्ट) शुद्ध होकर (शण्ड=शं—ड.) शान्त स्वभाव होकर (यासु) जिन योग क्रियाओं

में (वर्धसे) तू वृद्धि को प्राप्त हो और पूर्व के अभ्यासी लोगों के समान, (ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदं प्रतीचीनमाशुं जयन्तं धुनिं वृजनं च दोहसे) सब से उत्तम, आत्मस्थ, सुखकारी, विषयों के विरोधी, जयप्रद योगबलको प्राप्त करता है (तं) उसको (शुक्रपाः देवाः) वीर्यपालक, ब्रह्मचारी विद्वान् प्राप्त करावें। तू अपनी वीरता या बल वीर्य की रक्षा कर। तेरा वीर्य कभी खण्डित न हो। यह मन्त्र पुत्रप्रजनन पर भी लगता है। इस प्रकरण में सृष्टि उत्पत्ति का रूप भी कहा है।

[1] सुवीरो वीरान् प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्। सञ्जग्मानो दिवा पृथिव्या शुक्रः शुक्रशोचिषा निरस्तः शण्डः [2] शुक्रस्याधिष्ठानमसि ॥ १३ ॥

विश्वेदेवाः देवता. । (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । (२) प्राजापत्या-गायत्री, षड्जः ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! तू (सुवीरः) उत्तम वीर होकर और (वीरान्) और वीर पुरुषों को उत्पन्न करता हुआ (परि इहि) राष्ट्र से परे, दूर देशों में जा। और (रायः पोषेण) धन ऐश्वर्य की समृद्धि सहित (यजमानम्) अपने दानशील वृत्तिदाता राजा को (अपि इहि) प्राप्त हो। इस प्रकार (दिवा) सूर्य और (पृथिव्या) पृथिवी से (संजग्मानः) सदा संगति लाभ करते हुए (शुक्रः) तेजस्वी सूर्य के समान (शुक्रशोचिषा) शुद्ध कान्ति से युक्त होकर विराजमान हो। इस प्रकार से राज्य के भीतर (शण्डः) बलवान् वीर पुरुष भी (निरस्तः) देश से बाहर कर दिया जाय। हे राजन् ! तू स्वयं (शुक्रस्य) तेजस्वी सूर्य का (अधिष्ठानम् असि) अधिष्ठान, परम पद है ॥ शत० ४ । २ । १ । १६ ॥

योगी के पक्ष में—उत्तम वीर के समान योगी वीर्यवान् गुणों को उत्पन्न करके ऐश्वर्य से युक्त हो, शुद्धकान्ति से (निरस्त) विषय वासनारहित, शान्त होकर वीर्य का आश्रय बने ॥

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितारः स्याम। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥ १४ ॥

विश्वेदेवाः देवता । स्वराड् जगती । निषाद ॥

भा०—हे (देव सोम) प्रकाशमान सबके प्रेरक राजन् ! (सुवीर्यस्य ते) उत्तम वीर्यवान् तेरे (अच्छिन्नस्य) अच्छिन्न, अटूट, अक्षय (राय. पोषस्य) धनैश्वर्य की समृद्धि के हम प्रजाजन (ददितारः) देनेवाले (स्याम) हों। (सा) वह राजशक्ति ही (विश्ववारा) समस्त राष्ट्र की रक्षा करनेवाली (प्रथमा संस्कृति) सबसे उत्कृष्ट रचना है। (स) इस प्रकार का बनाया हुआ राजा (प्रथम.) सबसे उत्तम, प्रजा का रक्षक, (मित्र) सर्वोत्तम प्रजा का स्नेही और (प्रथम. अग्नि) सर्वोत्तम अग्रणी नेता है। शत० ४। २। १। २१ ॥

शिष्याध्यापक पक्ष में—हे शिष्य ! उत्तम वीर्यवान् अखण्ड ब्रह्मचारि को हम ज्ञान ऐश्वर्य के देनेवाले हों। यह शिक्षा सर्व श्रेष्ठ सबको पुन स्वीकार करने योग्य हैं। हम में से तुझे पाप से वारक अग्नि आचार्य तेरे मित्र के समान स्नेही है।

ईश्वर के पक्ष मे—हे देव सोम ! परमेश्वर ! महान् वीर्यवान् (अच्छिन्नस्य) अखण्ड ऐश्वर्य के परिपोषक तेर हम सदा (ददितार) देनेवाले, देनदार, ऋणी रहे। वही परमेश्वरी शक्ति सबसे उत्तम सस्कृति है, जो सबकी रक्षा करती है। वह परमेश्वर ही सब से श्रेष्ठ प्रथम, आदि मूल वरुण मित्र और अग्नि है ॥

स प्रथमो बृहस्पतिश्चिकित्वाँस्तस्मा इन्द्राय सुतमा जुहोत

१४—सोमो देवता । सर्वा० ॥

स्वाहा। तृम्पन्तु होत्रा मध्वो याः स्विष्टा याः सुप्रीताः सुहुता यत्स्वाहा याडुग्नीत् ॥ १५ ॥

विश्वेदेवाः देवताः । निचृद् ब्राह्म्यनुष्टुप । गान्धार ॥

भा०—(स.) वह (प्रथमः) सब से प्रथम, सर्व श्रेष्ठ (चिकित्वान्) विद्वान्, (बृहस्पतिः) बृहती, वेदवाणी का पालक है । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (तस्मै इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् राजा को (सुतम्) इस राष्ट्र के राजत्व पद को (स्वाहा) उत्तम शासन, वश कारिणी शक्ति से (आ जुहोत) प्रदान करो । और (होत्रा) राजा के मुख्य अधिकारी, जो राज्य के महान् कार्य को चलाने मे समर्थ है वे राज्य की विभाजक शक्तियां (मध्वा) मधुर अन्न आदि भोग्य पदार्थों से (तृम्पन्तु) तृप्त हों । (यत्) क्योंकि (या) जो (स्विष्टा) उत्तम रीति से अपना भाग प्राप्त करके, (या सुप्रीताः) जो सुप्रसन्न होकर और (सुहुता) उत्तम रीति से आदर मान पाकर (स्वाहा) राष्ट्र को उत्तम रीति से वहन करती है । इस प्रकार (अग्नीत्) अग्रणी नेता को प्रज्वलित करने हारा, राष्ट्र यज्ञ का प्रमुख पुरुष (अयाड्) उस कार्य का सम्पादन करे । शत० ४ । २ । १ । २७, २८ ॥

'होत्रा'—अगानि वाव होत्रका । ऋतवो वा होत्रा गो० उ० ६ । ६ । 'अग्नीत्'—यज्ञमुख वा अग्नीत् । गो० उ० ३ । १८ ॥

गृहस्थ पक्ष से—होत्रा =स्त्रियें । सुत=वीर्य । अग्नीत्=पुरुष । इन्द्र=पुत्र । बृहस्पति=पुरुष ॥

[1] अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने । इममपाᳬसंङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति । [2] उपयामगृहीतोऽसि मर्काय त्वा ॥ १६ ॥ ऋ० १० । १२३ । १ ॥

वेनो देवता । (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत । (२) गायत्री । षड्जः ॥

१५—इन्द्र होत्रा च देवते । सर्वा० । ०मग्नीयत् स्विष्ट य सुभृत यत्स्वाहा ॥ इति काण्व० ॥

भा०—(अयं) यह (वेन) कान्तिमान् राजा एक उत्पन्न होने वाले बालक के समान है। (रजस' विमाने) गर्भस्थ जल के विशेष रूप से बने स्थान में स्वयं (ज्योतिर्जरायु) बच्चा जिस प्रकार जेर में लिपटा रहता है उसी प्रकार वह राजा भी (रजस' विमाने) समस्त लोकों के बने विशेष संगठन के भीतर ज्योति , प्रकाश, तेज रूप जेर से लिपटा रहता है। बच्चा जिस प्रकार (पृश्निगर्भा) माता के पेट के जलों को प्रथम बाहर फेंकता है उसी प्रकार यह राजा भी ज्योति के धारण करने वाले सूर्य को अपने भीतर ग्रहण करने वाली प्रजाओं को (चोदयात्) प्रेरित करता है। (अपा संगमे) जलों के एकत्र हो जाने पर जिस प्रकार बच्चे को अंगुलियों से बाहर कर लिया जाता है। इसी प्रकार (विप्रा.) मेधावी विद्वान् पुरुष (शिशुं न) बालक के समान ही (सूर्यस्य) सूर्य के समान, प्रचण्ड ताप के कारण (शिशुम्) प्रशंसनीय, या उसके समान दानशील राजा को (अपा संगमे) प्रजाओं के एकत्र होने के अवसर पर (मतिभि.) अपनी ज्ञानमय स्तुतियों से (रिहन्ति) अर्चना करते हैं। हे योग्य पुरुष ! (त्वम्) तू (उपयामगृहीत असि) राज्य के नाना अंगों, या राष्ट्र के समस्त भागों से स्वयं राजा रूप में स्वीकृत है। (त्वा) तुझको (मर्काय) मर्क अर्थात् शरीर में जिस प्रकार समस्त अंगों में प्राण वायु चेष्टा करता है उसी प्रकार समस्त राष्ट्र में विशेष प्रेरणा देने वाले उत्तेजक पुरुष के पद पर नियुक्त करता हूं। शत० ४। २। १। ८—१०॥

'मर्काय' मर्चते कन् (उणा०) मर्चति चेष्टते असौ इति मर्कः शरीर वायुर्वा।

चन्द्रपक्ष में—यह (वेन) कान्तिमान् चन्द्र (रजस' विमाने) जल के निर्माण अर्थात् वर्षाकाल में (ज्योतिर्जरायु) दीप्ति में लिपट कर (पृश्निगर्भा) अन्तरिक्ष या वातावरण में स्थित जलों को वर्षा रूप में प्रेरित

करता है। और जलों के प्राप्त हो जाने पर विद्वान लोग सूर्य के पुत्र के समान इसकी स्तुति करते हैं ॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता। आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णोऽअस्या श्रीणीता दिशं गभस्तावेष ते योनिः प्रजाः पाह्यपमृष्टो मर्को देवास्त्वा मन्थिपाः प्रणयन्त्वनाधृष्टासि ॥ १७ ॥ ऋ० १० । ६१ । ३ ॥

विश्वेदेवा देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः स्वरः ॥

भा०—हे राजन्! हे प्रजाजन! (येषु) जिन (हवनेषु) युद्ध के अवसरों पर (मन. न) मन के समान (तिग्मं) तीक्ष्ण अति तीव्र-गति वाले (विपः) विपश्चित्, या कार्यकुशल पुरुष को (शच्या) अपनी शक्ति या सेना से (द्रवन्तौ) गमन करते हुए (वनुथ.) प्राप्त करते हैं। और जो (तुविनृम्ण.) बहुत ऐश्वर्यवान् (अस्य) इस राजा के लिये (आदिशम्) प्रत्येक दिशा, या देश में (गभस्तौ) अपने ग्रहण या आक्रमण या देश विजय करने के बल पर (शर्याभिः) अपने शर प्रहार करने वाली सेनाओं से (आश्रीणीत) सब प्रकार राजा का आश्रय करता या उसके शत्रु को सन्तप्त करता है। हे वीर पुरुष! (एषः) यह प्रजा भी (तेयोनि) तेरा आश्रय स्थान या पद है। तू (प्रजाः पाहि) प्रजा का पालन कर इस प्रकार (मर्क) प्रजा पर मृत्यु का दुःख डालने वाले शासकों का दुर्नय या दुष्प्रबन्ध और उसके कारण उत्पन्न होने वाला पारस्परिक घात प्रतीघात या माहमारी आदि रोग (अपमृष्ट) दूर किया जाय। हे राजन् (त्वा.) तुझको (मन्थिपाः) शत्रुओं को मथन करने वाले पुरुष के रक्षक (देवाः) विजिगीषु लोग (प्रणयन्तु) आगे विजय मार्ग पर ले चलें। हे प्रजे! इस प्रकार तू (अनाधृष्टा असि) शत्रुओं द्वारा कभी पीड़ित नहीं होसकती। शत० ४ । २ । १ । १२ ।

१७—होमस्तुतिर्दक्षिणोत्तरे वेदी च देवता । सर्वा० ॥

राजा एक ऐसे विद्वान को नियुक्त करे जो युद्ध के अवसरों पर मन के समान तीक्ष्ण मननशील हो। राजा प्रजा उसकी शक्ति से सब कार्यों में आगे बढ़ें। वह प्रत्येक दिशा में शत्रुओं को पराजित करे। उसको उचित आश्रय दे। जो राजा प्रजा का पालन करे, आक्रामक शत्रु का नाश करे उसका नाम 'मन्थी' है। उसके आज्ञा के पालक राजा को आगे बढ़ावें। प्रजा सुरक्षित रहे।

[1] सुप्रजाः प्रजाः प्रजनयन् परीह्यभि रायस्पोषेण यजमानम्। संजग्मानो दिवा पृथिव्या मन्थी मन्थिशोचिषा निरस्तो मर्को [2] मन्थिनोऽधिष्ठानमसि ॥ १८ ॥

प्रजापतिर्देवता । (१) निचृत् त्रिष्टुप् । धैवत । (२) प्राजा पत्या गायत्री षड्ज ॥

भा०—हे विद्वन्! तू (सुप्रजा) उत्तम प्रजावान् होकर (सुप्रजाः) उत्तम प्रजा को (प्रजनयन्) बनाता या उत्पन्न करता हुआ (परि इहि) सर्वत्र गमन कर। (यजमानम्) तू भृति, वेतन एवं समस्त ऐश्वर्य को देने वाले राजा के समीप (रायः पोषेण अभि इहि) ऐश्वर्य की समृद्धि सहित प्राप्त हो। (दिवा) द्यौः या सूर्य के समान तेजस्वी राजा और (पृथिव्या) सर्वाश्रय, प्रजा दोनों के साथ (सं जग्मानः) सत्सग करता हुआ (मन्थी) शत्रुओं का, या असत्य और अविद्या का मथन या विनाश करने वाला होकर विद्यमान रह। (मन्थिशोचिषा) ऐसे मथनकारी के तेज से (मर्कः) प्रजा के मृत्यु के कारण रूप अन्यायी पुरुष, एव शत्रु, दुष्ट, हिंसक पुरुष को (निरस्त) दूर कर दिया जाय। हे राजन्! तू (मन्थिनः) उक्त प्रकार के शत्रु या दुष्ट पुरुषों के मथन के करने वाले पुरुष का भी (अधिष्ठानम् असि) अधिष्ठाता, आश्रयदाता है। शत० ४। २। १। १५–२१ ॥

ये देवासो दिव्येकादश स्थ पृथिव्यामध्येकादश स्थ। अप्सुक्षितो महिनैकादश स्थ ते देवासो यज्ञमिमं जुषध्वम् ॥ १९ ॥ ऋ० १ । १३९ । ११ ॥

विश्वेदेवा देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । धैवत ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान्! देव पुरुषो! आप लोग (ये) जो (दिवि) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के अधीन (एकादश स्थ) ११ राजसभा के सभासद हो, और आप लोग (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी, पर (एकादश स्थ) ११ देव, अधिकारी गण हो। और (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (अप्सुक्षित.) प्रजा में निवास करने वाले आप लोग (एकादश स्थ) ११ हो, वे सब मिल कर (इमं) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (जुषध्वम्) सेवन करें, उसमें अपना भाग लें।

अर्थात् जिस प्रकार शरीर की रचना में, मूर्धा भाग में प्राण, अपान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनजय और जीव ये ११, पृथिवी में पृथिवी, आपः, तेज, वायु, आकाश, आदित्य, चन्द्र, नक्षत्र, अहंकार, महत्तत्व और प्रकृति ये ग्यारह और प्राणों में श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण, वाक्, हाथ, पाद, गुदा, मूत्राशय, और मन ये ग्यारह प्राण विद्यमान हैं और क्रम से शरीर के और ब्रह्माण्ड के देहों को धारण करते यथावत् समस्त कार्य चला रहे हैं उसी प्रकार राष्ट्रदेह में, राजा के साथ ११ विद्वान् पुरुष, पृथिवी पर के शासकों में से ११ और प्रजाओं में से ११ विद्वान् प्रतिनिधि मिलकर सभा बना कर कार्य सचालन करें। शत० ४।२।२।१—९॥

उपयामगृहीतोऽस्याग्रयणोऽसि स्वाग्रयणः। पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं विष्णुस्त्वामिन्द्रियेण पातु विष्णुं त्वं पाह्यभि सवनानि पाहि ॥ २०.॥

यज्ञो देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः॥

२०—लिंगोक्ता देवता सर्वा० ॥

भा०—हे सभापते ! तू (उपयामगृहीत असि) राष्ट्र के नियम व्यवस्था द्वारा स्वीकृत है। तू (आग्रयण असि) 'आग्रयण' अग्र अर्थात् मुख्य २ पद प्राप्त करने योग्य है। और तू (सु-आग्रयण) उत्तम पूजा योग्य अग्रपद प्राप्त, सर्वोच्च पदाधिकारी (असि) है। तू (यज्ञम् पाहि) इस व्यवस्थित राष्ट्र का पालन कर और (यज्ञपतिम्) यज्ञ या राष्ट्र के पालक स्वामी की भी (पाहि) रक्षा कर। हे राष्ट्र ! (विष्णु.) सब शक्तियों और राष्ट्र के विभागों में समानरूप से व्यापक राजा (त्वाम्) तुझको (इन्द्रियेण) अपने इन्द्र, ऐश्वर्यभाजन पदयोग्य राजबल से (पातु) पालन करे (त्वम्) तू हे विद्वन् ! या प्रजाजन ! (विष्णुम्) उस व्यापक शक्तिमान् राजा को (पाहि) पालन कर। और तू (सवनानि) समस्त ऐश्वर्य के द्योतक अधिकार पदों की भी (पाहि) रक्षा कर ॥ शत० ४ । २ । २ । ६–१० ॥

[1]सोमः पवते सोमः पवतेऽस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवतऽइषऽऊर्जे पवतेऽद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावापृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य [2]ऽएष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ २१ ॥

सोमो देवता । (१) स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत । (२) जगती । निषाद ॥

भा०—(सोम) सर्वप्रेरक राजा (पवते) अपने कार्य में और सूर्य के समान राष्ट्र के सब कार्यों में प्रवृत्त होता और अन्यों को भी प्रेरित करता है। (सोमः पवते) राजा, सोम अर्थात् चन्द्र के समान या वायु के समान सर्वत्र जाता है। (अस्मै ब्रह्मणे) महान् परमेश्वर के बनाये नियम, वेद और ब्रह्मचर्य के पालन कराने ब्रह्म अर्थात् ब्राह्मण, विद्वान्

२१ — अस्मै ब्रह्मणे पवतेऽस्मै क्षत्राय पवतेऽस्मै सु० ०सुभूताय पवते ब्रह्मवर्चसाय पवते । इति काण्व० ॥

प्रजा के लिये, (अस्मै क्षत्राय) इस क्षत्र वीर्यवान् क्षत्रिय, वीर प्रजा के लिये, और (अस्मै सुन्वते यजमानाय) इस समस्त विद्याओं के सिद्धान्तों को प्रकट करनेहारे विद्या आदि प्रदान करनेवाले, सर्वसम्मत विद्वान् या ब्रह्मोपासक पुरुष की रक्षा और वृद्धि के लिये (पवते) राज्य में उद्योग करता है। वह राजा और विद्वान् पुरुष अपने राष्ट्र में (इषे ऊर्जे) अन्न उत्पन्न करने और उससे बल प्राप्त करने के लिये (पवते) उद्योग करता है। वह (अद्भ्यः ओषधीभ्यः पवते) उत्तम जल और उत्तम ओषधियों के संग्रह के लिये उद्योग करता है। (द्यावापृथिवीभ्याम् पवते) द्यौ, सूर्य के प्रकाश, एवं उत्तम वृष्टि और पृथिवी के उत्तम पदार्थों की उन्नति के लिये अथवा, आकाश और पृथिवी दोनो के बीच में विद्यमान समस्त ऐश्वर्यों के लिये उत्तम पिता और माता स्त्री और पुरुषों की उन्नति के लिये (पवते) चेष्टा करता है। वह (सुभूताय पवते) उत्तम भूति, ऐश्वर्य की प्राप्ति, सबके उत्तम उपकार और उत्तम सन्तान की उन्नति के लिये उद्योग करता है। हे राजन् ! (त्वा) तुझको हम (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) समस्त देवों, राजाओं, विद्वानों, शासकों एवं वायु, विद्युत्, अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि दिव्य पदार्थों के उपकार और सद् उपयोग के लिये स्थापित करता हूं। (ते ..., योनिः) तेरा यह आश्रय स्थान, पद या आसन है (विश्वेभ्य देवेभ्यः त्वा) समस्त देवों, उत्तम विद्वान्, सत्पुरुषों के लिये तुझे नियुक्त करता हूं। शत० ४ । २ । २ । ११-१६ ॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसीन्द्राय॑ त्वा बृ॒हद्व॑ते॒ वय॑स्वत उक्था॒व्यं॑ गृह्णामि। यत्त॑ऽइन्द्र बृ॒हद्वय॒स्तस्मै॑ त्वा॒ विष्ण॑वे त्वै॒ष ते॒ योनि॑रु॒क्थेभ्य॑स्त्वा दे॒वेभ्य॑स्त्वा दे॒वा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामि ॥ २२ ॥

ऋ० ६ । ५१ । १—२ ॥

विश्वेदेवा देवता. । ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

२२—०' उक्था युव० ' ०' देवायुव० ' ॥

भा०—हे उत्तम, वीर पुरुष ! तू (उपयामगृहीतः असि) तू राज्य के उत्तम नियमों द्वारा 'गृहीत' अर्थात् बधा है। (उक्थाव्यम्) उत्तम ज्ञानों की रक्षा करने वाले (त्वा) तुझ विद्वान् को मैं (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य युक्त (बृहद्वते) बडे भारी राष्ट्र के कार्यों से युक्त (वयस्वते) अति दीर्घ जीवन वाले पद या राजा के लिये (गृह्णामि) नियुक्त करता हू। हे (इन्द्र) इन्द्र परमैश्वर्यवान् । राजन् अथवा ' सेनापते ! (यत् ते) जो तेरा (बृहत्) महान् राज्य और (वयः) जो तेरा यह दीर्घजीवनसाध्य कार्य है (तस्मै) मैं उसके लिये (त्वा) तुझको नियुक्त करता हू । (विष्णवे त्वा) तुझे राज्यपालन रूप, विष्णु अर्थात् व्यापक राष्ट्र के पालन कार्य के लिये नियुक्त करता हू। (एष ते योनि.) यह तेरा आश्रय स्थान या पद है। (देवाव्यम्) देव, विद्वानों, शासकों और पदाधिकारियों के और अधीन राजाओं के रक्षक (त्वा) तुझको (देवेभ्य गृह्णामि) उन देवों अर्थात् विद्वान् पदाधिकारी, अधीन राजाओं की रक्षा के लिये भी (गृह्णामि) नियुक्त करता हू। और मै तुझे (यज्ञस्य) इस 'यज्ञ' अर्थात् राज्यव्यवस्था के (आयुषे) दीर्घजीवन के लिये भी (गृह्णामि) नियुक्त करता हू। शत० ४।२।२।१-१०॥

[1]मि॒त्रावरु॑णाभ्यां त्वा देवा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामीन्द्रा॑य त्वा दे॒वा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामी[2]न्द्रा॒ग्निभ्यां॑ त्वा देवा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामी[3]न्द्रा॒वरु॑णाभ्यां त्वा देवा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामी[4]न्द्रा॒बृह॒स्पति॑भ्यां त्वा देवा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामी[5]न्द्रा॒विष्णु॑भ्यां त्वा देवा॒व्यं॑ य॒ज्ञस्यायु॑षे गृह्णामि ॥ २३ ॥

विश्वेदेवा देवता । (१) अनुष्टुप् । (२) प्राजापत्यानुष्टुप् । (३) स्वराट् साम्न्यनुष्टुप् । गाधार स्वर । (४) भुरिगार्ची गायत्री । षड्ज. । (५) भुरिक् साम्न्यनुष्टुप् । गाधार ॥

२३—'देवायुव' ०सर्वंच कायव० ॥

भा०—हे सभापते या राजन् ! (देवाव्यं त्वां) देव, विद्वानों और अधीन राजाओं के रक्षक तुझको (मित्रावरुणाभ्याम्) मित्र और वरुण इन पदों पर (यज्ञस्य आयुषे) राष्ट्रव्यवस्था के दीर्घ जीवन के लिये (गृह्णामि) नियुक्त करता हू । हे राजन् ! (देवाव्यम् त्वा) विद्वानों और राजा जनों के रक्षक तुझको (इन्द्राय, यज्ञस्य आयुषे, गृह्णामि) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् सेनापति पद पर राष्ट्रमय यज्ञ के दीर्घ जीवन के लिये नियुक्त करता हू । (२) (देवाव्य इन्द्राग्नीभ्याम् यज्ञस्य आयुषे त्वा गृह्णामि) देवों, विद्वान् पुरुषों के रक्षक तुझको इन्द्र और अग्नि पद अर्थात् इन्द्र, राजा और अग्नि, दुष्टों के संतापक और अग्रणी पद पर राज्य की दीर्घायु के लिये नियुक्त करता हू । (त्वा देवाव्य इन्द्रावरुणाभ्याम् यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि) देवों के रक्षक, तुझको इन्द्र और वरुण पद पर यज्ञ की दीर्घायु के लिये नियुक्त करता हूं । (त्वा देवाव्य इन्द्राबृहस्पतिभ्या यज्ञस्य आयु गृह्णामि) देवों के रक्षक तुझे इन्द्र औरबृहस्पति पद पर राज्य के दीर्घ जीवन के लिये नियुक्त करता हूं । (इन्द्र-विष्णुभ्या त्वा, देवाव्यं यज्ञस्य आयुषे गृह्णामि) देवों के रक्षक तुझको इन्द्र और विष्णु पद पर राज्य की दीर्घायु के लिये नियुक्त करता हूं । ४ । २ । २ । १–१८ ॥

मित्र, वरुण, इन्द्र-अग्नि, इन्द्र-वरुण, इन्द्र-बृहस्पति, इन्द्र-विष्णु ये सब राज्य के विशेष अंग हैं । जिनके पदाधिकारी इन नामों से कहे जाते हैं । उन सबके लिये योग्य पुरुषों को नियुक्त करने और उन सबकी रक्षा के लिये उन सबके ऊपर सबको रक्षा करने में समर्थ एक पुरुष को नियुक्त करने का उपदेश वेद ने किया है । शत० ४ । २ । २ । १–१८ ॥

मूर्द्धानं दिवोऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृतऽआजातमग्निम् ।

कुविछं सुम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥२४॥

ऋ० ६ । ७ । १ ॥

भरद्वाज ऋषि. । विश्वे देवा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(देवा) विद्वान् पुरुष, समस्त राजगण मिलकर (दिवः मूर्धानम्) द्यौ लोक, आकाश के शिरोभाग पर जिस प्रकार सूर्य विराजमान है उसी प्रकार समस्त (दिव) ज्ञान, प्रकाश और विद्वान पुरुषों के मूर्धन्य शिरोमणि, (पृथिव्या. अरतिम्) पृथिवी में जिस प्रकार भीतरी अग्नि व्यापक है, और अन्तरिक्ष में जिस प्रकार वायु व्यापक है उस प्रकार पृथिवी निवासी प्रजा में (अरतिम्) प्रेम और आदर पूर्वक सबके भीतर व्याप्त प्रतिष्ठित (वैश्वानरम्) समस्त विश्व के नेता, समस्त राष्ट्र के नेता रूप (ऋते आजातम्) सत्य व्यवहार, ऋत, वेद ज्ञान और (ऋते) राज्य नियम मे अति विद्वान्, निष्ठ (अग्निम्) सबके अग्रणी, ज्ञानवान् (कविम्) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (सम्राजम्) अतिप्रकाशमान, सर्वोपरि सम्राट्, (अतिथिम्) अतिथि के समान, पूजनीय, (जनानाम् पात्रम्) समस्त जनों के पालन करने में समर्थ, योग्य पुरुष को (आसन्) मुख में, सबसे मुख्य पद पर (आ जनयन्त) स्थापित करें । श० ४ । २ । ३ । २४ ॥

[1]उपयामगृहीतोऽसि [2]ध्रुवोऽसि ध्रुवक्षितिर्ध्रुवाणां ध्रुवतमोऽच्युतानामच्युतक्षित्तमऽ एष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा । ध्रुवं ध्रुवेण मनसा वाचा सोममवनयामि । अथा न इन्द्र इद्विशोऽसपत्नाः समनसस्करत् ॥ २५ ॥ ऋ० १० । १७३ । ६ ॥

वैश्वानरो देवता । (१) याजुषी अनुष्टुप् । गान्धार. । (२) विराड् आर्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे सम्राट् ! पूर्व मन्त्र में कहे सर्वोपरि विराजमान पुरुष ! तू

भी (उपयामगृहीत असि) समस्त राज्यव्यवस्था के नियमों में बद्ध है। तू (ध्रुव असि) तू ध्रुव, स्थिर है, तुझे शत्रुगण उखाड़ नहीं सकते। तू (ध्रुवक्षिति) ध्रुव, स्थिर निवासवाला हो अथवा तेरे अधीन यह भूमि सदा स्थिररूप से रहे। तू (ध्रुवाणां ध्रुवतम) समस्त स्थिर, अचलरूप से रहनेवालों में सबसे अधिक स्थिर, प्रतिष्ठित, है। तू (अच्युतक्षित्-तमः) शत्रुओं के आक्रमणों से भी अपने आसन से च्युत न होनेवाले, न विनष्ट होनेवाले राजाओं में से भी सबसे अधिक दृढ़ है। (एषः ते योनि.) यह तेरा पद या प्रतिष्ठा स्थान है। हे उत्तम पुरुष ! (त्वा) तुझको मैं (वैश्वानराय) समस्त प्रजाओं के नेतृ पद पर नियुक्त करता हूं। (ध्रुवेण मनसा) मैं ध्रुव, स्थिर चित्त से और (वाचा) वाणी से (सोमम्) सबके प्रेरक, प्रवर्त्तक राजा को (अवनयासि) अभिषिक्त करता हूं, पद पर प्रतिष्ठित करता हूं। (अथ) अब, इसके पश्चात् (नः इन्द्रः) तू हमारा इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा होकर (इत्) ही (विशः) समस्त प्रजाओं को (असपत्नाः) शत्रुरहित, (समनसः) समान चित्त वाला, प्रेमयुक्त (करत्) करे, बनावे ॥ शत० ४ । २ । ३ । २४ ॥

ईश्वर पक्ष में—हे ईश्वर ! तू यम नियमों से, शास्त्र सिद्धान्तों से स्वीकृत है। ध्रुव, स्थिर अविनाशी है। आकाश, काल, आत्मा आदि अविनाशी पदार्थों में स्वयं अविनाशी होकर उनमें व्यापक है। उसको मैं एकाग्रचित्त से सबके सोम, सर्व-उत्पादक और प्रेरक आनन्दरस रूप से ध्यान करूं। वह हम सबको प्रेममय एक चित्त बनावे।

यस्ते॑ द्र॒प्स स्कन्द॑ति॒ यस्ते॑ऽअ॒ꣳशुर्ग्रा॑वच्युतो धि॒षण॑यो-रु॒पस्था॑त्। अ॒ध्व॒र्य्योर्वा॒ परि॑ वा॒ यः प॒वित्रा॒त्तं ते॑ जुहोमि॒ मन॑सा॒ वष॑ट्कृत॒ꣳ स्वाहा॑ दे॒वाना॑मु॒त्क्रम॑णमसि ॥ २६ ॥

देवश्रवा ऋषि । यज्ञो देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! (ते) तेरा (यः) जो (द्रप्सः) सूर्य के समान तेजस्वी वीर्य और (यः) जो (ते) तेरा (अंशुः) व्यापक सामर्थ्य (धिषणयोः) द्यौ और पृथिवी इन दोनों के (उपस्थात्) समीप से (ग्रावच्युतः) विद्वानों, प्रजाओं द्वारा या वीर सैनिकों द्वारा ज्ञात या प्रकट होता है, और (यः) जो (अध्वर्योः) अध्वर्यु, अखण्डित, अहिंसित सेनापति या महामन्त्री या राज्य से (वा) अथवा (यः) जो (पवित्रात्) पवित्र अर्थात् सत्यासत्य के निर्णय करनेवाले तेरे व्यवहार से ज्ञात होता है (तत्) उस (ते) तेरे (मनसा) मन द्वारा, मनन द्वारा या ज्ञानद्वारा (वषट्कृतम्) सकल्प किये गये या निश्चित किये गये स्वरूप सामर्थ्य या बल, अधिकार को (स्वाहा) उत्तम वेदवाणी द्वारा (जुहोमि) तुझे प्रदान करता हूं। अथवा उस अधिकार को नेता पुरुष को प्रदान करता हूं। हे राजपद ! (देवान्) तू समस्त देवों, राजाओं और विद्वानों में से (उत्क्रमणम्) सबसे अधिक ऊंचे जानेवाला (असि) है। शत० ४ । २ । ४ । १, ५ ॥

'द्रप्स'—असौ वा आदित्यो द्रप्सः । श० ७ । ७ । १२० ॥

'अंशु.'—प्रजापति र्हवा एष यदंशुः । सोऽस्य एष आत्मा एव । श० ११ । ५ । ६ । ११ ॥

'अध्वर्यु.'—राज्यं वा अध्वर्युः । तै० ३ । ८ । ५ । १ ॥ मनोऽध्वर्युः । श० १ । ५ । १ । २१ ॥

'ग्रावा'—वज्रो वै ग्रावा । श० ११ । ५ । ६ । ७ ॥ विशो ग्रावाणः । श० ३ । ३ । ३ ॥ विद्वांसो हि ग्रावाण । श० ३ । ६ । ३ । १४ ॥

'वषट्कृतम्'—त्रयो वै वषट्कारः वज्रो धामच्छद्रिक्त । ऐ० ३ । ७ ॥ वज्रो वै वषट्कार । ऐ० ३ । ८ ॥

'पवित्रात्'—पवित्रं वै वायुः । तै० ३ । २ । ५ । ११ ॥

¹प्राणाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ²व्यानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वो³दानाय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ⁴वाचे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ⁵क्रतूदक्षाभ्यां मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ⁶श्रोत्राय मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व ⁷चक्षुर्भ्यां मे वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥२७॥

आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ॥ २८ ॥

यज्ञपतिर्देवता । (१, २) आसुर्यनुष्टुभौ । गान्धार । (३) आसुर्युष्णिक् । ऋषभ । (४) साम्नी गायत्री । षड्जः । (५) आसुरी गायत्री । षड्जः । (६) आसुर्यनुष्टुप् । गान्धारः । (७) आसुर्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—अब राजा अपने अधीन नियुक्त पुरुषों को अपने राष्ट्र रूप शरीर के अंग मान कर इस प्रकार कहता है। जिस प्रकार प्राण शरीर में मुख्य है, वह परम आत्मा से उतर कर है, उसी प्रकार आत्मा के समान राजा के समीप का पद 'उपांशु' कहा है। हे उपांशु ! उपराज ! हे सभाध्यक्ष ! तू (वर्चोदा) वर्चस, तेज का देने वाला है तू (मे) मेरे (प्राणाय) शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में मुख्य कार्य के लिये (पवस्व) उद्योग कर। हे (वर्चोदा) मुझे बल देने वाले ! या बल की रक्षा करने वाले ! तू (व्यानाय) शरीर में व्यान के समान मेरे राष्ट्र में व्यापक प्रबन्ध के (वर्चसे) बल, तेज की वृद्धि के लिये (पवस्व) उद्योग कर। हे (वर्चोदाः) बल और अन्त नियन्त्रण के अधिकारी पुरुष ! (मे उदानाय वर्चसे) शरीर में उदान वायु के समान, आक्रमणकारी बल की वृद्धि के लिये तू उद्योग कर। हे (वर्चोदाः) ज्ञान रूप तेज के प्रदान करने हारे। उस वायु पद के अधिकारी विद्वान्

पुरुष ! तू (मे वाचे वर्चसे) शरीर में वाणी के समान वेदज्ञान रूप मेरे तेज की वृद्धि के लिये (पवस्व) उद्योग कर । हे (वर्चोदा.) तेज और बलप्रद मित्रावरुण पद के अधिकारी पुरुष ! तू (क्रतुदक्षाभ्या) ज्ञान वृद्धि और बल वृद्धि और (वर्चसे) तेज की वृद्धि के लिये (पवस्व) उद्योग कर । हे (वर्चोदा.) बलप्रद 'आश्विन' पद के अधिकारी पुरुष ! तू मे (श्रोत्राय वर्चसे) शरीर में श्रोत्र के समान राष्ट्र में परस्पर एक दूसरे के दु.ख सुख श्रवण करने रूप तेज की वृद्धि के लिये (पवस्व) उद्योग कर । हे (वर्चोदसौ) तेज के देने हारे शुक्र और मन्थी पद के अधकारी पुरुषो ! तुम दोनों (चक्षुर्भ्याम्) शरीर में आखों के समान कार्य करने वाले अधिकारियों के (वर्चसे) बल वृद्धि करने के लिये (पवेथाम्) उद्योग करो। हे (वर्चोदा) तेज बल देने हारे 'आग्रयण' पद के अधिकारी पुरुष ! तू (मे आत्मने वर्चसे पवस्व) तू मेरे आत्मा या देह के समान राष्ट्र या राजा के बल की वृद्धि के लिये उद्योग कर । हे (वर्चोदा·) तेज देने वाले उक्थ्य पद के अधिकारी पुरुष ! (ओजसे मे वर्चसे पवस्व) मेरे शरीर में ओजस् के समान राष्ट्र के ओजस्, पराक्रम, वीर्य के बढ़ाने के लिये तू उद्योग कर । हे (वर्चोदा) तेज के बढ़ाने वाले ध्रुव पद के अधिकारी पुरुष ! तू (आयुषे मे वर्चसे पवस्व) मेरे शरीर में आयु के समान राष्ट्र के दीर्घ जीवन की वृद्धि के लिये उद्योग कर । हे (वर्चोदाः) तेज के बढ़ाने वाले पूतभृत् और आहवनीय पद के अधिकारी पुरुषो ! आप दोनों (मे विश्वाभ्य प्रजाभ्य वर्चसे पवेथाम्) मेरी समस्त प्रजाओं के तेज बल बढ़ाने का उद्योग करो।

शरीर में जितने प्राण कार्य करते हैं तदनुरूप राष्ट्र में अधिकारियों को स्थापित करने का वर्णन मन्त्र ३ से २६ तक किया गया है। जिसका तुलनात्मक सार नीचे देते हैं।

शरीरगत प्राण	राष्ट्रगत पद नाम	मन्त्र संख्या
१ प्राण .	उपांशु सवन ...	देखो मन्त्र ३, ४, ५,
२ व्यान	,,	.. ..
३ उदान .	अन्तर्याम ...	६, ७,
४ वाक्	इन्द्रवायु ...	८,
५ क्रतु-दक्ष	मित्रावरुण ...	९, १०,
६ श्रोत्र .	आश्विन ...	११,
७ चक्षुः	शुक्रामन्थिन् ...	१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,
८ आत्मा	आग्रयण ..	१९, २०, २१,
९ ओजस	उक्थ्य ...	२२, २३,
१० आयुष्	ध्रुव .	२४, २५,
११ प्रजा ...	पूतभृत्-आहवनीय ...	२६,

[1]कोऽसि कतमोऽसि कस्यासि को नामासि। यस्य ते नामामन्महि यं त्वा सोमेनातीतृपाम। [2]भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याᳯं सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः॥ २६॥

प्रजापतिर्देवता। (१) आर्ची पंक्ति। (२) भुरीक् साम्नी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—राजा नियुक्त अधिकारी का और अधिकारी लोग राजा का परस्पर परिचय प्राप्त करें। हे राजन्! तू: (कः असि) कौन है? और (कतमः) अपने वर्ग में से कौनसा (असि) है? (कस्य असि) किस

पिता का पुत्र है । (कः नाम असि) तेरा शुभ नाम क्या है ।(यस्य ते) जिस तेरा (नाम) शुभ नाम (अमन्महि) हम जानें (यं) जिस (त्वा) तुझको (सोमेन) सर्वप्रेरक राजपद प्रदान करके (अतीतृपाम) हम तुझे तृप्त, सन्तुष्ट करते हैं ।

इसी प्रकार राजा भी प्रत्येक अधिकारी का परिचय करे । तू कौन है ? किस वर्ग का है ? किसका पुत्र है ? नाम क्या है ? जिस का वह राजा नाम जाने और जिसको (सोमेन) राज की ओर से दिये जाने वाले धन द्वारा वह तृप्त करे । मैं राजा (भूः) भूमि, (भुवः) अन्तरिक्ष (स्वः) सर्व प्रेरक सूर्य तीनों के ऐश्वर्य से युक्त होकर (प्रजाभिः) इन प्रजाओं से (सुप्रजाः) उत्तम प्रजा से सम्पन्न (स्याम्) होऊं । (वीरैः) इन वीर पुरुषों द्वारा मैं (सुवीरः) उत्तम वीर होऊं । (पोषैः) इन पोषक ऐश्वर्यवान् पुरुषों से मिलकर मैं (सुपोषः) राष्ट्र का उत्तम पोषक, समृद्धिवान् होजाऊं । उव्वट और महीधर के मत से (कः) प्रजापति है ।

[1]उपयामगृहीतोऽसि मधवे त्वो[2]पयामगृहीतोऽसि माधवाय त्वो[3]पयामगृहीतोऽसि शुक्राय त्वो[4]पयामगृहीतोऽसि शुचये त्वो-[5]पयामगृहीतोऽसि नभसे त्वो[6]पयामगृहीतोऽसि नभस्याय त्वो[7]पयामगृहीतोऽसीषे त्वो[8]पयामगृहीतोऽस्यूर्जे त्वो[9]पयामगृहीतोऽसि सहसे त्वो[10]पयामगृहीतोऽसि सहस्याय त्वो[11]पयामगृहीतोऽसि तपसे त्वो[12]पयामगृहीतोऽसि तपस्याय त्वो[13]पयामगृहीतोऽस्यंहसस्पतये त्वा ॥ ३० ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । (१, ३–५, ६, ११) साम्न्यो गायत्र्यः । षड्जः । (२) आसुर्यनुष्टुप् । (३–५) साम्नीगायत्री । प्रजापतिर्ऋषिः । (१, ३–५, ६, ११) समन्यो गायन्य । षड्जः । (२, ६, १०, १२) आसुर्योऽनुष्टुभः । गाधारः । ७, ८, याजुष्यौ पङ्क्ती । पञ्चमः । १३ आसुर्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा० —प्रजा राजा के राज्य तन्त्र को सवत्सर रूप से वर्णन करते हैं तदनुसार राज्य के कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति करते हैं। हे योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीत. असि) राज्यव्यवस्था के नियमों द्वारा नियुक्त किया जाता है। (त्वा मधवे) तुझे 'मधु' पद के लिये नियुक्त करता हूं। (त्वा-माधवाय) तुझको 'माधव' पद के लिये नियुक्त करता हूं। (त्वा शुक्राय) तुझको 'शुक्र' पद के लिये नियुक्त करता हू। (त्वा शुचये) तुझको 'शुचि' पद के लिये नियुक्त करता हूं। (ऊर्जे त्वा) तुझे 'ऊर्ज' पद के लिये नियुक्त करता हूं। (इषे त्वा) तुझे 'इष्' पद के लिये नियुक्त करता हूं। (सहसे त्वा) तुझे 'सहस्' पद के लिये नियुक्त करता हूं। (सह-स्याय त्वा) तुझे सहस्य पद के लिये नियुक्त करता हूं। (तपसे त्वा) तुझे 'तपस्' पद के लिये नियुक्त करता हूं। (तपस्याय त्वा) तुझे 'तपस्य' पद के लिये नियुक्त करता हूं। और (अंहसस्पतये त्वा) तुझे 'अहंस स्पति' पद के लिये नियुक्त करता हूं। शत० ४। ३। १। १—२ ॥

इस प्रकार राजा अपने अधीन १३ पदाधिकारियों को नियुक्त करता है। और ये १३ पदाधिकारी राजा ही के मुख्य अधिकार के १३ विभाग हैं इसलिये ये १३ हों अधिकार राजा को भी प्राप्त हो जाते हैं।

जैसे सवत्सर या वर्ष में ६ ऋतुएं और प्रत्येक ऋतु में दो २ मास हैं और १३ वां मलमास है। उसी प्रकार प्रजापति राजा के अधीन ६ सदस्य और प्रत्येक के अधीन दो २ अधिकारी नियुक्त हैं। जिनमें एक सेनानी, दूसरा ग्रामणी अर्थात् एक सेनापति दूसरा नगराध्यक्ष हो। परन्तु ये समस्त अधिकार राजा को भी प्राप्त हैं अतः प्रत्येक ऋतु भी राजा का एक रूपान्तर है।

(१) 'मधु माधव'—तस्य (अग्नेः) रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानी-ग्रामण्यौ इति वासन्तिकौ तावृतू। श० ८। ६। १। १६ ॥ एतौ एव

वासन्तिकौ मासौ । स यद् वसन्ते ओषधयो जायन्ते वनस्पतय पच्यन्ते तेनोहैतौ मधुश्च माधवश्च ॥ श० ४ । ३ । १ । १४ ॥

(२) 'शुक्र', 'शुचि '— एतौ (शुक्रश्च शुचिश्च) एव ग्रैष्मौ मासौ । स यदे तयोर्बलिष्ठ तपति तेनोहैतो शुक्रश्च शुचिश्च । श० ४ । ३ । १ । ५ ॥ तस्य वायो रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ । इति ग्रैष्मौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १७ ॥

(३) 'नभ', 'नभस्यः'—तस्यादित्यस्य रथप्रोतश्चासमरथश्च सेनानी-ग्रामण्यौ इति वार्षिकौ तावृतू श० ८ । ६ । १ । १८ ॥ एतौ (नभश्च नभस्यश्च) एव वार्षिकौ मासौ अमुतो वै दिवा वर्षति तेनो हैतौ नभश्च नभस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १६ ॥

(४) 'इष ', ऊर्ज ' एतावेव शारदौ स यच्छरद्यूर्गस ओषधय पच्यन्ते तेनोहैताविषश्चोर्जश्च । श० ४ । ३ । १ । ६ ॥ तस्य तार्क्ष्य-श्चारिष्टनेमिश्च सेनानीग्रामण्यौ इति शारदौ तावृतू । श० ८ । ६ । १ । १८ ॥

(५) 'सह: ।', 'सहस्यः ।'—तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानी-ग्रामण्यौ हेमन्तिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । ७ ॥ एतौ एव हेमन्तिकौ स यद् हेमन्त इमा प्रजा सहसैव स्व वशमुपनयते तेनोहैतौ सहश्च सहस्यश्च । श० ४ । ३ । १ । १८ ॥

(६) 'तप ', 'तपस्य '— एतौ एव शैशिरौ स यदेतयोर्बलिष्ठं श्यायति तेनो हैतौ तपश्च तपस्यश्च श० ४ । ३ । १ । १६ ॥

संवत्सर के अशों और प्रजापालक राजा के नियत पदाधिकारी पुरुषों की तुलना को साथ दिये मानचित्र से देखें ।

ऋतु नाम	मास नाम	विशेष नाम	पद नाम	सेनानी, ग्रामणी
१ वसंतः	चैत्र ..	मधुः	रथगृत्सः	सेनानीः .
	वैशाख	माधवः	रथौजा	ग्रामणीः .
२ ग्रीष्मः	ज्येष्ठः ...	शुक्रः .	रथस्वनः	सेनानी. ...
	आषाढ़ः	शुचिः ...	रथेचित्रः	ग्रामणीः . .
३ वर्षा·	श्रावणः .	नभः ...	रथप्रोतः	सेनानीः ..
	भाद्र ..	नभस्यः...	असमरथ·	ग्रामणीः ...
४ शरद्	आश्विनः(कुमारः)	इषः ...	तार्क्ष्य· ...	सेनानीः ...
	कार्तिकः	ऊर्जः ...	अरिष्टनेमिः	ग्रामणीः .
५ हेमन्तः	मार्गशीषः	सहः ...	सेनजित् ..	सेनानीः ..
	पौषः ..	सहस्यः...	सुषेणः...	ग्रामणीः ..
६ शिशिर.	माघः ...	तपः .	.....	.....
	फाल्गुनः ...	तपस्यः...		
७	मलमास ..	अहंसस्पतिः	. ...	.

अप्सरा नाम, संकेत		हेतिः, प्रहेतिः		दिशा	नेतारौ
पुंजिकस्थला	सेना	दन्दशूकपशु.	हेति	पूर्वा	अग्नि
क्रतुस्थला	समिति.	पौरुषेयवध.	प्रहेति		हरिकेश
मेनका	द्यौः	यातुधाना	हेति	दक्षिणा	विश्वकर्मा
सहजन्या	पृथिवी	रक्षांसि	प्रहेतिः		वायु.
प्रम्लोचन्ती	अह	व्याघ्रा	हेति.	पश्चिमा	विश्वव्यचाः
अनुम्लोचन्ती	रात्रि	सर्पा	प्रहेति		आदित्य.
विश्वाची	वेदि	आप·	हेति	उत्तरा	सयद्वसु
घृताची	स्रुक्	वात.	प्रहेति		यज्ञ
उर्वशी	आहुति.	अवस्फूर्जन्		उपरि	अर्वाग्वसु
पूर्वचित्ती	दक्षिणा	विद्युत्	.. ...		पर्जन्य
...	.	.	.. ..	अध.	. ...
.. ...	.. ..	.....		मध्यं	......

इन्द्राग्नीऽ आगतᳬसुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् । अस्य पातं धियेषिता । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राग्निभ्यां त्वैष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा ॥ ३१ ॥ ऋ० ३ । १२ । १ ॥

विश्वामित्र ऋषि । इन्द्राग्नी देवते । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र ! सेनापते ! और हे अग्ने ! अग्रणी नेत. ! विद्वन् ! आप दोनों (सुतम्) अभिषिक्त हुए (गीर्भि) नाना वाणियो, स्तुतियो द्वारा या प्रजा या अधिक सभासदो की सम्मतियों द्वारा (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ (नभ) सबको एक सूत्र मे बांधने वाले अथवा आदित्य के समान तेजस्वी इस पुरुष के समीप (आगतम्) प्राप्त होओ और उसके अधीन रहकर (धिया) अपनी प्रज्ञा या कर्म, कर्त्तव्य द्वारा (इषिता) प्रेरित होकर (अस्य) इसके आज्ञा का (पातम्) पालन करो। उसको अपना राजा स्वीकार करो। (उपायामगृहीत असि) हे पुरुष ! तू राज्य की व्यवस्था द्वारा बद्ध है। (त्वा इन्द्राग्नीभ्याम्) तुझको इन्द्र और अग्नि दोनो के पद पर शासन करने के लिये नियुक्त करता हूं। (एष· ते योनि.) यह तेरा आश्रय स्थान या पद है। (त्वा) तुझको मैं (इन्द्राग्निभ्याम्) इन्द्र और अग्नि दोनो के अधिकार पदों के लिये नियुक्त करता हूं। शत० ४ । ३ । १ । २३–२४ ॥

[1] आ घा ये ऽअग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् । येषामिन्द्रो युवा सखा । [2] उपयामगृहीतोऽस्यग्नीन्द्राभ्यां त्वैष ते योनिरग्नीन्द्राभ्यां त्वा ॥ ३२ ॥ ऋ० ८ । ४५ । १ ॥

त्रिशोक ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । (१) आर्षी गायत्री । षड्जः ।
(२) उष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष (घ) नित्य (अग्निम् इन्धते) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को प्रदीप्त करते, अधिक बलवान् करते हैं और

जो (आनुषक्) पदों के क्रम से (बर्हि.) आसनों को (आस्तृणन्ति) योग्य पुरुषों के लिये बिछाते हैं। (येषाम्) जिनका (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा (युवा) सदा तरुण, सदा उत्साही, नित्य बलशाली, (सखा) मित्र है वे (आनुषक्) राजा के अधीन उसके अनुकूल रहकर क्रम से, उत्तरोत्तर क्रम से (बर्हि. स्तृणन्ति) योग्य पदों को योग्य आसन देते हैं। (उपयामगृहीत. असि० इत्यादि) पूर्ववत्।

[1]ओमा॑सश्चर्षणीधृतो॒ विश्वे॑ देवास॒ आग॑त। दा॒श्वाᳬसो॑ दा॒शुषः॑ सु॒तम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्य॑ ए॒ष ते॒ योनि॒र्विश्वे॑भ्यस्त्वा दे॒वेभ्यः॑ ॥ ३३ ॥ ऋ० १ । ३ । ७ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। विश्वे देवा देवता. । (१) आर्षी गायत्री । षड्जः । (२) आर्ची बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् पुरुषो! अधिकारी राजगण! आप लोग (ओमास.) राष्ट्र के रक्षक और (चर्षणीधृत) समस्त मनुष्यों को नियम मे या व्यवस्था में रखने वाले हो। आप लोग (दाशुष) अपने को अन्न, धन आदि देने वाले राजा के प्रति (दाश्वास) उसको बल, ऐश्वर्य देने वाले हो। आप लोग (सुतम्) सुत, अर्थात् अभिषिक्त राजा के अधीन (आगत) आओ। हे पुरुष, तू (उपयामगृहीत) राज्य व्यवस्था द्वारा बद्ध है। (त्वा) तुझको (विश्वेभ्य. देवेभ्य) समस्त देवों, विद्वानों, अधिकारी राजाओं के लिये सर्वोपरि नियुक्त करता हू। (ते एष. योनि) तेरा यह उच्च पद है। (विश्वेभ्य देवेभ्य. त्वा) समस्त देवों, विद्वानों की रक्षा के लिये तुझे नियुक्त करता हू। शत० ४ । ३ । १ । २७ ॥

विद्वानों के पक्ष मे—सोम=शिष्य के प्रति। हे विद्वान पुरुषो! आप लोग आओ, उसे शिक्षा दे। और हे शिष्य (उपयाम गृहीत) तू नियम में बद्ध होकर उनके अधीन है। वे विद्वान ही उसके आश्रय हों।

[1]विश्वे देवास ऽआगत शृणुता ऽम इमꣳ हवम्। एदं बर्हिर्निषीदत। [2] उपयामगृहीतोऽसि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ३४ ॥ ऋ० २ । ४१ । १३ ॥

गृत्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । (१) आर्षी गायत्री षड्जः । (२) निचृदार्ष्युष्णिक । ऋषभः ॥

भा०—हे (विश्वेदेवासः) समस्त विद्वान् देवगण ! प्रजाजनो ! आप लोग (आगत) आओ । (मे) मेरा (इदं हविम्:) इस अभ्यर्थना को (शृणुत) सुनो । (उपयामगृहीतः असि० इत्यादि) पूर्ववत् ।

[1]इन्द्र मरुत्व ऽ इह पाहि सोमं यथा शार्य्याते ऽअपिबः सुतस्य। तव प्रणीती तव शूर शर्म्मन्नाविवासन्ति कवयः सुयज्ञाः। [2]उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा ऽमरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३५ ॥ ऋ० ३ । ५१ । ७ ॥

प्रजापतिरिन्द्रो देवता । (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (मरुत्वः इन्द्र) समस्त मरुद्गण अर्थात् प्रजागण या सैन्य के स्वामी इन्द्र ! सेनापते ! (इह) इस अवसर पर भी (सोमम्) सर्वप्रेरक राजा को (पाहि) रक्षा कर, या उसको स्वीकार कर जिस प्रकार (शार्याते) बाणोंद्वारा शत्रु पर आक्रमण करने के अवसर पर भी (सुतस्य अपिबः) सुत अर्थात् राजा के पद को स्वीकार किया था । हे (शूर) शूरवीर पुरुष ! तेरी (प्रणीती) उत्कृष्ट नीति से और (तव शर्मन्) तेरी शरण में (सुयज्ञाः) उत्तम यज्ञशील, ईश्वरोपासक, या उत्तम दान शील, या उत्तम राष्ट्रपति, या उत्तम संग्रामकारी योद्धा लोग और (कवयः) क्रान्तदर्शी ऋषि, महर्षि, विद्वान् पुरुष (आ विवासन्ति) रहें, तेरी आज्ञा का पालन करें । हे शूरवीर पुरुष ! (उपयामगृहीतः असि) राज्यव्यवस्था द्वारा तुझे नियुक्त किया जाता है । (इन्द्राय मरुत्वते) प्रजाओं के या वायु के समान

तीव्र सैनिकों के स्वामी पद के लिये (त्वा) तुझे नियुक्त करता हूं। (एष ते योनिः) यह तेरा आश्रयस्थान और पद है। (इन्द्राय मरुत्वते) प्रजाओं और वीर सुभटों के स्वामी पद के लिये तुझे स्थापित करता हूं। शत० ४। ३। ३। १-१३॥

'शार्याते'—शर्या अंगुलयः। शर्या इषवः। शॄ हिंसायाम् (क्र्यादिः) शृणाति पापान्। इति देवराजः। शर्याभिः बाणैरतन्ति यस्मिन् तत् शार्यातम् युद्धकर्म। अथवा शर्याभिः निवृत्तानि कर्माणि शार्याणि तान्यतति व्याप्नोति स शार्यातस्तस्मिन्, इति दयानन्दः।

यहां 'शार्यात' शब्द से महीधर ग्रीफिथ आदि का असंगत है, क्योंकि मनु के पुत्र शर्याति के पुत्र का ग्रहण करना शतपथादि में भी उसका उल्लेख नहीं है॥

[१]म॒रुत्व॑न्तं वृष॒भं वा॑वृधा॒नमक॑वारिं दि॒व्यꣳ शा॒समिन्द्र॑म्। वि॒श्वा॒साह॒मव॑से॒ नूत॑नायो॒ग्रꣳस॑हो॒दामि॒ह तꣳ हु॑वेम। [२]उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽसीन्द्रा॑य त्वा म॒रुत्व॑तऽए॒ष ते॒ योनि॒रिन्द्रा॑य त्वा म॒रुत्व॑ते। [३]उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि म॒रुतां॒ त्वौज॑से॥ ३६॥ ऋ० ३। ४७। ५॥

विश्वामित्र ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। (१) विराड् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः। (२) आर्षी उष्णिक्। (३) साम्नी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(मरुत्वन्तम्) मरुद्गण, प्रजाओं और वीर सुभटों के स्वामी (वृषभम्) स्वयं सर्वश्रेष्ठ, सब सुखों के वर्षक, (वावृधानम्) सबको बढ़ानेवाले और स्वयं बढ़ानेवाले, वृद्धिशील, उदयशील, विजिगीषु (अकवारिम्=अकव-अरिम्, अक वारिम्) अकव अर्थात् अधर्मात्मा के शत्रु, अथवा अक=दुःखों के वारण करनेवाले (दिव्यम्) दिव्य गुणवान्, तेजस्वी, (विश्वासाहम्) समस्त शत्रुओं के विजयी, (सहोदाम्) बलपूर्वक दमन करने में समर्थ (शासम्) शासनकारी (तम्) उस पुरुष

को हम (इह) इस अवसर पर (इन्दम् हुवेम) इन्द्र सेनापति या इन्द नाम से (हुवेम) बुलाते हैं। (उपयामगृहीत असि इन्द्राय त्वा मरुत्वते। एष. ते योनि । इन्द्राय त्वा मरुत्वते) इति पूर्ववत्। (उपयामगृहीत असि) तू राज्य की व्यवस्था द्वारा बद्ध है। (त्वा) तुझको (मरुताम्) वायु के समान तीव्र गतिशील सुभटों के और प्रजाओं के (ओजसे) ओज, पराक्रम के कार्य के लिये नियुक्त करता हूं ॥ शत० ४ । ३ । ३ । १४ ॥

¹सुजोपाऽइन्द्र सगणो मुरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान्। जुहि शत्रूँ१॥ रप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः। ²उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मुरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३७ ॥ ऋ० ३ । ४७ । २ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । मरुत्वान् इन्द्रः प्रजापतिर्देवता । (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् । (२) प्राजापत्या त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—(सजोषाः) सबको समान भाव से प्रेम करनेवाले (मरुद्भिः सगणः) वायुओं के समान तीव्र गतिमान् सैनिकों के गणों से युक्त होकर हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् सेनापते ! हे (शूर) शूरवीर ! आप (विद्वान्) ज्ञानवान्, सब शत्रु के कल, बल, छल को जानते हुए (वृत्रहा) नगरों को घेरनेवाले शत्रुओं का नाश करके (सोमं) सोम अर्थात् राज्य के उत्तम पद को (पिब) पान कर, स्वीकार कर और तू (शत्रून् जहि) शत्रुओं को नाश कर। (मृधः) संग्रामों को या संग्रामकारी शत्रु सेनाओं को (अप नुद) मार भगा। और (नः) हमें (विश्वत.) सब तरफ़ से (अभयम्) भयरहित (अथ कृणुहि) कर। (उपयाम० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

¹मुरुत्वाँ२॥ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधम्मदाय। आसिञ्चस्व जुठरे मद्ध्व ऊर्मिं त्वꣳ राजासि प्रतिपत्सुतानाम्।

[२]उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा मरुत्वत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा मरुत्वते ॥ ३८ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । मरुत्वान् इन्द्र प्रजापतिर्देवता । (१) निचृदार्षी त्रिष्टुप् ।
(२) प्राजापत्या त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! सेनापते ! (मरुत्वान्) उत्तम प्रजा और सेनाओं का स्वामी (वृषभ) सर्वश्रेष्ठ, बलवान् या शत्रुओं पर शर-वर्षा करनेवाला तू (अनुस्वधम्) अपनी धारणशक्ति के अनुसार (मदाय) सबको सन्तुष्ट या हर्षित करने के लिये (रणाय) संग्राम के लिये (सोमम्) 'सोम' ओषधि रस के समान बलकारी राजा के अधिकार को (पिब) पान कर, स्वीकार कर । (जठरे) पेट में जिस प्रकार (मध्व ऊर्मिम्) अन्न के खालेने पर बल उत्पन्न होता है उसी प्रकार तू अपने (जठरे) जठर अर्थात् वश में (मध्वः) अन्न और शत्रु के दमन सामर्थ्य के (ऊर्मिम्) उद्योग को (आ सिञ्चस्व) प्रवाहित कर । (त्वम्) तू (सुतानाम्) राज्य के समस्त अंगों के (प्रतिपत्) प्रत्येक पद पर (राजा असि) राजा रूप से विद्यमान है । (उपयामगृहीत ०इत्यादि) पूर्ववत् ॥

[१]महाँ२ऽ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः । अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् । [२]उपयामगृहीतोऽसि महेन्द्राय त्वैष ते योनिर्महेन्द्राय त्वा ॥ ३९ ॥

ऋ० ६ । १९ । १ ॥

भरद्वाज ऋषिः । महेन्द्र प्रजासेनापतिर्देवता । (१) भुरिक् पङ्क्ति, पञ्चमः ।
(२) साम्नी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(महान् इन्द्रः) महान् ऐश्वर्यवान् राजा (नृवत्) नेता पुरुषों का स्वामी अथवा नेता के समान (आचर्षणीप्राः) समस्त लोकों और प्रजाजनों को पूर्ण करने वाला (उत) और (द्विबर्हाः) दोनों प्रजा और

राजा के अधीन शासकजन दोनों को बढ़ानेवाला या दोनों का स्वामी (सहोभिः अमिन) अपने शत्रु-दमनकारी सामर्थ्यों और बलो से अमित पराक्रमी (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति कृपालु होकर (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त हो। वह (वीर्याय) वीर्य के अधिक होजाने से ही (उरुः) विशाल (पृथुः) विस्तृत राज्यवाला और (कर्तृभि) उत्तम कार्यकर्त्ताओ के सहाय से (सुकृत.) उत्तम राज्य कार्यकर्त्ता (भूत्) हो। हे राजन्! तू (उपयामगृहीत. असि) राज्य के समस्त नियमो द्वारा बद्ध है। (त्वा) तुझको (महेन्द्राय) महेन्द्र पद के लिये नियत करता हूं। (एष ते योनि) यह तेरा आसन है। (त्वा महेन्द्राय) तुझे महेन्द्र पद के लिये स्थापित करता हूं॥ शत० ४। ३। ३। १८॥ उक्त मन्त्र परमेश्वर पक्ष में स्पष्ट है।

[१]म॒हाँ२ऽ इन्द्रो॒ यऽओज॑सा प॒र्जन्यो॑ वृष्टि॒माँ२ऽ इ॑व। स्तोमै॑र्व॒त्सस्य॑ वावृधे। [२]उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि मह॒न्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्मह॒न्द्राय॑ त्वा॥ ४०॥ ऋ० ८। ६। १॥

वत्स ऋषिः। इन्द्रः प्रजापतिर्देवता। (१) आर्षी गायत्री। (२) विराड् आर्षी गायत्री। षड्ज॥

भा०—(य) जो (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजा (ओजसा) बल से (महान्) महान् है। और (पर्जन्यः इव) मेघ के समान (वृष्टिमान्) प्रजा पर अत्यन्त सुख सम्पत्तियों की वर्षा करनेवाला है। वह (वत्सस्य) अपने राज्य में वसनेवाला, पुत्र के समान प्रजा के किये (स्तोमैः) स्तुति-गुणानुवादों, अथवा संघों द्वारा (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है। (उपयामगृहीत. असि० इत्यादि) पूर्ववत्॥

परमेश्वर पक्ष में—वह बल में सबसे महान्, मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षक उसकी महिमा प्रजा की स्तुतियों से और भी बढ़ती है।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यꣳ स्वाहा ॥ ४१ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(त्यं) उस (जातवेदसम्) ऐश्वर्यवान् (देवम्) देव, राजा को (केतवः) ज्ञानवान् पुरुष भी (उद् वहन्ति) अपने ऊपर आदर से धारण करते उसको अपने सिरमाथे स्वामी स्वीकार करते हैं। उस (विश्वाय) समस्त कार्यों और प्रजाओं के (दृशे) दर्शन करने या कराने वाले साक्षीरूप (सूर्यम्) सूर्य के समान सर्वप्रेरक राजा को (स्वाहा) उत्तम कहा जाता है ॥

परमेश्वर पक्ष में—समस्त पदार्थों का दर्शन कराने के लिये जिस प्रकार (सूर्यम्) सूर्य को सर्वश्रेष्ठ कहते हैं और उसको (केतव) रश्मियें प्राप्त हैं, उसी प्रकार समस्त संसार को दर्शानेवाले उस परमेश्वर को भी सूर्य कहते हैं। समस्त (केतव) ज्ञान उसी परमेश्वर वेदों के उत्पत्ति स्थान को ही बतलाते हैं ॥ शत० ४ । ३ । ४ । ६ ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ४२ ॥

कुत्स ऋषिः । सूर्यो देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(देवानाम्) समस्त देवों, विद्वानों और राज्य के पदाधिकारियों में से यह राजा (चित्रम्) अति पूजन (अनीकम्) सर्वशिरोमणि, सब से मुख्य होकर (उद् अगात्) उदय को प्राप्त होता है। वह (मित्रस्य वरुणस्य अग्ने) मित्र वरुण और अग्नि इन पदाधिकारियों का भी (चक्षु) आंख के समान मार्ग दिखाने वाला या उनपर निरीक्षक रूप से नियुक्त है। वह (द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम्) द्यौ, पृथिवी और अन्तरिक्ष, राजा, प्रजा और

बीच के शासक सबको (आ अप्रा) पूर्ण करता है वह (सूर्य) सूर्य के समान सर्वप्रेरक तेजस्वी (जगतः) जगत् और (तस्थुष च) स्थावर पशु और जंगल, पर्वत, नगर आदि समस्त धनों का (आत्मा) आत्मा, अपनाने वाला स्वामी (स्वाहा) कहा जाता है ॥ शत० ४ । ३ । ४ । १० ॥

ईश्वर पक्ष मे—इस शरीर में आत्मा और ब्रह्माण्ड शरीर में परमात्मा (देवानाम् अनीकं) समस्त देवो, दिव्य शक्तियों में मुख्य (चित्रम्) सबका पूजनीय मित्र वरुण अग्नि, वायु, जल और आग सबका (चक्षुः) द्रष्टा और सबका प्रकाशक है । वह द्यौ, पृथ्वी, अन्तरिक्ष सबका पालक है । स्थावर और जंगम सबका आत्मा, सबका स्वामी, सब में व्यापक है । (स्वाहा) उसकी स्तुति करो । इस देह मे—आत्मा (देवानाम्) चक्षु आदि इन्द्रियों का (अनीकं) नेता । मित्र, वरुण प्राणापान और जाठर अग्नि का प्रवर्त्तक, शिर, मध्य और चरण भाग तीनो का पालक, पोषक गतिशील, अंग और स्थिर धातु सबका स्वामी है । वह 'आत्मा' कहाता है । उसको उत्तम रीति से ज्ञान करो ॥

अग्ने नयं सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ॥४३॥

ऋ० १ । १८९ । १ ॥ यजु० ५ । ३६ ॥

आंगिरस ऋषिः । अग्निरन्तर्यामी जगदीश्वरो वा देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान सबके प्रकाशक और अग्रणी या दुष्टों के तापदायक ! हे (देव) देव ! राजन् ! (अस्मान्) हमें (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (सुपथा) उत्तम मार्ग से (नय) ले चल । तू (विश्वानि वयुनानि) समस्त मार्गों और उत्कृष्ट ज्ञानों को (विद्वान्) जानता है । और (जुहुराणम्) कुटिलता कराने वाले (एनः) पाप

और पापी पुरुष को (अस्मत्) हम से (युयोधि) दूर कर। (ते) तेरे लिये हम (भूयिष्ठाम्) बहुत २ (नम) आदर युक्त (उक्तिम्) वचन (विधेम) प्रयोग करते हैं। (स्वाहा) जिससे तेरा उत्तम यश हो।

ईश्वर पक्ष में—हे अन्तर्यामिन्! स्वप्रकाश! देव! तू हमें सन्मार्ग से योग सिद्धि प्राप्त करने के लिये आगे बढ़ा। तू हमारे सब कर्म उत्कृष्ट ज्ञानों को जानता है। हमारे हृदय से कुटिल पाप को दूर कर। हम (स्वाहा) वेद-वाणी से तेरी बहुत २ स्तुति करते हैं॥ शत० ४। ३। ४। १२॥

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन्। अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा॥ ४४॥ यजु० ५। ३७॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५। ३७॥

रूपेण वो रूपमभ्यागां तुथो वो विश्ववेदा विभजतु। ऋतस्य पथा प्रेत चन्द्रदक्षिणा वि स्वः पश्य व्युन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः॥४५॥

प्रजापतिर्देवता। निचृज्जगती। निषादः॥

भा०—हे प्रजाओ और हे सेना के पुरुषो! (रूपेण) रूप अर्थात् चान्दी आदि मूल्यवान्, एवं प्रिय पदार्थ से (व) तुम्हारे (रूपम्) वास्तविक रूप, शरीर और उसमें विद्यमान तुम्हारे गुण या शिल्प को (अभि आगाम्) प्राप्त करता हूं। (विश्ववेदाः) समस्त धन ऐश्वर्य का स्वामी या सर्वज्ञ विद्वान् (तुथ) ज्ञानवृद्ध ब्राह्मण, (व) तुमको (विभजतु) नाना प्रकार से धन और ज्ञान का वितरण करे। अथवा (व विभजतु) तुमको वर्गों में विभक्त करे। तुम सब (ऋतस्य पथा) ऋत, सत्य-ज्ञान यज्ञ परस्पर संगत, सुव्यवस्था के मार्ग से (प्र इत) गमन करो। और (चन्द्रदक्षिणाः) चन्द्र, सुवर्ण और चाँदी आदि की दक्षिणा अर्थात्

अपने क्रिया के बदले वेतन प्राप्त करो। हे राजन्! तू (स्व) आकाश में विद्यमान् तेजस्वी सूर्य को (वि पश्य) विशेष रूप से देख अर्थात् उसके समान तेजस्वी शत्रुतापक होकर राजपद को जान और उसका पालन कर। और (अन्तरिक्षं विपश्य) अन्तरिक्ष को भी विशेष रूप से जान। अर्थात् अन्तरिक्ष जिस प्रकार समस्त पृथिवी पर आच्छादित रहता और वायु वृष्टि द्वारा सबको पालता है उस प्रकार पृथ्वी निवासी प्रजा का पालन कर। और (सदस्यैः) सभा के सदस्यों द्वारा (यतस्व) राज्य करने का उद्योग कर ॥ शत० ४।३।४।१४-१८ ॥

ब्राह्मणमद्य विदेयं पितृमन्तं पैतृमत्यमृषिमार्षेयꣳ सुधातुदक्षिणम्। अस्मद्राता देवत्रा गच्छत प्रदातारमाविशत ॥ ४६ ॥

विद्वांसो देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—मैं राजा (अद्य) इस राज्य-कार्य में (पितृमन्तम्) उत्तम पिता माता गुरुजनों से युक्त, (पैतृमत्यम्) उत्तम जितेन्द्रिय पितामह वाले, (ऋषिम्) स्वयं वेद मन्त्रों के द्रष्टा, (आर्षेयम्) ऋषियों के विज्ञान को जानने वाले, (सुधातुदक्षिणम्) उत्तम सुवर्ण आदि धातु की दक्षिणा प्राप्त करने योग्य (ब्राह्मणम्) ब्रह्म के ज्ञानी, विद्वान् पुरुष को मैं (विदेयम्) प्राप्त करूं। हे सेना और प्रजा के पुरुषो! आप लोग (अस्मद् राताः) हम से वेतन प्राप्त करके (देवत्रा) विद्वान् पुरुषों को या विद्वान् पुरुषों के पदों को (गच्छत) प्राप्त करो। और (प्रदातारम्) उत्कृष्ट, दानशील अधिकारी के (आविशत) अधीन होकर रहो ॥ शत० ४।३।४।१६-२० ॥

[१]अग्नये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीयायुर्दात्र ऽएधि मयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे [२] रुद्राय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय प्राणो दात्रऽएधि वयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे [३] बृह-

४६—ब्राह्मणो दक्षिणाश्च लिंगोक्ता देवता। सर्वा० ॥

स्पतये त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय त्वग्दात्रऽएधि मयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे [४] यमाय त्वा मह्यं वरुणो ददातु सोऽमृतत्वमशीय हयो दात्रऽएधि मयो मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे ॥ ४७ ॥

वरुणो देवता । (१) भुरिक् प्राजापात्या । (२) स्वराट् प्राजापत्या ।
(३) निचृदार्च्ची । (४) विराड् आर्षी जगती । निषाद ॥

भा०—राजा अपने अधीन पुरुषो को स्वर्णादि धन, गौ आदि पशु और वस्त्र और अश्व का प्रदान करता है। (वरुण) सर्वश्रेष्ठ, हमारे स्वय अपनी इच्छा द्वारा वृत राजा, स्वामी (त्वा) हे सुवर्ण आदि धन ! तुझे (मह्यम्) मुझ (अग्नये) अग्रणी नेता पदाधिकारी या अग्नि के समान शत्रुतापकारी पुरुष को (ददातु) प्रदान करे। (स.) वह मै (अमृतत्वम्) पूर्ण आयु को प्राप्त करूं। (दात्रे आयु) दाता की दीर्घ आयु हो। और (मह्यम् प्रातिगृहीत्रे) मुझ ग्रहण करने वाले को सुख हो। हे पशु और अन्न आदि भोग्य पदार्थ ! (वरुण त्वा मह्य रुद्राय) वरुण राजा मुझ रुद्र-स्वरूप शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुष को (ददातु) प्रदान करे। (स अमृतत्वम् अशीय) वह मैं अमृत अर्थात् पूर्ण आयु का भोग करू। (प्राण॰ दात्रे) दान करने वाले को प्राण, उत्तम जीवन बल प्राप्त हो। (मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे नम) मुझ ग्रहण करने वाले को सुख प्राप्त हो। (वरुणः) राजा वरुण (त्वा) तुझ वस्त्र को (मह्यं बृहस्पतये ददातु) बृहस्पति, वेदवाणी के पालक, विद्वान् को प्रदान करे। जिसे मैं (अमृतत्वम् अशीय) अमृत, पूर्ण आयु का भोग करू। (त्वग् दात्रे एधि) दानशील, दाता को आवरणकारी वस्त्र आदि समस्त पदार्थ प्राप्त हों। (मह्यम् प्रतिग्रहीत्रे मय एधि) मुझे स्वीकार करने वाले को सुख प्राप्त हो। (वरुण) सर्वश्रेष्ठ राजा (मह्य यमाय) मुझ राष्ट्रनियन्ता को हे अश्व ! तुझे (ददातु) प्रदान करे। मैं (अमृतत्वम् अशीय) अमृतत्व या जीवन के सुख को

प्राप्त करूं। (हयः दात्रे एधि) दानशील पुरुष को घोड़े प्राप्त हों। (मह्यं प्रतिग्रहीत्रे मयः) मुझ प्राप्ति स्वीकार करने वाले को सुख हो ॥ शत० ४ । ३ । ४ । २८-३१ ॥

ईश्वर और आचार्य पक्ष में—अग्नि अर्थात् वसु नाम ब्रह्मचारी को आयु प्रदान करे। रुद्र को प्राण का बल दे। बृहस्पति वेदवक्ता को त्वचा की सहनशीलता प्रदान करे और यम, ब्रह्मचारी को (हयः) उत्कृष्ट ज्ञान का उपदेश करे। जिससे ग्रहण करने वालों को सुख हो और दान देने वाले की वे शक्तियां और बढ़ें ॥

कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥ ४८ ॥

कामः आत्मा देवता । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—[प्रश्न] (क अदात्) कौन देता है ? और (कस्मै अदात्) किसको देता है ? [उत्तर] (कामः अदात्) कामना करनेवाला, अपने मनोरथ पूर्ण करने का इच्छुक स्वामी (अदात्) अपने अधीन पुरुषों को द्रव्य, अन्न आदि प्रदान करता है। और (कामाय) उस नियत द्रव्य को लेने के अभिलाषी पुरुष को ही वह प्रदान करता है। वस्तुत (काम. दाता) मनोरथ या आवश्यकता वाला पुरुष ही प्रदान करता है। (कामः) इच्छुक या आवश्यकता वाला ही (प्रतिग्रहीता) उस दिये धनको लेता है। (एतत्) यह सब लेन देन का कार्य हे (काम) अभिलाषी ! हे सकल्प ! हे इच्छा ! (ते) तेरा ही है ॥ शत० ४ । ३ । ४ । ३२-३३ ॥

ईश्वर पक्ष में—(क अदात् कस्मै अदात्) कौन ? किसको देता है ? (काम. कामाय अदात्) महान् कमनीमय, संकल्पमय परमेश्वर संकल्पकारी इच्छावान् जीव को कर्मफल देता है। सबकी कामना का विषय परमेश्वर भी 'काम' है वही दाता है। और कामनावान् 'काम' जीव

प्रतिग्रहीता लेनदार है। हे काम ! जीव ! (एतत्) यह वेदाज्ञा तभी तुझ जीव के लिये ही देता हू। विवाहादि में स्त्री पुरुष एक दूसरे को अपने आप समर्पण करते हैं। वहा भी लेने की इच्छावाला लेता, देने को इच्छा वाला अभिलाषुक प्रेमी देता है। इत्यादि स्पष्ट है। समस्त लेन देन पारस्परिक लेन देन की इच्छा या कामना से ही है। अन्यथा नही ॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

[तत्र अष्टाचत्वारिंशदृचः]

इति मीमासातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तमोऽध्यायः ॥

अथाष्टमोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ उपयामगृहीतोऽस्यादित्येभ्यस्त्वा विष्णाऽ उरुगायैष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन् ॥ १ ॥

बृहस्पतिः सोमो विष्णुर्वा देवता । आर्षी पक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! राजन् ! तू (उपयामगृहीतः असि) राज्य-नियम द्वारा बद्ध है । (त्वा) तुझको (आदित्येभ्य.) आदित्य के समान तेजस्वी विद्वानो, ब्राह्मणों और प्रजाओं के लिये नियुक्त करता हूं । हे (विष्णो) विष्णो ! राष्ट्र में व्याप्त शासनवाले ! हे (उरुगाय) महान् कीर्त्ति वाले ! (एष) यह (सोम) राजा का पद या राष्ट्र (ते) तेरे अधीन है । (तम्) उसकी रक्षा कर । हे सोम राजन् ! ये आदित्यगण तेजस्वी पुरुष (त्वा) तुझको (मा दभन्) विनाश न करें ॥ शत० ४ । ३ । ५ । ६ ॥

'आदित्याः'—आदित्याः वै प्रजाः । तै० १ । ८ । ८ । १ ॥ एते वै खलु वादित्या यद् ब्राह्मणा । तै० १ । १ । ६ । ८ ॥

गृहस्थपक्ष में—हे पुरुष ! तू (उपयामगृहीतः) विवाह द्वारा मुझ स्वय वर कन्या द्वारा स्वीकृत है । तुझे आदित्य के समान तेजस्वी पुत्रों के लिये वरण करती हूं । हे (विष्णो) विद्यादि गुणों में प्रविष्ट ! अथवा तुझमे गृहस्थरूप से प्रविष्ट पते ! (एष ते सोमः) यह पुत्र गर्भ आदि में स्थित तेरा ही है, इसको रक्षा कर । (मा त्वा दभन्) तुझे काम आदि व्यसन न सतावे ॥

१—विष्णुर्देवता । सर्वा० ॥

कुदा चुन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे । उपोपेन्नु मघवुन्भूयु ऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यतऽ आदित्येभ्यस्त्वा ॥ २ ॥

ऋ० ८ । ५१ । ७ ॥

गृहपतिर्मघवा इन्द्रो देवता । भुरिक् पक्ति । पञ्चम. ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! तू (कदाचन) कभी भी (स्तरी.) प्रजा का हिंसक (न असि) नहीं है। और (दाशुषे) दानशील कर-प्रदाता के दिये कर को तू (सश्चसि) स्वीकार करता है । हे (मघवन्) उत्तम धनैश्वर्यसम्पन्न ! (ते देवस्य) तुझ देव दानशील का (दानम्) दिया हुआ दान (उप उप इत् नु) अति समीप और (भूय. इत्) बहुत अधिक (पृच्यत) हमें प्राप्त होता है । (आदित्येभ्य त्वा) तुझको मैं आदित्यों के समान तेजस्वी पुरुषों या आदान प्रतिदान करनेवाले वैश्य लोगों की रक्षा के लिये नियुक्त करता हू ॥ शत० ४ । ३ । ५ । ११ ॥

गृहस्थपक्ष में—हे इन्द्र पते ! आप (स्तरी) कभी अपने भावों को नहीं छिपाते । आत्मसमर्पण करनेवाले को प्राप्त होते हैं । आप विद्वान् का दिया दान ही सदा मुझे प्राप्त हो । आपको मैं वरती हू ॥

कुदा चुन प्रयुच्छस्युभे निपासि जन्मनी । तुरीयादित्यु सवनन्त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिव्यादित्येभ्यस्त्वा ॥ ३ ॥

आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृदार्षी पक्ति । पञ्चमः ॥

भा०—हे (आदित्य) आदित्य ! सूर्य ! जिस प्रकार भूमि से जल अपनी रश्मियों से ग्रहण करके पुन मेघरूप से भूमि पर ही बरसा देता है उसी प्रकार प्रजाओं से करादि लेकर प्रजा के उपकार में लगानेहारे आदित्य ब्रह्मचारिन् ! तू (कदाचन) भिक्षा आदि में भी कभी क्या (प्रयुच्छसि)

२—ऋ० वाल० ३ । ७ ॥

३—'०मानस्था अमृत' इति काण्व० । ऋ० वालखिल्ये ४ । ७ ॥

प्रमाद करे ? नहीं । तू कभी प्रमाद मत कर । तू (उभे) दोनों (जन्मनी) जन्मों को (निपासि) पालन कर । हे (तुरीय) तुरीय ! सबसे अधिक उच्च, सबसे तीर्णतम ! चतुर्थ आश्रमवासिन् ! (आदित्य) आदित्य के समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते) तेरा (सवनम्) सबको प्रेरणा करने वाला या उत्पन्न करनेवाला या ऐश्वर्यवान् (इन्द्रियम्) इन्द्रिय या वीर्य (दिवि) प्रकाशमय ज्ञान, मनन में (अमृतं) अमृत, अविनाशी, अखण्डरूप में (आ तस्थौ) स्थिर हो । (त्वा) तुझको (आदित्येभ्य) समस्त आदित्यों अर्थात् ज्ञानी पुरुषों के मुख्य पद पर अभिषिक्त करता हूं ॥ शत० ४ । ३ । ५ । १२ ॥

उभे जन्मनी—दोनों जन्म एक माता के गर्भ से दूसरा आचार्य के गर्भ से । आदित्य पद पर ऐसे पुरुष को अभिषिक्त करे जो द्विज हो, चतुर्थाश्रमसेवी और अखण्ड ब्रह्मचारी हो ॥ शत० ४ । ३ । ५ । १२ ॥

गृहाश्रम पक्ष में स्त्री कहती है—हे पते ! (त्वं कदा च न प्रयुच्छसि) तू कभी प्रमाद मत करे तो (उभे जन्मनी निपासि) भूत और भविष्यत् दोनों जीवनों को बचा सकेगा । (यदि ते सवनम् इन्द्रियम् आतस्थौ) यदि तेरा उत्पादक इन्द्रिय प्रजननाङ्ग वश में रहा तो (आदित्येभ्यः त्वा) आदित्य समान पुत्रों या १२ मासों अर्थात् सदा के लिये तुझे वरती हूं ॥

यज्ञो देवानां प्रत्यैति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः । आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादᳪहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥ ४ ॥

कुत्स ऋषिः । आदित्यो गृहपतिर्देवता । निचृत् जगती । निषादः ॥

भा०—(देवानां यज्ञः) देव, विद्वान् पुरुषों का संग या गृहस्थयज्ञ (सुम्नम् प्रति एति) सुख प्राप्त कराता है । हे (आदित्यासः) आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग (मृडयन्तः भवत) सबको सदा सुख

देनेहारे बने रहो। (व.) आप लोगों की वह (सुमति.) शुभमति (अर्वाची) हमारे प्रति (आ ववृत्यात्) अनुकूल बनी रहे। (या) जो (अहोः चित्) पापी पुरुष को भी (वरिव· वित्तरा) अति अधिक ऐश्वर्य या सुखलाभ करानेवाली (असत्) होती है। हे राजन्! या हे सोम! (त्वा आदित्येभ्य.) तुझे मैं ऐसे आदित्य अर्थात् तेजस्वी पुरुषों की रक्षा के लिये नियुक्त करता हूं। या हे पते! तुझे मैं १२ मासों के लिये वरती हूं॥ शत० ४।३।५।१५॥

[1]विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व। [2]अदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः। पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे॥ ५॥

गृहपतयो देवता·। (१) प्राजापत्याऽनुष्टुप्। गान्धारः। (२) निचृदार्षी। निषाद॥

भा०—हे (विवस्वन्) विविध स्थानों पर निवास करनेहारे या विविध ऐश्वर्यों के स्वामिन्! हे (आदित्य) आदित्य के समान तेजस्विन्! राजन्! पुरुष! (एष.) यह (ते सोमपीथ.) तेरा सोमपद का पालन करने का कर्त्तव्य है। (तस्मिन्) तू उसमें ही (मत्स्व) आनन्द प्रसन्न रह। हे (नर) नेता पुरुषो! (अस्मै वचसे) इसके वचन में (अत् दधातन) सत्य और श्रद्धा बुद्धि को धारण करो। (यत्) जिसके आश्रय पर (आशीर्दा) आशीर्वाद देनेवाले (दम्पती) पति पत्नी भी (वामम्) सुख को (अश्नुत) भोगते हैं। और (पुमान् पुत्र जायते) पुमान्, वीर पुत्र उत्पन्न होता है. (वसु विन्दते) वह ऐश्वर्य प्राप्त करता है। और (विश्वहा) सदा, नित्य (अरपः) पाप रहित निर्विघ्न (गृह) गृह में (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है॥ शत० ४।३।५।१७-२४॥

५—'विवस्वा २ आ०' इति काण्व०॥

गृहस्थ के पक्ष में — हे गृहाश्रमिन् ! (एष ते सोमपीथ) यह गृहाश्रम पालन ही तेरा सोम समान आनन्द रस के पान के बराबर है। तू इसमें सुख से रह। हे पुरुषो ! तुम इसके वचन को आदर से सुनो। जिसमें आशीर्वाद देनेवाले स्त्री पुरुष सुख से रहते हैं, उस गृह में पुमान् पुत्र उत्पन्न होता है, ऐश्वर्य प्राप्त करता है और निर्विघ्न बढ़ता है।

वामम॒द्य स॑वितर्वा॒मम॒ श्वो दि॒वे दि॑वे वा॒मम॒स्मभ्य॑ꣳ सावीः। वा॒मस्य॒ हि क्षय॑स्य देव॒ भूरे॑र॒या धि॒या वा॑म॒भाज॑ः स्याम ॥ ६ ॥

ऋ० ६ । ७१ । ३ ॥

गृहपतयः सविता वा देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—हे (सवित) ऐश्वर्य के उत्पादक! सवितः ! (अद्य) आज (वामम्) प्राप्त करने योग्य उत्तम सुख (सावी) उत्पन्न कर। (ऊँ श्व. वामम् सावीः) और आगामी दिन, कल भी उत्तम सुख को उत्पन्न करो और (अस्मभ्यं) हमारे लिये (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वामम्) भोग करने योग्य उत्तम पदार्थ उत्पन्न कर। (हि) जिससे (वामस्य) सुन्दर, उत्तम (भूरेः) बहुत ऐश्वर्यों से युक्त (क्षयस्य) परम निवासगृह के बीच के हे (देव) देव ! राजन् ! हम (अया धिया) इस उत्तम बुद्धि से ही (वामभाज स्याम) सब उत्तम सुखों का भोग करनेवाले हों ॥ शत० ४ । ४ । १–२६ ॥

'सविता'—सविता वै प्रसवानामीशे। कौ० ५ । २ ॥ प्रजापतिर्वै सविता। तां० १६ । ५ । १७ ॥ प्रजापतिः सविता भूत्वा प्रजा असृजत। तै० १ । ६ । ४ । १ ॥ सविता राष्ट्रं राष्ट्रपति.। तै० २ । ५ । ७ । ४ ॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि सावि॒त्रोऽसि चनो॒धाश्च॑नो॒धा अ॑सि॒ चनो॒ मयि॑ धेहि। जिन्व॑ य॒ज्ञं जिन्व॑ य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य दे॒वाय॑ त्वा सवि॒त्रे ॥ ७ ॥

भरद्वाज ऋषि। सविता देवता। विराड् ब्राह्मी अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

७—०चनोधाश्चनो मयि०, भगाय सवित्रे त्वा '; इति काण्व० ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (उपयामगृहीतः असि) राज्य के नियम व्यवस्था द्वारा बद्ध है । तू (सावित्र.) सविता के पद पर स्थित (चनोधा. असि) अन्न समृद्धि को देने और सूर्य के समान ही धारण पोषण करने हारा है, क्योंकि तू (चनोधा. असि) अन्न को धारण पोषण करता है । तू (मयि) मुझे भी (चनः) अन्न (धेहि) प्रदान कर । (यज्ञं जिन्व) तू अन्न से यज्ञ राष्ट्र को तृप्त कर (यज्ञपतिम्) राष्ट्रपति को भी (जिन्व) तृप्त कर । (भगाय) समस्त ऐश्वर्यमय (देवाय) देव (सवित्रे) सविता के पद के लिये (त्वा) तुझको नियुक्त करता हूं ॥ शत० ४ । ४ । १ । ६ ॥

गृहस्थ पक्ष में—हे पुरुष ! तुझे मैं स्त्री उपयाम=विवाह द्वारा स्वीकार करती हूं । तू सावित्र अर्थात् प्रजा के उत्पादक या परमेश्वर के उपासक या स्वयं सविता सूर्य के समान तेजस्वी है । तू अन्न समृद्धि का धारक है । तू गृहस्थ यज्ञ को पुष्ट कर । सविता रूप तुझे अर्थात् सन्तानोत्पादक पति पद के लिये वरती हूं ।

[१] उपयामगृहीतोऽसि [२] सुशर्मासि सुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः । विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यऽ एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः ॥ ८ ॥

विश्वेदेवा देवता । (१) प्राजापत्या गायत्री । षड्जः । (२) निचृदार्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—(उपयामगृहीत असि) हे पुरुष तू राज्यव्यवस्था द्वारा बद्ध है । हे योग्य पुरुष ! राजन् ! तू (सुशर्मा असि) तू उत्तम सुखकारी आश्रय या गृह और शरणों वाला है । और (सुप्रतिष्ठान) शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में उत्तम रीति से प्रतिष्ठित हुआ है । (बृहद्-उक्षाय) महान् विश्व के भार के वहन या सचालन करने वाले प्रजापति के समान बड़े राष्ट्र के कार्य भार को उठाने वाले तुझे (नमः) आदर प्राप्त हो, अथवा तुझे नमनकारी बल प्राप्त हो । (त्वा) तुझको (विश्वेभ्यः देवेभ्य.) समस्त देव,

विद्वान् पुरुषों की रक्षा के लिये करता हूं। (एषः ते योनि) यह तेरा स्थान या पद है। (विश्वेभ्यः देवेभ्य त्वा) समस्त देव अर्थात् विद्वान् पुरुषो के लिये तुझको 'विश्वेदेव' पद पर नियुक्त करता हूं ॥ शत० ४। ४। १। १४ ॥

गृहस्थ पक्ष में—पुरुष विवाह द्वारा बद्ध हो। वह उत्तम गृह और प्रतिष्ठावान् हो। (बृहदुक्षाय) वीर्यसेचन में समर्थ उसको (नमः) आदर एवं अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हों। समस्त विद्वानों के लिये मैं स्त्री तुझे वरती हूं।

¹ उपयामगृहीतोऽसि ² बृहस्पतिसुतस्य देव सोम त ऽइन्दोरिन्द्रियावतः। पत्नीवतो ग्रहाँ २ऽ ऋध्यासम्। ³ अहं परस्तादहमवस्ताद्यदन्तरिक्षं तदु मे पिताभूत्। अहꣳसूर्य्यमुभयतो ददर्शाहं देवानांपरमंगुहा यत् ॥ ९ ॥

विश्वेदेवा देवताः। (१) प्राजापत्या गायत्री षड्ज। (२) आर्षी उष्णिक् ऋषभ.। आर्षीपङ्क्ति। पञ्चम ॥

भा०—हे योग्य पुरुष! राजन् तू! (उपयामगृहीतः असि) राज्यतन्त्र द्वारा स्वीकृत एवं बद्ध है। हे (देव सोम) देव! सोम! राजन्! (इन्द्रियावतः) इन्द्र राजा के योग्य ऐश्वर्य बल से सम्पन्न (इन्दोः) सबके आह्लादक (पत्नीवतः) अपनी पालक शक्ति से युक्त (बृहस्पतिसुतस्य) बृहती, वेद वाणी के पालक विद्वान् के द्वारा प्रेरित (ते) तेरे निमित्त (ग्रहान्) समस्त राज्य के अंगों को मै (ऋध्यासम्) समृद्ध करता हूं। (अहम्) मैं (परस्ताद्) परे से परे, दूर देशों में और (अवस्तात्) अति समीप अपने अधीन के देशों में भी (ऋध्यासम्) समृद्ध होऊं। (यद् अन्तरिक्षम्) जो अन्तरिक्ष अर्थात् बीच का उत्तम प्रदेश है (तत् उ) वह भी (मे) मेरा

९—०सुतस्य ते देव। इन्द्र इन्द्रियावत'० "तदु मे पितास।" इति काण्व०।

(पिता अभूत्) पालक ही हो। (अहम्) मैं (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् को ही (उभयतः) दोनों ओर (ददर्श) देखूं। और (देवानाम्) देव, विद्वान् पदाधिकारियों के (गुहा) गुहा या हृदय में (यत्) जो (परमम्) परम तत्व ज्ञान हो उसका भी दर्शन करूं॥ शत० ४। ४। २। १२॥

गृहस्थ पक्ष में—हे सोम ! वर ! बड़े विद्वान् के पुत्र आह्लादक ऐश्वर्यवान् वीर्यवान्, पत्नी सहित तेरे (ग्रहान्) स्वीकार किये समस्त कर्त्तव्यों को आगे पीछे मैं पत्नी बढ़ाऊंगी। हमें अन्त करण का विज्ञान प्राप्त हो। दोनो तरफ़ अर्थात् इस लोक परलोक दोनों में उस (सूर्य) सबके प्रेरक परमेश्वर को अपना पालक देखती हूं। जो विद्वानों के हृदय में परमतत्व रूप से गुप्त रहता है।

अग्ना३इ पत्नीवन्त्सजूर्देवेन त्वष्ट्रा सोमं पिब स्वाहा। प्रजापतिर्वृषासि रेतोधा रेतो मयि धेहि प्रजापतेस्ते वृष्णो रेतोधसो रेतोधामशीय॥ १०॥

अग्निः प्रजापतिश्च देवते। विराड् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी राजन् ! हे (पत्नीवन्) राष्ट्र के पालन करने वाली अपनी शक्ति सहित ! तू (देवेन) देव, दानशील, (त्वष्ट्रा) त्वष्टा सेनापति के साथ (सजू) सहयोग करके (सोमम् पिब) सोम नाम राज पद का उपभाग कर (स्वाहा) इससे तेरा उत्तम यश होगा। हे राजन् ! (प्रजापतिः) तू प्रजा का पालक (वृषा) राष्ट्र पर सुखों का वर्षक या राष्ट्र का व्यवस्थापक (असि) है। तू (रेतोधा) वीर्य का धारण करने वाला है। (मयि) मुझ राष्ट्र वासी प्रजाजन में भी (रेतः) वीर्य को (धाः) धारण करा। (प्रजापते.) प्रजा के पालक (वृष्ण.) सब सुखों

१०—गृहपतयो देवता। द०। 'अग्ने वाक् पत्नि सजू०' इति काण्व०।

के वर्षक (रेतोधसः) उत्पादक वीर्य के धारक (ते) तेरे (रेतोधाम्) वीर्य धारण करने में समर्थ राष्ट्र का (अशीय) मैं प्रजाजन भी भोग करूं ॥ शत० ४ । ४ । २ । १५–१८॥

गृहस्थ पक्ष में—हे अग्ने पत्नीवन् ! स्वामिन् ! (देवेन त्वष्ट्रा सजूः) त्वष्टा, वीर्य को पुत्र रूप से परिणत करने वाले दिव्य सामर्थ्य से युक्त होकर तू (स्वाहा सोमम् पिब) उत्तम रीति से सोम, ओषधि का पान कर । हे पुरुष ! पते ! तू प्रजा का पालक वीर्यसेचन में समर्थ रेतस् वीर्य धारण कराने वाला है । तू (मयि) मुझ पत्नी में वीर्य धारण करे । तुझ प्रजापति के (रेतोधाम् अशीय) वीर्यवान् पुत्र को मैं प्राप्त करूं । अथवा वीर्याधान के सुख को प्राप्त करूं ॥

उपयामगृहीतोऽसि हरिरसि हारियोजनो हरिभ्यान्त्वा ।
हर्योर्धाना स्थ सहसोमा इन्द्राय ॥ ११ ॥

प्रजापतिर्हरिर्देवता ।

हे सोम राजन् ! तू (उपयामगृहीत असि) उपयाम अर्थात् राज्य तन्त्र द्वारा बद्ध है । तू (हरिः असि) राज्य को चलाने में समर्थ है । तू (हारियोजन.) राष्ट्र के कार्यों को उठाने और चलाने वाले अपने अधीन पदाधिकारियों को सारथी जिस प्रकार घोड़ों को लगाता है उसी प्रकार नाना पदों पर नियुक्त करने हारा है । (त्वा) तुझ वीर पुरुष को (हरिभ्याम्) उक्त दोनों ही हरि पदों के लिये नियुक्त करता हूं । हे अन्य पदाधिकारीगण आप सब लोग (सहसोमाः) मुख्य राजा के सहित (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् राजा या राज्य के लिये सभी (हर्यो धाना स्थ) दोनों हरि पदों के धारण करने हारे हो ॥ शत० ४ । ४ । ३ । ६ ॥

'११—गृहपतयो देवता । द० ।

राज्य-तन्त्र के समान गृहस्थ तन्त्र में —हे पुरुष तू ! (उपयाम गृहीतः असि) स्त्री विवाह द्वारा स्वीकृत है। अश्व के समान गृहस्थ को वहन करने और सारथि के समान उसको सत् मार्ग पर ले चलने वाला भी है। तुझको ऋक्, साम के समान स्त्री पुरुष दोनों के हित के लिये गृहपतिरूप से मैं वरती हू। हे विद्वान् पुरुषो ! आप सब मेरे पति सोम सहित हम स्त्री पुरुषों को सन्मार्ग मे धारण करने हारे (स्थ) रहो ॥

यस्ते॒ऽअ॑श्वस॒निर्भ॒क्षो यो गो॑स॒निस्तस्य॑ त॒ऽइ॒ष्टय॑जुष स्तु॒तस्तो॑मस्य श॒स्तोक्थ॑स्योप॑हूत॒स्योप॑हूतो भक्षयामि ॥ १२ ॥

धाना गृहपतयो वा देवता । आर्षी पंक्ति॰ । पञ्चम ॥

भा०—हे सोमराजन् ! (यः ते) जो तू (अश्वसनि.) अश्वों से युक्त है और (य) जो तू (गोसनि.) गौ आदि पशुओं से युक्त (भक्ष) बल या राज्य की रक्षा करनेवाला अन्नरूप राज्य का भोक्ता है (तस्य) उस (इष्टयजुष) यज्ञशील, युद्धविजयी (स्तुतस्तोमस्य) प्रशस्त सेना संघ से युक्त और (शस्तोक्थस्य) उत्तम विद्वान् ब्राह्मण से युक्त (उपहूतस्य) आदरपूर्वक आमन्त्रित एव राज्यपद में अभिषिक्त तेरे द्वारा ही (उपहूत) आदरपूर्वक अनुज्ञा पाकर हम प्रजाजन भी (भक्षयामि) उक्त सामर्थ्य का भोग कर ॥ शत० ४ । ४ । ३ । ११—१५ ॥

गृहस्थतन्त्र में—हे पते ! तू अश्वों और गौ आदि ऐश्वर्यों से युक्त अथवा अश्व, कर्मेन्द्रिय गौ, ज्ञानेन्द्रियो से युक्त, अथवा अग्न्यादि, विद्या और भूमि का भोक्ता और दाता है उस तेरे तीनों वेदों में विद्वान् का आदरपूर्वक निमन्त्रित कर शेष का मैं उपभोग करूं। इसी प्रकार पति अपनी विदुषी उदारपत्नी एव अन्य बन्धुओं को आदरपूर्वक बुलाकर भोजनादि करावें।

१२—'यस्ते देवाश्वसनि०' '०क्थस्योपहूत उपहूतस्य म०' इति काण्व ॥

[१]देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि [२]मनुष्यकृतस्यैनसोऽवयजनमसि [३]पितृकृतस्यैनसोऽवयजनमस्या[४]त्मकृतस्यैनसोऽवयजनमस्ये[५]नस एनसोऽवयजनमसि। [६]यच्चाहमेनो विद्वाँश्चकार यच्चाविद्वाँस्तस्य सर्वस्यैनसोऽवयजनमसि ॥ १३ ॥

अग्निर्देवता। (१) आसुरी, (२) साम्नी (३-४) निचृत्साम्न्यौ,
(५) प्राजापत्या, (६) निचृदार्षी (उष्णिह) ऋषभः ॥

भा०—हे परमेश्वर और हे राजन्! तू (देवकृतस्य) दानशील या उपदेष्टा विद्वानों धनी पुरुषों के किये (एनसः) पाप या अपराध को (अवयजनम् असि) दूर करनेवाला है। तू (मनुष्यकृतस्य एनस) मनुष्यों द्वारा किये पाप को भी (अवयजनम् असि) दूर करनेहारा है। इसी प्रकार (पितृकृतस्य) माता पिता या राष्ट्र के पालक जनों के किये (एनस.) पाप और अपराध का (अवयजनम् असि) दूर करने का साधन है। (आत्मकृतस्य एनस अवयजनम् असि) अपने आप किये गये पाप और अपराध को दूर करने में समर्थ है। (एनसः एनसः अवयजनम् असि) एक पाप या अपराध के कारण उससे उत्पन्न होनेवाले दूसरे अन्य अपराध या पाप को भी दूर करनेहारा है। अथवा (एनसः एनसः) प्रत्येक प्रकार के अपराध या पाप को दूर करनेहारा है। और (यत् च) जो (एनः) अपराध या पाप (अहम्) मैं (विद्वान् चकार) जान बूझ कर करूं। और (यत् च अविद्वान्) जो अपराध में बिना जाने करूं (तस्य सर्वस्य एनसः अवयजनम् असि) उस सब प्रकार के अपराध को तू दूर करने में समर्थ है।

सं वर्चसा पयसा सन्तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १४ ॥
अथर्व० ६ । ५३ । ३ ॥

भरद्वाज ऋषिः। विश्वे देवाः देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

१३—विश्वेदेवा गृहपतयो देवताः। द०।

भा०—हम लोग (वर्चसा) तेज, ब्रह्मवर्चस् और अन्न (पयसा) जल, दुग्ध आदि पुष्टिकर पदार्थ (तनूभि) उत्तम शरीर और (शिवेन मनसा) कल्याणकारी शुभ चित्त से सदा (सम् अगन्महि) संयुक्त हों। (सुदत्र) उत्तम दानशीलपुरुष, परमेश्वर या सुखप्रद वैद्य (राय. विदधातु) समस्त ऐश्वर्य प्रदान करे। (यत्) जो हमारे (तन्वः) शरीर का (विलिष्टम्=विरिष्टम्) पीड़ित, दु.खित भाग हो उसको (अनुमार्ष्टु) वह सुख युक्त करे ॥ शत० ४।४।४।८॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सꣳ सूरिभिर्मघवन्त्सꣳ स्वस्त्या। सं ब्रह्मणा देवकृतं यदस्ति सं देवानाꣳ सुमतौ यज्ञियानाꣳ स्वाहा ॥ १५॥ ऋ० ५।४२।४॥

अत्रिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०--हे (इन्द्र) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् हे (मघवन्) परम श्रेष्ठ ! धनवन् ! (न.) हमें (मनसा) मनसे (गोभि.) इन्द्रियों, वेदवाणियों गौ आदि पशुओ और (सूरिभि) विद्वान् पुरुषों के साथ (सं नेषि) संगत कर या इन द्वारा हमें सत्मार्ग पर चलाओ और (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेद या धन से और (देवकृतम् यत् अस्ति) देव, विद्वानों या इन्द्रियों द्वारा जो उत्तम कार्य किया जाता है उसमे भी हमें (स नेषि) सगत कर। हमे उससे युक्त कर और (यज्ञियानां) सत्संग करने योग्य, आदरणीय (देवानाम्) श्रेष्ठ विद्वान् पुरुषो के (सुमतौ) शुभ मति के अधीन हमें (स्वाहा) उत्तम ज्ञानवाणी द्वारा (स्वस्त्या) सुखपूर्वक (सं नेषि) सब कुछ प्राप्त करा। (स्वाहा) यह तेरा उत्तम यशोजनक कर्त्तव्य है॥ शत० ४।४।४।७॥

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो [अ० २।२४ और अ० ५।१४]।

धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः । त्वष्टा विष्णुः प्रजया सꣳ रराणा यजमानाय द्रविणं दधात स्वाहा ॥ १७ ॥
अथर्व० ७ । १७ । ४ ॥

लिंगोक्ता धात्रादयो देवताः । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(धाता रातिः सविता प्रजापतिः निधिपा अग्निः देवः त्वष्टा विष्णुः) धाता, राति, सविता, प्रजापति, अग्नि, त्वष्टा और विष्णु ये सब देवगण अधिकारी वर्ग (इदम् जुषन्ताम्) इस परस्पर के सहयोग से बने राष्ट्र को प्रेम से स्वीकार करें और (प्रजया) अपने संतान के समान प्रजा के साथ (सं रराणाः) अच्छी प्रकार आनन्द प्रसन्न रहते और जीवन को सुखी करते हुए, (यजमानाय) अपने को धारण पोषण देने वाले राजा को (द्रविणम्) धनैश्वर्य (स्वाहा) उत्तम धर्मयुक्त रीति से (दधात) प्रदान करें, उसे पुष्ट करें । श० ४ । ४ । ६ ॥

सुगा वो देवाः सदना ऽअकर्म य ऽआजग्मेदꣳ सवनं जुषाणाः । भरमाणा वहमाना हवीꣳष्यस्मे धत्त वसवो वसूनि स्वाहा ॥१८॥
अथर्व० ७ । ६७ । ४ ॥

विश्वेदेवा देवताः । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (देवाः) देव, विद्वानों और दानशील वैश्य पुरुषो ! या राजपदाधिकारियो ! (ये) जो आप लोग (इदं) इस (सवनं) राष्ट्रमय यज्ञ की सेवा करते हुए और (हवींषि) नाना अन्न आदि उपादेय पदार्थों को (भरमाणाः) भोग करते हुए और (वहमाना) उनको प्राप्त

१८—यास्कसम्मत पा०स्तु—'सुगा वो देवाः सदनमकर्म य आजग्मुः सवनमिदं जुषाणा । जक्षिवांसः पपिवासश्च विश्वेस्मे धत्त वसवो वसूनि ।'

(द्वि०) य आजग्म सवने मा जुषाणा । (तृ०) वहमाना भरमाणा स्वा वसूनि (च०) वसुधम दिवमारोहतानु इति अथर्व० ॥

करते हुए अथवा (भरमाणा) यहां से लेजाते हुए और (वहमाना) यहा को लाते हुए (आजग्मु.) आते हैं (व) उन आप लोगों के लिये (सुगा॰) सुखपूर्वक चलने योग्य मार्ग और (सदना) उत्तम आश्रय स्थान, व्यापार के निमित्त दुकान या बाजार आदि हम (अकर्म) बनावें। हे (वसव) यहा के निवासी वसुजनो प्रजाजनो ! आप लोग (अस्मे) हमारे राष्ट्र के लिये (स्वाहा) उत्तम रूप से धर्मानुकूल प्राप्त करने और दान देने योग्य (वसूनि धत्त) ऐश्वर्यों को धारण करो, कराओ ॥ शत० ४ । ४ । ४ । १० ॥

यॉ२ऽ आवंहऽ उशतो देव देवॉस्तान् प्रेरय स्वे ऽअंग्ने सधस्थे। जक्षिवाᳫंसः पपिवाᳫंसश्च विश्वेऽ सुं घर्म्मᳫंस्वरातिष्ठतानु स्वाहा ॥ १६ ॥ अथर्व० ७ । ६३ । ३ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप । धैवत. ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष ! हे (देव) राजन् ! (यान्) जिनको (उशतः) नाना कामनाओं और इच्छाओं से युक्त (देवान्) देवों, विद्वानों, ऐश्वर्यवान् पुरुषों को तू स्वयं (स्वे सधस्थे) अपने सहयोग के पद पर (आवह) स्थापित करता है (तान्) उनको (प्रेरय) प्रेरित कर। हे (देवा.) राज पदाधिकारी पुरुषो ! आप लोग (जक्षिवास) भोजन करते हुए (पपिवांस च) जल आदि पान करते हुए (स्वाहा) उत्तम रीति से (असुम्) अपने प्रज्ञा और प्राण को प्राप्त करो (घर्मम्) अतितेजोयुक्त (स्व.) सुखमय उत्तम पद पर अनु (आतिष्ठत) विराजो और सुखी रहो ॥ शत० ४ । ४ । ४ । ११ ॥

वयᳫं हि त्वां प्रयति यज्ञे ऽअस्मिन्नग्ने होतारमवृणीमहीह। ऋधंगयाऽऋधंगुताशंमिष्ठा. प्रजानन्यज्ञमुपंयाहि विद्वान्त्स्वाहा ॥२०॥ अथर्व ७ । ९७ । १ ॥

भा०--(वयं) हम सब लोग (अस्मिन्) इस (प्रयति यज्ञे) राष्ट्ररूप यज्ञ के प्रारम्भ में ही (इह) इस (अग्रे) सबसे अग्र अर्थात् मुख्य स्थान पर (होतारम्) यज्ञ में होता के समान यज्ञनिष्पादक रूप से आदान प्रतिदान करने में निपुण नेता का वरण करते हैं। हे विद्वान् समर्थ पुरुष ! तू (ऋधक्) समृद्धि सम्पत्ति की वृद्धि करता हुआ (अयाः) इस महान् यज्ञ को सम्पादन कर। (उत) और (ऋधक्) समृद्धि करता हुआ ही (अशमिष्ठाः) इस कार्य में आनेवाले विघ्नों का शमन कर। तू (यज्ञम्) यज्ञ, राष्ट्र के व्यवस्था के समस्त कार्य को (विद्वान्) जानता हुआ ही (स्वाहा) उत्तम विज्ञान सहित (उपयाहि) प्राप्त हो ॥ शत० ४ । ४ । ४ । १२ ॥

योग्य कार्य मे योग्य पुरुष को वरण करके उसे उस कार्य के लिये नियत करें। वह उसको करे और उसके बीच में आनेवाले विघ्नों का वही शमन करे ॥

देवा गातुविदो गातुं वित्वा गातुमित ।
मनसस्पत ऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥ २१ ॥

भा०—इसकी व्याख्या देखो [अ० २ । मं० २१ ।] । शत० ४ । ४ । ४ । १३ ॥

[1]यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा। [2]एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ॥ २२ ॥

भा०—हे (यज्ञ) यज्ञ ! राष्ट्ररूप यज्ञ ! तू (यज्ञम्) परस्पर की संगति को, एक दूसरे के प्रति समर्पण भाव को (गच्छ) प्राप्त कर। (यज्ञपतिम् गच्छ) उसको पालन करनेवाले योग्य समर्थ पुरुष को प्राप्त कर। तू (स्वाम् योनिम् गच्छ) अपने आश्रय को प्राप्त कर। (स्वाहा) तभी उत्तम रीति से सम्पादन हो सकता है। हे (यज्ञपते)

यज्ञ के पालक राष्ट्रपते ! (ते) तेरा ही (एष यज्ञः) यह यज्ञ है । यह (सह-सूक्तवाक) उत्तम वेद के सूक्तों का अध्ययन करनेवाले विद्वान् पुरुषों से युक्त और (सर्ववीर) सब प्रकार के वीर पुरुषों से युक्त है । (तम्) उसको तू (स्वाहा) उत्तम रीति से वेदानुकूल (जुषस्व) स्वीकार कर ॥ शत० ४ । ४ । ४ । १४ ॥

[1] माहिर्भूर्मा पृदांकुः । [2] उरुᳬ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उं । अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् । [3] नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः ॥ २३ ॥

ऋ० १ । २४ । ८ ॥

(१) याजुषी उष्णिक् । ऋषभः । (२) भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवत । (३) आसुरी गायत्री । षड्ज । शुनःशेप ऋषि. । वरुणो देवता ।

भा०—राज्यव्यवस्था में राजा की न्यायानुकूल व्यवस्था । हे पुरुष ! तू (अहि. मा भू) सांप के समान कुटिल, क्रोधी मत बन । (मा पृदाकु) अजगर के समान सब प्राणियो को निगलनेवाला, एवं उनको अपने बधन मे बांधकर मारनेवाला क्रूर या कुत्सितभाषी भी तू मत बन । (वरुण राजा) सर्वश्रेष्ठ राजा ने (सूर्याय) सूर्य के प्रकाश के समान उज्ज्वल सत्य तक (अनु एते व उ) पहुंचने के लिये ही (उरुम् पन्थाम् चकार) विशाल मार्ग बना दिया है । वह (अपदे) जहां पैर भी नहीं रखा जासके ऐसे स्थानों में भी (पादा) पैर (प्रतिधातवे) रखने के लिये मार्ग (अकः) बना देता है । और वह वरुण राजा (हृदयाविध चित्) हृदय को कटु वाक्यो से और अपने क्रूर कृत्यों से दूसरों के छेदनेवाले मर्म भेदी दुष्ट पुरुष का भी (अपवक्ता) अपवाद करनेवाला उसके प्रति अभियोग चला कर निग्रह करनेवाला है । ऐसे (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, पापों के वारण करनेहारे राजा को (नमः) नमस्कार है । (वरुणस्य) ऐसे सर्वश्रेष्ठ राजा

का (पाशः) पाश, राज्य नियमों का दमनकारी पाश (अभिष्ठितः) सर्वत्र स्थिर रहे ॥ शत० ४ । ४ । ५ । १-११ ॥

अ॒ग्नेरनी॑कम॒प ऽआवि॑वेशा॒पां नपा॑त् प्रति॒ रक्ष॑न्नसु॒र्य्य॑म्। दमे॑ दमे स॒मिधं॑ यक्ष्यग्ने॒ प्रति॑ ते जि॒ह्वा घृ॒तमुच्च॑रण्य॒त् स्वाहा॑ ॥ २४ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अग्नेः) अग्रणी नेता, राजा का (अनीकम्) मुख्यबल या सेनासमूह (अपां नपात्) प्रजाओं को गिरानेवाला न होकर, उनका विनाशक न होकर प्रत्युत (अपां नपात्) प्रजाओं के पुत्र के समान ही होकर उनसे ही उत्पन्न होकर (असुयम्) उनके प्राण धारणोपयोगी द्रव्य जान माल की (प्रतिरक्षन्) रक्षा करता हुआ (अपः) आप्त प्रजाओं मे (आविवेश) प्रविष्ट या व्याप्त होकर रहे । हे (अग्ने) अग्ने ! राजन् ! तू (दमेदमे) घर घर मे या प्रत्येक दमन के कार्य में (समिधम्) प्रकाशयुक्त तेजस्वी पुरुष को (यक्षि) नियुक्त कर । हे राजन् ! (ते) तेरी (जिह्वा) वशकारिणी शक्ति, (घृतम्) घृत, तेज उग्रता को (स्वाहा) भली प्रकार (उत् चरण्यत्) प्राप्त करे ॥ शत० ४ । ४ । ५ । १२ ॥

स॒मु॒द्रे ते॒ हृद॑यम॒प्स्व॒न्तः सं त्वा॑ विश॒न्त्वोष॑धीरु॒तापः॑ । य॒ज्ञस्य॑ त्वा यज्ञपते सू॒क्तोक्तौ॑ नमोवा॒के वि॑धेम॒ यत् स्वाहा॑ ॥ २५ ॥

सोमो देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन् ! (ते) तेरा (हृदयम्) हृदय (अप्सु अन्तः) प्रजाओं के भीतर (समुद्रे) नाना प्रकार के उन्नतिकारक व्यवहार मे लगे । और (त्वाम्) तुझ मे (ओषधीः) दुष्टों को दण्ड द्वारा पीडित करनेवाले जन, अधिकारी (उत) और (आपः) आप्त प्रजाजन सब (आविशन्तु) आश्रय पावे वे तेरे अधीन रहें । हे (यज्ञपते) राष्ट्रयज्ञ के पालक ! (यज्ञस्य) यज्ञ के (सूक्तोक्तौ) जिसमे वेद के सूक्त प्रमाणरूप से कहे

जायं ऐसे उत्तम कार्य मे और (नमोवाके) आदर योग्य वचनों के कार्य में (यत्) जो भी (स्वाहा) उत्तम त्याग योग्य और ग्रहण योग्य पदार्थ हैं वह (त्वा) तुझे (विधेम) प्रदान करें ॥ शत० ४ । ४ । ५ । २० ॥

गृहस्थ पक्ष में—वेदादि के अध्ययन कार्य और आदर योग्य वचनों से युक्त (समुद्रे) उत्तम धर्म कार्य में हे गृहपते ! तेरा हृदय प्राणों के भीतर रहे । ओषधियां और शुद्ध जल तुझे प्राप्त हों । उसी उत्तम कार्य में तुझे हम नियुक्त करें ।

देवीरापऽएष वो गर्भस्तꣳ सुप्रीतꣳ सुभृतं बिभृत ।
देव सोमैष ते लोकस्तस्मिञ्छं च वक्ष्व परि च वक्ष्व ॥ २६ ॥

आप सोमदेवता. । स्वरार्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे (देवी आप) दानशील, या ज्ञान प्रकाशयुक्त (आपः) आप्त प्रजाओ ! (एष.) यह राजा (व) आप लोगों का (गर्भ.) माताओं या गृह-देवियो द्वारा उत्तम रीति से गर्भ के समान रक्षा करने एव धारण करने योग्य है । (तम्) उसको (सुप्रीतम्) अति उत्तम रीति से तृप्त, सतुष्ट और (सुभृतम्) उत्तम रीति से परिपुष्ट रूप मे (बिभृत) धारण करो । हे (देव सोम) राजन् सर्व प्रेरक सोम ! (ते एष लोक) तेरा यह प्रजाजन ही निवास करने योग्य आश्रय है । तू (तस्मिन्) उसमें विद्यमान रहकर (श च वक्ष्व) शान्ति प्राप्त करा और उसको (परि वक्ष्व च) अन्य नाना पदार्थ भी प्राप्त करा अथवा उसको सब ओर से धारण कर । या राष्ट्रवासियों को (परि वक्ष्व) सब कष्टों से पार कर, उससे बचा॥ शत० ४ । ४ । ५ । २१ ॥

गृहस्थ पक्ष मे—हे देवियो ! तुम लोग अपने गर्भ को भली प्रकार पुष्ट, तृप्त और सुप्रसन्न रूप में धारण पोषण करो । हे गृहपते ! यह पत्नी ही तेरा आश्रय है । उसको शान्ति दे और उसको अन्य पदार्थ भी प्रदान कर ।

[1]अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः । [2]अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि । देवानाᳬसमिदसि ॥ २७ ॥ यजु० २ । ४८ ॥

अग्निर्देवता । (१) भुरिक् प्राजापत्याऽनुष्टुप् । गाधार ।
(२) स्वराडार्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे राजन् ! हे (अवभृथ) अपने अधीन समस्त अधिकारी और प्रजावर्ग को भरण पोषण करनेहारे ! और हे (निचुम्पुण) मन्द, अलक्षितरूप से गतिशील ! तू (निचेरुः असि) नित्य चलता रहता है, सर्वत्र राष्ट्र में व्यापक है, पर तो भी (निचुम्पुणः) अत्यन्त मन्दगति है, तेरी गति का पता नहीं लगता । हे (देव) राजन् ! देव, द्रष्ट ! विजयशील ! दमनकारिन् ! मैं (देवकृतम्) देवों, पूज्य विद्वानों के प्रति किये गये (एनः) अपराध को (देवैः) विद्वान् पुरुषों द्वारा (अव यासिषम्) दूर कर त्याग दूं । और (मर्त्यकृतम् एनः) साधारण लोगों के प्रति किये अपराध को (मर्त्यैः) साधारण जनों के साथ मिलकर (अव यासिषम्) दूर करूं । हे (देव) देव ! राजन् ! तू (पुरुराव्णः) नाना विध दारुण कष्टों के देनेवाले (रिषः) हिंसक पुरुष से हमें (पाहि) रक्षाकर । तू (देवानाम्) देव, विद्वानों और समस्त राष्ट्र के पदाधिकारियों के बीच में (समित्) प्रज्वलित काष्ठ या सूर्य के समान तेजस्वी (असि) है ॥ शत० ४ । ४ । ५ । २२ ॥

[1]एजतु दशमास्यो गर्भो जरायुणा सह । [2]यथायं वायुरेजति यथा समुद्रऽएजति । [3]एवायं दशमास्योऽअस्रज्जरायुणा सह ॥२८॥

गर्भो देवता । त्र्यवसाना महापंक्ति । अथवा (१) साम्न्यासुरी उष्णिक् । ऋषभः ।
(२) प्राजापत्यानुष्टुप् । गाधार ॥

भा०—मं० २६ में राजा को गर्भ से उपमा दी है । उसी का पुनः

२८—दम्पती देवते । द० ।

निर्वाह करते हैं। (दशमास्य. गर्भ) दश मास का गर्भ जिस प्रकार (जरायुणा) जेर के साथ शनै. २ बाहर आता है और माता को प्रसवकाल मे पीड़ा देता है। उसी प्रकार दश मास के परिपक्व गर्भ के समान अच्युत, दृढ़ (गर्भः) राष्ट्र को पूर्ण प्रकार से ग्रहण करने मे समर्थ राजा (जरायुणा) अपने जरायु अर्थात् चारो ओर से घेरनेवाले, अपनी स्तुति करनेवाले, अपने सपक्षी दल के साथ (एजतु) चले। और (यथा) जिस प्रकार (अय वायु.) यह वायु बड़े वेग से समस्त वृक्ष आदि को कपाता हुआ (एजति) चलता है और (यथा समुद्र एजति) जिस प्रकार समुद्र गर्जता हुआ तरङ्गों द्वारा कांपता है (एवा) उसी प्रकार (अयम्) यह (दशमास्य.) दशो दिशाओं मे मास अर्थात् चन्द्रमा के समान आह्लाक दशमास्य गर्भ के बालक के समान स्वय उत्पन्न होनेहारा और प्रजाओं को प्रसन्न करने हारा राजा (जरायुणा सह) अपने स्तुति करनेहारे दल के साथ (असत्) बाहर आता है, स्पष्टरूप मे प्रकट होता है ॥ शत० ४। ५। २। ४, ५ ॥

'जरायु'—शणा जरायु ॥ श० ६। ६। २। १५ ॥ यत्र वा प्रजापतिरजायत गर्भो भूत्वा एतस्मात् यज्ञात्। तस्य यन्नेदिष्ठमुल्वमासीत् ते शणा ॥ श० ३। २। १। ११ ॥

गर्भपक्ष में—दस मास का गर्भ जरायु के साथ चले। जिस वेग से वायु और समुद्र चलता है उस प्रकार विना बाधा के जरायु सहित गर्भ बाहर आवे। इस मन्त्र को महीधर आदि ने गर्भिणी गाय के गर्भ कर्त्तन मे लगाया है, सो असगत है।

यस्यै ते यज्ञियो गर्भो यस्यै योनिर्हिरण्ययी। अङ्गान्यह्रुता यस्य तं मात्रा समजीगमम् स्वाहा ॥ २९ ॥

भा०—गृहस्थ पक्ष में—(यस्यै) जिसका (यज्ञिय.) संगति के योग्य (गर्भः) गर्भाशय है। और (यस्यै) जिसकी (योनिः) योनि

देश भी (हिरण्ययी) अभिरमण करने योग्य है, अथवा स्वर्ण के समान स्वच्छ निर्दोष है उस (मात्रा) पुत्र की भावी माता होने योग्य स्त्री के साथ (तम्) उस पुरुष को (यस्य अंगानि) जिसके अंग (अहुता) कुटिल नहीं हो, (सम् अजागमम्) हम सग करावें । (स्वाहा) यही उत्तम प्रजननाहुति है । अथवा तभी उत्तम गर्भ ग्रहण होता है ॥ शत० ४ । ५ । २ । १४ ॥

इस मन्त्र मे 'मातृ' पद पुत्रोत्पत्ति के पूर्व ही वेद का कहना इसलिये संगत है कि (१) डिम्ब को उत्पन्न करने से ही वह प्रथम माता है । (२) पुत्रोत्पादन से वह भाविकाल में 'माता' बनेगी (३) उस स्त्री को मातृ-शक्ति या उत्पा दिक शक्ति ही संगति में प्रेरित करे ।

राजा पक्ष में—(यस्यै) जिस पृथिवी के हित के लिये (सक्षिय) राष्ट्र के एवं प्रजापति पद के योग्य ही (गर्भः) उसके वश करने में समर्थ, पुरुष है । और यस्यै) जिसकी (योनिः) आश्रय (हिरण्ययी) सुवर्ण आदि ऐश्वर्य से युक्त कोश है । उस (मात्रा) माता के समान पृथिवी के साथ (तम्) उस राजा को (यस्य अङ्गानि अहूतानि) जिसके अंग अर्थात् राज्य के समस्त अंग कुटिलता से रहित, सत्यवादी और धर्मात्मा हों उसको उस पृथिवी के ऊपर शासन के लिये (सम् अजीगमम्) मैं पुरोहित संयुक्त करता हूं ।

पुरुदस्मो विषुरूपऽ इन्दुरन्तर्महिमानमानञ्ज धीरः । एकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पदीमष्टापदीं भुवनानु प्रथन्ताᳪ स्वाहा ॥३०॥

गर्भो देवता । आर्षी जगती । मध्यम ॥

भा०—(पुरुदस्मः) अति अधिक दानशील, अथवा बहुतसे प्रजा-जनो के बीच दर्शनीय, अथवा बहुत से दुखो का नाशक (विषुरूपः) राष्ट्र में व्यापक बहुत से रूपो में प्रकट होनेवाला (इन्दुः) ऐश्वर्यवान् (धीरः)

धीर, बुद्धिमान्, सर्व व्यवहारों में कुशल होकर (अन्त) प्रजाओं के बीच (महिमानम्) अपने महान् सामर्थ्य को (आनञ्ज) प्रकट करता है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (एकपदीम्) राजा रूप एकमात्र चरण अर्थात् आश्रयवाली, (द्विपदीम्) राजा और राजाङ्ग रूप से चरणवाली, (त्रिपदीम्) राजा, राज्याङ्ग और राजसभा इन तीन से तीन चरणवाली, (चतुष्पदीम् चारों वर्णों से चतुष्पदी, चार चरणोंवाली अथवा सेना के चार अंगों द्वारा चतुष्पदी और (अष्टापदीम्) चार वर्ण और चार आश्रम द्वारा अष्टापदी अथवा राज्य के सात अङ्ग और पुरोहित इनसे अष्टापदी, 'वशा' अर्थात् राज्य की वशकारिणी शक्ति को (भुवना अनु) समस्त भुवनों में (स्वाहा) उत्तम रीति से (प्रथन्ताम्) विस्तृत करो ॥ शत० ४। ५। २। १२ ॥

गृहस्थ पक्ष में—दुःखों का नाशक ऐश्वर्यवान्, धीर, गृहस्थ पुरुष अपने सामर्थरूप वीर्य को स्त्री के भीतर स्थापित करे। सब लोग एकपदी, द्विपदी आदि विशेषण युक्त वेदवाणी को सर्वत्र विस्तृत करें। 'ओम्' यह एक पद। अभ्युदय और निःश्रेयस दो पद। वाचिक, मानस, शरीर-सुख ये तीन पद। धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, चार पद। ४ वर्ण, ४ आश्रम ये आठ पद। अर्थात् इनको प्राप्त करानेवाली।

मरु॑तो॒ यस्य॒ हि क्षये॑ पा॒था दि॒वो वि॑महसः ।
स सु॑गो॒पात॑मो॒ जनः॑ ॥ ३१ ॥　　ऋ० १। ८६। १ ॥

गोतम ऋषिः। मरुतो देवता। आर्षी गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे (विमहसः) विविधरूपों से और विशेष रीति से पूजन, आदर सत्कार करने योग्य (मरुतः) मरुद्गणो ! वैश्यजनो ! और विद्वान् पुरुषो ! एवं वायु के समान तीव्रगामी सैनिक पुरुषो ! आप लोग (यस्य हि क्षये) जिसके अधीन राष्ट्र में रहकर (दिवः) दिव्यगुणों

को या उत्तम पदार्थों को (पाथ) प्राप्त होते और पालन करते हो (सः) वह ही (जनः) पुरुष (सुगोपातमः) सबसे उत्तम पृथ्वी या वाणी या प्रजा का रक्षक है ॥ शत० ४ । ५ । २ । १७ ॥

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ ३२ ॥ ऋ० १ । २२ । १३ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ दम्पती वा देवते । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(मही) बड़ी भारी पूजनीय (द्यौः द्यौ आकाश के समान या सूर्य के समान तेजस्वी और वीर्यवान् , सेचनसमर्थ राजा और पति और (पृथिवी च) उसके आश्रय पर प्राण धारण करनेवाली पृथिवी और धारणादि शक्ति सम्पन्न स्त्री के समान पृथिवीवासिनी प्रजा, दोनों (इमं यज्ञम्) इस राष्ट्रमय और गृहस्थरूप यज्ञ को (मिमिक्षताम्) सेचन करे । जैसे सूर्य पृथिवी पर वर्षा करता है और पृथ्वी अपना जल प्रदान करती है इस प्रकार वे प्राणियों के जीवनरूप अन्न से उनको पालते हैं उसी प्रकार राजा प्रजा से कर ले, प्रजा राजा के ऐश्वर्यों से बलवान् बने । इसी प्रकार पति पत्नी वीर्य सेचन करें और प्रजा लाभ करें । और दोनों (नः) हमें (भरीमभिः) भरण पोषणकारी पदार्थों और साधनों से (पिपृताम्) पालन करें, पूर्ण करें ॥ शत० ४ । ५ । २ । १८ ॥

[१] आतिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी । अर्वाचीनꣳ सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना । [२] उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिन एष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३३ ॥ ऋ० १ । ८४ । ३ ॥

गोतम ऋषिः । षोडशी इन्द्रो देवता । (१) आसुर्यनुष्टुप् । गान्धार ।
(२) विराडार्ष्युष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—शोडषी इन्द्र का वर्णन —हे (वृत्रहन्) वृत्र-मेघ के समान पुर के घेरने वाले शत्रु के या विघ्नकारी पुरुष के नाशकारिन् ! राजन् ! तू (रथम्)

रमणीय राज्यासनरूप रथ पर (आतिष्ठ) विराजमान हो। (ते) तेरे (हरी) हरणशील वेगवान् अश्वों के समान धारण, आकर्षण गुण (ब्रह्मणा) ब्रह्म, ज्ञान या ज्ञानी पुरुष ब्रह्मवेत्ता विद्वान् या ऐश्वर्य या बल से (युक्ता) युक्त हों। (ग्रावा) मेघ के समान सुखों का वर्षक, ज्ञानोपदेशक विद्वान् (वग्नुना) उत्तम वाणी द्वारा (अर्वाचीनम्) अधोगामी (ते मन.) तेरे चित्त को (सु कृणोतु) उत्तम मार्ग में प्रवृत्त करे। हे पुरुष! तू (उपयामगृहीतः असि) राज्य के नियमव्यवस्था द्वारा स्वीकृत है। (त्वा) तुझको (षोडशिने इन्द्राय) सोलहों कलाओं से सम्पन्न, इन्द्र परमैश्वर्यवान् राजा के लिये नियुक्त करता हूं। (ते एष योनि) तेरा यह आश्रय, पद है। (त्वा षोडशिने इन्द्राय) तुझे योग्य पुरुष को षोडश कला वाले राज्य के प्रधान १६ पदाधिकार शक्तियों से युक्त अथवा १६ महामात्यों से युक्त इन्द्र के लिये नियुक्त करता हू ॥ शत० ४।५।३।६ ॥

षोडष कला—स प्रजापति. षोडशधा आत्मानं व्यकुरुत। भद्रं च समाप्तिश्चाऽऽभूतिश्च सम्भूतिश्च, भूतं च सर्वं च, रूपञ्चापरिमितं च, श्रीश्च यशश्च नाम चाग्रञ्च, सजाताश्च पयश्च मही च रसश्च। जै० उ० १।४६।२ ॥ प्रजापति का भद्र आदि १६ कला हैं। राज्य के १६ अमात्य १६ कला है। यज्ञ में १६ ऋत्विग् हैं। देह में शिर, ग्रीवा आदि १६ अग हैं। ब्रह्म में सत्, असत् वाक् मन आदि सोलह कला हैं। गृहपति पक्ष मे मन्त्र स्पष्ट है।

[1]युञ्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा। अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर। [2]उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिनं ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३४ ॥ ऋ० १।१४।३ ॥

मधुच्छन्दा ऋषि। षोडशी इन्द्रो देवता। (१) विराडार्ष्यनुष्टुप्। गान्धार.। (२) विराडार्ष्युष्णिक् ऋषभ ॥

३४—'षोळशि०' सर्वत्र काण्व० ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तू (वृषणा) वीर्यवान् वर्षणशील, (केशिनौ) उत्तम केशों वाले (कच्यप्रा) बगल मे बंधने की पेटी से भरे पूरे, कसे कसाये, (हरी) दो अश्वो को अपने रथ में (युंच्व) जोड़ । उसी प्रकार अपने रमणीय राष्ट्र में (कच्यप्रा) एक दूसरे के कच्य अर्थात् दायें बायें पार्श्वों के पूर्ण करने वाले (वृषणा) वीर्य सेचन मे समर्थ (हरी) परस्पर के चित्तहारी (केशिनौ) उत्तम प्रसाधित केशवान्, सुरूप स्त्री पुरुष रूप जोड़ो को गृहस्थ कार्य में (युच्व) नियुक्त कर । तू (सोमपा.) सोम=राष्ट्र का पालक होकर (नः) हमारी (उपश्रुतिम्) स्पष्ट सुनी जाने वाली (गिराम्) वाणी को प्राप्त कर, जान । (उपयामगृहीतः असि० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ४ । ५ । ३ । १० ॥

[1] इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् । ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषाणाम् । उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा षोडशिने ऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा षोडशिने ॥ ३५ ॥ ऋ० १ । ८४ । २ ॥

गोतम ऋषि । देवतादि पूर्वोक्तम् ।

भा०—(अप्रतिधृष्टशवसम्) जिसके बल को शत्रु कभी सहन करने मे समर्थ नही है ऐसे (इन्द्रम्) इन्द्र, परमैश्वर्यवान् राजा या सेनापति को ही (हरी) तीव्र गतिमान् अश्व (वहत) वहन करते हैं । हे वीरपुरुष राजन् ! तू (ऋषीणाम्) वेद मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियो के (स्तुती.) स्तुतियों और (मानुषाणां च) मनुष्यो के (यज्ञम्) आदर सत्कार को (उप) प्राप्त हो ।

परमेश्वर पक्ष में—हरी=ऋग्वेद और सामवेद । दोनो उस सर्वशक्तिमान् का वर्णन करते है । सब ऋषियो की स्तुतियां और सबकी उपासना उसी को प्राप्त होती है ॥

यस्मान्न जातः परोऽअन्योऽअस्ति यऽआविवेश भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतींꣳषि सचते स षोडशी ॥ ३६ ॥

विवस्वान् ऋषिः। इन्द्रः। षोडशी प्रजापतिः परब्रह्म परमेश्वरो वा देवता।
भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(यस्मात्) जिससे (परः) उत्कृष्ट, उत्तम (परः अन्यः) दूसरा कोई (न जातः अस्ति) नहीं हुआ है और (यः) जो (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों लोकों में (आविवेश) आविष्ट, विराजमान, एवं व्यापक है। वह (प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा और परमेश्वर (प्रजया) अपनी प्रजा से (सं रराणः) भली प्रकार रमण करता हुआ अथवा समस्त उत्तम पदार्थों का दान करता हुआ (त्रीणि ज्योतींषि) सूर्य, विद्युत्, और अग्नि इन तीनों ज्योतियों को (सचते) अपने भीतर धारण करता है। (सः) वह ही (षोडशी) सोलहों कलाओं से युक्त है॥

ब्रह्म पक्ष में—इच्छा, प्राण, श्रद्धा, पृथिवी आपः, अग्निः, वायु आकाश इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, लोक नाम ये १६ कला हैं (देखो प्रश्न उप०)।

राजा के पक्ष में—षोडषी प्रजापति सम्राट् वह कहाने योग्य है, जिससे उत्कृष्ट दूसरा न हो। वह अपने राज्य के समस्त स्थानों और पदों पर शासक हो। वह अपने प्रजा सहित रमण करता हुआ तीनों ज्योति सूर्य, विद्युत् अग्नि के गुणों को धारण करे। तेज में सूर्य, बल में विद्युत् और ज्ञान में अग्नि के समान तेजस्वी हो। वह 'षोडशी' सोलह कलावान् पुरुषोत्तम पद का भागी होता है॥

[१] इन्द्रश्च सम्राड् वरुणश्च राजा तौ ते भक्षं चक्रतुरग्र एतम्।

²तयोरहमनु भक्षं भक्षयामि वाग्देवी जुषाणा सोमस्य तृप्यतु सह प्राणेन स्वाहा ॥ ३७ ॥

विवस्वान् ऋषिः । इन्द्रावरुणौ षोडषी वा देवता । (१) साम्नी त्रिष्टुप् (२) विराड् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत स्वर ॥

भा०—(इन्द्रः च वरुण च) इन्द्र और वरुण (सम्राट् राजा) दोनों क्रम से सम्राट् और राजा हैं । अर्थात् महाराजा चक्रवर्ती राजा का सम्राट् या इन्द्र कहा जाता है और माण्डलिक राजा को राजा या वरुण कहना उचित है । हे प्रजाजन ! या हे राष्ट्र ! (तौ) वे दोनों (अग्रे) सब से प्रथम, मुख्य पद पर विराज कर (ते) तेरे (एतम्) इस (भक्षम्) उपभोग करने योग्य पदार्थ को सेवन (चक्रनुः) करते हैं । और (तयो अनु) उन दोनों के बाद (अहम्) मैं विद्वान् प्रजाजन (भक्षम् अनु-भक्षयामि) राष्ट्र के भोग्य पदार्थ का भोग करता हूं । (वाग्) वाणी जिस प्रकार (प्राणेन स्वाहा) प्राण के साथ मिलकर (सोमं जुषाणा) ज्ञान का सेवन करती हुई तृप्त होती है उसी प्रकार यह (देवी) देवी, पृथिवी या महारानी (सोमस्य) सब के शासन करने हारे राजा के साथ (जुषाणा) प्रेम करती हुई (स्वाहा) उत्तम कीर्त्ति से (तृप्यतु) तृप्त हो ॥

¹अग्ने पवस्व स्वपाऽअस्मे वर्चः सुवीर्य्यम् । दधद्रयिं मयि पोषम् । ² उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा वर्चसऽएष ते योनिरग्नये त्वा वर्चसे । ³ अग्ने वर्चस्विन्वर्चस्वाँस्त्वन्देवेष्वसि वर्चस्वानहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३८ ॥ ऋ० ९ । ६६ । २१ ॥

वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । (१) भुरिक् त्रिपाद् गायत्री । षड्जः । (२) स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । (३) भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गाधार ॥

३८—'१' इत्यस्य स्थाने 'अग्न आयूषि०' इत्यय च (यजु० १९ । ३८) पठ्यते । काण्व० । अग्ने वर्चस्वन्० इति काण्व० ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, ज्ञानवन् पुरुष ! तू (स्वपा) शुभ कर्म और ज्ञान से युक्त हो और (अस्मे) हमें (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य से युक्त (वर्चः) तेज (पवस्व) प्रदान कर। (मयि) मुझ में (पोषम्) पुष्टिकारक समृद्धिजनक (रयिम्) वीर्य और ऐश्वर्य (दधत्) धारण करा। हे पुरुष तू (उपयामगृहीत असि) उत्तम राज्यव्यवस्था के वश है। (अग्नये) अग्नि पद के (वर्चसे) तेज के लिये (त्वा) तुझको नियत करता हूं। (ते एष योनिः) तेरा यह पद है। (अग्नये वर्चसे त्वा) अग्नि के तेजस्वी पद के लिये तुझे स्थापित करता हूं। हे (वर्चस्विन् अग्ने) तेजस्विन् ! अग्ने अग्रणी, विद्वन् ! (देवेषु) देवों, विद्वानों और राजाओं के बीच में (त्वं वर्चस्वान्) तू तेजस्वी (असि) है। (अहम्) मैं (मनुष्येषु) मनुष्यों में (वर्चस्वान् भूयासम्) वर्चस्वी होऊं, अग्नि शब्द से अग्रणी, राजा, विद्वान्, आचार्य आदि ग्रहण करने चाहियें ॥ शत० ४ । ५ । ४ । ६ ॥

[1]उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रेऽअवेपयः सोममिन्द्र चमू सुतम् । [2]उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वौजसऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वौजसे । [3] इन्द्रौजिष्ठौजिष्ठस्त्वं देवेष्वस्योजिष्ठोऽहम्मनुष्येषु भूयासम् ॥ ३६ ॥ ऋ० ८ । १५ । १० ॥

वैखानस ऋषि । इन्द्रो देवता । (१) आर्षी गायत्री । षड्जः ।
(२) स्वराडार्षी (३) भुरिगार्षी (अनुष्टुप्) गाधारः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजन् ! ऐश्वर्य की प्राप्ति के अभिलाषिन् ! तू (ओजसा सह) अपने बल, पराक्रम के साथ (उत् तिष्ठन्) ऊपर उठता हुआ, उन्नति लाभ करता हुआ (चमू) अपनी सेनाओं द्वारा (सुतम्) सम्पादित (सोमम्) सोम अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त राज्य पद को (पीत्वा) प्राप्त करके (शिप्रे) अपने हनु और नासिका दोनों को (अवेपयः)

३६—'इन्द्रौजस्वन्नोजस्वास्त्वं देवेष्वसि ओजस्वानह०' इति काण्व० ॥

कंपा । अर्थात् जिस प्रकार मनुष्य स्वादु पदार्थ पीकर तृप्त होजाने पर नाक मुख हिलाता है इसी प्रकार तू भी राज्यैश्वर्य प्राप्त करके अपना सन्तोष प्रकट कर । हे योग्य, वीर पुरुष ! तू (उपयामगृहीत. असि) राज्य-व्यवस्था के द्वारा स्वीकृत है । (त्वा इन्द्राय ओजसे) तुझको पराक्रमशील इन्द्र पद के लिये मैं नियत करता हूं । (एष ते योनि) यह तेरा सिंहासन है । (इन्द्राय त्वा ओजसे) इस पराक्रमशील इन्द्र पद के लिये तुझे इस पद पर स्थित करता हूं । हे (ओजिष्ठ इन्द्र) सबसे अधिक ओज, तेज और पराक्रम से युक्त, इन्द्र 'राजन्' (त्वं देवेषु ओजिष्ठः असि) तू समस्त राजाओं मे से सबसे अधिक पराक्रमी है । (अहं) मैं तेरे द्वारा (मनुष्येषु ओजिष्ठ. भूयासम्) मनुष्यों में सबसे अधिक ओजस्वी हो जाऊं ॥ शत० ४ । ५ । ४ । १० ॥

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ२ऽ अनु भ्राजन्तोऽअग्नयो यथा । [२] उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहं मनुष्येषु भूयासम् ॥ ४० ॥ ऋ० १ । ५० । ३ ॥

प्रस्कण्व ऋषि. । सूर्यो देवता ॥

भा०—सूर्य की रश्मियां जिस प्रकार प्रदीप्त अग्नियें के समान दिखाई पड़ती हैं उसी प्रकार (अस्य) इस राजा के (रश्मय.) सूर्यकिरणों के समान दीप्तिवाले तेजस्वी (केतवः) ज्ञापक, ज्ञानवान् अधिकारी लोग (यथा) जिस प्रकार (भ्राजन्त.) देदीप्यमान (अग्नयः) अग्नि हों उसी प्रकार तेजस्वी ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष हैं, उनको (जनान् अनु) समस्त प्रजाजनो के उपकार के लिये नियुक्त (अदृश्रम्) देखता हूं । हे तेजस्वी

४०,४१—'सूर्याय त्वा भ्राजे०' सर्वत्र । 'सूर्य भ्राजस्वास्त्व देवेष्वसि भ्राजस्वान्०' इति काण्व० ॥

पुरुष ! तू (उपयामगृहीत' असि) राज्य के व्यवस्था नियमों से बद्ध है। (भ्राजाय सूर्याय त्वा) प्रकाशमान तेजस्वी 'सूर्य' पद के लिये तुझे वरता हूं। (एष ते योनि) तेरा यह आश्रय पद है। (भ्राजाय सूर्याय त्वा) प्रदीप्त सूर्य पद के लिये तुझे स्थापित करता हूं। हे (भ्राजिष्ठ सूर्य) अति दीप्त 'सूर्य' के समान पदाधिकारिन् ! (भ्राजिष्ठ देवेषु असि) तू सब देव, विद्वानो और राजाओ में सबसे अधिक तेज और दीप्ति से युक्त है। तेरे तेज से (मनुष्येषु अहम्) मनुष्यो मे मैं (भ्राजिष्ठ भूयासम्) सबसे अधिक दीप्तिमान् होऊं ॥ शत० ४ । ५ । ४ । ११ ॥

३८-४० तीनो मन्त्र परमात्मा के पक्ष मे भी स्पष्ट हैं जैसे -(१) हे ज्ञानवन् ! परमेश्वर हमें वीर्यवान् तेज और पुष्टिकारक बल दे। (२) हे इन्द्र ! परमेश्वर अपने (चमू) आदान सामर्थ्यों से इस प्रकट (सोमम्) महान् ससार को स्वय पान करके, ग्रहण करके तू (शिप्रे) पृथिवी और आकाश दोनों को चला रहा है। तू सबसे अधिक बलशाली है हमे बल दे। (३) हे (सूर्य) सूर्य के समान परमेश्वर आपकी समस्त किरणें अग्नियो के समान दीप्त हैं। आप हमे दीप्ति दें। हम दीप्तिमान् हों।

'उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्। उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय ॥ ४१ ॥ ऋ० ५ । ५० । १ ॥

प्रस्कण्व ऋषि । सूर्यो देवता । (१) निचृद्गार्षी, ।(२) स्वराडार्षी, गायत्री षड्ज ॥

भा०—(त्यं) उस (जातवेदसम्) समस्त पदार्थों के ज्ञाता, वेदो के मूलकारण या समस्त पदार्थों के स्वामी परमेश्वर को और ऐश्वर्यवान् (सूर्यं देवम्) सूर्य के समान तेजस्वी देव, राजा और परमेश्वर को (केतव)

४१—देवानामाम् । मर्वा० । अत पर 'चित्र देवानाम्०' इति (यजु० ७ । ४२) मन्त्रः, (८ । ४०) उपयाम० ०भूयासम्, अयं च मन्त्र. पठ्यते ।

किरणों के समान प्रकाशमान ज्ञानी विद्वान् लोग (विश्वाय दृशे) समस्त संसार के यथा योग्य ज्ञानपूर्वक देखने के लिये निरीक्षक साक्षीरूप से (उद् वहन्ति) सबके ऊपर स्थापित करते हैं। हे सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष तू (उपयामगृहीत. असि) राज्य नियमव्यवस्था द्वारा सुबद्ध है। (त्वा सूर्याय भ्राजाय) तुझको तेजोयुक्त सूर्य पद के लिये नियुक्त करते हैं। (एष. ते योनिः) यह तेरा पद है। (सूर्याय भ्राजाय त्वा) सूर्य के समान तेजस्वी पदाधिकार के लिये तुझको स्थापित करता हूं।

परमात्मा पक्ष में—(केतवः) ज्ञानी पुरुष उस सर्वज्ञ सर्वेश्वर देव को (विश्वाय दृशे) समस्त विश्व के हित के लिये उस पर साक्षीरूप से द्रष्टा के रूप में (उद् वहन्ति) सर्वोच्च बतलाते हैं ॥ शत० ४ । ६ । २ । ८ ॥

आजि॑घ्र कल॒शं म॒ह्या त्वा॑ विश॒न्त्विन्द॑वः । पुन॑रू॒र्जा निव॑र्त्तस्व॒ सा नः॑ स॒हस्रं॑ धुक्ष्वो॒रुधा॑रा॒ पय॑स्वती॒ पुन॒र्मावि॑शताद्र॒यिः ॥४२॥

कुसुरुबिन्दुर्ऋषिः । पत्नी गौर्वा देवता । स्वराड् ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (महि) पूजा करने योग्य, गौ के समान महती, एवं गृहस्थ में पत्नी के समान आदर करने योग्य पृथिवी ! तू (कलशम्) समस्त कलाओं, राज्य के अंगों को सुचारुरूप से धारण करनेवाले राष्ट्र और राष्ट्रपति को (आ जिघ्र) आघ्राण कर, स्वीकार कर (त्वा) तुझे में (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् राजा, प्रजाजन और ऐश्वर्य के पदार्थ (आ विशन्तु) प्रविष्ट हों। तू (पुनः) बार २ (ऊर्जा) अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थों से रहित (निवर्त्तस्व) भरी पूरी हो, और हमें प्राप्त हो। (सा) वह तू (न) हमें (उरुधारा) बहुत से धारण पोषण के सामर्थ्यवाली और (पयस्वती) अन्न, घी, दूध आदि से युक्त गौ के समान होकर (सहस्रं) हजारों ऐश्वर्य (धुक्ष्व) प्रदान कर। और (रयिः) ऐश्वर्यरूप तू (मा) मुझको (पुनः) बार २ (आविशतात्) प्राप्त हो या

दान दे। इसी प्रकार गृहस्थ अपनी पत्नी को भी कहे वह कलश के समान पति को सुपात्र जानकर ग्रहण करे, उसमें सब ऐश्वर्य प्राप्त हो। वह अन्न से युक्त हो। घर के सहस्रों ऐश्वर्य बढ़ावे। पुन पति को ही बार २ प्राप्त हो॥ शत० ४।५।८।७-९॥

इडे॒ रन्ते॒ हव्ये॒ काम्ये॒ चन्द्रे॒ ज्योतेऽदि॑ते॒ सर॑स्वति॒ महि॒ विश्रु॑ति। एता ते॑ऽअघ्न्ये॒ नामा॑नि दे॒वेभ्यो॑ मा सु॒कृतं॑ ब्रूतात्॥ ४३॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते। आर्षी पंक्ति। पञ्चमः॥

भा०—हे (इडे) स्तुति योग्य अन्नदात्रि! हे (रन्ते) रमण करने योग्य रमणीय! हे (हव्ये) स्वीकार करने योग्य! हे दान करने योग्य! हे (काम्ये) कामना करने योग्य कमनीय! कान्तिमति! हे (ज्योते) ज्योतिष्मति प्रकाशस्वरूप! हे (चन्द्रे) चन्द्र के समान आह्लादकारिणी! धनैश्वर्यरूपे! हे (अदिते) अविनाशिनि! अखण्डचरित्रे! हे (महि) पूजनीय! हे महति! हे (विश्रुति) विविध गुणों से प्रसिद्ध, विविध विद्याओं में कुशल (मा) मुझे अपने पति पालक को (देवेभ्यः) अन्य विद्या आदि देनेवाले एवं विजयी पुरुषों के समक्ष (सुकृतम्) उत्तम कर्म करनेवाला पुण्याचारवान् (ब्रूतात्) बतला, प्रसिद्ध कर। हे (अघ्न्ये) कभी दण्ड न देने योग्य! कभी न मारने योग्य! न कभी विनाश करने योग्य! (एता) इडा, रन्ता, हव्या, चन्द्रा, ज्योता, अदिति, सरस्वती, मही, विश्रुती ये सब (ते) तेरे ही (नामानि) नाम, तेरे ही स्वरूप हैं॥ शत० ४।५।८।१०॥

गौ, स्त्री और पृथिवी तीनों पर समानरूप से यह मन्त्र लगता है। इसके अध्यात्म में ब्रह्मशक्ति, आत्मा की चितिशक्ति और वेदवाणी का भी इस मन्त्र में वर्णन है।

१ वि न॑ऽइन्द्र॒ मृधो॑ जहि नी॒चा य॑च्छ पृतन्य॒तः। यो॑ऽअ॒स्माँ२ऽ

अभिदासत्यधरं गमया तमः । [२] उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विमृधऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विमृधे ॥ ४४ ॥

ऋ० १० । १५ । १४ ॥

शासो भारद्वाज ऋषि । विमृद् इन्द्रो देवता । (१) भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः । (२) विराडार्षी गायत्री । षड्ज. ॥

भा०—हे (इन्द्र) सेनापते या राजन् ! तू (न) हमारे (मृध) शत्रुओं को (विजहि) विनाश कर (पृतन्यत) युद्ध के लिये सेनासंग्रह करने वाले या सेना से चढ़ाई करने वाले शत्रुओं को (नीचा यच्छ) नीचे, गहरे स्थानों मे बन्द करके रख या (नीचा यच्छ) उन नीच, दुष्ट पुरुषों को बांध कर रख । (य') जो (अस्मान्) हमको (अभि दासति) सब प्रकार से नाश करना चाहता है उसको (अधर तम') नीचे गहरे अन्धकार के स्थान में (गमय) पहुंचा । हे योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीत असि) राज्यव्यवस्था द्वारा स्वीकृत है । (त्वा) तुझको (विमृधे इन्द्राय) विशेष रूप से शत्रुओं के नाशक, विशेष संग्रामकारी इन्द्र सेनापति के पद पर नियुक्त करता हूं । (ते एष योनि) तेरा यह पद या आश्रय है । (विमृध इन्द्राय त्वा) 'विमृध इन्द्र' नामक पद पर तुझे स्थापित करता हू ॥ शत० ४ । ६ । ४ । ४ ॥

[१] वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजेऽअद्या हुवेम । स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशंम्भूरवसे साधुकर्मा । [२] उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४५ ॥

शासो भारद्वाज ऋषिः । वाचस्पतिर्विश्वकर्मा इन्द्रो देवता । (१) भुरिगार्षी त्रिष्टुप् धैवत (२) स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—(वाच. पतिम्) वाणी के स्वामी, सब आज्ञाओं के स्वामी,

(विश्वकर्माणम्) समस्त कर्मों और धर्मों के व्यवस्थापक उनके सम्पादन करने कराने में समर्थ, (मनोजुवम्) मनके समान वेगवान् पुरुष को हम (अद्या) आज, नित्य (वाजे) संग्राम कार्य में (हुवेम) बुलाते हैं, चाहते है । (स.) वह (साधुकर्मा) उत्तम श्रेष्ठ कर्म करने हारा सदाचारी, अथवा सब कामों के करने में कुशल (विश्वशम्भू) सबका कल्याणकारी होकर (न) हमारे (विश्वानि) समस्त (हवनानि) प्रार्थनाओं को अभिलाषाओं को (जोपत्) स्वीकार करे और पूर्ण करे । हे योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीत असि) राष्ट्रव्यवस्था द्वारा स्वीकृत है । (त्वा इन्द्राय विश्वकर्मणे) तुझको 'विश्वकर्मा इन्द्र' के पद पर नियुक्त करता हूं । (एप ते योनि) यह तेरा पद और स्थान है (त्वा इन्द्राय विश्वकर्मणे) तुझको इन्द्र विश्वकर्मा पद पर स्थापित करता हूं ॥ शत० ४ । ६ । ४ । ५ ॥

[1] विश्वकर्मन् हुविषा वर्धनेन त्रातारमिन्द्रमकृणोरवध्यम् । तस्मै विश्. समनमन्त पूर्वीरयमुग्रो विहव्यो यथासत् । [2] उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा विश्वकर्मणऽएष ते योनिरिन्द्राय त्वा विश्वकर्मणे ॥ ४६ ॥

शासो भारद्वाज ऋषि॰ । विश्वकर्मा इन्द्रो देवता । पूर्ववत् छन्द.स्वरौ ॥

भा०—हे (विश्वकर्मन्) समस्त कला कौशल के कार्यों को भली प्रकार से सम्पादन करने में समर्थ विद्वान् क्रियाकुशल पुरुष ! तू (वर्धनेन हविषा) वृद्धि करने वाले उपाय या साधन से या काष्ठ, लोह आदि पदार्थों के छेदन भेदन की (हविषा) उचित साधन से सामग्री से (त्रातारम्) राष्ट्र के रक्षक इन्द्र को (अवध्यम् अकृणोः) अवध्य, बना देता है । अर्थात् तेरे कौशलों से सुरक्षित राजा को कोई भी युद्ध मे मारने मे समर्थ नहीं होता है । (तस्मै) उस रक्षक राजा के आगे (पूर्वी) शिक्षा

४६—अतःपर 'विश्वकर्मन्० ०सूरिरस्तु' अय (यजु १७ । २२) मन्त्रः पठ्यते । काण्व० ॥

में पूर्ण, (विशः) समस्त प्रजाएं (सम् अनमन्त) भली प्रकार झुकती हैं। तेरे ही कारण (अयम्) यह राजा (विहव्यः) विशेष साधनों से सम्पन्न (यथा असत्) जिस प्रकार हो तू ऐसा प्रयत्न कर। हे योग्य पुरुष (उपयाम गृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत् ॥ शत० ४।५।४।६॥

उपयामगृहीतोऽस्यग्नये त्वा गायत्रच्छन्दसंगृह्णामिन्द्राय त्वा त्रिष्टुप्छन्दसं गृह्णामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जगच्छन्दसंगृह्णाम्यनुष्टुप्तेऽभिगरः ॥ ४७ ॥

देवा ऋषय। अदाभ्यो देवता ! विराड् ब्राह्मी बृहती मध्यमः ॥

भा०—हे योग्य पुरुष तू (उपयामगृहीतः असि) राज्यव्यवस्था द्वारा स्वीकृत है। (अग्नये) अग्नि पद के लिये (गायत्रछन्दसम्) गायत्री छन्द से युक्त (त्वा) तुझको (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। और हे पुरुष (त्रिष्टुप् छन्दसम् त्वा) त्रिष्टुप् छन्द से युक्त तुझको (इन्द्राय) इन्द्रपद के लिये स्वीकार करता हूं। (जगत्-छन्दसं त्वा) जगत् छन्द से युक्त तुझको (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) समस्त देव विद्वानों के हित के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं। हे राजन् ! (ते अभिगरः) तेरा उपदेष्टा आज्ञापक (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् यह वेदवाणी है॥ शत० ॥

(१) 'गायत्रछन्दसं'—गायत्रोऽयं भूलोकः ॥ कौ० ८।९॥ ब्रह्म-गायत्री, क्षत्र त्रिष्टुप्। भूलोक और ब्रह्म वेद या ब्राह्मणों की 'छन्दस्' अर्थात् आच्छादक रक्षक को 'अग्नि' पद के लिये नियुक्त करे।

(२) क्षत्रस्यैवै तच्छन्दो यत् त्रिष्टुप्। कौ० १०।५॥ बलं वै वीर्यं त्रिष्टुप् कौ० ७।२॥ बल की रक्षा करने वाले को 'इन्द्र' पद के लिये नियुक्त करे।

(३) पशवो वै जगती कौ० १६।२॥ जगती वै छन्दसा परमं पोषं पुष्टा। समस्त अन्य देवों के पदों पर पशु प्रजा समृद्धि के पालक पुरुषों को नियुक्त करे॥

(४) 'अनुष्टुप्'—वाग् वा अनुष्टुप् । श० ३ । १ । ४ । २ ॥ प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् । ता० ४ । ८ । ९ ॥ आनुष्टुभो राजन्य. । तै० १ । ८ । २ ॥ वाणी और प्रजा पालक शक्ति राष्ट्र का 'अभिगर' आज्ञापक या उपदेष्टा हो ।

[1] प्रेशीनां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [2] कुकूननानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [3] भन्दनानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [4] मदिन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [5] मधुन्तमानां त्वा पत्मन्नाधूनोमि । [6] शुक्रं त्वा शुक्र आधूनोम्यन्हो रूपे सूर्यस्य रश्मिषु ॥ ४८ ॥

देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवता । (१, ३, ४, ५) याजुषी त्रिष्टुप् धैवतः ।
(२) याजुषी जगती । निषादः । ६ । साम्नी बृहती मध्यमः ॥

भा०—हे सोम ! राजन् ! हे (पत्मन्) पतनशील ! (प्रेशीनाम्) आवृतस्थान पर शयन करने वाली प्रजाओं के बीच धर्माचरण से गिरते हुए (त्वा) तुझको (आधूनोमि) तुझे कपाता हूं । (कुकूननाना त्वा पत्मन् आधूनोमि) निरन्तर विद्याभ्यास करने वाली विनयशील प्रजाओं के बीच न्यायाचरण से गिरने पर (त्वा) तुझको मैं (आधूनोमि) कम्पित करूं । (भन्दनाना) कल्याणकारिणी, सुख देने वाली प्रजाओं के बीच (पत्मन् त्वा आधूपयामि) तेरा अधःपतन होने पर मैं पुरोहित तुझको कम्पित करूं । (मदिन्तमाना पत्मन् त्वा आधूनोमि) अत्यन्त हर्षदायिनी, स्वयं सदा सन्तुष्ट रहने वाली प्रजाओं के बीच नीच आचरण से गिरने वाले तुझको मैं दण्ड से कम्पित करूं । (मधुन्तमाना त्वा पत्मन् आधूनोमि) मधुर स्वभाव वाली ज्ञान सम्पन्न प्राजओं के बीच अन्यार्य से गिरने पर तुझको मै कम्पित करूं । हे (शुक्र) कान्तिमान् शुद्धाचरणवान् राजन् ! (अन्हः रूपे) दिन या सूर्य के प्रदीप्त स्वरूप में और (सूर्यस्यरश्मिषु) सूर्य की किरणों

४८—'मध्वन्तमाना०' इति काण्व० ॥

के समान स्वयं सब प्रकार का कार्य साधन करने वाले पुरुषों में (शुक्रम्) दीप्तिमान् तुझको मैं पत्यन्) नीचाचार होने पर मैं तुझे (आधूनोमि) कम्पित करता हू । पुरोहित राजा को नाना प्रकार की प्रजाओं में रहकर नीच आचार करने पर भयादि दिखाकर उन दुराचारों से बचावे। राजा प्रजा के समान पति पत्नी का भी व्यवहार है। अतः पत्नी या पुरोहित भिन्न स्वभाव की परदाराओं के निमित्त दुराचार में गिरने वाले पति को नाना उपायों से दण्डित कर दुष्ट मार्ग से बचावे ॥

[1] कुकुभꣳ रूपं वृषभस्य रोचते बृहच्छुक्रः शुक्रस्य पुरोगाः सोमः सोमस्य पुरोगाः । [2] यत्ते सोमादाभ्यन्नाम जागृवि तस्मै त्वा गृह्णामि तस्मै ते सोम सोमाय स्वाहा ॥ ४९ ॥

देवा ऋषयः । विश्वेदेवाः प्रजापतयो देवताः । (१) विराट् प्राजापत्या जगती । निषादः । (२) भुरिगार्षी उष्णिक् । धैवतः ॥

भा०—(वृषभस्य) सब सुखों के वर्षक राजा या सभापति का (ककुभम्) दिशा के समान शुद्ध और आदित्य के समान कान्तिमान् (रूपं रोचते) रूप प्रकाशित होता है । (शुक्रस्य) दीप्त, उज्ज्वल शुद्ध धर्म का (बृहत्) महान् (शुक्रः) कान्तिमान आदित्य जिस प्रकार (शुक्रस्य) शुद्ध दीप्तिमानादिका (पुरोगाः) पुरोगामी, नेता, प्रवर्त्तक, होता है उसी प्रकार (शुक्र) तेजस्वी शुद्धाचारी राजा ही (शुक्रस्य पुरोगाः) शुक्र और तेजस्वी धर्मानुकूल राष्ट्र का नेता होता है, या तेजस्वी राजा का तेजस्वी विद्वान् ही पुरोगामी नेता होता है । इसी प्रकार (सोम.) हे राजन् तू सोम सबका प्रेरक होकर (सोमस्य) ऐश्वर्य पूर्ण राष्ट्र का (पुरोगा) नेता हो । हे सोम ! राजन् ! (यत) क्योंकि (ते) तेरा (अदाभ्यम्) कभी नाश न होने वाला

४९—'ककुहꣳ'० 'बृहत्सोमः सोमस्य पुरोगा शुक्रा शुक्रस्य पुरोगाः स्वाहा। इति काण्व० ॥

(जागृवि) सदा जागरणशील, सदा सावधान (नाम) स्वरूप है (तस्मै) उस कर्त्तव्य के लिये ही (त्वा गृह्णामि) तुझे मैं ग्रहण करता हूं । हे (सोम) राजन् ! (तस्मै ते) उस तेरे लिये (सु आहा) उत्तम यश प्राप्त हो ॥

उशिक् त्वं देव सोमाग्नेः प्रियं पाथोऽपीहि वशी त्वं देव सोमेन्द्रस्य प्रियं पाथोऽपीह्यस्मत्सखा त्वं देव सोम विश्वेषां देवानां प्रियं पाथोऽपीहि ॥ ५० ॥

देवा ऋषयः प्रजापतिः सोमो देवता । स्वराडार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे (देवसोम) दानशील, राजन् ! सोम ! तू (उशिक्) कान्तिमान् एवं इच्छावान् होकर (अग्ने.) उत्तम विद्वान्, अग्रणी पुरुष के (प्रियम् पाथः) प्रिय लगाने वाले, पालनकारी कर्त्तव्य को (अपीहि) प्राप्त हो । हे (देव सोम) देव ! सोम ! राजन् ! (त्वम्) तू (इन्द्रस्य प्रियम् पाथः अपीहि) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् सेनापति के प्रिय पालन व्यवहार को प्राप्त हो । हे (देव सोम) देव राजन् ! सोम ! तू (अस्मत् सखा) हमारा मित्र होकर (विश्वेषा देवानाम्) समस्त देवों, विद्वानों, राज्याधिकारियों और प्रजाजनों के (प्रियम् पाथ.) प्रिय अभिमत पालन-कर्त्तव्य या पदाधिकार को प्राप्त हो ॥

इह रतिरिह रमध्वमिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा । उपसृजन्धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् । रायस्पोषमस्मासु दीधरत् स्वाहा ॥ ५१ ॥

देवा ऋषयः । प्रजापतयो देवताः । आर्षी जगती । निषाद. ॥

५०—अतः पर (७ । २७–२६), (७ । ४१–४८), (८ । १५–२२) (८ । २३–२७), (८ । २८–३३), (८ । ४२–४३) (८ । ५२) क्रमशः पठ्यन्ते काण्व० ॥

भा०—हे प्रजापालक राजा के अधीन शासक पुरुषो ! हे गृहपति जनो ! (इह) इस राष्ट्र और घर में (रतिः) आनन्द प्रमोद आपकी इच्छा रहे । (इह रमध्वम्) यहां आप लोग आनन्द से जीवन व्यतीत करो । (इह) यहां (धृतिः) सब पदार्थ और व्यवहार स्थिर हैं आप लोगों की (स्वधृति) अपनी स्थिति और आपके समस्त पदार्थों की स्थिति (स्वाहा) सत्यवाणी और क्रिया भी यहां ही रहे । हे प्रजापालको ! आप लोग (धरुणम्) धारण करने योग्य जिस सन्तान को (मात्रे) पुत्र की माता के (उप असृजन्) आधीन करते हो वह (धरुणः) बालक (मातरम्) उस माता का (धयन्) स्तन्य-पान करता हुआ (अस्मासु) हम में (स्वाहा) उत्तम विद्या और सदाचार लाभ करके (राय पोषम् दीधरत्) धनैश्वर्य की वृद्धि करे ॥ शत० ४ । ६ । ७ । ६ ॥

सत्रस्य ऽऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता ऽअभूम ।
दिवं पृथिव्या ऽअध्यारुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ ५२ ॥

ऋ० ८ । ४८ । ३ ॥

देवा ऋषयः । प्रजापतिर्देवता । भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे राजन् ! (सत्रस्य) परस्पर संगत या एकत्र हुए राजा प्रजा के राष्ट्ररूप यज्ञ का (ऋद्धि असि) तू ऐश्वर्य या समृद्ध-रूप या शोभा है । हम सब प्रजाजन (ज्योति अगन्म) विज्ञान के प्रकाश और ऐश्वर्य को प्राप्त हों । हम लोग (अमृताः अभूम) अमृत, १०० वर्ष तक के दीर्घ जीवन वाले हों । (पृथिव्या) इस पृथिवी से (दिवम्) प्रकाशमय लोक, ज्ञान ऐश्वर्य को (अधि आरुहाम) प्राप्त हों । (देवान्) विद्वान् पुरुषों का (आ अविदाम) नित्य संग लाभ करें । और (ज्योतिः) सब पदार्थ के प्रकाशक (स्वः) सुखस्वरूप, आनन्दमय परम मोक्ष को भी प्राप्त करें ॥ शत० ४ । ६ । ६ । १२ ॥

¹युवं तमिन्द्रापर्वता पुरोयुधा यो नः पृतन्यादप तं-तमिद्धतं वज्रेण तं-तमिद्धतम्। ²दूरे चत्ताय छन्त्सद् गहनं यदिनक्षत्। ³अस्माकꣳ शत्रून् परि शूर विश्वतो दर्मा दर्षीष्ट विश्वतः। ⁴भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याम सुवीरा वीरैः सुपोषाः पोषैः॥ ५३॥　　ऋ० १। १३२। ६॥

देवा ऋषयः। इन्द्रापर्वतौ देवते। (१) आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धार। (२) आसुर्युष्णिक्। ऋषभः। (३) प्राजापत्या बृहती। मध्यम (४) विराट् प्राजापत्या बृहती। पञ्चम॥

भा०—हे (इन्द्रपर्वता) इन्द्र और पर्वत! सूर्य के समान तेजस्विन् और पर्वत के समान अभेद्य सेनापते! और व्यूहकारिन् सेनापति के सेनाजनो! (युवम्) आप दोनों (पुरायुधा) आगे बढ़कर युद्ध करनेवाले होकर (य) जो भी (न) हम पर (पृतन्यात्) सेना से चढ़ाई करे (तं त) उस २ को (इत्) ही (अप हतम्) मार भगाओ। (त तं) उस २ को (इत्) ही (वज्रेण) वज्र, खाँडा आदि अस्त्र शस्त्रों से (हतम्) मारो। (यद्) यदि वह शत्रुदल (गहनम्) हमारे सैन्य तक (इनक्षत्) पहुच जाय तो उसको (दूरे चत्ताय) दूर भगादेने के लिये (छन्त्सत्) पराक्रम से दूर करो। हे (शूर) शूरवीर सेनापते! तू (दर्मा) शत्रुदल के फाड़देने में समर्थ होकर (अस्माकम्) हमारे (विश्वतः) चारों तरफ आये हुए (शत्रून्) शत्रुओं को (विश्वत) सब ओर से एकदम (दर्षीष्ट) काट फाट डाले। (भू. भुव. स्व.) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों लोकों में हम (प्रजाभि.) अपनी उत्तम सन्तानों से (सुप्रजाः स्याम) उत्तम प्रजावान् बनें, (वीर.) वीर, (सुवीरा.) उत्तम वीरों वाले और (पोषै.) धनादि ऐश्वर्यों से (सुपोषा.) उत्तम समृद्धिशाली (स्याम) हों॥ शत० ४। ६। ६। १४—२५॥

५३—'०सुप्रजा: प्रजया।' इति काण्व०॥

प॒र॒मे॒ष्ठ्य॒भिधी॑तः प्र॒जाप॑तिर्वा॒चि व्याहृ॑ताया॒मन्धो॒ अच्छे॑तः । स॒वि॒ता स॒न्यां वि॒श्वक॑र्मा दी॒क्षायां॑ पू॒षा सो॑म॒क्रय॑ण्याम् ॥ ५४ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । साम्न्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—यज्ञमय प्रजापति या सोम के या राजा के कर्त्तव्यों के भिन्न २ रूप । (सोमः अभिधीत.) साक्षात् संकल्प किया जाय या मन से विचारा जाय तो वह वस्तुतः (परमेष्ठी) परम=सर्वोच्चस्थान पर विराजनेवाला है । (२) (वाचि व्याहृतायाम्) उच्चारण की जानेवाली वाणी या आज्ञा करने में वह (प्रजापतिः) 'प्रजापति' प्रजा का स्वामी है । (३) (अच्छेत अन्धः) साक्षात् देखने या प्राप्त करने पर 'अन्धः' अर्थात् अन्न के समान प्राणप्रद है । (४) वह (सन्यां) प्रजाओं को ऐश्वर्य बांटने के कार्य में राजा स्वयं (सविता) सूर्य के समान सबको समानरूप से प्रदान करता है । (५) (दीक्षायां विश्वकर्मा) दीक्षा अर्थात् व्रत धारण करने के अवसर पर वह विश्वकर्मा है वह समस्त कार्यों को सुचारु रूप से करने में समर्थ हो । (६) (सोमक्रयण्याम्) सोमक्रयणी अर्थात् सोम राजा को शासन के कार्य के लिये समस्त पृथिवी को समक्ष रखकर प्राप्त करने के अवसर पर वह साक्षात् (पूषा) 'पूषा' सबका पोषक है ॥

सोमयाग के पक्ष में—यजमान के संकल्प करने पर सोम परमेष्ठी है । मुंह से कहदेने पर कि मैं सोमयाग करूंगा वह सोम 'प्रजापति' है । सोम को आंखों से देखले तो वह सोम 'अन्धस्' है । सोम को विभक्त करने पर वह 'सविता' है । दीक्षा लेने के अवसर पर 'विश्वकर्मा' है । सोमक्रयणी इष्टि के अवसर पर वह 'पूषा' है ।

इन्द्र॑श्च म॒रुत॑श्च क्र॒याया॒योपो॑त्थि॒तोऽसु॑रः प॒ण्यमा॑नो मि॒त्रः क्री॒तो विष्णु॑: शिपिवि॒ष्ट ऊ॒रावास॑न्नो वि॒ष्णु॑र्न॒रन्धि॑षः ॥ ५५ ॥

५५—'०क्रपाय०' इति दयानन्दाभिमत पाठ. । 'ऊरा आ०' इति काण्व० ।

भा०—(७) (क्रयाय उप-उत्थितः) क्रय अर्थात् द्रव्य देकर उसके बदले में शत्रु के विरुद्ध उठकर चढ़ते समय सोम अर्थात् राजशक्ति का स्वरूप (इन्द्र मरुतः च) इन्द्र सेनापति और मरुत् अर्थात् प्राणघातक सेना के वीरजन हैं। (८) (पण्यमानः) नाना भोग्य पदार्थों के एवज में खरीद कर उसको राजपद देते समय वह राजा सोम स्वय (असुरः) महान् व्यापारी है। (९) (क्रीत मित्र) जब स्वीकार ही कर लिया जा चुकता है तब वह प्रजा का मित्र स्नेही है। (१०) (उरौ) विशाल राज्य के आसन पर (आसन्नः) स्थित राजा साक्षात् (शिपिविष्टः विष्णुः) किरणों से आवृत, व्यापक तेज से युक्त सूर्य के समान 'शिपिविष्ट विष्णु' अथवा शयन स्थान में सोया, प्रसुप्तरूप में विद्यमान, व्यापक आत्मा के समान है। (११) (नरन्धिष) समस्त मनुष्यों को आज्ञा देने हारा और सबको हिंसा से बचाने वाला होकर वह (विष्णुः) 'विष्णु' है। 'इन्द्रश्च मरुतश्च क्रपायोपोत्थितः' यह पाठ महर्षि दयानन्द को अभिप्रेत है। उस पाठ में (क्रपाय उप-उत्थितः) बलपूर्वक कार्य करने के लिये उद्यत राजा इन्द्र और मरुत् है। ऐसा अर्थ जानना चाहिये ॥

'शिपिविष्टः'—शिपयोऽन्तर्रश्मय उच्यन्ते तैराविष्टो भवति। निरु० ५। २। ३॥ अन्यत्र। ऋ० ७। १००। ६। "किमित्ते विष्णोऽपरि-ऽद्य भूत्। प्रयद् वक्षे शिपिविष्टो अस्मि। मा वर्पो अस्मदपगूह एतत् यद् अन्यरूपः समिथे बभूथ"। हे प्रजापालक विष्णो! राजन्! तेरे विषय में हम क्या कहें? तू अपने को 'शिपिविष्ट' कहता है। अपना वह तेजस्वीरूप हम से मत छिपा जो युद्ध में तू दूसरा रूप धारण करता है॥

प्रोह्यमा॑णः॒ सोम॒ऽआग॑तो॒ वरु॑णऽआस॒न्द्यामास॑न्नो॒ऽग्निराग्नी॑ध्र॒ऽइन्द्रो॑ हवि॒र्द्धाने॒ऽथर्वो॑पावह्रि॒यमा॑णः ॥ ५६ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। आर्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(प्र ऊह्यमाणः आगतः) अति आदर से सवारी आदि द्वारा लाया जाकर जब राजा प्राप्त होता है तब वह (सोमः) 'सोम', सर्वोपरि शासक और सबका आज्ञापक है। (आसन्द्याम् आसन्नः) आसन्दी राज्यसिंहासन पर स्थित हुआ वह राजा (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब से वरण करने योग्य, पापों से निवारक 'वरुण' है। (आग्नीध्रे अग्निः) तेजस्वी पद पर विराजमान, अग्नि के समान सन्तापकारी पद पर विराजमान वह (अग्निः) अग्नि है। (हविर्धाने) वह अन्न द्वारा सब राष्ट्र के पालक 'हविर्धान' सब से मुख्य पद पर विराजता हुआ समस्त पृथिवी पर शासन करता हुआ राजा (इन्द्रः) 'इन्द्र' है (उपावह्रियमाणः अथर्वा) प्रजा की रक्षा करने के लिये सदा उसके संनिकट स्थापित रहता हुआ वह (अथर्वा) अहिंसक, प्रजापालक 'अथर्वा', प्रजापति है॥

'आग्नीध्रम्'—अन्तरिक्षम् आग्नीध्रम्। शत० ९। २। ३। १५। द्यावापृथिव्यौ वा एष यदाग्नीध्रः। श० १। ८। १। ४॥

हविर्धानम्। शिर एवाऽस्य यज्ञस्य हविर्धानम्। श० ३। ५। ३। ५॥ अयं वै लोको दक्षिणं हविर्धानम् कौ० ८। ४॥

विश्वे॑ दे॒वाऽअ॒ꣳशुषु॒ न्यु॒प्तो विष्णु॑राप्रीत॒पाऽआ॑प्या॒य्यमा॑नो य॒मः सू॒यमा॑नो॒ विष्णु॑: सम्भ्रि॒यमा॑णो वा॒युः पू॒यमा॑नः शु॒क्रः पू॒तः शु॒क्रः क्षी॑र॒श्रीर्म॒न्थी स॑क्तु॒श्रीः॥ ५७॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते। भुरिक् साम्नी बृहती। मध्यम ॥

भा०—(अंशुषु) राज्यशासन के विभागों में वही राजपद (न्युप्त) पृथक् २ बांट दिया जाकर (विश्वेदेवाः) 'विश्वेदेव' अर्थात् समस्त राजपदाधिकारी होजाते हैं। (आप्रीतपाः) सब प्रकार सन्तुष्ट प्रजाजनों का पालन करनेहारा और (आप्यायमानः) स्वयं भी प्रजाओं

५७—'अंशुषु न्युप्यमानेषु' इति काण्व०।

द्वारा शक्ति में अति हृष्ट पुष्ट होकर राजा (विष्णुः) 'विष्णु', सर्व राष्ट्र के व्यापक शक्तिवाला होता है। (सूयमान यमः) राजसूय द्वारा राज्याभिषेक किया जाकर राजा 'यम' सर्व नियन्ता होता है। (सम् भ्रियमाण विष्णुः) प्रजा द्वारा पालित पोषित, हृष्ट पुष्ट होकर राजा (विष्णुः) व्यापक शक्ति से युक्त 'विष्णु' होजाता है। (पूयमानः) स्वय पवित्र आचरणों से युक्त राजा (वायुः) वायु के समान राष्ट्र का जीवन, एव प्रजा को भी पवित्राचारी बनाने में समर्थ होता है। (पूतः शुक्र) स्वय पवित्र होकर ही वह 'शुक्र' तेजस्वी, कान्तिमान होता है। (शुक्रः) कान्तिमान् वीर्यवान् वह राजा (क्षीरश्रीः) क्षीर, दुग्ध के समान कान्तिवाला, कीर्तिमान् होता है। और (सक्तुश्रीः मन्थी) प्राप्त हुए अन्नादि पदार्थों का आश्रय लेकर ही राजा 'मन्थी' शत्रुओं का मथन करनेहारा होता है।

विश्वे॑ दे॒वाश्च॑म॒सेषून्नी॑तोऽसु॒र्होमा॒योद्य॑तो रु॒द्रो हू॒यमा॑नो वातो॑ऽभ्यावृ॑त्तो नृ॒चक्षाः प्रति॑ख्यातो भ॒क्षो भ॒क्ष्यमा॑णः पि॒तरो॑ नाराश॒ꣳसाः ॥ ५८ ॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । भुरिगार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—(चमसेषु उन्नीत) भिन्न २ पात्रों में अर्थात् राज्य के भिन्न भिन्न अंगों में बटा हुआ राजपद (विश्वे देवाः) 'विश्वेदेव' अर्थात् समस्त विद्वान् रापज्यदाधिकारियों के रूप से रहता है। (होमाय उद्यत) होम आहुति करने के लिये उद्यत अर्थात् युद्ध करने के लिये उद्यत राजा (असुः) 'असु' शस्त्र प्रक्षेप्ता धनुर्धर के रूप में होता है। (हूयमानः रुद्र) जब वह युद्ध में आहुति होजाता है तब वह 'रुद्र' दुष्टों को रुलाने में समर्थ 'रुद्र' रूप होजाता है। (अभि आवृत्तः) जब साक्षात् सामने वेग से आक्रमण कर रहा होता है तब वह (वात) 'वात', प्रचण्ड

५८—'०भक्ष पीतः पितरो नाराशसा साद्यमानः, इति काण्व० ।

वायु के समान 'वात' रूप साक्षात् 'आँधी' होता है। अथवा (अभि आवृतः) जब राजा प्रजा को या परराष्ट्र को चारों ओर से घेर लेता है तब वह (वात) वात वायु के समान उसको घेरता है। (प्रतिख्यातः प्रत्येक पुरुष को देखनेवाला होने से वह (नृचक्षाः) मनुष्यों का निरीक्षक 'नृचक्षा' कहाता है। (भक्ष्यमाण, भक्षः) जब समस्त प्रजाजन उसके राजत्व का सुख भोगते हैं तब वह 'भक्ष' सब राष्ट्र का भोक्ता कहाता है। तब (नाराशंसा) सभी उसकी प्रजा के लोग उसकी प्रशंसा करते हैं और नाना प्रकार से वह प्रजा का पालन करता है इसलिये वही राजा (पितरः) पितृगणों या प्रजापालकों के रूप में प्रकट होता है।

[1] सुन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः समुद्रोऽभ्यवह्रियमाणः सलिलः प्रप्लुतो ययोरोजसा स्कभिता रजांसि वीर्येभिर्वीरतमा शविष्ठा [2] या पत्येतेऽअप्रतीता सहोभिर्विष्णू अगन्वरुणा पूर्वहूतौ ॥ ५९ ॥
अथर्व० ७ । २५ । १ ॥

ऋषिर्देवता च पूर्वोक्ते । विष्णुर्वरुणश्च देवते । (१) आर्षी बृहती । निषादः ।
(२) विराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(अवभृथाय) राष्ट्र के पालन करने के लिये (उद्यतः) उत्कृष्ट नियमकारी राजा (सन्न) अपने राज्यासन पर अभिषिक्त होकर विराजा हुआ साक्षात् (सिन्धुः) महान् समुद्र के समान अति गम्भीर और अगाध गुणरत्नों से युक्त भयंकर भी होने से 'सिन्धु' रूप है। (अभ्यवह्रियमाण) जब प्रजाजनों द्वारा राजपद पर बैठा दिया जाता है और प्रजा उसका उपभोग करती है, तब वह (समुद्र) समस्त पदार्थों का उत्तम रीति से प्रदान करनेवाला, अनन्त रत्नों का आकर होने से 'समुद्र' होता है। (प्रप्लुत, सलिलः) वह राजा सर्वत्र प्रजाओं मे समान भाव से

व्यापक होकर पानी के समान फैल जाता है अत 'सलिलः' अर्थात् मानो दयाभाव से पानी २ हो जाता है।

(ययो.) जिन दोनों के (ओजसा) पराक्रम से (रजांसि) समस्त लोक (स्कभिता) स्थिर हैं और (या) जो दोनों (वीर्येभिः) अपने वीर्यों, सामर्थ्यों से (वीरतमा) सबसे अधिक वीर और (शविष्ठा) सबसे अधिक बलशाली हैं। और (या) जो दोनों (अप्रतीतौ) सर्व साधारण द्वारा न पहचाने गये, जिनके गुण वीर्य को कोई नहीं जानता कि कितना है, अथवा (अप्रति इतौ) शत्रुओं द्वारा मुकाबले पर न पराजित अर्थात् जिन पर शत्रु आक्रमण करने में समर्थ न हों ऐसे (सहोभिः) अपने पराजय करनेवाले बलों, सेनाओं सहित जो (पत्येते) शत्रु पर जा टूटते हैं वे दोनों ही (विष्णु) व्यापक सामर्थ्यवान् और (वरुणा) वरुण सर्वश्रेष्ट वरण करने योग्य एवं शत्रुओं के वारण में समर्थ, (पूर्वहूतौ) सर्व प्रथम, मुख्यरूप से विद्वानों द्वारा स्वीकार किये जाते हैं। उनको (अगन्) समस्त प्रजाजन प्राप्त होते हैं। अथवा उनको समस्त राष्ट्र प्राप्त है।

दे॒वान्दिव॑मगन्य॒ज्ञस्तत॑ो मा॒ द्रवि॑णमष्टु मनु॒ष्या᳕न॒न्तरि॑क्षमगन्य॒ज्ञस्तत॑ो मा॒ द्रवि॑णमष्टु पि॒तॄन् पृ॑थि॒वीम॑गन्य॒ज्ञस्तत॑ो मा॒ द्रवि॑णमष्टु यं कं च॑ लो॒कम॑गन्य॒ज्ञस्तत॑ो मे भ॒द्रम॑भूत् ॥ ६० ॥

विश्वेदेवा देवताः। स्वराड् साम्नी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—जो (यज्ञ) यज्ञ (देवान्) देवों, विद्वानों को और (दिवम्) विद्या आदि के प्रकाश को (अगन्) प्राप्त होता है (तत) उससे (मा) मुझको (द्रविणम् अष्टु) द्रव्य, ऐश्वर्य प्राप्त हो। जो (यज्ञः) यज्ञ, राजा प्रजा का व्यवहार (मनुष्यान् अन्तरिक्षम् अगन्) मनुष्यों को और अन्तरिक्ष, मेघ आदि को प्राप्त होता है (तत. मा द्रविणम् अष्टु) उससे मुझे ऐश्वर्य प्राप्त हो। और जो (यज्ञः पितॄन् पृथिवीम् अगन्) राष्ट्र के

पालक पितृलोगों और पृथिवी को प्राप्त है (ततः मा द्रविणम् अष्टु) उससे मुझे ऐश्वर्य प्राप्त हो। (यज्ञः) यज्ञ (यं कं च) जिस किसी (लोकम्) लोक को भी (अगन्) प्राप्त हो (ततः) उससे (मे) मुझे (भद्रम्) कल्याण और सुख ही (अभूत्) हो।

चतु॑स्त्रि॒ꣳश॒त्तन्त॑वो॒ ये वि॑तत्नि॒रे य॑ऽइ॒मं य॒ज्ञꣳ स्व॒धया॒ दद॑न्ते। तेषां॑ छि॒न्नꣳसम्वे॒तद्द॑धामि॒ स्वाहा॑ घ॒र्मोऽअप्ये॑तु दे॒वान् ॥ ६१ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । यज्ञो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ये) जो (इयं) इस (यज्ञं) यज्ञ को (वितत्निरे) विस्तृत करते है वे (चतुस्त्रिंशत्) ३४ चौंतीस हैं। यज्ञ के विस्तार करने से ही वे (तन्तव.) तन्तु हैं। पट को बनाने वाले जैसे तन्तु होते हैं उसी प्रकार राज्य आदि के घटक अवयव भी 'तन्तु' ही कहाते हैं। इसी प्रकार जगन्मय यज्ञ के घटक भी ३४ तन्तु ही हैं। (ये) जो वे (इमं यज्ञं) इस यज्ञ को (स्वधया) स्वधा, अपने धारण सामर्थ्य से और अन्न आदि पोषण सामर्थ्य से (ददन्ते) धारण करते हैं। (तेषाम्) उनका जो (छिन्नम्) पृथक् अपना २ कर्त्तव्य कर्म और अंश है उसको मैं (एतत्) इस प्रकार एक सगठित रूप से (स्वाहा) सत्य वाणी या उत्तम परस्पर आदान प्रतिदान द्वारा (सम् दधामि) एकत्र जोड़ता हूं। वह (घर्मः) घर्म, यज्ञ प्रदीप्त राष्ट्र या एकत्र किया हुआ एकीभूत यज्ञ (देवान्) देवों, विद्वान् शासकों को (अप्येतु) प्राप्त हो, उनके वश में रहे। ब्रह्माण्ड जगत् मय यज्ञ के ३४ तन्तु, आठ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र, प्रजापति और प्रकृति ये जगत् के ३४ कारण हैं। राष्ट्र में ५४ से ५९ तक कहे सोम राजा के अधीन ३४ पदाधिकारी जो सोम के ही अंश हैं वे ३४ तन्तु हैं ॥

य॒ज्ञस्य॒ दोहो॒ वित॑तः पुरु॒त्रा सोऽअ॑ष्ट॒धा दिव॑म॒न्वात॑तान। स य॑ज्ञ धुक्ष्व॒ महि॑ मे प्र॒जाया॑ꣳरा॒यस्पोषं॒ विश्व॒मायु॑रशीय॒ स्वाहा॑ ॥६२॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(यज्ञस्य) यज्ञ का (दोह) भरा पूरा सामग्रीसमूह या उत्तम फल (पुरुत्रा) नाना पदार्थों मे नाना प्रकार से (वितत) विस्तृत है। (स) वह (अष्टधा) आठों दिशा मे आठ प्रकार का होकर (दिवम् अनु आततान) सूर्य के प्रकाश के सामान आकाश मे फैल जाता है। हे (यज्ञ) यज्ञ ! वह तू (मे प्रजायाम्) मेरी प्रजा में (महि) बड़ा भारी (राय पोप) धनैश्वर्य की समृद्धि को (धुक्ष्व) प्रदान कर। और मैं (स्वाहा) उत्तम आचरण और उत्तम आहुति, उत्तम वाणी और उत्तम व्यवस्था द्वारा (विश्वम् आयु.) सम्पूर्ण आयु का (अशीय) भोग करू। राष्ट्रमय यज्ञ का उत्तम फल नाना प्रकार से फैलाता है, वह (अष्टधा) आठ अमात्य-आदि प्रकृतियों के रूप मे सब के ऊपर शिरोभाग के समान रहता है। वह मेरी प्रजाओं का ऐश्वर्य बढ़ावे। मैं राजा उत्तम आदान-प्रतिदान से पूर्ण आयु का भोग करू।

आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत्।
वाजं गोमन्तमा भर स्वाहा ॥ ६३ ॥

वसिष्ठ ऋषि । सोमो देवता । स्वराडार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (सोम) सोम राजन् ! तू (वीरवत्) वीर पुरुषों से युक्त (अश्ववत्) अश्व और अश्वारोहियों मे युक्त (हिरण्यवत्) सुवर्ण रत्नादि से समृद्ध धनैश्वर्य को (आ पवस्व) पवित्र कर, प्राप्त कर और हमें (गोमन्तम् वाजम्) गौ आदि पशु सम्पत्ति से समृद्ध (वाजम्) ऐश्वर्य को (स्वाहा) उत्तम यश कीर्त्ति और उत्तम ज्ञान और कर्म द्वारा (आ भर) प्राप्त करा।

राजा राष्ट्र में सुवर्णादि धन, घोड़े, वीर पुरुष, गौओं और अन्नो की वृद्धि करे। इसी प्रकार गृह यज्ञ का पति गृहस्थ भी ऐश्वर्य को प्राप्त करे।

॥ इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

इति मीमासातीर्थप्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्येऽष्टमोऽध्याय ॥

अथ नवमोऽध्यायः

१—३४ इन्द्रो बृहस्पतिश्च ऋषी ।

॥ ओ३म् ॥ देव॑ सवितः प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य । दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केतं॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाजं॑ नः स्वदतु॒ स्वाहा॑ ॥ १ ॥

सविता देवता । स्वराड्डार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (सवितः) सबके प्रेरक, आज्ञापक, ऐश्वर्यवन् ! चक्रवर्त्तिन् ! (देव) दानशील ! तेजस्विन् ! कान्तिमन् ! राजन् ! तू (यज्ञम्) यज्ञ प्रजापालन आदि राज्य कार्य को (प्रसुव) अच्छी प्रकार चला और (यज्ञपतिम्) यज्ञ, राज्य के पालन करने वाले अधिकारी और प्रजावर्ग को भी (प्रसुव) उत्तम रीति से चला । (दिव्य.) प्रकाशमान क्षात्र आदि गुणों से सम्पन्न (गन्धर्वः) पृथिवी का पालक, भूमिपति (केतपू) सबके ज्ञानों, मतियों को पवित्र रखने वाला, उनमें कभी दुष्ट विचार न उत्पन्न होने देने वाला, धर्मात्मा राजा और (वाचस्पतिः) वेद वाणी का पालक विद्वान्, आचार्य (नः) हमारे (केतम्) ज्ञान और विचारों को (पुनातु) सदा शुद्ध बनावे और वह (स्वाहा) उत्तम रीति से, वेदानुकूल (नः वाजं) हमारे अन्न आदि उपभोग योग्य ऐश्वर्य का (स्वदतु) उपभोग करे । राजा सबको उत्तम व्यवस्था में चलावे, सबको उत्तम शिक्षा दे । समस्त प्रजा के ऐश्वर्य का भोग करे । शत० ५ । १ । १ । १६ ॥

१—काण्वशाखायां इतः पूर्वं [अ० ७ । २७—२९, ४१—४८] मन्त्राः पठ्यन्ते । ततः [अ० ८ । २३—२७, २८—३२, ४२—४३, ५२, ५३, ५४— ६०] एते मन्त्रा क्रमशः पठ्यन्ते । ततो देवसविता० । इत्यादि । 'प्रसुवेम भगाय ।' ०केतपाः०, '०स्पतिर्नो अद्य वाज स्वदतु' इति काण्व० ।

¹ ध्रुवसदं त्वा नृषदं मनः सदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्। ² अप्सुषदं त्वा घृतसदं व्योमसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् पृथिविसदं त्वाऽन्तरिक्षसदं दिविसदं देवसदं नाकसदमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ २ ॥

इन्द्रो देवता । (१) आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः । (२) विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे इन्द्र ! राजन् ! तू (उपयाम गृहीत असि) राज्यव्यवस्था में नियुक्त राजपुरुषों, प्रजा के और राज्य के उत्तम पुरुषों और राज्य के साधनों और उपसाधनों से स्वीकृत है । (त्वा इन्द्राय) तुझको इन्द्रपद के (जुष्टं) योग्य जानकर (गृह्णामि) इस पद के लिये नियुक्त करता हूं । (ते एषः योनि) यह तेरा आश्रयस्थान और पद है । (जुष्टतमम्) सब से योग्यतम (ध्रुवसदम्) ध्रुव, स्थिररूप से विराजनेवाले (नृसदम्) समस्त नेता पुरुषों में प्रतिष्ठित (मन सदम्) सब प्रजाओं के मन में और मनन योग्य विज्ञान में प्रतिष्ठित (त्वा) तुझको स्थापित करता हू । इसी प्रकार, (अप्सुषदम्) प्रजाओं में, समुद्रों में और्वानल या विद्युत् के समान तेज पूर्वक विराजमान, (घृतसदम्) घृत मे अग्नि के समान तेजस्वीरूप से विराजमान (व्योमसदम्) आकाश में सूर्य के समान प्रतापी होकर विराजमान (त्वा) तुझको स्थापित करता हूं । (उपयामगृहीत. इत्यादि) पूर्ववत् । इसी प्रकार (पृथिवीसदम्) पृथिवी पर पर्वत के समान स्थिररूप से विराजने हारे (अन्तरिक्षसदम्) अन्तरिक्ष में वायु के समान व्यापक, (दिविसदम्) द्यौलोक या नक्षत्रगणों में सूर्य या चन्द्र के समान विराजमान (देवसदम्) देव-विद्वानो और योद्धाओं में विजिगीषु पुरुषों में प्रतिष्ठित (नाकसदम्) दु.खरहित धर्म या परमेश्वर में दत्तचित्त, (त्वा)

तुझको मैं राज्यपद पर प्रतिष्ठित करता हूं। (उपयामगृहीतः असि० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ५ । १ । २ । १-६ ॥

अपाꣳरसमुद्वयसꣳ सूर्ये सन्तꣳ समाहितम् । अपाꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् ॥ ३ ॥

इन्द्रो देवता । अतिशक्वरी । पञ्चम ॥

भा०—(उद्वयसम्) उत्कृष्ट दीर्घ जीवन को देने वाले (सूर्ये सन्तम्) सूर्य में सदा वर्त्तमान, सूर्य की रश्मियों द्वारा प्राप्त और (सम् आहितम्) उनके बल पर सर्वत्र व्याप्त (अपाम्) जलों के (रसम्) वीर्य ' ारूप जीवन को और (अपां रसस्य) जलों के रस अर्थात् साररूप भाग का भी (य. रस) जो रस, सारिष्ठ, सब से अधिक साररूप वीर्य धातु है, विद्वान् पुरुष जिस प्रकार हे (आपः) जलो ! (व.) आप के उसको (तम्) उस (उत्तमम्) सब से उत्कृष्ट वीर्य को (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं उसी प्रकार हे (आपः) आप्त प्रजाजनो ! (अपाम्) आप्त प्रजारूप (वः) आप लोगो का (उद्वयसम्) उत्कृष्ट, उन्नत जीवन वाले, दीर्घायु, अनुभवी (सूर्ये) सर्व प्रेरक राजा के आश्रय पर (सन्तम्) विद्यमान एवं (समाहितम्) उसके प्रति एकाग्र चित्त होकर रहने वाले (रसम्) वीर्यवान् राजबल को और (अपां रसस्य) प्रजाओ के बलवान् भाग मे से भी जो (रसः) उत्तम बल है (वः तम् उत्तमम् रसम्) आप लोगों के उस सर्वोत्कृष्ट रस या बल को मैं राष्ट्र का पुरोहित (गृह्णामि) प्राप्त करता हू और उसे राष्ट्र के कार्य में नियुक्त करता हूं । (उपयामगृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत् ॥ शत० ५ । १ । २ । ७ ॥

ग्रहाऽऊर्जाहुतयो व्यन्तो विप्राय मतिम् । तेषां विशिप्रियाणां वोऽहमिषमूर्जꣳ समग्रभमुपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णा-

म्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम् । सम्पृचौ स्थः सं मा भद्रेण पृङ्क्तं विपृचौ स्थो वि मा पाप्मना पृङ्क्तम् ॥ ४ ॥

लिंगोक्ता देवता । भुरिक्कृति. । निषाद. ॥

भा०—हे (ऊर्जाहुतय) अन्न और बलको ग्रहण करने और प्रदान करनेवाले (ग्रहा:) राज्य के भिन्न २ विभागों और अंगों को अपने अधीन पदाधिकारीरूप में स्वीकार करनेवाले पुरुषो ! आप लोग (विप्राय) राष्ट्र को विविध सम्पत्तियों से पूर्ण करनेवाले विद्वान् राजा को (मतिम्) सत् मति, मनन योग्य ज्ञान और शत्रुस्तम्भक बल (व्यन्त) विविध प्रकार से देते रहते हो। (विशि-प्रियाणाम् तेषाम्) प्रजाजनों में के प्रिय, या (वि-शिप्रियाणाम्) विविध शक्तियों और बल के सामर्थ्यों से युक्त (तेषाम्) उन आप लोगों के लिये मैं (इषम्) इच्छानुकूल अन्न और (ऊर्जम्) बलकारी अन्न, रस को (सम्-अग्रभम्) संग्रह करता हू । (उपयामगृहीत· असि०) इत्यादि पूर्ववत् । हे राष्ट्र के स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों गण ! (सम्-पृचौ स्थ) परस्पर अच्छी प्रकार सम्बद्ध होकर, दृढ़तया पतिपत्नीभाव मे बँध कर रहो। अथवा हे न्यायधीश और राजन् ! आप दोनों कल्याण सुख से युक्त करते हैं अत. आप 'सम्पृक्' हो अत (मा) मुझ राष्ट्रपति को (भद्रेण) कल्याण और सुख से (सम् पृङ्क्तम्) युक्त करो। हे न्यायाधीश और पालक शक्ति के स्वामिन् ! राजन् ! धर्म व्यवस्थापक विद्वान् पुरुषो ! हे स्त्री पुरुपो ! तुम दोनों (विपृचौ स्थ.) 'विपृक्' हो, अत (मा) मुझको (पाप्मना) पाप से (विपृङ्क्तम्) दूर रखने में समर्थ होओ॥ शत० ५ । १ । २ ८–१८ ॥

यज्ञ प्रकरण में सोम और सुराग्रह को 'सम्पृचौ' और अध्वर्यु और नेष्टा को 'विपृचौ' कहा है। प्रतिनिधिवाद से सोम और सुरा दोनों पुरुष और स्त्री

४—राजधर्मराजादयो देवता. । द० । 'सम्पृच स्थ० स मा भद्रेण पृङ्क्त विपृच स्थ वि मा पापेन पृङ्क्त,' इति काण्व० ।

के सांकेतिक नाम हैं। और अध्वर्यु वायु=विवेचक और नेष्टा पत्नीवान्=पालनशक्ति का स्वामी राजा कहाते हैं। वे कल्याण और सुख के साथ में योग करानेवाले और पाप से छुड़ानेवाले होने के कारण ही 'सम्पृक्' और 'विपृक्' कहे जाते हैं।

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ऽसि वाज॒सास्त्वया॒ऽयं वाज॑ᳬ सेत्। वाज॑स्य॒ नु प्र॑स॒वे मा॒तरं॑ म॒हीमदि॑तिं॒ नाम॒ वच॑सा करामहे। यस्या॑मि॒दं विश्वं॒ भुव॑नमावि॒वेश॒ तस्या॑न्नो दे॒वः स॑वि॒ता धर्मं॑ साविषत् ॥५॥

सविता देवता। भुरिग् अष्टिः। मध्यम ॥

भा०—हे वीर पुरुष! तू (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा का (वज्रः) शत्रु निवारक वज्र या खड्ग के समान शत्रु का नाशक (असि) है। तू (वाजसा) संग्रामों का पूर्ण अनुभवी है। (त्वया) तेरे द्वारा (अयम्) यह राजा (वाजम्) सग्राम को विजय (सेत्) करे। (नु) शीघ्र ही (वाजस्य प्रसवे) वीर्य के या युद्ध के ऐश्वर्यजनक कार्य में (महीम्) बड़ी (अदितिम्) अखण्डित, अविनाशी (मातरम्) भूमि माता को हम (वचसा) अपनी आज्ञा से (नाम) अपने अधीन वश (करामहे) करें। (यस्याम्) जिसमें (इदं) यह (विश्वं भुवनम्) समस्त संसार (आविवेश) स्थित है। (तस्याम्) उसमें (सविताः) सब अधिकारियों का प्रेरक प्रवर्त्तक और उत्पादक (देव) देव, राजा (नः) हमारे लिये (धर्म) धर्म, धारण या राष्ट्र व्यवस्था को (साविषत्) चलावे। अथवा (यस्याम् इदं भुवनं आविवेश) जिसमें यह समस्त विश्व स्थित है उसमें सर्वोत्पादक परमेश्वर (धर्म) हमारे पालन पोषण की सुव्यवस्था करे॥ शत० ५।१।४।३, ४॥

५—'०साविषक्' इति काण्व०।

रथपक्ष में—हे रथ! तू इन्द्र का संग्रामगामी वज्र है। तुझ से वह संग्राम में जावे। (आजाय प्रसवे) ऐश्वर्य के लाभ के लिये हम अखण्ड पृथिवी को (वचसा वाम करामहे) अपनी आज्ञा से वश करें। इत्यादि पूर्ववत्।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तिष्वश्वा भवत वाजिनः। देवीरापो यो वऽऊर्मिः प्रतूर्त्तिः ककुन्मान्वाजसास्तेनायं वाजꣳ सेत् ॥ ६ ॥

अश्वो देवता। भुरिग्जगती। निषादः ॥

भा०—(अमृतम्) अमृत, मृत्यु का निवारण करनेवाला, मूल कारण (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर विद्यमान है। और (भेषजम्) रोगों के दूर करने का सामर्थ्य भी (अप्सु) जलों के भीतर है। (उत) और हे (वाजिनः) वीर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषो! आप लोग (अपाम्) जलों के (प्रशस्तिषु) उत्तम प्रशंसनीय गुणों के आधार पर ही (अश्वाः भवत) अति वेगवान बलवान् हो जाओ।

राजा के पक्ष में—(अप्सुः अन्तः) आप्त प्रजाओं के बीच में ही (अमृतम्) राष्ट्र के मृत्युरूप शत्रु के आक्रमण आदि का निवारण करने का बल है और (अप्सु) उन प्रजाओं में ही (भेषजम्) सब कष्टों के दूर करने का सामर्थ्य है। हे (वाजिनः) वीर्यवाले योद्धा लोगो! आप लोग (अपाम् प्रशस्तिषु) प्रजाओं के भीतर विद्यमान प्रशंसनीय उत्तम गुणवान् पुरुषों के आधार पर ही (अश्वाः) शीघ्रगामी अश्व, बलवान् क्षत्रिय (भवत) होओ। हे (आपः देवीः) दिव्य आप्त पुरुषो! हे राजा की प्रजाओ! (यः) जो (वः) तुम्हारा (ऊर्मिः) उच्च सामर्थ्य और (प्रतूर्त्तिः) प्रकृष्ट क्रिया शक्ति है उनसे यह राजा (ककुन्मान्)

६—'देवीरापो अपां नपाद्यो वः ऊर्मि०' इति काण्व० ॥

सर्वश्रेष्ठ पद और सामर्थ्य को धारण करने और (वाजसाः) युद्ध में जाने के समर्थ हो। (तेन) उस पराक्रम से वह (वाजं सेत्) युद्ध को प्राप्त करे, युद्ध का विजय करे।

जलों के पक्ष में—जल के उत्तम गुणों पर ही अश्व अधिक वेग वाले होते हैं। उसी से बैल भी हृष्ट, पुष्ट और भूमि भी खूब उपजाऊ होती है, उससे भूमि-पति भी प्रभूत अन्न प्राप्त करता है ॥ शत० ५ । १ । ४ । ७ ॥

वातो॑ वा॒ मनो॑ वा गन्ध॒र्वाः स॒प्तवि॑ꣳशतिः। ते अग्रेऽश्व॑मयुञ्जँ॒स्तेऽअ॒स्मिन् ज॒वमाद॑धुः ॥ ७ ॥

अश्वो देवता। भुरिगुष्णिक्। ऋषभ ॥

भा०—(वातः वा) वायु जिस प्रकार वेग को धारण करता है, (मनः वा) और जिस प्रकार मन वेग को धारण करता है, और जिस प्रकार (सप्तविंशतिः गन्धर्वाः) सत्ताईस गन्धर्व=प्राण, इन्द्रियें और स्थूल सूक्ष्म भूत, सभी वेग धारण करते हैं उसी प्रकार (ते) वे विद्वान् पुरुष भी (अग्रे) अपने गाड़ियों और रथों के आगे (अश्वम्) वेगवान् अश्व, गतिसाधन यन्त्र या अश्व के समान कार्य निर्वाहक अग्रणी पुरुष को (अयुञ्जन्) जोड़ते हैं। और वे विद्वान् पुरुष (अस्मिन्) उसमें (जवम्) वेग और बल का (आदधुः) आधान करते हैं ॥ शत० ५ । १ । ४ । ८ ॥

वात॑रꣳहा भव वाजिन् यु॒ज्यमा॑न॒ऽइन्द्र॑स्येव॒ दक्षि॑णः श्रि॒यैधि॑। यु॒ञ्जन्तु॑ त्वा म॒रुतो॑ वि॒श्ववे॑दस॒ऽआ ते॒ त्वष्टा॑ प॒त्सु ज॒वं द॑धातु ॥८॥

अश्वो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (वाजिन्) ज्ञान और बल से युक्त पुरुष ! वेगवान् अश्व जिस प्रकार गाड़ी में लगाया जाता है और वह (वातरंहाः)

७—सेनापतिर्देवता। द०। 'वातो वो वा मनो वा०' इति काण्व०।

८—प्रजापतिर्देवता। द०।

वायु के समान तीव्र वेग से जाता है उसी प्रकार तू (युज्यमान) राष्ट्र के कार्य मे नियुक्त होकर वायु के समान तीव्र वेगवान् (भव) हो। और (दक्षिणः) तू दक्षिण अर्थात् बल के कार्यों में कुशल होकर (इन्द्रस्य) इन्द्र, राजा या सेनापति की (श्रिया) लक्ष्मी से युक्त (एधि) हो। अथवा तू (दाक्षिणः इन्द्रस्य) दक्ष, बल, सामर्थ्य वाले इन्द्र राजा की लक्ष्मी से युक्त हो, अथवा (इन्द्रस्य दक्षिणः इव) इन्द्र, राजा के दायें हाथ के समान उसका सर्वश्रेष्ठ सहायक होकर लक्ष्मी, धन ऐश्वर्य से युक्त हो। (विश्ववेदस मरुतः) समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों और ज्ञानो के स्वामी मरुत् गण, देव तुल्य राजा लोग, विद्वान् लोग और वैश्यगण (त्वा) तुझको उचित कार्य में (आ युञ्जन्तु) नियुक्त करें और (त्वष्टा) शिल्पी जिस प्रकार वेग युक्त यन्त्र को रथ में लगाता है और उसके (पत्सु) गमन करने वाले अंगों चक्रों में (जवं) वेग उत्पन्न करता है उसी प्रकार (त्वष्टा) राजा (ते) तेरे (पत्सु) चरणों में, गमन करने के साधनों में (जवम् आदधातु) वेग स्थापित करे ॥ शत० ५ । १ । ४ । ६ ॥

शिल्प यन्त्र के पक्ष में—हे (वाजिन्) वेग वाले, बल वाले पदार्थ तू यन्त्र में नियुक्त होकर वायु वेग से चल। तू (दक्षिण. इन्द्रस्य) बलशाली विद्युत की दीप्ति से चमक। सर्वज्ञ (मरुत॰) विद्वान् लोग तुझे नियुक्त करें। (त्वष्टा) शिल्पी तेरे पैरों, चक्रों में गति स्थापित करें।

जवो यस्ते वाजिन्निहितो गुहा यः श्येने परीत्तोऽअचरच्च वाते। तेन नो वाजिन् बलवान् बलेन वाजजिच्च भव समने च पारयिष्णुः। वाजिनो वाजजितो वाजꣳ सरिष्यन्तो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत ॥ ९ ॥

अश्वो वीरो वा देवता । धृति । ऋषभः ॥

भा०—हे (वाजिन्) विद्या, शास्त्र ज्ञान और संग्राम साधनों से

९—०'वाजजिच्चैधि म०' इति काण्व० ।

युक्त बलशालिन् सेनापते ! वीर पुरुष ! (गुहा निहितः) यन्त्र के गूढ स्थान में जिस प्रकार वेगजनक पदार्थ रक्खा जाता है उसी प्रकार (ते यः जवः) तेरा जो वेग तेरी (गुहा) गुहा में, बुद्धि में (निहितः) स्थित है और (यः) जो वेग (श्येने) श्येन अर्थात् बाजपक्षी में और उसके समान आक्रमण करने वाले तुझ में विद्यमान है और (यः) जो वेग (वाते च) प्रचण्ड वायु में (अचरत्) व्याप्त है । हे (वाजिन्) वेग और बल से युक्त सेनापते ! वीर पुरुष ! (तेन) उस वेग से और (बलेन) उस बल से तू (वाजजित् च) संग्रामविजयी भी हो और (समने) संग्राम में भी (पारयिष्णुः) हम सबको संकट से तराने वाला (भव) हो । हे (वाजिन.) वेगवान्, बलवान्, वीर, अश्वारोही पुरुषो ! आप लोग (वाजजित) संग्राम का विजय करने हारे हैं । आप लोग (वाजं सरिष्यन्तः) जब संग्राम में तीव्र वेग से शत्रु पर धावा करने को हों, तब सब लोग (बृहस्पतेः) बृहती, बड़ी भारी सेना के स्वामी, सैनापति या बड़े २ सेना सञ्चालकों के भी स्वामी, सेनाध्यक्ष के अथवा–बृहती, वाणी, आज्ञा के पति स्वामी, आज्ञापक पुरुष के (भागम्) सेवन करने योग्य आज्ञा-वचन को (अवजिघ्रत) सदा सूंघते रहो, सदा ग्रहण करते हो, उसकी सदा खोज में रहो उसके प्रति सदा सावधान रहो ॥ शत० ५ । १ । ४ । १०–१५ ॥

दे॒वस्या॒हꣳस॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यस॑वसो॒ बृह॒स्पते॑रुत्त॒मं नाक॑ꣳ रुहेयम् । दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यस॑वस॒ऽइन्द्र॑स्योत्त॒मं नाक॑ꣳ रुहेयम् । दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो॒ बृह॒स्पते॑रुत्त॒मं नाक॑मरुहम् । दे॒वस्या॒हꣳ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवस॒ऽइन्द्र॑स्योत्त॒मं नाक॑मरुहम् ॥ १० ॥

इन्द्रा बृहस्पती देवते । विराड् उत्कृतिः । षड्जः ॥

१०—देवस्य वय स०, ० रुहेम्, '० मारुहम् । इन्द्रास्योत्तम नाकमारुहाम' इति काण्व० ।

भा०—(अहम्) मैं (सवितुः) सर्वप्रेरक, (सत्यसवसः) सत्य मार्ग पर चलने की आज्ञा देने वाले, (बृहस्पतेः) बृहती, बड़ी भारी सेना के पालक, सेनाध्यक्ष के (सवे) आज्ञा, अनुशासन में रह कर और उसी प्रकार सर्वप्रेरक, सत्यमार्ग या उचित मार्ग में आज्ञा करने वाले, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा के (सवे) शासन में रह कर (उत्तमम् नाकम्) सब से उत्कृष्ट, सुखमय लोक और पद को (रुहेयम्) प्राप्त होऊं ॥ शत० ५ । १ । ५ । १–५ ॥

परमेश्वर के पक्ष में—(देवस्य) सर्वतः प्रकाशमान, (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक (सत्यसवसः) सत्य ऐश्वर्यवान्, (बृहस्पतेः) बृहती वेदवाणी और महती प्रकृति आदि के पालक स्वामी परमेश्वर के (सवे) उत्पन्न किये संसार में और (सत्यसवसः इन्द्रस्य) सत्य न्याययुक्त शासन वाले, इन्द्र परमैश्वर्यवान् सम्राट् या राजा के (सवे) ऐश्वर्य या समृद्ध शासन में रहकर मैं (उत्तमं नाकम् अधिरुहेयम्) उत्तम दुःखरहित और सुखमय आनन्द को प्राप्त होऊं ।

इसी प्रकार (अहम्) मैं (सवितुः) सकल ऐश्वर्योत्पादक (सत्यप्रसवसः) सत्य ज्ञान के प्रसव करनेवाले सकल बोधों के जनक (बृहस्पतेः सवे) वेदवाणी के पालक आचार्य, विद्याप्रकाशक आचार्य के शासन में रहकर मैं (उत्तमं नाकम् अरुहम्) उत्तम सुखमय स्थिति को प्राप्त करूं। इसी प्रकार (देवस्य) धनुर्विद्या में विज्ञ (सवितुः) विजयोत्पादक (सत्यप्रसवसः) सत्य व्यवहारों और विजयों के कर्त्ता (इन्द्रस्य) शत्रुनाशक सेनापति के (सवे) शासन में रहकर मैं (उत्तमं नाकम् अचरम्) उत्तम सुख को प्राप्त होऊं ॥

बृह॑स्पते॒ वाजं॑ जय॒ बृह॒स्पत॑ये॒ वाचं॑ वदत॒ बृह॒स्पतिं॒ वाजं॑ जापयत ।
इन्द्र॒ वाजं॑ ज॒येन्द्रा॑य॒ वाचं॑ वद॒तेन्द्रं॒ वाजं॑ जापयत ॥ ११ ॥

इन्द्रबृहस्पती देवते । जगती । निषादः ॥

भा०—हे (बृहस्पते) बृहस्पते ! महती सेना के स्वामिन् ! तू (वाजं जय) संग्राम को विजय कर । (बृहस्पतये) उक्त बृहस्पति के लिये हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वाचं) उत्तम विज्ञानयुक्त वाणी का (वदत) उपदेश करो, उसके योग्य उसको ज्ञान प्राप्त कराओ। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (बृहस्पतिम्) महान् राष्ट्र के पालक राजा के (वाजम्) संग्राम को (जापयत) विजय कराने में सहायता दो । हे (इन्द्र) इन्द्र ! राजन् ! तू (वाजं जय) संग्राम का विजय कर। हे विद्वान् पुरुषो ! (इन्द्राय वाचं वदत) इन्द्रपद के योग्य ज्ञानवाणी को उपदेश करो । और (इन्द्रं वाजं जापयत) इन्द्र राजा के युद्ध विजय मे सहायता करो ।

वेदज्ञ बृहस्पति के पक्ष में—वह (वाजं जय) ज्ञान, विद्या-बोध प्राप्त करे और (वाजं) वेदवाणी का उसको उपदेश करे । उसको ज्ञान प्राप्त करने में सब सहायता दें ॥ शत० ५ । १ । ५ । ८-६ ॥

एषा वः सा सत्या संवागंभूद्यया बृहस्पतिं वाजमजीजपताजीजपत बृहस्पतिं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् । एषा वः सा सत्या संवागंभूद्ययेन्द्रं वाजमजीजपताजीजपतेन्द्रं वाजं वनस्पतयो विमुच्यध्वम् ॥ १२ ॥

इन्द्राबृहस्पती देवते । स्वराड् अतिधृति । षड्जः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (व) आप लोगों की (एषा) यह (सा) वह (सत्या) सत्य, न्याययुक्त, उचित (सं-वाग्) सम्मिलित, एक दूसरे से संगत वाणी (अभूत्) होना चाहिये (या) जिससे (बृहस्पतिम्) बृहती सेना के स्वामी, सेनाध्यक्ष या बृहत् राष्ट्र के पालक राजा को (वाजम्) संग्राम का (अजीजपत) आप लोग विजय कराने में समर्थ होते हैं । आप लोग उस एक सम्मिलित उत्तम ज्ञान-वाणी से ही (बृहस्पतिम्) इस बृहस्पति राजा को (वाजं अजीजपत) संग्राम का विजय कराने में समर्थ

हुए हैं। अतः हे (वनस्पतय.) प्रजा समूहों के एवं सैनिक समूहों के पालक पुरुषो ! आप लोग (विमुच्यध्वम्) अपने सैनिकों, अश्वों और हस्तों को वन्धन से छोड़ दो। (एषा) यह (व.) तुम लोगों को (सत्या सवाग्) सच्ची, परस्पर सम्मिलित सहमति (अभूत्) है (यया) जिससे आप लोग (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (वाजम् अजीजपत) संग्राम को विजय कराते हो। आप लोग ही (इन्द्रम्) इन्द्र को (वाजम् अजीजपत) संग्राम विजय कराते हो। (वनस्पतय) हे सैनिक समूहों के पालक, अध्यक्ष कप्तान लोग ! (विमुच्यध्वम्) आप विजय के अनन्तर अपने सैनिकों, घोड़ों और रथों को छोड़ दो, उनके वन्धन खोल दो, उनको आराम दो॥ शत० ५।१।५।१२॥

समस्त सैनिक सेनानायक लोग मिलकर एक आवाज, एक आज्ञा से चलकर सेनापति राजा के युद्ध को विजय कराते हैं और विजय करलेने पर उनको अपने दस्तों और अश्व आदि के बन्धनमुक्त करने की आज्ञा हो।

दे॒वस्या॒हᳪ स॑वि॒तुः स॒वे स॒त्यप्र॑सवसो बृह॒स्पते॑र्वाज॒जितो॒ वाजं॑ जेषम्। वा॒जिनो॑ वाज॒जितो॒ऽध्व॑न स्कभ्नु॒वन्तो॒ योज॑ना॒ मिमा॑नाः काष्ठां॑ गच्छत॥ १३॥

भा०—(अहम्) मैं सेनानायक (सवितु) सर्वप्रेरक (सत्य प्रसवस) सत्य, यथार्थ, यथोचित आज्ञा के प्रदाता (देवस्य) सर्वप्रद, सर्वप्रकाशक विद्वान् (बृहस्पतेः) बड़ी सेना के पति, बड़े सेनाध्यक्ष के (सवे) शासन में रहकर उस (वाजजितः) संग्रामविजयी के (वाजम्) संग्राम को (जेषम्) विजय करूं। हे (वाजजित वाजिन.) सग्राम का विजय करनेहारे, वेगवान्, बलवान् अश्वो और अश्वारोही वीर सवार लोगो !

१३—देवस्य वय०, ०जेष्म। वाजिनो वाजं जयताध्वनः स्कम्नन्त। ०अनु-सन्तत्रीत्यत्प० इति काण्व०।

आप लोग (अध्वनः) शत्रु के बढ़ने के मार्गों को (स्कभ्नुवन्तः) रोकते हुए (योजना मिमानाः) कोसों को मापते हुए, अर्थात् वेग से कोसों लांघते हुए (क्षष्ठां गच्छत) परली सीमा तक पहुंच जाओ ॥ शत० ५ । १ । ४ । १५-१७॥

एष स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽअपिकक्षऽआसनि । क्रतुं दधिक्रा अनु सꣳसनिष्यदत्पथामङ्काꣳस्यन्वापनीफणत् स्वाहा ॥ १४ ॥

दधिक्रावा ऋषिः । अश्वो देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—(एषः स्य.) यह वह वीर सेनापति (वाजी) वेगवान् होकर (क्षिपणिम्) कशा को या शत्रुनाशक सेना को (तुरण्यति) बड़े वेग से चलता या आगे बढ़ाता है । (दधिक्राः) घुड़सवार को अपनी पीठपर लेकर वेगसे दौड़नेवाला अथवा मार्ग में आनेवाली रुकावटों को भी पार करजाने वाला अश्व (ग्रीवायां) गर्दन, (अपिकक्षे) बगलों और (आसनि) मुख में भी (बद्धः) बंधा हुआ होकर (क्रतुम्) क्रियावान् ज्ञानवान् कर्त्ता पुरुष, सवार को लेकर (अनु) उसके अभिप्राय के अनुकूल (संसनिष्यत्) निरन्तर दौड़ता हुआ (स्वाहा) अपने उत्तम वेग से, अपने पालक की वाणी के अनुसार (पथाम्) मार्गों के (अंकांसि) बीच में लगे समस्त चिह्नों को, या ऊंचे नीचे टेढ़े मेढ़े समस्त रास्तों को (अनु आ पनीफणत्) सुख से पार कर जाया करता है । सेनापति सेना को आगे बढ़ावे । घुड़सवार हण्टर लगावे । घोड़ा मय सवार के सब रास्ते पार करे । ऐसे घुड़सवार लेने चाहियें ॥ शत० ५ । १ । ४ । १८-१९ ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनुवाति प्रगर्धिनः । श्येनस्येव ध्रजतोऽअङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः स्वाहा ॥ १५ ॥

दधिक्रावा ऋषिः । दधि क्रावा अश्वो देवता । जगती । निषाद ॥

१४—बृहस्पतिर्देवता । द० ।

भा०—(उत) और (अस्य एव) इसके ही (द्रवतः) भागते हुए और (तुरण्यतः) वेग से जाते हुए (प्रगर्धिनः) प्रबल वेग से अगले मार्ग को पहुंचने की अभिलाषा करनेवाले (ऊर्जा सह) पराक्रम के साथ (परि तरित्रतः) बड़े वेग से भागते हुए (दधिक्रावृण्ण) मार्ग की समस्त बाधाओं को लांघते हुए अश्व को (अङ्कसम्) ध्वज, चामर आदि चिह्न (वेः पर्णं न) वेग से जाते हुए पक्षी या तीर के पंखों के समान और (प्रगर्धिनः) मांस या शिकार के अभिलाषी, (ध्रजतः) वेग से झपटते हुए (श्येनस्य इव) सेन के पंखों के समान (अनुवीति) उसके पीछे ही वेग से जाता है ॥ शत० ५ । १ । ५ । २० ॥

अथवा—(अङ्कसं परित्रतः) चिह्नों से युक्त मार्ग पर दौड़ते हुए अश्व का (पर्णम्) पालनकारी पूछ और वस्त्रादि शिकार पर झपटते हुए बाज के पंखों के समान पीछे को होजाते हैं । इस स्थल में 'पर्णम्' शब्द दीपकालंकार से है ।

शं नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः । ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृक॒ꣳ रक्षा॑ꣳसि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः ॥ १६ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अश्वो देवता । जगती निषादः ॥

भा०—(हवेषु) संग्रामों में (वाजिनः) वेगवान् घोड़े और घुड़सवार (नः) हमें (शम् भवन्तु) कल्याणकारी हों । और वे (देवताता) देवों, युद्ध के विजय करनेवाले विजेता लोगों क कामो मे (मितद्रवाः) परिमित गति से जानेवाले (सु-अर्काः) उत्तम सस्कार वाले, खूब सजे सजाये हों । वे (अहिम्) सर्प को, सर्प के समान कुटिलता से भागनेवाले या मेघ के समान वायु वेग से जाने या अपने ऊपर शर वर्षण करनेवाले शत्रु को और (वृक) चोर या भेड़िये या भेड़िये के समान पीछे से आक्रमण करनेवाले और (रक्षांसि) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषो को और (अमीवाः

रोग के समान दु:खदायी शत्रुओं को (सनेमि) सदा या शीघ्र ही (अस्मद् युयवन्) हम से दूर करें ॥ शत० ५ । १ । ५ । २२ ॥

ते नोऽअर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः। सहस्रसा मेधसाता सनिष्यवो महो ये धनꣳ समिथेषु जभ्रिरे ॥ १७ ॥

नाभानेदिष्ट ऋषि: । अश्वो देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—(ते अर्वन्तः) अश्व, अश्वों के ऊपर चढ़ने हारे राजा के अधीन वे वीर लोग (हवनश्रुत) ग्राह्य आज्ञा और शास्त्र-वचनों का श्रवण करने वाले ज्ञानी पुरुष हों । वे (विश्वे) सब (वाजिनः) ज्ञान और बल से युक्त (मितद्रवः) शास्त्र से जाने गये समस्त पदार्थों तक पहुंचाने वाले होकर (मे) मुझ, राजा की और राष्ट्रवासी प्रजाजन की (हवम्) ज्ञान-पूर्ण वचन या आज्ञा (शृण्वन्तु) सुनें । वे (सहस्रसाः) सहस्रों का वेतन पाने वाले (मेधसाता) प्राप्त होने योग्य अन्नों को (सनिष्यवः) प्राप्त करना चाहते हैं । (ये) जो (समिथेषु) संग्रामों में (महः धनम्) बड़े भारी धन ऐश्वर्य को (जभ्रिरे) प्राप्त करते हैं । वे लोग संग्राम के अवसरों पर देश की आगे लिखे प्रकार से रक्षा करें ॥ शत० ५ । १ । ५ । २३ ॥

वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषुऽविप्राऽअमृता ऋतज्ञाः। अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ १८ ॥

वसिष्ठ ऋषिः अश्वा देवताः । निचृत् त्रिष्टुप् । निषाद. ॥

भा०—हे (वाजिनः) बलवीर्य और अन्नादि वाले एवं अश्व के समान वेगवान्, एवं अश्वों पर चढ़ने वाले वीर पुरुषो ! और ज्ञानी लोगो ! आप लोग (वाजे वाजे) संग्राम संग्राम में (नः अवत) हमारी रक्षा करो । और हे (विप्राः) मेधावी विद्वान् जनो ! हे (अमृता) अमर, कभी नष्ट न

१७—'सहस्रसा मेधसाता इव त्मना महो०' इति काण्व० ।

होने वाले, एवं जीवन्मुक्त दीर्घ जीवी लोगो ! हे (ऋतज्ञाः) सत्य व्यवस्था के जानने वालो ! आप लोग (अस्य) इस (मध्व.) मधु, मधुर अन्न और ज्ञान का (पिबत) पान करो, भोग करो और (मादयध्वम्) तृप्त होओ । और (तृप्ता) तृप्त होकर (देवयानैः पथिभिः) देवों, विद्वानों के चलने योग्य धार्मिक या राजोचित मार्गों से (यात) गमन करो ॥ शत० ५ । १ । ५ । २४ ॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे । आ मा गन्तां पितरा मातरा चामा सोमोऽअमृतत्वेन गम्यात् । वाजिनो वाजजितो वाजꣳ ससृवाꣳसो बृहस्पतेर्भागमवजिघ्रत निमृजाना ॥ १९ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । निचृद्धृतिः । निषादः ॥

भा०—(मा) मुझको (वाजस्य प्रसवः) ज्ञान, बल और अन्न का ऐश्वर्य (आजगम्यात्) प्राप्त हो । (इमे) ये दोनो (विश्वरूपे) समस्त रोचना या दीप्ति युक्त पदार्थों को धारण करने वाली (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी, राजा और प्रजा (आ गन्ताम्) मुझे प्राप्त हों । (मा) मुझे (पितरा मातरा च) पिता और माता दोनों (आगन्ताम्) प्राप्त हों । (मा) मुझे (सोम) सर्वप्रेरक राजपद, ऐश्वर्य और ओषधियों का परम रस और वीर्य (अमृतत्वेन) रोगनिवारक, दीर्घजीवनरूप से (आ गम्यात्) प्राप्त हो । हे (वाजजित) संग्रामों का विजय करने हारे (वाजिन) बलवान् अश्वारोही वीर पुरुषो ! आप लोग (वाज ससृवास.) संग्राम को जानने हारे हैं । आप लोग (निमृजाना) सर्वथा शुद्ध पवित्र चित्त होकर (बृहस्पते भागम्) बृहती सेना के स्वामी सेनाध्यक्ष के सेवन करने योग्य वचन को (अवजिघ्रत) आदरपूर्वक, सावधान होकर ग्रहण करो । शत० ५ । १ । ५ । २६, २७ ॥

१९—'०गन्त पितरा मातरा युवमा सोमो अमृतत्वाय गम्यात् ।' इति काण्व० ।

आपये स्वाहा स्वापये स्वाहाऽपिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा वसवे स्वाहाऽहर्पतये स्वाहाह्ने मुग्धाय स्वाहा मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा विनंशिनऽआन्त्यायनाय स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाऽधिपतये स्वाहा ॥ २० ॥

वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिर्देवता । भुरिक् कृति । निषाद ॥

भा०—सूर्य के जिस प्रकार १२ मास हैं और उनमें उसके १२ रूप हैं इसी प्रकार प्रजापति के भी १२ रूप तदनुसार उसकी १२ अवस्थाएं हैं और उनके अनुसार १२ नाम हैं। [१] (आपये स्वाहा) सकल विद्याओं और सज्जनों को प्राप्त करने वाला, बन्धु के समान राजा 'आपि' है। उसको समस्त विद्याएं और ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया, यथार्थ साधना करनी चाहिये। [२] (स्वापये स्वाहा) शोभन पदार्थों को प्राप्त करने कराने वाला या उत्तम बन्धु पुरुष 'स्वापि' है। उत्तम पदार्थों और सुखों की प्राप्ति के लिये (स्वाहा) उसे उत्तम धर्मानुकूल आचरण करना चाहिये। [३] (अपिजाय स्वाहा) पुनः पुनः ऐश्वर्यवान् होने वाला। एक के बाद दूसरा आने के कारण राजा भी 'अपिज' है। इस प्रकार पुनः २ प्रतिष्ठा प्राप्त कर पदाधिकारी होने के लिये (स्वाहा) पुरुषार्थ युक्त साधना करनी चाहिये। [४] (क्रतवे स्वाहा) समस्त कार्यों का सम्पादक, एवं सब विद्याओं का विचारक ज्ञानी 'क्रतु' है। शरीर में आत्मा और राष्ट्र में राजा वह भी 'क्रतु' है। उस पद के लिये ज्ञान प्राप्त करने के लिये (स्वाहा) अध्ययन अध्यापन की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिये। [५] (वसवे स्वाहा) समस्त प्रजाओं को वसाने हारा राजा वसु है। उस पद को प्राप्त करने के लिये भी (स्वाहा) सत्य-व्यवहार वाणी और न्याय होना चाहिये। [६] (अह पतये स्वाहा) सूर्य जिस प्रकार दिन का स्वामी है पुरुषार्थ से काल-गणना द्वारा समस्त दिवस का पालक पुरुष भी 'अहःपति' है उसके लिये (स्वाहा) वह

काल विज्ञान की विद्या का अभ्यास करे। [७] (मुग्धाय) जिसका मोह का कारण उपस्थित होजाने पर ज्ञान का प्रकाश न रहे ऐसे (अह्ने) मेघ से आवृत सूर्य के समान ऐश्वर्य के मद में ज्ञान रहित प्रजापालक के लिये भी (स्वाहा) उसको चेतानेवाली वाणी का उपदेश होना चाहिये। [८] (मुग्धाय वैनंशिनाय) नाशवान् पदार्थों और नाशकारी आचरणों में, मोहवश ऐश्वर्यप्रेमी, विलासी एवं अत्याचारी राजा के लिये (स्वाहा) उसको सावधान करने और सन्मार्ग में लानेवाले उत्तम उपदेश होने चाहियें। [९] (विनंशिने) स्वयं विनाश को प्राप्त होनेवाले या राष्ट्र का विनाश करने में तुले हुए (आन्त्यायनाय) अन्तिम सीमा तक पहुचे हुए, अन्तिम, नीचतम कोटि तक गिरे हुए राजा को (स्वाहा) विनाशकारी आचरणों से बचानेवाला उपदेश और उपाय होना उचित है। [१०] (आन्त्याय) सबके अन्त में होनेवाले, सबसे परम, सर्वोच्च (भौवनाय) सब भुवनों पदों में व्यापक उनके अधिपति के लिये (स्वाहा) उन सब पदों के व्यवहार ज्ञान के उपदेशों की आवश्यकता है। [११] (भुवनस्य पतये) भुवन, राष्ट्र के पालक राजा को (स्वाहा) राष्ट्र पालन की विद्या दण्डनीति जाननी चाहिये और [१२] (अधिपतये स्वाहा) सब अध्यक्षों के ऊपर स्वामी रूप से विद्यमान राजा के लिये (स्वाहा) उत्तम राज्य नीति जाननी चाहिये ॥ शत० ५।२।१।२॥

आयु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पतां प्रा॒णो य॒ज्ञेन॑ कल्पतां॒ चक्षु॑र्य॒ज्ञेन॑ कल्पता॒ꣳ श्रोत्रं॑ य॒ज्ञेन॑ कल्पतां पृ॒ष्ठं य॒ज्ञेन॑ कल्पताम् य॒ज्ञो य॒ज्ञेन॑ कल्पताम्। प्र॒जाप॑तेः प्र॒जाऽअ॑भूम॒ स्व॒र्दे॑वाऽअगन्मा॒मृता॑ऽअभूम ॥ २१ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(यज्ञेन) यज्ञ, परस्पर के आदान प्रतिदान, राज्य की

२०—'०कल्पताम्। नाय एहि स्वो रोहाव। प्रजापतेः०' इति काण्व०।

व्यवस्था तथा प्राजापति रूप यज्ञ से (आयुः) सब प्रजाओं की दीर्घ जीवन (कल्पताम्) स्वस्थ बना रहे। (यज्ञेन प्राणः कल्पताम्) यज्ञ, एक दूसरे के अन्न आदि दान से प्राण पुष्ट हों। (यज्ञेन चक्षुः कल्पताम्) यज्ञ से, ज्ञान व्यवहार के देखने में समर्थ चक्षु बलवान् हो। (यज्ञेन श्रोत्रं कल्पताम्) यज्ञ द्वारा ही श्रोत्र, श्रवण शक्ति समर्थ बनी रहे। (यज्ञेन पृष्ठं कल्पताम्) यज्ञ से हमारी पीठ, मेरुदण्ड समर्थ बना रहे। (यज्ञः) हमारे यज्ञ, ईश्वरोपासना और आपस के धर्म कार्य सब (यज्ञेन कल्पताम्) उत्तम राजा के प्रजा पालन के कार्य से बने रहें। हम सब (प्रजापतेः) प्रजा पालक राजा की और परमेश्वर की (प्रजाः अभूम) प्रजाएं बनी रहें। हम लोग (देवाः) विजयी ज्ञानवान् होकर (स्वः अगन्म) परम सुखमय मोक्ष और सुखप्रद राज्य को प्राप्त हों। हम (अमृताः अभूम) परमेश्वर के राज्य में अमृत, मुक्त हो जायं और उत्तम प्रजापालक राजा के राज्य में (अमृतः) पूर्ण सौ वर्ष और उससे भी अधिक आयुवाले हों॥ शत० ५। २। १। ३–१४॥

एतद्वै मनुष्यस्यामृतत्वं यत्सर्वमायुरेति। श० ९। ५। १। १०॥ य एव शत वर्षाणि, यो वा भूयांसि जीवति स हैवैतदमृतमाप्नोति। श० १०। २। ६। ८॥

अस्मे वोऽअस्त्विन्द्रियम॒स्मे नृम्णमु॒त क्रतु॑र॒स्मे वर्चा॑ꣳसि सन्तु वः। नमो॑ मा॒त्रे पृ॑थि॒व्यै नमो॑ मा॒त्रे पृ॑थि॒व्याऽइ॒यं ते॒ राड्य॒न्तासि॒ यम॑नो ध्रु॒वोऽसि ध॒रुणः॑। कृ॒ष्यै त्वा॒ क्षेमा॑य त्वा र॒य्यै त्वा॒ पोषा॑य त्वा॥ २२॥

दिशो देवता। पृथिवी, आसन्दी सुन्वानश्च देवता। निचृदत्यष्टि। गान्धारः॥

भा०—हे (दिशः) दिशाओं, समस्त दिशाओं के निवासी प्रजा-

२२—नमो मात्रे पृथिव्या इम०, कृष्यै क्षेमाय रय्यै पोषाय॥ इति काण्व०।

जनो ! (वः) तुम्हारा (इन्द्रियम्) समस्त ऐश्वर्य और बल (अस्मे अस्तु) हम राज्यकर्त्ताओं के लिये उपयोगी हो। आप लोगों का (नृम्णम्) धन, (उत क्रतु.) बल और ज्ञान (अस्मे) हमारी रक्षा और वृद्धि के लिये हो। (वः) आप लोगों के (वर्चांसि) तेज (अस्मे) हमारे लिये उपयोगी (सन्तु) हों। इसी प्रकार प्रजाजन में राज्य के अधिकारियों से यही कहें कि-हे चारों दिशाओं के रक्षक पुरुषो ! आप लोगों का बल, धन, प्रज्ञान और तेज सब हमारी वृद्धि और रक्षा के लिये हो। सामान्यतः हम सब परस्पर प्रेम से रहते हुए अपने इन्द्रिय सामर्थ्य, धन, बल, विज्ञान और तेजों को एक दूसरे के लिये उपयोग करें। (मात्रे पृथिव्यै नमः) माता पृथिवी जो समस्त प्रजा को उत्पन्न करती और अन्न देती और राजा को भी उत्पन्न करती और पोषती है। उसको (नमः) हम आदर करते हैं। हे राजन् (इयं) यह पृथिवी ही तेरी (राड्) राजशक्ति है। तू (यन्ता असि) नियन्ता, व्यवस्थापक है। तू (यमन.) सब प्रकार से नियमन करनेवाला, (ध्रुव.) ध्रुव नक्षत्र के समान स्थिर, निश्चल, (धरुण असि) राष्ट्र को धारण करनेहारा, आश्रय-स्तम्भ है। हे राजन् ! पुरुष ! (त्वा) तुझको (कृष्यै) कृषि, खेती, पृथिवी पर अन्नादि उत्पन्न करने के लिये (त्वा क्षेमाय) तुझको जगत् के कल्याण के लिये, (त्वा रय्यै) तुझको राष्ट्र के ऐश्वर्य वृद्धि के लिये, (त्वा पोषाय) तुझको राष्ट्र के पशु समृद्धि के लिये नियुक्त किया जाता है॥ शत० ५। २। १। १९-२५॥

वाजस्येमं प्रसवः सुषुवेऽग्रे सोमꣳ राजानमोषधीष्वप्सु। ता ऽअस्मभ्यं मधुमतीर्भवन्तु वयꣳ राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः स्वाहा॥ २३॥

प्रजापतिर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(वाजस्य प्रसवः) संग्राम और वीर्य का ऐश्वर्य या समृद्धि ही (अग्रे) सबसे प्रथम (ओषधीषु सोमम्) ओषधियों में जिस प्रकार सोम सर्वश्रेष्ठ सबसे अधिक वीर्यवान् है उसी प्रकार (अशु) प्रजाओं में (इमं राजा) इस सर्वोपरि राजमान सम्राट् को (सुषुवे) उत्पन्न करता है। (ताः) वे ओषधियें (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (मधुमतीः) अन्न आदि मधुर पदार्थों से सम्पन्न हों और वे प्रजाएं भी अन्न आदि ऐश्वर्य से युक्त हों और जल भी मधुरगुण से युक्त हों। (वयम्) हम अमात्य आदि राष्ट्र के पालक पुरुष (राष्ट्रे) राष्ट्र में, सब कार्यों में (पुरोहिताः) अग्रसर होकर, मुख्य पद पर विराजकर राष्ट्र में (स्वाहा) उत्तम शासन व्यवस्था सहित (जागृयाम) सदा जागते रहें, सदा सावधान होकर शासन करें॥ शत० ५। २। २। ५॥

वाजस्येमां प्रसवः शिश्रिये दिवमिमा च विश्वा भुवनानि सम्राट्। अदित्सन्तं दापयति प्रजानन्त्स नो रयिं सर्ववीरं नियच्छतु स्वाहा॥ २४॥

प्रजापतिर्देवता। स्वराट त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(वाजस्य) अन्न, वीर्य और सांग्रामिक बल का (प्रसवः) उत्पादक यह (सम्राट्) सम्राट्, महाराज, (इमाम्) इस और (दिवम्) आदित्य, के समान प्रकाशमयी और आकाश के समान विस्तृत ज्ञानपूर्ण राजसभा को और विश्वा भुवनानि) समस्त भुवनों, देशों, लोकों को, समस्त लोकों को परमेश्वर के समान विशाल शक्ति से (शिश्रिये) धारण करता है। वह (प्रजानन्) सब कुछ जाननेहारा (अदित्सन्तम्) कर या किसी की देन को न देना चाहनेवाले से भी (दापयति) दिलवाता है। (स) वह (नः) हमें (सर्व वीरम् रयिम्) सब वीर पुरुषों से

२४—०'च्छतु।' इति काण्व०।

युक्त ऐश्वर्य को (स्वाहा) उत्तम धर्मानुकूल व्यवस्था से (नियच्छतु) प्रदान करे।

वाजस्य नु प्रसव आ बभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः। सनेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥ २५ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। प्रजापतिर्देवता। स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—जो पुरुष (वाजस्य) ज्ञान, बल और ऐश्वर्य को (नु) बहुत शीघ्र (प्रसव) प्राप्त करने, उत्पन्न करने और साधन में (आ बभूव) समर्थ होता और (इमा च) इन (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों, उनमें उत्पन्न प्राणियों और अधीन शासकपदों के भी (सर्वतः आ बभूव च) सब प्रकार से ऊपर उनके शासकरूप से विद्यमान है, वह (विद्वान् राजा) विद्वान्, ज्ञानी राजा (अस्मे) हमें ही (स्वाहा) उत्तम व्यवस्था, नीति और कीर्त्ति से (प्रजाम्) प्रजा और (पुष्टिम्) धन, अन्न और पशुओं की समृद्धि को (वर्धयमानः) बढ़ाता हुआ (सनेमि) अपने सदातन, स्थिर नीति से (परियाति) सबसे ऊपर के पद को प्राप्त हो जाता है। वही हमारा राजा होने योग्य है ॥ शत० ५ ॥ २ । २ । ७ ॥

सोमᳬं राजानमवसेऽग्निमन्वारभामहे। आदित्यान्विष्णुᳬं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिᳬं स्वाहा ॥ २६ ॥ ऋ० १० । १४१ । ३ ॥

तापस ऋषिः। सोमाग्न्यादित्यविष्णुसूर्यब्रह्मबृहस्पतयो विश्वेदेवाश्च देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हम लोग (अवसे) रक्षा के लिये (सोमम्) सौम्य स्वभाव, सबके प्रेरक और (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुतापक या

२५—'विद्वान् रयिं पुष्टिं०' इति काण्व० ॥

२६—'आदित्य वि०' इति काण्व० ॥

प्रकाशवान्, तेजस्वी विद्वान् पुरुष को (राजानम्) राजा (अनु आरभामहे) बड़े सोच विचार के पश्चात् बनावें। और (स्वाहा) उत्तम विद्या और आचार के अनुसार ही (आदित्यान्) ४८ वर्ष के ब्रह्मचारी, आदित्य के समान तेजस्वी विद्वानों को (विष्णुम्) व्यापक, सर्व विद्याओं और राज-व्यवस्थाओं में व्यापक, विज्ञ या पारगत (सूर्यम्) सूर्य के समान सबको समानरूप से प्रकाश देनेवाले और (ब्रह्माणम्) वेदों के विद्वान् और (बृहस्पतिम्) बृहती वेदवाणी, बृहत् महान् राष्ट्र और बृहत् बड़े बड़े आप्त पुरुषों के पालक पुरुष को भी हम (अनु-आ-रभामहे) अपनी रक्षा के लिये नियुक्त करें, उनको शासक अधिकारी बनावें ॥ शत० ५ । २ । २ । ८ ॥

अ॒र्य्य॒मणं॒ बृह॒स्पति॒मिन्द्रं॒ दाना॑य चोदय। वाच॒ विष्णु॑ᳬ सर॑स्वती॑ᳬ सवि॒तारं॑ च वा॒जिन॑ᳬ स्वाहा॑ ॥ २७ ॥

ऋ० १० । १४१ । ५ ॥

तापस ऋषिः। अर्यमबृहस्पतीन्द्र-वायु-विष्णु-सरस्वत्यो देवताः। अनुष्टुप्। गाधार ॥

भा०—हे राजन् ! तू (अर्यमणम्) पक्षपातरहित, न्यायकारी, (बृहस्पतिम्) वेदादि समस्त विद्याओं के विद्वान्, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य-वान् इन पुरुषों को (दानाय) दान करने के लिये (चोदय) प्रेरणा कर। न्यायकारी पुरुष उत्तम न्याय दे। बृहस्पति, विद्वान् ज्ञान प्रदान करे और इन्द्र, ऐश्वर्यवान् पुरुष धन दान दे और (वाचम्) वेदवाणी को, (विष्णुम्) व्यापक शक्ति वाले या सकल विद्यापारंगत पुरुष को और (सरस्वतीम्) बहुतसी विद्याज्ञानों को धारण करने वाली स्त्रियों को, (सवितारम्) सबके प्रेरक, आचार्य, सर्वोपदेष्टा पुरुष को और (वाजिनम्) ज्ञानी, बलशाली, ऐश्वर्यवान् पुरुष को (च) भी (स्वाहा) उत्तम सदा-चार नीति से (चोदय) चला ॥ शत० ५ । २ । २ । ६ ॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव। प्र नो यच्छ सहस्रजित्त्वꣳ हि धनदा असि स्वाहा ॥ २८ ॥ ऋ० १० । १४१ । १ ॥

तापस ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् । गाधार. ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! शत्रुतापक ! ज्ञानवान् ! तेजस्विन् ! राजन् ! तू (इह) यहा, इस लोक में, राष्ट्र में (न) हमें (अच्छा वद) उत्तम उपदेश कर। (न. प्रति सुमना. भव) हमारे प्रति उत्तम चित्त वाला होकर रह। तू (सहस्रजित्) हजारों युद्धों का विजय करने हारा है। तू (न प्रयच्छ) हमें ऐश्वर्य प्रदान कर। (त्वं हि) तू निश्चय से (स्वाहा) उत्तम नीति, रीति और कीर्ति से ही (न) हमें (धनदा. असि) धनैश्वर्य का प्रदाता है ॥ शत० ५ । २ । २ । १० ॥

प्र नो यच्छत्वर्य्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः। प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ॥ २९ ॥ ऋ० १० । १४१ । २ ॥

तापस ऋषिः । अर्यमादयो देवता । भुरिगार्षी गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(अर्यमा) अर्यमा, न्यायाधीश (पूषा) राष्ट्र का पोषक, सब को वेतनादि देने हारा, भागधुक् नामक वेतनाध्यक्ष या कराध्यक्ष (बृहस्पतिः) वेद का विद्वान् और ये सब (प्रयच्छतु) हमें उत्तम पदार्थ प्रदान करें और (वाग् देवी) वाणी, देवी अथवा विद्या से युक्त (देवी) माता (न) हमें (स्वाहा) उत्तम रीति से ज्ञान और पुष्टि (प्र ददातु) प्रदान करे ॥ शत० ५ २ । २ । ११ ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्।

२९—'०बृहस्पतिः प्र सरस्वती । प्र वाग्'० इति काण्व० ।

सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रिये दधामि बृहस्पतेष्ट्वा साम्राज्येनाभिषिञ्चाम्यसौ ॥ ३० ॥

तापस ऋषि । सुन्वन् देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—(सवितुः देवस्य) सविता देव, सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न किये संसार में, अथवा सर्वप्रेरक, सर्वोत्पादक पुरोहित (देवस्य) विद्वान् के (प्रसवे) विशेष आज्ञा या नियन्त्रण मे मैं (अश्विनो बाहुभ्याम्) शीघ्रगामी सूर्य और चन्द्र के समान या दिन और रात्रि के समान स्त्री पुरुषों की (बाहुभ्याम्) धारण और आकर्षणशील बाहुओ से और (पूष्णः) पोषक वर्ग के (हस्ताभ्याम्) हाथों से और (सरस्वत्यै) सरस्वती, परम विदुषी परिषद् और (बृहस्पते.) महान् वेदवाणी और महान् राष्ट्र के पालन में समर्थ (वाचः यन्तु.) वाणी का नियमन या अभ्यास करने वाले के (यन्त्रियं) उत्तम नियन्त्रण में (त्वा) तुझको (दधामि) स्थापित करता हूं। और (असौ) हे अमुक नाम वाले पुरुष ! (साम्राज्येन) इस महान् साम्राज्य के पदाधिकार सहित तुझको (अभिषिञ्चामि) अभिषिक्त करता हूं ॥ शत० ५ । २ । २ । १३ ॥

अग्निरेकाक्षरेण प्राणमुदजयत् तमुज्जेषमश्विनौ द्व्यक्षरेण द्विपदो मनुष्यानुदजयतां तानुज्जेषं विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रील्लोकानुदजयत्तानुज्जेषꣳ सोमश्चतुरक्षरेण चतुष्पदः पशूनुदजयत्तानुज्जेषम् ॥३१॥

तापस ऋषि. । अग्न्यादयो मन्त्रोक्ताः देवताः । अत्यष्टि । गान्धारः ॥

भा०—[१] (अग्निः) अग्नि, जिस प्रकार जीव, परमेश्वर (एकाक्षरेण) एक अक्षर ओंकार के बल से और एकमात्र वायु की अक्षय शक्ति से (प्राणम्) प्राण और महाप्राण वायु को (उद् अजयत्) अपने वश करता है, उसी प्रकार मैं राजा स्वयं (अग्नि) अग्नि के समान शत्रुओ

३०—'सम्राड देवता' । द० । 'यन्तुर्येतुर्यं दधामि०' शो० । 'षिन्चामीन्द्रस्य त्वा साम्राज्येनाभिषिन्चामि' इति काण्व० ।

को संतापकारी और अग्रणी होकर (एकाक्षरेण) अपने क्षीण होनेवाले, अपार बल से (तम् प्राणम्) उस प्राण को, प्रजा के जीवनाधार अन्न को (उत् जेषम्) अपने वश करूं ।

[२] (अश्विनौ) अश्विन्, दिन और रात्रि, सूर्य और चन्द्र, माता और पिता दोनों अपने (द्व्यक्षरे) दो प्रकार का अक्षय बल, प्रकाश, अन्धकार या श्रम और विश्राम. ताप और शीतलता, पराक्रम और प्रेम से (द्विपद मनुष्यान्) दोपाये मनुष्यों को (उद् अजयताम्) अपने वश करते हैं उसी प्रकार मैं राजा दिन रात्रि, सूर्य चन्द्र और माता पिता के समान होकर (द्विपदः मनुष्यान्) दो पाये मनुष्यों को काम और आरम्भ, तीव्रता और सौम्यता, पराक्रम और प्रेम इन दो दो प्रकार के अनश्वर सामर्थ्य से (उत् जेषम्) अपने वश करूं और उनको उन्नत करूं।

[३] (विष्णु) व्यापक प्रकाशवाला सूर्य जिस प्रकार (त्र्यक्षरेण) अपने तीन प्रकार के आदित्य, विद्युत् और अग्नि इन अक्षय बलों या तेजों से (त्रीन् लोकान्) तीनों लोकों को (उद् अजयत्) अपने वश कर रहा है उसी प्रकार मैं भी अपने तीन प्रकार के प्रज्ञा, उत्साह और बल इन तीन अक्षय सामर्थ्यों से (तान् त्रीन् लोकान्) उन उत्तम, मध्यम और निकृष्ट तीनों प्रकार के लोकों को (उत् जेषम्) वश करूं ।

[४] सोम) सोम परमेश्वर जिस प्रकार (चतुरक्षरेण) अपने चार अक्षय बल या अ, उ, म् और अमात्र इन चार अक्षरों से (चतुष्पद) चार चरणों वाले एव जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति और तुरीय इन चार स्वरूप या चार स्थिति वाले (पशून् साक्षात् द्रष्टा जीवात्माओं को (उत् अजयत्) अपने वश करता है उसी प्रकार मैं (सोमः) सर्वैश्वर्यवान्, सबका प्रेरक होकर (चतुरक्षरेण) अपने चार अक्षय बल, चतुरङ्ग सेना या साम, दान भेद और दण्ड इन चार उपायों द्वारा (तान् पशून्) उन पशुओं आदि को, ऐश्वर्यों को या पशुओं के समान प्राणोपजीवी प्रजापुरुषों को (उत् जेषम्) विजय करूं ॥ शत० ५ । २ । २ । १७ ॥

पूषा पञ्चाक्षरेण पञ्च दिश उदजयत्ता उज्जेषꣳ सविता षडक्षरेण षड् ऋतूनुदजयत्तानुज्जेषम् । मरुतः सप्ताक्षरेण सप्तग्राम्यान् पशूनुदजयँस्तानुज्जेषम् । बृहस्पतिरष्टाक्षरेण गायत्रीमुदजयत्तामुज्जेषम् ॥ ३२ ॥

[५] (पूषा) सर्व पोषक परमेश्वर या चन्द्र (पञ्चाक्षरेण) अपने पांच अक्षय, अविनाशी और पांच भूतरूप पांच सामर्थ्यों से (पञ्च दिशः) पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर, अधः-ऊर्ध्व, इन पांच दिशाओं को अथवा समष्टि जीव संसार में विद्यमान पांच ज्ञानदर्शक, ज्ञानेन्द्रियों को (उद् अजयत्) वश करता है इसी प्रकार मैं राजा (पूषा) स्वयं राष्ट्र की प्रजा का पोषक होकर (पञ्चाक्षरेण) अपने पांचों अक्षय भोग्य सामर्थ्यों से (पञ्चदिश उत् जेषम्) पांचों दिशाओं को वश करूं ।

[६] सविता सूर्य या सर्वोत्पादक परमेश्वर (षड्-अक्षरेण) अपने ६ प्रकार के अक्षय बलों से (षड् ऋतून् उद् अजयत्) छहों ऋतुओं को अपने वश करता है उसी प्रकार मैं (सविता) सबको आज्ञापक होकर (षड्-अक्षरेण) अपने छः प्रकार के अक्षर, न द्रवित होनेवाले, सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव (षड् ऋतून्) इन छहों ऋतुओं के समान (तान्) राष्ट्र के छः गुणों पर विचार करनेवाले महामात्यों या छहों गुणों पर वश करूं ।

[७] (मरुत) मरुद्गण, प्राणगण जिस प्रकार (सप्ताक्षरेण) सात अक्षय बलों द्वारा (सप्त ग्राम्यान् पशून्) सातों ग्राम्य पशुओं को अपने वश करते हैं उसी प्रकार मैं भी (सप्ताक्षरेण) सातों प्रकार के अश्वों द्वारा (तान्) सातों ग्राम के पशु गौ आदि को एवं ग्राम अर्थात् समूह में विद्यमान शीर्षण्य सातों प्राणों को (उत् जेषम्) वश करूं ।

[८] (बृहस्पतिः) बृहत्-महान् ब्रह्माण्ड का स्वामी परमेश्वर (अष्टाक्षरेण) अपने आठ अक्षय सामर्थ्यों से (गायत्रीम्) आठ अक्षरों

वाली गायत्री के समान अष्टधा प्रकृति से बनी प्राणपालनी-सृष्टि को अपने वश करता है उसी प्रकार मैं राष्ट्रपति आठ अपने सामर्थ्यों से स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, बल और भूमि। अथवा आठ महामात्यों से (गायत्रीम् उत् जेषम्) सब राष्ट्र के प्राणों की पालिका पृथिवी को अपने वश करूं।

मि॒त्रो नवा॑क्षरेण त्रि॒वृत॒ꣳ स्तोम॒मुद॑जय॒त् तमुज्जे॑षम्। वरु॑णो दशा॑क्षरेण वि॒राज॒मुद॑जय॒त्तामुज्जे॑ष॒मिन्द्र॒ एका॑दशाक्षरेण त्रि॒ष्टु॒भ॒मुद॑जय॒त्तामुज्जे॑षम्। विश्वे॑ दे॒वा द्वाद॑शाक्षरेण॒ जग॑ती॒मुद॑जय॒ꣳस्तामुज्जे॑षम् ॥ ३३ ॥

[९] (मित्र.) सब का स्नेही, एवं स्नेहपात्र यह मुख्य प्राण (नवाक्षरेण) अपने नव-द्वारों में स्थित अक्षय सामर्थ्य से (त्रिवृतं स्तोमम्) त्रिवृत् स्तोम अर्थात् नव द्वारों में विद्यमान नवों प्राणों को (उद् अजयत्) अपने वश करता है और जिस प्रकार (मित्र.) सर्वस्नेही तपस्वी, ब्राह्मण (नवाक्षरेण) नवों द्वारों में अक्षर अर्थात् अस्खलित रूप से विद्यमान वीर्य द्वारा (त्रिवृत स्तोमम्) त्रिगुण सामर्थ्य से पालन करता है या जिस प्रकार (मित्र) सब का स्नेही परमेश्वर (नवाक्षरेण) अपने अक्षय नव प्रकार के सामर्थ्यों से अष्ट वसु और नव कुमार एवं नवधा देवसर्गों को (उत् अजयत्) रचता और वश करता है उसी प्रकार मैं (मित्र.) समस्त प्रजा का मित्र राष्ट्रपति राजा (नव-अक्षरेण) अपने नवों प्रकार के अक्षय कोशों से (त्रिवृत स्तोमम्) मौल, भृत्य और मित्र बल तीनों को (उत् जेषम्) वश करूं॥

[१०] (वरुण) वरण सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर जिस प्रकार (विराजम्) विराट् प्रकृति को (दशाक्षरेण) पाच स्थूल और पांच सूक्ष्म भूतों द्वारा विभक्त करके उसे अपने (उद् अजयत्) वश में रखता है या (वरुणः)

समस्त अंगों के वरण करने में समर्थ योगी अपने दशविध प्राण-बल से अपने (विराजम्) विविध प्रकाशमान् चित शक्ति पर वश करता है या जिस प्रकार 'वरुण' मुख्य प्राण दशविध इन्द्रियों से विराट्=अन्न को अपने भीतर ग्रहण करता है उसी प्रकार मैं विजिगीषु (वरुणः) सब से श्रेष्ठ प्रजा द्वारा राजा वरा जाकर (दश अक्षरेण) अपने दसों प्रकार के दशावरा परिषद् के सदस्यों द्वारा ही (विराजम्) विविध ऐश्वर्यों से प्रकाशमान या राजा रहित राज्यव्यवस्था को या पृथिवी को (उत् जेषम्) वश करूं ॥

[११] (इन्द्र:) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर जिस प्रकार (एकादश अक्षरेण) अपने ११ रुद्र रूप सामर्थ्यों से (त्रैष्टुभम्) त्रिलोकी को (उद् अजयत्) वश करता है, अथवा (इन्द्र) जीव जिस प्रकार दश इन्द्रिय और ११वां मन इनसे (त्रैष्टुभम्) तीन प्रकार से स्थित मन, इन्द्रिय, शरीर को वश करता है उसी प्रकार मैं (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् होकर (एकादश-अक्षरेण) दश सदस्य और ११वां सभापति द्वारा या शत्रुओं को हरानेवाले ११ मुख्य सेनापतियों द्वारा (त्रैष्टुभम्) अपने मित्र, शत्रु, उदासीन इन तीन प्रकार के राजन्य-बलों को (उद् जेषम्) वश करूं ॥

[१२] (विश्वेदेवाः) समस्त देवगण विद्वान् और उनका स्वामी प्रजापति इसी प्रकार जैसे (विश्वे देवाः) समस्त देव=किरणगण और उनका पुञ्ज सूर्य (द्वादश-अक्षरेण) १२ अक्षय शक्ति, १२ मासों से (जगतीम्) जगती इस पृथिवी को अपने वश करते हैं और जिस प्रकार (विश्वेदेवा) समस्त प्राणगण १२ विभागों में विभक्त प्राणों द्वारा गमनशील शरीर को वश रखती है उसी प्रकार मैं (विश्वे देवा) समस्त राजपुरुषों पर अधिकारस्वरूप होकर (द्वादश-अक्षरेण) १२ अक्षय अर्थात् प्रबल सहायकों द्वारा (ताम् उत् जेषम्) उस पृथिवी के ऊपर बसे वैश्यों की व्यवहार नीति को और पृथिवी को वश करूं ।

[1] वसवस्त्रयोदशाक्षरेण त्रयोदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम्। रुद्राश्चतुर्दशाक्षरेण चतुर्दशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषम्। [2] आदित्या. पञ्चदशाक्षरेण पञ्चदशꣳ स्तोममुदजयँस्तमुज्जेषमदितिः षोडशाक्षरेण षोडशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम्। प्रजापतिः सप्तदशाक्षरेण सप्तदशꣳ स्तोममुदजयत्तमुज्जेषम् ॥ ३४ ॥

तापस ऋषि'। वस्वाद्यो देवताः। (१) निचृज्जगती। निषादः।
(२) निचृद् धृतिः। ऋषभ ॥

भा०—[१३] (वसव) गृह बसाने योग्य, २४ वर्ष का ब्रह्मचारी, विद्वान् पुरुष (त्रयोदशाक्षरेण) जिस नव बाह्यद्वार और चार अन्तः-करणों में स्थित अक्षय वीर्य से (त्रयोदशं स्तोमम्) इन १३ हों के समूह इस काम पर (उद् अजयन्) वश करते हैं उसी प्रकार मैं भी राजा, १३ प्रधान पुरुषों के बल से (त त्रयोदशं स्तोमम्) उन १३ विभागों से युक्त राष्ट्र को (उत् जेषम्) वश करू।

[१४] (रुद्राः) प्राणों के अभ्यासी, ३६ वर्ष के नैष्ठिक ब्रह्मचारी जिस प्रकार दश बाह्येन्द्रिय और ४ भीतरी अन्त करणों को वश करके (चतुर्दशं स्तोमम् उत् अजयत्) १४ हों के समूह को वश करते हैं उसी प्रकार मैं रुद्ररूप शत्रुओं को रुलाने में समर्थ होकर १४ अध्यक्षों से युक्त राष्ट्र को (उत् जेषम्) वश करूं।

[१५] (आदित्या.) आदित्य के समान तेजस्वी ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्यपालक विद्वान् पुरुष जिस प्रकार (पञ्चदशाक्षरेण) मेरुदण्ड के चौदह मोहरों और उनमें व्यापक १५ वें वीर्य को सुरक्षित रखकर (पञ्चदश स्तोमम् उदजयन्) १५ के समूह इस मेरुदण्ड को वश करते, उसे खूब दृढ करते हैं उसी प्रकार मैं आदित्य के समान तेजस्वी होकर १५ राष्ट्र के विभागाध्यक्षों के बल से (पञ्चदश स्तोमम्) १५ विभागों से युक्त राष्ट्र को (उत् जेषम्) वश करू।

[१६] (अदिति) अखण्ड ब्रह्मचारिणी जिस प्रकार (षोडशाक्षरेण) १६ वर्ष के अखण्ड तप से (षोडशं स्तोमम् उद् अजयत्) १६ वर्ष समूह पर विजय प्राप्त करती है और जिस प्रकार (अदिति) अखण्ड ब्रह्मशक्ति १६ कला समूहों पर वश करती है, उसी प्रकार मैं (अदितिः) अखण्ड शासन से युक्त होकर (षोडशाक्षरेण) १६ सदस्यों द्वारा (षोडशं स्तोमम्) उनसे चलाये गये राज्य-कार्य को (उत् जेषम्) वश करूं ।

[१७] (प्रजापतिः) प्रजा का पालक परमेश्वर (सप्तदशाक्षरेण) १६ कलाओं और १७ वीं ब्रह्मकला के अक्षय बल से युक्त होकर सप्तदशं स्तोमम् उदजयत्) सप्तदश स्तोम, १७ हों शक्तियों के समूह को वश करता है उसी प्रकार मैं (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी राजा होकर १६ अमात्य एवं १७ वीं अपनी मति सहित सबके अक्षर, अखण्ड-बल से (तम्) उस सब पर (उत् जेषम्) वश करूं ।

१	अग्निः	एकाक्षरेण	प्राणम्	उदजयत्
२	अश्विनौ	द्व्यक्षरेण	द्विपद मनुष्यान्	”
३	विष्णु	त्र्यक्षरेण	त्रीन् लोकान्	”
४	सोमः	चतुरक्षरेण	चतुष्पद. पशून्	”
५	पूषा.	पञ्चाक्षरेण	पञ्चदिश.	”
६	सविता	षडक्षरेण	ऋतून्	”
७	मरुत	सप्ताक्षरेण	सप्तग्राम्यान् पशून्	”
८	बृहस्पतिः	अष्टाक्षरेण	गायत्रीम्	”
९	मित्र	नवाक्षरेण	त्रिवृतं स्तोमम्	”
१०	वरुण.	दशाक्षरेण	विराजम्	”

११	इन्द्रः	एकादशाक्षरेण	त्रिष्टुभम्	उदयाचल
१२	विश्वेदेवा	द्वादशाक्षरेण	जगतीम्	,,
१३	वसवः	त्रयोदशाक्षरेण	त्रयोदशं स्तोमम्	,,
१४	रुद्राः	चतुर्दशाक्षरेण	चतुर्दशं स्तोमम्	,,
१५	आदित्याः	पञ्चदशाक्षरेण	पञ्चदशं स्तोमम्	,,
१६	अदितिः	षोडशाक्षरेण	षोडश स्तोमम्	,,
१७	प्रजापतिः	सप्तदशाक्षरेण	सप्तदशं स्तोमम्	,,

एष ते निर्ऋते भागस्तं जुषस्व स्वाहाऽग्निनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पुरःसद्भ्यः स्वाहा यमनेत्रेभ्यो देवेभ्यो दक्षिणासद्भ्यः स्वाहा विश्वदेवनेत्रेभ्यो देवेभ्यः पश्चात्सद्भ्यः स्वाहा मित्रावरुणनेत्रेभ्यो वा मरुन्नेत्रेभ्यो वा देवेभ्य उत्तरासद्भ्यः स्वाहा सोमनेत्रेभ्यो देवेभ्य उपरिसद्भ्यो दुवस्वद्भ्यः स्वाहा ॥ ३५ ॥

वरुण ऋषिः । विश्वेदेवा देवता. । निचृदुत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे (निर्ऋते) सर्वथा सत्याचरण करनेवाले, सत्यधर्म के पालक राजन् ! अथवा हे (निर्ऋते) पृथिवी ! राष्ट्र ! (एष. ते भागः) यह तेरा भाग है, विभाग है। (तं जुषस्व) उसको तू प्रेम से स्वीकार कर। (स्वाहा) और इस सत्य व्यवस्था को पालन कर। (पुरः सद्भ्यः) राजसभा में आगे विराजनेवाले (अग्निनेत्रेभ्य.) अग्नि के समान शत्रुतापक, सेनानायक पुरुष को अपने नेता स्वीकार करनेवाले (देवेभ्यः) युद्ध विजयी वीर पुरुषों के लिये (स्वाहा) धर्मानुकूल उत्तम अन्न और ऐश्वर्य प्राप्त हो। (दक्षिणासद्भ्य.) दक्षिण की ओर, दायीं ओर विराजनेवाले

३५—अतः पर राजसूयमन्त्राः वरुणदृष्टाः।

(यमनेत्रेभ्यः) दुष्टों के नियन्ता यम को अपने नेता स्वीकार करनेवाले अथवा वायु के समान तीव्रगति वाले, इन युद्ध-विजयी पुरुषों के लिये (स्वाहा) उत्तम अन्न-भाग प्राप्त हो। (विश्वेदेवनेत्रेभ्य देवेभ्य. पश्चात्-सद्भ्य स्वाहा) पीछे या पश्चिम की ओर विराजनेवाले समस्त विद्वानों को अपना नेता या उनके द्वारा अपनी नीति प्रयोग करनेवाले विद्वान् विजयी पुरुषों को उत्तम अन्न ऐश्वर्य प्राप्त हो। (मित्रावरुणनेत्रेभ्यः) शरीर में प्राणापान के समान राष्ट्र में समान, जीवन सञ्चार करनेवाले अथवा मित्र=सूर्य और वरुण=मेघ के समान नीति वाले या मित्र, न्यायाधीश और वरुण, दुष्टवारक पुरुष को अपना नेता स्वीकार करनेवाले (वा) और (मरुत्नेत्रेभ्यः) मरुत् अर्थात् शत्रु-मारण में चतुर पुरुषों को नेता रखनेवाले (देवेभ्यः) विजयी (उत्तरा सद्भ्य) उत्तर दिशा में या बांयीं ओर विराजनेवाले पुरुषों को (स्वाहा) उत्तम अन्न और ऐश्वर्य, योग्य दूत आदि का कार्य प्राप्त हो। (सोमनेत्रेभ्य) सोम सौम्य स्वभाववाले आचार्य, योगी पुरुष को अपने नेता बनानेवाले (उपरिसद्भ्यः) सर्वोपरि विराजमान (दुवस्वद्भ्यः) ईश्वरोपासना, यज्ञ, विद्याध्ययनादि कार्य आचरण करनेवाले (देवेभ्यः) इन विद्वान् पुरुषों को (स्वाहा) उत्तम अन्न, धन और ज्ञानैश्वर्य प्राप्त हो ॥ शत० ५ । २ । ३ ॥ ३ ॥

राजा के राज्यकार्य को पांच विभाग में बांटा जिनके नेता, मुख्य अधिकारी अग्नि, यम, विश्वेदेव, मित्रावरुण, मरुत् और सोम हैं। राज-दर्बार में उनके पांच भिन्न स्थान हों और पृथ्वी के शासन में उनके पांच विभाग हों।

ये देवा अग्निनेत्राः पुरःसदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा यमनेत्रा दक्षिणासदस्तेभ्यः स्वाहा ये देवा विश्वदेवनेत्राः पश्चात्सदस्तेभ्यः स्वाहा । ये देवा मित्रावरुणनेत्रा वा मरुन्नेत्रा वोत्तरासद-

स्तेभ्यः स्वाहा ये देवाः सोमनेत्रा उपरिसदो दुवस्वन्तस्तेभ्यः स्वाहा ॥ ३६ ॥

भा०—(ये) जो (देवा) देव, राज्यकार्य मे नियुक्त विद्वान् पुरुष (अग्निनेत्रा) 'अग्नि' ज्ञानवान्, तेजस्वी पुरुष को प्रमुख रखनेवाले (पुर सद) आगे या पूर्व भाग मे विराजते हैं, (तेभ्यः स्वाहा) उनको उत्तम आदर यश प्राप्त हो अथवा (ये अग्निनेत्रा) जो अग्नि, विद्युत् आदि तत्वों को जाननेवाले हैं उनको उत्तम यश, धन, ज्ञानैश्वर्य प्राप्त हो। (ये देवाः यमनेत्रा दक्षिणासद) जो देव, विद्वान् दक्षिण दिशा में विराजमान या बलशक्ति में विराजमान अथवा (यमनेत्रा) अहिंसा आदि यम नियमों मे निष्ठ अथवा पूर्वोक्त शत्रुनियामक मुख्य पुरुष के अधीन हैं (तेभ्य. स्वाहा) उनको उत्तम आदर, यश, अन्न, ऐश्वर्य प्राप्त हो। (ये देवा. विश्वदेवनेत्राः) जो विजयी, विद्वान्, विश्वेदेव अर्थात् प्रजा या प्रजापति को प्रमुख मानने वाले या प्रजाओं के नेता (पश्चात्-सदः) पीछे ये पश्चिम भाग में विराजते हैं (तेभ्य स्वाहा) उनको उत्तम यश और आदर प्राप्त हो। (ये देवा. मित्रावरुणनेत्रा.) जो विद्वान् मित्र और वरुण न्यायाधीश और नगर के पोलीसाध्यक्ष के अधीन (वा) और (मरुत्नेत्रा.) वायु के समान तीव्र चढ़ाई करनेवाले सेनापति के अधीन वीर पुरुष (उत्तरासद) उत्तर दिशा में विराजते हैं (तेभ्य. स्वाहा) उनको उत्तम यश आदर और ऐश्वर्य प्राप्त हो। (ये देवा सोमनेत्रा) जो विद्वान् शासक लोग सोम आचार्य या राजा के अधीन (दुवस्वन्त.) ईश्वरपरिचर्या या ज्ञानाराधना, धर्म, यज्ञ यागादि करते हैं और (उपरिसद) सबसे ऊपर विराजते हैं, (तेभ्यः स्वाहा) उनको उचित आदर, यश, अन्न, धन प्राप्त हो॥ शत० ५।२।४।५॥

राज्याभिषेक में, राजसूय में पाचों विभाग में विराजनेवाले प्रतिष्ठितो को

आदर सत्कार, स्वागत, धन, अन्न, ऐश्वर्य देकर मान, प्रतिष्ठा करनी चाहिये। और उनको राज्य में भी उत्तम भूमि और पदाधिकार देने चाहियें।

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसि॥ ३७॥

देववात ऋषि। अग्निर्देवता। निचृदनुष्टुप्। गाधारः॥

भा०—(अभिमातीः) अभिमान और गर्व से भरी हुई शत्रु-सेनाओं को (अपास्य) दूर फेंक कर-परास्त करके हे (अग्ने) अग्रणी अग्नि के समान संतापक तेजस्वी सेनापते! तू (पृतनाः) समस्त संग्रामों और शत्रु-सेनाओं को (सहस्व) बलपूर्वक विजय कर। तू स्वयं (दुः-तरः) दूसरे शत्रुओं द्वारा दुस्तर, अजेय, अवध्य, अपार, दुःसाध्य होकर (अरातीः तरन्) शत्रुओं को नाश करता हुआ (यज्ञवाहसि) परस्पर संगत राजधर्मों और व्यवस्थाओं को धारण करनेवाले राष्ट्र और राष्ट्रपति में (वर्चः धा) तेज और बल का प्रदान कर॥ शत० ५।२ ४।१६॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। उपाꣳशोर्वीर्य्येण जुहोमि हतꣳ रक्षः स्वाहा। रक्षसां त्वा वधायावधिष्म रक्षोऽवधिष्मामुमसौ हतः॥ ३८॥

देववात ऋषिः। रक्षोघ्नो देवता। स्वराड् ब्राह्मी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे वीर पुरुष! (सवितुः) सबके उत्पादक, कर्त्ता एवं प्रेरक (देवस्य) देव, राजा के (प्रसवे) ऐश्वर्यमय राज्य में (अश्विनोः बाहुभ्याम्) अश्वियों के बाधक सामर्थ्यों से और (पूष्णः) परिपोषक मित्र राजा के (हस्ताभ्याम्) सब हनन साधनों से और (उपांशोः) उपांशु, प्राणस्वरूप

३८—'०वधिष्म रक्षोऽमुष्यत्वा वधायावधिष्म। जुषाणोऽप्वाज्यस्यवेतु स्वाहा।' इति काण्व०।

प्रजापति राजा के (वीर्येण) बल, वीर्य और अधिकार से (रक्षसां) राक्षसों, विघ्नकारियों के (बधाय) विनाश करने के लिये ही (त्वा जुहोमि) तुझे युद्ध-यज्ञ में आहुति देता हूं, भेजता हू । जाओ (स्वाहा) उत्तम युद्ध की शैली से उत्तम कीर्ति और नामवरी सहित (रक्षः) राक्षसों, राज्य के विघ्नकारी लोगों को (हतम्) मारडाला जाय । हे (रक्ष) राक्षस, दुष्ट पुरुष (त्वा) तुझको हमें युद्धस्थल में तुझे (अवधिष्म) नाश करते हैं । इस प्रकार हम (रक्ष) समस्त दुष्ट पुरुषों को (अवधिष्म) विनाश करें । और (असुम् अवधिष्म) हम उस अमुक विशेष शत्रु का नाश करते हैं । इस प्रकार (असौ हतः) वह शत्रु छाट २ कर मारा जाय ॥ शत० ५ । २ । ४ । १७ ॥

स॒वि॒ता त्वा॑ स॒वाना॑ᳪं सुव॒ताम॒ग्निर्गृ॒हप॑तीना॒ᳪं सोमो॒ वन॒-स्पती॑नाम् । बृह॒स्पति॒र्वा॒च इन्द्रो॒ ज्यैष्ठ्या॑य रु॒द्रः प॒शुभ्यो॑ मि॒त्रः स॒त्यो वरु॑णो॒ धर्म॑पतीनाम् ॥ ३६ ॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते । अतिजगती । निषाद ॥

भा०—हे राजन् ' तू (सवानां सविता) समस्त ऐश्वर्यों का उत्पादक होने से सविता है । (गृहपतीनाम् अग्नि) गृहस्थों के बीच में उनका अग्नि, ज्ञानवान, अग्रणी नेता एव तेजस्वी है । (वनस्पतीनाम्) वनस्पतियों के बीच में सोम के समान सर्वश्रेष्ठ अथवा वनस्पतियों अर्थात् जनसंघ पतियों के ऊपर उनका अधिष्ठाता, उनका आज्ञापक है । (वाच.) वेद-वाणी का (बृहस्पति) तू बृहस्पति परम विद्वान् प्रवक्ता है (ज्यैष्ठ्याय सबसे उत्कृष्ट पद के प्राप्त करने के कारण तू 'इन्द्र' है । (पशुभ्य.) पशुओं के हित के लिये तू साक्षात् (रुद्र) उनका रोधक, पालक पशुपति है । (सत्यः) सत्यवादी तू (मित्रः) सर्वस्नेही न्यायाधीश है । (धर्मपतीनाम्)

३६—'०प्रसवाना०' । '०रुद्रः पशूना मित्र सत्याय०' इति काण्व० ।

धर्मपालकों में तू (वरुणः) दुष्टों का वारक है । (त्वा) तुझको सब लोग (सुवताम्) राजपद पर अभिषिक्त करें ॥ शत० ५ । ३ । ३ । ११ ॥

इमं दे॑वा असप॒त्नꣳ सु॑वध्वं मह॒ते क्ष॒त्राय॑ मह॒ते ज्यैष्ठ्या॑य मह॒ते जान॑राज्या॒येन्द्र॑स्येन्द्रि॒याय॑ । इ॒मम॒मुष्य॑ पु॒त्रम॒मुष्यै॑ पु॒त्रम॒स्यै वि॒श ए॒ष वो॑ऽमी॒ राजा॒ सोमो॒ऽस्माकं॑ ब्राह्म॒णाना॒ꣳ राजा॑ ॥ ४० ॥

भा०—(महते क्षत्राय) बड़े भारी क्षात्रबल के लिये (महते ज्यैष्ठ्याय) बड़े भारी सर्वश्रेष्ठ राजपद के लिये (महते जानराज्याय) बड़े भारी जनों के ऊपर राजा होजाने के लिये और (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान् राजा के (इन्द्रियाय) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिये (देवाः) विजयी वीरगण और विद्वान् शासक पुरुष (असपत्नम्) शत्रुओं से रहित (इमम्) इस वीर विजयी, योग्य पुरुष को (सुवध्वम्) अभिषिक्त करो । (इमम्) इस (अमुष्य पुत्रम्) अमुक पिता के पुत्र, (अमुष्यै पुत्रम्) अमुक माता के पुत्र को (अस्यै विशे) इस प्रजा के लिये राज्याभिषिक्त किया जाता है । हे (अमी) अमुक २ प्रजाओ ! (वः एषः राजा) आप लोगों का यह राजा (सोम) सोम चन्द्र के समान आह्लादक और सोमलता के समान आनन्द, तृप्ति और हर्षजनक और प्रवर्त्तक है । वह (अस्माकम्) हम (ब्राह्मणानाम्) वेद-ज्ञान के विद्वान् ब्राह्मणों का भी (राजा) राजा है । हमारे बीच में भी शोभायमान हो ॥ शत० ५ । ३ । ३ । १२ ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थप्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये नवमोऽध्यायः ॥

४०—'०महते ज्यैष्ठ्याय इममसु०, ०अमुष्या पुत्र० । एष व. कुरवो राजैष च. पञ्चालानाराजासोमो०' इति काण्व० ।

अथ दशमोऽध्यायः

अथ राज्याभिषेकः

॥ ओ३म् ॥ अपो देवा मधुमतीरगृभ्णन्नूर्जस्वती राजस्व-
श्चितानाः । याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्य-
रातीः ॥ १ ॥

वरुण ऋषि । आपो देवताः । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(देवा) देव, विद्वान् पुरुष (मधुमती अप) मधुर गुण-
वाले जलों के समान (मधुमतीः) ज्ञान और बल, क्रियाशक्ति से युक्त
(अप) आप्त प्रजाजनों को (अगृभ्णन्) ग्रहण करते हैं । जो स्वयं
(ऊर्जस्वतीः) अन्नादि समृद्धिवाले (चिताना.) ज्ञानवाले या विवेक से
कार्य करनेवाले हैं और (राजस्वः) राजा को बनाने या उसके अभिषेक
करने में समर्थ हैं । (याभिः) जिनके बल से (देवा.) विजिगीषु, विद्वान्
पुरुष, (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण दोनों का (अभि अषिञ्चन्)
अभिषेक करते हैं । और (याभि) जिनसे (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा
को (अराती.) कर न देनेवाले समस्त शत्रुओं के (अति अनयन्)
ऊपर विजय प्राप्त कराते हैं ॥ शत० ५ । ३ । ४ । ३ ॥

वृष्णऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
वृष्णऽ ऊर्मिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ।
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहा ।
वृषसेनोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ २ ॥

वरुण ऋषि । वृषा देवता । स्वराड् ब्राह्मी पंक्तिः । पञ्चम स्वरः ॥

भा०—(१) हे पुरुष ! तू (वृष्ण) बलवान् पुरुष को (ऊर्मि

१—'०वरुणा अभ्य०' इति काण्व० ।

असि) ऊंचे पद पर पहुंचाने में समर्थ है। तू (राष्ट्रदाः) राष्ट्र को देने में समर्थ है। तू (स्वाहा) उत्तम नीतिव्यवस्था से (मे राष्ट्रं) मुझे राष्ट्र, अर्थात् राज्यशक्ति (देहि) प्रदान कर। (वृष्णः) तू सुख वर्षक राज्य का (ऊर्मिः असि) ज्ञाता है, तू (राष्ट्रदाः) राज्य देने में समर्थ होकर (अमुष्मै) अमुक नाम के पुरुष को (राष्ट्रम् देहि) राष्ट्र, राजपद, या राज्याधिकार प्रदान कर।

(२) हे वीर पुरुष ! तू (वृषसेनः असि) वृषसेन, बलवान्, हृष्ट पुष्ट सेना से युक्त है। तू (राष्ट्रदाः) राज्यशक्ति प्रदान करनेहारा होकर (स्वाहा) उत्तम रीति से (मे राष्ट्रं देहि) मुझको राज्यपद प्रदान कर और इसी प्रकार (वृषसेन· राष्ट्रदाः असि) बलवान् पुरुषों की बनी सेना से युक्त होकर राष्ट्र देने में समर्थ है। (अमुष्मै राष्ट्रम् देहि) अमुक पुरुष को राष्ट्र या राज्य सम्पद् प्रदान कर।

इस प्रकार मन्त्र के पूर्व भाग से बलवान् और सेनासम्पन्न पुरुषों से राजा बल की याचना करे और उत्तर भाग से पुरोहित उस राजा को राज्यपद प्रदान करने की अनुमति ले। सर्वत्र ऐसा ही समझना चाहिये। इस मन्त्र से तरंग के जलों से राजा को स्नान कराते हैं।

१ अर्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहार्थेत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहौजस्वती स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहापः परिवाहिणी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे २ देहि स्वाहाऽपां पतिरसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देह्यपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रं मे देहि स्वाहाऽपां गर्भोऽसि राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै देहि ॥ ३ ॥

आपः अपापतिश्च देवताः। (१) अतिकृतिः। ऋषभः।
(२) निचृत् जगती। निषादः ॥

भा०—[राजा] (३) हे (आप) आप्त पुरुषो, प्राप्त समागत प्रजाजनो ! आप लोग (अर्थेत स्थ) अर्थ-विशेष इष्ट प्रयोजन से बलपूर्वक गमन करने में, शत्रु पर चढ़ाई करने में समर्थ है, अतएव आप भी (राष्ट्रदा) राष्ट्र सम्पद् को देने मे समर्थ हैं । आप लोग (मे राष्ट्रं स्वाहा दत्तम्) उत्तम रीति से मुझे राष्ट्र, राज्यैश्वर्य प्रदान कीजिये । [अध्वर्यु] हे वीर पुरुषो ! आप (अर्थेत· राष्ट्रदा: स्थ) अर्थ, धन, सम्पत् के बल पर शत्रु पर चढ़ाई करने में समर्थ है । अत. एव राष्ट्र दिलानेहारे हो, आप लोग अमुष्मै राष्ट्रं दत्त) अमुक नाम के योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान करो ।

इस मन्त्र से बहती नदियों के जल से राजा को स्नान कराते हैं ।

(४) [राजा] (ओजस्वती स्थ राष्ट्रदा·) आप लोग ओजस्वी, विशेष पराक्रमशील और राष्ट्र को देने में समर्थ हैं । (राष्ट्र मे दत्त) मुझे राष्ट्र प्रदान करें । [अध्वर्यु] (ओजस्वती राष्ट्रदा· स्थ) आप लोग ओजस्वी हैं, आप राष्ट्र देने मे समर्थ हैं । (अमुष्मै राष्ट्र दत्त) अमुक योग्य पुरुष को राज्य प्रदान करें । जो जल प्रवाह से विपरीत वहें उन जलों से स्नान कराते हैं ।

(५) [राजा] (परि वाहिणी· राष्ट्रदाः स्थ) हे वीर प्रजाजनों ! आप लोग सब प्रकार से उत्तम सेनाओं से युक्त हो, अतः राष्ट्र प्राप्त कराने में समर्थ हो । आप (मे राष्ट्रम् दत्त) मुझे राष्ट्र प्रदान करो । [अध्वर्यु] हे वीर प्रजाजनो ! आप लोग (परिवाहिणी· राष्ट्रदा स्थ, अमुष्मै राष्ट्र दत्त) सब प्रकार से सेनाओं से युक्त, राज्य प्रदान करने में समर्थ हो । आप अमुक नामक योग्य पुरुष को राज्य प्रदान करो । इस मन्त्र से जो नदियों की शाखाएं फूटकर पुन उनमें जा मिलती हैं उनके जलों से स्नान कराते हैं ।

(६) [राजा] (अपां पति. असि) तू समस्त जलों के समान प्रजाजनों का पालक है । (राष्ट्रदाः राष्ट्रं मे देहि) तू राष्ट्र प्राप्त करानेवाला

है, तू मुझे राष्ट्र प्राप्त करा। [अध्व०] (अपां पति. असि, राष्ट्रदाः, राष्ट्रम् अमुष्मै देहि) तू समस्त प्रजाओं का पालक है। तू सबका नेता राष्ट्र प्राप्त कराने में समर्थ है। तू अमुक योग्य पुरुष को राष्ट्र प्रदान कर। इस मन्त्र से समुद्र के जल से स्नान कराते हैं ।

(७) [राजा] तू (अपां गर्भः असि, राष्ट्रदाः राष्ट्रं मे देहि स्वाहा) तू प्रजाओं को अपने अधीन अपने साथ रखने में समर्थ है। तू मुझे राष्ट्र अच्छी प्रकार प्राप्त करा। तू मुझे राष्ट्र प्रदान कर। [अध्व०] तू (अपां गर्भ राष्ट्रदाः असि राष्ट्रम् अमुष्मै देहि) प्रजाओं को वश करने में समर्थ है। तू राष्ट्र प्राप्त कराने हारा है। तू अमुक योग्य पुरुष को राज्य प्रदान कर। [इस मन्त्र से निवेष्य अर्थात् नदी के भँवर के जलो से स्नान कराते हैं ॥ शत० ५ । ३ । ४ । ४ ।-११ ॥

[१] सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्य्यत्वचस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [२] सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा सूर्यवर्चस स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा मान्दा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [३] व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा व्रजक्षित स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा वाशा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [४] शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शविष्ठा स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [५] शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा शक्वरी स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [६] जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा जनभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त [७] विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रं मे दत्त स्वाहा विश्वभृत स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्तापः स्वराज स्थ राष्ट्रदा राष्ट्रममुष्मै दत्त । [८] मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्तां महि क्षत्रं

क्षत्रियाय वन्वानाऽअनाधृष्टाः सीदत सहौजसो महि क्षत्रं क्षत्रियाय दधतीः ॥ ४ ॥

वरुण ऋषिः । सूर्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । (१) जगती । निषाद । (२) स्वराट् पंक्ति । पञ्चम । (३, ४) स्वराड् विकृतिः । मध्यमः । (५) स्वराट् सकृतिः । गान्धार. । (६) भुरिगाकृति. पञ्चम । (७) भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(८) हे उत्तम प्रजागणो ! आप लोग (सूर्यत्वचसः स्थ) सूर्य के दीप्तिमान आवरण के समान उज्ज्वल आवरणवाले, धनैश्वर्यवान् तेजस्वी हो । (९) (सूर्यवर्चस' स्थ) सूर्य के तेज के समान तेज धारण करनेहारे हो । (१०) (मान्दाः स्थ) सबको आनन्दित, सुप्रसन्न करनेहारे हो । (११) (व्रजक्षित. स्थ) आप लोग गौ आदि पशुओं के समूहों के बीच में निवास करनेहारे हो । (१२) (वाशा. स्थ) आप लोग कान्तिमान और जनों को अपने वश करनेहारे अथवा उत्तम मधुर वचन बोलने और उत्तम सुमधुर गायन या उपदेश करनेहारे वाग्मी हो । (१३) आप लोग (शविष्ठाः स्थ) अति बलवान हो । (१४) आप लोग (शक्करीः स्थ) शक्तिशाली हो । (१५) आप लोग (जनभृतः स्थ) समस्त जनो के कृषि आदि द्वारा, भरण पोषण करने में समर्थ हो । (१६) आप लोग (विश्वभृतः स्थ) विश्व, समस्त प्रजाओं को भरण पोषण करने में समर्थ हो । (१७) आप लोग (स्वराज) स्वय अपने बल से उत्तम पद, प्रतिष्ठा पर विराजमान हो, आप सब नाना उत्तम गुणों को धारण करनेहारे प्रजागण, आप लोग सभी अपने २ सामर्थ्यों से (राष्ट्रदा) राष्ट्र के देने या पालने मे समर्थ हो । (मे राष्ट्रं) मुझे आप

४—म मधुमती० । ०'सहोजसा' इति काण्व० । अतः पर [६ । २६, ४०] पठ्येते । काण्व० ॥

सब लोग राष्ट्र या राज्य का कार्य (स्वाहा) अति उत्तम रीति से सुविचार कर (दत्त) प्रदान करो। हे उपरोक्त नानागुणवाले प्रजागणो ! आप लोग राष्ट्र के देने में समर्थ हो, आप लोग (अमुष्मै) अमुक योग्य पुरुष को (राष्ट्रं दत्त स्वाहा) राज्य प्रदान करते हो। आप सब प्रजाएं (मधुमती.) जिस प्रकार मधुर जल मधुर जलों से मिलकर और मधुर होजाते हैं उसी प्रकार आप लोग (मधुमती) उत्तम वाणी और ज्ञान से युक्त होकर (मधुमतीभि) उत्तम बल और ज्ञान विज्ञानों से युक्त अन्य प्रजाओं से परस्पर (पृच्यन्ताम्) सम्पर्क करो, मिलके एक दूसरे से सत्संग करो। और (क्षत्रियाय) देश को क्षति से त्राण करने, पालन करने में समर्थ पुरुष को आप सब (महि क्षत्रम्) बड़ाभारी पालक बल, वीर्य (वन्वाना) प्रदान करते हुए और स्वयं भी (क्षत्रियाय) बलवान् शूरवीर राष्ट्र को क्षति होने से त्राण करने या बचाने वाले राजा के लिये (महि क्षत्रं दधती.) बड़ा भारी बल सामर्थ्य धारण करती हुई (सहोजसः) उसके समान एक साथ ही पराक्रमी बलशाली होकर (अनाधृष्टा) शत्रुओं से कभी भी पराजित न होनेवाली अजेय होकर (सीदत) इस राष्ट्र में विराजमान रहो। प्रतिनिधिवाद से इन १६ प्रकार की प्रजाओं के द्वारा राज्याभिषेक को निबाहने के लिये कर्मकाण्ड में १६ प्रकार के भिन्न २ प्रकार जलों को ग्रहण किया जाता है। उनसे राजा राणी को सभी अमात्य, पुरोहित, ब्राह्मण, वैश्य एवं प्रजा के भिन्न २ प्रतिनिधिगण बारी २ से स्नान कराते हैं। गौणवृत्ति से ये सब विशेषण उन नाना जलों में भी संगत होते हैं। ये सौलह प्रजाएं राष्ट्रकलश और राजा की १६ कलाएं वा अङ्ग समझनी चाहिये। १६ प्रकार की प्रजाएं और १७ वां राजा स्वयं यह प्रजापति का 'सप्तदश' स्वरूप भी स्पष्ट है॥ शत० ५। ३। ४। २२-२८॥

उक्त १७ प्रकार के राष्ट्रदा जलों के निम्नलिखित रूप से गौणार्थ जानने चाहियें—

(१) (वृष्णः ऊर्मि.) जल में प्रविष्ट पशु या पुरुष के आगे की तरग के जल, (वृष्ण) सेचन में समर्थ पुरुष का (ऊर्मि.) तरग है।

(२) उसी पुरुष या पशु के पीछे की तरग का जल (वृषसेनाः असि०) सेचन समर्थ पुरुष की सेना के समान है।

(३) (अर्थेत स्थ) किसी अर्थ या प्रयोजन अर्थात् यन्त्रचालन आदि में प्रेरित जल।

(४) (ओजस्वती. स्थ) प्रजा के विपरीत दिशा में लौट के जानेवाले जल विशेष वल से युक्त 'ओजस्वती' हैं।

(५) (परिवाहिणी स्थ) नदी के मार्ग को छोडकर शाखा फूटकर बहनेवाले जल 'अपयती आप.' कहाते हैं, वे 'परिवाहिणी' हैं।

(६) (अपापतिः) समुद्र के जल।

(७) (अपांगर्भो) नदी में पड़े भँवर अर्थात् निवेष्य जिन जलों को अपने गर्भ में लेता है।

(८) (सूर्यत्वचस) बहते जलो में से जो जल स्थिर हों, सदा घाम में रहते हों।

(९) धूप के रहते २ जो जल बरसते हों वे 'आतपवर्ष्य' जल कहाते हैं वे (सूर्यवर्चस) 'सूर्यवर्चस्' कहाते हैं।

(१०) तालाव के जल (मान्दाः) नाना जीवों के प्रमोद हेतु होने से 'मान्द' कहाते हैं।

(११) कूए के जल (व्रजक्षित) या मेघ के जल 'व्रजक्षित्' कहाते हैं।

(१२) ओस के बिन्दुओं से सग्रह किये जल (वाशाः) 'वाशा' कहाते हैं।

(१३) मधु को (शविष्ठाः) 'शविष्ठा' कहा जाता है।

(१४) गौ के प्रसव के पूर्व गर्भाशय से बाहर आनेवाले जल (शक्करी) 'शक्करी' कहे जाते हैं।

(१५) (जनभृतः) दूध 'जनभृत्' कहाते हैं।

(१६) घृत (विश्वभृतः) 'विश्वभृत' कहाते हैं।

(१७) स्वयं घाम से तपे जल (स्वराजः आपः) 'स्वराज्' कहे जाते हैं।

ये नाम गौणवृत्ति से कहे गये हैं। यज्ञ में या अभिषेक के अवसर पर ये प्रतिनिधिवाद से राज्यपद देनेवाली उत्तम गुणवती प्रजाओं और आप्त पुरुषों के श्लेष से वर्णन किया गया है, और ये नाना जल भिन्न २ गुणों के दर्शक हैं।

सिंहासनारोहण

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात्। अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा सवित्रे स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा बृहस्पतये स्वाहेन्द्राय स्वाहा घोषाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहाꣳशाय स्वाहा भगाय स्वाहार्यम्णे स्वाहा ॥ ५ ॥

अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः। भुरिगतिधृति। ऋषभः।

भा०—हे सिंह ! या सिंहासन ! तू (सोमस्य) राजा की (त्विषिः असि) कान्ति या शोभा है। (तव इव) तेरे समान, तेरे अनुरूप ही (मे) मेरी, मुझ राजा की भी (त्विषिः) कान्ति, तेज, शोभा (भूयात्) हो। (अग्नये त्वा) हे राजन् ! तू अग्नि के उत्तम तेज को धारण कर। (सोमाय स्वाहा) हे राजन् ! तुझे सोम राष्ट्र का क्षात्रबल उत्तम रीति से प्राप्त हो। (सवित्रे स्वाहा) समस्त दिव्य तेजों के उत्पादक सूर्य का

५—'सोमस्य त्विषिरस्यग्नये०' 'इन्द्राय स्वाहाशाय स्वाहा श्लोकाय स्वाहा घोषाय स्वाहा भगाय०' इति काण्व० ॥

तेज तुझे भली प्रकार प्राप्त हो। (सरस्वत्यै स्वाहा) सरस्वती, वेदवाणी का उत्तम ज्ञान तुझे प्राप्त हो। (पूष्णे स्वाहा) पुष्टिकारक पशुओं की समृद्धि तुझे प्राप्त हो। (बृहस्पतये स्वाहा) ब्रह्म, वेद के पालक विद्वान् पुरुषों का ज्ञान बल तुझे प्राप्त हो। (इन्द्राय स्वाहा) परम वीर्यवान् राजा का वीर्य तुझे प्राप्त हो। (घोषाय स्वाहा) घोष, सबको आज्ञा प्रदान करने और घोषणा करने का उत्तम अधिकार तुझे प्राप्त हो। (श्लोकाय स्वाहा) समस्त जनों द्वारा स्तुति और यश प्राप्त करने का पद प्राप्त हो। (अंशाय स्वाहा) सबको उचित उनके अंश, धन, भूमि आदि के बांटने का अधिकार तुझे प्राप्त हो। (भगाय स्वाहा) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामित्व तुझे प्राप्त हो। (अर्यम्णे स्वाहा) सब राष्ट्र पर स्वामी होकर उनको न्याय प्रदान करने का अधिकार तुझे प्राप्त हो ॥ शत० ५ । ३ । ५ । ३-९ ॥

तेजो वा अग्निः । तेजसा एवैनमभिषिञ्चति । क्षत्रं वै सोमः । क्षत्रेणै वैनमेतदभिषिञ्चति । सविता वै देवानां प्रसविता । सवितृप्रसूत एव एनमेतदभिषिञ्चति । वाग् वै सरस्वती । वाचैवैनमेतदभिषिञ्चति । पशवो वै पूषा । ब्रह्म वै बृहस्पतिः । वीर्यं वा इन्द्रः । वीर्यं घोषः । वीर्यं वै श्लोकः । वीर्यं वा अंशः । वीर्यं वै भगः । अर्यम्णे स्वाहा । तदेनमस्य सर्वस्य अर्यमणं करोति ॥ शत० ५ । ३ । ५ । ८-६ ॥

अथवा—हे राजन् तू (सोमस्य त्विषि) परम ऐश्वर्य की शोभा है। मुझे भी ऐसी शोभा प्राप्त हो। (अग्नये स्वाहा) विद्युत् आदि के ज्ञान के लिये (सोमाय) औषधि ज्ञान के लिये, (सवित्रे) सूर्यविज्ञान के लिये, (सरस्वत्यै) वेदवाणी के लिये, (पूष्णे) पशु पालन के लिये, (बृहस्पतये) परमेश्वर ज्ञान के लिये, (इन्द्राय) जीव के ज्ञान के लिये, (घोषाय) वाणी, (श्लोकाय) काव्य के गद्यपद्य छन्दोज्ञान के लिये, (अंशाय) परमाणु ज्ञान के लिये, (भगाय) ऐश्वर्यप्राप्ति के लिये, (अर्यम्णे)

न्यायाधीश पद के लिये हे राजन् ! तू उनके योग्य (स्वाहा १२) विज्ञानों का अभ्यास कर ।

अथवा—सूर्य के १२ मासों के जिस प्रकार १२ रूप होते हैं उसी प्रकार अग्नि, सोम आदि भिन्न २ गुणों अधिकारों और सामर्थ्यों के सूचक १२ पद या अधिकार राजा को प्राप्त हों ।

प॒वित्रे॑ स्थो वैष्ण॒व्यौ॑ सवि॒तुर्वः॑ प्रस॒वऽउत्पु॑ना॒म्यच्छि॑द्रेण प॒वित्रे॑ण॒ सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ । अनि॑भृष्टमसि वा॒चो बन्धु॑स्तपो॒जाः सोम॑स्य दा॒त्रम॑सि॒ स्वाहा॑ राज॒स्वः॑ ॥ ६ ॥

वरुण ऋषि । आपो देवता. । स्वराट् ब्राह्मी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! दोनों प्रकार की प्रजाओ ! तुम (पवित्रे) पवित्र, शुद्धाचरणवाली (स्थ) होकर रहो । तुम दोनों (वैष्णव्यौ) समस्त विद्याओं में निष्णात होओ । अथवा (वैष्णव्यौ) राष्ट्र की व्यापक राज शक्ति के मुख्य अंग होवो । (वः) तुम दोनों को (सवितुः) सर्वोत्पादक परमेश्वर और सर्वप्रेरक राजा के (प्रसवे) बनाये ऐश्वर्यमय जगत् और राजा के राज्य में (अच्छिद्रेण) छिद्र या त्रुटि रहित (पवित्रेण) शुद्ध पवित्र, ब्रह्मचर्य, विद्या, शिक्षा आदि के आचार व्यवहार द्वारा (उत्पुनामि) पवित्राचारवान् करके उन्नत करूं । और (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से शुद्ध पवित्र होकर जल जिस प्रकार ऊर्ध्व आकाश में जाता है उसी प्रकार मैं भी शुद्ध, उत्तम शिक्षा आदि द्वारा अपनी प्रजाओं को शुद्ध आचारवान् करके उन्नत पद को पहुंचाऊं । हे राष्ट्र और राष्ट्रवासी प्रजाओ ! तुम (अनिभृष्टम् असि) शत्रु और दुष्ट पुरुषों से कभी सताए न जाओ । और तुम (वाच बन्धुः) वाणी द्वारा परस्पर प्रियभाषण करते हुए एक दूसरे को बन्धु समान प्रेम में बद्ध होकर रहो । आप लोग (तपोजाः) तप, ब्रह्मचर्य, विद्याध्ययन आदि तपों द्वारा अपने

को बढ़ाओ और परिपक्व वीर्यों से सन्तान उत्पन्न करो। आप लोग (सोमस्य) सोम अर्थात् राजा के पद को (दात्रम्) प्रदान करने में समर्थ (असि) हो। (स्वाहा) इसी कारण अपने इस सत्याचरण और व्यवहार से आप (राजस्व) राजा को उत्पन्न करने में समर्थ हो। शत० ५। ३। ५। १४॥

राजा, स्त्री पुरुष दोनों प्रजाओं को उन्नत करे। दोनों तपश्चर्या करें, बल बढ़ावें और राज्य कार्यों में भाग लें, दोनों राजा का अभिषेक करें।

सधमादो॑ द्युम्निनी॒राप॑ऽए॒ताऽअना॑धृष्टाऽअप॒स्यो॒ वसा॑नाः।
प॒स्त्या॒सु चक्रे॒ वरु॑णः स॒धस्थ॑म॒पाᳬशिशु॑र्मा॒तृत॑मास्व॒न्तः॥७॥

आपो वरुणश्च देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवत॥

भा०—(एता) ये (आप) आप्त प्रजाएं (सधमाद) समस्त, एक साथ ही आनन्द अनुभव करनेहारी और (द्युम्निनी) धन ऐश्वर्य और बलवीर्य वाली हों। वे (अपस्य) उत्तम कर्म करने में कुशल, (अनाधृष्टा) शत्रुओं से धर्षित और पीड़ित न होकर, एक ही राष्ट्र में (वसाना) रहती हैं। उन (पस्त्यासु) गृह बनाकर रहनेवाली प्रजाओं में (वरुणः) उन द्वारा वरण करने योग्य सर्वोत्तम राजा (अपा शिशु) जलों के भीतर व्यापक अग्नि के समान और (मातृतमासु अन्त) उत्तम माताओं के भीतर जिस प्रकार बालक निर्भय होकर रहता और पालन पोषण पाता है उसी प्रकार राजा उन (मातृतमासु) राजा को सर्वोत्तम रूप से माता के समान मान करनेहारी प्रजाओं के बीच (शिशु.) व्यापकरूप से रहकर उनमें ही (सधस्थम्) अपना आश्रय स्थान (चक्रे) बनाता है और उनके साथ ही रमता है। शत० ५। ३। ५ १६॥

क्ष॒त्रस्योल्ब॑मसि क्ष॒त्रस्य॑ ज॒राय्व॑सि क्ष॒त्रस्य॒ योनि॑रसि क्ष॒त्रस्य॒ नाभि॑र॒सीन्द्र॑स्य॒ वार्त्र॑घ्नमसि मि॒त्रस्या॑सि॒ वरु॑णस्यासि॒ त्वया॒यं

वृत्रं वधेत् । दृवासि रुजासि चुमासि । पातैनं प्राञ्चं पातैनं प्रत्यञ्चं पातैनं तिर्यञ्चं दिग्भ्यः पात ॥ ८ ॥

तार्प्यपाण्ड्वाधीवासोष्णीषाणि धनुरिषवश्च देवता । स्वराट् कृति । निषाद ॥

भा०—हे राजन् ! तू (क्षत्रस्य) राष्ट्र के क्षात्रबल का (उल्वम् असि) गर्भ की रक्षा करनेवाले आवरण के समान रक्षक है । (क्षत्रस्य जरायु असि) तू क्षात्रबल का जरायु, जेर के समान आवरण है । तू स्वयं (क्षत्रस्य योनिः असि) क्षात्रबल का आश्रय है । तू (क्षत्रस्य नाभिः असि) तू क्षात्रबल का केन्द्र है । हे शस्त्र और शस्त्रधारिन् ! तू (इन्द्रस्य) राजा के (वार्त्रघ्नम्) शत्रु नाशक बल स्वरूप है । तू (मित्रस्य वरुणस्य) सर्व स्नेही और शत्रुओं के वारक राजपदाधिकारियों के योग्य अस्त्र शस्त्र (असि) है । (त्वया) तुझ द्वारा (अयम्) यह राजा (वृत्रम्) विघ्नकारी शत्रु को (वधेत्) विनाश करे । तू (दवा असि) शत्रुओं के गढ़ों को तोड़ने हारा है । तू (रुजा असि) वाण के समान शत्रुओं को पीड़ा दायक है । तू (क्षुमा असि) शत्रुओं को कंपा देनेवाली शक्ति है । हे वीर सैनिक पुरुषो ! आप लोग (प्राञ्चं) आगे बढ़ते हुए (एनं) इस राजा की (पात) रक्षा करो । (एनम् प्रत्यञ्चं पात) इसको पीछे जाते की रक्षा करो । (एनं तिर्यञ्चं पात) इसको तिरछे जाते की रक्षा करो । इस राजा को तुम लोग (दिग्भ्यः पात) समस्त दिशाओं से रक्षा करो ॥ शत० ५ । ३ । ५ । २०–३० ॥

इस मन्त्र से राज्याभिषेक के अवसर पर राजा को तार्प्य, पाण्ड्व, अधिवास नामक तीन वस्त्र, एक उष्णीष, धनुष और तीन बाण दिये जाते हैं ।

आविर्मर्या॒ऽआवि॑त्तोऽअ॒ग्निर्गृ॒हप॑तिरावि॑त्त॒ऽइन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वा॒ऽआवि॑त्तौ मि॒त्रावरु॑णौ धृ॒तव्र॑तावावि॑त्तः पू॒षा वि॒श्ववे॑दा॒ऽआवि॑त्ते॒ द्यावा॑पृथि॒वी वि॒श्वश॑म्भुवा॒वावि॑त्तादि॑तिरु॒रुश॑र्म्मा ॥ ९ ॥

प्रजापतिर्देवता । भुरिगष्टिः । मध्यमः ॥

८—०वार्त्रघ्नमसि त्वयाय वृत्र वध्यान् मित्रस्या० । '०क्षुपासि' ।

भा०—हे (मर्याः) मनुष्यो ! आप लोगों ने यह (अग्निः) अग्नि, अग्रणी, अग्नि के समान तेजस्वी, (गृहपतिः) गृह के स्वामी के समान राष्ट्रपति, और आप सबके गृहों का पालक (आविः) साक्षात् (आवित्तः) प्राप्त किया है। आप लोग इसे गृहपति के समान अपना स्वामी जानें। आप लोगों को यह (वृद्धश्रवाः) अति प्रभूत धनैश्वर्यसम्पन्न, (इन्द्र) ऐश्वर्यवान्, राजा (आविः आवित्त) साक्षात् विदित एवं प्राप्त हो। (धृतव्रतौ) सब राजव्यवस्थाओं को धारण करनेवाले (मित्रावरुणौ) मित्र, न्यायाधीश और वरुण, बलाध्यक्ष दोनों (आवित्तौ) आप लोगों को साक्षात् विदित हों। (विश्ववेदाः) समस्त धनैश्वर्यवान्, (पूषा) सबको पोषक यह राजा तुम्हें (आवित्त) प्राप्त हो। तुम लोगो को (विश्वशम्भुवौ) समस्त संसार को कल्याण देनेवाली (द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी, माता पिता, (आवित्तौ) सब प्रकार से प्राप्त हों। (उरुशर्मा अदितिः) बहुतो को शरण देनेवाली अखण्ड राजनीति, या पृथिवी या वपन योग्य भूमि, स्त्री भी तुम्हें (आवित्ता) प्राप्त हो। राजा ही तुम्हें ये सब प्राप्त करावे ॥ शत० ५। ३। ५। ३१-३७ ॥

अवेष्टा दन्दशूकाः प्राचीमारोह गायत्री त्वावतु रथन्तरꣳ साम त्रिवृत् स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्म द्रविणम् ॥ १० ॥

भा०—(दन्दशूकाः) मधुमक्खी, ततैये, बर्रे, आदि के समान दुःखदायी प्राणी (अवेष्टाः) नीचे गिराकर मारडाले गये। अब हे राजन् ! तू (प्राचीम्) प्राची दिशा अर्थात् आगे की ओर (आरोह) चढ़, उधर बढ़, (गायत्री) गायत्री छन्द, (रथन्तर साम) रथन्तर साम और (त्रिवृत् स्तोम) त्रिवृत् स्तोम (वसन्त ऋतुः) वसन्त ऋतु और (ब्रह्म द्रविणम्) ब्राह्मण रूप धन (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे ॥ शत० ५। ४। १। १-६ ॥

दक्षिणामारोह त्रिष्टुप् त्वावतु बृहत्साम पञ्चदशस्तोमो ग्रीष्म ऽऋतुः क्षत्रं द्रविणम् ॥ ११ ॥
प्रतीचीमारोह जगती त्वावतु वैरूपꣳ साम सप्तदश स्तोमो वर्षा ऋतुर्विड् द्रविणम् ॥ १२ ॥
उदीचीमारोहानुष्टुप् त्वावतु वैराजꣳ सामैकविꣳशस्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम् ॥ १३ ॥

भा०—(दक्षिणाम् आरोह) दक्षिण दिशा पर चढ़, उस पर आक्रमण या वश कर। (त्रिष्टुप्, बृहत्साम पञ्चदश स्तोम. ग्रीष्मः ऋतुः क्षत्रम् द्रविणम्) त्रिष्टुप्, बृहत् साम, पञ्चदश स्तोम, ग्रीष्म ऋतु और क्षत्रबल रूप द्रविण, धन (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे ॥ ११ ॥

(प्रतीचीम् आरोह) प्रतीची, पश्चिम दिशा की ओर बढ़ । (त्वा) तुझको (जगती, वैरूपं साम, सप्तदश स्तोमः, वर्षा ऋतुः, विड् द्रविणम् अवतु) जगती छन्द, वैरूपं साम सप्तदश स्तोम, वर्षा ऋतु, विड् अर्थात् वैश्यरूप धन रक्षा करे ।

(उदीचीम् आरोह) उदीची दिशा पर चढ़। वहां (अनुष्टुप् वैराजं साम, एकविंशः स्तोमः, शरद् ऋतुः, फलं द्रविणम्, त्वा अवतु) अनुष्टुप् छन्द, वैराज साम, एकविंश स्तोम, शरद् ऋतु और फल अर्थात् श्रम द्वारा प्राप्त अन्न आदि कृषि तेरी रक्षा करे ॥ शत० ५ । ४ । १ । ४-६ ॥

ऊर्ध्वामारोह पङ्क्तिस्त्वावतु शाक्वररैवते सामनी त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृतू वर्चो द्रविणं प्रत्यस्तं नमुचेः शिरः ॥ १४ ॥

भा०—(ऊर्ध्वाम् आरोह) ऊर्ध्व दिशा की ओर चढ़, उधर आक्रमण कर। (पंक्तिः, शाक्वररैवते सामनी, त्रिनवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ, हेमन्तशिशिरौ

१४—'०शिशिरा ऋतू' इति काण्व० ।

ऋतू, वर्चः द्रविणम् त्वा अवतु) पंक्ति छन्द, शाक्कर और रैवत साम, त्रिनव और त्रयस्त्रिश नामक दोनों स्तोम, हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतु और वर्चस=तेजरूप धन ये तेरी रक्षा करे। (नमुचे) पापाचार को न छोड़नेवाले का (शिरः) शिर (प्रति अस्तम्) काटकर फेंक दिया जाय। शत० ५। ४। १। ७—६॥

(१०—१४)—(१) दन्दशूका —नैते क्रिमयो नाक्रिमय' यद् दन्दशूका। लोहिता इव हि दन्दशूका। श० ५। ४। १। २॥ लाल धमूड़ या लाल बर्र दन्दशूक कहाता है, वह बिना प्रयोजन काटता है। उसी के स्वभाव वाले व्यर्थ परपीड़क लोग भी दन्दशूक कहाते हैं।

(२) 'प्राची'—प्राची हि दिग् अग्ने। श० ६। ३। ३। २॥ अग्नि नेत्रेभ्यो देवेभ्य पुर सद्भ्य. स्वाहा। यजु० ६। ३५॥ अथैनामिन्द प्राच्या दिशि वसव. देवा अभ्यपिञ्चन् साम्राज्याय। ए० ८। १४॥ वसवस्त्वा पुरस्तादभिपिञ्चतु गायत्रेण छन्दसा। तै० २। ७। १५। ५॥ तेजो वै ब्रह्मवर्चस प्राची दिक्॥ ऐ० १। ८॥

(३) 'गायत्री'—सेयं सर्वा कृत्स्ना मन्यमाना अगायत्। यदगायद् तस्मादिय पृथिवी गायत्री। श० ६। १। १। १५॥ गायत्रोऽयं भूलोक। कौ० ८। ६॥ गायत्री वसूनां पत्नी। गो उ० २। ६॥ गायत्री वै रथन्तरस्य योनि। ता० १५। १०। ५॥ या द्यौ सा अनुमति· सा एव गायत्री। ऐ० २। १७॥

(४) 'रथन्तरं साम'—अभि त्वा शूर नोनुम (ऋ० ७। ३२। २२) इत्यस्यामृचि उत्पन्न साम रथन्तरम्। ऐ० ४। १३॥ सायण। इय वै पृथिवी रथन्तरम्। ऐ० ८। १॥ वाग् वै रथन्तरम् ऐ० ४। २८॥ रथन्तरं वै सम्राट्। तै० १। ४। ४। ६॥

(५) 'त्रिवृत् स्तोमः'—वायुर्वा आशुः त्रिवृत् । श० ८ । ४ । १ । ९ ॥ वज्रो वै त्रिवृत् । श० ३ । ३ । ४ । तेजो वै त्रिवृत् तां० २ । १७ । २ ॥ ब्रह्मवर्चसं वै त्रिवृत् । तां० ७ । ६ । ३ ॥

(६) 'वसन्त ऋतु.'—तस्य अग्नेः रथगृत्सश्च, रथौजाश्च सेनानी ग्रामण्यौ इति वासान्तिकौ तावृत् । श० ८ । ६ । १ । १६ ॥ वसन्तो वै ब्राह्मणस्य ऋतुः । तै० १ । १ । २ । ६ ॥

सोमस्य त्विषिरसि तवेव मे त्विषिर्भूयात् ।
मृत्योः पाह्योजोऽसि सहोस्यमृतमसि ॥ १५ ॥

रुक्मः परमात्मा वा देवता । निचृदार्षी पक्तिः । पञ्चम ॥

भा०—हे सिंहासन ! एवं राज्यपद ! हे परमेश्वर तू ! (सोमस्य) सर्वप्रेरक राजा की ही (त्विषि:) कान्ति या शोभा (असि) है । (मे त्विषिः) मेरी शोभा भी (तव इव) तेरे ही समान (भूयात्) हो जाय । हे परमेश्वर ! तू अमृत है, तू (मृत्यो पाहि) मृत्यु से रक्षा कर । (ओज असि, सहः असि अमृतम् असि) तू ओज है । सहस, बल है, तू अमृतस्वरूप है ॥ शत० ५ । ४ । १ । ११–१४ ॥

अथवा—राजा के प्रति प्रजा का वचन है । तू सोम, अधिकारी या राज्य पद के योग्य शोभा है । मुझ प्रजाजन की भी तेरे समान कान्ति हो । हे राजन् ! तू राष्ट्र को मृत्यु से बचा । तू ओज, पराक्रमरूप बलरूप और अमृत है । परमेश्वर के पक्ष में स्पष्ट है ।

हिरण्यरूपा उषसो विरोकऽउभाविन्द्राऽउदिथः सूर्य्यश्च ।
आरोहतं वरुण मित्र गर्त्तं ततश्चक्षाथामदितिं दितिं च ।
मित्रोऽसि वरुणोऽसि ॥ १६ ॥

मित्रावरुणौ देवते । जगती । निषाद ॥

१६—'इन्द्रा उदित०' इति काण्व० ।

भा०—हे मित्र और हे वरुण ! (उभा) आप दोनों (हिरण्यरूपौ) स्वर्ण के समान तेजस्वी (इन्द्रौ) राजा के समान ऐश्वर्यवान् (उषसः) उषाओं को (विरोके) विशेष प्रकाश द्वारा (सूर्य च) सूर्य और चन्द्र के समान नाना कार्यों और विद्याओं को प्रकाशित करते हुए (उदिथः) उदय होते हो । आप दोनों हे वरुण ! हे मित्र ! (गर्त्तम्) रथ पर और राष्ट्रवासी प्रजाजनों के ऊपर (आरोहतम्) आरूढ होओ और उन पर शासन करो । (ततः) और तब (अदितिम्) अखण्ड राज-व्यवस्था या पृथिवी और (दितिम्) खण्ड २ रूप से विद्यमान समस्त विभक्त व्यवस्था का भी (चक्षाथाम्) उपदेश करो या उनका निरीक्षण करो । हे राजन् ! (मित्रः असि) तू ही स्वयं मित्र, सर्व स्नेही है और (वरुणः असि) तू ही वरुण, सब शत्रुओं को वारण करने में समर्थ है ॥ शत० ५ । ४ । १ । १६–१७ ॥

सोमस्य त्वा द्युम्नेनाभिषिञ्चाम्यग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसेन्द्रस्येन्द्रियेण । क्षत्राणां क्षत्रपतिरेध्यति दिद्यून् पाहि ॥ १७ ॥

क्षत्रपतिर्देवता । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन् ! वीर पुरुष ! (त्वा) तुझको (सोमस्य) सोम, सर्वप्रेरक सर्वश्रेष्ठ राजपद के योग्य (द्युम्नेन) यश और ऐश्वर्य से (अग्नेः) अग्नि या अग्रणी नेता के (भ्राजसा) तेज से और (सूर्यस्य वर्चसा) सूर्य के तेज से और (इन्द्रस्य इन्द्रियेण) इन्द्र, विद्युत् या वायु के बल से (त्वा अभिषिञ्चामि) तेरा अभिषेक करता हूं । हे अभिषिक्त राजन् ! तू (क्षत्राणाम्) वीर्यवान् क्षत्रियों, राजाओं का (क्षत्रपतिः एधि) क्षत्रपति, राजाधिराज होकर रह । (दिद्यून्) प्रजा के नाश करनेवाली सब विपत्तियों को (अति) पार करके प्रजाओं को (पाहि) रक्षा कर । अथवा

१७—०इन्द्रियेण मरुतामोजसा, क्षत्राणा० । इति काण्व० ।

(दिद्यून्) विद्या और धर्म के प्रकाश करनेवाले व्यवहारों और विद्वानों का (अति पाहि) सब कष्टों से पार करके भी रक्षा कर अथवा (दिद्यून्) बाण आदि शस्त्रों की खूब (पाहि) रक्षा कर। उन पर पर्याप्त प्रतिबन्ध रख जिससे वे परस्पर हिंसा का कारण न हों ॥ शत० ५ । ४ । २ । २ ॥

इमं देवाऽअसपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इममुमुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विशऽएष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा ॥ १८ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ९ । ४० ॥ शत० ५ । ४ । २ । ३ ॥

हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इमम्) इस योग्य पुरुष को (महते क्षत्राय) बड़े भारी क्षत्रबल सम्पादन के लिये, (महते ज्यैष्ठ्याय) बड़े भारी उत्तम राज्य प्राप्त करने के लिये, (महते जानराज्याय) बड़े भारी जनराज्य स्थापित करने के लिये और (इन्द्रस्य इन्द्रियाय) इन्द्र-पद के सामर्थ्य प्राप्त करने के लिये (असपत्नं) शत्रु रहित इस वीर पुरुष को (सुवध्वम्) अभिषिक्त करो। (अमुष्य पुत्रम्) अमुक पिता के पुत्र, (अमुष्यै पुत्रम्) अमुक माता के पुत्र (इमम्) इसको (अस्यै विशे) इस प्रजा के निमित्त अभिषिक्त करो। हे (अमी) अमुक प्रजाजनो ! (एष वः राजा) यह आप लोगों का राजा है। (एषः सोमः) यह राजा सोम ही (अस्माकं ब्राह्मणानां राजा) हम वेद के विद्वान् ब्राह्मणों का भी राजा है। यह हम विद्वानों को भी अभिमत है।

प्र पर्वतस्य वृषभस्य पृष्ठान्नावश्चरन्ति स्वसिचऽइयानाः । ताऽआववृत्रन्नधरागुदक्ताऽअहिं बुध्न्युमनु रीयमाणाः । विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि विष्णोः क्रान्तमसि ॥ १९ ॥

देववात ऋषि । विष्णुर्देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—जिस प्रकार (पर्वतस्य पृष्ठात्) पर्वत या मेघ के पृष्ठ से

(इयाना) निकलनेहारी (नाव) जल-धाराएं बहती हैं। उसी प्रकार (वृषभस्य) नर-श्रेष्ठ राजा के पीठ पर से भी (इयाना) जाती हुई (स्वसिच) शरीर का सेचन करनेवाली (नाव) जलधाराएं अभिषेक काल में (चरन्ति) बहें। (ता.) वे (अधराक् उदक्) नीचे और ऊपर सर्वत्र (बुध्न्यम्) सबके आश्रय में स्थित (अहिम्) अहन्तव्य, वीर पुरुष को पर्वत की जलधाराएं जिस प्रकार उसके मूल भाग को घेरती है उसी प्रकार (रीयमाणा.) घेरती हुई (ता) वे (आववृत्रन्) उसको घेरें या प्राप्त करें ॥ शत० ५ । ४ । २ । ५, ६ ॥

राजा प्रजा पक्ष में—(नाव) स्तुति करनेवाली प्रजाएं (स्वसिच) स्व अर्थात् धन से राजा को सेचन वृद्धि करनेवाली (पर्वतस्य) पर्वत के समान दृढ़ एवं (वृषभस्य) वृषभ के समान बलवान् अथवा मेघ के समान सब के काम्य सुखों के वर्षक अति दानशील पुरुष के (पृष्ठात्) पीठ से, उसके आश्रय लेकर (इयाना.) सर्वत्र गमन करती हुई (चरन्ति) विचरण करती हैं। (ता.) वे समस्त प्रजाएं अपने राजा को (बुध्न्यम्) आश्रय-भूत सबके अहन्ता पालक का (अनु रीयमाणा.) अनुगमन करती हुई उसको (अधराक्) नीचे से और (उदक्) ऊपर से (आववृत्रन्) व्याप्त होकर रहती हैं। उसको घेरे रहती हैं।

हे पृथिवी तू (विष्णो क्रमणम् असि) व्यापक राजशक्ति का विक्रम करने का स्थान है। हे अन्तरिक्ष ! शासकगण ! तू (विष्णो) वायु के समान बलशाली राजा का (विक्रान्तम् असि) नाना प्रकार के पराक्रमों का स्थान है। हे स्व लोक ! राज्यपद ! तू आदित्य के समान (विष्णो) राजा के पराक्रम का (क्रान्तम् असि) स्थान है।

प्रजा॑पते॒ न त्वदे॒तान्य॒न्यो विश्वा॑ रू॒पाणि॒ परि॒ ता ब॑भूव। यत्का॑-मास्ते जुहु॒मस्तन्नो॑ अस्त्व॒यम॒मुष्य॑ पि॒ता सा॒वस्य॑ पि॒ता व॒यꣳ

स्याम पतयो रयीणाᳫं स्वाहा । रुद्र यत्ते क्रिवि परं नाम तस्मिन् हुतमस्यमेष्टमसि स्वाहा ॥ २० ॥ ऋ० १० । १२१ । १० ॥

प्रजापतिर्देवता । स्वराड् अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे (प्रजापते) प्रजा के पालक राजन् अथवा परमेश्वर ! (एतानि) इन (ता विश्वा रूपाणि परि) समस्त नाना रूपवाले पदार्थों चर अचर प्राणी शरीरों के ऊपर (त्वत् अन्यः न बभूव) तुझ से दूसरा कोई स्वामी नहीं है । हम लोग (यत्-कामा) जिस पदार्थ की कामना या अभिलाषा करते हुए (जुहुम) तुझे कर प्रदान करते और तुझे राजा स्वीकार करते हैं (तत् न अस्तु) वह हमारा प्रयोजन पूर्ण हो । (अयम्) यह राजा (अमुष्य पिता) अमुक बालक का पिता है । (अस्य) और इस राजपद पर आरूढ़ पुरुष का (असौ पिता) अमुक पुरुष पिता है । हम इस प्रकार तुझको अपना राजा स्वीकार करते हैं । तेरे द्वारा (वयम्) हम सब (स्वाहा) उत्तम व्यवस्था और धर्मानुकूल आचरण द्वारा (रयीणाम्) ऐश्वर्यों के (पतयः स्याम) पालक, स्वामी बनें ॥ शत० ५ । ४ । २ । ६, १० ॥

हे (रुद्र) रुद्र ! सर्व प्रजाओं के पालक और सब प्रजाओं के रोचक, वशीकारक एवं शत्रुओं के रुलानेहारे ! (ते) तेरा (यत्) जो (परं नाम) पर सर्वोत्कृष्ट स्वरूप और नाम (क्रिवि) क्रिवि अर्थात् सब कार्य करने में समर्थ, एवं सबको मारने में समर्थ, सर्व शक्तिमान्, सर्वहन्ता का पद या अधिकार है (तस्मिन्) उस पर तू (हुतम् असि) स्थापित किया गया है । तू (अमा) घर घर में (इष्टम् असि) पूज्य और आदर के योग्य बनाया जाता (असि) है, (स्वाहा) यह सब तेरे उत्तम आचरण और सत्य व्यवस्था का ही परिणाम है ।

२०—तन्नो अस्तु य स्याम०, क्रवि पर नाम तस्मै० इति काण्व० ॥

इन्द्रस्य वज्रोऽसि मित्रावरुणयोस्त्वा प्रशास्त्रोः प्रशिषां युनज्मि। अव्यथायै त्वा स्वधायै त्वाऽरिष्टोऽअर्जुनो मरुतां प्रसवेन जयापाम मनसा समिन्द्रियेण ॥ २१ ॥

क्षत्रपतिर्देवता । भुरिग् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्यवान् राजपद का (वज्रः असि) वज्र अर्थात् उस पर विराज कर सब दुष्टों का दलन करनेहारा है। (त्वा) तुझको (मित्रावरुणयोः) पूर्व कहे हे मित्र और वरुण, सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष, न्यायाधीश और बलाध्यक्ष ! (प्रशास्त्रो) इन दोनों उत्तम शासकों के (प्रशिषा) उत्तम शासनाधिकार से (युनज्मि) युक्त करता हूं। (त्वा) तुझको (स्वधायै) स्वकीय राष्ट्र के पालन पोषण और उससे अपने शरीर मात्र की भृति प्राप्त करने मात्र के लिये नियुक्त करता हू। तू (अरिष्टः) किसी से भी हिंसित न होकर और (अर्जुनः) अति सुशोभित, सुप्रतिष्ठित होकर, अति प्रदीप्त, तेजस्वी होकर (मरुतां) प्रजाओं, वैश्यों या शत्रुओं के मारनेहारे वीरभटों के (प्रसवेन) उत्कृष्ट बल से या (मरुतां प्रसवेन) विद्वानों की आज्ञानुकूल (जय) विजय प्राप्त कर और हम लोग (मनसा) मन से और (इन्द्रियेण) बल से भी (सम् आपाम) तेरे साथ मिले रहें ॥ शत० ५ । ४ । ३ । ५-१० ॥

मा तऽइन्द्र ते वयं तुराषाडयुक्तासोऽअब्रह्मता विदसाम। तिष्ठा रथमधि यं वज्रहस्ता रश्मीन्देव यमसे स्वश्वान् ॥ २२ ॥

ऋ० ५ । ३३ । ३ ॥

संवरण ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) वज्र, खड्ग को हाथ में लिये हुए राजन् !

२१—०रिष्ट फल्गुनः ०इति काण्व० ।

२२—'मा न इन्द्र' इदि शतपथपाठः । ०यद् वन०, ०युवसे० इति काण्व० ।

तू (तुराषाड्) शीघ्र ही शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ होकर (यम् रथम्) जिस रथ पर, रथ के समान राज्यपद पर भी (अधितिष्ठ) अधिष्ठातः होकर विराजता है और हे (देव) राजन् ! जिसके (स्वश्वान्) उत्तम घोड़ो या अश्वों के समान राष्ट्र सञ्चालक उत्तम पुरुषों को (रश्मीन्) उनकी बागडोरों से (यमसे) उनको अपने नियन्त्रण में रखता है (ते) तेरे उस राज्य में (वयम्) हम निवास करें। (ते) तेरे प्रति (अयुक्तासः) अयुक्त अधर्माचरण न करते हुए (अब्रह्मता) वेद और ईश्वरनिष्ठा से रहित होकर या ब्रह्म अर्थात् ज्ञान और अन्न से रहित होकर (मा वि-दसाम) कभी नष्ट न हों ॥ शत० ५ । ४ । ३ । १४ ॥

राजा जिस रथ पर चढ़े उसमें लगे घोड़े भी जिस प्रकार रथ में न लगने के अवसर पर भी चारा पाते है और पाले पोसे जाते हैं उसी प्रकार सब प्रजा के लोग राजा के राज्य मे नियमपूर्वक कार्यों में लगे रहें। वे बेरोज़गार होकर भी (अब्रह्मता) अपराध में, या अन्न-भाव से भूखों न मरें।

अग्नये गृहपतये स्वाहा सोमाय वनस्पतये स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहेन्द्रस्येन्द्रियाय स्वाहा। पृथिवि मातर्मा मा हिꣳसीर्मोऽअहं त्वाम् ॥ २३ ॥

लिङ्गोक्ता अग्न्यादयो देवताः । जगती । निषाद ॥

भा०—(गृहपतये) गृहों के पालक या गृह के समान राज्य के पति (अग्नये) अग्नि, अग्रणी या विद्वान् पुरुष का (स्वाहा) हम आदर करें। (वनस्पतये सोमाय स्वाहा) वन=सेना समूह के पालक सोम राजा का हम आदर सत्कार करें। (मरुताम्) शत्रु को मारने मे समर्थ, वायु के समान तीव्रगामी भटों के (ओजसे) बल के लिये (स्वाहा) हम अन्न धनादि को प्रदान करें। (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा के (इन्द्रियाय) बल

२३—०स्वाहा मरुतामोजसे स्वाहा । इति काण्व० ।

का हम आदर करें। राजा भी प्रजाजन से कहे—हे (पृथिवि मातः) मातः पृथिवी! पृथिवीवासी जन! (मा) मुझको तू (मा हिंसी) विनाश मत कर। और (अहम्) मैं (त्वाम्) तुझको भी (मा) न विनाश करूं। प्रजावासी लोग गृहों के पालक, तेजस्वी, सेनाओं के पालक और बलवान् ऐश्वर्यवान् राजा का आदर करें। वह प्रजा का नाश न करे और प्रजा उसका नाश न करे। इसी प्रकार सामान्यतः भी पुत्र माता को कष्ट न दे। माता पुत्र को कष्ट न दे। विद्वान् गृहपति, वनस्पति आदि सोम ओषधि, प्राणों और विद्वानों और केवल इन्द्र, जीव के इन्द्रियों का उनकी उत्तम विद्या के अनुकूल उपयोग लें॥ शत० ५।४।३।१६–२०॥

हृ॒ꣳसः शु॑चि॒षद्वसु॑रन्तरिक्ष॒सद्धोता॑ वेदि॒षदति॑थिर्दुरोण॒सत्। नृ॒षद्व॑र॒सदृ॑त॒सद्व्यो॑म॒सद॒ब्जा गो॒जाऽऋ॑त॒जाऽअ॑द्रि॒जाऽऋ॒तं बृ॒हत्॥ २४॥ ऋ० ४।४०।५॥

वामदेव ऋषिः। सूर्यो देवता। भुरिगार्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे राजन्! तू (हंसः) शत्रुओं का नाशक है। तू (शुचिषत्) शुद्ध आचरण और व्यवहार में वर्तमान, निश्छल, निर्लोभ, निष्काम स्वरूप, परायण है। तू (वसुः) प्रजाओं को बसानेहारा है। तू (अन्तरिक्ष-सत्) अन्तरिक्ष के समान प्रजा के ऊपर रहकर उसका पालन करता है। (होता) राष्ट्र से कर ग्रहण करने और अपने आपको उसके लिये युद्ध-यज्ञ में आहुति देनेवाला है। तू (वेदिषत्) भूमिरूप वेदि में प्रतिष्ठित है, (अतिथिः) राष्ट्र मे राष्ट्रकार्य से बराबर भ्रमण करनेवाला, एवं अतिथि के समान सर्वत्र पूजनीय है। (दुरोणसत्) बड़े २ कष्ट सहन करके पालन योग्य राष्ट्ररूप गृह में विराजमान (नृषत्) समस्त नेता पुरुषों में प्रतिष्ठित, (ऋतसत्) ऋत=सत्य पर आश्रित, (व्योमसत्) विशेष रक्षाकारी राज-पद पर स्थित, (अब्जाः) अप्=कर्म और प्रजा द्वारा प्रजाओं में विशेषरूप

से प्रादुर्भूत, (गोजा:) पृथ्वी पर विशेष सामर्थ्यवान्, (ऋतजाः) सत्य और ज्ञान से विशेष सामर्थ्यवान्, (अद्रिजा) न विदीर्ण होनेवाले अभेद्य बल से सम्पन्न या उसका उत्पादक और साक्षात् (बृहत्) स्वयं बड़ाभारी (ऋतम्) सत्यरूप बल वीर्य है ॥ शत० ५ । ४ । ३ । २२ ॥

परमात्मा पक्ष में—(हंस) सर्व पदार्थों को संघात करनेवाले, (शुचिषत्) शुद्ध पवित्र पदार्थों और योगियों के हृदयों में और पवित्र गुणों में विराजमान, (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्ष में व्यापक, (होता) सबका दाता, सबका गृहीता, (अतिथिः) पूज्य, (दुरोणसत्) ब्रह्माण्ड में व्यापक, (नृसत् वरसत्) मनुष्यों में और वरणीय श्रेष्ठ पुरुषों के हृदयों में विराजमान, (व्योमसत्) आकाश में व्यापक, (ऋतसत्) सत्य में व्यापक ज्ञानमय, (अब्जा) जलों का उत्पादक, (गोजाः) गौ, पृथिव्यादि लोकों और इन्द्रियों का उत्पादक, (ऋतजा) सत्यज्ञान वेद का उत्पादक (अद्रिजा) मेघ पर्वतादि का जनक, स्वयं (बृहत् ऋतम्) महान् सत्य-स्वरूप है । अध्यात्म में और सूर्य पक्ष में भी यह लगता है ।

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि । इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहूऽअभ्युपावहरामि ॥ २५ ॥

सूर्यो देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (इयत् असि) इतना बड़ा है । हे जीवन स्वरूप तू (इयत् असि) इतना ही है । तू (आयुः असि) हे देव ! आयुः जीवन स्वरूप है । (मयि आयु धेहि) मुझ में आयु प्रदान कर । तू (युङ् असि) सबको शुभ कार्यों में जोड़नेवाला एवं अपने से मिलाने-हारा है । हे परमेश्वर ! तू (वर्च असि) तेजःस्वरूप है (मयि वर्च. धेहि)

२५—'०देहि०' '०वीर्यकृता उपा०' इति काण्व० ।

मुझे तेज प्रदान कर। (ऊर्क् असि) तू बलस्वरूप है (मयि ऊर्जं धेहि) मुझे बल प्रदान कर। हे सभाध्यक्ष और सेनापते ! मित्र और वरुण ! (वाम्) तुम दोनों ! (वीर्यकृत) सामर्थ्यवान् (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा के (बाहू) दो बाहुओं के समान हो। मैं पुरोहित या राजा तुम दोनों को (अभि उप आहरामि) राजा के समक्ष उसके अधीन स्थापित करता हूं। अथवा—हे राजा और प्रजाजनो वां बाहू इन्द्रस्य अभ्युपावहरामि) तुम दोनों के बाहुबल को परमेश्वर के अधीन करता हूं॥ शत० ५। ४। ३। २५–२७॥

स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि। स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद ॥ २६ ॥

आसन्दी देवता। भुरिगनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे पृथिवी और हे आसन्दि ! तू (स्योना असि) सुखकारिणी है। तू (सुषदा असि) सुख से बैठने योग्य है। तू (क्षत्रस्य योनि असि) क्षत्र, राष्ट्र के रक्षाकारी बलवीर्य का आश्रय और उत्पत्तिस्थान है। हे राजन् ! तू (स्योनाम् आसीद) सुखकारिणी उस राजगद्दी और इस भूमि पर अधिकारी होकर विराज। (सुषदाम् आसीद) सुख से बैठने योग्य इस गद्दी पर विराज और (क्षत्रस्य योनिम्) क्षात्रबल के परम आश्रयरूप इस गादी पर (आसीद) विराज॥ शत० ५। ४। ४। १–४॥

निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा।
साम्राज्याय सुक्रतुः॥ २७॥ ऋ० १। २५। १०॥

शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। पिपीलिका मध्या विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(धृतव्रत) व्रत, प्रजा पालन के शुभ व्रत और राज्यव्यवस्था को धारण करनेवाला (सुक्रतु) उत्तम क्रियावान् प्रज्ञावान् (वरुण) सर्वश्रेष्ठ राजा (पस्त्यासु) न्याय-गृहों में और प्रजाओं के

के बीच में (साम्राज्याय) साम्राज्य के स्थापन और उसके सञ्चालन के लिये (आ नि-ससाद) अधिष्ठाता रूप से विराजमान हो॥ ५।४।४।५॥

अभिभूरस्येतास्ते पञ्च दिशः कल्पन्तां ब्रह्मँस्त्वं ब्रह्मासि सवितासि सत्यप्रसवो वरुणोऽसि सत्यौजाऽइन्द्रोऽसि विशौजा रुद्रोऽसि सुशेवः। बहुकार श्रेयस्कर भूयस्करेन्द्रस्य वज्रोऽसि तेन मे रध्य॥ २८॥

यजमानो देवता। धृतिः। ऋषभ॥

भा०—हे राजन्! तू (अभिभू असि) शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ है। (एता पञ्च दिश) ये पांचों दिशाएं (ते कल्पन्ताम्) तेरे लिये सुखकारी और बल-पुष्टिकारी हों। हे (ब्रह्मन्) महान् शक्तिवाले! तू (ब्रह्मा असि) महान् शक्ति सम्पन्न, सब का वृद्धिकर है। तू (सत्यप्रसव सविता असि) सत्य ऐश्वर्यवाला, सत्य व्यवहार का उत्पादक 'सविता' है। तू (सत्यौजा । वरुणः असि) सत्य पराक्रमशील वरुण है। तू (विशौजा इन्द्र असि) प्रजाओ के द्वारा पराक्रम करनेहारा 'इन्द्र' है। तू (सुशेव) सुखपूर्वक सेवन करने योग्य (रुद्र' असि) प्रजाओं का रोधक और शत्रुओ को रुलानेहारा एवं ज्ञानोपदेष्टा भी है। हे (बहुकार) बहुत से कार्यों, अधिकारों के निभाने में समर्थ! हे (श्रेयस्कर) प्रजा के कल्याण करनेवाले! हे (भूयस्कर) अति अधिक समृद्धि के कर्त्ता! तू विद्वान् पुरुष! (इन्द्रस्य) इन्द्र राजा का भी (वज्रः) वज्र है, उसको पापमार्गों से वर्जन करने में समर्थ और उसको ऐश्वर्य पद का प्रापक है। (तेन) उससे (मे) मुझे (रध्य) अपने वश कर। अथवा मेरे लिये राष्ट्र को वशकर॥ शत० ५।४।४।६–२१॥

अग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिर्जुषाणोऽअग्निः पृथुर्धर्मणस्पतिराज्यस्य वेतु

२८—अभिभूरस्यया नाभेतास्ते०। प्रियङ्कर श्रेय० इति काण्व०।

स्वाहा स्वाहा कृताः सूर्यस्य रश्मिभिर्यतध्वꣳ सजातानां मध्यमेष्ठ्याय ॥ २९ ॥

अग्निर्देवता। स्वराडार्षी जगती। निषाद ॥

भा०—(अग्नि) अग्रणी, दुष्टों का सतापक राजा सूर्य के समान कान्तिमान् (पृथु) बड़ा भारी (धर्मणः पति) धर्म का पालक है। उसी प्रकार वह (अग्नि) राजा भी अग्नि के समान तेजस्वी होकर (पृथु) विशाल शक्ति सम्पन्न होकर (धर्मणः पति) राजधर्म का पालक होकर (स्वाहा) उत्तम, सत्य व्यवहार और व्यवस्था से (आज्यस्य) संग्राम योग्य तेज पराक्रम को (वेतु) प्राप्त करे। हे (स्वाहाकृता) उत्तम धन, पद, ऐश्वर्य आदि देकर बनाये गये अधिकारी पुरुषो ! आप लोग (सूर्यस्य रश्मिभि.) सूर्य की किरणों से बलवान् होकर जिस प्रकार आंखें देखती हैं उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा की (रश्मिभि) रश्मियों, दिखाये उपायों द्वारा आप लोग (सजाताना) इसके समान शक्ति में समर्थ राजाओं के (मध्यमेष्ठ्याय) मध्य में रहकर सम्पादन करने योग्य कार्य करने के लिये (यतध्वम्) यत्न करो ॥ शत० ५ । ४ । ४ । २२,२३ ॥

सवित्रा प्रसवित्रा सरस्वत्या वाचा त्वष्ट्रा रूपैः पूष्णा पशुभिरिन्द्रेणास्मे बृहस्पतिना ब्रह्मणा वरुणेनौजसाग्निना तेजसा सोमेन राज्ञा विष्णुना दशम्या देवतया प्रसूतः प्रसर्पामि ॥ ३० ॥

शुन शेप ऋषि । मन्त्रोक्ता देवताः । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(१) (प्रसवित्रा) समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक, सब कर्मों के प्रेरक (सवित्रा) सविता सूर्य या वायुके समान विद्यमान प्रेरक आज्ञापक और कार्यप्रवर्त्तक के दिव्यगुण से, (२) (सरस्वत्या वाचा) उत्तम विज्ञान युक्त वाणी से, (३) (रूपै.) नाना प्रकार के प्राणियों

२९—०ज्यस्य हविषो वेतु० इति काण्व० ।

की नाना जातियों के द्वारा प्रसिद्ध (त्वष्ट्रा) प्रजापति, त्वष्टा के समान प्रजा और राष्ट्र के पशुओं के नाना भेदों से प्रसिद्ध त्वष्टा या प्रजापति के रूप से, अथवा नाना प्रकार के विविध शिल्पों से उत्पन्न पदार्थों सहित त्वष्टा, शिल्पी से (४) (पशुभिः पूष्णा) पशुओं से युक्त पूषा, या सर्वपोषाक पृथिवी से, (५) ब्रह्मणा वेद के ज्ञान से युक्त (बृहस्पतिना) वाक्पति वेदज्ञ से, (६) (अस्मे इन्द्रेण) अपने आप स्वयं इन्द्र, राजा रूप से, (७) (ओजसा वरुणेन) पराक्रम से युक्त वरुण से, (८) (तेजसा अग्निना) तेज से युक्त अग्नि से, (९) (राज्ञा सोमेन) राजा स्वरूप सोम से, (१०) (दशम्या) दश संख्यापूर्ण करनेवाले (विष्णुना) व्यापक राजशक्ति रूप या समस्त राष्ट्रमय यज्ञ या प्रजापति रूप विष्णु इन दस (देवतया) देव अर्थात् राजा होने योग्य विशेष गुणों और सामर्थ्यों द्वारा (प्रसूतः) प्रेरित या शक्तिमान् होकर मैं (प्रसर्पामि) आगे उन्नत, उत्कृष्ट मार्ग पर गमन करूं। शत० ५ ॥ ४ । ५ । २ ॥

अश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व । वायुः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ्क्सोमो अतिस्रुतः । इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३१ ॥

अश्विनावृषी । सोमः क्षत्रपतिर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे पुरुष ! हे राजन् ! तू (अश्विभ्याम्) स्त्री पुरुषों, राजा और प्रजा, गुरु और शिष्य उनके हित के लिये (पच्यस्व) अपने को परिपक्व कर, तप कर अर्थात् उनकी सेवा के लिये श्रम कर, अथवा स्वयं उत्तम माता पिता बनने के लिये श्रम और तप कर। (सरस्वत्यै पच्यस्व) सरस्वती, वेद की ज्ञानवाणी के प्राप्त करने और उन्नति करने के लिये अपने को परिपक्व कर, श्रम और तप कर। (सुत्राम्णे) राष्ट्र की उत्तम रीति से रक्षा करनेहारे (इन्द्राय) परमैश्वर्य्यवान् राजपद

आ राज्य-व्यवस्था के लिये (पच्यस्व) स्वयं परिपक्व बलवान् होने का यत्न कर। (वायुः) वायु के समान सर्वत्र गतिशील, यत्नवान् ज्ञानी, (पवित्रेण पूतः) पवित्र आचार व्यवहार और तप से पवित्र होकर (प्रत्यङ्) साक्षात् पूजनीय (सोमः) साम, सौम्यगुणों से युक्त राजा रूप से (अतिस्रुत) सबको लांघ कर सबसे उच्च होजाता है और जिस प्रकार पवित्र करने की विधि से पवित्र होकर (वायुः) व्यापक प्राण शरीर में पुन (सोम) वीर्य बनकर उत्कृष्ट रूप धारण करता है और वह इन्द्र अर्थात् जीव का मित्र होजाता है, अथवा पवित्र आचार से पवित्र होकर वायु या प्राण का अभ्यासी स्वय वायु के समान शुद्ध पवित्र, (सोम) योगी ज्ञानी पुरुष (अतिस्रुत) अति ज्ञानी होजाता है और वह (युज्य) योगी, युक्त होकर (इन्द्रस्य सखा) इन्द्र, परमेश्वर का मित्र बनजाता है, उसी प्रकार पवित्र आचार से पवित्र होकर ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष (अतिस्रुत) सबसे बढ़कर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा का (युज्य.) उच्च पद पर नियुक्त होने योग्य, (सखा) मित्र के समान अमात्य आदि हो जाता है। इसके लिये भी उस पुरुष को परिपक्व होने अर्थात् तप करने की आवश्यकता है ॥ शत० । ५ । ५ । ४ । २०–२२ ॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं । इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमंऽउक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥ ३२ ॥

ऋ० १० । १३१ । २ ॥

काक्षीवत सुकीर्तिर्ऋषि । सोम क्षत्रपतिर्देवता । निचृद् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अङ्ग) हे ज्ञानवान् पुरुष ! (यथा) जिस प्रकार (यवमन्त) जौ के खेतों वाले किसान लोग (यव चित्) जौ को (दान्ति) काटते हैं तब (अनुपूर्वं) क्रम से, नियमपूर्वक उचित उसको (वियूय) विविध

रीतियों से सूप, छाज आदि द्वारा फटक कर तुष आदि से अलग करके बाद में (ये) जो (बर्हिष) वृद्ध प्रजा के योग्य गुरु अतिथि माता पिता आदि वृद्धजन हैं (नमः उक्तिम्) नमस्कार योग्य वचन, आदर सत्कार (यजन्ति) प्राप्त करते हैं उनको ही (इह इह) इस इस स्थान में अर्थात् प्रत्येक स्थान में (एषां) उनको (भोजनानि कृणु) भोजन प्राप्त करा। उसी प्रकार विद्वान् पुरुष (यवमन्त) शत्रुनाशक राजा, सेनापति आदि 'यव' वीर पुरुषों से सम्पन्न होकर (यवम्) पृथक् करने योग्य शत्रु को काट देते हैं और क्रम से उनको (वियूय) पृथक् करके नाश करके राष्ट्र को स्वच्छ कर देते हैं और जो (बर्हिषः) राष्ट्र के परिवर्धक, पालक लोग (नम उक्तिं यजन्ति) हमारे आदर वचनों को प्राप्त करते अथवा (नमः उक्तिम्) शत्रुओं को नमाने या वश करने के वचनों या आज्ञाओं का प्रदान करते हैं (इह इह एषां भोजनानि कृणुहि) उन २ का हे राजन् ! भोजन तू आच्छादन आदिका प्रबन्ध कर।

हे योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीत. असि) राज्य के उत्तम नियमों और ब्रह्मचर्य सदाचार के नियमों द्वारा सुबद्ध है (त्वा) तुझको (अश्विभ्याम्) माता पिता, राजा और प्रजा के उपकार के लिये नियुक्त करता हूं। (त्वा) तुझको हे योग्य पुरुष ! (सरस्वत्यै) ज्ञानमयी वेद वाणी के अर्जन के लिये नियुक्त करता हूं। हे योग्य पुरुष ! (त्वा) तुझको (सुत्राम्णे इन्द्राय) प्रजाओं की उत्तम रक्षा करने वाले 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् राजपद के लिये नियुक्त करता हूं॥ शत० ५। ५। ४। २४ ॥

युवꣳसुराममश्विना नमुचावासुरे सचा।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥ ३३ ॥

अश्विनौ देवते। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (अश्विनौ) प्रजा के स्त्री पुरुषो ! अथवा सूर्य चन्द्र के

समान सभापति और सेनापते ! तुम दोनों (नमुचौ) कभी भी न छूटने वाले, अथवा कर्त्तव्य कर्म को न छोड़ने वाले (आसुरे) असुर, बलवान् पुरुष द्वारा किये जाने योग्य मेघ के समान शत्रु पर किये गये शरवर्षा आदि युद्ध कार्य्य में अथवा (नमुचौ) शरीर से कभी न छूटनेवाले (आसुरे) आसुर, भोग विलासादि के कार्य्य मे भी वर्तमान (सुरामम्) अति रमणीय अति मनोहर राजा को (विपिपाना) विविध उपायों से रक्षा करते हुए या (सुरामम् सोमम् विपिपानौ) उत्तम रमणीय 'सोम' राज्य समृद्धिका भोग करते हुए (शुभस्पती) शुभ गुणों के पालक होकर (युवम्) तुम दोनों (कर्मसु) सब कार्यों मे (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्यवान् राजा की (आ अवतम्) रक्षा करते रहो ॥ शत० ५ । ५ । ४ । २५ ॥

भोगविलासमय आसुरकर्म नमुचि है । उसको 'अपा फेन' अर्थात् आप्त पुरुषों के शुद्ध स्वच्छ ज्ञानोपदेश से नाश करे । ऐश्वर्य्य जिसको भोग-विलास ग्रसे हुए था उसको भोगविलास से बचाकर रजो विमिश्रित ऐश्वर्य्य का नरनारी आनन्दप्रद भोग करें । तो भी इन्द्र अर्थात् अपने राष्ट्र और राष्ट्रपति की सदा रक्षा करें ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३४ ॥

ऋ० १० । १३१ ॥ ४ ॥

अश्विनौ देवते । भुरिक् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(पितरौ पुत्रम् इव) जिस प्रकार माता और पिता, पुत्र की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) राष्ट्र में व्यापक शक्तिवाले सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष या रक्षक दो घुड़सवार अथवा राष्ट्र के नर और नारीगण (काव्यैः) विद्वान् पुरुषों द्वारा रचे गये (दंसनाभिः) उपायों

३४—० पितरा अश्विना० इति काण्व० ।

रीतियों से सूप, छाज आदि द्वारा फटक कर तुष आदि से अलग करके बाद में (ये) जो (बर्हिष) वृद्ध प्रजा के योग्य गुरु अतिथि माता पिता आदि वृद्धजन हैं (नमः उक्तिम्) नमस्कार योग्य वचन, आदर सत्कार (यजन्ति) प्राप्त करते हैं उनको ही (इह इह) इस इस स्थान में अर्थात् प्रत्येक स्थान में (एषां) उनको (भोजनानि कृणु) भोजन प्राप्त करा। उसी प्रकार विद्वान् पुरुष (यवमन्त) शत्रुनाशक राजा, सेनापति आदि 'यव' वीर पुरुषों से सम्पन्न होकर (यवम्) पृथक् करने योग्य शत्रु को काट देते हैं और क्रम से उनको (वियूय) पृथक् करके नाश करके राष्ट्र को स्वच्छ कर देते हैं और जो (बर्हिषः) राष्ट्र के परिवर्धक, पालक लोग (नम उक्तिं यजन्ति) हमारे आदर वचनों को प्राप्त करते अथवा (नमः उक्तिम्) शत्रुओ को नमाने या वश करने के वचनों या आज्ञाओं का प्रदान करते हैं (इह इह एषां भोजनानि कृणुहि) उन २ का हे राजन् ! भोजन तू आच्छादन आदिका प्रबन्ध कर।

हे योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीतः असि) राज्य के उत्तम नियमों और ब्रह्मचर्य सदाचार के नियमों द्वारा सुबद्ध है (त्वा) तुझको (अश्विभ्याम्) माता पिता, राजा और प्रजा के उपकार के लिये नियुक्त करता हूं। (त्वा) तुझको हे योग्य पुरुष ! (सरस्वत्यै) ज्ञानमयी वेद वाणी के अर्जन के लिये नियुक्त करता हूं। हे योग्य पुरुष ! (त्वा) तुझको (सुत्राम्णे इन्द्राय) प्रजाओं की उत्तम रक्षा करने वाले 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् राजपद के लिये नियुक्त करता हूं॥ शत० ५। ५। ४। २४॥

युवꣳसुरामम॑श्विना॒ नमु॑चावासु॒रे सचा॑।
वि॒पि॒पा॒ना शु॑भस्पती॒ इन्द्रं॒ कर्म॒स्वावतम् ॥ ३३ ॥

अश्विनौ देवते। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (अश्विनौ) प्रजा के स्त्री पुरुषो ! अथवा सूर्य्य चन्द्र के

समान सभापति और सेनापते ! तुम दोनों (नमुचौ) कभी भी न छूटने वाले, अथवा कर्त्तव्य कर्म को न छोड़ने वाले (आसुरे) असुर, बलवान् पुरुष द्वारा किये जाने योग्य मेघ के समान शत्रु पर किये गये शरवर्षा आदि युद्ध कार्य्य में अथवा (नमुचौ) शरीर से कभी न छूटनेवाले (आसुरे) आसुर, भोग विलासादि के कार्य्य में भी वर्तमान (सुरामम्) अति रमणीय अति मनोहर राजा को (विपिपाना) विविध उपायों से रक्षा करते हुए या (सुरामम् सोमम् विपिपानौ) उत्तम रमणीय 'सोम' राज्य समृद्धिका भोग करते हुए (शुभस्पती) शुभ गुणों के पालक होकर (युवम्) तुम दोनों (कर्मसु) सब कार्यों में (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्यवान् राजा की (आ अवतम्) रक्षा करते रहो ॥ शत० ५ । ५ । ४ । २५ ॥

भोगविलासमय आसुरकर्म नमुचि है । उसको 'अपां फेन' अर्थात् आप्त पुरुषों के शुद्ध स्वच्छ ज्ञानोपदेश से नाश करे । ऐश्वर्य्य जिसको भोग-विलास ग्रसे हुए था उसको भोगविलास से बचाकर रजो विमिश्रित ऐश्वर्य्य का नरनारी आनन्दप्रद भोग करें । तो भी इन्द्र अर्थात् अपने राष्ट्र और राष्ट्रपति की सदा रक्षा करें ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्द॒ꣳसनाभिः । यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥ ३४ ॥

ऋ० १० । १३१ ॥ ४ ॥

अश्विनौ देवते । भुरिक पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(पितरौ पुत्रम् इव) जिस प्रकार माता और पिता, पुत्र की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) राष्ट्र में व्यापक शक्तिवाले सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष या रक्षक दो घुड़सवार अथवा राष्ट्र के नर और नारीगण (काव्यै) विद्वान् पुरुषों द्वारा रचे गये (सनाभि.) उपायों

३४—० पितरा अश्विना० इति काण्व० ।

और प्रयोगों द्वारा हे (इन्द्र) इन्द्र ! राजन् ! तेरी (अवथुः) रक्षा करें। और (यत्) जब तू अपनी (शचीभिः) शक्तियों के बल से (सुरामम्) अति सुन्दर, रमणीय, सुख से स्मरण करने योग्य 'सोम' राज्यपद का (वि-अपिबः) भोगकर रहा हो तब हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (सरस्वती) विद्या या ज्ञानमयी वाणी के समान सुखप्रदा पत्नी भी (त्वा) तुझे (अभिष्णक्) प्राप्त हो, तुझे सुख प्रदान करे ॥ शत० ५ । ५ । ४ । ५६ ॥

अर्थात्—सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष राजा को अपने पुत्र के समान नाना उपायों से रक्षा करे और राजा की शक्तियों द्वारा सुरक्षित राष्ट्र रहने पर राजा विदुषी पत्नी से गृहस्थ का सुख भी ले ।

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

[तत्र चतुस्त्रिंशदृचः]

इति मीमांसातीर्थप्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये दशमोऽध्यायः ॥

॥ अथ एकादशोऽध्यायः ॥

११—१८ अध्यायाना प्रजापतिः साध्या वा ऋषय ॥

॥ ओ३म् ॥ युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्याऽअध्याभरत् ॥ १ ॥

भा०—(सविता) सर्व-उत्पादक, प्रजापति परमेश्वर (प्रथमम्) सब से प्रथम अपने (मन.) ज्ञान और (धिय) समस्त कर्मों या धारण सामर्थ्यों को (तत्वाय) विस्तृत करके (अग्नेः) अग्नि तत्व से या सूर्य से (ज्योति.) ज्योति, दीप्ति, परम प्रकाश को (निचाय्य) उत्पन्न करके (पृथिव्या अधि) पृथिवी पर (आभरत्) फैलाता है ।

योगी के पक्ष मे—(सविता) सूर्य जिस प्रकार अपने किरणों को फैलाकर अपने भीतरी (अग्ने. ज्योति· निचाय्य) अग्नि तत्व की दीप्ति को एकत्र करके (पृथिव्या अधि आभरत्) पृथिवी पर पहुचाता है उसी प्रकार (युजान) योग समाधि का अभ्यासी आदित्य योगी पुरुष (प्रथमं) सबसे प्रथम (मन.) अपने मनन वृत्ति और (धिय.) ध्यान करने और धारण करने की वृत्तियो को (तत्त्वाय) विस्तार करके अथवा (तत्त्वाय युञ्जानः) तत्व ज्ञान के लिये समाहित या एकाग्र करता हुआ (अग्ने) ज्ञानवान् परमेश्वर के (ज्योति) परम ज्योति का (निचाय्य) ज्ञान करके (पृथिव्या अधि) इस पृथिवी पर, अन्य वासियों को भी (आभरत्) प्राप्त कराता है ॥ शत० ६ । ३ । १ । १२ ॥

अथवा—(सविता) सूर्य के समान तीव्र सात्विक ज्ञानी (प्रथमं) सबसे प्रथम सृष्टि के आदि मे (तत्त्वाय मन धियः युञ्जान.) परम तत्व ज्ञान को प्राप्त करने के लिये अपने मन और बुद्धि वृत्तियों को योग

१—८ सविता ऋषिः । सविता देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः स्वरः ॥

'तत्वाय' इति उव्वटमहीधरसम्मत पाठ. ।

समाधि द्वारा समाहित, स्थिर, एकाग्र करता हुआ (अग्नेः) परम परमेश्वर के (ज्योति) ज्ञानमय प्रकाश को (पृथिव्याः अधि) पृथिवी पर (आभरत्) प्राप्त करता है, प्रकट करता है। इस योजना से आदित्य के समान अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा चारों एक ही कोटी के तेजस्वी ज्ञानियों द्वारा वेद-ज्ञान का योग द्वारा साक्षात् करना और पुनः प्रकाशित करना जाना जाता है।

राजा के पक्ष में—(सविता) विद्वान् राज्यकर्त्ता पुरुष अपने मन, ज्ञान और नाना कर्मों को (तत्त्वाय) विस्तृत करके प्रथम जब (युञ्जानः) कर्त्ताओं को नियुक्त करता है तब (अग्नेः) मुख्य अग्रणी, नेता पुरुष के ही (ज्योतिः) पराक्रम और तेज को (निचाय्य) स्थिर करके, उसको प्रबल करके (पृथिव्या अधि आभरत्) पृथिवी पर अधिष्ठाता रूप से फैला देता है।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या ॥ २ ॥

ऋषिदेवते पूर्वोक्ते। शङ्कुमती गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(वयम्) हम सब लोग (युक्तेन मनसा) योग द्वारा समाहित, एकाग्र स्थिर (मनसा) चित्त से (सवितु) सर्वोत्पादक (देवस्य) परम देव, परमेश्वर के (सवे) उत्पादित जगत् में (शक्त्या) अपनी शक्ति से (स्वर्ग्याय) परम सुख लाभ के लिये (ज्योति =आभरेम) उस परम ज्ञान को प्राप्त करें।

राजा के पक्ष में—एकाग्र, शुद्ध चित्त से हम प्रेरक राजा के राज्य में अपनी शक्ति से सुखमय राष्ट्र की उन्नति के लिये यत्न करें ॥ शत० ६। ३। १। १४ ॥

युक्त्वाय सविता देवान्त्स्वर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥ ३ ॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(सविता) जगत् के समस्त प्रकाशमान पदार्थों को उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर (स्वः यतः) सुख और प्रकाश और ताप को प्राप्त करने या देनेवाले (देवान्) विद्वानो, एवं दिव्य गुणो, सूक्ष्म दिव्य तत्वों को (धिया) अपनी धारण शक्ति और क्रिया शक्ति से (दिवम्) तेज के साथ (युक्त्वाय) युक्त करके बाद (बृहत् ज्योतिः करिष्यतः) बड़े भारी प्रकाश या विज्ञान को पैदा करनेवाले (तान्) उनको (प्रसुवाति) उत्तम रीति से प्रेरित करता है। उसी प्रकार (सविता) वैज्ञानिक पदार्थों का उत्पादक विद्वान् पुरुष (दिवं स्व यत.) प्रकाश और सुख या ताप उत्पन्न करनेवाले (देवान्) दिव्य सूक्ष्म उन तत्वों को जो (बृहत् ज्योतिः करिष्यत.) बड़े २ भारी प्रकाश या विज्ञानसिद्ध कार्य को करने मे समर्थ हैं उनको (प्रसुवाति) उत्पन्न करे, प्रेरित करे, सयोजित करे ॥ शत० ६ । ३ । ११ । १४ ॥

योगी के पक्ष में—सविता, आदित्य-योगी (स्व. यत. देवान्) सुख या परमानन्द की तरफ जानेवाले इन्द्रियरूप प्राणो या साधनो को (दिवम्) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के साथ (युक्त्वाय) योग द्वारा समाहित करके (सविता) सूर्य के समान या प्रजापति के समान बृहत् (ज्योति. करिष्यत तान् प्रसुवाति) कालान्तर में महान् ज्योति को साक्षात् कराने मे समर्थ उनको प्रेरित करे।

परमेश्वर के पक्ष में—सविता परमेश्वर सुख और (दिवम्) मोक्ष की तरफ जानेवाले (देवान् (विद्वानों को अपने (धिया) ज्ञान से युक्त करके (बृहत् ज्योति) महान् ब्रह्म तेज का सम्पादन करनेवाले उनको (प्रसुवाति) और भी उत्कृष्टरूप से प्रेरित करता है।

राजा के पक्ष में—प्रेरक, आज्ञापक सेनापति अपनी बुद्धि मे सुख और तेज को प्राप्त (देवान्) विजयेच्छु पुरुषो और विद्वानों को स्थान २ पर

नियुक्त करके (बृहत् ज्योति.) बड़े भारी वीर्य बल या राज्य के वैभव को बनाने या देनेवाले उनको (सविता) प्रेरक आज्ञापक राजा (प्रसुवाति) उत्तम रीति से चलाता है । इतिदिक् ।

युञ्जते मनऽउत युंजते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ ४ ॥ ऋ० ५ । ८१ । १ ॥

जगती । निषाद. ॥

भा०—(विप्रा) ज्ञान को विशेष रीति से पूर्ण करने वाले (होत्रा) दूसरो को ज्ञान देने और अन्यों से ज्ञान ग्रहण करनेवाले मेधावी, विद्वान् पुरुष (बृहतः) बड़े भारी (विपाश्चित) ज्ञानके संग्रही, सकल विद्याओं के भण्डार के समान स्थित, परमगुरु (विप्रस्य) विशेष रूप से समस्त संसार को अपने ज्ञान से पूर्ण करने हारे परमेश्वर के प्राप्त करने के लिये (मनः) अपने मनको उसमें (युन्जते) योगाभ्यास द्वारा एकाग्र कर उसका चिन्तन करते हैं (उत) और (धियः) अपनी धारण समर्थ वृत्तियो को भी (युन्जते) उसीसे जोड़ते है और उससे ज्ञान प्राप्त करते हैं । वह (विप्रः) पूर्ण ज्ञानवान् परमेश्वर (एक इत्) एक ही ऐसा है जो (वयुनावित्) समस्त प्रकार के विज्ञानों को जानने हारा होकर संसार को (विदधे) विविध रूपमें बनाता और विविध शक्तियों से धारण करता है । हे विद्वान् पुरुषो ! (सवितुः) उस सर्वोत्पादक (देवस्य) ज्ञान-प्रकाशस्वरूप, समस्त अर्थों के द्रष्टा और प्रदाता परमेश्वर की (मही) बड़ी भारी (परिष्टुतिः) सत्य वर्णन करने वाली वेदवाणी या बडी भारी स्तुति या महिमा है ॥ शत० ६ । २ । ३ । १६ ॥

इसी प्रकार जिस पूर्ण विद्वान् के पास अन्य ज्ञानपिपासु लोग मन और बुद्धियो को एकाग्र कर विद्याभ्यास करते हैं । वह सविता आचार्य्य समस्त ज्ञानो को जानता है । उसकी बड़ी महिमा है ।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः
॥ ५ ॥ ऋ० १० । १३ । १ ॥

विराडार्षी । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! और हे गुरुशिष्यो ! हे राजा प्रजाजनो ! (वाम्) आप दोनों के हित के लिये मैं विद्वान् पुरुष (नमोभिः) उत्तम आत्मा को विनय सिखानेवाले उपायों द्वारा, (पूर्व्यं ब्रह्म) पूर्व योगि-जनों, ऋषियों से साक्षात् किये गये (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान को, वेद को या परमेश्वर को (युजे) अपने चित्त में एकाग्र होकर साक्षात् करूं और आप लोगों को उसका उपदेश करूं । वह (श्लोक.) सत्यवाणी से युक्त, वेद ज्ञान अथवा सत्य ज्ञान से युक्त, विद्वान् अथवा (सूर श्लोकः) सूर्य के समान विद्वान् का वह (श्लोक.) ज्ञानोपदेश (वां) आप दोनों के लिये पथ्या इव) उत्तम मार्ग के समान (वि एतु) विविध उद्देश्यों तक पहुंचे । (ये) जो (दिव्यानि) दिव्य ज्ञानमय (धामानि) तेजों, प्रकाशों को या उच्च स्थानों, पदों को (आतस्थुः) प्राप्त हैं उन लोगों से हे (विश्वे पुत्रा) समस्त पुत्रजनो ! आप लोग (अमृतस्य) उस अमृतस्वरूप परमेश्वरविषयक ज्ञान का (शृण्वन्तु) श्रवण करो ॥ शत० ६ । २ । ३ । १७ ॥

यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे सऽएतशो रजांꣳसि देवः सविता महित्वना ॥ ६ ॥ ऋ० ५ । ८१ । ६३ ॥

जगती । निषादः ॥

भा०—(यस्य देवस्य) जिस देव के (ओजसा) वीर्य से पराक्रम-पूर्वक किये गये (प्रयाणम्) प्रकृष्ट या गमन के (अनु) पीछे पीछे

(अन्ये देवाः) अन्य देव, विद्वान्गण (इत्) भी (ययु) गमन करते हैं और जिसके (महिमानम् अनुययु) महान् सामर्थ्य का अन्य विद्वान् अनुकरण करते हैं और (य.) जो (पार्थिवानि) पृथिवी पर प्रसिद्ध (रजांसि) समस्त लोकों को (महित्वना) अपने महान् सामर्थ्य से (विममे) विविध प्रकार से बनाता है। (स.) वह (एतश) सर्व जगत् मे व्यापक (देव.) प्रकाशस्वरूप देव ही (सविता) सविता, सबका उत्पादक है ॥ शत० ६ । २ । ३ । १८ ॥

राजा के पक्ष में—(यस्य देवस्य प्रयाणम् अनु) जिस देव, राजा के प्रयाण अर्थात् विजय यात्रा के पीछे (अन्ये देवाः ययु) और राजा लोग गमन करते हैं (ओजसा) बल पराक्रम से जिसके (महिमानम् अनु ययुः) महान् सामर्थ्य को भी वे अनुकरण करते है, जो पृथिवी के समस्त जनो को अपने (महित्वना) बड़े भारी बल से (विममे) वश करता है, (सः एतशः) वह सूर्य के समान तेजस्वी (देव) राजा (सविता इत्) 'सविता' कहा जाता है।

देव॑ सवितः॒ प्रसु॑व य॒ज्ञं प्रसु॑व य॒ज्ञप॑तिं॒ भगा॑य। दि॒व्यो ग॑न्ध॒र्वः के॑त॒पूः केत॑ नः पुनातु वा॒चस्पति॒र्वाचं॑ नः स्वदतु ॥ ७ ॥

यजु० अ० ६ । १ ॥

आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । मं० १ ॥

हे (देव सवितः) सूर्य के समान सर्व कार्यों के प्रवर्त्तक तेजस्वी पुरुष ! विद्वान् ! तू (यज्ञं) सुखप्रद राष्ट्र व्यवस्था को (यज्ञपतिम्) राष्ट्र के पालक राजा को (भगाय प्रसुव २) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये उत्कृष्ट मार्ग पर चला। (दिव्यः) विजय करने मे समर्थ, उत्तम गुणवान् (गन्धर्वः) पृथ्वी या वाणी का पालक, सबको ज्ञान से पवित्र करने

वाला (नः केत पुनातु) हमारे ज्ञान को सदा पवित्र निर्मल बनाये। (वाच. पति) वाणी, वेद का रक्षक विद्वान् (नः) हमें (वाचं स्वदतु) वेदवाणी को आनन्दप्रद रीति से आस्वादन करावे॥ शत० ६। २। ३। १९॥

इमं नो देव सवितर्यज्ञं प्रणय देवाव्यꣳ सखिविदꣳ सत्राजितं धनजितꣳ स्वर्जितम्। ऋचा स्तोमꣳ समर्धय गायत्रेण रथन्तरं बृहद्गायत्रवर्त्तनि स्वाहा॥ ८॥

शक्वरी। धैवत॥

भा०—हे (देव सवित·) देव! विद्वन्! सवित! सर्व प्रेरक! तू (इमम्) इस (न. यज्ञम्) हमारे यज्ञ को, राष्ट्र को, यज्ञ=प्रजापति राजा को भी (देवाव्यम्) विद्वानो का रक्षक, (सखिविदम्) मित्रो का प्राप्त करनेवाला, (सत्राजितम्) सत्य की उन्नति करनेवाला या युद्धविजयी, (धनजितं) धनैश्वर्य के विजय करनेवाला और (स्वर्जितम्) सुख के बढ़ानेवाला (प्रणय) बना या उसको उत्तम मार्ग पर चला। (स्तोम) स्तुति करने योग्य पुरुष या राष्ट्र को (ऋचा) ऋग्वेद के ज्ञान से (सम् ऋधय) समृद्ध कर। (गायत्रेण) ब्राह्म-बल से (रथन्तरं) रथों के बल पर तरण करनेवाले क्षात्रबल को और (गायत्रवर्त्तनि) ब्राह्म-बल पर अपने मार्ग बनानेवाले (बृहत्) बड़े भारी राष्ट्र को (स्वाहा) उत्तम व्यवस्था और ज्ञानोपदेश से (समर्धय) समृद्ध कर॥ शत० ६। २। ३। २०॥

[१] अध्यात्म मे—गायत्र. प्राण·। ता० २६। १६। ४॥ वाग् वै रथन्तरम्। ता० ७। ६। २६॥ अर्थात् प्राण के बल से वाणी को समृद्ध करो। मनो वै बृहत्। तां० ७। ६। १६॥ (गायत्रवर्त्तनि बृहत् स्वाहा समर्धय) प्राणमार्ग से चलनेवाले मन को उत्तम प्राणायाम विधि से समृद्ध बलवान् करो।

[२] भौतिक विज्ञान में—अग्निर्गायत्री, गायत्रो वा अग्निः । कौ० १ । ७ ॥ इयं पृथिवी रथन्तरम् । अग्नि, विद्युत् आदि के बल से पृथ्वी को समृद्ध करो, अग्नि के द्वारा पृथिवी के यन्त्र कला कौशल आदि सम्पन्न करो और (गायत्रवर्तनि) अग्नि के द्वारा जलने वाले (बृहत्) बड़े २ कार्य सम्पन्न करो ।

[३] तेजो वै रथन्तरम् । तां० १५ । १० । ६ । रथन्तरं वै सम्राट् तै० । १ । ४ । १ । ६ ॥ गायत्री वै ब्राह्मणः । ऐ० ६ । २८ ॥ गायत्री ब्रह्मवर्चसं । तै० २ । ७ । २ । ३ । वीर्यं वै गायत्री । तां० ७ । ३ । १३ ॥ बार्हतोऽसौ स्वर्गो लोकः । गो० पू० ४ । १२ ॥ पशवो बृहती । कौ० १७ । २॥ अर्थात् ब्राह्मण-बल से सम्राट् को समृद्ध करो और उनके दिखाये मार्ग पर बड़ा भारी राष्ट्र समृद्ध हो । दूसरे ब्रह्मचर्य, से तेज बढ़ा कर और ब्रह्मचर्य के द्वारा ही पशुओं की वृद्धि करो । इत्यादि नाना पक्षों के अर्थ जानने चाहियें ॥

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आददे गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वत्पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्य-मङ्गिरस्वदाभर त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ९ ॥

भुरिगति शक्करी । पञ्चमः ॥

भा०—हे वज्र ! हे वज्र धारक, राष्ट्र के बलधारिन् क्षत्रपते ! (त्वा) तुझको (सवितुः) सूर्य के समान देव, राजा या परम विद्वान् के (प्रसवे) शासन में रह कर ' अश्विनोः बाहुभ्याम् ' प्राण और उदान, स्त्री पुरुषों, राजा प्रजा के बाहुओं बाधक बलों से और पूष्णः) पोषणकारी राजा के (हस्ताभ्याम्) हाथों से (आददे) ग्रहण करता हूं । (गायत्रेण छन्दसा) गायत्र च्छन्द से, (आंगिरस्वत्) अंगारों के समान जाज्वल्यमान (पुरीष्यम् अग्निम्) पुरीष्य अग्नि को (पृथिव्याः) पृथिवी के आश्रय पर (आभर)

प्राप्त कर और इसी प्रकार (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रैष्टुभ छन्द से अंगारे के तुल्य अग्नि को स्वयं (अंगिरस्वत्) अंगारों के समान विद्याप्रकाश से प्रकाशमान होकर (आभर) प्राप्त करा ॥ शत० ६ । २ । ३ । ३८ । ३९ ॥

(१) (गायत्रेण छन्दसा अंगिरस्वत् पुरीष्यमग्निम् आभर)—गायत्रो-ऽयं भूलोकः । कौ० ८ । ६ ॥ इमे वै लोकाः गायत्रम् । तां० ७ । ३ । ६ ॥ यद् गायन्नत्रायत तद् गायत्रस्य गायत्रत्वम् । जै० उ० ३ । ३८ । ४ ॥ अंगिरो हि अग्निः । श० १ । ४ । १ । (पुरीष्यम्) पुरीष्य इति वै तमाहुर्य श्रियं गच्छति । श० २ । १ । १ । ७ ॥ पुरीषं वा इयं पृथिवी । श० १२ । ५ । २ । ५ ॥ यत् पुरीषं स इन्द्र । ५ । १० । ४ । १ । ७ ॥ देवा पुरीषम् । श० ८ । ७ । ४ । १७ । प्रजाः पुरीषम् श० ६ । ७ । १६ । पशवः पुरीषम् । अर्थात् (गायत्रेण छन्दसा) पृथिवीलोक अर्थात् उसके निवासियों के अपने अभिलाषा के द्वारा अथवा विद्वान् पुरुषों की अनु-मति से (पुरीष्यम्) इन्द्रपद के योग्य, ऐश्वर्यवान्, प्रजा, पशु और विद्वानों के हितकारी (अङ्गिरस्वत्) अग्नि और अंगारों के समान तेजस्वी पुरुष को (आहर) राजारूप से प्राप्त करा । कहा से प्राप्त करें ? (पृथिव्याः सधस्थात्) पृथिवी पर एकत्र निवास करनेवाले जन समुदाय में से ही । वह पुरुष किस प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी रहे ? (त्रैष्टुभेन छन्दसा अंगिरस्वत्) वज्रः त्रिष्टुप् । कौ० ३ । २१ । शत० ६ । ३ । २ । ३९ ॥ त्रिष्टुप् इन्द्रस्य वज्रः । ऐ० २ । २ ॥ बलं वै वीर्यं त्रिष्टुप् । कौ० ७ । २ ॥ त्रैष्टुभो वै राजन्यः । क्षत्रं त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ या राका सा त्रिष्टुप् । ऐ० ३ । ४७ । ४८ ॥ हे राजा वज्र, आयुधबल और राजशक्ति या पूर्णिमा के समान सर्वप्रिय, सर्वाङ्ग पूर्ण शासक शक्ति के (छन्दसा) स्वरूप से (अंगिरस्वत्) अग्नि सूर्य और विद्युत् के समान तेजस्वी हो ।

अभ्रिरसि नार्यसि त्वया वयमग्निᳬ शकेम खनितुᳬ सधस्थ आ। जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ १० ॥

अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे वज्र ! तू (अभ्रि· असि) तू अभ्रि, पृथ्वी खोदने वाले यन्त्र के समान तीक्ष्ण स्वभाव, एवं शत्रुके बीचमे विना किसी रोक के घुस जाने मे समर्थ है। तुझे कोई भी रोकने में समर्थ नही है। अत तू (नारी असि) तू नारी, स्त्री के समान सर्वकार्यसाधिका एवं सर्वथा शत्रु रहित या नेता पुरुषो द्वारा बनी हुई सेना या सभा रूप है। (त्वया) तुझसे (वयम्) हम (सधस्थे) इसी समान आश्रय स्थान सभाभवन मे जिसमें हम और हमारे प्रतिद्वन्द्वी एवं अधीन लोग भीरहते हैं उस स्थान में (अग्निम्) सोने के समान दीप्तिमान् पदार्थों को जिस प्रकार रम्भी या कुदाली से (खनितुं शकेम) खोद या पा सकते हैं उसी प्रकार हम लोग (त्वया) तुझ अप्रातिहत वीर्यवाली सेना या सभा से (अग्निम्) अग्रणी पुरुष या अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करे। वह अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष किस प्रकार हो ? वह (जागतेन छन्दसा) जागत छन्द वैश्यबल से (अंगिरस्वत्) अग्नि के समान तेजस्वी ऐश्वर्यवान् है ॥ शत० ६ । ३ । १ । ४१ ॥

(१) 'जागतेन छन्दसा'—जगती गततमं छन्दः । जज्जगतिर्भवति । चिप्रगतिः जज्मला कुर्वन् आसृजते इति ब्राह्मणम् । दे० य० ३ । १७ ॥ जगती हि इयं पृथिवी । श० २ । २ । १ । १० ॥ जगत्य ओषधय. । श० १ । २ । २ । २ ॥ पशवो वै जगती । गो० पु० ५ । ५ ॥ जागतोऽश्व. प्राजापत्यः । तै० ३ । ८ । ८ । ४ ॥ जागतो वै वैश्य । ऐ० १ । २८ ॥ द्वादशाक्षरपदा जगती । तां० ६ । ३ । १२ ॥ अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती । जगत्यादित्यानां पत्नी। गो० उ० २ । ६ ॥ जागतो वा एष य एष सूर्यः तपति।

बलं वै वीर्यं जगती । कौ० ११ । २ ॥ जागत श्रोत्रम् । तां० २० । १६ । ५ ॥ जागता वै ग्रावाण. । कौ० २६ । १ ॥ अर्थात् (१) युद्धसे तीव्रगति से राजा तेजस्वी बने । (२) इस पृथिवी के राज्य से बलवान् हो । (३) पशु, ओषधि और अश्वादि सेना द्वारा प्रजाका पालक होकर तेजस्वी हो । (४) वैश्यों की समृद्धि, व्यापार, १२ पदाधिकारियों की संगठित सभा, सूर्यके समान प्रखरता, बल, वीर्य द्वारा तेजस्वी हो और श्रोत्र द्वारा ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानवान् हो ।

अध्यात्ममें—वाणी अग्नि है । वेदवाणी के अभ्यास से हम विद्वानों को प्राप्त करें । और वह (जागतेन छन्दसा) ४८ वर्ष के आदित्य ब्रह्मचर्य से तेजस्वी हो ।

हस्त॑ऽआ॒धाय॑ सवि॒ता बिभ्र॒दभ्रिँ॑ हिर॒ण्ययी॑म् । अ॒ग्नेर्ज्योति॒र्नि॒चाय्य॑ पृथि॒व्याऽअध्याभ॑र॒दानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् ॥ ११ ॥

सविता देवता । आर्षी पङ्क्ति. । पञ्चमः ॥

भा०—(सविता) शिल्पी जिस प्रकार (हिरण्ययीम्) लोहे की चमकती हुई (अभ्रिम्) कुदाली को (हस्ते आधाय) हाथ मे लेकर (पृथिव्याः) पृथिवी के गर्भ से (अग्ने. ज्योति) अग्नि के मूलभूत ज्योतिर्मय सुवर्ण आदि पदार्थ को (अधि आभरत्) खनकर प्राप्त करता है । उसी प्रकार पूर्वोक्त सर्व प्रेरक सविता विद्वान् (हिरण्ययीम्) सुवर्णमय बल, तेज से बने वज्र या सेनाबल को अपने हाथ मे रखकर (पृथिव्या अधि) पृथिवी के निवासियों में से ही (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के (ज्योतिः) वीर्य, अर्थात् बलानुसार अधिकार सामर्थ्य को (निचाय्य) उत्पन्न कर (अधि आभरत्) प्राप्त करता है । वह अग्रणी पुरुष किस प्रकार तेजस्वी हो ? वह (आनुष्टुभेन छन्दसा) आनुष्टुभ छन्द से (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के अङ्गारों के समान तेजस्वी हो ॥ शत० ६ । २ । १ ॥

'आनुष्टुभेन छन्दसा'—अनुष्टुप् अनुस्तोभनात् । दे० ३ । ७ ॥ ष्टुभ स्तम्भे । भ्वादिः । यस्याष्टौ ता अनुष्टुभम् । कौ० ६ । २ ॥ द्वात्रिंशदक्षरानुष्टुप् । कौ० २६ । १ ॥ अनुष्टुम्मित्रस्य पत्नी । गो० ३० २ । ६ ॥ वाग् अनुष्टुप् । कौ० ५ । ६ ॥ ज्यैष्ठ्यं वा अनुष्टुप् । तां० ८ । ७ । ३ ॥ प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् । ता० ४ । ८ । ६ ॥ आनुष्टुभः प्रजापति । तै० ३ । ३ । २ । १ ॥ यस्य ते (प्रजापतेः) अनुष्टुप् छन्दोऽस्मि । ऐ० ३ । १२ ॥ अनुष्टुप् सोमस्य छन्दः । कौ० १५ । २ ॥ विश्वेदेवाः आनुष्टुभं समभरन् । जै० उ० १ । १८ । ७ ॥ आनुष्टुभो राजन्यः । तै० १ । २ । ८ । २ ॥ सत्यानृते वा अनुष्टुप् । तै० १ । २० । १० । ४ ॥ आनुष्टुभी रात्रि । ऐ० ४ । ६ ॥ उदीची दिक् । श० ८ । ३ । १ । १२ ॥ वृष्टिः । तां० १२ । ८ । ८ ॥ अर्थात् शत्रुके स्तम्भन करने वाले बलसे, अष्टप्रधाना अमात्य परिषद् से, मित्र अर्थात् मरण से त्राणकारी बलसे, राजा की पालनी शक्ति से, सब से बड़े पद से, प्रजापति के पद से, सबके रमणकारिणी, सत्य और अनृत के विवेक शक्ति से राजा तेजस्वी हो । विद्वान् पुरुष वाणी के अभ्यास से, ३२ वर्ष के ब्रह्मचर्य से तेजस्वी बने ।

प्रतूर्त्तं वाजिन्नाद्रव वरिष्ठामनु संवतम् । दिवि ते जन्म परममन्तरिक्षे तव नाभिः पृथिव्यामधि योनिरित् ॥ १२ ॥

नाभानेदिष्ट ऋषिः । वाजी देवता । आस्तारपक्तिः । पञ्चम ॥

भा०—हे (वाजिन्) ज्ञान और बलसे युक्त ! विद्वन् राजन् ! वीर ! तू (प्रतूर्तं) अश्व जिस प्रकार अच्छी भूमि में बड़े वेग से जाता है इसी प्रकार (वरिष्ठा) सबसे श्रेष्ठ (संवतम्) सेवन करने योग्य पदवी को (प्रतूर्नम्) अति वेगसे, (आ द्रव) प्राप्त कर । (ते) तेरी (दिवि) तेजस्विता में, ज्ञानप्राप्ति में और विजय में या विद्वानों की बनी राजसभा में ही (परमम् जन्म) परम, सर्वोत्कृष्ट प्रादुर्भाव होता

है । (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष या वायु जिस प्रकार सब संसार पर आच्छादित है उसी प्रकार प्रजा के ऊपर पक्षपात रहित होकर सबका सुखादि देकर पालन करने के कार्य मे (ते नाभिः) तेरा बन्धन अर्थात् नियुक्ति की जाती है । और (पृथिव्याम् अधि) पृथिवी पर (तव) तेरी (योनिः) आश्रयस्थान है । अर्थात् पृथिवी की प्रजाओ में ही राजा का परम आश्रय है । प्रजा के आश्रय पर राजा स्थित है । भौतिक विज्ञानपक्षमे—हे विद्वन् शिल्पिन् ! शिल्पविद्या में तुम्हारा उत्तम प्रादुर्भाव है । अन्तरिक्ष मे तुम्हारी (नाभिः) स्थिति है । पृथिवी पर आश्रय है । तू विमानों द्वारा शीघ्र गति से जाने मे समर्थ हो ॥ शत० ६ । ३ । २ । २ ॥

युञ्जाथा॑ᳫं रास॑भं यु॒वम॒स्मिन् यामे॑ वृषण्वसू ।
अ॒ग्निं भर॑न्तमस्म॒युम् ॥ १३ ॥

कुश्रिर्ऋषिः । रासभो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) समस्त सुखों के वर्षक और सबको बसाने वाले स्त्री पुरुषो या विद्वान् गणो ! (युवम्) तुम दोनो (याने) गमन करने मे समर्थ रथ में जिस प्रकार (रासभम्) शब्द और दीप्त से युक्त अग्नि का शिल्पी लोग प्रयोग करते है उसी प्रकार, हे (वृषण्वसू) प्रजा पर सुख वर्षण करनेहारे वीर पुरुषो और हे वसो ! वासशील प्रजाजन (युवं) आप लोग (अस्मिन् यामे) इस राज्य की नियम व्यवस्था मे (अस्मयुम्) हमें मुख्य उद्देश्य तक पहुंचाने में समर्थ या हमें चाहने वाले हमारे प्रिय हितैषी, (भरन्तम्) राष्ट्र के भरणपोषणकारी या कार्य्य संचालन करनेहारे (रासभम्) विज्ञानोपदेश से प्रकाशमान, (अग्निं) ज्ञानवान् पुरुष को (युञ्जाथाम्) उत्तम पदपर नियुक्त करो । अथवा (अग्निं भरन्तम्= हरन्तं) अग्निके समान तेजस्वी विजिगीषु राजा को और सन्मार्ग पर लेजानेहारे विद्वान् पुरुष को नियुक्त करो ॥ शत० ६ । ३ । २ । ३ ॥

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे। सखाय ऽइन्द्रमूतये ॥ १४ ॥

शुनःशेप ऋषिः । इन्द्र । क्षत्रपतिर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! आप लोग (योगे योगे) प्रत्येक नियुक्त होने के पद पर (तवस्तरम्) औरों से अधिक बल शाली (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये (वाजे वाजे) प्रत्येक संग्राम के अवसर पर (हवामहे) हम आदर से बुलावें । उसे अपना नेता बनावें ॥ शत० ६ । ३ । २ । ४ ॥

प्रतूर्वन्नेह्यवक्रामन्नशस्ती रुद्रस्य गाणपत्यं मयोभूरेहि । उर्वन्तरिक्षं वीहि स्वस्तिगव्यूतिरभयानि कृण्वन् पूष्णा सयुजा सह ॥ १५ ॥

अश्वरासभौ गणपतिर्वा देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे वीर पुरुष ! तू (तूर्वन्) अतिवेग से गमन करता हुआ (अशस्तीः) अशस्त्र, शासना को उल्लंघन करने या उच्छृंखल दुष्ट पुरुषों को और शत्रु सेनाओं को या उनकी की हुई अपकीर्त्तियों को (अवक्रामन्) पददलित करता हुआ (प्र एहि) आगे बढ़ । और (मयोभूः) सबके सुख और कल्याण की भावना करता हुआ, (रुद्रस्य) शत्रुओं के रुलाने वाले सेना समूह के (गाणपत्यं) गण के पति पद अर्थात् सेनापतित्व को (एहि) प्राप्त कर । और तू (स्वस्ति-गव्यूतिः) सुखपूर्वक निष्कन्टक मार्गवाला होकर और (सयुजा) अपने साथ रहने वाले (पूष्णा) पुष्टिप्रद पृथिवी वासी राष्ट्र जन और पुष्ट सेनाबल के (सह) साथ सब स्थानों को (अभयानि) भय रहित (कृण्वन्) करता हुआ (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष मार्ग को अथवा विशाल अन्तरिक्ष के समान सर्वाच्छादक सर्वोपरि विद्यमान राजपद को (वि इहि) विशेष रूप से प्राप्त कर ॥ शत० ६ । ३ । २ । ७-८ ॥

पृथिव्याः सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदाभराग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वदच्छेमोऽग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वद्भरिष्यामः ॥ १६ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत स्वर. ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! तू (पृथिव्या) पृथिवी के (सधस्थात्) उस एक स्थान से ही जहां प्रजा बसी है (पुरीष्यम्) समस्त प्रजाओं को पालन करने मे समर्थ, (अङ्गिरस्वत्) अग्नि या सूर्य के समान तेजस्वी, (अग्निम्) अग्रणी नेता पुरुष को (आभर) प्राप्त कर । हम लोग भी (पुरीष्यम्) पालन करने में समर्थ, समृद्ध (अङ्गिरस्वत्) सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्वी, (अग्निम्) अग्नि के समान शत्रुसंतापक नेता को (अच्छेम) प्राप्त हों । (पुरीष्यम् अङ्गिरस्वद् भरिष्याम.) उक्त प्रकार के समृद्ध, तेजस्वी नेता को हम भी धारण करेंगे और हम उसको प्राप्त करेंगे, उसका पालन पोषण करेंगे । शत० ६ । ३ । २ । ८–६ । ३ । ३ । ४ ॥

पृथिवी के जिस स्थान की प्रजा हो (सधस्थ) उसी स्थान का उनका शासक नेता होना चाहिये । वे उसको स्वयं चुनें, और स्वयं उसको स्थापित करें ।

अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः । अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवी आततन्थ ॥ १७ ॥

पुरोधस ऋषय । अग्निर्देवता । निचृद् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अग्निः) महान् अग्नि (प्रथम) सब से प्रथम (जातवेदाः) विद्यमान, ज्ञानवान् परमेश्वर ही (उषसाम्) उषाओं के (अग्रम्) अग्र, मुख्य भाग सूर्य को भी (अख्यत्) प्रकाशित करता है । (अनु) उसके पीछे स्वय सूर्य तदनुसार अन्य उत्कृष्ट विद्वान् पुरुष भी व्यवहारों को प्रकाशित करे । (अनु अहानि अख्यत्) वही परमेश्वर दिनों को प्रकाशित करता है । (सूर्यस्य) वही सूर्य की (पुरुत्रा) बहुतसी (रश्मीन्) रश्मे,

किरणों को भी प्रकाशित करता है (अनु) वही (द्यावा पृथिवी) आकाश और पृथिवी को भी (आततन्थ) सर्वत्र विस्तृत करता है। उसी प्रकार राष्ट्र में (प्रथमः जातवेदाः) सब से श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष भी (उषसाम् अग्रम्) उदय कालों को प्रकाशित कर (अहानि) प्राप्त दिनों को प्रकाशित करे। (सूर्यस्य पुरुत्रा रश्मीन्) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के नाना प्रबन्ध व्यवस्थाओं और कार्यों को प्रकाशित करे। वह (द्यावा पृथिवी) राजा प्रजा दोनो की वृद्धि करे ॥ शत० ६ । ३ । ३ । ६ ॥

आगत्यं वाज्यध्वान॑ᳬ सर्वा मृधो वि धूनुते ।
अग्निᳬ सधस्थे महति चक्षुषा निचिकीषते ॥ १८ ॥

मयोभुव ऋषयः । अग्निर्देवता । निचृद्नुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—जिस प्रकार (वाजी) वेगवान् अश्व (अध्वानम्) मार्ग पर आकर अपनी सब थकावटों को झाड़ फैंकता है उसी प्रकार (वाजी) बलवान् राजा (अध्वानम् आगत्य) राष्ट्र को प्राप्त करके (सर्वा• मृधः) समस्त संग्रामकारी शत्रुओं को (विधूनुते) कंपा देने में समर्थ होता है। और (महति) बड़े महत्व युक्त प्रतिष्ठा के (सधस्थे) अपने योग्य स्थान पर ही (अग्निम्) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को (चक्षुषा) अपनी आंखें से (निचिकीषते) देख लेता है। या (चक्षुषा) दर्शन सामर्थ्य से युक्त (अग्नि) विद्वान् को उस पद पर (नि चिकीषते) नियुक्त करता है। शत० ६ । ३ । ३ । ८ ॥

राजा बलपूर्वक शत्रुओं का दमन करके प्रजा के शासन कार्य पर विद्वान् को अपना स्थानापन्न नियुक्त करे ।

आक्रम्यं वाजिन् पृथिवीमग्निमिच्छ रुचा त्वम् । भूम्यां वृत्वायं नो ब्रूहि यतः खनेम तं वयम् ॥ १९ ॥

अग्निरश्वो वा देवता । निचृदनुष्टुप् । गाधारः ॥

१९—०भूमे 'वृत्वाय०' इति काण्व० ।

भा०—हे (वाजिन्) वेगवान अश्व के समान बलवान्, एवं संग्राम में शूर पुरुष ! (त्वम्) तू (पृथिवीम् आक्रम्य) पृथिवी पर आक्रमण करके (रुचा) दीप्ति या कान्ति या अपनी रुचि प्रीति के अनुसार (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष या उस पद को (इच्छ) चाह । (भूम्याः) भूमि पर (वृत्वाय) पूर्ण अधिकार करके तू (नः) हमे (ब्रूहि) स्वयं बतला, (यतः) जहां से हम (तं) उस ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को (खनेम) प्राप्त करें या जहां उसको स्थापित करें ॥ शत० ६ । ३ । ३ । ११ ॥

भूगर्भ विद्या पक्ष में—इसी प्रकार विद्वान् पुरुष ही बतलावे कि भूमि सुवर्ण रूप तेजोमय पदार्थ कहां से प्राप्त करें ।

द्यौस्ते पृष्ठं पृ॑थि॒वी स॒धस्थ॑मा॒त्मान्तरि॑क्ष॒ꣳ स॑मु॒द्रो योनि॑: ।
वि॒ख्याय॒ चक्षु॑षा॒ त्वम॒भि ति॑ष्ठ पृतन्य॒तः ॥ २० ॥

अश्व क्षत्रपतिर्देवता । निचृदार्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे राजन् प्रजापते ! (ते) तेरा (पृष्ठम्) पालन सामर्थ्य, प्रजा को अपने ऊपर उठाने का बल (द्यौः) आकाश के समान महान् एवं सबको जल वर्षा कर अन्न-सुख देने हारा है । (सधस्थम्) रहने का स्थान आश्रय (पृथिवी) पृथिवी या पृथिवी के समान विस्तृत और ध्रुव है । (आत्मा) तेरा आत्मा अपना स्वरूप (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष या वायु के समान सब का प्राणस्वरूप या सब को आच्छादक, शरणदायक है । (योनि) तेरा आश्रय तुझे राजा बनाने वाले, तेरा राज्य स्थापन करने वाले अमात्य आदि या अन्य कारण (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीर और अमर्यादित, अगाध है । (चक्षुषा) अपने चक्षु, दर्शन शक्ति से (विख्याय) विशेषरूप से आलोचन करके (त्वम्) तू (पृतन्यतः) अपनी सेना से आक्रमण करने वाले शत्रुओं पर (अभितिष्ठ) आक्रमण कर ॥ शत० ६ । ३ । ३ । १२ ॥

उत्क्राम महते सौभगायास्मादास्थानाद् द्रविणोदा वाजिन् ।
वयंᳪ स्याम सुमतौ पृथिव्याऽअग्निं खनन्तऽउपस्थेऽअस्याः ॥२१॥

द्रविणोदा वाजी देवता । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न राजन् ! तू (द्रविणोदाः) प्रजा और नियुक्त पुरुषों को यथोचित धन प्रदान करने में समर्थ होकर (महते) बड़े भारी (सौभगाय) यज्ञ में शोभते ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (अस्मात् आस्थानात्) इस निवासस्थान से (उत्क्राम) ऊपर उठ । (वयम्) हम लोग (अस्याः पृथिव्याः) इस पृथिवी के (उपस्थे) पीठ पर (अग्निम्) अग्नि के समान ज्ञानवान्, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष को श्रम से (खनन्तः) प्राप्त करते हुए या स्थापित करते हुए उसके (सुमतौ) उत्तम ज्ञान और मन्त्रणा के अधीन (स्याम) रहें ॥ शत० ६ । ३ । ३ । १३ ॥

उदक्रमीद् द्रविणोदा वाज्यर्वाकः सुलोकᳪ सुकृतं पृथिव्याम् ।
ततः खनेम सुप्रतीकमग्निᳪ स्वो रुहाणा अधिनाकमुत्तमम् ॥२२॥

द्रविणोदा वाजी देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अर्वा) अश्व के समान बलवान् एवं (वाजी) ज्ञानवान्, (द्रविणोदा) प्रकाशप्रद सूर्य के समान विद्वान् राजा (उत् अक्रमीत्) उदय को प्राप्त होता है और (पृथिव्याम्) इस पृथिवी पर (लोकम्) समस्त लोक, जन समुदाय को (सुकृतम्) पुण्य आचारवान्, श्रेष्ठ (सु अकः) बना देता है । हम लोग (उत्तमम्) उत्तम, सर्वोत्कृष्ट (नाकम्) सुखमय लोक को (अधिरुहाणाः) प्राप्त कर (ततः) वहां (सुप्रतीकम्) उत्तम, कान्तिमान सुन्दर (अग्निम्) सुवर्ण के समान कान्तिमान्, विद्वान् पुरुष को (खनेम) प्राप्त करें । उत्तम राजा राज्य को उत्तम बनावे प्रजा के उस उत्तम राज्य में से ही विद्वान् नर-रत्न उत्पन्न होंगे ॥ शत० ६ । ३ । ३ । १४ ॥

आ त्वा जिघर्मि मनसा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा। पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नै रभसं दृशानम् ॥ २३ ॥

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(घृतेन) घी से जिस प्रकार अग्नि को आहुति द्वारा सेचन किया जाता है उसी प्रकार (विश्वा भुवनानि) समस्त पदार्थों के भीतर (प्रतिक्षियन्तम्) निवास करनेवाले, व्यापक (त्वा) तुझ शक्ति को (मनसा) मनसे, ज्ञान द्वारा (आ जिघर्मि) प्रज्वलित करता हूं। (तिरश्चा) तिरछे गति करनेवाले, (वयसा) जीवन सामर्थ्य से (पृथुम्) अति विस्तृत, (बृहन्तम्) महान् (व्यचिष्ठम्) सबसे अधिक व्यापक, अति सूक्ष्म (रभसम्) बलस्वरूप, (दृशानम्) दर्शनीय उस आत्मा को (अन्नैः) अन्न और उसके समान भोगयोग्य सुखों द्वारा (आ जिघर्मि) प्रदीप्त करता हूं। इसी प्रकार राजा के और विद्वान् के पक्ष में—समस्त पदों पर अपने बल से रहनेवाले विद्वान् राजा को दूरगामी बल से विशाल, बड़े, व्यापक सामर्थ्यवान्, दर्शनीय, बलवान् पुरुष को हम (अन्नैः) अन्नादि भोग्य पदार्थों से उसी प्रकार जैसे घृत से अग्नि को प्रदीप्त करते हैं, सत्कार करें ॥ शत० ६ । ३ । ३ । १९ ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत। मर्यश्री स्पृहयद्वर्णोऽअग्निर्नाभिमृशे तन्वा जर्भुराणः ॥ २४ ॥

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि में घृत का आसेचन करके उसको प्रज्वलित और अधिक दीप्तिमान् किया जाता है उसी प्रकार हे राजन्! मैं (विश्वतः) सब ओर से (प्रत्यञ्चं) शत्रु के प्रति आक्रमण करनेवाले तुझको (आजिघर्मि) सब प्रकार से उत्तेजित, प्रदीप्त करूं। वह राजा (तत्) इस प्रकार प्रेम से दिये उत्तेजना सामग्री को (अरक्षसा) निर्विघ्न, राक्षस या क्रूर स्वभाववाले दुष्ट पुरुष से विपरीत, सज्जनस्वभावयुक्त,

(मनसा) चित्त से (जुषेत) स्वीकार करे। वह (अग्नि:) अग्रणी, राजा (मर्यश्री:) मनुष्यों द्वारा आश्रय करने योग्य या मनुष्यों के बीच विशेष शोभावान्, उनका शिरोमणिस्वरूप और (स्पृहयद्-वर्ण:) प्रेमयुक्त पुरुषों द्वारा अपना नेता चुना गया, या कान्तिमान् अग्नि के समान तेजस्वी (तन्वा) अपने विस्तृत शक्ति से या अपने स्वरूप से (जर्भुराण:) अंगों को ऊपर नीचे नमाता हुआ लचकती ज्वालाओं से (अग्नि:) अग्नि जिस प्रकार अति तीक्ष्ण होकर (अभिमृशे न) स्पर्श करने के योग्य नहीं होता उसको कोई छू नहीं सकता उसी प्रकार वह भी युद्ध में जब अति तीक्ष्ण होकर अपने गात्र नमाता या पैंतरे चलता है तब (अग्नि) आग के समान तेजस्वी होकर (अभिमृशे न) किसी भी द्वारा अभिमर्शन, या तिरस्कार करने योग्य नहीं रहता। उसका कोई अपमान नहीं कर सकता ॥ शत० ६ । ३ । ३ । १५ ॥

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ २५ ॥

सोमक ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(वाजपति) संग्राम का पालक, सेनापति (कवि:) दूर देश तक दर्शन करने मे समर्थ, क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी (अग्नि) अग्नि के समान तेजस्वी, एवं अग्रणी होकर (हव्यानि) प्राप्त करने योग्य, विजय करने योग्य स्थानों पर (परि अक्रमीत्) आक्रमण करे और (दाशुषे) करादि दान देनेवाले या दान योग्य प्रजाजन को (रत्नानि) नाना रमणीय, रत्न सुवर्ण आदि पदार्थ (दधत्) प्रदान करे।

गृहपति के पक्ष मे—(वाजपति:) अन्नादि का पालक विद्वान् अग्नि के समान तेजस्वी होकर (हव्यानि) ग्रहण योग्य पदार्थों को प्राप्त करे। (दाशुषे) दान योग्य ब्राह्मण, अतिथि आदि को (रत्नानि दधत्) सुवर्ण रत्नादि प्रदान करे।

परि॑ त्वाग्ने॒ पुरं॑ व॒यं विप्र॑ꣳ सहस्य धीमहि ।
धृ॒षद्व॑र्णं दि॒वेदि॑वे ह॒न्तारं॑ भङ्गु॒राव॑ताम् ॥ २६ ॥

पायुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्रणी, अग्नि के समान तेजस्विन्! राजन्! हे (सहस्य) अपने बल को चाहनेवाले! (वयम्) हम प्रजा के लोग (विप्रम्) विविध प्रकारों से राष्ट्र को पूर्ण करने और (पुरम्) नगरकोट के समान पालन करने में समर्थ (दिवेदिवे) प्रतिदिन, नित्य (भङ्गु-रावताम्) विनाश करने योग्य, दुष्ट स्वभावों वाले दुष्ट पुरुषों के (हन्तारम्) नाश करनेवाले और (धृषद्वर्णम्) प्रगल्भ, तीक्ष्ण, असह्य वर्ण अर्थात् स्वभाव वाले, तेजस्वी (त्वा) तुझको अपने (परिधीमहि) चारों तरफ रक्षा करने के लिये नियुक्त करते हैं। वीर पुरुषों को रक्षा के लिये चारों तरफ नियुक्त करना चाहिये।

त्वम॑ग्ने द्यु॒भि॒स्त्वमा॑शुशु॒क्षणि॒स्त्वम॒द्भ्यस्त्वमश्म॑न॒स्परि॑ ।
त्वं वने॑भ्य॒स्त्वमोष॑धीभ्य॒स्त्वं नृ॒णां नृ॑पते जायसे॒ शुचिः॑ ॥ २७ ॥

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्रणी! तेजस्विन्! (नृपते) मनुष्यों के पालक राजन्! (त्वं द्युभिः जायसे) जिस प्रकार प्रकाशमान किरणों से सूर्य प्रकाशित होता है और प्रकाशमान तेजों से अग्नि दीप्त है, उसी प्रकार न्याय, विनय, प्रताप आदि तेजस्वी गुणों से तू भी प्रकाशमान होता है। (त्वम् आशुशुक्षणिः) अग्नि सूर्य या जिस प्रकार शीघ्र ही अन्धकार का नाश करता है उसी प्रकार तू भी दुष्टों को शीघ्र नाश करता है (अश्मनः परि) जिस प्रकार विद्युत् मेघ से उत्पन्न होता है और प्रकाशित होता है उसी प्रकार (त्वम्) तू (अश्मनः) व्यापक सामर्थ्य या वज्ररूप शस्त्रबल

२३—०'दिवे भेत्तारं भङ्गु०' इति काण्व० ।

के ऊपर (परि जायसे) वृद्धि को प्राप्त होता है। (वनेभ्यः) किरणों से जिस प्रकार सूर्य प्रकाशित होता है और वनों से जिस प्रकार सर्वदाहक दावानल पैदा होता है उसी प्रकार (त्वं) तू भी (वनेभ्यः) सेवन करने योग्य प्रजाजनो के बीच में से उत्पन्न होता है। (त्वम् ओषधीभ्यः) ओषधियों के बीच मे से काष्ठ आदि में से जिस प्रकार अग्नि प्रकट होती है अथवा जिस प्रकार ओषधि रसों से, तेजाबरूप दाहक रस उत्पन्न होता है अथवा दाह या ताप धारण करनेवाले रश्मियों से सूर्य प्रकट होता है उसी प्रकार तू (ओषधीभ्य) दाह, प्रताप, पराक्रम को धारण करनेवाले वीरों के बीच में से प्रकट होता है। (त्वं नृणाम् शुचिः) तू समस्त मनुष्यों को शुद्ध, उज्वल करनेवाला और उन सब मे से स्वयं (शुचिः) शुद्ध, तेजस्वी, एवं निश्छल निष्कपट, शुद्ध व्यवहारवान्, सत्यवादी, निष्पाप होकर (जायसे) प्रकट होता है।

'शुचिः' शोचतेर्ज्वलतिकर्मणः। अयमपि इतरः शुचिरेतस्मादेव। निष्षिक्तमस्मात् पापकम् इति नैरुक्ताः। निरु० ६। १॥

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॒ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम्। पृ॒थि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वत् ख॑नामि। ज्योति॑ष्मन्तं त्वाग्ने सु॒प्रती॑क॒मज॑स्रेण भा॒नुना॒ दीद्य॑तम्। शि॒वं प्र॒जाभ्यो॒ऽहिꣳस॑न्तं पृथि॒व्याः स॒धस्था॑द॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वत् ख॑नामः ॥२८॥

अग्निर्देवता। भुरिक् प्रकृतिः। धैवतः॥

भा०—हे अग्ने! विद्वन्! (सवितुः देवस्य प्रसवे) सर्वप्रेरक देव, राजा और परमेश्वर के शासन में रहकर (अश्विनोः बाहुभ्याम्) इस संसार मे द्यो, पृथिवी के धारण और आकर्षण के समान राजा और प्रजा और स्त्री और पुरुष दोनो के (बाहुभ्याम्) बाहुओं से और (पूष्णः) पुष्टिकारक, प्राण के बल और पराक्रम के समान पोषक राजा के बल

पराक्रम स्वरूप (हस्ताभ्याम्) हनन करने के साधनों से (अंगिरस्वत्) शरीर में विद्यमान प्राणवायु, अन्तरिक्ष में व्यापक वायु या आदित्य के समान बलवान् तेजस्वी, (पुरीष्यम्) राष्ट्र के पूर्ण करने वाले साधनों से सम्पन्न, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को (पृथिव्याः सधस्थात्) पृथिवी के, पृथिवी निवासी प्रजाजन के एकत्र होने के सभाभवन रूप स्थान से (खनामि) पृथिवी से खोदकर जिस प्रकार अंग में रसस्वरूप, पुष्टिकारक, पशव्य अग्नि अर्थात् पशूपयोगी घास आदि पदार्थ को या (अङ्गिरस्वत्) तेजोमय शोभा जनक सुवर्णादि धातु को खना जाता है उसी प्रकार राजा को मैं मुख्य पुरोहित प्रजा की परिषद् में छुपे हुए गुप्त वीर्यवान्, उत्तम पुरुष को ऊपर उठाता, मानो नरसभा में से खोदता हूं, उसको ऊपर उठाता हूं, उच्च पद प्रदान करता हूं। हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्वी पुरुष ! (सुप्रतीकम्) सुन्दर शोभावान् (अजस्रेण भानुना) निरन्तर कान्ति, दीप्ति से (दीद्यतम्) चमकनेवाले, (ज्योतिष्मन्तम्) ज्योतिष्मान्, सूर्य के समान देदीप्यमान, कान्तिमान्, यशस्वी, तेजस्वी ऐश्वर्यवान्, (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (शिवं) कल्याणकारी, (अहिंसन्तम्) प्रजा का नाश न करते हुए (त्वा) तुझको (पृथिव्याः सधस्थात्) इस पृथिवी के ऊपर के निवासियों के एकत्र होने के सभास्थान से (अंगिरस्वत् पुरीष्यम् अग्निम्) अंगारों के समान जाज्वल्यमान, समृद्धि से सम्पन्न, अग्रणी नेता को (खनामः) रत्न सुवर्णादि के समान ऊपर खोदते, निकालते, उच्च पद पर लाते हैं ॥ शत० ६ । ४ । १ । २ ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम्। वर्धमानो महाँ२ऽ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥ २९ ॥

पुष्करपर्णम्, अग्निर्वा देवता । स्वराट् पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन् ! (अपाम्) जिस प्रकार जलों का (पृष्ठम्) पृष्ठ या पृष्ठ स्थित पद्मपत्र आदि पदार्थ उसके ऊपर विद्यमान रहता है उसी प्रकार

तू भी (अपां) प्रजाओं के भीतर (पृष्ठम्) उनका पृष्ठ स्वरूप, पोषकरूप, उनका धारक, उनके ऊपर आच्छादक, रक्षकरूप मे रहकर उनसे ऊपर और उनसे अधिक वीर्यवान् होकर (असि) रहता है। हे विद्वान् ! तू (अग्नेः योनिः असि) जिस प्रकार वेदि अग्नि का आश्रय है उसी प्रकार तू (अग्नेः) अग्नि के समान तेजस्वी राजा के पद प्रताप का (योनिः) आश्रय है। तू (अभितः) सब ओर (पिन्वमानम्) ऐश्वर्य द्वारा सुखों का वर्षण करते हुए या बढ़ते हुए (समुद्रम्) समुद्र के समान गम्भीर राजपद को वेला के समान धारण कर। और तू (पुष्करे) महान् आकाश में सूर्य के समान (पुष्करे) अपनी पुष्टिकर्त्ता के आधार पर तेजस्वी होकर (वर्धमान) नित्य बढ़ता हुआ (महान् च) सबसे अधिक महान् होकर (दिव) सूर्य की (मात्रया) तेज शक्ति से और (वरिम्णा) पृथिवी की विशालता से (आ प्रस्थस्व च) चारों ओर स्वयं विस्तृत राज्यसम्पन्न हो॥ शत० ६।४।१।८॥

इस मन्त्र में राजा और उसके पोषक दोनों का वर्णन है। जो अगले मन्त्र में स्पष्ट है।

शर्म॑ च॒ स्थो वर्म॑ च॒ स्थोऽछिं॑द्रे बहु॒ले उ॒भे।
व्यच॑स्वती॒ संव॑साथां भृ॒तम॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒म् ॥ ३० ॥

कृष्णाजिनपुष्करपर्णे, दम्पती वा देवते। विराडार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०— हे स्त्री पुरुषो ! हे राजा और प्रजा, तुम दोनो ! (शर्म च स्थः) एक दूसरे के सुखकारी गृह के समान आश्रयप्रद हो। (वर्म च स्थः) कवच के समान एक दूसरे को सब ओर से रक्षा करनेवाले हो। (उभे) तुम दोनों (अछिद्रे) छिद्र रहित और (बहुले) बहुत से पदार्थ एवं सुखों को प्राप्त करानेवाले, (व्यचस्वती) एक दूसरे के लिये विशाल अवकाश वाले होकर (संवसाथाम्) एक दूसरे को अच्छी प्रकार वस्त्र के समान

आच्छादित किये रहो, धारण किये रहो। और जिस प्रकार स्त्री पुरुष मिलकर वीर्य धारण करते और गर्भस्थ बालक की रक्षा और धारण पोषण करते हैं उसी प्रकार तुम दोनों राजवर्ग और प्रजावर्गो! (पुरीष्यम् अग्निम्) पालन कार्यों में उत्तम अग्नि के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् पुरुष को (भृतम्) धारण करो, सुरक्षित और सुपुष्ट बनाये रक्खो ॥ शत० ६। ४। १। १० ॥

संवसाथाᳫं स्वर्विदा समीची उरसा त्मना।
अग्निमन्तर्भरिष्यन्ती ज्योतिष्मन्तमजस्रमित् ॥ ३१ ॥

पुष्करपर्णकृष्णाजिने जायापती वा देवते। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(स्वर्विदा) सुख को प्राप्त करनेवाले (उरसा) उर स्थल से उर स्थल को और (त्मना) पूर्ण देह से (समीची) पूर्ण देह को आलिंगन करते हुए एक दूसरे से (ज्योतिष्मन्तम्) तेजोयुक्त, शुद्ध, (अजस्रम्) अविनाशी, (अग्निम्) तेज या वीर्य को (अन्त. भरिष्यन्ती) गर्भ के भीतर धारण करते हुए स्त्री पुरुष जिस प्रकार (सं वसाथाम्) एकत्र संगत होते हैं, गृहस्थ बनकर सन्तानोत्पत्ति करते हैं उसी प्रकार हे राज-प्रजाजनो! आप दोनों (स्वर्विदा) एक दूसरे को सुख प्रदान करते हुए (उरसा) राजा अपने उरस्थल से अर्थात् क्षात्रबल से और प्रजाजन (त्मना) अपने वैश्य भाग से (ज्योतिष्मन्तम्) तेजस्वी (अजस्रम् इत्) और अविनाशी, अक्षय (अग्निम्) ऐश्वर्य को (भरिष्यन्ती) धारण करते हुए (समीची) एक दूसरे से संगत, परस्पर सुबद्ध रहकर (सं वसाथाम्) एकत्र होकर रहो, एक दूसरे की रक्षा करो ॥ शत० ६। ४। २। ११ ॥

पुरीष्योऽसि विश्वभराऽअथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने।
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥३२॥

ऋ० ६। १६। १३ ॥

भरद्वाज ऋषि.। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्वी पुरुष ! तू (पुरीष्यः, असि) पुरीष्य अर्थात् नाना ऐश्वर्यों से सम्पन्न है । तू (विश्वभराः असि) सूर्य के समान समस्त विश्व का भरण पोषण करने में समर्थ है । (त्वा) तुझको (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ, सबसे प्रथम विद्वान् (अथवा) प्रजापालक, अहिंसक विद्वान् अग्नि को जिस प्रकार मथकर निकालता है उसी प्रकार परस्पर संघर्ष या प्रतिस्पर्द्धा द्वारा (निः, अमन्थत) मथन करके प्राप्त करता है । हे (अग्ने) तेजास्विन् राजन् ! (अथर्वा) अथर्वा व्यापकशील वायु=जिस प्रकार विद्युत् को (पुष्करात्) पुष्कर, अन्तरिक्ष से मथन करके प्रकट करता है और जिस प्रकार (अथर्वा) अथर्वा प्राण, हे अग्ने ! जाठर अग्ने ! तुझको (पुष्करात्) पुष्टिकर अन्न से प्राप्त करता है इसी प्रकार हे अग्ने ! राजन् ! (वाघतः) मेधावी, (अथर्वा) प्रजाओं में से वीर पुरुष को ढूंढ़कर प्राप्त करने मे कुशल वेदवित् विद्वान् (विश्वस्य) समस्त राष्ट्र के (मूर्ध्नः) मूर्धास्थल, उच्चपद पर विराजमान (पुष्करात्) पुष्टि-कारी अंश से ही (त्वाम् नि अमन्थत्) तुझे अग्नि के समान संघर्ष या स्पर्धा द्वारा मथन करके ही प्राप्त करता है ॥ शत० ६ । ४ । २ । १ ॥

तमु॑ त्वा द॒ध्यङ्ङृषिः॑ पु॒त्रऽई॑धे॒ऽअथ॑र्वणः ।
वृ॒त्र॒हणं॑ पुर॒न्द॒रम् ॥ ३३ ॥ ऋ० ६ । १६ । १४ ॥

भारद्वाज ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे अग्ने ! तेजास्विन् ! राजन् ! (तम् त्वा उ) उस तुझको (अथर्वण) अहिंसक, रक्षक विद्वान् का (दध्यङ्) प्रजा के धारण करने वाले समस्त साधनों को प्राप्त करने में समर्थ, (पुत्रः) पुरुषों का त्राणकर्त्ता, (वृत्रहणम्) मेघों को सूर्य के समान शत्रु के हन्ता और (पुरन्दरम्) शत्रुओं के गढ़ तोड़ने में समर्थ तुझको (ईधे) तेजस्वी, मन्यु और पराक्रम से प्रज्वालित करे ॥ शत० ६ । ४ । २ । ३३ ॥

तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयꣳ रणेरणे ॥ ३४ ॥ ऋ० ६ । १६ । १५ ॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्ज स्वरः ॥

भा०—(पाथ्यः वृषा) पाथस्=अन्तरिक्ष में उत्पन्न, वर्षण समर्थ वायु जिस प्रकार विद्युत् रूप अग्नि को संघर्षण द्वारा मेघों के जलों में उत्पन्न करता है उसी प्रकार (पाथ्यः) राष्ट्रपालन के समस्त मार्गों का उत्तम ज्ञाता, (वृषा) सब पर उत्तम व्यवस्था-बन्धन करने वाला विद्वान् (दस्युहन्तमम्) प्रजा के नाशकारी, चोर डाकुओं के सब से प्रबल विनाशक, (रणेरणे धनञ्जयम्) प्रत्येक संग्राम में ऐश्वर्य धन के विजय करने हारे (तम् त्वा उ) उस तुझको ही (सम्-ईधे) युद्धादि में भली प्रकार प्रदीप्त करता है, पराक्रम से युद्ध करने के लिये उत्तेजित करता है ॥ शत० ६ । ४ । २ । ४ ॥

सीद होतः स्वऽउ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञꣳ सुकृतस्य योनौ ।
देवावीर्देवान्हविषा यजास्यग्ने बृहद्यजमाने वयो धाः ॥ ३५ ॥
ऋ० ३ । २९ । ८ ॥

देवश्रवा देववातश्च ऋषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (होतः) राज्यपद या उसके किसी विभाग के या दानाध्यक्ष के पदाधिकार को स्वीकार करने वाले योग्य विद्वान् पुरुष ! तू (स्वे उ) अपने ही या सुखमय या शान्तिप्रद (लोके) स्थान, प्राप्तपद या अधिकार में (सीद) प्रतिष्ठित हो । और (यज्ञम्) धर्मानुकूल परस्पर संगत, राजा प्रजा के व्यवहाररूप राज्य-कार्य को (सुकृतस्य) उत्तम पुण्याचारवान् धार्मिक (योनौ) आश्रय या आधार, मूल पर (सादय) स्थापित कर । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! तू (देवावीः) विद्वानों और उत्तम गुणों की रक्षा करने हारा, या उन्हीं द्वारा स्वयं सुरक्षित होकर (हविषा) अन्न आदि दातव्य वेतनादि पदार्थों द्वारा (देवान्) विद्वान् शासक

राजाओं को (यजासि) प्राप्त कर, राष्ट्र में नियुक्त कर । और (यजमाने) समस्त राज्य व्यवस्था को संचालन करने वाले सर्वोपरि राजा में या करादि देने वाले प्रजाजन में (बृहत् वयः) बड़ा भारी दीर्घ जीवन और ऐश्वर्य भी (धाः) धारण करा ॥ शत० ६ । ४ । २ । ६ ॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ२ऽ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वोऽअग्निः ॥ ३६ ॥

ऋ० २ । ९ । ११ ॥

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(विदान) विद्वान् पुरुष, (त्वेष.) सूर्य या अग्नि के समान कान्तिमान्, (दीदिवान्) तेजस्वी, (सुदक्ष) उत्तम कार्यकुशल, समर्थ, प्रज्ञावान् होकर (होता) आदान प्रतिदान करने में चतुर अधिकारी (होतृसदने) 'होता' के पद पर (नि असदत्) विराजे । वह (वसिष्ठ.) सब से अधिक वसुमान्, ऐश्वर्यवान्, सब को बसाने वाला, सबका रक्षक, (सहस्रम्भरः) सहस्रों, अपरिमित प्रजाजनों को पालन पोषण करने में समर्थ, (शुचिजिह्व.) शुद्ध सत्य वाणी बोलने वाला (अदब्धव्रत-प्रमति) अखण्डित व्रतों, ब्रह्मचर्य धर्माचरण और नियम, व्यवहारों द्वारा उत्कृष्ट मतिमान् पुरुष भी (अग्निः) अग्नि के समान ही तेजस्वी और ज्ञानवान् 'अग्नि' कहाने योग्य होता है ॥ शत० ६ । ४ । २ । ७ ॥

सᳪ सीदस्व महाँ२ऽअसि शोचस्व देववीतमः ।
विधूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ३७ ॥

ऋ० १ । ३६ । ९ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! विद्वन् ! योग्य अधिकारिन् ! राजन् ! तू अपने पद, आसन पर (सं सीदस्व) अच्छी प्रकार विराजमान हो । तू

(महान् असि) महान् है । तू (देववीतमः) देवों, विद्वानों, अधीन राजाओं और शुभ गुणों से, प्रकाश युक्त किरणों से सूर्य और अग्नि के समान (शोचस्व) कान्ति युक्त हो । और हे (मियेध्य) दुष्टों के दलन करने हारे ! और हे (प्रशस्त) सब से श्लाघ्यतम ! राजन् ! विद्वन् ! अग्ने ! (विधूमम्) धूम से रहित (अरुषम्) उज्ज्वल, (दर्शतम्) दर्शनीय तेजोमय अग्नि के समान तू भी (विधूमम्) भय न दिलाने वाले, सौम्य (अरुषम्) रोषरहित, प्रेमयुक्त (दर्शतम्) दर्शनीय, सुन्दर, सौम्य स्वरूप को (सृज) प्रकट कर ॥ शत० ६ । ४ । २ । ६ ॥

अपो देवीरुप सृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।
तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयः सुपिप्पलाः ॥ ३८ ॥

सिन्धुद्वीप ऋषि । आपो देवता । न्यङ्कुसारणी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! हे राजन् ! हे सद्वैद्य ! तू (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के (अयक्ष्माय) रोगों को नाश करने के लिये (मधुमतीः) मधुर गुण युक्त (देवीः) दिव्य गुणसम्पन्न (अपः) जलों को (सृज) उत्पन्न कर । (तासाम्) उन जलों के (आस्थानात्) आश्रय स्थान से या देश में सर्वत्र बने रहने से ही (सुपिप्पलाः) उत्तम फल वाली (ओषधयः) ओषधियां, (उत् जिहताम्) उत्पन्न हों, उगें । शत० ६ । ४ । ३ । २ ॥

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातूत्तानाया हृदयं यद्विकस्तम् ।
यो देवानां चरसि प्राणथेन कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम् ॥ ३९ ॥

पृथिवीवायुश्च देवते । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार (उत्तानायाः) ऊपर को विस्तृत रूप से फैली पृथिवी के (यद् हृदयम्) जो हृदय के समान भीतरी भाग, गढ़ा आदि (विकस्तम्) खुल जाता है उसको (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में गति करनेवाला (वायुः) वायु भर देता है उसी प्रकार हे स्त्री ! (मातरिश्वा) अन्तःकरण में प्रियतमरूप से व्यापक, हृदयगत (वायुः) विवाहित

पति, प्रजापति, स्वामी श्री (ते) तेरा (यत्) जब (हृदयं) हृदय (विकस्तम्) खूब खिले, प्रसन्न हो (उत्तानायाः) तब उत्सुक एवं उतान हुई तेरे साथ (दधातु) संग कर गर्भ धारण करावे। स्त्री कहे-हे (देव) स्वामिन् देव ! जो तू (देवानां) विद्वान् उत्तम पुरुषों के बीच में मेरे (प्राणयेन) प्राण के समान प्रिय होकर (चरसि) विचरते हो (तुभ्यम्) तुझ (कस्मै) क=प्रजापति स्वरूप, सुखप्रद पति के लिये (वषड् अस्तु) सदा मेरा सर्वार्पण या कल्याण हो ॥ त० ६ । ४ । ३ । ४ ॥

राजा के पक्ष में—हे पृथिवीवासिनि प्रजे ! (मातरिश्वा वायुः) आकाशचारी वायु के समान पृथिवी या मातृ अर्थात् राष्ट्र निर्माताओं की राजसभा में प्राणरूप से विराजमान वायु, प्रजापति, राजा (यत्) जब (उत्तानाया) उत्सुक हुई प्रजा का (हृदयं विकस्तं) हृदय उसके प्रति खिले, अति प्रसन्न होः तब २ वह (ते संधातु) तेरे साथ भली प्रकार मिले, संधि से रहे। या उसे खूब भरण पोषण करे। (यः) जो राजा (देवानां) राजाओं और अधीन शासकों, विद्वानों के बीच प्रजा के (प्राणथेन) प्राणरूप से (चरति) विचरे, हे (देव) देव, राजन् ! (कस्मै) प्रजा के सुखप्रद प्रजापति स्वरूप (तुभ्यम् वषट् अस्तु) तेरा यश, बल और क्षेम हो।

'वायुः'—वायुर्वा उशन् ! तां० ७ । ५ । १६ ॥ वायुर्वै देव. । जै० उ० ३ । ४ । ८ ॥ एतद् वै प्रजापते. प्रत्यक्षं रूपम् । कौ० १६ । २ ॥ अयं वै पूषा । श० १४ । २ । १ । ६ ॥ एष स्वर्गस्य लोकस्य अभि वोढा । ऐ० ४ । २० ॥ वायुरेव सविता (उत्पादकः) । श० १४ । २ । २ । ६ ॥

'वषड्'—वाग्वै वषट्कारः । वाग् रेतः । रेत एव एतत् सिञ्चति षड् इति । तदृतुष्वे वैतद्रेत सिञ्चति । तदृतव. रेतः सिक्तमिमा प्रजाः प्रजनयति तस्मादेव वषट् करोति । एते वै वषट्कारस्य प्रियतमे तनू यदोजश्च सहश्च । ऐ० ३ । ८ ॥

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमासदत् स्वः।
वासोऽअग्ने विश्वरूपᳪं संव्ययस्व विभावसो ॥ ४० ॥

अग्निर्देवता । भुरिग् अनुष्टुप् । गाधार. ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजोमय राजन् ! ते (ज्योतिषा सह) ज्योति, प्रकाश और तेज के साथ (सुजात) उत्तम रूप से प्रकट होकर (वरूथम्) श्रेष्ठ, उत्तम (स्व) सुखकारी (शर्म) गृह को (आसदत्) प्राप्त हो । हे (विभावसो) विशेष कान्ति से युक्त ऐश्वर्यवान् स्वामिन् ! तू (विश्वरूप) उत्तम गृहपति के समान विविध प्रकार के चित्र विचित्र स्वरूप के (वास) वस्त्र को (स व्ययस्व) सुजज्जित दुलहे के समान धारण कर । शतपथ में यह प्रजोत्पत्ति सम्बन्धी प्रकरण अद्भुत रहस्य के साथ वर्णित है जो प्रजनन-संहित के व्याख्यान में संगत होता है । हमारा अभिमत राजोत्पत्ति प्रकरण है इसलिये यहां उसी परक संगति दर्शाई है ॥ शत० ६ । ४ । ३८ ॥

उदु तिष्ठ स्वध्वरावा नो देव्या धिया ।
दृशे च भासा बृहता सुशुक्वनिराग्ने याहि सुशस्तिभिः ॥ ४१ ॥

विश्वमना ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप् । गाधार ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! विद्वन् ! राजन् ! तू (सु-अध्वरावा) उत्तम अहिंसक, यज्ञमय रक्षा के कार्य व्यवहारों वाला होकर (न.) हमारे बीच में से (देव्या) देवी, अपनी धर्मपत्नी रानी सहित और (धिया) धारण पोषण समर्थ शक्ति एवं ध्यान करने में समर्थ बुद्धि के साथ (उत् तिष्ठ उ) उठ खड़ा हो, उन्नत पद पर स्थित हो । और (बृहता भासा) बड़े भारी प्रकाश, तेजसे सूर्य के समान (सुशुक्वनिः) उत्तम पवित्र, कान्ति से युक्त या पवित्र आचारों से युक्त होकर (सु-शस्तिभि) उत्तम कीर्त्तियों सहित, उत्तम शासन विधियों सहित और उत्तम शिक्षाओं और उत्तम गुणों

सहित, उत्तम सधे घोड़ों से रथी के समान (आयाहि) हमें प्राप्त हो ॥ शत० ६ । ४ । ३ । ६ ॥

ऊर्ध्वऽऊ षु णं ऊतये तिष्ठां देवो न संविता । ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदुञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ ४२ ॥ ऋ० १। ३६ । १३ ॥

कण्व ऋषि । अग्निर्देवता । उपरिष्टाद बृहती । मध्यम स्वर ॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! (देव सविता न) प्रकाशमान सूर्य के समान आप भी (देवः) विद्या और बलसे तेजस्वी, विजयशील होकर (ऊतये) राष्ट्र की उत्तम रीति से रक्षा करने के लिये (नः) हमारे (ऊर्ध्वः ऊँ) ऊपर उच्च पदस्थ होकर ही (तिष्ठ) विराजमान् हो । तू (ऊर्ध्वः) ऊर्ध्व, सबसे ऊपर सूर्य के समान रहकर अपने (अञ्जिभि) प्रकाशमय (वाघद्भिः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञानों के प्रकाशक विद्वानों द्वारा अथवा अति गतिशील योद्धाओं द्वारा (वाजस्य सनिता) अन्न, बल और युद्ध विजय का देनेहारा हो । तुझको हम (वि ह्वयामहे) विविध प्रकारों से स्तुति करें ॥ शत० ६ । ४ । ३ । १० ॥

स जातो गर्भोऽअसि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु । चित्रः शिशुः परि तमांऽस्युक्तून् प्र मातृभ्योऽअधि कनिक्रदद्गाः ॥ ४३ ॥

ऋ० १० । १ । २ ॥

त्रित ऋषि । अश्वोऽग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! हे विद्वन् ! (सः) वह आप (जातः) नव उत्पन्न (गर्भः) गर्भ के समान है । (रोदस्योः) आकाश पृथिवी के बीच में सूर्य के समान (चारुः) अति सुन्दर और (ओषधीषु) माता पिताओं के द्वारा धारण किया गया गर्भ जिस प्रकार ओषधियों के द्वारा (विभृत) विशेषरूप से परिपुष्ट होता है उसी प्रकार हे राजन् ! हे विद्वन् ! (ओषधीषु) दुष्टों के सन्तापजनक वीर पुरुषों के बीच में विशेषरूप से स्थित, एवं (ओषधीषु विभृतः) तापधारक रश्मियों के

भीतर विशेषरूप से विद्यमान, तेजस्वी सूर्य के समान है। आप (चित्र) नानावर्णों की रश्मियों से चित्रित, एवं (शिशुः) बालक के समान अद्भुत और अद्भुत पराक्रमी, (शिशु) प्रशंसनीय हैं। और सूर्य जिस प्रकार (अक्तून्,) रात्रिरूप (तमांसि) अन्धकारों को (मातृभ्यः) परिमाण करनेवाली दिशाओं से (परि) दूर करता हुआ (अधि कनिक्रदत् प्रगा.) पृथिवी के भागों पर फैलता हुआ आता है। और बालक जिस प्रकार (मातृभ्य.) अपने मान करने योग्य माताओं से (तमांसि अक्तून्) शोकादि अन्धकारों को दूर करता हुआ (अधि कनिक्रदत् प्र गा.) हर्षध्वनि करता हुआ जाता है उसी प्रकार तू सुप्रसन्न होकर (रोदस्यो· गर्भजात·) रोधकारी, मर्यादाशील राजप्रजा वर्गों के बीच वश करने में समर्थ होकर (ओषधीषु चारुः विभृतः) शत्रुतपदायक वीर पुरुषों के बीच सचरण करनेवाला एवं सुरक्षित (चित्र.) पूजनीय, चेतनावान् ज्ञानवान्, (शिशु) अतिप्रशस्त। तमांसि अक्तून् परि) घोर अन्धकार अज्ञानों को दूर करता हुआ (मातृभ्य) राष्ट्र के बनानेवाले, बड़े अनुभवी पुरुषों से अथवा (मातृभ्य =प्रमातृभ्यः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् गुरुओं से (अधिकनिक्रदत्) विद्याओं का अध्ययन करके (प्र गा) आवें॥ शत० ६। ४। ४। २॥

इसमें वाचकलुप्तोपमा द्वारा राजा विद्वान् को गर्भजात बालक और सूर्य की उपमा देकर श्लिष्ट वर्णन किया है।

स्थिरो भव वीड्वङ्ग ऽआशुर्भव वाज्यर्वन्।
पृथुर्भव सुषदस्त्वमग्नेः पुरीषवाहणः॥ ४४॥

रासभो अग्निर्देवता। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (अर्वन्) विज्ञानयुक्त! अति शीघ्रगामिन्! विद्वन् वीर! ब्रह्मचारिन्! तू (स्थिरः) स्थिर (वीड्वङ्गः) दृढ अंगोंवाला (आशुः) अश्व के समान वेगवान् और (वाजी) ज्ञानवान्, बलवान्, ऐश्वर्यवान्

(भव) हो। (त्वम्) तू (पृथु) विशाल शरीरवाला (सुषदः) सुख से आश्रय करने योग्य या गुणों का उत्तम आश्रय और (अग्नेः) अग्रणी राजा के लिये (पुरीषवाहनः) उसके ऐश्वर्य को वहन करनेवाला (भव) हो। अश्व के पक्ष में स्पष्ट है ॥ शत० ६ । ४ । ४ । ३ ॥

शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः । मा द्यावापृथिवी ऽअभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥ ४५ ॥

अग्निर्देवता । विराट् पथ्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (अङ्गिर) हे सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे प्राण के समान प्रिय विद्वन् ! (त्वम्) तू (मानुषीभ्यः प्रजाभ्यः) मानव प्रजाओं के लिये (शिव भव) कल्याणकारी हो। तू (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी, इन दोनों के बीच के प्राणियों को (मा अभिशोचीः) संतप्त मत कर। (अन्तरिक्षम् मा) अन्तरिक्षस्थ प्राणियों को भी मत सता। (वनस्पतीन् मा) वनस्पतियों को भी कष्ट मत दे, व्यर्थ नाश मतकर ॥ शत० ६ । ४ । ४ । ४ ॥

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा । भरन्नग्निं पुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा । वृषाग्निं वृषणं भरन्नपां गर्भᳬ समुद्रियम् । अग्न ऽआयाहि वीतये ॥ ४६ ॥

वाजी रासभश्चाग्निर्वा देवता । ब्राह्मी बृहती । मध्यम ॥

भा०—(वाजी) ज्ञानवान् पुरुष, (कनिक्रदद्) उपदेश करता हुआ आवे। अथवा—(वाजी) बलवान् पुरुष (कनिक्रदद्) मेघ के समान गर्जन करता हुआ या विद्युत् के समान कड़कता हुआ (प्र एतु) शत्रु पर आगे बढ़े। (रासभः) बल से शोभायमान या ज्ञान से तेजस्वी पुरुष (पत्वा) शीघ्रगामी अश्व के समान, एवं विद्याओं में गतिशील होकर

४५—०'रासभस्पत्वा'० इति काण्व० ।

(नानदत्) सिंह के समान गर्जता हुआ (प्र एतु) आगे बढ़े। (पुरीष्यम्) प्रजाओं के पालन करनेवाले, समृद्धिशाली (अग्निम्) तेजस्वी राजा को (भरन्) पुष्ट करता हुआ (आयुषः पुरा मा पादि) आयु के पूर्व न मरे। अथवा विद्वान् पुरुष (पुरीष्यम् अग्निम्) पालन या रक्षा कार्यों में समर्थ विद्युत् अग्नि को (भरन् आयुषः पुरा मा पादि) धारण करता हुआ अपनी आयु के पूर्व विनष्ट न हो। (वृषा) बलवान् वायु जिस प्रकार (समुद्रियम्) समुद्र या अन्तरिक्ष से उत्पन्न होनेवाले (अपां गर्भम्) जलों के भीतर छुपे (वृषणम्) वर्षणशील विद्युत् को (भरन्) धारण करता है उसी प्रकार (वृषा) बलवान् पुरुष (समुद्रियम्) सेना के महा समुद्र के बीच में तेजस्वी (अपां गर्भम्) आप्त प्रजाओं को वश करने में समर्थ, उनके मध्य में विराजमान, (वृषणं) सुखों के वर्षक, एवं स्वतः बलवान् राजा या सेनापति को (भरन्) धारण करे। हे (अग्ने) अग्रणी, ज्ञानवान् तेजस्विन्! राजन्! आप (वीतये) कान्ति या प्रकाश के लिये या विविध ऐश्वर्यों के भोग करने के लिये (आयाहि) हमें प्राप्त हों ॥ शत० ६। ४। ४। ७॥

ऋतꣳ स॒त्यमृ॒तꣳ स॒त्यम॒ग्निं पु॑री॒ष्य॒मङ्गिर॒स्वद्भ॑रामः। ओष॑धयः॒ प्रति॑मोदध्वम॒ग्निमे॒तꣳ शि॒वमा॒यन्त॑म॒भ्यत्र॑ यु॒ष्माः। व्य॒स्यन् विश्वा॒ऽअनि॑रा॒ऽअमी॑वा नि॒षीद॑न्नो॒ऽअप॑ दुर्म॒तिं ज॑हि ॥ ४७॥

अग्निर्देवता। विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अङ्गिरस्वत्) वायु जिस प्रकार (पुरीष्यम् अग्निम्) रक्षाकारी साधनों में सब से उत्तम विद्युत् को धारण करता है। और जिस प्रकार (अङ्गिरस्वत्) तेजस्वी विद्वान् (पुरीष्यम्) पालन करने में समर्थ (अग्निम्) अग्नि के समान परंतप राजा को पुष्ट करता है उसी प्रकार हम लोग (सत्यम्) सत्य, यथार्थ ज्ञान को या (सत्यम्) सत् पुरुषों में विद्यमान, (ऋतम्) यथार्थ ज्ञान और भाषण और कर्म को या वेदज्ञान

को (भगम) धारण करें । (ओषधयः) जिस प्रकार बिजली के कड़कने पर जौ आदि ओषधियां अति प्रसन्न होकर लहलहाती हैं उसी प्रकार हे (ओषधय) वीर्यों को धारण करने वाले वीर पुरुषो ! आप लोग (शिवम्) कल्याणकारी (युष्मा अभि) आप लोगों के प्रति (अत्र आयान्तम्) इधर इस राष्ट्र में प्राप्त होते हुए (एतम् अग्निम्) इस तेजस्वी शत्रुसंतापक राजा को प्राप्त कर (प्रतिमोदध्वम्) सत्कारों द्वारा हर्ष प्रकट करो । हे राजन् ! हे विद्वन् ! तू (विश्वाः) समस्त प्रकार के (अनिराः) अन्नादि समृद्धियों को न देने वाली अथवा (अनिराः) अन्नादि के नाशक दैवी विपत्तियों को (व्यस्यन्) दूर करता हुआ (अमीवा) स्वयं रोग रहित होकर (निषीदन्) विराजमान होकर (नः) हमारे (दुर्मतिम्) दुष्टमति या दुष्ट मार्ग में जाने वाली दुःखदायी मति को या (नः दुर्मतिम्) हममें से दुष्ट बुद्धि वाले पुरुष को (अपजहि) विनाश कर । शत० ६ । ४ । ४ । १०—१६ ॥

कालिदास ने जिस प्रकार वसिष्ठ का वर्णन रघुवंश में लिखा है —

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः ।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद् ब्रह्मवर्चसम् ॥ १ । ६३ ॥
उपपन्नं ननु शिवं सप्तस्वङ्गेषु यस्य मे ।
दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्त्ता त्वमापदाम् ॥ १ । ६० ॥
हविरावर्जितं होतस्त्वया विधिवदग्निषु ।
वृष्टिर्भवति सस्यानामवग्रहविशोषिणाम् ॥ १ । ६२ ॥

ओष॑धयः प्रति॑ गृभ्णीत॒ पुष्प॑वतीः सुपिप्प॒लाः ।
अ॒यं वो॒ गर्भ॑ ऋ॒त्वियः॑ प्र॒त्नꣳ स॒धस्थ॒मास॑दत् ॥ ४८ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगनुष्टुप । गान्धारः ॥

भा०—(ओषधयः) ओषधियां जिस प्रकार (पुष्पवतीः) फूल वाली और (सुपिप्पलाः) उत्तम फलवाली होकर गर्भ ग्रहण करती हैं

उसी प्रकार हे (ओषधय) वीर्य को धारण करने में समर्थ स्त्रियो! आप सभी (पुष्पवतीः) रजस्वला एवं (सुपिप्पला) उत्तम, सफल होकर (प्रतिगृभ्णीत) प्रत्येक पृथक् २ गर्भ ग्रहण करो । (व) तुम्हारा (अयं) यह (गर्भः) ग्रहण किया हुआ गर्भ (ऋत्विय.) ऋतुकाल मे प्राप्त होकर (प्रत्नम्) अपने प्रथम प्राप्त (सधस्थम्) स्थान पर ही (आसदत्) स्थिर रहे।

राजा के पक्ष में—हे (ओषधयः) वीर प्रजाजनो ! आप लोग (पुष्पवती.) पुष्टिप्रद अन्न आदि से समृद्ध और (सुपिप्पला) उत्तम रक्षा साधनों से युक्त होकर (प्रतिगृभ्णीत) प्रत्येक सुरक्षित रहो । (अय वः) यह राजा तुम्हें (गर्भ.) ग्रहण या वश करने में समर्थ है । वह (प्रत्नं) पूर्व प्राप्त (सधस्थम्) उच्च आश्रय को (आसदत्) प्राप्त किये रहे, अपने पूर्व पद से न गिरे ॥ शत० ६ । ४ । ४ । १७ ॥

वि पाज॑सा पृथुना शोशु॑चानो बाध॑स्व द्विषो र॒क्षसो॒ऽअमी॑वाः।
सु॒शर्म॑णो बृह॒तः शर्म॑णि स्याम॒ग्नेर॒हꣳ सु॒हव॑स्य॒ प्रणी॑तौ ॥ ४६ ॥

ऋ० ३ । १५ । १ ॥

उत्कील ऋषि. । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे राजन् ! पृथिवीपते ! पालक ! तू (पृथुना) बड़े (विस्तृत पाजसा) वीर्य, बल से (शोशुचान·) तेजस्वी होता हुआ (अमीवा.) राष्ट्र के रोग स्वरूप (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट (द्विष.) शत्रुओं को (वि बाधस्व) नाना प्रकार से पीड़ित कर। (बृहत) बड़े भारी (सुशर्मण.) उत्तम सुखकारी शरणवाले (अग्ने·) अग्नि के समान तेजस्वी राजा के (शर्मणि) गृह में पति के गृह में पत्नी के समान (अहम्) मैं प्रजा (सुहवस्य) उत्तम रूप से ग्रहण करनेवाले एव उत्तम ऐश्वर्य, वीर्य के देनेवाले पालक स्वामी के (प्रणीतौ) उत्कृष्ट नीति में (स्याम्) रहूं ॥ शत० ६ । ४ । ४ । २० ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्तान ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥ ५० ॥ ऋ० १० । ६ । १ ॥

सिन्धुद्वीप ऋषिः । आपो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (आपः) आप्तजनों ! आप लोग जलधारा के समान शीतल एवं ज्ञानरस से युक्त (हि) ही सदा (स्थ) रहो । (ताः) वे आप लोग (मयोभुव) सुख को उत्पन्न करनेहारी होकर (ऊर्जे) बल, पराक्रम और (महे) बड़े भारी (चक्षसे) दर्शनीय (रणाय) संग्राम के समान साहस योग्य कार्य करने के लिये (नः) हमें (दधातन) पुष्ट करो ॥ शत० ६ । ५ । १ । २ ॥

विद्वानों के पक्ष में—(आपः) आप्त पुरुष (ऊर्जे) बलस्वरूप (महे) बड़े पूजनीय, (चक्षसे रणाय) दर्शनीय, परम रमणीय उपास्य-देव ब्रह्म की प्राप्ति के लिये हमें (दधातन) धारण करें । अपने शिष्यरूप से स्वीकार करें ।

स्त्रियों के पक्ष में—(आपः) जल के समान शीतल, सरलस्वभाव-वाली स्त्रिये देहमें (महे रणाय चक्षसे) बड़े भारी दर्शनीय, उत्तम कारण अर्थात् रमणीय कार्य गृहस्थ आदि के लिये (दधातन) पति आदि रूप से स्वीकार करें ।

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः ॥ ५१ ॥ ऋ० १० । ६ । २ ॥

सिन्धुद्वीप ऋषि । आपो देतवाः । गायत्री । षड्ज ॥

भा०—(उशती मातरः इव) पुत्रों के प्रति कामना युक्त, स्नेह युक्त माताएं जिस प्रकार अपने उत्तम कल्याणकारी दुग्धरस से उनको पुष्ट करती हैं उसी प्रकार, हे (आप.) जलो ! और जलों के समान ज्ञान-रस से पूर्ण आप्त पुरुषो ! एवं स्त्रीजनो ! आपका जो (शिवतमः)

सबसे अधिक कल्याणकारी (रसः) रस, बल, प्रेम है। (तस्य) उसको (इह) इसलोक मे (नः) हमें (भाजयत) प्राप्त कराओ ॥ शत० ६ । ५ । १ । २ ॥

तस्मा ऽअरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ ५२ ॥ ऋ० १० । ९ । ३ ॥

ऋषिदेवताच्छन्द.स्वरा पूर्वोक्ता ॥

भा०—हे (आप·) आप्त पुरुषो ! आप लोग (यस्य) जिस ज्ञान-रस से (क्षयाय) सुखपूर्वक इस संसार में निवास करने के लिये (जिन्वथ) समस्त प्राणियों को तृप्त करते हो, अपना ज्ञानरस प्रदान करते हो, हम (तस्मै) उस रसको (अरम्) पर्याप्त रूप से (गमाम) प्राप्त हों। और हे (आप·) आप्त पुरुषो ! आप लोग (न च) हमें भी (जनयथ) योग्य बनाओ ॥ शत० ६ । ५ । १ । २ ॥

स्त्रियों के पक्ष मे—हे (आपः) जलके समान शीतल स्वभाववाली स्त्रियो ! (यस्य) जिस आनन्द-रस के प्रेम और बल से (क्षयाय) गृहस्थ कार्य सम्पादन के लिये तुम (जिन्वथ) सबको प्रसन्न एवं तृप्त करती हो। हम (तस्मै) उसी प्रेम सुख को (अरम् गमाम) भली प्रकार प्राप्त करें और तुम ही (न. च जनयथ) हमारे लिये सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ हो।

मित्रः सꣳसृज्यं पृथिवीं भूमिं च ज्योतिषा सह।
सुजातं जातवेदसमयक्ष्माय त्वा सꣳसृजामि प्रजाभ्यः ॥ ५३ ॥

मित्रो देवता। उपरिष्टाद् बृहती। मध्यम ॥

भा०—(मित्रः) सूर्य के समान स्नेही परमेश्वर (पृथिवीम्) विस्तृत अन्तरिक्ष और (भूमिम् च) भूमि को (ज्योतिपा) अपने प्रकाश से (संसृज्य) संयुक्त करके जिस प्रकार (सु जातम्) उत्तम गुणों से युक्त, (जातवेदम्) अग्नि को भी (प्रजाभ्य.) प्रजाओं के (अय-

क्ष्माय) रोगों के नाश के लिये (ज्योतिषा सह संसृजति) तेज के सहित उत्पन्न करता है उसी प्रकार (मित्रः) सबका स्नेही राजा (पृथिवीम्) विशाल राजशक्ति और (भूमिम् च) जनपद, भूमि को (ज्योतिषा सह संसृज्य) तेजोमय ऐश्वर्य से युक्त करके (प्रजाभ्य अयक्ष्माय) प्रजाओं के रोग सन्ताप के नाश करने के लिये (त्वा) तुझे (सुजातम्) उत्तम गुणों और विद्याओं में सुविख्यात (जातवेदसम्) विज्ञानवान् विद्वान् पुरुष को (सं सृजामि) भली प्रकार नियुक्त करता हूं ॥ शत० ६ । ५ । १ । ५ ॥

रुद्राः सᳬ सृज्यं पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे ।
तेषां भानुरजस्र ऽइच्छुक्रो देवेषु रोचते ॥ ५४ ॥

रुद्राः देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(रुद्राः) प्राणरूप से सूक्ष्म प्राकृतिक जीवनप्रद परमाणु रूप वायुएं या रश्मियां जिस प्रकार (बृहत् ज्योतिः) महान् दीप्ति स्वरूप सूर्य को (संसृज्य) परस्पर मिलकर उत्पन्न करके (पृथिवीम्) पृथिवी को भी (सम् ईधिरे) खूब प्रज्वलित और प्रकाशित करते हैं (तेषाम्) उनमें से (भानुः इत्) यह ज्योतिष्मान् अग्नि तत्त्व है जो (अजस्रः) कभी क्षीण न होकर, (शुक्रः) सदा कान्तिमान् होकर, समस्त (देवेषु) देव, दिव्य पदार्थों में (रोचते) प्रकाशित होता है । उसी प्रकार (रुद्राः) दुष्टों को रुलानेवाले वीर पुरुष (संसृज्य) परस्पर एक व्यवस्थित राष्ट्र बनाकर (पृथिवीम्) पृथिवी पर (बृहत्-ज्योतिः) सूर्य के समान बड़े भारी तेजस्वी सम्राट् को (सम् ईधिरे) मिलकर प्रज्वलित करते, उसको बहुत तेजस्वी बना देते हैं । (तेषाम्) उनमें से (अजस्रः) शत्रुओं से कभी विनष्ट न होनेवाला (भानुः) सूर्य के समान तेजस्वी (शुक्रः) शुद्ध, कान्तिमान् वह राजा (इत्) ही (देवेषु)

विद्वानों और राजाओं में (रोचते) बहुत प्रकाशित होता है ॥ शत० ६ । ५ । १ । ७ ॥

सꣳसृष्टां वसुभी रुद्रैर्धीरैः कर्मण्यां मृदम् ।
हस्ताभ्यां मृद्वीं कृत्वा सिनीवाली कृणोतु ताम् ॥ ५५ ॥

सिनीवाली देवता । विराडनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—जिस प्रकार (हस्ताभ्याम्) हाथों से (मृदम्) मिट्टी को (मृद्वीं कृत्वा) कोमल करके, सान २ करके, जलों से मिलाकर शिल्पी या कुम्भार उसको (कर्मण्या करोति) घड़ा आदि नाना पदार्थ बनाने के काम का बना लेता है, उसी प्रकार (सिनीवाली) परस्पर बांधने में समर्थ शक्तियों को अपने गूढ़रूप से धारण करनेवाली महती ब्रह्मशक्ति (धीरैः) क्रियाशील, धारणपोषणसमर्थ, (वसुभिः) जीवों को वास करानेवाले आठ विकारों और (रुद्रैः) रोदनकारी, प्राणों से (संसृष्टाम्) भली प्रकार रची गयी, संयुक्त हुई (मृदम्) सब प्रकार से मर्दन करने योग्य नाना विकारवती प्रकृति को (हस्ताभ्यां) संयोग, विभागरूप हाथों से (मृद्वीं कृत्वा) मृदु, विकृत होने योग्य करके (कर्मण्या) सृष्टि के नाना पदार्थों के रचने योग्य (कृणोतु) करती है। इसी प्रकार कन्याओं के पक्ष में—(सिनीवाली) प्रेमबद्ध कन्याओं की रचिका हाथों से कोमल करके मिट्टी को जिस प्रकार जलों से मिलाकर योग्य बना लेते है उसी प्रकार (वसुभिः) २४ वर्ष के, (रुद्रैः) ३६ वर्ष के, (धीरैः) बुद्धिमान् धारणावान् विद्वान् पुरुषों से (संसृष्टा) संसर्ग को प्राप्त, योग्य कन्याओं को (कर्मण्या कृणोतु) गृहस्थ के प्रजोत्पादन आदि कार्यों के योग्य (कृणोतु) बनावे ॥ शत० ६ । ५ । १ । ९ ॥

राजपक्ष में—(सिनीवाली) राष्ट्र को नियम में बांधनेवाली राजसभा (वसुभिः) विद्वान्, (रुद्रैः) वीर्यवान्, धीर पुरुषों से (संसृष्टा) बनी हुई (मृदम्) पृथिवीवासिनी प्रजा को (हस्ताभ्या) दमन करने के

बाह्य और आभ्यन्तर, प्रकट और अप्रकट साधनों से (मृद्वीं) कोमल, विनीत बनाकर (कर्मण्यां करोतु) उत्तम कर्म करनेवाली बनावे। 'मृत्' यहा सामान्य प्रजा का वाचक उसी प्रकार है जैसे प्रजा का वाचक है।

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।
सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः ॥ ५६ ॥

अदितिर्देवता। विराड अनुष्टुप्। गाधार स्वरः ॥

भा०—हे (अदिते) अखण्डित प्रजातन्तुरूप आनन्दवाली गृहणी! हे (महि) पूजनीय! जो (सिनीवाली) प्रेमबन्धन से युक्त, (सुकपर्दा) उत्तम केशवाली, (सुकुरीरा) उत्तम आभूषणवाली, (स्वौपशा) उत्तम अंगोंवाली है (सा) वह (तुभ्यम्) तेरे लिये (हस्तयोः) हाथ में (ऊखाम् इव) वेग के समान (उखाम्) 'उखा' अर्थात् प्रजापति के सन्तान प्रसव के कर्म या गर्भ को (आ दधातु) धारण करे ॥ शत० ६। ५। १। १० ॥

अर्थात् सासों के घर में सुन्दर सुभुषित, सुकुमारियां आवें और वे गर्भ धारण कर सन्तान उत्पन्न करें।

'उखा'—आत्मा वा उखा। श० ६। ५। ३। ४ ॥ उदरम् उखा। श० ७। ५। १। ३८ ॥ योनिर्वा उखा। श० ७। ५। २। २ ॥ इमे वै लोका उखा। श० ६। ५। २। १७ ॥ प्राजापत्यम् एतत् कर्म यदुखा। श० ६। ५। २। १७ ॥

ब्रह्मपक्ष में—हे अदिते-अखण्ड आनन्दमय ब्रह्मशक्ते! (तुभ्यम्) तेरे प्राप्त करने के लिये (सिनीवाली) सर्वनियमकारिणी (सुकपर्दा) सुखमयी, (सुकुरीरा) उत्तम कर्ममयी, (स्वौपशा) उत्तम योग निद्रा, समाधि में समाहित, (सा) वह चित्त स्थिति (उखां आदधातु) ऊर्ध्व पद को प्राप्त करनेवाले आत्मा को सदा धारण करे।

राष्ट्र पक्ष मे—हे (अदिते) अखण्ड शासन शक्ते ! सिनीवाली नामक सभा ! उत्तम कपर्द=अर्थात् राज्य प्रवन्धवाली वह राजनीति उत्तम कर्मवाली, उत्तम व्यवस्थावाली, तेरे समस्त पृथिवी, निवासी लोगों को हाथ में कलसी के समान धारण करे ।

उखां कृणोतु शक्त्या बाहुभ्यामदितिर्धिया । माता पुत्रं यथोपस्थे साग्निं बिभर्त्तु गर्भ ऽआ । मखस्य शिरोऽसि ॥ ५७ ॥

अदितिर्देवता । भुरिग् बृहती । मध्यम. ॥

भा०—शिल्पी जिस प्रकार (बाहुभ्याम्) अपनी बाहुओं से (उखां कृणोति) मट्टी से हांडी बनाता है उसी प्रकार परमेश्वर (धिया) धारण आकर्षण करने वाली (शक्त्या) शक्ति से (उखां) इस पृथ्वी को (कृणोतु) बनाता है । और (यथा) जिस प्रकार (माता) माता (उपस्थे) अपनी गोद में (पुत्रं आ विभर्त्ति) पुत्र का धारण और पालन करती है उसी प्रकार (सा) वह (उखा) पृथिवी (गर्भे) अपने भीतर (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी राजा को (आ विभर्त्तु) धारण करे और उसी प्रकार (सा) वह पृथिवी के समान (उखा) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री भी (गर्भे) अपने गर्भ में (अग्निम्) तेजस्वी वीर्य को (आ बिभर्त्तु) प्रेम से धारण करे । हे राजन् ! हे गृहपते ! तू (मखस्य शिरः असि) यज्ञ और ऐश्वर्यमय राष्ट्र का शिर मुख्य है । इसी प्रकार हे गर्भगत वीर्य ! तू (मखस्य) शरीर रचना रूप यज्ञ का (शिरः असि) आश्रय रूप मुख्य अंश या प्रारम्भरूप है ॥ शत० ६ । ५ । १ । ११ ॥

वसवस्त्वा कृण्वन्तु गायत्रेण छन्दसाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवासि पृथिव्यसि धारया मयि प्रजाꣳरायस्पोषं गौपत्यꣳ सुवीर्यꣳ सजातान्यजमानाय रुद्रास्त्वा कृण्वन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवास्यन्तरिक्षमसि धारया मयि प्रजाꣳ रायस्पोषं गौपत्यꣳ

सुवीर्य्यंᳬ सजातान्यजमानायादित्यास्त्वा² कृण्वन्तु जागतेन छन्दसाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवासि द्यौरसि धारया मयि प्रजाᳬ रायस्पोषं गौपत्यᳬ सुवीर्यᳬ सजातान्यजमानाय विश्वे त्वा देवा वैश्वानराः कृण्वन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वद् ध्रुवासि दिशोऽसि धारया मयि प्रजाᳬ रायस्पोषं गौपत्यᳬ सुवीर्यᳬ सजातान् यजमानाय ॥ ५८ ॥

वसुरुद्रादित्यविश्वेदेवा देवताः । (१,२) उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—गृहस्थ प्रकरण मे–हे स्त्रि ! तुझे (वसवः) राष्ट्र में वसने वाले विद्वान् पुरुष (गायत्रेण छन्दसा) गायत्र छन्द से (अंगिरस्वत्) शरीर मे विद्यमान प्राण के समान मेरे हृदय या गृह में प्राण के समान प्रिय (कृण्वन्तु) बनावें । तू (ध्रुवा असि) गृहस्थ व्रत में अचल हो, (पृथिवी असि) पृथिवी के समान सबका आश्रय (असि) हो । (मयि)[1] मेरे लिये (प्रजाम्) सन्तान को अपने भीतर (धारय) धारण कर (रायस्पोषं) धनैश्वर्य की समृद्धि, (गौपत्यम्) गौ आदि पशुओं की सम्पत्ति और (सुवीर्यं) उत्तम वीर्य को (धारय) धारण कर और (सजातान्) समान बल वीर्य से उत्पन्न, अनुरूप पुत्रों और भाइयों को (यजमानाय) विद्या के प्रदान करने वाले आचार्य के अधीन कर । इसी प्रकार स्त्री भी वरण योग्य पति से कहे–हे प्रियतम ! (वसवः) वसु नाम विद्वान् गण (गायत्रेण च्छन्दसा) वेदोपदिष्ट, प्राणो इन्द्रियों और वीर्यों की रक्षा के सुदृढ उपाय से तुझको (अङ्गिरस्वत् कृण्वन्तु) अग्नि के समान तेजस्वी और अंग या शरीर में रस के समान प्रवाहित होने वाले प्राणके समान प्रिय बना देवें । हे प्रियतम ! आप (ध्रुवः पृथुः असि) पर्वत के समान अचल और पृथ्वी के समान विशाल सर्वाश्रय हो । आप (मयि) मुझ अपनी प्रियतमा स्त्री में (प्रजाम्) प्रजा (रायः पोषम्) धन समृद्धि (गापत्यम्) पशु

१—चतुर्थ्यर्थे सप्तमी ।

सम्पत्ति (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य (धारय) धारण कराओ और (सजातान्) हम दोनों के समान वीर्य से उत्पन्न पुत्रों को (यजमानाय) विद्या के प्रदाता आचार्य विद्वान् पुरुष के अधीन रख। इसी प्रकार (रुद्रा) रुद्र नामक विद्वान् नैष्ठिक पुरुष (त्रैष्टुभेन छन्दसा) वेदोक्त त्रैष्टुभ छन्द से (अङ्गिरस्वत् कृण्वन्तु) ज्ञान और वीर्य से तेजस्वी बनावें। (आदित्याः) आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् (जागतेन छन्दसा) जागत, अर्थात् लोकोपकारी वृत्ति की शिक्षा से तुझे (अङ्गिरस्वत्) ज्ञानवान्, तेजस्वी बनावें। और (वैश्वानराः) समस्त नेता पुरुषों के नेताओं में भी उच्चपदों पर विराजमान (विश्वे देवाः) समस्त दानशील एवं दर्शनशील राजा और विद्वान् लोग (आनुष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत् कृण्वन्तु) आनुष्टुभ छन्द से अर्थात् परस्पर एक दूसरे के अनुकूल व्यवस्था पूर्वक रहने की शिक्षा से सूत्रात्मक वायु के समान प्रिय बनावें (ध्रुवा असि० यजमानाय ३ इत्यादि) पूर्ववत्। शत० ६। ५। २। ३—६॥

राज पक्ष में—हे पृथिवी! हे राजन्! तुझको (गायत्रेण छन्दसा) गायत्रछन्द, अर्थात् ब्राह्मण बल से (वसवः) वसु नामक विद्वान्‌गण (अंगिरस्वत्) अग्नि सूर्य और वायु और आकाश के समान तेजस्वी बलवान् और व्यापक बनावें। (रुद्राः) शत्रुओं को रुलाने में समर्थ वीर सैनिक (त्रैष्टुभेन छन्दसा) क्षात्रबल से तुझको तेजस्वी बनावें। (आदित्यैः) आदान कुशल वैश्यगण तुझको वैश्यबल से तेजस्वी ऐश्वर्यवान् बनावें। (वैश्वानराः) समस्त प्रजा के नेता लोग (आनुष्टुभेन छन्दसा) परस्परानुकूल व्यवहार से युक्त श्रमी वर्ग के बलसे तुझे बलवान् बनावे। हे पृथिवी! तू पृथिवी है। तू (ध्रुवा असि) ध्रुव, स्थिर है। तू (मयि) मुझ राष्ट्रपति के लिये (प्रजां, रायःपोषम्, गौपत्यं, सुवीर्यं धारय) प्रजा, धनैश्वर्य, पशु समृद्धि, उत्तम वीर्य को धारण कर। (यजमानाय सजातान्)

मेरे समान बलशाली राजाओं को भी मुझ यज्ञशील राष्ट्रपति के अभ्युदय के लिये (धारय) धारण कर ।

अदि॑त्यै रास्ना॒स्यदि॑तिष्टे॒ बिलं॑ गृभ्णातु । कृत्वाय॒ सा म॒हीमु॒खां मृ॒न्मयीं॒ योनि॑म॒ग्नये॑ । पु॒त्रेभ्य॒: प्राय॑च्छ॒ददि॑ति: श्र॒पया॒निति॑ ॥ ५९ ॥

अदिती रास्ना देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे विदुषि स्त्रि ! तू (अदित्यै) अदिति अर्थात् अखण्ड विद्या का (रास्ना) दान करनेवाली (असि) है । हे विद्ये ! (ते बिलम्) तेरे विज्ञानप्रकाश, या गूढ रहस्य को (अदितिः) अखण्ड व्रत का पालन करनेवाला कुमार और कुमारी (गृभ्णातु) ग्रहण करे । (अदितिः) पुत्रों की माता जिस प्रकार (मृन्मयीम् उखां कृत्वाय) मट्टी की हांडी को बना कर (पुत्रेभ्यः प्रायच्छत्) पुत्रों को दे देती है और आज्ञा दे दिया करती है कि (श्रपयान् इति) उसको आग पर पकाओ । उसी प्रकार (सा) वह विदुषी माता (महीम्) पूजनीय (अग्नये) अग्निस्वरूप ज्ञानवान आचार्य्य के अधीन (योनिम्) अपने पुत्र पुत्रियों का आश्रय निवासस्थान में प्राप्त होनेवाली (उखाम्) उत्तम फलदात्री विद्या को (कृत्वाय) प्राप्त करके (अदितिः) स्वयं अखण्ड व्रत होकर विद्या का प्रदानकर्ता आचार्य (पुत्रेभ्यः प्रायच्छत्) पुत्रों को विद्या प्रदान करे । और कहे कि इस ब्रह्मविद्या रूप परम आनन्दरस की दात्री को (श्रपयान् इति, तप द्वारा परिपक्व करो ॥ शत० ६ । ५ । २ । १२ ॥

वस॑वस्त्वा धूपयन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वद् रु॒द्रास्त्वा॑ धूप- यन्तु॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वदा॑दि॒त्यास्त्वा॑ धूपयन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वत् । विश्वे॑ त्वा दे॒वा वै॑श्वान॒रा धू॑पय॒न्त्वानु॑ष्टुभेन॒ छन्द॑साङ्गिर॒स्वदिन्द्र॑स्त्वा धूपयतु॒ वरु॑णस्त्वा धूपयतु॒ विष्णु॑स्त्वा धूपयतु ॥ ६० ॥

वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवता । स्वराट् सकृतिः । गान्धारः ॥

भा०—हे पृथिवि ! (गायत्रेण छन्दसा) पूर्वोक्त गायत्र छन्द, (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रैष्टुभ छन्द और (जागतेन छन्दसा) जागत छन्द और (आनुष्टुभेन छन्दसा) वेदोक्त अनुष्टुभ छन्द इन सबके अध्ययन, मननद्वारा एवं पूर्वोक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव श्रमी प्रजाओं के परस्पर प्रेम व्यवहार से (अङ्गिरस्वत्) अग्नि या ज्ञानवान् के समान विदुषी, तेजस्विनी, समृद्ध (त्वा) तुझको (वसव) वसु नामक विद्वान् प्रजा-गण, (रुद्रा) रुद्र नामक नैष्ठिक, राष्ट्र के प्राणस्वरूप शत्रुनाशक लोग (आदित्याः) आदित्य के समान तेजस्वी और (विश्वेदेवा) समस्त देवगण जो (वैश्वानरा) वैश्वानर अग्नि के समान सर्व प्रकार या समस्त प्रजा के नेता लोग हैं वे (धूपयन्तु) तुझे सुसंस्कृत करें तुझे शिक्षित करें। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वरुणः त्वा धूपयतु) सर्व श्रेष्ठ, दुष्टों का वारक, शासक (त्वा धूपयतु) तुझे उत्तम संस्कृत करे। (विष्णुः) व्यापक शक्तिका स्वामी राजा (त्वा धूपयतु) तुझे शुद्ध एव संस्कृत, सुशिक्षित करे। ब्रह्मचारिणी पक्षमें—वसु आदि विद्वान् गायत्री आदि वेदोक्त मन्त्रों द्वारा कन्याओं और कुमारों को शिक्षित और संस्कार युक्त करें। (वरुण. विष्णु.) आचार्य, विद्या के लिये गुरुरूप से वरण करने योग्य और समस्त विद्याओं मे व्यापक विद्वान् आचार्य जन भी तुझे शिक्षित करें॥ शत० ६ । ५ । ३ । १० ॥

'धूपयन्तु'—धूप भाषार्थ । चुरादिः । 'सुगन्धान्नादिभिः, विद्यासु शिक्षाभ्यां, सत्यव्यवहारग्रहणेन, राजविद्यया राजनीत्या संस्कुर्वन्तु, इति दयानन्दः ।

[१] अदि॑तिष्ट्वा दे॒वी वि॒श्वदे॑व्यावती पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गिर॒स्वत् ख॑नत्ववट दे॒वानां॑ त्वा॒ पत्नी॑र्दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गिर॒स्वद्द॑धतूखे धि॒षणा॑स्त्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः

पृथिव्याः स॒धस्थे॑ अङ्गि॒र॒स्वद॒भीन्ध॑ताम् २ उखे॒ वरू॑त्रीष्ट्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ऽअङ्गि॒र॒स्वच्छ्र॑पयन्तूखे॒ ग्नास्त्वा॑त्वा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गि॒र॒स्वत् प॑चन्तूखे॒ जन॑य॒स्त्वाच्छि॑न्नपत्रा दे॒वीर्वि॒श्वदे॑व्यावतीः पृथि॒व्याः स॒धस्थे॑ अङ्गि॒र॒स्वत् प॑चन्तूखे॒ ॥ ६१ ॥

अदित्यादयो लिङ्गोक्ता देवताः । (१) भुरिक्कृतिः । निषादः ।

(२) प्रकृतिः । धैवत ॥

भा०—विद्वान् पुरुष जिस प्रकार गढ़े को खोदता है उसी प्रकार हे (अवट) रक्षण करनेहारे पुरुष ! (विश्वदेव्यवती) समस्त विद्वानों के योग्य ज्ञानों से पूर्ण (अदितिः) अखण्डित राजशक्ति (पृथिव्याः सधस्थे) पृथिवी के पीठ पर (अङ्गिरस्वत्) शरीर में प्राणशक्ति के समान (त्वा) तुझे (खनतु) खने, गुप्तरूप में छिपे, तुझे खोद के प्राप्त करे । और (देवानां पत्नी) देवों विद्वानों और राजा के पालन करनेवाली राज सभाएं, राजमहर्षिओं के समान (विश्वदेव्यवती) समस्त विद्वानों योग्य ज्ञान से युक्त होकर (पृथिव्याः सधस्थे) पृथिवी के ऊपर, हे (उखे) उखे ! पृथिवी ! (त्वा दधतु) तुझे वे धारण करें हे (उखे) उखे ! पृथिवी ! (विश्वदेव्य वती) विद्वानो के ज्ञान से पूर्ण (धिषणाः देवी) उत्तम वाणी से युक्त बुद्धियां या सभाएं (पृथिव्याः सधस्थे) पृथिवी के ऊपर (त्वा अभि इन्धताम्) तुझे प्रज्वलित करें । तुझे तेजस्वी और यशस्वी करें । हे (उखे , उखे ! पृथिवि ! प्रजे ! (विश्वदेव्यवतीः) समस्त ज्ञानों से युक्त (वरूत्रीः देवीः) श्रेष्ठ, राजशक्तियां (पृथिव्या सधस्थे) पथिवी के ऊपर (त्वा श्रपयन्तु) तुझे परिपक्व, तपस्वी और दृढ़ वलवान् वनावे । हे (उखे) पृथिवि ! प्रजे ! (विश्वदेव्यवतीः ग्नाः देवी) समस्त ज्ञानो और राजबलों से युक्त व्यापक वेदवाणियां और स्त्रियां

या व्यापक राजशक्तियां (पृथिव्याः सधस्थे) पृथिवी के ऊपर (अङ्गिरस्वत्) आग पर रक्खी हांडी के अंगारों के समान (त्वा पचन्तु) तुझे परिपक्व करें। और (अच्छिन्नपत्रा.) अच्छिन्न या अखण्डित रथों वाली (जनयः) प्रजाएं (विश्वदेव्यवतीः) समस्त विजयोपयोगी सामग्री से युक्त इस (पृथिव्याः सधस्थे) पृथिवी के ऊपर, हे (उखे) उखे ! पृथिवि ! हे प्रजे ! (त्वा) तुझको (अङ्गिरस्वत्) हांडी को अंगारों के समान (पचन्तु) पक्व करें। कन्या आदि सन्तानों के पक्ष में— (अदितिः) विदुषी माता (अवट त्वा खनतु) बालक को प्राप्त करें। (धिषणाः) विदुषी स्त्रियां, (वरूत्री) श्रेष्ठ रक्षाकर्त्री स्त्रियां, (ग्नाः) वेदवाणियों के समान ज्ञानपूर्ण वा उत्तम आचारवाली स्त्रियां और (अच्छिन्नपत्रा. जनयः) अखण्डिताचार वाली स्त्रियां, अंगारों पर जिस प्रकार हांडी पकाई जाती है उसी प्रकार प्रजा को भी (दधतु) धारण पोषण करें, (अभि इन्धता) विद्यादि गुणों से प्रज्वलित करें (श्रपयन्तु पचन्तु, पचन्तु) ब्रह्मचर्य व्रत पालनादि से मन वाणी और शरीर को परिपक्व करें ॥ शत० ६ । ५ । ४ । १-८ ॥

मि॒त्रस्य॑ चर्षणी॒धृतोऽवो॑ दे॒वस्य॑ सान॒सि ।
द्यु॒म्नं चि॒त्रश्र॑वस्तमम् ॥ ६२ ॥ ऋ० ३ । ५९ । ६ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः स्वरः ॥

भा०—(मित्रस्य) प्रजा को मरने से बचानेवाले (चर्षणी-धृतः) प्रजाओं को धारण पोषण करने में समर्थ (देवस्य) देव, राजा के (सानसि) सदा से चले आये, (चित्रश्रवःतमम्) विचित्र अन्न आदि भोग्य पदार्थों से समृद्ध (द्युम्नम्) ऐश्वर्य को हे प्रजे ! हे पृथिवि ! तू (अवः) प्राप्त हो। इसी प्रकार स्त्री के पक्ष में—स्त्री अपने मित्र भूत प्रजा के पालक (देवस्य) कमनीय पति के नाना धन सम्पत्ति को प्राप्त करे ॥ शत० ६ । ५ । ४ । १० ॥

देवस्त्वा सविताेद्वपतु सुपाणिः स्वङ्गुरिः सुबाहुरुत शक्त्या।
अव्यथमाना पृथिव्यामाशा दिश॒ऽआपृण ॥ ६३ ॥

सविता देवता । भुरिग्बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(सविता देव) सूर्य के समान तेजस्वी राष्ट्र का संचालक देव, विद्वान् राजा हे पृथिवि ! (सुपाणिः) उत्तम पालन करनेवाले साधनों से युक्त, (स्वङ्गुरिः) उत्तम अंगों, राज्य के समस्त अंगों से सम्पन्न, (सुबाहुः) शत्रुओं को बांधनेवाले उत्तम सेना, आयुध आदि से युक्त होकर (उत) और (शक्त्या) शक्ति से युक्त होकर (त्वा) तुझको (उद्वपतु) स्वीकार करे और उत्तम बीज वपन करे । इसी प्रकार (सु-पाणिः) उत्तम हाथोंवाला (सु-अङ्गुरि) उत्तम अंगुलियों वाला, (सुबाहु) उत्तम बाहुबल और (उत शक्त्या) उत्तम शक्ति से युक्त होकर हे स्त्रि ! (त्वा उद्वपतु) तुझ में सन्तानार्थ बीज वपन करे। तू हे प्रजे ! (अव्यथमाना) किसी प्रकार का कष्ट न पाती हुई (पृथिव्याम्) इस भूतल पर (आशाः दिशः) समस्त दिशा और उप-दिशाओं को भी (आपृण) पूर ले, अर्थात् फल फूलकर सर्वत्र फैल जा । और हे स्त्री ! तू अपने पति द्वारा कभी पीड़ित न होकर इस पृथिवी पर (आशाः) अपनी समस्त कामना और दिशाओं को भी पूर्ण कर ॥ शत० ६ । ५ । ४ । ११ । १२ ॥

उत्थाय बृहती भवोदु तिष्ठ ध्रुवा त्वम् ।
मित्रैतां त उखां परि ददाम्यभित्याऽएषा मा भेदि ॥ ६४ ॥

उखा देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे प्रजे ! तू (उत्थाय) उठकर, अभ्युदयशील होकर (बृहती भव) बहुत बड़ी हो । तू (उत् तिष्ठ) उदय को प्राप्त हो, उठ, (ध्रुवा त्वम्) तू ध्रुवा है, सदा स्थिर रहने वाली है । हे (मित्र) प्रजा के सुहृद्-रूप राजन् ! (उखाम्) नाना ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली इस प्रजा को

हांडी के समान (ते परि) तेरे अधीन (अभित्यै) कभी छिन्न भिन्न न होने देने के लिये (ददामि) प्रदान करता हूं । देखना (एषा) यह (मा भेदि) कभी टूट न जाय । इसी प्रकार हे स्त्री ! तू उठकर बड़े पुरुषार्थ वाली हो । उठ, तू स्थिर होकर खड़ी हो । हे मित्रवर ! इस (उखां) प्रजा को खनन या प्राप्त कराने वाली स्त्री को तुझे सौंपता हूं तुझ से कभी अलग न होने के लिये प्रदान करता हू । यह तुझ से भिन्न होकर न रहे ॥ शत० ६ । ५ । ४ । १२ ॥

वसवस्त्वा छृन्दन्तु गायत्रेण छन्दसाङ्गिरस्वद्रुद्रास्त्वा छृन्दन्तु त्रैष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वदादित्यास्त्वा छृन्दन्तु जागतेन छन्दसाङ्गिरस्वद्विश्वे त्वा देवा वैश्वानराऽआछृन्दन्त्वानुष्टुभेन छन्दसाङ्गिरस्वत् ॥ ६५ ॥

वस्वादयो लिङ्गोक्ता देवता । धृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे उखे ! पृथिविवासिनी प्रजे ! (त्वा) तुझको (वसवः) प्रजाओं को बसाने में समर्थ वसु नामक विद्वान् (गायत्रेण छन्दसा) पूर्वोक्त गायत्र छन्द, ब्राह्मण शक्ति (अंगिरस्वत) अग्नि के समान तेज से युक्त होकर (छृन्दन्तु) तेजस्वी बनावें । (रुद्रा त्रैष्टुभेन छन्दसा अङ्गिरस्वत् छन्दन्तु) अगारे जिस प्रकार हडिया को तपाते हैं उसी प्रकार रुद्र नामक विद्वान् पुरुष तुझको त्रिष्टुभ छन्द से तेजस्वी ज्ञानवान् करें । (आदित्याः त्वा जागतेन छन्दसा छृन्दन्तु अङ्गिरस्वत्) आदित्य नामक विद्वान् अग्नि के समान तुझको जागत छन्द से तेजस्वी, पराक्रमशील समृद्धिमान् करें । (वैश्वानराः) समस्त प्रजाओं के नेता (विश्वे देवा.) समस्त विद्वान् पुरुष (आनुष्टुभेन छन्दसा) अनुष्टुभ् छन्द से (अङ्गिरस्वत्) प्रदीप्त अग्नि के समान या सूर्य की किरणों के समान (आछृन्दन्तु) प्रदीप्त, उज्वल, सम्पन्न वैभवयुक्त करें ॥ शत० ६ । ५ । ४ । १७ ॥

हे स्त्री वा पुरुष तुमको वसु, रुद्र, आदित्य विश्वेदेव नामक विद्वान्‌गण गायत्री आदि वेद मन्त्रों से ज्ञानवान् तेजस्वी करें ।

आकूतिमग्निं प्रयुज॑ꣳ स्वाहा मनो॑ मेधामग्निं प्रयुज॑ꣳ स्वाहा॑ चित्तं विज्ञा॑तमग्निं प्रयुज॑ꣳ स्वाहा॑ वाचो विधृ॑तिमग्निं प्रयुज॑ꣳ स्वाहा॑ । प्रजाप॑तये मन॑वे स्वाहाग्नये॑ वैश्वानराय स्वाहा॑ ॥ ६६ ॥

अग्न्यादयो मन्त्रोक्ता देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(आकूतिम्) समस्त अभिप्रायों को ज्ञान करनेवाली शक्ति और उसके (प्रयुजम्) प्रयोग करनेहारे (अग्निम्) ज्ञानवान् आत्मा को (स्वाहा) यथार्थ सत्य क्रिया के अभ्यास से जानो । (मन.) मनन करनेवाले अन्त करण और (मेधा) धारणावती बुद्धि को और (अग्निम् प्रयुजम्) उसके प्रेरक अग्नि आत्मा को या विद्युत् शक्ति को (स्वाहा) उत्तम योगक्रिया द्वारा प्राप्त करो । (चित्तम्) चिन्तन करनेवाले (विज्ञातम्) विशेष ज्ञान के साधन और (प्रयुजम्) उसके प्रेरक (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशित आत्मा को (स्वाहा) उत्तम रीति से जानो । (वाचः विधृतिम्) वाणी को विशेषरूप से धारण करनेवाली शक्ति और (प्रयुजम् अग्निं) और उसमें प्रयुक्त या उसकी प्रेरणा करनेवाली अग्नि, विद्युत शक्ति को (स्वाहा) उत्तम रीति से प्राप्त करो । हे पुरुषो ! आप लोग (मनवे) मननशील (प्रजापतये) प्रजा के पालक पुरुष को (स्वाहा) उत्तम आदर सत्कार करो । (वैश्वानराय अग्नये) समस्त पुरुषों में प्रकाशमान, सबके हितकारी (अग्नये) सबके प्रकाशक परमेश्वर या विद्वान् का भी (स्वाहा) उत्तम रीति से स्तवन, गुणगान करो ॥ शत० ६ । ६ । १ । १९-२० ॥

विश्वो॑ देवस्य॑ नेतुर्मर्तो॑ वुरीत सुख्यम् ।

विश्वो॑ रा॒यऽइ॑षुध्यति द्यु॒म्नं वृ॑णीत पु॒ष्यसे॒ स्वाहा॑ ॥ ६७ ॥

ऋ० ५ । ५० । १ ॥

आत्रेय ऋषिः । सविता देवता । अनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—(विश्वः मर्त्तः) समस्त मनुष्य (देवस्य नेतुः) सबके नायक राजा और विद्वान् एवं सब सुखों के प्रापक परमेश्वर के (सख्यं वुरीत) प्रेम या मित्रता को चाहें । (विश्वः) समस्त मनुष्य ही (राये) ऐश्वर्य के लिये (इषुध्यति) ईश्वर से प्रार्थना करते अथवा (इषुध्यति) पराक्रम से शस्त्रादि धारण करते या आकांक्षा करते हैं और (पुष्यसे) पुष्ट होने के लिये (स्वाहा सत्य व्यवहार द्वारा (द्युम्नं वृणीत) धन ऐश्वर्य को प्राप्त करें ॥ शत० ६ । ६ । १ । २१ ॥

मा सु भि॑त्था मा सु रि॒षोऽम्ब॑ धृ॒ष्णु वी॒रय॑स्व॒ सु ।
अ॒ग्निश्चे॒दं क॑रिष्य॒थः ॥ ६८ ॥

उखा अम्बा वा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजा के अधीन प्रजे! एवं पुरुष के अधीन स्त्रि! तू (मा सु भित्था) राजा से एवं अपने पालक पति से भेद या द्रोह मत कर । (मा सु रिषः) अपने हित के लिये ही कभी विनष्ट मत हो, अपना नाश मत कर या अपने पालक पति या राजा का घात मत कर । हे (अम्ब) हे स्त्रि! पुत्रों की माता के समान तू (धृष्णु) दृढ़ता से (सु वीरयस्व) अपने ही हितार्थ पराक्रम बल के कार्य कर । तू (अग्निः च) अग्नि के समान तेजस्वी राजा या अग्नितत्व-प्रधान पति, वीर्यवान् पुरुष दोनों मिलकर राज्य के समस्त कार्य को और स्त्री पुरुष दोनों मिलकर गृहस्थ कार्य को (करिष्यथः) करें ॥ शत० ६ । ६ । २ । ९ ॥

दृ॒ꣳह॑स्व देवि पृथिवि स्व॒स्तय॑ऽआसु॒री मा॒या स्व॒धया॑ कृ॒तासि॑ ।
जुष्टं॑ दे॒वेभ्य॑ऽइ॒दम॑स्तु ह॒व्यमरि॑ष्टा॒ त्वमुदि॑हि य॒ज्ञेऽअ॒स्मिन् ॥ ६९ ॥

उखा अम्बावा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (देवि पृथिवि) देवि पृथिवि ! तू (स्वधया) अन्न और जल से या स्व=अर्थात् शरीर को धारण पोषण करने वाली शक्ति से (आसुरी माया) प्राणों की या प्राणों में रमण करने वाले जीवों या बलवान् बुद्धिमान् पुरुषों की प्रज्ञा या बुद्धि या चमत्कार करने वाली अद्भुत शक्ति से (कृता असि) बनाई जाती है। तू (स्वस्तये) कल्याण के लिये (दंहस्व) दृढ़ हो, वृद्धि को प्राप्त हो। (इदम् हव्यम्) यह अन्न, उपादेय भोग्य पदार्थ (देवेभ्यः) विद्वान्, विजयी पुरुषों को (जुष्टम् अस्तु) प्रिय लगे। (त्वम्) तू (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में इस यज्ञ, प्रजापति राजा के आश्रय रहकर (अरिष्टा) विना क्लेश पाये, अपीड़ित, सुखी प्रसन्न रहती हुई (उद् हि) उदय को प्राप्त कर, उन्नतिशील हो। पृथिवी के भीतर अग्नि है, उखा नाम हाडी के भीतर अग्नि रक्खी जाती है आसुरी अर्थात् विस्फोटक बाम्ब आदि में भी भीतर अग्नि है, इस उपमा के बल से पृथिवी निवासनी प्रजा भी अपने भीतर राजा, विद्वान् रूप अग्नि को धारण करके और गृहपत्नी पति के वीर्यरूप अग्नि को धारण करके आसुरी माया के समान होजाता है॥ शत० ६। ६। २। ६॥

स्त्री-पक्ष में—हे देवि ! तू (स्वधया कृतासि) अन्न से पुष्ट होकर कल्याण के लिये (दंहस्व) बुद्धि को प्राप्त हो। तेरा यह अन्न विद्वानों को तृप्तिकर हो। तू इस यज्ञ प्रजापति या गृहस्थ कार्य में (उदिहि) उदय को प्राप्त हो।

द्रुन्नः सुर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः।
सहसस्पुत्रोऽअद्भुतः॥ ७०॥ ऋ० २। ७। ६॥

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(द्रुवन्नः) अग्नि जिस प्रकार काष्ठों को जलाता है वे ही उसके अन्न हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी (द्रुवन्न.) 'द्रु' ओषधि वनस्प-

तियों का आहार करने हारा है । (सर्पिरासुति) अग्नि जिस प्रकार घी से बढ़ता है इसी प्रकार तू भी घृत के सेवन से वृद्धि को प्राप्त होने वाला अथवा सर्पि, वीर्य को आसेचन करने में समर्थ है । वह (प्रत्न) सदा से (वरेण्य) सदा स्वीकार करने योग्य, (होता वीर्य आदि का आधानकर्त्ता, एवं पत्नी का ग्रहीता है। वह (सहस. पुत्र) बल से उत्पन्न एवं बलवान् पुरुष से उत्पन्न पुत्र (अद्भुतः) आश्चर्यजनक गुण, कर्म, स्वभाव वाला होता है ॥ शत० ६ । ६ । २ । १४ ॥

राजा के पक्ष मे—पृथिवी रूप उखा मे राजा रूप अग्नि (द्रवन्नः) काष्ठादि के जलाने वाले अग्नि के समान तेजस्वी, (सर्पिरासुति) तेज से उत्पन्न (प्रत्न. वरेण्य. होता) सदा से वरण करने योग्य, सबका दाता, प्रतिग्रहीता (सहस) अपने बल पराक्रम से युक्त (पुत्र) पुरुषों का दुःखों से त्राण करने में समर्थ (अद्भुतः) आश्चर्यकारी प्रतापवान् है । इसी प्रकार स्त्री रूप उखा में ओषधि वनस्पतियों का परिणाम भूत वीर्य, तेजोमय स्वीकार करने योग्य गर्भ में आहुतिप्रद है । वह बल से उत्पन्न आश्चर्यकारी है, जो पुत्र रूप से उत्पन्न होता है ।

परस्याऽअधि संवतोऽवराँ२ऽ अभ्यातर ।
यत्राहमस्मि ताँ२ऽ अव ॥ ७१ ॥ ऋ० ८ । ६४ । १५ ॥

विरूप आगिरस ऋषि । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री । षड्ज ॥

भा०—स्त्री-पक्ष में—हे कन्ये! (परस्या) उत्कृष्ट गुणोंवाली कन्या की अपेक्षा (संवत अधि) समान कोटिके और (अवरान्) नीच कोटिके पुरुषों को तू (अभि आतर) त्याग दे , मत वर,। और (यत्र) जिस पदपर (अहम् अस्मि) मैं उत्कृष्ट पद का पुरुष स्थित हूं । (तान् अव) उनको वरण कर, प्राप्त हो ।

राजा के पक्ष मे—हे राजन् अग्ने ! (परस्या) शत्रु सेना के साथ होनेवाले (संवतः अधि) युद्ध में स्थित हम (अवरान् अभ्यातर) समीपस्थों की रक्षा कर (यत्र अहम् अस्मि) मैं जहां स्थित हूं (तान् अव) उन सबकी रक्षा कर ॥ शत० ६ । ६ । ३ । १ ।

परमस्याः परावतो रोहिदश्वऽइहा गहि ।
पुरीष्यः पुरुप्रियोऽग्ने त्वं तरा मृधः ॥ ७२ ॥

आरुणिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—हे राजन् ! तू (रोहिदश्व.) लाल वर्ण के या वेगवान् अश्वों से युक्त होकर तू (परमस्याः) दूर से दूर के (परावतः) दूर देश से भी (आ गहि) यहां आकर प्राप्त हो । हे अग्ने ! शत्रुतापक राजन् ! तू (पुरीष्य) समृद्धिमान्, इन्द्रपद के योग्य, (पुरुप्रियः) बहुतसी प्रजाओं को प्रिय होकर (त्वं मृधः) शत्रु सेनाओं को (तर) विनाश कर ।

गृहपति पक्ष में—हे अग्नि के समान तेजस्विन्! पुरुष ! अग्नि आदि वाहन साधनों से सम्पन्न होकर (परमस्याः कृते) परम श्रेष्ठ स्त्री को प्राप्त करने के लिये (परावतः) दूर देश से भी (इह आगहि) यहां आ । और (मृधः तर) शत्रुओं को विनाश कर ॥ शत० ६ । ६ । ३ । ४ ॥

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७३ ॥ ऋ० ८ । ६१ । २० ॥

जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप तेजस्विन् अग्ने ! (यत्) जब (ते) तेरे लिये (कानि कानि चित्) जो कुछ भी नाना प्रकार के (दारुणि =दारूणि) काष्ठ जिस प्रकार अग्नि में रक्खे जाते हैं और उसको प्रज्वलित करते है उसी प्रकार, हे राजन् ! (ते) तुझे हम (कानि-कानि चित्)

नाना प्रकार के कितने ही (दारुणि) हिंसाजनक, शत्रु के भयजनक, शत्रु सेनाओं के विदारण करने में समर्थ शस्त्रास्त्र साधन अथवा आदर योग्य उत्तम पदार्थ (आ दध्मसि) प्रदान करते हैं (तत्) वह (सर्वं) सब (ते) तेरा (घृतम्) तेजोवर्धक (अस्तु) हो । हे (यविष्ठ्य) बलवन्, सबसे महान् (तत्) उसको (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर ॥ शत० ६ । ६ । ३ । ४ ॥

'दारुणि'—दारूणि इति यावत् । 'दारूणि' इति ऋग्वेदीय शतपथीयश्च पाठः । 'दारुणि' इत्यत्र'रु' इति ह्रस्वश्छान्दसः । दारु दृणातेर्दृणातेर्वा तस्मादेव द्रुः । इति निरु० ४ । ३ । ७ ॥ 'दृसनि'० इति उणादिञुण । दारु । दृङ् आदरे, दृ भये, भ्वादी । दृ हिंसायाम्, भ्वादिः । दृविदारणे क्र्यादिः । दृञ् हिंसायाम् क्र्यादि । तेभ्यो ञुण् । हिंसासाधनानि, आदरयोग्यानि, दारणसाधनानि आयुधानि दारूणि । दारुणि इति सप्तम्यन्त पदम् इति दयानन्दस्तच्चिन्त्यम् ।

पति पक्ष में—हे पते हम जितने भी (दारूणि) अग्नि में काष्ठों के समान आदर योग्य पदार्थ तुझे प्रदान करें वे सब तुझे घृत के समान पुष्टिजनक हों । हे अति युवक ! उनको स्वीकार कर ।

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति । सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥ ७४ ॥ ऋ० । ८ । ९१ । २१ ॥

जमदग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—(यत्) जो पदार्थ भी (उपजिह्विका) दीमक (अत्ति) काठ खाजाती है और (यत्) जो पदार्थ (वम्रः) बड़ा दीमक (अतिसर्पति) लग जाता है वह भी जिस प्रकार आग में घी के समान तीव्रता से प्रज्वलित होता है उसी प्रकार हे राजन् ! (उपजिह्विका) शत्रु के बीच उपजाप करनेवाली संस्था और (यत्) जो कुछ खाजाती है (वम्रः) दीमक के समान समस्त वृत्तान्त को राजा के सन्मुख वमन

करनेवाला चरविभाग (यत्) जिस पदार्थ तक भी (अति सर्पति) पहुंच जाय (तत् सर्वं, वह सब , तेष्ट घृतम् अस्तु) तेरे लिये यशो जनक एव तेजोवर्धक ही हो । हे (यविष्ठ्य) बलवान् राजन् ! (तत् जुषस्व) उसको तू सेवन कर ॥ शत० ६ । ६ । ३ । ६ ॥

स्त्री पक्ष में—हे पुरुष (उपजिह्विका) जिह्वा को वश करनेहारी निर्लोभ स्त्री जो पदार्थ खाये और जो (वम्रः) प्राणोद्वार बाहर आवे वह सब मुझे भी पुष्टिकारक हो ।

अहरहरप्रयावं भरन्तोऽश्वायेव तिष्ठते घासमस्मै ।
रायस्पोषेण समिषा मदन्तोऽग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम ॥ ७५ ॥

अथर्व० १९ । ५५ । १ ॥

नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(तिष्ठते अश्वाय घासम् इव) घर पर खड़े घोड़े को जिस प्रकार नित्य नियम से, बिना नागा घास दिया जाता है उसी प्रकार हे राजन् ! हम लोग (अहः-अहः) प्रतिदिन (घासम्) खाने पीने योग्य भोग्य-सामग्री को (भरन्तः) प्राप्त करते हुए और तुझे प्रदान करते हुए (रायः पोषेण) धनैश्वर्य की समृद्धि से और (इषा) अन्न की समृद्धि से (सम् मदन्तः) अति हर्षित, आनन्द, तृप्त होते हुए हे (अग्ने) गृहपते ! राज्यपते ! हम लोग (ते प्रतिवेशाः) तेरे पड़ोसी के समान तेरे में प्रविष्ट, तेरे अधीन, तेरी बनायी धर्म मर्यादाओं में रहते हुए (मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों ॥ शत० ६ । ६ । ३ । ७ ॥

नाभा पृथिव्याः समिधानेऽअग्नौ रायस्पोषाय बृहते हवामहे ।
इरम्मदं बृहदुक्थं यजत्रं जेतारमग्निं पृतनासु सासहिम् ॥ ७६ ॥

नाभानेदिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(पृथिव्याः नाभा) पृथिवी के नाभिस्थान, केन्द्र या मध्य भाग में (समिधाने) अति प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि में जिस प्रकार

आहुति दी जाती है उसी प्रकार हम लोग (बृहते) बड़े भारी (रायः पोषाय) ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिये (इरम्मदम्) अन्नादि पदार्थों और पृथ्वी आदि ऐश्वर्य से प्रसन्न होनेवाले (बृहदुक्थं) महान् कीर्ति से युक्त (यजत्रम्) दानशील (पृतनासु) संग्रामों में (सासहिम्) शत्रु के बराबर पराजय करने में समर्थ (जेतारम्) विजयी (अग्निम्) अग्नि, तेजस्वी प्रतापी पुरुष को (हवामहे) हम लोग आदर से बुलावें, उसका आदर करें ॥ शत० ६ । ६ । ३ । ९ ॥

या॒ः सेना॑ऽअ॒भीत्व॑रीराव्या॒धिनी॒रुग॑णा उ॒त ।
ये स्ते॒ना ये च॒ तस्क॑रा॒स्ताँस्ते॑ऽअ॒ग्नेऽपि॑ दधाम्या॒स्ये॑ ॥ ७७ ॥

भा०—राजा का आग्नेय स्वरूप । हे (अग्ने) शत्रुसंतापक राजन् ! (याः) जो (अभीत्वरीः) हमारे पर आक्रमण करनेवाली (आव्याधिनीः) सब ओर से शस्त्र प्रहार करनेवाली (उगणाः) शस्त्रादि उठाये हुए (सेनाः) सेनाएं हों (उत) और (ये स्तेनाः) जो चोर और (ये च) जो (तस्कराः) नाना हत्यादि पाप करनेवाले डाकू हैं (तान्) उन सबको (ते) तेरे (आस्ये) शत्रुओं के विनाशकारी बल में मुख में जिस प्रकार ग्रास डाल लिया जाता है उसी प्रकार (दधामि) झोंक दूं । तू उनको ग्रस जा, विनाश कर ॥ शत० ६ । ६ । ३ । १० ॥

द॒ꣳष्ट्रा॑भ्यां म॒लिम्लू॒ञ्जम्भ्यै॒स्तस्क॑राँ२ऽ उ॒त । हनु॑भ्याꣳ स्ते॒नान् भ॑गव॒स्ताँस्त्वं खा॑द॒ सुखा॑दितान् ॥ ७८ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगुष्णिक । ऋषभः ॥

भा०— जिस प्रकार मनुष्य अपनी (दंष्ट्राभ्यां) दाढ़ों से चबाकर (जम्भ्यैः) अगले कुतरनेवाले दांतों से कुतर २ कर (हनूभ्यां) दोनों दाढ़ों और जबाड़ों से कुचिल २ कर उत्तम रीति से (सुखादितान्) चबाये गये ग्रासों को खा जाता है उसी प्रकार हे अग्ने ! राजन् ! हे (भगवः)

ऐश्वर्यवान् राजन् ! (दंष्ट्राभ्याम्) दांतों के समान दशन करनेवाले शस्त्रों के दो दलों से (मलिम्लून्) मलिन कार्य करने एवं प्रजाओं की मृत्यु करनेवाले दुष्टों को और (तस्करान्) छुपे पापों, हत्याओं को करनेवाले पुरुषों को (जम्भ्यैः) बांध २ कर मारनेवाले उपायों से, और (हनूभ्याम्) हनन करनेवाले द्विविध उपायों से (स्तेनान्) चोर डाकू पुरुषों को (त्वं) तू (खाद) चबा डाल, कुचल कर ग्रस ले ॥ शत० ६ । ६ । ३ । १० ॥

ये जनेषु मलिम्लवस्तेनासस्तस्करा वने ।
ये कक्षेष्वघायवस्ताँस्ते दधामि जम्भयोः ॥ ७९ ॥

भा०—(ये) जो (जनेषु) प्रजा के लोगों में (मलिम्लवः) मलिनाचार वाले और जो (वने) वन में (स्तेनासः) चोर और (तस्करासः) डाकू छिपे हों (कक्षेषु) हमारे गृहों के इधर उधर या नदी पर्वतादि के तटों में या राजा के पार्श्ववर्त्ती सामन्त राजाओं और अमात्य आदि में (अघायवः) अपने पाप से दूसरों पर पापाचार करना चाहते हैं (तान्) उन सबको (जम्भयोः) दाढ़ों में ग्रास के समान (ते) तेरे वश में (दधामि) धरता हूं ॥ शत० ६ । ६ । ३ । १० ॥

योऽअस्मभ्यमरातीयाद्यश्च नो द्वेषते जनः ।
निन्दाद्योऽअस्मान् धिप्साच्च सर्वं तं मस्मसा कुरु ॥ ८० ॥

अग्निर्देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (अस्मभ्यम्) हमारे प्रति (अरातीयात्) शत्रु के समान वर्ताव करे और (यः च) जो (जनः) जन (नः) हम

८०—०'भस्मसा कुरु' इति० द० । तन्मते भस्मसात् इत्यत्र छान्दसस्तलोपः । मस्मसा इति सर्वत्र पाठः । 'सर्वान् निमष्मषाकरं दृषदाखल्वा इव', [इति अथर्व० ५ । ३ । ८ ॥] अथर्वगतः पाठस्तत्रानुसन्धेयः ।

से (द्वेषते) द्वेष, अप्रीति का वर्ताव करे। (यः च) जो (अस्मान्) हमारी (निन्दात्) निन्दा करे और (धिप्साच्च) हमें मारना या हम से छलकर के हमें हानि पहुंचाना चाहता है (सर्वं तम्) उन सबको हे राजन् ! (भस्मसा कुरु) दांतों में अन्न के समान पीस डाल ॥ शत० ६ । ६ । ३ । १० ॥

सꣳशि॑तं मे॒ ब्रह्म॒ सꣳशि॑तं वी॒र्यं॑ बल॑म्। सꣳशि॑तं क्ष॒त्रं जि॒ष्णु यस्या॒हमस्मि॑ पु॒रोहि॑त ॥ ८१ ॥   अथर्व० ३ । १९ । १ ॥

अग्नि पुरोहितो यजमानश्च देवते । निचृदार्षी पङ्क्ति । पञ्चमः ॥

भा०—(यस्य) जिसका (अहम्) मैं (पुरोहित.) पुरोहित मार्गदर्शी (अस्मि) होऊं। उसका (जिष्णु) जयशील (क्षत्र) क्षात्रबल अथवा वही (जिष्णु क्षत्रम्) विजयशील क्षत्रिय कुल (संशितम्) खूब अच्छी प्रकार तीव्र रहे। और (मे) मेरा (ब्रह्म) ब्रह्म, वेदज्ञान और ब्रह्मचर्य बल भी (संशितम्) खूब तीक्ष्ण रहे। और मेरा (वीर्यं बलम्) वीर्य और बल पराक्रम भी (संशितम्) खूब तीक्ष्ण, प्रचण्ड रहे ॥ शत० ६ । ६ । १४ ॥

उदे॑षां बा॒हू ऽअ॑ति॒रमुद्वर्चो॒ ऽअथो॒ बल॑म्। क्षि॒णोमि॒ ब्रह्म॑णा॒मित्रा॒नुन्न॑यामि॒ स्वाँ२ऽअ॒हम् ॥ ८२ ॥   अथर्व० ३ । २७ । ३ ॥

अग्नि सभापतिर्यजमानो वा देवता । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(एषाम्) मैं इन दुष्ट पुरुषों एवं शत्रुओं के (बाहू) बल वीर्यों को (उत् अतिरम्) उल्लंघन कर जाऊं। (अथो) और उनके (वर्च·) तेज और (बलम्) शरीर-बल या सेना-बलको भी (उद् अतिरम्) अतिक्रमण कर जाऊं, उनसे अधिक होजाऊं। (ब्रह्म) वेदज्ञान के बल से अथवा अपने महान् बड़े भारी क्षात्रबल से मैं (अमित्रान्) शत्रुओं का (क्षिणोमि) विनाश करूं। और (अहम्) मैं

(स्वान्) अपने पक्ष के योद्धा, वीर पुरुषों को (उत् नयामि) ऊंचा उठाऊं उनको उन्नत पद प्रदान करूं ॥ शत० ६ । ६ । ३ । १५ ॥

अन्न॑प॒तेऽन्न॑स्य नो देह्यनमी॒वस्य॑ शु॒ष्मिण॑: ।
प्रप्र॑ दा॒तारं॑ तारिष॒ ऽऊर्जं॑ नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ॥ ८३ ॥

अन्नपतिरग्निर्यजमानः पुरोहितो वा देवता । उपरिष्टाद् बृहती मध्यमः ॥

भा०—हे (अन्नपते) अन्नों के पालक स्वामिन् ! तू (न) हमें (शुष्मिणः) बलकारी, (अनमीवस्य) रोगरहित (अन्नस्य) अन्न का (देहि) प्रदान कर । और (दातारम्) दानशील पुरुष को (प्रप्रतारिष) खूब बढ़ा । उसे भरा पूरा, सन्तुष्ट रख । (न) हमारे (द्विपदे) दो पाये मनुष्य आदि और (चतुष्पदे) चौपाये गौ आदि पशुओं के लिये (ऊर्जं धेहि) बलकारी अन्न प्रदान कर ॥ शत० ६ । ६ । ४ । ७ ॥

॥ इत्येकादशोऽध्यायः ॥

[तत्र त्र्यशीतिर्ऋचः]

इति मीमांसातीर्थप्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजय देवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकादशोऽध्यायः ॥

८३—विश्वकर्मणे स्वाहा । इति काण्व० ।

अतः परं १२ । ४४ मन्त्र पठ्यते । काण्व० ।

अथ द्वादशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ दृशानो रुक्मऽउर्व्या व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः। अग्निरमृतोऽअभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौरजनयत्सुरेताः ॥ १ ॥

ऋ० १० । ४५ । ८ ॥

वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । भुरिक् पङ्क्ति । पञ्चम ॥

भा० — (दृशान) साक्षात् स्वयं दीखता हुआ, और समस्त पदार्थों का दिखाने वाला स्वयद्रष्टा, (रुक्म.) दीप्तिमान्, (उर्व्या) बड़ी भारी कान्ति से या विशाल इस पृथ्वी सहित (श्रिये) अपने परम कान्ति से (रुचान.) प्रकाशित होता हुआ, सूर्य जिस प्रकार (दुर्मर्षम् आयु) अविनाशी, जीवन सामर्थ्य, अन्नादि को (व्यद्यौत्) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है। उसी प्रकार (दृशान.) सर्व पदार्थों को विज्ञान द्वारा दर्शाने वाला, (श्रिये रुचान) महान् लक्ष्मी की इच्छा करता हुआ, (रुक्म) कान्तिमान्, तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् , विद्वान् राजा (दुर्मर्षम्) शत्रुओ और बाधक कारणों से अपराजित जीवन को (उर्व्या) इस विशाल पृथ्वी पर (व्यद्यौत्) नाना तेजों मे प्रकट करता है और अपना तेज दिखाता है। (अग्नि) अग्नि, दीप्तिमान् सूर्य जिस प्रकार (वयोभि.) अपनी शक्तियो, तेजों, किरणों से (अमृत.) अमृत, अमर (अभवत्) है उसी प्रकार (अग्नि) विद्वान् ज्ञानी एव अग्रणी के समान तेजस्वी राजा भी (वयोभि अमृत. अभवत्) अपने ज्ञान-बलों से और अन्नों द्वारा अपने वयोवृद्ध सहायको से अमृत, अमर, अखण्डित होकर रहता है। (यत्) क्योंकि (एनं) उस सूर्य को (सुरेता.) उत्तम वीर्य वाला, समस्त ब्रह्माण्ड के उत्पादन सामर्थ्य से युक्त, (द्यौ॰) तेजोयुक्त, महान् हिरण्यगर्भ (अजनयत्) उत्पन्न करता है इसी प्रकार (एनं) इस विद्वान् को और तेजस्वी राजा को भी (सुरेताः द्यौ.) उत्कृष्ट

१—अतः परमुखाधारणम् [१—४५]

वीर्यवान् तेजस्वी पिता और आचार्य (अजनयत) उत्पन्न करता है। असह्य पराक्रमी, तेजस्वी पुरुष को तेजस्वी पिता माता ही उत्पन्न करते हैं। शत० ६।७।२।१॥

नक्तोषासा समनसा विरूपे धापयेते शिशुमेकꣳ समीची। द्यावाक्षामा रुक्मोऽअन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्राविणोदाः॥२॥

ऋ० १०।४५।८॥

अग्निर्देवता। कुत्स ऋषिः। भुरिगार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जिस प्रकार (नक्तोषासा) रात्रि और दिन दोनों (विरूपे) एक दूसरे के विपरीत कान्ति वाले तम स्वरूप और प्रकाशस्वरूप होकर (समीची) परस्पर अच्छे प्रकार मिलकर सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार माता पिता दोनों (समनसौ) एकचित्त होकर (विरूपे) विचित्र स्वरूप या विविध रुचिवाले और (समीची) परस्पर संगत होकर (एकम्) एक (शिशुम्) बालक को (धापयेते) दुग्ध रसपान कराते और अन्न से पुष्ट करते हैं उसी प्रकार (नक्त-उषासा) रात दिन के समान अप्रकाश, अज्ञानी या निस्तेज निर्बल और ज्ञानी सतेज और सर्वत्र दोनों प्रकार के जन (समीची) परस्पर संगत होकर (शिशुम्) बालक के समान ही प्रेमपात्र (एकम्) एकमात्र राजा को (धापयेते) रस, अन्न और बलद्वारा पुष्ट करते हैं। वह भी (द्यावाक्षामा) आकाश और पृथिवी के (अन्तः) भीतर (रुक्म) दीप्तिमान् सूर्य के समान तेजस्वी और पुत्र के समान माता पिता के बीच निर्बल प्रजा और सबल शासकों के बीच तेजस्वी होकर राजा (विभाति) प्रकाशित होता है। (द्रविणोदा) वीर्य, बल, अन्न को प्रदान करनेवाले (देवाः) वीर, विजयी, पराक्रमी राजगण, उस (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को (धारयन्) धारण करें॥ शत० ६।७।२।३॥

द्रविणोदा कस्मात् । धनं द्रविणमुच्यते यदेनमभिद्रवन्ति । बलं वा द्रविणं यदेनेनाभिद्रवन्ति । तस्य दाता द्रविणोदा । निरु० ८ । १ । २ ॥

विश्वा॑ रू॒पाणि॒ प्रति॑मुञ्चते क॒विः प्रासा॑वीद्भ॒द्रं द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ।
वि नाक॑मख्यत्सवि॒ता वरे॒ण्योऽनु॑ प्र॒याण॑मु॒षसो॒ वि रा॑जति ॥ ३ ॥

ऋ० ५ । ८१ । २ ॥

श्यावाश्व ऋषिः । सविता देवता । विराड् जगती । निषादः ॥

भा०—(कविः) क्रान्तदर्शी, विद्वान् पुरुष (विश्वा रूपाणि) समस्त प्रकार के पदार्थों को (प्रति मुञ्चते) प्रसिद्ध करता, प्रकट करता है। और (द्विपदे चतुष्पदे) दो पाये, मनुष्यों और (चतुष्पदे) चौपाये, पशुओं के लिये (भद्रं) सुख, कल्याण को (प्रासावीत्) उत्पन्न करता है। और वह सब का (सविता) प्रेरक, (वरेण्यः) सब के वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ पुरुष, (नाकम्) अत्यन्त सुखस्वरूप, स्वर्ग और मोक्ष को भी (वि अख्यत्) विशेषरूप से प्रकाशित करता, उसका उपदेश करता है। और (उषसः प्रयाणम्) प्रातः प्रभात के प्राप्त होने के (अनु) समय में, जिस प्रकार सूर्य चमकता है उसी प्रकार वह भी (उषसः) अपने दाहक, शत्रुनाशक तेज के (प्रयाणम् अनु) अच्छी प्रकार उदित हो जाने पर (विराजति) तेजस्वी होकर विराजता है ॥ शत० ६ । ७ । २ । ४ ॥

सु॒प॒र्णो᳖ऽसि ग॒रुत्माँ॑स्त्रि॒वृत्ते॒ शिरो॑ गाय॒त्रं चक्षु॑र्बृहद्रथन्त॒रे प॒क्षौ । स्तोम॑ऽआ॒त्मा छन्दा॒ᳬस्यङ्गा॑नि॒ यजू॑ᳬषि॒ नाम॑ । साम॑ ते त॒नूर्वा॑मदे॒व्यं य॑ज्ञाय॒ज्ञियं॒ पुच्छं॒ धिष्ण्याः॑ श॒फाः । सु॒प॒र्णो᳖ऽसि ग॒रुत्मा॒न्दिवं॑ गच्छ॒ स्वः॑ पत ॥ ४ ॥

गरुत्मान् देवता । धृतिः कृतिर्वा । ऋषभः ॥

भा०—तू (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानवान्, उत्तम पालन करने के साधनों से सम्पन्न, 'सुपर्ण', और (गरुत्मान्) महान् गम्भीर आत्मा-

वाला है। (त्रिवृत्) कर्म, उपासना और ज्ञान इन तीनो से युक्त साधना (ते शिर.) शरीर मे शिर जिस प्रकार मुख्य है उसी प्रकार तेरा मुख्य व्रत हैं जो (शिर.) स्वयं समस्त दु.खों को नाश करता है। अथवा (त्रिवृत्) तीनो लोक मे व्यापक वायु के समान बलशाली पराक्रम, अङ्गार, अर्चि और धूम के समान शत्रुओं के जलाने, अपने गुणों के प्रकाशन और सबको भय से कंपाने इन तीन गुणो से युक्त तेज होना हे राजन्! (ते शिर.) तेरा शिर के समान मुख्य स्वरूप है। (गायत्रं चक्षुः) गायत्री से प्राप्त वेद ज्ञानतेरी चक्षु है। अथवा गायत्र अर्थात् ब्राह्मण, विद्वान्, वेदज्ञ पुरुष और स्वतः गान करनेवाले को विपत्तियों से ज्ञान द्वारा त्राण करने मे समर्थ वेद का परमज्ञान (चक्षु.) तेरे लिये सब पदार्थों को दर्शाने में समर्थ चक्षु के समान है। (बृहद् रथन्तरे पक्षौ) बृहत् और रथन्तर ये दोनो साम जिस प्रकार यज्ञ के पक्ष या बाजू के समान हैं उसी प्रकार यज्ञमय प्रजापति राजा के बृहत् अर्थात् सर्वश्रेष्ठता, सर्वज्येष्ठता, अथवा उसका अपना ज्येष्ठ पुत्र युवराज या विशाल क्षात्रबल और रथन्तर' अर्थात् यह समस्त पृथिवी निवासी प्रजाजन और या वेदवाणी का ज्ञाता विद्वान्, या सेनापति या सम्राट् ये दोनों तुझ राजशक्ति के दो पक्ष अर्थात् बाजू हैं। (स्तोम आत्मा) स्तोम अर्थात् ऋग्वेद तेरी आत्मा अर्थात् अपना स्वरूप या देह के मध्य भाग के समान है। अथवा (स्तोमः आत्मा) परम वीर्य ही तुझ प्रजापालक प्रजापति, राजा का आत्मा, स्वरूप है। (अंगानि छन्दांसि) नाना छन्द जिस प्रकार यज्ञ के अङ्ग है उसी प्रकार प्रजापति रूप राष्ट्र के अन्तर्ग राष्ट्र को विपत्तियों से बचाने वाले एवं प्रजा के आश्रय स्थान होने से वे उसके अङ्ग हैं। (यजूंषि नाम) यजुर्वेद की श्रुतियां ही उसके स्वरूप के समान हैं। अर्थात् यजुर्वेद में प्रतिपादित राष्ट्र के पालकों के विभाग ही राजा के कीर्त्तिजनक हैं। (वामदेव्यम्

साम ते तनूः) हे यज्ञ ! तेरा शरीर वामदेव्य नामक साम है। जिस साम को वाम, वननीय एकमात्र उपास्य देव परमेश्वर ने ही सबको दर्शाया है वह साम यज्ञ का स्वरूप है। और राष्ट्रमय प्रजापति का भी (वामदेव्य) समस्त प्रजा के पालन करने का सामर्थ्य, सबके सम्भजन या शरण करने योग्य राजा का अपना (साम) शान्तिदायक सुखकारी उपाय ही (ते तनूः) तेरा विस्तारी राज्य है। (यज्ञायज्ञियं पुच्छम्) यज्ञ का यज्ञायज्ञिय नामक साम पुच्छ के समान है। प्रजापति का भी (यज्ञायज्ञियम्) पशु और अन्न आदि योग्य समृद्धि और जन समृद्धि राष्ट्र या प्रजापालक राज्य के (पुच्छम्) पुच्छ अर्थात् आश्रय-स्थान के समान है। (धिष्ण्याः शफाः) यज्ञ में जिस प्रकार धिष्ण्य नामक अग्नि यज्ञ का आश्रय होने से वे शरीर में शफों या खुरों के समान हैं। उसी प्रकार राष्ट्रमय प्रजापति रूप यज्ञ के (धिष्ण्याः) धारण करने, और मार्गोपदेश करने में कुशल, विद्यावान्, वाग्मी या अन्तपाल अधिकारी लोग (शफाः) शफ खुर या चरणों के समान आश्रय हैं। इस प्रकार हे यज्ञ और राष्ट्रमय प्रजापति तू (गरुत्मान्) पक्षवाले (सुपर्णः) विशाल पक्षी के समान (गरुत्मान्) महान् शक्तिमान् और (सुपर्णः) उत्तम पालनकारी साधनों से युक्त (अग्नि) है तू (दिवं) सुन्दर विज्ञान, प्रकाशमय लोक या राजसभाभवन को (गच्छ) प्राप्त हो। (स्वः पत) और सुख को प्राप्त कर ॥ शत० ६ । ७ । २ । ६ ॥

१. 'त्रिवृत्'—वायुर्वा आशु त्रिवृत्। स एष त्रिषु लोकेषु वर्तते। श० ८ । ४ । १ । ६ ॥ त्रिवृद् अग्निः। श० ६ । ३ । १ । २५ ॥ ब्रह्म वै त्रिवृत्। तां० २ । १६ । ४ ॥ तेजो वै त्रिवृत्। तां० २ । १७ । २ ॥ वज्रो वै त्रिवृत् प० ३ । ३ । ४ ॥

२. 'गायत्रं'—यद् गायन्नत्रायत तद् गायत्रस्य गायत्रत्वं । जै० उ० । ३ । ३८ । ४ ॥ गायत्री वा इयं पृथिवी । श० ४ । ३ । ४ । ९ ॥ गायत्रो वै ब्राह्मण. । ऐ० १ । २८ ॥ ब्रह्म वै गायत्री । ऐ० ४ । १ ॥

३. 'बृहत्'—श्रैष्ठ्यं वै बृहत् । तां० ८ । ९ । ११ ॥ ज्यैष्ठ्यं वै बृहत् । ऐ० ८ । २ ॥ यथा वै पुत्रो ज्येष्ठः एवं वै बृहत् प्रजापतेः ॥ तां० ७ । ६ । ६ ॥ द्यौर्बृहत् । तां० १६ । १० । ८ ॥ क्षत्रं बृहत् । ऐ० ८ । १२ ॥

४. 'रथन्तरं' साम—अयं वै लोको रथन्तरम् । ऐ० ८ । २ ॥ वाग् वै रथन्तरम् । ऐ० ४ । २८ ॥ रथन्तरं वै सम्राट् । तै० १ । ४ । ४ । ९ ॥ अग्निर्वै रथन्तरम् । ए० ५ । ३० ॥

५. स्तोम.—वीर्यं वै स्तोमाः । ता० २ । ५ । ४ ॥

६. (छन्दांसि) इन्द्रियं वीर्यं छन्दांसि । श० ७ । ३ । १ । ३७ ॥ प्राणाः वै छन्दांसि । कौ० ७ । ९ ॥ छन्दांसि वै देवाः साध्याः । ते अग्रे अग्निना अग्निमयजन्त । ऐ० १ । १६ ॥ प्रजापतेर्वा एतान्यंगानि यच्छन्दांसि । ऐ० २ । १८ ॥

७. 'वामदेव्यं साम'—पिता वै वामदेव्यं पुत्राः पृष्ठानि ता० ७ । ९ । १ ॥ प्राजापतिर्वै वामदेव्यं । तां० ४ । ८ । १५ ॥ श० १३ । ३ । ३ । ४ ॥ पशवो वै वामदेव्यम् । तां० ४ । ८ । १५ ॥

८. 'यज्ञायज्ञियम्'—अतिशयं वै द्विपदां यज्ञायज्ञियम् । तां० ५ । १ । १९ ॥ वाग् यज्ञायज्ञीयम् । तां० ५ । ३ । ७ ॥ पशवोऽन्नाद्यं यज्ञायज्ञीयम् । तां० १५ । ९ । १२ ॥

९. 'धिष्ण्याः'—वाग् वै धिषणा । श० ६ । ५ । ४ । ५ ॥ विद्या वै धिषणा । तै० ३ । २ । २ । १ ॥ अन्तो वै धिषणा । ऐ० ५ । २ ॥ [स्वान भ्राज. अंघारि बम्भारिः हस्तः सुहस्त. कृशानुः] एतानि वै धिष्ण्यानां नामानि श० ३ । ३ । ३ । ११ ॥

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द ऽआरोह पृथिवीमनु वि क्रमस्व विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द ऽआरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व। विष्णोः क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्दऽआरोह दिवमनु वि क्रमस्व विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ता नुष्टुभं छन्दऽआरोह दिशोऽनु विक्रमस्व ॥ ५ ॥

विष्णवादयो लिंगोक्ताः देवता. । भुरिगुत्कृतिः । षड्ज ॥

भा०—हे यज्ञमय प्रजापति, प्रजापालक के प्रथम क्रम अर्थात् प्रथम व्यवहार ! तू (विष्णोः) राष्ट्र में व्यापक सत्तावाले राजा का (सपत्नहा) शत्रु को नाश करनेवाला (क्रमः असि) क्रम, अर्थात् प्रथम चरण, कार्य का प्रथम भाग है। तू (गायत्रं छन्दः आरोह) गायत्र छन्द अर्थात् विद्वान् वेदज्ञ पुरुषों के त्राण करनेवाले पवित्र कार्य पर आरूढ हो। तू (पृथिवीम् अनु) पृथिवी और पृथिवी वासी प्रजा के अनुकूल रहकर (विक्रमस्व) विविध प्रकार के कार्य कर। इसी प्रकार तू (विष्णोः क्रमः असि) व्यापक शक्ति का दूसरा स्वरूप (अभिमातिहा असि) अभिमानी वैरी लोगों का नाश करनेहारा है। तू (त्रैष्टुभं छन्दः) तीन प्रकार के बलशाली क्षात्रबल पर (आरोह) आरूढ हो। और (अन्तरिक्षम् अनु विक्रमस्व) अन्तरिक्ष के समान सर्वाच्छादक एवं सर्व प्राणप्रद वायु के समान विक्रम कर। तू (विष्णोः क्रम) विष्णु, सूर्य के समान समुद्रादि से जलादि ग्रहण करनेवाले व्यापक शक्ति का स्वरूप है। तू (अरातीयत) कर-दान न करनेवाले शत्रुओं का (हन्ता) विनाशक है। तू (जागतं छन्द आरोह) आदित्यों के कार्य व्यवहार पर और वैश्यवर्ग पर (आरोह) बल प्राप्त कर। तू (दिवम् अनु विक्रमस्व) सूर्य या मेघ के समान पृथ्वी पर से जल लेकर उसी पर वर्षा कर जगत् के उपकारने का व्रत धार कर अपना (विक्रमस्व) पराक्रम कर। (विष्णोः क्रमः असि)

व्यापक वायु के समान कार्य करने मे कुशल उसका प्रतिरूप है । तू (शत्रूयताम् हन्ता) शत्रु के समान आचरण करनेवाले द्रोहियों को नाश करनेहारा है । तू (आनुष्टुभं छन्दः आरोह) समस्त प्रजा के अनुकूल सुख वृद्धि के कार्य व्यवहार को प्राप्त कर । (दिश अनु) तू दिशाओं को विजय कर अर्थात् दिशाओं के समान सब प्रजाओं को आश्रय देने मे समर्थ हो ॥ शत० ६ । ७ । २ । १३-१६ ॥

अक्र॑न्ददुग्नि स्तनय॑न्निव द्यौः क्षामा॒ रेरि॑हद्वी॒रुध॑ः सम॒ञ्जन् ।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो विहीमि॒द्धो ऽअख्य॒दा रोद॑सी भा॒नुना॑ भात्य॒न्तः ॥६॥

ऋ० १० । ४५ । ४ ॥

वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अग्नि) अग्नि विद्युत् जिस प्रकार (अक्रन्दत्) गर्जना करता है । और (द्यौः) जल दान करनेवाला मेघ जिस प्रकार (स्तनयन् इव) गर्जना करता है उसी प्रकार (अग्नि) ज्ञानी, विद्वान् गम्भीर स्वर से उपदेश करे और मेघ के समान समानभाव से सबको ज्ञान प्रदान करे, इसी प्रकार तेजस्वी राजा सिंह गर्जना करे और मेघ के समान गम्भीर ध्वनि करे । मेघ (क्षामा) क्षामा अर्थात् पृथ्वी को जिस प्रकार जलधारा रूप से प्राप्त होकर (विरुधः सम् अञ्जन्) नाना प्रकार से उत्पन्न होने वाली लताओं को प्रकट करता है उसी प्रकार वह तेजस्वी राजा भी (क्षामा) पृथिवी को (रेरिहत्) स्वयं भोग करता हुआ (वीरुधः) नाना प्रकार से उन्नतिशील प्रजाओं को (सम् अञ्जन्) ज्ञानादि से प्रकाशित करता है । वह (सद्यः) शीघ्र ही (जज्ञान) प्रकट होकर अपने गुणों से (इद्धः) तेजस्वी एवं प्रकाशित होकर (हि) निश्चय से (ईम्) इस लोक को (वि अख्यत्) विशेष प्रकार से प्रकाशित करता है । और (रोदसी) आकाश और पृथिवी के (अन्तः) बीच में सूर्य के समान

राजा प्रजा के बीच और विद्वान् पुत्र माता पिता के बीच (भानुना) अपनी कान्ति से (आ भाति) प्रकाशित होता है ॥ शत० ६ । ७ । ३ । २ ॥

अग्नेऽभ्यावर्त्तिन्नभि मा नि वर्त्तस्वायुषा वर्चसा प्रजया धनेन । सन्या मेधया रय्या पोषेण ॥ ७ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे (अभ्यावर्त्तिन् अग्ने) मेरे सम्मुख आनेवाले या घर में पुन आनेवाले गृहपते ! एवं शत्रुओं को वार २ विजय करके पुन. लौटने वाले विजयशील राजन् ! तू (मा अभि) मेरे प्रति (आयुषा) दीर्घ जीवन, (वर्चसा) तेज, (प्रजया) प्रजा, (धनेन) धन, (सन्या) धन लाभ, (मेधया) मेधा वुद्धि, (रय्या) ऐश्वर्य और (पोषेण) पुष्टि इन सब के साथ (निवर्त्तस्व) प्राप्त हो ॥ शत० ६ । ७ । ३ । ६ ॥

अग्ने ऽअङ्गिर. शतं ते सन्त्वावृतः सहस्रं त ऽउपावृतः । अधा पोषस्य पोषेण पुनर्नो नष्टमाकृधि पुनर्नो रयिमा कृधि ॥ ८ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । निषाद ॥

भा०—हे (अङ्गिरः अग्ने) ज्ञानवन् ! अंगारों के समान देदीप्यमान अग्ने ! तेजस्विन् ! राजन् ! (ते आवृत·) तेरे हमारे प्रति लौट कर आगमन भी (शतं सन्तु) सैकड़ो हों और (ते) तेरे (उपावृत·) हमारे समीप आगमन भी (सहस्रं सन्तु) हजारो हों । (अथ) और (पोषस्य) पुष्टिकारक धन समृद्धि की (पोषेण) वहुत अधिक वृद्धि से (न नष्टम्) हमारे हाथ से गये धन को भी (पुनः कृधि) हमें पुनः प्राप्त करा (नः) हमारे (रयिम्) ऐश्वर्य को (पुनः आकृधि) फिर प्रदान कर ॥ शत० ६ । ७ । ३ । ६ ॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्न ऽइषायुषा । पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥ ९ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री । षड्ज ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! तू (पुनः) वार २ (ऊर्जा) बल पराक्रम से युक्त होकर और (पुनः) वार २ (इषा) अन्न और (आयुषा) दीर्घ आयु से युक्त होकर (निवर्त्तस्व) लौट आ। (नः) हमें (पुनः) वार २ (अंहसः) पाप से (पाहि) बचा॥ शत० ६। ७। ३। ६॥

सह रय्या निर्वर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि॥१०॥

अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! ज्ञानवन्! राजन्! तेजस्विन्! तू (रय्या) ऐश्वर्य के (सह) साथ और (विश्वप्स्न्या) समस्त योग्य पदार्थों का भोग प्राप्त करानेहारी और (धारयः) धारण करनेहारा विद्या और शक्ति से (विश्वतः परि) सब देशों से ऐश्वर्य को लालाकर (पिन्वस्व) देश को समृद्ध कर और (निवर्त्तस्व) पुनः अपने देश मे आ॥ शत० ६। ७। ३। ६॥

आ त्वाहार्षमन्तरभूर्ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधिभ्रशत्॥ ११॥

ऋ० १०। १७३। १॥

ध्रुव ऋषिः। अग्निर्देवता। आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—मैं पुरोहित, हे राजन्! (त्वा आहार्षम्) तुझको स्थापित करता हूं। तू (अन्तः) प्रजा के भीतर (अभूः) सामर्थ्यवान् हो। तू (अविचाचलिः) अचल, (ध्रुवः) ध्रुव, स्थिर, दृढ़ होकर (तिष्ठ) बैठ। (त्वा) तुझको (सर्वाः) समस्त (विशः) प्रजाएं (वाञ्छन्तु) चाहें। (त्वत्) तेरे हाथ से कहीं (राष्ट्रम्) राष्ट्र, राज्य का वैभव (मा अधिभ्रशत्) न निकल जाय॥ शत० ६। ७। ३। ७॥

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय।

अथा॑ व॒यमा॑दित्य व्र॒ते तवाना॑गसो॒ऽअदि॑तये स्याम ॥ १२ ॥

ऋ० १ । २४ । १५ ॥

शुनःशेप ऋषिः । वरुणो देवता । विराड् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (वरुण) शत्रुओं को बांधने वाले या वारण करने हारे राजन् ! (अस्मत्) हम से (उत्तमम् पाशम्) शरीर के ऊपर के भाग में बधे बन्धन को (उत् श्रथय) ऊपर से दूर कर । (अधम पाशम् अव श्रथय) नीचे के बन्धन को नीचे गिरादे । (मध्यम वि श्रथय) बीच के बधे बधन को विशेष रीति से शिथिल कर । (अथ) और हे (आदित्य) सूर्य के समान समस्त राष्ट्र को अपने वश में लेनेहारे तेजस्वी पुरुष ! (वयम्) हम (तव व्रते) तेरी रक्षण व्यवस्था में रहते हुए (अदितये) अखण्ड राज्य भोग के लिये (अनागस) अपराध रहित होकर (स्याम) रहें ॥ शत० ६ । ७ । ३ । ८ ॥

अग्ने॑ बृ॒हन्नु॒षसा॑मू॒र्ध्वो अ॑स्थान्निर्ज॒गन्वान् तम॑सो॒ ज्योति॒षागा॑त् ।
अ॒ग्निर्भा॒नुना॒ रुश॑ता॒ स्वङ्ग॒ऽआ जा॒तो विश्वा॒ सद्मा॑न्यप्राः ॥ १३॥

ऋ० १० । १ । १ ॥

त्रित ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पक्ति । पञ्चमः ॥

भा०—(अग्रे) सब से प्रथम (बृहत्) महान् सूर्य जिस प्रकार (उषसाम् ऊर्ध्वः) उषा कालो, प्रभात वेलाओं के भी ऊपर (अस्थात्) प्रखर तेज से विराजता है और (ज्योतिषा) अपनी दीप्ति से (तमस.) अन्धकार को (नि जगन्वान्) दूर हटाता हुआ (अगात्) उदित होता है (अग्नि॰) दीप्तिमान् सूर्य (रुशता) कान्तिमान् (भानुना) अपने तेज से (स्वङ्ग) सुन्दर शोभा वाला होकर (विश्वा सद्मानि) सब घरों को भी (अप्रा) प्रकाश से पूर्ण करता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (बृहत्) महान् शक्ति सम्पन्न, (उषसाम् ऊर्ध्व.) शत्रुदाहक सेनाओं के ऊपर उनका

नायक होकर (ज्योतिषा) अपने पराक्रम रूप तेजसे (तमसः) आवरण-कारी शत्रुरूप अन्धकार को दूर हटाता हुआ उदित हो। ऐसा तेजस्वी होकर (रुशता भानुना) शत्रु के नाश करने वाले तेज से (आजातः) सब प्रकार से समृद्ध होकर (स्वङ्गः) उत्तम राज्य के अंगो से बलवान्, स्वयं भी सुदृढ़ अंग होकर (विश्वा सद्मानि) सब स्थानों को, सब के घरों को, समस्त विभागों को (अप्राः) पूर्ण कर, समृद्ध कर। शत० ६। ७। ३। १०॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृतसद् व्योमसदब्जा गोजा ऽऋतजा ऽअद्रिजा ऽऋतं बृहत्॥ १४॥ ऋ० १०। ४०। ५॥

अग्निर्जीवेश्वरौ देवते। स्वराड् जगती। निषादः॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १०। २४॥ शत० ६। ७। ३। ११ १२॥

सीद त्वं मातुरस्या उपस्थे विश्वान्यग्ने वयुनानि विद्वान्। मैनां तपसा मार्चिषाऽभिशोचीरन्तरस्याᳬं शुक्रज्योतिर्विभाहि॥ १५॥

अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(मातुः) माता के (उपस्थे) समीप जिस प्रकार विद्वान् पुत्र विराजता है और उसके सुख का कारण होता है, इसी प्रकार, हे (अग्ने) अग्ने ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! हे राजन् ! (त्वम्) तू (मातुः) अपने बनाने वाले, उत्पादक ज्ञानवान् गुरु, अथवा भूमि के, या प्रजा के (उपस्थे) समीप, उसके पृष्ठ पर (विश्वानि वयुनानि) समस्त उत्कृष्ट ज्ञानों को जानता हुआ (सीद) विराजमान हो। (एनाम्) उसको (तपसा) तप से, तापजनक (अर्चिषा) ज्वाला के समान शस्त्र बल से (मा अभि-शोचीः) सतप्त मत कर। तू (अस्यां अन्तः) उसके भीतर (शुक्र ज्योतिः) शुद्ध, प्रकाशवान्, तेजस्वी, बलवान् एक निष्पाप रीति से ऐश्वर्यवान् होकर (विभाहि) विविध रूपों से प्रकाशित हो॥ शत० ६। ७। ३। १२॥

अन्तरग्ने रुचा त्वमुखायाः सदने स्वे ।
तस्यास्त्वꣳहरसा तपञ्जातवेदः शिवो भव ॥ १६ ॥
अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! राजन् ! (त्वम्) तू (उखायाः अन्तः) नाना ऐश्वर्यों को खोदकर निकालने की एकमात्र खान रूप भूमि एवं राष्ट्र की प्रजा के भीतर और (स्वे सदने) अपने आश्रयस्थान या आसन पर विराजमान रहकर (रुचा) दीप्ति से सूर्य के समान प्रज्वलित हो । और (त्वं) तू (हरसा) अपने ज्वालामय तेज के समान परराष्ट्र के हरण करने मे समर्थ बल से (तस्याः) उसको (तपन्) तपाता हुआ भी, हे (जातवेद) ऐश्वर्यों से महान् ! तू (तस्याः) उस प्रजा के लिये (शिवः भव) सूर्य और अग्नि के समान ही कल्याणकारी हो ॥ शत० ६ । ७ । ३ । १५ ॥

शिवो भूत्वा मह्यमग्ने ऽअथो सीद शिवस्त्वम् ।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ १७ ॥
अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तू (मह्यम्) मुझ राष्ट्रवासी प्रजा के लिये (शिवः भूत्वाम्) कल्याणकारी होकर (सीद) सिंहासन पर विराज । (त्वम् शिवः) तू कल्याणकारी है । इसलिये (सर्वाः दिशः) समस्त दिशाओं को (शिवाः कृत्वा) कल्याणमय, सुखकारिणी बनाकर (इह) इस राष्ट्र में (स्वं योनिम्) अपने आश्रय स्थान प्रजा के ऊपर (आसद) विराजमान हो ॥ शत० ६ । ७ । ३ । १५ ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे ऽअग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा ऽअजस्रमिन्धान ऽएनं जरते स्वाधीः ॥ १८ ॥
१८-२९—वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(प्रथम) सब से प्रथम (दिव. परि) आकाश मे विद्यमान सूर्य के समान ज्ञान में निष्ठ (अग्निः) अग्नि, अग्रणी विद्वान् (जज्ञे) उत्पन्न होता है। (द्वितीयम्) दूसरे (अस्मत्) हममें से (जातवेदा.) वेदों का विद्वान्, एवं ऐश्वर्यवान् भी अग्नि विद्युत् के समान है। (तृतीयम्) तीसरा (अप्) जलो मे विद्यमान रस के समान या बडवानल के समान है जो (नृमणाः) मनुष्यों में सबसे अधिक विचारवान् है। जो स्वयं (अजस्रम्) नित्य निरन्तर (इन्धानः) तेज से प्रकाशमान रहता है। (एनम्) उसको (स्वाधी) उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ विचारशील प्रजाजन (जरते) उसकी स्तुति करते हैं ॥ शत० ६।७।४।२॥

विद्मा ते ऽअग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत ऽआजगन्थ ॥ १६ ॥

अग्निर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! राजन्! (ते) तेरे (त्रेधा) तीन प्रकार के (धाम) धाम, तेज को हम (विद्म) जाने। और (पुरुत्रा) समस्त प्रजाओ के पालने मे समर्थ (त्रयाणि) तीनों (विभृता) विविधरूपों से धारण किये हुए (धाम) धारण सामर्थ्यों और बलों को भी (विद्म) जानें। और (ते) तेरा (गुहा यत्) गुहा मे, विद्वानो के हृदय मे या वाणी मे छिपे या विख्यात तेरे (नाम) नाम, नमनकारी बल को या विख्याति को (विद्म) जाने और तू (यत) जहां से, जिस स्थान से (आजगन्थ) आता या प्रकट होता है हम (तम्) उस (उत्सम्) बल आदि के निकास को भी (विद्म) जानें ॥ शत० ६।७।४।४॥

'त्रेधा धाम'—अग्नि, विद्युत् और सूर्य।

'त्रयाणि धामानि' भवन्ति स्थानानि, नामानि, जन्मानि । अथवा आहवनीयगार्हपत्यदक्षिणाग्न्यादीनि ।

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वुन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥२०॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(नृमणा) मनुष्यों के भीतर अपने चित्त को देनेवाला, लोकोपकारक पुरुष (त्वा) तुझको (समुद्रे) समुद्र के बीच और (अप्सु अन्तः) जलों के भीतर से भी विद्युत् या बड़वानल के रूप से (ईधे) प्राप्त करता है और उसी प्रकार (समुद्रे अप्सु अन्तः त्वा ईधे) उत्तम अभ्युदय के मार्ग पर प्रजाओं के बीच राजा को प्रज्वलित करता है । (नृचक्षा) मनुष्यों को ज्ञानदर्शन करानेवाला विद्वान् जन ही (दिवः ऊधन्) सूर्य प्रकाश के उद्गमस्थान, या आकाश के ऊधस्, गायके थान के समान नित्य रसप्रदान करनेवाले मेघ में विद्युत् के समान (दिव ऊधन्) ज्ञान प्रकाश के उद्गमस्थान आचार्य में (ईधे) प्रज्वलित करता है और (तृतीय) सर्वोच्च (रजसि) लोकमें (तस्थिवासम्) विराजमान (त्वा) तुझको (महिषा) बड़े २ विद्वान् लोग (अपाम् उपस्थे) प्रजाओं के बीच, जलों के बीच, विद्युत् के समान (अवर्धन्) बढ़ावें ॥ शत० ६ । ७ । ४ । ५ ॥

अक्रन्ददग्नि स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥२१॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १२ । ६ ॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥२२॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(श्रीणाम्) लक्ष्मी, ऐश्वर्यों का (उदारः) सत्पात्रों में दान करने द्वारा (रयीणाम्) ऐश्वर्यों का आश्रय स्थान, उनका धारण करनेवाला, (मनीषाणाम्) नाना ज्ञान करानेवाली मतियों के (प्रार्पणः) प्राप्त करानेवाला, (सोमगोपा) सोम, ऐश्वर्यमय राष्ट्र का या विद्वानों का रक्षक, (वसुः) प्रजाओं का बसाने वाला, (सहसः) शत्रु के पराजय करनेवाले बलका (सूनुः) प्रेरक, सञ्चालक, सेनानायक (राजा) राजा (उषसाम् अग्रे) दिनों के प्रारम्भ में उदय होनेवाले सूर्य के समान (इधानः) स्वयं अपने प्रताप से दीप्त होनेवाला (अप्सु) जलों या समुद्र के तल पर उठते सूर्य के समान प्रजाओं के बीच (विभाति) विविध प्रकार से शोभा देता है ।

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी ऽअपृणाज्जायमानः ।
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥ २३ ॥

अग्निर्देवता । आर्ची त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (विश्वस्य) अपने प्रकाश से समस्त संसार का (केतु) ज्ञान कराने वाला है और (भुवनस्य) समस्त लोक को (गर्भः) अपने वश में करने वाला, एवं उसमें नियामक शक्ति के रूप में व्यापक है और (जायमान) प्रकट होता हुआ (रोदसी) द्यौ और पृथिवी दोनों को (आ अपृणात्) सर्वत्र व्याप लेता है उसी प्रकार जो विद्वान् पुरुष (विश्वस्य केतुः) सबको अपने ज्ञान से ज्ञान कराने वाला, और (जायमानः) उदित होकर (रोदसी) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (आ अपृणात्) पूर्ण और पालन करने में समर्थ है और वायु जिस प्रकार (अद्रिम् अभिनत्) मेघ को या विद्युत् पर्वत को काट देता है उसी प्रकार (वीडुम् अद्रिम्) बलवान् अभेद्य शत्रुगण को (परायन्) उनपर

२३—'वीळु'० इति काण्व० ।

आक्रमण करता हुआ (अभिनत्) तोड़ डालता है और (यत्) जिस (अग्निम्) अग्रणी नामक, ज्ञानवान् पुरुष को (पञ्च) पांचो जन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद (अयजन्त) आदर करते है वह राजा सूर्य के समान प्रकाशित होता है ।

उशिक् पा॑व॒कोऽअ॑र॒तिः सु॑मे॒धा मर्त्ये॑ष्व॒ग्निर॒मृतो॒ निधा॑यि ।
इय॑र्त्ति धू॒मम॑रु॒षं भरि॑भ्र॒दुच्छु॒क्रेण॑ शो॒चिषा॒ द्यामिन॑क्षन् ॥ २४ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(मर्त्येषु) मरणधर्मा देहों में (अमृत.) अविनाशी, अमृत स्वरूप *जिस प्रकार विद्यमान् है, उसी प्रकार मनुष्यो के बीच (उशिक्)* सबका वशयिता, कान्तिमान्, (पावक) सबको पवित्र करने वाला, (अरति.) अत्याधिक मतिमान्, (सुमेधा.) उत्तम बुद्धि सम्पन्न, विद्वान्, (निधायि) स्थापित किया जाय । (अग्नि) जिस प्रकार (अरुष धूमम् इयर्त्ति) कान्ति रहित धूम को छोड़ता है उसी प्रकार वह विद्वान् भी (अरुषम्) रोषरहित (धूमम्) शत्रुओं को अपने पराक्रम से कंपाने वाले वीर्य या बल को (उत् इयर्त्ति) उन्नत करता है । समस्त राष्ट्र को (भरिभ्रत्) भरण पोषण करता हुआ (शुक्रेण शोचिषा) अति उज्ज्वल प्रकाश से सूर्य (द्याम् इनक्षन्) जिस प्रकार आकाश को व्यापता है उसी प्रकार वह भी उज्ज्वल प्रकाश से (द्याम्) तेजस्वी लोको को या ज्ञानवान् पुरुषों को प्राप्त होता है ।

दृ॒शा॒नो रु॒क्म उ॒र्व्या व्य॑द्यौद्दु॒र्मर्ष॒मायुः॑ श्रि॒ये रु॑चा॒नः ।
अ॒ग्निर॒मृतो॑ऽअभव॒द्वयो॑भि॒र्यदे॑नं॒ द्यौर॒जन॑यत्सु॒रेताः॑ ॥ २५ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १२ । १ ॥

यस्ते॑ऽअ॒द्य कृ॒णव॑द्भद्रशोचेऽपू॒पं दे॑व घृ॒तव॑न्तमग्ने ।
प्र तं न॑य प्रत॒रं वस्यो॒ऽअच्छा॒भि सु॒म्नं दे॒वभ॑क्तं यविष्ठ ॥ २६ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (देव) देव, राजन् ! (यः) जो (अद्य) आज, नित्य (ते) तेरे लिये (घृतवन्तम्) घृत से भरा हुआ (अपूपम्) अपूप, मालपूए के समान, भोज्य पदार्थ को (कृणवत्) तैयार करता है। (तं) उस (प्रतरम्) उत्कृष्ट पुरुष को (प्र नय) प्राप्त कर। हे (वनिष्ठ) बलवान् पुरुष ! तू (वस्यः) सर्व श्रेष्ठ (सुम्नम्) सुखकारी (देवभक्तम्) विद्वान् सात्विक पुरुषोचित अन्न को (अच्छ अभि) प्राप्त करे॥

सेनापति पक्ष में—हे (भद्रशोचे) कल्याण, कमनीय तेजवाले देव ! अग्ने ! राजन् ! (यः ते) जो तेरे (घृतवन्तम् अपूपं) तेजोयुक्त इन्द्रिय और राज्य सामर्थ्य को (कृणवत्) करता है (तं) उस (प्रतरं) राज्य कार्य को पार लगानेवाले राज्यकर्ता को (वस्य. नय) उत्तम धन प्राप्त करा। हे (यविष्ठ) युवतम ! वीर्यवन् ! उस (देवभक्तं) राज के सेवन योग्य (सुम्नं अच्छ अभि) सुखदायी धन भी प्रदान कर॥

आ तं भज सौश्रवसेष्वग्न ऽउक्थ ऽउक्थ ऽआ भज शस्यमाने। प्रियः सूर्ये प्रियो ऽअग्ना भवात्युज्जातेन भिनदुदुज्जनित्वैः॥२७॥

अग्निर्देवता विराडार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—जो (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्वी, राजा के पद पर (प्रिय) सबको प्रिय, हितकारी और (अग्नौ) अग्नि, शत्रुतापक, अग्रणी सेना नायक के पद पर भी (प्रिय) सर्वप्रिय (भवाति) हो और (जातेन) अपने किये हुए कार्य से और (जनित्वैः) आगे होनेवाले कार्यों से भी (उत् अभिनत्) शत्रुओं को उखाड़ता और प्रजा के उपकार के कार्यों को उत्पन्न करता है (तम्) उसको, हे राजन् ! (सौश्रवसेषु) उत्तम कीर्त्ति के पदों और अवसरों पर (आ भज) नियुक्त कर और (उक्थे उक्थे शस्यमाने) प्रत्येक प्रशंसा योग्य यज्ञादि कार्य के वर्णन करने के अवसर पर भी (तं आ भज) उसकी शुश्रूषा कर, उसको मान-पद प्राप्त करा॥

त्वाम॑ग्ने यज॑माना॒ऽअनु॒ द्यून् विश्वा॒ वसु॑ दधिरे॒ वार्य्या॑णि ।
त्वया॑ स॒ह द्रवि॑णमि॒च्छमा॑ना व्र॒जं गोम॑न्तमु॒शिजो॒ विव॑व्रुः ॥२८॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वान् राजन् ! (त्वां यजमाना) तेरे से संगति करनेहारे, तेरे सहयोगी, (अनु द्युन्) प्रतिदिन (वार्याणि) नाना वरण करने योग्य (विश्वा) सब प्रकार के (वसु) धनैश्वर्यों को (दधिरे) धारण करते हैं। और वे (त्वया सह) तेरे साथ ही उद्योग से (द्रविणम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करना (इच्छमाना.) चाहते हुए (उशिज.) वशी एवं कामनावान् विद्वान् पुरुष (गोमन्त) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य और विद्युतों से युक्त मेघ को जिस प्रकार किसान चाहते है, धनी लोग जिस प्रकार गौओ से भरी गोशाला को चाहते है उसी प्रकार (गोमन्त) किरणों से युक्त (व्रजम्) सूर्य के समान तेजस्वी, एव वेद-वाणियों से युक्त (व्रजम्) सबसे अभिगन्तव्य परिव्राट् के समान विद्वान् को (विवव्रु.) वरण करते हैं, उसके शरण में आते, उसको घेर कर बैठते हैं।

अस्ता॑व्य॒ग्निर्न॒राᳬसु॒शेवो॑ वैश्वान॒रऽऋषि॑भिः॒ सोम॑गोपाः ।
अ॒द्वे॒षे द्यावा॑पृथि॒वी हु॑वेम॒ देवा॑ ध॒त्त र॒यिम॒स्मे सु॒वीर॑म् ॥ २९ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—(नरां सुशेव) मनुष्यों को उत्तम सुख देनेवाला, (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों का हितकारी, प्रजापति, (सोमगोपा.) सोम, राजपद या राष्ट्र के ऐश्वर्य का रक्षक (अग्नि.) तेजस्वी राजा, नेता (ऋषिभि.) मन्त्रद्रष्टा विद्वान्, ऋषियो द्वारा (अस्तावि) स्तुति किया जाता है। हम (द्यावा-पृथिवी) राजा और प्रजा को पिता और माता के समान (अद्वेषे) द्वेष रहित रहने का (हुवेम) उपदेश करते हैं। हे (देवा·) देवगण विद्वान् शासको ! विजयशील योद्धाओं और दानशील धनाढ्य पुरुषो ! आप लोग

(अग्ने) हमे (सुवीरम् रयिम्) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य को (धत्त) प्रदान करो ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥ ३० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३ । १ ॥ शत० ६ । ८ । १ । ६ ॥

उदु त्वा विश्वेदेवाऽअग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ३१ ॥

तापस ऋषि. । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप । गाधार ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! विद्वन् ! राजन् ! (त्वा) तुझको (विश्वे-देवा·) समस्त विजयशील विद्वान् एवं दानशील पुरुष (चित्तिभिः) अपनी विद्याओ से और संचित शक्तियों से या बुद्धि पूर्वक किये कार्यों से (उद् भरन्तु) पूर्ण करें, उन्नत करें, तुझे बढावें और (स) वह तू (नः) हमारे लिये (सुप्रतीकः) सुरूप, शत्रु के प्रति उत्तमता से जाने में समर्थ, (विभावसु.) विशेष तेजस्वी, ऐश्वर्यवान्, अग्नि और सूर्य के समान दीप्तिमान्, (शिव.) कल्याणकारी (भव) हो ॥ शत० ६ । ८ । १ । ७ ॥

प्रेदग्ने ज्योतिष्मान् याहि शिवेभिरर्चिभिष्ट्वम् ।
बृहद्भिर्भानुभिर्भासन् मा हिꣳसीस्तन्वा प्रजाः ॥ ३२ ॥

अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! राजन् ! विद्वन् ! (ज्योतिष्मान्) परम तेजस्वी होकर भी (त्वम्) तू (शिवेभि. अर्चिभि.) अपनी कल्याणकारी ज्वालाओं, एक मात्र शस्त्रमालाओं से (प्र इत् याहि) प्रयाण कर और (बृहद्भि) अपने बड़े (भानुभिः) सूर्य के समान तेजों से (भासन्) प्रकाशित होता हुआ भी (प्रजा) अपनी प्रजा को (तन्वा) शरीर से (मा हिंसी)

कभी नष्ट मत कर । प्रजाओं को शारीरिक वध का दण्ड मत दे । उनको मत सता । अथवा (तन्वा प्रजा मा हिंसी) अपनी विस्तृत शक्ति से प्रजा का नाश मत कर । शत० ६ । ८ । १ ॥ १० ॥

अक्रन्ददग्निस्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो विहीमिद्धोऽअख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः॥३३॥

भा०—व्याख्या देखो १२ । ६ ॥ शत० ६ । ८ । १ । १२ ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः । अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ दीदाय दैव्योऽअतिथिः शिवो नः ॥ ३४ ॥
ऋ० ७ । ८ । ४ ॥

वत्सप्रीर्ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अयम् अग्नि) यह तेजस्वी राजा (यत्) जब (भरतस्य) अपने भरण पोषण, एवं पालन करने योग्य राष्ट्र के (प्रप्र शृण्वे) समस्त सुख दु ख स्वयं सुनता है, उसके कष्टों पर कान देता है, तब (बृहद्भा.) विशाल तेजस्वी राजा (सूर्य न सूर्य के समान (रोचते) प्रकाशित होता है । और (य) जो राजा (पृतनासु) सेनाओं से (पूरुम्) पूर्ण बलवान् शत्रु पर भी (अभितस्थौ) चढ़ जाने में समर्थ है वह (दैव्यः) दिव्य शक्तियों से युक्त होकर (दीदाय) प्रकाशित हो । और वह (न) हमारा मंगलकारी होने से (अतिथि) अतिथि के समान पूजनीय हो ॥ शत० ६ । ८ । १ । १४ ॥

आपो देवीः प्रतिगृभ्णीत भस्मैतत्स्योने कृणुध्वꣳ सुरभाऽउ लोके ।
तस्मै नमन्तां जनयः सुपत्नीर्मातेव पुत्रं बिभृताप्स्वेनत् ॥ ३५ ॥

भा०—हे (देवा. आप·) दिव्य गुण वाले, विजय शक्ति से युक्त, एवं दानशील बलों के समान शुभ, शान्ति आदि गुणों में व्यापक एवं आप्त प्रजाओ ! तुम लोग (एतत्) इस (भस्म) राजा के अनुरूप, तेज को

(प्रतिगृभ्णीत) धारण करो । (स्योने) सुखकारी, (सुरभौ लोके) ऐश्वर्यवान् लोक में, या उत्तम नियमकारी पद पर इसको (कृणुध्वम्) रखो, पालन करो । (तस्मै) उसके सुख के लिये (सुपत्नी) उत्तम पत्नी रूप (जनय.) स्त्रियां जिस प्रकार वीर्य धारण करने के लिये अपने प्रिय पति के सामर्थ्य आदर से (नमन्तां) झुकती हैं। उसी प्रकार प्रजाएँ अपने राजा के प्रति आदर से झुके । और (पुत्रः माता इव) पुत्र को जिस प्रकार माता पालती पोषती है उसी प्रकार हे आप्त प्रजाजनो ! आप लोग भी (एतत्) इस राजकीय तेज को (अप्सु) अपने उत्तम कार्यों और व्यवहारों द्वारा (बिभृत) पुष्ट करो ॥ शत० ६ । ८ । २ । ३ ॥

स्त्रियों के पक्ष मे—हे पुरुषो ! (आपः देवीः) आप्त, शुभ गुणों वाली देवियों को आप लोग (एतत् भस्म प्रति गृभ्णीत) इस तेज ग्रहण करो । (स्योने सुरभौ लोके उ कृणुध्वम्) उनको सुखमय स्थानों में रक्खो । (सुरभौ) पति के (एतत् भस्म) इस तेजस्वी वीर्य को (सुपत्नीः जनयः) उत्तम पत्नियें (नमन्ताम्) आदर से स्वीकार करें, धारण करें । और (माता पुत्रः इव एतत् बिभृत) पुत्र को माता के समान, उस वीर्य को धारण पोषण करें ।

अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनुरुध्यसे ।
गर्भे सन् जायसे पुनः ॥ ३६ ॥ ऋ० ८ । ४ । ३ । ६ ॥

विरूप ऋषि । अग्निर्देवता । निचृद् गायत्री । षड्ज ॥

भा०—गर्भों में बीजोत्पत्ति की समानता से राजोत्पत्ति का वर्णन करते है । हे (अग्ने) तेजस्विन् 'राजन्' जिस प्रकार जीव की (अप्सु संधि) जलो में स्थिति है । उसी प्रकार हे राजन् '(अप्सु ते सधि) आप्त प्रजाजनो मे तेरा निवासस्थान है । जीव, जिस प्रकार (ओषधी. अनुरुध्यसे) ओषधियो को प्राप्त होता है । ओषधिरूप में उत्पन्न होता है । अथवा (सः)

वह जीव (ओषधी. अनु) ओषधियों के समान (रुध्यसे) गर्भों में उत्पन्न होता है वह ठीक ओषधियों के समान ही मातृ-योनि कमल मे गर्भित होकर अपना मूल जमाकर उत्पन्न होता है। हे जीव ! तू (गर्भे सन् पुनः जायसे) गर्भ में रहकर पुन. पुत्ररूप से या शरीरधारी रूप से उत्पन्न होता है। उसी प्रकार राजा का भी (अप्सु संधिः) प्रजाओं के बीच में निवासस्थान है। (स) हे राजन् ! वह तू (ओषधीः अनुरुद्धयसे) प्रजाओं के हित के लिये ही राज्यपद ग्रहण के लिये आग्रह किया जाता है। उनके (गर्भे सन्) ग्रहण या वश करने में समर्थ होकर, तू (पुन· जायसे) पुन , वार २ शक्तिमान् होकर प्रकट होता है ॥ शत० ६ । ८ । २ । ४ ॥

गर्भो॑ऽअ॒स्योष॑धीनां॒ गर्भो॒ वन॒स्पती॑नाम् ।
गर्भो॒ विश्व॑स्य भू॒तस्या॑ग्ने॒ गर्भो॑ अ॒पाम॑सि ॥ ३७ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे जीव ! अग्ने ! तू (ओषधीनां गर्भ. असि) ओषधियों का भी गर्भ है। उनके भी बीच में विद्यमान है। तू (वनस्पतीनां गर्भ. असि) वनस्पति बड़े २ वृक्षों का गर्भ है। अर्थात् उनके भी बीच में विद्यमान है। (विश्वस्य भूतस्य गर्भः) समस्त उत्पन्न प्राणियों के बीच में विद्यमान है और (अपा गर्भः असि ' जलों के भीतर भी विद्यमान है। इसी प्रकार अग्नि या विद्युत् ओषधियों के रसों में, वनस्पतियों के काष्ठों में और समस्त पदार्थों के बीच और जलों के भीतर भी विद्यमान है। राजा के पक्ष में—(ओषधीना) तापधारक वीर पुरुषों के (गर्भः) ग्रहण करने या वश करने में समर्थ है, (वनस्पतीनाम्) महावृक्ष के समान सर्वाश्रय बड़े २ पुरुषों को भी (गर्भः) वश करने में समर्थ है। (विश्वस्य भूतस्य) समस्त प्राणियों को वश करने में समर्थ है।

और (अपां गर्भः असि) आप्तजन, प्रजाओं को भी वश करने में समर्थ, उनसे स्वीकार किये जाने योग्य है ॥ शत० ६ । ८ । २ । ४ ॥

प्रसद्य भस्मना योनिमपश्च पृथिवीमग्ने ।
सꣳसृज्य मातृभिष्ट्वं ज्योतिष्मान् पुनरासदः ॥ ३८ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जीवपक्ष में—हे (अग्ने) जीव ! तू (भस्मना) अपने देह की भस्म से (पृथिवीम् प्रसद्य) पृथिवी में मिलकर और (भस्मना) तेजमय वीर्यरूप से ही (अपः) जलों और (योनिं च) मातृयोनि को भी प्राप्त होकर (मातृभिः) माताओं के साथ पितृरूपों में (संसृज्य) संयुक्त होकर (ज्योतिष्मान्) तेजस्वी बालक होकर (पुनः आसदः) पुनः इस लोक में आता है। अग्नि-पक्ष मे—अग्नि जिस प्रकार भस्म होकर पुनः पृथिवी पर लीन होजाता है और जलों से मिलकर फिर (मातृभिः) ईश्वर की निर्माणकारिणी शक्तियों से युक्त होकर वृक्षादि रूप में पुनः काष्ठ होकर उत्पन्न होता है और जलता है ॥ शत० ६ । ८ । २ । ६ ॥

राजा के पक्ष में—हे (अग्ने) तेजस्विन् राजन् ! (भस्मना) अपने तेज से (योनिम्) अपने मूलकारण उत्पादक और आश्रयरूप (अपः) प्रजाओं और (पृथिवीम्) पृथिवी को (प्रसद्य) प्राप्त होकर (मातृभिः) ज्ञानशील पुरुषों के साथ (संसृज्य) मिलकर (ज्योतिष्मान्) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (पुनः बार २ (आ सदः) अपने आसन पर आदरपूर्वक विराज ।

पुनरासद्य सदनमपश्च पृथिवीमग्ने ।
शेषे मातुर्यथोपस्थेऽन्तरस्याꣳशिवतमः ॥ ३९ ॥

अग्निर्ऋषि । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मातुः उपस्थे) माता की गोद में बालक सोता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) राजन् ! तेजस्विन् ! तू भी (पुनः) फिर अपने (सदनम्) सिंहासन पर (आसद्य) बैठकर (अप पृथिवीम्) समस्त प्रजाओं और पृथिवी को (आसद्य) प्राप्त कर, उसपर अधिष्ठित होकर (अस्याम्) इस पृथिवी के भीतर (शिवतम) सबसे अधिक कल्याणकारी होकर (शेषे) व्याप्त, प्रसुप्त, गम्भीर होकर रह ॥ शत० ६ । ८ । २ । ६ ॥

पुनरूर्जा निवर्त्तस्व पुनरग्नऽइषायुषा। पुनर्नः पाह्यꣳहसः ॥४०॥
सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया। विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि।

भा०—व्याख्या देखो १२ । ९,१० ॥ शत० ६ । ८ । २ । ६ ॥

बोधा मेऽअस्य वचसो यविष्ठ मꣳहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः।
पीयति त्वोऽअनु त्वो गृणाति वन्दारुष्टे तन्वं वन्देऽअग्ने ॥ ४२ ॥
ऋ० १ । १४७ । २ ॥

दीर्घतमा ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (यविष्ठ) युवतम ! हे बलवन् ! हे (स्वधावः) स्व=शरीर को धारण करने योग्य अन्न के स्वामिन् ! (मे अस्य) मुझ इस प्रार्थी के (मंहिष्ठस्य) अत्यन्त अधिक आवश्यक रूप से कहने योग्य और (प्रभृतस्य) उत्तम रीति से यथाविधि आपतक पहुंचाये गये (वचसः) वचन को (बोध) यथावत् जानो। इस न्यायकार्य में (त्वः) कोई (पीयति) तेरी निन्दा करेगा और (अनु त्वः गृणाति) और कोई तेरी स्तुति करेगा। अथवा इस मेरे वचन को (त्वः पीयति) एक काटे और (त्वः) दूसरा (अनुगृणाति) उसके पक्ष में कहे। इस प्रकार दोनों पक्षों की बात सुनकर आप निर्णय करें। और मैं (वन्दारुः) वन्दना करनेवाला, विनीत प्रार्थी, हे (अग्ने) ज्ञानवन्!

सत्य असत्य के विवेक करनेवाले विद्वन् ! राजन् ! (ते तन्वं) तेरे शरीर का या विस्तृत शासन का (वन्दे) अभिवादन करता हूं। राजा या विवेकी विद्वान् धर्माध्यक्ष के पास जाकर कोई अपना वचन लिखित प्रार्थनापत्र आदि उचित रीति से कहे। एक उसके विपक्ष में और एक पक्ष में कहे। फैसला होने पर विनीत प्रार्थी आदरपूर्वक विदा हो ॥ शत० ६ । ८ । २ । ६ ॥

अध्ययनाध्यापन पक्ष में—हे (यविष्ठ) बलवन् ! युवतम ! (प्रभृतस्य) उत्तम ज्ञान के धारण करनेवाले, (मंहिष्ठस्य) तुझ बड़े विद्वान् पुरुष का (वचसः बोध) वचन का ज्ञान प्राप्त कर। हे (अग्ने) ज्ञानवन् पुरुष ! (पीयति त्वः अनुगृणाति त्वः) चाहे तुमारी कोई निन्दा करे या स्तुति करे, (वन्दारुः) अभिवादनशील शिष्य मैं (ते तन्वं वन्दे) तेरे शरीर के चरणों में नमस्कार करता हूं।

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन्।
युयोध्युस्मद्द्वेषांसि विश्वकर्मणे स्वाहा ॥ ४३ ॥

सोमाहुतिर्ऋषिः अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (वसुपते) धन ऐश्वर्य के पालक ! हे (वसुदावन्) धनप्रदाता ! (मघवा) ऐश्वर्यवान् (सूरिः) विद्वान् (सः) वह तू (बोधि) हमारे समस्त अभिप्राय को या सत्य असत्य को जान। और (अस्मत्) हम से (द्वेषांसि) द्वेषके या परस्पर के अप्रीति के कारणों को (युयोधि) दूर कर। हममें न्यायपूर्वक फैसला कर। (विश्वकर्मणे) समस्त राष्ट्र के कार्यों को उत्तम रीति से करनेहारे तेरे लिये (स्वाहा) हम सदा आदर वचन का प्रयोग करते हैं ॥ शत० ६ । ८ । २ । ६ ॥

पुनस्त्वाऽऽदित्या रुद्रा वसवः समिन्धतां पुनर्ब्रह्माणो वसुनीथ। यज्ञैः। घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः।

४४—'कामास्स्वाहा' इतिकाण्व० ।

भा०—(आदित्या.) आदित्य के समान विद्वान् (रुद्राः) रुद्र ब्रह्मचारी, (वसवः) वसु ब्रह्मचारी (त्वाम्) तुझको (पुनः समिन्धताम्) वार २ प्रदीप्त करें। (ब्रह्माणः) ब्रह्म, वेद के विद्वान् लोग (यज्ञैः) यज्ञों या सत्संगों द्वारा, हे (वसुनीथ) ऐश्वर्य के प्राप्त करानेहारे ! (पुन.सम् इन्धताम्) वार २ तुझे प्रदीप्त करें, पुन ज्ञानवान् करें। और (त्वम्) तू (घृतेन) घी से अग्नि के समान पुष्टिकारक पदार्थ से अपने (तन्व) शरीर को (वर्धयस्व) पुष्ट कर। (यजमानस्य) दानशील या संगति करनेहारे पुरुष के (कामाः) समस्त सकल्प, समस्त आशाएं (सत्याः सन्तु) सत्य हों ॥

अपे॑त॒ वी॑त॒ वि च॑ सर्प॒तातो॒ येऽत्र॒स्थ पु॑रा॒णा ये च॒ नूत॑ना. ।
अदा॑द्य॒मो॒ऽव॒सानं॑ पृथि॒व्याऽअक्र॑न्नि॒मं पि॒तरो॑ लो॒कम॑स्मै ॥ ४५ ॥

लिंगोक्ता पितरो देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—हे (पितरः) राष्ट्र के पालक पुरुषो ! आप लोगो में से (अत्र) इस राज्यपालन के कार्य में (ये पुराणा) जो पुराने, पहले से नियुक्त और (ये च) जो (नूतनाः) नये नियुक्त हैं। वे (अप इत) दूर २ देशो मे भी जायें. (वि इत) विविध देशों में भ्रमण करें, (वि सर्पत) विविध उपायों से सर्वत्र सर्पण कर गुप्त दूतों का भी काम करें। (यमः) सर्वनियन्ता राजा (पृथिव्या) पृथिवी में (अवसानम्) तुम लोगो को अधिकार और स्थान (अदात्) प्रदान करता है। और (पितर.) राज्य के पालक लोग (अस्मै) इस राजा के लिये (इम लोकम्) इस भूलोक को (अक्रन्) वश करते हैं।

शिक्षा-पक्ष में—(ये पुराणा ये च नूतना) जो पुराने वृद्ध और नये (पितर) पिता लोग हैं वे (अपेत) अधर्म से परे रहें। (वि इत)

४५—अथ गार्हपत्यचयनम्।

धर्म का पालन करें (अत्र वि सर्पत च) यहां ही विचरण करें । (यमः) नियामक आचार्य (पृथिव्या अवसानं अदात्) पृथिवी में तुमको अधिकार पद दे, आप लोग इसके लिये इस सत्य सकल्पवान् पुरुष के लिये (इमं लोकम् अक्रन्) इस आत्मा का ज्ञान लाभ करावें ॥ शत० ७ । १ । १ । २–४ ॥

संज्ञानमसि कामधरणम्मयि ते कामधरणं भूयात् । अग्नेर्भस्मास्यग्नेः पुरीषमसि चितस्थ परिचितऽऊर्ध्वचितः श्रयध्वम् ॥४६॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे अग्ने ! विद्वन् ! तू (संज्ञानम् असि) समस्त प्रजा को ज्ञान देनेहारा है । (ते) तेरा (कामधरणं) अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने का जो सामर्थ्य है वह (मयि) मेरे में भी (कामधरणं भूयात्) मेरी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला हो । हे विद्वन् ! तू (अग्ने) अग्रणी, नेता पुरुष का (भस्म असि) भस्म अर्थात् तेज.स्वरूप है (अग्ने पुरीषम् असि) तेजस्वी सूर्य का लक्ष्मीसम्पन्न समृद्ध रूप है । हे प्रजाओ ! एवं अधिकारी पुरुषो ! आप लोग (चितः स्थ) ज्ञानवान् हो । आप लोग (परिचित:) सब ओर से ज्ञान सग्रह करनेहारे और (ऊर्ध्वचित स्थ) उच्च पद मोक्ष का प्रवचन या ज्ञान करनेहारे भी हो । आप लोग (श्रयध्वम्) इस राष्ट्र में सुख से आश्रय पाइये । अथवा — हे (परिश्रित.) राजा के आश्रित एव उसके रक्षक प्रजा के सभासद् पुरुषो ! आप लोग (चित स्थ) विज्ञानवान् एवं धन सञ्चय करने में कुशल हैं । (परिचितः स्थ) सब ओर से उत्तम पदार्थों के संग्रहशील एवं (ऊर्ध्वचित·) उत्कृष्ट पदार्थों के संग्रहशील हो । आप लोग सञ्चित ईंटो के समान राष्ट्र की भित्ति मे (श्रयध्वम्) एक दूसरे के आश्रय बनकर रहो । या राजा का आश्रय करके रहो, उसकी सेवा करो ॥ शत० ७ । १ । १ । ८ ॥

अयꣳसोऽअग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।
सहस्रियं वाजमत्यं न सप्तिꣳ ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥४७॥

ऋ० ३ । २२ । १ ॥

अग्निर्देवता । विश्वामित्र ऋषि । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत स्वर ॥

भा०—(अयं स. अग्नि) यह वह अग्नि, ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष है (यस्मिन्) जिसके आश्रय पर (इन्द्र.) ऐश्वर्यवान् राजा (वावशान.) अति अधिक सन्तुष्ट, एव अभिलाषावान् होकर (सहस्रिय) सहस्रो ऐश्वर्यों से समृद्ध (वाजम्) अन्नादिक (अत्य न सप्तिम्) अति वेगवान अश्व के समान आरोहण योग्य (सुतम्) व्यवस्थित, शासित (सोमम्) समृद्ध राष्ट्र को (जठरे) अपने वश करनेवाले अधिकार में (दधे) धारण करता है । हे (जातवेद:) ऐश्वर्यवान् एव प्रजावान् पुरुष ! तू भी (ससवान् सन्) दान करता हुआ ही (स्तूयसे) स्तुति किया जाता है ॥ शत० ७ । १ । १ । २१ ॥

यहा 'सहस्रियं वाजम्' यह पाठ महर्षि दयानन्दसंमत विचारणीय है ।

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥ ४८ ॥

ऋ० ३ । २२ । २ ॥

विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्ति । पञ्चम ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् सूर्य के समान राजन् ! (यत् ते वर्च) जो तेरा तेज (दिवि) सूर्य में विद्यमान है और (यत् ते वर्च पृथिव्याम्) जो तेरा तेज पृथिवी मे विद्यमान है और (यत् ओषधीषु) जो तेरा तेज ओषधियो और शत्रुसंतापकारी सैनिकों मे है और हे (यजत्र) उपासनीय पूज्य पुरुष ! जो तेरा तेज (अप्सु) जलों के समान शान्त-स्वभाव प्रजाजनो

४७—सहस्रिय वाजमितिपाठो दयानन्दसम्मतश्चिन्त्य. ॥

में है, (येन) जिस तेज से (उरु) विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को भी तू (आततन्थ) व्यापता है, (स) वह तेरा तेज (भानुः) अति दीप्ति युक्त (त्वेषः) कान्तिमान् अति तीक्ष्ण होकर भी (अर्णव) व्यापक या जल से पूर्ण समुद्र के समान गम्भीर, ज्ञानवान् और (नृचक्षाः) समस्त मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों का सूर्य के समान द्रष्टा है ॥ शत० ७ । १ । १ । २३ ॥

अग्ने दिवोऽअर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ२ऽ ऊचिषे धिष्ण्या ये। या रोचने परस्तात् सूर्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्तऽआपः ॥४६॥

ऋ० ३ । २२ । ३ ॥

विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्ति । पञ्चम ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तेजस्विन् ! तू (दिवः) सूर्य या प्रकाश के (अर्णम्) विज्ञान को (अच्छा जिगासि) भली प्रकार प्राप्त करता है । (ये धिष्ण्याः) और जो बुद्धियों को प्रेरणा करनेवाले, विद्वान् पदाधिकारी पुरुष हैं उन (देवान्) मुख्य पुरुषों को (ऊचिषे) तू उपदेश और अनुज्ञा प्रदान करता है । और (याः) जो (आपः) आप्तजन (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के (रोचने) अभिमत कार्य में (परस्तात्) दूर देश में जाते हैं और (याः च अवस्तात्) जो आप्तजन उसके समीप (उपतिष्ठन्ते) उपस्थित रहते हैं तू उनको भी (जिगासि) अपने वश कर और उनको (ऊचिषे) शिक्षा कर ॥ शत० ७ । १ । १ । २४ ॥

**पुरीष्यासोऽअग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवाऽइषो महीः ॥५०॥** ऋ० ३ । २२ । ४ ॥

विश्वामित्र ऋषि. । अग्निर्देवता । आर्ची पंक्ति । पञ्चमः ॥

भा०—(पुरीष्यास) प्रजाओं के पालन करने में समृद्ध, ऐश्वर्यवान् (प्रावणेभिः) उत्कृष्ट सम्पत्तियों के लाभ करने के साधनों और विद्वानों

द्वारा (सजोषस) सबके प्रति समान प्रेम से वर्त्ताव करनेवाले, (यज्ञम्) व्यवस्थित राष्ट्र के प्रति (अद्रुह) कभी द्रोह न करनेहारे अग्नय) तेजस्वी, अग्रणी नायक विद्वान् पुरुष (अनमीवाः) रोगरहित (मही इष.) बड़े अन्न आदि सम्पत्तियों को (जुषन्ताम्) सेवन करें, प्राप्त करे ॥ शत० ७ । १ । १ । २५ ॥

इडा॑मग्ने पुरु॒दꣳस॑ꣳ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मꣳ हव॑मानाय साध ।
स्या॒न्नः सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा तें सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥ ५१ ॥

ऋ० ३ । २२ । ५ ॥

विश्वामित्र ऋषि । अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्ति । पञ्चमः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! (हवमानाय) बल से स्पर्द्धा करनेवाले के लिये (इडाम्) अन्न और भूमि और (पुरुदसम्) बहुत से कार्य व्यवहारों को पूर्ण करनेवाली (गो सनिम्) पृथ्वी के या पशुओं के विभाग को (शश्वत्-तमम्) सदा के लिये (साध उन्नत कर। (न.) हमारा (सूनु) उत्पन्न (पुत्र) पुत्र (विजावा स्यात् विविध ऐश्वर्यों का जनक हो। हे (अग्ने) राजन् ! (सा) वह (ते सुमति.) तेरी दी हुई उत्तम व्यवस्था (अस्मे) हमारे कल्याण लिये (भूतु) हो।

अध्यापक के पक्ष मे—हे अग्ने ! आचार्य ! तेरा (पुरुदस) बहुत से कामों का साधन वा स्तुति योग्य (गो. सनिम्) वेदवाणी का दान और (शश्वत्तमम्) सदा तन का वेद ज्ञान (हवमानाय साध) विद्या के लिये अति उत्सुक पुरुष को प्रदान कर। हमारा पुत्र विविध ऐश्वर्यों को उत्पन्न करनेवाला हो। तेरी शुभ मति या उत्तम ज्ञान हमारे कल्याण के लिये हो।

अ॒यन्ते॒ योनि॑र्ऋ॒त्वियो॒ यतो॑ जा॒तो अरो॑चथाः ।
तं जा॒नन्न॑ग्न॒ऽआरो॑ह॒था नो॑ वर्धया र॒यिम् ॥ ५२ ॥

ऋ० ३ । २७ । १० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २ । १४ ॥

चिद॑सि तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ।
परि॑ चिद॑सि तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ ५३ ॥

इष्टके अग्निर्वा देवता । स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राजसभे ! (चित् असि) तू 'चित्' समस्त योग्य सुख साधनों का सञ्चय करनेवाली, शरीर में चित् चेतना के समान शक्ति है। तू (तया) उस (देवतया) देवता या राजशक्ति या विजयिनी शक्ति से युक्त होकर (अंगिरस्वत्) प्राण के समान या अग्नि के समान या विद्वान् पुरुषों से युक्त होकर, (ध्रुवा) ध्रुव, स्थिर निष्कम्प भाव से अचल होकर (सीद) विराज । इसी प्रकार तू (परि-चित् असि) सब ओर से अपने अपने बल को संग्रह करनेवाली है ! तू (तया देवतया) उस उत्कृष्ट विजय करनेवाली राजशक्ति से (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के समान या सूर्य के समान (ध्रुवा) स्थिर होकर (सीद) विराजमान हो ।

स्त्री के पक्ष में—हे स्त्री तू 'चित्', विद्या को जाननेहारी है तू (तया देवतया) उस प्रजा के समान प्रिय देवीरूप होकर देह में प्राण के समान गृह में स्थिर होकर रह ।

लो॒कं पृ॑ण छि॒द्रं पृ॑णाथो॑ सीद ध्रु॒वा त्वम् ।
इ॒न्द्रा॒ग्नी त्वा॒ बृह॒स्पति॑र॒स्मिन् योना॑वसीषदन् ॥ ५४ ॥

अग्निर्देवता विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राजसभे ! अथवा हे राजन् ! तू (लोकं पृण) समस्त लोक का पालन कर। (छिद्रं पृण) जो कुछ 'छिद्र' अर्थात् न्यूनता हो उसको पूर्ण कर । (अथो) और (त्वम्) तू (ध्रुवा) पतिगृह में स्त्री के समान स्थिर होकर (सीद) विराजमान हो । (इन्द्राग्नी) इन्द्र और

५४—'०योना असीषदन्' इति काण्व० ॥

अग्नि, सेनापति और राजा (बृहस्पति) वेदवाणी का पालक (त्वा) तुझको (अस्मिन् योनौ) इस आश्रयस्थान में (असीषदन्) प्राप्त कराते हैं, स्थापित करते हैं।

कन्या के पक्ष मे—(इन्द्र-अग्नी) माता पिता और (बृहस्पतिः) आचार्य तुझको इस (योनौ) निवासगृह में स्थापित करते हैं। तू स्थिर रहकर लोक का पालन कर और छिद्र और त्रुटि को पूर्ण कर।

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ५५ ॥

ऋ० ८ । ५८ । ३ ॥

इन्द्रपुत्र प्रियमेधा ऋषिः । आपो देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—जिस प्रकार (ता) वे (सूददोहस) जलों को पूर्ण करने वाले (पृश्नय) आदित्य के रश्मिगण (अस्य) इसके लिये (सोम श्रीणन्ति) सोम, अन्न को परिपक्व करती है। और (देवाना जन्मन्) देवों, ऋतुओ के उत्पादक पूर्ण संवत्सर मे (दिवः) सूर्य के (त्रिषु) तीन प्रकार के (आरोचन्) दीप्ति युक्त सवनों अर्थात् ग्रीष्म, वर्षा और शरत् में (विश) व्यापक रश्मियें होती हैं। उसी प्रकार (सूददोहस) बलों को बढ़ाने वाली (पृश्नय विश) नानाविध प्रजाएं (दिव) तेजस्वी राजा के (त्रिषु आरोचने) तीनों तेजों से युक्त रूपों मे (देवाना जन्मनि) विद्वानों के उत्पन्न करने वाले राष्ट्र में (अस्य) इस राजा के लिये (सोमं श्रीणन्ति) समृद्ध राष्ट्र को परिपक्व करती हैं।

स्त्रियों के पक्ष में—(देवानाम्) विद्वान् पतियों के (ताः) वे (पृश्नयः) स्पर्श योग्य कोमलाङ्गी (विश) गमन योग्य स्त्रियां (सूददोहस) उत्तम पाचन और दोहन करने मे कुशल होकर (दिवः) दिव्य (आरोचने) रुचिकर व्यवहार में (त्रिषु) तीनों कालों में (जन्मनि) इस जन्म में या

द्वितीय जन्म विद्यादि द्वारा गृहस्थ धारण करके (अस्य सोमं श्रीणन्ति) इस ब्रह्मचर्य या गृहस्थ-आश्रम के भी परम सौभाग्यमय फल वीर्य या पुत्रादि को परिपक्व करती हैं।

अथवा—(ता.) वे स्त्रिये (सूददोहसः) प्रस्रवणशील दुग्धादि को प्रदान करने वाली (पृश्नय·) गौवें जिस प्रकार (सोमं श्रीणन्ति) दुग्धरूप सोम का परिपक्व करती हैं और प्रदान करती हैं उसी प्रकार (सूददोहस·) वीर्य को पूर्ण करने वाली (पृश्नय) स्पर्श योग्य, कोमलाङ्गी स्त्रियें भी (सोमं श्रीणन्ति) परम रसस्वरूप वीर्य को परिपक्व करती हैं। (दिव·) सूर्य के (त्रिषु आरोचने) जिस प्रकार तीनो प्रकार के सवनों मे (देवानां जन्मनि) देव-रश्मियों के उद्भव होजाने पर (विश) प्रजाएं जिस प्रकार (सोमं आ) अन्न को प्राप्त करती हैं। उसी प्रकार (विशः) पतियों के साथ सवेश-अर्थात् शयन करनेहारी पत्नियां भी (दिव·) क्रीड़ाशील पति के (त्रिषु रोचनेषु) वाचिक, मानस शारीरिक तीनों प्रकार के रुचिकर, प्रीतिकर व्यवहारों मे (देवानां) सात्विक विकारों के (जन्मन्) उदय होजाने पर (सोमं आ) परिपक्व वीर्य को प्राप्त करती हैं अर्थात् वीर्य धारण करती हैं।

इन्द्रं विश्वा॑ अवीवृधन्त्समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिर॑: ।
र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑नाꣳ सत्प॑ति॒ पति॑म् ॥ ५६ ॥

ऋ० १ । २ । १ ॥

जेता माधुच्छन्दस ऋषि· । इन्द्रो देवता । निचृद्नुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(विश्वा गिर) समस्त वेदवाणियां (समुद्रव्यचसम्) समस्त प्रकार की शक्तियों के उद्भवस्थान, उस महान् व्यापक (इन्द्रम्) परमेश्वर की महिमा को (अवीवृधन्) बढ़ाती हैं। वही (रथीतमं रथीनाम्) रथी योद्धाओं के बीच महारथी क समान समस्त देहवान् प्राणियों के

बीच सब से श्रेष्ठ 'रथीतम' महारथी, सब से बड़े, विराट् और (सत्-पतिम्) सत् पदार्थों के पालक, (वाजाना) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी को (अवीवृधन्) महिमा को बढ़ाती हैं। उसी प्रकार (विश्वा गिरः) समस्त स्तुतियां (समुद्रव्यचसम्) समुद्र के समान विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण या विस्तृत व्यापक, (रथीना रथीतमम्) रथी योद्धाओं में महारथी (वाजानां) संग्रामों, अन्नों और ऐश्वर्यों के (पतिम्) पालक, (सत्पतिम्) उत्तम प्रजाजनों के स्वामी राजा को (अवीवृधन्) बढ़ावें।

गृहस्थ प्रकरण में—(विश्वाः गिरः) समस्त स्तुतिशील स्त्रियें अपने पति की प्रशंसा करनेवाली होकर उसके यश, धन और मान को बढ़ावे।

समितꣳ सं कल्पेथाꣳ संप्रियौ रोचिष्णू सुमनस्यमानौ।
इषमूर्जमभि संवसानौ ॥ ५७ ॥

द्व्यग्नी देवते। भुरिग् उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

भा०—हे पति-पत्नी भावसे बद्ध स्त्री पुरुषो! या राजा प्रजाओ तुम दोनों! (संप्रियौ) एक दूसरे के प्रति अति प्रेमयुक्त (रोचिष्णू) एक दूसरे के प्रति रुचिकर, एक दूसरे को प्रसन्न करनेहारे एवं (सु-मनस्यमानौ) एक दूसरे के प्रति शुभ चिन्तना करते हुए, (संवसानौ) एकत्र निवास करते हुए या एक दूसरे की रक्षा करते हुए (इषम्) अन्नादि अभिलषित पदार्थ और (ऊर्जम्) परम अन्नरस या बल पराक्रम को (अभि) लक्ष्य करके (सम् इतम्) एक साथ चलो, (सं-कल्पेथाम्) एक साथ समानरूप से उद्योग करो या समानरूप से संकल्प करो।

इसी प्रकार दो विद्वान्, या दो राजा, या राजा और प्रजा दोनों भी परस्पर मित्र रहकर एक दूसरे की शुभ चिन्तना करके एक दूसरे की रक्षा करते हुए, अन्न और बल के लिये एक साथ यत्न करें ॥

सं वां मनाꣳसि सं व्रता समु चित्तान्याकरम्।
अग्ने पुरीष्याधिपा भव त्वं नऽइषमूर्जं यजमानाय धेहि ॥ ५८ ॥

भा०—मैं आचार्य या पुरोहित (वाम्) तुम दोनों के (मनांसि) मन के संकल्प विकल्पों को (सं आ अकरम्) समान करता हूं । (व्रता सम्) व्रत, प्रतिज्ञाओं को भी समानरूप करता हूं । (चित्तानि) चित्तों को या ज्ञानपूर्वक किये कर्मों को भी (सम् आ अकरम्) समानरूप से करता हूं । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! हे (पुरीष्य) पुर में सबसे अधिक इष्ट, समृद्ध राजन् ! (त्वम् अधिपाः भव) तू सबका स्वामी हो । (इषम् ऊर्जम्) अन्न और बल को तू (न यजमानाय) हमारे में से दानशील, सत्संगी या देवोपासक धर्मात्मा पुरुष को (धेहि) प्रदान कर ।

अग्ने त्वं पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिमाँ२ऽअसि ।
शिवाः कृत्वा दिशः सर्वाः स्वं योनिमिहासदः ॥ ५६ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! पुरुष ! (त्वं पुरीष्यः) तू समृद्धिमान्, (रयिमान्) ऐश्वर्यवान्, (पुष्टिमान्) पशु सम्पत्ति से भी युक्त, (असि) है । (सर्वाः दिशः) समस्त दिशाओ को देशों को और वहां की प्रजाओं को (शिवाः कृत्वा) कल्याणकारी, सुखी (कृत्वा) करके (स्वं योनिम्) अपने आश्रयस्थान, पद पर (इह) यहां (आसदः) विराजमान हो ।

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ । मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ॥ ६० ॥

दम्पती अग्नी वा देवते । आर्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (नः) हमारे लिये तुम दोनों (समनसौ) एक समान मन वाले, (सचेतसौ) समान चित्त वाले और (अरेपसौ) एक दूसरे के प्रति अपराध न करने वाले एवं निष्पाप, स्वच्छ चित्त होकर (भवतम्) रहो । (यज्ञं) इस यज्ञ, परस्पर की संगति को (मा हिंसिष्टम्) मत विनाश करो, मत तोड़ो । (यज्ञपतिं मा) परस्पर की इस संगति के

पालक को भी मत विनाश करो। (अद्य) आज (नः) हमारे हित के लिये तुम दोनों (जात-वेदसौ) ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् होकर (शिवौ भवतम्) सुखकारी होओ। यही बात मध्यस्थ पुरुष से सन्धि से मिले हुए दो राजाओं, राजा और मन्त्री दोनों के लिये भी समझो।

मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निँ स्वे योनावभारुखा। तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा वि मुञ्चतु ॥ ६१ ॥

पत्नी उखा च देवते। आर्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—(माता) माता (पुत्रं इव) पुत्रको जिस प्रकार (स्वे योनौ अभा) अपने गर्भाशय मे धारण करती है, उसी प्रकार (उखा) हाडी के समान गोल (पृथिवी) पृथिवी भी (स्वे योनौ , अपने गर्भ में, अपने भीतर (पुरीष्यम्) सबको पालन करने में समर्थ (अग्निम्) अग्नि और सूर्य को (अभाः) धारण करती है। उसी प्रकार (पृथिवी उखा) उत्तम ज्ञानवती पृथिवीनिवासिनी प्रजा भी (पुरीष्यम्) अति समृद्ध ज्ञान, बल और ऐश्वर्य से युक्त (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को (स्वे योनौ) अपने लोक में (अभाः) धारण करती है। (प्रजापतिः) प्रजा का पालक, पति और राजा (विश्वकर्मा) समस्त राष्ट्र के उत्तम कार्यों के करने मे समर्थ (विश्वैः) समस्त (ऋतुभिः) ज्ञानवान् सदस्यों और (विश्वैः देवैः) और देव, विद्वान्, शूरवीर योद्धा, एव व्यवहारज्ञ पुरुषों से (संविदानः) सहमति और सहयोग लेता हुआ (तां) उसको (विमुञ्चतु) विविध उपायो से धारण करता है, रक्षा करता है।

सूर्य पक्ष में—(विश्वकर्मा) समस्त कार्यों का कर्ता, वृष्टि आंधी आदि परिवर्तनों का कर्त्ता (प्रजापतिः) सूर्य (विश्वैः देवैः ऋतुभिः) समस्त दिव्य ऋतुओं के साथ मिलकर पृथ्वी को (विमुञ्चतु) पालता है।

६१—०'योना अभा०' इति काण्व०।

असुन्वन्तमयंजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य। अन्यमस्मदिच्छ सा तऽइत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ ६२ ॥

निर्ऋतिर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (निर्ऋते) दुष्टों को दमन करने वाली दण्डशक्ते ! तू (असुन्वन्तम्) राजा को कर न देने वाले और (अयजमानम्) राजा के आदर न करने वाले को (इच्छ) पकड़ । (स्तेनस्य) चोर और (तस्करस्य) निन्दनीय कार्यों के करने वाले पापी पुरुष की (इत्याम्) चाल का (अनु इहि) पीछा कर । चोर डाकू आदि रात को धनापहरण करके जहां भी छुपे हों उनके चरण-चिन्हों से उनकी चाल पता लगाकर उनकी खोज कर (अस्मत् अन्यम्) हम से भिन्न, हमारे शत्रु को (इच्छ) पकड़ । (ते सा) तेरी वही (इत्या) चलने योग्य चाल है । हे (निर्ऋते देवि) व्यवहार कुशले ! निर्ऋते ! सर्वत्र व्यापक दमन शक्ते ! (तुभ्यम् नम अस्तु) तुझे ही सब दुष्टों को नमाने वाला बल प्राप्त हो ।

इस मन्त्र में—'मा इच्छ' इस प्रकार की महर्षि दयानन्दकृत योजना विचारास्पद है ।

नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोऽयस्मयं विचृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाकेऽअधि रोहयैनम् ॥ ६३ ॥

निर्ऋतिर्देवता । भुरिगार्षी पङ्क्ति । पञ्चमः ॥

भा०—हे निर्ऋते ! व्यापक दण्डशक्ते ! (तिग्मतेज) दुःसह तेज से युक्त (ते नमः) तेरा नमनकारी बल, वज्र है । और तू (एतम्) इस (अयस्मयं बन्धम् विचृत) लोहे से बने बन्धन को दूर कर । (त्वं) तू (यमेन) नियन्ता राजा और (यम्या) नियमकारिणी राजसभा से (संविदाना) अच्छी प्रकार सम्मति करती हुई (एनम्) इस अपने राजा को (उत्तमे) उत्तम (नाके) सुखमय लोक में (अधिरोहय) स्थापित कर ।

यस्यास्ते घोर ऽआसन् जुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय। यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परि वेद विश्वतः ॥ ६४ ॥

निर्ऋतिर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (घोरे) दुष्टों के प्रति भयंकर ! (यस्याः) जिस (ते) तेरे (आसनि) मुख मे, तेरे मुख्य स्थान में (एषां) इन (बन्धानाम्) दुःखदायी बन्धनो के (अव सर्जनाय) त्याग के लिये (जुहोमि) मै, दण्ड आदि रूप से धन आदि पदार्थ प्रदान करता हूं। और (यां त्वा) जिस तुझको (भूमिः इति) भूमि सर्व पदार्थों का आश्रय, एवं उत्पादक ऐसा कह कर (जनः) लोग (प्रमन्दते) तुझे प्रसन्न करते है या स्वयं प्रसन्न होते हैं उस (त्वा) तुझको (निर्ऋतिम्) पापी पुरुषो पर अधिष्ठात्री रूप से रहनेवाली आश्रयरूप से पृथिवी के समान एवं निःशेष जीवों के रमण करनेवाली (विश्वतः) सब प्रकार से (अहं) मैं (परिवेद) तुझे प्राप्त करूं, तुझे जानूं।

पत्नी के पक्ष मे—हे घोरे पत्नि ! समस्त दुःखदायी कारणो को दूर करने के लिये, मै अन्नादि पदार्थ तेरे मुख में प्रदान करूं। लोग तुझ नारी को 'भूमि' ऐसा कहाते हैं, तुझे प्रसन्न करते हैं। तू (निर्ऋतिम्) सब प्रकार से निःशेष आनन्दकारिणी है। मैं ऐसा जानता हूं।

यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः।
नमो भूत्यै येदं चकार ॥ ६५ ॥

भा०—(देवी निर्ऋतिः) राजा की दमनकारिणी व्यवस्था हे पुरुष ! (यम्) जिस (अविचृत्यम्) अखण्ड, कभी न टूटनेवाले, दृढ़ (पाशम्) पाश को (आबबन्ध) बांधती है मैं (ते) तेरे (तं) उस पाश को (आयुषः मध्याद् न) नियम के बीच मे ही (विष्यामि)

काटता हूं, उस पाश का अन्त करूं। (अथ) और हे राजन् ! (एतं पितुम्) उस अन्न या पवित्र भोग्य पदार्थ को (प्रसूतः) उत्कृष्ट रूप मे उत्पन्न होकर तू (अद्धि) खा, भोग कर। (या) जो (देवी) देवी (इदम्) इस जीवोत्पादन के व्यवस्था और पालन पवित्र कार्य को (चकार) करता है उस (भूत्यै) सर्वोत्पादक, ऐश्वर्यमयी देवी का (नमः) हम आदर करें।

इसी प्रकार अपराधी के अपराध समाप्त होजाने पर दमनकारिणी व्यवस्था द्वारा जो बन्धन अपराधी जनों की गर्दनो में डाले जायं उनको न्यायकारी उनके जीवन के रहते २ काटे। और (प्रसूतः) मुक्त होकर वह पुरुष अन्न का भोग करे। जो देवी, विद्वत् समिति या पृथ्वी इस प्रकार जीवों को बन्धनमुक्त करके अमृत का भोग प्रदान करती है उसको हमारा नमस्कार है।

अध्यात्म में—(निर्ऋति) अविद्या जिस पाश को जीवों के ऊपर बांधती है उसको मैं, आचार्य ज्ञानोपदेश से (आयुष मध्यात् न) जीवन के बीच में ही काट दूं। (प्रसूतः) उत्कृष्ट स्थिति में जाकर मेरा जीव (पितुम्) अमृत का भोग करे। उस सर्वोत्पादिका (भूत्यै) भूति नाम ईश्वरीय शक्ति को नमस्कार है जो (इदं चकार) इस विश्व को उत्पन्न करती है और जीवों को उत्पन्न कर अन्न देती है और कर्मबंधनों से मुक्त कर मोक्षामृत लाभ कराती है।

नि॒वेश॑नः स॒ङ्गम॑नो॒ वसू॑नां॒ विश्वा॑ रू॒पाऽभिच॑ष्टे॒ शची॑भिः।
दे॒वऽइ॑व सवि॒ता स॒त्यध॒र्मेन्द्रो॒ न त॑स्थौ सम॒रे प॑थी॒नाम् ॥ ६६ ॥

ऋ० १० । १३९ । ३ ॥

विश्वावसुर्गन्धर्व ऋषि । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—(सविता इव) सूर्य के समान (सत्यधर्मा) सत्य धर्मों का पालक (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (देव) राजा (वसूनां) राष्ट्र मे बसनेवाले

प्रजाओं का (निवेशन) पृथ्वी पर बसानेहारा और (वसूनां) वास-कारी-जनों का (सङ्गमन.) एकत्र होने का आश्रय होकर (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (विश्वा रूपा) समस्त प्राणियों को (अभिचष्टे) देखता है। और वह ही (पथीनाम्) शत्रुओं के साथ (समरे) युद्ध मे (तस्थौ) स्थिर रहता है।

परमात्मा के पक्ष में—वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (सविता) सर्वोत्पादक देव, परमेश्वर (वसूनां निवेशन) जीवों का और योग्य लोकों का संस्थापक और (संगमन·) एक मात्र गन्तव्य एवं सर्वव्यापक (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (विश्वा रूपा अभिचष्टे) समस्त पदार्थों को देखता है। सब का साक्षी है। वही युद्ध में इन्द्र, सेनापति के समान (समरे) सब के गन्तव्य संसार में (पथीनां) समस्त आवागमन करनेवाले जीवों के ऊपर (तस्थौ) अधिष्ठाता रूप से विराजमान है।

सीरा॑ युञ्जन्ति क॒वयो॑ यु॒गा वि त॑न्वते॒ पृथ॑क्।
धीरा॑ दे॒वेषु॑ सुम्न॒या ॥ ६७ ॥ ऋ० १० । १०१ । ४ । ३ ॥

बुध सौम्य ऋषि.। सीरो देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(कवय)मेधावी, बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार (सीरा) हलों को (युञ्जन्ति) जोतते हैं। और (धीराः) धीर, बुद्धिमान् पुरुष (देवेषु) देवों, विद्वानों को (सुम्नया) सुख हो ऐसी बुद्धि से (युगा) जुओं को, जोड़ों को (वितन्वते) विविध दिशों में लेजाते हैं। उसी प्रकार विद्वान् योगीजन (सीरा युञ्जन्ति) नाड़ियों में योगाभ्यास करते हैं। (देवेषु) इन्द्रिय-वृत्तियों में (सुम्नया) सुषुम्ना द्वारा या सुखप्रद धारणा वृत्ति से (युगा) प्राण अपान आदि नाना जोड़ों को (पृथक्) अलग २ (वितन्वते) विविध प्रकार से अभ्यास करते हैं।

६७—अथक्षेत्रकर्षणौषधवपनादि।

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् । गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥ ६८ ॥

बुध सौम्य ऋषिः । सीरा कृषीवलता. कवयो वा देवताः ।

विराड् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—(सीरा युनक्त) हलों को जोतो, (युगा वि तनुध्वम्) जुओं को नाना प्रकार से फैलाओ । (योनौ कृते) क्षेत्र के तय्यार होजाने पर (इह) उसमें (बीजम् वपत) बीज बोओ । और (गिरा च) कृषिविद्या के अनुसार (श्रुष्टिः) अन्न की नाना जातियां (सभराः) खूब हृष्ट पुष्ट (असत्) हो । (नेदीय इत्) और शीघ्र ही (सृण्यः) दातरी से काटने योग्य अनाज (न.) हमारे लिये (पक्वम् आ इयात्) पककर हमें प्राप्त हो ।

शुनꣳ सुफाला विकृषन्तु भूमिꣳ शुनं कीनाशा अभियन्तु वाहैः । शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्त्तनास्मै ॥ ६९ ॥ अथर्व० ३ । १७ । ५ ॥ ऋ० ४ । ५७ । ८ ॥

कुमार हारीत ऋषि । सीता कृषीवला वा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सुफालाः) उत्तम हल के नीचे लगी लोहे की बनी फालियें (भूमिम्) भूमि को (शुनम्) सुख से (विकृषन्तु) नाना प्रकार से बाहें । (कीनाशा.) किसान लोग (वाहैः) बैलों से (शुनम्) सुखपूर्वक (अभियन्तु) जावें । हे (शुनासीरा) वायु और आदित्य तुम दोनों (हविषा) जल और अन्न से (तोशमानौ) भूमि को सींचते हुए (अस्मै) इस प्रजाजन के लिये (ओषधीः) अन्न आदि ओषधियों को (सुपिप्पलाः) उत्तम फल युक्त (कर्तन) करो ।

घृतेन सीता मधुना समज्यतां विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः । ऊर्जस्वती पयसा पिन्वमानास्मान्त्सीते पयसाभ्यावंवृत्स्व ॥ ७० ॥

अथर्व० ३ । १७ । ९ ॥

कुमारहारीत ऋषि. । सीता कृषीवला वा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सीता) हलकी फाली या हल से विदीर्ण भूमि (घृतेन मधुना) जल और अन्न से (सम् अज्यताम्) युक्त हो। (विश्वैः देवैः) समस्त देवों, सूर्यकिरणों और (मरुद्भिः) वायुओं से भी (अनुमता) युक्त होकर वह हे (सीते) हलकी फाली या उससे खुदी भूमि तू ! (पयसा) जल से (पिन्वमाना) खूब सींची जाकर (ऊर्जस्वती) अन्न से समृद्ध होकर (पयसा) पुष्टिकारक अन्न और दुग्ध आदि पदार्थों से (अस्मान्) हम सबको (अभि आववृत्स्व) प्राप्त हो और सब प्रकार से बढ़ा के समृद्ध कर।

अथवा—'सीता' कृषि का उपलक्षण है। (विश्वैः देवैः मरुद्भिः च अनुमता सीता) समस्त विद्वानों से आदर प्राप्त कृषि (घृतेन मधुना समज्यताम्) घृत और अन्न से युक्त हो। हे कृषे ! तू (पयस्वती ऊर्जस्वती) पुष्टिकारक जल या अन्न से स्वयं समृद्ध होकर (पयसा न अभि आववृत्स्व) पुष्टिकारक दुग्ध आदि सहित हमें प्राप्त हो।

लाङ्ग॑लं॒ पवी॑रवत्सु॒शेव॑ꣳ सोम॒पित्स॑रु। तदुद्व॑पति॒ गामविं॑ प्रफ॒र्व्यं॑ च॒ पीव॑रीं प्र॒स्थाव॑द्र॒थ॒वाह॑नम् ॥ ७१ ॥ अथर्व० ३। १७। ३ ॥

कुमारहारीत ऋषिः। सीता देवता। विराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—(सोमपित्सरु) अन्न का पालक, क्षेत्र में कुटिलता से चलने वाला (सुशेवम्) सुखकारी, (पवीरवत्) फालवाला (लाङ्गलम्) हल (तत्) यह ही (गाम्) गौ आदि पशु (अविम्) भेड़, बकरी आदि क्षुद्र पशु (प्रफर्व्यम् च) उत्तम रीति से गमन करने योग्य (पीवरीम्) स्वस्थ हृष्ट पुष्ट शरीर की स्त्री और (प्रस्थावत्) प्रस्थान करने योग्य (रथ-वाहनम्) रथ और घोड़े आदि ऐश्वर्यों को (उद्वपति) उत्पन्न करता है। अर्थात् कृषि से ही समस्त ऐश्वर्य, पशु, रथ, अश्व आदि भी प्राप्त होते हैं ॥

कामं कामदुघे धुक्ष्व मित्राय वरुणाय च ।
इन्द्रायाश्विभ्यां पूष्णे प्रजाभ्य ऽओषधीभ्यः ॥ ७२ ॥

कुमारहारीत ऋषि. । सीता वा मित्रादयो लिंगोक्ता देवता आर्षी पंक्ति: । पञ्चमः ॥

भा०—हे (कामदुघे) समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेहारी कृषे ! भूमे ! तू (मित्राय) अपने स्नेही, (वरुणाय) शत्रुओं के वारक, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये और (अश्विभ्याम्) स्त्री पुरुषों के लिये (पूष्णा) पोषणकारी पिता माता और (प्रजाभ्यः) प्रजाओ के लिये और (ओषधीभ्यः (ओषधियों वनस्पतियों के लिये (कामं धुक्ष्व) सब मनोरथों को पूर्ण कर ॥

वि मुच्यध्वमघ्न्या देवयाना ऽअगन्म तमसस्पारमस्य ।
ज्योतिरापाम ॥ ७३ ॥ ऋ० १ । ७२ । ६ ॥

लिंगोक्ता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (अघ्न्याः) कभी न मारने योग्य, रक्षा करने योग्य (देवयानाः) देव-दिव्य भोगों को प्राप्त करानेवाले बैलों को (वि मुच्यध्वम्) सायंकाल मुक्त करो। हम लोग (अस्य) इस (तमसः) रात्रि के अन्धकार के (पारम् अगन्म) पार प्राप्त होवें। (ज्योति आपाम) पुनः सूर्य के प्रकाश को प्राप्त करें । अर्थात् सायंकाल को बैल जुओं से खोल दिये जांय । रात बीतने पर प्रातःकाल ही पुन: कृषि कार्य मे लगें ।

अथवा—हे (अघ्न्याः) अविनाशी देवयान से गति करनेवाले योगी जनो ! (विमुच्यध्वम्) विशेषरूप से मुक्त होने का यत्न करो। (तमस पारम् अगन्म) हम सब अन्धकार बन्धन से पार हों और (ज्योति आपाम) ब्रह्ममय ज्योति को प्राप्त करें ।

सजूरब्दो ऽअयवोभिः सजूरुषा ऽअरुणीभिः । सजोषसावश्विना

दꣳसोभिः सजूः सूर एतशेन सजूर्वैश्वानर इडया घृतेन स्वाहा ॥७४॥

लिङ्गोक्ता देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—जिस प्रकार (अब्द) संवत्सर मिले जुले अन्नों से और मास अर्ध मास आदि काल के अवयवों से (सजूः) युक्त है । और जिस प्रकार (अरुणीभिः) किरणों से (उषा) प्रभात वेला (सजूः) संयुक्त रहती है, (अश्विना) स्त्री और पुरुष, पति पत्नी दोनों जैसे (दंसोभिः) गृहस्थ कार्यों से (सजोषसौ) परस्पर प्रेमयुक्त होकर रहते हैं और (सूरः) सूर्य जिस प्रकार (एतशेन) अपने व्यापक प्रकाश से (सजूः) युक्त है और जिस प्रकार सर्व जीवों के भीतर विद्यमान (इडया) अन्न से और अग्नि जिस प्रकार (घृतेन) दीप्तिकारी प्रकाश या घृत से (सजूः) सगत होकर एक दूसरे को प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार (स्वाहा) हम सब भी सत्य व्यवहार से युक्त होकर प्रेम से वर्त्तें ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहꣳ शतं धामानि सप्त च ॥ ७५ ॥

ऋ० १० । ९७ । १ ॥

आथर्वणो भिषगृषिः । ओषधिस्तुतिः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—ओषधि विज्ञान (या) जो (ओषधीः) ओषधियें (देवेभ्यः) दिव्यगुण के पदार्थ पृथिवी जल आदि से, या ऋतुओं के अनुसार (पुरा) पहले (त्रियुगम्) तीन वर्ष पहले तक को या वर्षा, ग्रीष्म, शरद् तीनों कालों में (पूर्वाः जाताः) पहले से उत्पन्न होती हैं उन (बभ्रूणाम्) परिपाक होजाने से बभ्रु भूरे रंग की, पीली हुई हुई उन ओषधियों के (शत) सौ और (सप्त च) सात अर्थात् १०७ प्रकार के (धामानि) धारण सामर्थ्यों से पालन पोषण के बलों को (नु) मैं (मनै) मनन करूं, जानूं ।

७४—'सजोषसा अश्विना० ।' इति काण्व० ॥

अथवा—(बभ्रूणा) पुष्टिकारक उन ओषधियों के १०७ वीर्यों को जानूं।

अथवा—(शतं सप्त च धामानि बभ्रूणां ओषधीनां मनै) १०७ शरीर के मर्मस्थानों को पुष्ट करनेवाली ओषधियों का ज्ञान करूं। अथवा (बभ्रूणां) भरण पोषण योग्य रोगियों के १०७ मर्म स्थानों में प्रभाव-जनक व्याप्त ओषधियों का ज्ञान करूं॥ शत० ७। २। ४। २६॥

शतं वोऽअम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत॥ ७६॥

ऋ० १०। ९७। २॥

पूर्वोक्ते ऋषिदेवते। अनुष्टुप्। गाधार॥

भा०—हे (अम्बे) माता के समान पुष्टिकारक ओषधियो! (वः) तुम्हारे (शतं धामानि) सैकड़ों वीर्य हैं। (उत) और (वः) तुम्हारे (रुहः) प्ररोह, अंकुर, पुत्र संतति आदि भी (सहस्रम्) सहस्रों प्रकार के हैं। (अध) और (यूयम्) तुम सब भी (शतक्रत्व) सैकड़ों प्रकार के कार्य करनेवाली हो। अथवा–हे शतक्रत्व) सैकड़ों प्रजाओं से युक्त विद्वान् पुरुषो! (यूयम्) आप लोग (मे) मेरे शरीर को (अगदं कृत) नीरोग करो॥ शत० ७। २। ४। २७॥

ओष अर्थात् वीर्य को धारण करनेवाली हे सेनाओ! (वः शतं-धामानि) तुम्हारे सैकड़ों वीर्य हैं और (वः सहस्रं रुहः) तुम्हारे सहस्रों उन्नति स्थान और उत्पत्तिस्थान हैं। (यूयं शतक्रत्वः) तुम सब सैकड़ों वीर्यों से युक्त हो, (मे इमं अगदङ्कृत) मेरे इस राष्ट्र को क्लेश रहित करो।

ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः।
अश्वाऽइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः॥ ७७॥

ऋ० १०। ९७। ३॥

ऋषिदेवते पूर्ववत्। निचृदनुष्टुप्। गान्धार॥

भा०—हे (ओषधी·) ओषधियो ! तुम (पुष्पवती.) फूलोंवाली (प्रसूवरी.) उत्तम फल उत्पन्न करनेहारी हो । (अश्वाः इव) अश्वारोही लोग जिस प्रकार (सजित्वरीः) परस्पर मिलकर युद्ध मे विजय करते हैं और (पारयिष्णव) शत्रु सेना के पार करनेवाले वीर (वीरुध) शत्रुओं को आगे बढ़ने से रोकते हैं उसी प्रकार हे ओषधियो ! तुम भी रोगों पर मिलकर विजय करनेवाली, रोगों को रोकनेवाली और कष्टों से पार करनेवाली हो ।

हे (ओषधी.) वीर्यवान् प्रजाओ ! आप लताओ के समान (पुष्पवती. प्रसूवरीः सत्य प्रमोदध्वम्) ऐश्वर्यवान् शोभावान् और उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करनेवाली होओ । हे वीर प्रजाओ ! (अश्वा· इव सजित्वरी) अश्वों, घुड़सवारो के समान परस्पर मिलकर एक दूसरे का हृदय जीतनेवाली (वीरुध) विविध उपायों से बीज वपन करके उत्पन्न होनेवाली एव (पारयिष्णव.) एक दूसरे को और राष्ट्र को पालन करनेहारी होओ । इसी प्रकार स्त्रिया भी लता और ओषधियों के समान फले और फूलें पतियों का हृदय जीतें और संसार के कार्यों से पार लगाने या पालन करने में समर्थ हो ॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे। सनेयमश्वं गां वासऽआत्मानं तव पूरुष ॥ ७८ ॥ ऋ० १० । ९७ । ४ ॥

भा०—ओषधि के समान देवियो ! तुम (ओषधी.) वीर्य को धारण करनेहारी हो । (इति) इसी कारण से तुम (मातर·) माता अर्थात् सन्तान को उत्पन्न करनेवाली जगत् की माता हो । (तत्) इसी कारण से (व) आप (देवी) देविया हो । ऐसा करके मै (ब्रुवे) बुलाता हूं । स्त्री कहती है—हे (पूरुष) पुरुष ! मै (तव) तुझे (अश्वं, गां वास.) अश्व, गौ और वस्त्र और (आत्मान) अपने आपतक को (सनेयं) सौंपती हूं ।

राजा-प्रजापक्ष मे—हे वीर्यवती प्रजाओ! तुम माता के समान मुझे अपना राजा बनाती हो। तुमको 'देवी' कहके पुकारता हूं। प्रजा कहें। हे प्रजापते! पुरुष! मुझ प्रजा के अश्व, गौ, वस्त्र आदि और हम अपने आपको भी तुझे सौंपते है।

लता पक्ष में—हे ओषधियो! माता के समान अन्नादि से पोषक हो। तुम बलजीवन देनेवाली होने से, 'देवी' कहाती हो। ओषधिया कहती हैं—हे पुरुष! हम तुझे गौ आदि पशु, अश्व, वेद या वाहन, वस्त्र और (आत्मान) प्राण भी प्रदान करती हैं।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाजऽइत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥ ७९ ॥

ऋ० १० । ९७ । ५ ॥

भा०—हे प्रजाओ! (व) तुम्हारा (निषदनम्) आश्रय (अश्वत्थे) अश्वारोही सेना बल पर है। (वः वसतिः) तुम्हारा निवास (पर्णे कृता) पालन करनेवाले राजा के आधार पर किया है। (यत्) जब भी (पुरुषम्) पौरुष से युक्त राजा की सेवा करो, तो तुम भी (गोभाजः) गवादि पशु और भूमि आदि सम्पत्ति को प्राप्त करनेवाली (असथ किल) अवश्य होजाओ।

अथवा—हे मनुष्यो! (वः निषदनम्) तुम जीव लोगो की जीवन स्थिति (अश्वत्थे=अ-श्व-स्थे) कल तक भी स्थिर न रहनेवाले देह पर और (वः वसतिः) तुम लोगो का वास (पर्णे) चञ्चल पत्र के समान इस चञ्चल प्राण पर किया है। आप लोग (गोभाजः किल असथः) पृथ्वी का आश्रय लेनेवाले रहो। और (पूरुषं सनवथ) पूर्ण पुरुष देह को प्राप्त करो।

ओषधि पक्ष में—हे वीर्यवती ओषधियो! (यत्) जब (अश्वत्थे) पीपल के वृक्ष पर तुम्हारी स्थिति है, और पत्तों पर तुम निवास करती हो। (गोभाजः

इत्) इन्द्रियों तक पहुंचती हो तो तुम (पुरुषं सनवथ) पुरुष सन्तान प्राप्त कराती हो ।

यत्रौषधीः सुमग्मंत राजानः समिता विव ।
विप्रः सऽउच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥ ८० ॥

ऋ० १० । ९७ । ६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(यत्र) जहां या जिसके आश्रय पर (समितौ) संग्राम या राजसभा मे (राजान इव) क्षत्रिय राजाओ के समान (ओषधीः) ओषधियां हों । हे मनुष्यो ! वहां ही आप लोग (सम् अग्मत) जाओ । जो पुरुष (रक्षोहा) राक्षस, दु खदायी पुरुषो के नाश करनेवाले वीर्यवान् क्षत्रिय के समान (अमीवचातन) रोगो का नाश करने में समर्थ हो (स.) वह (विप्र.) ज्ञानपूर्ण मेधावी पुरुष (भिषग्) रोग नाश करनेहारा पुरुष 'भिषक्' (उच्यते) कहाता है अथवा ऐसा रोगनाशक पुरुष ही (उच्यते) उपदेश किया करे ।

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्माऽअरिष्टतातये ॥ ८१ ॥

ऋ० १० । ९७ । ७ ॥

आथर्वणो भिषग् ऋषि । वैद्य., ओषधयो वा देवता। अनुष्टप् । गाधार ॥

भा०—मैं (अश्वावतीम्) अति शीघ्र शरीर मे व्यापने वाले गुणों से युक्त और (सोमावतीम्) वीर्यवती और (ऊर्जयन्तीम्) बल पराक्रमशालिनी, (उद् ओजसम्) उत्कृष्ट ओजधातु की वृद्धि करनेवाली और उत्तम पराक्रम करनेहारी (ओषधी) सन्ताप, बल को धारण करनेवाली ओषधियो को (अरिष्टतातये) हिंसक रोगों के नाश करने के

८०—ओषधी प्रतिगृभगीत राजान. समिता इव इति काण्व० ।

लिये (आविस्सि) सब प्रकार से सब स्थानों से प्राप्त करूं। इसी प्रकार समस्त (ओषधीः) वीर्यवती प्रजाओं और सेनाओं को (अरिष्टतातये) अपने राष्ट्र के नाश होने से बचाने के लिये प्राप्त करूं (अश्मावतीम्) क्षत्रियो से ,पूर्ण अथवा अश्मा=वज्र या शास्त्रों से युक्त (सोमावतीम्) सेना नायक से युक्त और (उदोजसम्) उत्कृष्ट पराक्रम युक्त (ऊर्जयन्तीं) बलशालिनी सेना को मैं प्राप्त करूं।

उच्छुष्मा ऽओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।
धनंꣳ सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥ ८२ ॥

ऋ० १० । ९७ । ८ ॥

ओषधयो देवताः । भिषग्गृषि । अनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—(गोष्ठात्) गौओं के बाड़े से जिस प्रकार (गावः ईरते) गौवें निकलती हैं उसी प्रकार हे (पूरुष) पुरुष ! प्रजापते ! राजन् ! (तव) तेरे (आत्मानम्) शरीर के प्रति, तेरे अपने उपकार के लिये (धनं) ऐश्वर्य को (सनिष्यन्तीनाम्) प्रदान करने वाली रस वीर्यवती ओषधियों के समान वीर्यवती प्रजाओ में से जो (शुष्माः) अधिक बलकारिणी हैं वे (स्वयं तव आत्मानम् उदीरते) स्वयं तेरे आत्मा को प्राप्त होती हैं। और उन्नत करती हैं। अर्थात् ओषधियां जिस प्रकार पुरुषशरीर मे अधिष्ठाता आत्मा के बल की वृद्धि करती हैं इसी प्रकार बलवती प्रजाएं राजा के बल की वृद्धि करती हैं।

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयꣳ स्थ निष्कृतीः।
सीराः पतत्रिणीं स्थन यदामयति निष्कृथ ॥ ८३ ॥

ऋ० १० । ९७ । ९ ॥

भिषगृषि । ओषधयो देवताः । अनुष्टुप् । गाधार. ॥

भा०—हे ओषधियो ! (व. माता) तुम्हारी माता (इष्कृतिः) 'इष्कृति' नाम से प्रसिद्ध है। अर्थात् तुम्हारी 'माता' निर्माणकारिणी शक्ति

'इष्कृति' अर्थात् 'इष्' अन्न के समान पुष्ट करने वाली है, अथवा तुम्हारी (माता) निर्माण-कर्त्री या शरीर रचना शक्ति भी (इष्कृतिः=निष्कृति) रोगों को शरीर से बाहर निकाल देने वाली है (अथो) इसी कारण (यूयम्) तुम सब (निष्कृती.) शरीर मे से रोगों को बाहर निकाल देने से ही 'निष्कृति' भी कहाती (स्थ) हो। तुम (सीरा स्थन) अन्न के समान पुष्टिकारक होने से 'सीरा' कहाती हो। अथवा नदी जिस प्रकार भूमि के मल मार्गों को बहाकर दूर लेजाती हैं उसी प्रकार तुम भी शरीर मे से रोग को बहा देने से 'सीरा' कहाती हो। और (पतत्रिणीः स्थन) शरीर मे व्याप्त होकर रोग को बाहर कर देने और शरीर की रक्षा करने में समर्थ होने से तुम 'पतत्रिणी' हो। (यत्) जो पदार्थ भी शरीर में (आमयति) रोग उत्पन्न करता है उसको (निष्कृथ) बाहर कर देते हो।

बलवती वीर प्रजाओं के पक्ष में—हे वीर सेनाओ ! (व. माता इष्कृति.) 'इष्कृति' शत्रु को राष्ट्र से बाहर निकालने वाली शक्ति ही बनाने वाली 'माता' के समान है। इसी से (यूयं निष्कृती स्थ) तुम सब 'निष्कृति' नाम से कहाती हो। तुम सदा (सीरा) अन्न आदि पदार्थों सहित होकर (पतत्रिणी· स्थन) शत्रु के प्रति गमन करती हो। भोजन का प्रबन्ध करके चढ़ाई करो। और (यद् आमयति) राष्ट्र मे रोग के समान पीड़ाकारी हो उसको (निष्कृथ) निकाल बाहर कर दिया करो।

अति विश्वा॑ः परि॒ष्ठा स्ते॒नऽइ॑व व्र॒जम॑क्रमुः ।
ओष॑धीः॒ प्राचु॑च्यवु॒र्यत्किं च॑ त॒न्वो॒ रपः॑ ॥ ८४ ॥

ऋ० १० । ९७ । १० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(स्तेन. व्रजम् इव) चोर जिस प्रकार गौएं के बाड़े पर (अतिक्रामति) आक्रमण करता है उसी प्रकार (परिष्ठाः विश्वा·)

सर्वत्र व्यापनशील या रोगों पर वश कर लेने वाली समस्त ओषधियाँ भी (व्रजम् अति अक्रमु) रोग समूह पर आक्रमण करती हैं और (यत् किं च) जो कुछ भी (तन्व.) शरीर का (रपः) दुःखदायी रोग होता है उसको (ओषधीः) ओषधियां (प्राचुच्यवुः) दूर कर देती हैं ।

इसी प्रकार दुर्ग के चारों ओर (परिष्ठा. विश्वाः ओषधीः) घेरकर बैठने वाली बलवती सेनाएं (व्रजम् अति अक्रमुः) परकोट को फांद कर निकलती हैं । वे (तन्वः रपः) विस्तृत राष्ट्र शरीर में पापी शत्रु को (प्राचुच्यवुः) परे भगा देती हैं ।

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्तऽआदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥ ८५ ॥
ऋ० १० । ९७ । ११ ॥

भा०—(यत्) जब (अहम्) मैं (इमाः ओषधीः) इन ओषधियों को (वाजयन्) अधिक बलशाली बनाकर (हस्ते आदधे) अपने हाथ में लेता हूं (यथा पुरा) पूर्व के समान ही नव (जीवगृभ) जीवन को लेलेने वाले प्राणघातक (यक्ष्मस्य) राजयक्ष्मा का भी (आत्मा) मूल कारण (पुरा नश्यति) पहले ही नष्ट होजाता है । अथवा (यथा जीवगृभः) जिस प्रकार जीते जी पकड़े हुए अपराधी के आत्मा, प्राण (पुरा) पहले ही उठ जाते हैं उसी प्रकार ओषधि लेते ही (यक्ष्मस्य पुरा आत्मा नश्यति) रोग का मूल कारण पहले ही दूर होजाता है ।

इसी प्रकार मैं राजा जब (ओषधीः) वीर्यवती सेनाओं को (वाजयन्) संग्राम के लिये उत्तेजित करता हुआ अपने हाथ में लेता हूं । तो (यक्ष्मस्य) ओषधियों से राजयक्ष्मा के समान पीड़ाकारी (जीवगृभः) प्राणघाती नर-पिशाच का भी (आत्मा पुरा नश्यति) प्राण पहले ही निकलने लगता है ।

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं विबाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥ ८६ ॥

ऋ० १० । ९७ । १२ ॥

भा०—हे (ओषधी.) ओषधियो ! (यस्य) जिस रोगी पुरुष के (अङ्गम् अङ्गम्) अंग अंग और (परु परु.) पोरु पोरु में (प्रसर्पथ) तुम अच्छी प्रकार फैल जाती हो तब (मध्यमशी.) मर्मों तक को काट देने वाला या मध्यम, (उग्र इव) प्रचण्ड बलवान् राजा जिस प्रकार शत्रु को नाश कर डालता है उसी प्रकार (तत.) उस शरीर से (यक्ष्म) रोग को (विबाधध्वं) विनष्ट कर देती हो ।

इसी प्रकार हे (ओषधी) वीर्यवती सेनाओ ! तुम जिस राष्ट्र के अंग २ और पोरु २ मे फैल जाती हो (मध्यमशी. उग्र. इव) बीच के भागों को तोड़ने वाले या मध्यम, प्रचण्ड क्षत्रिय के समान ही तुम सब भी रोग के समान शत्रु का नाश करती हो ।

साकं यक्ष्म प्रपत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥ ८७ ॥

ऋ० १० । ९७ । १३ ॥

भा०—हे यक्ष्म ! राजरोग ! तू (किकिदीविना) ज्ञानपूर्वक प्रयोग किये गये (चाषेण) भोजन के (साकम्) साथ ही तू (प्र पत) परे भाग जा । और (वातस्य साक) वायु के प्रबलगति के साथ (प्र पत) दूर भाग जा । अर्थात् प्राणायाम द्वारा नष्ट हो । और (निहाकया साकम्) रोग को नि.शेष दूर करने की प्रक्रिया के साथ तू (नश्य) नष्ट हो ।

इसी प्रकार रोग के समान शत्रो ! तू किकियाने वाले चाप नामक पक्षी और वायु के वेग के साथ और सर्वथा (निहाकया) तीव्र भाग दौड़ के साथ (प्र पत, प्र नश्य) भाग जा ।

अन्या वोऽअन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥ ८८ ॥

ऋ० १० । ९१ । १४ ॥

भा०—हे ओषधियो ! (व) तुममे से (अन्या) एक (अन्याम्) दूसरी की (अवतु) रक्षा करे । और (अन्या अन्यस्याः) एक दूसरी के गुणो और प्रभावों को (उप अवत) रक्षा करो । (ता सर्वा.) वे सब (संविदाना) परस्पर सहयोग करती हुईं (मे इद वच) मेरे इस वचन को (प्र वत) अच्छी प्रकार पालन करो । इसी प्रकार हे सेना के पुरुषो ! तुम एक दूसरे की रक्षा करो । परस्पर मिलकर मेरी आज्ञा का पालन करो ।

या. फलिनीर्या ऽअफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳहसः ॥ ८९ ॥

ऋ० १० । ९७ । १५ ॥

भा०—(या.) जो ओषधियां (फलिनीः) फलवाली हैं और (या· अफला) जो फल रहित हैं, (या अपुष्पाः) जो फूलवाली नहीं है (या. च पुष्पिणी) जो फुलवाली हैं (ताः) वे सब (बृहस्पति-प्रसूता.) बृहती विद्या के पालक उत्तम विद्वान-द्वारा प्रयोग की जाकर (न.) हमें (अंहसः) दु.खो से (मुञ्चन्तु) छुडावें ।

इसी प्रकार जो वीर प्रजाएं (फलिनी) शस्त्र के फलो से युक्त, या (अफला) शस्त्रो के फलो से रहित, (अपुष्पा.) पुष्टिकर पदार्थों से रहित, (पुष्पिणी) पुष्टिकर पदार्थों से युक्त हैं वे सब भी बड़े राष्ट्रपति से प्रेरित होकर हमे (अहस) पाप-कर्मो या कष्टो से बचावे ।

मुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।

अथो॑ य॒मस्य॒ पड्वी॑शा॒त्सर्व॑स्माद् देवकिल्वि॒षात् ॥ ९० ॥

ऋ० १० । ९७ । १६ ॥

वन्धुर्ऋषि । ओषधयो देवता । अनुष्टुप् । गाधार ॥

भा०—हे ओषधियो ! ओषधियों के समान कष्टों के निवारक वीर, आप्त, प्रजाजनो ! जिस प्रकार ओषधियें (शपथ्यात्) कुपथ्य या निन्दा योग्य कर्म से होनेवाले कष्ट से, (वरुण्यात्) निवारण करने योग्य रोग से और (यमस्य पड्वीशात्) मृत्यु के बन्धन से और (देव-किल्विषात्) इन्द्रियों मे बैठे विकारों से मुक्त करती है, उसी प्रकार आप लोग भी (शपथ्यात्) आक्रोश या परस्पर निन्दा के वचनो से उत्पन्न पाप से, (अथ वरुण्यात् उत) और वरुण, राजा या वरणीय श्रेष्ठ पुरुष के अपराध से उत्पन्न होनेवाले (अथो) और (यमस्य) नियन्ता, न्यायाधीश के द्वारा दिये जाने वाले (पड्वीशात्) बेड़ियों, कैद आदि बन्धन से और (सर्वस्मात्) सब प्रकार के (देवकिल्विषात्) विद्वानों के प्रति किये या राजा के प्रति किये अपराधो से (मुञ्चन्तु) मुक्त करें, हमें उन अपराधों से बचावें ।

अ॒व॒पत॑न्तीरवदन्दि॒वऽओष॑धय॒स्परि॑ ।
यं जी॒वम॒श्नवा॑महै॒ न स रि॑ष्याति॒ पूरु॑षः ॥ ९१ ॥

ऋ० १० । ९७ । १७ ॥

वन्धुर्ऋषि । ओषधयो देवता । अनुष्टुप् गाधारः ॥

भा०—(दिवः) प्रकाशमान् सूर्य से आनेवाली किरणों के समान ज्ञानवान वैद्य पुरुष के पास से (अवपतन्तीः) आती हुई (ओषधय) वीर्यवती ओषधिया (अवदन्) मानो कहती है कि (यं जीवम्) जिस प्राणधारी के शरीर को भी हम (अश्नवामहै) व्याप लेती हैं (सः पूरुषः) वह देहवासी आत्मा, पुरुष (न रिष्याति) पीड़ित नहीं होता ।

९१—अवयन्तीः समवदन्त दिव० ।

इसी प्रकार (दिवः परि अवपतन्ती) सूर्य के समान तेजस्वी एवं युद्धविजयी सेनापति के पास से जाती हुई वीर्यवती (ओषधय.) ताप और वीर्य्य को धारण करनेवाली सेनाएं कहती हैं कि (यं जीवम्) जिस जीवधारी प्राणी को हम (अश्नवामहै) अपने अधीन लेलेती हैं (सः पूरुषः न रिष्यति) वह पुरुष कष्ट नहीं पाता ।

स्त्रियों के पक्ष में--(दिवः) तेजस्वी पुरुष के पास से गर्भित होकर (ओषधयः) वीर्य धारण करने में समर्थ स्त्रिये (अवपतन्तीः) पतियों से संगत होकर कहती हैं (यं जीवम् आश्नवामहै) प्राणधारी जिस जीव को हम गर्भ में धारण करलेती हैं (स पूरुषः न रिष्यति) वह आत्मा कभी नष्ट या पीड़ित नहीं होता ।

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासामसि त्वमुत्तमारं कामाय शᳪं हृदे ॥ ९२ ॥

ऋ० १० । ९७ । १८ ॥

भा०—(याः) जो (ओषधीः) ओषधियें (सोमराज्ञीः) सोम-वल्ली के गुणों से प्रकाशित होती हैं और (शतविचक्षणाः) सैकड़ों रोगों के दूर करने में नाना प्रकार से उपदेश की जाती हैं (तासाम्) उनमें से (त्वम्) हे विशेष ओषधे ! तू सब से अधिक (उत्तमा असि) उत्तम है । तू (कामाय) यथेष्ट सुख के प्राप्त करने के लिये और (हृदे शम्) हृदय को शान्ति देने के लिये (अरम्) पर्याप्त है ।

वीर प्रजाओं के पक्ष में—(सोमराज्ञीः) सोम-राजा को अपना राजा मानने वाली (याः बह्वी ओषधीः) बहुत सी वीर्यवती, बलवती प्रजाएं (शतविचक्षणाः) सैकड़ों कार्यों में कुशल हैं (तासाम्) उनमें से (त्वम् कामाय शं हृदे) कामना और हृदय की शान्ति के लिये तू ही सबसे (उत्तमा असि) श्रेष्ठ है ।

स्त्री के पक्ष में—(सोमराज्ञी) वधू की कामना करनेवाले की रानी बननेवाली (बह्वीः) बहुत सी (शतविचक्षणाः) सैकड़ों गुणों में विलक्षण, चतुर (ओषधीः) ओषधियों के समान वीर्यवती, वीर्य धारण में समर्थ स्त्रियें हैं। (तासाम्) उनमें से (त्वम्) तू (कामाय शम्) कामना भोग की शान्ति और (हृदे शम्) हृदय की शान्ति के लिये भी (उत्तमा असि) तू ही उत्तम है।

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु।
बृहस्पतिप्रसूताऽअस्यै संदत्त वीर्यम् ॥ ९३ ॥

ऋ० १० । ९७ । १९ ॥

भा०—(सोमराज्ञीः) सोम वल्ली के गुणों से प्रकाशित होनेवाली (याः ओषधीः) जो ओषधियां (पृथिवीम् अनुविष्ठिताः) पृथिवी पर एक दूसरे के अनुकूल गुण होकर स्थित हैं वे (बृहस्पति-प्रसूताः) वेदविद्या के पालक विद्वान् द्वारा प्रयोग की गई (अस्यै) इस विशेष ओषधी को (वीर्यम् संदत्त) विशेष बल प्रदान करें।

वीर प्रजाओं के पक्ष में—(सोमराज्ञी ओषधीः) सोम को राजा स्वीकार करनेवाली प्रजाएं जो पृथिवी पर परस्पर अनुकूल होकर विराजती हैं, वे बृहत्, महान् पति द्वारा प्रेरित होकर (अस्यै) इस विशेष सेना को (वीर्यम् स दत्त) बल प्रदान करें। उसको पुष्ट करें।

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः।
सर्वाः संगत्य वीरुधोऽस्यै संदत्त वीर्यम् ॥ ९४ ॥

ऋ० १० । ९७ । २० ॥

भा०—(याः च) और जो ओषधियां (इदम्) इस प्रकार (उप शृण्वन्ति) सुनी जाती हैं और (याः च दूरं परागताः) और जो दूर २ तक फैलाई गई हैं। (सर्वाः संगत्य) वे सब मिलकर (वीरुधः) नाना प्रकार से उगनेहारी

वृक्षलता आदि (अस्यै वीर्यं संदत्त) इस विशेष ओषधि को वीर्य प्रदान करे अथवा इस प्रजा को बल प्रदान करें।

वीर पुरुषो के पक्ष मे—जो वीरसेनाएं (इदम्) सभापति के इस बचन को सुनती हैं और जो दूर तक चली गई हैं वे सब मिलकर (वीरुध) विविध ऐश्वर्यपद प्राप्त करनेवाली अथवा विविध प्रकार से शत्रुओं को रोकने मे समर्थ (अस्यै वीर्यम् संदत्त) इस विशेष सेना को या पृथ्वी को बल प्रदान करें।

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳ सर्वमस्त्वनातुरम् ॥ ९५ ॥

ऋ० १० । ९७ । २१ ॥

भा०—हे ओषधियो ! (खनिता) तुमको खोदनेवाला तुम्हें (मा रिषत्) विनाश न करे। और (यस्मै च) जिसके लिये मैं (व) तुमको (खनामि) खोदूं वह (द्विपात् चतुष्पात्) मनुष्य और पशु (सर्वम्) सब (अस्माकम्) हमारे (अनातुरम्) नीरोग, सुखी (अस्तु) हों। हे वीर पुरुषो ! तुम्हारा (खनिता) खनन करनेवाला, तुमको सामान्य प्रजा से अलग करनेवाला राजा (मा रिषत्) तुम्हें पीड़ित न करे और जिस राष्ट्र की रक्षा के लिये वह तुम्हें पृथक् करता है वे सब मनुष्य, पशु सुखी हों।

ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन् पारयामसि ॥ ९६ ॥

ऋ० १० । ९७ । २२ ॥

भा०—(ओषधय) वीर्य धारण करनेवाली ओषधियां (सोमेन) सोमलता के साथ (सम अवदन्त) मानो संवाद करती है कि हे

९५—'द्विपच्चतुष्पदस्मा०' इति काण्व०

(राजन्) हे राजन्, सोम ! (ब्राह्मण) वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मण (यस्मै कृणोति) जिसको प्रदान करता है (त) उसको हम (पारयामसि) पालन करती हैं। वीर्यवती प्रजाएं (सोमेन राज्ञा सह) प्रेरक बलवान् राजा के साथ मिलकर (सम् अवदन्त) आलाप करती हैं कि (ब्राह्मणः यस्मै कृणोति) वेदज्ञ पुरुष जिस प्रयोजन या देश की रक्षा के लिये हमें दीक्षित करता है। हे राजन् (तं पारयामसि) उसका हम पालन करती हैं।

स्त्रियों के पक्ष में—वीर्य धारण करने में समर्थ लता के समान स्त्रियां वधू के इच्छुक तेजस्वी पुरुष के साथ (सम् अवदन्त) संगत होकर प्रतिज्ञा करती हैं कि (यस्मै) जिस गृहस्थ कार्य के लिये हमे (ब्राह्मण) वेदज्ञ विद्वान् संस्कार द्वारा प्रदान करता है हे राजन् ! वर ! (तं पारयामसि) हम उसको संसार-सागर से तराती हैं। उसका पालन करती हैं।

नाशयित्री बलासस्यार्शसऽउपचितामसि ।
अथो शतस्य यक्ष्माणां पाकारोरसि नाशनी ॥ ६७ ॥

भा०—हे ओषधे ! तू (बलासस्य) बल को नाश करनेवाले कफ रोग को (अर्शस.) अर्श, बवासीर और (उपचिताम्) दोषों के एकत्र होजाने से उठनेवाले गण्ड माला आदि रोगों की (नाशयित्री असि) नाश करनेवाली है। (अथ) और इसी प्रकार के (शतस्य यक्ष्माणाम्) सैंकड़ो रोगो के और (पाकारो·) पकनेवाले फोड़े की भी (नाशनी असि) नाश करदेने वाली हो।

वीर प्रजा के पक्ष मे—(बलासस्य) बलपूर्वक आक्रमक (अर्शस.) हिंसाकारी, (उपचिताम्) अन्यो के धनो को अन्याय से संग्रह करनेवाले और (पाकारो) परिणाम मे पीड़ा देनेवाले और इसी प्रकार (शतस्य-यक्ष्माणाम्) सैकड़ों गुप्त पीड़ाकारी दुष्टो का नाश करनेहारी हो।

त्वां ग॑न्ध॒र्वा अ॑खनँ॒स्त्वामिन्द्र॒स्त्वां बृह॒स्पति॑: ।
त्वामो॑षधे॒ सोमो॒ राजा वि॒द्वान् यक्ष्मा॑दमुच्यत ॥ ९८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(त्वाम्) तुझको (गन्धर्वाः) गौ वेदवाणी के ज्ञाता और भूमि के पालक (अखनन्) खोदते हैं, प्राप्त करते हैं (त्वां) तुझको (इन्द्रः) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् (बृहस्पति) बड़े राष्ट्र के पालक और (सोमः राजा) राजा सोम और (विद्वान्) विद्वान् पुरुष भी प्राप्त करता है। (यक्ष्मात्) और रोग से (अमुच्यत) मुक्त होता है।

वीर सेना के पक्ष में—(गन्धर्वाः) पृथ्वी के पालक, भूपति लोग (इन्द्र) सेनापति और (सोम राजा) राजा सोम सम्राट् सभी प्राप्त करते हैं और कष्ट से मुक्त होते हैं।

सह॑स्व मे॒ अरा॑ती॒: सह॑स्व पृतना॒यत॑: ।
सह॑स्व॒ सर्वं॑ पा॒प्मान॒ꣳ सह॑मानास्योषधे ॥ ९९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—हे (ओषधे) ओषधि के समान वीर्य को धारण करनेवाली सेने ! (सहमाना असि) रोग के समान तू शत्रु को भी पराजित करनेहारी है। तू (सर्वं पाप्मानम्) समस्त पापाचार को (सहस्व) विनष्ट कर। (मे अरातीः) मेरे शत्रुओं को (सहस्व) पराजित कर और (पृतनायतः) सेना लेकर चढ़नेवालों को भी (सहस्व) बलपूर्वक पराजित कर।

दी॒र्घायु॑स्तऽओषधे ख॒नि॒ता यस्मै॑ च॒ त्वा॒ खना॑म्य॒हम् ।
अथो॒ त्वं दी॒र्घायु॑र्भू॒त्वा श॒तव॑ल्शा॒ वि रो॑हतात् ॥ १०० ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(ते खनिता) तुझे खोदकर प्राप्त करनेवाली और (यस्मै च) जिसके लिये (त्वा) तुझको (अहम् खनामि) मैं खोदकर प्राप्त करता हूं

हे (ओषधे) वीर्यवति ओषधे ! बलवति ! (स दीर्घायुः) वह दीर्घ आयुवाला हो। (अथो) और हे पुरुष ! हे स्त्री ! और हे ओषधे ! हे वीर्यवति प्रजे ! (त्वं) तू भी (दीर्घायुः भूत्वा) दीर्घ आयुवाली होकर (शतवल्शा) सैकड़ों अंकुरों सहित (विरोहतात्) विविध प्रकार से उत्पन्न हो, उन्नत हो, पुष्ट हो।

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षाऽउपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं योऽअस्माँ२॥ अभिदासति ॥१०१॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—हे (ओषधे) ओषधे ! वीर्यवति (त्वम् उत्तमा असि) तू सबसे श्रेष्ठ है। (वृक्षा) अन्य वृक्ष भी (तव उपस्तयः) तेरे अधीन रहें। तेरे बल से (सः) वह (अस्माकम् उपस्ति अस्तु) हमारे अधीन रहे (यः) जो (अस्मान्) हमें (अभिदासति) आक्रमण पूर्वक नष्ट करता है।

अथवा—हे ओषधे ! तू सबसे श्रेष्ठ है। (वृक्षा) वट आदि वृक्ष तेरे समीप (उपस्तय) संघ बनाकर ठहरते हैं। (यः अस्मान् अभिदासति) जो हमें सुख देता है वह (अस्माकं उपस्तिः अस्तु) हमारे पास हमसे मिलकर रहे।

सेना पक्ष में—(उपस्तयः) संघ बनाकर रहनेवाली सेनाएँ (तव वृक्षा) तेरे काटने योग्य हैं। अथवा (वृक्षा) काटने योग्य वृक्षों के समान छेद्य शत्रु (उपस्तय =संहन्तव्याः) विनाश करने योग्य हैं। इसी प्रकार जो हमें (अभि दासति) विनष्ट करे (स अस्माकं उपस्तिः) वह भी हमारे लिये विनाश योग्य है।

मा मा हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवंꣳ सत्यधर्मा

व्यानट् । यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १०२ ॥

हिरण्यगर्भ ऋषि । को देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (पृथिव्या. जनिता) पृथिवी का उत्पादक है और (यः वा) जो (सत्य-धर्मा) सत्य धर्मवाला, सत्य के बल से जगत् को धारण करनेवाला होकर (दिव) द्यौलोक, आकाश और सूर्य को (वि आनड्) विविध प्रकार से व्याप्त है । और (यः) जो (प्रथमः) सबसे प्रथम विद्यमान होकर (आपः) जलों को (चन्द्रा) ज्योति वाले सूर्यादि लोकों को (जजान) उत्पन्न करता है (कस्मै) उस सुखमय उपास्य देव की हम (हविषा) भक्ति और स्तुति से (विधेम) अर्चना करें । वह (मा मा हिंसीत्) मुझे कभी नाश न करे ।

राजा के पक्ष में—जो पृथिवी का (जनिता) पिता के समान पालक सत्य नियमों वाला होकर (य दिव व्यानट्) जो सब व्यवहारों को चलाता है (चन्द्रा आप) जो सबसे श्रेष्ठ होकर सब आह्लादकारी आप्त प्रजाओं को (जजान) प्रकट करता है । उसके कर्त्तारूप प्रजापति को हम (हविषा) अन्न आदि उत्तम उपादेय पदार्थों से सेवा करें । वह राजा (मा मा हिंसीत्) मुझ राष्ट्र की प्रजा का नाश न करे ॥ शत० ७ । ३ । १ । २० ॥

अभ्यावर्त्तस्व पृथिवि यज्ञेन पयसा सह ।
वपान्तेऽअग्निरिषितोऽअरोहत् ॥ १०३ ॥

अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवि ! हे स्त्री ! तू (यज्ञेन) यज्ञ, परस्पर के प्रेमपूर्वक संग और (पयसा) जल, पुष्टिकारक अन्न और वीर्य के (सह) साथ (अभि आवर्तस्व) सब प्रकार से प्राप्त हो, वर्तमान रह ।

(इषितः) कामनावान्, अभिलाषुक (अग्नि) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष राजा या पति (ते वपाम्) तेरी बीजवपन करने की भूमि में (अरोहत्) बीज वपन कर और अन्न और पुत्र आदि प्राप्त करे ।

अर्थात्—(पयसा सह यथा पृथिवी अभि आवर्तते) मेघ के जल से जिस प्रकार पृथिवी युक्त होती है उसी प्रकार (यज्ञेन पृथिवी अभ्यावर्तस्व) हे स्त्री ! तू यज्ञ अर्थात् संगत पति से युक्त होकर रह । और (अग्निः) तेजस्वी राजा जिस प्रकार इच्छानुकूल प्रजाओं द्वारा चाहा जाकर (ते वपाम्) तेरी उत्पादक शक्ति पर अधिष्ठाता रूप में विराजता है उसी प्रकार (अग्निः) तेजःस्वरूप वीर्य (इषितः) स्त्री की इच्छानुसार प्राप्त होकर (ते वपां) तेरी सन्तानोत्पादक शक्ति को प्राप्त कर (अरोहत्) सन्तानरूप से बढ़े ॥ शत० ७ । २ । १ । २१ ॥

अग्ने॒ यत्ते॑ शु॒क्रं यच्च॒न्द्रं यत्पू॒तं यच्च॑ य॒ज्ञिय॑म् ।
तद्दे॒वेभ्यो॑ भरामसि ॥ १०४ ॥

अग्निर्देवता । भुरिग् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! (यत् ते शुक्रं) जो तेरा शुद्ध, उज्ज्वल और (यत् चन्द्र) जो चन्द्र, आह्लादकारी (यत् पूत) जो पवित्र, (यत् च यज्ञियम्) और जो 'यज्ञ' प्रजापति होने योग्य तेज है (तत्) उसको हम प्रजागण (देवेभ्य) विजयी वीर पुरुष के लिये (भरामसि) प्राप्त कराते हैं ।

सन्तानोत्पादक वीर्य के पक्ष में—हे अग्ने ! वीर्य ! जो तेरी शुद्ध, आह्लादकारी पवित्र क्रिया में हितकारी स्वरूप है उसको (देवेभ्य) दिव्यगुणों और प्राणों के लिये प्राप्त करावे ॥ शत० ७ । २ । १ । २२ ॥

इष॒मूर्ज॑म॒हमि॒तऽआद॑मृ॒तस्य॒ योनिं॑ म॒हि॒षस्य॒ धारा॑म् ।
आ मा॒ गोषु॒ विश॒त्वा त॒नूषु॒ जहा॑मि से॒दिमनि॑रा॒ममी॑वाम् ॥१०५॥

आशीर्वा विद्वान् अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अहम्) मैं (इत) इस पृथ्वी से (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) बलकारक समस्त उत्तम भोजन (आदम्) प्राप्त करूं। (इत.) इस पृथ्वी से ही (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (योनिम्) कारणरूप (महिषस्य) महान् परमेश्वर को (धाराम्) धारण करनेवाली वेदवाणी को भी प्राप्त करता हू। वह अन्न बल और सत्यज्ञान (मा आविशतु) मुझे प्राप्त हो। और वही अन्न पुष्टिकारक पदार्थ (गोषु तनूषु) हमारी इन्द्रियों और शरीरों में भी प्राप्त हो। और (अतिराम्) अन्न से शून्य, उपवास करानेवाली, (अमीवाम्) रोगों से उत्पन्न (सेदिम्) और भुखमरी आदि प्राणनाशक विपत्ति को (जहामि) मैं त्याग करूं, दूर करूं, हटाऊ॥ शत० ७। २। १। २३॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्तेऽअर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं दधासि दाशुषे कवे॥ १०६॥

पावकाग्निर्ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृत् पंक्ति। पञ्चमः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! ज्ञानवान् तेजस्विन्! हे (विभावसो) विशेष ज्ञानदीप्ति मे वसनेवाले तेजोधन! एवं ज्ञानधन विद्वन्! (तव) तेरा (महि श्रव) बड़ाभारी ज्ञान और (महि वय) बड़ी भारी जीवन सामर्थ्य, ये सब (अर्चय) अग्नि की ज्वालाओं के समान (भ्राजन्ते) प्रकाशित होते हैं। हे (बृहद्भानो) महान् दीप्तिवाले सूर्य के समान तेजस्विन्! एवं बृहती वेदवाणी के प्रकाश से युक्त हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् मेधाविन् विद्वन्! तू (शवसा) बल से (उक्थं वाजम्) ज्ञान और वीर्य को (दाशुषे) दानशील पुरुषों अथवा दान योग्य विद्यार्थी पुरुष को (दधासि) प्रदान करता है॥ शत० ७। ३। १। २६॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चाऽअनूनवर्चाऽउदियर्षि भानुना।

पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसीऽउभे ॥ १०७ ॥
ऋ० १० । १४० । १ ॥

अग्निर्विद्वान् देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(पावकवर्चाः) अग्नि के समान, पवित्रकारी तेजवाला, (शुक्रवर्चाः) वीर्य के समान विशुद्ध तेजवाला, एवं सामर्थ्यजनक, (अनूनवर्चाः) किसी से भी न्यून बल न होकर अति बलशाली, तेजस्वी राजा होकर (भानुना) अपने तेज से तू सूर्य के समान (उत् इयर्षि) ऊपर उठता है। और (मातरा) माता पिता दोनों के बीच (पुत्र) जिस प्रकार पुत्र निःसंकोच, निर्भय होकर विचरता है उसी प्रकार (उभे) दोनों (रोदसी) द्यौ और पृथिवी के बीच (पुत्र) पुरुषों को त्राण करने में समर्थ होकर (विचरन्) विविध प्रकार से विचरता हुआ (उप अवसि) उन्हें प्राप्त हो और दोनों को (पृणक्षि) पालन पोषण कर ॥ शत० ७ । ३ । १ । ३० ॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः ।
त्वेऽइषः संदधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः ॥ १०८ ॥
ऋ० १० । १४० । ३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(ऊर्जः नपात्) अपने बल और पराक्रम को कभी धर्ममार्ग से न गिरने देनेवाले ! हे (जातवेदः) विद्वन्, ऐश्वर्यवान् ! राजन् ! तू (सुशस्तिभिः) उत्तम शासन क्रियाओं से और सुख्यातियो से (धीतिभिः) अंगुलियों के समान अग्रगामी धारण शक्तियों से (हित) प्रजा का हितकारी एवं सुस्थापित होकर (मन्दस्व) सुप्रसन्न हो। (त्वे) तुझ में (भूरि वर्पस) नाना धन, गौ आदि पशु, नाना रूप

१०७—०' उदय अर्षि भानुना० ' इति काण्व० ॥

के ऐश्वर्यों से युक्त (चित्रोतयः) चित्त और विविध रक्षा साधनों से सुरक्षित (वाम जाता.) उत्तम वंशों में उत्पन्न हुई प्रजाएं (इष. संदधु.) अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रदान करें ॥ शत० ७ । ३ । १ । ३१ ॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायोऽअमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो विराजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥१०९॥
ऋ० १० । १४० । ३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—हे राजन् ! (स.) वह तू (दर्शतस्य वपुषः) दर्शनीय शरीर से (विराजसि) विशेष दीप्ति से चमकता है (सानसिम्) सनातन से चली आई, चिरकाल से प्राप्त (क्रतुम्) प्रज्ञा और शक्ति को (पृणक्षि) पूर्ण किये रहता है। और हे (अग्ने) अग्ने, प्रतापवन् ! विद्वन् ! तू (इरज्यत्) ऐश्वर्यवान् होता हुआ हे (अमर्त्य) नाशवान् साधारण मनुष्यों में भिन्न, विशेष पुरुष ! तू (जन्तुभि.) गौ आदि जन्तुओं से (अस्मे) हमारे उपकार के लिये (राय) धन ऐश्वर्यों को (प्रथयस्व) बढ़ा ॥ शत० ७ । ३ । १ । ३२ ॥

इष्कर्त्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तꣳ राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिꣳ रयिम् ॥११०॥
ऋ० १० । १४० । ४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(अध्वरस्य) अहिंसारहित, पालक यज्ञ, व्यवस्था के (इष्कर्तारम्=निष्कर्तारम्) करनेवाले, (प्रचेतसं) प्रकृष्ट ज्ञानवान्, (क्षयन्तम्) निवासी और (महः) बड़े भारी (वामस्य) अति सुन्दर, प्राप्त करने योग्य (राधस) धन के (रातिम्) देनेवाले पुरुष को और (सुभगाम्) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (महीम् इषं) बड़े भारी अन्न समृद्धि को

और (सानसिम्) अनन्त, अनादि, सनातन, अक्षय (रयिम्) सम्पत्ति को भी (दधासि) धारण करता है, अतः तू पूजनीय है ॥ शत० ७ । २ । १ । ३३ ॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निꣳ सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णꣳ सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ १११ ॥

ऋ० १० । १४० । ५ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(ऋतावानम्) सत्य ज्ञानवान्, सत्य कर्मवान्, (महिषं) महान् (विश्वदर्शतम्) सब विद्याओं के द्रष्टा एवं सर्व प्रकार से दर्शनीय, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान्, श्रवण किये हुए (श्रुत् कर्णम्) गुरु के उपदेश को अपने कानों में सदा धारण करनेवाले अथवा गुरु के उपदेशानुसार आचरण करनेवाले, (दैव्यम्) देव, विद्वानो में कुशल (त्वा) तुझ विद्वान् (अग्निम्) ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष, राजा को (सुम्नाय) अपने सुख के लिये (पुर) पालन करने में चतुर या पालन योग्य (जना.) लोग (सुम्नाय) अपने सुख के लिये ही (दधिरे) स्थापित करते हैं । और (सप्रथस्तमम्) विस्तृत यश के पात्र तुझको (मानुषा युगा) मनुष्यों के युग, जोड़े अर्थात् सभी नर नारी (गिरा) वाणी से भी (दधिरे) प्रतिष्ठित करते हैं ॥ शत० ७ । २ । १ । ३४ ॥

आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।
भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ ११२ ॥ ऋ० १० । १४० । ६ ॥

गोतम ऋषिः सोमो । देवता । निचृद् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! (ते) तेरा (वृष्ण्यम्) प्रताप, बलशाली कार्य (विश्वत) सर्वत्र (सम-एतु) प्राप्त हो। तू (विश्वतः आप्यायस्व) सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो और (वाजस्य) वीर्यवान्, वेग या

ऐश्वर्य के निमित्त होनेवाले (सङ्गथे) संग्राम में तू विजयी (भव) हो ॥ शत० ७ । ३ । १ । ४६ ॥

सं ते पयांꣳसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो ऽअमृताय सोम दिवि श्रवांꣳस्युत्तमानि धिष्व ॥ ११३॥

ऋ० १० । १४० । ७ ॥

सोमो देवता । भुरिगार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे (सोम) सोम ! (ते) तुझे (पयांसि) पुष्टिकारक पदार्थ (सं यन्तु) प्राप्त हों । और (अभिमाति षाहः) अभिमानी शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ (वाजाः सं यन्तु) वीर्यवान् पदार्थ और वेगवान् पदार्थ तुझे प्राप्त हों । इसी प्रकार (वृष्ण्यानि) सब प्रकार के बल भी (सं यन्तु) प्राप्त हों । हे सोम ! (दिवि) आकाश में चन्द्र के समान (आप्यायमानः) प्रतिदिन बढ़ती कलाओं से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (अमृताय) 'अमृत', मोक्ष सुख, या सन्तति-परम्परा से सदा अमर या चिरस्थायी होने के लिये या अमृत, अर्थात् शतवर्ष पर्यन्त दीर्घ जीवन को प्राप्त करने के लिये (उत्तमानि) उत्तम २ (श्रवांसि) अन्नों को प्राप्त कर, उत्तम अन्न खा ॥ शत० ७ । ३ । १ । ४६ ॥

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरꣳशुभिः ।
भवा नः सुप्रथस्तमः सखा वृधे ॥ ११४ ॥

ऋ० १० । ९१ । १८ ॥

सोमो देवता । आर्च्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (मदिन्तम) अति प्रसन्नचित्त ! हे (सोम) ऐश्वर्ययुक्त राजन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (अंशुभिः) किरणों से (आप्यायस्व) वृद्धि को प्राप्त हो । तू (वृधे) वृद्धि के लिये ही (नः) हमारे (सप्रथस्तमः) अति अधिक विस्तृत यशों और गुणों से प्रसिद्ध कीर्त्तिमान् , सखा) मित्र (भव) हो ।

आ ते वृत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात् ।
अग्ने त्वाङ्कामया गिरा ॥ ११५ ॥ ऋ० । १ । ६१ । १७ ॥

वत्सार ऋषि. । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री । षड्ज· ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् पुरुष ! (वत्स) बछड़ा जिस प्रकार अपनी माता के साथ (आ यमत्) बांध दिया जाता है उसी प्रकार (परमात् चित् सधस्थात्) परम आश्रयस्थान से प्राप्त हुई (त्वां-कामया) जिस वाणी से हम तेरे प्रति अधिक प्रेम प्रदर्शन करते हैं उस (गिरा) वेद वाणी से ही तेरे चित्त को (आ यमत्) बांधा जाता है । तू उससे बद्ध होकर राष्ट्र की व्यवस्था कर । आत्मा के पक्ष में-(त्वां-कामया=आत्मानं कामया) अपने आत्मा को ही दर्शन करने की इच्छा वाली वाणी से (परमात् सधस्थात् चित्) परम आश्रय परमेश्वर से प्राप्त (गिरा) ज्ञान वाणी द्वारा (ते मन. आ यमत्) तेरा मन बंध कर एकाग्र हो ॥ शत० ७ । ३ । २ । ८ ॥

स्त्री पुरुष के प्रति—हे अग्ने ! तेजस्विन् पुरुष ! (परमात् सधस्थात्) परमस्थान, हृदय से उत्पन्न (त्वांकामया गिरा) तुझे चाहने वाली मेरी वाणी से तेरा (मन.) मन गौ के साथ बछड़े के समान (आ यमत्) सब तरफ से मेरे साथ बंधे ।

तुभ्यं ताऽअङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितय· पृथक् ।
अग्ने कामाय येमिरे ॥ ११६ ॥ ऋ० ८ । ११ । ७ ॥

विरूप ऋषि. । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अंगिरस्तम) अति अधिक ज्ञानी या जलते अंगारों के समान तेजस्विन् ! (ताः सुक्षितय.) वे नाना उत्तम प्रजाएं (पृथक्) पृथक् २ (कामाय तुभ्यं) कामना करने योग्य, कान्तिमान्, तुझ राजा को (येमिरे) प्राप्त हों ॥ शत ७ । ३ । २ । ८ ॥

स्त्री-पुरुष के पक्ष में—हे (अंगिरस्तम) अंग २ में रमण करनेवाले प्रियतम (ताः विश्वा. सुक्षितयः) वे समस्त उत्तम भूमि रूप स्त्रियां (पृथक्) पृथक् २ (कामाय तुभ्यम्) काम्यस्वरूप, सुन्दर, तुझे या तुझे अपने हृदय की कामना पूर्त्ति के लिये (येमिरे) विवाहें ।

अंगिरस्तम इति जात्यैकवचनम् ।

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।
सम्राडेको विराजति ॥ ११७ ॥ ऋ० ८ । ४३ । १८ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी जो (भूतस्य) उत्पन्न प्रजाओं और (भव्यस्य) आगामी काल में आनेवाले प्रजाजनों या सभासदों को (प्रियेषु) प्रिय लगनेवाले (धामसु) स्थानों पर भी (काम) सबसे कामना करने योग्य, सब के मनोरथों का पात्र, कान्तिमान् हो । वह (एकः) एक मात्र (सम्राड्) सम्राड् होकर (विराजति) राज्यसिंहासन पर विशेष रूप से शोभा प्राप्त करता है ॥ शत० ७।३।२।६॥

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥

[तत्र सप्तदशोत्तरशतमृचः ।]

इति मीमांसातीर्थप्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डित जयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये द्वादशोऽध्यायः ॥

॥ अथ त्रयोदशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ मयि गृह्णाम्यग्रेऽअग्निꣳ रायस्पोषाय सुप्रजा-
स्त्वाय सुवीर्य्याय । मामु देवताः सचन्ताम् ॥ १ ॥

अग्निर्देवता । आर्ची पंक्ति ककुप् वा । पञ्चम स्वर ॥

भा०—(अग्रे) सब से प्रथम (मयि) अपने मे, अपने ऊपर नियन्ता रूप में (अग्निम्) ज्ञानवान्, विद्वान्, तेजस्वी पुरुष को या परमेश्वर को (रायस्पोषाय) धनैश्वर्य समृद्धि के प्राप्त करने के लिये, (सुप्रजास्त्वाय) उत्तम प्रजाएं प्राप्त करने के लिये, (सुवीर्याय) और उत्तम वीर्य, बल प्राप्त करने के लिये (गृह्णामि) मैं स्वीकार करता हू । जिसके अनुग्रह से (देवता.) उत्तम विद्वान् या उत्तम गुण (माम् उ सचन्ताम्) मुझे प्राप्त हों ।

राजा अपने भी ऊपर विद्वान्, पुरोहित, ज्ञानवान् पुरुष को, ऐश्वर्य वृद्धि, उत्तम प्रजाओं, बल वृद्धि के लिये नियुक्त करे । इसी प्रकार अभी प्रथम अपने ऊपर उपदेशप्रद गुरु, आचार्य रूप अग्नि को रखकर (राय. पोषाय) उत्तम गुणों की पुष्टि वीर्यलाभ, ब्रह्मचर्य और उत्तम सन्तान के लिये रक्खें ॥ शत० ७ । ४ । १ । २ ॥

अपां पृष्ठमसि योनिरग्नेः समुद्रमभितः पिन्वमानम् ।
वर्धमानो महाँ२ऽ आ च पुष्करे दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथस्व ॥२॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० ११ । २९) । शत० ७ । ४ । १ । ९ ॥

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽआवः ।
स बुध्न्या ऽउपमा ऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥३॥

अथर्व० ४ । १ । १ ॥

ब्रह्मा ऋषिः । आर्ची त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

त्) सब से प्रथम (जज्ञानम्) प्रकट हुई। (प्रथमम्) सब से अधिक विस्तृत (ब्रह्म) सब से महान्, ब्रह्म रूप परमात्मा की शक्ति को (वेन.) वही कान्तिमान्, प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (सीमत) समस्त लोकों के बीच मे व्यवस्था रूप से व्याप्त होकर (सुरुचः) समस्त रुचिकर तेजस्वी सूर्यों को (वि आवः) विविध रूप से प्रकट करता है। (सः) वही परमेश्वर (अस्य) इस महान्शक्ति के (उपमा) बतलानेवाले निदर्शक (विष्ठा.) नाना स्थलो मे और नाना रूपो में स्थित (बुध्न्या) आकाशस्थ लोको को भी (वि आवः) विविध रूप से प्रकट करता है। और वही परमेश्वर (सत च) इस व्यक्त जगत् के और (असत. च योनिम्) अव्यक्त मूल कारण के भी आश्रयस्थान आकाश को भी (वि वः) प्रकट करता है।

राष्ट्र पक्ष में—सब से प्रथम ब्रह्मशक्ति उत्पन्न होती है। वही मर्यादा से (सुरुचः) तेजस्वी क्षत्रियों को भी प्रकट करती है। वही (अस्य विष्ठाः उपमा) इस राष्ट्र के विशेष स्थितिवाले ज्ञानी (बुध्न्या) आश्रय भूत वैश्यवर्ग को उत्पन्न करता है। और वही (सतः असतः च योनिम् विवः) सत् और असत् के आश्रय सामान्य प्रजा को भी उत्पन्न करता है॥ शत० ७। ४। १। १४॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ४॥

ऋ० १०। १२१। १॥

हिरण्यगर्भ ऋषिः। कः प्रजापतिर्देवता। आर्ची त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अग्रे) सृष्टि के आदि में (हिरण्यगर्भः) स्वर्ण के समान दीप्त सूर्यों और ज्ञानी पुरुषों को अपने गर्भ में धारण करनेवाला, सब का वशी (भूतस्य) इस उत्पन्न होनेवाले विश्व का (एकः) एकमात्र (जातः) उत्पादक और (पतिः) पालक (आसीत्) रहा और (सम्

अवर्त्तत) उसमें व्याप्त होकर सदा रहता भी है। और (स॰) वही (इमाम् पृथिवीम्) इस सर्वाश्रय पृथिवी को और (द्याम् उत) आकाश या तेजोदायी सूर्यादि को भी (दाधार) धारण करता है (कस्मै) उस सुखस्वरूप प्रजापति की हम (हविषा) भक्तिपूर्वक (विधेम) उपासना करें ॥ शत० ७ । ४ । १ ॥ १८ ॥

राष्ट्र के पक्ष में—(हिरण्यगर्भः) सुवर्ण, कोश का ग्रहण करनेवाला उसका स्वामी, समस्त राष्ट्र के उत्पन्न प्राणियों का एकमात्र पालक है। वह ही (पृथिवीम्) पृथिवीस्थ नारियों और (द्याम्) सूर्य के समान पुरुषों को भी पालता है। उसी प्रजापति राजा की हम (हविषा) अन्न और आज्ञा पालन द्वारा सेवा करें।

द्रप्सश्चस्कन्द पृथिवीमनु द्यामिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥ ५ ॥

अथर्व० १८ । ४ । २८ ॥

ईश्वर, आदित्यो देवता । विराड् आर्षी त्रिष्टुप् ॥

भा०—(द्रप्स॰) आदित्य का तेज (पृथिवीम् अनु) पृथिवी पर (चस्कन्द) प्रकाश और मेघ जल के रूप में प्राप्त होता है। (अनु द्याम्) और फिर वह आकाश में जाता है। (य॰ च पूर्व) जो स्वयं वह आदि में पूर्व या पूर्ण है वह (इमं च योनिम् अनु) इस स्थान को भी प्राप्त होता है। इस प्रकार (समानम् योनिम् अनु) अपने समान अनुरूप आश्रय-स्थान को प्राप्त करते हुए (द्रप्स) हर्ष के कारणरूप आदित्य को जिस प्रकार (सप्त होत्राः) सातों आदानकारी दिशाओं में फैलता देखते हैं उसी प्रकार हम (द्रप्सं) आनन्द और हर्ष के हेतु वीर्य को (सप्त होत्रा.) सातों प्राणों में (अनुजुहोमि) संचारित करूं।

१—अथात पुष्करपर्णाद्युपधानम् ॥ ककुप् । सर्वा० । वत्सार ऋषिः । द० ॥

राष्ट्र-पक्ष मे—(द्रप्सः) प्रजा के हर्षजनक राजा (य. च पूर्व) जो पूर्ण शक्तिमान् है वह (पृथिवीम् अनु द्यामनु च) पृथिवी को और सूर्य को अनुकरण करता हुआ (पृथिवीम् चस्कन्द) पृथिवी को प्राप्त होता है। (योनिम्) अपने भूलोक के समान (सं चरन्तं) समान रूप से संचरण करनेवाले (द्रप्सं) हर्षकारी आदित्य के समान तेजस्वी पुरुष को (सप्त होत्रा अनु) सात प्राणों में वीर्य के सामान सातो दिशाओं में सूर्य के समान (जुहोमि)[1] स्थापित करता हूं॥ शत० ७।४।१।२०॥

नमोऽस्तु सुर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये ऽअन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सुर्पेभ्यो नमः ॥ ६ ॥

अथर्व० ३।२६।२७॥

सर्पा देवता । भुरिगुष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—(ये के च) जो कोई भी (पृथिवीम् अनु) इस पृथिवी पर और (ये) जो अन्तरिक्ष में और (ये दिवि) जो दूर आकाश में विद्यमान लोक हैं (तेभ्य) उन (सर्पेभ्य.) सर्पण स्वभाव लोकों को (नमः) अन्न प्राप्त हो और (तेभ्य· सर्पेभ्यः नमः) उन सर्प के स्वभाव वाले दुष्ट पुरुषों का उत्तम रीति से दमन हो।

इमे वै लोकाः सर्पा; या एव एषु लोकेषु नाष्ट्रा, व्यद्वरो या शिमिदा तदेवैतत्सर्वं शमयति॥ शत० ७।४।१।२८॥

अथवा राष्ट्र में राजाओं के प्रति जानेवाले, प्रजाओं में फैले हुए और अन्तरिक्ष अर्थात् शासकजनों में फैले हुए (सर्पेभ्यः) गुप्त रूप से गतिशील चरों की (नम) हम नियम-व्यवस्था करे।

या ऽइषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीँ२१ ऽरनु ।
ये वावटेषु शेरते तेभ्यः सुर्पेभ्यो नमः ॥ ७ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। अनुष्टुप् छन्द'। गाधारः॥

५—१. जुहोति स्थापयामीति उव्वट ।

भा०—(याः) जो (यातुधानानां) प्रजा को पीड़ा देनेवाले दुष्ट पुरुषों के (इषव) शस्त्र हैं अर्थात् उनके द्वारा चलाये हथियारों के समान प्रजा के नाशकारी है (ये वा) और जो (वनस्पतीन् अनु) वृक्षों के आश्रित सर्पों के समान प्रजा को आश्रय देनेवाले माण्डलिक भूपतियों के अधीन रहते हैं। (ये अवटेषु) जो गढ़ों मे रहने वाले सांपों के समान प्रजा की निचली श्रेणियों में (शेरते) गुप्त रूप से रहते हैं (तेभ्यः सर्पेभ्य.) उन सब कुटिल स्वभाव के लोकों का भी (नमः) दमन हो ॥ शत० ७ । ४ । १ । २६ ॥

ये वामी रोचने दिवो ये वा सूर्यस्य रश्मिषु।
येषामप्सु सदस्कृतं तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ ८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्। अनुष्टुप्। गाधारः॥

भा०—(ये) जो (दिवः) सूर्य या विद्युत् के (रोचने) प्रकाश मे और (ये वा) जो (सूर्यस्य रश्मिषु) सूर्य की रश्मियों में चलते फिरते हैं और (येषाम्) जिनका (अप्सु) जलों के भीतर (सद) निवास-स्थान, आश्रय दुर्ग (कृतम्) बना है (तेभ्य) उन (सर्पेभ्य·) कुटिल लोकों को भी राजा (नम) अपने वश करे ॥ शत० ७ । ४ । १ । ३० ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वी याहि राजेवामवाँ२ऽ इभेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥ ९ ॥
ऋ० । ४ । ४ । १ ॥

देवा वामदेवश्च ऋषय । अग्नि· प्रतिसरो वा देवता । रक्षोघ्नी ऋक्। भुरिक् पक्ति । त्रिष्टुप् वा । पञ्चमो धैवतो वा ।

भा०—हे राजन् ! हे सेनापते ! तू (पाज· कृणुष्व) बल को उत्पन्न कर, राष्ट्र के पालन और दुष्ट दमन के सामर्थ्य को उत्पन्न कर। तू (अमवान्)

९—वामदेव ऋषि । द० ।

सहायक अमात्य पुरुषों से युक्त होकर (प्रसितिम्) सुप्रबद्ध, सुव्यवस्थित पृथिवी को (इभेन) हस्तिबल से (राजा इव) राजा के समान (याहि) प्राप्त हो। अथवा—(प्रसितिं न पाजः कृणुष्व) तू अपने बल को विस्तृत जाल के समान बना। जिसमें समस्त प्रजाएं बधें। (राजा इव अमवान् इभेन पृथिवीं याहि) राजा के समान सहायक पुरुषो से युक्त होकर हस्ति-बल से पृथ्वी को प्राप्त कर। और पृथ्वी, अति वेगवाली, बलवती (प्रसिति-म् अनु) उत्कृष्ट बन्धनो से युक्त राजव्यवस्था के अनुसार (रक्षसः) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (द्रूणान.) विनाश करता हुआ तू उनपर (अस्ता असि) बाण आदि शस्त्रों के फेकने वाला ही हो और (रक्षसः) विघ्नकारी पुरुषों को (तपिष्ठैः) अति संतापजनक शस्त्रों से (विध्य) ताडना कर, दण्डित कर ॥ शत० ७। ४। १। ३४॥

तव॑ भ्र॒मास॑ऽआशु॒या प॑त॒न्त्यनु॑ स्पृश धृष॒ता शोशु॑चानः।
तपू॑ᳪ᳚ष्यग्ने जु॒ह्वा पत॒ङ्गानस॑न्दितो॒ विसृ॑ज॒ विष्व॑गु॒ल्काः॥ १०॥

ऋ० ४। ४। २॥

वामदेव ऋषि । रक्षोहा अग्निर्देवता। भुरिक् पक्ति । त्रिष्टुप् वा।
पञ्चमो धैवतो वा॥

भा०—हे राजन्! जिगीषो! (तव) तेरे (आशुया) शीघ्र गमन करने वाले (भ्रमासः) भ्रमणशील वीर जन (पतन्ति) वेग से जायं और तू (शोशुचानः) अति तेजस्वी होकर (धृषता) शत्रु के मान नष्ट करने मे समर्थ बल से युक्त होकर (अनु स्पृश) उनके पीछे लगा रह। हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! राजन्! सेनानायक! तू (असंदित.) शत्रु के जाल में न पड़ कर, अखण्डित बल होकर (जुह्वा) शस्त्रों को प्रेरण करने वाली सेना से (तपूंषि) सन्तापकारी अस्त्रो को (विसृज) नाना प्रकार से छोड़। (पतङ्गान्) तीव्र घोड़ों को या घुड़सवारों को या

बाणों को (वि सृज) छोड़। और (विश्वग्) सब ओर (उल्का.) टूटते तारों के समान वेग और दीप्ति से आकाश मार्ग से जाने वाले अग्निमय अशनि नामक अस्त्रों को (वि सृज) चला।

प्रति॒ स्पशो॒ वि सृ॑ज॒ तूर्णि॑तमो॒ भवा॑ पा॒युर्वि॒शोऽअ॒स्याऽअद॑ब्धः।
यो नो॑ दू॒रेऽअ॒घश॑ꣳसो॒ यो॒ऽअन्त्य॑ग्ने॒ मा कि॑ष्टे॒ व्यथि॒राद॑धर्षीत्॥११॥

ऋ० ४।४।३॥

वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—(य. अघशंस.) जो पापाचरण करने को कहता है वह (य.) और जो (न) हमारे से (दूरे) दूर है और (य) जो (अभि) हमारे पास है हे (अग्ने) अग्रनायक राजन्! वह भी (व्यथि) हमे व्यथादायी होकर (ते) तेरा (मा आदधर्षीत्) आज्ञा भग कर अपमान न कर सके। इसलिये तू (तूर्णितम·) अति वेगवान् होकर (स्पश) प्रतिहिंसक योद्धा, प्रतिभटों को और अपने दूतों को (प्रति विसृज) शत्रु के प्रति भेज। और स्वय (अदब्ध.) शत्रु से मारा न जा कर, सुरक्षित रहकर (अस्या· विश) इस प्रजा का (पायु.) पालन करने हारा (भव) हो।

उद॑ग्ने तिष्ठ॒ प्रत्या त॑नुष्व॒ न्य॒मित्राँ॑२ऽओषतात्तिग्महेते।
यो नो॒ऽअरा॑तिꣳसमिधान च॒क्रे नी॒चा तं ध॑क्ष्यत॒सं न शुष्क॑म्॥१२॥

ऋ० ४।४।५॥

वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिः। पञ्चम ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! सेनापते! राजन्! तू (उत् तिष्ठ) उठ, शत्रु के प्रति आक्रमण करने के लिये तैयार हो। (प्रति आतनुष्व) शत्रु के विपरीत अपने बल और राज्य को विस्तृत कर। हे (तिग्महेते) तीक्ष्ण शस्त्रों से युक्त राजन्! तू (अमित्रान्) शत्रुओं को (निः ओषतात्) सर्वथा जला डाल। हे (सम्-इधान) उत्तम तेजस्विन्! (यः) जो

(न) हमारे साथ (अरातिम्) शत्रुता का व्यवहार (चक्रे) करता है। (तम्) उसको (शुष्कम्) सूखे वृक्ष को अग्नि के समान (नीचा धक्षि) नीचे गिराकर जला डाल।

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने।
अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्रमृणीहि शत्रून्।
अग्नेष्ट्वा तेजसा सादयामि॥ १३॥

वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्ष्यतिजगती। निषाद ॥

भा०—हे अग्ने ! तेजस्विन् राजन् ! तू (ऊर्ध्वः) सब से ऊंचा हो कर (भव) रह। (दैव्यानि) दिव्य पदार्थों से बने विद्वान् पुरुषों के बनाये अस्त्रों को (आविः कृणुष्व) प्रकट कर। (स्थिरा) स्थिर, दृढ़ धनुषों को (अव तनुहि) नमा। (यातुजूनाम्) वेग से चढ़ाई करने वाले शत्रुओं के (जामिम्) सम्बन्धी और (अजामिम्) असम्बन्धी अथवा (यातुजूनां जामिम् अजामिम्) आक्रमण के वेग में आनेवाले शत्रुओं के भोजन द्रव्य, तथा उससे अतिरिक्त द्रव्य को अपने वश करके (शत्रून् प्रमृणीहि) शत्रुओं का नाश कर। हे राजन् ! हे वज्र ! (त्वा) तुझको (अग्ने) अग्नि के (तेजसा) तेज से (सादयामि) स्थापित करता हूं॥ शत० ७।४।१।७॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति। इन्द्रस्य त्वौजसा सादयामि॥ १४॥

ऋ० ८।४४।१६॥

भा०—व्याख्या देखो० अ० ३।१२॥ जिस प्रकार (दिवः मूर्धा) द्यौलोक का शिरो भाग (अग्निः) सूर्य है और वह ही (ककुत्पतिः) सबसे बड़ा स्वामी है और (पृथिव्या) पृथिवी का भी स्वामी है उसी प्रकार (अयम्) यह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष, राजा भी (दिवः)

प्रकाशमान तेजस्वी पुरुषों या राजसभा का (मूर्धा) शिर, उनमें शिरोमणि (ककुत्) सर्वश्रेष्ठ, (पृथिव्याः) पृथिवी का (पति) पालक, स्वामी है। (अपाम्) सूर्य जिस प्रकार जलों के (रेतांसि) वीर्यों को या सार-भागों को ग्रहण करता है उसी प्रकार यह राजा भी (अपा) आप्त प्रजाओं के सार भाग, वीर्यों और बलों को (जिन्वति) परिपूर्ण करता है। वश करता है। हे तेजस्विन् ! (त्वा) तुझको (इन्द्रस्य ओजसा) इन्द्र, वायु और सूर्य के (तेजसा) बल पराक्रम के साथ (सादयामि) स्थापित करता हूं॥ शत० ७ । ४ । १ ४१ ॥

भुवो॑ य॒ज्ञस्य॒ रज॑सश्च ने॒ता यत्रा॑ नि॒युद्भि॒ः सच॑से शि॒वाभि॑ः ।
दि॒वि मू॒र्द्धानं॑ दधिषे स्व॒र्षां जि॒ह्वाम॑ग्ने चकृषे हव्य॒वाह॑म् ॥ १५ ॥

त्रिशिरा ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन् ! तेजस्विन् ! सूर्य और अग्नि जिस प्रकार (भुवः यज्ञस्य रजस च नेता) पृथिवी, वायु और लोकों का नायक है और वह (नियुद्भि शिवाभि) मङ्गलकारिणी वायु की शक्तियों से युक्त होता है और (दिवि मूर्धानम् मेदधिषे) द्यौलोक में शिरो भाग के समान सर्वोच्च स्थिति को धारण करता है और अग्नि जिस प्रकार(हव्यवाहं जिह्वां चकृषे) हवि को खाने वाली ज्वाला को भी प्रकट करता है उसी प्रकार (यत्र) जिस राष्ट्र में तू (भुव) समस्त पृथिवी का (नेता) नायक और (यज्ञस्य नेता) समस्त राष्ट्र-व्यवस्था का नायक और (रजस च नेता) समस्त लोकसमूह, जनसमूह और समस्त ऐश्वर्यों का नेता, प्राप्त करनेवाला होकर (शिवाभि) मङ्गलकारिणी (नियुद्भिः) वायु के समान तीव्र वेगवाली शत्रु को छेदन भेदन करनेवाली सेनाओं से भी (सचसे) युक्त होकर रहता है और (दिवि) न्याय प्रकाशयुक्त श्रेष्ठ व्यवहार में (मूर्धान) शिरोभाग, सर्वोच्च पद को (दधिषे) धारण करता है और

(हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य, ज्ञान से पूर्ण आज्ञा वचनों को प्राप्त करानेवाली (स्वर्षाम्) सुखदायिनी (जिह्वाम्) वाणी, आज्ञा को भी (चकृषे) प्रकट करता है ॥ शत० ७ । ४ । १ । १५ ॥

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा ।
मा त्वा समुद्रऽउद्वधीन्मा सुपर्णोऽव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह ॥१६॥

आतृण्णा अग्निर्वा देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ।

भा०—हे पृथिवि ! हे राजशक्ते ! हे स्त्रि ! तू (ध्रुवा असि) ध्रुव, सदा निश्चल भाव से रहनेवाली (असि) हो । (धरुणा) तू समस्त लोकों का आश्रय है और तू (विश्वकर्मणा) समस्त उत्तम कर्मों को करने में समर्थ शिल्पियों या प्रजापति, राजा द्वारा (आस्तृता) नाना उत्तम उपयोगी पदार्थों से आच्छादित एवं सुरचित रह । (समुद्रः) समुद्र या आकाश (त्वा) तुझको (मा उद्वधीत्) विनाश न करे । (सुपर्णः) उत्तम पालन करने वाले राज्यसाधनों से युक्त राजा भी (त्वा मा उद्वधीत्) तुझे न मारे । तू (अव्यथमाना) स्वयं पीड़ित न होकर (पृथिवीं) पृथिवी को या पृथिवी निवासिनी विशाल प्रजा को (दृंह) बढ़ा ।

यज्ञ में इस मन्त्र से 'आतृण्णा' का स्थापन करते हैं । 'आतृण्णा' पद से ब्राह्मणकार ने पृथिवी, अन्न, प्राण प्रतिष्ठा, स्त्री और पृथ्वीनिवासी लोकों को ग्रहण किया है । अन्नं वै स्वयम् आतृण्णा । प्राणो वै स्वयमातृण्णा । इयं (पृथिवी) स्वयमातृण्णा । या सा प्रतिष्ठा एषा सा प्रथमा स्वयमातृण्णा । इमे वै लोकाः स्वयमातृण्णा । इमे वै लोकाः प्रतिष्ठा ॥ शत० ७ । ४ । २ । १ । १० ॥

स्त्री पक्ष में—हे स्त्रि ! तू ध्रुव हो, तू सब गृहस्थ सुखों का (धरुणा) आश्रय है । तू (विश्वकर्मणा अस्तृता) समस्त धर्म कार्यों के करने वाले

१६—ऊर्ध्वबृहती सर्वा० ।

पति द्वारा सुरक्षित हो (समुद्रः त्वा मा उद्वधीत्) समुद्र के समान उमड़ने वाला कामोन्माद तुझे नाश न करे (सुपर्णः) उत्तम पालक साधनों से सम्पन्न पति भी तुझे न मारे । तू (अव्यथमाना) निर्भय, पीड़ा, कष्ट से रहित रहकर (पृथिवी) पृथिवी के समान अपने शरीर में विद्यमान पुत्र-प्रजननाङ्ग रूप भूमि को (दृंह) वृद्धि कर उनको हृष्ट पुष्ट कर ॥ शत० ७ । ४ । २ । ५ ॥

समुद्र इव हि कामः । नहि कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य । तै० २।२।५।६॥

पृथिवी पक्ष में—वह ध्रुव, स्थिर, सर्वाश्रय है । बड़े शिल्पी उसको बड़े २ महल, सेतु उद्यान आदि आश्चर्यजनक पदार्थों और रक्षा साधन आदि द्वारा सुरक्षित रखें । समुद्र, अन्तरिक्ष और (सुपर्ण) सूर्य और वायु ये पृथ्वी की शक्तियों का नाश न करें । प्रत्युत वह अपनी निवासी प्रजा की ही वृद्धि करे ।

प्रजापतिष्ट्वा सादयत्वपां पृष्ठे समुद्रस्येमन् ।
व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं प्रथस्व पृथिव्यसि ॥ १७ ॥

प्रजापतिर्देवता । अनुष्टुप् । गाधार ॥

भा०—हे पृथिवी निवासिनी प्रजे ! अथवा राज्यशक्ते ! (व्यचस्वतीम्) नाना प्रकार के उत्तम गुणों वाली (प्रथस्वतीम्) उत्तम रूप से विस्तारशील (त्वा) तुझको (प्रजापति) प्रजा का स्वामी (अपां पृष्ठे) जलों के पृष्ठ पर नौका के समान और (समुद्रस्य एमन्) समुद्र के यातव्य, यात्रायोग्य स्थान में (सादयतु) स्थापित करे हे प्रजे ! तू भी (पृथिवी असि) विस्तृत होने से हे राजशक्ते ! तू भी 'पृथिवी' कहाती है ॥ शत० ७।४।२।६॥

स्त्री के पक्ष में—(प्रजापति) प्रजा का पालक पति (समुद्रस्य एमन्) समुद्र के समान अपार कामोपयोगों में भी (अपां पृष्ठे) आप्त पुरुषों के अथवा समस्त कार्यों के (पृष्ठे) आश्रय में (वि-अचस्वतीं)

विविध गुणों से प्रकाशित और (प्रथस्वतीम्) गुणों से विख्यात, प्रजा विस्तार करने हारी तुझको (सादयतु) स्थापित करे उनके बतलाये धर्म-मार्ग पर चलावे । तू (पृथिवी असि) पृथिवी के समान प्रजोत्पत्ति करने हारी है ।

भूर॑सि भूमि॑र॒स्यदि॑तिरसि वि॒श्वधा॑या विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य ध॒र्त्री । पृ॒थि॒वीं य॑च्छ पृ॒थि॒वीं दृ॑ꣳह पृ॒थि॒वीं मा हि॑ꣳसीः ॥ १८ ॥

अग्निर्देवता । प्रस्तारपङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे पृथिवि ! हे स्त्रि ! तू (भूः असि) सब को उत्पन्न करने में समर्थ होने से 'भूः' है । (भूमिः असि) सब का आश्रय होने से 'भूमि' है । (अदितिः असि) अखण्डित, अहिंसनीय, अखण्डित बल और चरित्र वाली होने से 'अदिति' है । (विश्वधाया) समस्त प्रजाओं को धारण करने वाली होने से 'विश्वधाया' है । (विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री) समस्त 'भुवन', उत्पन्न होने वाले प्राणियों और राज्य कार्यों को धारण पोषण करने हारी है । हे राजन् ! तू इस (पृथिवीं यच्छ) पृथिवी को और हे पते ! तू इस प्रजा को भूमि रूप स्त्री को (यच्छ) नियम में सुरक्षित रख या विवाह कर (पृथिवीम् दृंह) इस पृथिवी को बढ़ा, दृढ़ कर । (पृथिवीं मा हिंसीः) इस पृथिवी को विनाश मत कर, मत मार, पीड़ा मत दे ॥ शत० ७ । ४ । २ । ७ ॥

विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नायो॑दा॒नाय॑ प्रति॒ष्ठायै॑ च॒रित्रा॑य । अ॒ग्निष्ट्वा॒भिपा॑तु म॒ह्या स्व॒स्त्या छ॒र्दिषा॒ शन्त॑मेन॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ १९ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगति जगती । निषादः ॥

भा०—(विश्वस्मै=विश्वस्य) समस्त जंगम संसार के (प्राणाय) प्राण रक्षा, जीवन वृद्धि के लिये, (अपानाय) अपान के लिये या दुःख निवारण के लिये, (व्यानाय) व्यान या विविध व्यवहारों के लिये;

(उदानाय) उदान के लिये और उत्तम बल-प्राप्ति के लिये (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा और (चरित्राय) सच्चरित्रता की रक्षा के लिये (त्वा) तेरी (अग्निः) ज्ञानवान् अग्रणी नायक राजा और यति भी (मह्या) बड़ी (स्वस्त्या) सुख सामग्री से और (शंतमया) अतिशान्तिदायक, कल्याणकारिणी (छर्दिषा) गृहादि समृद्धि से (अभियातु) सब प्रकार से रक्षा करे, पालन करे। तू भी (तया देवतया) उस देवस्वरूप पति, पालक या राजा के संग (अंगिरस्वत्) अग्नि के समान तेजस्विनी होकर (ध्रुवा) स्थिर, दृढ़ होकर (सीद) विराजमान् हो, प्रतिष्ठा को प्राप्त हो॥ शत० ७ । ४ । २ । ८ ॥

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥ २० ॥

पत्नी दूर्वा देवता । अग्निर्ऋषिः । अनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—हे (दूर्वे) दूर्वे ! कभी पराजित न होने वाली अदम्य राजशक्ते ! दूर्वा या दूब घास जिस प्रकार (काण्डात् काण्डात्) प्रत्येक काण्ड पर (प्ररोहन्ती) अपने मूल जमाती हुई और (परुष परुष परि), प्रत्येक पोरु २ पर से (प्ररोहन्ती) अपनी जड़ पकड़ती हुई फैलती है उसी प्रकार वह राज्यशक्ति भी पृथ्वी पर (काण्डात् काण्डात्) प्रत्येक काण्ड से और (परुषः परुषः) प्रत्येक पोरु से, प्रत्येक अंग और विभाग से, स्थान २ पर दृढ़ आसन या मूल जमाती हुई (सहस्रेण) हज़ारों और (शतेन च) सैकड़ों प्रकार के बलों से (प्रतनु) अपने आप को खूब विस्तृत कर ॥ शत० ७ । ४ । २ । १४ ॥

'दूर्वा'—अयं वाव मा धूर्वीत् इति यदब्रवीद् 'धूर्वीन् मा' इति तस्मात् धूर्वा । धूर्वा ह वै ता दूर्वेत्याचक्षते परोक्षम् ॥ शत० ७ । ४ । २ । १२ ॥

स्त्री पक्ष में—वह स्त्री (काण्डात् काण्डात्) ग्रन्थि २ पर और

पोरु २, पर बढ़ती हुई दूब के समान बराबर दृढ़ मूल होकर सहस्रों शाखाओं से हमारे कुल को बढ़ावे।

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि।
तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥ २१ ॥

दूर्वा पत्नी देवता। अग्निर्ऋषिः। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे दूर्वा के समान पृथ्वी पर फैलने वाली राज्यशक्ते ! तू (या) जो (शतेन) सैकड़ों बलों से (प्रतनोषि) अपने को विस्तृत करती है और (सहस्रेण) अपने हज़ारों वीर योद्धाओं द्वारा (विरोहसि) विविध रूपों में अपना जड़ जमाती है। हे (देवि) देवि ! विजयशीले ! धन-दात्रि ! (इष्टके) सब को इष्ट या प्रिय लगनेवाली, सबकी व्यवस्था करने वाली (तस्या. ते) उस तेरा (वयम्) हम (हविषा) अन्न आदि, कर आदि रूप में दातव्य और राजा द्वारा उपादेय पदार्थों से या ज्ञानपूर्वक (विधेम) सेवन या विधान या निर्माण करें ॥ शत० ७ । ४ । २ । १५ ॥

यास्तेऽअग्ने सूर्ये रुचो दिवमातन्वन्ति रश्मिभिः।
ताभिर्नोऽअद्य सर्वाभी रुचे जनाय नस्कृधि ॥ २२ ॥

इन्द्राग्नी ऋषी। अग्निर्देवता। भुरिगनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् राजन् ! जिस प्रकार सूर्य में विद्यमान (रुच.) कान्तियां (रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से (दिवम्) द्यौलोक को (आतन्वन्ति) घेर लेती हैं उसी प्रकार (या) जो (ते) तेरी (सूर्ये) सूर्य के समान उज्ज्वल, मानास्पद स्वरूप में विद्यमान (रुचः) दीप्तियां, उत्तम ख्यातियां या उत्तम कामनाएं या अभिलाषाएं (रश्मिभिः) सब को प्रकाश देने वाले साधनों से (दिवम् आ तन्वन्ति) प्रकाश को फैलाती हैं (ताभिः सर्वाभिः) उन सब अभिलाषाओं से (अद्य) अब, सदा तू (नः) हमारे और (जनाय) प्रजा जन के (रुचे)

अभिलाषा पूर्त्ति के लिये (कृधि) प्रयत्न कर । और (नः) हमें भी (जनाय रुचे कृधि) प्रजा की अभिलाषा पूर्त्ति के लिये समर्थ कर ॥ शत० ७ । ४ । २ । २१ ॥

या वो॑ दे॒वाः सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु या रुच॑: ।
इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभि॒: सर्वा॑भी॒ रुच॑ नो धत्त बृहस्पते ॥ २३ ॥

इन्द्राग्नी ऋषी । देवा. इन्द्राग्नी बृहस्पतिश्च देवता· । अनुष्टुप् गाधार ॥

भा०—हे (देवा) ज्ञानप्रद एवं ऐश्वर्यप्रद विद्वान् पुरुषो ! और राजा लोगो ! (वः) तुम लोगों की (या) जो (सूर्ये रुचः) सूर्य में विद्यमान दीप्तियों के समान फुरने वाली कान्तियां या अभिलाषाएं या रुचिकर प्रवृत्तियें हैं और (याः रुच) जो मनोहर लक्ष्मी, सम्पत्तियां (गोषु अश्वेषु) गौओं और अश्वों में हैं (ताभि. सर्वाभिः) उन सब रुचिकर समृद्धियो से हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र ! हे अग्ने ! और हे (बृहस्पते) हे सेनापते ! हे राजन् ! हे विद्वन् ब्रह्मन् ! आप सब लोग (न.) हमें (रुचः) समस्त रुचिकर सम्पत्तियां (धत्त) प्रदान करें ॥ शत० ७ । ४ । २ । २१ ॥

वि॒राड्ज्योति॑रधारयत्स्व॒राड्ज्योति॑रधारयत् ।
प्र॒जाप॑तिष्ट्वा सादयतु पृ॒ष्ठे पृ॑थि॒व्या ज्योति॑ष्मतीम् ।
विश्वे॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्व॒ ज्योति॑र्यच्छ ।
अ॒ग्निष्टेऽधि॑पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥ २४ ॥

विराट् स्वराट् । प्रजापतिरग्निश्च देवता. । निचृद् बृहती । ऋषभ. ॥

भा०—(विराट्) विविध प्रकारों से और विविध ऐश्वर्यों से प्रकाशमान विराट्, पृथिवी जिस प्रकार (ज्योति) अग्नि को या सूर्य के तेज को अपने भीतर (अधारयत्) धारण करती है उसी प्रकार (विराट्) विविध गुणों से कान्तिमती विराट् पत्नी (ज्योतिः) अपने पति के तेजस्वरूप वीर्य को धारण करती है ।

(स्वराट् ज्योति अधारयत्) स्वयं अपने प्रकाश से दीप्त होने वाला सूर्य जिस प्रकार (ज्योतिः अधारयत्) तेज को धारण करता है उसी प्रकार अपने वीर्य या बाहु पराक्रम से प्रकाशमान राजा और अपने गुणों से प्रकाशमान पति, पुरुष भी तेज को धारण करे। हे पति ! (त्वा ज्योतिष्मतीम्) तुझ उत्तम तेज से सम्पन्न को (प्रजापतिः) प्रजा का पालक (पृथिव्याः पृष्ठे सादयतु) पृथिवी के पृष्ठ पर स्थापित करे। अथवा पति तुझ उत्पादक भूमि मे वीर्य आधान करे। इसी प्रकार (प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा हे प्रजे ! (त्वा ज्योतिष्मतीम्) तुझ ऐश्वर्य वाली को (पृथिव्याः पृष्ठे) पृथ्वी-तल पर (सादयतु) बसावे। (विश्वस्मै प्राणाय अपानाय व्यानाय) सब प्रजाजनों के प्राण, अपान और व्यान इन शक्तियों की वृद्धि के लिये यत्न करे। हे राजन् ! तू (विश्वं ज्योतिर्यच्छ) सब प्रकार का तेज प्रदान कर। हे पृथिवि ! हे पत्नि ! (ते अधिपतिः) तेरा अधिपति, स्वामी, (अग्निः) अग्नि या सूर्य के समान हो। (तया देवत्या) उस देवस्वभाव अधिपति के साथ या देव, राजागण के संग तू भी (अंगिरस्वत्) अग्नि के समान देदीप्यमान विद्वान् शिल्पियों से समृद्ध होकर (ध्रुवा) स्थिर होकर (सीद) विराज ॥ शत० ७ । ४ । २ । २३ । २८ ॥

इसी प्रकार स्त्री (अस्मै विश्वं ज्योतिः) अपने पति के समस्त सर्वाङ्ग तेजोरूप वीर्य को प्रजा के प्राण, अपान व्यान के लिये नियम मे रक्खे।

[१] मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतू ऽअग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। [२] ये ऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽइमे वासन्तिकावृतू ऽअभिकल्पमाना ऽइन्द्रमिव देवा ऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥२५॥

ऋतवो देवता । (१) भुरिगति जगती । निषाद । (२) भुरिग् ब्राह्मी बृहती । मध्यम ॥

२५—'वासन्तिका ऋ०' इति काण्व० ।

भा०—(मधु च) मधु और (माधवः च) माधव अर्थात् चैत्र और वैशाख के दोनों (वासन्तिकौ ऋतू) वसन्त के दो ऋतु अर्थात् मास रूप से दो स्वरूप है। ये दोनों जिस प्रकार सवत्सर स्वरूप अग्नि के बीच में (श्लेषः) जोड़ने वाले हैं, उसी प्रकार मधु के समान मधुर गन्ध और पुष्प युक्त और माधव या वैशाख के समान फलोत्पादक दोनो प्रकार के पुरुष मानो (अग्ने) राजा रूप प्रजापति के दोनों वसन्त ऋतु के दो मासो के समान उसके (अन्त) भीतर (श्लेष असि) स्नेहशील होते है और दो राजाओं के बीच सन्धि कराने मे कुशल होते हैं। इनके द्वारा ही (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि के समान नर और नारी, राजा और प्रजा (कल्पेताम्) कार्य करने मे समर्थ होते हैं। (आप ओषधय· कल्पन्ताम्) और जिस प्रकार वसन्त के दोनों मासो के द्वारा सम्पूर्ण ओषधियां वीर्यवान् होती हैं उसी प्रकार वीर्यवती बलवती वीर प्रजायें भी मधु माधव के समान पुष्प-फलजनक हो और प्रजाएं भी कार्य-कारण को देख परस्पर सन्धि के कराने वाले सदस्य जनो के द्वारा समर्थ होती हैं। और जैसे वसन्त के दोनो मास ज्येष्ठ मास में होने वाले ओषधि आदि के कारण होते है उसी प्रकार सभी (अग्नय.) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् लोग (मम) मेरे–मुझ राजा के सर्वश्रेष्ठ पदाधिकार की प्राप्ति और रक्षा के लिये (सव्रता.) समान कार्य मे दीक्षित होकर (पृथक्) अलग २ भी (कल्पन्ताम्) अपना २ कार्य करने मे समर्थ हों। और (ये) जो (द्यावापृथिवी) द्यौ और भूमि दोनो के बीच या राजा और प्रजा के बीच में (समनस) एक समान चित्त वाले, प्रेमी (अग्नय) विद्वान् पुरुष हैं वे सब भी (वासन्तिकौ ऋतू) वसन्त काल के दो मास चैत्र वैशाख के समान मधुर गुणो से युक्त होकर राजा के लिये सुखकारी और (अभिकल्पमाना) सामर्थ्यवान् होकर (देवा. इन्द्रम् इव) प्राणगण जिस प्रकार आत्मा के आश्रय पर रहते हैं उसी प्रकार वे सब अग्नि स्वभाव तेजस्वी विद्वान् सदस्य और माण्डलिक राजगण भी (इन्द्रम् अग्निम् सं विशन्तु) बड़े सम्राट् के चारों

ओर विराजें । हे (ध्रुवे) द्यौ और पृथिवी ! हे राज प्रजागण ! (तया देवतया) उस महान् देव, राजा से और उस राजगण से तू (अङ्गिरस्वत्) तेजस्वी और पूर्णाङ्ग होकर तुम दोनों (सीदतम्) स्थिर होकर विराजो ॥ शत० ७ । ४ । २ । २६ ॥

अषा॑ढासि॒ सह॑माना॒ सह॒स्वारा॑ती॒: सह॑स्व पृतनाय॒तः ।
स॒हस्र॑वीर्य्यासि॒ सा मा॑ जिन्व ॥ २६ ॥

देवा सविता वा ऋषि । क्षत्रपतिरषाढा देवता । निचृदनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—हे सेने ! तू (अषाढ़ा असि) शत्रु से कभी पराजित न होने वाली होने से 'अषाढ़ा', असह्य पराक्रम वाली है । तू (सहमाना) विजय करती हुई (अरातीः) कर न देने वाली शत्रुओं को (सहस्व) विजय कर । और (पृतनायत.) अपनी सेना बनाकर हम से युद्ध करना चाहने वालों को भी (सहस्व) पराजित कर । तू (सहस्रवीर्यासि) सहस्रों वीर पुरुषों के बलों से युक्त है । (सा) वह तू (मा) मुझ राष्ट्रपति और क्षत्र-पति को (जिन्व) हृष्ट पुष्ट कर ॥ शत० ७ । ४ । २ । ३३ । ७० ॥

गृहस्थ में—स्त्री भी शत्रु द्वारा असह्य हो, वह सब विरोधियों को दबा कर पति को प्रसन्न करे । अध्यात्म में–अषाढा=वाक् ।

मधु॒ वाता॑ ऽऋताय॒ते मधु॑ क्षरन्ति॒ सिन्ध॑वः ।
माध्वी॑र्नः स॒न्त्वोष॑धीः ॥ २७ ॥ ऋ० १ । ९० । ६ ॥

गोतम ऋषिः । विश्वेदेवा देवता. । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(मधु) मधुर (वाताः) वायुएं (ऋतायते) जल के समान शीतल लगें । अथवा (ऋतायते) सत्य, ज्ञान, यज्ञ की, ब्रह्मचर्य की साधना या कामना करने वाले के लिये (वाता) वायुएं और (सिन्धवः) समुद्र भी (मधु क्षरन्ति) मधुर रस ही बहाते हैं । (नः) हमें (ओषधीः) ओषधियें भी (माध्वी) मधुर रस से पूर्ण (सन्तु) हों ॥ शत०७।२।१।३।४ ॥

२६—अत पर । १२ । १९ । मन्त्रः पठ्यते काण्व० ।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ २८ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(नक्तम्) रात्रि (न) हमारे लिये (मधु) मधुरता (उत) और (उषसः) प्रभात समय भी हमें मधुर हों। (पार्थिव रजः) पृथिवी लोक अथवा पृथिवी की धूलि भी (मधुमत्) हमें मधुर मधु के समान सुखप्रद हो। (नः) हमारे पिता के समान पालक (द्यौः) प्रकाशमान सूर्य या आकाश, अन्तरिक्ष भी (नः मधु अस्तु) हमें मधुर हो ॥ शत० ७ । ५ । १ । ३ । ४ ॥

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ२ऽ अस्तु सूर्य्यः ।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ २९ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(वनस्पतिः) पीपल, वट, आम्र आदि वृक्ष (नः) हमारे लिये (मधुमान्) मधु के समान मधुर गुण वाले आनन्दप्रद, रोगनाशक हों। (सूर्यः मधुमान् अस्तु) सूर्य हमें मधु के समान मधुर गुण वाला, पुष्टिकर अन्नप्रद हो (नः गावः) किरणें, गौवें और पृथिवियें (माध्वीः भवन्तु) मधुर सुख, अन्न, रस बहाने वाली हों ॥ शत० ७।५।१।३।४॥

अपां गम्भन्त्सीद मा त्वा सूर्योऽभिताप्सीन्माग्निर्वैश्वानरः ।
अच्छिन्नपत्राः प्रजा ऽअनुवीक्षस्वानु त्वा दिव्या वृष्टिः सचताम् ॥ ३० ॥

कूर्मः प्रजापतिर्देवता । आर्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे पुरुष ! प्रजापते ! राजन् ! तू (अपां गम्भन्) जलों को धारण करने वाले मेघ या सूर्य के समान प्रजाओं और आप्त पुरुषों को वश करने वाले राजपद पर (सीद) विराजमान हो। (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष तुझ से अधिक बलवान् पुरुष भी (त्वा मा अभि-

ताप्सीत्) तुझे संतापित या पीड़ित न करे । (वैश्वानरः) समस्त विश्व का हितकारी नायक (अग्निः) प्रजा का अग्रणी नायक भी (मा) तुझे मत सतावे । तू केवल (प्रजाः) प्रजाओं को (अच्छिन्नपत्राः) विना किसी प्रकार के आघात पाये, सर्वाङ्ग, हृष्ट पुष्ट (अनुवीक्षस्व) सुखी देख उनको कटे मुंडे वृक्ष लतादि के समान हीन, क्षीण, दुखी, पीड़ित मत होने दे । (त्वा अनु) तेरे अनुकूल ही (दिव्या वृष्टिः) आकाश से होने वाली वृष्टि और सुखदायी पदार्थों की वृष्टि भी (सचताम्) प्राप्त हो ॥ शत० ७ । ५ । १ । ८ ॥

त्रीन्त्स॑मु॒द्रान्त्सम॑सृपत् स्व॒र्गान॒पां पति॑र्वृष॒भ ऽइष्ट॑कानाम् ।
पुरी॑षं॒ वसा॑नः सुकृ॒तस्य॑ लो॒के तत्र॑ गच्छ॒ यत्र॒ पूर्वे॒ परे॑ताः ॥३१॥

वरुणो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे सूर्य ! प्रजापते ! तू (त्रीन्) तीन (स्वर्गान्) सुखदायी (समुद्रान्) समस्त पदार्थों के उत्पादक तीनों लोको और तीनों कालों को (सम् असृपत्) व्याप्त होता है । तू ही (इष्टकानाम्) समस्त अभीष्ट सुख साधनों का या अभीष्ट (अपाम्) जलों के वर्षक मेघ के समान प्रजाओं का (पतिः) पालक (वृषभः) सब सुखों का वर्षक है । तू (पुरीषं वसानः) मेघ जिस प्रकार जल को धारण करता हुआ जाता है उसी प्रकार तू भी पुरुष, पशु समृद्धि को धारण करता हुआ (सुकृतस्य) पुण्य के (तत्र) उस (लोके) लोक या पद या प्रतिष्ठा को (गच्छ) प्राप्त हो (यत्र) जहां (पूर्वे) पूर्व के (परेताः) परम पद को प्राप्त उत्तम पुरुष जाते हैं ॥ शत० ७ । ५ । १ । ९ ॥

म॒ही द्यौः पृ॑थि॒वी च॑ न इ॒मं य॒ज्ञं मि॑मिक्षताम् ।
पि॒पृ॒तां नो॒ भरी॑मभिः ॥ ३२ ॥

ऋ० १ । २२ । १३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ८ । ३३ ॥ शत० ७ । ५ । १ । १० ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ३३ ॥ ऋ० १ । २२ । १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । ४ ॥ शत० ७ । ५ । १ । १० ॥

ध्रुवासि धरुणेतो जज्ञे प्रथममेभ्यो योनिभ्यो ऽअधि जातवेदाः ।
स गायत्र्या त्रिष्टुभानुष्टुभा च देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ ३४ ॥

उखा वा जात वेदा वा देवता । भुरिक् त्रिष्टुप । धैवत ॥

भा०—हे पृथिवी ! एव हे स्त्रि ! (त्व ध्रुवा असि) तू ध्रुवा, स्थिर रहने वाली है । तू (धरुणा) जगत् के समस्त प्राणियों का आश्रय है । (जातवेदाः) धनसम्पन्न और विद्वान् ज्ञानसम्पन्न पुरुष (प्रथमम्) पहले (इत) इससे ही हुआ है । वह (प्रजानन्) उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर ही और (अधि) बाद मे (एभ्य. योनिभ्य.) इन उत्पत्ति स्थानो से (जज्ञे) उत्पन्न होता है । (गायत्र्या) गायत्री (त्रिष्टुभा) त्रिष्टुप् और (अनुष्टुभा च) अनुष्टुप् इन छन्दों से ही (देवेभ्य) देव-विद्वान् पुरुषों के लिये (हव्यम्) अन्नादि उपादेय पदार्थ को (वहतु) प्राप्त करावे ।

अथवा-गायत्री-ब्राह्म-बल । त्रिष्टुप्-क्षात्र-बल और अनुष्टुप्-सर्वसाधारण प्रजा का बल । इन तीनों से समस्त (हव्यानि) उपादेय भोग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त कर । विद्वान् देवों, राजाओं को प्राप्त करावें ॥ शत० ७ । ५ । १ । २० ॥

स्त्री के पक्ष में-स्त्री ध्रुव और गृहस्थ का आश्रय है । यह पुरुष (प्रथमम् इत. जज्ञे) प्रथम इस माता से उत्पन्न होता है । और फिर (एभ्यः योनिभ्यः) इन गुरु आदि आश्रयस्थानो से उत्पन्न होता है ।

इषे राये रमस्व सहसे द्युम्न ऽऊर्जे अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥ ३५ ॥

उखा, प्रजापतिर्जातवेदा वा देवता । निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

३५—'सम्राळसि' 'स्वराळसि' इति काण्व० ।

भा०—हे प्रजापते ! पुरुष ! हे राजन् ! तू (इषे) अन्न, (राये) ऐश्वर्य, (सहसे) बल, (द्युम्ने) तेज वा यश और (ऊर्जे) पराक्रम और (अपत्याय) सन्तान के लाभ के लिये तू (रमस्व) यत्न कर, इसी प्रकार हे स्त्री ! एवं पृथिवीनिवासिनि प्रजे ! तू भी इस अपने प्रजापति राजा और पति के साथ अन्न, धन, बल, यश, पराक्रम और सन्तान के लाभ के लिये (रमस्व) क्रीड़ा कर, उसके साथ प्रसन्नता पूर्वक रह। हे राजन् ! तू (सम्राड् असि) सम्राड् है। तू (स्वराड् असि) हे स्त्री ! हे पृथिवी ! तू स्वराट् स्वयं प्रकाशमान है। (सारस्वतौ उत्सौ) सरस्वती, वेद ज्ञान के दोनों निकास, मन और वाणी राष्ट्र के नर और नारी, पृथिवी के जड़ और चेतन, अध्यापक और उपदेशक दोनों प्रकार के पदार्थ, (त्वा) तेरी (प्र अवताम्) खूब रक्षा करें ॥ शत ७। ५। १ ॥ ३१ ॥

मनो वा सरस्वान् वाक् सरस्वती। एतौ सारस्वतावुत्सौ ॥ द्वयं हैवैतद्रूपं ऋचापश्च ॥ शत० ७। ७। ५। १। २१ ॥

अग्ने॑ यु॒क्ष्वा हि ये तवाश्वा॑सो देव सा॒धवः॑ ।
अरं॒ वह॑न्ति म॒न्यवे॑ ॥ ३६ ॥

भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) शत्रु संतापक राजन् ! हे (देव) विद्वन्, विजिगीषो ! (ये) जो (तव) तेरे (साधवः) कार्यसाधक (अश्वासः) अश्व (मन्यवे) शत्रु के स्तम्भन करने के लिये, उस पर आये क्रोधशमन करने के लिये रथादि को (अरं वहन्ति) खूब अच्छी प्रकार वहन करते हैं उनको (युक्ष्वा) रथ में नियुक्त कर। और हे देव ! राजन् ! हे पुरुष ! जो तेरे कार्यसाधक अश्वों को समान व्यापक, गतिशील प्राण हैं या (साधव) उत्तम पुरुष हैं जो (मन्यवे अरं वहन्ति) मन्यु अर्थात् मनन करने योग्य ज्ञान तक पर्याप्त रूप से पहुंचाते हैं उनको (युंक्ष्व)

राज्य कार्य में नियुक्त कर और प्राणों को योग्याभ्यास में नियुक्त कर॥ शत० ७।५।१।२।३॥

युद्वा हि देवहूतमाँ२ऽ अश्वाँ२ऽ अग्ने रथीरिव।
नि होता पूर्व्यः सदः॥ ३७॥ ऋ० ८।६४।१॥

विरूप ऋषि। अग्निर्देवता। निचृद्गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्रणी! नायक! राजन्! (रथीः) रथ का स्वामी जिस प्रकार (अश्वान्) घोड़ों को रथ में जोड़ता है उसी प्रकार (देवहूतमान्) विद्वानों द्वारा शिक्षाप्राप्त पुरुषों और उत्तम गुण विद्या प्रकाशादि को ग्रहण करने वाले योग्य, शिक्षित पुरुषों को (युद्वा हि) निश्चय से अपने राज्य-कार्य में नियुक्त कर। तू ही (पूर्व्य) सब पूर्व के विद्वानों द्वारा शिक्षित अथवा सब से पूर्व, अग्रासन पर विद्यमान (होता) सर्व ऐश्वर्यों का दाता या ग्रहीता होकर (नि षद.) नियत, उच्च आसन पर विराजमान् हो॥ शत० ७।५।१।३३॥

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
घृतस्य धाराऽअभिचाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्येऽअग्नेः॥३८॥
ऋ० ६।५८।६॥

अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवत॥

भा०—(सरितः न) जिस प्रकार नदियें या जल-धाराएं बहती हैं उसी प्रकार (अन्तः) भीतर (हृदा) धारणशील हृदय और (मनसा) मननशील चित्त से (पूयमाना.) पवित्र की हुई (धेना) वाणियें भी (सम्यक्) भली प्रकार से विद्वान् पुरुष के मुख से (सरितः न) जल-धाराओं के समान (स्रवन्ति) प्रवाहित होती हैं। यह आत्मा (हिरण्यय.) सुवर्ण के समान देदीप्यमान, तेजोमय, अति रमणीय (वेतस॰) दण्ड के समान है। अथवा वह भोक्ता स्वरूप है। उससे निकलती या उठती ज्ञान-

धाराओं को भी (अग्नेः मध्ये) आग के बीच में (घृतस्य धाराः) घृत की धाराओं के समान अति उज्वल ज्वाला रूप में परिणत होती हुई (अभिचाकशीमि) देखता हूं । अथवा—मैं (हिरण्यय) अभि (रमणीय) तेजस्वी पुरुष उन वाणियों को अग्नि के बीच मे (वेतस) वेग से पड़ती (घृतस्य धाराः) घृत की धाराओं के समान, अथवा—(अग्नेः) विद्युत् के बीच में से निकलती (घृतस्य धारा इव) जल की धाराओं के समान देखता हूं ॥ शत० ७ । ५ । २ । ११ ॥

ऋचे त्वा रुचे त्वा भासे त्वा ज्योतिषे त्वा ।
अभूदिदं विश्वस्य भुवनस्य वाजिनमग्नेर्वैश्वानरस्य च ॥३९॥

ऋ० ६ । ५८ । ५ ॥

अग्निर्देवता । निचृद् बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे पुरुष ! (त्वा) तुझ के (ऋचे) यथार्थ ज्ञान के लिये, (त्वा रुचे) तुझ को कान्ति, यथोचित प्रीति का और अभिलाषा पूर्त्ति के लिये, (भासे त्वा) दीप्ति के लिये, (ज्योतिषे त्वा) तेज को प्राप्त करने के लिये प्राप्त करता हूं । (इदं) यह (विश्वस्य भुवनस्य) समस्त विश्व का (वाजिनम्) प्रेरक बल है और यही (अग्नेः) ज्ञानवान् और (वैश्वानरस्य) समस्त नरों या नेताओं में व्यापक रूप से विद्यमान प्रजापति के भी (वाजिनम्) वीर्य या उनके समस्त वाणी का ज्ञान करने वाला है ॥ शत० ७ । ५ । २ । १२ ॥

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसा वर्चस्वान् ।
सहस्रदा ऽअसि सहस्राय त्वा ॥ ४० ॥

अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! अग्ने ! तू (ज्योतिषा) तेज से (ज्योतिष्मान्) तेजस्वी होने से (अग्नि) 'अग्नि' है । (वर्चसा) कान्ति

से (वर्चस्वान्) कान्तिमान् होने के कारण (रुक्मः) 'रुक्म', सुवर्ण के समान 'रुक्म' कान्तिमान् है। तू (सहस्रदा असि) सहस्रों ऐश्वर्यों और ज्ञानों का देने वाला है। (त्वा) तुझे (सहस्राय) अनन्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों की रक्षा और प्राप्ति के लिये नियुक्त करता हू॥ शत० ७।५।२।१२।१३॥

आदित्यं गर्भं पयसा समङ्ग्धि सहस्रस्य प्रतिमां विश्वरूपम् ।
परिवृङ्ग्धि हरसा माभि मंस्थाः शतायुषं कृणुहि चीयमानः ॥४१॥

अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—व्याख्या देखो० १२ । ६१ ॥ शत० ७ । ५ । २ । १७ ॥

वातस्य जूतिं वरुणस्य नाभिमश्वं जज्ञानꣳसरिरस्य मध्ये ।
शिशुं नदीनाꣳ हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ॥४२॥

अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! राजन्! विद्वन्! (वातस्य जूतिम्) वायु के वेग को जिस प्रकार कोई विनाश नहीं करता, इसी प्रकार वायु के वेग के समान इसे भी (परमे व्योमन्) परम आकाश या परम रक्षाकार्याधिकार, राजत्व पद में स्थित (वरुणस्य नाभिम्) जलमय समुद्र के बांधने वाले (हरिम्) आकर्षण वेग के समान ज्ञानमय, दूसरों को पापों से वारण करने वाले आचार्य, (नाभिम्) बांधने वाले, उसके आश्रय और (सरिरस्य) जल के (मध्ये) बीच में से उत्पन्न सूर्य के समान प्रजा जनों के बीच या सेना सागर के बीच में (जज्ञान) पैदा होने वाले, (नदीना) नदियों के समान अति समृद्ध, नित्य दुग्ध पिलानेवाली माताओं के बीच (शिशुम्) बालक के समान अति गुप्त रूप से व्यापक, (अद्रिबुध्नम्) मेघ के आश्रयभूत वायु, अवकाश के समान अति व्यापक, (हरिम्) हरणशील यन्त्रों, रथों और राष्ट्रों के सञ्चालन में समर्थ अश्व और विद्वान् को (मा हिंसीः) मत विनाश कर ॥ शत० ७ । ५ । २ ॥ १८ ॥

अजस्रमिन्दुमरुषं भुरण्युमग्निमीडे पूर्वचित्तिं नमोभिः ।
स पर्वभिर्ऋतुशः कल्पमानो गां मा हिंꣳसीरदितिं विराजम् ॥४३॥

अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अजस्रम्) अहिंसक और अविनाशी (इन्दुम्) ऐश्वर्यवान्, जल के समान शीतल और स्वच्छ (अरुषम्) रोषरहित, (भुरण्युम्) सब के पोषक (पूर्वचित्तिम्) पूर्ण ज्ञानवान् (अग्निम्) ज्ञानवान् परमेश्वर या राजा को (नमोभिः) नमस्कारों द्वारा (ईडे) मैं स्तुति करता हूं। अथवा (नमोभिः पूर्वचित्तिम्) अन्नों द्वारा पूर्व ही संग्रह करने वाले धनाढ्य पुरुष को मैं (ईडे) प्राप्त करूं । (स) वह तू (पर्वभिः) पालनकारी सामर्थ्यों से (ऋतुशः) सूर्य जिस प्रकार अपने ऋतु से सबको चलाता है उसी प्रकार राजा (ऋतुभिः) अपने राजसभा के सदस्यों से (कल्पमानः) सामर्थ्यवान् होता है । वह तू (विराजम्) विविध पदार्थों, गुणों से प्रकाशित (गाम्) गौ और पृथिवी को (मा हिंसीः) मत विनष्ट कर ॥ शत० ७ । ५ । २ । १६ ॥

'पूर्वचितिम्' इति दयानन्द सम्मतः पाठ 'पूर्वचित्तिम्' इति सर्वत्र ।

वरूत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानाꣳ रजसः परस्मात् ।
महीꣳसाहस्रीमसुरस्य मायामग्ने मा हिंꣳसीः परमे व्योमन् ॥४४॥

अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(त्वष्टुः) समस्त संसार को गढ़ने वाले परमेश्वर की (वरूत्रीम्) वरण करने वाली उसी को एक मात्र अपना आश्रय स्वीकार करने वाली, (वरुणस्य नाभिम्) जगत् के मूलकारण रूप जल के (नाभिम्) बन्धनकारिणी, उसको स्तम्भन करने में समर्थ, (परस्मात्) सबसे उत्कृष्ट (रजसः) लोक, परमपद परमेश्वर से ही (जज्ञानाम्) प्रादुर्भूत होने वाली (असुरस्य) मेघ के समान सबको प्राण देने में समर्थ, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की (महीम्)

बड़ी भारी (साहस्रीम्) असंख्य शक्तियों से युक्त समस्त जगत् की उत्पादक, (अविम्) वस्त्रादि से भेड़ के समान सबकी पालक, (मायाम्) निर्माण करनेवाली शक्ति या सब ज्ञानों को ज्ञापन कराने वाली परमेश्वरी शक्ति को (अग्ने) हे ज्ञानवन् विद्वन् ! तू (परमे व्योमन्) परम, सब से ऊंचे पद पर विराज कर (मा हिंसीः) विनाश मत कर ॥ शत० ७।५।२।२० ॥

यो ऽअग्निर॒ग्नेरध्यजा॑यत॒ शोका॑त्पृथि॒व्या ऽउ॒त वा॑ दि॒वस्परि॑ । येन॑ प्र॒जा वि॒श्वक॑र्मा ज॒जान॒ तम॑ग्ने॒ हेडः॒ परि॑ ते वृणक्तु ॥ ४५॥

अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष (अग्नेः अधि) एक दूसरे उत्कृष्ट परम ज्ञानी पुरुष के संग से, अग्नि से दीप्त अग्नि और दीपक से जलाये गये दीपक के समान ज्ञानवान् (अधि अजायत) होता है। और जो (पृथिव्याः शोकात्) पृथिवी और माता के तेज से (उत) और जो (दिव. शोकात्) तेजस्वी सूर्य या पिता के तेज से (परि अजायत) सर्वत्र प्रकाशमान है। (येन) जिसके द्वारा (विश्वकर्मा) समस्त कार्यों का कर्त्ता धर्त्ता प्रजापति राजा (प्रजाः) समस्त प्रजाओं को (जजान) उत्तम बनाता है (तम्) उस विद्वान् पुरुष को हे (अग्ने) राजन् ! परसंतापक ! (ते हेडः) तेरा क्रोध और अनादर (परि वृणक्तु) छोड़ दे अर्थात् उसके प्रति तू न क्रोध कर न उसका अनादर कर। अर्थात् विद्वान् शिष्य स्नातक और योग्य माता और तेजस्वी पिता के विद्वान् पुत्र के प्रति राजा कभी अनादर न करे ॥ शत० ७।५।२।२।२१ ॥

ईश्वर-पक्ष में—(य॰ अग्नेः अधि अग्निः अजायत) जो ज्ञानवान योगी से भी अधिक ज्ञानवान् है। (य शोकात् पृथिव्या॰ उत दिवः परि अजायत) और जो अपने तेज से पृथिवी और सूर्य के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से है, और (येन) जिस तेज से (विश्वकर्मा) विश्व का स्रष्टा प्रजा-

पति (प्रजाः जजान) प्रजाओं को उत्पन्न करता है (तम्) उस परमेश्वर के प्रति हे विद्वान् पुरुष ! (ते हेड परिवृणक्तु) तेरा अनादर भाव न हो ॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आ प्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य्य ऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च ॥४६॥

ऋ० १ । १ । ५ ॥ १ ॥

सूर्यो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जो (देवानाम्) पृथिवी आदि का एक मात्र (चित्रं) संचित, (अनीकम्) बलस्वरूप होकर (उत् अगात्) उदय को प्राप्त होता है । और जो (मित्रस्य) मित्र, सूर्य, प्राण (वरुणस्य) जल, उदान और मृत्यु का भी (चक्षु) ज्ञापक है और जो (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी, प्रकाश और अन्धकार से युक्त दोनों प्रकार के लोकों को और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को भी (आ अप्राः) सब प्रकार से व्यापता और पूर्ण कर रहा है । वह (सूर्यः) सूर्य के समान (जगत) जंगम और (तस्थुष. च) स्थावर सबका (आत्मा) आत्मा सर्वान्तर्यामी, सबका प्रेरक धारक है ॥ शत० ७ । ५ । २ । २७ ॥

इमं मा हिꣳसीर्द्विपादं पशुꣳ सहस्राक्षो मेधाय चीयमानः ।
मयुं पशुं मेधमग्ने जुषस्व तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
मयुं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४७ ॥

अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन् ! हे पुरुष ! तू (मेधाय) सुख प्राप्त करने के लिये (चीयमान) निरन्तर बढ़ता हुआ (इमं) इस (द्विपादं) दोपाये पुरुष को और (पशुं) उसके उपयोगी चौपाये पशु को भी (मा हिंसीः) मत नाश कर, मत मार । हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! नेतः ! तू (मेधम्)

४७—'सहस्राक्ष मेधा या' इति काण्व ।

पवित्र अन्न उत्पन्न करनेवाले (मयुं पशुम्) जंगली पशु को भी (जुषस्व) प्रेम कर, उसकी वृद्धि चाह। और (तेन) उससे भी (चिन्वानः) अपनी सम्पत्ति को बढ़ाता हुआ (तन्वः) अपने शरीर के बीच मे हृष्ट पुष्ट होकर (निषीद) रह। (ते शुक्) तेरा संतापकारी क्रोध या तेरी पीड़ा भी (मयुम्) हिंसक जंगली पशु को (ऋच्छतु) प्राप्त हो। और (यं द्विष्म.) जिससे हम प्रेम नहीं करते (तं) उसको (ते) तेरा (शुक्) संतापकारी क्रोध या तेरी पीड़ा (ऋच्छतु) प्राप्त हो ॥ शत० ७।५।२।३२॥

इमं मा हिꣳसीरेकशफं पशुं कनिक्रदं वाजिनं वाजिनेषु।
गौरमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।
गौरं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४८ ॥

भा०—हे पुरुष ! (इमं) इस (कनिक्रदं) हर्ष से ध्वनि करने या हिनहिनाने वाले या सब प्रकार के कष्ट सहने में समर्थ (एकशफं) एक खुर के (वाजिनेषु) वेगवान्, या संग्रामोपयोगी पशुओं के बीच सब से अधिक (वाजिनम्) वेगवान् अश्व, गधे, खच्चर आदि (पशुं) पशु को (मा हिंसी.) मत मार (आरण्यम् गौरम्) जगल के गौर नामक बारह सिंगे को लक्ष्य करके (ते अनु दिशामि) तुझे मैं यह उपदेश करता हू कि (तेन चिन्वान.) उसकी वृद्धि से भी तू अपनी वृद्धि करता हुआ (तन्व निषीद) अपने शरीर की रक्षा कर। (ते शुक्) तेरा शोक, संताप या क्रोध भी (गौरम् ऋच्छतु) उस गौर नामक, खेती को हानि पहुचाने वाले मृग को प्राप्त हो। (यं द्विष्म) जिसके प्रति हमारी प्रीति नहीं है (ते शुक्) तेरा शोक, सताप या क्रोध (तम् ऋच्छतु) उसको ही प्राप्त हो ॥ शत० ७।५।२।३३॥

इमꣳसाहस्रꣳ शतधारमुत्सं व्यच्यमानꣳ सरिरस्य मध्ये।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिꣳसी. परमे व्योमन्।
गवयमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद।

गवयं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ४६ ॥

अग्निर्देवता । कृति । निषादः ॥

भा०—(सरिरस्य मध्ये) आकाश, अन्तरिक्ष के बीच में (व्यच्यमानं) विविध प्रकार से फैलने वाले (शतधारम्) सैकड़ों धार बरसाने वाले (उत्सं) आश्रय, सोमरूप मेघ के समान (सरिरस्य मध्ये व्यच्यमानम्) लोक में विद्यमान सैकड़ों को धारक पोषक और (साहस्रम्) हज़ारों सुखप्रद पदार्थों के उत्पादक (इमम्) इस बैल को और (जनाय) मनुष्यों के हित के लिये (घृतम्) घी, दूध, अन्न आदि पुष्टिकारक पदार्थ (दुहानाम्) प्रदान करने वाली (अदितिम्) अहिंसनीय, पृथिवी के समान गौ को भी हे (अग्ने) राजन् ! (परमे व्योमन्) अपने सर्वोत्कृष्ट रक्षा स्थान में या अपने रक्षण कार्य में तत्पर होकर (मा हिंसीः) मत मार । (ते) तुझे मैं (गवयम् आरण्यम्) जंगली पशु गवय का (अनु दिशामि) उपदेश करता हूं । (तेन) उससे (चिन्वान) अपनी ऐश्वर्य की वृद्धि करता हुआ (तन्व निषीद) अपने शरीर को स्थिर कर । (ते शुक् गवयम् ऋच्छतु) तेरा शोक, संताप या क्रोध 'गवय' नाम के पशु को प्राप्त हो । और (यं द्विष्म. तं ते शुक् ऋच्छतु) जिस शत्रु से हम द्वेष करते हैं तेरा संताप और पीड़ाजनक क्रोध उसको प्राप्त हो ॥ शत० ७ । ५ । २ । ३४ ॥

इमसूर्णायुं वरुणस्य नाभिं त्वचं पशूनां द्विपदां चतुष्पदाम् ।
त्वष्टुः प्रजानां प्रथमं जनित्रमग्ने मा हिꣳसीः परमे व्योमन् ।
उष्ट्रमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
उष्ट्रं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५० ॥

अग्निर्देवता । कृतिः । निषाद. ॥

भा०— हे (अग्ने) राजन् ! तू (परमे व्योमन्) परम, सर्वोच्च 'व्योम' अर्थात् विविध प्राणियों के रक्षाधिकार में नियुक्त होकर (त्वष्टु) सर्व-

जगत् के रचयिता परमेश्वर की (प्रजानाम्) प्रजाओं के (प्रथमं) सब से उत्तम या सब से प्रथम (जनित्रम्) उत्पादक कारण, मेघ के समान सुखों के उत्पादक, (वरुणस्य) वरुण अर्थात् वरण करने योग्य सुख के (नाभिम्) मूलकारण, (द्विपदां चतुष्पदां) दो पाये और चौपाये (पशूनां) पशुओं में ही (त्वचं) शरीरों को कम्बलादि से ढकने वाले (इमम्) इस ऊर्णायुं ऊन को देने वाले भेड़ जन्तु को (मा हिंसी.) मत मार । (ते) तुझे (आरण्यम् उष्ट्रम् अनुदिशामि) मैं जंगली ऊंठ का उपदेश करता हूं । (तेन चिन्वान.) उससे समृद्ध होकर (तन्व· निषीद) शरीर के सुखों को प्राप्त कर । (ते शुक्) तेरी पीड़ाजनक प्रवृत्ति (उष्ट्रम् ऋच्छतु) दाहकारी पीड़ाजनक जीव को प्राप्त हो । और (ते शुक्) तेरा दुःखदायी क्रोध (तम् ऋच्छतु) उसको प्राप्त हो (यं द्विष्म.) जिससे हम द्वेष करते हों ॥ शत० ७ । ५ । २ । ३५ ॥

अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्सो ऽअपश्यज्जनितारमग्रे ।
तेन देवा देवतामग्रमायुस्तेन रोहमायुन्नुप मेध्यासः ।
शरभमारण्यमनु ते दिशामि तेन चिन्वानस्तन्वो निषीद ।
शरभं ते शुगृच्छतु यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥ ५१ ॥

अग्निर्देवता । भुरिक् कृतिः । निषाद. ॥

भा०—(अज.) अज, अजन्मा, ज्ञानी आत्मा, जीव (अग्ने) अग्नि, ज्ञानमय तेजोमय परमेश्वर के (शोकात्) तेज से (अजनिष्ट) ज्ञानवान् और तेजस्वी हो जाता है । तभी वह (अग्रे) अपने से भी पूर्व विद्यमान (जनितारम्) समस्त जगत् का और अपने भी उत्पादक परमेश्वर का (अपश्यत्) साक्षात् करता है । (तेन) उसी अजन्मा आत्मा के द्वारा (देवा.) विद्वान् जन अथवा इन्द्रिय क्रीड़ी पुरुष भी (अग्रम्) उत्तम (देवताम्) देव भाव को (आयन्) प्राप्त होते हैं । और (तेन) उसी के बल पर (मेध्यासः) पवित्रात्मा जन या ज्ञानवान् पुरुष (रोहम्)

उन्नत पद को या पुन जन्म भाव को (आयन्) प्राप्त करते हैं (तं) तुझको मैं (आरण्यं शरभम्) जंगली शरभ अर्थात् हिंसक व्याघ्र पशु का (अनु दिशामि) स्वरूप दर्शाता हूं। (तेन) उसके समान (चिन्वानि) अपने रक्षा साधनो का संग्रह करता हुआ बलवान् होकर तू (तन्व) अपने शरीर की रक्षा के लिये (निषीद) स्थिर होकर रह। (ते शुक्) तेरा शोक संताप और पीड़ा जनक कार्य (शरभं ऋच्छतु) 'शरभ' नाम पशु या हिंसक पुरुष को प्राप्त हो। और (यं द्विष्मः) जिससे हम द्वेष करते हैं (तं ते शुक् ऋच्छतु) उसका तुम्हारा पीड़ा-संताप-जनक क्रोध प्राप्त हो॥ शत० ७। ५। २। ३६॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄँः पाहि शृणुधी गिरः।
रक्षा तोकमुत त्मना॥ ५२॥ ऋ० ८। ७२। ३॥

अग्निर्देवता। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (यविष्ठ) अति अधिक बलवान् पुरुष ! राजन् ! तू (दाशुषः नॄन्) दानशील और कर आदि देने वाले प्रजा जनों को (पाहि) पालन कर। और प्रेम से (गिरः) उनकी कही वाणियों को (शृणुधि) श्रवण कर। (उत) और (त्मना) स्वयं ही उनकी (तोकम्) पुत्र के समान (रक्ष) रक्षा कर॥ शत० ७। ५। २। ३१॥

उशना ऋषि। आपो देवताः। (१) ब्राह्मी पंक्तिः। पञ्चमः। (२) ब्राह्मी जगती। निषादः। (३) निचृद् ब्राह्मी पंक्ति। पञ्चमः॥

[1]अपां त्वेमन्त्सादयाम्यपां त्वोद्मन् सादयाम्यपां त्वा भस्मन् त्सादयाम्यपां त्वा ज्योतिषि सादयाम्यपां त्वायने सादयाम्यर्णवे त्वा सदने सादयामि समुद्रे त्वा सदने सादयामि। [2]सरिरे सदने सादयाम्यपां त्वा क्षये सादयाम्यपां त्वा सधिषि सादयाम्यपां त्वा सदने सादयाम्यपां त्वा सधस्थे सादयाम्यपां त्वा योनौ साद-

यास्यपां त्वा पुरीषे सादयास्यपां त्वा पाथसि सादयामि गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि जागतेन त्वा छन्दसा सादयाम्यानुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥ ५३ ॥

भा०—[१] हे राजन् ! (त्वा) तुझको मैं (अपाम् एमन्) जलों, प्राणों या प्रजाओं के गन्तव्य, या प्राप्त करने योग्य जीवन रूप वायु पद पर (सादयामि) स्थापित करता हूं। अर्थात् मेघ के जलों को इधर उधर लेजाने वाला वायु जिस प्रकार यथेष्ट दिशा में मेघों को ले जाता है और जिस प्रकार समस्त प्राणों का आश्रय वायु है उसी प्रकार राजा को भी प्रजाओं के सञ्चालन और उनके जीवन प्रदान, उनके निग्रहानुग्रह के अधिकार पर स्थापित करता हूं। [२] (त्वा अपां ओद्मन् सादयामि) तुझको जलों के दलदल भाग में जहां नाना ओषधियां उत्पन्न होती हैं उस पद पर स्थापित करता हूं। अर्थात् जलों के एकत्र हो जाने पर दल २ में जिस प्रकार वहां ओषधियां बहुत उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार तू भी प्रजाओं का एकत्र हो जाने का केन्द्र है। तुझको मुख्य पद पर स्थापित कर नाना वीर्य धारक प्रजाओं और शासक पुरुषों के उत्पन्न कर लेने का अधिकार प्रदान करता हूं ॥ शत० ७ । ५ । २ । ४६—६२ ॥

[३] (त्वां अपाम् भस्मन् सादयामि) जलों के तेजो रूप भाग मेघ के पद पर तुझको स्थापित करता हूं। अर्थात् जलों का सूर्य किरणों से बना मेघ जिस प्रकार सब पर छाया और निष्पक्षपात होकर जल वर्षण करता है उसी प्रकार प्रजाओं पर तू समस्त सुख कर ऐश्वर्यों का वर्षण और छत्रछाया कर। इसी निमित्त तुझे स्थापित करता हू।

[४] (अपां ज्योतिषि त्वा सादयामि) तुझे जलों की ज्योति अर्थात् विद्युत् के पदपर स्थापित करता हूं। अर्थात् जिस प्रकार जलों में विद्युत्

अति तीव्र, वलवती शक्ति है उसी प्रकार तू भी प्रजाओं के बीच अति तीव्र, वलवती शक्ति वाला होकर रह । उसी पद पर तुझको मैं नियुक्त करता हूं ।

[५] (त्वा अपाम् अयने सादयामि) तुझको जलों को एकमात्र आश्रय, इस भूमि के पदपर स्थापित करता हूं । अर्थात् जिस प्रकार समस्त जलो का आधार भूमि है उसी प्रकार समस्त प्रजाओ का आश्रय होकर तू रह ।

[६] (अर्णवे त्वा सदने सादयामि) तुझको 'अर्णव'=जीवन प्राण के 'सदन', आसन पर स्थापित करता हूं । अर्थात् प्राण जिस प्रकार समस्त इन्द्रियो का आधार है, उसी प्रकार तू भी समस्त प्रजाओं का और शासक वर्गों का आश्रय और उनका सञ्चालक होकर रह ।

[७] समुद्रे त्वा सदने सादयामि) तुझको मैं समुद्र अर्थात् मन के आसन पर स्थापित करता हूं । अर्थात् जिस प्रकार समस्त रत्न समुद्र से निकलते हैं वही उनका उद्गम स्थान है, और जिस प्रकार समस्त वाणियों का उद्गम स्थान मन है, उसी प्रकार समस्त प्रजाओ का उद्गम स्थान तू वन कर रह ।

[८] (त्वाम् अपां क्षये सादयामि) जलों के निवासस्थान तड़ाग अथवा शरीर में जलों के नित्य आश्रय चक्षु के पद पर तुझको नियुक्त करता हूं । अर्थात् सुख दुःख में जिस प्रकार ग्राम जनता तालाव या कूप के आश्रय पर रहती है और सुख दु:ख में जिस प्रकार शरीर में आंख ही और दु:खाश्रु और आनन्दाश्रु वहाती है, अथवा वही सब पर निरीक्षण करती है उसी प्रकार तू प्रजा के सुख दुःख में सुखी दुखी हो और उनपर देख देख रख ।

[९] (अपां त्वा सधिषि सादयामि) समस्त जलो को समान रूप से धारण करने वाले गम्भीर जलाशय के पद पर और समस्त प्रजाओं के निष्पक्ष होकर वचन सुनने वाले 'श्रवण' के पद पर स्थापित करता हूं । अर्थात् समस्त प्रजाओं के निष्पक्ष होकर वचन सुन और निर्णय कर ।

[१०] (सरिरे सदने त्वा सादयामि) तुझे सर्वत्र प्रसरणशील और प्रेरक जल के पदपर स्थापित करता हूं और अध्यात्म में स्वयं सरण करने वाली वाणी के पद पर नियुक्त करता हूं। वहां तू अपनी आज्ञा से सबको संचालित कर।

[११] (अपां त्वा सदने सादयामि) सूक्ष्म जलों का आश्रयस्थान द्यौलोक या समस्त लोकों के आश्रयभूत महान् आकाश के पद पर तुझे स्थापित करता हूं। अर्थात् उसके समान तू सब प्रजाओं को अपने में आश्रय देने वाला हो।

[१२] (अपां त्वा सधस्थे सादयामि) जलों को एकत्र धारण करने वाले अन्तरिक्ष के पद पर तुझको स्थापित करता हूं अर्थात् अन्तरिक्ष जिस प्रकार मेघ आदि रूप से जलों को और सूर्यरश्मियों को भी एकत्र रखता है उसी प्रकार राजपुरुषों और प्रजा जन दोनों को तू समान रूप से धारण कर।

[१३] (अपां त्वा योनौ सादयामि) समस्त नद नदियों के चारों तरफ से आकर मिलने के एक मात्र स्थान समुद्र के पद पर तुझको मैं स्थापित करता हूं। अर्थात् तू समस्त देश देशान्तरों से आई प्रजाओं को शरण देने वाला हो।

[१४] (अपां त्वा पुरीषे सादयामि) तुझको मैं जलों के भीतर दीप्ति सहित विद्यमान रेती के पदपर स्थापित करता हूं। जैसे रेती जलों को स्वच्छ रखती और उसकी शोभा को बढ़ाती है। उसी प्रकार तू प्रजाओं को स्वच्छ रख और उसकी शोभा को बढ़ा।

[१५] (अपां त्वा पाथसि सादयामि) जलों के भीतर विद्यमान, पालनकारी तत्व अन्न के पद पर तुझको मैं स्थापित करता हूं। अर्थात् जिस प्रकार जलों से उत्पन्न अन्न सबको प्राणप्रद, जीवनप्रद और पालक है उसी प्रकार तू भी सबका जीवनप्रद, पालक हो।

[१६] (त्वा गायत्रेण छन्दसा सादयामि) तुझको गायत्र छन्द से स्थापित करता हूं । अर्थात् ब्राह्मणो विद्वानो के विद्या बल से तुझको स्थापित करता हूं ।

[१७] (त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि) तुझको मैं त्रैष्टुभ छन्द से स्थापित करता हूं । अर्थात् तुझको क्षात्र-बल से स्थिर करता हूं ।

[१८] (जागतेन त्वा छन्दसा स्थापयामि) तुझको मैं जागत छन्द अर्थात् वैश्यों के बल से स्थापित करता हूं ।

[१९] (आनुष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि) आनुष्टुभ छन्द से अर्थात् सर्व साधारण लोक के बल से तुझको स्थापित करता हूं ।

[२०] (पाङ्क्तेन त्वा छन्दसा सादयामि) तुझको मैं पांक्त छन्द से अर्थात् दशों दिशाओं अथवा पांचो जनो के बल से तुझे स्थापित करता हूं ।

अयं पुरो भुवस्तस्य प्राणो भौवायनो वसन्तः प्राणायनो गायत्री वासन्ती गायत्र्यै गायत्रं गायत्रादुपांशोस्त्रिवृत् त्रिवृतो रथन्तरं वसिष्ठ ऋषिः । प्रजापतिगृहीतया त्वया प्राणं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५४ ॥

प्राणा देवता । विश्वकर्मा ऋषिः । स्वराड् ब्राह्मी जगती । निषादः ॥

भा०—(अयम्) यह अग्निस्वरूप वाला (पुरः) पूर्व दिशा से और (भुवः) सबका मूल कारण स्वयं सत्-रूप से विद्यमान था । (तस्य) उसका ही यह सामर्थ्य स्वरूप (प्राणः) प्राण है । इसी से वह (भौवायनः) 'भुव्' का अपत्य उससे उत्पन्न होने से 'भौवायन' कहाता है । (प्राणायन) प्राण से उत्पन्न होने वाला (वसन्तः) 'वसन्त' है । अर्थात् प्राणों से वह तत्व उत्पन्न हुआ जिसमें समस्त जीव बसते हैं । (वासन्ती गायत्री) 'वसन्त' सबको बसाने वाले तत्व से 'गायत्री', प्राणो की रक्षा करने वाली शक्ति या वाणी उत्पन्न हुई । (गायत्र्यै गायत्रम्)

गायत्री शक्ति से गायत्र अर्थात् प्राण रक्षक बल उत्पन्न हुआ (गायत्राद् उपांशु) गायत्र बल से 'उपांशु' नाम प्राण उत्पन्न हुआ (उपांशो त्रिवृत्) उपांशु प्राण से त्रिवत् नामक प्राण उत्पन्न होता है। (त्रिवृत रथन्तरम्) त्रिवृत् नाम प्राण से रथन्तर नाम प्राण का बल जिससे इन्द्रियों में ग्राह्य विषय ग्रहण किये जाते हैं वह उत्पन्न होता है। उन सबका (ऋषिः) प्रवर्त्तक और द्रष्टा (वसिष्ठ) सब प्राणों में मुख्य रूप से बसने वाला 'प्राण' वसिष्ठ कहाता है। हे चितिशक्ते ! या हे वाणि ! (प्रजापतिगृहीतया) प्रजा के पालक मुख्य प्राण द्वारा वशीकृत (त्वया) तुझ द्वारा मैं (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के (प्राणं गृह्णामि) प्राण को वश करता हूं। शत० ८।१।१।१-६॥

राजा और राष्ट्र-पक्ष में - यह प्राण राजा 'भुव' है। उसके प्राण रूप अमात्य आदि 'भौवायन' है। उनमें उत्तरोत्तर वसन्त गायत्री, (सेना) गायत्र (बल) उपांशु (सेनापति) त्रिवत् त्रिवर्ग, रथन्तर, रथ बल उत्पन्न होते हैं। सबका द्रष्टा मुख्य राजा का पुरोहित 'वसिष्ठ' है। प्रजापति, प्रजा के पालक राजा से वशीकृत तुझ प्रजा या पृथिवी से मैं प्राण को या अन्न को प्रजा के हितार्थ प्राप्त करता हूं।

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य मनो वैश्वकर्मणं ग्रीष्मो मानसस्त्रिष्टुब् ग्रैष्मी त्रिष्टुभः स्वारꣳ स्वारादन्तर्यामोऽन्तर्यामात्पञ्चदश' पञ्चदशाद् बृहद् भरद्वाज ऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया मनो गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५५ ॥

प्रजापतिः प्राणो वा देवता । निचृद् भुरिगति धृति । षड्जः ॥

भा०—(दक्षिणा) दक्षिण दिशा से (अय) यह स्वय (विश्वकर्मा) समस्त कर्म करने में समर्थ है। (तस्य) उसके ही (वैश्वकर्मण) विश्वकर्मा रूप से उत्पन्न (मनः) मन अन्तःकरण है। (मानस ग्रीष्मः) मन स ही उत्पन्न ग्रीष्म ऋतु है। मन की पुष्टि से ही अर्थात् विचार से ही पराक्रम

की उत्पत्ति होती है (ग्रैष्मी) सूर्य के प्रखर ताप वाली ऋतु के मानस तेज से ही (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप् अर्थात् मन, वाणी और कर्म तीनों में हिंसा करने वाला क्षात्र-बल उत्पन्न होता है। (त्रिष्टुभ स्वारम्) उस त्रिष्टुप्, क्षात्र-बल से स्वर समूह अर्थात् स्वयं राजमान राजा गण उत्पन्न होते हैं। (स्वाराद् अन्तर्यामः) स्वयं तेजस्वी राज गण से पृथिवी का अन्तर्यमन अर्थात् प्रबन्ध या राज्यव्यवस्था उत्पन्न होती है। (अन्तर्यामात् पञ्चदश.) उस व्यवस्था से राष्ट्र के १५ हों अंगों पर आत्मा के समान शासक मुख्य राजा की उत्पत्ति होती है। (पञ्चदशात् बृहत्) उस मुख्य राजा से बृहत् बड़े भारी राष्ट्र की उत्पत्ति होती है। (ऋषिः भरद्वाज) उसका द्रष्टा और सञ्चालक स्वयं प्राण के समान 'भरद्वाज' है। अर्थात् मुख्य प्राण जिस प्रकार सब अन्नों को स्वयं प्राप्त करता है उसी प्रकार राजा समस्त ऐश्वर्यों, वीर्यों और भोगों को प्राप्त करने में समर्थ होता है। हे राजशक्ते ! (प्रजापतिगृहीतया त्वया) प्रजापति राजा द्वारा वशीकृत तुझसे मैं (प्रजाभ्य मन गृह्णामि) प्रजाओं के मन को अपने वश करता हूं। शत० ८। १। १। ६-६ ॥

अ॒यं प॒श्चाद् वि॒श्वव्य॑चा॒स्तस्य॒ चक्षु॑र्वैश्वव्यच॒सं व॒र्षाश्चा॑क्षु॒ष्यो॒ जग॑ती व॒र्षी जग॑त्या॒ ऋक्स॑मम् ऽऋक्स॑माच्छु॒क्रः शु॒क्रात्स॑प्त॒द॒शः स॑प्तद॒शाद्वै॑रू॒पं ज॒मद॑ग्नि॒र्ऋषिः॑ प्र॒जाप॑तिगृहीतया॒ त्वया॒ चक्षु॑र्गृह्णामि प्र॒जाभ्यः॑ ॥ ५६ ॥

प्रजापतिर्देवता। निचृद्धृति। षड्ज ॥

भा०—(अयम्) यह प्रजापति (पश्चात्) पश्चिम दिशा में (विश्वव्यचा) तेज द्वारा समस्त विश्व में फैलने वाले सूर्य के समान है (अस्य) उसका (चक्षुः) चक्षु भी (वैश्वव्यचम्) विश्व में व्यापक सूर्य के आकाश से जिस प्रकार पुरुष की आंख उत्पन्न होती है उसी प्रकार प्रजापालक परमेश्वर की भी चक्षु सूर्य की बनी हुई है। अर्थात् सूर्य ही अलंकार रूप से ईश्वर की चक्षु है। (वर्षा चाक्षुष्यः) जैसे आंखों से प्रेम-अश्रु बहते

हैं उसी प्रकार मानो ये समस्त वर्षाएं सूर्य से उत्पन्न होकर परमेश्वर की चक्षु से बहते है। और राजा के ज्ञानवान् पुरुष ही चक्षु है उनके द्वारा ही समस्त ऐश्वर्यों की वृष्टि होती है। (जगती वार्षी) यह समस्त सृष्टि वर्षा से ही उत्पन्न होती है। इसी प्रकार राजा के राज्य में सब कारवार विद्वानों द्वारा उत्पादित ऐश्वर्यों द्वारा ही चलते हैं। (जगत्या ऋक्-समम्) जगती छन्द से जिस प्रकार 'ऋक्सम' नाम साम की उत्पत्ति है और जगत् की रचना देख कर ज्ञान की प्राप्ति होती है। (ऋक् समात् शुक्र.) ऋक् सम नामक साम से जैसे शुक्र 'ग्रह' उत्पन्न होता है। और ज्ञान प्राप्ति के बाद वीर्य शुद्ध बल, उत्पन्न होता है। और जिस प्रकार, ऋक् अर्थात् स्त्री का साम पति है और पति पत्नी के मिलने पर वीर्य उत्पन्न होता है, उसी प्रकार राष्ट्र में ऋक्-सम प्रजा को समान रूप से प्राप्त करके ही राजा को बल प्राप्त होता है। (शुक्रात् सप्तदश) शुक्र ग्रह से यज्ञ में 'सप्तदश' स्तोम की उत्पत्ति होती है। अध्यात्म में वीर्य से सप्तदश नाम आत्मा के शरीर उत्पत्ति होती है। राजा प्रजा के बल से १७ अंगों वाले सप्तदशाङ्ग राज्य और उसपर स्थित राजा की उत्पत्ति होती है। (सप्तदशात् वैरूपम्) सप्तदश नाम आत्मा से ही वैरूप अर्थात् विविध जीवसृष्टि का प्रादुर्भाव होता है। साम मे सप्तदश स्तोम से वैरूप नाम 'पृष्ठ' का उदय होता है। राष्ट्र में, सप्त दश अङ्गों से युक्त राजा के द्वारा राज्य की विविध रचना होती है। (जमदग्नि ऋषि) यह चक्षु सूर्य ही जमदग्नि है, वही सब का द्रष्टा है। परमेश्वर उसी द्वारा जगत् को देखता और उसी से देख कर उनको वश करता है। इस शरीर में चक्षु वही जमदग्नि है। राष्ट्र में सर्वोपरि द्रष्टा पुरुष ही जगमदग्नि है।

(प्रजापति गृहीतया त्वया) प्रजा के पालक परमेश्वर द्वारा स्वीकार की गई पत्नी के समान तुझ निर्मात्री शक्ति से, एव देह में आत्मा द्वारा प्राप्त चितिशक्ति से, राष्ट्र मे राज्य शक्ति से मैं (प्रजाभ्य. चक्षु) प्रजाओं की चक्षु को (गृह्णामि) अपने वश करता हूं। शत० ८।१।२।१-३॥

इदमुत्तरात् स्वस्तस्य श्रोत्रꣳ सौवꣳशरच्छ्रौत्र्यनुष्टुप् शारद्यनुष्टुभ ऽऐडमैडान्मन्थी मन्थिन ऽएकविꣳश ऽएकविꣳशाद् वैराजं विश्वामित्र ऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया श्रोत्रं गृह्णामि प्रजाभ्यः ॥ ५७ ॥

प्रजापतिर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

(इदम् उत्तरात् स्वः) यह उत्तर दिशा में या सब से ऊपर महान् आकाश 'स्वः' है । (तस्य) उस प्रजापति का वह आकाश ही महान् श्रोत्र है । इसलिये (सौवं श्रोत्रम्) उसका श्रोत्र 'स्वः' होने से 'सौव' कहाता है । इसी प्रकार इस शरीर में 'स्वः' अर्थात् सुख का साधन आकाश की तन्मात्रा से ही बना हुआ श्रोत्र है । (श्रौत्री शरत्) 'संवत्सर' रूप प्रजापति में शरत् ऋतु ही श्रोत्र के समान है । वर्षा के बाद आकाश और दिशाएं खुल जाने से शरद् ऋतु उत्पन्न होती है, इसी से शरत् मानो प्रजापति के श्रोत्र रूप आकाश या दिशाओं से उत्पन्न होती है । (शारदी अनुष्टुप्) शरद् ऋतु से अनुष्टुप् छन्द उत्पन्न होता है । अर्थात् छन्दों में जिस प्रकार अनुष्टुप् सर्व प्रिय है उसी प्रकार ऋतुओं मे 'शरद्' है । (अनुष्टुभ ऐडम्) अनुष्टुप् से 'ऐड' नाम साम की उत्पत्ति होती है । अर्थात् अनुष्टुप् नाम छन्द से ऐड अर्थात् 'इड़ा' वाणी का विस्तार होता है । (ऐडात् मन्थी) ऐड नाम साम से यज्ञ में मन्थिग्रह उत्पन्न होता है । वाणी के विस्तार से इन्द्रियों और हृदय को मथन करने की शक्ति उत्पन्न होती है । (मन्थिनः एकविंशः) मन्थिग्रह से यज्ञ में 'एकविंश' नाम स्तोम की उत्पत्ति होती है । वाणी के बल पर हृदय मथन हो जाने पर २० अंगों सहित इक्कीसवा आत्मा स्त्री के गर्भ में उत्पन्न होता है । (एकविंशाद् वैराजम्) यज्ञ में एकविंशस्तोम से 'वैराज'

५७—'ऐडमळान्' इति काण्व० ।

साम की उत्पत्ति होती है। आत्मा से ही विविध तेजों से राजमान देह की उत्पत्ति होती है। 'एकविंश' राजा से ही विविध राष्ट्र के कार्यों की उत्पत्ति होती है। (विश्वामित्र ऋषि.) शरीर में श्रोत्र ही विश्वामित्र ऋषि है। वह ज्ञानवान् पुरुष राष्ट्र में कर्म के समान समस्त प्रजाओं के दु:ख पीड़ाओं को सुनता है। वह भी ऋषि द्रष्टा 'विश्वामित्र', सब का परम स्नेही है। (प्रजापतिगृहीतया त्वया) प्रजापति द्वारा स्वीकृत तुझ परम प्रकृति से जिस प्रकार (प्रजाभ्य.) समस्त उत्पन्न पदार्थों के हितार्थ (श्रोत्रं) आकाश रूप श्रोत्र का उपयोग किया गया है, उसमें समस्त सृष्टि फैली है। उसी प्रकार राजा द्वारा राजशक्ति के वश कर लेने पर प्रजाओं के 'श्रोत्र' अर्थात् सुख दु ख श्रवण करने वाले न्यायाधीश को मैं(गृह्णामि) स्वीकार करूं। इसी प्रकार हे स्त्री ! प्रजापति, गृहपति द्वारा स्त्री रूप में स्वीकृत तुझ द्वारा मैं प्रजा के हित के लिये अपने श्रोत्र का उपयोग करूं। शत० ८। १। २।४–६॥

इयमुपरि मतिस्तस्यै वाङ् मात्या हैमन्तो वाच्यः पङ्क्तिर्हैमन्ती पङ्क्त्यै निधनवन्निधनवत ऽआग्रयण ऽआग्रयणात् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ त्रिणवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वररैवते विश्वकर्म ऽऋषिः प्रजापतिगृहीतया त्वया वाचं गृह्णामि प्रजाभ्यः॥५८॥

प्रजापतिर्देवता। विराडाकृतिः। पञ्चमः॥

भा०—(इयम् उपरि मति) यह सबसे ऊपर विराजमान प्रज्ञा है जो विराड् शरीर में चन्द्रमा स्वरूप है। (तस्यै मात्या वाङ्) उससे उत्पन्न होने वाली वाणी मति से उत्पन्न होने के कारण 'मात्या' वाक् है। (वाच्यः हेमन्त) हेमन्त जिस प्रकार अति शीतल है उसी प्रकार वाणी से हृदय की शान्ति उत्पन्न होती है। इससे माना वाणी से हेमन्त उत्पन्न होता है। संवत्सर प्रजापति के रूप में शरत् काल के चन्द्र ज्योति के बाद तीव्र

५८—अवसाने लोकं, ता, इन्द्रम् क्रमशः (१२ अ० । ५४ । ५५ । ५६) इति मन्त्रत्रमस्य प्रतीकानि।

गर्जनाकारी वाणी रूप मेघ और उसके बाद हेमन्त उत्पन्न होता है। हेमन्त से पंक्ति उत्पन्न होती है। अर्थात् हेमन्त काल के बाद अन्न पकना प्रारम्भ होता है। सम्वत्सर में पञ्चम ऋतु हेमन्त से मानो यज्ञ में पंक्ति छन्द की उत्पत्ति हुई। राष्ट्र में प्रजा के हृदयों को शमन करने से ही शत्रु परिपाक की शक्ति प्राप्त होती है अथवा पञ्चाङ्ग सिद्धि प्राप्त होती है। (पङ्क्त्यै निधनवत्) यज्ञ में पक्ति छन्द से 'निधनवत् साम' की उत्पत्ति है। (निधनवतः आग्रायणः) निधनवत् साम से 'आग्रयण' ग्रह की उत्पत्ति होती है। और (आग्रयणात् त्रिणव-त्रयस्त्रिंशौ) आग्रयण ग्रह से त्रिनव और त्रयस्त्रिंश दोनों स्तोम उत्पन्न होते हैं (त्रिनवत्रयस्त्रिंशाभ्यां शाक्वर रैवते) त्रिनव और त्रयस्त्रिंश दोनों स्तोमों से शाक्वर और रैवत दो 'पृष्ठ' उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र मे शत्रु संतापक पक्ति न मक सैन्य पाचों जनों की सम्मति, सैन्य शक्ति से 'निधनवत्' अर्थात् शत्रु हनन हाता है। उससे आग्रयण अर्थात् आगे बढ़ने वाले शूरवीर का पद नियत होता है। उससे त्रिनव और त्रयस्त्रिंश २७ और ३३ के स्तोम अर्थात् सघों की रचना होती है और उनसे शाक्वर अर्थात् शक्तिशाली और रैवत, धनाढ्य राष्ट्रों की उत्पत्ति होती है। इस सबका (ऋषिः विश्वकर्मा) ऋषि द्रष्टा और नेता सञ्चालक विश्वकर्मा प्रजापति है। (प्रजापति गृहीतया त्वया प्रजाभ्यः वाच गृह्णामि) प्रजापति राजा द्वारा वशीकृत राजशक्ति रूप तुझ से प्रजा के हित के लिये आज्ञा प्रदान करने वाली वाणी को अपने वश करूं। शत० ८। १। २। ७-६॥

'लोकं०, ता०, इन्द्रम्०॥'[1]

१२ अ० के ५४,५५,५६ इन तीन मन्त्रों की प्रतीक मात्र रक्खी है।

॥ इति त्रयोदशोऽध्यायः॥

[तत्र अष्टापञ्चाशदृचः]

इति मीमासातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते

यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयोदशोऽध्यायः॥

१—'श्लोक' पृणता अस्येन्द्र विश्वाः इति काण्व०।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया। उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाऽश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥१॥

अश्विनौ देवते । विराड् अनुष्टुप् त्रिष्टुप् वा । गान्धारो धैवतो वा ॥

भा०—हे पृथिवि ! तू (ध्रुवक्षितिः) स्थिर निवास स्थान या स्थिर जनपद वाली है । तू (ध्रुवयोनि) स्थिर गृह और स्थान वाली है । तू स्वयं भूमि और आश्रय होकर (ध्रुवा) ध्रुव, अप्रकम्प, बसने वाली प्रजा का स्थिर आश्रय है । तू (ध्रुवं योनिम्) अपने स्थिर आश्रय पर ही (साधुया) उत्तम राज्यप्रबन्ध से (आसीद) आश्रित होकर रह । तू प्रथमं) सर्वश्रेष्ठ, सब से प्रथम (उख्यस्य) 'उखा', पृथिवी के योग्य केतुं) ज्ञान को (जुषाणा) सेवन करने वाली (अध्वर्यू) स्थिर, नित्य राष्ट्र यज्ञ के सम्पादक हो । (अश्विना) विद्या के पर पारंगत ज्ञानी और कर्मिष्ठ विद्वान् शासनादि के दोनों (त्वा) तुझको (इह) इस आश्रय पर (सादयताम्) स्थिर करें ।

स्त्री के पक्ष में—तू स्थिर निवास स्थान वाली, स्थिर आश्रय वाली होने से ध्रुवा है । तू (साधुया) उत्तम आचरण पूर्वक और स्थिर पति का आश्रय लेकर विराज । (उख्यस्य केतुम्) उखा अर्थात् स्थाली के योग्य पाक आदि विद्या को (प्रथम जुषाणा) अति प्रेम से करने वाली होकर रह । तुझे (अध्वर्यू अश्विनौ) अध्वर अर्थात् गृहस्थ यज्ञ या अविनाशी प्रजा तन्तु रूप यज्ञ के अभिलाषी माता पिता विद्वान् जन (इह सादयताम्) इस गृहाश्रम में स्थिर करें ॥ शत० ८ । २ । १ । ४ ॥

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः ।

१—अथ द्वितीया चिति । सर्वा० ।

अभि त्वां रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनांध्वर्यू सादयतामिह त्वां ॥ २ ॥

ऋषिदेवते पूर्ववत् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे पृथिवि ! हे प्रजे ! तू (कुलायिनी) 'कुलाय' अर्थात् गृह वाली और (घृतवती) तेज और स्नेह या ऐश्वर्य से युक्त एवं (पुरंधिः) पुर को धारण करने वाली है । तू (पृथिव्या. सदने) पृथिवी के (स्योने) सुखकारी, ऊपर बने गृह या आश्रय पर (सीद) विराजमान हो । (त्वा) तुझको (रुद्रा) उपदेश करने हारे विद्वान् और (वसवः) वसु ब्रह्मचारी निवास करने हारे विद्वान् लोग (त्वा अभि गृणन्तु) तुझे नित्य उपदेश करें । (सौभगाय) सौभाग्य की वृद्धि के लिये तू (इमा ब्रह्म) इन वेद मन्त्रों में स्थित ज्ञानों को (पीपिहि) प्राप्त कर । (अश्विना अध्वर्यू इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ८ । २ । १ । ५ ॥

स्त्री के पक्ष में—तू गृहवाली, घृत-पुष्टि कारक अन्न और जल से पूर्ण या स्नेह से पूर्ण होकर (पुरन्धि.) 'पुर'=पालन कारी घर को धारण करने वाली स्त्री है । पृथिवी के तल पर बने सुखप्रद गृह में विराज । रुद्र वसु आदि नैष्ठिक ब्रह्मचारी लोग तुझे (ब्रह्म अभिगृणन्तु) वेदों का उपदेश करें । तू अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिये उनको प्राप्त कर । यज्ञकर्त्ता विद्वान् माता पिता तुझे यहां स्थिर करें ।

अध्यात्म मे—चितिशक्ति पुरन्धि है, वह शरीररूप गृह वाली है । शरीर में बसने वाले प्राण उसकी स्तुति करते हैं वह अन्न को प्राप्त करे । (अध्वर्यू अश्विनौ) जीवन यज्ञ के कर्त्ता प्राणापान उसे वहां स्थित रखें ।

स्वदक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानांᳬं सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवां स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनांध्वर्यू सादयतामिह त्वां ॥ ३ ॥

ऋष्यादयः पूर्ववत् ॥

भा०—राज और पालक पुरुष के कर्त्तव्य। हे बलवान् पुरुष! हे स्वामिन् राजन्! तू (स्वैः दक्षैः) अपने बलों और ज्ञानों द्वारा और अपने चतुर बलवान् भृत्यों के बल से (दक्षपिता) कार्य-कुशल पुरुषों का पालक, बल और ज्ञान का पालक, पिता के समान होकर और (बृहते रणाय) बड़े भारी संग्राम के लिये (देवानां) विद्वानों और विजयी पुरुषों के बीच में (सुम्ने) सुखकारी पद पर या राष्ट्र या गृह में (सीद) विराजमान हो। (सूनवे) पुत्र के लिये (पिता इव) जिस प्रकार पिता हितकारी और उसका पालक होता है उसी प्रकार तू भी (एधि) हो। हे पृथिवी, मातः! तू भी पालक पिता के समान हो। (आ सुशेवा) सब प्रकार से सुखकारिणी और (आ सुवेशा) उत्तम प्रकार से, सुख से प्रवेश करने योग्य, सुख से बसने योग्य हो। तू (तन्वा) अपने विस्तृत राज्य शक्ति से (संविशस्व) प्रवेश कर। (अश्विना अध्वर्यू० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ८। २। १। ६॥

पुरुष स्त्री के पक्ष में—हे पुरुष! तू भृत्यों और अपने बल का पालक होकर विद्वान् पुरुषों को सुख और बड़े भारी रमण योग्य उत्तम कार्य के लिये स्थिर हो। पुत्र के लिये पिता के समान हो। हे स्त्री! तू पति को सुखकारिणी, सुखपूर्वक गृहस्थ सुख देन वाली, उत्तम वेश धारण करके अपने (तन्वा संविशस्व) देह से पति के साथ संगत, एक होकर रह।

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः। स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ ४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्।

भा०—हे राजशक्ते! तू (पृथिव्याः) पृथिवी का (पुरीषम्) पालन करने वाला (अप्सः नाम) स्वरूप है। (तां त्वा) उस तेरी (विश्वे देवाः)

समस्त विद्वान् और राजगण (अभिगृणन्तु) स्तुति करें। तू (स्तोमपृष्ठा) वीर्य, बल का अपनी 'पृष्ठ' या पालन सामर्थ्य में धारण करने वाली (घृतवती) जल के समान तेज को धारण करने वाली होकर (सीद) विराजमान हो। और (अस्मे) हमें (प्रजावत् द्रविणा) उत्तम प्रजाओं के समान ही नाना ऐश्वर्यों को भी (यजस्व) प्रदान कर। अर्थात् राष्ट्र शक्ति समृद्धि ऐश्वर्य के साथ उत्तम हृष्ट पुष्ट प्रजा की भी वृद्धि कर। (अश्विना अध्वर्यू० इत्यादि) पूर्ववत्॥ शत० ८। २। १। ७॥

स्त्री के पक्ष में—तू (अप्सः नाम पृथिव्याः पुरीषम् असि) तू रूपवती होकर निश्चय से पृथिवी के ऊपर पालक होकर या श्री समृद्धि होकर (असि) विद्यमान है। समस्त विद्वान् तेरी कीर्त्ति गावें। तू (स्तोमपृष्ठा) वीर्यवान् पुरुष को अपने आश्रय किये हुए तेजस्विनी या अन्न घृत और स्नेह से युक्त होकर विराज और हम सब को उत्तम प्रजायुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर।

अदि॑त्यास्त्वा पृ॒ष्ठे सा॑दयाम्य॒न्तरि॑क्षस्य ध॒र्त्रीं वि॒ष्टम्भ॑नीं दि॒शामधि॑पत्नीं॒ भुव॑नानाम्। ऊ॒र्मिर्द्र॒प्सो ऽअ॒पाम॑सि वि॒श्वक॑र्मा त॒ ऽऋषि॑र॒श्विना॑ध्व॒र्यू सा॑दयतामि॒ह त्वा॑॥ ५॥

ऋष्यादि पूर्ववत्।

भा०—हे राजशक्ते ! राजपुरोहित ! (अदित्या पृष्ठे) अखण्ड पृथिवी के पीठ पर (अन्तरिक्षस्य) प्रजा के भीतर दानशील या पूजनीय पुरुष, राजा के या भीतरी अक्षय कोश या ऐश्वर्य, बल और विज्ञान को (धर्त्रीम्) धारण करने वाली और (दिशाम्) दिशाओं और उनमें निवास करने वाली प्रजाओं को (विष्टम्भनीम्) विविध उपायों से अपने वश करने वाली और (भुवनानाम् अधिपत्नीम्) लोकों को अधिष्ठाता रूप से पालन करने वाली (त्वा) तुझको (सादयामि) स्थापित करता

हूं। तू (अपाम्) जलों के बीच में जिस प्रकार वेग या रस विद्यमान रहता है उसी प्रकार तू भी (अपाम्) प्रजाओं के बीच (द्रप्स) रस रूप से सारवान् एवं वेगवान् बलवान् या उनको हर्षदायक है। और जलों के बीच में (ऊर्मि) ऊपर उठने वाले तरङ्ग के समान उदय को प्राप्त होने वाला है। (ते ऋषिः) तेरा द्रष्टा, अधिष्ठाता साक्षात् करने वाला तुझे वश करने वाला जिस प्रकार (विश्वकर्मा) समस्त शिल्प के उत्तम कार्यों का कर्त्ता, महाशिल्पी, 'एन्जीनियर' हो उसी प्रकार समस्त कार्यों का कर्त्ता राजा (ते ऋषिः) तेरा सञ्चालक द्रष्टा है। (अश्विना अध्वर्यू० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० २ । २ । १ । १० ॥

स्त्री के पक्ष में—हे स्त्रि ! तुझको पृथिवी के ऊपर स्थापित करता हूं। तू (अन्तरिक्षस्य) भीतर उपास्य, पतिदेव या अक्षय उत्साह के धरने वाली सब दिशाओं को थामने वाली और उत्पन्न पुत्रों की पालक है। तू जलों के तरग के समान हर्षकारिणी है। तेरा द्रष्टा पति ही तेरा 'विश्वकर्मा' सर्व शुभ कर्मों का करने वाला कर्त्ता धर्त्ता है। जगत्पालक परमेश्वरी शक्ति के पक्ष में भी मन्त्र स्पष्ट है।

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतू ऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेताम् द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये ऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽइमे ग्रैष्मावृतू ऽअभिकल्पमाना ऽइन्द्रमिव देवा ऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ६ ॥

भा०—(शुक्र च शुचि च) शुक्र और शुचि ये दोनों (ग्रैष्मौ ऋतू) ग्रीष्म काल के दोनों मास अगस्वरूप हैं। (अग्ने) श्लेष (असि०) इत्यादि व्याख्या देखो अ० १३ । मं० २५ ॥ शत० ८ । २ । १ । ७६ ॥

सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधै-

रुग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनांध्वर्यू सांदयतामिह त्वां । सुजूर्ऋतुभिः सुजूर्विधाभिः सुजूर्वसुभिः सुजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनांध्वर्यू सांदयतामिह त्वा [2]सुजूर्ऋतुभिः सुजूर्विधाभिः सुजू रुद्रैः सुजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनांध्वर्यू सांदयतामिह त्वां [3] सुजूर्ऋतुभिः सुजूर्विधाभिः सुजूरादित्यैः सुजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनांध्वर्यू सांदयतामिह त्वां सुजूर्ऋतुभिः सुजूर्विधाभिः सुजूर्विश्वैर्देवैः सुजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनांध्वर्यू सांदयतामिह त्वां ॥ ७ ॥

विश्वेदेवा ऋषय । मन्त्रोक्ता वस्वादयो देवता । (१) भुरिक् कृतिः । धैवतः । (२) स्वराट् पंक्ति । (३) निचृदाकृतिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (ऋतुभिः सजूः) संवत्सर के घटक ऋतुओं के समान राष्ट्र के घटक या राजसभा के बनाने वाले सदस्यों, राज्य-कर्त्ता नेताओं के साथ (सजूः) समान रूप से प्रीतिपूर्वक हो । तू (विधाभिः) जल जिस प्रकार प्राणों और जीवित शरीर के निर्माता एवं प्राण प्रद हैं इसी प्रकार राष्ट्र शरीर के विधाता आप्त पुरुषों के साथ (सजूः) समान रूप से प्रीति युक्त होकर (देवै. सजू) दानशील और विजिगीषु वीर पुरुषों से प्रेम युक्त हो और (वयोनाधै.) जीवन को देह के साथ बांधने वाले प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन, जागृति एवं विज्ञानों द्वारा सब को जीवनप्रद अन्नों द्वारा व्यवस्थाओं में बांधने वाले (देवैः) विद्वानों के साथ (सजू) प्रीतियुक्त वर्ताव करने वाला हो । इसी प्रकार (वसुभिः सजू, रुद्रैः सजू, आदित्यैः सजू, विश्वेदेवैः सजू) तू वसु, रुद्र, आदित्य और विश्वेदेव इन सब विद्वान् शत्रुनाशक प्रजा के पालक, व्यवस्थापक, आदान प्रतिग्रह करने वाले ज्ञानी तेजस्वी पुरुषों के साथ प्रेम युक्त होकर रह ।

(अश्विनौ) विद्याओं में व्यापक (अध्वर्यू) राष्ट्र यज्ञ के सम्पादक विद्वान् (त्वा) तुझको (इह) इस राष्ट्राधिकार के पदपर (सादयताम्) स्थापित करें ।

स्त्री और पुरुष के पक्ष में—हे स्त्री और हे पुरुष ! तुम ऋतुओं, प्राणों, विद्वानों, जीवनोपयोगी पदार्थों से युक्त हो । (अश्विना अध्वर्यू) प्रजा तन्तु के इच्छुक माता पिता दोनों तुझको (वैश्वानराय अग्नये) सर्व हित-कारी अग्नि, अग्रणी नेता पद के लिये (इह त्वा सादताम्) सद्गृहस्थ में स्थापित करें । इसी प्रकार तू वसु, रुद्र और आदित्य नामक विद्वान् जिते-न्द्रिय पुरुषों के साथ (सजूः) प्रेमपूर्वक सत्संग लाभ कर ॥ शत० ८ । २ । २ । ८-६ ॥

प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रं मे श्लोकय । अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात्पाहि दिवो वृष्टिमेरय ॥ ८ ॥

पूर्वार्धस्य प्राणा उत्तरार्धस्य च आपो देवता । निचृदति जगती । निषाद ॥

भा०—हे प्रभो ! (मे प्राणं पाहि) मुझ प्रजागण के प्राण को रक्षा कर । (मे अपान पाहि) मेरे अपान की रक्षा कर । (मे व्यान पाहि) मेरे शरीर के विविध सधियों में चलने वाले व्यान की रक्षा कर । (मे चक्षु) मेरे चक्षु को (उर्व्या) विशाल, विस्तृत दर्शन शक्ति से (विभाहि) प्रकाशित कर । (मे श्रोत्रम्) मेरे श्रोत्र को (श्लोकय) श्रवण समर्थ कर । (अप पिन्व) जलों के समान प्राणों को सेचन कर, उनको पुष्ट कर । (ओषधी) ओषधियों को (जिन्व) प्राप्त कर, (द्विपात्) दो पांव के मनुष्यों की रक्षा कर । (चतुष्पात् पाहि) चौपायों की रक्षा कर । (दिव) द्यौलोक से (वृष्टिम् ईरय) वृष्टि को प्रेरित कर । अथवा जैसे आकाश से वृष्टि होती है उसी प्रकार तेरी तरफ़ से सुखों की वर्षा हो ।

– – ८—दम्पती देवते । द० ।

स्त्री के पक्ष में—हे पते ! तू (उर्व्या) विशाल शक्ति से मेरे प्राण, अपान और व्यान की रक्षा कर । चक्षु को प्रकाशित कर । श्रोत्र को उत्तम शास्त्र-श्रवण मे युक्त कर । प्राणों को पुष्ट कर । ओषधियों को प्राप्त कर । भृत्य और चौपायों की रक्षा कर। सूर्य जैसे पृथ्वी पर वर्षा करता है ऐसे तू मुझ अपनी भूमि रूप स्त्री पर सन्तानादि के निमित्त वीर्यादि का प्रदान कर ॥ शत० ८ । २ । ३ । ३ ॥

[१]मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः [२]पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिꣳहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड्वयो बृहती छन्दऽउक्षा वयः ककुप् छन्दऽऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः ॥ ९ ॥

[३]अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड्वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयं उष्णिक् छन्दस्तुर्यवाड्वयोऽनुष्टुप् छन्दः ॥ १० ॥

लिंगोक्ता. प्रजापत्यादयो देवताः । (१) निचृद ब्राह्मी पक्तिः । (२) ब्राह्मी पक्ति. । पञ्चम ॥ (३) स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यम ।

भा०—१. (मूर्धा) 'मूर्धा', शिर (वयः) बल, पद या स्थिति है तो (प्रजापतिः छन्द.) 'प्रजापति' उसका 'छन्द' अर्थात् स्वरूप है । अर्थात् शिर जिस प्रकार शरीर में सब के ऊपर विराजमान है उसी प्रकार समाज में जो सबसे ऊंचे पद पर स्थित हो उसका कर्त्तव्य प्रजापति का है । वह प्रजापति के समान समस्त प्रजाओं का पालन करे ।

१—'वस्तो वयो विवल छन्दः' इति दयानन्दसम्मत पाठः ।

२. (क्षत्रं वयः मयन्दं छन्दः) 'क्षत्र' वय है और 'मयन्द' छन्द है। अर्थात् जो 'क्षत्र' या वीर्यवान् पद पर स्थित है उसका कर्त्तव्य प्रजा को सुख प्रदान करना है।

३. (विष्टम्भ· वयः अधिपति· छन्दः) 'विष्टम्भ' वय है और अधिपति छन्द है। अर्थात् जो विविध प्रजाओं को विविध प्रकारों और उपायों से स्तम्भन कर सके, पाल सके वे वैश्य या जो शत्रुओं को विविध दिशाओं से थाम या रोकने में समर्थ हो उसका कर्त्तव्य 'अधिपति' होने का है। वह सबका अधिपति हो कर रहे।

४. (विश्वकर्मा वय परमेष्ठी छन्दः) विश्वकर्मा 'वय' है और 'परमेष्ठी' छन्द है। अर्थात् जो पुरुष 'विश्वकर्मा' राज्य के समस्त कार्यों के प्रवर्त्तक श्रम विभाग के मुख्य पदपर स्थित हैं वे 'परमेष्ठी' परम उच्च पद पर स्थित होने योग्य हैं।

५. (वस्त वय· विवलं छन्द) वस्त 'वय.' है और 'विवल' छन्द है। अर्थात् सबको आच्छादित करने वाले पदाधिकारी का कर्त्तव्य है कि वह विविध प्रकार से संवरण, शरीरगोपन के पदार्थों को उपस्थित करे।

६. (वृष्णि वय. विशालं छन्द.) वृष्णि 'वय' है और 'विशाल' छन्द है। अर्थात् जो पुरुष बलवान् सब सुखों को प्रदान करने में समर्थ है उसका कर्त्तव्य है कि वह विविध ऐश्वर्यों से शोभायमान हो। और अन्यों को भी विविध ऐश्वर्य प्रदान करे।

७. (पुरुष. वयः तन्द्र छन्द.) 'पुरुष' वय है 'तन्द्र' छन्द है। अर्थात् जिसमें पुरुष होने का सामर्थ्य है उसका 'तन्द्र' अर्थात् तन्त्र कुटुम्ब को धारण पोषण करने का कर्त्तव्य है।

८. (व्याघ्रं वयः अनाधृष्टं छन्द.) 'व्याघ्र' वय है और 'अनाधृष्ट' छन्द है। जो पुरुष व्याघ्र के समान शूरवीर है उसका कर्त्तव्य है कि वह शत्रु से कभी पराजित न हो।

९. (सिंहः वयः छदिः छन्दः) 'सिंह' वय है और 'छदि' छन्द है। अर्थात् सिंह के समान बड़े २ बलवान् शत्रुओं को भी जो हनन करने में समर्थ है वह प्रजा पर 'छदि' अर्थात् गृह के छत के समान सब को आश्रय देने वाला होकर अपनी छत्र-छाया में रक्खे।

१०. (पृष्ठवाड् वयः बृहती छन्दः) 'पृष्ठ वाड्' वय है और 'बृहती' छन्द है। अर्थात् जो पीठ से बोझा लादने वाले पशु के समान राष्ट्र के कार्य-भार को वहन करने में समर्थ है वह 'बृहती' पृथ्वी के समान बड़े कार्य भार को अपने ऊपर ले।

११. (उक्षा वयः ककुप् छन्दः) 'उक्षा' वय है और 'ककुप्' छन्द है। वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ के समान वीर्यवान् पुरुष का कर्त्तव्य 'ककुप्' अर्थात् अपने अधीन प्रजाओं को आच्छादन करना और सब से अपने सरल सत्य व्यवहार से वर्त्तना है।

१२. (ऋषभोः वयः सतोबृहती छन्दः) 'ऋषभ' वय है और 'सतो-बृहती' छन्द है। अर्थात् जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञानमान से प्रकाशित है उसका कर्त्तव्य 'सतः-बृहती' अर्थात् प्राप्त हुए बड़े २ कार्यों का उठाना है।

भा०—१३. (अनड्वान् वयः पंक्तिः च्छन्दः) अनड्वान् वय है और पंक्ति छन्द है। अर्थात् शकट वहन करने में समर्थ बैल के समान बलवान् पुरुष अपने वीर्य को परिपक्व रक्खे और गृहस्थ-के भार को उठाये।

१४. (धेनुर्वयः जगती छन्दः) 'धेनु' वय है 'जगती' छन्द है। अर्थात् जो जीव दुधार गौ के समान दूसरों का पालन व पोषण करने में समर्थ हैं वे जगत् को पालन करें।

१५. (त्र्यवि. वय. त्रिष्टुप् छन्द) 'त्र्यवि' वय है और त्रिष्टुप् छन्द है। अर्थात् तीनों वेदों की रक्षा करने में समर्थ पुरुष कर्म उपासना और ज्ञान तीनो से स्तुति करे।

१६- (दित्यवाड् वय विराट् छन्दः) 'दित्यवाट्' वय है और 'विराट्' छन्द है। आदित्य के समान तेज को धारण करने वाला पुरुष विविध ऐश्वर्यों और ज्ञानों से स्वयं प्रकाशित हो और अन्यों को प्रकाशित करे।

१७. (पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दः) 'पञ्चावि' वय है, 'गायत्री' छन्द है। अर्थात् जो पुरुष पाचों प्राण पाचों इन्द्रियों पर वश करने में समर्थ है वह पुरुष अपने प्राणों की रक्षा करने में सफल हो।

१८. (त्रिवत्स वयः उष्णिक् छन्द) 'त्रिवत्स' वय है और 'उष्णिक्' छन्द है अर्थात् कर्म, उपासना और ज्ञान में, या वेदत्रयी में ही निवास करने वाला अथवा तृतीयाश्रमी पुरुष अपने समस्त पापों का दाह करने में सफल हो।

१९. तुर्यवाट् वयः अनुष्टुप् छन्दः) 'तुर्यवाट्' वय है और 'अनुष्टुप्' छन्द है। अर्थात् तुर्य अर्थात् तुरीय चतुर्थ आश्रमवासी पुरुष का होकर पुरुष (अनुष्टुप्) निरन्तर परमेश्वर की स्तुति करे।

(लोकं० ता० इन्द्रम्०) ये १२ वें अध्याय के ५४, ५५, ५३ इन तीनों मन्त्रों की प्रतीक मात्र प्रायः रक्खी मिलती हैं।

प्रकारान्तर से प्रजापति, मयन्द, अधिपति, परमेष्ठी, विलत, विशाल, तन्द, अनाधृष्ट, छदि, बृहती, ककुप्, सतोबृहती, पंक्ति, जगती, त्रिष्टुप्, विराट्, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् ये १९ छन्द हैं ये भी प्रजापति के ही १९ स्वरूप हैं। और मूर्धा, क्षत्र, विष्टम्भ, विश्वकर्मा ये चार वर्णभेद से प्रजापति के नाम हैं। वस्त, वृष्णि, सिंह और व्याघ्र ये चार पशु नाम हैं। पुरुष पांचवां। पष्ठवाट्, उक्षा, ऋषभ, अनड्वान् ये ४ पुमान् गौ के स्वरूप हैं। धेनु, गौ का रूप है। त्र्यवि, दित्यवाट्, पञ्चावि, त्रिवत्स तुर्यवाट् ये अवस्था भेद से बछड़े के नाम हैं। परन्तु श्लेष से मनुष्यों की ये (छन्द) प्रवृत्ति और प्रगति भेद से १९ प्रकार किये हैं जिनको १९ पदों या अवस्थाओं में १९ प्रकार के मानवगण करते

हैं यह वेद ने बतलाया। दूसरे प्रजापति आदि १९ छन्दों के मूर्धा आदि १९ नाम या स्वरूप भी समझने चाहियें। १९ प्रकार के 'वयस्' और १९ प्रकार के 'छन्द' दोनों ही प्रजापति के स्वरूप हैं। एक एक छन्द से क्रम से प्रजापति अर्थात् प्रजा के पालन करने वाला पुरुष एक २ 'वयस्' अर्थात् विशेष २ पद, अधिकार प्राप्त करता है। अर्थात् विशेष २ पद को प्राप्त कर पुरुष विशेष २ कर्म करें॥ शत० ८। २। ३। १०-१४॥

इन्द्राग्नी ऽअव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम्।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षं च विबाधसे ॥ ११ ॥

विश्वकर्मा ऋषिः। इन्द्राग्नी देवता। भुरिगनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सेनापति और राजा या राजा और पुरोहित! (युवम्) तुम दोनों (अव्यथमानाम्) पीड़ा को प्राप्त न होती हुई (इष्टकाम्) ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाली प्रजा को (दृंहतम्) दृढ़ करो। हे प्रजे! तू (पृष्ठेन) अपनी पृष्ठ से (द्यावापृथिवी) द्यौ, पृथिवी और (अन्तरिक्षं च) अन्तरिक्ष तीनों लोकों को, (विबाधसे) प्राप्त होती है। सब स्थानों के भोग्य पदार्थों को प्राप्त होती है॥ शत० ८। ३। १। ८॥

अथवा—हे इन्द्र और अग्नि के समान तेजस्वी स्त्री पुरुषो! तुम दोनों अपीड़ित, इष्ट वृद्धि को प्राप्त होकर गृहस्थाश्रम को दृढ़ करो। यह गृहस्थाश्रम आकाश, पृथिवी, और अन्तरिक्ष; माता पिता और पति तीनों की सेवा करती है।

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाभि-

११—१ बाधृ विलोडने भ्वादिः। अथ तृतीया चितिः।

पातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १२ ॥

विश्वकर्मा ऋषिः । वायुर्देवता । विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे राजशक्ते ! (व्यचस्वतीम्) विविध रूपों से विस्तृत और (प्रथस्वतीम्) विस्तृत ऐश्वर्य वाली (त्वा) तुझको (विश्वकर्मा) समस्त उत्तम कार्यों के करने हारा पुरुष राजा (अन्तरिक्षस्य पृष्ठे) अन्तरिक्ष के समान सब के बीच पूजनीय पुरुष के पृष्ठ पर अर्थात् उसके बल या आश्रय पर स्थापित करे । तू स्वयं (अन्तरिक्षम्) अपने भीतर विद्यमान पूज्य पुरुष या अन्तरिक्ष के समान प्रजा के रक्षक राजा को (यच्छ) बल प्रदान कर । (अन्तरिक्षं दृंह) उसी 'अन्तरिक्ष' नाम राजा को दृढ़कर, बढ़ा (अन्तरिक्षं) उस अन्तरिक्ष पदपर विद्यमान सर्वरक्षक राजा को (मा हिंसीः) मत विनाश कर (विश्वस्मै) सब के (प्राणाय) प्राण, (अपानाय) अपान, (व्यानाय) व्यान, (उदानाय) उदान (प्रतिष्ठायै) प्रतिष्ठा और (चरित्राय) उत्तम चरित्र या आश्रय की रक्षा के लिये (वायु) वीर्यवान् वायु के समान बलशाली पुरुष (मह्या स्वस्त्या) बड़े भारी कल्याणकारी सम्पत्ति या शक्ति से (शतमेन) अति शान्तिदायक (छर्दिषा) तेज और पराक्रम से (त्वा अभि पातु) तेरी रक्षा करे । (तया देवतया) उस देवस्वरूप पुरुष के साथ तू (अङ्गिरस्वत्) अग्नि के समान तेजस्विनी होकर (ध्रुवा सीद) स्थिर होकर रह । शत० ८ । ३ । १ । ९-१० ॥

स्त्री के पक्ष में—हे स्त्री (विश्वकर्मा) तेरा पति (व्यचस्वतीं प्रथस्वतीं) विविध गुणों से प्रकाशित और प्रसिद्ध कीर्त्ति वाली तुझको अन्तरिक्ष के पृष्ठ अर्थात् हृदय में स्थापित करे । तू उसको अपने आप को सौंप, उसको बढ़ा और उसको पीड़ा मत दे । सबके प्राण, अपान, व्यान, उदान और सच्चरित्र की रक्षा के लिये वायु के समान प्राणेश्वर पति तेरी रक्षा करे । तू उस हृदय-देवता से तेजस्विनी होकर रह ॥

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥ १३ ॥

विश्वेदेवा ऋषयः । दिशो देवता. । विराड् पक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(प्राची दिग्) प्राची पूर्वदिशा जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से देदीप्यमान होती है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तू (राज्ञी असि) अपने तेज से प्रकाशमान राजा की शक्ति है । तू (दक्षिणा दिक्) दक्षिण दिशा से जिस प्रकार सूर्य के विशेष प्रखर ताप और तीव्र प्रकाश से विशेष तेजस्विनी होती है उसी प्रकार तू भी (विराड् असि) राजा के विशेष तेज से प्रकाशमान हो । (प्रतीची दिक् सम्राट् असि) पूर्व से पश्चिम को आने वाले सूर्य से जिस प्रकार उत्तरोत्तर पश्चिम दिशा प्रकाशमान होती जाती है उसी प्रकार तू भी 'सम्राट्' सब प्रकार के ऐश्वर्यों से उत्तरोत्तर तेजस्विनी हो । (उदीची दिक् स्वराड् असि) उत्तर दिशा जिस प्रकार ध्रुवीय प्रकाश से या उत्तरायण गत सूर्य से स्वतः प्रकाशमान होती है उसी प्रकार तू राजशक्ति भी स्वराट् अर्थात् स्वयं अपने स्वरूप से तेजस्विनी हो । (बृहती दिक् अधिपत्नी असि) बृहती दिशा ऊपर की जिस प्रकार मध्याह्न काल के सूर्य से प्रकाशित और सब पर विराजमान हो उसी प्रकार राजशक्ति सब पर अधिकार करके सबकी पालन करने वाली हो ॥ शत० ८ । ३ । १ । १४ ॥

स्त्री के पक्ष में—स्त्री भी विविध गुणों से विराट्, सुख में विद्यमान होने से सम्राट्, स्वयं तेजस्विनी होने से स्वराट, गृहपत्नी होने से अधिपत्नी और रानी हो । ये पांच पदवी पांच दिशाओं के समान तुझे प्राप्त हों ।

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम् । विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ । वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥ १४ ॥

विश्वेदेवा ऋषय । वायुर्देवता । स्वराड् ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(विश्वकर्मा) प्रजापालक राजा (अन्तरिक्षस्य पृष्ठे) समस्त प्रजा के पूज्य पुरुष के आधार पर (ज्योतिष्मतीम् त्वा) ज्योति अर्थात् सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों से युक्त तुझको (सादयतु) स्थापित करे। तू (विश्वस्मै) सब को (प्राणाय अपानाय व्यानाय) शरीर में प्राण, अपान और व्यान के समान राष्ट्र के सब प्रकार के बल सम्पादन के लिये (ज्योतिः यच्छ) ज्योति को प्रदान कर। (वायुः ते अधिपतिः) शरीर में जिस प्रकार प्राण समस्त शरीर की चेतना का स्वामी है उसी प्रकार वायु के समान शत्रु रूप वृक्षों को उखाड़ फेंकने में समर्थ, बलवान् पुरुष तुझ राजशक्ति का (अधिपति) अधिपति है। तू (तया देवतया) इस देवस्वरूप अधिपति का (अंगिरस्वत्) तेजस्विनी होकर (ध्रुवा सीद) ध्रुव स्थिर होकर रह। शत० ८।३।२।३।४॥

स्त्री के पक्ष में—विश्वकर्मा तेरा पति, जलों के ऊपर सूर्य प्रभा के समान तुझ को अपने हृदय में प्राणादि की उन्नति के लिये स्थापित करता है। तू सब को ज्योति प्रदान कर। प्राण के समान प्रिय पति तेरा अधिपति है। तू उसके संग स्थिर होकर रह।

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतू ऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्ताम्ग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे वार्षिकावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिवऽदेवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥ १५॥

इषश्चोर्जश्च शारदावृतू ऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्ताम्ग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे शारदावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥ १६॥

विश्वेदेवाः ऋषयः । ऋतवो देवता । स्वराड् उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—(नभः नभस्यः च) नभस् और नभस्य ये दोनों (वार्षिकौ ऋतू) वर्षा ऋतु के भाग हैं । (अग्नेः० सीदतम्) इत्यादि अ० १२ । २५ ॥

भा०—(इषः च ऊर्जः च शारदौ ऋतू) इष और ऊर्ज ये दोनों शरद् ऋतु के दो मास हैं । (अग्ने सीदतम् इत्यादि) देखो अ० १२।२५॥ शत० ८ । ३ । २ । ५-१३ ॥

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचं मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानं मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! प्रभो ! हे स्वामिन् ! (मे आयुः पाहि) मेरी आयु की रक्षा कर । (मे प्राणं प्राहि) मेरे प्राण का पालन कर । (मे अपानं पाहि) मेरे अपान की रक्षा कर । (मे व्यानं पाहि) मेरे व्यान की रक्षा कर । (मे चक्षु पाहि) मेरी आंखों का पालन कर । (श्रोत्रं मे पाहि) मेरे कानों का पालन कर । (मे वाचं पिन्व) मेरी वाणी को तृप्त कर । (मे मनः जिन्व) मेरे मन को प्रसन्न कर । (मे आत्मानं पाहि) मेरे आत्मा या देह की रक्षा कर । (मे) मुझे (ज्योति) ज्ञान ज्योति का (यच्छ) प्रदान कर ॥ शत० ८ । ३ । २ । १४ : १५ ॥

मा च्छन्दः प्रमा च्छन्दः प्रतिमा च्छन्दोऽअस्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्दऽउष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥१८॥ पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः । कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाछन्दोऽश्वश्छन्दः ॥ १९ ॥

विश्वेदेवा देवताः । छन्दांसि देवताः । भुरिगति जगती । निषादः ।

भा०—(मा) ज्ञान कराने वाली, यथार्थ प्रज्ञा (प्रभा) उत्कृष्ट

ज्ञान कराने वाली प्रमाणवती बुद्धि (प्रतिमा) प्रत्येक पक्ष अर्थ का मान करने वाली बुद्धि, (अस्रीवय:) कामना योग्य अन्न (पंक्ति) पञ्च अवयवों से युक्त योग अथवा परिपक्व शक्ति। (उष्णिक्) उत्तम (बृहती) बड़ी शक्ति या प्रकृति, (अनुष्टुप्) अनुकूल स्तुति (विराट्) विविध पदार्थ विज्ञान, (गायत्री) स्तुतिकर्त्ता ज्ञानी को रक्षा करने वाली शक्ति (त्रिष्टुप्) विविध सुखों की वर्णन करने वाली विद्या (जगती) सब जगत् व्यापनी शक्ति ये सभी (छन्दः) सुख देने वाले साधन और बल के स्थान हैं।

इसी प्रकार—(पृथिवी) पृथिवी और (द्यौः) द्यौ, आकाश, (समा) वर्ष, (नक्षत्राणि) नक्षत्र, (वाक्) वाणी, (मन) मन, (कृषि) कृषि, (हिरण्यम्) सुवर्ण, (गौः) गौ आदि पशु (अजा) अजा आदि पशु (अश्व) अश्व आदि एक खुर के पशु ये सब भी (छन्द) शक्ति के स्थान, कार्यों के साधन करने में सहायक, अथवा मानव प्रजा को अपने भीतर आच्छादित या सुरक्षित रखते हैं। शत० २। ३। ३। १-१२ ॥

अ॒ग्निर्दे॒वता॒ वातो॑ दे॒वता॒ सूर्यो॑ दे॒वता॑ च॒न्द्रमा॑ दे॒वता॒ वस॑वो दे॒वता॑ रु॒द्रा दे॒वता॑ऽदि॒त्या दे॒वता॑ म॒रुतो॑ दे॒वता॒ विश्वे॑दे॒वा दे॒वता॒ बृह॒स्पति॑र्दे॒वतेन्द्रो॑ दे॒वता॒ वरु॑णो दे॒वता॑ ॥ २० ॥

विश्वेदेवा ऋषय । अग्न्यादयो देवता । भुरिग् ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ।

भा०—(अग्निः) अग्नि, (वातः) वात, (सूर्यः) सूर्य, (चन्द्रमा) चन्द्रमा, (वसवः) आठ वसु, (रुद्राः) ११ रुद्र, प्राण, (आदित्याः) १२ आदित्य, मास, (मरुतः) मरुत् गण, विद्वान्गण (विश्वेदेवाः) विश्वेदेवगण समस्त दिव्य पदार्थ, (बृहस्पतिः) बृहस्पति, ब्रह्माण्ड और वेद वाणी का पालक (इन्द्रः) इन्द्र, ईश्वर और (वरुण) वरुण ये सब (देवता) देवता अर्थात् दिव्य शक्तियां हैं, राष्ट्र में ये ही सब अधिकारी लोग देवता अर्थात् राजशक्ति के अंश हैं। ब्रह्माण्ड में ये ही परमेश्वरी शक्ति के स्वरूप हैं ॥ शत० ८। २। ३। १-१२ ॥

मूर्द्धासि राड् ध्रुवासि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा ॥ २१ ॥

विश्वेदेवा ऋषय । प्राणा विदुषी देवता । निचृद् अनुष्टुप । ऋषभ ॥

भा०—हे राजशक्ते ! तू (मूर्धा वा राट् असि) द्यौ या सूर्य के समान सब से उच्च शिरोभाग पर स्थित है। तू 'राट्' अर्थात् सूर्य के समान ही तेजस्विनी है। (ध्रुवा धरुणा असि) ध्रुवा दिशा जिस प्रकार सब का आश्रय है उसी प्रकार तू भी स्थिर होकर राष्ट्र को धारण करने वाली है। (धर्त्री धरणी असि) तू समस्त प्रजा को धारण करने वाली और धरणी भूमि के समान सबका आधार है। इसी प्रकार घर में स्त्री सब के ऊपर सूर्य-प्रभा के समान गुणों से प्रकाशित, आश्रयस्तम्भ के समान स्थिर और पृथ्वी के समान सब गृहस्थ का धारण करने वाली है तुझको मैं (आयुषे) आयु, जीवनवृद्धि के लिये (वर्चसे) तेज की वृद्धि के लिये (कृष्यै) खेती, अन्नादि की उत्पत्ति के लिये और (क्षेमाय) प्रजा की सुख वृद्धि के लिये (त्वा ४) तुझ को स्वीकार करता हूं ॥ शत० ८ । ३ । ४ । १-८ ॥

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा ॥ २२ ॥

विश्वेदेवा ऋषयः । विदुषी देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे राज्य शक्ते ! तू (मन्त्री) समस्त राष्ट्र को नियम में रखने वाली (राष्ट्र) राजवैभव से प्रकाशमान होने से, तू (यन्त्री असि) यन्त्री, नियमकारिणी शक्ति कहाती है। तू (यमनी) नियम व्यवस्था करने वाली और (धरित्री) प्रजा को धारण करने वाली पृथ्वी के समान (ध्रुवा असि) ध्रुव, स्थिर है। (त्वा) तुझ राज-शक्ति को पृथ्वी के समान जान कर मैं (इषे) अन्न सम्पदा की वृद्धि के लिये (ऊर्जे) पराक्रम के लिये, (रय्यै) प्राणशक्ति या ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये और (पोषाय) पशु

आदि समृद्धि के लिये या शरीरों की पुष्टि के लिये स्वीकार करता हूं ॥ शत० ८ । ३ । ४ । १० ॥

आशुस्त्रिवृद्भान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणऽएकविꣳशः प्रतूर्त्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविꣳशो वर्चो द्वाविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशः गर्भाः पञ्चविꣳशऽओजस्त्रिणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः ॥ २३ ॥

ऋषयो ऋषयः । मेधाविनो देवता । भुरिग् विकृतिः । मध्यम ॥

भा०—१. (आशु त्रिवृत्) आशु, शीघ्रकारी, वायु के समान बलवान् पुरुष वायु के समान तीनों लोकों में व्याप्त और तीनों बलों से युक्त होता है । और जिस प्रकार (त्रिवृत्) शीत, उष्ण और शीतोष्ण तीन प्रकार की ऋतुओं से युक्त संवत्सर होता है उसी प्रकार प्रजापति राजा भी शीत, उष्ण और सम इन तीन स्वभाव वाला होता है उसको 'आशु' कहते हैं । अथवा जिसके अधीन तीन शक्तियां हों या जिसके अमात्य तीन हों वह अपने नियमों को शीघ्र कर लेने वाला होने से 'आशु' नाम प्रजापति कहाता है । वह प्राण वायु के समान त्रिवृत्-वीर्य होता है ।

२. (भान्तः पञ्चदश) १५ गुण वीर्य या वीर सहायक पुरुषों से युक्त राजा 'भान्त' नामक है । अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा प्रतिपक्ष में बढ़ती १५ कलाओं से युक्त होता है उसी प्रकार १५ राज्यांगों से युक्त प्रजापालक राजा १५ गुण-वीर्य होने से चन्द्रमा के समान 'भान्त' कहाता है ।

३. (व्योमा सप्तदश) जिस प्रकार संवत्सर में १२ मास और ५ ऋतु होने से १७ विभाग होते हैं, इसी प्रकार वह प्रजापालक राजा

२३—अतः पर चतुर्थी चितिः । मेधाविनो देवता । द० ।

जो इसी प्रकार अपने राज्य के १७ विभाग बना कर रखता है वह (व्योमा) विशेष रक्षाकारिणी शक्ति से सम्पन्न होने से 'व्योम' प्रजापति कहाता है।

४. (धरुण. एकविंश:) जिस प्रकार सूर्य १२ मास, ५ ऋतु, तीन लोक, इन २१ वीर्यों सहित सबका आश्रय होकर अकेला विराजता है और 'धरुण' कहाता है। उसी प्रकार जो प्रजा पालक राजा अपने राष्ट्र में २१ वीर्यों या प्रबल विभागों या वीर सहायक अधिकारियों सहित प्रजा का पालन करता, सबका आश्रय रहता है वह भी 'एकविंश धरुण' कहाता है।

५. (प्रतूर्त्तिः अष्टादशः) जिस प्रकार संवत्सर रूप प्रजापति के १२ मास, ६ ऋतु या १२ मास, ५ ऋतु और १८ वां स्वयं होकर समस्त जन्तुओं को खूब बढ़ाता है उसी प्रकार जो राजा स्वयं अपने राज्य के १८ विभाग करके प्रजाओं की वृद्धि और उनको हृष्ट पुष्ट करता है वह 'प्रतूर्त्ति' कहाता है।

६. (तपः नवदशः) जिस प्रकार १२ मास, ६ ऋतु और आप स्वयं मिलकर १९ वां होकर समस्त प्राणियों को संतप्त करने से आदित्य रूप संवत्सर 'तप.' है उसी प्रकार राजा भी १८ विभागों के राज्य पर स्वयं १९ वां अधिपति होकर शासन करता हुआ, शत्रुओं को संतापित करे, वह भी 'तप' कहाता है।

७. (अभीवर्त· सविंशः) जिस प्रकार १२ मास, ७ ऋतुओं से आदित्य रूप संवत्सर समस्त प्राणियों को पुन· प्राप्त होने से 'अभिवर्त्त' कहाता है उसी प्रकार राज्य के १९ विभागाध्यक्षों पर स्वयं २० वां होकर शासन करने वाला प्रजापति राजा उस सूर्य के समान समस्त राष्ट्र में व्यापक प्रभाव वाला होकर 'अभीवर्त्त' पद को प्राप्त करता है।

८ (वर्चः द्वाविंशः) जिस प्रकार १२ मास, ७ ऋतु, दिन और रात्रि उनका प्रवर्त्तक स्वयं २२ वां आदित्य रूप संवत्सर वर्चस्वी होने से 'वर्चः'

कहाता है, उसी प्रकार जो राजा १२ मास, ७ ऋतु, दिन और रात्रि के लक्षणों से युक्त २१ विभागाध्यक्षों पर स्वयं २२ वां होकर विराजता है वह भी वर्चस्वी होने से 'वर्चः' पद का भागी होता है।

९. (सम्भरणः त्रयोविंशः) जिस प्रकार १३ मास, ७ ऋतु, २ रात, दिन, इन २२ का विधाता स्वय २३ वां आदित्य रूप संवत्सर समस्त प्राणियों का भरण पोषण कर्त्ता होने से 'सम्भरण' कहाता है उसी प्रकार २२ विभागाध्यक्षों का प्रवर्त्तक २३ वां स्वय समस्त प्रजाओं का भरण पोषण करने वाला राजा 'सम्भरण' पदका अधिकारी है।

१० (योनिः चतुर्विंशः) १२ मास, २४ अर्ध मासों से युक्त आदित्य-रूप सवत्सर समस्त प्राणियों का आश्रय होने से योनि कहाता है उसी प्रकार २४ विभागाध्यक्षों का प्रवर्त्तक राजा भी सबका आश्रय होने से 'योनि' कहाता है।

११. (गर्भाः पञ्चविंशः) २४ अर्ध मासो का प्रवर्त्तक स्वयं २५ वां आदित्य-रूप संवत्सर जिस प्रकार १३ वें मास का रूप धर कर समस्त अन्य ऋतुओं में अंशांशि भाव से प्रविष्ट होता है और 'गर्भ' नाम से कहाता है उसी प्रकार २४ विभागाध्यक्षों का प्रवर्त्तक राजा पृथक् स्वरूप रह कर भी सब पर अपना वश करके 'गर्भ' नाम से कहाता है।

१२ (ओजस्त्रिणव.) २४ अर्ध मास और २ रात्रि दिन, इन २६ सों पर स्वयं २७ वां प्रवर्त्तक होकर विराजने वाला आदित्य संवत्सर ओजस्वी होने से 'ओज' कहाता है उसी प्रकार २६ अध्यक्षों का स्वयं प्रवर्त्तक २७ वां राजा ओजस्वी वज्र के समान पराक्रमी होकर 'ओजः' कहाता है।

१३ (क्रतुः एकत्रिंश) २४ अर्धमास और ६ ऋतु सब मिलकर जिस प्रकार ३० का समष्टि विभागों रूप सवत्सर आदित्य स्वयं सबका

कर्त्ता होकर 'क्रतु' कहाता है उसी प्रकार ३० विभागों का शासक राजा राज्यकर्त्ता होने से 'क्रतु' कहाता है।

१४. (प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिंश.) २४ अर्धमास, ६ ऋतु, २ दिन-रात्रि, उन का प्रवर्त्तक ३३ वां स्वयं आदित्य संवत्सर सबकी प्रतिष्ठा या स्थिति का कारण होने से 'प्रतिष्ठा' कहाता है, उसी प्रकार ३२ विभागों पर स्वयं ३३ वां प्रवर्त्तक राजा सबका प्रतिष्ठापक होने से 'प्रतिष्ठा' पद को प्राप्त होता है।

१५ (ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिंश.) २४ अर्धमास, सात ऋतु, २ रात दिन, इनका प्रवर्त्तक संवत्सर आदित्य जिस प्रकार स्वयं ३४ वां है और वह 'ब्रध्न का विष्टप' अर्थात् सर्वाधार सूर्य का लोक या पद इस नाम से कहाता है उसी प्रकार ३३ विभागों का प्रवर्त्तक शासक स्वयं ३४ वां होकर 'ब्रध्न का विष्टप' 'सूर्य का पद, सम्राट्' कहाता है।

१६. (नाकः षट्त्रिंश.) २४ अर्धमास, १२ मास इनका प्रवर्त्तक संवत्सर सब के दुःखों का नाशक होने से 'नाक' कहाता है इसी प्रकार ३६ विभागों का राजतन्त्र सुखप्रद होने से 'नाक' कहाता है।

१७. (विवर्त्तः अष्टाचत्वारिंशः) २६ अर्धमास और २३ मास, २ अहोरात्र, ७ ऋतु इनका प्रवर्त्तक सूर्य स्वयं इनका स्वरूप होकर 'विवर्त्त' कहाता है उसी प्रकार ४८ विभागों का प्रवर्त्तक राजा समस्त प्रजाओं को विविध मार्गों मे चलाने हारा होने से 'विवर्त्त' कहाता है।

१८. (धर्त्रं चतुष्टोमः) चारों दिशाओं में अपने बल वेग से गमन करने वाले वायु के समान अपने संहारक पराक्रम से चारों दिशों का विजय करने मे समर्थ अपनी राज्य प्रतिष्ठा करने वाला विजेता राजा 'धर्त्र' कहाता है। शत० ८। ४। १। १-१८॥

वीर्यं वै स्तोमाः। तां० २। ५। ४। प्राणा वै स्तोमाः। शत० ८। १। ३॥

इस आधार पर स्तोम त्रिवृद् आदि वीर्य अर्थात् अधिकारी और उनके सञ्चालक और धारक अधिकारी अध्यक्षों का वाचक हैं।

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षाया ऽआधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमः। इन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रꣳ स्पृतं पञ्चदश स्तोमः। नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रꣳ स्पृतꣳ सप्तदश स्तोमः। मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वात स्पृत एकविꣳश स्तोमः ॥ २४ ॥

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विꣳश स्तोमः। आदित्यानां भागोसि मरुतामाधिपत्यं गर्भाः स्पृता. पञ्चविꣳश स्तोमः। अदित्यै भागोऽसि पूष्ण आधिपत्यमोजस्पृतं त्रिणव स्तोमः। देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳसमीचीर्दिशं स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः ॥ २५ ॥

यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिꣳश स्तोमः। ऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतꣳ स्पृतं त्रयस्त्रिꣳश स्तोमः ॥ २६ ॥

(२४) लिंगोक्ता देवताः। भुरिक् विकृतिः। मध्यमः। (२५) स्वराट् संकृतिः। गान्धारः। (२६) निचृदति जगती। निषादः॥

भा०—१. हे विज्ञान राशे! (अग्नेः भागः असि) तू अग्नि ज्ञानवान् पुरुष के सेवन करने योग्य है। तुझ पर (दीक्षायाः) दीक्षा, व्रतग्रहण और वाणी का (आधिपत्यम्) आधिपत्य, स्वामित्व है। इससे ही (ब्रह्म स्पृतम्) ब्रह्म अर्थात् वेद ज्ञान सुरक्षित रहता है। (त्रिवृत् स्तोमः) उपासना, ज्ञान और कर्म ये तीन प्रकार का वीर्य प्राप्त होता है।

२. (इन्द्रस्य भागः असि) हे क्षात्रबल! तू (इन्द्रस्य)

ऐश्वर्यवान् या शत्रुओं के नाशकारी वीर पुरुष का (भाग· असि) सेवन करने योग्य अंश है । उस पर (विष्णोः आधिपत्यम्) व्यापक या विस्तृत सामर्थ्यवान् पुरुष का आधिपत्य या स्वामित्व है । उसके अधीन (क्षत्रं स्पृतम्) क्षात्र-बल की रक्षा होती है । (पञ्चदशः स्तोम) उसका अधिकारी बल चन्द्र के समान १५ तिथियों या कलाओं से युक्त है। या उसका पद १२ मास ३ ऋतु वाले आदित्य संवत्सर के समान है ।

३. (नृचक्षसां भागः असि) हे राष्ट्र मे बसे प्रजाजन ! तुम लोग (नृचक्षसां भागः असि) प्रजाओं के कार्यों के निरीक्षक अधिकारी पुरुषों के भाग हो । तुम पर (धातुः) प्रजा का पालन करने और ऐश्वर्य या पौष्टिक अन्नादि पदार्थों से पुष्ट करने हारे 'धातृ' नामक अधिकारी का (आधिपत्यम्) स्वामित्व है । (जनित्रम् स्पृतम्) इस प्रकार प्रजाओं का उत्पन्न होना और उनके जीवन की रक्षा होती है । इसमें (सप्तदश स्तोम), इस अधिकारी के अधीन १७ अन्य अधिकारी जन हों ।

४. (मित्रस्य भागः असि) मित्र सर्व प्रजा के प्रति स्नेही, निष्पक्षपात, न्यायकारी, सूर्य के समान तेजस्वी, पुरुष का यह भाग है। इस पर (वरुणस्य आधिपत्यम्) वरुण दुष्टों को वारण करने वाले दमनकर्त्ता अधिकारि का अधिकार है । (दिवः वृष्टिः) आकाश से जैसे जल वृष्टि सब को समान रूप से प्राप्त होता है और (वात·) वायु जिस प्रकार सब को समान रूप से प्राप्त है उसी प्रकार सर्व साधारण के अन्न जल वायु के समान जन्म सिद्ध अधिकार भी (स्पृतः) सुरक्षित हों । (एकविंशः स्तोम) उसमे २१ अधिकारीगण हों ॥ २४ ॥

५. (वसूनां भागः असि) हे पशु सम्पत्ते ! तू राष्ट्र में बसने वालों का सेवन करने योग्य पदार्थ है । तुझ पर (रुद्राणाम् आधिपत्यम्) तेरे रोधन करने वाले रुद्र, गोपाल लोगों का स्वामित्व है । इस प्रकार (चतु-

ष्पाद् स्पृतम्) चौपायों की रचा हो । (चतुर्विंशः स्तोमः) इसमें २४ अधिकारीगण नियुक्त हों ।

६. (आदित्यानां भागः असि) हे गर्भगत जीवो ! तुम आदित्यों या तेजस्वी पुरुषों के भाग हो । तुम पर (मरुताम् आधिपत्यम्) शरीरवर्ती प्राणों का स्वामित्व है । इस प्रकार प्रजाओं के गर्भ सुरक्षित होते हैं । (पञ्चविंशः स्तोमः) उसमें २५ अधिकारीगण हैं ।

७. हे ओज ! (अदित्यै भागः असि) तू अखण्ड राजशक्ति का भाग है । तुझ पर (पूष्णः आधिपत्यम्) राष्ट्र को पुष्ट करने वाले पुरुष का स्वामित्व है । इस पर राष्ट्र का (ओजः स्पृतम्) ओज, तेज सुरक्षित हो । (त्रिनवः स्तोमः) इसमें २७ अधिकारी गण हैं ।

८. (देवस्य सवितुः भागः असि) हे समस्त दिशाओं के सर्व प्रेरक देव ! तू राजा का भाग हो । तुझ पर (बृहस्पतेराधिपत्यम्) तुझ पर महान् राष्ट्र के पालक का स्वामित्व है । इस प्रकार (समीची दिशः) समान रूप से फैली दिशाएं (स्पृताः) सुरक्षित होती हैं । (चतुस्तोमः स्तोमः) इसमें ४ मुख्य अधिकारी होते हैं ॥ २५ ॥

९. हे प्रजाजनो ! तुम (यवानां भागः असि) पूर्व पक्ष के लोगों या शत्रुनाशक वीर भटों के भाग अर्थात् सेवन करने योग्य हो और तुम पर (अयवानाम्) सौम्य अधिकारी जो सेना में शत्रु का नाश न कर शान्ति से शासन करते हैं उनका (आधिपत्यम्) स्वामित्व है। इसमें (चतुश्चत्वारिंशः स्तोमः) ४४ अधिकारी जन होते हैं ।

१०. (ऋभूणां भागः असि) हे पञ्च भूतगण तुम सत्य से शोभा देने वा न्यायकारी पुरुषों का भाग हो । उनपर (विश्वेषां देवानाम्) समस्त विद्वानों का (आधिपत्यम्) स्वामित्व है । (भूतम् स्पृतम्) यथार्थ सत्य पदार्थ की रक्षा होती है । अथवा (ऋभूणां) तुम शिल्पि जनों का भाग हो ।

(विश्वेषां देवानाम् आधिपत्यम्) समस्त विजयी पुरुषों का उन पर स्वामित्व हो । (भूतम्) इससे समस्त उत्पादक शिल्प की रक्षा होती है । (त्रय-स्त्रिंश स्तोम.) उसमें ३३ अधिकारीगण हैं ॥ ८ । ४ । २ । १–४ ॥

सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतू ऽअग्नेरन्त श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ्मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। ये ऽअग्नय समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी इमे। हैमन्तिकावृतू ऽअभिकल्पमाना इन्द्रमिव देवा ऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ २७ ॥

भा०—(सहः सहस्यः च) सह और सहस्य ये दोनों (हेमन्तिकौ ऋतू) हेमन्त ऋतु के भाग हैं। (अग्ने. अन्त सीदतम्०) इत्यादि व्याख्या देखो १२ । २५ ॥ शत० ८ । ४ । २ । १४ ॥

एकयास्तुवत प्रजा ऽअधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्। तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत्। पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत्। सप्तभिरस्तुवत सप्त ऽऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्॥ २८ ॥

नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीत्। एकादशभिरस्तुवत ऽऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवा ऽआधिपतय आसन्। त्रयोदशभिरस्तुवत मासा ऽअसृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत्। पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत्। सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥

नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रे ऽअधिपत्नी आस्ताम्। एकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्। त्रयोविꣳशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत्। पञ्चविꣳशत्यास्तु वनाऽऽरण्याः पशवोऽ-

सृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् । सप्तविंꣳशत्यास्तुवत द्यावापृथि-वी व्यैतां वसवो रुद्रा ऽआदित्या ऽअनुव्यायँस्त एवाधिपतय ऽआसन् ॥ ३० ॥

नवविंꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयोऽसृज्यन्त सोमोऽधिपतिरासीत् । एकत्रिꣳशतास्तुवत प्रजा ऽअसृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतय आसन् । त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमे-ष्ठ्यधिपतिरासीत् ॥ ३१ ॥

प्रजापतिर्देवता । (२८) निचृद्विकृति । मध्यमः । (२९) १—आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः । २—ब्राह्मी जगती निषाद ॥ (३०) १—ब्राह्मी जगती । निषाद । २—ब्राह्मी पंक्तिः । पञ्चमः ॥ (३१) स्वराड् ब्राह्मी जगती । निषादः ॥

भा०—१. (एकया अस्तुवत) विद्वान् लोग उस प्रजापति परमेश्वर की एक वाणी द्वारा गुण स्तुति करते हैं । उसी परमेश्वर ने (प्रजा अधि इयन्त) प्रजाओं को उत्पन्न किया और (प्रजापतिः अधि-पतिः आसीत्) प्रजापति ही सदा से सबका स्वामी रहा ।

२. (तिसृभिः) शरीर में प्राण, अपान, व्यान ये तीन प्रकार की प्राणशक्तियां विद्यमान हैं । इन तीनों महान् समष्टि शक्तियों से ही (ब्रह्म असृज्यत) यह ब्रह्माण्ड भी बनाया गया है । उन तीनों के द्वारा ही उस परमेश्वर की (अस्तुवत) स्तुति करते हैं । उस ब्रह्माण्ड हिरण्य गर्भ का (ब्रह्मणस्पति अधिपतिः आसीत्) ब्रह्मणस्पति ब्रह्माण्ड का स्वामी या ब्रह्मवेद का स्वामी परमेश्वर ही अधिपति रहा ।

३. (पञ्चभिः) शरीर में जिस प्रकार पांच मुख्य प्राण हैं । उन पांच के बल से यह देह चल रहा है । उसी प्रकार इस जगत् में उसी प्रकार की पांच महान् शक्तियों के द्वारा (पञ्च भूतानि असृज्यन्त) पांच

भूत पृथ्वी, वायु, जल, तेज, आकाश को बनाया। उन शक्तियों के द्वारा ही (अस्तुवत) विद्वान् पुरुष उस परमेश्वर और शक्तियों का वर्णन करते हैं कि (भूतानां पतिः) इन पांचों महाभूतों का स्वामी ही (अधिपतिं) सबका स्वामी है।

४. (सप्तभिः) देह में २ श्रोत्र, २ चक्षु, २ नासा और १ वाणी, इन सात शिरोगत प्राणों या मांस आदि सात धातुओं से यह देह स्थिर है। उसी प्रकार विश्व में (सप्त ऋषयः) सात महान् द्रष्टा या प्रवर्त्तक ऋषि, ५ सूक्ष्म मात्राएं और महत् तत्व और अहंकार भी (असृज्यन्त) बनाई गयी हैं। विद्वान् पुरुष उस परमेश्वर की उन (सप्तभिः) सातों प्रकट महा शक्तियों द्वारा (अस्तुवत) स्तुति करते हैं। उन सबका भी वह (धाता) विधाता सर्वस्रष्टा ही अधिपति है ॥ २८ ॥

५. (नवभिः) शरीर में नव प्राण हैं पूर्वोक्त सात शिरोगत और दो नीचे के भाग में मूलेन्द्रिय और गुदा। ये शरीर को धारण करते हैं उसी प्रकार (पितरः) विश्व में अग्नि आदि ६ पालक शक्तियां 'पितृ' रूप से प्रकट होती हैं। विद्वान् लोग (नवभिः अस्तुवत) उन नवों ही शक्तियों के द्वारा उसकी स्तुति करते हैं। उन नवों पर (अदितिः अधिपत्नी आसीत्) उस परमेश्वर की अखण्ड शक्ति पालक रहती है।

६. (एकादशभिः) शरीर में १० प्राण, ५ कर्मेन्द्रिय और ६ बुद्धीन्द्रियें हैं, ११ वां आत्मा है। विश्व में भी (ऋतवः असृज्यन्त) ११ ऋतु=प्राण रचे गये हैं। विद्वान् लोग उन (एकादशभिः अस्तुवत) ११ मुख्य प्राणों के द्वारा ही इस परमेश्वर या विधाता की स्तुति करते हैं। उनके (आर्त्तवाः) ऋतुओं के भीतर विद्यमान विशेष दिव्य शक्तियां ही (अधिपतयः) पालक (आसन्) हैं।

७. (त्रयोदशभिः) शरीर में दश प्राण, दो चरण और एक आत्मा

ये १२ प्रधान वल हैं। उसी प्रकार विश्व मे (मासाः असृज्यन्त) एक संवत्सर रूप प्रजापति के १२ मास अग रूप से वने हैं। मासों का (अधिपतिः संवत्सर आसीत्) अधिपति जिस प्रकार 'सवत्सर' है, उसी प्रकार उक्त १२ हों का भी अध्यक्ष परमेश्वर भी 'संवत्सर' नाम से कहाने योग्य है। उसकी १२ हों अंगों द्वारा (अस्तुवत) विद्वान् लोग स्तुति करते हैं।

८ (पञ्चदशभि) इस शरीर मे जिस प्रकार दश हाथ की अगुलियां, दो वाहुएं और दो टांगे और १५ वां नाभि से ऊपर का शरीर भाग है। उसी प्रकार विश्व-ब्रह्माण्ड में १५ महती शक्तियां विश्व की ३ प्रकार से रक्षा करती हैं, जैसे हाथ शरीर की। विश्व की रक्षा के लिये ही (क्षत्रम् असृज्यत) क्षत्र, शत्रु को खदेड़ने वाला और प्रजा को शत्रु द्वारा पहुंचने वाली क्षति से वचाने वाला वल वनाया गया। उक्त १५ हों शक्तियों से विद्वान् उस विधाता प्रजापति की (अस्तुवत) स्तुति करते हैं अर्थात् उसके वनाये शरीर को देख कर उसके भीतर विद्यमान वलवान् हाथों की अंगुलियों की रचना को देख कर स्वयं भी उसके अनुकरण में समाज में प्रजा के रक्षक क्षत्रिय-वल की रचना करके उसके भी परस्पर उपकारक अंग प्रत्यंग रचते हैं।

९. (सप्तदशभि अस्तुवत) शरीर में जिस प्रकार १० हाथ पैर के अंगुलियां, दो टांगें, दो गोड़े, दो पैर और नाभि का अधोभाग ये १७ अंग हैं उसी प्रकार (इन्द्र अधिपतिः आसीत्) उनका अधिपति 'इन्द्र' है। विश्व के भी जीव सर्ग में सर्वत्र ये शक्तिया विद्यमान हैं और विश्व के जीव सर्ग को चला रही हैं। विद्वान्गण उन द्वारा भी परमेश्वर विधाता की ही स्तुति करते हैं। उन शक्तियों से ही (ग्राम्या) ग्रामवासी नाना (पशव) पशु गण (असृज्यन्त) पैदा किये गये हैं। उन सब का (बृहस्पति) महान् विश्व और महती ज्ञानमयी वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर ही (अधिपतिः) मालिक है।

१०. (नव दशाभि. अस्तुवत) दश हाथों की अंगुलियां और शरीर गत ९ प्राण ये १९ जिस प्रकार शरीर की रक्षा करते हैं और उसको चेतन बनाये रखते हैं उसी प्रकार १९ धारक और पालक बल विश्व को थामे हैं, उन १९ शक्तियों के वर्णन द्वारा भी उसी परमेश्वर की रचना कौशल की विद्वान् गण स्तुति करते हैं उन १९ अभ्यन्तर और बाह्य अंगों के समान ही (शूद्रार्यौ असृज्येताम्) शूद्र और आर्य, श्रमजीवी और स्वामी लोगों के परस्पर संघों की रचना हुई है। शूद्र बाहर के हाथों की अंगुलियों के समान और आर्य या श्रेष्ठ स्वामी गण समाज के भीतरी प्राणों के समान रहें। उनके (अहोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम्) दिन, रात ये दो ही अधिपति या पालक हैं अर्थात् दिन, प्रकाशमान और रात्रि अन्धकारमय है। इसी प्रकार शूद्र कर्म कर ज्ञान रहित और आर्य ज्ञानवान् हैं। अहोरात्र का सम्मिलित स्वरूप उभयविध ज्ञान-कर्ममय प्रजापति ही शूद्र आर्य दोनों का पालक है।

११. (एकविंशत्या अस्तुवत) १० हाथ की और १० पैर की अंगुलियां हैं और आत्मा २१ वां हैं। उसी प्रकार विश्व में भी उत्तर और अधर लोकों की १०, १० कार्यकारिणी और पालनकारिणी शक्तियां काम कर रहीं है। उनको देखकर उन द्वारा भी विद्वान्जन प्रजापति की स्तुति करते उसकी रचना के गुणों का दर्शन करते और उसका अनुकरण करते हैं। उसके अनुकूल (एकशफाः पशवः असृज्यन्त) एक खुर वाले पशुओं की रचना हुई। अर्थात् हाथ की दशों अंगुलियों के समान १० दिशागामी १० दिशाओं में दश सेनाएं और उनके सहायतार्थ घोड़े, खच्चर आदि उपयोगी पशु पैदा किये जाते हैं। उनका (अधिपतिः वरुण आसीत्) अधिपति 'वरुण' और सर्वश्रेष्ठ सब शत्रुओं को वारक सेनापति पुरुष है।

१२. (त्रयोविंशत्या) अस्तुवत १० हाथ की और १० पैर की अंगु-

लियां दो पैर और २३ वां आत्मा देह में विद्यमान है। उसी प्रकार ब्रह्माण्ड में २३ महान् शक्तियां कार्य कर रही हैं। उन २३ स्वरूपों से ही विद्वान् गण परमेश्वर की स्तुति करते हैं। (क्षुद्राः पशव. असृज्यन्त) उक्त अंगों की शक्तियो द्वारा क्षुद्र पशुओं की रचना हुई है। उन सब का (पूषा अधिपतिः) अधिपति पूषा, अन्नमय अन्नदात्री पृथिवी ही है।

१३. (पन्चविंशत्या अस्तुवत) हाथो, पैरो की दश दश अगुलियां, दो बाहु, दो पैर और २५ वां आत्मा ये देह के घटक हैं। इसी प्रकार सृष्टि रचना के भी घटक ये ही पदार्थ हैं, उनके द्वारा विद्वान् विधाता की स्तुति करते हैं। उन घटक अवयवों से ही (आरण्या पशवः असृज्यन्त) जंगली पशु रचे गये है। (वायुः अधिपति आसीत्) तीव्र गतिशील वायु के समान, वेगवान् पालक ही उनका अधिपति है।

१४. (सप्तविंशत्या अस्तुवत) हाथों पैरों की दस २ अंगुलियां, २ बाहु और २ टांगें, दो चरण एक आत्मा ये सत्ताईस शरीर के घटक हैं। इन सत्ताईस घटक अंगों के सन्चालक महती शक्तियों के द्वारा ही विद्वान् पुरुष विधाता की स्तुति करते हैं। उनके द्वारा ही (द्यावापृथिवी व्यैताम्) द्यौ और पृथिवी दोनों व्याप्त होते हैं और उनमें ही (वसव) आठ वसु, (रुद्रा·) ११ प्राण और (आदित्या·) १२ मास (अनु-वि-आयन्) उनके भी भीतर व्याप्त हैं। (त एव) वे ही उन दोनों आकाश और पृथिवी के (अधिपतयः आसन्) अधिपति या पालक हैं।

१५. (नवविंशत्या अस्तुवत) देह में हाथो पैरों की दस २ अंगुलियां, ९ प्राण हैं उसी प्रकार २९ घटक शक्तियां विश्व को रच रही हैं। उन द्वारा विद्वान् जन विधाता प्रजापति की स्तुति करते हैं। (वनस्पतयः असृज्यन्त) उन घटक शक्तियों से ही वनस्पतियों को बनाया गया है। उनका (सोम अधिपति. आसीत्) सोम अधिपति है।

१६. (एकत्रिंशता अस्तुवत) हाथ पैर की दस २ अंगुलियां, १०

प्राण और ३१ वां आत्मा उन घटकों से समस्त शरीर बने हैं। उन शक्तियों द्वारा ही विद्वान् जन विधाता के कौशल का वर्णन करते हैं। इनसे ही (प्रजा. असृज्यन्त) समस्त प्रजा सृजी गयी है। उनके (यवाः च अयवा. च अधिपतयः आसन्) उनके पूर्व पक्ष और अपर पक्ष अथवा मिथुन भूत जोड़े अमैथुनी अथवा जन्तु शरीरों मे होने वाले ऋतु धर्म सम्बन्धी पूर्वोत्तर पक्ष या (यवाः) पुरुष और (अयवाः) स्त्रियें ही उनके अधिपति हैं।

१७. (त्रयः त्रिंशता अस्तुवन्) हाथों पैरों की दस २ अंगुलियां, दश प्राण, २ चरण और ३३ वां आत्मा ये सब पूर्ण शरीर के मुख्य मुख्य घटक हैं, और उसी प्रकार ३३ ही ब्रह्माण्ड के भी घटक हैं उनके द्वारा ही परम विधाता की विद्वान स्तुति करते हैं। उनसे ही (भूतानि) समस्त प्राणि गण (अशाम्यन्) सुखी होते हैं। उन सब का (परमेष्ठी प्रजापतिः अधिपति आसीत्) परमेष्ठी सर्वोच्च पद पर प्रजापति परमात्मा ही सबका अधिपति है। ८। ४। ३। १-१६ ॥

राष्ट्र पक्ष में—१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७, १६, २१, २३, २५, २७, २६, ३१, और ३३ इन भिन्न २ घटक अङ्गों से बने राज्यों एवं राजाओं को परमेश्वर के बनाये देह के मुख्यांगों की रचना के अनुसार बनाना चाहिये और उनके अधिपति भी भिन्न २ योग्यता के पुरुषों को रखना चाहिये। और विद्वान् लोग उन घटक अवयवों का ही उत्तम रीति से (अस्तुवत) उपदेश करें और तदनुसार राज्यों की कल्पना करें। उन राष्ट्र के भिन्न २ भागों में प्रजापति ब्रह्मणस्पति, धाता, अदिति, आर्तव आदि नामधारी मुख्य पदाधिकारियों को नियत करें।

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥

इति मीमासातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चदशोऽध्यायः ॥

१—६८ अध्याय परिसमाप्तेः परमेष्ठी ऋषिः ॥

॥ओ३म्॥ अग्ने॑ जा॒तान् प्रणु॑दा नः स॒पत्ना॒न् प्रत्यजा॑तान्नुद जातवेदः।
अधि॑ नो ब्रूहि सु॒मना॒ऽअहे॑ड॒ँस्तव॑ स्याम॒ शर्मँ॑स्त्रि॒वरू॑थ॒ऽउ॒द्भौ॥१॥

अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी सेनापते ! राजन् ! तू (नः) हमारे (जातान् सपत्नान्) प्रकट हुए शत्रुओ को (प्रणुद) दूर भगा । और हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवान् और शक्तिशालिन् ! तू (अजातान् सपत्नान्) अभी तक प्रकट न हुए शत्रुओं को (प्रतिनुद) मुकाबला करके परास्त कर । और (नः) हमारा (अहेडम्) अनादर न करता हुआ (सुमनः) उत्तम शुभ प्रसन्न चित्त होकर (नः अधि ब्रूहि) हमें अधिष्ठाता होकर आज्ञा कर, सन्मार्ग का उपदेश कर। हम (तव) तेरे (त्रिवरूथे) त्रिविध तापों के वारण करने वाले (उद्भौ) उत्तम सुखों के उत्पादक या उच्च (शर्मन्) गृह में या आश्रय में (स्याम) रहें ।

सह॑सा जा॒तान् प्रणु॑दा नः स॒पत्ना॒न् प्रत्यजा॑तान् जातवेदो नुदस्व।
अधि॑ नो ब्रूहि सुमन॒स्यमा॑नो व॒यꣳ स्या॑म॒ प्रणु॑दा नः स॒पत्ना॑न्॥२॥

अग्निर्ऋषिः । त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (जातवेदः) बल और ऐश्वर्य और प्रजा से सम्पन्न राजन् ! सेनापते ! तू (जातान् सपत्नान्) उत्पन्न हुए विरोधी शत्रुओं को (सहसा) पराजय करने में समर्थ बल से (प्रणुद) परे मार भगा । और (अजातान्

अथ पञ्चमी चितिः ।

प्रतिनुदस्व) अप्रकट शत्रुओं को भी परास्त कर । (सुमनस्यमानः) शुभ चित्त वाला, उत्तम मन वाला होकर (नः अधि ब्रूहि) हमें उपदेश कर । जिससे (वयम्) हम लोग तेरे सहायक (स्याम) हों । तू (नः सपत्नान् प्रणुद) हमारे शत्रुओं को दूर भगा ।

षोडशी स्तोम ओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिꣳश स्तोमो वर्चो द्रविणम् अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभि गृणन्तु देवाः । स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥ ३ ॥

असपत्नकृद् अग्निर्देवता । ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(षोडषी स्तोमः) षोडशी स्तोम अर्थात् १६ कलाओं या वीर्य, बल या अधिकारों से युक्त 'स्तोम' पद (ओजः द्रविणम्) पराक्रम और धनैश्वर्य प्रदान करता है । हे राष्ट्रशक्ते ! वह तेरा एक स्वरूप है । दूसरा (चत्वारिंशः स्तोमः) ४४ वीर्यों या अधिकारों या अधिकारियों से युक्त स्तोम , पद भी (वर्चः) तेज और (द्रविणम्) ऐश्वर्य प्रदान करता है वह तेरा दूसरा स्वरूप है । हे राज्य शक्ते ! तू (अग्नेः) अग्रणी शत्रु संतापक राजा के बल को (पुरीषम्) पूर्ण करने वाला समृद्ध ऐश्वर्य है । तेरा (नाम) स्वरूप (अप्सः) 'अप्स' है अर्थात् तेरे भीतर रहकर एक आदमी दूसरे का जान माल और अधिकार को नहीं खाता है । (त्वा) तेरा ही (विश्वेदेवा) समस्त विद्वान् (अभिगृणन्तु) स्तुति करें । हे पृथिवि ! तू (स्तोमपृष्ठा) समस्त अधिकारों, बलों और वीर्यवान् पुरुषों का आश्रय होकर (घृतवती) तेजस्विनी होकर (इह सीद) इस भूतल पर विराज, स्थिर हो । (अस्मे) हमें (प्रजावद् द्रविणा) प्रजाओं से युक्त ऐश्वर्यों का (यजस्व) प्रदान कर ।

दम्पती देवते । द० ॥

पृवश्छन्दो वरिवृश्छन्दः शम्भूश्छन्दः परिभूश्छन्दऽआच्छच्छन्दो मनुश्छन्दो व्यचुश्छन्दः सिन्धुश्छन्दः समुद्रश्छन्दः सरिरं छन्दः ककुप् छन्दस्त्रिककुप्छन्दः काव्यं छन्दोऽअङ्कुपं छन्दोऽक्षरपङ्क्तिश्छन्दः पदपङ्क्तिश्छन्दो विष्टारपङ्क्तिश्छन्दः क्षुरोभ्रजश्छन्दः ॥ ४ ॥

आच्छच्छन्दः प्रच्छच्छन्दः संयच्छन्दो वियच्छन्दो बृहच्छन्दो रथन्तरञ्छन्दो निकायश्छन्दो विवधश्छन्दो गिरश्छन्दो भ्रजश्छन्दः सुःस्तुप् छन्दोऽनुष्टुप् छन्दः एवश्छन्दो वरिवश्छन्दो वयश्छन्दो वयस्कृतच्छन्दो विष्पर्धाश्छन्दो विशालं छन्दश्छदिश्छन्दो दूरोहणं छन्दस्तन्द्रच्छन्दो ऽअङ्काङ्कं छन्दः ॥ ५ ॥

(४) विद्वांसो विराजो वा देवता । निचृदा कृतिः । पञ्चमः ॥
(५) भुरिगभिकृतिः ऋषभः ॥

भा०—१. (एवः) सब प्राणियों को प्राप्ति स्थान, भूलोक, सब से ज्ञान द्वारा गम्य प्रभु (छन्द) सबका आच्छादक या रक्षक है ।

२. (वरिवः) सबको आवरण करने वाला अन्तरिक्ष 'वरिवस्' है । वह (छन्द)' सुखकारी हो ।

३. (शंभूः) शान्ति का उत्पत्ति स्थान, परमेश्वर, द्यौ के समान शान्तिकारक जलादि पदार्थों का दाता और स्वयं द्यौलोक (छन्दः) सुखप्रद हो ।

४ (परिभू छन्दः) सर्वत्र सामर्थ्यवान् दिशा के समान व्यापक, परमेश्वर (छन्दः) सुखप्रद हो ।

५. (आच्छत् छन्दः) समस्त शरीरों को आच्छादन करने वाला

४—क्षुरोभ्रजश्छन्द (निःसम)

प्राण के समान जीवनप्रद और वायु के समान सर्व दोषों को वारक प्रभु हमें सुख प्रदान करे ।

६. (मनः छन्दः) 'मन', ज्ञानमय मन के समान या सत्यसंकल्पमय परमेश्वर हमें सुख प्रदान करे ।

७. (व्यचः छन्दः) सब जगत् को व्याप्त करने वाले, आदित्य के समान तेजस्वी प्रभु हमारी रक्षा करे ।

८. (सिन्धुः छन्दः) नदी के समान आनन्द रस बहाने वाला प्राण वायु के समान 'सिन्धु' रूप परमेश्वर हमें सुख दे ।

९. (समुद्रः छन्दः) नाना संकल्प विकल्प को उत्पन्न करने वाला, नाना आशाओं का आश्रय, समुद्र के समान गम्भीर, अथाह परमेश्वर हमारी रक्षा करे ।

१०. (सरिरं छन्दः) स्रोत से निकालने वाले जल के समान हृदय या मुख से निकलने वाली वाणी रूप परमेश्वर हमें रक्षा करे ।

११. (ककुप् छन्दः) सुख का एकमात्र धारण करने वाला सुख स्वरूप, सबका प्राणरूप परमेश्वर सुख प्रदान करे ।

१२ (त्रिककुप् छन्दः) तीनों प्रकारों के सुखों का दाता, उदान के समान प्रभु हमे सुख दे ।

१३. (काव्यम् छन्दः) परम प्रभु रूप कवि का बनाया वेद-त्रयरूप ज्ञानमय काव्य हमें सुख दे ।

१४. (अङ्कुप् छन्दः) कुटिल मार्गों से जाने वाले जल के समान विषम स्थानों में भी जाकर पालन करने में समर्थ प्रभु हमें सुख प्रदान करे ।

१५ (अक्षरपंक्तिः छन्दः) स्थिर नक्षत्रावलियों के समान अविनाशी गुणों से संसार को परिपाक करने में समर्थ प्रभु हमें सुख दे ।

१६. (पदपंक्ति छन्द) चरणों के समान समस्त वाक्-पदों या ज्ञानोपलियों का आश्रय प्रभु हमें सुख दे।

१७. (विष्टार पंक्ति छन्द) विस्तृत पदार्थों का धारण करने वाली दिशाओं के समान अनन्त प्रभु हमें सुख दे।

१८. (क्षुरो भ्रज) छुरे के समान अज्ञान वासनाओं का छेदक और सूर्य के समान अन्धकार में ज्योतिः-प्रकाशक प्रदीप्त तेजस्वी (छन्द) प्रभु हमें सुख दे।

१९. (आच्छत् छन्द) शरीर के समस्त अंगों को प्राण शक्ति से सुरक्षित करने वाले अन्न के समान ब्रह्माण्ड के अंग प्रत्यंग में व्याप्त प्रभु हमारी रक्षा करे।

२०. (प्रच्छत् छन्द) उत्कृष्ट रीति से शरीर की रक्षा करने वाले अन्न के समान प्रभु हमें सुख दे।

२१. (संयत् छन्द) समस्त कार्य-व्यवहारों से संयमन करने वाली रात्रि के समान समस्त ब्रह्माण्ड के कार्य व्यवहारों को संयमन करने वाला प्रभु या राज्यव्यवस्था (छन्द) हमारी रक्षा करे।

२२. (वियत् छन्द) विविध कार्य-व्यवहारों को नियमित करने वाला सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर हमें सुख दे।

२३. (बृहत् छन्द) बृहत्, महान् द्यौलोक के समान विशाल प्रभु हमें सुख दे।

२४. (रथन्तर छन्द) रथों से गमन करने योग्य इस भूमण्डल के समान रथों रमण योग्य रसों में सब से श्रेष्ठ परमेश्वर हमें सुख दे।

२५. (निकाय छन्द) नित्य ज्ञानोपदेश करने वाले गुरु के समान या वायों में शब्द करने वाले वायु के समान सर्वत्र ध्वनि जनक या ज्ञानोपदेशप्रद प्रभु हमें सुख दे।

२६. (विवधश्छन्दः) विविध रूपों से बांधने या दण्ड देने वाले अन्तरिक्ष के समान विविध कर्म फलों द्वारा जीवों को बांधने वाला प्रभु हमें सुख दे ।

२७. (गिरः छन्द.) निगलने योग्य, अन्न के समान सुखकारी परम आस्वाद्य प्रभु हमें सुख शरण दे ।

२८. (अज. छन्द) अग्नि के समान देदीप्यमान प्रभु हमें सुख दे ।

२९. (संस्तुप् छन्दः) उत्तम रीति से शब्द और अर्थों को प्रकट करने वाली वाणी के समान सकल पदार्थों का प्रकाशक प्रभु हमें सुख दे ।

३०. (अनुष्टुप् छन्दः) श्रवण करने के बाद अर्थ का प्रकाशन करने वाली वाणी के समान जगत् को रचकर अपने विज्ञान को दर्शाने वाला प्रभु हमे सुख दे ।

३१. (एवरछन्द) समस्त सुख प्राप्त कराने वाले ज्ञान और प्रापक साधन के समान प्रभु हमें सुख दे ।

३२. (वरिवरछन्द) और देवोपासना द्वारा परिचर्या योग्य प्रभु हमें सुख दे ।

३३. (वयः छन्द.) जीवनों का अन्न के समान मूल कारण प्रभु हमें सुख दे ।

३४. (वयस्कृत् छन्दः) जठराग्नि के समान सब प्राणियों को दीर्घायु करने वाला प्रभु हमें सुख दे ।

३५. (विष्पर्धा. छन्दः) विविध प्रजाओं में स्पर्धा पूर्वक ग्रहण करने योग्य परम लोक रूप प्रभु हमें सुख दे ।

३६. (विशालं छन्द·) विविध पदार्थों से शोभा देने वाले भूमि के समान विविध गुणों से सुन्दर प्रभु हमें सुख दे ।

३७. (छदिः छन्दः) भूतल को आच्छादित करने वाले अन्तरिक्ष के समान सबपर करुणा रूप छाया करने वाला प्रभु हमें सुख दे ।

३८. (दूरोहणं छन्द.) बड़े कष्टों और तपस्याओं से प्राप्त होने योग्य सूर्य के समान तेजोमय मोक्ष रूप प्रभु हमें सुख दे।

३९. (तन्द्रं छन्द॰) कुटुम्ब भरण करने वाले परिपक्व वीर्यवान् युवा पुरुष के समान समस्त जीव लोक का भरण पोषण करने हारा प्रभु हमें सुख दे।

४०. (अङ्काङ्कं छन्द) अङ्क अङ्क द्वारा प्रकट हुई विस्तृत गणित विद्या के समान सत्य नियमों का व्यवस्थापक प्रभु हमें सुख दे। यह परमात्मा पक्ष मे नियोजना है।

राष्ट्र पक्ष मे—(छन्दः) राष्ट्र के भिन्न २ विभागो और कार्यों द्वारा राष्ट्र के धन, प्रजा और अधिकारों की रक्षा करने वाला बल, प्रयोग, कार्य व्यवहार, व्यापार और शिल्प छन्द है जो प्रजा के सुख का साधन हो और मनुष्यो की प्रवृत्ति उसमें हो सके, इस प्रकार निम्नलिखित कार्य विभाग राष्ट्र मे होने आवश्यक हैं।

१. (एवः) ज्ञान, प्रजाओं का शिक्षण अथवा पृथिवी मे गमनागमन के साधन रथादि। २. (वरिव) गुरु, देव, पितृजन आदि की सेवा। ३. (शंभू) प्रजाओं को शान्ति सुख देने के उपाय, औषधालय, उद्यान, तड़ाग आदि निर्माण। ४. (परिभू) चारों ओर से प्रजा की परकोट आदि से रक्षा। ५. (आच्छत्) आच्छादन योग्य वस्त्र। ६. (मन) मनन, शास्त्रमनन, उत्तम शास्त्र चिन्तन। ७. (व्यच.) सूर्य के समान राजा की कीर्त्ति का और राष्ट्र का प्रसार अथवा विविध शिल्प। ८ (सिन्धुः) नदियों का, नहरों का निर्माण, निरोध एवं उन द्वारा गमन-आगमन। ९. (समुद्र) समुद्र से व्यापार और मुक्ता रत्न आदि प्राप्ति। १०. (सरिरं) सलिल, जल। ११. (ककुप्) प्रजा के सुख वर्धक उपाय। १२. (त्रिककुप्)

त्रिविध सुखों का सम्पादन। १३. (काव्यम्) कवियों की कृति काव्य, सुन्दर वाग्विलास। १४. (अङ्कुपं) प्रजा की कुटिल कूट नीतियों, व्यवहारों से और कुटिलाचारों से रक्षा। १५. (अक्षरपंक्तिः) अक्षय ब्रह्म का ज्ञान या अक्षर अखण्ड ब्रह्मचर्य की या वीर्य की परिपक्वता का साधन। १६. (पदपंक्तिः) गृहस्थ का पालन। १७. (विष्टारपंक्तिः) प्रजोत्पादन, प्रजापालन। १८. (क्षुरः) क्षुर, छूरा कर्म। १९. (भ्रजः) दीप्ति, प्रकाश आदि का करना अथवा (क्षुरोभ्रजः) छुरे की धार के समान कठिन आदित्य व्रत की साधना। २०. (आच्छत्) प्रजा की सब ओर से रक्षा। २१. (प्रच्छत्) अच्छी प्रकार रक्षा। २२. (संयत्) दुष्टों का संयम। २३. (वियत्) विविध व्यवहारों का नियमन। (बृहत्) बड़े राष्ट्र का प्रबन्ध। २४. (रथन्तरम्) रथों के मार्गों का निर्माण और प्रबन्ध। २५. (निकामः) शरीर के प्राण वायु की साधना, अथवा समस्त प्रजा के शरीरों की रक्षा अथवा विशेष खाद्य पदार्थों का संग्रह। २६. (विवध) विविध हनन साधनों हथियारों का संग्रह। २७. (गिरः) अन्नों का संग्रह। २८. (भ्रजः) अग्नि, विद्या या विद्युत द्वारा प्रकाश उत्पादन। २९. (संस्तुप्) उत्तम विद्याओं का पठन पाठन। ३०. (अनुष्टुप्) सामान्य विद्याओं का अध्ययन। ३१. (एवः वरिवः) ज्ञान और उपासना एवं गुरु सेवा। ३२. (वयः) जीवन वृद्धि या अन्न। ३३. (वयस्कृत्) अन्न के उत्पादक प्रयोग। ३४. (विष्पर्धा) संग्राम। ३५. (विशालं) विविध वस्तु, भवन निर्माण। ३६. (छदि) उनके छतें आदि बनाना (दूरोहणं) दुर्गम स्थानों पर चढ़ने के साधन। ३७. (तन्द्रं) मोहन विद्या। ३८. (अङ्काङ्कं) गणित विद्या। इन सब शिल्पों को सरहस्य जाना और किया जाय। इसी प्रकार अध्यात्म में इन सब छन्दों से आत्मा की इतनी शक्तियों, प्रवृत्तियों, स्वभावों, भोक्तव्य पदार्थों और साधनीय कार्यों का वर्णन किया गया है। प्रजनन संहिता में इन शब्दों के तदनुसार भिन्न २ अर्थ होंगे।

शतपथ के अनुसार एवः आदि के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं।

१	एव	अयं लोकः	२१	सयत्	रात्रिः
२	वरिवः	अन्तरिक्षं	२२	वियत्	अहः
३	शंभू	द्यौः	२३	बृहत्	असौलोकः
४	परिभूः	दिशः	२४	रथन्तरं	अयं लोकः
५	आच्छत्	अन्नं	२५	निकायः	वायुः
६	मनः	प्रजापतिः (आत्मा)	२६	विवधः	अन्तरिक्ष
७	व्यचः	आदित्यः	२७	गिरः	अन्नम्
८	सिन्धुः	प्राणः	२८	अज	अग्निः
९	समुद्रं	मनः	२९	संस्तुप्	वाग्
१०	सरिरं	वाग्	३०	अनुष्टुप्	वाग्
११	ककुप्	प्राणः	३१	एव	अयंलोकः
१२	त्रिककुप्	उदानः	३२	वरिवः	अन्तरिक्षं
१३	काव्यं	त्रयी विद्या	३३	वयः	अन्नं
१४	अङ्कुपं	आपः	३४	वयस्कृतः	अग्निः
१५	अक्षरपंक्तिः	असौ लोकः	३५	विष्पर्धाः	असौ लोकः
१६	पदपंक्तिः	अयं लोकः	३६	विशालं	अयं लोकः
१७	विष्टारपंक्तिः	दिशः	३७	छदिः	अन्तरिक्षम्
१८	क्षुरोभ्रजः	आदित्यः	३८	दूरोहणम्	आदित्यः
१९	आच्छत्	अन्नं	३९	तन्द्रं	पंक्तिः
२०	प्रच्छत्	अन्नं	४०	अङ्काङ्कं	आपः

'एवः' आदि के 'अयं लोकः' आदि साक्षात् अर्थ नहीं, प्रत्युत उपमान होने से साधारण धर्मों के द्योतक पदार्थ हैं। शतपथ इन पदार्थों को 'बन्धु' अर्थात् उपमान मात्र ही बतलाता है। शरीर में और ब्रह्माण्ड में विस्तृत घटक-तत्वों का आध्यात्मिक आधिभौतिक भेद से भी यहां निरूपण किया गया है।

र॒श्मिना॑ स॒त्याय॑ स॒त्यञ्जि॑न्व प्रेति॑ना॒ धर्म्म॑णा॒ धर्मञ्जि॑न्वा॒न्वित्या॑ दि॒वा दिव॑ञ्जिन्व स॒न्धिना॒न्तरि॑क्षेणा॒न्तरि॑क्षं जिन्व प्रति॒धिना॑ पृथि॒व्या पृ॑थि॒वीं जि॑न्व विष्ट॒म्भेन॑ वृ॒ष्ट्या वृ॒ष्टिं जि॑न्व प्र॒वया॒ऽह्नाह॑र्जिन्वानु॒या रात्र्या॒ रात्रीं॑जिन्वो॒शिजा॒ वसु॑भ्यो॒ वसू॑ञ्जिन्व प्रके॒तेना॑दि॒त्येभ्य॑ आदि॒त्याञ्जि॑न्व ॥ ६ ॥

तन्तु॑ना रा॒यस्पोषे॑ण रा॒यस्पोषं॑ जिन्व स॒ꣳस॒र्पेण॑ श्रु॒ताय॑ श्रु॒तं जि॑न्वै॒डेनौष॑धीभि॒रोष॑धीर्जिन्वोत्त॒मेन॑ त॒नूभि॑स्त॒नूर्जि॑न्व वयो॒धसा॑धी॒तेना॑धी॒तञ्जि॑न्वाभि॒जिता॒ तेज॑सा॒ तेजो॑ जिन्व ॥ ७ ॥

स्तोमभागाः विद्वांसो देवता. । (६) विराडभिकृतिः । ऋषभः ।
(७) ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—१. (सत्याय) सत्यव्यवहार की वृद्धि के लिये नियुक्त (रश्मिना) सूर्य की किरणों के समान विवेक द्वारा छिपी बातों को भी प्रकाशित करने में समर्थ विवेकी पुरुष द्वारा (सत्यं जिन्व) सत्य व्यवहार की राष्ट्र में वृद्धि कर । अर्थात् उत्तम विवेकी न्याय कर्त्ता पुरुष को नियुक्त कर ।

२. (धर्मणा[1]) धर्म, प्रजा को व्यवस्थित करने वाले कानून के निमित्त (प्रेतिना) उत्तम विज्ञान युक्त, पुरुष द्वारा (धर्मं जिन्व) धर्म या व्यवस्था, कानून को उन्नत कर ।

३. (दिवा) धर्म, या ज्ञान के प्रकाश के लिये नियुक्त (अन्वित्या) अन्वेषण करने वाली समिति द्वारा (दिव जिन्व) विज्ञान के और सत्य तत्वों की वृद्धि कर, ।

४. (अन्तरिक्षेण) पृथ्वी और आकाश के बीच जिस प्रकार अन्तरिक्ष

१—सर्वत्र निमित्ते तृतीया ।

दोनों लोकों को मिलाता है उसी प्रकार दो राजाओं के बीच स्थित मध्यस्थ रूप से विद्यमान 'अन्तरिक्ष' पद के कार्य के लिये नियुक्त (सन्धिना) परस्पर के 'सन्धि' कराने वाले 'सन्धि' नामक अधिकारी से तू (अन्तरिक्षं जिन्व) उक्त अन्तरिक्ष पद को पुष्ट कर।

५. (पृथिव्या) पृथिवी के शासन के लिये नियुक्त (प्रतिधिना) अपने स्थान पर स्थापित प्रतिनिधि द्वारा अथवा (पृथिव्या) पृथिवी के शासनार्थ लोकवृत्त जानने के लिये नियुक्त (प्रतिधिना) प्रत्येक बात के पता लगाने वाले गुप्तचर द्वारा (पृथिवीं जिन्व) तू पृथिवी को अर्थात् पृथिवी निवासी प्रजाजन या अपने राष्ट्र भूमि की वृद्धि कर, उसको पुष्ट कर।

६. (वृष्ट्या) प्रजापर जलों की वर्षा करने के लिये जिस प्रकार जलों का स्तम्भन करने में समर्थ वायु अपने भीतर जल थाम लेता है उसी प्रकार प्रजापर पुनः अपने ऐश्वर्यों की वृष्टि करने के लिये (विष्टम्भेन) विविध उपायों से धनों को स्तम्भन या संग्रह करने वाले विभाग को नियुक्त करके उससे तू (वृष्टिं जिन्व) सुखों के वर्षण की वृद्धि कर।

७. (अन्हा) सूर्य के समान तेजस्वी होकर राष्ट्र के कार्यों को चलाने के लिये (प्रवया) उत्कृष्ट तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करके उससे (अहः जिन्व) सूर्य पद की वृद्धि कर।

८. (रात्र्या) समस्त प्रजाओं के रमण करने, उनको विश्राम देने एवं रात्रि के समान शत्रुओं को भूमि पर सुला देने के लिये (अनुया) चारों ओर डाकुओं के पीछा करने वाले विभाग द्वारा (रात्रीं जिन्व) तेजास्वनी रात्री, या रात्रि को राष्ट्र की रक्षा करने वाली संस्था को (जिन्व) पुष्ट कर।

९. (वसुभ्य.) ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये और राष्ट्र में बसने

वाले जनों के हित के लिये (उशिजा) धनादि के अभिलाषा करने वाले वणिग् विभाग द्वारा (वसून्) प्रजा के सुखकारी अग्नि आदि शक्ति और समस्त पदार्थों को और प्रजा जनों को पुष्ट कर, अथवा 'वसु' ब्रह्मचारियों के लिये कामना प्रकट करने वाले स्त्री वर्ग द्वारा (वसून्) वसु ब्रह्मचारी युवकों को (जिन्व) संतुष्ट कर । उनके विवाह आदि की उत्तम व्यवस्था कर ।

१०. (आदित्येभ्यः) आदित्य ब्रह्मचरियों के स्थापित (प्रकेतेन) उत्कृष्ट ज्ञान के साधन पुस्तकालय, विद्यालय आदि द्वारा (आदित्यान्) आदित्य, ज्ञाननिष्ठ पुरुषों को भी (जिन्व) पुष्ट कर।

११. (रायः पोषेण) धनैश्वर्य और गवादि पशु सम्पत्ति के वृद्धि के निमित्त (तन्तुना) और भी अधिक प्रजा-परम्परा रूप तन्तु से (रायः पोषम्) उस ऐश्वर्य समृद्धि की (जिन्व) वृद्धि कर ।

१२. (श्रुताय) लोक वृत्तों के श्रवण के लिये (प्रसर्पेण) दूर तक जाने वाले गुप्त चरों द्वारा (श्रुतं जिन्व) लोक वृत्त श्रवण के विभाग को पुष्ट कर ।

१३. (ओषधीभिः) ओषधियों के संग्रह के लिये (ऐडेन) इडा, अन्न, ओषधी या पृथ्वी के गुणों के जानने वाले विभाग द्वारा (ओषधीः जिन्व) अन्नादि रोगहर और पुष्टि कर ओषधियों को वृद्धि कर ।

१४. (तनूभिः) शरीरों की उन्नति के लिये (उत्तमेन) सब से उत्कृष्ट शरीर वाले पुरुष द्वारा (तनूः जिन्व) प्रजा के शरीरों की वृद्धि कर ।

१५. (अधीतेन) विद्याभ्यास, शिक्षा की वृद्धि के लिबे (वयोधसा) ज्ञानवान् और दीर्घायु पुरुषों से (अधीत) अपने स्वाध्याय और शिक्षा की (जिन्व) वृद्धि कर ।

१६. (तेजसा) तेज और पराक्रम की वृद्धि के लिये (अभिजिता) शत्रुओं को सब प्रकार से विजय करने में समर्थ पुरुषों द्वारा (तेजः जिन्व) अपने तेज और पराक्रम की वृद्धि कर।

सत्य, धर्म, दिव्, अन्तरिक्ष, पृथिवी, वृष्टि, अह., रात्री, वसु और आदित्य, रायः पोष, श्रुत, ओषधी, तनु, अधीत, और तेज इन १६ अभ्युदय कारी लक्ष्मियों की वृद्धि के लिये क्रम से रश्मि, प्रेति, संधि, प्रतिधि, विष्टम्भ, प्रवया अनुया, उष्णिग्, प्रकेत, तन्तु, ससर्प, ऐड, उत्तम, वयोधा, अभिजित् ये १६ पदाधिकारी या अध्यक्ष हों उनके उतने ही विभाग राष्ट्र में हों।

इन मन्त्रों की योजना शतपथ ने तीन प्रकार से दर्शाई है। प्रथम जैसे 'रश्मिः असि सत्याय त्वाम् उपदधामि।' द्वितीय जैसे—रश्मिना अधिपतिना सती सत्यं जिन्व।' तृतीय जैसे—'रश्मिना अधिपतिना सत्येन सत्यं जिन्व।' इत्यादि। सर्वत्र ऐसे ही कल्पना कर लेनी चाहिये अर्थात् प्रत्येक मनुष्य में तीन आकांक्षाएं हैं जैसे—

१. योग्य अधिकारों को उसके कर्त्तव्य के लिये नियुक्त करना।

२. अधिकारी को नियुक्त करके कर्त्तव्य पालन द्वारा उस विभाग की वृद्धि करना। ३. अध्यक्ष के द्वारा कर्त्तव्य कर्म को वृद्धि करना। इसी प्रकार शरीर में और ब्रह्माण्ड में भी ये १६ घटक विद्यमान हैं। जिनपर आत्मा और परमात्मा अपने भिन्न २ सामर्थ्यों से वश करते हैं।

प्रतिपर्दसि प्रतिपदे॑ त्वानुपर्दस्यनुपदे॑ त्वा संपर्दसि सम्पदे॑ त्वा तेजो॑ऽसि तेज॑से त्वा ॥ ८ ॥

त्रिवृद॑सि त्रिवृते॑ त्वा प्रवृद॑सि प्रवृते॑ त्वा विवृद॑सि विवृते॑ त्वा सवृद॑सि सवृते॑ त्वाऽऽक्रमो॑ऽस्याक्रमाय॑ त्वा संक्रमो॑ऽसि संक्रमाय

त्वोत्क्रमोऽस्युत्क्रमाय त्वोत्क्रान्तिरस्युत्क्रान्त्यै त्वाधिपतिनोर्जोर्जं जिन्व ॥ ६ ॥

परमेष्ठी ऋषि. । प्रजापतिर्देवता । स्वराड् आर्प्यनुष्टुप् । गान्धारः । (६) ब्राह्मी जगती । निषाद. ॥

भा०—१. तू (प्रतिपत् असि) प्रत्येक पदार्थों को प्राप्त करने और ज्ञान करने में समर्थ होने से 'प्रतिपत्' नाम का अधिकारी है । तुझको (प्रतिपदे) 'प्रतिपत्' पद के लिये नियुक्त करता हूं ।

२. (अनुपत् असि अनुपदे त्वा) तू अनुरूप या अनुकूल हितकारी पदार्थों को प्राप्त करने में समर्थ होने से तू 'अनुपद' है । तुझको 'अनुपद' पद पर नियुक्त करता ।

३. (सम्पत् असि सम्पदे त्वा) अच्छी प्रकार से समस्त पदार्थों को ज्ञान करने और प्राप्त करने वाला होने से तू 'सम्पत्' है । तुझ को 'सम्पद' पद के लिये नियुक्त करता हूं ।

४. (तेजः असि तेजसे त्वा) तेज:स्वरूप पराक्रमशील होने से 'तेजस्' है । तुझको तेज की वृद्धि के लिये उसी पद पर नियुक्त करता हूं ।

५. (त्रिवृत् असि त्रिवृते त्वा) तू त्रिगुण शक्तियों से वर्त्तमान होने से, या तीनों वेदों में, ज्ञानी 'तीनों लोकों में यशस्वी' एवं तीन कालों में तत्व-दर्शी होने से 'त्रिवृत्' है । तुझ को 'त्रिवृत्' पद के लिये ही नियुक्त करता हूं ।

६. (प्रवृत् असि प्रवृते त्वा) तू प्रकृष्ट, दूर देश में भी व्यवहार करने में समर्थ होन से 'प्रवृत्' है । तुझे 'प्रवृत्' पद के लिये नियुक्त करता हूं ।

७. (सवृत् असि सवृते त्वा) समस्त प्रजाओं में समान रूप से व्यवहार

६—जिन्व वेप श्रीःत्र जिन्व' इति काण्व० ।

करने में समर्थ है. अतः तुझे 'सवृत्' पद पर नियुक्त करता हूं।

८. (विवृत् असि विवृते त्वा) तू विविध दशा और प्रजाओं और कार्यों में व्यवहार करने में समर्थ होने से 'विवृत्' है अत. तुझे 'विवृत्' पद के लिये नियुक्त करता हूं।

९. तू (आक्रमः असि आक्रमाय त्वा) सब तरफ आक्रमण करने में समर्थ है। अतः तुझे 'आक्रम' अर्थात् आक्रमण करने के पद पर नियुक्त करता हूं।

१०. (संक्रमः असि संक्रमाय त्वा) तू सब तरफ फैल जाने में सथर्म होने से 'संक्रम' है। तुझे 'संक्रम' नाम पद पर नियुक्त करता हूं।

११. (उत्क्रम· असि उत्क्रमाय त्वा) तू उन्नत पद या स्थानों पर क्रमण करने में समर्थ होने से 'उत्क्रम' है तुझे 'उत्क्रम' पद पर नियुक्त करता हूं।

१२ (उत्क्रान्तिः असिः उत्क्रान्त्यै त्वा) तू ऊचे प्रदेशों मे क्रमण करने में समर्थ होने 'उत्क्रान्ति' है। तुझे मैं उत्क्रान्ति पद पर ऊंचे स्थानों में चढ़ जांने के कार्य पर ही नियुक्त करता हूं।

हे राजन्! इस प्रकार योग्य २ कार्यों के लिये योग्य २ पद पर, योग्य २ पुरुषों को नियुक्त करके तू (अधिपतिना) अधिपति, अध्यक्ष रूप अपने ही (ऊर्जा) बल वीर्य या पराक्रम से (ऊर्जम्) अपने पराक्रम, बल वीर्य की (जिन्व) वृद्धि कर, उसे पुष्ट कर।

इस प्रकार प्रतिपत्, अनुपत्, सम्पत्, तेजस्, त्रिवृत्, प्रवृत्, विवृत्, संवृत्, आक्रम, संक्रम, उत्क्रम, और उत्क्रान्ति। इन बारह कार्यों के लिये १२ पदाधिकारियों को और नियुक्त किया जाता है। १६ पहली और १२ ये मिलकर २८ राष्ट्र की सम्पदाओं या विभागों का वर्णन हो गया।

¹ राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा ऽअधिपतयो ऽग्निर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिवृत् त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬं श्रयत्वाज्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु रथन्तरᳬं साम प्रतिष्ठित्या ऽअन्तरिक्ष ऽऋषयस्त्वा । ² प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १० ॥

वस्वादयो नाकसदो देवता । (१) ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत । (२) ब्राह्मी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(प्राची दिग्) प्राची, पूर्व दिशा जिस प्रकार सूर्य के उदय से प्रकाशमान है उसी प्रकार राजा के तेज और पराक्रम से तेजस्विनी हे राज शक्ते ! तू भी (राज्ञी असि) रानी के समान सर्वत्र तेजस्विनी है । (वसवः देवाः) वसु गण विद्वान् पदाधिकारी लोग (ते अधिपतयः) तेरे पालन करने वाले अधिकारी पुरुष हैं । (अग्नि) अग्नि, सूर्य के समान तेजस्वी, संतापकारी, अग्रणी सेनापति (हेतीना) समस्त शस्त्र अस्त्रों का और अस्त्रधारी सेनाओं का (प्रतिधर्त्ता) धारण करने वाला है । (त्वा) तुझको (त्रिवृत् स्तोमः) त्रिवृत् नामक स्तोम अर्थात् पदाधिकारी (पृथिव्यां) इस पृथिवी पर (श्रयतु) मन्त्र, प्रज्ञा, सेना इन तीनों शक्तियों सहित वर्तमान आश्रय करे, स्थापित करे या तेरा उपभोग करे । (आज्यम्) आज्य, संग्रामोपयोगी (उक्थम्) युद्ध विद्या या शासन (त्वा) तुझको (स्तभ्नातु) तुझे स्तम्भ के समान आश्रय देकर स्थिर करे । (रथन्तरं साम) रथों से तरण करने वाला क्षात्रबल (प्रतिष्ठित्या) तेरी प्रतिष्ठा के लिये हो । (प्रथमजा. ऋषयः) श्रेष्ठ, मन्त्रद्रष्टा लोग (त्वा) तुझको (देवेषु) विद्वानों, या विजयी राजाओं, या पदाधिकारियों के बीच (दिव मात्रया) ज्ञान प्रकाश के बड़े परिमाण से और (वरिम्णा) विशाल सामर्थ्य से (प्रथन्तु) विस्तृत करें । (विधर्त्ता) विशेष पदों के धारक जन और

(अधिपतिः च) अधिपति, अध्यक्ष लोग (ते) सर्वे वे सब मिल कर (संविदानाः) परस्पर सहयोग और सहमति करते हुए (त्वा) तुझको (नाकस्य पृष्ठे) दुःखों से सर्वथा रहित (पृष्ठे) आश्रय पर (स्वर्गे लोके) सुखमय प्रदेश में (सादयन्तु) स्थापित करें। और (यजमानं च) उसी उत्तम सुखमय लोक में इस राष्ट्रयज्ञ के विधाता राजा को भी स्थापित करें। शत० ८। ६। ५॥

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रो हेतीनां प्रतिधर्त्ता पञ्चदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याᳬ श्रयतु प्रउगमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु बृहत्साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा। प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ ११ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्।

भा०—(दक्षिणा दिग्) दक्षिण दिशा जिस प्रकार सूर्य के प्रखर ताप से बहुत अधिक उज्ज्वल होती है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तू (विराड् असि) विराट् है, तू विशेष तेज और विविध ऐश्वर्यों से शोभा युक्त है। (रुद्राः देवा ते अधिपतयः) रुद्र शत्रुओं को रुलाने में समर्थ, एव शरीर में प्राणों के समान जीवनोपयोगी द्रव्यों को और बलकारी पदार्थों को रोक लेने में समर्थ रुद्रगण तेरे अधिपति हैं। (हेतीनां प्रतिधर्त्ता) इन्द्र शस्त्रास्त्रों का धारक है। (पञ्चदशः स्तोमः त्वा पृथिव्यां श्रयतु) शरीर में जिस प्रकार दश इन्द्रिय, पञ्च प्राण, अथवा हाथों की दश अंगुलियें और २ पैर और २ बाहु, और आत्मा या शिर १५ वा, ये शरीर को धारण करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के रक्षक और धारक १५ विभाग तुझको पृथिवी पर स्थिर रखें (अव्यथायै) पीड़ा, कष्ट न होने देने के लिये (प्रउगम्

उक्थम्) नाना अधिकारियों की उत्कृष्ट योजना या उत्तम २ पुरुषों की उत्तम २ पदो पर स्थापना रूप उक्थ अर्थात् अभ्युदय का कार्य या बल राष्ट्र का (स्तभ्नातु) थामे रहे। (प्रतिष्ठित्या) प्रतिष्ठा के लिये (बृहत्साम) बृहत्साम या महान बल सामर्थ्य हो (अन्तरिक्ष ऋषय.) इत्यादि पूर्ववत्। शत० ८। ६। १। ६॥

सुम्राडसि प्रतीची दिगादित्यास्ते देवा अधिपतयो वरुणो हेतीनां प्रतिधर्त्ता सप्तदशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु मरुत्वतीयमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु वैरूपꣳ साम प्रतिष्ठित्याऽअन्तरिक्षऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १२ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत्।

भा०—(प्रतीची दिग्) पश्चिम दिशा जिस प्रकार मध्यान्ह के बाद भी प्रखर सूर्य से सब प्रकार से दीप्त, उज्ज्वल होती है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तू भी अपने पूर्ण वैभव को प्राप्त कर लेने के बाद (सम्राट् असि) 'सम्राट्' की शक्ति बन जाता है। (ते अधिपतयः आदित्याः) आदित्य के समान तेजस्वी, पदाधिकारी अथवा आदान प्रतिदिन करने वाले वैश्यगण तेरे अधिपति, स्वामी होते हैं। (वरुणः हेतीनां प्रतिधर्त्ता) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ पुरुष शस्त्रों का धारण करने वाला होता है। (सप्तदश. स्तोमः त्वा पृथिव्यां श्रयतु) शरीर में दश हाथ की अंगुलियों, बाहु टांगें ४, शिर, उदर, और आत्मा इन १७ अंगों के समान राष्ट्र को धारण करने वाले १७ घटक विभागों से सम्पन्न वीर्यवान् अधिकारीगण तुझको पृथिवी पर स्थिर रखें। (मरुत्वतीयम् उक्थम् अव्यथायै स्तभ्नातु), वायु के समान वेगवान् वीर भटों के नायक इन्द्र, सेनानायक का सेना

बल ही राष्ट्र-व्यवस्था को पीड़ा न पहुंचाने के लिये दृढ़ करे। और (वैरूपं साम प्रतिष्ठित्या) उसके प्रतिष्ठा या आश्रय के लिये 'वैरूप' अर्थात् विविध प्रकार की प्रजा का विविध बल ही रहे। (अन्तरिक्ष ऋषयः० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ८ । ६ । १ । ७ ॥

'प्रउगम्-उक्थम्'—तद् यत् अभिप्रायुञ्जत तत् प्रउगस्य प्रउगत्वम् ॥ प्राणा प्रउगम् । तस्माद् बहवो देवता प्रउगे शस्यन्ते । कौ० १४ । ५ ॥ ग्रहोक्थं वा एतद् यत् प्रउगम् । ऐ० ३ । १ ॥ सब तरफ़ उत्तम अधिकारियों को नियोजन करना या ग्रहों की या राज्याङ्गों की स्थापना 'प्रउग' कहाता है। इसमें बहुत से 'देव' राजपदअधिकारी पुरुषों का वर्णन होता है। प्राण एव उक् तस्य अन्न मेव थम् शत० १० । ४ । १ । २३ ॥ अग्निर्वा उक् तस्याहुतय एव थम् । १० । ६ । २ । १० । अतो हि सर्वाणि नामानि उत्तिष्ठन्ति । विड् उक्थानि । तां० १८ । ८ । ६ ॥ जिस प्रकार शरीर मे प्राण और वेदी मे अग्नि है उसी प्रकार राष्ट्र में वह पद जिस पर मुख्य पदाधिकारी नियुक्त है 'उक्थ' कहाता है। इसमे पदाधिकार और उसका भोग्य वेतन और ऐश्वर्य दोनो सम्मिलित हैं। इसी का दूसरा नाम 'शस्त्र' है। इसे सामान्यत 'धारा' कह सकते है।

मरुत्वतीयम् उक्थम् । एतद् वार्त्रघ्नमेवोक्थं यन्मरुत्वतीयम् एतेन हीन्द्रः पृतना अजयत् ॥ कौ० १५ । २ ॥ तदेतत् पृतनाजिदेव सूक्तम् । एतेन हीन्द्रो वृत्रमहन् ॥ कौ० १५ । ३ ॥

[1] स्वुराडुस्युदीची दिङ् मुरुतस्ते देवा ऽअधिपतयुः सोमो हेतीनां प्रतिधुर्त्तैकविंꣳशस्त्वा स्तोमः पृथिव्याꣳ श्रयतु निष्केवल्यमुक्थमव्यथायै स्तभ्नातु । वैराजꣳ साम प्रतिष्ठित्या ऽअन्तरिक्षुऽऋषयस्त्वा [2] प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधुर्त्ता चायमधिपतिश्च ते त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वुर्गे लोके यजमानं च सादयन्तु ॥ १३ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(उदीची दिग्) उत्तर दिशा जिस प्रकार ध्रुव प्रदेश में स्वयं उत्पन्न विद्युत् धाराओं से स्वतः प्रकाशमान है, उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तू (स्वराड् असि) स्वयं दीप्तिमती होने से 'स्वराट्' है । (ते आधिपतयः) तेरे स्वामी (मरुतः देवाः) वायुओं के समान तीव्र गतिशील, शरीर में प्राणों के समान जीवनप्रद विद्वान् हैं । (सोमः हेतीनां प्रतिधर्त्ता) शस्त्रों के धारणकर्त्ता, वशयिता 'सोम' है । (एकविंशः त्वा स्तोमः पृथिव्यां श्रयतु) शरीर गत २१ अंगों के समान २१ विभागों के अधिकारीगण तुझको पृथ्वी पर स्थिर रक्खें । (निष्केवल्यम् उक्थम् अव्यथायै स्तभ्नातु) पीड़ा-कष्ट न होने देने के लिये 'निष्केवल्य उक्थ' अर्थात् एकमात्र राजा का ही बल उसको पुष्ट करे । (वैराजं साम प्रतिष्ठित्यै) 'वैराज साम' अर्थात् सर्वोपरि राजा की आज्ञा का बल ही उसकी प्रतिष्ठा के लिये पर्याप्त है । (अन्तरिक्षे ऋषयः० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ८ । ६ । १ । ८ ॥

निष्केवल्यम् उक्थम्—अथैतदिन्द्रस्यैव निष्केवल्यम् । तन्निष्केवल्यस्य निष्केवल्यत्वम् ॥ कौ० १५ । ४ ॥ आत्मा यजमानस्य 'निष्केवल्यम् ॥ ऐ० ८ । २ ॥ राजा का अपना ही सर्वोपरि प्रधान पदाधिकार 'निष्केवल्य' है । उसके अधिकारों का विधान निष्केवल्य उक्थ है ।

'वैराजं साम'—स वैराजमसृजत तदग्नेर्घोषोऽन्वसृज्यत । तां० ७।८।१। प्रजापतिर्वैराजम् । तां० १६ । ५ । १७ ॥

'अधिपत्न्यसि बृहती दिग्विश्वे ते देवा ऽअधिपतयो बृहस्पतिर्हेतीनां प्रतिधर्त्ता त्रिणवत्रयस्त्रिꣳशौ त्वा स्तोमौ पृथिव्याꣳ श्रयतां वैश्वदेवाग्निमारुते ऽउक्थे ऽअव्यथायै स्तभ्नीताꣳ शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या ऽअन्तरिक्ष ऽऋषयस्त्वा प्रथमजा देवेषु दिवो मात्रया वरिम्णा प्रथन्तु विधर्त्ता चायमधिपतिश्च ते

त्वा सर्वे संविदाना नाकस्य पृष्ठे स्वर्गे लोके यजमानञ्च सादयन्तु ॥ १४ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् । (१) ब्राह्मी जगती । निषादः । (२) ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(बृहती दिग्) बृहती या सबसे ऊपर की दिशा जिस प्रकार सबसे ऊपर विराजमान है उसी प्रकार हे राज-शक्ते ! तू भी (आधिपत्नी असि) समस्त राष्ट्र में सर्वोपरि रह कर पालन करती है । (विश्वेदेवा ते आधिपतय.) तेरे समस्त देव, विद्वान् गण अधिपति हैं । (हेतीनां प्रतिधर्त्ता बृहस्पति.) शस्त्रों का धारणकर्त्ता बृहस्पति है । (त्रिनव त्रयस्त्रिंशौ वा स्तोमौ त्वा पृथिव्यां श्रयताम्) २७ या ३३ अंगों के समान २७ और ३३ विभागों के अधिकारीगण तुझे पृथ्वी पर स्थिर करें । (वैश्वदेवाग्निमारुते उक्थे अव्यथायै स्तभ्नीताम्) वैश्वदेव और आग्निमारुत दोनों 'पद' राज्य कार्य में पीड़ा न पहुंचने देने के लिये स्तोम के समान सम्भालें उसकी रक्षा करें (शाक्वररैवते सामनी प्रतिष्ठित्या) शाक्वर और रैवत दोनों बल उसके आश्रय के लिये हों । (अन्तरिक्षे ऋषय. त्वा० इत्यादि पूर्ववत् । शत० ८ । ६ । १ । १६ ॥

'वैश्वदेव उक्थ'—पांचजन्यं वा एतद् उक्थं यद्वैश्वदेवम् । ऐ० ३।३२॥ शाक्वरं मैत्रावरुणस्य । कौ० २५।११॥ रेवत्य सर्वाः देवताः । ऐ० २।१।१६॥ वाग् वा रेवती । शत० २।३।८।११२॥

अयं पुरो हरिकेशः सूर्यरश्मिस्तस्य रथगृत्सश्च रथौजाश्च सेनानीग्रामण्यौ । पुञ्जिकस्थला च क्रतुस्थला चाप्सरसौ । दङ्क्ष्णवः पशवो हेतिः पौरुषेयो वधः प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १५ ॥

परमेष्ठी ऋषिः । लिंगोक्तो हरिकेशो वसन्तो देवता । विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—संवत्सर मे ऋतुओं के समान प्रजापालक राजा के अधीन ५ मुख्य सरदारो का वर्णन करते हैं । (अयम्) यह (पुर) सब के आगे पूर्व की ओर (सूर्यरश्मिः) सूर्य की किरणों के समान तेजों से प्रकाशमान वसन्त ऋतु के समान (हरिकेशः) नये २ कोमल हरे पीले पत्रो रूप केशों से युक्त, प्रजा के क्लेशो को हरण करने वाला है । (तस्य) उसके अधीन वसन्त ऋतु के 'मधु' और 'माधव' दो मासो के समान (रथ-गृत्स. च) रथों के सञ्चालन में परम बुद्धिमान् 'रथगृत्स' और (रथौजाः च) रथो के द्वारा पराक्रम करने मे कुशल 'रथौजाः' ये दोनो क्रमशः (सेनानी-ग्रामण्यौ) सेनानायक और ग्रामनायक या सैनिक दलों (दस्तों) के नायक हैं । इनके अधीन (पुञ्जिकस्थला च) पुञ्ज रूप होकर स्थान या देश में विद्यमान, अथवा पुं-जिक, पुरुषों को विजय करने का आश्रय रूप 'सेना' और (क्रतुस्थला) क्रतु अर्थात् प्रज्ञा, बुद्धि का एकमात्र आश्रय 'समिति' ये दोनों (अप्सरसौ) पुंजीभूत रूप लावण्य की आश्रय और क्रतु=काम की आश्रय रूप होकर स्त्रियों के समान साथ रहती हैं और वे (अप्सरसौ) अप्—आप्त पुरुषों द्वारा या अप्—प्रजाओं में व्याप्त या अप्-कर्म और प्रज्ञा दोनों द्वारा सरण करने, आगे बढ़ने वाली होने से 'अप्सरा' कहाती हैं ।

इनके अधीन (दंष्ट्रणवः पशवः) दाढ़ों से काटने वाले पशु सिंह, व्याघ्र, कुत्ते चीते आदि के समान मार काट करने वाले भट लोग (हेति) शस्त्रों के समान अथवा सिंह, व्याघ्रादिक पशुओं के समान उनके घोर रुधिरपायी शस्त्र और (पौरुषेयः वधः) पुरुषों का, पुरुषों के द्वारा वध करना (प्रहेतिः) उत्तम श्रेणी के अस्त्रादि हैं (तेभ्य. नमः अस्तु) उनका हम आदर करें । (ते नः अवन्तु) वे हमारी रक्षा करें । (ते न मृडयन्तु) वे हमें सुखी करें । (यं ते द्विष्मः) वे और हम जिसको

द्वेष करें और (य. च न. द्वेष्टि) जो हमारे से प्रेम का वर्ताव न करके हम से द्वेष करता है (तम्) उसको (एषां) इनके (जम्भे) हिंसाकारी जम्भ-मुख में या कष्टदायी हवालात में (दध्म) डालें ॥ शत०८।६।१।१६॥

अयं दक्षिणा विश्वकर्मा तस्य रथस्वनश्च रथेचित्रश्च सेनानीग्रामण्यौ। मेनका च सहजन्या चाप्सरसौ यातुधाना हेती रक्षांसि प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १६ ॥

परमेष्ठी ऋषि. । लिंगोक्तो विश्वकर्मा ग्रीष्मर्तुर्देवता । प्रकृति । धैवत. ॥

भा०—(दक्षिणा) दक्षिण दिशा मे, दायें ओर (अय) यह साक्षात् (विश्वकर्मा) विश्वकर्मा, वायु के समान बलशाली, शरीर में प्राण वायु या मन के समान राष्ट्र शरीर का आधार, राज्य के समस्त कार्यों का विधायक 'विश्वकर्मा' नाम पदाधिकारी है । (तस्य रथस्वनः च रथेचित्र. च) उसके 'रथस्वन' और 'रथेचित्र' नामक दो ग्रीष्म ऋतु के प्रखर दो मास 'शुक्र' और 'शुचि' के समान तेजस्वी प्रतापी हैं । जिसके रथ में अद्भुत शत्रु-भयकारी शब्द निकलता हो वह 'रथस्वन' और जिसके रथ में चित्र विचित्र रचना और युद्धार्थ विचित्र उपकरण हो वह 'रथेचित्र' कहाता है । उनकी (मेनका च सहजन्या च अप्सरसौ) मेनका और सहजन्या दोनों स्त्रियों के समान सहयोगिनी हैं । जिसका सब मान करें, जिसको सब मानें वह द्यौ के समान ज्ञान प्रकाश वाली विज्ञान की प्रबल शक्ति या विद्वानों का सघ मेनका' है । और पृथिवी या राष्ट्र के समान जनों से पूर्ण युद्ध-की शक्ति या जनसमुदाय की 'सघ' शक्ति 'सहजन्या' है । (यातुधानाः हेति.) पीड़ा प्रदान करने वाले शस्त्रधर और गुप्त घातक लोग उसके सामान्य खड्ग के समान हैं । (रक्षांसि प्रहेति) राक्षस स्वभाव के क्रूर वधक लोग उसके उत्कृष्ट शस्त्र के समान हैं ।(तेभ्य नम. अस्तु० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ८ । ६ । १ । १७ ॥

अ॒यं प॒श्चाद्वि॒श्वव्य॑चा॒स्तस्य॒ र॑थप्रोत॒श्चास॑मरथश्च सेनानीग्रा-म॒ण्यौ॑ । प्र॒म्लोच॑न्ती चा॒नु॒म्लोच॑न्ती चाप्स॒रसौ॑ व्या॒घ्रा हे॒तिः स॒र्पाः प्रहे॑ति॒स्तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु॒ ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ १७ ॥

वर्षर्त्तुर्विश्वव्यचा देवता । विराट् कृतिः । निषादः ॥

भा०—(पश्चात्) पीछे की ओर यह (विश्वव्यचाः) समस्त विश्व मे फैलने वाला वर्षा ऋतु के सूर्य के समान शत्रुओं पर शस्त्रास्त्र वर्षण करने मे समर्थ या शरीर में चक्षु के समान सर्वत्र व्यापक अधिकारी है जिसके (रथप्रोतः च असमरथः च सेनानी ग्रामण्यौ) 'रथप्रोत' और 'असमरथ' ये दो सेनानायक और ग्राम नायक हैं । जो सदा रथ पर ही चढ़े रह कर युद्ध करे वह 'रथप्रोत' और जिसके मुकाबले में दूसरा कोई रथ न लड़ा सके वह 'असमरथ' है । उन दोनों की (प्रम्लोचन्ती च अनु-म्लोचन्ती च अप्सरसौ) 'प्रम्लोचन्ती' और 'अनुम्लोचन्ती' ये दोनों अप्सराएं हैं । दिन के समान प्रकाश करने वाली विद्युत आदि पदार्थ विज्ञान की शक्ति 'प्रम्लोचन्ती' और रात्रि के समान अन्धकार करने वाली या सबको सुला देने वाली या वश करने वाली शक्ति 'अनुम्लोचन्ती' है । (व्याघ्राः हेतिः) व्याघ्र के समान शूर पुरुष 'हेति' अर्थात् उसके साधारण शस्त्र हैं और (सर्पाः) सांपों के समान कुटिलाचारी एवं विषादि द्वारा प्रस्वापन करने वाले लोग (प्रहेति) उत्कृष्ट अस्त्र हैं (तेभ्यः नमः इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ८ । ६ । १ । १८ ॥

अ॒यमु॑त्त॒रात्सं॒यद्व॑सु॒स्तस्य॒ तार्क्ष्य॒श्चारि॑ष्टनेमिश्च सेनानीग्राम॒ण्यौ॑ । वि॒श्वाची॑ च घृ॒ताची॑ चाप्स॒रसा॒वापो॑ हे॒तिर्वातः॒ प्रहे॑ति॒स्तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु॒ ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ १८ ॥

संयुद्वसुः शरदृतुर्देवता । भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(उत्तरात्) उत्तर की ओर, बायें, (अयम् संयद्वसुः) यह धनार्थी पुरुष जिसके पास बराबर आते हैं अथव वसु, वासशील प्रजाओं का संयमन करने वाला जिसके पास बड़ाभारी खजाना एकत्र हो, वह है। उसके (तार्क्ष्यः च अरिष्टनेमिः च सेनानीग्रामण्यौ) 'तार्क्ष्य' और 'अरिष्टनेमि' ये दोनों सेनानायक और ग्रामनायक हैं। शरद् ऋतु के दो मास 'इष' और 'ऊर्ज' के समान तीक्ष्ण नाम अन्तरिक्ष में बाणों के फेंकने वाला 'तार्क्ष्य' और अहिंसित मनन या मनन शक्ति वाला 'अरिष्टनेमि' कहाता है। उन दोनों की (विश्वाची च घृताची च अप्सरसौ) 'विश्वाची' और 'घृताची' ये दोनों अप्सराएं हैं। समस्त जनों को व्यवस्था में बांधने और समस्त पदार्थ प्राप्त कराने वाली व्यवस्था 'विश्वाची' है और सर्वत्र पुष्टिकारक पदार्थों को प्राप्त करने वाली या अग्नि या राजा के मान गौरव प्रतिष्ठा को उभाड़ने वाली शक्ति 'घृताची' है। उनके (अपः हेतिः वातः प्रहेतिः) जल सामान्यशस्त्र और वायु उत्कृष्ट शस्त्र हैं। (तेभ्यः नमः० इत्यादि) पूर्ववत् ॥ शत० ८। ६। १। १८ ॥

अयमुपर्य्यर्वाग्वसुस्तस्य सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीग्रामण्यौ। उर्वशी च पूर्वचित्तिश्चाप्सरसाववस्फूर्जन् हेतिर्विद्युत्प्रहेतिस्तेभ्यो नमोऽअस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

हेमन्तर्त्तुरर्वाग्वसुर्देवता। निचृत् कृतिः। निषादः॥

भा०—(उपरि) सबके ऊपर (अयम्) यह (अर्वाग्-वसुः) हेमन्त ऋतु के समान वृष्टि के बाद अन्न समृद्धि के देने वाला एवं प्रजा के ऊपर निरन्तर ऐश्वर्य बरसाने वाला, अथवा समस्त राष्ट्र वासी जिसके अधीन हैं वह राजा हेमन्त के समान अति शीत एवं युद्धादि में समृद्ध शत्रु राष्ट्रों का भी पतझड़ के समान ऐश्वर्य रहित कर देने में समर्थ है।

(तस्य) उसके (सेनजित् च सुषेणः च सेनानी-ग्रामण्यौ) सेना द्वारा परसेना को विजय करने वाला 'सेनजित्' और उत्तम सेना वाला 'सुषेण' ये दो सेनानायक और ग्रामनायक हेमन्त के दो मास सहः' और 'सहस्य' के समान हैं। (उर्वशी च पूर्वचित्तिश्च अप्सरसौ) 'उर्वशी' और 'पूर्वचित्ति' ये दोनों अप्सराएं हैं, अर्थात् विशाल राष्ट्र को वश करने वाली शक्ति 'उर्वशी' और पूर्व प्राप्त देशों से धन संग्रह करने वाली या पूर्व ही समस्त कर्त्तव्य का निर्धारण करने वाली 'पूर्वचित्ति' कहाती है। (अवस्फूर्जन् हेतिः) उसका घोर गर्जन करने वाला 'शस्त्र' है। विद्युत् के समान तीव्र दीप्ति से पड़ने वाला उत्कृष्ट अस्त्र है। (तेभ्यः नमः० इत्यादि) पूर्ववत्। शत० ८। ६। १। २०॥

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या ऽअयम्।
अपाᳪं रेताᳪंसि जिन्वति॥ २०॥ ऋ० ८। ४४। १६॥

अग्निर्ऋषिः। निचृद् गायत्री। षड्जः॥

भा०—(अग्निः) अग्नि के समान प्रतापी पुरुष (दिवः) सूर्य के समान द्यौलोक, आकाश एवं ज्ञान विज्ञान का और विद्वान् उत्कृष्ट प्रजा का (पृथिव्याः) पृथिवी का, पृथिवी पर के समस्त प्राणियों का (ककुत्पतिः) महान् स्वामी, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पालक है। वह ही (अपां) आप्त प्रजाओं के (रेतांसि) वीर्यों, बलों को (जिन्वति) बढ़ाता है।

आत्मा प्राणों का नेता होने से अग्नि है। वह सब का (मूर्धा) शिरोमणि, (दिवः) मस्तक से लेकर और (पृथिव्या) चरणों तक का महान् स्वामी है। वह (अपां) प्राणों के बलों की वृद्धि करता है। इसी प्रकार परमेश्वर सब का शिरोमणि आकाश और पृथिवी का स्वामी है। वह (अपां) मूलकारण प्रकृति के परमाणुओं में उत्पादक शक्ति को अधीन करता है। (व्याख्या देखो ३। १२)

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः ।
मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ २१ ॥ ऋ० ८ । ६४ । ४ ॥

विरूप ऋषि. । अग्निर्देवता । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(अयम्) यह साक्षात् (अग्नि.) अग्रणी, परसंतापक, परंतप राजा (कविः) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी और सूक्ष्मदर्शी है। वह (सहस्रिण॰) सहस्रों सुखों से युक्त और (शतिनः) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाले (वाजस्य) बल और ऐश्वर्य का (पतिः) पालक और सब के (मूर्धा) शिर के समान उच्च पद पर विराजमान है। वही (रयीणाम् पतिः) समस्त ऐश्वर्यों का भी स्वामी है।

त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ २२ ॥ ऋ० ६ । १६ । १३ ॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० ११ । ३२ उत्तरार्ध)

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥ २३ ॥
ऋ० १० । ८ । ६ ॥

भा०—व्याख्या देखो (१३ । १५)

अबोध्यग्निः समिधा जनानां प्रति धेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा ऽइव प्र वयामुज्जिहानाः प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ ॥२४॥
ऋ० ५ । १ । १ ॥

बुधगविष्ठिरौ ऋषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(धेनुम् इव) दुधार कपिला गाय के समान (आयतीम्) आनेवाली (प्रति उषासम्) प्रत्येक प्रात काल को (राजा के पक्ष में) (जनाना समिधा) जनों, प्रजाओं के उपकार के लिये (समिधा) समिधा से (अग्नि. अबोधि) जिस प्रकार होमाग्नि प्रदीप्त होता है और

जिस प्रकार (जनानां) मनुष्यों के उपकार के लिये (समिधा) तेज से (प्रतिउपासम्) प्रति प्रातःकाल (अग्निः अबोधि) सूर्य प्रकाशित होता है उसी प्रकार (जनानां) राष्ट्र के प्रजाजनों के (सम्-इधा) सूर्य के समान तेज से ही (धेनुम् इव) कपिला गाय के समान (आयतीम्) प्राप्त होने वाला (प्रति उषासम्) प्रत्येक दुष्टों के संताप देने के अवसर (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी नेता रूप परंतप राजा को (अबोधि) प्रज्वलित, उत्तेजित किया जाता है। (उज्जिहानाः यह्वाः) ऊपर उड़ने वाले बड़े २ पक्षी जिस प्रकार (वयाम् प्रसिस्रते) शाखा की ओर आश्रय लेने के लिये बढ़ते हैं। और (भानवः) सूर्य की उज्ज्वल किरणें (नाकम् प्रसिस्रते) जिस प्रकार आकाश की ओर बढ़ती हैं। उसी प्रकार (यह्वाः) बड़े २ पदाधिकारी लोग (वयाम्) व्यापक उदार नीति को या कीर्त्ति को प्राप्त करते हैं और (भानव) तेजस्वी पुरुष लोग (नाकम्) सुखमय राष्ट्र को (अच्छ) भली प्रकार प्राप्त करते हैं।

अध्यात्म में देखो सामवेद द्वितीय संस्क० मन्त्र सं० ७३ ॥ और अथर्व० १३ । २ । ४६ ॥

अवो॑चाम क॒वये॒ मेध्या॑य॒ वचो॑ व॒न्दारु॑ वृष॒भाय॒ वृष्णे॑।
गवि॑ष्ठिरो॒ नम॑सा॒ स्तोम॑म॒ग्नौ दि॒वीव॒ रु॒क्मम॑रु॒व्यञ्च॑मश्रेत् ॥२५॥

ऋ० ५ । १ । १२ ॥

अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(मेध्याय) उत्तम गुणों, आचरणों से युक्त पवित्र, (कवये) क्रान्तदर्शी, प्रज्ञावान् मेधावी, बुद्धिमान् (वृष्णे) बलवान् (वृषभाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिये (वन्दारु) हम वन्दना योग्य, स्तुति और आदर के (वचः) वचन का (अवोचाम) प्रयोग करें। (गविष्ठिरः) गौ,

वेद वाणी में स्थिर प्रवचन करने वाला विद्वान् (नमसा) विनय भाव से (अग्नौ) प्रकाशमय परमेश्वर के विषय में (स्तोमम्) स्तुति समूह को ऐसे (अश्रेत्) प्रदान करे जैसे (गविष्ठिरः) किरणों में स्थित सूर्य (दिवि) आकाश में (उरुव्यचम्) बहुत से लोकों में फैलने वाले (रुक्मम्) प्रकाश को (अश्रेत्) प्रदान करता है ।

अथवा-(गविष्ठिरः)पृथिवी पर स्थिर रूप से रहने वाला प्रजाजन (नमसा) नमन या दमनकारी बल से प्रभावित होकर (अग्नौ) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष में (स्तोमम्) अधिकार, वीर्य और सामर्थ्य (अश्रेत्) ऐसे प्रदान करती है जैसे (दिवि) आकाश में (उरुव्यचम् रुक्मम् इव) बहुत से लोको में व्यापक प्रकाशमान् सूर्य को स्थापित करता है ।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो ऽअध्वरेष्वीड्यः ।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ २६ ॥
ऋ० ४ । ७ । १ ॥

भा०—(अयम्) यह (प्रथम.) सर्व श्रेष्ठ पुरुष (अध्वरेषु यजिष्ठः होता) यज्ञों में, यज्ञ करने वालों में सबसे उत्तम यज्ञ करने वाले होता के समान (अध्वरेषु) अहिंसा रहित राष्ट्र के पालन के कार्यों में या युद्धों में (यजिष्ठ) सबसे उत्तम संगति या व्यवस्था करने हारा, (होता) दानशील होकर (ईड्य) स्तुति करने योग्य है । वही (धातृभिः) राष्ट्र के धारण करने वाले पुरुषों द्वारा (इह) इस राष्ट्र शासन के मुख्य पद पर (धायि) स्थापित किया जाता है । (अप्नवान. भृगवः) ज्ञानी विद्वान् जिस प्रकार (वनेषु) वनों में (विभ्वं) व्यापक अग्नि को (विरुरुचुः) विविध उपायों से प्रकाशित करते हैं, प्रज्वलित करते हैं उसी प्रकार (वनेषु) रश्मियों में (चित्रम्) अद्भुत तेजस्वी, (विभ्वम्) विविध सामर्थ्यों से सम्पन्न (यम्) जिस प्रधान पुरुष को आश्रय लेकर

(विशे विशे) प्रजा के हित के लिये (अप्नवानः भृगवः) रूप विज्ञान शाली तेजस्वी पुरुष (विरुरुचुः) विविध प्रकार से प्रकाशित करते हैं। उसके लिये अपने २ गुण और शिल्प प्रकट करते हैं।

जनस्य गोपा ऽअंजनिष्ट जागृविरग्निः सुदक्षः सुविताय नव्यसे।
घृतप्रतीको बृहता दिविस्पृशा द्युमद्विभाति भरतेभ्यः शुचिः॥२७॥

ऋ० ५। ११। १॥

भा०—(अग्निः) अग्रणी, नेता, राजा (नव्यसे) अभी नये २ प्राप्त किये (सुविताय) राष्ट्र के शासन-कार्य के संचालन के लिये (सुदक्षः) उत्तम बल और ज्ञानवान् होकर (जागृविः) सदा जागरणशील साव-धान होकर (जनस्य गोपा) समस्त प्रजाजन का पालक, रक्षक (अज-निष्ट) रहे। और वह (घृतप्रतीक) मुखपर घृत लगाये ब्रह्मचारी के समान तेजस्वी स्वरूप होकर (दिविस्पृशा) आकाश में व्यापक (द्युमत्) कान्तिमान् तेजस्वी, ऐश्वर्य युक्त (बृहता) बड़े भारी राष्ट्र से सूर्य के समान तेज से (शुचिः) कान्तिमान्, निष्कपट, दोष रहित, शुद्ध होकर (भरतेभ्यः) प्रजा के भरण पोषण करने हारे विद्वान् पुरुषों से (द्युमत्) तेजस्वी होकर (विभाति) विविध ऐश्वर्यों से और तेजों गुणों से प्रकाशित होता है।

त्वामग्ने ऽआङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दञ्छिश्रियाणं वनेवने।
स जायसे मथ्यमानः सहो महत् त्वामाहुः सहसस्पुत्रमङ्गिरः॥२८॥

ऋ० ५। ११। ६॥

अग्निर्देवता। विराडार्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान तेजस्विन्! (गुहा-हितम्) अपने हृदय के गुह्य स्थान में स्थित और (वने वने शिश्रिया-णम्) वन २, प्रत्येक आत्मा आत्मा में विद्यमान (त्वाम्) तुझ परमेश्वर

का (अंगिरस) ज्ञानी योगाभ्यासी पुरुष जिस प्रकार (अनु अविन्दन्) साक्षात् दर्शन करते हैं या प्रथम अपने आत्मा का और फिर उसमें भी व्यापक तेरा साक्षात् करते हैं और जिस प्रकार (वने वने शिश्रियाणम्) प्रति पदार्थ या प्रत्येक काष्ठ में या प्रत्येक जल के परमाणु में विद्यमान (गुहा हितम्) गुप्त रूप से स्थित अग्नि तत्व को (अङ्गिरसः) विज्ञान वेत्ता (अनु अविन्दन्) प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार (स.) वह तू (मथ्यमान) प्राणायाम, ज्ञान, ध्यानाभ्यास से मथित होकर परमेश्वर प्रकट होता है और जिस प्रकार अरणियों से मथा जाकर अग्नि प्रकट होता है उसी प्रकार (मथ्यमानः) अपनी और शत्रु सेना के बीच में युद्धादि द्वारा मथा जाकर (महत् सहः) बड़े भारी बल रूप में (जायसे) प्रकट होता है। हे (अंगिरः) सूर्य के समान या अगारों के समान तेजस्विन् या शरीर में प्राण के समान राष्ट्र के प्राणरूप ! (त्वाम्) तुझको (सहस पुत्रम्) बल का, पुन शक्ति का पुतला शक्ति से उत्पन्न हुआ (आहु.) कहते हैं।

सखा॑यः॒ सं वः॑ स॒म्यञ्च॒मिषं॒ स्तोमं॑ चा॒ग्नये॑।
वर्षि॑ष्ठाय क्षिती॒नामू॒र्जो नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ २६ ॥

ऋ० ५ । ७ । १ ॥

इष ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (व) आप लोग (क्षितीनां वर्षिष्ठाय) भूमियों पर प्रभूत जल वर्षाने हारे मेघ के समान (क्षितीनां) राष्ट्र निवासी प्रजाजनों पर (वर्षिष्ठाय) समस्त कामना योग्य सुखों को वर्षण करने हारे और (वर्षिष्ठाय) सब निवासियों से सबसे ऐश्वर्य, ज्ञान और बल में बढ़े हुए और (ऊर्जे नप्त्रे) बल पराक्रम के बाधने, उसको नियम व्यवस्था में रखने वाले (सहस्वते) शत्रु विजयकारी बल से युक्त (अग्नये) अग्नि स्वरूप तेजस्वी पुरुष को (सम्यञ्चम् इषम्) सर्वो-

त्तम अन्न या अभिलाषा योग्य पदार्थ और (स्तोमं च) स्तुतियों या पदाधिकारों का (सं-भरत) अच्छी प्रकार प्रदान करो।

सꣳसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य्य ऽआ ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ ३० ॥

ऋ० १० । १९ । १ ॥

सवनन ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! हे (वृषन्) प्रजाओं पर सुखों के वर्षक ! बलवन् ! तू (अर्य) स्वामी होकर ही (सं युवसे) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त कराता है। और (ईड. पदे) पृथ्वी के पृष्ठ पर (आ समिध्यसे) सब तरह से प्रकाशित होता है। और (विश्वानि) समस्त (वसूनि) ऐश्वर्यों को (सः) वह तू (नः) हमें (सम् सम् आभर) निरन्तर प्राप्त कर ।

त्वं चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोढवे ॥ ३१ ॥

ऋ० १ । ४५ । ६ ॥

प्रस्कण्वः ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडनुष्टुप् । गाधार ॥

भा०—हे (चित्रश्रवस्तम) अद्भुत, आश्चर्यकारी नाना अन्न आदि ऐश्वर्यों के और यशों के सबसे बड़े स्वामिन् ! हे (पुरुप्रिय) बहुत प्रजाओं के प्रिय ! अथवा राष्ट्रवासी प्रजाओं को प्रेम करने हारे ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्रणी पुरुष ! (हव्याय) स्वीकार करने योग्य राष्ट्र के भार को (वोढवे) अपने ऊपर उठाने के लिये (विक्षु) प्रजाओं में से (जन्तवः) समस्त जन (शोचिष्केशम्) दीप्ति युक्त किरणों वाले सूर्य के समान दीप्तिमान् (त्वाम्) तुझको (हवन्ते) बुलाते हैं। तुझे चाहते हैं।

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिꣳ स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥ ३२ ॥

ऋ० ७ । १६ १ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! (वः) तुम्हारे (एना नमसा) इस आदर सत्कार के भाव एवं अन्न द्वारा या तुम्हारे नमन, वशीकरण के अधिकार के साथ २ (प्रियं) तुम्हारे प्रिय (चेतिष्ठम्) तुम सबको खूब चेताने वाले धर्म मार्ग को उत्तम रीति से बतलाने वाली (अरतिम्) अत्यन्त बुद्धि-मान्, (स्वध्वरम्) उत्तम यज्ञशील, अहिंसक (विश्वस्य दूतम्) सबके आदर योग्य सर्वत्र व्यापक (अमृतम्) स्वयं अविनाशी, स्थिर अथवा (अमृतम्) सब कार्यों के मूल आश्रयरूप (ऊर्जः नपातम्) बल को विनष्ट न होने देने हारे अग्रणी राजा को (आहुवे) मैं बुलाता हूं । आप सबके सामने प्रस्तुत करता हूं ।

विश्वस्य दूतममृतं विश्वस्य दूतममृतम् ।
स योजते ऽअरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत् स्वाहुतः ॥३३॥

ऋ० ७ । १६ । १ । २ ॥

अग्निर्देवता । निचृद् बृहती मध्यम ॥

भा०—(विश्वस्य दूतम्) संघ के पूजनीय या सर्व के समान रूप से प्रतिनिधि (अमृतम्) अविनष्ट, दीर्घायु पुरुष को मै प्रस्तुत करता हूं । (विश्वस्य दूतम् अमृतम्) सब दुष्टों के तापक राष्ट्र के लिये अमृतस्वरूप पुरुष को मैं प्रस्तुत करता हूं । (सः) वह (अरुषा) रोष रहित, सौम्य स्वभाव के (विश्वभोजसा) समस्त विश्व के पालक, सबके अन्न देने वाले सामर्थ्य से युक्त होकर (योजते) सबको सन्मार्ग में लगाता है । (स्वाहुतः) उत्तम रीति से बुलाया जाकर ही (सः दुद्रवत्)

रथादि से गमन करता है। अथवा (अरुपा=अरुषौ) वह दोष रहित सौम्य स्वभाव के (विश्वभोजसा) समस्त जगत् के पालक एक उसको भोग करने में समर्थ दो प्रधान पुरुषों के राष्ट्र कार्य मे रथ में दो अश्वो के समान (योजते) नियुक्त करे। इस (सु-आहुतः) उत्तम रीति से अधिकार प्राप्त करके (सः) वह (द्रुदवत्) राज्य कार्य का संचालन करे।

स द्रुद्रवत् स्वाहुतः स द्रुद्रवत् स्वाहुतः।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳ राधो जनानाम् ॥ ३४ ॥
ऋ० ७ । १६ । २ ॥

अग्निर्देवता। निचृद् बृहती मध्यमः ॥

भा०—(सः स्वाहुत. दुद्रवत्) वह अच्छी प्रकार अधिकार प्राप्त करके राष्ट्र के कार्य को रथ के समान चलाता है। और (सः स्वाहुतः दुद्रवत्) वह उत्तम आदर से बुलाया जकर आता है। वह (सुब्रह्मा) राजा, उत्तम ब्रह्मा, विद्वान् ब्रह्मवेत्ता से युक्त, (यज्ञ) यज्ञ के समान उत्तम विद्वानों से युक्त होकर (वसूनां) राष्ट्र में वसने वाले (जानानम्) मनुष्यों के लिये। (सुशमी) उत्तम कर्मवान होकर (देवं) रमण करने, भोगने योग्य (राध्यः) ऐश्वर्य को (दधाति) प्रदान करता है।

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः ॥ ३५ ॥ ऋ० १ । ७१ । ४ ॥

गोतम ऋषि' अग्निर्देवता। उष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे (सहसः यहो) बल के कारण उच्च पद को प्राप्त और आदर पूर्वक सम्बोधन करने योग्य राजन्! हे (अग्ने) अग्रणी नेतः। तू (गोमत) गौ आदि पशु सम्पत्ति से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य का (ईशानः) स्वामी है। हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवान्! राजन्! (अस्मे) हमें तू (महि श्रवः) बड़ा भारी अन्न आदि ऐश्वर्य, कीर्ति (धेहि) प्रदान कर।

'यहुः'-यातेर्ह्वतेश्चौणादिके मृगय्वादित्वात् कुप्रत्यये निपातनाद्रूपसिद्धिः । यातः प्राप्तः पुण्यवशेन हूयते च स्वनाम्ना, इति यहुरिति देवराजः । यहुर्यातश्चाहूतश्चेति माधवः ॥

स ऽइ॑धा॒नो वसु॑ष्क॒विर॒ग्निरी॒डेन्यो॑ गि॒रा ।
रे॒वद॒स्मभ्य॑ पुर्वणीक दीदिहि ॥ ३६ ॥ ऋ० १ । ७६ । ५ ॥

अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(स.) वह तू हे राजन् ! (इधा) अपने तेज से देदीप्यमान (वसु.) सब प्रजा का बसाने हारा (कवि.) दूरदर्शी, क्रान्तदर्शी, विद्वान्, मेधावी (गिरा) वाणियों से (ईडेन्यः) सदा स्तुति योग्य होकर हे (पुर्वणीक) बहुत से सेना-बल से युक्त राजन् ! तू (अस्मभ्यं) हमारे (रेवत्) धनैश्वर्य से युक्त राष्ट्र में (दीदिहि) निरन्तर तेजस्वी होकर रह ।

क्षपो॑ राजन्नु॒त त्मनाग्ने॒ वस्तो॑रु॒तोषसः॑ ।
स ति॑ग्मजम्भ र॒क्षसो॑ दह॒ प्रति॑ ॥ ३७ ॥ ऋ० १ । ६ । ६ ॥

अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभ. ॥

भा०—हे (राजन्) राजन् ! तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्ने ! हे (तिग्म जम्भ) तीक्ष्ण होकर शत्रुओं के अंग भंग करने वाले ! (तिग्मजम्भ) वज्र के समान या वज्र या खड्ग रूप दंष्ट्रा वाले, खड्गों से शत्रु को खा जाने वाले राजन् ! (क्षपः) रात्रि के अवसरों में (वस्तोः उत उषसः) दिन और प्रात. कालों के अवसरों में भी और सदा सब काल में (सः) वह तू (रक्षसः) प्रजा के नाशक राक्षसों को (प्रति दह) एक २ करके भस्म कर डाल ।

भ॒द्रो नो॑ ऽअ॒ग्निराहु॑तो भ॒द्रा रा॒तिः सु॑भग भ॒द्रो ऽअ॑ध्व॒रः ।
भ॒द्रा ऽउ॒त प्रश॑स्तयः ॥ ३८ ॥ ऋ० ८ । १६ १६ । १६ ॥

सौभरिर्ऋषि. । अग्निर्देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(नः) हमारे लिये (आहुतः) अग्निहोत्र द्वारा आहुतियों से प्रदीप्त अग्नि के समान (आहुतः) सब प्रकार से आदर पूर्वक, नाना ऐश्वर्यों से पुरस्कृत, शत्रुसंतापक, अग्रणी पुरुष (भद्रः) हमें कल्याणकारक हो। (रातिः भद्रा) उसका दान भी हमें सुखदायी हो। हे (सुभग) उत्तम ऐश्वर्यवन् ! (अध्वरः) तेरा हिंसारहित राज्य पालन का कार्य (भद्रः) सबको सुखप्रद हो। (उत) और (प्रशस्तयः) उत्तम प्रशंसाएं और प्रशंसा योग्य कार्य भी (भद्रा) सुखदायी हों।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥ स्फुटम् ॥

समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान, वैराग्य ये छः पदार्थ 'भग' कहाते हैं।

भद्रा ऽउत प्रशस्तयो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य्ये।
येना समत्सु सासहः ॥ ३६ ॥ ऋ० १ । ९ । २० ॥

अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—(भद्रा उत प्रशस्तयः) और समस्त स्तुतियां सुखकारी हों और तू (वृत्रतूर्ये) नगर को घेरने वाले, सन्मर्यादा के लोप करने वाले दुष्ट पुरुषों के नाशक संग्राम कार्यों में अपना (भद्रं मनः) कल्याण युक्त चित्त (कृणुष्व) प्रदान कर। (येन) जिससे (समत्सु) संग्रामों में तू उनको (सासहः) पराजय करने में समर्थ हो।

येना समत्सु सासहोऽव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धताम्।
वनेमा ते ऽअभिष्टिभिः ॥ ४० ॥ ऋ० ८ । ९ । २० ॥

अग्निर्देवता। निचृदुष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—(येन) क्योंकि (समत्सु) संग्रमों में तू (सासहः) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ रहे। अतः तू (शर्धताम्) बल पराक्रमशील

पुरुषों के (स्थिरा) स्थिर सैन्यों को (अवतनुहि) अपने अधीन विस्तृत रूप से रख। और हम (ते) तेरे (अभिष्टिभिः) अभीष्ट कामनाओं और अभिलाषाओं के सहित (ते) तेरे अधीन (वनेम) ऐश्वर्य का भोग करें।

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः।
अस्तमर्वन्त ऽआशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन ऽइषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४१ ॥ ऋ० ५ । ६ । १ ॥

कुमारवृषावृषी अग्निर्देवता । निचृत् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(य) जो (वसु॰) गृहस्थ के समान व प्रजाओं का बसाने हारा है और (यं) जिसके पास (धेनवः) दुधार गौवें और उनके समान समृद्ध प्रजाएं (अस्तम् यन्ति) घर के समान शरण समझ कर प्राप्त हों और (आशव.) शीघ्र गमनकारी (अर्वन्तः) अश्व और अश्वारोहीगण (अस्तं यन्ति) जिसको अपना गृह समझ कर शरण होते हैं। और (वाजिनः) वेगवान् या ऐश्वर्यवान् (नित्यासः) नित्य, सदा स्थायी रूप से रहने वाले गृहस्थ पुरुष (यं अस्तं यन्ति) जिसको अपना घर सा शरण जान कर प्राप्त होते हैं मैं तो (त अग्निम् मन्ये) उस सब के अग्रणी, नेता बलवान् पुरुष को 'अग्नि' शब्द से कहाने योग्य मानता और जानता हूं। ऐसे गुणों से युक्त सर्वाश्रय हे अग्ने! राजन्! तू (स्तोतृभ्य.) सत्य गुणों के प्रकाशक विद्वानों को (इषम्) अन्न आदि ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा, प्रदान कर।

सो ऽअग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः।
समर्वन्तो रघुद्रुवः स सुजातासः सूरय ऽइषं स्तोतृभ्य आ भर ॥ ४२ ॥

ऋ० ५ । ६ । २ ॥

अग्निर्देवता । निचृत् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(यः वसुः) जो सबको बसाने वाला है। और (यं धेनवः सम् आयान्ति) जिसके पास दुधार गौवों के समान समृद्ध प्रजाएं शरण आती हैं। और (रघुद्रुव: अर्वन्तः) तीव्रवेग से जाने वाले अश्व और अश्वारोही पुरुष (ये सम् आयन्ति) जिसके पास शरण आते हैं। और (यम्) जिसके पास (सुजातासः सूरयः) उत्तम रूप से विद्या आदि में कुशल विद्वान् पुरुष पहुंचते हैं (स अग्निः) वह 'अग्नि' प्रकाशवान् तेजस्वी नेता कहाने योग्य है (गृणे) ऐसा मैं कहता हूं। हे राजन् ! (स्तोतृभ्यः) उत्तम गुणों के वक्ता विद्वानों को तू (इषं आ भर) अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रदान कर।

उभे सुश्चन्द्र सर्पिषो दर्वी श्रीणीष ऽआसनि।
उतो न ऽउत्पुपूर्या ऽउक्थेषु शवसस्पतऽइषं स्तोतृभ्य ऽआ भर॥ ४३॥ ऋ० ५। ६। ९॥

अग्निर्देवता। निचृत् पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे (सुश्चन्द्र) शोभन आचारवान् और प्रजा के आह्लादक! अथवा प्रजा को उत्तम गुणों से रंजन करने हारे! अथवा उत्तम ऐश्वर्यवान्! तू (उभे दर्वी) चमसों के समान फैलने वाले दोनों हाथों को जिस प्रकार पान करने वाला पुरुष अपने (आसनि) मुख पर धर लेता है उसी प्रकार तू भी (उभे दर्वी) शत्रु सेनाओं को विदारण करने में समर्थ दोनों तरफ विस्तृत दोनों पक्षों या बाहुओ (Wings) को अपने (आसनि) मुख्य भाग पर (श्रीणीषे) आश्रित रखता, उनको नियुक्त करता है, उनको अपनी सेवा में लगाता है। हे (शवसः पते) बल के स्वामिन्! तू (नः) हमें (उक्थेषु) ज्ञानों और उत्तम स्तुति योग्य व्यवहारों में (उत्पुपूर्याः) ऊपर तक भर दे, या उत्तम पद तक पालन पोषण कर। (इषं स्तोतृभ्यः आ भर) विद्वानों को अन्नादि भोग्य पदार्थ प्राप्त करा।

गुरु के पक्ष में—हे गुरो ! आल्हादक (उभे दर्वी) अज्ञान के नाशक दोनों ज्ञान और क्रिया योग दोनों को (आसनि श्रेणीषे) मुखाग्र, परिपक्व करा (उक्थेषु) विद्याओं में हमें पूर्ण कर।

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रꣳ हृदिस्पृशम्।
ऋध्यामा त ऽओहैः ॥ ४४ ॥ ऋ० ४। १०। १॥

अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नेतः ! (अश्वं न) जिस प्रकार वेगवान् अश्व को शीघ्रता से पहुंचा देने के कारण उत्तम साधु-वादों और अन्नों से समृद्ध करते हैं और (स्तोमैः क्रतु न) जिस प्रकार स्तुति समूहों और वेद मन्त्रों से यज्ञ कर्म को समृद्ध करते हैं। उसी प्रकार (भद्रं) कल्याणकारी (हृदिस्पृशम्) हृदय में स्पर्श करने वाले, अतिप्रिय (तम्) उस परम उपकारी तुझ को भी (ते) तेरे योग्य (ओहैः) नाना पुरस्कार योग्य पदार्थों से (ऋध्याम) समृद्ध करें।

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥ ४५ ॥ ऋ० ४। १०। २॥

अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री। षड्ज ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! (अधा हि) और तू निश्चय से (भद्रस्य) सुखकारी कल्याणकारी, (दक्षस्य) बलवान् (साधो) कार्यसाधक उत्तम (बृहत) महान् (ऋतस्य) सत्य यज्ञ, या राष्ट्र सञ्चालन के कार्य का (रथीः) रथ के स्वामी के समान नेता (बभूथ) हो कर रह।

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो ऽअर्वाङ् स्वर्ण ज्योतिः।
अग्ने विश्वेभिः सुमना ऽअनीकैः ॥ ४६ ॥ ऋ० ४। १०। ३॥

अग्निर्देवता। भुरिगार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) हे अग्रणी राजन् ! विद्वन् ! (एभिः) इन अर्चना

योग्य पूजनीय विद्वानों के साथ और (विश्वेभिः) समस्त (अनीकैः) सैन्य-बलों के साथ रहकर भी (अर्वाङ्) साक्षात् (स्व ज्योतिः न) सुखकारी तेजस्वी, सूर्य के समान (सुमनाः) शुभ चित्त वाला होकर (भव) रह ।

अग्निꣳ होतारं मन्ये दास्वन्तं वसुꣳ सूनुꣳ सहसो जातवेदसं विप्रं न जातवेदसम् । य ऽऊर्ध्वया स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा । घृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषाजुह्वानस्य सर्पिषः ॥ ४७ ॥ ऋ० १ । २७ । १ ॥

अग्निर्देवता । विराड् ब्राह्मी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—मैं (होतारम्) ऐश्वर्य के ग्रहण करने वाले, (दास्वन्तं) ऐश्वर्य के दान करने वाले, (वसुम्) प्रजा के बसाने हारे, (सहसः सूनुम्) शत्रु को पराजय करने में समर्थ, सेना बल के संचालक, (जातवेदसम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (विप्रम्) ज्ञानवान् पुरुष को मैं (अग्निं मन्ये) 'अग्नि' अग्रणी नेता होने योग्य जानता हूं । (यः) जो (ऊर्ध्वया) अपने सर्वोच्च (देवाच्या) देव, विजिगीषु पुरुषों को वश करने वाली (कृपा) सामर्थ्य या शक्ति से स्वयं (स्वध्वरः) सुरक्षित, उत्तम राष्ट्र का स्वामी, अहिंसित (देवः) राजा विजिगीषु होकर (आजुह्वानस्य सर्पिषः) आहुति दिये गये घृत की (शोचिषा) कान्ति से जिस प्रकार अग्नि जाज्वल्यमान होता है उसी प्रकार (आजुह्वानस्य) चारों तरफ से युद्ध में आ आकर टूट पड़ने वाले (सर्पिषः) सर्पणशील, विविध पैंतरों से चलने वाले सेना-बल के (शोचिषा) तेज से, लपटों से (घृतस्य) तेज की (विभ्राष्टिम्) विविध प्रकार की दीप्ति की (अनुवष्टि) कामना करता है ।

अग्ने त्वन्नो ऽअन्तम ऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः । वसुरग्निर्वसुश्रवा ऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिन्दाः ।

तं त्वा॑ शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय॑ नूनमी॑महे सखि॑भ्यः ॥ ४८ ॥

ऋ० ५ । २४ । १ ॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० ३ । २५, २६) ।

येन॒ ऽऋष॑यस्तप॑सा स॒त्रमाय॒न्निन्धा॑ना ऽअ॒ग्निꣳस्व॑रा॒भर॑न्तः ।
तस्मि॑न्न॒हं नि द॑धे॒ नाके॑ ऽअ॒ग्निं यमा॒हुर्मन॑व स्ती॒र्णब॑र्हिषम् ॥४६॥

ऋ० ५ । २४ । २ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(येन) जिस (तपसा) तप, सत्य धर्म के अनुष्ठान और तपश्चर्या के वल से (ऋषयः) दीर्घदर्शी वेद मन्त्रार्थ के ज्ञाता (सत्रम् आयन्) सत्य ज्ञान को प्राप्त होते हैं। और (यम्) जिस (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ज्योति को (इन्धानाः) प्रज्वलित करते हुए (स्व) सुखमय लोक और आत्मप्रकाश को (आभरन्तः) प्राप्त करते हुए (सत्रम्) सत्य सुख को प्राप्त करते हैं। (तस्मिन्) उसी (लोके) सुखमय लोक या पद पर मैं (अग्निम्) अग्रणी और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को (नि दधे) स्थापित करता हूं। (यम्) जिसको (मनवः) मनुष्य लोग (तीर्णबर्हिषम्) एवं महान् आकाश को लांघ कर विराजमान सूर्य के समान समस्त प्रजाओं से ऊपर या इस लोक पर अधिष्ठाता रूप से विराजमान वतलाते हैं ॥ शत० ८।६।२।१८॥

'तीर्णबर्हिषम्'—प्रजा वै बर्हिः । कौ० ५ । ७ ॥ पशवो वै बर्हिः । ऐ० २ । ४ ॥ अयं लोको बर्हिः श० १ । ४ ॥ २४ । क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हि । श० १ । ३ । ४ । १६ ॥

तं पत्नी॑भि॒रनु॑ गच्छेम देवाः पु॒त्रैर्भ्रातृ॑भिरु॒त वा॒ हिर॑ण्यैः ।
नाकं॑ गृभ्णा॒नाः सु॑कृ॒तस्य॑ लो॒के तृ॒तीये॑ पृ॒ष्ठे ऽअधि॑ रोच॒ने दि॒वः ॥५०॥

ऋ० ५ । २४ । ३ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वानो ! विजिगीषु पुरुषो ! (तम्) उस पूर्व कहे अग्रणी नेता और विद्वान् की हम लोग (पुत्रैः) पुत्रों, (भ्रातृभिः) भाइयों, (पत्नीभिः) धर्मपत्नियों, (उत वा) और (हिरण्यैः) सुवर्ण आदि धातुओं सहित (नाकम्) परम सुख का (गृभ्णानाः) ग्रहण करते हुए अर्थात् सुख प्राप्ति के साधनों का उपार्जन करते हुए (सुकृतस्य) उत्तम धर्माचरण के (लोके) लोक में और (तृतीय) उत्कृष्टतम (पृष्ठे) आश्रय में (दिव) सूर्य के प्रकाश से (रोचने) प्रकाशित, अन्धकार रहित स्थान में (अनुगच्छेम) अनुसरण करें । शत० ८ । ६ । ३ । १९ ॥

आ वाचो मध्यमरुहद्भुरण्युरयमग्निः सत्पतिश्चेकितानः ।
पृष्ठे पृथिव्या निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणुतां ये पृतन्यवः ॥५१॥

अग्निर्देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अयम्) यह (भुरण्युः) प्रजा का भरण पोषण करने में समर्थ (सत्पतिः) सत्य का, सत् जनों का पालक (चेकितानः) विद्वान् (अग्निः) अग्रणी, राजा (वाचः) वाणी के वेदत्रयी के, अथवा राज्य की व्यवस्थाओं के (मध्यम्) मध्य स्थान, मध्यस्थ न्यायकर्त्ता पद को (असहत्) प्राप्त करें । और (पृथिव्याः पृष्ठे) पृथिवी, भूमि की पीठ पर (निहितः) स्थापित होकर सूर्य के समान (दविद्युतत्) सत्य का प्रकाश करे । और (ये पृतन्यवः) जो सेना द्वारा संग्राम या कलह करना चाहते हैं उनको (अधः पदम् कृणुताम्) नीचे स्थान पर गिरा दे । शत० ८ । ६ । ३ । २० ॥

अयमग्निर्वीरतमो वयोधाः सहस्रियो द्योततामप्रयुच्छन् ।
विभ्राजमानः सरिरस्य मध्यऽउप प्रयाहि दिव्यानि धाम ॥ ५२ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अयम् अग्निः) यह अग्रणी, नेता, राजा (वीरतम॰) वीरों में सबसे अधिक वीर (वयोधाः) सबसे अधिक दीर्घायु अथवा अधीनों के जीवनों का पोषक या अन्नादि ऐश्वर्य का धारक, (सहस्रियः) हजारों योद्धाओं के बराबर बलवान्, और (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (द्योतताम्) प्रकाशित हो। (सरिरस्य मध्ये) अन्तरिक्ष के बीच में सूर्य के समान (सरिरस्य मध्ये) इस लोक समूह के बीच (विभ्राजमानः) विशेष तेज से प्रकाशमान होकर हे राजन् ! तू (दिव्यानि धामा) दिव्य अधिकारों तेजों और पदों को (उप प्र याहि) भली प्रकार प्राप्त कर। शत० ८। ६। ३। २१ ॥

सम्प्रच्यवध्वमुप सम्प्रयाताग्ने पथो देवयानान् कृणुध्वम्।
पुनः कृण्वाना पितरा युवानान्वातांसीत् त्वयि तन्तुमेतम् ॥५३॥

अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! प्रजाजनो ! आप लोग (सम् प्रच्यध्वम्) अच्छी प्रकार मिलकर आओ और (सं प्रयात) साथ मिलकर प्रयाण करो। हे (अग्ने) अग्रणी नेता और विद्वान् पुरुषो ! आप सब मिलकर (देवयानान् पथः) देवों, विद्वानों के जाने योग्य मार्गों को धर्माचरण की व्यवस्थाओं को और देव, राजा के जाने योग्य विशाल मार्गों को या विजयार्थी सेनाओं के-जाने योग्य मार्गों को (कृणुध्वम्) बनाओ। और हे (अग्ने) नेतः राजन् ! (युवाना पितरा) युवा माता पिता, (पुनः) बार २ (त्वयि) तेरे आश्रय पर, तेरी रक्षामें रहते हुए (कृण्वाना) ब्रह्मचर्य का पालन एवं गृहस्थ धर्म का आचरण करते हुए (एतम्) इस (तन्तुम्) विस्तृत राष्ट्र रूप यज्ञ को या प्रजोत्पालन रूप सन्तति कार्य को (अनु आतांसीत्) बराबर बनाये रक्खें।

०'कृण्वानाः' 'पितरा' ऐसा महीधर और उव्वटाभिमत पाठ है।

तदनुसार—प्रजाजन ही (युवाना पितरा कृण्वाना) युवा युवतियों को ही अगली सन्तान के निमित्त पिता माता बनाते हुए (त्वयि) तुझ राजा के आश्रय में (पुनः एतम् तन्तुम् अनु-आतांसीत्) फिर भी इस प्रजातन्तु को बनाये रक्खें । शत० ८ । ६ । ३ । २२ ॥

पूर्व पक्ष में 'अन्वातांसीत्' यहां व्यत्यय से द्विवचन के स्थान में एक वचन है । और दूसरे पक्ष में बहु वचन के स्थान में एक वचन है । परन्तु यह शपथाभिमत पाठ के विरुद्ध होने से उपेक्षा योग्य है ।

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सᳬसृजेथामयं च ।
अस्मिन् सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ५४

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, गृहपति के समान प्रजापालक राजन् ! तू (उद्बुध्यस्व) उठ, जाग, उत्कृष्ट धर्माचरण को जान । (त्वम्) तू (प्रति जागृहि) प्रत्येक कार्य के लिये जागृत रह, प्रत्येक प्रजा के लिये सावधान होकर रह । (त्वम् अयम्) तू और यह प्रजाजन दोनों मिलकर (इष्टापूर्ते) इष्ट, अभिलषित सुख के देने वाले उत्तम कर्म, दान, यज्ञ, तप आदि और 'पूर्त्त' शरीर और गृह को पूर्ण करने वाले ब्रह्मचर्य और कृषि आदि कर्म, इनका (संसृजेथाम्) पालन करो और (अस्मिन्) इस (उत्तरस्मिन्) सर्वोत्कृष्ट (सधस्थे) एकत्र होने के स्थान, गृहस्थ और राष्ट्र में (विश्वेदेवाः) समस्त देवगण, विद्वान् और राजा लोग और (यजमानः च) यजमान, दाता, गृहपति और राष्ट्रपति भी (अधिसीदत) आकर विराजें । वे राष्ट्र पर अधिकार पदों को प्राप्त करें ॥ शत० ८ । ६ । ३ । २२ ॥

येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम् ।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ५५ ॥ अथर्व० ६।५।१७॥

अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! विद्वान् ! राजन् ! गृहपते ! राष्ट्रपते ! (येन) जिस बल से तू (सहस्रं) हजारों अपरिमित प्रजाओं को (वहसि) धारण करता है । और (येन) जिस बल से (सर्ववेदसम्) समस्त ऐश्वर्यों और समस्त वेदोक्त ज्ञानों और कर्मों को (वहसि) धारण करता है (तेन) उस बल सामर्थ्य से (नः) हमारे (इमं यज्ञं) इस यज्ञ, गृहाश्रम, राष्ट्र पालनरूप परस्पर संगत कर्त्तव्य को (देवेषु) विजयी और विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर (स्व गन्तवे) सुख प्राप्त करने के लिये (नय) सन्मार्ग पर ले चल । अर्थात् तू हमारे राज्य और गृह के कार्यों को विद्वानों के दिखाये मार्ग पर चला । ८ । ६ । ३ । २५ ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो ऽअरोचथाः ।
तञ्जानन्नग्न ऽआ रोहाथानो वर्धया रयिम् ॥ ५६ ॥

ऋ० ३ । ५९ । १० ॥

व्याख्या देखो (अ० ३ । १४) और (अ० १२ । ५२) । शत० ८ । ६ । ३ । २४ ॥

तपश्च तपस्यश्च शैशिरावृतू ऽअग्नेरन्तः श्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामाप ऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः । ये ऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवी ऽइमे शैशिरावृतू ऽअभिकल्पमाना ऽइन्द्रमिव देवा ऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम् ॥ ५७ ॥

भा०—(तप तपस्यः च) 'तप और तपस्य' माघ और फाल्गुन दोनों (शैशिरौ ऋतू) शिशिर ऋतु के दो मास हैं । दोनों शिशिर कहाते हैं । अग्नेः अन्तः० इत्यादि (१३ । २५) के समान जानो । शत० ८।७।१।५॥

प॒र॒मे॒ष्ठी त्वा॑ सादयतु दि॒वस्पृ॒ष्ठे ज्योति॑ष्मतीम् ।
विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒नाय॒ विश्वं॒ ज्योति॑र्यच्छ ।
सूर्य॒स्तेऽधि॑ पति॒स्तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वा सी॑द ॥५८॥

भा०—(परमेष्ठी) परम, सर्वोच्च स्थान पर स्थित सूर्य के समान, विद्वान् तेजस्वी राजा (त्वा) तुझ (ज्योतिष्मतीम्) सूर्य के प्रकाशित पृथ्वी के समान आश्रयभूत सकल ऐश्वर्य से युक्त पृथ्वी को (दिवः पृष्ठे) ज्ञान और प्रकाश के आश्रय में (सादयतु) स्थापित करे । शेष की व्याख्या देखो (अ० १४ । १४ ।) शत० ८ । ७ । १ । २१, २२ ॥

लो॒कं पृ॑ण छि॒द्रं पृ॑णाथो॑ सीद ध्रु॒वा त्वम् ।
इ॒न्द्रा॒ग्नी त्वा॒ बृह॒स्पति॑र॒स्मिन् योना॑वसीषदन् ॥ ५९ ॥
ता ऽअ॑स्य॒ सूद॑दोहसः॒ सोम॑ꣳश्रीणन्ति॒ पृश्न॑यः ।
जन्म॑न्दे॒वानां॒ विश॑स्त्रि॒ष्वारो॑च॒ने दि॒वः ॥ ६० ॥
इन्द्रं॒ विश्वा॑ ऽअवीवृधन् समु॒द्रव्य॑चसं॒ गिरः॑ ।
र॒थीत॑मꣳर॒थीनां॒ वाजा॑ना॒ꣳसत्प॑तिं॒ पति॑म् ॥ ६१ ॥

भा०—व्याख्या देखो (अ० १२ । मं० ५४, ५५, ५६ ॥) शत० ८ । ७ । २ । १-१६ ॥ ८ । ७ । ३ । ८ ॥

प्रोथ॒दश्वो॒ न यव॑सेऽवि॒ष्यन्य॒दा म॒हः सं॒वर॑णा॒द्व्यस्था॑त् ।
आद॑स्य॒ वातो॒ अनु॑ वाति शो॒चिरध॑ स्म ते॒ व्रज॑नं कृ॒ष्णम॑स्ति ॥६२॥

अग्निर्देवता । विराट् त्रिष्टुप् । धैवता ॥ वसिष्ठ ऋषिः ।

भा०—(अश्वः) अश्व जिस प्रकार (यवसे अविष्यन्) घास के लिये जाना चाहता हुआ (प्रोथत्) अपने नाक, नथुने फड़ फड़ा कर शब्द करता है और (यदा) जब वह (महः संवरणात्) बड़े भारी अपने 'संवरण', बन्द रहने के स्थान अस्तबल से (वि अस्थात्) विविशेष रूप से जाता है तब भी हिनहिनाता है । उसके अनुकूल वायु बहता है । तब

उसका (भ्रजनं) चाल (कृष्णम् अस्ति) बड़ा आकर्षक होता है। और जिस प्रकार वह (अग्निः) लौकिक अग्नि भी (यवसे) अपने भक्ष्य काष्ठ आदि में लगना चाहता हुआ (प्रोथत्) शब्द करता है। और जब (मह संवरणात्) अपने बड़े भारी आच्छादक काष्ठ आदि से (प्र वि अस्थात्) प्रकट होता है तब भी शब्द करता है। (आत्) और उसके पश्चात् अग्नि के प्रकट हो जाने पर (वातः वायु आस्य शोचिः अनुयाति) वायु इसकी ज्वाला के अनुकूल बहता है उसको ज्वाला को बढ़ाता है तब (ते भ्रजन कृष्णम् अस्ति) हे अग्ने ! तेरा भ्रजन, गमन का स्थान काला कोयला बन जाता है। इसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (अवसे अश्वः न.) घास चारे के लिये लालायित अश्व के समान (अविष्यन्) राष्ट्र को प्राप्त करना अथवा शत्रु पर चढ़ाई के लिये जाना चाहता है तब और जब (महः संवरणात्) बड़े संवरण राजमहल आदि से निकल कर (व्यस्थात्) प्रस्थान करता है तब तू (प्रोथत्) शब्दों को करता हुआ, अपनी आज्ञाएं देता हुआ और गाजे बाजे के साथ आगे बढ़ता हुआ जाता है। (आत्) तब (अस्य शोचि अनु) उस तेरे ज्वाला या तेज के अनुकूल (वातः) वायु के समान प्रबल वेगवान्, शत्रु को तोड़ फोड़ डालने वाला वीर सैन्य (अनुवाति) तेरे पीछे पीछे जाता है। (अध) और तब (ते भ्रजनं) तेरा ऐसा प्रयाण करना (कृष्णम्) सब के चित्तों के आकर्षण करने वाला और शत्रुओं के राज्य समृद्धि को खैंच लाने वाला या शत्रुओं को उखाड़ देने वाला (अस्ति) होता है। शत० ८। ७। ३। ६–१२॥

आयो॑ष्ट्वा॒ सद॑ने सादया॒म्यव॑तश्छा॒याया॒ᳪ᳭ समु॒द्रस्य॒ हृद॑ये।
र॒श्मीव॑तीं॒ भास्व॑ती॒मा या द्यां भास्या पृ॑थि॒वीमोर्व॒न्तरि॑क्षम् ॥६३॥

भा०—हे राज्यशक्ते ! (रश्मिवतीम्) किरणो से युक्त, प्रभा के समान तेजस्विनी, (भास्वतीम्) सूर्य की दीप्ति के समान प्रकाशवाली (त्वा) तुझ को (आयो.) न्याय मार्ग पर चलने वाले दीर्घायु (अवतः) प्रजा

के रक्षक राजा के (सदने) आश्रय पर और (छायायाम्) उसके आश्रय में और (समुद्रस्य हृदये) समुद्र के समान गम्भीर अक्षय कोशवान् राजा के (हृदये) हृदय मे, उसके चित्त में (सादयामि) स्थापित करता हूं। तू (या) जो (द्याम्, पृथिवीम्, उरु अन्तरिक्षम्) आकाश, पृथिवी और विशाल अन्तरिक्ष तीनों को अपने तेज से (आभासि) प्रकाशित करती है ॥ शत० ८।७।२।१३ ॥

स्त्री पक्ष में—(आयोः) आयुष्मान्, पूर्णायु (अवतः) पालक (समुद्रस्य) गम्भीर, अक्षय वीर्यवान् पुरुष के (सदने) गृह में, उसकी (छायायाम्) छाया मे, उसके गहरे हृदय में स्थापित करता हूं। तू प्रभा के समान रश्मिवती और भास्वती, तेजस्विनी हो। तू अपने सद्गुणों से तीनों लोकों को प्रकाशित कर।

प॒र॒मे॒ष्ठी त्वा॑ सादयतु दि॒वस्पृ॒ष्ठे व्यच॑स्वतीं॒ प्रथ॑स्वतीं॒ दिवं॑ यच्छ दिवं॑ दृꣳह॒ दिवं॒ मा हिꣳसीः। विश्व॑स्मै प्रा॒णाया॑पा॒नाय॑ व्या॒ना॒यो॑दा॒नाय॑ प्रति॒ष्ठायै॑ च॒रित्रा॑य। सूर्य॑स्त्वा॒भिपा॑तु म॒ह्या स्व॒स्त्या छ॒र्दिषा॒ शन्त॑मेन॒ तया॑ दे॒वत॑याऽङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम् ॥ ६४ ॥

भा०—व्याख्या देखो (१४ । १२) (१४ । १४) (१५ । ५८) शत० ८ । ७ । १ । २२ ॥ शत० ८ । ७ । ३ । १८ । १६ ॥

स॒हस्र॑स्य प्र॒मासि॑ स॒हस्र॑स्य प्रति॒मासि॑।

स॒हस्र॑स्यो॒न्मासि॑ सा॒ह॒स्रोऽसि॑ स॒हस्रा॑य त्वा ॥ ६५ ॥

भा०—हे राजन् ! हे राष्ट्रशक्ते ! स्त्रि ! और हे पुरुष ! तू (सहस्रस्य प्रमा असि) हजारों पदार्थों से युक्त इस विश्व का यथार्थ ज्ञान करने वाला है। तू (सहस्रस्य प्रतिमा असि) सहस्रों ऐश्वर्यों का मापक अर्थात् सहस्रों के बल के तुल्य बलवान् है। (सहस्रस्य उन्मा

असि) हजारों से अधिक ऊंचे पद मान, प्रतिष्ठा और बल से युक्त है। इसी से तू (साहस्र असि) सहस्रों के ऊपर अधिष्ठाता होने योग्य है। (सहस्राय त्वा) तुझे मैं 'सहस्र' नाम उच्च पद के लिये नियुक्त करता हूं। शत० ८ । ७ । ४ । ११ ॥

॥ इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥

[तत्र पञ्चषष्टिर्ऋचः]

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चदशोऽध्यायः ॥

॥ अथ षोडशोऽध्यायः ॥

(१-६६) देवाः प्रजापतिश्च ऋषयः । (१-१६) रुद्रो देवता ।

॥ ओ३म् ॥ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः ।
बाहुभ्यामुत ते नमः ॥ १ ॥

आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने वाले राजन् ! (मन्यवे) तेरे मन्यु को अर्थात् मन्युस्वरूप तेरे अधीन रहने वाले तीक्ष्ण वीर पुरुषों को (नमः) नमस्कार या उनका भोग्य अन्न और वज्र, शस्त्र और वीर्योचित कर्म या वीर्य, शक्ति प्राप्त हो । (उतो) और (ते) तेरे (इषवे) इषु, शत्रुओं के मारने वाले वाण अर्थात् वाणधारी सैन्य को (नमः) अन्न प्राप्त हो । (ते बाहुभ्याम्) तेरी बाहुओं को बाहु रूप सेना के दस्तों को (नमः) शत्रु को नमाने वाला वीर्य प्राप्त हो ।

या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥ २ ॥

स्वराड् अनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—हे (रुद्र) शत्रुओं के रुलाने और सज्जनों को सुख देने हारे ! राजन् ! (या) जो (ते) तेरी (शिवा) कल्याणकारिणी (अघोरा) अघोर, उपद्रवरहित, शान्त, सौम्य रूप वाली (अपापकाशिनी) पाप से अतिरिक्त पुण्य का ही प्रकाश करने वाली (तनूः) विस्तृत कानूनादि की व्यवस्था या आज्ञा रूप वाणी है (तया) उस (तन्वा) (शन्तमया) अति अधिक कल्याण और शान्तिदायिनी वाणी, राज्यव्यवस्था से, हे

१—अथातः शतरुद्रियो होमः ॥ १-३ कुत्स ऋषिः । द० ।

(गिरिशन्त) आज्ञारूप, व्यवस्था या वाणी से ही सब को शान्ति देने वाले ! तू (अभि चाकशीहि) सब को देख, सब पर दृष्टि रख या तू राज्य का शासन कर ।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंꣳसीः पुरुषं जगत् ॥ ३ ॥

विराड् आसुर्यनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे (गिरिशन्त) आज्ञारूप या वाणी में सब को शान्ति-दायक या मेघ के समान सुखों को सब पर वर्षानेवाले स्वरूप में सब को शान्तिदायक ! (याम् इषुम्) जिस इषु अर्थात् बाण आदि शस्त्र गण को तू (अस्तवे) शत्रुओं पर फेंकने के लिये (हस्ते) अपने हनन-कारी हाथ में (बिभर्षि) धारण करता है । हे (गिरित्र) विद्वानों के रक्षक या अपनी आज्ञा, व्यवस्था में सब के रक्षक ! (ताम्) उसको (शिवाम्) शिवा, मंगलकारक (कुरु) बनाये रख । (पुरुषम्) पुरुषों, मनुष्यों और अन्य (जगत्) जंगम गौ आदि पशुओं को (मा हिंसीः) मत मार ।

शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।
यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳसुमना असत् ॥ ४ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे (गिरिश) समस्त वाणियों या आज्ञाओं में स्वयं आज्ञा-पक और व्यवस्थापक रूप से विद्यमान राजन् ! (त्वा) तुझको हम (शिवेन वचसा) कल्याणकारी, सुन्दर वचन से (अच्छा वदामसि) भली प्रकार निवेदन करते हैं । (यथा) जिससे (नः) हमारा (सर्वम् इत् जगत्) समस्त जगत् प्राणि वर्ग और राज्यव्यवहार (अयक्ष्मम्)

४—परमेष्ठी ऋषिः । द० ।

राजयक्ष्मा आदि रोगों से रहित (सुमनाः) और परस्पर शुभ चित्त वाला (असत्) हो ।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परा सुव ॥५॥

भुरिगार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ (दैव्यः) देवों-राजाओं का और विद्वानों और शासकों का हितकारी (भिषक्) शरीर-गत और राष्ट्र-गत रोगों और पीड़ाओं को दूर करने में समर्थ पुरुष (अधिवक्ता) सबसे ऊपर अधिष्ठाता रूप से आज्ञापक होकर (अधि अवोचत्) आज्ञा दे । हे ऐसे समर्थ विद्वान् राजन् ! तू (सर्वान् च अहीन्) समस्त प्रकार के सांपों को जिस प्रकार विषवैद्य और गारुड़िक वश करता है उसी प्रकार तू भी (अहीन् सर्वान्) सब प्रकार के सर्पों के समान कुटिलाचारी पुरुषों को (जम्भयन्) उपायों से विनाश करता हुआ और (सर्वाः च) सब प्रकार की (यातुधानीः) प्रजाओं को पीड़ा, रोग, कष्ट, बाधा देने वाली, (अधराची) नीचमार्ग में लगी हुई, दुराचारिणी, व्यभिचारिणी स्त्रियें हैं, उन सबको (परा सुव) राष्ट्र से दूर कर ।

असौ यस्ताम्रो ऽअरुण ऽउत बभ्रुः सुमङ्गलः । ये चैनꣳ रुद्रा ऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ऽईमहे ॥ ६ ॥

निचृदार्षी पंक्ति. । पञ्चम ॥

भा०—(असौ यः) यह जो (ताम्रः) ताम्बे के समान रक्त कठिन शरीर एवं तेजस्वी (अरुणः) अग्नि के समान तेजस्वी (बभ्रुः) सूर्य के समान पीले-लाल रंग का (सुमङ्गल.) शुभ मंगल चिन्हों से अलंकृत है । अथवा यह जो (ताम्र.) सूर्य के समान लाल सुर्ख, तेजस्वी

और शत्रुओं को क्लेशित कर देने में समर्थ और (अरुण.) सूर्योदय के समय के सूर्य के समान गुलाबी प्रभा वाला, अथवा शत्रु से कभी न रोके जाने वाला, अथवा सबका शरण्य (उत बभ्रु) पीले धूम्र वर्ण का, कापिल या पाटला रंग का अथवा अन्न के समान सब प्रजा और भृत्य वर्गों का भरण पोषण पालन, करने में समर्थ (सुमंगल) सुखपूर्व सर्वत्र विचरने में समर्थ है। और (ये च) जो भी (रुद्रा.) शत्रु को रुलाने, रोकने वाले, या गभीर गर्जना करने वाले वीर गण (एनम् अभित.) इसके इर्द गिर्द (दिक्षु) समस्त दिशाओं में (सहस्रश' श्रिता.) हजारों की संख्या में विराजमान हैं (एषाम्) इनके (हेड') रोष, क्रोध या अनादर भाव को हम (अव ईमहे) दूर करें। शमन करें।

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।
उतैनं गोपा ऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः॥७॥
विराड् आर्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(य.) जो (असौ) वह (नीलग्रीव.) गले में नीलमणि बांधे और (विलोहित.) विष रूप से लाल पोशाक पहने अथवा विविध गुणों और अधिकारों से उच्च पद को प्राप्त कर (अवसर्पति) निरन्तर आगे बढ़ा चला जाता है (एनं) उसको तो (गोपा) गौवों के पालक गोपाल और (उदहार्य) जल लाने वाली कहारियों तक भी (अदृश्रन्) देख लेती हैं और पहचानती हैं (स') वे (दृष्ट') आंखों से देखा जाकर (न. मृडयाति) हम प्रजाजनों को सुखी करें।

(६,७)—अध्यात्म में समाधि के अवसर के पूर्व ताम्र, अरुण, बभ्रु, नील, व रक्त आदि वर्णों का साक्षात् होता है। उस आत्मा के ही आधार पर (रुद्रा) रोदन शील सहस्रों प्राणि आश्रित है। हम उनका अनादर न करें। क्योंकि उनमें वही चेतनांश हैं जो हम में हैं। उसी आत्मा को

नीलमणि के समान स्वच्छ कान्तिमान् अथवा लालमणि के समान विशुद्ध लोहित रूप से (गोपा) जो इन्द्रिय-विजयी अभ्यासी जन और (उदहार्यः) ब्रह्मामृत रस का स्वादन करनेवाली चित्त भूमियें साक्षात् करती हैं वह हमें सुखी करें।

ईश्वर-पक्ष में—वह पापियों को पीड़ित करने से 'ताम्र', शरण देने से 'अरुण', पालन पोषण करने से 'बभ्रु', सुखमय रूप से व्यापक होने से 'सुमङ्गल' है। समस्त (रुद्राः) बड़ी शक्तियां, उसी पर आश्रित हैं। हम उनका अनादर न करें। वह प्रलयकाल में या भूतकाल मे जगत् को लीन करने वाला होने से 'नीलग्रीव' है, भविष्य में विविध पदार्थों का निरन्तर उत्पादक होने से 'विलोहित' है। उसको सयमी जन और ब्रह्मरसपायिनी ऋतंभरा आदि चित्त वृत्तियां साक्षात् करती हैं। वह ईश्वर हमें सुखी करें।

नीलग्रीवाः = नीलास्या.—यथा चूलिकोपनिषदि नीलास्याः ब्रह्म शायिने। अत्र दीपिका—लीनमास्यम् मुखं प्रवृत्ति द्वारं रागादि येषां तथोक्ता। तत्र नलयो वर्णविपर्ययश्छान्दसः—

यस्मिन् सर्वमिदं प्रोतं ब्रह्म स्थावरजंगमम्।
तस्मिन्नेव लयं यान्ति बुद्बुदाः सागरे यथा॥ १७॥ चू० आ०॥

नमो॑ऽस्तु नील॑ग्रीवाय सहस्रा॒क्षाय॑ मी॒ढुषे॑।
अथो॒ ये ऽअ॑स्य॒ सत्वा॑नो॒ऽहं तेभ्यो॑ ऽकरं॒ नमः॑॥ ८॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—पूर्वोक्त (नीलग्रीवाय) नीलमणि से सुभूषित ग्रीवा वाले, अग्रणी, (सहस्राक्षाय) सभासद् और प्रणिधि, चरो आदि द्वारा सहस्रों आंखों वाले (मीढुषे) प्रजा पर सुखो और शत्रु पर बाणों की वर्षा करने वाले सूर्य या मेघ के समान उदार, तेजस्वी राजा और सेनापति को

(नम अस्तु) शत्रुओं को नमाने का वज्र, बल, प्रजा पालन का सामर्थ्य, अन्न और आदर भाव प्राप्त हो। (अथो) और (ये) जो (अस्य) इसके अधीन (सत्वान') और भी सत्ववान्, सामर्थ्यवान्, बलवान् वीर पुरुष हैं (अहम्) मैं प्रजाजन (तेभ्य.) उनके लिये भी (नमः) अन्न आदि भोग्य पदार्थ, शस्त्रास्त्र बल और आदर (अकरम्) करूं, उनको दूं।

प्रमुंञ्च धन्वंनुस्त्वमुभयोरात्न्योंर्ज्याम्।
याश्चं ते हस्त॒ ऽइषंव॒ परा॒ ता भंगवो वप॥ ९॥

भुरिगाप्युष्णिक। ऋषभ॥

भा०—हे सेनापते! अग्रणीनेत! वीर राजन्! (धन्वन') धनुष की (उभयो आत्न्यों) दोनों कोटियों में (ज्याम्) ज्या, विजयशालिनी या शत्रुक्षयकारिणी, जयदायिनी डोरी को (प्रमुञ्च = प्रतिमुञ्च) जोड़ और (या च) और जो (इषव) बाण (ते हस्ते) तेरे हाथ में हैं (ता) उनको तू हे (भगव) ऐश्वर्यवन्! (परा वप) दूर तक शत्रुओं पर फेंक।

अथवा—(आत्न्यों ज्याम् प्रमुञ्च) हे भगवन्! तू अपनी धनुष कोटियों की डोरी उतार ले। (हस्ते इषव ता परावप) और जो हाथ में बाण है उनको दूर रख। हमें उनसे न मार (उव्वट')

अथवा—(या ते हस्ते इषव ता उभयो आत्न्यों. ज्याम् उपरि नियोज्य परा वप) हाथ के बाणों को कोटियों पर लगी डोरी पर लगा कर उनके ऊपर फेंक। द०॥

विज्यं॒ धनु॑: कप॒र्दिनो॒ विश॑ल्यो॒ बाण॑वाँ२ऽ उ॒त।
अने॑शन्नस्य॒ या ऽइष॑व॒ ऽआ॒भुर॑स्य निषङ्ग॒धिः॥ १०॥

भुरिगार्ष्यनुष्टुप्। गाधार.॥

भा०—(कपर्दिनः) सुन्दर जटावान्, शुभ केशकलाप वाले, केशवान् या शिर पर शुभ फुनगी या मौर को धारण करने वाले वीर पुरुष का क्या (धनुः विज्यम्) धनुष डोरी से रहित हो सकता है? नहीं। (उत बाणवान् विशल्यः) तो क्या बाणों से भरा तर्कस बाण रहित हो सकता है? नही। (अस्य या इषवः) इसके जो इषु, बाण हैं क्या वे (अनशन्) नष्ट हो सकते है? नहीं! तो क्या (अस्य निषङ्गधिः) वे इसकी तलवार का कोश (आभुः) खाली रह सकता है? कभी नहीं। प्रत्युत, सदा उसके धनुष पर डोरी, तर्कस में बाण, और हाथ में बाण और कोष में तलवार रहनी आवश्यक हैं।

या ते॑ हे॒तिर्मी॑ढुष्टम॒ हस्ते॑ ब॒भूव॑ ते॒ धनुः॑।
तया॒स्मान्वि॒श्वत॒स्त्वम॑य॒क्ष्मया॒ परि॑भुज ॥ ११ ॥

निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—हे (मीढुस्तम) अति अधिक वीर्यशालिन् नरर्षभ! या शत्रुओं पर मेघ के समान शरवर्षक! (या ते) जो तेरे (हस्ते) हाथ में (हेतिः) वज्र और (ते धनुः बभूव) और तेरी हाथ में धनुष है। (तया) उस (अयक्ष्मया) रोगादि रहित, विशुद्ध बाण से (त्वम्) तू (विश्वतः) सब प्रकार से (अस्मान्) हमे (परि भुज) सब तरफ से रक्षा कर।

सेना के शस्त्रों और अस्त्रों में रोगकारी, विष आदि का प्रयोग नहीं होना चाहिये।

परि॑ ते॒ धन्व॑नो हे॒तिर॒स्मान्वृ॑णक्तु वि॒श्वतः॑।
अथो॒ य इ॑षु॒धिस्तवा॒रे अ॒स्मन्नि धे॑हि॒ तम् ॥ १२ ॥

भा०—(ते धन्वनः हेतिः) हे रुद्र! तेरे धनुष का बाण (अस्मान्) हमें सदा (विश्वतः) सब ओर से (परिवृणक्तु) रक्षा करे, शत्रुओं से

१२, ११ इति मन्त्रक्रमविपर्ययः। काण्व०।

बचावे। (अथो) और (यः तव इषुधि) जो तेरा बाण आदि शस्त्रों को रखने का तर्कस या शस्त्रागार है उसको (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (निधेहि) रख। शस्त्रागार और तोप खाना नगर से पर्याप्त दूर हो जिससे फटने पर नगर की हानि न हो। शस्त्रों तोपों को नगर के चारों ओर रक्षार्थ लगावें।

अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य्य शल्यानाम्मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ १३ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धार ॥

भा०—हे (सहस्राक्ष) चर आदि प्रणिधि और सभा के विद्वान् सभासदों रूप हजारों आंखों वाले राजन्! हे (शतेषुधे) सैकड़ों बाणों के रखने के तुणीर और शस्त्रागारों वाले! तू (धनु अवतत्य) धनुष को तान कर और (शल्यानाम् मुखा) बाणों के फलों के मुखों को खूब तेज करके भी (नः) हमारे लिये (शिवः) कल्याणकारी और (सुमना. भव) हमारे प्रति शुभ चित्त वाला होकर रह।

नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥ १४ ॥

भुरिगार्ष्युष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—(ते) तेरे (अनातताय) अविस्तृत, संक्षिप्त परन्तु (धृष्णवे) शत्रु का धर्षण करने, मानभङ्ग करने वाले (आयुधाय) आयुध, हथियार शस्त्र का (नम) बल वीर्य प्रकट हो। अथवा (आयुधाय) सब ओर लड़ने वाले (अनातताय) न अति विस्तृत अपितु स्वल्प काय होकर भी (धृष्णवे) शत्रु का पराजय करने में समर्थ (ते) तुझको (नम) हम प्रजागण आदर दे एवं अन्न आदि पदार्थ दें, या तुझे वीर्य प्राप्त हो। तुझ में शत्रु को नामा देने का सामर्थ्य प्राप्त हो। (उत) और (ते) तेरे

(उभाभ्याम् बाहुभ्याम्) शत्रुओं को बाधा करने वाले दोनों बाहुओं के समान, स्थिर अस्थिर या दायें, बायें विद्यमान या पदाति और सवार दोनों प्रकार की सेनाओं को (नमः) बल और अन्न प्राप्त हो और (तव धन्वने नमः) तेरे धनुष अर्थात् धनुर्धर सेना बल को भी अन्न या वीर्य प्राप्त हो।

मा नो॑ म॒हान्त॑मु॒त मा नो॑ अर्भ॒कम्मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम्।
मा नो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॒ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्ररीरिषः १५

निचृदार्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे राजन्! सेनापते! तू (नः) हमारे (महान्तम्) बड़े, वृद्ध, आदरणीय, पूजनीय (उत) और (नः) हमारे (अर्भकम्) छोटे, बालक अथवा छोटे पद के पुरुष को भी (मा वधीः) मत मार। (नः उक्षन्तम्) हमारे वीर्यसेचन में समर्थ तरुण पुरुष को भी (मा) मत मार। (उत) और (नः) हमारे (उक्षितम्) गर्भाशय से निषिक्त, वीर्य अर्थात् गर्भस्थ डिम्ब को (मा वधीः) विनष्ट मत कर। (नः पितरम्) हमारे पालक, पिता को (मा वधीः) मत मार (उत मातरम् मा वधीः) और माता को भी मत मार। हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने हारे शत्रु के दुर्गों को रोधन करने हारे रुद्र! (नः) हमारे (प्रियाः तन्वः) प्रिय शरीरों को भी (मा रीरिषः) मत पीड़ित कर। या (तन्वः) हमारे कुल के विस्तारक पुत्र पौत्र आदि प्रजाओं को भी मत मार।

तन्वः शरीराणि (द०)। शरीराणि पुत्रपौत्रादिलक्षणानि इत्युव्वटः।

मा न॑स्तो॒के तन॑ये॒ मा न॒ आयु॑षि॒ मा नो॒ गोषु॒ मा नो॒ अश्वे॑षु रीरिषः।
मा नो॑ वी॒रान्रु॑द्र भा॒मिनो॑ वधीर्ह॒विष्म॑न्तः॒ सद॒मित् त्वा॑ हवामहे १६

निचृदार्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने हारे राजन्! (नः) हमारे (तोके)

नव शिशु पर और (तनये) पाच वर्ष से ऊपर के पुत्र पर (मा मा रीरिष) हिंसा का प्रयोग मत कर। और (न आयुषि) हमारे आयु पर (मा रीरिष.) आघात मत कर। (न·) हमारे (भामिनः वीरान्) क्रोधयुक्त वीर पुरुषों का (मा वधी·) घात मत कर। और हम लोग (सदम्) सदा (हविष्मन्तः) अन्न आदि भेंट योग्य पदार्थों के लिये हुए (त्वा इत् हवामहे) तेरा ही आदर करते हैं।

नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनां पतये नमो नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः॥१७

(१७-४६) त्र्यशीती रुद्रा देवता। निचृदतिधृति। षड्ज॥

भा०—१. (हिरण्यबाहवे सेनान्ये नम.) बाहु पर सुवर्ण पदक या विशेष आभूषण या नाम या सख्या चिन्ह को धारण करने वाले अथवा ज्योति या सूर्य के समान प्रखर वीर्यवान् बाहुओं या सेनारूप तेजस्वी बाहुओ वाले, सेना नायक को वज्र का बल प्राप्त हो। २. (दिशा च पतये नम.) दिशाओं के पालक को अन्न आदि प्राप्त हो। ३. (हरिकेशेभ्य) पीले या नीले पत्तों के समान पीले या नीले या मनोहरी केशो को धारण करने वाले (वृक्षेभ्य) वृक्षों के समान सब के आश्रय दाता पुरुषों को नम) नमस्कार है। अथवा (हरिकेशेभ्य) क्लेशो को हरण करने वाले (वृक्षेभ्य) शत्रुओं को अश्चन करने वाले रुद्ररूप वीर पुरुषों को (नम.) अन्न बल प्राप्त हों। अथवा हरे पत्तोंवाले वृक्षों को (नमः) परशु से काटो। ४. (पशूनां पतये नम.) पशुओं के पालक को (नमः) अन्न और बल पदाधिकार प्राप्त हो। ५. (शष्पिञ्जराय) सूखे घास के समान पीत, कान्तिमान् वर्ण वाले (त्विषीमते) दीप्ति से युक्त तेजस्वी पुरुष को अथवा-'शष्पि'=घास आदि को 'जर'=जलाने वाले, अग्नि वालों को, अथवा-(शष्पिञ्जराय नम.) छुरों, आंख,

नाक, रसना, कान, त्वचा और मन से ग्रहण योग्य विषय बन्धन को त्यागने हारे, (त्विषीमते) कान्तिमान् को (नमः) अन्न आदि बल और आदर प्राप्त हो । (पथीनाम्) मार्गों के और मार्गगामी यात्रियों के (पतये) पालक मार्गाध्यक्ष को भी (नम) राष्ट्र के अन्न में भाग एवं पदाधिकार, या बल प्राप्त हो । (हरिकेशाय) हरित अर्थात् नील केशवाले अति युवक (उपवीतिन) यज्ञोपवीत के धारण करने वाले बालब्रह्मचारी को (नमः) अन्न भाग और आदर, वीर्य सब प्राप्त हो । (पुष्टानां पतये) हृष्ट पुष्ट बालकों के पालक माता पिता को अधिकार एवं अन्नादि पदार्थ और आदर प्राप्त हो ।

अथवा—सेनानी, दिशाम्पति, वृक्षपति, पशुपति, शष्पिंजरपति, पथीपति, हरिकेशपति, उपवीतपति, ये राष्ट्र के भिन्न २ विभागों के अधिकारी हैं उनके हिरण्यबाहु, हरिकेश, त्विषीमान्, आदि ये मानवाचक पद हैं । उनको (नमः) राष्ट्र के अन्न के भाग प्राप्त हों ।

अथवा—१. सुवर्ण आदि धन के बलपर शासन करने वाला, पुरुष 'हिरण्यबाहु' । २. सेना का नायक 'सेनानी' । ३. दिशाओं का पालक दिक्पाल, 'दिशाम्पाल' । ४. वृक्षों के समान शरण प्रद बड़े धनाढ्य लोग, सब शरण योग्य 'वृक्ष' नामक अधिकारी । ५. क्लेशो के हरण करने वाले स्वयंसेवक, लोग 'हरिकेश' । ६. पशुओं के पालक 'पशुपति' । ७. शष्प अथवा घास का चरने का प्रबन्ध कर्त्ता 'शपिञ्जर' । नगर में प्रकाश का प्रबन्धकर्त्ता 'त्विषीमान्' । ८. मार्गों का स्वामी 'पथीनांपति' । ९. क्लेशों का हर्त्ता वैद्य 'हरिकेश' । १०. यज्ञोपवीत धारण करने कराने वाले गुरुशिष्य 'उपवीति' । ११ पुष्ट पशुओं का पालक 'पुष्टपति' ये सब भिन्न २ नाम के रुद्र 'जातसंज्ञ' अर्थात् नाम पदधारी रुद्र कहाते हैं उनके (नमः) राष्ट्र में भाग अधिकार प्राप्त हो ।

नमो॑ बभ्लु॒शाय॑ व्या॒धिने॑ऽन्ना॑नां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नमो॑ भ॒वस्य॑ हे॒त्यै

जग॑तां पत॑ये नमो नमो॑ रुद्रायाततायिने॒ क्षेत्रा॑णां पत॑ये नमो॒ नम॑ः सूतायाहन्त्यै वना॑नां पत॑ये नम॑ः ॥ १८ ॥

रुद्रा देवताः । निचृदष्टि । मध्यम ॥

भा०—(बभ्लुशाय) बभ्रुवर्ण, खाकी रंग की पोषाक पहनने वाले या राज्य के भरण पोषण करने वाले (व्याधिने) शिकारी पुरुष को (नम.) अन्न प्राप्त हो। (अन्नाना पतये नम.) अन्नों के पालक खेतों पर पड़ने वाले मृग, हाथी और साम्भर आदि वनैले पशुओं से खेतों के बचाने वाले को (नम) राष्ट्रान्न में से भाग, पद, अधिकार आदि प्राप्त हो। (भवस्य हेत्यै) 'भवस्य' उत्पन्न होने वाले प्राणियों के 'हेति' धारण पोषण करने वाले उनकी वृद्धि करने के लिये और (जगतां पतये नमः) जंगम प्राणियों के पालन कर्त्ता को (नम) बलवीर्य, अधिकार प्राप्त हो। (रुद्राय आततायिने नम) चारों तरफ विस्तृत शत्रु दलपर आक्रमण करने वाले अथवा धनुप चढ़ाकर चढ़ाई करने वाले को (नमः) बल, वीर्य, अधिकार प्राप्त हो। (क्षेत्राणा पतये नम) क्षेत्रों की रक्षा करने वाले को अधिकार मिले। (सूताय) घोड़ों को हाकने में समर्थ और (अहन्त्यै) युद्ध में किसी को स्वयं न मारने वाले को (नम) अन्न, वस्त्र या खड्ग प्राप्त हो। (वनानां पतये नम) वनो के पालक को शस्त्र प्राप्त हो।

'सूताय'—क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां जाताय वीराय प्रेरकाय इति दयानन्दः। तच्चिन्त्यम्।

नमो रोहि॑ताय स्थपत॑ये वृक्षाणां पत॑ये नमो॒ नमो॑ भुवन्तये॑ वारिवस्कृतायौष॑धीनां पत॑ये नमो॒ नमो॑ मन्त्रिणे॑ वाणिजाय॒ कक्षाणां पत॑ये नमो॒ नम॑ उच्चैर्घोषायाक्रन्दय॑ते पत्तीनां पत॑ये नम॑ः ॥ १६ ॥

१८—'नमो बभ्रुशाया व्या०' इति काण्व०।

विराडति धृतिः । षड्ज ॥

भा०—(रोहिताय नम.) लाल वर्ण की पोशाक पहनने वाले अधिकारी को (नम.) शस्त्र वल प्राप्त हो । (स्थपतये नमः) स्थानों के पालक के लिये अथवा गृहादि निर्माण करने वाले तक्षक आदि शिल्पी लोगों को (नमः) शस्त्र प्राप्त हों । (वृक्षाणां पतये नमः) वृक्षो के पालक को शस्त्र प्राप्त हो । (भुवन्तये नमः) भूमियो के विस्तार करने वाले अर्थात् जंगल पहाड़ी आदि की भूमि को ठीक करके खेत वनाने वाले अथवा आचारवान् पुरुप को (नमः) शस्त्र और अन्न प्राप्त हो । (वारिवस्कृताय नम.) सेवा करने वाले अथवा धन ऐश्वर्य पैदा करने वाले पुरुप को (नमः) वल और आदर प्राप्त हो । (मन्त्रिणे नम.) राजा के मन्त्री को वल, आदर, और पद प्राप्त हो । (वाणिजाय) वणिग् व्यापार कुशल पुरुष को (नम.) अन्न, आदर, अधिकार प्राप्त हो । (कक्षाणा पतये नम) वन के झाड़ी, लता, घास आदि के पालन करने वाले अधिकारी पुरुप को अथवा राज-गृह के प्रान्तों के रक्षक को (नम) शस्त्र प्राप्त हो । (उच्चैर्घोषाय) राष्ट्र मे राजा की आज्ञा को ऊंचे स्वर से आघोषित करने वाले अधिकारी को, (आक्रन्दयते) शत्रुओ को रुलाने वाले या पाछे के आक्रमण से वचाने वाले को (नमः) बल आदि प्राप्त हो । (पत्तीनां पतये नमः) पैदल सेना के पति को (नम.) शस्त्र बल प्राप्त हो ।

नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानाय निव्याधिन ऽआव्याधिनीनां पतये नमो नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः॥२०॥

अतिधृति । षड्जः ॥

भा०—(कृत्स्नायतया धावते) पूर्ण विजय लाभ के निमित्त शत्रु

२०—'नमः कृत्स्नायताय०' ०'ककुभाय निषङ्गिणे सेनाना०' इति काण्व० ।

पर आक्रमण करने वाले अथवा धनुप को पूर्ण रूप से तान कर शत्रु पर वेग से आक्रमण करने में समर्थ पुरुप को (नम) वल, शस्त्र और अन्न, आदर प्राप्त हो। (सत्वनां पतये) वीर्यवान् प्राणी या सैनिकों के पति को (नम.) आदर या शस्त्र-बल प्राप्त हो। (सहमानाय) शत्रु को पराजय करने वाले को और (निव्याधिने) नियत लक्ष्य पर ठीक २ निशाना लगाने वाले को और (आव्याधिनीना पतये नम.) सब तरफ से शस्त्रों का प्रहार करने वाली सेनाओं के पति को (नम) आदर, शस्त्र बल और अधिकार प्राप्त हो। (निपङ्गिणे) शस्त्रागार में अस्त्र शस्त्रो के पालक को (नम) अधिकार, सत्कार प्राप्त हो। (ककुभाय) वड़े भारी (स्तेनाना पतये) चोरों के पति सर्दार, चोरो को वश मे रखनेवाले पालक, कारागार के अध्यक्ष को भी (नम.) आदर पद प्राप्त हो। (नि चेरवे) गुप्तरूप से राजा के कार्य से सर्वत्र विचरने वाले को और (परिचराय) भृत्य, सेवक को (अरण्यानां पतये) जगलो के पति, पालक, वनाध्यक्ष को (नम) अधिकार प्राप्त हो।

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निपङ्गिण इषुधिमते तस्कराणां पतये नमो नमः सृकायिभ्यो जिघांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमो नमोऽसिमद्भ्यो नक्तं चरद्भ्यो विकृन्तानां पतये नमः ॥ २१ ॥

निचृदतिधृति । षड्जः ॥

भा०—(वञ्चते) ठगने वाले को, (परिवञ्चते) सर्वत्र कपट से रहने वाले को और (स्तायूना पतये नम.) चोरो के सर्दार को (नम.) वज्र प्रहार की पीड़ा प्राप्त हो। अथवा शत्रु सेना को छल कर उनका पदार्थ प्राप्त करने वाले, उनमें कपट से रहने वाले और उनके माल को चुराने और डाका डाल कर हर लेने वालो का सर्दार उनके वश करने वाले को (नम) आदर प्राप्त हो। (निपङ्गिणे इषुधिमते) खड्ग धारण करने में समर्थ और

वाणों का तर्कस उठाने वाले वीर पुरुष का (नमः) आदर हो । (तस्कराणां पतये) शत्रुओं पर नाना क्रूर कर्म और चौर्यादि का कार्य करने वालों के सर्दार को पदाधिकार प्राप्त हो । अथवा चोरों के सर्दार को वज्र से दण्ड दिया जाय । (सृकायिभ्यः जिघांसद्भ्यः) शत्रुओं का हनन करने की इच्छा वाले खाण्डा को धारण कर चलने वालों को (नमः) शस्त्र बल प्राप्त हो । (मुष्णतां पतये नमः) घरों से धन को और खेतों से अन्न आदि पदार्थों को हर लेने वाले पुरुषों के पति अर्थात् उनपर नियुक्त दण्डाधिकारी को (नमः) अधिकार बल प्राप्त हो । (असिमद्भ्यः नक्तं चरद्भ्यः) तलवार लेकर रात को विचरण करने वा पहरा देने वालों को (नमः) अन्न आदि पदार्थ और शस्त्राधिकार प्राप्त हो । (विकृतानां पतये नमः) प्रजा के नाक कान हाथ पैर काट कर आभूषण, धन आदि लूट लेने वाले दुष्ट पुरुषों के (पतये) पति अर्थात् उनपर नियुक्त अधिकारी पुरुष को (नमः) शस्त्राधिकार, बल और अन्न प्राप्त हो।

नम॑ऽउष्णीषिणे॑ गिरिच॒राय॑ कुलु॒ञ्चानां॒ पत॑ये॒ नमो॒ नम॑ऽइषु॒मद्भ्यो॑ धन्वा॒यिभ्य॑श्च वो॒ नमो॒ नम॑ आतन्वा॒नेभ्यः॑ प्रति॒दधा॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽआ॒यच्छ॑द्भ्योऽस्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २२ ॥

निचृदष्टि । मध्यमः ॥

भा०—(उष्णीषिणे) ऊंची पगड़ी पहनने वाले ग्रामपति या अध्यक्ष को (नमः) आदर प्राप्त हो । (गिरिचराय) पर्वतों पर विचरण करने वाले (कुलुञ्चानां पतये) कुत्सित उपायों से लूट लेने वालों के पति, पालक उनपर नियुक्त शासक को (नमः) आदर प्राप्त हो । (इषुमद्भ्यः) बाण वालों को (धन्वायिभ्यश्च नमः) धनुष लेकर विचरने वालों को (नमः) अन्नादि प्राप्त हो । (आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यः च नमः नमः) धनुष पर डोरी तानने वालों को और बाण लगा कर छोड़ने

वालों को भी आदर प्राप्त हो। (आयच्छद्भ्य अस्यद्भ्यः च वः नमः नमः) धनुषों को खैंचने वाले या शत्रुओं को निग्रह करने वाले, और बाण आदि शस्त्रास्त्रों को फेंकने वाले तुम वीरों को भी (नमः) आदर प्राप्त हो।

नमो॑ वि॒सृज॑द्भ्यो वि॒द्ध्य॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॑ स्व॒पद्भ्यो॒ जाग्र॑द्भ्यश्च वो॒ नमो॒ नमः॒ शया॑नेभ्य॒ऽआसी॑नेभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒स्तिष्ठ॑द्भ्यो॒ धाव॑द्भ्यश्च वो॒ नमः॑ ॥ २३ ॥

निचृदति जगती। निषादः ॥

भा०— (विसृजद्भ्य) शत्रुओं पर बाण छोड़ने वाले, (विद्ध्यद्भ्यः) शत्रुओं को बेधने वालों को (नम नम) नमस्कार हो। (स्वपद्भ्यः जाग्रद्भ्य च व नमः नम) युद्ध के ढेरों में सोने वाले या युद्ध में आहत होकर लेट जाने वाले, जाग कर पहरा देने वालों को भी तुमको (नम) आदर प्राप्त हो। (शयानेभ्य) सोने वाले, लेटने वाले, बैठे हुए, (तिष्ठद्भ्यः) खड़े हुए और (धावद्भ्यः च व) दौड़ने वाले को भी (नम. नम नमः नम.) आदर योग्य पद प्राप्त हो।

नमः॑ स॒भाभ्यः॑ स॒भाप॑तिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नमोऽश्वे॒भ्योऽश्व॑पतिभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॑ऽआव्या॒धिनी॑भ्यो वि॒विध्य॑न्तीभ्यश्च वो॒ नमो॒ नम॒ उग॑णाभ्यस्तृꣳह॒तीभ्य॑श्च वो॒ नमः॑ ॥ २४ ॥

शक्वरी। धैवत. ॥

भा०—समूह या संघ बना कर काम करने वालों की गणना करते हैं॥ (व.) आप में से (सभाभ्यः) सभाओं को, (सभापतिभ्यः) सभाओं के संञ्चालक पतियों को (अश्वेभ्य) घुड़सवारों को, (अश्वप-

२४—४६ एते जातरुद्राः।

तिभ्यः) घुड़सवारों के प्रमुख नेता पतियों को, (आव्याधिनीभ्यः) सब ओर व्यूह बनाकर शस्त्र फेकने में कुशल सेनाओं को, (विविध्यन्तीभ्यः) विविध उपायों से शत्रुओं को वेधने वाली 'विविध्यन्ती' नाम सेनाओं को, (उगणाभ्य) उच्चकोटि के सैनिकों की सेनाओं को । (स्तृंहतीभ्य' चावः) आप लोगों की नाशकारिणी तृंहती नाम सेनाओं को भी (नमः) राष्ट्र में उत्तम अन्न, पद, अधिकार और आदर और साधुवाद प्राप्त हो ।

नमो गुणेभ्यो गुणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥ २५ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(गणेभ्यः) गण या दस्ता या संघ बन कर सेना का कार्य करने वाले, (गणपतिभ्य.) उन गणों के सरदार, (व्रातेभ्य) समूह या कुल बना कर रहने वाले और (व्रातपतिभ्य. च) उन संघों के पालक विद्वान कुल पतियों को और (गृत्सेभ्य) नाना पदार्थों को चाहने वाले, या पदार्थों के गुण वर्णन करने वाले मेधावी विद्वान पुरुषों और (गृत्सपतिभ्यः) उन मेधावी पुरुषों के प्रमुख नेताओं को और (विरूपेभ्यः विश्वरूपेभ्यः च) अपने विविध प्रकार के रूप धारण करने वालों को और सब प्रकार स्वरूप बना लेने में सिद्धहस्त बहुरूपिया आदि कुशल करनाटकी पुरुषों आदि (व नम.) आप लोगों को उचित आदर और यथायोग्य अन्न, बल पदाधिकार प्राप्त हो ।

नमः सेनाभ्यः सेनानिभ्यश्च वो नमो नमो रथिभ्यो अरथेभ्यश्च वो नमो नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो ऽअर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥ २६ ॥

भुरिगति जगती । निषादः ॥

भा०—(सेनाभ्य सेनानिभ्य च) सेनाएं, सेनाओं के नायक, (रथिभ्य. अरथेभ्य. च) रथी और विना रथ के, (क्षत्तृभ्य) क्षत्ता, अर्थात् रथी योद्धा के अगरक्षक, सारथिया द्वारपाल और (सग्रहीतृभ्य. च) कर आदि संग्रह करने वाले अथवा घोड़ों का रास पकड़ने वाले (महद्भ्य) बड़े और (अर्भकेभ्य) छोटे (व. नम.) आप सबको यथा योग्य पद, आदर, अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्त हो ।

क्षत्तृभ्य.'—शूद्रात् क्षत्रियाया जातेभ्यः इति भाष्ये श्रीदया० । तच्चिन्त्यम् ॥ क्षत्ता सारथिर्द्वारपालो वैश्यायां शूद्राज्जातोवेति उणादिव्याख्यायां दया० । तच्चोभय विभिद्यते । 'क्षियन्ति निवसन्ति रथेष्विति क्षत्तार. । यद्वा क्षियन्ति प्रेरयन्ति सारथीनिति क्षत्तारो रथाधिष्ठातार ' इति महीधर । रथानामधिष्ठातारः क्षत्तार. इति उव्वटः ।

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः कुलालेभ्य कर्मारेभ्यश्च वो नमो नमो निषादेभ्य पुञ्जिष्टेभ्यश्च वो नमो नम. श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नम. ॥ २७ ॥

निचृत् शक्वरी । धैवत ॥

भा०—(तक्षभ्य.) तक्षा, बढई (रथकारेभ्य) रथों के बनाने वाले शिल्पी, (कुलालेभ्य) कुम्हार, मट्टी के वर्त्तन बनाने वाले, (कर्मारेभ्य) लोहार, लोहे के अस्त्र शस्त्र बनाने वाले (निषादेभ्य) वनों, पर्वतों मे रहने वाले नीच जीवन स्थिति में रहने वाले (पुञ्जिष्टेभ्य) पुल्कस, डोम आदि सुर्दार क कामों में लगे हुए या नाना रंगों या भाषाओं में प्रवीण, (श्वनिभ्य) कुत्तों के पालक और सधाने वाले (मृगयुभ्य.) मृगों के शिकारी, इन सब (व नम.) तुम लोगों को यथोचित वेतनादि द्रव्य प्राप्त हो ।

नम श्वभ्य. श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥२८॥

आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—(श्वभ्यः) कुत्ते अथवा कुत्तों के समान चोरों का पता लगाने वाले, (श्वपतिभ्यः) कुत्तों के पालक इन (वः नमः) तुम सबको पालन योग्य वेतन, अन्नादि प्राप्त हो । (भवाय) गुणों के श्रेष्ठ, या पुत्रोत्पादन में समर्थ, (रुद्राय) शत्रुओं को रुलाने वाला, (पशुपतये) पशुओं के पालक (नीलग्रीवाय) गले में नील चिन्ह के धारक (शितिकण्ठाय) श्वेत वर्ण या चिन्ह को कण्ठ में धारण करने वाला, इन सब को (नमः) उचित चिन्ह आदर, भोज्य अन्नादि प्राप्त हो ।

नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषुमते च

भुरिगति जगती । निषादः ॥

भा०—(कपर्दिने) कपर्द अर्थात् जटावाला, जटिल ब्रह्मचारी, अथवा जटा से सुशोभित वीर पुरुष, (व्युप्तकेशाय) विशेष रूप से केश कटा कर रखने वाले, संन्यासी या गृहस्थ, (सहस्राक्षाय) सर्वत्र हजारों शास्त्रीय विषयों में चक्षु वाले विद्वान्, (शतधन्वने) सैकड़ों धनुष के प्रयोगों को जानने वाले, (गिरिशाय) वाणी में रमण करने वाले कवि, (शिपिविष्टाय) पशुओं में लगे हुए अथवा धनादि ऐश्वर्यों में निमग्न, धनाढ्य वैश्य, (मीढुस्तमाय) वीर्यसेचन में समर्थ, 'तरुण' अथवा वृक्षों उद्यान आदि सेचन समर्थनादि और (इषुमते च) उत्तम बाणों वाले वीर, इन सबको (च) और अन्यान्य इनके भृत्य आदि को भी (नमः) योग्य पद, वेतनादि सत्कार प्राप्त हो ।

नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च नमोऽग्र्याय च प्रथमाय च ॥ ३० ॥

विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ह्रस्वाय च) आयु में छोटे, (वामनाय च) शरीर के कद में

छोटे अथवा रूप आदि गुणों में सुन्दर (बृहते च) शरीर में बड़े, और (वर्षीयसे) आयु में बड़े, (वृद्धाय च) पद में बड़े, (सवृधे च) समान वयस् के मित्रों में बड़े, (अग्र्याय च) या अधिकार में बड़े और (प्रथमाय च) योग्यता में बड़े, इन सब के लिये (नमः नमः) उचित आदर और पद प्राप्त हो।

नम ऽआशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऽऊर्म्याय चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥ ३१ ॥

पक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(आशवे च) शीघ्र गति करने वाले अश्व के समान तीव्र गामी, (अजिराय च) निरन्तर बहुत देर तक अनथक चलने वाला, (शीघ्र्याय च) शीघ्र कार्य करने में चतुर; (शीभ्याय च) चुस्ती से करने योग्य कार्यों में कुशल, (ऊर्म्याय च) तरङ्ग या उमङ्ग मे आकर काम करने वाला, (अवस्वन्याय च) शब्द न करते हुए चुप चाप रीति से काम करने वाला, (नादेयाय) नाद, ऊंचे शब्द गर्जना के साथ कार्य करने वाला और (द्वीप्याय च) जलादि से चारों ओर घिरे द्वीप के समान शत्रु द्वारा घिर जाने पर भी उन अवसरों और ऐसे स्थानों पर कार्य करने में कुशल इन सब प्रकार के पुरुषों को (नमः ४) उचित कार्य आदर और वेतन प्राप्त हों।

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ ३२ ॥

स्वराड् आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ज्येष्ठाय च) अपने से पूर्व उत्पन्न, आयु और बल में बड़े, (कनिष्ठाय च) आयु और मान में छोटे, (पूर्वजाय च) पूर्व उत्पन्न, (अपरजाय च) पीछे उत्पन्न, (मध्यमाय च) बड़ों छोटों के बीच के भाई, (अपगल्भाय च) धृष्टतारहित अथवा एक का अन्तर छोड़ कर पैदा हुए तीसरे भाई (जघन्याय च) नीच या छोटे कर्म में लगे, या नीचे के पद पर स्थित

और (बुध्न्याय च) सब से नीचे के आश्रय रूप पुरुष इन सब को (नमः) यथायोग्य आदर सत्कार ऐश्वर्य, मान, पद प्राप्त हो।

नमः सोभ्याय च प्रतिसर्य्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः श्लोक्याय चावसान्याय च नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥३३॥

आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सोभ्याय) उभय पाप और पुण्य अथवा उभय, इह लोक और परलोक अथवा उभय, अपना राष्ट्र और पर राष्ट्र दोनों में रहनेवाला उभय वेतन प्रणिधि, 'सोभ्य' अथवा ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों में वर्त्तमान पुरुष, सोभ्य, (प्रतिसर्याय च) प्रति सरण, शत्रु पर चढाई करने और उसके पीछा करने में समर्थ, (याम्याय च) शत्रुओं को बांधने और राष्ट्र के नियमन करने में कुशल, (क्षेम्याय च) प्रजाओं का क्षेम करने में कुशल, (श्लोक्याय च) वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति करने अथवा उनके व्याख्यान करने में कुशल, (अवसन्याय च) अवसान, कार्यों की समाप्ति करने या वेद के अन्तिम भाग उपनिषदों के उपदेश करने में कुशल, (उर्वर्याय च) 'उरु-अर्य' अर्थात् बड़े २ ऐश्वर्यों के स्वामी अथवा 'उर्वर्य' उर्वरा भूमियों को क्षेत्र उद्यान बनाने में कुशल और (खल्याय च) 'खल' कटे धान्यों को एकत्र करने के स्थान, खलिहान में धान्य अन्न आदि को स्वच्छ करने में कुशल, या उन २ स्थानों के वृद्धि करने में कुशल अधिकारी लोगों को भी (नमः ४) योग्य मान, पद एवं वेतन आदि प्राप्त हो।

नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च नम ऽआशुषेणाय चाशुरथाय च नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ३४ ॥

स्वराट् आर्षी त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—(वन्याय च) वनों के रक्षण में कुशल वनाध्यक्ष, 'वन्य' (कक्ष्याय च) पर्वतों और नदियों के तटों के अध्यक्ष 'कक्ष्य' (श्रवाय च)

शब्द करने वाले, बाजा आदि बजाने वाले और (प्रतिश्रवाय च) प्रति शब्द करने वाले, (आशुषेणाय च) शीघ्रगामिनी सेना के स्वामी, (आशुरथाय) शीघ्रगामी रथसेना वाले (शूराय च) शूरवीर, (अवभेदिने च) शत्रु के व्यूह और गढ़ों को तोड़ने वाले इन समर्थ राष्ट्र और युद्धोपयोगी पुरुषों को (नम) उचित अन्न, मान, पद, अधिकार आदि दिया जाय ।

नमो॑ बि॒ल्मिने॑ च कव॒चिने॑ च॒ नमो॑ व॒र्मिणे॑ च वरू॒थिने॑ च॒ नमः॑ श्रु॒ताय॑ च श्रुतसे॒नाय॑ च नमो॑ दुन्दु॒भ्या॒य चाहन॒न्या॒य च ॥ ३५॥

स्वराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(बिल्मिने) उत्तम बिल्म, शिरस्त्राण को धारण करने वाले या उजले वस्त्र धारण करने वाले या शत्रु के गढ़ तोड़ने के हथियार धरने वाले, (कवचिने च) कवचधारी, (वर्मिणे) लोह के कवच धारने वाले (वरूथिने) गृह, प्रासाद आदि के स्वामी अथवा हाथी पर रखने के हौदावाले या छत वाले रथ पर सवार (श्रुताय) शौर्य आदि से प्रसिद्ध, (श्रुतसेनाय) विजय कार्य और शूरता में विख्यात सेना वाले, (दुन्दुभ्याय च) दुन्दुभि के उठाने वाले और (आहनन्याय च) सेना में जोश डालने के लिये नगाड़ों पर दण्डादि से आघात करके बजाने वाले इन सबको भी (नमः ४) उचित अन्न, पद, कार्य, वेतन आदि प्राप्त हो।

नमो॑ धृ॒ष्णवे॑ च प्रमृ॒शाय॑ च॒ नमो॑ निष॒ङ्गिणे॑ चेषुधि॒मते॑ च॒ नम॑स्तीक्ष्णेष॑वे चायु॒धिने॑ च॒ नमः॑ स्वायु॒धाय॑ च सु॒धन्व॑ने च ॥ ३६ ॥

स्वराडार्षी त्रिष्टुप । धैवत ॥

भा०—(धृष्णवे च) शत्रु का धर्षण करने में समर्थ, प्रगल्भ, दृढ़, निर्भय पुरुष, (प्रमृशाय च) उत्तम विचारशील, शास्त्रज्ञ, (निषङ्गिणे च) खड्ग आदि नाना शस्त्रधारी, (इषुधिमते च) उत्तम शस्त्रास्त्र बाण आदि के तर्कस वाले (तीक्ष्णेषवे च) तीक्ष्ण बाण वाले, (आयुधिने

च) हथियारबन्द (स्वायुधाय च) उत्तम हथियारों से सजे, (सुधन्वने च) उत्तम धनुषधारी, इनको भी (नमः ४) योग्य वेतन, पद और आदर प्राप्त हो।

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ३७ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(स्रुत्याय च) स्रुति, छोटे २ मार्गों या नालों के अध्यक्ष, (पथ्याय च) बड़े मार्ग, पथों के अध्यक्ष, (काट्याय च) काट, अर्थात् बुरे मार्ग या विषम मार्ग, या कूप या नहर या पुलों के अध्यक्ष, (नीप्याय च) बहुत गहरे जल के स्थानों के अध्यक्ष, (कुल्याय च) नहरों के प्रबन्ध में, या बनाने में लगा पुरुष, (सरस्याय) तालावों के बनाने या प्रबन्ध में लगा पुरुष, (नादेयाय) नद नालों पर का अध्यक्ष (वैशन्ताय च) वेशन्त ताल, तलैयाओं का अध्यक्ष इनको भी यथोचित वेतन और अधिकार प्राप्त हो।

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वीध्र्याय चातप्याय च नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च नमो वर्ष्याय चावर्ष्याय च ॥ ३८ ॥

भुरिगार्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(कूप्याय च) कूपों पर नियत पुरुष, (अवट्याय च) अवट अर्थात् गढ़ों पर नियत पुरुष, (वीध्र्याय च) विविध प्रकाशों के विज्ञान में कुशल, (आतप्याय च) सूर्य के ताप का उत्तम उपयोग या विज्ञान वाले, अथवा आपत, धूप में कार्य करने वाले, (मेघ्याय च) मेघों का विज्ञान जानने वाले, (विद्युत्याय च) विद्युत् के विज्ञान में कुशल, (वर्ष्याय च) वृष्टि के विज्ञान में कुशल और (अवर्ष्याय च) अवर्ष अर्थात् वर्षाओं के न होने

३८—'नम ईध्र्याय' इति काण्व०।

पर जल का उचित प्रबन्ध करने में, अतिवृष्टि को दूर करने में समर्थ इन समस्त पुरुषों के राष्ट्र में उचित आदर, पद, अन्न, वेतन आदि प्राप्त हो।

नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च ॥ ३९ ॥

स्वराडार्षी पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(वात्याय च) वायु विद्या के ज्ञाता, (रेष्म्याय च) हिंसाकारी प्रबल आन्धड़ के समय उचित उपाय जानने वाले, (वास्तव्याय च) वास्तु विद्या गृह निर्माण के ज्ञाता, (वास्तुपाय च) गृहों, महलों, राजप्रासादों की रक्षा के विज्ञान को जानने वाले, (सोमाय च) सोम आदि ओषधियों के विद्वान् या ऐश्वर्यवान्, (रुद्राय च) रुत्=दुःखों के नाशक वैद्य या शल्य चिकित्सक या दुष्टों के रुलाने वाले और (ताम्राय च) शत्रुओं को पराजित करने वाले इन सब पुरुषों को (नमः ४) योग्य पदाधिकार, मान और वेतन आदि प्राप्त हो।

नमः शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च नमोऽग्रेवधाय च दूरेवधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ॥ ४० ॥

अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—गौओं के लिये कल्याणकारी अथवा कल्याण और सुख को प्राप्त करने वाला, (पशुपतये च) पशुओं का पालक, (उग्राय च) उग्र, तेजस्वी, (भीमाय) भयानक, शत्रुओं में भय उत्पन्न करने में समर्थ, (अग्रेवधाय च) आगे आये शत्रुओं को मारने वाला, (दूरेवधाय च) दूरस्थ शत्रुओं को मारने वाला, (हन्त्रे) मारने वाला, (हनीयसे च) बहुत अधिक मारने वाला, (वृक्षेभ्यः) शत्रुओं को काट डालने वाले शूरवीर या वृक्ष के समान आश्रय-प्रद और वृक्ष (हरि-

केशेभ्य.) नीले बालो वाले अथवा क्लेशो को दूर करने वाले इन समस्त पुरुषों को (नम) उचित आदर, पदाधिकार और वेतन अन्न आदि प्राप्त हो । (ताराय) दुःख से या जल, समुद्रादि से तराने वाले को (नमः ४) अन्नादि प्राप्त हो ।

नमं. शम्भवायं च मयोभवाय च नमं. शङ्करायं च मयस्करायं च नमं. शिवायं च शिवतराय च ॥ ४१ ॥

स्वराडार्षी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(शम्भवाय च) प्रजाओं को शान्ति प्राप्त कराने वाले, (मयोभवाय च) सुख के साधन उपस्थित करने वाले, (शङ्कराय च) कल्याण करने वाले, (मय -कराय) सुखप्रद, (शिवाय) स्वत. कल्याणमय (शिवतराय च) और भी अधिक शिव, मङ्गलकारी पुरुषो को (नम. ४) आदर प्राप्त हो ।

नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४२ ॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—(पार्याय च) पार, परले तट के अध्यक्ष, (अवार्याय च) उरले तट के अध्यक्ष, (प्रतरणाय) परले तट से इस तट को पहुंचाने वाली नौका के अध्यक्ष, (उत्तरणाय) इस तट मे उस परले तट तक पहुचने वाली नौका के अध्यक्ष, (तीर्थ्याय) तीर्थ, घाट आदि के अधिष्ठाता (कूल्याय च) तट पर का अध्यक्ष, (शष्प्याय च) घास तृण गुल्मादि के अध्यक्ष या शुल्कग्राही और (फेन्याय च) फेन, दूध आदि के पदार्थों पर नियत शुल्कग्राही अथवा जहां नदी, धारापात से झगयाती गिरे ऐसे प्रपातो के अध्यक्ष इन सब को (नमः) उचित वेतन आदि प्राप्त हो।

४१—'नमः शम्भवे च मयोभवे च' इति काण्व० ॥

नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च नमः किꣳशिलाय च क्षयणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च नम इरिण्याय च प्रपथ्याय च ४३

जगती । निषाद. ॥

भा०—(सिकत्याय च) बालू के विज्ञान जाननेवाले (प्रवाह्याय च) 'प्रवाह', जलधारा के प्रयोगज्ञ अथवा भारी पदार्थ को अच्छी प्रकार दूर ले जाने के साधनों के जानकार, (किंशिलाय च) छोटी बजरी के प्रयोगज्ञ या क्षुद्र २ पेशों के अध्यक्ष, (क्षयणाय च) जलों से भरे गढ़ों के अध्यक्ष अथवा गृह बना कर रहने वाले, (कपर्दिने च) कपर्द-अर्थात् कौड़ी, सीप, शख आदि के व्यापार के अध्यक्ष या जटाजूट वाले जन (पुलस्तये च) बड़े २ भारी पदार्थों को उठाने वाले यन्त्रों का निर्माता, (इरिण्याय च) ऊपर भूमियों का अधिकारी और (प्रपथ्याय च) उत्तम २ मार्गों का अधिकारी इन सब को (नम ४) उचित मान, पद, वेतन आदि प्राप्त हो ।

नमो व्रज्याय गोष्ठ्याय च नमस्तल्प्याय च गेह्याय च नमो हृदय्याय च निवेष्प्याय च नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च ॥४४॥

आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(व्रज्याय) व्रज अर्थात् गौओं के रेवड़ों के अध्यक्ष, (गोष्ठ्याय) सरकारी गोशालाओं के अध्यक्ष, (तल्प्याय) बिस्तरयोग्य पदार्थों पर नियुक्त सेवक, (गेह्याय) गृह, मकान पर भृत्य अधिकारी, (हृदय्याय च) हृदय को सदा प्रसन्न करनेवाले खिलौने और खेल करने वाले, हृदय के प्रेमी (निवेष्प्याय च) उत्तम वेष पहनाने और बनाने वाला अथवा (निवेष्याय च) आवर्त या निहार या कोहरा को दूर करने वाला, (काट्याय च) कट, चटाई आदि बनाने मे प्रवीण या उचित रूप से बिछाने वाला, (गह्वरेष्ठाय च) पर्वतों के

४३—'पुलस्तिने च' इति काण्व० ।

गह्वरों, गहरे जल और विषम स्थानों का उत्तम परिचित इन सबको (नमः) उचित आदर और अन्नादि वृत्ति प्राप्त हो।

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः पाꣳसव्याय च रजस्याय च नमो लोप्याय चोलप्याय च नम ऊर्व्याय च सूर्व्याय च ॥४५॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—(शुष्क्याय च) शुष्क पदार्थों से व्यवहार करने वाले, (हरित्याय च) शाक आदि हरे पदार्थों के अधिकारी, (पांसव्याय च) पांसु, मिट्टी ढोने वालों पर का अधिकारी (रजस्याय) रजस् अर्थात् सूक्ष्म धूल का व्यापार करने वाले, (लोप्याय च) पदार्थों का लोप या विनाश करने वाले, (उलप्याय च) उलप, तृण राशि के ऊपर के अधिकारी, (ऊर्व्याय च) 'ऊर्वी' भूमि या विस्तृत खेतों पर के शासक अथवा (सूर्व्याय च) उत्तम भूमियो के स्वामी, अथवा उत्कृष्ट हिंसा कार्य में कुशल, इन सब को भी उत्तम वेतन आदि दे।

नमः पर्णाय च पर्णशदाय च नम ऽउद्गुरमाणाय चाभिघ्नते च नम ऽआखिदते च प्रखिदते च नम ऽइषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्च वो नमो नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम ऽआनिर्हतेभ्यः ॥ ४६ ॥

स्वराड् प्रकृतिः । धैवत ॥

भा०—(पर्णाय) वृक्षों के नीचे गिरे पत्तों के ठेकेदार, (पर्णशदाय च) पत्तों के काटने वाले, (उद्गुरमाणाय च) भार उठा कर लाने वाले, श्रमी, (अभिघ्नते) कुठार चला कर वृक्ष काटने वाले, (आखिदते च) दीनों पर नियुक्त पुरुष, (प्रखिदते) बहुत ही पतित दीनों पर नियुक्त पुरुष अथवा (आखिदते) पशुओं को हांकने वाले और (प्रखिदते) बहुत दीन, (इषुकृद्भ्यः धनुष्कृद्भ्यः च) बाण और धनुष बनाने वाले इन

सब छोटे मोटे पेशों वाले सबको यथोचित रूप से वृत्ति और अन्न प्राप्त हो। (किरिकेभ्यः) नाना प्रकार के काम करने वाले या नाना पदार्थों को कारीगरी से पैदा करने वाले और (देवानां हृदयेभ्यः) देव, दिव्य-शक्तियों के हृदय अर्थात् मुख्य केन्द्रों के संस्थापक, अग्नि वायु और आदित्य इन की विद्या में कुशल, (विचिन्वत्केभ्यः) नये २ पदार्थों तत्त्वों और पुराने उपयोगी पदार्थों, शत्रुओं और चोरों की खोज लगाने वाले अविष्कारक लोग, (विक्षिणत्केभ्यः) और विविध उपायों से शत्रुओं का विनाश करने में कुशल और (आनिर्हतेभ्यः) गुप्त रूप से सब तरफ शत्रु देश में व्याप जाने वाले इन सब को भी (नमः) उचित वृत्ति प्राप्त हो। शत० ९।१।१।२३॥

इन सब नाना रुद्रों की विवेचना भूमिका भाग में विशेष रूप से की जायगी पाठक वहां ही देखें।

द्रापे ऽअन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित।
आसां प्रजानामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मो च नः किं चनाममत् ४७

एको रुद्रो देवता। भुरिगार्षी बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (द्रापे) शत्रुओं को कुत्सित गति अर्थात् दुर्दशा में पहुंचा देने हारे! हे (अन्धसः पते) अन्न आदि भोग्य पदार्थ, एवं जीवनप्रद पदार्थों के पालक! स्वामिन्! हे (दरिद्र) शत्रुओं को दुर्गति में डालने वाले! अथवा दुर्गत! दुष्प्राप्य! एकाकी अधिकारिन्! हे (नीललोहित) कण्ठ देश में नीले और शेष देह पर लाल वर्ण के वस्त्र पहनने हारे राजन्! वीर! तू (आसाम्) इन प्रजाओं में से और (एषाम् पशूनाम्) इन पशुओं में से किसी को (मा भेः) भयभीत मत कर (मा रोङ्) रोग से पीड़ित मत कर, (मो च) और न (किंचन) किसी प्रकार से (आममत्) पीड़ा, कष्ट दे। शत० ९। १। १। २४॥

४७—'मा भेर्मा रोङ्मो' इति काण्व०।

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः ।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे ऽअस्मिन्ननातुरम् ४८

ऋ० १ । ११४ । १ ॥

भा०—(तवसे) बड़े भारी, बलवान्, (कपर्दिने) शिर पर जटाजूट को धारण करने वाले अथवा जटा के स्थान में केशों पर मुकुट धारण करने वाले (क्षयद्-वीराय) अपने आश्रय पर वीरों को बसाने वाले, (रुद्राय) प्रजा के दु.खों के नाशक एवं शत्रुओं को रुलाने वाले, (महे) बड़े भारी राजा के लिये हम (इमा. मतीः) उन उत्तम स्तुतियों को या यथार्थ गुण-वर्णनो को अथवा (मतीः) मनन द्वारा प्राप्त नाना साधनों का (प्रभरा महे) अच्छी प्रकार प्रयोग करें । अथवा, (इमा. मती प्र भरामहे) इन मतिमान् विद्वानो को अच्छी प्रकार पालें पोषण करें (यथा) जिससे (द्विपदे) दो पाये मनुष्यों और (चतुष्पदे) चौपायों को (शम्) शान्ति (असत्) प्राप्त हो । और (विश्वम्) समस्त प्रजा और पशु आदि प्राण-गण (अस्मिन् ग्रामे) इस ग्राम में (अनातुरम्) नीरोग, व्याकुलता रहित अभय रहकर (पुष्टम् असत्) हृष्ट होकर रहे ।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ॥ ४६ ॥

आर्ष्यनुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—हे (रुद्र) रुत् अर्थात् प्राणियों की चीख पुकारवाली पीड़ा को दूर करने हारे ! (या) जो (ते) तेरी (शिवा) मङ्गलमय (तनू.) विस्तृत राजशक्ति है वह (विश्वाहा) सब दिनों (शिवा) मङ्गलमय, सुखकारिणी और (भेषजी) ओषधि के समान कष्ट-पीड़ाओं को दूर करने वाली हो । वह (शिवा) शिव, कल्याणकारिणी (रुतस्य) देह की व्याधि

४६—'शिवमृतस्य', 'मृळ' इति काण्व० ।

को (भेषजी) दूर करने वाली हो । (तया) उससे ही तू (नः) हमें (जीवसे) दीर्घ जीवन तक (मृड्) सुखी कर ।

परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृड ॥५०॥

ऋ० २ । ३३ । १४ ॥

आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (मीढ्वः) समस्त प्रजापर सुखों की वर्षा करने हारे पर्जन्य के समान राजन् ! (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलाने वाले वीर पुरुषों के (हेति) शस्त्र (न.) हमें (परिवृणक्तु) दूर से ही छोड़ दें, हम पर वे प्रहार न करें । और (अघायो) हम पर पाप और अत्याचार करने की इच्छा वाले (त्वेपस्य) क्रोध से जले हुए पुरुष की (दुर्मति) दुष्ट बुद्धि भी (न. परिवृणक्तु) हमसे दूर रहे । (मघवद्भ्य.) धन-सम्पन्न प्रजाओं की रक्षा के लिये (स्थिरा) स्थिर शस्त्रों को (अव तनुष्व) स्थापित कर । और हमारे (तोकाय तनयाय) पुत्र और पौत्रों के लिये या छोटे और बड़े बालकों को (मृड) सुखी कर ।

मीढुंष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव ।
पुरमे वृक्ष ऽआयुधं निधाय कृत्तिं वसान ऽआ चर पिनाकं बिभ्रदा गहि

निचृदार्षी यवमध्या त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (मीढुस्तम) अतिशय वीर्यसम्पन्न एवं प्रजा पर अति अधिक सुखों के और शत्रुओं पर अति अधिक शरों के वर्षा करने मे समर्थ ! हे (शिवतम) अतिशय कल्याणकारिन् ! तू (न.) हमारे प्रति (शिव.) कल्याणकारी और (सुमना) शुभ चित्त वाला (भव) हो । तू (परमे वृक्षे) अति अधिक काटने योग्य शत्रु सेना पर अपने

५०—परिणो हेती रुद्रस्य वृज्यात् परित्वेषस्य दुर्मतिर्महीगात्, 'मृळ' इति काण्व०

५१—'मीळ्हुस्तम' इति काण्व० ।

(आयुधं निधाय) शस्त्र को रख कर और (कृत्तिम्) चर्म को (वसानः) धारण करके (पिनाकं बिभ्रद्) प्रजा के-पालन और त्राण साधन शस्त्र अस्त्र, धनुष आदि (बिभ्रद्) धारण करता हुआ (आचर) चारों ओर विचर और (आ गहि) हमें प्राप्त हो।

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते ऽअस्तु भगवः।
यास्ते सहस्रꣳ हेतयोऽन्यमस्मन्नि वपन्तु ताः ॥ ५२ ॥

आर्ष्यनुष्टुप । गान्धारः ॥

भा०—हे (विकिरिद्र) शरों की बौछारों से शत्रुओं को भगा देने हारे ! अथवा विविध प्रकार के घात, हत्या, चोरी, बटमारी आदि उपद्रवों के दूर करने हारे ! हे (विलोहित) विशेष रूप से रक्त वर्ण की पोषाक पहनने हारे अथवा पाप के भावो से रहित, विविध पदार्थों का स्वामिन् ! हे (भगवः) ऐश्वर्यवन् ! (ते नम अस्तु) तेरे लिये हमारा आदर भाव प्रकट हो। और (याः) जो (ते) तेरे (सहस्रम्) हजारों (हेतयः) शस्त्र अस्त्र हैं (ताः) वे (अस्मत्) हमसे दूर होकर (निवपन्तु) शत्रु पर पड़ें।

विकिरिद्र—विकिरिन् इषून् द्रावयति इति विकिरिद्र इति उव्वट.। विविधं किरिं घाताद्युपद्रवं द्रायति नाशयति इति महीधर। विशेषेण किरिः सूकर इव द्रायति शेते विशिष्टं किरिंद्राति निन्दति वा तत्सम्बुद्धौ विकिरिद्र इति दया०।

उव्वट और महीधरकृत व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ ऊपर किया गया है। दयानन्दकृतव्युत्पत्ति के अनुसार उनके बनाये भाषाभाष्य मे किये अर्थ का तात्पर्य नहीं पता लगता। कदाचित् उनका अभिप्राय है, (विकिरिद्र) विशेष रूप से बलवान् ! शूकर के समान निश्चिन्त होकर शयन करने हारे ! या विशेष बलवान् ! शूकर को भी बल मे पराजित करने वाले ! अर्थात् निर्भीक आक्रामक !

'विलोहित.'— विगतकल्मषभावः इति उव्वटः।

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः ।
तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ५३ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (भगव.) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (तव बाह्वोः) तेरी बाहुओं में (सहस्राणि सहस्रशः) हजारहों, लाखों, (हेतयः) शस्त्रास्त्र हैं । तू (तासां) उनका (ईशान.) स्वामी है । (पराचीना मुखा) उनके मुख परली तरफ को (कृधि) कर ।

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा ऽअधि भूम्याम् ।
तेषांꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५४ ॥

शत० ९ । १ । १ । ३० ॥

विराड् आर्ष्यनुष्टुप् । गाधार. ॥

भा०—(भूम्याम् अधि) भूमि पर अधिष्ठाता रूप से या शासक रूप से (ये) जो (असंख्याता सहस्राणि) असख्य, हजारों (रुद्राः) प्राणियों को रुलाने वाले पदार्थ और प्राणी, हैं । (तेषाम्) उनके (धन्वानि) धनुषो को हम (सहस्रयोजने) हजारों कोसों तक (अव तन्मसि) विस्तृत करें या शान्त करे ।

अस्मिन्मंहत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा ऽअधि ।
तेषांꣳसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५५ ॥

भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभ. ॥

भा०—(अस्मिन्) इस (महति) बड़े भारी (अर्णवे) समुद्र के समान विस्तृत (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष के समान सर्वाच्छादक सर्व रक्षक राजा के अधीन (भवा· अधि) उत्पादन सामर्थ्य से युक्त 'भव' नामक अधिकारी रूप से सहस्रों पुरुष विद्यमान है (तेषां सहस्र० इत्यादि) पूर्ववत् ।

५४—५३ सतोवतान । सप्ताः दश मन्त्राः । सर्वा० ।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳरुद्रा ऽउपश्रिताः ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५६ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गाधार ॥

भा०—(नीलग्रीवाः) गर्दनो मे नील वर्ण के और (शितिकण्ठाः) कण्ठ पर श्वेत चिन्ह धारण करने वाले (रुद्रा) प्राणियो के दु:खहर (दिवि) सूर्य के आश्रय मे चन्द्र आदि लोक के समान आल्हादक राजा के (उपाश्रिता) आश्रित बहुत से अधिकारी विद्यमान है । (तेषां सहस्र० इत्यादि) पूर्ववत् ।

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा ऽअधः क्षमाचराः ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५७ ॥

निचृदार्ष्य नुष्टुप् । गाधारः ॥

भा०—(नीलग्रीवाः शितिकाण्ठा) गर्दन पर नील वर्ण के और कण्ठ में श्वेत वर्ण के चिन्ह को धारण करने वाले (शर्वा) हिंसा कारी (अधः) नीचे (क्षमाचराः) पृथ्वी पर विचरने वाले अथवा नीचे की श्रेणियों में विचरने वाले हैं (तेषां सहस्र० इत्यादि) पूर्ववत् ।

चन्द्रादि लोक जो स्वयं प्रकाशमान नही हैं वे सूर्य के आश्रित होकर उसके प्रकाश से कण्ठ अर्थात् आगे की ओर से तो चमकीले और पीछे की ओर से अन्धकारमय, नीले होते हैं। उसी प्रकार जो राजा के आश्रित भृत्य हैं वे भी आगे से चमकते राज शासन का कार्य करते हैं और उनके काले गुण अर्थात्, लोभ आदि पीछे रहते हैं । वे उनका प्रयोग नहीं कर सकते ।

ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः ।
तेषांꣳ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५८ ॥

आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—(ये) जो (नीलग्रीवा) गर्दन पर नीले वर्ण के (शष्पिञ्जरा) हिंसक व्याघ्रादि के समान पीले वर्ण वाले, पीली वर्दी पहने और (विलोहिता.) शेष में लाल रंग के वर्ण के रह कर (वृक्षेषु) वृक्षों पर या काटने योग्य शत्रुओं पर जा पड़ते हैं (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत्।

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः।
तेषाᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ५९ ॥

आसुर्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(ये) जो (भूतानाम्) प्राणियों के (अधिपतयः) अधिपति, पालक (विशिखासः) शिखा केश आदि रहित सन्यासी गण और (कपर्दिनः) जटिल ब्रह्मचारी लोग अथवा (विशिखासः) विना शिखा के, विना तुर्रे वाले और जो (कपर्दिनः) शिर पर मुकुट धारण करने वाले हैं (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत्।

ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः।
तेषाᳬसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६० ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(ये) जो (पथाम्) मार्ग के रक्षक और (पथिरक्षयः) मार्ग में चलने वाले यात्रियों के भी रक्षा करने हारे, (ऐलबृदा) अथवा (ऐल-वृधाः) पृथ्वी पर के अन्न आदि पदार्थों को बढ़ाने वाले या पृथ्वी पर उत्पन्न अन्नों से सबके पालन में समर्थ अथवा (=ऐल-भृता) अन्नादि द्वारा भरण पोषण किये गये, (=ऐल-भृता) अन्नादि मात्र की वृत्ति प्राप्त किये हुए केवल (आयुर्युधः) जान तोड़ कर शत्रु से लड़ने वाले हैं (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

६०—'पथिरक्षिण. ऐळ'० इति काण्व० ।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६१ ॥

निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(ये) जो (सृकाहस्ता) भाला हाथ मे लिये, (निषङ्गिणः) तलवार बांधे, (तीर्थानि) विद्यालयो, जहाजो और घाटो की रक्षा के लिये उन स्थानो पर (प्रचरन्ति) धूमते हैं (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत् ।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६२ ॥

भुरिगार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(ये) जो दुष्ट पुरुष (अन्नेषु) अन्नादि भोजनो और (पात्रेषु) पात्रो मे अर्थात् जल दुग्ध आदि के पात्रो पर (पिबत) पान करने वाले (जनान्) जनो को (विविध्यन्ति) उनपर शस्त्र का प्रहार करते या उनको बाण के तुल्य घायल करते है । (तेषां सहस्र०) उनको दूर करने के लिये हजारों योजन तक फैले देश मे हम धनुषो को विस्तृत करें ।

अथवा—जो, अन्न दुग्धादि पदार्थों को खाते पीते हुए अपराधी पुरुषो पर प्रहार करते हैं उनके धनुषो को हजारो योजन तक विस्तृत करें ।

य एतावन्तश्च भूयांसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषांसहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥ ६३ ॥

भुरिगार्ष्यनुष्टुप । गान्धारः ॥

भा०—(ये) जो (एतावन्त च) इतने पूर्व कहे और (भूयांसः च) इनसे भी अधिक (रुद्रा.) प्राणियों को दण्ड देने वाले राज-पुरुष (दिश.) समस्त दिशो मे (वितस्थिरे) विविध पदो पर स्थित हैं (तेषां सहस्र०) इत्यादि पूर्ववत् ।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः । तेभ्यो दश प्राची-

दे॑श दक्षि॒णा दश॑ प्र॒तीची॒र्दशोदी॑ची॒र्दशो॒र्ध्वाः। तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु॒ ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ ६४ ॥

नमो॑ऽस्तु रु॒द्रेभ्यो॒ ये॑ऽन्तरि॑क्षे॒ येषां॒ वात॒ऽइष॑वः। तेभ्यो॒ दश॒ प्राची॒र्दश॑ दक्षि॒णा दश॑ प्र॒तीची॒र्दशोदी॑ची॒र्दशो॒र्ध्वाः। तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु॒ ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ मृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ ६५ ॥

नमो॑ऽस्तु रु॒द्रेभ्यो॒ ये पृ॑थि॒व्यां येषा॒मन्न॒मिष॑वः। तेभ्यो॒ दश॒ प्राची॒र्दश॑ दक्षि॒णा दश॑ प्र॒तीची॒र्दशोदी॑ची॒र्दशो॒र्ध्वाः। तेभ्यो॒ नमो॑ऽअस्तु॒ ते नो॑ऽवन्तु॒ ते नो॑ऽमृडयन्तु॒ ते यं द्वि॒ष्मो यश्च॑ नो॒ द्वेष्टि॒ तमे॑षां॒ जम्भे॑ दध्मः ॥ ६६ ॥

(६४–६६) धृति । ऋषभ ॥

भा०—(ये) जो (दिवि) सूर्य के आश्रित या द्यौलोक में विद्यमान सूर्यादि के समान (दिवि) तेजस्वी राजा के आश्रित (रुद्राः) रुद्र गण हैं (येषाम्) जिनका (वर्षम्) जल-वर्षण के समान शस्त्र-वर्षण ही (इषवः) बाण हैं उन (रुद्रेभ्यः) दुष्टों को रुलाने हारों के लिये (नमः अस्तु) आदर प्राप्त हो ॥

इसी प्रकार (ये अन्तरिक्षे) जो अन्तरिक्ष में वायु, मेघ आदि के समान हैं और जो अन्तरिक्ष के समान सब को आवरण करने वाले रक्षक राजा पर आश्रित रुद्र गण हैं (तेषां वातः इषवः) जिनके वायु या वायु के समान तीव्र वेगवान् बाण हैं (तेभ्यः नमः अस्तु) उनको हमारा नमस्कार है ।

इसी प्रकार (ये पृथिव्याम्) जो रुद्र गण पृथिवी पर हैं । और जो

६४–६६—त्रयोऽपि अवरोह संज्ञा मन्त्राः । सर्वा० । 'तेनो मृळयन्तु'० इति काण्व० ।

पृथिवी के समान सर्वाश्रय राजा के आश्रय पर रहते हैं (येषाम् अन्नम् इषव) जिनका अन्न आदि भोग्य पदार्थ ही प्रेरक द्रव्य या बाण के समान वशकारी साधन हैं उन (रुद्रेभ्यः नमः अस्तु) रुद्रों को नमस्कार हो। (तेभ्यः) उनको (दश प्राची· दश प्रतीची दश दक्षिणाः दश उदीचीः दश ऊर्ध्वा) दश दश प्रकार की पूर्व, पश्चिम उत्तर दक्षिण और ऊर्ध्व दिशाएं प्राप्त हों। अर्थात् सब दिशाओं मे उनको दशों दिशाओं के सुख प्राप्त हों। अथवा दशों दिशों मे उनका दोनों हाथों को जोड कर दश अंगुलियें आदरार्थ दर्शाता हू।

(तेभ्यः नमः अस्तु) उनको हमारा आदरपूर्वक नमस्कार हो। (ते नः अवन्तु) वे हमारी रक्षा करें। (ते नः मृडयन्तु) वे हमे सुखी करें। (ते) वे और हम (यं द्विष्म) जिसको द्वेष करते हैं (यः च नः द्वेष्टि) और जो हमसे द्वेष करता है (तम्) उसको हम लोग मिलकर (एषाम्) उनके (जम्भे) बिल्ली के मुख में जिस प्रकार मूसा पीडा पाता है उसी प्रकार कष्ट पाने के लिये उनकी अधीनता मे (दध्मः) धर दें। वे उनको दण्ड दें। ६४, ६५, ६६ ॥ शत० ९ । १ । ३५–३९ ॥

॥ इति षोडशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षोडशोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तदशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ अश्मन्नूर्जं पर्वते शिश्रियाणामद्भ्य ऽओषधीभ्यो वनस्पतिभ्यो ऽअधि सम्भृतं पयः। तां न इषमूर्जं धत्त मरुतः सꣳरराणाऽअश्मंस्ते क्षुन्मयि त ऽऊर्ग्यं द्विष्मस्तं ते शुगृच्छतु ॥१॥

मरुतो अश्मा च देवता. । अति शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—हे (मरुत.) मरुद्-गण ! वैश्यगण प्रजागण ! और कृषाण लोगो ! आप लोग (संरराणा) अन्न आदि समृद्धि को भरपूर देने वाले होकर (अश्मन्) राष्ट्र के भोग करने में समर्थ एव अपने पराक्रम से उस मे राजशक्ति से व्यापक, (पर्वते) पालनकारी सामर्थ्य से युक्त राजा मे, मेघ मे विद्यमान रस के समान (शिश्रियाणम्) आश्रित, विद्यमान, (ऊर्जम्) अन्नादि समृद्धि को और (अद्भ्य) जलों से, (ओपधिभ्य) ओपधियों से और (वनस्पतिभ्य.) वट आदि वनस्पति, बड़े वृक्षों से, जो (पय.) पुष्टिकारक रस (अधि सम्भृतम्) प्राप्त किया जाता है (ताम्) उस (इषम्) अभिलाषा के योग्य अन्न, (ऊर्जम्) बलकारी रस को (न· धत्त) हमें प्रदान करो। हे (अश्मन्) राजन् ! भोक्तः ! (ते क्षुत्) तुझे भूख है, परन्तु हे राजन् ! (ते ऊर्ग्) तेरा बलकारी अन्नादि रस भी (मयि) मुझ प्रजा के अधार पर है तो भी (ते शुग्) तेरा शुक्, क्रोध और भूख, ज्वाला (यं द्विष्मः) हम जिससे द्वेष करते हैं उस शत्रु को (ऋच्छतु) प्राप्त हो। राजा धन तृष्णा से प्रेरित होकर भी प्रजा को न रुलावे, प्रत्युत शत्रु-राजा को विजय करे। वायुएं जिस प्रकार समुद्र के जलों को ढोकर लाते हैं और वे पर्वत पर बरसा देते हैं और वह सब नदियों, ओपधि, वनस्पतियों को प्राप्त होकर अन्न दूध

१—मेधातिथिर्ऋषिः। द०।

आदि के रूप में प्रजा को मिलता है उसी प्रकार प्रजा लोग, व्यापारी लोग और सैनिक लोग जितना भी धन सम्पत्ति, व्यापार, कृषि आदि से उत्पन्न करते हैं वे सब राजा के साथ मिलकर मानो उसी पर बरसाते है, उसी को दे देते हैं। उसके पास से फिर सब को देशभर में वासियों को प्राप्त होता है। सबकी भूख पीड़ा की शान्ति राजा के आधार पर है। राजा को अन्न आदि की प्राप्ति प्रजा के आधार पर है। राजा यदि क्रोध भी करे तो अपने प्रजा को पीड़ित न करके उसको पीड़ित करे जो प्रजा का शत्रु होकर प्रजा को कष्ट दे। चोर, डाकू, लोभी शासक, राजा के लोभी भृत्य, राजा का अपना लोभ और बाह्य शत्रु ये प्रजा के शत्रु हैं, उनका दमन करे। शत० ६ । १ । २ । ५-१२ ॥

मरुतः—ये ते मारुता पुरोडाशा रश्मयस्ते। श० ६ । ३ । १ । २५॥ गणशो हि मरुतः १६ । १४ । २ ॥ मरुतो गणानां पतयः। तै० ३ । ११ । ४ । २ ॥ विशो वै मरुतो देवविशः ।०२ । ५ । १ । १२॥ विड् वै मरुतः। त० १ । ८ । ३ । ३ ॥ विशो मरुतः। श० २ । ५ । २६ ॥ कीनाशा आसन् मरुतः सुदानवः ॥ तै० २ । ४ । ८ । ७ ॥ पशवो वै मरुत । तै० १ । ७ । ३ । ५ । इन्द्रस्य वै मरुतः। कौ० ५ । ४ ॥ अथैनमूर्ध्वायां दिशि मरुतश्चाङ्गिरसश्च देवा अभ्यषिञ्चन् पारमेष्ठ्याय माहाराज्यायाधिपत्याय स्वावश्यायातिष्ठाय। ऐ० ८ । १४ ॥ हेमन्तेन ऋतुना देवा मरुतस्त्रिणवे स्तुतं बलेन शक्वरीः सह हविरिन्द्रे वयो दधुः। तै० २ । ६ । १६ । २ ॥

मरुत्-सम्बन्धी पुरोडाश रश्मिएं हैं। अर्थात् सूर्य की जिस प्रकार रश्मियें मरुत् कहाती हैं उसी प्रकार राजा की सेनाएं और अधीन गण मरुत हैं। गण २, दस्ते २ बनाकर मरुत् लोग रहते हैं। गणों के पति भी 'मरुत्' हैं। प्रजाएं जो राजा की प्रजाएं हैं वे 'मरुत्' हैं। प्रजा सामान्य या वैश्यगण 'मरुत्' हैं। कीनाश अर्थात् किसान लोग भी 'सुदानु' उत्तम अन्नादि के दाता 'मरुत्' कहाते हैं। पशुगण भी 'मरुत्' हैं। इन्द्र आत्मा

के अधीन प्राणों के समान इन्द्र राजा के अधीन लोग 'मरुत्' हैं। सर्वोच्च स्थान में मरुत् गण और अंगिरस्, अर्थात् वीर सैनिक पुरुष और विद्वान् पुरुष राजा को परम स्थान के अधिपति पद, महाराज पद, राष्ट्र को अपने वश में करने वाले 'स्वावश्य' पद और सबसे ऊचे स्थित 'आतिष्ठ' पदपर अभिषिक्त करते हैं। हेमन्त ऋतु जिस प्रकार सब वृक्षों के पत्ते झाड़ देती है उसी प्रकार युद्ध-विजयी राजा शत्रु और मित्र सबकी समृद्धि हर लेता है, हेमन्त की तीव्र वायुओं के समान वीर जन ही २७ पदाधिकारियों से शासित राष्ट्र में बलपूर्वक शक्तिमती सेना और शत्रु पराजयकारी बल और अन्न और हुकूमत शक्ति को स्थापित करते हैं।

१५ वें अध्याय में 'हेमन्त' पदपर राजा की स्थापना हो चुकी। १६ वें में रुद्र का अभिषेक, उसको समृद्धि और राजपद प्राप्त हुआ। समस्त छोटे मोटे बड़े ऊचे नीचे राजपदाधिकारियों की असंख्यात रुद्रों के रूप में स्थापना अधिकार, मान, पद वेतन आदि पर नियुक्ति की जा चुकी। सबको नमस्कार हो गया। अब प्रजा-पालन और शत्रु-कर्षण दुष्ट-दमन का इस अध्याय मे वर्णन किया जायगा।

अश्मा—पर्वत. —ग्रावा—स्थिरो वा अश्मा। श० ६।१।२।५॥ असौ वा आदित्योऽश्मा पृश्निः। श० ६।२।३।१४॥ वज्रो वै ग्रावा। श० ११।५।६।७॥ मारुता वै ग्रावाण (तां० ६।१।१४) चकमक पत्थर के शस्त्र और बाण के फले बनते थे इससे वज्र या शस्त्र का प्रतिनिधि 'अश्मा' कहा गया है। वही राजा, प्रतिनिधि अथवा स्थिर पर्वत के समान दृढ़ राजा भी अश्मा है। पालन सामर्थ्य होने से राजा ही पर्ववान् 'पर्वत' है। इसी से आदित्य भी 'अश्मा पृश्नि' है। उसके समान तेजस्वी राजा भी कररूप रस ग्रहण करने वाला 'अश्मा' है।

इमा मे॑ऽअग्न॒ऽइष्ट॑का धे॒नवः॑ सन्त्वेका॑ च॒ दश॑ च॒ दश॑ च॒ श॒तं च॑ श॒तं च॑ स॒हस्रं॑ च स॒हस्रं॑ चा॒युतं॑ चा॒युतं॑ च नि॒युतं॑ च नि॒युतं॑ च

प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्द्धश्चैता मे ऽअग्न ऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिँल्लोके ॥ २ ॥

अग्निर्देवता । विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवान् ! विद्वन् ! पुरोहित ! (मे) मेरी ये (इष्टका) मकान में चुनी गयी ईंटो के समान राज्यरूप महल में लगी, राज्य के नाना विभागो में नियुक्त शासक वर्ग, भृत्य वर्ग रूप ईंटें, सेनाएं और प्रजाएं अथवा इष्ट अर्थात् वेतनरूप से दिये गये अन्न या पिण्ड पर नियुक्त अमात्य भृत्यादि, सब, अथवा मेरे अभिलाषित राज्याङ्गरूप प्रजा-गण (मे) मेरे लिये (धेनवः) दुधार गौश्रों के समान समृद्ध और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली और पुष्टिकारक बलप्रद, कर आदि देने वाली हों। और वे (एका च दश च) एक, एक, एक करके दश हों। (दश च शतं च) वे दस, दस दस करके सौ तक बढ़ जांय। (शतं च सहस्रं च) वे सौ, सौ, सौ करके हजार तक बढ़ जांय। (सहस्रं च, अयुतं च) इसी प्रकार वे हज़ार २, दस हज़ार हो जांय। (अयुतं च नियुतं च) वे दस हज़ार बढ़कर एक लाख हो जांय (नियुतं च प्रयुतं च) वे एक लाख बढ़कर दस लाख हो जांय। इसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ती हुई वे (अर्बुदं च) १० करोड़, (न्यर्बुदं च) अर्ब खर्ब, निखर्व महापद्म, शंख (समुद्र च) समुद्र (मध्यं च) मध्य (अन्तः च) अन्त, (परार्ध श्च) और परार्ध हो जांय। और (एताः) ये सब (मे) मेरी (इष्टकाः) दान किये वेतन आदि पर बद्ध एवं प्रिय, एवं सुसंगठित राज्य की ईंटों के समान प्रजा गण (धेनवः सन्तु) दुधार गौश्रों के समान ऐश्वर्य रस के देने वाली ने और (अमुष्मिन् लोके) परलोक में भी (अमुत्र) परदेश में भी सुखकारी हो। शत० ६ । १ । २ । १३–१७ ॥

ऋतवः स्थ ऋतावृधं ऋतुष्ठाः स्थ ऽऋतावृधः ।
घृतश्च्युतो मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुघा अक्षीयमाणाः ॥ ३ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी पङ्क्ति पञ्चम ॥

भा०—पूर्व कही राज्य की घटक इष्टकाओं का स्वरूप दर्शाते हैं—हे राज्य के विशेष २ मुख्य अंगों के नेता पुरुषो ! तुम (ऋतव. स्थ) वर्ष, संवत्सर रूप प्रजापति के अंशभूत जिस प्रकार ६ या ५ ऋतु होते हैं और नाना प्राणियों का उपकार करते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी 'ऋतु' हो अर्थात् (ऋतावृध) ऋत अर्थात् सत्य व्यवहार और न्याययुक्त राज्य-तन्त्र को वृद्धि करने वाले हो। और हे उन अधिकारियों के आश्रय प्रजा लोगो ! और (ऋतुष्ठा. स्थ) जिस प्रकार ऋतुओं में आश्रित मास पक्ष दिन आदि हैं उसी प्रकार तुम राष्ट्र के संचालकों पर आश्रित लोग भी 'ऋतुस्थ' ही हो क्योंकि तुम भी (ऋतावृध. स्थ) सत्य व्यवहार की वृद्धि करने वाले हो। आप लोग ही (घृतश्च्युत) घृत, दुध, तेज और पुष्टिप्रद पदार्थों को देने वाले हो (मधुश्च्युत) अन्न और मधुर पदार्थों और सुखकारी पदार्थों और ज्ञानों को भी उत्पन्न करने वाले हो, तुम लोग (विराज.) विविध गुणों और ऐश्वर्यों से युक्त होकर (अक्षीयमाणा) कभी क्षीण न होने वाले, अक्षय (कामदुघा) यथेष्ट प्रकार से प्रजा की आकांक्षाओं के भरपूर करने वाले कामदुघा गौओं के समान हो। शत० ९ । १ । २ । १८-१९ ॥

समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि ।
पावको ऽअस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ ४ ॥

भुरिगार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान शत्रुओं को भस्म करने हारे तेजस्विन् ! राजन् ! (समुद्रस्य अवकया) समुद्र के भीतर जिस प्रकार 'अवका' नाम शैवाल से जिस प्रकार मेंडक जल जन्तु सुरक्षित रहते हैं उसी प्रकार समुद्र के समान गम्भीर जल के बीच में (अवकया) प्रजा के रक्षण करने की शक्ति से तुझे (परि) सब ओर से (व्ययामसि) विविध प्रकारों से

हम प्रजाजन ही घेर ले। तू (पावक) पवित्रकारक अग्नि के समान राष्ट्र को पवित्र करने वाला होकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शिवः भव) कल्याणकारी हो। शत० ६। १। २। २०-२५॥

हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि।
पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव॥ ५॥

अग्निर्देवता भुरिगार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—(हिमस्य जरायुणा) हिम, शीतल जल की जरायु, शैवाल जिस प्रकार तालाब को घेर लेती है और मंडूक आदि उसमें सुख से रहते हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्ने! संतापकारिन् (त्वा) तुझको (हिमस्य) हिम, पाला जिस प्रकार वनस्पतियों का नाश करता, जन्तुओं को कष्ट देता है, उसी प्रकार प्रजाओं के नाशकारी शत्रु के (जरायुणा) अन्त करने वाले बल से (परि व्ययामसि) हम तुझे चारों ओर से घेर लेते हैं। हे (पावकः) अग्नि के समान राज्य-कण्टकों को शोधन करनेहारे! तू (अस्मभ्यं शिव. भव) हमारे लिये कल्याणकारी हो। शत० ६।१।२।२६॥

उप ज्मन्नुप वेतसेऽवतर नदीष्वा। अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरागहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णꣳ शिवं कृधि॥ ६॥

भा०—हे (मण्डूकि) आनन्द करने, तृप्त करने और भूमि को सुभूषित करने वाली विशेष कलाकौशल समृद्धे! तू (ज्मन् उप) पृथ्वी पर (अवतर) उतर आ। और (वेतसे) विस्तृत या अपने नाना सूत्रों के फैलने वाले राज्य में (अवतर) प्राप्त हो और (नदीषु) नदियों के समान प्रभूत. समृद्ध प्रजाओं में (आ अवतर) प्राप्त हो। हे (अग्ने) राजन्! अग्रणी नेतः! (अपाम्) समस्त कर्मों, प्रज्ञानों और प्राप्त प्रजाओं का (पित्तम्) तेजस्वरूप बल या पालक (असि) है। हे (मण्डूकि) आनन्द आमोदकारिणि, विद्वत्सभे! सेने! तू (ताभिः)

उन प्रजाओं के साथ, (आगहि) प्राप्त हो। (इमं) इस (नः यज्ञं) हमारे सुव्यवस्थित यज्ञ, संगति करने वाले, व्यवस्थित (पावकवर्णम्) पावक पवित्रकारक अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को अपने नेता रूप से वरण करने वाले राष्ट्र को (शिव) मङ्गलकारी, सुखदायी (कृधि) बना। शत० ९ । १ । २ । २७ ॥

गृहस्थ पक्ष में—हे (मण्डूकि) सुभूषिते, आनन्दकारिणि, पुत्रैषणा की तृप्तिकारिणि ! स्त्रि ! तू (ज्मन्) पृथिवी पर (वेतसे) प्रजा तन्तु सन्तान को फैलाने वाले पुरुष के आश्रय पर और (नदीषु) समृद्धि कारिणी लक्ष्मियों में आकर रह। हे (अग्ने) पुरुष ! तू (अपां) कर्मों का या इच्छाओं का पालक है। हे स्त्रि ! तू उक्त सब पदार्थों सहित और इस अग्नि के समक्ष स्वीकार किये गये या गार्हपत्याग्नि से प्रकाशमान गृहस्थ यज्ञ को मंगलमय बना।

'वेतसे'—वयति तन्तून् संतनोति इति वेतसः। द० उ० भा०। वैतसः पुंप्रजननाङ्गम्। वेतस एव वैतस। वेतसस्यायमिति वा। वैतसो वितस्तो भवति। नि०।

मण्डूकि—मंडूका मज्जूका, मज्जनात् मन्दतेर्वा मोदतिकर्मणो मन्दते-र्वा तृप्तिकर्मणः मण्डयतेरिति वैयाकरणाः मण्ड एषामोकमिति वा मण्डो मदेर्वा मुदेर्वा। इति निरु० ९। १। ५ ॥

अ॒पामि॒दं न्यय॑नꣳ समु॒द्रस्य॑ नि॒वेश॑नम्।
अ॒न्याँस्ते॑ऽअ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तय॑: पाव॒को᳖ऽअ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व ॥७॥

अग्निर्देवता। आर्षी बृहती। मध्यमः ॥

भा०—(इदम्) यह अन्तरिक्ष या भूतल जिस प्रकार जलों का आश्रय है। और (समुद्रस्य) समुद्र का भी (निवेशनम्) आधार है। उसी प्रकार यह राष्ट्र (अपाम्) आप्त प्रजाओं का (नि-अयनम्) आश्रय-

स्थान है और (समुद्रस्य) समुद्र के समान भूमि के घेरने वाले, उसके रक्षक गम्भीर भूमि पर अन्तरिक्ष के समान प्रजा के आच्छादक राजा का भी (निवेशनम्) सेना सहित छावनी बना कर रहने का स्थान है। हे राजन् ! (ते हेतयः) तेरे शस्त्र (असमत् अन्यान् तपन्तु) हम से अतिरिक्त दूसरे शत्रुओं को पीड़ित करें और तू (पावकः) आहुति योग्य अग्नि के समान (अस्मभ्यं शिव भव) हमारे लिये कल्याणकारी, सुखदायी हो। शत० ६। १। २। २८॥

गृहस्थ पक्ष मे—(इदं) यह गृहस्थ (अपाम्) समस्त कर्मों का आश्रय और (समुद्रस्य) उठती कामना का भी आश्रय है। हे विद्वान् गृहस्थ (ते हेतयः) तेरी लक्ष्मी को बढ़ी सम्पत्तियां हम से दूसरे शत्रुओं को सतावें। तू अग्नि के समान सब को आचार से पवित्र करने वाला होकर सुखकारी हो।

अग्ने॑ पावक रो॒चिषा॑ म॒न्द्रया॑ देव जि॒ह्वया॑।
आ दे॒वान्व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥ ८ ॥ ऋ० ५। २६। १॥

वसूयव ऋषयः। अग्निर्देवता। आर्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! (पावक) हृदयों को, एक राज्य तन्त्र को पवित्र करने हारे ! तू (रोचिषा) तेज से हे देव) राजन् ! और (मन्द्रया) हर्षित करनेवाली, तृप्तिकारी, सुखद, गम्भीर (जिह्वया) जिह्वा, वाणी से (देवान्) अन्य विद्वानों और राजाओं के प्रति (वक्षि) उपदेश करता और आज्ञा प्रदान करता और (यक्षि च) सत्संग करता और अन्य राजाओं को मित्र बनाता है। शत० ६। १। २। ३०॥

स नः॑ पावक दीदि॒वोऽग्ने॑ दे॒वाँ२ऽ इ॒हाव॑ह।
उप॑ य॒ज्ञꣳ ह॒विश्च॑ नः ॥ ६ ॥ ऋ० १। १२। १०॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (पावक) पवित्रकारक, कण्टकशोधक ! हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! एवं अग्नि के समान तेजस्विन् ! हे (दीदिवः) शत्रु-दाहक ! अग्नि के समान जाज्वल्यमान ! (सः) वह तू ही (नः) हमारे हित के लिये (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (इह) इस राष्ट्र में (आ वह) प्राप्त करा, लाकर बसा । और (नः यज्ञं) हमारे यज्ञरूप परस्पर की संगति से बने राष्ट्र को (उप वह) अपने ऊपर ले और (नः हविः च उपवह) और हमें अन्न भी प्राप्त करा । शत० ९ । १ । २ । ३० ॥

पा॒व॒कया॒ यश्चि॒तय॑न्त्या कृ॒पा क्षाम॑न् रुरु॒च ऽउ॒षसो॒ न भा॒नुना॑ ।
तूर्व॒न्न याम॒न्नेत॑शस्य॒ नू रण॒ ऽआ यो घृ॒णे न त॑तृषा॒णो ऽअ॒जरः॑ ॥ १० ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—(भानुना उषसः न) उषा के प्रकाश से जिस प्रकार सूर्य प्रकाशमान् होता, वह सबको निद्रा से जगाता, पृथ्वी पर प्रकाश डालता और भूतल को पवित्र करता है उसी प्रकार (यः) जो राजा (पावकया) पवित्र करने वाली (चितयन्त्या) प्रजा को ज्ञानवान् करने वाली चेतानेवाली या संगृहीत या सुव्यवस्थित करनेवाली (कृपा) राष्ट्र निर्माण शक्ति से युक्त होकर (क्षामन्) इस पृथ्वी पर (रुरुचे) शोभा देता है । और (यः) जो (रणे) रण में (एतशस्य) अश्वमेध में छोड़े अश्व के (यामन्) मार्ग में आनेवाले विपक्षियों को (तूर्वन् न) मारता हुआ (घृणे न) प्रदीप्त, संग्राम में भी सूर्य के समान (ततृषाणः) राज्य-लक्ष्मी का सदा पिपासित रहकर भी (अजरः न) अजर जरारहित, अमर, वीर के समान राज्यवृद्धि में लगा रहता है वह तू हमें प्राप्त हो । शत० ९ । १ । २ । ३० ॥

नम॑स्ते॒ हर॑से शो॒चिषे॒ नम॑स्ते ऽअस्त्व॒र्चिषे॑ ।
अ॒न्याँस्ते॑ ऽअ॒स्मत्त॑पन्तु हे॒तयः॑ पाव॒को ऽअ॒स्मभ्य॑ꣳ शि॒वो भ॑व ॥ ११ ॥

भुरिगार्षी बृहती । मध्यम ॥

भा०—हे राजन् ! (ते हरसे नमः) जलाहरण करनेवाले, प्रखर तेज वाले सूर्य के समान तेरे शत्रुओं की राज्य-लक्ष्मी को पाकर, हरण करने वाले क्रोध, या प्रजा के दुःखहारी बल के लिये हम आदर करते हैं। (ते शोचिषे) तेरे पवित्र तेजस्वरूप और (अर्चिषे) सत्कार योग्य शस्त्र ज्वाला का भी (नमः) आदर करते हैं। (ते हेतयः) तेरी शस्त्र ज्वालाएं (अस्मत् अन्यान्) हमारे से दूसरे शत्रुओं को (तपन्तु) पीड़ित करें। तू (पावकः) पावक अग्नि के समान (अस्मभ्यं शिवः भव) हमारे लिये कल्याणकारी हो। शत० ६।२।१।२॥

नृषदे वेडप्सुषदे वेड् बर्हिषदे वेड् वनसदे वेट् स्वर्विदे वेट् ॥१२॥

निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजन् ! (नृषदे) मनुष्यों के बीच में जिस प्रकार प्राण विराजता है, उसी प्रकार प्रिय होकर (नृषदे) सब मनुष्यों के बीच में बैठने वाले तुझको (वेट) यह मान आदर प्राप्त हो। (अप्सुषदे) समुद्रों में और्वानल के समान प्रजाओं के बीच ग्लानि रहित होकर विराजने वाले तुझको (वेट्) उच्च आसन प्राप्त हो। (बर्हिषदे) यज्ञ में प्रज्वलित अग्नि के समान अथवा ओषधियों में विद्यमान रस रूप अग्नि के समान प्रजा या राष्ट्र शरीर के दोषों को नाश करने वाले तुझको (वेट्) अधिष्ठातृपद प्राप्त हो। (वनसदे) वनों, जंगलों में लगने वाली दावाग्नि के समान सर्वस्व भस्म कर देने वाले तुझको (वेट्) उग्र पद का अधिकार प्राप्त हो। (स्वर्विदे) आकाश में विद्यमान सूर्य के समान सबको सुख पहुंचाने वाले तुझको (वेट्) उच्च तेजस्वी पद प्राप्त हो। शत० ६।२।१।८॥

ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाᳬ संवत्सरीणमुप भागमासते। अहुतादो हविषो यज्ञेऽअस्मिन्त्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥१३॥

लोपामुद्रा ऋषिका । प्राणा देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—(ये) जो (देवाना) दानशील, राजाओं में भी (देवा) विद्या और ज्ञान के देने वाले उत्कृष्ट विद्वान् हैं और (यज्ञियाना) यज्ञ करने वालों के भी (यज्ञिया) पूजनीय ज्ञान योगी और राष्ट्र संगति करने वाले व्यवस्थापकों में भी (यज्ञिया.) प्राणों के समान स्वयं संगति बनाने वाले विद्वान् महात्मा लोग हैं जो (संवत्सरीणम्) एक वर्ष के बाद प्राप्त होने वाले वार्षिक भेंट (भागम्) अन्न आदि ऐश्वर्य को अथवा वर्ष भर अपने भीतर पुष्ट किये अभ्यस्त (भागम्) सेवनोपासना योग्य ब्रह्म-ज्ञान या ब्रह्मचर्य की उपासना करते हैं वे (यज्ञे) इस राष्ट्रमय यज्ञ में भी (अहुताद) राजा से दिये वेतन को भोग न करने वाले होकर (अस्मिन् यज्ञे) इस राष्ट्र रूप यज्ञ में (मधुमत) अन्न और (घृतस्य) तेजोदायक पुष्टिकारक पदार्थों का (स्वयं पिबन्तु) स्वयं यथेच्छ उपभोग करें । शत० ६ । २ । १ । १४ ॥

ये दे॒वा दे॒वेष्वधि॑ दे॒व॒त्वमाय॒न् ये ब्रह्म॑णः पु॒र ए॑तारो॒ऽअ॒स्य । येभ्यो॒ न ऽऋ॒ते पव॑ते॒ धाम॒ किं च॒न न ते दि॒वो न पृ॑थि॒व्या ऽअधि॒ स्नुषु॑ ॥ १४ ॥

आर्षी जगती । निषाद ॥

भा०—और (ये देवा) जो विद्वान् ज्ञानप्रद, लोकप्रकाशक विद्वान् लोग (देवेषु अधि) राजाओं के भी ऊपर (देवत्वम्) आदर योग्य देवत्व, राजत्व को (आयन्) प्राप्त हो जाते हैं, (ये) और जो (अस्य ब्रह्मण.) इस ब्रह्मरूप ज्ञानसागर के (पुर.) सबसे प्रथम या पूर्ण (एतार.) ज्ञाता होते हैं । और (येभ्य. ऋते) जिनके बिना (किंचन धाम) कोई स्थान, कोई गृह (न पवते) पवित्र नहीं हो । (ते) वे (दिव. न) न द्यौलोक और (न पृथिव्याः) न पृथिवी के किसी स्थान पर रमकर वे (स्नुषु) पर्वतों के शिखरों पर विचरते हैं । अथवा सरण शील

प्राणों में ही रमते हुए सर्वत्र विचरते हैं। या (स्नपु) मार्गों में ही परिव्राट् होकर विचरते हैं। शत० ६ । २ । १ । १५ ॥

प्राणदा ऽअपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः ।
अन्याँस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यᳫं शिवो भव १५

आर्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे अग्ने ! राजन् ! जिस प्रकार शरीर में जाठर अग्नि प्राण, अपान, व्यान, वर्चस और जीवन धन को देने वाला होता है उसी प्रकार तू राष्ट्र में (प्राणदाः) प्राणों को देने वाला (अपानदाः) राष्ट्र में अपान, मल आदि को और हानिकर पदार्थों को दूर करने वाला (व्यानदाः) व्यान के समान व्यापक बल रखने वाला (वर्चोदाः) वर्चस् या त्याज के समान पराक्रम को स्थिर रखने हारा और (वरिवोदाः) प्रजा को धन ऐश्वर्य का देने हारा है। (अस्मत् अन्यान्) हमसे अन्य, शत्रुओं के तेरे (हेतयः) शस्त्रास्त्र (तपन्तु) पीड़ित करें। राजन् तू (पावकः) राष्ट्र को पवित्राचारवान् करने हारा होकर (अस्मभ्यं शिवः भव) हमारे लिये शुभ कल्याणकर हो। शत० ६ । २ । १ । १७ ॥

अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ १६ ॥ ऋ० ६ । १६ । २८ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(अग्निः) आग जिस प्रकार (तिग्मेन शोचिषा) अपनी तीक्ष्ण ज्वाला से (विश्वं) समस्त (अत्रिणम्) अपने खाने योग्य सूखे, गीले सब पदार्थों को (नि यासत्) विनष्ट कर डालता है उसी प्रकार तेजस्वी, परंतप राजा (अत्रिणम्) प्रजा के माल प्राण को खा जाने वाले राक्षस वृश्चिक, पुरुषों को और सिंह व्याघ्र आदि को अपने (तिग्मेन) तीक्ष्ण (शोचिषा) दीप्ति वाले आग्नेय अस्त्र से (नियासत्) सर्वथा विनष्ट कर

डाले। और वही (अग्निः) तेजस्वी शत्रुतापक राजा (नः) हम में (रयिम्) ऐश्वर्य को (वनते) विभक्त करे ॥ शत० ६ । २ । २ । ५ ॥

य ऽइमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः ।
स ऽआशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ२ऽ आविवेश ॥ १७ ॥

(१७-२३) ऋ० १० । ८ ॥ १-७ ।

१७—३० त्रिष्टुभ । धैवत. ॥ विश्वकर्मा भौवन ऋषि. । विश्वकर्मा देवता ॥

भा०—राजा के पक्ष में—(य.) जो (न) हमारा (पिता) पिता के समान पालक (ऋषि) ज्ञानवान् होकर (इमा) इन (विश्वा भुवनानि) समस्त उत्पन्न मनुष्य पशु पक्षी आदि प्राणियों को (जुह्वत्) अपने अधीन स्वीकार करता है और (होता) सबका स्वीकर्त्ता और गृहीता, स्वामी, होकर (नि असीदत्) निश्चय करके सिंहासन पर विराजता है (सः) वह (आशिषा) इच्छापूर्वक (द्रविणम्) ऐश्वर्य की (इच्छमान) कामना करता हुआ स्वय (प्रथमच्छत्) प्रथम, सर्वश्रेष्ठ पदपर अधिष्ठित होकर (अवरान्) अपने से छोटे, अपने अधीन लोगों को (आविवेश) ऐश्वर्य प्रदान करता है।

परमेश्वर-पक्ष में—(यः) जो (न पिता) हमारा पालक परमेश्वर (इमा विश्वा भुवनानि) इन समस्त भुवनों, लोकों को (जुह्वत्) प्रलय काल में आहित करके अथवा अपने वश में लेकर (ऋषि) स्वयं ज्ञानवान् और (होता) सबका आदानकर्त्ता, वशयिता रूप से (नि असीदत्) व्यापक रूप में विराजता है। (स) वह अपने (आशिषा) व्यापक, शासनसामर्थ्य से (द्रविणम्) द्रुतगति से चलने वाले संसार को (इच्छमान) अपनी कामना या सकल्प मात्र से चलाता हुआ स्वय (प्रथमच्छत्) सर्वोत्तम सबसे विशाल लोको को भी आच्छादित करके (अवरान्) अपने से बाद में उत्पन्न आकाशादि भूतों और समस्त लोकों को (आविवेश) गति देता और उनमें व्यापक होकर रहता है।

किꣳस्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः १८

भा०—राजा के पक्ष में—जब राजा प्रथम महान् राज्य की स्थापना करना प्रारम्भ करता है उसके विषय मे प्रश्न करते हैं—[प्र० १] उस समय उसका (अधिष्ठानम्) आश्रयस्थान (कि स्वित्) भला क्या (आसीत्) होता है । और (प्र० २) (कतमस्वित्) कौनसा पदार्थ (आरम्भणम्) महान् साम्राज्य को आरम्भ करने के लिये मूल रूप से है । और (कथा आसीत्) वह किस प्रकार होता है । (यत) जिससे (विश्वकर्मा) राज्य के समस्त कर्मों को सम्पादन करने में कुशल राजा (भूमिं जनयन्) अपने आश्रय भूमि को पैदा करके, अपनी बनाकर, (महिना) अपने महान् पराक्रम से (विश्वचक्षाः) समस्त राष्ट्र का स्वयं-द्रष्टा होकर (द्याम्) सूर्य के समान तेजस्वी पद को (वि और्णोत्) विशेष रूप से या विविध प्रकार से आच्छादित करता या प्राप्त करता है ।

परमेश्वर के पक्ष में—सृष्टि के उत्पन्न करने के पूर्व [१] (कि स्वित्) कौनसा (अधिष्ठानम्) आश्रय (आसीत्) था । और [२] जगत् को (आरम्भणम्) बनाने के लिये प्रारम्भक मूल द्रव्य (कतमत् स्वित्) दृश्यमाण आकाशादि तत्वों मे कौनसा था ? और [३] वह (कथा आसीत्) किस दशा मे था ? (यत.) जिससे वह (विश्वकर्मा) समस्त संसार का कर्त्ता (भूमिम्) सबको उत्पन्न करने वाली भूमि या प्रकृति को (जनयन्) अव्यक्त से व्यक्त रूप मे प्रकट करता हुआ (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (विश्वचक्षाः) विश्व भर को साक्षात् करने हारा होकर (द्याम्) समस्त आकाश को (वि और्णोत्) विविध प्रकार के लोकों, ब्रह्माण्डों से आच्छादित कर देता है ।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ १९ ॥

भा०—राजा के पक्ष में—वह राजा विजिगीषु स्वयं (विश्वत॰ चक्षुः) चरों और मन्त्रियों द्वारा सब ओर अपनी आंख रखता है। वह (विश्वतो मुख.) सब ओर अपना मुख रखता है। (विश्वतो बाहु.) वह सब ओर अपने शत्रुओं को पीड़न करने वाली बाहुएं रखता है। और (विश्वत पात्) सब ओर शत्रु पर आक्रमण करने के कदम बढ़ाता रहता है। वह (बाहुभ्याम्) बाहु के समान सेना के दोनों पक्षों से संग्रामभूमि में (संधमति) आगे बढ़ता है और (पतत्रै) अपने सेना दल रूप पक्षों या आगे बढ़ने वाले दस्तों सहित (सधमति) शत्रु पर जा चढ़ता है। (द्यावाभूमी) भोग्य भूमि और भूमिस्थ प्रजाओं और द्यौ = सूर्य के समान भोक्ता राजा दोनों को (जनयन्) स्वय पैदा करता हुआ (एक देव) एकमात्र विजयी होकर विराजता है।

ईश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर (विश्वतः चक्षुः) सर्वत्र आंख वाला, सर्वत्र द्रष्टा, (विश्वत॰ मुख) सर्वत्र ज्ञानोपदेशक मुख वाला, (विश्वतो बाहुः) सर्वत्र वीर्यरूप बाहुमान् और (विश्वत पात्) सर्वत्र चरण वाला है। अर्थात् वह सब प्रकार की शक्तियों से सर्वत्र व्याप्त है। वह (बाहुभ्याम्) अनन्त बल वीर्यों द्वारा (एक॰ देवः) अकेला देव (द्यावाभूमी जनयन्) आकाशस्थ और भूमि और भूमिस्थ पदार्थों को रचता हुआ (पतत्रैः) व्यापनशील या प्रगतिशील प्रकृति के परमाणुओं से (स धमति) संसार को सुव्यवस्थित करता और रचता है।

किꣳस्विद्वनं क ऽउ॒ स वृ॒क्ष ऽआ॑स॒ यतो॒ द्यावा॑पृथि॒वी नि॑ष्टत॒क्षुः।
मनी॑षिणो॒ मन॑सा पृ॒च्छतेदु॒ तद्यद॒ध्यति॑ष्ठ॒द्भुव॑नानि धा॒रय॑न् ॥२०॥

भा०—राजा के पक्ष मे—(कि स्वित् वनम्) जिस प्रकार काठ के नाना पदार्थों को बनाने के लिये लकड़ी आवश्यक होती है और उसको किसी वृक्ष मे से काटा जाता है और जंगल से लाया जाता है और दृढ़, उत्तम

पदार्थ को बनाने के लिये उत्तम काष्ठ का ही संग्रह किया जाता है। इसी प्रकार गृह, राज्य और समस्त रचनायुक्त कार्यों के लिये पहले मूल द्रव्य की अपेक्षा होती है। उसी के विषय में प्रश्न है कि—(१) (यतः) जिसमें से (द्यावापृथिवी) द्यौ., सूर्य और पृथिवी दोनों के समान भोक्ता और भोग्य राजा और प्रजा दोनों को (नि ततक्षु.) विद्वान् लोग गढ़कर तैयार करते है वह (वनं कि स्वित्) कौन सा 'वन' है। अर्थात् जैसे किसी वन से काष्ठ लाकर काठ के पदार्थ बनाये जाते हैं ऐसे राजा प्रजाओं को बनाने के लिये किस जगह से मूल द्रव्य लाया जाता है। और (२) (कः उ सः वृक्षः आस) वह वृक्ष कौनसा है? अर्थात् जिस प्रकार कुर्सी आदि बनाने के लिये किसी वृक्ष को काट कर उसमें से कुर्सी बनाई जाती है उसी प्रकार यह राजा प्रजा युक्त राष्ट्र को किस मूल स्थिर पदार्थ में से गढ़कर निकाला गया है। हे (मनीषिणः) मनीषी, मतिमान् विद्वान् पुरुषो! (मनसा) अपने मन से समझ बूझकर तुम भी क्या इसपर कभी (पृच्छत इत् उ) प्रश्न या तर्क वितर्क या जिज्ञासा किया करते हो कि (तत्) वह महान् बल कौनसा है (यत्) जो (भुवनानि धारयन्) समस्त उत्पन्न प्राणियों को पालन करता हुआ उनपर (अधि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता, शासक रूप से विराजता है। वह क्या है?

परमेश्वर-पक्ष में—(किं स्विद् वनं) वह कौनसा मूलकारण, सबके भजन करने योग्य परम पदार्थ है और (कः उ सः वृक्षः आस) वह कौनसा वृक्ष अर्थात् मूल 'स्कम्भ' या तना है (यत द्यावापृथिवी) जिसमें से द्यौ और भूमि, जमीन और आकाश इनको परमेश्वर ने (नि. ततक्षु) गढ़ कर निकाला है। हे (मनीषिणः) ज्ञानशाली, संकल्प विकल्प और ऊहापोह करने में कुशल विवेकी पुरुषो! आप लोग भी (तत्) उस मूल कारण के सम्बन्ध में (पृच्छत) प्रश्न, तर्क वितर्क, जिज्ञासा करो (यत्) जो (भुवनानि धारयन्) समस्त उत्पन्न हुए असंख्य ब्रह्माण्डों और

उत्पन्न लोकों और सूर्यादि पदार्थों को धारण पालन पोषण और स्तम्भन करता हुआ उनपर (अधि अतिष्ठत्) अध्यक्ष रूप से शासन कर रहा है।

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः २१

भा०—राजा के पक्ष में—हे विश्वकर्मन्) समस्त राष्ट्र के कार्यों के करने वाले या उसको बनाने वाले ! हे (स्वधाव) अपने राष्ट्र को धारण करने के बल से युक्त ! अथवा 'स्व', शरीर के पालक पोषक अन्न आदि ऐश्वर्य के स्वामिन् ! (या) जो (ते) तेरे (परमाणि) सबसे श्रेष्ठ, (या) जो (अवरा) सबसे निकृष्ट, या (मध्यमा) मध्यम श्रेणी के (उत इमानि) और ये साधारण (धामानि) कर्म और धारण करने योग्य पदाधिकार और तेज हैं उनको (सखिभ्यः) अपने मित्र वर्गों को (हविषि) अपने गृहीत राष्ट्र में (शिक्ष) प्रदान कर और (स्वयं) अपने आप (तन्वं) अपने विस्तृत राष्ट्र को बढ़ाता हुआ (यजस्व) सबको सुसंगत, सुव्यवस्थित, दृढ़ता से सम्बद्ध कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे (विश्वकर्मन्) विश्व के कर्त्ता ! हे (स्वधाव) विना किसी की अपेक्षा किये स्वयं समस्त संसार को धारण करने के अनन्त बल वाले ! (या) जो (ते) तेरे (परमाणि) परम, सर्वोच्च (अवमा) सूक्ष्म, बहुत छोटे २, (मध्यमा) बीच के (उत इमा) और ये सभी आखों से दीखने वाले (धामानि) कर्म हैं उन सबको (सखिभ्यः) हम मित्र रूप जीवों को (शिक्षा) तू प्रदान करता है, तू ही (तन्वः वृधानः) हम जीवों के शरीरों की वृद्धि करता हुआ (हविषि) आदान करने योग्य अन्नादि में (स्वयं) आप से आप हमें (यजस्व) संयुक्त करता है। अथवा (हविषि तन्वं वृधानः स्वयं यजस्व) अन्न के आधार पर शरीरों की वृद्धि करता हुआ आप से आप सब सुसंगत करता या समस्त भोग्य सुख प्रदान करता है।

विश्वकर्मन्हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये ऽअभितः सपत्ना ऽइहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥२२॥

भा०—राजा के पक्ष में—हे (विश्वकर्मन्) समस्त राष्ट्र के विधातः ! या राष्ट्र के समस्त उत्तम कर्मों के कर्त्तः ! तू (हविषा) कर के आदान और राष्ट्रों के विजय के कार्यों से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (स्वयं) अपने आप सामर्थ्य से (पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी और सूर्य के समान प्रजा और तेजस्वी राजा दोनो के विभागों को (यजस्व) सुसंगत, संगठित कर । पर उनको ऐसे मित्र भाव में बांधे रख जिससे (अभितः) चारों ओर के (अन्ये सपत्नाः) और दूसरे शत्रु गण (मुह्यन्तु) मोह में पड़े रहें । वे किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जायं और फोड़ फाड़ करने में असमर्थ होकर लाचार बने रहें । और (इह) इस राष्ट्र में (अस्माकं) हमारे बीच में (मघवा) धन ऐश्वर्य से सम्पन्न पुरुष (सूरिः) विद्वान् (अस्तु) हो वह मूर्ख न रहे जिससे शत्रु के बहकावे मे न आ जावे ।

परमेश्वर के पक्ष में—(हविषा) समस्त संसार को अपने वश करने वाले सामर्थ्य से (वावृधान) बढ़ता हुआ हे (विश्वकर्मन्) विश्व के कर्तः ! परमेश्वर ! तू (पृथिवीं द्याम् उत स्वयं यजस्व) द्यौर और पृथिवी को परस्पर सुसंगत करता, दोनो को एक दूसरे के आश्रित करता है । (अन्ये सपत्नाः) अन्य समान पतित्व या ईश्वरत्व चाहने वाले बड़े ऐश्वर्यवान्, विभूतिमान् जीव भी तेरे इस महान् सामर्थ्य को देख कर मुग्ध होते हैं । कहते हैं कि तू ही (इह) यहां, इस संसार में हमारा (मघवा) एकमात्र ईश्वर और (सूरिः) एकमात्र ज्ञानप्रद विद्वान् (अस्तु) है ।

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे ऽअद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥२३॥

भा०—राजा के पक्ष में—(वाचस्पतिम्) वाक्, वाणी, आज्ञा

वचनों, शासनों के स्वामी (विश्वकर्माणम्) राष्ट्र के समस्त कार्यों का प्रवर्त्तक (मनोजुवम्) मन के समान गति करनेवाली अर्थात् जिस प्रकार इन्द्रियों में और शरीर में मन, चेष्टा और चेतना का सञ्चार करता है उनको व्यवस्था मे रखता और सब का भोग भी करता है, उसी प्रकार राष्ट्र के शासक अधिकारियों को सञ्चालन करने और उनको सचेत रखने और राष्ट्र शरीर से नाना भोग प्राप्त करने वाले राजा को हम (अद्य) आज, सदा (ऊतये) रक्षा के लिये (हुवेम) बुलाते हैं। (स) वह (न) हमारे (विश्वा) समस्त (हवनानि) आह्वानो और पुकारों को (जोषत्) प्रेम से श्रवण करता है। क्योंकि वह (अवसे) रक्षा करने के लिये ही (विश्वशम्भू) समस्त राष्ट्र का कल्याण करने वाला और (साधुकर्मा) उत्तम कर्मों का करनेवाला है। वह रक्षा-कार्य से 'विश्वशम्भू' और साधुकर्मा होने से ही 'विश्वकर्मा' है।

ईश्वर-पक्ष में—ईश्वर-वाणी, वेद वाणी, समस्त ज्ञान का स्वामी, विश्व का कर्त्ता और विश्व के समस्त कार्यों का भी कर्त्ता मनोगम्य है, उसको हम अपनी रक्षा के लिये पुकारते हैं। वह हमारे आत्मा की पापों से रक्षा करे। वह हमारी सब पुकारो को प्रेम से सुनता है। वह सब का कल्याणकारी और श्रेष्ठ कर्म करने हारा, उपकारी है। विशेष व्याख्या देखो अ० ८। ४५ ॥

विश्व॑कर्मन् ह॒विषा॒ वर्ध॑नेन त्रा॒तार॒मिन्द्र॑मकृणोरव॒ध्यम्।
तस्मै॒ विशः॒ सम॑नमन्त पू॒र्वीर॒यमु॒ग्रो वि॒हव्यो॒ यथास॑त् ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ८। ४५ ॥

चक्षु॑षः पि॒ता मन॑सा॒ हि धीरो॑ घृ॒तमे॑ने ऽअजन॒न्नम्न॑माने।
य॒देदन्ता॒ ऽअद॑दृहन्त॒ पूर्व॒ ऽआदिद्द्यावा॑पृथि॒वी ऽअ॑प्रथेताम् ॥२५॥

[२५–३१] ऋ० १० । ८ ॥ १-७ ॥

भा०—राजा के पक्ष में-(यदा इत्) जब ही (पूर्वे) पूर्व के विद्वान्

लोग (अन्ता) सीमा भागों को (अदृहन्त) विस्तृत करके स्थिर कर लेते हैं। (आत् इत्) उसके बाद ही (द्यावापृथिवी) सूर्य पृथिवी के समान एक दूसरे के उपकारक राजा और प्रजा भी दोनों (अप्रथेताम्) विस्तार को प्राप्त होते है। और (चक्षुषः पिता) सब प्रजा पर निरीक्षण करने वाले राजा का (पिता) पालक, विद्वान् पुरोहित ही (धीरः) बुद्धिमान् होकर (मनसा) अपने ज्ञान से (घृतम्) तेज और ज्ञान-बल को (अजनत्) उत्पन्न या प्रकट करता है और (एने) इन दोनों को (नम्नमाने) एक दूसरे के प्रति आदर से झुकने वाले विनयशील बनाता है। विद्वान् लोग ही राजा प्रजा को परस्पर मिलाते हैं और दोनों को एक दूसरे के प्रति विनीत बनाते और वे ही राज्य की सीमाओं को और व्यवस्थाओं को बनाते है।

ईश्वर के पक्ष में—(यदा इत्) जबही (अन्ता) सीमाएं अर्थात् प्रकृति के विरल परमाणु (अदृहन्त) कुछ घनी भूत होकर दृढ़ हो गये तो (आत् इत्) तभी (द्यावापृथिवी अप्रथेताम्) आकाश और भूमि दोनों पृथक् २ हो गये। बीच का अवकाश प्रकट हो गया। (धीरः) जगत् को धारण करने हारे (मनसा) अपने मन, संकल्प के बल से ही (नम्नमाने एने) एक दूसरे के प्रति झुकने वाले इन दोनों के प्रति (घृतम् अजनत्) जल को प्रकट किया अर्थात् पृथ्वी से जल ही ऊपर को सूक्ष्म होकर उठता है। सूर्य से किरण पृथिवी पर पड़ती हैं। पुनः भूमि उत्तम होती है। फिर जलही आकाश से नीचे आता है अर्थात् दोनों को परस्पर सम्बन्ध विधायक जल ही है।

स्त्री पुरुष के पक्ष में—जब विद्वान् लोग दोनों स्त्री पुरुषों के (अन्ता) विवाह द्वारा अंचरे बांध देते हैं तभी वे (द्यावापृथिवी अप्रथेताम्) नरनारी सूर्य और पृथिवी के से सम्बन्ध से मिले दीखते हैं। पुरुष सूर्य के समान तेजस्वी, तेज रूप वीर्य का प्रक्षेपक होता है और पृथिवी स्त्री बीज को भीतर धारण

करने हारी होती है। तत्र (चक्षुष पिता) आंख का पालक, स्नेहमय चक्षु का पालक प्राण (एने नम्नमाने प्रति) इनको एक दूसरे के प्रति झुकते हुए या परस्पर संगत होते हुए इनके बीच में (घृतम्) स्नेह या 'तेज', वीर्य को (अजनत्) उत्पन्न कर देता है।

विश्वकर्म्मा विमना ऽआद्विहाया धाता विधाता परमोत सुन्दृक्। तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्त ऽऋषीन् पर ऽएकमाहुः २६

भा०—राजा के पक्ष में-(विश्वकर्मा) पूर्वोक्त राष्ट्र के समस्त कार्यों का सम्पादक राजा (विमना) विविध विज्ञानो से युक्त अथवा विशेष रूप से मननशील होकर (आत् विहाया) फिर स्वयं विविध कार्यों व्यवहारों में ज्ञानपूर्वक प्राप्त होता है और पुनः (धाता) सबका पोषण करने वाला, (विधाता) राष्ट्र के विविध अंगो का निर्माता, (परमा) सर्वोच्च पदपर विराजमान और (संदृक्) समस्त राष्ट्र के कार्यों और प्रजा के व्यवहारों को देखने हारा होता है। (तेषाम्) उन प्रजा जनो के (इष्टानि) समस्त अभिलषित सुख के पदार्थ (इषा) अन्न के सहित उसी के आश्रय पर (सम् मदन्ति) हर्ष और आनन्दप्रद होते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं (यत्र) जहां (सप्त ऋषीन्) शरीर गत सातों प्राणों के समान राष्ट्र के मुख्य मन्त्रद्रष्टा सात प्रधानामात्यों को (पर) अपने से भी उत्कृष्ट राजा में (एकम्) एकाकार हुए (आहुः) बतलाते हैं।

ईश्वरपक्ष में-वह विश्वस्रष्टा, विज्ञानवान्, व्यापक, पालक पोषक, कर्त्ता परम द्रष्टा है। जिसमें समस्त जीवों के (इष्टानि) प्राप्य कर्मफल आश्रित हैं। और जिसके आश्रय पर सर्व जीव (इषा) अन्न तथा कर्म फल द्वारा खूब हर्षित होते हैं। और जहां सातों (ऋषीन्) गतिशील प्रकृति के मुख्य विकारों को भी परब्रह्म में एकाकार हुआ बतलाते हैं। अथवा-(यत्र तेषाम् इष्टानि) जिसके वश में जीवों के इष्ट कर्मफल हैं।

(यत्र सप्त ऋषीन् प्राप्य जीवाः इषा सम्मदन्ति) और जिसके आधार पर जीव अपने अन्नादि, कर्म फल से तृप्त होते हैं। औ (य परः) जो सब से उत्कृष्ट है (यत् एकम् आहुः) जिसको एक, अद्वितीय बतलाते हैं।

आत्मापक्ष मे—आत्मा विश्वकर्मा है। वह विशेष मन रूप उपकरण वाला, सब में व्यापक, सब प्राणों का पोषक, कर्त्ता, परम द्रष्टा है प्राणों की वाञ्छित चेष्टाएं उसी में आश्रित हैं। और (इषा) इसी की इच्छा या प्रेरणा से (सम्मदन्ति) भली प्रकार तृप्त होते हैं। जिसमे सातों शीर्ष गत प्राणों को एकाकार मानते हैं। वही सब से पर, उत्कृष्ट है।

यो नः॑ पि॒ता ज॑नि॒ता यो वि॑धा॒ता धामा॑नि॒ वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
यो दे॒वानां॑ नाम॒धा ऽएक॑ ऽए॒व तꣳ स॑म्प्र॒श्नं भुव॑ना यन्त्य॒न्या २७

भा०—राजा के पक्ष में—(यः) जो राजा (नः पिताः) हमारा पालक है (जनिता) सब राष्ट्र के कार्यों का प्रकट करने वाला, या उत्पादक पिता के समान हमारी स्थिति का कारण, (यः विधाता) जो विशेष नियम व्यवस्थाओं का कर्त्ता धर्त्ता, होकर (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों को और (धामानि) धारक सामर्थ्यों, तेजो और अधिकार पदों को (वेद) जनता और प्राप्त करता है। (यः) जो (देवानाम्) सब विद्वान् शासको या अधीन विजिगीषु नायकों के (नामधा) नामो का स्वयं धारण करने वाला (एक. एव) एक ही है (तम्) उस (सम्प्रश्नम्) सब के प्रश्न करने योग्य अर्थात् आज्ञा प्राप्त करने योग्य को आश्रय करके (अन्या भुवना यान्ति) और सब लोग और राष्ट्र के अंग विभाग चल रहे हैं। सभी अधीन लोग राजा से पूछ कर ही काम करते हैं इस लिये राजा 'सम्प्रश्न' है।

ईश्वर के पक्ष में—जो हमारा पालक, उत्पादक, विशेष धारक पोषक, है। जो समस्त भुवनो, लोकों और (धामानि) तेजो और विश्व के धारक

सामर्थ्यों को प्राप्त कर रहा है। जो समस्त (देवाना) देवों, दिव्य पदार्थों के नामों को स्वयं धारण करता है। अर्थात् सूर्य, चन्द्र आदि भी जिस के नाम हैं वह (एक एव) अद्वितीय ही है (तम् सम्प्रश्नं) उस सम्यग् रीति से सभी से जिज्ञासा करने योग्य परमपद का आश्रय करके (अन्या भुवना) और सब लोक (यन्ति) गति करते हैं। सभी परमेश्वर के विषय में तर्क वितर्क जिज्ञासा करते हैं इसलिये वह 'सम्प्रश्न' है।

अध्यात्म में-वह आत्मा (न) हम प्राणों का पालक धारक है, वह सब के (धामानि) तेजों को धारण करता है। सब (देवाना) प्राणों का नाम या स्वरूप वह स्वय धारण करता है। वह सर्व जिज्ञास्य है उसके आश्रय पर (भुवना) उससे उत्पन्न समस्त प्राण चेष्टा कर रहे हैं।

त ऽआयंज त द्रविंणꣳ समस्मा ऽऋषंयः पूर्वे जरितारो न भूना। असूर्त्ते सूर्त्ते रजंसि निषत्ते ये भूतानिं समकृंण्वन्निमानिं ॥ २८ ॥

भा०—राजा के पक्ष में—(ते ऋषय) वे राजनीति के मन्त्रद्रष्टा लोग, मुख्य महामात्य लोग (अस्मै) इस राष्ट्रवासी प्रजाजन को (पूर्वे जरितार: न) अपने से पूर्व के विद्वान् नीति शास्त्र के प्रवक्ताओं के समान ही (भूना) बहुत अधिक (द्रविणम्) धन ऐश्वर्य (सम् आयजन्त) प्रदान करते हैं। और (ये) जो (असूर्त्ते) अप्रत्यक्ष परोक्ष अर्थात् दूर के और (सूर्त्ते) प्रत्यक्ष, समीप के, (निषत्ते) अपने अधीन स्थिरता से प्राप्त (रजसि) प्रदेश में (इमानि भूतानि) इन समस्त प्रजास्थ प्राणियों को (सम्-आकृण्वन्) उत्तम रीति से संस्कृत करते, शिक्षित करते एवं सुसभ्य बनाने का यत्न करते हैं।

राजा के मन्त्रद्रष्टा विद्वान् अपने अधीन दूर समीप सभी देशों की प्रजाओं को शिक्षित सभ्य बनाने का उद्योग करें।

ईश्वर के पक्ष में—(ते ऋषय:) वे पूर्व के ऋषि, प्रकृति की सातों विकार

आदि महान् शक्तियां (जरितारः) विद्वान् उपदेशकों के समान (अस्मै) इस जीव सर्ग की (भूना द्रविणं आयजन्त) बहुत २ ऐश्वर्य प्रदान करते हैं अर्थात् पाचों भूत, अहंकार और महत्तत्व प्राणादि पाच, सूत्रात्मा और धनञ्जय ये सातो जीवों को बहुत विभूति प्रदान करते हैं। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रजोगुण में विराजमान् प्राणियों को ये ही विशेष २ रूप से उत्पन्न करते हैं।

पुरो दिवा पर ऽएना पृथिव्या पुरो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।
कᳯ स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त पूर्वे २६

भा०—राजा के पक्ष मे-[प्र०] (दिवा परः) सूर्य से भी गुणों में पर अर्थात् उत्कृष्ट (एना पृथिव्या पर) इस पृथिवी से भी गुणो मे उत्कृष्ट, (देवेभिः) विद्वानों से और (असुरै) अविद्वान्, केवल प्राणधारी बलवान् पुरुषों से भी (परः) ऊंचा (यत् अस्ति) जो पदाधिकारी है वह कौन है ? और (आप.) आप्त प्रजाएं (कं स्वित्) किस (प्रथमम्) सर्वश्रेष्ठ को (गर्भम्) राष्ट्र के ग्रहण मे समर्थ जानकर अपने वीच मे (दध्रे) धारण करती हैं। (यत्र) जिसके आश्रय पर (पूर्व) शक्तियो मे पूर्ण (देवा.) समस्त विद्वान् और राजा गण (सम् अपश्यन्त) राष्ट्र के कार्यों का भली प्रकार आलोचन या विचार करते हैं। वह कौन है ? (उत्तर) राजा।

ईश्वर के पक्ष में-(दिवः परः) आकाश और सूर्य से भी परे, पृथिवी से भी परे, (देवेभिः) दिव्य पदार्थों और प्राणो से भी परे, (असुरैः) काल रूप वर्ष आदि से भी परे कौन है ? (आप) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु किस शक्ति को प्रथम अपने भीतर धारण करते हैं ? और (यत्र) किसमें (पूर्वे देवाः पूर्ण शक्तियुक्त दिव्य पदार्थ भी (सम् अपश्यन्त) अपने को एकत्र हुआ पाते है। या किसके आश्रय पर (पूर्वे देवाः) पूर्ण विद्वान् पुरुष (सम् अपश्यन्त) सम्यग् दर्शन करते हैं। (उत्तर) ब्रह्म।

तमिद् गर्भं प्रथमं दध्र ऽआपो यत्रं देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥३०॥

भा०—पूर्व प्रश्न का उत्तर। राजा के पक्ष में— (तम्) उस (प्रथमम्) सर्वश्रेष्ठ (गर्भम्) राष्ट्र को ग्रहण करने में समर्थ या प्रजा द्वारा राजा स्वीकार करने और आश्रय रूप से ग्रहण करने योग्य पुरुष को (आपः) आप्त प्रजाएं (दध्रे) धारण करती हैं (यत्र) जिसका आश्रय लेकर (देवाः) समस्त विद्वान् गण और शासक (सम् अगच्छन्त) एकत्र होते और व्यवस्था में संगठित हो जाते हैं। (अजस्य) अनुत्पन्न, अप्रकट रूप में विद्यमान राज्य के (नाभौ) नाभि, या केन्द्र भाग में (अधि) सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप से (एकम्) उस एक पद को (अर्पितम्) स्थापित किया जाता है (यस्मिन्) जिस पर आश्रित होकर (विश्वानि भुवनानि) समस्त चर अचर प्राणि और प्रजाएं (तस्थुः) राष्ट्र में स्थिर होकर रहते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—(तम् इत् प्रथमम्) उसही सर्वश्रेष्ठ सबसे प्रथम विद्यमान परमेश्वर के (आपः) प्रकृति के कारण परिमाणु अपने (गर्भम् दध्रे) गर्भ में धारण करते हैं (यत्र) जिसके आश्रित (विश्वे देवाः सम् अगच्छन्त) समस्त दिव्य शक्तियां, पांचों भूत आदि वैकारिक पदार्थ एकत्र होकर एक काल में व्यवस्थित हैं। वस्तुतः (अजस्य) अव्यक्त रूप से विद्यमान संसार के (नाभौ) नाभि, केन्द्र अथवा उसको बांधने वाले तत्व के रूप में (एकम्) एक परम तत्व (अधि अर्पितम्) सर्वोपरि विद्यमान है (यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः) जिसमें समस्त भुवन, उत्पन्न लोक आश्रय पाकर स्थिर हैं।

न तं विदाथ य ऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप ऽउक्थशासश्चरन्ति ॥ ३१ ॥

भा०—राजा के पक्ष मे—हे प्रजाजनो ! (तं न विदाथ) तुम लोग उसको नहीं जानते, नही देखते (यः इमा जजान) इन समस्त राज्य-कार्यों को प्रकट करता है । (अन्यत्) और वह (युष्माकम्) तुम लोगो के ही (अन्तर) बीच में (बभूव) रहता है । (जल्प्या) केवल बातें कहने वाले (असुतृपः) प्राणमात्र लेकर सन्तुष्ट रहने वाले (उक्थशासः) राजाज्ञा के अनुसार शासन करने वाले लोग भी (नीहारेण प्रावृता) मानो कोहरे मे छिपे हुए के समान होकर विचरते हैं । वे भी राजा के परम पद को भली प्रकार नहीं जानते हैं । वे केवल अपने वेतन या प्राण वृत्ति से ही तृप्त रहते हैं ।

ईश्वर के पक्ष में—हे मनुष्यो ! (य. इमा जजान) जो इन समस्त लोको को पैदा करता है (त न विदाथ) तुम लोग उसको नहीं जानते । (अन्यत्) वह और ही तत्व है जो सब से भिन्न होकर भी (युष्माकम् अन्तरं) तुम लोगो के भी बीच मे (बभूव) व्यापक है । (नीहारेण प्रावृता) कोहरे या धुन्ध से घिरे हुए पुरुषो के समान दूर तक न देखने वाले लघु दृष्टि होकर (जल्प्या) केवल मौखिक वार्त्तालाप या वाद विवाद में ही लिपटे हुए होकर केवल (असुतृपः) प्राण लेकर ही तृप्त होने वाले, (उक्थशास) ज्ञान के योग्य तत्व का अनुशासन करने वाले बन कर (चरन्ति) विचरते हैं। अर्थात् लोग उसके विषय शास्त्रो की बातें बहुत करते है, परन्तु साक्षात् नही करते ।

विश्वकर्मा ह्यजनिष्ट देव आदिद्गन्धर्वो अभवद् द्वितीयः ।
तृतीयः पिता जनितौषधीनामपां गर्भं व्यदधात्पुरुत्रा ॥ ३२ ॥

स्वराडार्षी पंक्तिः । पञ्चम ॥

भा०—राजा के पक्ष मे—(विश्वकर्मा) राष्ट्र के समस्त उत्तम कार्यों

३२—इति वैश्वकर्मण होमः ॥

का सञ्चालक, प्रवर्त्तक (हि) निश्चय से (देवः) वह सर्वप्रद, सर्वविजयी राज सबसे प्रथम (अजनिष्ट) प्रकट होता है। (आत् इत्) उसके बाद (गन्धर्वः) गौ अर्थात् पृथिवी का धारण करने वाला भूमिपति, गौ वाणी शासनाज्ञा का धारक (अभवत्) होता है। और फिर (तृतीयः) तीसरे वह (ओपधीनाम्) ओप अर्थात् शत्रु के दाह करने के वीर्य को धारण करने वाली सेनाओं का पालक और उत्पादक है। वह ही (पुरुत्रा) बहुतो को रक्षा करने मे समर्थ होकर (अपाम्) आप्त प्रजाजनों का (गर्भम्) गर्भ अर्थात् ग्रहण करने वाले, उनको वश करने वाले राष्ट्र को (व्यदधात्) विविध प्रकार से विधान करता है। विविध व्यवस्थाओं से उनको व्यवस्थित करता है। राजा के क्रम से चार रूप हुए प्रथम 'देव' विजिगीषु, दूसरा 'गन्धर्व' विजित भूमि का स्वामी, तृतीय सेनाओं का पालक और उत्पादक, चतुर्थ प्रजाओं का वशकर्त्ता।

ईश्वरपक्ष में—सब से प्रथम (विश्वकर्मा देव' हि अजनिष्ट) विश्व का कर्त्ता प्रकाशस्वरूप विद्यमान था। (आत् इत् द्वितीय गन्धर्व अभवत्) फिर उससे गौ, वाणी वेद, और पृथिवी का धारक सूर्य प्रकट हुआ यह ईश्वरीय शक्ति का दूसरा रूप था। (तृतीय ओषधीना जनिता पिता च) तीसरा, ओषधियों-घास लता वृक्षादि का पालक और उत्पादक मेघरूप है। वह (अपा गर्भम् पुरुत्रा व्यदधात्) मेघ होकर प्रजापति बहुत से जीव सर्गों के पालने में समर्थ होकर जलों को अपने गर्भ में धारण करता है।

अध्यात्म में—विश्वकर्मा आत्मा है। वह वाणी का प्राण द्वारा धारक होने से गन्धर्व है। ओषधि=ज्ञान-धारक इन्द्रियगण का पालक और उत्पादक है। वह (अपां गर्भम्) ज्ञानों और कर्मों को ग्रहण करने में समर्थ होता है।

आशुः शिशा॑नो वृष॒भो न भी॒मो घ॑नाघ॒नः क्षोभ॑णश्चर्षणी॒नाम् ।
सं॒क्रन्द॑नोऽनिमि॒ष ऽए॑कवी॒रः श॒तꣳ सेना॑ ऽअजयत्सा॒कमिन्द्रः॑ ३३

[३३-४४] ऋ० १० । १०३ । १–१२ ॥

३३ —४४ अप्रतिरथ ऐन्द्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुभः ॥ अप्रतिरथ सूक्तम् ॥

भा०—सेनापति रूप से इन्द्र का वर्णन । (आशुः) अति वेगवान्, शीघ्रगामी, बड़े वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाला (शिशानः) अपने हथियारों को खूब तीक्ष्ण करके रखने वाला अथवा (शिशानः) शत्रु-सेनाओं को काटता फाटता, (वृषभ न भीमः) मदमत्त वृषभ के समान भयकार अथवा मेघ के समान शत्रुओं पर शर वर्षण करने वाला होकर अति भयंकर (घनाघनः) शत्रुओं को निरन्तर या वार वार हनन करने वाला, अथवा मारो मारो इस प्रकार सेनाओं को आज्ञा देने वाला, (चर्षणीनाम् क्षोभणः) समस्त मनुष्यों को विक्षुब्ध कर देने वाला, (संक्रन्दनः) शत्रुओं को अच्छी प्रकार रुलाने या ललकारने वाला, (अनिमिष) कभी न झपकने वाला, सदा सावधान एवं निर्भय, प्रमाद रहित, (एक वीरः) एक मात्र वीर्यवान् शूरवीर (इन्द्रः) शत्रुओं का विदारण करने में समर्थ पुरुष ही (शत सेनाः) सैकड़ो नायको सहित दलों, या सेनाओं को (साकम्) एकही साथ (अजयत्) विजय करता है । जो पुरुष ऐसा शूरवीर हो वही सेनापति इन्द्र पद पर विराजे । शत० ९।२।३।६॥

सं॒क्रन्द॑नेनानिमि॒षेण॑ जि॒ष्णुना॑ युत्का॒रेण॑ दुश्च्यव॒नेन॑ धृ॒ष्णुना॑ ।
तदिन्द्रे॑ण जयत॒ तत्स॑हध्वं॒ युधो॑ नर॒ ऽइषु॑हस्तेन॒ वृष्णा॑ ॥ ३४ ॥

भा०—हे (युध नरः) योद्धा नायक वीर पुरुषो ! तुम लोग (संक्रन्दनेन) दुष्ट शत्रुओं को रुलाने वाले या उनको ललकारने वाले (अनिमिषेण) निरन्तर सावधान, न चूकने वाले (जिष्णुना), सदा जयशील, (युत्कारेण) युद्ध करने वाले, अतिवीर (दुश्च्यवनेन) शत्रुओं से कभी पराजित न होने वाले मैदान छोड़ कर कभी न भागने वाले दृढ़,

(धृष्णुना) शत्रुओं का मानभङ्ग करने में समर्थ, (इषुहस्तेन) बाणों को अपने हाथ में लेने वाले अथवा बाणों से मारने वाले, (वृष्णा) बलवान्, (इन्द्रेण) शत्रु-गढ़ों को तोड़ने वाले, 'इन्द्र' नाम मुख्य सेनापति के साथ (तत् जयत) उस लक्ष्य भूत युद्ध का विजय करो (तत्) उस दूरस्थ शत्रु-गण को (सहध्वम्) पराजित करो।

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन। सꣳसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३५॥

भा०—(स) वह (वशी) अपने भीतरी काम, क्रोध, लोभ, मोह मद, मात्सर्य इन छः शत्रुओं पर वश कर्त्ता या राष्ट्र का वशयिता अथवा कान्तिमान्, प्रजाओं का प्रिय, होकर (इषुहस्तैः) बाण आदि को दूर फेंकने वाले अस्त्रों को हाथ में लिये (निषङ्गिभिः) खड्गधारी वीरों के साथ (संस्रष्टा) मिल कर उनके बीच उत्तम कर्त्ता धर्त्ता एवं व्यवस्थापक होकर (गणेन) अपने गण, सैन्यदल सहित (युधः) युद्ध करने वाला होता है। (स) वह ही (सोमपाः) सोम रस का पान करने वाला अथवा 'सोम' राजा और राष्ट्र का पालन करने हारा, (बाहुशर्धी) बाहुबल, क्षात्रबल से युक्त होकर (संसृष्टजित्) खूब परस्पर मिलकर आये, सुव्यवस्थित शत्रु सेनादल का विजेता होता है। (स) और वह ही (उग्रधन्वा) भयङ्कर धनुर्धर होकर (प्रतिहिताभिः) प्रति पक्ष पर फेंके गये बाणों से (अस्ता) शत्रुओं का नाशक अथवा (प्रतिहिताभिः) साक्षात् धारण की वशीकृत या मुकाबले पर खड़ी की गयी, अपनी सेनाओं से (अस्ता) शत्रु ऊपर शस्त्रास्त्रों का फेंकने वाला होता है।

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ२ऽअपबाधमानः। प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥३६॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़ी भारी विशाल सेना के पालक मुख्य

सेनापते ! तू (रक्षोहा) दुष्ट पुरुषो का घातक है। तू (रथेन) रथ से, अर्थात् 'रथ' नामक सेना के अग से, रथो के दल से, (अमित्रान्) शत्रुओं को (अपबाधमानः) दूर से ही मारता हुआ उनको पीड़ित करता हुआ (परिदीया.) युद्ध मे आगे बढ़ और शत्रु का नाश कर और (युधा) योद्धा दल, पदाति सेना दल से (प्रमृण) हमारा नाश करने वाली (सेनाः) शत्रु सेनाओं को (प्रभञ्जन्) खूब छिन्न भिन्न करके उनको (जयन्) जीतता हुआ (अस्माकं रथानाम्) हमारे रथों का (अविता एधि) रक्षक बना रह।

बलविज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः । अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥ ३७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं का घात करने और उनके गढ़ों और व्यूहों को तोड़न फोड़ने में समर्थ इन्द्र ! तू (बल-विज्ञाय) सेना विज्ञान में चतुर अर्थात् सेनाओं के व्यूह बनाने और उनके प्रयोग और संचालन मे कुशल, एवं शत्रु के बलों को भी जानने वाला और सेना के द्वारा ही उत्तम नायक रूप से जाना गया (स्थविर) स्वय ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध या युद्ध में स्थिर, (प्रवीर) स्वयं उत्तम शूरवीर, और उत्तम वीर्यवान् पुरुषो से सम्पन्न, (सहस्वान्) शत्रु विजयी बल से युक्त, (वाजी) वेगवान्, (उग्रः) भयानक (अभिवीरः) प्रिय, वीरो से घिरा हुआ या वीरों को पराजय करने वाला, (अभिसत्वा) बलवान् पुरुषो से सम्पन्न, (सहोजाः) बल के कारण ही विख्यात और (गोवित्) पृथिवी को विजय से प्राप्त करने वाला अथवा आज्ञा, वाणी का स्वामी होकर (जैत्रम्) विजयशील योधाओं से युक्त (रथम्) रथ पर (आतिष्ठ) सवार हो और विजय को निकल।

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमꣳ सजाता ऽअनु वीरयध्वमिन्द्रꣳ सखायो ऽअनु सꣳरभध्वम्

भा०—हे (सजाताः) बल, कीर्त्ति, वंश आदि से समान रूप से विख्यात वीर पुरुषो ! आप लोग (गोत्रभिदम्) शत्रुओं के गोत्रों को तोड़ने वाले शत्रु-वंशों के नाशक, (गोविदम्) पृथ्वी के प्राप्त करने वाले (वज्रबाहुम्) बाहु में वीर्यवान् (अजम जयन्तम्) संग्राम का विजय करने वाले और (ओजसा) बल पराक्रम से शत्रुओं को खूब (प्रमृणन्तम्) विनाश करने वाले (इमम् इन्द्रम्) इस इन्द्र सेनापति को (अनु वीरयध्वम्) अनुसरण करके उसके अधीन रहकर (वीरयध्वम्) वीरता के कार्य करो, विक्रम पूर्वक युद्ध करो। हे (सखायः) मित्र लोगो ! आप लोग उसके ही (अनु) अनुकूल रहकर (सम् रभध्वम्) अच्छी प्रकार युद्ध आरम्भ करो।

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाडयुध्योऽस्माकꣳ सेना अवतु प्र युत्सु ॥३६॥

भा०—(सहसा) अपने शत्रुपराजयकारी बल से (गोत्राणि) शत्रुओं के कुलों पर (अभि गाहमानः) आक्रमण करता हुआ (अदयः) दया रहित, (वीरः) शूरवीर (शतमन्युः) अनेक प्रकार के कोप करने में समर्थ (दुश्च्यवनः) शत्रु से विचलित न होने वाला, (पृतनाषाड्) शत्रु-सेनाओं को विजय करने में समर्थ, (अयुध्यः) युद्ध में शत्रुओं से अजेय, (इन्द्रः) इन्द्र, सेनापति (युत्सु) संग्रामों में और योद्धाओं के बीच में (अस्माकं सेनाः प्र अवतु) हमारी सेनाओं की उत्तम रीति से रक्षा करे।

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥ ४० ॥

भा०—(इन्द्रः) इन्द्र, परम ऐश्वर्ययुक्त, सेनापति जो शत्रु के व्यूहों को तोड़ने में समर्थ हो वह (आसाम्) इन सेनाओं का (नेता)

नायक होकर पीछे से सेना को मार्ग पर चलावे। (बृहस्पति) बड़े २ अधिकारो का अध्यक्ष या बड़े २ दलों का स्वामी 'बृहस्पतिः' (दक्षिणा) अपनी सेना के दायें भाग मे होकर चले। (यज्ञ) व्यूहादि मे दलों को संगत या व्यवस्थित करने में कुशल पुरुष (पुरः एतु) आगे २ चले (सोम) सेना का प्रेरक या उत्साहवर्धक पुरुष बायें ओर होकर चले। और (जयन्तीनाम्) विजय करनेवाली (अभिभञ्जतीनाम्) शत्रुओं के दलों, दलों और गढ़ो को तोड़ती फोड़ती हुई (देवसेनानाम्) विजयी पुरुषो की सेनाओ के (अग्रम्) अग्र भाग मे (मरुत) शत्रुओ को मारने २. स र्थ एवं वायु के समान बलवान् शूरवीर पुरुष (यन्तु) चलें।

उव्वट के मत मे–इन्द्र सेनानायक हो और बृहस्पति उसका मन्त्री उसके साथ हो। यज्ञ दक्षिण मे और सोम आगे हो। अथवा यज्ञ और सोम दोनो सेना के दायीं ओर आगे के भाग मे हो।

इन्द्र॑स्य॒ वृष्णो॒ वरु॑णस्य॒ राज्ञ॑ आदि॒त्यानां॑म्म॒रुता॑ᳩ॒ शर्ध॑ऽउ॒ग्रम्।
म॒हाम॑नसां भुवनच्य॒वानां॒ घोषो॑ दे॒वानां॒ जय॑ता॒मुद॑स्थात् ॥४१॥

भा०—(वृष्ण.) बलवान्, (इन्द्रस्य) इन्द्र, सेनापति के और (वरुणस्य) प्रजा द्वारा स्वयं वरण किये गये राजा का और (आदित्यानाम् मरुताम्) आदित्य के समान पूर्ण ब्रह्मचारी, तेजस्वी और वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रुओ के बलो के नाशक योद्धाओं का (उग्रम् शर्धः) बड़ा उग्र, भयंकर बल और (महामनसाम्) बड़े मनस्वी, विज्ञानवान् (भुवनच्यवानाम्) भुवन को कपा देने वाले, समस्त भूलोक को विचलित कर देने वाले (जयताम्) विजय करते हुए (देवानां) विजिगीषु राजाओं का (घोषः) नाद (उत् अस्थात्) उठे और फैले।

उद्ध॑र्षय मघव॒न्नायु॑धा॒न्युत्सत्व॑नां माम॒काना॒ं मना॑ᳩसि।
उद्वृ॑त्रहन् वा॒जिनां॒ वाजि॑ना॒न्युद्रथा॑नां॒ जय॑तां यन्तु॒ घोषाः॑ ॥४२॥

भा०—हे (मघवन्) प्रशस्त धनैश्वर्य सम्पन्न ! तू (सत्वनाम्) बलवान् (मामकानाम्) मेरे पक्ष के वीर पुरुषों के (आयुधानि) शस्त्र अस्त्रों को (उद् हर्षय) चमकवा, आवेश में ऊपर खड़े करवा। और (मनांसि उत्) मनों को भी बढ़वा दे। हे (वृत्रहन्) घेरने वाले शत्रु के नाशक सेनापते ! तू (वाजिनाम्) घुड़सवार सेनाओं के (वाजिनानि) शीघ्र गतियों को, चालों को (उद् हर्षय) चला। (जयताम्) विजय करने हारे (रथानाम्) रथों के (घोषाः) घोष, घोर शब्द (उद् यन्तु) ऊपर उठें।

अस्माकमिन्द्रः समृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ२ऽ उ देवा ऽअवता हवेषु ॥४३॥

भा०—(ध्वजेषु) रथों पर लगे झण्डों के (समृतेषु) उत्तम रीति से प्राप्त हो जाने पर (अस्माकम् इन्द्रः) हमारा शत्रुहन्ता नायक और (याः अस्माकं इषवः) जो हमारे बाण अर्थात् बाण आदि शस्त्रधारी योद्धा हैं (ताः) वे (जयन्तु) जीतें। (अस्माकं वीराः) हमारे वीर पुरुष युद्ध में (उत्तरे भवन्तु) ऊंचे होकर रहें। और (देवाः) विजयी पुरुष (हवेषु) संग्रामों में (अस्मान् उ अवत) हमारी ही रक्षा करें।

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥४४॥

भा०—हे (अप्वे) शत्रुओं को दूर भगा लेजाने वाली भय की प्रवृत्ति अथवा शरीर की उत्पन्न पीड़े ! अथवा भयंकर सेने ! तू (अमीषाम्) उन शत्रुओं के (चित्तं) चित्त को (प्रतिलोभयन्ती) साक्षात् मोहित करती हुई (अङ्गानि गृहाण) शत्रुओं के अंगों को जकड़ ले। और (परा इहि) स्वयं दूर भाग जा। (अभि प्र इहि) आगे २ बढ़ी चली जा। (शोकैः) ज्वाला की लपटों से शत्रुओं के (हृत्सु) हृदयों में (निर्दह) जलन पैदा

कर। और (अमित्राः) शत्रु गण (अन्धेन तमसा) गहरे अन्धकार, या अन्धकार देने वाले तम, शोक और पीड़ा दुःख से (सचन्ताम्) युक्त हो जांय।

अप्वा-'शरवीर राजस्त्रि' इति दया०। यदेनया 'विद्धो अपवीयते। व्याधिर्वा भय वा इति यास्कः। नि० ६। ३। ३॥

अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसशिते।
गच्छामित्रान् प्र पद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः॥ ४५॥

ऋ० ६। ७५। १६॥

४५-४६ अप्रतिरथ ऋषिः। प्रजापतिः विवस्वान्वेत्यंके। इषुर्देवता। आर्ष्यनुष्टुप्। गान्धार ॥

भा०—हे (शरव्ये) हिंसक या प्राणघातक साधनों की बनी हुई शरव्ये! शर वर्षाने वाली कले! हे (ब्रह्मसंशिते) बड़े भारी बल वीर्य से अति तीक्ष्ण, वेग वाली की गयी तू (अवसृष्टा) छोड़ी या चलाई जा कर (परापत) दूर तक जा और (गच्छ) इधर भी जा और (अमित्रान्) शत्रुओं तक (प्र पद्यस्व) आगे बढ़ी चली जा और उनतक पहुंच। (अमीषां) उन शत्रुओं में से (कञ्चन) किसी को भी (मा उत् शिषः) जीता बचा न छोड़।

अनेक बाणों या गोलियों को एकही साथ छोड़ने वाली तोप के समान कोई कला 'शरव्या' कहाती प्रतीत होती है। शरमयी इपुः शरव्य इति उव्वटः। 'शरमयी हेतिः शरव्या' इति महीधर। 'इषु' या 'हेति' जो किसी साधन को दूर फेंके वह कला 'इषु' या 'हेति' कहाती है।

अथवा—हे (ब्रह्मसंशिते शरव्ये) विद्वानों से प्रशंसित बाणविद्या की विदुषि स्त्रि! तू प्रेरित होकर जा, शत्रुओं को मार, उनमें से किसी को न छोड़॥

प्रेता जयता नर ऽइन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ॥४६॥ ऋ०१०।१०३।७३॥

योद्धारो देवता। विराडनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (नरः) वीर नेता पुरुषो ! (प्र इत) आगे बढ़ो । (जयत) विजय करो । (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक सेनापति (वः) तुमको (शर्म) गृह या रक्षा का साधन (यच्छतु) दे । (वः) तुम्हारे (बाहव) बाहुएं या शत्रुओं को पीड़ा देने वाले हथियार (उग्रा) उग्र, बड़े बलवान् भयकारी हों । (यथा) जिससे तुम लोग (अनाधृष्याः) शत्रु से कभी पछाड़ न खाने वाले (असथ) बने रहो ।

असौ या सेना मरुतः परेषामभ्यैति न ऽओजसा स्पर्द्धमाना ।
तां गूहत तमसापव्रतेन यथामी ऽअन्यो अन्यं न जानन् ॥ ४७ ॥

अथ० ३ । २ । ६ ॥

मरुतो अशास्यक्षत्रियो वा देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान तीव्र वेग से शत्रु रूप वृक्षों के अंगों को तोड़ते फोड़ते युद्ध में आक्रमण करने हारे वीर पुरुषो ! (असौ या) यह जो (परेषां सेना) शत्रुओं की सेना (ओजसा) बल पराक्रम से (स्पर्धमाना) हमसे स्पर्द्धा करती हुई, हमारा मुकाबला करती हुई (नः अभि एति) हमारी तरफ ही बढ़ी चली आरही है (ताम्) उसको (अपव्रतेन) सब कर्मों को या इन्द्रिय व्यापारों को नाश कर देने वाले, (तमसा) अन्धकार, धूमादि से या शोक और भय से (गूहत) घेर दो । (यथा) जिससे (अमी) ये लोग (अन्य अन्यम्) एक दूसरे को भी (न जानन्) न जान पावें । आंखों को भ्रमा देने या नाश कर देने वाले, धूम या कृत्रिम अन्धकार का प्रयोग करने का उपदेश वेद करता है ।

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तन्न ऽइन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥ ४८

इन्द्रादयो लिंगोक्ता । देवताः । पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम भूमि में (विशिखाः) शिखारहित या विविध शिखाओं वाले (कुमाराः) कुमारों बालकों के समान चपल,

(कुमारा कुत्सित दुःखदायी मार करने हारे, (विशिखा) विविध तीक्ष्ण शिखा या तेज़ धार वाले (बाणाः) घनघोर गर्जन करने वाले शस्त्रास्त्र (सम्पतन्ति) निरन्तर गिरते है (तत्) वह (इन्द्रः) शत्रु घातक इन्द्र, सेनापति (बृहस्पतिः) बड़ा भारी सेना या सभा का पालक स्वामी (अदिति) अखण्डित बल पराक्रम वाला राजा या तेजस्विनी सभा या अनथक परिश्रम करने वाली स्वयंसेवकसमिति (शर्म यच्छतु) हताहतो को सुख दे । और (विश्वाहा) सदा, सब दिनों (शर्म यच्छतु) सबको सुख दिया करे । (४८-४९) ऋ० ६।७५।१७ १८ ॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम् । उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥ ४९ ॥

सोमो वरुणो देवाश्च लिंगोक्ता लिंगोक्तः क्षत्रियो वा देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे वीर योद्धा, क्षत्रिय ! इन्द्र ! पुरुष ! (ते) तेरे (मर्माणि) आघात लगने से मृत्युजनक कोमल मर्मस्थानों को (वर्मणा) आघात से बचने वाले कवच से (छादयामि) ढकता हूं । (राजा सोमः) सौम्य गुण, दया आदि से युक्त अथवा ऐश्वर्यवान् राजा (त्वा) तुझको (अमृतेन) सर्व निवारक ओषधि और अन्न से (अनु वस्ताम्) तुझे ढके, तेरी रक्षा करे । (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ राजा ही (ते) तुझे (उरोः वरीयः) बहुतसे बहुत, अधिक धन (कृणोतु) प्रदान करे । और (जयन्तं त्वा) विजय करते हुए तुझे देख कर (देवा) विजयशील सैनिक भी (अनु मदन्तु) तेरे साथ प्रहर्षित हों या धनादि विजय-लक्ष्मी से तृप्त हों ।

उदेनमुत्तरां नयाग्ने घृतेनाहुत ।
रायस्पोषेण सᳬ सृज प्रजया च बहुं कृधि ॥ ५० ॥

४९—१ अथवा अत्र क्षत्रिय-एव देवता । तस्य सम्बोध्यत्वेनात्रप्रधानत्वा-दिति याज्ञि कोऽनन्तदेवः' ॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी आष्यनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे (घृतेन । तेज से या शस्त्रों के सञ्चालन रूप पराक्रम से (आहुत) प्रदीप्त ! (अग्ने) अग्रणी ! सेना नायक ! (एनम्) इस राष्ट्र और राष्ट्रपति को तू (उत्नय) ऊंचे पदपर बैठा और (उत्तराम् नय) और अन्यों से भी अधिक उच्चपद या प्रतिष्ठा पर प्राप्त करा । इसको (राय पोषेण) ऐश्वर्य की वृद्धि से संसृज) युक्त कर । (प्रजया च) और प्रजा से (बहु कृधि) बहुत, बहुतसे वीर पुरुषों से युक्त, बड़े समुदाय का स्वामी बना दे ।

इन्द्रेमं प्रतुरां नय सजातानामसद्वशी ।
समेनं वर्चसा सृज देवानां भागदा ऽअसत् ॥ ५१ ॥

इन्द्रो देवता आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धार ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! सेनापते ! (इम) इस राष्ट्रपति को (प्र-तराम्) बहुत उत्कृष्ट मार्ग से (नय) ले चल । जिससे वह (सजातानाम्) अपने समान वश और पद वालों को भी (वशी असत्) वश करने मे समर्थ हो । (एन) इसको (वर्चसा , ऐसे तेज और बल से (ससृज) युक्त कर जिससे यह (देवाना) समस्त विजयशील योद्धाओं, विद्वानों और शासक वर्गों को (भागदा.) अंश, उनके उचित वेतन आदि देने मे समर्थ (असत्) हो ।

यस्यं कुर्मो गृहे हुविस्तमंग्ने वर्द्धया त्वम् ।
तस्मैं देवा ऽअधिब्रुवन्नयं च ब्रह्मणस्पतिः ॥ ५२ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (यस्य गृहे) जिसके घर में या जिसके शासन में रह कर (हवि कुर्म) 'हवि' अन्न आदि पदार्थों आदान के प्रदान योग्य कर्मों को उत्पन्न करते है हे (अग्ने) अग्रणी

नायक ! (त्वम्) तू (तम्) उसको (वर्धय) बढ़ा । (देवाः) विद्वान् और विजिगीषु जन भी (तस्मै) उसको ही (अधिब्रुवन्) कहें कि (अयं च) यह ही (ब्रह्मण पति.) महान् बल, वीर्य या वेद या ब्रह्म, अन्न का पालक स्वामी अन्नदाता है । अथवा—(देवाः ब्रह्मणस्पतिः च तस्मै अधि-ब्रुवन्) विद्वान् पुरुष विद्वानों का भी पालक, वेदवित् पुरुष (तस्मै अधि-ब्रुवन्) उसको सर्वोच्च होने का उपदेश करें ।

उदु त्वा विश्वे देवा ऽअग्ने भरन्तु चित्तिभिः ।
स नो भव शिवस्त्वꣳ सुप्रतीको विभावसुः ॥ ५३ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धार. ॥

भा०—व्याख्या देखो (१२ । १३)

पञ्च दिशो दैवीर्यज्ञमवन्तु देवीरपामतिं दुर्मतिं बाधमानाः ।
रायस्पोषे यज्ञपतिमाभजन्ती रायस्पोषे ऽअधि यज्ञो ऽअस्थात् ॥ ५४ ॥

दिशो देवता । स्वराडार्षी त्रिष्टुप । धैवतः ॥

भा०—(दैवी.) देव, अर्थात् राजा या विजयशील प्रजाओं के अधीन (पञ्च) पांचों (दिशः) दिशाएं अर्थात् पांचों दिशाओं में रहने वाली प्रजाएं, अथवा पांच राजसभाएं (यज्ञम्) सत्कार करने और संगति करने योग्य राजा और राष्ट्र की (अवन्तु) रक्षा करें । (देवीः) और उत्तम विदुषी स्त्रियां और विदुषी प्रजाएं राजसभाएं (अमतिम्) अज्ञान और (दुर्मतिम्) दुष्ट विचारों को (बाधमाना) दूर करती हुई और (यज्ञपतिम्) यज्ञपति को (राय. पोषे) ऐश्वर्य के निमित्त (आभ-जन्ती) आश्रय करती हुई, यज्ञ की रक्षा करें । वृद्धि में जिससे (यज्ञ) समस्त राष्ट्र रूप यज्ञ (राय पोषे) ऐश्वर्य की वृद्धि में (अधि अस्थात्) स्थित रहे । शत० ६ । २ ३ । ८ ॥

५४—(५४–५६) पञ्च यज्ञाङ्गसाधनवादिन्य । सर्वा० ।

गृहस्थ पक्ष में—पांच दिशाओ के समान (देवी) विद्वान् स्त्रिया सब के अज्ञान और दुष्ट बुद्धि की नाश करती हुई (यज्ञपतिम्) गृहस्थ यज्ञ के स्वामी पतियों को सेवन करती एवं ऐश्वर्य का भागी बनाती हुई यज्ञ की रक्षा करें। गृहाश्रम ऐश्वर्य की वृद्धि में लगा रहे।

समिद्धे अग्नावधि मामहान ऽउक्थपत्र ऽईड्यो गृभीतः।
तप्तं घर्मं परिगृह्यायजन्तोर्जा यद्यज्ञमयजन्त देवा. ॥ ५५ ॥

अग्नि देवता। भुरिगार्षी पंक्ति.। पञ्चम स्वर ॥

भा०—(देवा) जिस प्रकार विद्वान् ऋत्विग् लोग (यत्) जब (तप्तम्) प्रतप्त (घर्मम्) सेचन योग्य घृत को (परि गृह्य) लेकर (अयजन्त) आहुति देते हैं और (यज्ञम्) उस पूजनीय परमेश्वर को लक्ष्य करके (ऊर्जा) अन्न द्वारा (समिद्धे अग्नौ) प्रदीप्त अग्नि में (अयजन्त) आहुति देते और यज्ञ करते हैं तब (अधि मामहान) अति अधिक पूजनीय (उक्थपत्र , वेद वचनों द्वारा ज्ञान करने योग्य (ईड्य) सर्व स्तुति योग्य परमेश्वर ही (गृभीत) ग्रहण किया जाता है अर्थात् यज्ञ मे उसी की प्रजा की जाती ह। उसी प्रकार (देवा) विजिगीषु वीर पुरुष (यत्) जब (तप्तम्) अति प्रतप्त, अति क्रुद्ध या शत्रुओं को तपाने मे समर्थ (घर्मम्) तेजस्वी राजा को (परिगृह्य) आश्रय करके (अयजन्त) उसका सत्कार करते और उसके आश्रय पर परस्पर मिल जाते हैं और (अग्नौ समिद्धे) अग्रणी नेता के अति प्रदीप्त, तेजस्वी, हो जाने पर (यत्) जब (यज्ञम्) संगति स्थान, सग्राम को (अयजन्त) करते हैं तब भी (ईड्य) सब के स्तुति योग्य (उक्थपत्र) शासन-आज्ञाओं से प्रजाओं को ज्ञापन य घोषणा करने वाला राजा ही (अधि मामहान) सर्वोपरि पूजनीय रूप से (गृभीत) स्वीकार किया जाता है। शत० ९। २। ३। ९ ॥

दैव्याय धर्त्रे जोष्ट्रे देवश्रीः श्रीमना. शतपयाः।
परिगृह्य देवा यज्ञमायन् देवा देवेभ्यो ऽअध्वर्यन्तो ऽअस्थु. ॥५६॥

अग्निर्देवता । विराडार्षी पंक्ति । पञ्चमः ॥

भा०—(देवाः) देव, विद्वान् पुरुष, (देवेभ्यः) विद्वानों के हित के लिये ही (अध्वर्यन्त) अपने हिंसा रहित आचरण एवं यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों की कामना करते (अस्थुः) रहते हैं। वे विद्वान् लोग जो (देवश्रीः) राजा के समान लक्ष्मी से युक्त, अथवा देवों, विद्वानों के निमित्त अपने धन वैभव को व्यय करने हारा, उदार, (श्रीमनाः) अपने चित्त में सेवनीय शुभ वृत्ति या पूज्य प्रभु को धारण करने वाला या लक्ष्मी शोभा को चाहने वाला, और (शतपयाः) सैकड़ों दूध या दुधार गौवों वाला, या सैकड़ों पुष्टि कारक अन्न आदि से सम्पन्न होता है उस सम्पन्न पुरुष को (देव्याय) दिव्य गुणों में सम्पन्न (धर्त्रे) जगत् के धारक, पोषक और (जोष्ट्रे) सबको प्रेम करने वाले परमेश्वर की स्तुति के लिये ही (परिगृह्य) आश्रय करके (यज्ञम् आयन्) यज्ञ करने के लिये आते हैं। शत० ९।२।३।१०॥

उसी प्रकार राष्ट्र पक्ष में—जो (देवश्री.) राजा के समान वैभव वाला, (श्रीमना.) राज्य वैभव को चाहने वाला, और (शतपयाः) सैकड़ों पोषण पदार्थों और बलों से युक्त होता है उसका (परिगृह्य) आश्रय लेकर (देवाः) विजिगीषु वीर जन (देव्याय) देवों के हितकारी, (धर्त्रे) सब के धारक (जोष्ट्रे) सब के प्रेमी पुरुष की वृद्धि या ऐसी राष्ट्र की वृद्धि के लिये (यज्ञम् आयन्) संग्राम में आते हैं। (देवा. देवेभ्यः) विजयी लोग विजेताओं की उन्नति के लिये ही (अध्वर्यन्तः अस्थुः) संग्राम चाहते रहते हैं।

वीतᳫं हविः शमितᳫं शमिता यजध्यै तुरीयो यज्ञो यत्र हव्यमेति। ततो वाका ऽआशिषो नो जुषन्ताम् ॥ ५७ ॥

भा०—(यत्र) जिसमें (वीतं) सर्वत्र व्याप्त होने योग्य, (शमिता शमितम्) शान्ति दायक पुरुष द्वारा शान्ति सुख देने योग्य बनाया गया,

(हवि.) आहुति योग्य चरु (यजध्यै) अग्नि में आहुति करने के लिये (एति) प्राप्त होता है वह (तुरीयः) चतुर्थ या सर्वश्रेष्ठ (यज्ञ·) यज्ञ कहा जाता है। (तत.) उससे (वाकाः) प्रार्थनाए, (आशिषः) उत्तम कामनायें नः (जुषन्ताम्) हमें प्राप्त हों। शत० ९ । २ । ३ । ११ ॥

तुरीयः यज्ञ·=चौथा यज्ञ. अध्वर्यु पुरस्तात् यजूंषि जपति । होता पश्चादृचोऽन्वाह, ब्रह्मा दक्षिणतोऽप्रतिरथं जपति एष तुरीयश्चतुर्थो यज्ञ ॥ प्रथम अध्वर्यु यजुषों को कहता है। फिर होता ऋचा पढ़ता है। फिर ब्रह्मा अप्रतिरथ सूक्त का पाठ करता है। यह चतुर्थ यज्ञ है। शत० ९।२।३।११ अथवा प्रथम अध्वर्यु का श्रावण, फिर अग्नीध्र का प्रत्याश्रवण, फिर अध्वर्यु का प्रैष, फिर होता का स्वाहाकार। अथवा—अध्यात्म मे (यत्र) जिस आत्मा मे (शमिता) शम दम की साधना द्वारा (शमित) शान्त किया गया (वीतम्) ज्ञान से युक्त (हवि) ग्राह्य, आत्मा (यजध्यै) परमेश्वर के प्रति समर्पण कर देने के लिये ही (हवम् एति) स्तुति योग्य या आदान योग्य परम वेद्य परमात्मा को (एति) प्राप्त हो जाता है वह (तुरीय. यज्ञ.) 'तुरीय' अर्थात् ब्रह्म की प्राप्ति रूप 'यज्ञ' कहाता है। (तत.) उस तुरीय पद को प्राप्त ब्रह्मज्ञानी से हमे (वाका.) वाणी से बोलने योग्य आशीर्वाद (न जुषन्ताम् हमें प्राप्त हों।

राष्ट्र पक्ष में—(शमिता) प्रजा में शान्ति फैलाने में समर्थ पुरुष द्वारा (शम्-इतम्) शान्त गुण युक्त किये (वीतम्) व्यापक (हवि) उपाय, या आदान योग्य कर जहां (यजध्यै) राजा को देने के लिये (हव्यम्) पूजनीय प्रभु को प्राप्त होता है वह तुरीय सर्वश्रेष्ठ (यज्ञ) व्यवस्थित राज्य है। (तत) उस राज्य से (वाका) गुरुपदेश योग्य विद्याए और (आशिष.) उत्तम इच्छाएं (न·) हमे (जुषन्ताम्) प्राप्त हों।

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ२ऽ अजस्रम्। तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ५८

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धवत ॥

भा०—जो (सूर्यरश्मि.) सूर्य की किरणों के समान किरणों, विद्या आदि गुणों को धारण करता है, (हरिकेश) जो क्लेशों के हरण करने वाला, अथवा पीली ज्वाला, दीप्त के समान उज्वल एवं क्लेशकारी शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला है, जो (सविता) सूर्य के सम न समस्त प्रजा का प्रेरक, होकर (अजस्रम्) अविनाशी (ज्योति) ज्योति, प्रकाश रूप मे (उद् अयान्) ऊपर उठता है, (तस्य प्रसवे) उसके उत्कृष्ट शासन मे रहकर (पूषा विद्वान्) पोषक विद्वान् (गोपा) जितेन्द्रिय, विद्यावाणी का पालक होकर (विश्व भुवनानि) समस्त भुवन, उत्पन्न पदार्थों को (सम् पश्यन्) अच्छी प्रकार देखता हुआ, उनका ज्ञान प्राप्त करता हुआ (याति) आगे बढ़ता है । ऋ० १०।१३६।१॥ शत० ६।२।३।१२॥

परमेश्वर पक्ष में –(सूर्य रश्मि.) सूर्य आदि लोक भी जिसकी किरण के समान हैं, अत. वह परमेश्वर 'सूर्यरश्मि' है । क्लेश हरण करने वाला होने से वह 'हरिकेश' है । सर्वोत्पादक होने से सविता है । वह अविनाशी ज्योति रूप में हृदय में उदित हो । उसके (प्रसवे) उत्कृष्ट शासन या जगत् मे (पूषा) अपने बल और ज्ञान का पोषक विद्वान् ज्ञानी, जितेन्द्रिय पुरुष (विश्वा भुवनानि सम्पश्यन्) समस्त भुवनो को देखता, ज्ञान करता हुआ सूर्य के समान (याति) गति करता है ।

विमान॑ऽए॒ष दि॒वो मध्य॑ऽआस्त ऽआप॒प्रिवान् रोद॑सी अ॒न्तरि॑क्षम् । स वि॒श्वाची॑र॒भि च॑ष्टे घृ॒ताची॑रन्त॒रा पूर्व॒मप॑रं च के॒तुम् ॥ ५६ ॥

विश्वावसु ऋषि. । आदित्यो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—सूर्य के पक्ष में-(एष) यह सूर्य (विमान. पक्षी के समान या विमान, व्योमयान के समान (दिव मध्ये) आकाश के बीच (आस्ते) स्थित है । वह (रोदसी अन्तरिक्षम्) द्यौ और पृथिवी और

अन्तरिक्ष तीनो को (आ पप्रिवान्) अपने तेज से पूर्ण करता है। (स) वह (विश्वाची) समस्त विश्व को अपने मे रखने वाला और (घृताची) जल को धारण करने वाला, भूमियों को, प्रजाओं को और दिशाओं को (अभिचष्टे देखता है। और (पूर्वम् अपरं च केतुम् अन्तरा) पूर्व के और पश्चिम के ज्ञापक लिंग को भी देखता है। ऋ०१०।१३९।२॥ शत०९।२।३।१७॥

अथवा—(स) वह (विश्वाची घृताची) सर्वत्र फैलने वाली, जलाहरण करने वाली कान्तियों को और (पूर्वम् अपर च) पूर्व दिन और अपर रात्रि दोनों के बीच के काल को भी (अभिचष्ट) प्रकाशित करता है।

राजा के पक्ष में—(एष) महाराजा (दिव मध्ये) तेज और प्रकाश के बीच या ज्ञानी पुरुषों के बीच में (विमान) विशेष मान, आदरवान् होकर (अस्ते) विराजता है वह (रोदसी) शासक और प्रजा दोनों को और (अन्तरिक्ष) सबके रक्षक सर्व पूज्य अन्तरिक्ष पद को भी पूर्ण करता है वह विश्व को धारण करने वाली (घृताची) अन्न जल की धारक भूमियों और प्रजाओं को (पूर्वम् अपरं च केतुम्) पूर्व के और पश्चिम के ज्ञापक ध्वजादि को भी (अभिचष्टे) सूर्य के समान देखता है।

इसी प्रकार आदित्य योगी विशेष ज्ञानवान् होने से 'विमान' है। वह प्रकाश स्वरूप परमेश्वर के बीच ब्रह्मस्थ होकर विराजता है। वह प्राण अपान और अन्तरिक्ष, हृदयाकाश सब को पूर्ण करता है। वह देह में व्याप्त और तेजोव्याप्त नाड़ियों को और पूर्व और अपर केतु अर्थात् जीव और ब्रह्म दोनों के ज्ञानमय स्वरूप को साक्षात् करता है।

उ॒क्षा स॑मु॒द्रोऽअ॑रु॒णः सु॑प॒र्णः पूर्व॑स्य॒ योनिं॑ पि॒तुरावि॑वेश।
मध्ये॑ दि॒वो निहि॑त॒ः पृश्नि॒रश्मा॒ वि च॑क्रमे॒ रज॑सस्पा॒त्यन्तौ॑ ॥६०॥

अप्रतिरथ ऋषिः आदित्यो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—राजा के पक्ष में—(उक्षा) राष्ट्र कार्य भार को वहन करने वाला, (समुद्रः) नाना ऐश्वर्यों और बलयुक्त कार्यों को उत्पादक, अथवा (समुद्र) अपनी मुद्रादि का उत्पादक, या समुद्र के समान गंभीर अनन्त कोश रत्नों को स्वामी (अरुण) उगते सूर्य के समान रक्त वर्ण के वस्त्र पहने, रोहित स्वरूप, (सुपर्ण) उत्तम रूप से पालन करने वाला होकर ही (पूर्वस्य) अपने पूर्व विद्यमान (पितुः) पालक पिता राजा के (योनिम्) स्थान को (आविवेश) ले, पूर्व के राजा के पद पर स्वयं विराजे। यदि राजा का पुत्र उतना समर्थ न हो तो उसको पिता की राज-गद्दी न प्राप्त हो। क्योंकि (दिवः मध्ये) द्यौलोक के बीच में (निहित) स्थित सूर्य के समान तेजस्वी राजा ही (दिवः मध्ये) तेजस्वी राष्ट्र और राजचक्र के बीच में (निहितः) स्थापित होकर (पृश्निः) सूर्य जिस प्रकार पृथिवी आदि लोकों से रस को ग्रहण करता है उसी प्रकार कर आदि लेने में समर्थ एवं प्रजा पालन मे समर्थ और (अश्मा) चक्की या शिला के समान शत्रु गणों को चकना चूर कर देने मे समर्थ होकर ही वह (विचक्रमे) विविध प्रकार के विक्रम कर सकता है और (रजस) नाना ऐश्वर्यों से रंजित राष्ट्र रूप लोक के (अन्तौ) दोनों छोरों को (पाति) पालन कर सकता है। ऋ० ५।४७।३॥ शत० ६।२।३।१८॥

इसी प्रकार गृहपति के विषय मे—गृहस्थ माता पिता का पुत्र जब वीर्य सेचन में या गृहस्थ का भार उठाने में समर्थ 'उक्षा' उत्तम पालन, साधन रोजगारों से युक्त सुपर्ण' हो तो उसको अपने पूर्व पिता की गद्दी प्राप्त हो। वह ही (अश्मा) शिला के समान आदित्य के समान पालक, होकर (रजस) राग से प्राप्त काम्य, गृहस्थ सुख के दोनों अन्तों को वर वधू दोनों के गृह बन्धनों को पालन कर सकता है।

अथवा योगी—(उक्षा) धर्म मेघ द्वारा आत्मा में ब्रह्म रसक वर्षक होकर तेजस्वी, उत्तम ज्ञानवान् होकर पूर्व पिता, पूर्ण पालक परमेश्वर

के धाम को प्राप्त होता है। वह (दिव) तेजोमय मोक्ष के बीच में स्थित होकर (पृश्नि) समस्त ब्रह्मा नन्द का भोक्ता (अश्मा) राजस, तामस उद्योगों का नाशक 'अश्माखण' होकर (विचक्रमे) विविध लोकों में स्वच्छन्द गति करता है और (रजस) समस्त ब्रह्माण्ड या रजोमय प्राकृतिक विकृति विभूति के दोनों छोर उत्पत्ति और प्रलय दोनों को (पाति) पा लेता है। शत० ६।२।३।१८ ॥

इन्द्रं विश्वा॑ऽअवीवृधन्त्समुद्रव्य॑चसं॒ गिर॑: ।
र॒थीत॑मꣳ र॒थीनां॒ वाजा॑नाꣳ सत्प॑तिं॒ पति॑म् ॥ ६१ ॥

ऋ० १।१।११ ॥

भा०—(समुद्रव्यचसम्) समुद्र या आकाश जिस प्रकार अनन्त जल-कोश या विविध सस्य और रत्न सम्पत्ति के देने वाले हैं उसी प्रकार विविध ऐश्वर्यों के दाता और (रथीनां रथीतमम्) समस्त रथियों में सब से बड़े महारथी, (सत्पतिम्) सत्-मर्यादाओं और सज्जनों के प्रतिपालक और (वाजाना) संग्रामों और ऐश्वर्यों के (पतिम्) पालक (इन्द्र) शत्रुओं के विनाशक इन्द्र सेनापति या राजा को (विश्वा गिर.) समस्त स्तुति-वाणियां (अवीवृधन्) बढ़ाती हैं। वे उसके गौरव को बढ़ाती हैं।

ईश्वर के पक्ष में—आकाश भूमि समुद्र में व्यापक (रथीना रथीतमम्) समस्त देह-धारियों में विराड् ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले अथवा रसयुक्त पदार्थों में सबसे उत्कृष्ट रस वाले, आनन्दमय, समस्त ऐश्वर्य के पालक प्रभु को सब वेदवाणियां बढ़ाती हैं, उसका गौरव गान करती हैं। व्याख्या देखो। १२।६ ॥ शत० ६।२।३।२०॥

दे॒व॒हूर्य॒ज्ञऽआ च॑ वक्षत्सुम्न॒हूर्य॒ज्ञऽआ च॑ वक्षत् ।
यक्ष॑द॒ग्निर्दे॒वो दे॒वाँ२ऽआ च॑ वक्षत् ॥ ६२ ॥

विधृतिर्ऋषि । यज्ञो देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(देवहूः) देव-विद्वानों और विद्या आदि शुभ गुणों का स्वयं

धारण करने वाला, विद्वानों का आह्वाता (यज्ञः) सबका संगतिकारक, व्यवस्थापक, प्रजापति राजा (च) ही राष्ट्र का (आवक्षत्) सब प्रकार से कार्य-भार वहन करे। (सुम्नहू) सुखों, ऐश्वर्यों का प्रदाता (यज्ञः) यज्ञ, सर्वोपरि आदर योग्य प्रजापति ही राष्ट्र को आ वक्षत) धारण करे। (देवः) सब का द्रष्टा और दाता (अग्निः) अग्रणी नायक तेजस्वी राजा ही (आ वक्षत्) सबको संगत करे और (आ वक्षत् च) राष्ट्र के भार को धारण भी करे। शत० ९।२।३।२० ॥

ईश्वरपक्ष में—(यज्ञः) सर्वोपास्य यज्ञ, परमेश्वर दिव्य शक्तियों का धारक विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को अपने पास बुलाने से 'देवहू' है। सुख-प्रद एवं सुषुम्ना द्वारा भीतरी सुखद होने से 'सुम्नहू' है। वही सर्वप्रकाशक अग्नि सबको ज्ञान देता और धारण करता है।

वाजस्य मा प्रसव उद्ग्राभेणोदग्रभीत्।
अधा सपत्नानिन्द्रो मे निग्राभेणाधराँ२ऽ अकः ॥ ६३ ॥

इन्द्रो देवता। विराडार्ष्यनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा और ईश्वर (मा) मुझको (वाजस्य प्रसवः) विज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य का उत्पादक होकर (उद् ग्राभेण) ऊपर ले जाने वाले उपाय या सामर्थ्य से (उत् अग्रभीत्) उत्तम पद पर या उत्तम स्थिति में रक्खे। (अध) और (निग्राभेण) निग्रह या दण्ड देकर वह (मे सपत्नान्) मेरे शत्रुओं को (अधरान् अकः) नीच करे। शत० ९।२।३।२१ ॥

उद्ग्राभं च निग्राभं च ब्रह्म देवा अवीवृधन्।
अधा सपत्नानिन्द्राग्नी मे विषूचीनान्व्यस्यताम् ॥ ६४ ॥

इन्द्राग्नी देवता। आर्ष्यनुष्टुप्। गाधारः ॥

भा०—(देवाः) विद्वान् पुरुष (उद्ग्राभम्) उत्कृष्ट पद को प्राप्त

करने के सामर्थ्य और (निग्राभम्) शत्रुओं को नीचे गिराने और दण्डित करने के सामर्थ्य को और (ब्रह्म च) बड़े भारी धन और राष्ट्र को भी (अवीवृधन्) नित्य बढ़ावें । (अधा) और (इन्द्राग्नी) सेनापति इन्द्र और राष्ट्र का अग्रणी नायक तेजस्वी अग्नि दोनों (मे) मेरे (विषूचीनान्) विरुद्धाचारी (सपत्नान्) शत्रुओं को (व्यस्यताम्) विविध उपायों से विनष्ट करें । शत० ९।२।३।२२ ॥

क्रमध्वम॒ग्निना॒ नाक॒मुख्य॑ᳪ॒ हस्ते॑षु॒ बिभ्र॑तः ।
दि॒वस्पृ॒ष्ठᳪ॑ स्व॑र्ग॒त्वा मि॒श्रा दे॒वेभि॑राध्वम् ॥ ६५ ॥

अग्निर्देवता । विराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०– हे वीर पुरुषो ! तुम लोग (अग्निना) अपने अग्रणी तेजस्वी, ज्ञानवान् नेता राजा और आचार्य के साथ (नाकम्) सुखप्रद, (उख्यम्) उस उखा नाम पृथ्वी के हितकारी भोग्य राष्ट्र सुख को (हस्तेषु) अपने शत्रु को हनन करने वाले शस्त्रास्त्रों के बल पर (बिभ्रत) धारण करते हुए (क्रमध्वम्) आगे बढ़ो । (दिव पृष्ठं) न्याय, विद्या आदि से प्रकाशित सूर्य के समान तेजस्वी (पृष्ठ) पालन करने वाले (स्व) सुखमय राज्य को (गत्वा) प्राप्त करके (देवेभि.) विद्वान् विजयी पुरुषों के साथ (मिश्रा.) मिलकर (आध्वम्) विराजो । शत० ९।२।३।२४ ॥

प्राची॒मनु॑ प्र॒दिशं॒ प्रेहि॑ वि॒द्वान॒ग्नेर॑ग्ने पु॒रो ऽअ॒ग्निर्भ॑वे॒ह ।
विश्वा॒ ऽआशा॒ दीद्या॑नो॒ वि भा॒ह्यूर्जं॑ नो धेहि द्वि॒पदे॒ चतु॑ष्पदे ॥६६॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवत. ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक, राजन् ! सभापते ! तू (प्राचीम् प्रदिशम्) सूर्य जिस प्रकार प्राची दिशा को प्राप्त होकर समस्त दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ सब दो पाये, चौपायों के लिये प्रकाश करता और उनको बल, जीवन प्रदान करता है उसी प्रकार तू भी (प्राचीम् प्रदिशम् अनु) प्रकृष्ट, उन्नत पद को प्राप्त कराने वाली उन्नति के दिशा की ओर

(प्र इहि) आगे बढ़, प्रयाण कर । तू (अग्नेः) सूर्य के पराक्रम से स्वयं (पुरो अग्निः) आगे चलने वाला मुख्य अग्रणी (इह) इस राज्य में (भव) होकर रह । तू (विश्वा., आशाः) समस्त दिशाओं को (दीद्यानः) अपने तेज से सूर्य के समान प्रकाशित करता हुआ (विभाहि) प्रकाशित हो और (न) हमारे (द्विपदे चतुष्पदे) दो पाये, भृत्य आदि और चौपाये गौ आदि पशुओं को (ऊर्जं धेहि) उत्तम अन्न और बल, पराक्रम प्रदान कर। शत० ६ । २ । ३ । २५ ॥

पृथिव्या ऽअहमुदन्तरिक्षमारुहमन्तरिक्षाद्दिवमारुहम् ।
दिवो नाकस्य पृष्ठात् स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ ६७ ॥ अथ० ४।१४।३॥

अग्निर्देवता । पिपीलिकामध्या बृहती । मध्यम. ॥

भा० - मैं अधिकार प्राप्त राजा (पृथिव्याः) पृथिवी से अर्थात् पृथिवी निवासी प्रजागण से ऊपर (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष के समान सर्वाच्छादक, सब सुखों के वर्षक पद को वायु के समान (आरुहम्) प्राप्त होऊं और मैं (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष पद से (दिवम्) सूर्य के समान तेजस्वी सर्व प्रकाशक सर्वद्रष्टा, तेजस्वी विराट् पद पर (आरुहम्) चढूं । (नाकस्य) सर्व सुखमय (दिव.) उस तेजोमय (पृष्ठात्) सर्व-पालक, सर्वोपरि पद से भी ऊपर (स्व) सुखमय (ज्योतिः) परम प्रकाश ज्ञानमय ब्रह्मपद को भी (अहम्) मैं (अगाम्) प्राप्त करू । शत० ६ । २ । ३ । २६ ॥

अध्यात्म में—योगी स्वयं मूलाधार से अन्तरिक्ष = नाभि देश को और फिर शिरोदेश को जागृत कर वहां से सुखमय परमब्रह्म ज्योति को प्राप्त करता है ।

स्वर्यन्तो नापेक्षन्त ऽआ द्याᳬं रोहन्ति रोदसी ।
यज्ञं ये विश्वतोधारᳪं सुविद्वाᳬंसो वितेनिरे ॥ ६८ ॥

अथ० ४ । १४ । ४ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गाधार ॥

भा०—(ये) जो (सुविद्वांसः) उत्तम विद्वान् पुरुष (विश्वतो धारम्) सब तरफ बसने वाले प्रजाजनों को धारण करने वाले (यज्ञं) राष्ट्र व्यवस्था रूप सुसंगठित साम्राज्य को (वितेनिरे) विविध उपायों से विस्तृत करते हैं वे (स्वः यन्त) सुखकारी साम्राज्य को प्राप्त करते हुए (न अपेक्षन्ते) नीचे की तरफ नहीं देखते । अथवा (स्वः यन्तः) परम मोक्ष को प्राप्त होते हुए योगियों के समान संसार के भोगों की (न अपेक्षन्ते) अपेक्षा नहीं करते, प्रत्युत (रोदसी द्याम्) समस्त पृथिवी के ऐश्वर्य को शत्रु बल को रोक लेने में समर्थ (द्याम्) सर्वोपरि विजय-कारिणी शक्ति को (आरोहन्ति) प्राप्त हो जाते हैं । शत० ९।२।३।२७ ॥

योगी के पक्ष में—(ये विद्वास.) जो विज्ञानी, योगीजन (विश्वतो धारं यज्ञं) समस्त जगत् के धारक, परम उपास्य परमेश्वर को वितेनिरे) प्राप्त हो जाते हैं वे (स्वर्यन्त.) सुखमय परम मोक्ष को जाते हुए संसार-भोगों की (न अपेक्षन्ते) अपेक्षा नहीं करते, उनपर नीचे दृष्टि नहीं डालते। प्रत्युत (रोदसी) जन्म मृत्यु के रोकने में समर्थ (द्याम्) प्रकाशमयी मोक्ष पदवी को (आरोहन्ति) प्राप्त करते हैं ।

अग्ने प्रेहि प्रथमो देवयतां चक्षुर्देवानामुत मर्त्यानाम् ।
इयक्षमाणा भृगुभिः सजोषाः स्वर्यन्तु यजमानाः स्वस्ति ॥ ६९ ॥

अथ० ४ । १४ । ५ ॥

अग्निर्देवता । भुरिगार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! विद्वन् ! (देवानाम्) ज्ञान प्रदान करने वाली इन्द्रियों के बीच में (चक्षुः) चक्षु के समान समस्त पदार्थों के दिखलाने हारा होकर तू (देवयताम्) कामना करने वाले, काम्य-सुखों को चाहने वाले (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के बीच में तू (प्रथम.) सब से मुख्य होकर (प्र इहि) आगे २ बढ़ । (यजमाना·) यज्ञ करने वाले, दानशील अथवा राष्ट्रों का संगठन करने वाले राजगण भी

(भृगुभि) परिपक्व विज्ञान वाले विद्वानों के साथ (इयक्षमाणाः) अपना यज्ञ, प्रजा पालन का कार्य करते हुए (सजोषाः) परस्पर प्रेम सहित (स्वस्ति) कल्याण पूर्वक। (स्व॑ यन्तु) सुख धाम को प्राप्त हों।

इसी प्रकार (यजमानाः) दान शील गृहस्थ लोग (भृगुभिः) पापों को भून डालने वाले, परिपक्व ज्ञानी, तपस्वी विद्वानों के साथ (इयक्षमाणाः) अपने अध्यात्म यज्ञ को सम्पादन करते हुए (स्वस्ति) सुखपूर्वक (स्वः यन्तु) मोक्ष सुख को प्राप्त करें। शत० ९। २। ३। २८॥

नक्तोषासा सम॑नसा विरू॑पे धापये॑ते शिशु॒मेकं॑ᳬ सम्री॒ची। द्यावा॒क्षामा॑ रु॒क्मो ऽअ॒न्तर्वि भा॑ति दे॒वा ऽअ॒ग्निं धा॑रयन् द्रविणो॒दाः॥७०

भा०—व्याख्या देखो (अ० १२। २) ऋ० १। ९६। ५॥

अग्ने॑ सहस्राक्ष शतमूर्द्धञ्छ॒तं ते॑ प्रा॒णाः स॒हस्रं॑ व्या॒नाः। त्वᳬ साह॒स्रस्य॑ रा॒य ई॑शिषे॒ तस्मै॑ ते विधेम॒ वाजा॑य॒ स्वाहा॑॥ ७१॥

अग्निर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! तेजस्विन्! राजन्! हे (सहस्राक्ष) गुप्त चरों, दूतों और सभासदों रूप हजारों आंखों वाले! हे (शतमूर्धन्) सैकड़ों राजसभासदों रूप विचार करने वाले मस्तकों से युक्त! (ते) तेरे (शतं प्राणाः) सैकड़ों अधीन शासक रूप प्राण हैं जिनसे राष्ट्र शरीर में चेतनता जागृत रहती है इसी प्रकार (सहस्रं व्यानाः) हजारों व्यान के समान भीतरी व्यवहारों के कर्त्ता अधिकारी हैं। (त्वम्) तू (सहस्रस्य रायः) सहस्रों ऐश्वर्यों का (ईशिषे) स्वामी है। (तस्मै ते) उस तुझ (वाजाय) वीर्यवान्, ऐश्वर्यवान् प्रभु को हम (स्वाहा) उत्तम यश कीर्त्ति के लिये (विधेम) अन्न, कर आदि प्रदान करें। परमेश्वर पक्ष में—हे परमेश्वर तेरे हजारों आंख, सिर, प्राण व्यान आदि हैं, तू सहस्रों ऐश्वर्यों का स्वामी है, हम तेरा आदर सत्कार करें। योगी के पक्ष में—योगी भी अपनी साधना

से अनेक शरीर में प्रविष्ट होकर आंख, नाक, कान, सिर आदि विभूति दिखाने में समर्थ होता है, हम ऐसे सिद्ध का आदर करें। शत० ६।२।३।३२-३३॥

सुपर्णोऽसि गरुत्मान् पृष्ठे पृथिव्याः सीद। भासान्तरिक्षमापृण ज्योतिषा दिवमुत्तभान तेजसा दिश उद्दृꣳह ॥ ७२ ॥

अग्निर्देवता। निचृदार्षी पङ्क्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे राजन्! तू (सुपर्णः असि) सुख से पालन करने में समर्थ, उत्तम पालन साधनों से सम्पन्न और उत्तम लक्षणों वाला है। तू (गरुत्मान्) महान् गौरवपूर्ण आत्मा वाला होकर (पृथिव्याः पृष्ठे) पृथिवी के ऊपर (सीद) विराजमान हो। और (भासा) अपनी कान्ति, तेज और पराक्रम से (अन्तरिक्षम्) वायु के समान अन्तरिक्ष को भी पूर्ण कर, अन्तरिक्ष के समान समस्त प्रजा को घेर कर उनपर अपनी छत्र-छाया रख। और (ज्योतिषा) सूर्य से जिस प्रकार आकाश मण्डित है उसी प्रकार (ज्योतिषा) अपने तेज से (दिवम्) अपने विजय से प्राप्त क्रीडास्थल, आनन्द प्रमोद के स्थान, समृद्ध, कामना योग्य राज्य को (उत्स्तभान) उन्नत कर और ऊपर उठाये रख। और (तेजसा) पराक्रम से (दिशः) समस्त दिशाओं दिशावासी प्रजाओं को (उद् दृंह) उन्नत कर। शत० ६। २। ३। ३४॥

आजुह्वानः सुप्रतीकः पुरस्तादग्ने स्वं योनिमासीद साधुया। अस्मिन्त्सधस्थे ऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ७३

अग्निर्देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने सूर्य के समान तेजस्विन्! राजन्! तू (आजुह्वानः) आदर सत्कार से सम्बोधन किया जाकर (सुप्रतीकः) शुभ लक्षण और रूप बनाकर, सौम्य होकर (पुरस्तात्) आगे सबसे मुख्य, पूर्व की ओर (साधुया) उत्तम रीति से (स्वं योनिम्) अपने स्थान, मुख्य आसन पर (आसीद) विराज। (अस्मिन् सधस्थे) इस एकत्र

होकर बैठने के (उत्तरस्मिन्) उत्कृष्ट सभाभवन मे तू (अधि) सबसे ऊपर विराज और (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान्, ज्ञानी पुरुष और (यजमान च) सबका सत्कार करने मे कुशल राजा महामात्य और राज-सभासद् गण भी (सीदत) विराजें। शत० ६ । २ । ३ । ३५ ॥

ताᳬ संवि॒तुर्वरे॑ण्यस्य चि॒त्रामाहं वृ॑णे सुम॒तिं वि॒श्वज॑न्याम्। यामस्य॒ कण्वो॒ ऽअदु॑ह॒त्प्रपी॑नाᳬ स॒हस्र॑धारां॒ पय॑सा म॒हीं गाम् ७४

कण्वऋषिः । सविता देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अहम्) मैं (वरेण्यस्य) सर्व श्रेष्ठ, सबो द्वारा वरण करने योग्य वर उत्तम वरणयोग्य पद पर लेजाने हारे (सवितुः) सूर्य के समान सबके प्रेरक, ऐश्वर्यवान् राजा के (ताम्) उस (चित्राम्) अद्भुत (सुमतिम्) शुभ ज्ञानवाली (विश्वजन्याम्) समस्त प्रजाजनो में से बनाई गयी, उनके हितकारी को (वृणे) स्वीकार करता हूं। (याम्) जिस (प्रपीनाम्) अति पुष्ट, (सहस्रधाराम्) सहस्रों ज्ञानवाणियों या नियमधाराओ से युक्त अथवा सहस्रो ज्ञानों को धारण करने वाली (पयसा) दूध से जिस प्रकार गौ, और अन्न से जिस प्रकार पृथिवी आदर योग्य होती है उसी प्रकार (पयसा) वृद्धिकारी राष्ट्र के पुष्टिजनक उपायों से (महीम् गाम्) बड़ी भारी ज्ञानमयी, (याम्) जिस विद्वत् सभा को (कण्व.) मेधावी जन (अदुहन्) दोहते हैं, उससे वादविवाद द्वारा सार तत्व को प्राप्त करते हैं। शत० ६।२।३।३८ ॥

राजा रूप प्रजापति की यही अपनी 'दुहिता' गौ, राजसभा है जिसे वह अपनी पत्नी के समान अपने आप उसका सभापति होकर उसको अपने अधीन रखता है। जिसके लिये ब्राह्मण ग्रन्थ में लिखा है— 'प्रजापति स्वां दुहितरमभ्यधावत्।' इत्यादि उसी को 'दिव' या 'उषा' रूप से भी कहा है, वस्तुतः यह राज-सभा है।

परमेश्वर के पक्ष में—सबसे श्रेष्ठ सर्वोत्पादक परमेश्वर की अद्भुत (विश्वजन्या) विश्व को उत्पन्न करने वाली (सुमतिं) उत्तम ज्ञानवती (गाम्) वाणी को मैं (वृणे) सेवन करू (याम् महीम् गाम्) जिस पूजनीय वाणी को सहस्रो धार वाली हृष्ट पुष्ट गाय के समान (सहस्र-धाराम्) सहस्रों 'धारा', धारण सामर्थ्य या व्यवस्था-नियमों वाली को (कण्वः अदुहत्) ज्ञानी पुरुष दोहन करता है, उससे ज्ञान प्राप्त करता है।

वि॒धेम॑ ते पर॒मे जन्म॑न्नग्ने वि॒धेम॒ स्तोमै॒रव॑रे स॒धस्थे॑।
यस्मा॒द्योने॑रु॒दारि॑था य॒जे तं प्र त्वे ह॒वीᳪंषि॑ जुहु॒रे समि॑द्धे ॥७५॥

ऋ० ७ । १ । ३ ॥

गृत्समद ऋषिः । त्रिस्थानोऽग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अपने तेज से दुष्टों का दहन करने हारे राजन्! हम (परमे जन्मनि) सर्वोत्कृष्ट पद पर स्थापित करके (ते) तेरा (विधेम) विशेष सत्कार करें। और (अवरे सधस्थे) उससे उतर कर 'सधस्थ' अर्थात् सब विद्वान् सभासदों के एकत्र होने के सभा-भवन में भी (स्तौमैः) स्तुति वचनों या अधिकार पदों से (विधेम) तेरा आदर सत्कार करें। तू (यस्मात् योनेः) जिस स्थान से भी (उत् आरिथा) उन्नत पद को प्राप्त हो (तम् यजे) उसको भी मैं तुझे प्रदान करू। (समिद्धे) प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार (हवींषि जुहुरे) नाना हवियों को आहुति करते हैं उसी प्रकार हम लोग (त्वे) तुझपर (हवींषि) आदान योग्य, ग्रहण करने और स्वीकार करने योग्य यथार्थ वचनों को प्रदान करें। शत० ६।२ ३।३६॥

योगी के पक्ष में—हे योगिन्! परम जन्म अर्थात् योग द्वारा प्राप्त उत्कृष्ट पद में स्थित तेरी हम सेवा करें। जिस मूल आश्रय से तू उन्नति को प्राप्त है (तम् यजे) उस परमेश्वर की हम भी उपासना करें। प्रदीप्त अग्नि के समान तुम्हें हम श्रेष्ठ अन्न प्रदान करें।

प्रेद्धो॑ ऽअग्ने दीदिहि पु॒रो नो॒ऽज॑स्रया सू॒र्म्या॑ यविष्ठ।
त्वा॒ᳬ शश्व॑न्त॒ ऽउप॑यन्ति॒ वाजाः॑ ॥ ७६ ॥ ऋ० ७ । १ । ३ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! तू (नः पुरः) हमारे आगे (अजस्रया) अविनाशी, नित्य (सूर्म्या) काष्ठ से जिस प्रकार आग जलती है उसी प्रकार उत्तम उत्साह और तेजः साधनों से (दीदिहि) प्रकाशित हो । हे (यविष्ठ) सदा बलवान् ! (त्वाम्) तुझ (शश्वन्तः) सदा के लिये स्थिर (वाजाः) अन्नादि ऐश्वर्य और ज्ञानवान् पुरुष (उपयन्ति) प्राप्त हों । शत० ९।२।३।४० ॥

अग्ने॒ तम॒द्याश्वं॒ न स्तोमैः॒ क्रतुं॒ न भ॒द्रᳬ हृ॑दि॒स्पृश॑म् ।
ऋ॒ध्यामा॑ त॒ ऽओहैः॑ ॥ ७७ ॥ ऋ० ७ । १० । १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १५ । १४ ॥ शत० ९।२।३।४१ ॥

चित्तिं॑ जुहोमि॒ मन॑सा घृ॒तेन॒ यथा॑ दे॒वा इ॒हाग॒मन्वी॒तिहो॑त्रा ऋता॒वृधः॑ । पत्ये॒ विश्व॑स्य॒ भूम॑नो जुहोमि॒ वि॒श्वक॑र्मणे वि॒श्वाहादा॑भ्यᳬ ह॒विः ॥ ७८ ॥

विश्वकर्मा देवता । विराड् अतिजगती । निषादः ॥

भा०—मैं (घृतेन) घी के द्वारा जैसे अग्नि में आहुति दी जाती है उसी प्रकार (मनसा) मनन पूर्वक, चित्त से (चित्तिम्) तत्व जिज्ञासा के लिये चिन्तन या विवेक को (जुहोमि) प्राप्त करता हूं अर्थात् निर्णय करना चाहता हूं (यथा) जिससे (इह) इस विचार-भवन में (वीतिहोत्रा) उज्वल, ज्ञान की आहुति देने वाले (ऋतावृध) सत्य को बढ़ाने हारे (देवा) विद्वान् लोग (आगमन्) आयें । (भूमनः विश्वस्य पत्ये) बड़े भारी विश्व के स्वामी (विश्वकर्मणे) समस्त राष्ट्र के साधु कर्मों के प्रवर्त्तक राजा के निमित्त मैं (अदाभ्यं) अखण्ड, अविनाशी वे

चूक, कभी न कटने वाली, दृढ़ (हवि.) ज्ञान और अन्न को (विश्वाहा) सदा दिनों (जुहोमि) प्रदान करूं। शत० ९।२।३४२॥

प्रत्येक विद्वान् सभासद् का कर्त्तव्य है कि जब विद्वान् सत्यशील लोग एकत्र हों तो मन लगा कर 'चिति' अर्थात् विषय के 'चिन्तन' या विचार में ध्यान दें। और राजा को अखण्डनीय, निश्चित सत्य तत्व का निर्णय प्रदान करे।

योगी के पक्ष में—प्रकाशित यज्ञ वाले सत्यवर्धक (देवा) देवगण, प्राण या विद्वान् मुझे प्राप्त हों इस रीति से मैं सत्यासत्य विवेचन करूं। और महान् विश्व के स्वामी परमेश्वर के लिये इस (अदाभ्यं हवि) अखण्ड, हवि रूप आत्मा को समर्पित करूं।

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि। सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा ॥

अग्निर्देवता। आर्षी जगती। निषाद। सप्त ऋषयो ऋषय॰॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान उज्ज्वल तेजस्विन्! (ते) तेरे (सप्त समिध) अग्नि के समान सात समिधाएं हैं अर्थात् अमात्यादि सात प्रकृतियां तेरी तेजोवृद्धि का कारण हैं। (सप्त ऋषय॰) राष्ट्र के कार्यों का निरीक्षण करने वाले वे सात ही 'ऋषि' हैं, वे मन्त्रद्रष्टा, गुप्त मन्त्रणार्थ अमात्य हैं। (सप्त प्रियाणि धाम) सात ही प्रिय तेज या धारण सामर्थ्य हैं। वही तेरे (सप्त होत्रा.) सात होत्र, यज्ञ के ७ होताओं के समान राष्ट्र के सात अंग हैं। वे सातों (त्वा) तुझ को (सप्तधा) सात तरह से (यजन्ति) प्राप्त होते हैं। तू उन (सप्त योनी) सातों स्थानों या पदाधिकारों को (घृतेन) अपने तेज से (स्वाहा) उत्तम रीति से (आपृणस्व) पूर्ण कर। शत० ९।२।३।४४॥

होत्राः—ऋतवो वा होत्राः । रश्मयो वाव होत्राः । अङ्गानि वा होत्राः ॥ गो० उ० ६ । ६ ॥

शुक्रज्योतिश्च चित्रज्योतिश्च सत्यज्योतिश्च ज्योतिष्माँश्च ।
शुक्रश्च ऋतपाश्चात्यंहाः ॥ ८० ॥

मरुतो देवता । आर्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(शुक्रज्योतिः च) शुक्रज्योति, (चित्रज्योतिः च) चित्र ज्योति, (सत्यज्योति च) सत्यज्योति (शुक्र: च) शुक्र, (ऋतपा: च) ऋतपा और (अत्यंहा.) अत्यंहा ये ७ 'मरुत्' अर्थात् शरीर में ७ प्राणों के समान राष्ट्र मे मुख्य अमात्य नियत किये जांय । शत० ९।३।१।२६ ॥

अति कान्तिमान् शुद्ध ज्योति, ज्ञानवान् पुरुष 'शुक्रज्योति' है । चित्र अर्थात् अद्भुत ज्योति वाला पुरुष 'चित्रज्योति' है । सत्य निर्णय देने वाला 'सत्यज्योति' और ज्ञानज्योति वाला पुरुष 'ज्योतिष्मान्' और शीघ्रकारी या शुद्ध रूप 'शुक्र' है । (ऋतपाः) सत्य या कानून ग्रन्थ का पालक ऋतपा' है। अहस् अर्थात् पापों को अतिक्रमण करनेवाला 'अत्यंहा.' है।

ये सभी ईश्वर के नाम भी हैं ।

ईदृङ् चान्यादृङ् च सदृङ् च प्रतिसदृङ् च ।
मितश्च सम्मितश्च सभराः ॥ ८१ ॥

मरुतो देवता । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(ईदृङ्) यह ऐसा है. (अन्यादृङ् च) यह अन्य के समान है अर्थात् इसके समान और भी है, (सदृङ् च) यह और यह समान है । (प्रतिसदृङ् च) प्रत्येक पदार्थ इस अंश में समान है .(मितः च) यह इतने परिमाण का है, (समितः च) अच्छी प्रकार यह अमुक पदार्थ के बराबर ही परिमाण वाला है । (सभरा) ये सब पदार्थ समान भार वाले या समान वस्तु को धारण करते हैं । इस प्रकार सातों प्रकार

से देखने वाले विद्वान् राजा के राज्य-विभागों में कार्य करें। और उनके 'ईदृङ्' आदि ही नाम हों।

इसी प्रकार सात प्रकार से विवेचना करने वाला होने से उनका मुख्य पुरुष और परमेश्वर भी इन सात नामों से कहाता है।

ऋतश्च॑ सत्यश्च॑ ध्रुवश्च॑ धरुण॑श्च धर्त्ता च॑ विधर्त्ता च॑ विधार॒यः ८२

मरुतो देवता। आर्षी गायत्री। षड्ज॥

भा०—(ऋत च सत्य च ध्रुव च) ऋत, सत्य, ध्रुव, (धरुणः च) धरुण, (धर्त्ता च विधर्त्ता च) धर्त्ता और विधर्त्ता और (विधारयः च) विधारय ये ७ व्यवहार निर्णय के लिये अधिकारी हों। इनके भिन्न २ कार्य हैं। जैसे 'ऋत' जो व्यवस्था पुस्तक का प्रमाणग्राही, (सत्य.) घटना का सत्य रूप रखने वाला, (ध्रुव.) स्थिर निर्णयदाता (धरुण.) दोषों का पकड़ने वाला, (धर्त्ता) उसका वश करने वाला और (विधारयः) उसको विविध कार्यों में नियोजक।

इसी प्रकार इनके मुख्य पुरुष के भी कार्य भेद से ये सात नाम हैं, ईश्वर के भी ये सात नाम हैं।

ऋ॒तजिच्च सत्य॒जिच्च॑ सेन॒जिच्च॑ सु॒षेण॑श्च।
अन्ति॑मित्रश्च दू॒रे ऽअ॑मित्रश्च ग॒णः॥ ८३॥

मरुतो देवताः। निचृदार्षी जगती। निषाद.॥

भा०—(ऋतजित् च सत्यजित् च, सेनजित् च सुषेण च) ऋतजित्, सत्यजित सेनजित् और सुषेण, (अन्तिमित्र च, दूरे अमित्रः च गण) अन्तिमित्र, दूरे अमित्र और गण ये सेना विभाग के अध्यक्ष हैं।

ई॒दृक्षा॑स ऽएता॒दृक्षा॑स ऽऊ॒ षु णः॑ स॒दृक्षा॑सः प्रति॑सदृक्षा॒स ऽएत॑न। मि॒तास॑श्च॒ संमि॑तासो नो ऽअ॒द्य सभ॑रसो मरुतो य॒ज्ञे ऽअ॒स्मिन् ८४

मरुतो देवता.। निचृदार्षी जगती। निषाद॥

भा०—हे (ईदृक्षासः एतादृक्षासः सदृक्षासः प्रतिसदृक्षासः मितासः संमितास सभरसः) ईदृक्ष, एतादृक्ष, सदृक्ष प्रति सदृक्ष मित और संमित और सभर ये सातो (मरुत.) मरुद्गण अर्थात् प्रजाओं के गण, पालक लोगों! आप लोग (अस्मिन्) इस राष्ट्र के यज्ञ में (एतन) आओ।

ऋतवाँश्च प्रघासी च सान्तपनश्च गृहमेधी च ।
क्रीडी च शाकी चोज्जेषी ॥ ८५ ॥

भा०—और इसी प्रकार (ऋतवान्) स्वयं बलशाली, (प्रघासीच) उत्कृष्ट पदार्थ को भोजन करने वाला, (सांतपन च) उत्तम रूप से तप करने वाला या प्रजा के धर्म कर्म संस्कार करनेहारा, (गृहमेधी च) गृहस्थ, (क्रीडी च) क्रीडाशील, युद्धविजयी, (शाकी) शक्तिमान्, (उज्जेषी च) और उत्तम पदों का जय करने हारा ये लोग भी प्रजा के मुख्य अंग हैं।

इन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन्यथेन्द्रं दैवीर्विशो मरुतोऽनुवर्त्मानोऽभवन् । एवमिमं यजमानं दैवीश्च विशो मानुषीश्चानुवर्त्मानो भवन्तु ॥ ८६ ॥

८५—इतः परं क्वचित् पुस्तकेषु

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च ।
सासह्वाँश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ॥

अयं मन्त्रः पठ्यते ।

अर्थ—(उग्र) बलवान् (भीम) भयानक, (ध्वान्त) अन्धकार के समान शत्रुओं को अन्धकार करनेहारा, (धुनि च) कंपा देने वाला, (सासह्वान्) पराजित करने वाला, (अभियुग्वा) आक्रमण करनेवाला और (विक्षिप) विविध दिशाओं से शत्रु पर शस्त्र फेंकने वाला। ये भी विजय कार्य के निमित्त वीर नेता पुरुष आवश्यक हैं। इस प्रकार ये मरुद्गण ४९ गिने जाते हैं।

मरुतो देवता । निचृत् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(दैवी. विश) विद्वान् लोगों की प्रजाएं (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् धार्मिक राजा के और (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाली सेनाएं (इन्द्रम्) शत्रुओं के गढविदारक इन्द्र सेनापति के (अनु वर्त्मान) पीछे २ रास्ता चलने वाले होते हैं । (यथा) जिस प्रकार से (दैवी विश) देव, दर्शन-शील आत्मा के भीतर प्रविष्ट प्राण आदि प्रजाएं (मरुत.) और प्राण गण (इन्द्रम् अनुवर्त्मान) 'इन्द्र' आत्मा के पीछे चलने वाले होते हैं (एवम्) इसी प्रकार (इमं यजमानम्) इस अन्न, आजीविका वेतन और मान आदि के देने वाले राजा के (दैवी च) विद्वानों और (मानुषी च) साधारण मनुष्यों की प्रजाएं भी (अनुवर्त्मानो भवन्तु) पीछे २ रास्ता चलने वाली हों ।

इमꣳस्तनमूर्जस्वन्तं धयापां प्रपीनमग्ने सरिरस्य मध्ये ।
उत्सं जुषस्व मधुमन्तमर्वन्त्समुद्रियꣳ सदनमा विशस्व ॥ ८७ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने अग्रणी नायक ! तेजस्विन् ! तू (सरिरस्य-मध्ये) आकाश के बीच में (अपां प्रपीनम्) जलों से परिपूर्ण (इमं) इस (ऊर्जस्वन्तम्) अन्न और बलकारी (स्तनम्) स्तन के समान रसों का बहाने वाले एव घोर गर्जनाकारी (उत्सं) कूप के समान अनन्त जल देने वाले (मधुमन्तम्) परिमाण में अन्नादि मधुर पदार्थों के देने वाले (समुद्रियम्) समुद्र से उत्पन्न मेघ के समान (सरिरस्य मध्ये) बड़े भारी व्यापक राष्ट्र के बीच में (अपां प्रपीनम्) आप्त प्रजाओं से पुष्ट, (ऊर्ज-स्वन्तम्) बल पराक्रम और अन्नादि से सम्पन्न (उत्सम्) उत्तम फलों के दाता (मधुमन्तम्) अन्नादि मधुर पदार्थों से युक्त, (समुद्रियम्) समुद्र से घिरे अथवा नाना सम्पत्तियों के उत्पादक (स्तनम्) स्तन के समान

मधुर आनन्द रसदायक अथवा सब सुखों के अधार रूप इस उत्तम राष्ट्र को (धय) बालक के समान शान्ति से भोग कर । हे (अर्वन्) अश्व के समान वेगवान् साधनों से सम्पन्न तू (समुद्रियं सदनम्) समुद्र के समान गंभीर इस सम्राट् पद को (आविशस्व) प्राप्त कर ।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥८८॥

ऋ० २ । ३ । ११ ॥

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—पूर्वोक्त 'पर्जन्य' पद की मेघ से और भी तुलना करते हैं । वह उक्त मेघ (घृतम् मिमिक्षे) जल का सेचन करता है । और (अस्य) उसका (घृतम् योनिः) जल ही मूलकारण है । वह (घृते श्रितः) उदक में ही आश्रित है । (अस्य धाम घृतम् उ) उसका जन्म, वर्षण कर्म और स्वरूप ये तीनों भी जल ही है । और हे पर्जन्य ! रसों को प्रजा पर बरसा देने वाले ! तू (अनु-स्वधम्) जल के ही साथ बहुत सी अन्नादि सम्पत्ति को (आवह) प्राप्त कराता है और (मादयस्व) सबको तृप्त करता है । हे (वृषभ) जलों के वर्षण करने हारे ! तू (स्वाहा-कृतम्) यज्ञाग्नि में आहुति किये या अपने में उत्तम रीति से धारण किये जल से उत्पादित (हव्यम्) अन्न को (वक्षि) प्रजा को प्रदान करता है । इसी प्रकार हे राजन् ! तू मेघ के समान उच्च पद पर विराजमान होकर (घृतं मिमिक्षे) अग्नि के समान तेज और मेघ के समान सुख और स्नेह का वर्षण कर । (अस्य) इस अग्नि का जिस प्रकार घृत ही आश्रय है उसी प्रकार तेरा भी आश्रय स्थान 'घृत' तेज ही है । तू (घृतश्रितः) अपने तेज में आश्रित होकर रह । (घृतम् अस्य धाम) इस राजपद का धाम तेज या धारण सामर्थ्य या स्वरूप भी 'तेज', पराक्रम ही है । (अनुष्वधम्) अपनी धारण शक्ति के अनुसार ही इस राष्ट्र के कार्य-भार को (आवह) उठा । (मादयस्व)

स्वय समस्त प्रजाओं को तृप्त कर । (स्वाहा कृतम्) सुखपूर्वक प्रदान किये (हव्यम्) कर आदि पदार्थों को हे (वृषभ) प्रजा पर सुखों के वर्षक राजन् ! (वत्ति) तू स्वय प्राप्त कर और अपने अधीन भृत्यों को दे ।

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ २ऽउदार॒दुपा॒ंशुना॒ सम॑मृत॒त्वमा॑नट् ।
घृ॒तस्य॒ नाम॒ गुह्यं॒ यदस्ति॑ जि॒ह्वा दे॒वाना॑म॒मृत॑स्य॒ नाभिः॑ ॥ ८६ ॥

ऋ० ४ । ५८ । १ ॥

अग्निर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप । धैवत ॥

भा०—राजा के पक्ष में –(समुद्रात्) समुद्र के समान गम्भीर राजा से एक (मधुमान्) शत्रुओं को कँपा देने वाले सामर्थ्य से युक्त (ऊर्मिम्) प्रबल तरंग के समान पराक्रम (उत् आरत्) ऊपर उठता है और (अंशुना) व्यापक सैनिक बल या राष्ट्र के बल के साथ (अमृतत्वम्) अमृतत्वं अर्थात् अमर यश के (उप सम् आनट्) प्राप्त कराता है । (घृतस्य) तेज का (यत्) जो (गुह्य नाम अस्ति) गुह्य, सुगुप्त स्वरूप है वह (देवानाम्) तेजस्वी विजयी पुरुषों की (जिह्वा) आहुति रूप क्रोधशिखा है जो (अमृतस्य नाभि) उस अमर, अविनाशी, स्थायी राष्ट्र को बाधने वाली है ।

मेघ के पक्ष में—समुद्र से एक (मधुमान्) जल से पूर्ण (ऊर्मि) तरंग उठता है । जो (अंशुना) वायु या सूर्य के द्वारा (अमृतत्वम्) सूक्ष्म जल-भाव को प्राप्त होता है । (घृतस्य) मेघ द्वारा भूमि पर सेचन करने योग्य जल का (यत्) जो (गुह्य) गुहा, अन्तरिक्ष में स्थित (नाम) स्वरूप या परिवर्त्तित, परिपक्व रूप है वह (देवाना) सूर्य की रश्मियों की (जिह्वा) तापकारी शिखा या जल सेंचने वाली शक्ति के कारण है । और वही उस (अमृतस्य) सूक्ष्म जल को (नाभि) बाधने, आकाश में थामे रहने का कारण है ।

जीवनपक्ष में—अन्न रूप अक्षय समुद्र से (मधुमान् ऊर्मि.) मधुर

रस की एक तरंग या उत्कृष्ट रूप उत्पन्न होता है। वह (अंशुना) प्राण वायु के साथ मिलकर (अमृतत्वम्) जीवन या चेतना के रूप में बद्-लता है। (घृतस्य) दीप्ति या ओज का या स्त्रीयोनि में निषेक करने योग्य वीर्य का (यत् गुह्यं नाम अस्ति) जो गुह्य अर्थात् प्रजनेन्द्रिय या शरीर में गुप्त रूप से विद्यमान परिपक्व स्वरूप है वह (देवानां जिह्वा, देवों, इन्द्रियों की दीप्ति या शक्ति का कारण है और (अमृतस्य नाभिः) अमृत, दीर्घ जीवन और अगली प्रजा का मूल कारण है।

परमेश्वरपक्ष में —(समुद्रात्) उस परम परमेश्वररूप अनन्त अक्षय, आनन्दसागर से (मधुमान्) ज्ञानमय तरंग या प्रजोत्पादक कामना-रूप तरंग उत्पन्न होती है। वह (अंशुना) विषयों के भोक्ता जीव के साथ मिलकर (अमृतत्वम्) चित् शक्ति को (उप समानट्) जागृत करती है। (घृतस्य) प्रकृति के गर्भ में सेचन करने योग्य परमेश्वरीय तेज का जो गुह्य, परम विचारणीय (नाम) स्वरूप है वह (देवानाम्) समस्त दिव्य वैकारिक महत् आदि पदार्थों की (जिह्वा) वशकारिणी शक्ति है, वही (अमृतस्य नाभिः) समस्त अमृत, अविनाशी, चिन्मय जगत् का (नाभिः) बांधने वाला केन्द्र है।

गृहपति-प्रजापक्ष में— कामरूप अनन्त समुद्र से (मधुमान् ऊर्मि) मधुर स्नेहमय एक तरंग उठती है। और (अंशुना) प्राण के साथ मिलकर (अमृतत्वम् उप सम् आनट्) अमृत रूप प्रजाभाव को प्राप्त होती है। (घृतस्य नाम यत् गुह्यम् अस्ति) निषेकयोग्य वीर्य का जो परिपक्व रूप है वही (देवानाम्) रति क्रीड़ा करनेवाले पुरुषों की (जिह्वा) अर्थात् कामरस प्राप्त करने का साधन है और वही (अमृतस्य नाभिः) आगामी प्रजारूप अमर, तन्तु प्राप्त करने का मूल कारण है। वीर्य से ही रति उत्पन्न होती है और उसी से सन्तान।

व॒यं नाम॒ प्र ब्र॑वामा घृ॒तस्या॒स्मिन् य॒ज्ञे धा॑रयामा॒ नमो॑भिः ।
उप॑ ब्र॒ह्मा शृ॑णवच्छ॒स्यमा॑नं॒ चतुः॑शृङ्गोऽवमीद् गौ॒र ए॒तत् ॥६०॥

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राजा के पक्ष मे—(वयम्) हम लोग (घृतस्य) बल, ऐश्वर्य से प्रजा का सेचन करने हारे और स्वय तेजस्वी राजा के (नाम) शत्रुओं को नमाने वाले बल या दण्ड विधान, शासन का (प्र ब्रवाम) अच्छी प्रकार वर्णन या उपदेश करें । और (अस्मिन् यज्ञे) इस प्रजापालन, एव राज्य कार्य में हम लोग उस शासन को (नमोभिः) दण्ड आदि शत्रुओं को दबाने वाले विविध साधनों से (धारयाम) धारण करें और पुष्ट करें । (ब्रह्मा) ब्रह्मा अर्थात् वेद का जानने वाला चतुर्वेदवित् विद्वान् (शस्यमानम्) विधान किये जाते हुए इसको (उपशृणवत्) स्वयं श्रवण करें । और (चतुःशृङ्गः) पदाति, रथ, अश्व और हस्ति आदि चारों प्रकार के हिंसासाधनों से सम्पन्न (गौरः) गो=पृथिवी में रमण करने हारा राजा (एतत्) उस दण्ड-विधान को (अवमीत्) विद्वानों से श्रवण करके पुनः प्रजा को आज्ञा रूप से कहे ।

ज्ञान के पक्ष में—ब्रह्मा, वेदवित् विद्वान् चार वेदों रूप चार शृङ्गवाला और (गौरः) वेद वाणी में रमण शील होकर वमन अर्थात् वेदों का उपदेश करे और लोग श्रवण करें (घृतस्य) ज्ञान के परिपक्व स्वरूप का हम प्रवचन करें और (यज्ञे) श्रेष्ठ कर्म या उपास्य परमेश्वर में उसको (नमोभिः) आदर वचनों सहित (धारयाम) प्रयोग करें ।

च॒त्वारि॒ शृङ्गा॒ त्रयो॑ऽअस्य॒ पादा॒ द्वे शी॒र्षे स॒प्त हस्ता॑सो॒ऽअस्य ।
त्रिधा॑ ब॒द्धो वृ॑ष॒भो रो॑रवीति म॒हो दे॒वो मर्त्याँ॒२ऽ आवि॑वेश ॥६१॥

ऋषभो यज्ञपुरुषो देवता । विराडार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राजा के पक्ष मे —इस राजा रूप प्रजापति या राष्ट्र-रूप यज्ञ

के (चत्वारि शृङ्गा) चार शृङ्ग अर्थात् शत्रुओं के हनन करने वाले साधन चतुरंग सेना है। (अस्य) इसके (त्रय.) तीन (पादाः) पैर अर्थात् चलने के साधन हैं राजा, प्रजा और शासक। (द्वे शीर्षे) दो शिर हैं राजा और अमात्य या राजा और पुरोहित। (अस्य) इसके (सप्त हस्तासः) सात हाथ, सात प्रकृतियें हैं। (त्रिधा बद्धः) तीन शक्तियां प्रज्ञा, सेना और कोष। इन तीन शक्तियों से राष्ट्र बँधा या सुव्यवस्थित है। वह (वृषभः) सर्वश्रेष्ठ, वर्षणशील मेघ या बलीवर्द के समान (रोरवीति) गर्जना करता है और (मह देवः) वह बड़ा पूजनीय देव दानशील, प्रजा को सुखप्रद, राजा (मर्त्यान्) मनुष्यों को (आविवेश) प्राप्त है।

यज्ञ-पक्ष में—यज्ञ के ४ सींग, ब्रह्मा, उद्गाता, होता और अध्वर्यु। तीन पाद ऋग्, यजुः, साम। दो शिर हविर्धान और प्रवर्ग्य। सात हाथ सप्त होता या सात छन्द। तीन स्थान प्रात.सवन, माध्यंदिन सवन और सायं सवन से बंधा है। अथवा—४सींग ४ वेद। तीन पाद तीन सवन। प्रायणीय और उदयनीय दोनों इष्टियां दो शिर। सात हाथ सात छन्द। तीन प्रकार से बद्ध मन्त्र, छन्द, ब्राह्मण और कल्प। यास्क० निरु० १३।७॥

अथवा शब्द के पक्ष में—४ सींग, नाम, आख्यात (क्रियापद) उपसर्ग और निपात। तीन पद भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान, दो सिर शब्द नित्य और अनित्य। सात हाथ, सात विभक्तियां। यह शब्द तीन स्थान पर बद्ध है छाती में, कण्ठ में और शिर में। सुनने से सुख का वर्षण करता है। वह शब्द करता, उपदेश देता है और ध्वनि रूप होकर समस्त मरणधर्मा प्राणियों में विद्यमान है। पतञ्जलि मुनि॥ व्या० महाभाष्य १। १। आ० १॥

आत्मा के पक्ष में—४ सींग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। तीन पाद अर्थात् ज्ञानसाधन, तीन वेद, या मनन, क्रिया और उच्चारण या ज्ञान,

कर्म और गान। दो शिर प्राण, अपान। सात हाथ शिरोगत सप्त प्राण-२ नाक, २ आंख, २ कान, एक मुख। अथवा सात धातु त्वग्, मांस, भेद, भठज, अस्थि, २ त्रिधा वद्ध मन, कर्म और वाणी, अथवा त्रिगुण सत्व रजस्, तमस द्वारा बद्ध है। वह भीतरी सब सुखों का वर्षक होने से 'वृषभ' महाप्राण आत्मा (देव) साक्षात् ज्ञानद्रष्टा होकर (मर्त्यान् आविवेश) मरणधर्मा देहों में आश्रित है।

परमात्मा के पक्ष में—चार सींग चारों दिशाएं अथवा अ, उ, म् और अमात्र। तीन चरण, तीन काल अथवा तीन भुवन। दो शिर द्यौ, पृथिवी। सात हाथ सात मरुत् गण अथवा सात समष्टि प्राण, अथवा महत्, अहकार और ५ भूत। त्रिधा वद्ध है सत्, चित् और आनन्दरूप में। वह महान् परमेश्वर (वृषभ) समस्त सुखों का वर्षक एव जगत् को उठाने वाला, (रोरवीति) परम वेदज्ञान का उपदेश करता है वह महान् देव उपादेय परमेश्वर (मर्त्यान् आविवेश) समस्त नश्वर पदार्थों में भी व्यापक है।

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन्।
इन्द्र एकꣳ सूर्य एकं जजान वेनादेकꣳ स्वधया निष्टतक्षुः॥१२॥

यज्ञ पुरुषो देवता। आर्षी त्रिष्टुप्। धैवत ॥

भा०—राजा के पक्ष में—(पणिभि) व्यवहार-कुशल पुरुषों द्वारा (गवि) गौ इव पृथ्वी या प्रजा में (गुह्यमानं) गुप्त रूप से (त्रिधा हितम्) तीन प्रकार से रक्खे, या बधे हुए (घृतम्) सेचन योग्य बल को (देवास.) विद्वान् विजेता पुरुष (अनु आविन्दन्) प्राप्त करते हैं। (इन्द्र) शत्रु नाशक सेनापति (एक) एक सेना-दल को (जजान) उत्पन्न करता है। (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (एक) एक, कर आदि द्वारा धन, कोश रूप बल को उत्पन्न करता है। और (वेनात्) मेधावी पुरुष से ज्ञान रूप घृत को तपस्वी लोग (स्वधया) अपने ज्ञान को धारण करने वाली तपस्या द्वारा (नि. ततक्षुः) प्राप्त करते हैं।

विद्वान् के पक्ष में-(पणिभिः) स्तुति करने वाले या व्यवहारज्ञ कुशल पुरुषों द्वारा या प्राणों द्वारा (गवि) गो-दुग्ध में छुपे (घृतम्) घी के समान (गवि) गौ में अर्थात् समस्त लोकों, पृथिवी, अन्तरिक्ष वाणी और अन्न में (गुह्यमानं) छुपाये गये और उसी में (त्रिधा हितम्) तीन प्रकार से रक्खे गये अन्न, ब्राह्मण और कल्प, इन तीन प्रकार से विद्यमान (घृतम्) ज्ञान को (देवासः) विद्वान् लोग (अविन्दन्) मनन द्वारा प्राप्त करते हैं (इन्द्रः) इन्द्र वायु, (एकम्) एक प्रकार के 'घृत' को (जजान) प्रकट करता या जानता है। और (सूर्यः) सूर्य एक प्रकार के घृत को (जजान) ज्ञान करता या प्रकट करता है। और विद्वान् पुरुष (स्वधया) अपनी धारित आत्म-शक्ति से (वेनात्) कान्तिमान् अग्नि से (निस्ततक्षुः) शिल्प द्वारा उत्पन्न करते हैं।

'गौः'—इमे वै लोका गौः। यद्धि किंच गच्छति इमांस्तल्लोकान् गच्छति। श० ६। १। २। ३४॥ अयम्मध्यमो लोको गौः। तां० ४। १। ७॥ गौर्वा सार्पराज्ञी। कौ० २७। ४॥ प्राणो हि गौः। श० ४। ३। ४। २५॥ इडा हि गौः। श० २। ३। ४। ३४॥ सरस्वती गौः। श० १४। २। १। १७॥ या गौः सा सिनीवाली सो एव जगती। ऐ० ३। ४८॥ इन्द्रियं वै वीर्यं गावः।

ये तीनों लोक 'गौ' कहाते हैं। अन्तरिक्ष और पृथिवी, ये दोनों भी 'गौ' कहाते हैं। प्राण—'गौ' है। इडा 'गौ' है। सरस्वती या वाणी गौ है। इन्द्रिय गौवें हैं, अन्न गौ है। विद्वानों ने इन सब पदार्थों में घृत या रस के दर्शन किये।

घृतम्—अन्नस्य घृतमेव रसस्तेजः। मं० २। ६। १५॥ तेजो वै एतत् पशूनां यद् घृतम्। ऐ० ८। २०॥ देवव्रतं वै घृतम्। तां० १८। २। ६॥ रेतःसिक्तिर्वै घृतम्। कौ० १६। ५॥ उल्वं घृतम्। श० ६। ६। ६। २। १५॥ घृतमन्तरिक्षस्य रूपम्। श० ६। २। ३। ४४॥

अन्न का परम रस घृत है। वीर्य घृत है। अन्तरिक्ष तेज घृत है।

पणिभिः-सुरैः इति उव्वट। असुरै इति महीधर। व्यवहारज्ञैःस्ताव-कैरिति दयानन्दः।

तीनों लोकों में घृत विद्यमान है। सर्गव्यापार करने वाली शक्तियें उस ब्रह्म बीज रूप तेजस् को फैलाती हैं। परन्तु उसके एक तेज को आकाश में सूर्य ने प्रकट किया, एक को विद्युत् रूप से वायु ने और तीसरे को हम अग्नि रूप से अथवा अपने देह में जाठर रूप से प्राप्त करते हैं।

वाणी रूप गौ में ईश्वर के स्वरूप के स्तुतिकर्त्ता मन्त्रों ने तीन प्रकार का ज्ञान रूप घृत को धारण किया। जिसको वायु, सूर्य और अग्नि ने प्रकट किया।

एता ऽअर्षन्ति हृद्यात्समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य ऽआसाम्

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—राजा के पक्ष में—(एता घृतस्य धारा) ये तेज की धाराएं बल और शक्ति पूर्वक कही गयी आज्ञाएं या सेनाएं (हृद्यात्) प्रजा के हृदय में उत्पन्न, उनके चित्तों को रमाने वाले (समुद्रात्) समुद्र के समान गम्भीर राजा से (अर्षन्ति) निकलती हैं। और (शतव्रजाः) सैकड़ों मार्गों में जाने वाली या सैकड़ों कार्यों को चलाने वाली होकर (रिपुणा) बाधक शत्रु द्वारा भी (न अवचक्षे) रोकी या विरोध नहीं की जा सकतीं। उन (घृतस्य) तेज की या बल, वीर्य या अधिकार की बनी (धाराः) राष्ट्र के धारण या व्यवस्थापन में समर्थ धाराओं को मैं (अभिचाकशीमि) सर्वत्र व्यापक देखता हूं और (आसाम् मध्ये) इनके बीच में (हिरण्ययः

वेतस) घृत-धाराओं के बीच अग्नि के समान सुवर्ण रूप कोपसम्पत्ति का बना अति कमनीय आधार रूप स्तम्भ है।

अध्यात्म मे—(घृतस्य धारा. अभिचाकशीमि) मैं द्रष्टा जिस प्रकार घृत की धाराओं का प्रवाहित होता देखूं और (आसाम्) इनके (मध्ये) बीच में जिस प्रकार (हिरण्ययः वेतसः) सुवर्ण के समान कान्तिमान् अग्नि हो उसी प्रकार (एता.) ये (घृतस्य) स्वयं क्षरण होने वाले अनायास बहने वाले या स्वयं प्रस्फुटित होने वाले झरनो के समान फूट निकलने वाली वाणियों का मैं (अभि) साक्षात् (चाकशीमि) दर्शन करता हूं। और (आसाम् मध्ये) इनके बीच में व्यापक (हिरण्ययः) अति सुन्दर तेजस्वी (वेतसः) अति कमनीय पुरुष या ब्रह्म तत्व है। (एताः) ये वाणियें (हृद्यात् समुद्रात्) हृदय के समुद्र से अथवा हृदय से जानने और अनुभव करने योग्य हृदय मे बसे, (समुद्रात्) समस्त ज्ञान जलों के बहाने वाले परम अक्षय ज्ञानभण्डार मे (अर्षन्ति) निकलती हैं। वे (शतव्रजाः) सैकड़ो मार्गों मे जाने वाली, सैकड़ो अर्थों वाली, बहुत से पक्षों मे लगने वाली, श्लेष से बहुत से अभिप्राय बतलाने वाली होकर भी (रिपुणा) पापी शत्रु द्वारा भी (न अवचक्षे) खण्डित नहीं की जा सकतीं। अर्थात् वे सब सत्य वाणियें सत्य ज्ञान की धारायें है। इसमे संदेह नहीं।

'हृद्यात् समुद्रात्' श्रद्धोदकप्लुताद् देवतायाथात्म्यचिन्तनसन्तानरूपात् समुद्रात्, इति महीधरः।

सम्यक् स्रवन्ति सरितो न धेनाऽअन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः।
एते ऽअर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगा ऽइव क्षिपणोरीषमाणाः॥ ९४॥

ऋष्यादि पूर्ववत्॥

भा०—राजा के पक्ष मे-(धेनाः) राजाज्ञाएं (हृदा मनसा अन्तः पूयमानाः) हृदय और चित्त मे खूब मननपूर्वक विचारी जाकर (सरितः न)

नदियों के समान गम्भीर और अदम्य वेग से (स्रवन्ति) बहती हैं। राष्ट्र में फैलती हैं (घृतस्य ऊर्मयः एताः) तेजस्वी राजकीय उन्नत आज्ञाएं या आज्ञाओं को धारण करने वाले राजदूत (क्षिपणोः) व्याध के भय से (ईषमाणाः) व्याकुल (मृगाः) मृगों के समान वेग से (अर्षन्ति) गति करती हैं।

ज्ञानी के पक्ष में—(हृदा) हृदय द्वारा और (मनसा) मन से (अन्तः पूयमानाः) भीतर ही भीतर निगम, निघण्टु, व्याकरण, शिक्षा छन्द आदि से पवित्र, सुविचारित होकर दोष रहित हुई हुई (धेनाः) ज्ञानरस पान कराने वाली वाणियां (सरितः न) नदियों के समान (सम्यक्) भली प्रकार (स्रवन्ति) निकलती हैं, बहती हैं फूट रही हैं। (क्षिपणोः) हिंसक व्याध के भय से (ईषमाणाः) भागते हुए (मृगाः इव) मृगों के समान (एते) ये (घृतस्य) परम रस, ब्रह्म तेज, ब्रह्मज्ञान की (ऊर्मयः) तरङ्गें, उद्गार (अर्षन्ति) उठती चली आरही हैं।

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥९५॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(प्राध्वने) मार्ग रहित प्रदेश में मार्ग न मिलने पर (सिन्धोः) समुद्र के या महानदी के (शूघनासः) शीघ्र वेग से बहने वाले (यह्वाः) बड़े (वातप्रमियः) वायु के समान तीव्र गति से जाने वाले नाले जिस प्रकार वेग से (पतयन्ति) फूट पड़ते हैं उसी प्रकार (घृतस्य धाराः) ज्ञान की वाणियें अग्नि के प्रति घृत की धाराओं के समान वेग से बहती हैं। (वाजी न) जिस प्रकार अश्व (काष्ठाः भिन्दन्) वेग से सीमाओं को भी तोड़ता फोड़ता हुआ और (ऊर्मिभिः) स्वेद-धाराओं से (पिन्वमानः) सींचता हुआ जाता है। और जिस प्रकार (अरुषः)

दीप्तिमान् (वाजी) तेजस्वी अग्नि (काष्ठा भिन्दन्) काष्ठों, समिधाओं को अपनी ज्वालाओं से भेदता हुआ, चटकाता हुआ, और (ऊर्मिभिः) तेज की ऊर्ध्वगामिनी धाराओं से (पिन्वमानः) सींचता हुआ जलता है उसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् भी (अरुषः) रोष रहित सुशील, और तेजस्वी कान्तिमान् होकर (काष्ठाः भिन्दन्) क' परम सुख की विशेष आस्था, या स्थिति मर्यादा या बाधाओं को तोड़ता हुआ (ऊर्मिभिः) ऊपर को जाने वालों प्राणों से (पिन्वमानः) स्वयं तृप्त आनन्द प्रसन्न होता है और वाणी या उद्गार रूप तरंगों से श्रोताओं को भी तृप्त करता है।

अध्यात्म में—(घृतस्य धाराः) साधक तेज की धाराएं उसके बीच तीव्र तरंगों या नालों के समान बहती हैं ।

राजा के पक्ष में—(यह्वाः) बड़े (वातप्रमियः) वायु के समान तीव्र गति वाले (घृतस्य) तेज के धारण करने वाली वीर सेनाएं (सिन्धोः शूघनासः धाराः इव) सिन्धु की तीव्रगति वाली धाराओं के समान (पतयन्ति) आगे बढ़ती हैं । और वह स्वयं वेगवान् अश्व के समान (काष्ठा भिन्दन्) संग्रामों को पार करता हुआ (ऊर्मिभिः पिन्वमान) तरंगों से सैंचते हुए उत्ताल समुद्र के समान विराजता है ।

अभिप्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो ऽअग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥६६॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—(समना) समान रूप से एक ही अभिलषित पुरुष को मन से विचारती हुई (कल्याण्यः) कल्याण, या शुभ आचरण और लक्षण वाली (योषाः इव) स्त्रियें, कन्याएं जिस प्रकार (स्मयमानासः) ईषत् कोमल हास करती हुईं (अग्निम् अभि) तेजस्वी विद्वान् को वरण करने के उद्देश्य से (प्रवन्ते) उसके पास जाती हैं। और (ताः जुषाणः)

उनको प्रसन्न चित्त से प्रेम करता हुआ (जातवेदा.) वह विद्वान् स्नातक भी हर्यति चाहता है। और जिस प्रकार (घृतस्य धारा.) घी की धाराए (समिध) अच्छी प्रकार उज्ज्वल होकर (अग्निम् वसन्त)) अग्नि को प्राप्त होती हैं और (जातवेदाः ताः हर्यति) अग्नि उन धाराओं को चाहता है उसी प्रकार (घृतस्य धारा·) ज्ञान की धाराएं (समिध) अच्छी प्रकार शब्दार्थ सम्बन्धों से उज्ज्वल होकर (अग्निम्) ज्ञानवान् पुरुष को प्राप्त होती हैं। और वह (ता. जुषाणा) उनका सेवन करता हुआ (जातवेदा) स्वय विज्ञानवान् होकर (हर्षति) उनको चाहता है।

राजा के पक्ष में—तेजो बल को धारण करनेवाली सेनाएं, (समिध.) क्रोध और वीरता से उज्ज्वल होकर (अग्निम्) तेजस्वी अग्रणी सेना नायक राजा को प्राप्त होती है और वह उनको चाहता है।

कन्याऽइव वहतुमेतवाऽउऽअञ्ज्यञ्जाना अभिचाकशीमि। यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९७॥

ऋष्यादि पूर्ववत ॥

भा०—(यत्र) जहां (सोम. सूयते) सोम का सवन होता है और (यत्र) जहा (यज्ञः) यज्ञ होता है (तत्) वहा (घृतस्य धारा) घृत का धाराए (पवन्ते) बहती हैं। इसी प्रकार (यत्र) जहा (सोम) राष्ट्र प्रेरक राजा का सवन अर्थात् अभिषेक होता है और (यत्र) जहां (यज्ञ·) परस्पर सगति, व्यवस्था से युक्त राजा प्रजा का पालन रूप यज्ञ या करादान और ऐश्वर्यदान रूप यज्ञ होता है। वहा (घृतस्य) वीर्य या बल को धारण करने वाली सेनाएं या अधिकार वाली राज्य व्यवस्थाएं नियम धाराए (पवन्ते) प्रकट होती हैं। मैं घृत की ... पति के प्रति (एतवै) आने धारक सेनाओं को, (वहतुम्) ...

के लिये उत्सुक (अञ्जि) अपने कमनीय स्वरूप सौभाग्य या पूर्ण यौवन के प्रकट करने वाले सुरूप को (अञ्जाना) प्रकट करती हुई (कन्याः इव) कन्याओं के समान अति उत्सुक (अभिचाकशीमि) देखता हूं ।

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥ ६८ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति, कीर्त्ति, अथवा ईश्वरोपासना के लिये उत्तम स्तुति करने वाली वेद वाणी, (गव्यम्) गोदुग्ध के समान हृदय का उत्तम, पुष्टिप्रद, गो = वाणी में स्थित उत्तम ज्ञान और (आजिम्) संग्राम और यज्ञ अथवा समस्त उत्तम साधनों से प्राप्त करने योग्य राज्य और तपःसाधनों से प्राप्य परम पद को (अभि अर्षत) विजय करने के लिये लक्ष्य करके आगे बढ़ो । और (अस्मासु) हममें (भद्रा द्रविणानि) सुखकारी सुवर्णादि ऐश्वर्यो का (धत्त) प्रदान करो । और (अस्माक) हमारे इस (यज्ञम्) परस्पर संगति से प्राप्त इस गृहस्थ रूप यज्ञ को (देवता) विद्वानों के बीच में उनके अभिमत रूप से (नयत) प्राप्त कराओ । अथवा—हे (देवता) देवो ! विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इमं यज्ञं नयत) इस यज्ञ को सन्मार्ग पर ले चलो । और (नः) हमें (घृतस्य) हृदय में रस सेचन करने वाले ज्ञान की (धाराः) धाराएं (मधु मत्) ज्ञानमय आनन्द प्रद होकर (पवन्ते) प्राप्त हों ।

राजा के पक्ष में—हे (देवता) वीर विजगीषु पुरुषो । आप लोग (सुस्तुतिम्) उत्तम यश, (गव्यम्) पृथिवी में उत्पन्न समस्त उत्तम पदार्थ और (आजिम्) विजय करने योग्य संग्राम को (अभि) लक्ष्य करके (अर्षत) आगे बढ़ो । और (अस्मासु) हममें (भद्रा) सुखकारी (द्रविणानि) [illegible] (धत्त) धारण कराओ । हमारे (इमं यज्ञं नयत) इस राष्ट्र को संचालित करो और [illegible] (घृतस्य धारा) तेज, के धारण

रने वाली वीर सेनात (मधुमत्) अन्न आदि ऐश्वर्य और शत्रु के पीड़ा कारी बल सहित (पवन्ते) प्राप्त हो।

धामं॑ते विश्वं॒ भुव॑नमधि॑ श्रि॒तमु॒न्तः स॑मु॒द्रे हृ॒द्यु॒न्तरायु॑षि।
अ॒पामनी॑के सम्ि॒थे य ऽआभृ॑तुस्तम॑श्याम मधु॑मन्तं त ऽऊ॒र्मिम् ६६

भा०—राजा के पक्ष में—हे राजन् ! (ते धामनि) तेरे धारण करने वाले सामर्थ्य के आश्रय पर यह (विश्वं भुवनम्) समस्त राष्ट्र (समुद्रे अन्त) जो समुद्र के बीच उससे घिरा है, (श्रितम्) आश्रित है। इसी प्रकार (हृदि) हृदय में और (आयुषि अन्त) जीवन भर में और (अपाम् अनीके) प्रजाओं के सैन्य में और (समिथे) संग्राम के अवसर पर (य) जो भी नाना पदार्थ समूह (आभृत) एकत्रित किया जाता है वह (तम्) उस (मधुमन्तम्) मधुर फल से युक्त, या शत्रु-पीड़न-कारी सामर्थ्य से युक्त (न ऊर्मिम्) तेरे उस उर्ध्वगामी सामर्थ्य का (अश्याम) हम भोग करें।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर (ते धामनि विश्वं भुवनम् आधिश्रितम्) तेरे धारण सामर्थ्य के आश्रय पर यह समस्त विश्व आश्रित है। (समुद्रे) समुद्र के (अ त) बीच में, (हृदि) हृदय में (आयुषि अन्त.) जीवन में, (अपाम् अनीके) ज्ञानों और कर्म्मों के, या आप्त जनों के सत्संग में और (समिथे) यज्ञ में (य) जो तेरा (ऊर्मि) उत्कृष्ट रूप (आहृत.) प्राप्त है उस (मधुमन्तम्) ज्ञानमय मधुर, आल्हादकारी (उर्मिम्) रस स्वरूप तरग को हम (अश्याम) प्राप्त करें।

ईश्वरीय बल की भिन्न २ स्थान में ऊर्मि कैसी २ है? समुद्र अर्थात् आकाश में सूर्य रूप, हृदय में जाठराग्नि रूप, जीवन में अन्न रूप जलों के सघात में विद्युत् रूप, सग्राम में शौर्य रूप, यज्ञ में अग्नि तेरा तेजोरूप या धाम रूप 'ऊर्मि' है।

राजा पक्ष में—राजा का तेज समुद्र में राष्ट्ररूप, हृदय में विजयाभिलाष रूप, आयु में पराक्रमरूप, सैन्य में बलरूप संग्राम में शौर्यरूप है।

॥ इति सप्तदशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालङ्कार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तदशोऽध्यायः ॥

ओ३म्

यजुर्वेद-संहिता

भाषा-भाष्य

(द्वितीय खण्ड)

भाष्यकार—
श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा,
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—
आर्य्यसाहित्यमण्डल, लिमिटेड, अजमेर.

प्रथमावृत्ति २०००   सं० १९८८ वि०   मूल्य ४) रुपये

मुद्रकः—
ओंकार प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

यजुर्वेद द्वितीय खण्ड की

भूमिका

यजुर्वेद आलोक भाष्य के प्रथम खण्ड की भूमिका में हमने कुछ आव- [illegible] विषयों पर प्रकाश डाला था, जिन से यजुर्वेद का बाह्य परिचय [illegible] प्रकार विदित हो सकता है। शाखा भेद के विस्तार को [illegible] खण्ड की भूमिका में दर्शा दिया था। यजुर्वेद के प्रतिपाद्य [illegible] को आलोचना पूर्वक दर्शाने के लिये भूमिका के पृष्ठों में विशेष [illegible] न करके हम पाठकों से सविनय निवेदन करेंगे कि वे विषयसूची [illegible]तिपाद्य विषय को जानने का यत्न करें। अथर्ववेद के समान यजु- [illegible] प्रत्येक सूक्त या अध्याय के विषयों को शीर्षकों द्वारा नहीं दर्शाया [illegible] है, प्रत्युत विषय सूची में अध्यायों के साथ ही कण्डिका या मन्त्र का [illegible] हुए मन्त्र का विषय संक्षेप में दर्शा दिया गया है, इससे उत्तम और [illegible] उपाय यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय को विशुद्ध रीति से दिखाने का [illegible] हमारी मति में नहीं आया।

भाष्य के पाठकों में से बहुत से पाठक इस बात के लिये उत्सुक हैं कि [illegible]र्वेद के मन्त्रों से किये जाने वाले यज्ञों और महायज्ञों के प्रकरणों को भूमिका में खोल कर स्पष्ट किया जावे। ऐसे महोदयों का विचार बहुत [illegible]ी महत्व का है, परन्तु यह कार्य बड़े श्रम और काल की अपेक्षा करता है। [illegible]सके अतिरिक्त ऐसे विषय को विस्तृत और स्पष्ट रूप से दर्शाने के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों ने जितना प्रयास किया है उस सबको प्रथम प्रकट करने और फिर उन पर आलोचना और उन कर्म काण्डों के रहस्यों का विवे- चन करना भूमिका के इनेगिने पृष्ठों में कभी सीमित नहीं हो सकता। इस [illegible]िये उनका विवरण भविष्य के किसी विस्तृत ग्रन्थ के लिये रख कर यहां उनके

सम्बन्ध में मौन ही रहना ठीक है। दूसरे वेद संहिताओं के आलोक भाष्य के प्रकाशन के पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों के भाषा भाष्य और आलोचनों को भी प्रकाशित करने का विचार है। "यदि आर्य साहित्य मण्डल" की स्थिति और हमारा मनोरथ दोनों की संगति दृढ़ रही तो यह भी कार्य सुचारु रूप से होकर यजुर्वेद के कर्मकाण्ड और यज्ञों का विवेचन जनता को अच्छी प्रकार जान लेने का सुअवसर प्राप्त होगा।

क्योंकि प्रस्तुत भाष्य में कर्मकाण्डपरक अर्थों को सर्वथा नहीं किया गया इस लिये भूमिका में यजुर्वेद के उवट, महीधर आदि के कर्मकाण्ड परक अर्थों को रख कर उनकी आलोचना या खण्डन मण्डन करना सर्वथा अनुपयुक्त है। जो भी कर्मकाण्ड ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है, जिसको आधार लेकर ब्राह्मणकारों की विचारमय व्याख्या प्रकट हुई है उसमें भी नाना प्रकार के भेद हैं, उन कर्म काण्डों की व्याख्याओं में भी भेद हैं, एक ही कर्मकाण्ड को लेकर मन्त्र के भाष्यकारों में भेद है, उन सब पर इस भूमिका में विचार करना असंगत प्रतीत होता है। जिस शैली को भाष्य में रखा गया है उसका दिग्दर्शन प्रथम खण्ड की भूमिका में पर्याप्त रूप में करा दिया गया है। उसको पाठक वहां ही देखने का श्रम करें।

परमेश्वर के पूर्ण अनुग्रह से यजुर्वेद का हिन्दी भाषा भाष्य पूर्ण हो गया। इसके पूर्व सामवेद और अथर्ववेद इन दोनों के भी भाष्य प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रयत्न को पार पहुंचाने में "आर्य साहित्य मण्डल" के संचालकों को धन्यवाद है और साथ ही आर्य जनता को भी धन्यवाद है, जिसकी गुणग्राहिता ने इस प्रयत्न को सफल किया है। इसके अनन्तर केवल ऋग्वेद का ही भाष्य सम्पूर्ण करना शेष है। जगदीश्वर के अनुग्रह से उसकी पूर्त्ति हो जाना भी कठिन नहीं है।

सहृदय पाठकों से निवेदन है कि वे भाष्य की त्रुटियों को बताने की महानुभावता अवश्य मित्रभाव से करते रहें। शुद्धाशुद्धि पत्र में, दृष्टि दोष

तथा प्रेस के जगत्प्रसिद्ध भूतों की स्वाभाविक लीला से जो २ जिस २ तरह की त्रुटियां रह गई हैं, उनका यथा शक्ति संशोधन कर दिया गया है। पाठक अपनी २ पुस्तकों को उसके अनुसार अवश्य संशोधन कर लें, जिससे पढ़ने के समय वे त्रुटियां सत्यार्थ समझने में बाधक न हों। इसके अतिरिक्त त्रुटि करना मानुष धर्म है और त्रुटियां दूर करने का मार्ग दर्शाना देवधर्म है, वाचकों से इसी देव धर्म की आशा है।

अजमेर
वैशाख, कृष्ण ८,
१६८८ वि०

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा
मीमांसातीर्थ, विद्यालंकार

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृ०	पं०	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
५	१७	(संवत्)	(संवित्)
२१	४	ज्येष्ठ जिस	ज्येष्ठमास जिस
३,१	२,२	द्वारा और सेवित है	द्वारा सेवित और उनका आश्रय है।
५५	२०	(मुज्यः सखा)	(युज्यः सखा)
६०	५	लक्ष्मण	लक्षण्य
६०	२३	अन्न प्रज्ञा	अन्तः प्रज्ञा
११०	१२	संघ कृत्वा	संघं कृत्वा
११५	२५	वेरी आदि	वेरी आदि।
१३५	१३	'अपो प्रधा०	'अपो अद्या०
१४४	९	प्रताप के।	प्रताप को
१७६	१७	श्लेपा विशेष	(श्लिष्ट विशेषणों
१९१	२४	हेगूं	गेहूं
२०४	२०	जुषताॐ	जुषेताॐ
३२७	१९,२०,२१	सुषीलिका	सुषिलीका
३५४	६	मनुष्यों में जीवन	मनुष्यों में पूर्ण जीवन
३२७	२५	यक्षन्	यक्षेन्

पृ०	पं०	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
३६५	१९	चटख का २	चटख २ कर
३६७	१६	सुचा	स्रुचा
	१९	करूं कश	करूं । कश
३७१	८	भक्ता	भोक्ता
३७४	७	पदाथ से)	पदार्थ से (
३७८	५ से २० तक १६ पंक्तियें		३७५ पृष्ठ में ५ वीं पंक्ति से आगे पढ़नी चाहियें ।
३७८	१०	राजा से स्त्री का	राजा से और स्त्री का
४००	२३	(सहस्विणीभिः) अज़ारों	(सहस्त्रिणीभिः) हज़ारों
४८१,८३,८५	माथे पर	अष्टाविंशोऽध्यायः	एकोनत्रिंशोऽध्यायः
५१६	९	(ऋत्वा)	(स्पृत्वा)
५६०	१४	(इध्म)	(इध्मः)
५६८	८	रूप प्रकट	रूप को प्रकट
५७९	२४	(द्युत यामा)	(द्युतद्यामा)

टिप्पणी—इन अशुद्धियों के अतिरिक्त भी अशुद्धियां रह जानी सम्भव हैं जो संशोधक की आंख से रह गयी हों, वाचकजन इनको देखकर अपनी पुस्तकों को शुद्ध करके पढ़ें । प्रायः प्रेस की छपाई में इकार, उकार, एकार और रेफ़ की मात्रायें टूट जाती हैं या नहीं उभरतीं, या छपते २ टाइप निकल जाता है, वह ठीक न बैठाया जाय, गलत बैठा दिया जाय इत्यादि नाना कारणों से प्रायः त्रुटियां हो जाती हैं । ग्रन्थकार ।

विषय सूची

अष्टादशोऽध्यायः (पृ० १–५१)

यज्ञ से अग्नि आदि दिव्य तत्त्व और उनके ज्ञाता विद्वानों की प्राप्ति, यज्ञ से न्यायाधीश आदि पदाधिकारियों की प्राप्ति। यज्ञ से पृथिवी, अन्तरिक्ष सूर्य, नक्षत्र, काल आदि पदार्थों के ज्ञान और उनके ज्ञाताओं की प्राप्ति (१९) यज्ञ से सूर्य के समान तेजस्वी नाना पदाधिकारियों की प्राप्ति। उसमें अंशु, उपांशु, अदाभ्य, अधिपति, ऐन्द्रवायव आदि का विवरण। (२०) आग्रयण आदि राज्यांगों की प्राप्ति, (२१) यज्ञ से स्रुक् चमसादि यज्ञ साधन के पात्रों की प्राप्ति और उनकी राष्ट्र और देह में व्याख्या (२२) यज्ञ से अग्नि, घर्म, अर्क, प्राण, अश्वमेध आदि की प्राप्ति। उनकी व्याख्या। (२३) यज्ञ से व्रत, ऋतु, तप, सवंत्सर आदि की प्राप्ति। (२४) एक, तीन, पांच आदि एकान्तर क्रम से सेना व्यूह और संख्या वृद्धि का नियम। (२५) यज्ञ से ४। ८। १२। क्रम से ४८ तक के व्यूह। (२३) यज्ञ से भिन्न २ अवस्था और बल वाले पशुओं की प्राप्ति (२६) यज्ञ सेना और नाना पशुओं की प्राप्ति। (२८) संग्राम, उत्तम सन्तान, ज्ञान, कर्म, ऐश्वर्य इनकी उत्तम रीति से शिक्षा और प्राप्ति। तेजस्वी पुरुषों के आदर, मुग्धों अज्ञानियों, को उत्तम ज्ञानोपदेश, प्रजापालक पुरुषों का आदर और उत्तम शिक्षा का आदेश। सूर्य के १२ नामों के अनुसार राजा के १२ नाम। (२९) यज्ञ से, आयु, प्राण, चक्षुः, श्रोत्र, वाणी, मन, आत्मा, ब्रह्मा, स्वः, पृष्ठ, स्तोम, यजु, ऋक्, साम, बृहत्, रथन्तर आदि की प्राप्ति। इनकी व्याख्या। (३१) राष्ट्र में विद्वान् तेजस्वी पुरुषों का होना और उनका राष्ट्र को समृद्ध करना, (३२) ऐश्वर्य का विस्तार और राष्ट्र की रक्षा। (३३) ऐश्वर्य के साथ दानशीलता, पराक्रम और बल की वृद्धि। (३४–३६) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये राजा से प्रार्थना। (३७) सम्राज्य से राजा का अभिषेक (३८–३९) अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, यज्ञ, मन इनकी तुलना से प्रजा के प्रति राजा के कर्त्तव्य। उसके भिन्न २ गुणों से ६ नाम। 'गन्धर्व' नाम का रहस्य। (४४) सब वर्गों का आश्रय राजा; (४५) राजा के समुद्र, मारुत और अवस्यू नामों का रहस्य। पक्षान्तर

में परमेश्वर की तुलना। (४६–४८) राजा और विद्वान् शासक के कर्त्तव्य। राष्ट्र के तेज और स्नेह की वृद्धि। (४९) राजा और पक्षान्तर में परमेश्वर से ज्ञान और जीवन रक्षा की याचना। (५०) राजा के सूर्य के समान कर्त्तव्य। पक्षान्तर में भौतिक पदार्थों के सदुपयोग का आदेश। (५१) उन्नति के लिये अग्रणी नायक की नियुक्ति। पक्षान्तर में परमेश्वरोपासना। और भौतिकाग्नि का उपयोग। (५२) नायक के अधीन सेना के दो पक्ष। सभापति के आगे तत्व निर्णय में पक्ष प्रतिपक्ष, और अध्यात्म में आत्मा, परमात्मा का वर्णन। (५३) राजा की चन्द्र और वाज, से तुलना। पक्षान्तर में परमेश्वर का स्वरूप। हिरण्यपक्ष श्येन का रहस्य। (५४) राजा के कर्त्तव्य और जिम्मेवारी के पद। (५५) प्रजापालक राजा के मेघ के समान कर्त्तव्य। (५६) सर्वाशापूरक राजा और ऐश्वर्य की आकांक्षा। (५७) अग्रणी नायक का प्रजापालन का कर्त्तव्य और उसका आदर (५८) विद्वानों को उत्तम, पूर्व पुरुषों के उपार्जित पद प्राप्त करने का उपदेश। (५९) विद्वानों के समक्ष राजा को राष्ट्र के कोष का समर्पण। अध्यात्म रहस्य। (६०) सर्वोच्च सम्राट और उसके ऊपर विद्वानों का शासन। पक्षान्तर में ईश्वरोपासना। (६३) अग्रणी नायक को सुख प्राप्ति के मार्ग पर ले चलने के साधनों का उपदेश। (६४) लेन देन, तथा प्रजा के उपकारक बड़े २ कामों पर राजा का नियन्त्रण। (६५) अश्व, राज्य, बल और पराक्रम की वृद्धि, राज्य का विद्वानों के बल पर संचालन। (६६) सम्राट् कैसा हो। (६७) उसके श्रेष्ठ कर्त्तव्य। (६८) अग्रणी नायक के दो मुख्य कर्त्तव्य। (६९–७०) दुष्टों को दण्ड देने का विधान। (७१) शत्रुओं का प्रबल सैन्य से ताड़न। (७२–७३) वैश्वानर अग्नि का वर्णन, राजा सभापति के कर्त्तव्य। (७४) राजा की रक्षा में प्रजा का ऐश्वर्य सुख भोग। प्रजा का राजा के प्रति आदर। (७६) विद्वान् नायकों का राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। (७५–७७) राजा का प्रजा और उनकी संतानों की रक्षा का कर्त्तव्य।

एकोनविंशोऽध्यायः (पृ० ५२-१२१)

सौत्रामणी । (१) ओपधियों के सदृश समान स्वभाव के शास्य शासक, तथा स्त्री पुरुषों की संगति करके वल की वृद्धि का उपदेश । स्त्री पुरुषों का परिपक्व वीर्य होकर गृहस्थ करने की आज्ञा । सौत्रामणी यज्ञ का रहस्य, सोम और सुराकी व्याख्या । (२) सोम सवन । अभिपेक योग्य पुरुष का लक्षण । (३) राजा का सैन्य वल से सहायवान् होकर शत्रु पर आक्रमण । (४) ज्ञानवान् पुरुष के मनोरथों को पूर्ण करने वाली श्रद्धा, सूर्य दुहिता का रहस्य । (५-६) अभिपिक्त के कर्तव्य । (७) राजा प्रजा के पृथक् अधिकार, सोम सुरा का रहस्य । (८) अभिपिक्त पुरुष का स्वरूप और वल । उसके अभिपेक के प्रयोजन । (९) तेज, वीर्य, वल, ओज मन्यु और सहः, राजा के ये ६ रूप । पक्षान्तर में परमेश्वर से इन छः हों पदार्थों की प्रार्थना । राजा की व्याघ्र, श्येन, सिंह आदि से तुलना और उसकी 'विपूचिका' नाम संस्था का वर्णन । अध्यात्म में अन्तःप्रज्ञा का वर्णन । (११) पुत्र का माता पिता के प्रति कर्त्तव्य । पितृ ऋण से मुक्ति, राजा का पृथ्वी के प्रति कर्त्तव्य । (१२-२१) राजा का वल सम्पादन । राष्ट्र यज्ञ का विस्तार । (१३) यज्ञ से राज्य की तुलना । शप्प, तोक्म, लाजा और मधु आदि यज्ञ गत पदार्थों के नामों का श्लेष पूर्ण अर्थ । सौत्रामणी का स्वाध्याययज्ञ रूप से दिग् दर्शन । (२२) अभिपिक्त पुरुष का इन्द्रपद । उसकी वृद्धि । (३२) 'सरस्वती' और 'अश्विनौ' की वृद्धि का रहस्य । (३४) देह में शुक्र के समान राजा के ऐश्वर्यवान् पद का सार्वजनिक उपभोग । (३५) सैन्य वल की वृद्धि और उसका उपभोग । (३६) स्वधायी पिता, पितामह, प्रपितामहों का आदर, उन की तृप्ति, और उनका शुद्धि करने का कर्तव्य । पितरों का रहस्य । (३७) पितरों का शुद्धि करने का कर्तव्य । (३८) विद्वान् और राजा का दुःख संकट वाधन का कर्तव्य । (३९-४४) सब विद्वानों का पवित्र करने का

कर्त्तव्य । (४५) यम राज्य में पितरों की स्वधा का रहस्य । (४६) समान और एक चित्त वाले जीवों की लक्ष्मी को अपने में प्राप्त करने की इच्छा (४६) मर्त्यों और देवों के दो मार्ग । छान्दोग्य प्रोक्त तीन मार्गों का विवेचन । (४८) देह में सन्तानोत्पादक दश प्राण युक्त वीर्य की प्रार्थना । अग्नि स्वरूप पति । राष्ट्र पक्ष में दशवीर नायकों से युक्त सैन्य और नायक का वर्णन । (४९) अवर, पर और मध्यम पितरों का वर्णन । (५०) आंङ्गिरस, नवग्व, अथर्व, और सोम्य, पितरों अर्थात् पालकों का वर्णन, उनका रहस्य । (५१) वसिष्ठ पितरों का वर्णन और उनका रहस्य । (५२-५४) उनके मुख्य नायक सोम, राजा । (५५-५६) वर्हिपद् पितरों और सुविदत्र पितरों का वर्णन और उनका रहस्य । पितृ जनों को आदर से बुलाना और उनसे रक्षा की प्रार्थना । (५८) अग्निष्वात्त पितरों का वर्णन। उनके देवयान मार्ग और उनकी स्वधा से तृप्ति का रहस्य । (५९) उनके सर्ववीर रयि का रहस्य । (६०) उनकी असुनीति तनु की कल्पना का रहस्य । अग्निष्वात्त, ऋतुमान् सोमपायी विप्रों का वर्णन । (६२) उक्त पालक जनों का सभ्यता पूर्वक आसनों पर विराजना । (६३) पालक जनों का ऐश्वर्य दान । उसका विविध रहस्य । (६५) उसका पितृ जनों से सम्बन्ध । (६६) उसका पितृ जनों का उत्तम पुष्टि कारक अन्नों का दान । (६७) विद्वानों और ऐश्वर्यवान् का पालक पुरुषों के प्रति कर्त्तव्य । (६८) पूर्व और पर, तथा पृथिवी लोक और प्रजाओं पर अधिष्ठित पालक जनों का वर्णन । (६९) ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञानवेत्ता पितरों का वर्णन, (७०) कामनावान् पितरों का वर्णन । (७०) सूर्य मेघ के दृष्टान्त से राजा का शत्रु के प्रति कर्त्तव्य । (७१) अपां फेन से नमुचि के शिर के काटने का रहस्य । (७२) अभिषिक्त राजा का कोप, बल द्वारा विपद्-विजय सम्पत् प्राप्ति । अध्यात्मिक मृत्युंजय और मधु अमृत पान का रहस्य । (७३) हंस के दृष्टान्त से अध्यात्म में ज्ञानी के परमानन्द रस का पान और राजा के ऐश्वर्य के उपभोग का वर्णन । (७४) हंस के दृष्टान्त

से शुचिषत् आत्मा और धर्मात्मा राजा का प्राणों और प्रजाओं से रस और ऐश्वर्य प्राप्ति का वर्णन। (७५) अन्न से पौष्टिक रस के समान राजा का सार भूत ऐश्वर्य और अध्यात्म में आनन्द रस की प्राप्ति। (७६) मूत्र, वीर्य तथा गर्भ जरायु के दृष्टान्त से दान और उत्सर्ग के महत्व का वर्णन। (७७) सत्य के बल पर प्रजापालक की सत्य में श्रद्धा और असत्य में अश्रद्धा का उपदेश। (७८) वेद द्वारा सद् असत् के विवेक का उपदेश। (७९) अत्तार के दृष्टान्त से शुद्ध उपाय से अर्थोपार्जन का उपदेश। (८०) सीसे से शत्रु नाश करने और सूत्र से कपड़ा बुनने के दृष्टान्त से निर्बल राष्ट्र की वृद्धि का उपदेश। (८१) दो अश्वी और सरस्वती तीनों का राष्ट्र रक्षा और पोषण के साधनों का उत्पादन। (८२) उक्त तीनों का अन्नों से शरीर को वैद्यों के समान वेतनबद्ध भृत्यों द्वारा सुदृढ़ करना। (८३) बुद्धिमती स्त्री के समान राजसभा का राष्ट्र में ऐश्वर्य और शोभा बढ़ाते रहना। (८४) वीर्य द्वारा सन्ततिजनन के समान राजा की उत्पत्ति। शरीर से मल के समान दुष्ट पुरुषों का राष्ट्र से निर्वासन। (८५) अन्न से बल प्राप्त करने के समान सुरक्षक राजा की बल वृद्धि, उदर के भीतरी अंगों से शासकों की तुलना। (८६–८७) प्लीहा आदि भीतरी अंगों की तुलना। (८८) मुख से राज्य व्यवस्था की तुलना। (८९) राष्ट्र की चक्षु से तुलना। (९०) समृद्ध राष्ट्र की नासिका से तुलना। (९१) राजा और आत्मा की बैल से तथा राष्ट्र की मुख से तुलना। (९२) पूर्ण राष्ट्र की शरीर से तुलना। (९३) योग द्वारा शरीर शोधन और चिकित्सा के समान ही राष्ट्र का शोधन और चिकित्सा। अंगों की सप्ताङ्गों से तुलना। पक्षान्तर में गृहस्थ का वर्णन। (९४) स्त्री के गर्भ में बालक के धारण के समान प्रजा के बीच राजा का धारण। (९५) दूध और मधु के समान अभिषेक द्वारा राजा का दोहन।

विंशोऽध्यायः (१२२–१७२)

(१) राजा, सभापति का स्वरूप और उसका प्रजा के प्रति कर्तव्य।

(२) सर्व श्रेष्ठ पुरुष का सिंहासन पर विराजना और उसको प्रजा पालन के कर्तव्योपदेश। (३) राजा का अभिषेक। और उसके ९ प्रयोजन। (४) सम्राट् का नामकरण और उपाधिवितरण। सम्राट का तेजस्वी रूप सम्राट् और विराट् का आंख कान का सा सम्बन्ध। (६–८) पदाधिकारों और अध्यात्म शक्तियों की तुलना। (१०) अंगों में आत्मा के समान राष्ट्र के अंगों में राजा की प्रतिष्ठा। (११) तेतींस विद्वान् देवों की प्रतिष्ठा। (१२) उनके परस्पर सहयोग से वृद्धि। (१३) राजा के शरीर के अंगों की राजा की शक्तियों या अधिकारों से तुलना। (१४–१८) विद्वानों का प्रजाजनों को असत्कर्मों और वन्धनों से छुड़ाना। (१९) आप्त पुरुषों का ओषधिवत् रक्षक और शत्रुनाश होने की प्रार्थना। (२०) आप्त पुरुषों का पापों से छुड़ाने का कर्त्तव्य। (२१) राजा का सर्वोत्तम पद। (२२) अभिषिक्त राजा का उपसर्पण और ऐश्वर्य धारण। (२३) सम्राट् की वैश्वानर ज्योति सूर्य के समान स्थिति। (२४) प्रजापति के अधीन व्रतोपायन और दीक्षा ग्रहण। गुरु शिष्य सम्बन्ध का विवरण। (२५–२६) ब्रह्म क्षत्र युक्त पुण्य लोक का वर्णन। (२७) सम्राट् को आशीर्वाद। (२८) दान शील उदार राजा का वर्णन। (२९) समृद्ध राजा का आश्रय करना। (३०) विद्वानों का राजा को उपदेश करने का धर्म। (३१) राजा का अभ्युक्षण, दीक्षा। (३२–३३) राजा का सरस्वती (राजसभा) इन्द्र, और सुत्रामा पद पर स्थापन भूताधिपति का पद। (३४) राष्ट्र शरीर के प्रधान शक्तियों के रक्षण कर्त्ता के पद पर नियुक्ति। (३६) शत्रु विजय का आदेश। (३७) नराशंस, तनूनपात् पद, उसके कर्त्तव्य। (३८) गोत्रभित्, वज्रबाहु राजा का स्वरूप। (३९) सूर्य के समान हरिवान् इन्द्र राजा का स्वरूप। (४०) पति को स्त्रियों के समान प्रजाओं और सेनाओं का अपना नायक वरण। (४१) उषा, नक्त नाम दो संस्थाओं का नायकस्वीकरण। (४२) अग्नि और वायु नाम दो मुख्याधिकारियों का राजा को स्वीकार। (४३) सरस्वती, इडा, भारती

तीनों देवियों का राजा को वरण। (४४) तेजस्वी पुरुष को सैनापत्य पद। (४५) वट आदि के समान वनस्पति पद। (४६) इन्द्र, सेनापति पद के योग्य पुरुष का लक्षण। (४७) इन्द्र सुत्रमा के कर्तव्य। (५५) अग्नि के समान तेजस्वी पद पर अभिषिक्त नायक के लक्षण। (५६-६०) सरस्वती और अश्वियों के कर्तव्य। (६१-७७) उषा, नक्त, अश्वि, तीन देवियें, सविता, वरुण, इन सबका इन्द्र पद को पुष्ट करना। (७८) अग्रणी नायक का स्वरूप। (७९) उसके कर्तव्य। (८०) राजा की बल वीर्य पुष्टि। (८१) अश्वियों के कर्तव्य। (८२) मेघ के समान राजा के कर्तव्य। (८३) अधिकारियों के कर्तव्य। (८४-८६) विद्वत्सभा के कर्तव्य। (८७-९०) इन्द्र सुत्रामा का आदर।

एकविंशोऽध्यायः (१७३-२२७)

(१) प्रजा की प्रार्थना सुनने का राजा का कर्तव्य, पक्षान्तर में परमेश्वर का स्मरण। (२) प्रजा की शरण याचना, राजा का अभय दान। (३) प्रजा के परस्पर कलहों का दूर करना राजा का कर्तव्य। (४) उत्तम नायक को प्राप्त करने की प्रार्थना। (५-७) राजसभा और राज्य व्यवस्था की नौका के साथ तुलना, कर्तव्य दृष्टि से उसका उत्तम स्वरूप। (८-९) मित्र और वरुण पदों के कर्तव्य। (१०-११) अश्वों, अश्वारोहियों और ज्ञानवान् पुरुषों के लक्षण। (१२-२२) आप्री देवों का वर्णन। अग्नि, तनूनपात्, सोम, बर्हिः, द्वार उपासानक्ता, दैव्य होता, इडा आदि तीन देवियें, त्वष्टा, वनस्पति, वरुण। इन पदाधिकारों के के कर्तव्य, बल और आवश्यक सदाचार। तपःसामर्थ्य का वर्णन। (२३-२८) संवत्सर के ६ ऋतु भेद से यज्ञ प्रजापति और प्रजापालक राजा के ६ स्वरूपों का वर्णन। (२९-४१) अधिकार प्रदान। और नाना दृष्टान्तों से उनके और उनके सहायकों के कर्तव्यों का वर्णन। अग्नि, तनूनपात्, नराशंस, बर्हि, द्वार, सरस्वती, उषा, नक्त, दैव्य होता

तीन देवी, त्वष्टा, वनस्पति, अश्विद्वय, इन पदाधिकारियों को अधिकार प्रदान। (४२-४७) अधिकार दान, उनके सहायकों के कर्तव्य। महीधर आदि के किये बकरे की बलिपरक अर्थ का सप्रमाण खण्डन। सरस्वती नाम विद्वत्सभा को अधिकार, उसके सहायकों के कर्तव्य। छाग, मेष, ऋषभ और उनके हवि, मद, तथा उनके पार्श्व, कटि, प्रजनन, आदि अंगों के अवदान करने का रहस्य। (४७-५८) स्विष्टकृत् अग्नि का विवरण। (४८-५८) उक्त अधिकारियों के स्थान, मान, पद और उनका ऐश्वर्य वृद्धि का कर्तव्य। (५९) होता नाम अग्रणी नायक का वरण। (६०) वनस्पति अधिकारी का वरण। (६१) वृत विद्वानों के कर्तव्य।

द्वाविंशोऽध्यायः (पृ० २२८२५५)

(१) राजा का राष्ट्र में स्थान और उसका कर्तव्य। (२) परमेश्वर की व्यापक शक्ति के समान राजा की राज्य-व्यवस्था का वर्णन। (३) परमेश्वर के गुणों का वर्णन, पक्षान्तर में राजा के गुणों का वर्णन। (४) राजा को और नायक विद्वानों को अधिकार प्रदान, (५) अधिकारपदों के लिये प्रोक्षण अभिषेक और आदर योग्य पुरुषों का वर्णन। (६) आवरणीय नायक पुरुष का नाना अवस्थाओं में भी उसका ४९ दशाओं में आदर सत्कार और रक्षा करने का उपदेश। (९) गायत्री। (१०-१२) हिरण्यपाणि सविता। आज्ञापक का स्वरूप। (१५-१६) अग्नि अर्थात् विद्वान् दूत का वर्णन, अध्यात्म में ज्ञानी उपासक का वर्णन। (१८) तेजस्वी पुरुष की उत्पत्ति, और उसका पृथ्वी के पालन का कर्तव्य। (१९) अश्व के दृष्टान्त से नायक भोक्ता आत्मा और परमेश्वर के १३ नाम, उनसे सूचित गुण, कर्तव्य और उन गुणों के कारण उसका अभिषेक। (२०) प्रभु के 'क' आदि नाना गुण, कर्मसूचक नाम और उनका आदर। (२१) नायक सखा। (२२) आदर्श राष्ट्र की समृद्धि की कामना। (२३) प्राण आदि शारीरिक शक्तियों की साधना। (२४) प्राची आदि ६

दिशाओं और १२ उपदिशाओं से राष्ट्र की रक्षा। (२५) नाना प्रकार के जलों के दृष्टान्त से, गुण भेद से नाना गुणों वाली सेनाओं और प्रजाओं का वर्णन। (२६) वात, धूम, अभ्र आदि नाना मेघ की दशाओं की तुलना के साथ २ नायक के नाना कर्मों का वर्णन। (२७) अग्नि आदि पदार्थों की साधना। (२८-३१) नक्षत्र आदि के सुखकारी होने की भावना। (३२-३३) यज्ञ से अन्न, ज्ञान, बल आदि की उत्पत्ति।

त्रयोविंशोऽध्यायः (पृ० २५६-३०१)

(१) हिरण्यगर्भ परमेश्वर का वर्णन, पक्षान्तर में राजा का वर्णन। (२) व्यवस्था में बद्ध राजा की सूर्य और वायु और अन्तरिक्ष से तुलना। राजा का प्रजापति पद। (३) ईश्वर और राजा के महान् ऐश्वर्य का वर्णन। (४) व्यवस्थाबद्ध राजा का चन्द्र, अग्नि, नक्षत्रों से तुलित महान् सामर्थ्यों का वर्णन। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। (५) दोषरहित तेजस्वी राजा की नियुक्ति, पक्षान्तर में परमेश्वर की योग द्वारा उपासना। पक्षान्तर में सूर्य का वर्णन। (६) रथ में जुते अश्वों के समान दो नायकों की नियुक्ति। (७) राजा को सन्मार्ग पर लेजाने के लिये उसके स्तोतृ नायक विद्वान् की नियुक्ति। (८) गायत्र, त्रैष्टुभ, और जागत तीन छन्दों से वसु, रुद्र और आदित्यों द्वारा स्तवन। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन द्वारा राजा की कीर्त्ति। तेजस्वी, शक्तिमान् राजा को राष्ट्रैश्वर्य भोग की आज्ञा। (९-१२) ब्रह्मोद्य। ब्रह्म और प्रभु राजा की शक्ति विषयक प्रश्नोत्तर। सूर्य, अग्नि, भूमि, द्यौः, अश्व, अवि और रात्रि विषयक प्रश्नोत्तर। (१३) राजा की शक्ति को पुष्ट करने के लिये सेनापति आदि पदाधिकारियों का उत्तम उद्योग। (१४) रथ अश्व के दृष्टान्त से ब्रह्मा नाम विद्वान् के कर्तव्य और स्थिति का वर्णन। पक्षान्तर में अध्यात्म विवेचन। (१५-१६) ऐश्वर्यवान् स्वामी और अध्यात्म में आत्मा का वर्णन। (१७) अग्नि, वायु, सूर्य के दृष्टान्त से विजयाभिलाषी राजा के कर्तव्यों का उपदेश।

अग्नि, वायु, सूर्य तीनों के पशु कहाने का रहस्य। (१८) प्राण आदि शक्तियों का उपयोग, राज्यलक्ष्मी और वसुधा का वीरभोग्य होना। काम्पीलवासिनी सुभद्रिका और सोने वाले अश्वक का रहस्य। पक्षान्तर में पतिंवरा कन्या तथा अध्यात्म में स्पष्ट विवरण (१९) गणपति, परमेश्वर, विद्वान्, राजा और गृहपति का वर्णन, गर्भध परमेश्वर और गर्भध प्रकृति का रहस्य। (२०) राजा प्रजा की चतुर्वर्ग-साधना। गृहस्थ का चतुष्पाद् स्वरूप। महीधर के अर्थों की असंगति। दुष्टों के प्रति राजा का व्यवहार। गृहस्थ पक्ष में चरकादि वैद्यक शास्त्रोक्त प्रजोत्पत्ति विद्या का मूल निदर्शन। (२२) समृद्ध, शक्तिमती प्रजा के ऊपर बलवान् राजा की स्थापना। दम्पति पक्ष में दोनों स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। (२३) शक्तिशाली राजा का स्वरूप और उसका मुख्य व्रत वाणी पर वश करना। दम्पति पक्ष में शक्तिमान् पुरुष का स्त्री के हृदय का आकर्षक और एक स्त्री व्रत होने का उपदेश। (२४) माता पिता का प्रधान पद और स्नेह से रक्षार्थ ही राष्ट्र की समृद्धि के आधार पर राजा का सैन्य बल का होता है। मन्त्रोक्त मुष्टि, गभ, वृक्ष आदि शब्दों का रहस्य विवेक। गृहस्थ पक्ष में माता पिता का उच्च पद, और ऐश्वर्य या स्त्री के आधार पर पारिवारिक स्नेह की व्यवस्था। (२५) राष्ट्र प्रजाजन की माता राजसभा और पिता राजा दोनों का विस्तृत राज्य पर सुखी रहना और धुरन्धर वेदवित् ब्रह्मा की जिम्मेवारी और वाणी पर वश। (२६–२७) पर्वत पर बोझा ढोने वाले के समान राष्ट्र भार के उठानेवाले की जिम्मेवारी। और वायु वेग से छाज द्वारा अन्न शोधन करने वाले के समान राष्ट्र का कण्टकशोधन। दम्पति पक्ष में गृहस्थ पुरुष के उत्तम कर्तव्य। (२८) गाय के खुरों की उपमा से ब्राह्म और क्षात्र बलों का पृथ्वी पालन में उपयोग। इसी प्रकार गृहपति के कर्तव्य। (२९) न्यायशील पुरुषों को सभा में सत्य निर्णय करने का उपदेश। मन्त्रोक्त 'नारी' पद का रहस्य। (३०) हरिण और खेत तथा स्वामी और दासी के दृष्टान्त से प्रबल राजा की धन

लालसा से प्रजा की समृद्धि के नाश हो जाने की चेतावनी। (३१) हरिण और यव तथा भृत्य और रानी के भोग के दृष्टान्त से दुष्ट राजा के द्वारा उत्तम प्रजा के नाश हो जाने की चेतावनी। (३२) विजयशील राजा की स्थापना। (३३) गायत्री आदि छन्दों के नामों से नाना प्रकार की उत्तम वाणियों से राजा के हृदय की शान्ति। (३४–३५) द्विपदा आदि और महानाम्नी आदि वेदवाणियों से स्वामी का शान्तिकरण। इसी प्रकार गायत्री, द्विपदा महानाम्नी आदि भिन्न २ प्रजाओं का वर्णन। (३७) सेनाओं के शस्त्रों द्वारा विजयी पुरुषों की पालक शक्तियों का शान्ति प्रयोग। इसी प्रकार उत्तम स्त्रियों द्वारा उत्तम पतियों की हृदय सुख शान्ति। (३७) उत्तम स्त्रियों के गुण, एवं उत्तम प्रजाओं के अपने स्वामी को प्रसन्न रखने और शान्त रखने का कर्तव्य। (६८) राजा का प्रजा के भोजनादि सुख का प्रबन्ध करना। (३९) प्रजाओं में शान्ति विधायक शासक का लक्षण। (४०) विद्वान् सदस्यों का शान्ति विधान का कर्तव्य। (४१) सवंत्सर के अंग भूत दिन रात्रि के समान नाना राज्याङ्गों और उनके अध्यक्षों के कर्तव्य। (४२) राष्ट्र के पालक पुरुषों का कार्य, राष्ट्र का शासन और उनका शान्तिकारिणी व्यवस्थाएं बनाना। (४३) सूर्य, वायु, आकाश और नक्षत्रों के समान तेजस्वी, बलवान्, और उदार और दृढ़ स्थिर लोगों से राष्ट्र की न्यूनताएं दूर करना। (४४) सर्वाङ्ग शान्ति। (४५–४८) पुनः ब्रह्मोद्य। सूर्य चन्द्र अग्नि, भूमि, ब्रह्म, द्यौ, इन्द्र, वाणी के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर। (४९–५०) व्यापक परमेश्वर के तीन चरणों में विश्व की स्थिति, (५१–५२) पुरुष अर्थात् जीव के आश्रय तत्व। (५३–५४) अ० २३। ११। १२। के समान प्रश्न। पिशंगिला, कुरु पिशंगिला, शश, और अहि के सम्बन्ध में प्रश्नोत्तर और उनका रहस्य विवेचन। (५७–५८) जगत् रूप यज्ञ के आश्रय, तथा कारण पदार्थ, संचालक शक्तियों के सम्बन्ध में प्रश्न-उत्तर। (५९–६०) सर्वज्ञ विषयक प्रश्न। (६१–६२) पृथिवी के पर अन्त, भुवन की

नाभि, अश्व के रेतस् और वाक् के परम व्योम सम्बन्धी प्रश्न और उनके उत्तर और रहस्य का स्पष्टी करण । (६३) प्रजापति की उत्पत्ति, पक्षान्तर में राजा और परमेश्वर के प्रजापति नाम होने का कारण । (६४) होता द्वारा प्रजा पालक राजा के अधीन ऐश्वर्य युक्त राज्य का समर्पण । (६५) प्रजापति का अद्वितीय सामर्थ्य और उससे ऐश्वर्य की प्रार्थना ।

चतुर्विंशोऽध्यायः (पृ० ३०२३३१)

(१-२) राजा के अधीन राष्ट्र के १६ पर्यङ्गों का वर्णन । (३-१९) अन्यान्य प्रत्यंगों तथा अधीन रहने वाले नाना विभागों के भृत्यों और उनके विशेष पोशाकों और चिन्हों का विवरण । (२४) ऋतु के अनुसार पक्षियों का वर्णन और उनसे राष्ट्र के हिताहित ज्ञान करने का उपदेश । (२१) समुद्र, मेघ, जल, आदि से सम्बद्ध जीवों के ज्ञान का उपदेश । (२१—२९) भिन्न २ गुणों और विशेष हुनरों के लिये भिन्न २ प्रकार के नाना पक्षियों और जानवरों के चरित्रों का अध्ययन और संग्रह ।

पञ्चविंशोऽध्यायः (३३२-३७२)

(१) नाना प्रकार के शिल्पों तथा गुणों और रहस्यमय पदार्थों के ज्ञान के लिये शरीर गत अंगों का दृष्टान्त रूप से उल्लेख । (२-३) वाह्य जगत् की शक्तियों की देहगत शक्तियों से तुलना । (४-५) शरीर गत पसुलियों से राष्ट्र के अधिकारियों की तुलना । (६) देह के पीठ के मोहरों से राज्याधिकारियों की तुलना और उनके कर्त्तव्य विवेचन । उदर में स्थित अंगों से राष्ट्र के अन्य पदार्थों की तुलना । अथवा उनकी शक्तियों से उनके उपयोगों की आलोचना । (८) शरीर के अंगों से अन्य पदार्थों की तुलना और उनके गुणों का विश्लेषण । (९) शरीर की और जगत् की प्रबल शक्तियों की तुलना । अपान और राजा की तुलना । (१०-१३) प्रजापति का वर्णन । परमेश्वर की उपासना (१४-१५) विद्वानों से

प्रार्थना । (१६) उनका आदर सत्कार । (१७) सुखकारी ओषधि, माता पिता, भूमि, सूर्य, विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष और यज्ञ साधनों से सबसे उत्तम सुख की कामना । (१८–१९) ईश्वरोपासना । वायुओं के समान मातृ भूमि के भक्त वीरों का वर्णन । उनके लक्षण और कर्तव्य । (२१) उत्तम वचन का सुनना, उत्तम दर्शन, स्थिर अंगों से सुख पूर्वक जीवन भोग की प्रार्थना । (२२) शत वर्ष के पूर्ण जीवन की कामना । (२३) अदिति के ९ प्रकार । (२४) ऐश्वर्यवान् बलवान् विद्वान् पुरुष के सामर्थ्यों का वर्णन । (२५) राजा की दी वृत्ति को मुख्य रूप से मानना । अधीन वृत्तिग्राहियों के कर्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर और विद्वान दोनों की स्तुति । (२६–२७) प्रधान वीर पुरुषों के कर्तव्य । पूषा के विश्वदेव्य भाग, छाग और उसका अश्व के साथ आगे चलने का रहस्य । (२८) यज्ञ के होतादि कार्य कर्त्ताओं के समान राष्ट्र के प्रधान कार्य कर्त्ताओं का कर्तव्य । (२९) राज्य के राज सहायकों के सहोद्योग की आंकाक्षा । (३०) उत्तम कार्यकर्त्ताओं की कार्य में नियुक्ति । (३१) उनकी प्रधान शक्ति और अधिकार योग्य वेतन पर नियुक्ति । अश्व की रशना, और रज्जु का रहस्य । (३२) राष्ट्र के सब कार्यों को विद्वानों के हाथ में रखने का उपदेश । अश्व के मांस को मक्षिका के खाने, उसके स्वरु स्वधिति में लगने, शमिता के नखों और हाथों में लगने का रहस्य । (३३) दुष्टों का दमन । (३४) राष्ट्र की उपज का सदुपयोग और संग्रह । पक्षान्तर में ब्रह्मचर्य की रक्षा का उपदेश । (३५) वैश्यों, क्षत्रियों और विद्वान् परिव्राजकों के सहोद्योग की आकांक्षा । पक्षान्तार में ब्रह्मचारियों के व्रत की विवेचना । उनका भिक्षा व्रत । परिपक्व वाजी का रहस्य । (३६) उत्तम राष्ट्र के शोभा जनक भूषण, अध्यात्म में देह में स्थित आत्मा के विशेष गुण और शक्तियों का वर्णन । (३७) संकटों से रक्षा की चेतावनी और उनके उद्योग । (३८–३९) राजा के सब खान पान विहार आदि पर विद्वानों का निरीक्षण (४०) वेद ज्ञान द्वारा

राष्ट्र की बाधाओं को दूर करना। (४१) राष्ट्र के २४ अंगों को दोष रहित करना। (४२) राष्ट्र के कार्यों का विभाग और उनपर योग्य विद्वान् अध्यक्ष की नियुक्ति। (४३) सेना आदि द्वारा राष्ट्र प्रजा को व्यर्थ न सताने का उपदेश। उत्तम मार्गों, और उत्तम व्यवस्थाओं से राष्ट्र, राज्य और राजा की दीर्घायु। उत्तम पदों पर रथ में अश्व के समान उत्तम पुरुषों की नियुक्ति। (४५) उत्तम क्षात्र बल की प्राप्ति। (४६) राष्ट्र को दृढ़ बनाने का उद्योग। (४७–४८) राजा को प्रजाप्रिय और तेजस्वी होने का उपदेश।

षड्विंशोऽध्यायः (३७३–३८६)

(१) अग्नि पृथिवी, वायु अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, आपः, वरुण, इनके समान परस्पर राजा प्रजा का प्रेम से उपकारी होकर रहना। सात संसत्, और आठवीं भूतसाधनी संस्था का वर्णन। उत्तम ज्ञान प्राप्ति का उपदेश। (२) सबके लिये कल्याणी वाणी का उपदेश। वृत्ति दाता और विद्वानों का प्रिय और पूर्णकाम हो। (३) बृहस्पति पद पर योग्य पुरुष का रूप। पक्षान्तर में परमेश्वर का वरण। (४–५) सभापति पद पर वाग्मी विद्वान् का वरण, उसके साथ विद्वानों का साहाय्य। (६–७–८) वैश्वानर पद पर योग्य पुरुष का वरण। उसका लक्षण। (९) अग्नि पद पर योग्य पुरुष की स्थापना। (१०) महेन्द्र पद पर योग्य विद्वान् की स्थापना। (११–२६) उत्तम विद्वानों, नायकों और शासकों से भिन्न २ कार्यों की कामना।

सप्तविंशोऽध्यायः (पृ० ३८७–४१०)

(१–७) अग्नि नाम विद्वान् नायक के कर्तव्य और लक्षण, (८–९) बृहस्पति पद पर स्थित विद्वान् का वर्णन (१०–२२) अग्नि और वाग्मी नाम विद्वानों का वर्णन। (२३–२४) वायु नाम सेनापति का वर्णन। (२५–२६) 'क' प्रजापति का वर्णन। (२७–३३) नियुत्वान् वायु,

सेनापति का वर्णन। (३५–४२) इन्द्र नायक का वर्णन। (४३–४४) अग्नि रूप से नायक राजा का वर्णन उससे रक्षा की प्रार्थना। (४५) संवत्सर के पांच रूप और तदनुसार प्रजा पालन के ५ रूप।

अष्टाविंशोऽध्यायः (४११–४४४)

(१–३४) होता द्वारा भिन्न २ अधिकारियों की नियुक्ति और उनके विशेष आवश्यक लक्षण, और अधिकार और शक्तियों का वर्णन। (३५–४५) उनका इन्द्र सेना नायक और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाने का कर्तव्य। (४६) अग्नि होता का वरण।

एकोनत्रिंशोऽध्यायः (४४५–४८५)

(१) घृत से तीव्र अग्नि या जाठराग्नि के दृष्टान्त से विवेकी विद्वान् का वर्णन। (२) संग्राम आदि के अवसरों पर संघ बना कर काम करने का उपदेश। (३) स्तुति योग्य, वन्दन करने योग्य, प्रसन्नमुख योग्य पुरुष की उत्तम पद पर नियुक्ति। (४) राष्ट्र प्रजा का विस्तृत करना और उसको व्यवस्थित रखना। पक्षान्तरमें विद्युत् का वर्णन। (५) गृह के द्वारों से देवियों की तुलना। दोनों पक्षों में श्लिष्ट विशेषण। पक्षान्तर में शास्त्र विजयी सेनाओं का वर्णन। (६) देह में प्राण और उदान के समान मित्र और वरुण का वर्णन। पक्षान्तर में दिन रात्रि और स्त्री पुरुषों के कर्तव्यों का वर्णन। (७) उपदेशक और अध्यापक और पक्षान्तर में स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्यों का वर्णन। (८) इडा, भारती, सरस्वती आदि संस्थाओं का कर्तव्य। (९) गृहस्थ में, राष्ट्र में और उपासना में क्रम से योग्य पुरुष, शिल्पी, और उपासकों की नियुक्ति। (१०) तेजस्वी सूर्य और आश्रय वृक्ष के दृष्टान्त से, नायक, मुख्य पुरुष का भृत्यों के प्रति कर्तव्य। (११) अग्रणी का कर्तव्य। (१२) उदय होते सूर्य, बाज, और वेगवान् हरिण के समान सेनानायक, का स्तुत्य रूप। (१३) राष्ट्र

के अनुयोक्ता त्रिवेदज्ञ पुरुष का होना, उसका आज्ञापक होना। पक्षान्तर में अध्यात्म देह व्यवस्था का वर्णन। (१४) नायक और आत्मा के यम, आदित्य, और अर्वा तीन नाम। उसके तीन बन्धन। (१५) उसके तीन स्थानों पर तीन २ बन्धन। (१६) उसका सर्वोत्कृष्ट रूप। (१७) व्यवस्थाबद्ध नायक की अश्व से तुलना। उत्तम मार्गों से मुख्य व्यक्ति को जाने का आदेश। अध्यात्म में उन्नति मार्ग का अनुसरण। (१८) विजिगीषु का उत्तम रूप, ओषधियों के ग्रास का रहस्य। अध्यात्म में ओषधिमय जीवनप्रद भोजन का उपदेश। (१९) नायक के प्रति सबको सख्य भाव से रहने की आज्ञा। (२०) मुख्य अध्यक्ष का महान् सामर्थ्य, उसके हिरण्यशृंग और अयःपाद होने का रहस्य। (२१) वीरबाहु चुस्त शूर वीरों को दल बद्ध दस्ते बना कर युद्ध करने का आदेश। अध्यात्म में योगियों का वर्णन। (२२) बलवान् शरीर और मन होने और जंगलों में सेना दलों की स्थापना। (२३) शत्रु उच्छेदक नायक का वर्णन। 'अज' का रहस्य। उत्तम पद पर स्थित पुरुष को माता पिता के आदर का उपदेश। अध्यात्म में मोक्ष प्राप्त पुरुष,को प्रकृति परमेश्वर का दर्शन। (२५) नायक को विद्वानों को संगठन करने का आदेश। दूत का कर्तव्य। (२६) तनूनपात् नामक विद्वान् के कर्तव्य। ज्ञान और उपास्य और ग्राह्य ज्ञानों को उत्तम भाषा में प्रकट करने का उपदेश। (२७) उत्तम प्रशंसनीय नायक, का महान् सामर्थ्य कि उसके आश्रय में अन्य विद्वान् रहें। (२८) दानशील संगठन के केन्द्रस्थ व्यक्ति के कर्तव्य। (२९) प्रथम संस्थापक का कर्तव्य। आसन के समान विस्तृत होकर अन्यों का आश्रय होना। (३०) द्वारों के दृष्टान्त से गृह देवियों के कर्तव्यों का वर्णन। पक्षान्तर में सेनाओं के कर्तव्य। 'अयन' शब्द का समुचित अर्थ। (३१) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। (३२) मुख्य विद्वानों या स्त्री पुरुषों का कर्तव्य। ज्ञानोपदेश। (३३) भारती आदि तीन संस्थाओं के कर्तव्य। (३४) आकाश या सूर्य और पृथिवी के समान राजप्रजा

वर्गों को नाना ऐश्वर्यों से सुशोभित करने का कर्तव्य । (२५) ऋत्वनुसार भोजनों की व्यवस्था । (२६) यज्ञाग्नि की ज्वाला से हव्य के विस्तार के समान राजा के सत्य, न्यायवाणी पर समस्त प्रजाओं का सुख भोग । (३७) तेजस्वी सूर्य के समान प्रकाशक विद्वानों को तेजस्वी ज्ञान दाता होने का आदेश । (३८) कवच, शस्त्रधर की मेघ से तुलना । (३९) धनुर्बल से विजय का उपदेश । (४०) प्रिय पत्नी के समान धनुष की डोरी की शक्ति । (४१) उसका शत्रुनाशकारी कार्य । (४२) पुत्र पिता की तूणीर से तुलना । (४३) घोड़ों की बागों का वर्णन । अध्यात्म रहस्य विवेक । (४४) वीरों का वर्णन । (४५) रथ का वर्णन । (४६) शक्तिमान् पालक वीर पुरुषों का वर्णन । (४७) विद्वान् ब्राह्मणों के लक्षण । (४८) तीव्र बाणों से सुख की आशा । उनका वर्णन । (४९) शरीर के कठोर होने का उपदेश । (५०) कशा का वर्णन । (५१) हाथबन्द कवच. और कुशल वीरका श्लेष से वर्णन । (५२) वनस्पति, धनुर्दण्ड और नायक का वर्णन । (५३) नाना दृष्टान्तों से सार भाग प्राप्त करने का उपदेश । (५४-५७) दुन्दुभि और वीर पुरुष का श्लिष्ट वर्णन । (५८-५९) भिन्न २ अधिकारियों के अधीन नियुक्त भिन्न २ भृत्यों के विभेदक चिन्ह और लक्षण । भिन्न २ उपसमितियों का कपाल भेद से भेद वर्णन । ८, ११, आदि 'कपालों' का रहस्य ।

त्रिंशोऽध्यायः (४८५-५१५)

(१) ऐश्वर्य वृद्धि के लिये यज्ञ पति की स्थापना । वाणी के मधुर होने की प्रार्थना । सर्व प्रेरक सर्वोत्पादक प्रभु के तेज का ध्यान धारण और स्थापन । गायत्री । (३) उत्तमों के ग्रहण बुरों के त्याग का उपदेश । (४) अद्भुत ऐश्वर्य के विभाजक, परमेश्वर और सर्वशासक राजा की स्तुति । (५-२१) ब्रह्म ज्ञानि, क्षात्र बल, मरुद् (वैश्य) विज्ञान आदि नाना

ग्राह्य शिल्प पदार्थों की वृद्धि और उनके लिये ब्राह्मण, क्षत्रियादि उन २ पदार्थों के योग्यपुरुषों की राष्ट्र रक्षा के लिये नियुक्ति। त्याज्य कार्यों के लिये उनके कर्त्ताओं को दण्ड का विधान। (२२) अति चित्रित्र, विकृत पुरुषों की विशेष व्यवस्था।

एकत्रिंशोऽध्यायः (५१६–५३३)

पुरुष सूक्तम्। (१) सहस्त्रशिर, सहस्त्र आंखों और सहस्त्र पाओं वाले पुरुष का वर्णन। इसका रहस्य। उसका भूमि को व्याप कर दश अंगुल ऊपर विराजने का रहस्य। (२) पुरुष, भूत, भव्य, अमृत के ईशान और अन्नातिरोही। (३) उसकी महिमा और चार पाद। त्रिपात् पुरुष का उत्क्रमण और मापन। (४) विराट् की उत्पत्ति। (६) यज्ञ प्रजापति से आज्यसम्भरण, पशुओं की उत्पत्ति। (७) यज्ञ परमेश्वर से समस्त वेदों की उत्पत्ति। उससे अश्वों और गवादि पशुओं की उत्पत्ति। (९) उस पुरुष का सर्वोपरि अभिषेक और विद्वानों द्वारा पूजा। (१०–११) पुरुष प्रजापति की विविध अंग कल्पना और वर्ण विषयक प्रश्न और उत्तर। (१२) चन्द्र सूर्य वायु अग्नि की कल्पना। (१३) अन्तरिक्ष, द्यौ, भूमि दिशा और लोकों की कल्पनायें। (१४) संवत्सर यज्ञ का स्वरूप। (१४) उसकी तीन परिधियें और सात समिधाएं। यज्ञपुरुष के बन्धन का रहस्य। (१६) यज्ञपुरुष से यज्ञकाण्ड का यजन। साध्य विद्वानों की परम सुख प्राप्ति। (१७) मानुष जीव सर्ग। (१८) आदित्य वर्ण पुरुष का वर्णन। (१९) समस्त भुवनों का आश्रय प्रजापति। (२०) ब्राह्मी रुक्। (२१) देवों का वश कर्त्ता विद्वान् ब्राह्मण। (२२) प्रजापति की दो पत्नी लक्ष्मी, और श्री। इनका रहस्य। समस्त अध्याय की राजपक्ष में योजना।

द्वात्रिंशोऽध्यायः (५३४–५४६)

(१) परमेश्वर के अग्नि आदित्य, वायु चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म, आपः;

प्रजापति आदि नाना नाम। (२) उससे समस्त संसार की उत्पत्ति। (३) उसका कोई परिमाण नहीं। (४) उसका सर्वतोमुख वर्णन। उसका त्रिज्योति षोडषी स्वरूप। (६) सबका धारक प्रभु। (७) वह सबका संचालक और सूर्यादि का प्रकाशक। (८) वह सर्वाश्रय, सर्व व्यापक, सर्वत्र ओत प्रोत है। (९) उस परम प्रभु का ज्ञाता सबके पिता का पिता है। (१०) वह सबका बन्धु, विधाता, सर्वज्ञ सर्व सुख प्रद अमृत है। (११) वह व्यापक ही प्रकृति में भी व्यापक है। (१२) तन्मय जगत्। (१३) अद्भुत सदसस्पति। (१४–१५) उससे मेधा बुद्धि की प्रार्थना। (१६) ब्रह्म, क्षत्र दोनों के लिये ऐश्वर्य की प्रार्थना। समस्त मन्त्रों की राजपक्ष में योजना।

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः (५४७–६०९)

(१–२) प्रजापालक विद्वान् अग्नियों का वर्णन। (३—४) विद्वान् मित्रों और श्रेष्ठों का आदर करने का उपदेश। सूर्य चन्द्र या अग्नि सूर्य के समान दो शक्तियों का संसारपालन। (६) विद्वान् की शिशु से तुलना। (७) ३३३९ देवों का रहस्य। (८) मूर्धन्य अग्रणी और परमेश्वर का वर्णन। (९) अग्रणी नायक का दुष्ट संहार करने का कर्तव्य। (१०) वायु सहित सूर्य के जलपान के दृष्टान्त से राजा की ऐश्वर्य प्राप्ति। (११) वीर्य सेचन से पुत्रोत्पत्ति के समान जल सेचन से अन्नादि और राज सामर्थ्य से बल की उत्पत्ति का वर्णन। (१२) सौभाग्य वृद्धि के लिये उत्तम ऐश्वर्यों को प्राप्त करने, दम्पति सम्बन्ध को सुदृढ़ करने और शत्रुओं के तेजों को जीतने का आदेश। (१३) तेजस्वी पुरुष का सूर्य और विद्युत् के समान वरण। (१४) पशुनाशकों के दण्डकर्त्ता जितेन्द्रियों के आदर करने का उपदेश। (१५) बहुश्रुत पुरुष को प्रजा के व्यवहारों को सुनने का आदेश। (१६) अग्रणी नायक सबको सुखकर और दयाशील हो। (१७) मुख्य पुरुष के उत्तम शासन में प्रजा निरपराध रहे और

वह प्रजा का अच्छा रक्षक रहे। (१८) जीवन वर्धक जलों के समान विद्वान जन प्रमुख पुरुष की वृद्धि करें। (१९) गौओं, रश्मियों, सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री पुरुषों और राजा प्रजा के कर्तव्य। पक्षान्तर में उत्तम वचनों और आभूषणों से सजाने का उपदेश। (२१) मेध के समान उदार पुरुष को मुख्य पद पर स्थापन करने का उपदेश। (२२) शासक का आदर्श सूर्य। (२३) सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना। (२३) सूर्यवत् उत्साही नायक। (२४) नायक सेनापति को शत्रु नाश के नाना प्रकार के उपदेश। (२५–२७) सहसी पुरुष के कर्तव्य। (२८) राजा की स्तुति प्रजाओं को समृद्ध बनाने में है। पक्षान्तर में आचार्य का वर्णन। (२६) बलवान् का सहयोग। (३०–३२) मुख्य पदाधिकारियों का राष्ट्र को समृद्धिमान् बनाना। (३४) सभा, संग्रामों में उत्तम उपदेष्टा और आदेष्टा। (३५) संघ के वशकर्त्ता का सूर्यवत् उदय। (३५) उसका स्वरूप, उसका महान् सामर्थ्य। (३८) सूर्य के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन। उसके शुक्ल, कृष्ण दोनों प्रकार के रूपों का रहस्य। (३९–४०) महान् परमेश्वर। (४१) परमेश्वर के आश्रय पर कमाये धन के समान कर्म फल का भोग। (०२) विद्वानों का कार्य निन्दनीय कार्यों से बचना। पक्षान्तर में भौतिक तत्वों से उत्तम देह रचना। (४३) विजिगीषु नायक के कर्तव्य। (४४) वायु और सूर्य के दृष्टान्त से भागधुक् नाम अध्यक्ष के कार्य। (४५) विद्युत् आदि तत्वों का सदुपयोग। पक्षान्तर में राष्ट्र के अध्यक्षों के कर्तव्य। (४६) वरुण और मित्र दोनों के कर्तव्य। (४७) व्यापक अधिकारवान् पुरुष की अध्यक्षता। (४८) सब अध्यक्षों का राष्ट्र को प्रेम करना। (४९) रक्षा के लिये सबका आह्वान। (५०) उनका रक्षण कर्तव्य। (५०–५१) प्रजा का विद्वानों की शरण आना और रक्षा की याचना करना। (५२) विद्वानों को उत्तम आसन। (५३) परमेश्वर का विद्वानों के प्रति अपना स्वरूप प्रकाश। राजा का विद्वानों को ऐश्वर्य दान। (५५–५९) वायु, इन्द्र, वायु, अश्वी

आदि के कर्तव्य । (६०–६८) विजयी पुरुषों के लक्षण । इन्द्र का स्वरूप । (६९) बड़े राजा और परमेश्वर की स्तुति । अन्य अधिकारियों के कर्तव्य ।

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(१–६) शिव संकल्पसूक्त । (७) पालक अन्न । (८—९) अनुमति नाम पुरुष और संस्था । (१०) सिनीवाली का रहस्य । (११) पञ्चनदी और सरस्वती का रहस्य । (११) अंगिरा ऋषि, राजा । (१३) अग्रणी से रक्षा की प्रार्थना । (१४) राजा पृथ्वी और पतिपत्नी के कर्तव्य । (१५) पृथ्वी के केन्द्र में राजा की स्थिति । (१६) उत्तम विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन । (१७–३१) विद्वानों और नायक राजा के कर्तव्य । (३२–३३) रात्रि, उषा, राजशक्ति और स्त्री । (३४–३९) प्रातः उपासना । (४०) उषा के समान स्त्रियों का वर्णन । (४१, ४२) पूषा राजा और परमेश्वर । (४३—४४) विष्णु राजा, और परमेश्वर । (४५) वरुण, परमेश्वर और राजा । (४६) अधिराट् का निर्माण । (४७) उसके अधीन अश्वियों के कर्तव्य । (४८—४९) विद्वानों के कर्तव्य । (५०—५१) सुवर्ण और उत्तम सैन्य बल का वर्णन । पक्षान्तर में ब्रह्मचर्य का वर्णन । (५४) विद्वान् अध्यक्ष । (५५) सप्त प्राण, सप्त अधिकारी । (५६—५८) ब्रह्मणस्पति, राजा, वेदवित् ।

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(१, २) राजा का प्रजा के प्रति कर्तव्य । पक्षान्तर में परमेश्वर की व्यवस्था । किरणों द्वारा जीवों की लोकलोकान्तर में गति । (३) वायु का पवित्रकारक गुण । (४) प्रजाओं को आदेश । (५) उत्पादक पिता और सविता के कर्म । (६) प्रजापति के कर्म । (७) प्रजाओं की रक्षा । (८, ९) शान्ति की प्रार्थना । (१०, ११) पाप नाश । (१२) उत्तम आप्त जन । (१३) अग्रणी धुरन्धर । (१४–१८) अग्रणी रक्षक के कर्तव्य । (१९) क्रव्यात् अग्नि का रहस्य ।

षट्त्रिंशोऽध्यायः

(१—१७) शान्ति करण । (१८) मित्रदृष्टि । (१९) दीर्घ जीवन । (२२) अभय । (२३) शतवर्ष आयु की प्रार्थना ।

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

महावीर सम्भरण । (१—८) मुख्य शिरोमणि नायक की उत्पत्ति । (९) अश्व, शकृत् से धूपन का रहस्य । (१२) पृथ्वी निवासिनी प्रजा के कर्तव्य । (१४, १८) तेजस्वी रक्षक पुरुष का स्वरूप । (१९) वरण का प्रकार ।

अष्टात्रिंशोऽध्यायः

(१—५) पृथ्वी स्त्री का समान वर्णन । (६) सार पदार्थ ग्रहण करने का उपदेश । (२७) विद्वान् के उद्देश्य और कर्तव्य ।

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः (पृ० ७०८-७१८)

(१) प्राण, पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, सूर्य आकाश इनको आहुति की प्राप्ति । (२) दिशा, चन्द्र आदि के समान व्यक्तियों का उत्तम आदर हो । (३) वाणी प्राण आदि का उत्तम उपयोग । (४) मन वाणी की शक्ति का उपयोग करने और समृद्धि की प्रार्थना । (५—७) प्रजापति प्रभु और परमेश्वर के नाना गुण कर्म स्वभावानुसार नाना नाम। (८-९) देवमय राजा । लोम त्वचादि देह धातुओं को स्वच्छ रोग रहित रखने का उपदेश । (११) आयास आदि देह और आत्मा के धर्मों के लिये उत्तम आहार व्यवहार । (१२) तप धर्मादि के लिये उत्तम यत्न करने का उपदेश । (१३) नियन्ता आदर परमेश्वर की उपासना ।

चत्वारिंशोऽध्यायः (पृ० ७१९-७२८)

ईशोपनिषत् । (१) परमेश्वर व्यापक । उसके दिये के भोग करने और लोभ त्यागने का उपदेश । (२) जीवन भर निसंग होकर कर्म करने की आज्ञा । (३) आत्मा के नाशकों के दुर्गति । (४-५) आत्मा का स्वरूप । (६-७) सर्वत्र आत्म दर्शन । (८) आत्मा का स्वरूप । (९-११) सम्भूति और विनाशक दोनों का ज्ञान । उन दोनों की उपासना का फल मृत्यु मरण, और अमृत भोग । (१२—१४) विद्या अविद्या का ज्ञान । उन दोनों की उपासना फल । मृत्यु और वरण । (१५) देह और भौतिक जीवन की वास्तविकता । अन्त समय में 'ओ३म्' प्रभु का स्मरण । (१६)उत्तम मार्ग से चलने की भगवान् से प्रार्थना । सत्य तत्व पर हिरण्यमय आवरण । परम आत्म दर्शन । ब्रह्म में लय । मोक्ष प्राप्ति ।

ग्रन्थ समाप्त

यजुर्वेद संहिता

॥ अष्टादशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे धीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे श्रवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १ ॥

१–२७ देवा ऋषयः ॥ अग्निर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(यज्ञेन) यज्ञ, प्रजापालनरूप सत्कर्म से (मे) मुझ राजा को, या परमेश्वर के अनुग्रह से और प्रजा के पालक प्रभु से मुझ प्रजा को (वाजः च) अन्न, वीर्य और (प्रसवः च) ऐश्वर्य (प्रयतिः) प्रयत्न और (प्रसितिः) उत्कृष्ट राज्यप्रबन्ध और प्रेम, (धीतिः च) उत्तम ध्यान या चिन्तन (क्रतुः च) उत्तम कर्म और प्रज्ञान, (स्वरः च मे) उत्तम स्वर, उत्तम कण्ठध्वनि और (श्लोकः च मे) उत्तम वाणी, (श्रवः च) उत्तम 'श्रव' अर्थात् गुरुपदेश या वेदमन्त्र, (श्रुतिः च) उत्तम, श्रवणयोग्य वेदमन्त्र (ज्योतिः) विद्या का प्रकाश और (स्वः च) उत्तम सुख ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा, उत्तम राज्य प्रबन्ध, व्यवस्था और राजा प्रजा के सम्मिलित यत्न द्वारा मुझे (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों । (१–२१) शत० ९।३।३।१–१०॥

१—अथातोवसोर्धाराभन्त्राः १-२७ ॥ 'आवश्च'० इति काण्व० ॥

अध्यात्म में—अन्न, ऐश्वर्य, प्रयत्न, प्रेम, ध्यान, ज्ञान अथवा अध्ययन और कर्म, स्वर और श्लोक, गुरुपदेश और वेदोपदेश, ज्ञानप्रकाश और सुख ये सब पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) आत्मा और परमात्मा या उपासना द्वारा (कल्पन्ताम्) सिद्ध हों, मुझे प्राप्त हों ।

प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे चित्तं च म आधीतं च मे वाक् च मे मनश्च मे चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २ ॥

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(मे) मुझे (प्राणः च) प्राण, हृदयगत वायु जो शरीर में नाभि से ऊपर गति करता है, (अपानः च) अपान, जो नाभि से नीचे के भाग में विचरता है, (व्यानः च) व्यान, सर्वशरीर में व्यापक और मुख्य तथा नाभि देश में स्थित है, (असुः च) असु, नाग आदि नाम वाला वायु जो वमन आदि वेग के कार्य करता, रोग-परमाणुओं को बल से बाहर फेंकता एवं बल के अन्य कार्यों में सहायक होता है, (चित्तं च) चित्त, स्मरण करने वाली शक्ति, (आधीतं च) बाह्य विषयों का ज्ञान और सब प्रकार से स्थिर, निश्चयकारिणी बुद्धि, (वाक् च) वाणी इन्द्रिय (मनः च) मन, संकल्प विकल्प करने या ऊहापोह करने वाली भीतरी शक्ति, (चक्षुः च) चक्षु, देखने वाली इन्द्रिय, (श्रोत्रं च) श्रोत्र, कर्णेन्द्रिय (दक्षः च ज्ञान, इन्द्रिय का बल और कौशल, (बलं च) कर्म-इन्द्रियों का कौशल, बल, पराक्रम, (च च०) उदान, समान, धनंजय आदि अन्य वायुएं, धारण, श्रवण, अहंकार, प्रत्यक्ष प्रमाण, सामयिक मान आदि पदार्थ भी (यज्ञेन) यज्ञ, आत्मसामर्थ्य, ज्ञानाभ्यास, सत्संग और उपासना से (कल्पन्ताम्) समर्थ होकर मुझे प्राप्त हों ।

२—मे सुच० इति काण्व० ॥

ओर्जश्च मे सहश्च म ऽआत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूꣳषि च मे शरीराणि च म ऽआयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ३ ॥

स्वराड् अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—(ओजः च) मुझे ओज, शरीर में स्थित तेज, (सहः च) शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ शारीरिक बल (आत्मा च) आत्मा, परमात्मा या अपना स्वरूप और अपना सामर्थ्य (तनूः च) उत्तम दृढ शरीर और अपने सम्बन्धियों के शरीर (शर्म च) गृह और गृहोचित सुखसामग्री, (वर्म च) शरीररक्षक कवच, और शस्त्रास्त्र, (अङ्गानि च) देह के अंग और उपाङ्ग (अस्थीनि च) छोटी बड़ी समस्त अस्थियें, (परूंषि च मे) अंगुली आदि पोरू और शरीर के पालक मर्मस्थान, (शरीराणि च) शरीर के अन्य अवयव अथवा मेरे अन्य सम्बन्धियों के शरीर और सूक्ष्म देह के अवयव, (आयुः च मे) पूर्णायु और जीवनोपयोगी साधन, (जरा च) और वृद्धावस्था और यौवन आदि भी (यज्ञेन) सत् कर्मानुष्ठान और परमेश्वर की कृपा से (मे कल्पन्ताम्) मुझे प्राप्त हों ।

ज्यैष्ठ्यं च म ऽआधिपत्यं च मे मन्युश्च मे भामश्च मेऽमश्च मेऽम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(मे) मुझे (ज्येष्ठ्यं च) ज्येष्ठता, बड़ाई, (आधिपत्यं च) अधिपति का पद, (मन्युः च) मन्यु, मानस कोप, ज्ञान और आत्मसन्मान (भामः च) क्रोध, शत्रुओं और दुष्टों पर असहनशीलता, (अमः च) न्यायोचित गृह आदि पदार्थ अथवा अपरिमित पदार्थ, (अम्भः च) जल, के

समान शीतलता और समुद्र के समान गम्भीरता (जेमा च) विजय-शीलता, (महिमा च) महत्व, (वरिमा च) श्रेष्ठता, अधिक सम्पत्ति-शालिता, (प्रथिमा च) विस्तृत गृह, क्षेत्र और राज्य आदि, (वर्षिमा च) ज्ञान, अनुभव, आयु, और पद की वृद्धि, (द्राघिमा च) दीर्घता, अर्थसंततिपरम्परा, (वृद्धं च) बढ़ा हुआ बल और धन, (वृद्धि च) विद्या आदि गुणों की उन्नति, बढ़ोतरी, ये समस्त पदार्थ मेरे (यज्ञेन कल्प ताम्) परमेश्वर की कृपा और सत्कर्माचरण रूप यज्ञ से बढ़ें और मुझे प्राप्त हों।

सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे जातं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ५ ॥

अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(सत्यं, च) यथार्थ सत्य भाषण, (श्रद्धा च) सत्य धारण, (जगत् च) जगत्, जंगम सम्पत्ति, (धनं च) सुवर्णादि धन, (विश्वं च) समस्त स्थावर पदार्थ, (क्रीडा च) क्रीड़ा, विनोद के साधन, विहार, (मोदः च) आनन्द विनोद से प्राप्त हर्ष, (जातं च) उत्तम पुत्र पौत्रादि, अथवा उत्पन्न कृषि सस्यादि (जनिष्यमाणं च मे) आगे होने वाले समस्त ऐश्वर्य, (सूक्तं च) वेद मन्त्रगण, या उत्तम सुभाषित, (सुकृतं च) पुण्याचरण, ये और इनके साथ की अन्यान्य सम्पदाएं भी (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ, धर्मानुष्ठान और ईश्वर की कृपा से और प्रजा पालन व्यवहार या राज्यवस्था द्वारा प्राप्त हों।

ऋतं च मेऽमृतं च मेऽयक्ष्मं च मेऽनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्वं च मेऽनमित्रं च मेऽभयं च मे सुखं च मे शयनं च मे सूषाश्च मे सुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

भा०— (ऋतं च) ऋत, यज्ञ और यथार्थ सत्य ज्ञान, (अमृतं च) अमृत, मोक्ष और यज्ञशेष, (अयक्ष्मं च) यक्ष्म तपेदिक आदि रोगों से रहित, शरीर की स्वस्थता, (अनामयत् च) पीड़ाकारी रोगों का अभाव (जीवातुः च) जीवनप्रद, अन्न और ओषधि आदि, (दीर्घायुत्वं च) दीर्घ आयु, (अनमित्रं च) शत्रु का न होना, (अभयं च) अभय, निर्भयता, (सुखं च) सुख, (शयनं च) सुखपूर्वक निद्रा, (सूषा च) उत्तम उषा-काल, (सुदिनं च) उत्तम दिन, ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ, राष्ट्र पालन, सुकृत, धर्माचरण और ईश्वरोपासन से प्राप्त हों।

य॒न्ता च॑ मे ध॒र्ता च॑ मे॒ क्षेम॑श्च मे॒ धृति॑श्च मे॒ विश्वं॑ च मे॒ मह॑श्च मे सं॒विच्च॑ मे॒ ज्ञात्रं॑ च मे॒ सूश्च॑ मे प्र॒सूश्च॑ मे॒ सीरं॑ च मे॒ लय॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ ७ ॥

भुरिगतिजगती । निषादः ॥

भा०— (यन्ता च) नियमकर्त्ता, या अश्वादि का नियन्ता, या राष्ट्र को नियम में रखने वाला, और (धर्त्ता च) धारण पोषण करने वाला पुरुष (क्षेमः च) विद्यमान राष्ट्र आदि सम्पदा का संरक्षण, (धृतिः च) धैर्य, आपत्तियों में भी चित्त की स्थिरता, (विश्वं च) समस्त अनुकूल पदार्थ, (महः च) यश, आदर, (संवत् च) उत्तम दृढ़ प्रतिज्ञा, या वेदशास्त्रादि का उत्तम ज्ञान, (ज्ञात्रम्) ज्ञान साधन और उनसे उत्पन्न उत्कृष्ट विज्ञानसामर्थ्य, (सूः च) पुत्र और भृत्यादि को आज्ञा करने का सामर्थ्य और (प्रसूः पुत्र आदि उत्पन्न करने का सामर्थ्य, (सीरं च) कृषि के साधन हल आदि और उनसे अन्न आदि की प्राप्ति, (लयः च) कृषि आदि की बाधाओं का विनाश ये सब (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ, धर्मानुष्ठान और प्रजापालन, राष्ट्र व्यवस्था से प्राप्त हों और बढ़ें।

शं च॑ मे॒ मय॑श्च मे प्रि॒यं च॑ मेऽनुका॒मश्च॑ मे॒ काम॑श्च मे सौमन॒सश्च॑

मे सर्गश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ८ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(शं च) कल्याण और (मयः च) सुख, ऐहिक और पारमार्थिक, (प्रियं च) प्रीति के पैदा करने वाला प्रिय पदार्थ और (अनुकामः च) धर्मानुकूल कामना, (कामः च उत्तम स्त्री, पुत्र, धन आदि काम्य एवं ग्राह्य विषयों की अभिलाषा, (सौमनसः च) उत्तम मन की स्थिति, शुभचित्तता, (भगः च) अष्टविध ऐश्वर्य, (द्रविणं च) सुवर्णादि द्रव्य, (भद्रं च) सुखदायी पदार्थ, (श्रेयः) कल्याणकारी मुक्ति का सुख, (वसीयः च) अति अधिक उत्तम धन धान्य समृद्धि, (यशः च) और यश, कीर्त्ति ये समस्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) राजा प्रजा के परस्पर संग तथा धर्मानुष्ठान और प्रजापालन आदि सत्कर्म से प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त हों ।

ऊर्क् च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मे ऽऔद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ६ ॥

शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(ऊर्क् च) परम रसवाला अन्न, (सूनृता च) उत्तम सत्य ज्ञान वाली वाणी, (पयः च) पुष्टिकारक दूध, (रसः च) सारवान् रस, (घृतं च) घी, (मधु च) मधु, आदि मधुर पदार्थ, (सग्धिः च) समान रूप से एक जैसा देह के अनुकूल, अथवा बन्धु बान्धवों के साथ मिलकर भोजन करना, (सपीतिः च) सब के साथ मिलकर दुग्धादि का पान करना, (कृषिः च) कृषि, खेती बाड़ी, (वृष्टिः च) और कृषि के बढ़ानेवाली वृष्टि, (जैत्रं च) विजय करने का स्वभाव और सामर्थ्य,

(औद्भिदं च) पृथिवी को फोड़ कर उत्पन्न होने वाले तरु, लता गुल्म आदि पदार्थों की सम्पत्ति, ये सब पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ, प्रजापालन व्यवहार, परमेश्वर की उपासना, आत्मसाधना आदि से (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों और बढ़ें ।

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवं च मेऽक्षितं च मेऽन्नं च मेऽक्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १० ॥

निचृत् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(रयिः च) विद्या और लक्ष्मी, (रायः च) उत्तम ऐश्वर्य, लौकिक मणि, मुक्ता आदि पदार्थ, (पुष्टं च) शरीर का हृष्ट पुष्ट होना और ऐश्वर्य की वृद्धि, (पुष्टिः च) पुष्टि होना, (विभु च) विविध पदार्थों की प्राप्ति, (प्रभु च) सब पर प्रभुता, (पूर्णं च) पूर्णता, धन पुत्र आदि सब से अधिक भरे पूरे रहना, (पूर्णतरं च) और भी अधिक ऐश्वर्य का बढ़ना, (कुयवं च) कुत्सित यव आदि धान्य, क्षुद्र जाति का धान्य, (अक्षितं च) क्षयरहित अन्न, शालि आदि धान्य, (अन्नं च) गेहूं आदि अन्न, (क्षुत् च) भूख का अच्छा लगना और (अक्षुत् च) भोजन द्वारा भूख का न रहना, उसका अन्न द्वारा मिट जाना, ये सब पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ, परमेश्वरोपासना, आत्मसाधना और राजा प्रजा के परस्पर संग से प्राप्त हों ।

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूतं च मे भविष्यच्च मे सुगं च मे सुपथ्यं च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे क्लृप्तं च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ ११ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(वित्तं च) वित्त, पूर्वप्राप्त धन, या सुविचारित तत्त्व,

(वेद्यं च) भविष्य में प्राप्त करने योग्य द्रव्य, अथवा विचार करने योग्य ब्रह्म तत्त्व आदि. (भूतम् च) भूतकाल और (भविष्यत् च) भविष्यत् काल, (सुगं च) उत्तम जाने योग्य मार्ग, और सुन्दर प्रदेश, (सुपथ्यं च) उत्तम मार्गों का होना, (ऋद्धं च) समृद्ध होना, (ऋद्धिः) सम्पत्ति, (क्लृप्तं च) कार्य करने में समर्थ होना, (क्लृप्तिः च) सामर्थ्य, (मतिः च) मनन और (सुमतिः च) शोभन उत्तम मति, मननशक्ति ये सब (यज्ञेन) पूर्वोक्त यज्ञ और आत्मसाधना से (मे) मुझे प्राप्त हों और ये सब भी शक्तिशाली हों ।

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १२ ॥

भुरिगति शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—(व्रीहयः च) धान्य, (यवाः च) जौ, (माषाः च) उड़द, माष, (तिलाः च) तिल, (मुद्गाः च) मूंग, (खल्वाः च) चने, (प्रियंगवः च) प्रियंगु नामक क्षुद्र धान, (अणवः च) छोटा चावल, (श्यामाकाः च) सांवा चावल, (नीवाराः च) नीवार नाम का विना खेती से उपजने वाला धान, (गोधूमाः च) गोहूं और (मसूराः च) मसूर, ये समस्त अन्न की जातियें (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) पूर्वोक्त यज्ञ, राष्ट्रपालन और कृषि से प्राप्त हों ।

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे श्यामं च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ १३ ॥

भुरिगतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

०'त्रपु च मे श्यामं च मे लोहं च मे यज्ञेन०' इति काण्व० ।

भा०—(अश्मा च) सब प्रकार के पाषाण, (मृत्तिका च) सब प्रकार की मिट्टियें, (गिरयः च) समस्त पर्वत, (सिकताः च) समस्त बालुकामय देश, (वनस्पतयः च) समस्त वनस्पतियां, बड़े २ वृक्षों से घिरे जंगल, (हिरण्यं च) समस्त सुवर्ण, (अयः च) लोहा, (श्यामं च) श्यामलोह, (लोहं च) लाल लोह, (सीसं च) सीसा, और (त्रपु च) त्रपु, टीन आदि ये सब धातुएं भी (यज्ञेन कल्पन्ताम्) राष्ट्र पालन के अधिकार से मुझे प्राप्त हों, मेरे अधिकार में हों।

अग्निश्चं मु ऽआपंश्च मे वीरुधंश्च मु ऽओषंधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्चं मे ग्राम्याश्चं मे पुशवं आरण्याश्चं मे वित्तञ्चं मे वित्तिश्च मे भूतञ्चं मे भूतिश्च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥ १४ ॥

भा०—(अग्निः च) अग्नि, सब प्रकार की अग्नियें, (आपः च) समस्त जल, जलाशय, नदी आदि, (विरुधः) लता गुल्म आदि, (ओषधयः च) ओषधियें, (कृष्टपच्याः च) वे अनाज जो खेती से प्राप्त होते हैं और (अकृष्टपच्याः च) और वे अन्नादि पदार्थ जो विना हल जोते ही भूमि से प्राप्त होते हैं, (ग्राम्याः पशवः) गांव में रहने वाले गौ आदि पशु और (आरण्याः च पशवः) जंगल में रहने वाले हरिण आदि पशु गण और (वित्तम् च) इनसे प्राप्त समस्त धन धान्य और (वित्तिः च) और आगे होने वाली प्राप्ति, (भूतिः च) समस्त ऐश्वर्य, (भूतं च) भूत, नानाविध प्राणिसमूह, ये समस्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन) प्रजापालनरूप कर्त्तव्य अर्थात् राज्य पदाधिकार द्वारा (कल्पन्ताम्) प्राप्त हों और बढ़ें।

वसु च मे वसतिश्च मे कर्मं च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च मु एमंश्च म इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेनं कल्पन्ताम् ॥ १५ ॥

१५—'०अर्थश्चमेधामश्चमे' इति काण्व० ।

भा०—(वसु च) समस्त वास योग्य धन या गृहादि, (वसतिः च) वासस्थान, ग्राम आदि (कर्म च) समस्त कर्म, यज्ञ, कूप तड़ाग खोदना, व्यापार आदि, (शक्तिः च) कर्म करने की शक्ति, अधिकार (अर्थः च) समस्त पदार्थ, संग्रह, धन और योग्य अधिकार, (एमः च) प्राप्तव्य पदार्थ या यत्न, (इत्या च) इष्ट पदार्थ प्राप्त करने का साधन, (गतिः च) गमन सामर्थ्य और क्रिया इत्यादि समस्त पदार्थ (मे) मुझे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) राज्यलाभ के साथ ही प्राप्त हों और उनकी वृद्धि हो।

अ॒ग्निश्च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ सोम॑श्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे सवि॒ता च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ सर॑स्वती च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे पू॒षा च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ बृह॒स्पति॑श्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १६ ॥

मि॒त्रश्च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ वरु॑णश्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे धा॒ता च॑ म॒ऽ इन्द्र॑श्च मे॒ त्वष्टा॑ च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे म॒रुत॑श्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ वि॒श्वे॑ च मे दे॒वा ऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १७ ॥

पृ॒थि॒वी च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ऽन्तरि॑क्षं च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ समा॑श्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ नक्ष॑त्राणि च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे॒ दिश॑श्च म॒ ऽइन्द्र॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ १८ ॥

शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—(अग्निः च) सूर्य और आग्नेय तत्व (इन्द्रः च) उनका ज्ञाता इन्द्र, (सोमः च इन्द्रः च) सोम, जल तत्व और इन्द्र, उसकी विद्या के रहस्यों का जानने वाला; (सविता च इन्द्रः च) सविता सूर्य या ऐश्वर्यवान् और इन्द्र, सूर्य तत्व का विज्ञाता (सरस्वती च) सरस्वती, वेदवाणी और (इन्द्रः च) उसका ज्ञाता; आचार्य, विद्वान् (पूषा च) सबका पोषण करने वाला अन्न और पशु तथा (इन्द्रः च) उनका ज्ञाता विद्वान् और अधिपति इन्द्र है। (बृहस्पतिः च) बृहस्पति, बृहती

वेद वाणी का पालक विद्वान् ब्राह्मण और (इन्द्रः च) उसके ऐश्वर्यों का भी स्वामी, इन्द्र, ये सब (यज्ञेन) यज्ञ, परस्पर संगति, प्रजा पालन और आत्म-साधना से मेरे (कल्पन्ताम्) राज्य व्यवहार में समर्थ एवं शक्तिशाली हों।

(मित्रः च) मित्र, न्यायाधीश और (इन्द्रः च) उसके ऊपर अधिष्ठित राजा, सभापति, (वरुणः च) दुष्टों का वारण करने वाला अधिकारी, 'वरुण', (इन्द्रः च) उसपर भी अधिष्ठित शत्रुनाशक इन्द्र, (धाता च) राष्ट्र का पोषक 'धाता' और (इन्द्रः च) उसपर भी शासक ऐश्वर्यवान् अन्नपति, इन्द्र, (त्वष्टा च,) शिल्पों का कर्त्ता पुरुष 'त्वष्टा' और (इन्द्रः च) उसका अधिपति व्यवहार कुशल 'इन्द्र', (मरुतः च) वायु के समान वेगवान् योद्धा लोग 'मरुत्-गण' और उनपर अधिपति (इन्द्रः च) इन्द्र सेनापति (विश्वे च देवाः) और समस्त विद्वान् पुरुष और (इन्द्रः च) उनका स्वामी इन्द्र ये सब भी अधिकारीगण और उनका शासक अधिपति (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे राष्ट्र में परस्पर सुसंगत, सुव्यवस्थित राज्य प्रबन्ध से अधिक पुष्ट और समर्थ हों।

(पृथिवी च इन्द्रः च) पृथिवी और उसका अधिपति अग्नि के समान तेजस्वी इन्द्र, (अन्तरिक्षं च इन्द्र च) अन्तरिक्ष और उसका अधिपति वायु के समान बलशाली इन्द्र, (द्यौः च इन्द्रः च) द्यौ, आकाश, उस विस्तृत राजसभा में सूर्य के समान तेजस्वी अधिकारी इन्द्र। (समाः च इन्द्रः च) वर्ष और उनका शासक सूर्य के समान तेजस्वी 'इन्द्र'. (नक्षत्राणि च) नक्षत्र और उनके बीच में (इन्द्रः च) चन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र', (दिशः च इन्द्रः च) दिशाएं और उनके बीच में विराजने वाले आकाश के समान व्यापक बलवान् राजा 'इन्द्र', ये सब (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे यज्ञ, उत्तम राज्यप्रबन्ध से अधिक समर्थ हों।

अग्नि, सोम, सविता, सरस्वती, पूषा, बृहस्पति, मित्र, वरुण, धाता,

त्वष्टा, मरुत्, विश्वेदेव ये राष्ट्र के भिन्न २ विभागों के पदाधिकारी हैं। ये विभाग स्वतन्त्र होकर भी इनमें से प्रत्येक के साथ मुख्य अधिकारी या राजा का समान रूप से शासन है। इसलिये प्रत्येक के साथ 'इन्द्र' का सम्बन्ध रखा है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्यौ, समा, नक्षत्र और दिशा, ये भी गुणवाद से राजा के ही भिन्न २ अधिकार क्षेत्र हैं। तदनुसार ये भी अधिकार हैं, उनको भी 'इन्द्र' नाम मुख्य राजा के आधीन रहकर संगठित होना चाहिये। तभी ये अधिक दृढ़ होते हैं।

अध्यात्म में—अग्नि जाठराग्नि, सोम वीर्य, सविता चक्षु, सरस्वती वाणी, पूषा उदर और बृहस्पति मन है। मित्र प्राण, वरुण उदान, धाता मन, त्वष्टा आत्मा, मरुद्गण धनञ्जय आदि या इन्द्रियगण हैं, पृथ्वी चरण, अन्तरिक्ष मध्यभाग, द्यौः शिर, समाः पूर्ण आयु के वर्ष, नक्षत्र लोम, दिशाएं श्रोत्र, ये सब इन्द्र नाम मुख्य आत्मा के साथ सम्बद्ध हैं। इन सब में इन्द्र की शक्ति है यह यज्ञ से और भी दृढ़ और समर्थ हों।

अ॒ꣳशुश्च॑ मे र॒श्मिश्च॒ मेऽदा॑भ्यश्च॒ मेऽधि॑पतिश्च मऽउपा॒ꣳशुश्च॑ मेऽन्तर्या॒मश्च॑ मऽऐन्द्रवाय॒वश्च॑ मे मैत्रावरु॒णश्च॑ मऽआश्वि॒नश्च॑ मे प्रतिप्रस्थान॑श्च मे शु॒क्रश्च॑ मे म॒न्थी च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥१६॥

निचृदत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(अंशुः च) अंशु, सूर्य और उसके समान तेजस्वी अधिकारी पुरुष, (रश्मिः च) रश्मि, सूर्य की किरण के समान उपभोग्य पदार्थों का संग्रहकारी पुरुष, (अदाभ्यः च) विनाशरहित 'अदाभ्य' नामक राज्य विभाग, (अधिपतिः) अधिपति, अधिष्ठाता, पूर्वोक्त 'निग्राह्य' नामक राज्य विभाग, (उपांशुः च) उपांशु नामक राज्यांग, (अन्तर्यामः च) अन्तर्याम, (ऐन्द्रवायवः च) इन्द्र और वायु का सम्मिलित पद (मैत्रावरुणः च) मित्र और सम्मिलित पदाधिकारी, (आश्विनः च) आश्विन नामक अधिकारी, (प्रतिप्रस्थानः च) शत्रु के प्रति चढ़ाई करने वाला अधिकारी, (शुक्रः च

मन्थी च) शुक्र और मन्थी सब राज्याधिकारी और राज्यांग (मे) मेरे (यज्ञेन) यज्ञ, राष्ट्रव्यवस्था के द्वारा (कल्पन्ताम्) अधिक समर्थ हों 'अंशु' का वर्णन देखो अ० ७ । १ ॥ अ० ७ । २ । २ ॥

अन्तर्याम—अ० ७ । ४ ॥ ऐन्द्रवायवः । अ० ७ । ८ ॥ मैत्रावरुण । अ० ७ । ६ ॥ ७ । २३ ॥ आश्विन । अ० ७ । ११ ॥ शुक्र । अ० ७।१२॥ मन्थी अ० ७ । १६ ॥

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च म ऐन्द्राग्नश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पात्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २० ॥

भा०—(आग्रयणः च) आग्रयण, (वैश्वदेवः च) वैश्वदेव, (ध्रुवः च) ध्रुव, (वैश्वानरः च) वैश्वानर और (इन्द्राग्नः च) इन्द्र-अग्नि का पद, (महा वैश्वदेवः च) महावैश्वदेव, (मरुत्वतीयाः च) मरुत्वतीय, (निष्कैवल्यः च) निष्कैवल्य, मोक्षोपदेश (सावित्रः च) सावित्र (सारस्वतः च) सारस्वत, (पात्नीवतः च) पात्नीवत और (हारियोजनः च) हारियोजन ये समस्त राज्यांग और अधिकार (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) परस्पर की संगठित व्यवस्था से अधिक बलवान् हों ।

आग्रयण, अ० ७ । १६-२० ॥ वैश्वदेव, अ० ७ । २१-२२ ॥ ध्रुव, अ० ७ । २४-२५ ॥ वैश्वानर, अ० ७ । ३३-३४ ॥ ऐन्द्राग्न, अ०७।३२ ॥ मारुत्वतीय, अ० ७ । ३५-३८ ॥ महावैश्वदेव, अ० ७ । ३६-४० ॥ सावित्र, अ० ८ । ७ ॥ पात्नीवत, अ० ८ । ६-१० ॥ हारियोजन, अ० ८।११,

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मेऽधिषवणे च मे पूतभृच्च म ऽआधवनीयश्च मे

वेदिश्च मे बर्हिश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन क-ल्पन्ताम् ॥ २१ ॥

भा०—(स्रुचः च) स्रुच् स्रुव, जुहू आदि, (चमसाः च) चमस आदि यज्ञ पात्र, (वायव्यानि च) वायव्य आदि पात्र, (द्रोणकलशः च) द्रोणकलश, सोमधारण के लिये कलश । (ग्रावाणः च) शिला, शिल बट्टा आदि सोम या अन्न कूटने के पाषाण, (अधिषवणे च) कुटे हुए सोम या अन्न रखने के फलक, (पूतभृत् च आधवनीयः च) पूतभृत् और आधवनीय नामक सोम या अन्न रखने के दो पात्र (वेदिः च) वेदि, (बर्हिः च) बर्हि, आसन, या दर्भ, (अवभृथः च) यज्ञान्त स्नान, (स्वगाकारः) स्वयं गान करने योग्य शंयुवाक नामक स्वस्तिवाचनकर्त्ता, ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन कल्पन्ताम्) यज्ञ द्वारा सिद्ध एवं उत्तम फल देने में समर्थ हों ।

राष्ट्रपक्ष में—(१) 'स्रुचः' गौर्वै स्रुक् । श० ६ । ३ । १ । ८ ॥ इमे वै लोकाः स्रुचः । तै० ३ । ३ । १ । २ ॥ बाहू वै स्रुचौ । श० ७ । ४ । १ । ३६ ॥ योषा वै स्रुक् वृषा स्रुचः । श० १ । ३ । १ ॥ गवादि पशु, समस्त लोक, बाहुएं, वीर पुरुष, स्त्रियां और पुरुषगण ये सब, 'स्रुच्' कहाते हैं ।

(२) 'चमसाः'—१३ पात्र, 'राज्याङ्ग' नाना विभाग । देखो अ० ७ ॥ ३ ॥ 'वायव्यानि'—कति पात्राणि यज्ञं वहन्ति इति त्रयोदशेति ब्रूयात् । प्रजापतिः प्राणापानाभ्यामेवोपांश्वन्तर्यामौ निरमिमीत । व्यानादु-पांशुसवनम् । वाचः एन्द्रवायवं, दक्षक्रतुभ्यां मैत्रावरुणं श्रोत्रादाश्विनम् । चक्षुषः शुक्रामन्थिनौ, आत्मनः आग्रयणम् । अङ्गेभ्यः उक्थ्यं । आयुषो ध्रुवम् । प्रतिष्ठाया ऋतुपात्रं । अथवा यजु० अ० ७ । २७, २८ ॥

अर्थात् यज्ञ में आग्रयण आदि ग्रह । राज्य में आग्रयण आदि राज्याङ्ग,

२१—०'स्वगाकारश्चमेऽवभृथश्चमे०' इति काण्व०' ।

और देह में प्राण, त्वक्, दक्ष क्रतु, श्रोत्र, चक्षु, आत्मा, अन्य अङ्ग, आयु और प्रतिष्ठा ये 'चमस' कहाते हैं। संवत्सररूप प्रजापति के १३ मास चमस हैं।

यज्ञपात्रों में—'द्वन्द्वं पात्राण्युदाहरति शूर्पंचाग्निहोत्रहवणी च। स्फ्यं च कपालानि च। शम्यां च कृष्णाजिनं च। उलूखलमुसले। दृषदुपले। तत् दश।' शूर्प आदि दश पात्र हैं। शरीर में दश प्राण के समान हैं।

(३) 'वायव्यानि'—शरीर में प्राणादि के समान राष्ट्र में अन्यान्य विभाग, यजु अ० ७। २७, २८॥ अथवा सोम के छानने के पात्र और दशा पवित्र आदि। 'सम्भ्रियमाणो वायुः पूयमानः' इत्यादि. यजु० ८।५९॥

(४) 'द्रोणकलश'—यज्ञ में सोमकलश। और राजा के पक्ष में राष्ट्र या स्वयं राजा। देवपात्रं द्रोणकलशः। तां० ६। ५। ७॥ प्रजापतिर्वै द्रोणकलशः। श० ४। ३। ७। ६॥ यज्ञो वै द्रोणकलशः। श० ४। ५। ८। ५॥ राष्ट्रं द्रोणकलशः। ता० ६। ६। १॥ प्राणो वै द्रोणकलशः। तां० ६। ६। २३॥

(५) 'ग्रावाणः'—प्राणा वै ग्रावाणः। श० १४। २। २। ३३॥ पशवो वै ग्रावाणः। ता० ९। ९। ३३॥ विड् वै ग्रावाणः। श० ३। ९। ३। ३॥ विद्वांसो वै ग्रावाणः। श० ३। ९। ३। १४॥ शरीर में प्राणगण, राज्य में पशु, प्रजागण और विद्वान् लोग 'ग्रावा' है।

(६) 'अधिषवणे'—सोम को उत्पादक शिलाफलकों के समान परस्पर मिलकर राज्य के उत्पादक राजा और प्रजा। पुत्र के उत्पादक माता और पिता।

(७) 'पूतभृत्' वैश्वदेवो वै पूतभृत्। श०। ७। ४। १। १२॥

(८) वेदिः पृथ्वी।

(९) अवभृथः—वरुणस्य पुत्रो वा भ्राता वा। श० १२।९।२।४॥

समुद्रो वा अवभृथः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ राष्ट्र का उत्तम पालन-कर्त्ता अवभृथ है । देखो यजु० अ० ७ । ५६ ॥ समुद्र के समान पृथ्वी को घेर कर उसका पालक पोषक । 'सन्नः सिन्धुरवभृथायोद्यतः ।'

(१०) 'स्वगाकारः'—संवत्सरः स्वगाकारः । तै० २ । १ । ५ । २ ॥ राष्ट्र के समस्त ऐश्वर्य को सूर्य के समान दौरा लगाकर अपनानेवाला राजा।

अ॒ग्निश्च॑ मे घ॒र्मश्च॑ मे॒ऽर्कश्च॑ मे॒ सूर्य॑श्च मे प्रा॒णश्च॑ मेऽश्वमे॒धश्च॑ मे पृथि॒वी च॑ मेऽदि॑तिश्च मे॒ दिति॑श्च मे॒ द्यौश्च॑ मे॒ऽङ्गुल॑यः शक्व॑रयो दिश॑श्च मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २२ ॥

भा०—(अग्निः च) अग्नि अग्रणी और ज्ञानी नेता पुरुष और अग्निष्टोम यज्ञ, (घर्मः च) तेज, प्रताप घर्म नामक प्रवर्ग्य इष्टि, (अर्कः च) अर्चना योग्य सामग्री, अर्चनीय पुरुष और याग, (सूर्यः च) प्राण, (अश्वमेधः च) अश्वमेध यज्ञ और राष्ट्र (पृथिवी च) पृथिवी, (अदितिः च) अखण्ड राजनीति (दितिः च) विभक्त भूमि अथवा शत्रु को खण्ड २ करनेवाली शक्ति, (द्यौः च) द्यौः, धर्म की प्रकाशक राजसभा, (अङ्गुलयः) अङ्गुलियों के समान पर-राष्ट्र को पकड़ने और वश करने वाली अग्रगामिनी सेनाएं, अथवा राष्ट्र के अङ्ग, (शक्वरयः) शक्तिशाली सेनाएं, (दिशः च) दिशाएं, और उनमें रहने वाली प्रजाएं, ये सब (मे) मेरी (यज्ञेन) परस्पर मेल और यज्ञ, राष्ट्रपालन द्वारा (कल्पन्ताम्) और अधिक उन्नत और समर्थ हों । शत० ६ । ३ । ३ । १ ॥

व्र॒तं च॑ म ऋ॒तव॑श्च मे॒ तप॑श्च मे संवत्स॒रश्च॑ मेऽहोरा॒त्रे ऊ॑र्वष्ठी॒वे बृ॑हद्रथन्त॒रे च॑ मे य॒ज्ञेन॑ कल्पन्ताम् ॥ २३ ॥

पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(व्रतं च) सत्य, अहिंसा आदि यम नियम का पालन,

२३—०'संवत्सरश्च मे तपश्च मे' इति काण्व० ॥

(ऋतवः च) वसन्त आदि ऋतु, (तपः च) ब्रह्मचर्य, प्राणायाम, स्वाध्याय आदि तपस्या, (संवत्सरः च) १२ मासों से परिमित वर्ष, (अहोरात्रे च) दिन और रात, (उरु-अष्ठीवे च) जंघाएं और गो तथा उनके समान प्रबल वैश्य वर्ग, (बृहत्-रथन्तरे च) बृहत् साम तथा विशाल क्षात्र-बल और रथन्तर साम अर्थात् ब्राह्मण-गण ये सब (मे) मेरे (यज्ञेन) यज्ञ, परस्पर मेल, एवं राष्ट्र पालन द्वारा (कल्पन्ताम्) अधिक समर्थ हों।

[1] एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च म ऽएकादश च म ऽएकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदश च मे नवदश च मे नवदश च म ऽ[2]एकविंशतिश्च म ऽएकविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे त्रयोविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे पञ्चविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे सप्तविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च मे नवविंशतिश्च म ऽएकत्रिंशच्च म ऽएकत्रिंशच्च मे त्रयस्त्रिंशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २४ ॥

(१) संकृतिः । (२) विराट् संकृतिः । गान्धारः ॥

भा०—(एका च) एक, (तिस्रः च तिस्रः च) तीन और तीन, (पञ्च च पञ्च च) पांच और पांच, (सप्त च सप्त च) सात और सात, (नव च नव च) नौ और नौ, (एकादश च एकादश च) ग्यारह और ग्यारह, (त्रयोदश च त्रयोदश च) तेरह और तेरह, (पञ्चदश च पञ्चदश च) पन्द्रह और पन्द्रह, (सप्तदश च सप्तदश च) सत्रह, और सत्रह (नवदश च नवदश च) उन्नीस और उन्नीस, (एकविंशतिः च एकविंशतिः च) इक्कीस और इक्कीस, (त्रयोविंशतिः च त्रयोविंशतिः च) तेईस और तेईस, (पञ्चविंशतिः च पञ्चविंशतिः च) पच्चीस और पच्चीस, (सप्तविंशतिः

च सप्तविंशतिः च) सत्ताईस और सत्ताईस, (नवविंशतिः च नवविंशतिः च) उनतीस और उनतीस, (एकत्रिंशत् च एकत्रिंशत् च) इकतीस और इकतीस और (त्रयः त्रिंशत् च) तेतीस इस क्रम से (मे) मेरी सेनाएं व्यूह बना कर (यज्ञेन) परस्पर के मेल द्वारा (कल्पन्ताम्) अधिक समर्थ हों ।

१, ३, ५, ७, ६, ११, १३, १५, १७, १६, २१, २३, २५, २७, २६, ३१, ३३ ये अयुग्म स्तोम या अयुग्म राशियें कहाती हैं। इन इन संख्या में सेनाओं और सैनिक संघों को चला कर उत्तम राष्ट्र रूप स्वर्ग को विद्वान् लोग प्राप्त होते हैं। व्यूह में ओर छोर के छोड़ने से दो २ की क्रमशः वृद्धि और न्यूनता होनी सम्भव है।

१		१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११
१ २ ३		१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६
१ २ ३ ४ ५	अथवा	१ २ ३ ४ ५ ६ ७
१ २ ३ ४ ५ ६ ७		१ २ ३ ४ ५
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६		१ २ ३
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० ११		१

इसी प्रकार दो दो के जोड़ने से संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि और दो २ के घटाने से संख्या की न्यूनता करनी चाहिये। व्यूहों में भी एक २, तीन तीन, पांच पांच सात सात की पंक्ति बना कर चलने का भी उपदेश है।

अथवा यजुर्वेद अ० १४ म० २८ से ३१ तक १, ३, ५, ७ आदि क्रम से बढ़ती राज्य-शक्तियों का वर्णन है वे सब राज्य की भिन्न २ शक्तियां मेरी परस्पर संग-लाभ द्वारा अधिक बलवान् बनें। उनका विवरण देखो यजुर्वेद अ० २४। म० २८-३१-तक।

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मेऽष्टौ च मे द्वादश च मे द्वादश च मे षोडश च मे षोडश च मे विꣳशतिश्च मे विꣳशतिश्च मे चतु-

र्विंᳬशतिश्च मे चतुर्विंᳬशतिश्च मेऽष्टाविंᳬशतिश्च मेऽष्टाविंᳬशतिश्च मे द्वात्रिंᳬशच्च मे द्वात्रिंᳬशच्च मे षट्त्रिंᳬशच्च मे षट्त्रिंᳬशच्च मे चत्वारिंᳬशच्च मे चत्वारिंᳬशच्च मे चतुश्चत्वारिंᳬशच्च मे चतुश्चत्वारिंᳬशच्च मेऽष्टाचत्वारिंᳬशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २५ ॥

भा०—(चतस्रः च) चार, (अष्टौ च अष्टौ च) आठ और आठ, (द्वादश च द्वादश च) बारह और बारह, (षोडश च शोडश च) सोलह और सोलह, (विंशतिः च विंशतिः च) बीस और बीस, (चतुर्विंशतिः च चतुर्विंशतिः च) चौबीस और चौबीस, (अष्टाविंशतिः च अष्टाविंशतिः च) अट्ठाईस और अट्ठाईस, (द्वात्रिंशत् च द्वात्रिंशत् च) बत्तीस और बत्तीस, (षट्त्रिंशत् च षट्त्रिंशत् च) छत्तीस और छत्तीस, (चत्वारिंशत् च चत्वारिंशत् च) चालीस और चालीस, (चतुश्चत्वारिंशत् च चतुश्चत्वारिंशत च) चवालीस और चवालीस, (अष्टाचत्वारिंशत् च अष्टाचत्वारिंशत् च) अड़तालीस और अड़तालीस के सेनाओं के व्यूह (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) मेरे यज्ञ परस्पर मेल, संयोग द्वारा अधिक बलवान् हों।

१ + १=२, १ + २=३, ३ + २=५, ५ + २=७ इत्यादि। ३ + ५=८, ५ + ७ = १२, ७ + ९ = १६, ९ + ११ = २०, ११ + १३ = २४

इस प्रकार अयुग्म संख्याओं के योग से युग्म संख्याओं की निष्पत्ति होती है।

त्र्यविश्च मे त्र्यवी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्यवाट् च मे तुर्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २६ ॥

पष्ठवाट् च मे पष्ठौही च मे उक्षा च म वशा च म ऋषभश्च मे वेहच्च मेऽनड्वाँश्च मे धेनुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ २७ ॥

(२६) ब्राह्मी बृहती । मध्यमः । (२७) भुरिगार्षी पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—(त्र्यविः च त्र्यविः च) तीन छमाही वाले बैल और गाय, (दित्यवाट् च दित्यौही च) दो वर्ष के बैल और गाय, (पञ्चाविः च पञ्चावी च) पांच छमाही अढ़ाई वर्ष के बैल और गाय, (त्रिवत्सः च त्रिवत्सा च) तीन वर्ष के बैल और गाय, (तुर्यवाट् च तुर्यौही च) चार वर्ष के बैल और गाय (मे यज्ञेन कल्पन्ताम्) उक्त यज्ञ, प्रजापालन द्वारा मुझे प्राप्त हों और वे हृष्ट पुष्ट हों ।

(पष्ठवाट् च पष्ठौही च) पीठ से बोझा उठाने वाले बैल, हाथी, गधा, घोड़ा आदि नर और मादा जन्तु, (उक्षा च वशा च) वीर्य सेचन में समर्थ बैल और वीर्य धारण में समर्थ गौएं । इसी प्रकार 'वशा' बन्ध्या गौ, और बांझ किये हुए बैल, (ऋषभः च) बलवान् बैल, (वेहत् च) गर्भ-घातिनी गौ, (अनड्वान् च) शकट में लगनेवाला बैल और (धेनुः च) दुधार गौ, ये सब प्रकार के पशु (मे) मुझे (यज्ञेन) यज्ञ या राष्ट्र पालन द्वारा (कल्पन्ताम्) खूब संख्या में प्राप्त हों ।

[1] वाजा॑य॒ स्वाहा॑ प्रस॒वाय॒ स्वाहा॑पि॒जाय॒ स्वाहा॒ क्रत॑वे॒ स्वाहा॒ वस॑वे॒ स्वाहा॑ऽह॒र्पत॑ये॒ स्वाहाह्ने॑ मु॒ग्धाय॒ स्वाहा॑ मु॒ग्धाय॑ वैन-ᳲशि॒नाय॒ स्वाहा॑ विन॒ᳲशिन॑ऽआन्त्याय॒नाय॒ स्वाहान्त्या॑य भौव॒नाय॒ स्वाहा॒ भुव॑नस्य॒ पत॑ये॒ स्वाहाधि॑पतये॒ स्वाहा॑ प्र॒जा-पत॑ये॒ स्वाहा॑ । [2] इ॒यं ते॒ राण्मि॒त्राय॑ य॒न्तासि॒ यम॑न ऊ॒र्जे त्वा॒ वृष्ट्यै॑ त्वा प्र॒जाना॒ं त्वाधि॑पत्याय ॥ २८ ॥

(१) निचृदति शक्वरी । पंचमः । (२) भार्ची बृहती । ऋषभः ॥

भा०—(वाजाय स्वाहा) वाज अर्थात् संग्राम की उत्तम शिक्षा हो । अन्न प्राप्ति कराने वाले चैत्र के समान प्रजा में अन्न की प्राप्ति वृद्धि, कराने वाले शासक की उत्तम कीर्त्ति हो । (प्रसवाय) ऐश्वर्य और प्रजोत्पादन के लिये स्वाहा उत्तम पुरुषार्थ, सत् शिक्षा हो । प्रसव अर्थात् वैशाख

के समान प्रचण्ड सूर्य से युक्त मास के समान अधिक तेजस्वी पुरुष को (स्वाहा) उत्तम यश और मानपद प्राप्त हो। (अपिजाय) उत्तम बुद्धि और ज्ञान में प्रसिद्ध होने के लिये (स्वाहा) उत्तम शिक्षा हो। (अपिजाय) ज्येष्ठ जिस प्रकार जल की अभिलाषा अधिक उत्पन्न करता है उसी प्रकार ज्ञान में लोगों की प्रवृत्ति कराने वाले पुरुष का उत्तम यश हो। (क्रतवे स्वाहा) उत्तम विज्ञान और कर्म की उत्तम शिक्षा और अभ्यास हो। योगादि से युक्त आषाढ़ मास के समान उत्तम कर्म और ज्ञान में प्रवृत्त कराने वाले पुरुष को उत्तम आदर और यश हो। (वसवे स्वाहा) वसु, ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये उत्तम धन प्राप्त करने की शिक्षा हो। वसु अर्थात् श्रावण के समान प्राणियों को अन्न धन देकर बसाने वाले पुरुष या राजा का उत्तम आदर और यश हो। (अहर्पतये स्वाहा) दिनों के पालक, कालवित् पुरुष बनने की उत्तम शिक्षा हो। अथवा 'अहः पति' दिन के स्वामी सूर्य के समान तापकारी भाद्रपद के समान शत्रुओं को संताप देने वाले पुरुष अथवा दिन के पति सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का उत्तम आदर और यश हो। (अन्हे मुग्धाय स्वाहा) मेघ या कुहरे से आवृत दिन के समान अज्ञान मोह से घिरे ज्ञानी पुरुष को भी (स्वाहा) उत्तम वैराग्य की शिक्षा हो। मेघ से आवृत दिन के समान, मेघावृत आश्विन मास के समान रजोविलास में अचेत हुए पुरुष के लिये (सु-आहा) उत्तम शिक्षा हो। (मुग्धाय वैनंशिनाय स्वाहा) मोह में प्राप्त होकर विनष्ट होने वाले पुरुष को भी उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। कार्त्तिक मास के समान शीघ्र नाशवान् पदार्थों वा आचरणों में लिप्त पुरुष को उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। (विनंशिने आन्त्यायनाय स्वाहा) विविध प्रकार से विनाश को प्राप्त होने वाले या राष्ट्र को विनाश करने पर तुले हुए 'आन्त्यायन' अर्थात् अन्तिम, चरम, नीचतम कोटि तक पहुंचे हुए राजा को भी (स्वाहा) उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। मार्गशीर्ष मास के समान शीत हिम द्वारा सबके विनाशक और सबके अन्त में स्वयं शेष रहजाने वाले

सर्वसंहारक पुरुष का उत्तम यश हो। (आन्त्याय भौवनाय स्वाहा) सबसे अन्त में होने वाले, सर्वोच्च, परम भुवनों में व्यापक लोकपति को सब भुवनों के पालन के ज्ञान का उपदेश हो। भौवन अर्थात् जाठराग्नि को दीपन करके पुष्टिकारी प्राणियों के पोषक पौष के समान प्रजाओं को पुष्ट करने वाले पुरुष का उत्तम यश हो। (भुवनस्य पतये स्वाहा) भुवन समस्त प्राणियों के पालक को उत्तम शिक्षा हो। माघ के समान सबके पालक पुरुष का उत्तम आदर हो। (अधिपतये स्वाहा) सब के अधिपति को भी उसके पद के योग्य शिक्षा हो। इसी प्रकार फाल्गुन मास के समान अन्नादि द्वारा सुख कर पुरुष को उत्तम आदर मान प्राप्त हो। (प्रजापतये स्वाहा) प्रजा के पालक पुरुष को राज धर्म की उत्तम शिक्षा प्राप्त हो। द्वादश मासों के ऊपर संवत्सर रूप से विराजमान संवत्सर के समान समस्त प्रजाओं को अपने उक्त बारहों रूपों में प्रजा के पालक राजा को उत्तम मान, यश प्राप्त हो।

इन शब्दों पर विशेष विवरण देखो यजुर्वेद अ० ६। मं० २० ॥ सूर्य के जिस प्रकार १२ मास हैं और वे सूर्य के १२ रूप हैं उसी प्रकार संवत्सर तेजस्वी राजा के १२ रूप, तदनुसार उसके १२ नाम हैं।

(अमुग्धाय वैनंशिने) और (अविनंशिने आन्त्यायनाय) ये दो महीधरसम्मत पदच्छेद हैं जो अ० ६। २० में आये पदों के ऊपर उसके अपने ही किये व्याख्यान से विरुद्ध हैं इसलिये असंगत हैं।

(इयं ते राट्) हे राजन्! यह तेरी राजशक्ति या राज्य है। तू (मित्राय) अपने मित्र राजाओं को भी (यन्ता असि) अपने वश में करने वाला है, इससे तू (यमनः) 'यमन', सर्वनियामक है। (ऊर्जे त्वा) परम अन्नादि पोषक पदार्थों की रक्षा के लिये (वृष्ट्यै त्वा) प्रजा पर सुखों की वर्षा के लिये और (प्रजानां आधिपत्याय) प्रजाओं पर आधिपत्य या राज्य करने के लिये (त्वा) तुझे स्थापित करता हूं।

[1] आयुर्यज्ञेन कल्पतां प्राणो यज्ञेन कल्पतां चक्षुर्यज्ञेन कल्पता-
ᳪ श्रोत्रं यज्ञेन कल्पतां वाग्यज्ञेन कल्पतां मनो यज्ञेन कल्पता-
मात्मा यज्ञेन कल्पतां ब्रह्मा यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳪ
स्वर्यज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पताम् ।
[2] स्तोमश्च यजुश्च ऋक् च साम च बृहच्च रथन्तरञ्च । स्वर्देवा
ऽअगन्मामृता ऽअभूम प्रजापतेः प्रजा ऽअभूम वेट् स्वाहा ॥२९॥

(१) स्वराड् विकृतिः । पंचमः । (२) ब्राह्मी उष्णिक् ऋषभः ॥

भा०—(आयुः) आयु, दीर्घ जीवन, (चक्षुः) आंख, दर्शनशक्ति (श्रोत्रं) कान, श्रवणशक्ति, (वाग्) वाणी, भाषणशक्ति, (मनः) मन, मननशक्ति, (आत्मा) आत्मा, देह में व्यापक धारणशक्ति, (ब्रह्मा) चारों वेदों का विद्वान् अथवा देह में अन्तःकरण चतुष्टय, (ज्योतिः) प्रकाश, स्वयंप्रकाश परमात्मा और विद्याप्रकाश, (स्वः) परम सुख, आनन्दमय मोक्ष, (पृष्ठं) ज्ञान करने की इच्छा, पालनशक्ति, सर्वाश्रयता अथवा सर्वोपरि मोक्ष, (यज्ञः) उपास्य देव और उपासनादि धर्माचरण, (स्तोमः च) स्तुति के मन्त्र अथर्ववेद (यजुः च) यजुर्वेद (ऋक् च) ऋग्वेद, (साम च) सामवेद (बृहत् च रथन्तरं च) बृहत् और रथन्तर नामक साम विशेष ये समस्त ज्ञान (यज्ञेन) योग-साधन, सत्संग, धर्मानुष्ठान, देवोपासना आदि से (कल्पताम्) सिद्ध और फलप्रद हों। हम (देवाः) देव, विजयी, ज्ञानवान् होकर (स्वः) परम मोक्ष एवं सुखमय राज्य को (अगन्म) प्राप्त हों। हम (अमृताः) अमृत, मोक्ष सुख को प्राप्त एवं दीर्घायु (अभूम) हों (प्रजापतेः प्रजाः अभूम) प्रजा के पालक परमेश्वर और उत्तम राजा की प्रजा बन कर रहें। (वेट्) उत्तम सत्कर्मानुष्ठान द्वारा

२९—०मात्मायज्ञेन कल्पतां पृष्ठं यज्ञेन कल्पतां ब्रह्म यज्ञेन कल्पतां यज्ञो यज्ञेन कल्पतां ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳪ स्वर्यज्ञेन कल्पताम् । इति काण्व० ॥

(स्वाहा) उत्तम यश और मान आदर को प्राप्त करें। विशेष विवरण देखो यजुर्वेद अ० ९ । २१ । २२ ॥

वाजस्य नु प्रसवे मातरं महीमदितिं नाम वचसा करामहे। यस्यामिदं विश्वं भुवनमाविवेश तस्यां नो देवः सविता धर्म्म साविषत् ॥ ३० ॥

व्याख्या देखो अ० ९ । म० ५ ॥

विश्वे ऽअद्य मरुतो विश्व ऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः। विश्वे नो देवा ऽअवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो ऽअस्मे ३१

लुशो धानाक ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०— (अद्य) आज (विश्वे मरुतः) समस्त विद्वानगण, प्रजाजन और सैनिक पुरुष (आ गमन्तु) इस राष्ट्र में मुझे प्राप्त हों, मेरे समीप आवें। (विश्वे) और सभी जन (ऊती) अपनी रक्षा और सामर्थ्य सहित आवें। (विश्वे अग्नयः) समस्त ज्ञानी, शत्रुसंतापक एवं अग्रणी नेता पुरुष (समिद्धाः) अग्नियों के समान प्रदीप्त, तेजस्वी होकर (भवन्तु) रहें। (विश्वे देवाः) समस्त दानशील और ज्ञानद्रष्टा और विजयेच्छु पुरुष (अवसा) अपने ज्ञान और पालन सामर्थ्य से (आगमन्तु) प्राप्त हों। और (विश्वम्) समस्त (द्रविणम्) ऐश्वर्य और (वाजः) अन्न (अस्मे) हमारे उपभोग के लिये (अस्तु) हो।

वाजो नः सप्त प्रदिशश्चतस्रो वा परावतः।
वाजो नो विश्वैर्देवैर्धनसाताविहावतु ॥ ३२ ॥

वाजो, अन्नं देवता । निचृदार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(नः) हमारा (वाजः) अन्न, ज्ञान, ऐश्वर्य और पराक्रम (सप्त) सातों (प्रदिशः) प्रदेशों अर्थात् लोकों और (परावतः) दूर दूर

२३—'०धनसाता इहावतु' इति काण्व० ।

२४—'सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम्' इति काण्व० ।

तक फैली (चतस्रः प्रदिशः) चारों दिशाओं को प्राप्त हो (नः वाजः) हमारा ऐश्वर्य और पराक्रम (धनसातौ) धन, ऐश्वर्य के विभाग और प्राप्त करने में (इह) इस राष्ट्र में भी (विश्वैः देवैः सह) समस्त विद्वानों, शासकों, और दानशील या विजयी पुरुषों द्वारा (अवतु) हमारी रक्षा करे ।

वाजो नोऽअद्य प्रसुवाति दानं वाजो देवाँ२ऽऋतुभिः कल्पयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं जजान विश्वाऽआशा वाजपतिर्जयेयम् ॥३३॥

वाजपतिर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वाजः) अन्नादि ऐश्वर्य और पराक्रम ही (नः) हमारी (अद्य) अब (दानं) दानशक्ति को (प्रसुवाति) उत्पन्न करे और बढ़ावे । (वाजः) वह अन्नादि ऐश्वर्य और पराक्रम ही (देवान्) देव, विद्वान् और विजयी पुरुषों को (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार (कल्पयाति) हृष्ट पुष्ट और कार्य करने में अधिक समर्थ बनावे । (वाजः) अन्नादि ऐश्वर्य ही (मा) मुझ को (सर्ववीरं) समस्त वीर पुरुषों से युक्त, समस्त वीर्यवान् पुत्रों और समर्थ प्राणों से युक्त (जजान) करे है । मैं (वाजपतिः) उस अन्न और बल का पालक, स्वामी होकर ही (विश्वा आशाः जयेयम्) समस्त कामनाओं और दिशाओं का विजय करूं ।

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्धयाति । वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वाऽआशा वाजपतिर्भवेयम् ॥३४॥

वाजपतिर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वाजः) ऐश्वर्य और पराक्रम (नः) हमारे (पुरस्तात्) आगे, (उत मध्यतः) और बीच में भी रहे । (वाजः) वह ऐश्वर्य और पराक्रम ही (देवान्) देव, विद्वानों और विजयी पुरुषों और दानशील

३४—'विश्वा आशा वाजपतिर्जयेयम् । इति काण्व० ॥

पुरुषों को (हविषा) अन्नादि समृद्धि से (वर्धयाति) बढ़ाता है। (वाजः हि) वह ऐश्वर्य ही (मा सर्ववीरं चकार) मुझे सब वीर सैनिकों, पुत्रों और प्राणों से युक्त करता है। मैं (वाजपतिः) उस ऐश्वर्य का स्वामी होकर (सर्वाः आशाः) सब अभिलाषाओं और दिशाओं पर (भवेयम्) प्रभु हो जाऊं।

सं मा सृजामि पयसा पृथिव्याः सं मा सृजाम्यद्भिरोषधीभिः।
सोऽहं वाजꣳ सनेयमग्ने ॥ ३५ ॥

अग्निर्देवता । स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! अग्रणी ! विद्वन् ! राजन् ! मैं (मा) अपने को (पृथिव्याः पयसा) पृथिवी के पुष्टिकारक रस से (सं सृजामि) युक्त करूं। और (मा) अपने को (ओषधीभिः) ओषधियों द्वारा भी (संसृजामि) युक्त करूं। (सः अहं) वह मैं (वाजं) नानाविध अन्न ऐश्वर्य का इस प्रकार (सनेयम्) उत्तम रीति से सेवन करूं।

पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् ॥ ३६ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ।

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! सूर्य ! तेजस्विन् ! परमेश्वर ! विद्वन् ! तू (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ओषधीषु) ओषधियों में (दिवि) द्यौलोक, आकाश या सूर्य प्रकाश में और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष वायु या जल में (पयः) पुष्टिकारक रस को (धाः) स्थापित कर। (प्रदिशः) समस्त दिशाएं (मह्यम्) मेरे लिये (पयस्वतीः) पुष्टिकारक रस से पूर्ण (सन्तु) हों।

विद्वान् लोग भी पृथिवी, ओषधिगण, सूर्य और वायु सब में से पुष्टिकारक रस या सार पदार्थ को ग्रहण करने का यत्न करें। इस प्रकार मैं राजा एवं प्रजाजन समस्त दिशाओं से अन्न आदि रस ग्रहण करें।

देवस्यं त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् ।
सरस्वत्यै वाचो यन्तुर्यन्त्रेणाग्नेः साम्राज्येनाभिषिञ्चामि ॥ ३७ ॥

भा० – हे राजन्! (सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) शासन और ऐश्वर्य में और (अश्विनोः बाहुभ्याम्) सूर्य चन्द्रमा दोनों के प्रताप और शीतलता, प्रचण्डता और सौम्य और उग्र रूप (बाहुभ्याम्) शक्तियों से, (पूष्णः) पुष्टिकारक अन्न या पृथिवी के (हस्ताभ्याम्) वशीकरण और आकर्षण करने वाले सामर्थ्यों से (सारस्वत्यै वाचः) सरस्वती, ज्ञानरूप वाणी, या विद्वत्सभा के उपदेश या व्यवस्था बल से (यन्तुः) नियन्ता (अग्नेः) शत्रुसंताप सेनापति या राजा के (यन्त्रेण) नियामक बल से और (साम्राज्येन) साम्राज्य के अधिकार से तुझे (अभिषिंचामि) अभिषिक्त करता हूं । तुझे सर्वविजयी सर्वप्रेरक पद का ऐश्वर्य देता हूं । (अश्विनोः) अर्थात् तुझे सूर्य के समान प्रचण्डता, चन्द्र के समान शीतलता अर्थात् निग्रह और अनुग्रह का सामर्थ्य देता हूं । पूषा अर्थात् अन्न या पृथिवी के समान दानशीलता सरस्वती, वेदवाणी या व्यवस्था सभा का आज्ञा देने का अधिकार और नियामक पुरुष का नियामक बल तुझे सौंपता हूं और साम्राज्य पदपर अभिषिक्त करता हूं ।

ऋताषाडृतधामाग्निर्गन्धर्वस्तस्यौषधयोऽप्सरसो मुदो नाम ।
स न इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥३८॥

भा०—(ऋताषाट्) ऋत, सत्यव्यवहार का सहन करने वाला, असत्य को न सहनेवाला या ऋत, सत्य ज्ञान के बल पर समस्त पृथिवी का विजय करने वाला, (ऋतधामा) सत्य ज्ञान रूप अविनाशी तेज वाला, (अग्निः) सूर्य या अग्नि के समान जो तेजस्वी (गन्धर्वः) गौ, पृथिवी वाणी और इन्द्रियों को अपने वश में करने में समर्थ होता है वह 'अग्नि'

३८—अथातो द्वादश राष्ट्रभृतः ॥

नाम से कहे जाने योग्य है। (तस्य) उस सूर्य या अग्नि के (ओषधयः) तेज को धारण करने वाली ओषधियें (मुदः) समस्त संसार को हर्ष, सुख प्रदान करने वाली (अप्सरसः) जल में उतराने वाली या जल से बढ़ने वाली होने से 'अप्सरस्' हैं और समस्त प्राणियों को हर्ष देने से 'मुद्' नाम वाली हैं। उसी प्रकार उस राजा के (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म के मार्ग में आगे बढ़ने वाली प्रजाएं भी (मुदः नाम) सब प्रजाओं को और स्वयं भी मोद करने वाली होने से वे भी 'मुद्' नाम वाली हैं। (सः) वह अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष (नः) हमारे (इदम्) इस (ब्रह्म) ब्राह्मण कुलों और (क्षत्र) क्षत्रिय कुलों की (पातु) रक्षा करे। (तस्मै) उसे। वाट्) राज्य-भार वहण करने वाला पद (सु-आहा) उत्तम रीति से प्रदान किया जाय। और (ताभ्यः) उसकी उन प्रजा और ज्ञान कर्म में विचरनेवाली विद्वान्, शक्तिशाली योग्य प्रजाओं को भी (सु-आहा) उत्तम आदर और यश हो।

सꣳहितो विश्वसामा सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरस आयुवो नाम स नऽइदं ब्रह्म क्षत्रम्पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ३९ ॥

सूर्यो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार (संहितः) समस्त पृथिवी, जल आदि भूतों में अपने किरणों से व्याप्त होकर उनको परस्पर मिलाने हारा और दिन और रात को सन्ध्या द्वारा मिलाने हारा, और (विश्व-सामा) समस्त विश्व में व्यापक होता है और वह (गन्धर्वः) गौ, किरणों को धारण करता और पृथ्वी का भरण पोषण करता है। उसी प्रकार सूर्य के समान विद्वान् राजा भी (संहितः) समस्त विद्वान् योग्य पुरुषों और शासकों और राज्यांगों को परस्पर मिलाने वाला, (विश्वसामा) समस्त

राज्य में सब के प्रति समान भाव से न्यायानुकूल होकर विद्यमान रहता है, वह (गन्धर्वः) पृथिवी को धारण करने में समर्थ 'सूर्य' कहाने योग्य है (तस्य) उसकी (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म में कुशल प्रजाएं जल के परमाणुओं में व्यापक (मरीचयः) सूर्य की किरणों के समान स्वयं (मरीचयः) अज्ञान या शत्रु-बल के नाश करनेवाली सेनाएं (आयुवः नाम) परस्पर संगत, सुव्यवस्थित होकर रहने और युद्ध में जाने से 'आयु' नाम से कहाती हैं । (सः नः इदं०) इत्यादि पूर्ववत् ।

सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्यप्सरसो भेकुरयो नाम । स नं इदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥ ४० ॥

चन्द्रमा देवता । निचृदार्षी जगती । निषादः ॥

भा०—(चन्द्रमाः) चन्द्र जिस प्रकार (सुषुम्णः) उत्तम सुखप्रद, अथवा सुखस्वपन या निद्रा का देने वाला और (सूर्यरश्मिः) सूर्य की रश्मियों से प्रदीप्त होने वाला और (गन्धर्वः) रश्मियों को धारण करने से 'गन्धर्व' है (तस्य) उसके (नक्षत्राणि) नक्षत्रगण (अप्सरसः) स्त्रियों के समान भोग्य, एवं (भेकुरयः) भा, दीप्ति करने से 'भेकुरि' कहाती हैं उसी प्रकार (चन्द्रमाः) आह्लादकारी राजा भी चन्द्र के समान है । वह (सुषुम्णः) प्रजाओं को उत्तम सुख देने वाला (सूर्यरश्मिः) सूर्य के समान तेजस्वी, (गन्धर्वः) पृथ्वी का रक्षक है । (तस्य) उसके (अप्सरसः) ज्ञान, कर्म और प्रजाओं में विचरण करने वाली उत्तम प्रजाएं (नक्षत्राणि) कभी परास्त न होने वाली होने से 'नक्षत्र' कहाती हैं । वे ज्ञान दीप्ति करने वाली होने से 'भेकुरि' नाम से कहाती हैं । (सनः इदं० इत्यादि) पूर्ववत् ।

इषिरो विश्वव्यचा वातो गन्धर्वस्तस्यापो ऽअप्सरस ऊर्जो नाम । स नं ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४१॥

वातो देवता । ब्राह्मी उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—जिस प्रकार (वातः) वायु (इषिरः) तीव्र वेगवान्, (विश्वव्यचाः) और समस्त विश्व में व्यापक एवं (गन्धर्वः) गो नाम पृथिवी, मध्यम वाणी और विद्युत् को अन्तरिक्ष में धारण पोषण करता है, (तस्य) उसके आश्रय पर (आपः) जल ही (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में गतिमान् होकर मेघ रूप में विचरते हैं। वे अन्न द्वारा विश्व के बलकारक होने से (ऊर्जः नाम) 'ऊर्ज' नाम से कहाते हैं। उसी प्रकार (वातः) वायु के समान प्रबल राजा (इषिरः) अति वेगवान्, सबका प्रेरक और सब के इच्छा योग्य, (विश्वव्यचाः) समस्त राष्ट्र में प्राण के समान व्यापक, सर्वप्रिय पुरुष (गंधर्वः) पृथ्वी को धारण पोषण करने में समर्थ है। (तस्य) उसके (आपः) आप्त जन ही (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म में निष्ठ, ज्ञानी और प्रजा में व्यापक और (ऊर्जः नाम) राष्ट्र में बल उत्पन्न करने वाले होने से 'ऊर्ज्' नाम से कहे जाते हैं। (सः नः० इत्यादि पूर्ववत् ।

भुज्युः सुपर्णो यज्ञो गन्धर्वस्तस्य दक्षिणा ऽअप्सरसं स्तावा नाम । स नं ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा ॥४२॥

यज्ञो देवता । आर्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—जिस प्रकार (यज्ञः) यज्ञ, प्रजापति (भुज्युः) सबका पालक सबको भोग्य फल का देने वाला, (सुपर्णः) उत्तम पालन सामर्थ्यों से युक्त, (गन्धर्वः) वेद वाणी को अपने भीतर धारण करने से 'गंधर्व' है। (तस्य) उसकी (अप्सरसः) प्रजाओं या कार्यकर्त्ताओं को प्राप्त होने वाली (दक्षिणाः) कार्य से दक्षता की उत्पादक दक्षिणायें, (स्तावाः) सुपात्र में दी जाकर यज्ञकर्त्ता और यज्ञ दोनों की स्तुति के कारण होने से 'स्तावा' नामक हैं उसी प्रकार (यज्ञः) राष्ट्र पालक, प्रजापति राजा भी

स्वतः (भुज्युः) प्रजा का पालक और राष्ट्र का भोक्ता, (सुपर्णः) आदित्य के समान उत्तम पालन सामर्थ्यों और उत्तम रथवाहनों से सम्पन्न, (यज्ञः) सबका संगतिकारक (गंधर्वः) पृथ्वी का धारण पोषक है। (तस्य) उसकी (अप्सरसः) ज्ञान और कर्म में व्याप्त (दक्षिणाः) राष्ट्र कार्य में बल उत्पन्न करनेवाली प्रजाएं (स्तावाः नाम) स्तुति योग्य होने से 'स्तावा' नाम से कहाती हैं। (स० नः इदं० इत्यादि पूर्ववत्)

प्रजापतिर्विश्वकर्मा मनो गन्धर्वस्तस्य ऽऋक्सामान्यप्सरस ऽएष्टयो नाम। स नं ऽइदं ब्रह्म क्षत्रं पातु तस्मै स्वाहा वाट् ताभ्यः स्वाहा।

विश्वकर्मा मनो देवता। विराडार्षी जगती। निषादः॥

भा०—(मनः) ज्ञानवान् (विश्वकर्मा) समस्त विश्व का कर्त्ता, (प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (विश्वकर्मा) सब राज्य के हितकर कर्मों को करनेहारा (मनः) शरीर में मन के समान सब का ज्ञाता, मननशील, (गन्धर्वः) पृथ्वी का पोषक है। (तस्य) उसके (ऋक् सामानि अप्सरसः एष्टयः नाम) ज्ञानानुकूल या स्तुत्य 'साम' शत्रुनाशक उपाय ही सब इष्ट कार्यों की साधक एवं प्रजा की प्रेरक आज्ञाएं 'एष्टिः' कहाती हैं। (सः न० इत्यादि) पूर्ववत्।

स नो भुवनस्य पते प्रजापते यस्य त ऽउपरि गृहा यस्य वेह। अस्मै ब्रह्मणेऽस्मै क्षत्राय महि शर्म यच्छ स्वाहा॥ ४४॥

प्रजापतिर्देवता। भुरिगार्षी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे (भुवनस्य पते) समस्त भुवनों, उत्पन्न प्राणियों और लोकों के पालक! स्वामिन्! हे (प्रजापते) प्रजा के पालक! (यस्य) जिस (ते) तेरे (उपरि) ऊपर, तेरे आश्रय पर (गृहाः) गृह, गृहस्थ पुरुष (वा) और (यस्य) जिसके ऊपर (इह) इस राष्ट्र और लोक के

अन्य प्राणि भी आश्रित हैं वह तू (अस्मै) इस (ब्रह्मणे) ब्रह्म, वेद और ईश्वर के जानने वाले और (अस्मै क्षत्राय) राष्ट्र को क्षति से बचाने वाले इस क्षत्रियवर्ग को (स्वाहा) उत्तम रीति से (महि शर्म) बड़ा सुख और शान्ति (यच्छ) प्रदान कर ।

समुद्रोऽसि नभस्वानार्द्रदानुः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
मारुतोऽसि मरुतां गणः शम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ।
अवस्यूरसि दुवस्वाञ्छम्भूर्मयोभूरभि मा वाहि स्वाहा ॥ ४५ ॥

प्रजापतिर्देवता । निचृदष्टिः मध्यमः ॥

भा०—हे (प्रजापते) प्रजा के पालक ! राजन् तू (समुद्रः असि) समुद्र के बड़ा गम्भीर, सब रत्नैश्वर्यों का आकर, सब ऐश्वर्यों का उत्पादक है । तू (नभस्वान्) आकाश में व्यापक वायु के समान सबका प्राणाधार और वायु के समान तीव्र वेगवान् है । तू (आर्द्रदानु) जलप्रद मेघ के समान आर्द्र भाव से प्रजा पर ऐश्वर्यों का त्याग करने हारा है । तू (शंभूः) जल के समान शान्तिदायक, (मयो भूः) तू परमेश्वर या आत्मा के समान परम-आनन्द जनक है । तू (मा) मुझ प्रजाजन को (अभि वाहि) साक्षात् रूप से प्राप्त हो । तू (मारुतः असिः) प्राणों में श्रेष्ठ आत्मा के समान मरुत् अर्थात् वायु के समान तीव्रगामी, शत्रुमारक सैनिकों सेनापतियों का भी स्वामी है । तू (मरुतां गणः) प्राणों के गण के समान स्वयं विद्वानों के समूह का आश्रय, उनके बीच में मुख्य रूप से गणना करने योग्य है । तू (अवस्यूः) अपनी और अपनी प्रजा का रक्षा करने का इच्छुक और (दुवस्वान्) उत्तम आचरण और सेवा या परिचरण करने योग्य है । तू (शंभूः) शान्ति का जनक (मयोभूः) सुखों का उत्पादक होकर (मा अभि वाहि) मुझे साक्षात् प्राप्त हो । (स्वाहा) हमारी यही उत्तम प्रार्थना स्वीकार हो । परमेश्वर के विषय में विशेषण स्पष्ट हैं ।

यास्ते॑ऽअग्ने॒ सूर्ये॒ रुचो॒ दिव॑मात॒न्वन्ति॑ र॒श्मिभिः॑ ।
ताभि॑र्नो॒ऽअ॒द्य सर्वा॑भी रु॒चे जना॑य नस्कृधि ॥ ४६ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! (याः ते) जो तेरी (रुचः) अग्नि की दीप्तियों के समान प्रीतियां (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष में रहती हुई (रश्मिभिः) किरणों के समान नियमकारिणी व्यवस्थाओं से (दिवम्) आकाश के समान राजसभा को व्यापती हैं (ताभिः सर्वाभिः) उन सब प्रीतियों से (अद्य) आज के समान सदा ही (नः) हमें (जनाय रुचे) सर्वसाधारण प्रजाजन के प्रीति का पात्र (कृधि) कर अर्थात् परमेश्वर की जिस प्रकार दीप्तियें सूर्य में रह कर महान् आकाश के ग्रहादि को प्रकाशित करती हैं उसी प्रकार जो विद्वान् राजा के प्रति वेदज्ञ विद्वान् के प्रेम हैं उनसे हम अन्य विद्वज्जन राजगण भी सर्वसाधारण के लोकप्रिय हों। शत० ६। ४। २। १४॥

या वो॑ देवाः॒ सूर्ये॒ रुचो॒ गोष्वश्वे॑षु॒ या रुचः॑ ।
इन्द्रा॑ग्नी॒ ताभिः॒ सर्वा॑भी॒ रुचं॑ नो धत्त बृहस्पते ॥ ४७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजिगीषु पुरुषो! (वः) तुम्हारी (याः) जो प्रीतियां (सूर्येः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा में, (गोषु) गौ आदि पशुओं और (अश्वेषु) अश्वादि युद्धोपयोगी पशुओं में हैं, हे (इन्द्राग्नी बृहस्पते) इन्द्र! अग्ने! बृहस्पते! सेनापते! राजन्! वेदज्ञ विद्वन्! (ताभिः सर्वाभिः) उन सब प्रेमों से (नः) हम में (रुचं धत्त) प्रेम का स्थापन करो। अर्थात् गवादि पशुओं का पालन करें। हम भी उक्त राजा, सेनापति महामात्य आदि के प्रेमपात्र हों। व्याख्या देखो अ० १३।२२, २३॥

रुचं॑ नो धेहि ब्राह्म॒णेषु॒ रुच॑ᳬ राज॑सु नस्कृधि ।
रुचं॒ विश्ये॑षु शू॒द्रेषु॒ मयि॑ धेहि रु॒चा रुच॑म् ॥ ४८ ॥

शुनःशेप ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(नः ब्राह्मणेषु) हमारे ब्राह्मणों में (रुचा) अपने व्यापक प्रेम

द्वारा (रुचं धेहि) परस्पर प्रेम प्रदान कर। (नः राजसु) हमारे राजगणों में (रुचं धेहि) प्रेम प्रदान कर। (विश्येषु) प्रजाओं में विद्यमान वैश्यजनों में और (शूद्रेषु) शूद्रों में भी (रुचं धेहि) प्रेम प्रदान कर और (मयि) मेरे में भी तू (रुचा) अपने विशाल प्रेम द्वारा (रुचं धेहि) प्रेम प्रदान कर। अर्थात् राजा हम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब में प्रेम पैदा करे। आपस में घृणा और द्वेष के बीज बोकर न फोड़े रक्खे और (मयि) मेरे निमित्त और प्रजा जनों में प्रेम पैदा करे। अर्थात् प्रत्येक पुरुष के प्रति सबका प्रेम हो। हरएक समझे कि मैं समस्त देश वासियों का प्रिय हूं और समस्त देशवासी अपने देशवासी को अपना प्रिय जाने। उसी प्रकार परमेश्वर भी हम में प्रेम पैदा करे।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंꣳस मा न ऽआयुः प्रमोषीः॥ ४६॥

शुनःशेप ऋषिः। वरुणो देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य! सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! (ब्रह्मणा) ब्रह्म, वेद द्वारा (त्वा वन्दमानः) तेरी स्तुति करता हुआ मैं (त्वा यामि) तुझ से याचना करता हूं या तुझे प्राप्त होता हूं। (यजमानः) उपासना करने हारा (हविर्भिः) यज्ञ योग्य हवियों और स्तुतियों से भी (तत्) उसी परम प्रेम का (आशास्ते) कामना करता है कि, हे (उरुशंस) बहुतों से स्तुति किये जाने हारे या बहुतसों को ज्ञान द्वारा उपदेश देने हारे! तू (अहेडमानः) कभी अनादर न किया जाकर, स्वयं सौम्य भाव से (इह), यहां (बोधि) हमें अपना ज्ञान प्रदान कर। और (नः आयुः) हमारे जीवन (मा प्र मोषीः) मत अपहरण कर। शत० ६। ४। २। १७॥

राजा के पक्ष में—हे (वरुण) स्वयंवृत, श्रेष्ठ राजन्! हे (उरुशंस) बहुतों के शिक्षक! अति ज्ञानवन्! (ब्रह्मणा) अन्नादि सहित या महान् वाग्रूप ऐश्वर्य पुरस्कार सहित (त्वा वन्दमानः) तेरी वन्दना, अभिवादन

करता हुआ मैं प्रजाजन (हविर्भिः यजमानः), स्तुति-वचनों और उपादेय भेटों सहित तुझे प्राप्त होता हुआ (तत् यामि, तत् आशास्ते) उस प्रेम और रक्षा की याचना करता और चाहता हूं कि तू (अहेडमानः) प्रजा के प्रति अनादर और क्रोध न करता हुआ (इह बोधि) यहां अपना कर्त्तव्य समझ और (नः) हम प्रजाओं के (आयुः) जीवनों का (मा प्र मोषीः) अपहरण मत कर, व्यर्थ को प्रजा को दण्डित मत कर ॥

स्व॒र्ण घ॒र्मः स्वाहा॑ स्व॒र्णार्कः स्वाहा॑ स्व॒र्ण शु॒क्रः स्वाहा॑
स्व॒र्ण ज्योतिः॒ स्वाहा॑ स्व॒र्ण सूर्यः॒ स्वाहा॑ ॥ ५० ॥

सूर्योऽग्निर्देवता । भुरिगार्ष्युष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(स्वः नः) सूर्य के समान (घर्मः) तेजस्वी पुरुष शत्रुओं का तापदायक होकर (स्वाहा) उत्तम यश को प्राप्त हो । (स्वः न) सूर्य के समान (अर्कः) अर्चनीय, स्तुत्य पुरुष (स्वाहा) उत्तम पद को प्राप्त हो । (स्वः न ज्योतिः) सूर्य के समान ज्ञानप्रकाश से युक्त पुरुष (स्वाहा) उत्तम पद को प्राप्त हो ! (स्वः न सूर्यः) सुखमय सूर्य के समान सबका प्रेरक होकर राजा (स्वाहा) उच्च पद और उत्तम यश को प्राप्त हो । शत० ६ । ४ । २ । १६-२३ ॥

अग्निरर्कः असौ आदित्योऽश्वमेधः तौ सृष्टौ नाना इवास्तां तौ देवा आहुतिभिः समतन्वन्त्समदधुः ॥ शत० ६।४।३।१८॥ असौ वा आदित्यो घर्मः । अमुं तददादित्यं अस्मौ प्रतिष्ठापयति । शत० ६ । ४ । ३ । १६ ॥

अर्थात् अग्रणी नेता में सूर्य के गुणों का प्रतिपादन किया है । उसको सूर्य के समान बतलाया है ॥

भौतिक पक्ष में—(घर्मः) ताप (अर्कः) अग्नि (शुक्रः) वायु (ज्योतिः) विद्युत् (सूर्यः) सूर्य ये सब (स्वाहा) उत्तम विज्ञानपूर्वक किया और प्रयोगों द्वारा (स्वः) सुखजनक हों । अथवा सूर्य के समान

शत्रुसंतापक, अग्नि के समान तेजस्वी, वायु के समान शुद्ध, विद्युत् के समान दीप्तिमान्, सूर्य के समान प्रवर्त्तक होकर राजा (स्वः) सबका सुखकारी हो। (स्वाहा) उत्तम यश प्राप्त करे।

अग्निं युनज्मि शवसा घृतेन दिव्यꣳ सुपर्णं वयसा बृहन्तम्।
तेन वयं गमेम ब्रध्नस्य विष्टपꣳ स्वो रुहाणा अधि नाकमुत्तमम्

अग्निर्देवता। स्वराडार्षी। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(घृतेन) घृत द्वारा जिस प्रकार (अग्निम्) अग्नि को यज्ञ में आधान किया जाता है उसी प्रकार (शवसा) बल पराक्रम के द्वारा (वयसा) व्यापक सामर्थ्य और ज्ञान से (बृहन्तम्) महान् (दिव्यम्) शुद्ध गुणों में उत्कृष्ट, (सुपर्णम्) उत्तम पालन करने वाले साधनों से सम्पन्न, (अग्निम्) ज्ञानवान् एवं शत्रुओं के संतापक अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी पुरुष को (युनज्मि) राष्ट्र के उच्च पद पर नियुक्त करता हूं। (तेन) उसके द्वारा स्वयं हम लोग (उत्तमम्) उत्तम, सर्वोत्कृष्ट (नाकम्) दुःखों से रहित (स्वः) सुखों से समृद्ध राष्ट्र को (अधिरुहाणाः) बराबर प्राप्त होते हुए (ब्रध्नस्य) महान्, सर्वाश्रय राष्ट्र के (विष्टपं) भीतर प्रविष्ट लोकों के पालक या पीड़ा, ताप आदि दुःखों से रहित स्थान को (गमेम) प्राप्त होवें। शत० ६।४।४।३॥

परमात्मा के पक्ष में—(दिव्यं, सुपर्णं) दिव्य तेजोमय, उत्तम ज्ञानवान्, (वयसा बृहन्तम्) सामर्थ्य से महान्, (अग्निम्) ज्ञानमय आत्मा को (घृतेन शवसा) कान्तिमय बल द्वारा (युनज्मि) परमेश्वर के साथ योगाभ्यास द्वारा लगाता हूं। (तेन) हम (नाकम् उत्तमं स्वः रुहाणाः) सुखमय उत्तम स्वर्गमय लोक को प्राप्त होते हुए (ब्रध्नस्य विष्टपं)

'तेन गमेम०' इति काण्व०।

आदित्य के समान तेजोमय परमब्रह्म के क्लेश-तापरहित स्वरूप को प्राप्त करें।

भौतिक पक्ष में—मैं शिल्पी (घृतेन शवसा) चिकने पदार्थ घी, तैल रूप बल से इस (अग्निम्) अग्नि विद्युत् को विमान आदि में जोड़ता हूं जो (सुपर्णम्) उत्तम गमन साधन चक्र और पक्षों से युक्त (वयसा बृहन्तम्) बल में बड़ा है। उससे हम महान् आकाश में गमन करें।

इमौ ते पक्षावजरौ पतत्रिणौ याभ्याᳬं रक्षाᳬंस्यपहᳬंस्यग्ने। ताभ्यां पतेम सुकृतामु लोकं यत्र ऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः

अग्निर्देवता। विराड् आर्षी जगती। निषादः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी पुरुष ! (इमौ) ये दोनों (अजरौ) कभी नाश न होने वाले (पतत्रिणौ) पक्षी के पक्षों के समान युद्ध में आगे बढ़ने वाले सेना के दो पहलू हैं। (याभ्याम्) जिनसे तू (रक्षांसि) विघ्न बाधा करने वाले शत्रुओं को (अपहंसि) मार भगाता है (ताभ्याम्) उन दोनों के बल पर (सुकृताम्) उत्तम आचारवान् पुण्यात्मा पुरुषों के (लोकम्) लोक, स्थान को प्राप्त हों (यत्र) जहां (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न, ज्येष्ठ (ऋषयः) ऋषि, ज्ञानद्रष्टा लोग (जग्मुः) प्राप्त होते हैं। शत० ९।४।४।४॥

अथवा—सभा में वाद-विवाद करने वाले दो पक्ष हैं जिनसे (रक्षांसि) बाधक तर्कों का नाश किया जाता है उन द्वारा ही (सुकृताम्) उत्तम विद्वानों के उस (लोकम्) साक्षात् दृष्ट सिद्धान्त तक हम पहुंचें जिसपर (प्रथमजाः) पूर्व उत्पन्न (पुराणाः) पुरातन (ऋषयः) मन्त्रार्थ द्रष्टा लोग (जग्मुः) पहुंचे हैं।

अध्यात्म में—ये दो (पक्षौ) स्वीकार करने योग्य, कार्य कारणरूप या आत्मा परमात्मा रूप (अजरौ) अजर अविनाशी (पतत्रिणौ) उच्च

५२—०'पक्षा अजरो'० इति काण्व० ॥

लोक में ले जाने वाले हैं। जिनके बल पर हे (अग्ने) ज्ञानी पुरुष ! तू (रक्षांसि) बाधक पाप दोषों को नष्ट करता है। उन दोनों के बल पर हम भी (सुकृताम् उ लोकं) सत्पुरुषों के द्रष्टव्य आत्मस्वरूप परमानन्द को प्राप्त हों (यत्र) जहां (ऋषयः) वेदार्थ वेत्ता और विद्वान् जन (प्रथमजाः) सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म परमेश्वर में दीक्षित होकर पहुंचते हैं।

इन्दुर्दक्षः श्येन ऽऋतावा हिरण्यपक्षः शकुनो भुरण्युः।
महान्त्सधस्थे ध्रुव ऽआ निषत्तो नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिᳪसीः॥५३॥

इन्दुर्देवता। आर्षी पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(इन्दुः) चन्द्र के समान शीतल स्वभाव, ऐश्वर्यवान्, (श्येनः) बाज के समान पराक्रमी, (दक्षः) बलवान्, प्रज्ञावान्, (शकुनः) शक्तिशाली, (हिरण्यपक्षः) सुवर्ण आदि हित और रमणीय पदार्थों को ग्रहण करने हारा, (ऋतावा) सत्य कर्म और आचरण वाला, धर्मशास्त्र का स्वामी (भुरण्युः) प्रजा का पालक राजा (महान्) महान् होकर (सधस्थे) अपने अनुयायियों सहित एकत्र राज्यासन या सभाभवन में (ध्रुवः) ध्रुव, स्थिर होकर (आ निषत्तः) आसन पर विराजता है। हे राजन् ! (ते) तुझे (नमः अस्तु) नमस्कार हो। (मा) मुझ प्रजाजन को (मा हिंसीः) मत मार। शत० ६। ४। ४। ५॥

परमेश्वर के पक्ष में—(इन्दुः) चन्द्र के समान प्रेमार्द्र, (श्येनः) ज्ञानवान्, (ऋतावा) सत्य ज्ञानवान्, (हिरण्यपक्षः) तेजस्वी, (शकुनः) सर्वशक्तिमान् (भुरण्युः) पालक पोषक, महान् (सधस्थे) सदा साथ (ध्रुवः) नित्य अविनाशी होकर विराजमान है। तुझे नमस्कार है। तू मुझे पीड़ित मत कर।

दिवो मूर्द्धासि पृथिव्या नाभिरूर्गपामोषधीनाम्।
विश्वायुः शर्म सप्रथा नमस्पथे॥ ५४॥

अग्निर्देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन्! जिस प्रकार (दिवः मूर्धा) सूर्य आकाश का और तेजोमय पिण्डों या प्रकाश का (मूर्धा) उत्तमाङ्ग, शिर के समान सर्वोच्च है उसी प्रकार (दिवः) ज्ञानवान् पुरुषों की बनी राजसभा के (मूर्धा) मूर्धा शिरोमणि, प्रधान, सर्वोच्च पद पर विराजमान (असि) है। तू (पृथिव्या नाभिः) पृथिवी के नाभि के समान समस्त पृथ्वी के राज्य का प्रबन्ध करनेवाला राष्ट्र का मुख्य केन्द्र है। तू (अपाम् ऊर्ग्) जलों के उत्कृष्ट रस अन्न के समान (अपाम्) आप्त प्रजा जनों का (ऊर्क्) सर्वोत्तम बलरूप, पराक्रमी, सार रूप है। (ओषधीनाम्) वीर्यवती ओषधियों के बीच में सोम के समान तेजस्विनी क्षात्र सेनाओं में सेनापति है। तू (विश्वायुः) वायु के समान समस्त प्रजाओं का जीवनप्रद, (शर्म) गृह के समान शरण और (सप्रथाः) समान रूप से सर्वत्र विख्यात, एवं सर्वत्र महान् है। (पथे) सब के मार्गस्वरूप, सबको उद्देश्य तक पहुंचाने वाले तुझे (नमः) नमस्कार हो। तुझे प्रजा के वश करने का बल अधिकार प्राप्त हो। परमेश्वर के पक्ष में स्पष्ट है। शत० ६। ४। ४। १२॥

विश्वस्य मूर्द्धन्नधि तिष्ठसि श्रितः समुद्रे ते हृदयमप्स्वायुरपो दत्तोदधिं भिन्त । दिवस्पर्जन्यादन्तरिक्षात्पृथिव्यास्ततो नो वृष्ट्याव ॥ ५५ ॥

अग्निर्देवता । आर्षी जगती । निषादः ॥

भा०—हे राजन्! सभापते! तू (विश्वस्य मूर्धन् अधि तिष्ठसि) सूर्य के समान समस्त राष्ट्र के शिरपर अधिष्ठाता रूप से विराजता है। तू (श्रितः) समस्त प्रजाओं द्वारा और आश्रय सेवित है। (ते) तेरा (हृदयम्) हृदय (समुद्रे) अन्तरिक्ष के समान व्यापक सर्वोपकारक परमेश्वर में मग्न हो। (अप्सु आयुः) प्रजाओं के उपकार के कार्यों में तेरा जीवन

व्यतीत हो। तू (अपः दत्त) ज्ञानों का और उत्तम कर्मों का उपदेश कर। अथवा (अपः दत्त) राष्ट्र में मेघ के समान कृषि आदि के निमित्त जलों का प्रदान कर और (उदधिं भिन्त) जिस प्रकार वायु जल धारण करनेवाले मेघ का भेदन करता है उसी प्रकार तू भी (उदधिम्) जल के धारण करने वाले सोतों और नदी-प्रवाहों को काट २ कर राष्ट्र में नहरों के रूप में बहा। (दिवः) सूर्य से या आकाश से (पर्जन्यात्) मेघ से (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष गत वायु से और (पृथिव्याः) पृथिवी से तथा (ततः) जहां कहीं भी जल हो वहां से प्रजा को जल प्राप्त करा और (नः) हमें (वृष्ट्या) मेघ के समान समस्त सुखों की वृष्टि से (अव) पालन कर। शत० १। ४। ४। १२॥

इष्टो यज्ञो भृगुभिराशीर्दा वसुभिः।
तस्य न ऽइष्टस्य प्रीतस्य द्रविणेहागमेः॥ ५६॥

गालव ऋषिः। यज्ञो देवता। आर्षी उष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(यज्ञः इष्टः) जो प्रजापालन रूप यज्ञ एवं प्रजापति, राजा स्वयं (भृगुभिः) परिपक्व विज्ञान वाले विद्वानों और शत्रुओं को भून देने वाले वीरों द्वारा (इष्टः) सम्पादित किया जाता है वह (वसुभिः) वसु नामक विद्वानों, एवं प्रजा को बसाने हारे ऐश्वर्यवान् राजाओं द्वारा (आशीर्दाः) समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला होता है। हे (द्रविण) ऐश्वर्य ! (तस्य) उस (इष्टस्य) सुसम्पादित (प्रीतस्य) सब के प्रिय इस यज्ञ के द्वारा तू (नः) हमें (आगमेः) आ, प्राप्त हो।

इष्टो ऽअग्निराहुतः पिपर्त्तु न ऽइष्टꣳ हविः।
स्वगेदं देवेभ्यो नमः॥ ५७॥

गालव ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी गायत्री। षड्जः॥

भा०—(आहुतः) आहुति द्वारा बढ़ाये गये (अग्निः) अग्नि के

समान तेजस्वी, सत्कार प्राप्त विद्वान्, अग्रणी राजा (इष्टः) आदर सत्कार प्राप्त करके (नः) हमें (पिपर्तु) पालन करे। और (इष्टं) हमें यथेष्ट (हविः) अन्नादि पदार्थों से (पिपर्तु) पूर्ण करे। (देवेभ्यः) विजिगीषु और ज्ञानप्रद, द्रष्टा विद्वान् पुरुषों के निमित्त (इदम्) यह (नमः) अन्न आदि सत्कार (स्वगा) अपने हितैषी पुरुषों को प्राप्त हों या वह अनायास, बिना मांगे आप से आप उन्हें प्राप्त हो।

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा संभृतं चक्षुषो वा।
तदनु प्रेत सुकृतामु लोकं यत्र ऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः॥

५८—६५ विश्वकर्मा ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृदार्षी जगती। निषादः॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (यत्) जो कर्त्तव्यकर्म और ज्ञान (आकूतात्) मन की प्रवृत्ति के भी पूर्व आत्मा के भीतर विद्यमान सत्य उत्साह या तरंग विद्यमान होती है उससे (हृदः) हृदय से (मनसः) मनन करनेवाले अन्तःकरण से (वा) और (चक्षुः) आंख आदि बाह्य इन्द्रियों से (संभृतम्) सम्यक् प्रकार से प्राप्त हो और सञ्चित हो (तत्) उसके (अनु) अनुकूल ही (सुकृताम्) पुण्य आचारवान् सत् पुरुषों के (लोकम्) दर्शन योग्य परम उस सुखधाम स्थान और स्थिति को (प्र इत) प्राप्त करो (यत्र) जहां (प्रथमजाः) हम में उत्कृष्ट पद को प्राप्त, (पुराणाः) हम से पहले उत्पन्न बुजुर्ग (ऋषयः) वेदार्थ के ज्ञाता और द्रष्टा (जग्मुः) पहुंचे हैं। शत० ९। ५। १। ४५॥

एतꣳ सधस्थ परि ते ददामि यमावहाच्छेवधिं जातवेदाः।
अन्वागन्ता यज्ञपतिर्वो ऽअत्र तꣳस्म जानीत परमे व्योमन्॥५९॥

प्रजापतिर्देवता। निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः॥

५८—अतो अष्टौ वैश्वकर्मणानि।

५९—'सधस्थं' इति उवटाभिमतः।

भा०—हे (सधस्थ) एकत्र विद्वानों के बैठने के स्थान ! सभाभवन एवं सभाभवन में विराजमान विद्वान् राज्य-शासक जनो ! (जातवेदाः) ऐश्वर्य को प्राप्त करनेवाले समृद्ध पुरुष (यम्) जिस (शेवधिम्) धन कोश को (आवहात्) राष्ट्र से या व्यापारादि प्राप्त करके राजकोष में जमा कराते हैं (एतम्) उसका (ते) तेरे अधीन (परिददामि) प्रदान करता हूं । (यज्ञपतिः) यज्ञ रूप राष्ट्रव्यवस्था का पालन करने वाला राजा (वः अनु आगन्ता) आप लोगों के अनुकूल ही चलेगा । (अत्र) यहां, अब (तम्) उसको ही (परमे व्योमन्) परम, सर्वोत्कृष्ट विविध राष्ट्र कार्यों के रक्षक पद पर स्थित हुआ (जानीत स्म) जानो । शत० ६।५।१।४६॥

अध्यात्म में—हे जिज्ञासुओ ! (यं शेवधिं) जिस ज्ञान के खज़ाने को (जातवेदाः) परमेश्वर या वेदार्थवित् विद्वान् धारण करता है वह मैं (ते परिददामि) तुम जिज्ञासु जन को प्रदान करता हूं । (यज्ञपतिः) उपास्यदेव की उपासना का पालक, निष्ठ पुरुष (वः) तुमको (परमे व्योमन्) परमात्मा के विषय में (अनु आगन्ता) जिस अनुकूल उचित धर्मज्ञान का उपदेश करे (तं जानीत स्म) उसका ज्ञान करो ।

एतं जा॑नाथ पर॒मे व्यो॑म॒न् देवाः॑ सधस्था वि॒द रू॒पम॑स्य ।
यदा॒ गच्छा॑त्प॒थिभि॑र्देव॒यानै॑रिष्टापू॒र्त्ते कृ॑णवाथा॒विर॑स्मै ॥ ६० ॥

प्रजापतिर्देवता । निचृदार्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् विजिगीषु, राजा लोगो ! आप लोग (एतं) इस अभिषिक्त सम्राट् को ही (परमे व्योमन्) परम सर्वोच्च रक्षक पद पर (जानाथ) जानो । हे (सधस्थाः) साथ ही एक सभा-भवन में विराजने वाले राजसभासत् पुरुषो ! (अस्य) इस (रूपम्) सबके प्रति प्रिय लगने वाले स्वरूप, अधिकार और कर्त्तव्य को (विद)

६० — ०'कृणवथा०' इति काण्व० ।

जानो और उसको जनाओ। (यद्) जब भी (देवयानैः) विद्वानों और राजाओं द्वारा गमन करने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (आगच्छात्) यह प्राप्त हो, तब (इष्टापूर्ते) अपने इष्ट, यज्ञ, दान आदि परोपकार के कार्य और 'आपूर्त' कूप तड़ाग आदि प्रजा के हितकारी कार्यों को (अस्मै) इसके निमित्त (आविः कृणवाथ) प्रकट करो। शत० ९ । ५ । १ । ४७ ॥

परमात्मा के पक्ष में—(एतं परमे व्योमन् जानाथ) हे विद्वानो ! इस परमेश्वर को परम स्थान में जानो। इसके रूप का साक्षात् करो। (देवयानैः) योगाभ्यास आदि देवयान मार्गों से वह तुम्हें साक्षात् हो, (अस्मै) परमेश्वर के प्रसन्न करने के लिये श्रद्धा से श्रौत स्मार्त कार्यों को प्रकट रूप से करो।

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳ सृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे ऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ६१
येन वहसि सहस्रं येनाग्ने सर्ववेदसम्।
तेनेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६२ ॥

भा०—६१,६२ दोनों मन्त्रों की व्याख्या देखो अ० १५।५४,५५ ॥

प्रस्तरेण परिधिना स्रुचा वेद्या च बर्हिषा।
ऋचेमं यज्ञं नो नय स्वर्देवेषु गन्तवे ॥ ६३ ॥

यज्ञो देवता। निचृदनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(प्रस्तरेण) प्रस्तर, (परिधिना) परिधि, (स्रुचा) स्रुक्, (वेद्या) वेदि, (बर्हिषा) बर्हि, कुश (ऋचा) ऋग् मन्त्र, इन पदार्थों से जैसे यज्ञ का क्रियाकाण्ड सम्पादित किया जाता है उसी प्रकार (प्रस्तरेण) प्रस्तर, उत्तम रीति से राष्ट्र को विस्तार करने में कुशल, व्यवस्थापक क्षत्रिय, या क्षात्र बल, (परिधिना) परिधि अर्थात् राष्ट्र को सब ओर से धारण करने और रक्षा करने वाले वीर पुरुष, (स्रुचा) स्रुक् अर्थात् विद्वान्,

स्त्री-जन, गवादि पशु, वाणी अथवा प्रजाजन या तेजस्विनी सेना, (वेद्या) वेदि, पृथिवी (ऋचा) वाणी, ज्ञानमय व्यवस्था और धर्मशास्त्र, (बर्हिषा) और प्रजाजन इन पदार्थों से (इमं) इस (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत यज्ञ को (स्वः गन्तवे) सुख प्राप्त करने के लिये (देवेषु) विद्वान् विजयी, भूपति लोगों के आश्रय पर (नय) चला। शत० ६।५।१।४८॥

(१) 'प्रस्तरः'—यजमानो वै प्रस्तरः। श० २।३।४।३।१६ ॥ क्षत्रं वै प्रस्तरः। श० १।३।४।२० ॥

(२) परिधिः'—दिशः परिधयः। ऐ० ५।८। इमे लोकाः परिधयः। तै० ३।८।१८।४ ॥ गुप्त्यै वा अभिताः परिधयो भवन्ति। श० १।३।४।२८॥

(३) 'स्रुक्'—वाग् वै स्रुक्। श० ६।३।१।८ ॥ योषा हि स्रुक् श० १।४।४ ॥ बाहू वै स्रुचौ। श० ७।४।१।३६ ॥ इमे वै लोकाः स्रुचः। तै० ३।३।१।२ ॥

(४) 'वेदिः'—पृथिवी वेदिः। ऐ० ५।२८॥

(५) 'ऋक्'—वाग् इति ऋक्। तै० ३।४।२३।४ ॥

(६) 'बर्हिः'—प्रजा वै 'बर्हिः। कौ० ५।५॥ क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरं बर्हिः' श० १।३।४।१० ॥

यद्दत्तं यत्परादानं यत्पूर्त्तं याश्च दक्षिणाः।
तदग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्देवेषु नो दधत् ॥ ६४ ॥

यज्ञो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जो (दत्तम्) दिया जाय, (यत्) जो (परादानं) दूसरों से लिया जाय (यत् पूर्त्तं) जो प्रजा के उपकार के लिये भी कूप, तड़ाग आदि बनवाये जावें, (याः च) और जो भी (दक्षिणाः) कर्म और परिश्रम के अनुरूप वेतन पुरस्कार आदि दिये जावें (तत्) उस सब को (वैश्वकर्मणः) विश्वकर्मा, राज्य के समस्त उत्तम कर्मों के प्रवर्त्तक राजा

पद पर विराजमान (अग्निः) विद्वान् नेता ही (देवेषु) विद्वान् द्रष्टा पुरुषों के आधार पर (नः) हम में (स्वः) सुख की वृद्धि के लिये (दधत्) स्थापित या नियत करे। शत० ९ । ५ । १ । ४९ ॥

अर्थात् लेन देन का व्यवहार मकान, कूए बागीचे आदि और वेतन आदि सब राजकीय व्यवस्था में रहें उनका देना लेना, स्वामित्व आदि सरकारी कागज़ों और स्टाम्पों पर विद्वान् शासकों के अधीन स्थिर रूप से हो, जिससे प्रजा सुखी हों।

यत्र धारा ऽअनपेता मधोर्घृतस्य च याः ।
तद॒ग्निर्वैश्वकर्मणः स्वर्द्देवेषु नो दधत् ॥ ६५ ॥

भा०—(यत्र) जिस राज्य में से (मधोः) मधु के समान मधुर अन्न और जल की (घृतस्य च) और घी, दूध की (याः) जो (धाराः) धाराएं होती हैं वे कभी भी (अनपेताः) जुदी न हों। इसी प्रकार (मधोः) शत्रु या दुष्ट पुरुषों के पीड़न, (घृतस्य च) घृत, तेज, पराक्रम की (धाराः) राज्य को धारण करनेवाली शक्तियां (यत्र) जिस राष्ट्र से कभी (अनपेताः) लुप्त न हों (तत्) ऐसे (स्वः) सुखकारी राज्य को। वैश्वकर्मणः अग्निः) राष्ट्र के सब उत्तम कर्मों के करनेवाला प्रजापति, अग्रणी, विद्वान् शासक (नः देवेषु) हमारे विद्वानों के आधार पर (दधत्) स्थापित करे। शत० ९ । ५ । १ । ५० ॥

अ॒ग्निर॑स्मि॒ जन्म॑ना जा॒तवे॑दा घृ॒तं मे॒ चक्षु॑र॒मृतं॑ म ऽआ॒सन् ।
अ॒र्कस्त्रि॒धातू॒ रज॑सो वि॒मानोऽज॑स्रो घ॒र्मो ह॒विर॑स्मि॒ नाम॑ ॥ ६६ ॥

देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । अग्निर्देवता ।

भा०—मैं सम्राट् (जन्मना) जन्म अर्थात् स्वयं अपने प्रकट हुए स्वरूप से एवं स्वभाव से ही (अग्निः अस्मि) अग्नि के समान तीव्र, दुष्टों का संतापजनक और (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ पर अधिकारी रूप से विद्यमान, एवं ऐश्वर्यवान् और समस्त पदार्थों को जानने हारा

(अस्मि) होऊं। (घृतम्) जिस प्रकार अग्नि में घी पड़ते ही वह प्रकट होकर प्रदीप्त होता है उसी प्रकार (घृतम्) तेज ही (मे) मेरा (चक्षुः) चक्षु के समान स्वरूप को प्रकट रूप से दिखाने वाला हो। (अमृतम्) अन्न आदि हवि जिस प्रकार अग्नि के मुख में दिया जाता है उसी प्रकार (मे आसन्) मेरे मुख में, मेरे मुख्य पद के निमित्त (अमृतम्) अखण्ड अविनाशी, ऐश्वर्य या अमृत, अन्नादि भोग्य पदार्थ हो। मैं (अर्कः) सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रिधातुः) प्रज्ञा, शक्ति, उत्साह तीनों से राष्ट्र को धारण करने में समर्थ, (रजसः विमानः) लोकों का विविध रूपों से परिमाण और आदर करने वाला, (अजस्रः) शत्रुओं से न पराजित होने वाला (घर्मः) सूर्य के समान अति तेजस्वी, (हविः) राष्ट्र को अपने वश में लेने में समर्थ (नाम) सबको नमानेवाला (अस्मि) होकर रहूं।

ऋचो नामा॑स्मि यजू॑ꣳषि॒ नामा॑स्मि॒ सामा॑नि॒ नामा॑स्मि।
ये ऽअ॒ग्नयः॒ पाञ्च॑जन्या ऽअ॒स्यां पृ॑थि॒व्यामधि॑।
तेषा॑मसि॒ त्वमु॑त्त॒मः प्र नो॑ जी॒वात॑वे सुव ॥ ६७ ॥

पूर्वोक्ते ऋषिदेवते। आर्षी जगती। निषादः॥

भा०—(ऋचः नाम अस्मि) ऋचाएं मैं हूं। (यजूंषि नाम अस्मि) यजुर्गण मैं हूं। (सामानि नाम अस्मि) सामगण मैं हूं। अर्थात् राष्ट्र की समस्त आज्ञाएं मेरे अधीन हों, वे मेरी प्रतिनिधि हों। राष्ट्र के समस्त 'यजुः' परस्पर संगत राज्य-कर्म मेरे अधीन हों। 'साम' अर्थात् उनमें सौष्ठव, परस्पर समता और एकता के सब स्वरूप मेरे अधीन हों। शत० ६।५।१।२३॥

हे राजन्! (ये) जो (अस्यां पृथिव्याम् अधि) इस पृथिवी पर (पाञ्चजन्याः) पांचों प्रजा जनों के हितकारी (अग्नयः) ज्ञानवान् तेजस्वी नेता पुरुष हैं (तेषाम्) उन सब में (त्वम् उत्तमः) तू सब से श्रेष्ठ है। तू (नः) हमारे (जीवातवे) दीर्घ जीवन के लिये (प्रसुव) उत्तम रीति से राष्ट्र का संचालन कर।

(१) 'यजूंषि'—यज्ञो ह वै नाम तद् यद् यजुः। श० ४।६। ७। १३॥ एष हि यन् एव इदं सर्वं जनयति। यन्तम् ह्यै अनु प्रजायते तस्माद् यजुः। एतमनुजवते तस्मात् यजुः। श० १०। ३। ५। २॥ मनो यजूंषि। श० ४। ६। ७। ५॥ पितरो विशः…यजूंषि वेदः। श० १३।४।३।६॥ राष्ट्र स्वयं यजु है। उसके समस्त अंग 'यजु' हैं, राजा स्वयं नियमानुकूल राज्य बनाता है। उसके नियमपूर्वक चलते हुए उसके अनुसार यह राज्य बनता है। अतः वे शासक 'यजु' हैं। राष्ट्र के पालक 'पिता' हैं उनके कर्त्तव्यों का बोधक वेद 'यजु' है।

'सामानि'—तद् यत् संयन्तितस्मात् साम। जै० उ० ३।१।३३।६।७॥ साम्राज्यं वै साम। श० १२। ८। ३। २३। घर्म इन्द्रो राजा…देवा विशः…सामानि वेदः। श० ……॥

परमेश्वर पक्ष में—(अग्निरस्मि जातवेदाः) वेदों का उत्पादक मैं स्वभाव से अग्नि, ज्ञानवान् हूं। (घृतं मे चक्षुः) तेजः, सूर्य मेरा चक्षु हैं। (अमृतम् मे आसन्) अमृत अविनाशी मोक्षानन्द मेरा सुख-मुख्य स्वरूप है। (अर्कः) मैं अर्चनीय, (त्रिधातु) सत्व रजः तमः तीनों का धारक, (रजसः विमानः) लोकों का निर्माता, (अजस्रः) अविनाशी, (घर्मः) तेजस्वी, (हविः नाम) सर्वव्यापक अन्नरूप हूं। मैं (ऋचः सोम०) ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद हूं। तीनों वेद मेरे ही रूप हैं। हे परमेश्वर ! (मे पाञ्चजन्याः अग्नयः०) जो पांचों उत्पन्न भूतों में प्रवर्त्तक बल इस विशाल प्रकृति में हैं उन सब में तू सब से श्रेष्ठ है तू हम जीवों के दीर्घ जीवन के लिये उत्तम उपाय कर।

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च।
इन्द्र त्वावर्तयामसि ॥ ६८ ॥

६८-७४ इन्द्रो विश्वामित्रश्च ऋषिः। अग्निर्देवता। निचृद्। गायत्री षड्जः॥

भा०—(वार्त्रहत्याय) वर्त्तमान शत्रु का हनन करने में समर्थ और (पृतनापाह्याय) सेनाओं के विजय करने वाले (शवसे) बल, सेनाचल के शासन करने के लिये हे (इन्द्र) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुनाशक ! (त्वा) तुझे हम (आवर्तयामसि) नियुक्त करते हैं । अग्रणी नेता पद पर स्थापित करते हैं । शत० ६ । ५ । २ । ४ ॥

सहदानुम्पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र संपिणक् कुणारुम् ।
अभि वृत्रं वर्द्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥ ६९ ॥

इन्द्रो विश्वामित्रश्च ऋषी । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (पुरुहूत) बहुत प्रजाजनों से सत्कार को प्राप्त करने हारे ! हे (इन्द्र) इन्द्र ! शत्रुओं विदारक सेनापते ! (सहदानुम्) अपने बल से प्रजाजनों का खण्डन या नाश करने वाले या अपने सहवासी का नाश करने वाले, (क्षियन्तम्) समीप बसे, (कुणारुम्) कुत्सित वचन बोलने वाले दुष्ट पुरुष को तू (अहस्तम्) बे-हाथ का, निहत्था; निःशस्त्र करके (संपिणक्) अच्छी प्रकार कुचल डाल । जिससे वह समीप के लोगों को हानि न पहुंचा सके । और (वृत्रं) घेरनेवाले, (पियारुम्) मद्यपी अथवा हिंसाकारी (अभिवर्धमानम्) सब ओर बढ़नेवाले दुष्ट पुरुष को (अपादम्) बे पांव का लंगड़ा करके (तवसा) अपने बल से (जघन्थ) विनष्ट कर । जिससे वह शक्ति में बढ़ कर प्रजाओं का नाश न करे ।

वि न ऽइन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो ऽअस्माँ२ऽ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥ ७० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ८ । ४४ ॥ शत० ६ । ५ । २ । ५ ॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आजगन्था परस्याः ।
सृकꣳ संꣳशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताढि वि मृधो नुदस्व

इन्द्रपुत्रः शासो भारद्वाज जयश्च ऋषी । इन्द्रो देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार (कुचरः) ऊंचे, नीचे, खाई, वन, पर्वत, आदि सभी स्थानों पर विचरने वाला (भीमः मृगः न) भयानक पशु, सिंह बड़े जन्तुओं का नाश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) शत्रुओं के विनाशक इन्द्र ! तू भी (भीमः) अति भयानक (मृगः) शत्रुओं को खोज लेने वाला, (कुचरः) गढ़, नगर, वन, पर्वत, आदि सर्वत्र विचरने में समर्थ (गिरिष्ठाः) पर्वतों में निवास करने हारा होकर भी (परावतः) दूर २ के देशों तक (आ जगन्थ) पहुंचता है और (सृकम्) शत्रु के शरीरों में घुस जाने वाले (पविम्) पाप के शोधक वज्र को (संशाय) खूब तीक्ष्ण करके (तिग्मम्) खूब तीक्ष्णता से (परस्याः) शत्रु सेना के बीच में विद्यमान (शत्रून्) शत्रुओं को (वि ताढि) विविध प्रकारों से विनाश कर और (मृधः) संग्रामकारी सेनाओं को (वि नुदस्व) पीछे भगा, तितर बितर कर । शत० ९ । ५ । २ । ५ ॥

वैश्वानरो न ऊतय आ प्रयातु परावतः ।
अग्निर्नः सुष्टुतीरुप ॥ ७२ ॥

इन्द्र ऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । आर्षी गायत्री । धैवतः ॥

भा०—(वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों में अधिक प्रतिष्ठित, (अग्निः) अग्नि या सूर्य के समान तेजस्वी (परावतः) दूर देश से भी (नः) हमारी (ऊतये) रक्षा के लिये (आ प्र यातु) आवे और (नः) हमारी (सु-स्तुतीः) उत्तम स्तुतियों को (उप) श्रवण करे । शत० ९।५।२।६॥

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश ।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम् ॥

इन्द्रकुत्सौ ऋषी । वैश्वानरो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(दिवि) द्यौलोक, महान् आकाश में (पृष्टः) प्राण, बल सेचन करने में समर्थ, सूर्य के समान तेजस्वी और (पृथिव्यां पृष्टः) पृथिवी में मेघ रूप से जल सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान और (पृष्टः)

रस वीर्य सेचन करने में समर्थ (विश्वाः ओषधीः) समस्त ओषधियों में प्रविष्ट जल के समान जो (अग्निः) अग्रणी नेता (दिवि) राजविद्वत्सभा में, (पृथिव्यां) पृथिवीवासी प्रजा में और (विश्वाः ओषधीः) समस्त तेजस्विनी सेनाओं में (आ विवेश) राजा रूपसे विद्यमान है वह (वैश्वानरः) समस्त विश्व-राष्ट्र का नेता (सहसा) अपने शत्रु पराजय करने वाले बल से (पृष्टः) सर्वत्र ज्ञात, एवं बलवान्, सर्वोत्तम (अग्निः) अग्रणी पुरुष (सः) वह (नः) हमें (दिवा) दिन और (नक्तम्) रात को भी (रिषः) हिंसक लोगों से (पातु) बचावे । शत० ६ । ५ । २ । ६ ॥

'पृष्टः'—पृषु वृषु सेचने । भ्वादिः । पृष्टः वृष्टः वृषभ इति यावत् । कर्त्तरि क्तः ।

अ॒श्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती अ॒श्याम॑ र॒यिꣳ र॑यिवः सु॒वीर॑म् ।
अ॒श्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जरा॒जरं॑ ते ॥७४॥

इन्द्रभरद्वाजावृषी । अग्निर्देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी सेनापते ! (तव ऊती) तेरे रक्षण सामर्थ्य से हम (तम् कामम्) उस २ अभिलाषा का (अश्याम) यथेच्छ भोग करें । हे (रयिवः) ऐश्वर्यवन् राजन् ! हम (सुवीरम्) उत्तम वीरों और वीर पुत्रों से युक्त (रयिम्) राष्ट्र समृद्धि का (अश्याम) भोग करें । (अभि वाजयन्तः) शत्रु के ऊपर संग्राम करते हुए (वाजम्) विजय से प्राप्त ऐश्वर्य का हम (अश्याम) भोग करें । (अभि वाजयन्तः) शत्रु के ऊपर संग्राम करते हुए (वाजम्) विजय से प्राप्त ऐश्वर्य का हम (अश्याम) उपभोग करें, हे (अजर) अविनाशिन् ! (ते) तेरे (अजरं) अविनाशी (द्युम्नम्) अक्षय ऐश्वर्य का हम (अश्याम) भोग करें । शत० ६ । ५ । २ । ७ ॥

व॒यं ते॑ अ॒द्य र॑रि॒मा हि काम॑मुत्ता॒नह॑स्ता॒ नम॑सोप॒सद्य॑ ।
यजि॑ष्ठेन॒ मन॑सा यक्षि दे॒वानस्रे॑धता॒ मन्म॑ना॒ विप्रो॑ अग्ने ॥ ७५ ॥

उत्कील आत्कीलो वा ऋषिः । अग्निर्देवता । आर्षी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी नेतः ! विद्वन् ! (ते) तेरे (कामम्) अभिलषित पदार्थ को (अद्य) आज (वयम्) हम (उत्तानहस्ताः) उतान हाथों से (नमसा) नमस्कारपूर्वक (उपसद्य) तेरे समीप पहुंच कर (ररिम) प्रदान करते हैं। और (देवान्) विजिगीषु वीर राजगण को और (अस्त्रेधता) स्थिर, (मन्मना) मननशील (यजिष्ठेन) अति आदर, प्रेम से युक्त (मनसा) मनसे (विप्रः) मेधावी, ज्ञानवान् होकर तू (यक्षि) प्राप्त होता है। शत० ६।५।२।९॥

धामच्छद्ग्निरिन्द्रो ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः।
सचेतसो विश्वे देवा यज्ञं प्रावन्तु नः शुभे ॥ ७६ ॥

भा०—(धामच्छत्) सूर्य के समान तेज को धारण करनेवाला और समस्त स्थानों पर वश करने वाला, (अग्निः) अग्रणी नेता, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (देवः) विज्ञान द्रष्टा, (ब्रह्मा) वेदज्ञ विद्वान्, (बृहस्पतिः) बृहती वेद वाणी का पालक विद्वान् महामान्य और (सचेतसः) प्रज्ञावान् शुभ चित्त वाले, (विश्वे देवाः) समस्त दानशील, विद्वान् पुरुष सब लोग (नः) हमारे (शुभे) कल्याण के लिये (न.) हमारे (यज्ञं प्रावन्तु) यज्ञ, राष्ट्र और प्रजापालक की रक्षा करें। शत० १०।१।३।८॥

त्वं यविष्ठ दाशुषो नॄः पाहि शृणुधी गिरः।
रक्षा तोकमुत त्मना ॥ ७७ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३। ५२ ॥ हे (यविष्ठ) सब से अधिक बलिष्ठ सभापते ! राजन् ! तू (दाशुषः) दानशील (नॄन्) प्रजाजनों को (पाहि) पालन कर। उनके (गिरः) वाणियों को (शृणुधि) श्रवण कर। (उत) और (त्मना) स्वयं (तोकम्) उनके पुत्रादि अपत्यों की (रक्ष) रक्षा कर। शत० १०। १। ३। ११ ॥

॥ इत्यष्टादशोऽध्यायः ॥

॥ अथैकोनविंशोऽध्यायः ॥

अ० १९–२१ सौत्रामणी ॥ तस्याः प्रजापतिरश्विनौ सरस्वती च ऋषयः ॥

॥ ओ३म् ॥ स्वाद्वीं त्वा स्वादुना तीव्रां तीव्रेणामृताममृतेन। मधुमतीं मधुमता सृजामि सꣳसोमेन। सोमोऽस्यश्विभ्यां पच्यस्व सरस्वत्यै पच्यस्वेन्द्राय सुत्राम्णे पच्यस्व ॥ १ ॥

सुरा सोमश्च देवते। निचृत् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—(स्वाद्वीं स्वादुना) जिस प्रकार उत्तम स्वादयुक्त ओषधि को स्वादु उत्तम रस से मिलायाता है। और (तीव्रां तीव्रेण) तीव्र प्रभाव करनेवाली ओषधि को तीव्र रस से मिलाया जाता है और (अमृताम्) अमृत, दीर्घ जीवन देनेवाली ओषधि को (अमृतेन) अमृतमय, दीर्घ जीवन-प्रद रस से मिलाया जाता है। उसी प्रकार (स्वाद्वीम्) उत्तम मधुर रस देने वाली (तीव्राम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाली, (अमृताम्) अमृत, सदा जीवनदायिनी और (मधुमतीम्) मधुर अन्नादि समृद्धि से युक्त (ताम्) उस राज्य सम्पत्ति, नारी और प्रजा को भी मैं विद्वान् महामात्र, राजकर्त्ता पुरुष (स्वादुना) मधुर स्वभाव के, (तीव्रेण) तीक्ष्ण स्वभाव के (अमृतेन) अमृत, शत्रु को प्रहार करके मारने और स्वयं न मरने वाले स्वयं चिरञ्जीवी, (मधुमता) और मधुर गुणों से युक्त (सोमेन) सोम, स्वामी, आज्ञापक पति और राजा के साथ (सं सृजामि) संयुक्त करता हूं। हे पुरुष! अधिपते! राजन्! तू (सोमः असि) सोम, प्रेरक, ऐश्वर्यवान् अभिषेक करने योग्य है। (अश्विभ्यां) सूर्य जिस प्रकार दिन और रात्रि या द्यौ और पृथिवी के लिये तपता है और मुख्य औषध जिस प्रकार प्राण और अपान के हित के लिये पकाया जाता

है उसी प्रकार तू भी (अश्विभ्यां) माता पिता और राष्ट्र के नर नारी दोनों या प्रजा और राजा, राष्ट्र और राज-पद दोनों के लिये (पच्यस्व) परिपक्व हो। हे पुरुष! तू दम्पति भाव के लिये (पच्यस्व) परिपक्व वीर्य वाला हो। या हे वीर्यवन्! (सरस्वत्यै पच्यस्व) सरस्वती, वेदवाणी और शासनाज्ञा के लिये उसे शत्रु, मित्र, उदासीन, एवं राष्ट्र और सब पर अच्छी प्रकार चलाने के लिये (पच्यस्व) अपने को परिपक्व कर। गृहस्थ पक्ष में—हे पुरुष! तू (सरस्वत्यै) प्रेमयुक्त स्त्री के हित के लिये (पच्यस्व) परिपक्व वीर्यवान् हो। (सुत्राम्णे) उत्तम रीति से प्रजा के पालन करनेवाले (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक (इन्द्राय) इन्द्र, राजा पद के लिये (पच्यस्व) अपने को परिपक्व कर, तैयार कर, अपने बल, वीर्य को दृढ़ कर। संगति देखो अथर्व० १६। २१। १४॥ शत० १२।७।३।५॥

(१) 'सौत्रामणी'—स यो भ्रातृव्यवान् स्यात् स सौत्रामण्या यजेत। पाप्मानमेव तद् द्विषन्तं भ्रातृव्यं हत्वा इन्द्रियं वीर्यमस्य वृङ्क्ते। तस्य शीर्षच्छिन्ने लोहितामिश्रः सोमोऽतिष्ठत्। तस्माद्बीभत्सन्त। त एतदन्धसोर्विपानमपश्यन् सोमोराजा अमृतं सुत इति। तेन एनं स्वदयित्वा आत्मन् अधत्त। शत० १२। ७। ३। ४॥

जो शत्रु वाला राजा हो वह सौत्रामणी यज्ञ करता है। शत्रुरूप द्वेषी पाप को मार कर वह उसके ऐश्वर्य वीर्य को हर लेता है। उसके शिर कटने पर रुधिर से मिला 'सोम' अर्थात् राजपद, ऐश्वर्य रहता है। उसको देख लोग ग्लानि करते हैं। तब विद्वान् 'सोमपान' अर्थात् राष्ट्र के पालन के ज्ञान का दर्शन करते हैं कि सोम स्वयं राजा है। 'सुत' अभिषिक्त सोम राजा अमृत के समान है। उस राजपद से उस राजा को अधिक आनन्ददायक बना कर वह अपने में धारण करता है।

(२) सोमो वै पयः अन्नं सुरा। क्षत्रं वै पयो विट् सुरां पूत्वा पयः पुनाति। विश एव तत्क्षत्रं जनयति। विशो हि क्षत्रं जायते।

सोम दूध के समान है। अन्न और अन्न का विकार सुरा है। क्षत्र-बल दूध है। प्रजा सुरा है। सुरा को छान कर दूध छाना जाता है। अर्थात् प्रजा के बीच में से क्षत्र-बल पैदा किया जाता है। क्षत्र-बल प्रजा में से ही पैदा होता है।

(३) प्रजापतेर्वा एतदन्धसी यत् सोमश्च सुरा च। श० ५ । १ । २ । १०॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा । तै० १ । ३ । ३ । ४ ॥ यशो हि सुरा । श० १२ । ७ । ३ । १४ ॥ प्रजापालक प्रजापति के ही दो भोग्य ऐश्वर्य हैं सोम और सुरा। राजपद और प्रजागण। पुरुष सोम है। स्त्री सुरा है। यश, ऐश्वर्य सुरा है।

(४) 'सोमः'—स्वा वै मे एषा इति तस्मात् सोमो नाम। श० ३ । ६ । ४ । २२ ॥ राजा वै सोमः। श० १४ । १ । ३ । १२ ॥ सोमो राजा राजपतिः। तै० २ । ५ । ७।३ ॥ पुमान् वै सोमः स्त्री सुरा। तै० १।२।३।४॥ यह मेरी अपनी ही सम्पत्ति है ऐसा समझनेवाला स्वामी 'सोम' है। राजा सोम है। सोम राजाओं का भी स्वामी है। पुरुष सोम है, स्त्री सुरा है।

परीतो षिञ्चता सुतꣳ सोमो य उत्तमꣳ हविः।
दधन्वान् यो नर्यो अप्स्वन्तरा सुषाव सोममद्रिभिः ॥ २ ॥

भरद्वाज ऋषिः सोमो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(यः) जो (सोमः) ऐश्वर्यवान् (उत्तमं हविः) उत्तम आदान प्रतिदान योग्य अन्न, धन सम्पत्ति ज्ञान और बल को (दधन्वान्) धारण करता है और (यः नर्यः) जो पुरुषों का हितकारी होने से (अप्सु अन्तरा) आप्त जनों के बीच में (सुषाव) अभिषिक्त किया जाता है उस (सुतम् सोमम्) अभिषिक्त सोम, राजा को (अद्रिभिः) वज्रों, या शस्त्रास्त्र धारी पुरुषों द्वारा (इतः) अब से (परि षिञ्चत) सब प्रकार से सेचन करो, उसको आभूषित या सुशोभित करो, उसके बल की वृद्धि करो। परिषेको अलंक्रिया।

सोमरस के पक्ष में—जो उत्तम (हविः) अन्न के ग्राह्य अंश को धारण करता है (नर्यः) पुरुष देह को हितकारी है (अप्सु अन्तरा) जलों के बीच शीतल करके (सुषाव) जो आसव रूप से उत्पन्न किया जाता है उनको (परिषिः सिञ्चत) सब प्रकार सेवन करो।

वायोः पूतः पवित्रेण प्रत्यङ् सोमो अतिद्रुतः।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।
वायोः पूतः पवित्रेण प्राङ् सोमो अतिद्रुतः।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ ३॥

आभूतिर्ऋषिः। सोमो देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—(सोमः) सोम, ऐश्वर्यवान् राजा (प्रत्यङ्) पीछे से (वायोः) वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रु रूप वृक्ष के शाखा प्रशाखाओं और मूल को भी तोड़ देने में समर्थ सेनापति के (पवित्रेण) कण्टक शोधन करने वाले सेना-बल से (पूतः) शुद्ध, पवित्र, शत्रु रहित होकर (अतिद्रुतः) अत्यन्त अधिक वेग से आक्रमणकारी हो जाता है वह राजा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् सेनापति या राष्ट्र का भी (युज्यः) सदा साथ देने वाला (सखा) मित्र होता है। शत० १२।७।३।१०॥

इसी प्रकार (वायोः पवित्रेण पूतः) प्रचण्ड वायु के समान बलवान् पुरुष के शत्रु रूप कण्टकों से शोधन करने वाले बल से (पूतः) पवित्र या अभिषिक्त या शत्रु रहित होकर (सोमः) अभिषिक्त राजा (प्राङ् अतिद्रुतः) आगे की तरफ वेग से बढ़ता है वह (इन्द्रस्य युज्यः सखा) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र वासी प्रजा जन का सदा का साथी और मित्र हो जाता है।

पुनाति ते परिस्रुतꣳ सोमꣳ सूर्यस्य दुहिता।
वारेण शश्वता तना॥ ४॥

प्राङ्सोमो० 'प्रत्यङ्सोमो०' इति काण्व०।

सोमो देवता । आर्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राष्ट्रवासी जन ! (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य के समान तेजस्वी ज्ञानवान् पुरुष की (दुहिता) समस्त ज्ञानरस को दोहन करनेवाली, सर्व कार्यों को पूर्ण करने में समर्थ श्रद्धा, सत्य धारण ही (ते) तेरे (परिस्रुतम्) सब प्रकार से अभिषिक्त (सोमं) ऐश्वर्यवान् राजा को (शश्वता) अनादि नित्य के चले आये, (तना) विस्तृत, (वारेण) शत्रु के वारण करनेहारे मौल बल, या वरण करने योग्य ऐश्वर्य से (पुनाति) पवित्र, शुद्ध, या शत्रु रहित करती है । शत० १२।७।३।११ ॥

ओषधि पक्ष में—(सूर्यस्य दुहिता) उषा अपने सदातन, वरणीय प्रकाश से सोम ओषधि को पवित्र करती है । सोम के पक्ष में—सूर्य की पुत्री श्रद्धा वालों के बने कम्बल से परिस्रुत नाम सोम को स्वच्छ करती है ।

ब्रह्म॑ क्ष॒त्रं प॑वते॒ तेज॑ इन्द्रि॒यꣳ सुर॑या॒ सोम॑: सु॒त आसु॑तो॒ मदा॑य । शु॒क्रेण॑ देव दे॒वता॑: पिपृग्धि॒ रसे॒नान्नं॒ यज॑मानाय धेहि ॥ ५ ॥

निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(सुरया) सुख पूर्वक रमण करने योग्य ऐश्वरीय, राज्यलक्ष्मी या उत्तम प्रजा द्वारा (सुतः) अभिषिक्त किया और (मदाय) सब की आनन्द प्रसन्नता के लिये (आसुतः) प्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र अभिषिक्त हुआ (सोमः) सोम, ऐश्वर्यवान् पुरुष (ब्रह्म) ब्रह्म, ब्राह्मण वर्ग, (क्षत्रं) क्षत्रियगण को (पवते) पवित्र करता है और (तेजः) तेज, पराक्रम और (इन्द्रियम्) इन्द्रिय, राजोचित ऐश्वर्य को भी (पवते) उत्पन्न करता है । हे (देव) देव, दानशील राजन् ! तू (शुक्रेण) शुद्धि करनेवाले, अपने तेज से या सुवर्णादि द्रव्य से (देवताः) दानशील या विजिगीषु वीर पुरुषों और विद्वानों को (पिपृग्धि) पूर्ण कर, पालन कर । और (रसेन) रस, पुष्टि-

कारक अंश से युक्त (अन्नं) अन्न (यजमानाय) यजमान दानशील या अपने से संगत प्रजाजन के लिये (धेहि) सुरक्षित रख । शत०१२।७।३।१२॥

सोम-ओषधि पक्ष में—(सुरया सुतः आसुतः सोमः) सवन क्रिया से उत्पादित और सेवित सोम, ओषधियों का रस (तेजः इन्द्रियं ब्रह्म क्षत्रं च पवते) तेज, इन्द्रियों के सामर्थ्य, ब्रह्मज्ञान और बल को उत्पन्न करता है। अतः हे विद्वन् ! देव ! (शुक्रेण) तेजो वृद्धि करनेवाले (रसेन) रस से (देवताः) प्राणों की शक्ति को बढ़ा । (अन्नं यजमानाय धेहि) यजमान, उपासक जन को उत्तम अन्न प्रदान कर ।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति । उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे एष ते योनिस्तेजसे त्वा वीर्याय त्वा बलाय त्वा ॥ ६ ॥

भा०—(कुविदङ्ग०……०सुत्राम्णे) इस मन्त्र की व्याख्या देखो । अ० १० । ३२ ॥

(एष ते योनिः) हे राजन् ! तेरा यह योनि आश्रयस्थान या पद है । (त्वा) तुझको (वीर्याय) वीर्य सम्पादन, अधिकार प्राप्ति और (बलाय) बल वृद्धि के लिये नियुक्त करता हूं । शत० १२ । ७ । ३ । १३ ॥

नाना हि वां देवहितꣳ सदस्कृतं मा सꣳसृक्षाथां परमे व्योमन् । सुरा त्वमसि शुष्मिणी सोम एष मा मा हिꣳसीः स्वां योनिमाविशन्ती ॥ ७ ॥

भा०—हे सोम ! राजन् ! हे राज्यलक्ष्मि ! अथवा राष्ट्रप्रजे ! (वां) तुम दोनों के लिये (देवहितम्) विद्वानों द्वारा शास्त्र-

६—पयोग्रहाः ।

विहित (नाना) पृथक् २ (सदः कृतम्) स्थान बना दिया गया है। दोनों के अधिकार कर्त्तव्य पृथक् २ हैं। तुम दोनों (मा संसृक्षाथाम्) परस्पर संसर्ग मत करो। दोनों अपने २ विभागों को पृथक् २ रक्खो। हे प्रजे ! हे राज्यलक्ष्मि ! (त्वम् शुष्मिणी) तू बलशालिनी (सुरा) मदिरा के समान अति बलकारिणी, एवं 'सुरा' उत्तम ऐश्वर्य वाली या उत्तेजना देने वाली है और (एषः सोमः) यह 'सोम' सब राष्ट्र का प्रेरक है। तू (स्वाम् योनिम्) अपने आश्रयस्थान को (आविशन्ती) प्राप्त करती हुई (मा) मुझ राजा को (मा हिंसीः) मत मार। इसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (स्वां योनिम् आविशन् मा मा हिंसीः) अपने आश्रय को प्राप्त करके मुझ प्रजाजन का नाश मत कर। शत० १२। ७। ३। १४॥

उ॒प॒या॒मगृ॑हीतो॒ऽस्याश्वि॒नं तेजः॑ सारस्व॒तं वी॒र्य॒मैन्द्रं॒ बल॑म्। ए॒ष ते॒ योनि॒र्मोदा॑य त्वान॒न्दाय॑ त्वा॒ मह॑से त्वा॥ ८॥

पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे अधिकार पद योग्य पुरुष ! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र के नियन्ता राजा के विशेष धर्मों द्वारा बद्ध है। (आश्विनं तेजः) सूर्य चन्द्र, दिन रात्रि, स्त्री पुरुष, इन युगलों के समान राजा और प्रजा दोनों का सम्मिलित वीर्य है। (सारस्वतम् वीर्यम्) हे पुरुष ! सरस्वती, वेदवाणी अर्थात् समस्त ज्ञानी विद्वानों का संयुक्त बल है। हे पुरुष ! तू (इन्द्रं बलम्) शत्रु नाश करनेवाले इन्द्र, सेनापति का बल, सेनाबल है (एषः ते योनिः) तेरा यह आश्रय या अधिकारपद है। (त्वा) तुझ योग्य पुरुष को (मोदाय) राष्ट्र के हर्ष के लिये स्थापित करता हूं। (त्वा आनन्दाय) तुझको आनन्द प्राप्त करने के लिये नियुक्त करता हूं। (त्वा महसे) तुझको बड़े भारी ऐश्वर्य और मान, प्रतिष्ठा, आदर, सत्कार प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करता हूं।

तेजोऽसि तेजो मयि धेहि । वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि ।
बलमसि बलं मयि धेहि । ओजोऽस्योजो मयि धेहि ।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि । सहोऽसि सहो मयि धेहि ॥ ९ ॥

पयः सुरा च देवते । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (तेजः असि) तेज, तीक्ष्ण पराक्रम स्वरूप है । (मयि तेजः धेहि) मुझ प्रजाजन में भी तेज को धारण करा । तू (वीर्यम् असि) वीर्य. सब अंगों में स्फूर्ति, गति, चेष्टा उत्पन्न करनेवाला शरीर में वीर्य के समान सामर्थ्यवान् है । तू (मयि) मुझ में भी उस (वीर्यम्) वीर्य को (धेहि) धारण करा । (बलम् असि) तू बल अंगों में दृढ़ता उत्पन्न करनेवाला बलवान् है । (मयि) मुझ प्रजा जन में भी (बलं धेहि) उस बल, दृढ़ता को धारण करा । (ओजः असि) शरीर में जिस प्रकार ओज, अष्टम धातु, कान्ति उत्पन्न करनेवाला, मुख्य प्राण का उत्तम सामर्थ्य है उसी प्रकार के (ओजः) प्राण के उत्कृष्ट सामर्थ्य को (मयि धेहि) मुझ में धारण करा । (मन्युः असि) तू शत्रु या विपरीत बाधक पदार्थ को न सहन करनेवाला क्रोध रूप है उसी प्रकार के (मन्युं) शत्रुओं को स्तम्भन करने में समर्थ मन्यु को (मयि धेहि) मुझ में भी धारण करा । (सहः असिः) हे राजन् ! तू शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ शक्ति है । तू (सहः मयि धेहि) मुझ में भी शत्रु पराभव करने की शक्ति प्रदान कर । इसकी संगति देखो अथर्ववेद का० १९ । सू० ३१ । म० ११ ॥

परमात्मा और शरीर में आत्मा भी तेजः स्वरूप, वीर्यस्वरूप, बल-स्वरूप, ओजःस्वरूप, मन्युस्वरूप, और सहः स्वरूप हैं अतः हे परमेश्वर मुझ उपासक को तेज, वीर्य, बल, ओज, मन्यु और सहः का प्रदान करें ।

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति ।
श्येनं पतत्रिणꣳ सिꣳहꣳ सेमं पात्वꣳहसः ॥ १० ॥

हेमवर्चिर्ऋषिः । आर्ष्युष्णिक् । धैवतः ॥ विपूचिका स्तुतिः ॥

भा०—(या) जो (विसूचिका) विविध पदार्थों को सूचना देने वाली (व्याघ्रम्) व्याघ्र के समान शूरवीर, और (वृकं च) भेड़ियों के समान शत्रु पर साहस से जा पड़नेवाले अथवा व्याघ्र जिस प्रकार अपने आहार को सूंघ कर ही पता लगा लेता है उसी प्रकार सूक्ष्म २ लक्षण देखकर जो शत्रु का पता लगाले और वृक जिस प्रकार भेड़ आदि को बल पूर्वक हर लेता है उसी प्रकार जो शत्रु के राज्य को हर ले (उभौ) उन दोनों को जो (विषूचिका) विविध पदार्थों को सूचना करनेवाली संस्था (रक्षति) उनको शत्रु के पंजे में पड़ने से बचाती है इसी प्रकार जो विविध प्रकार की सूचना देनेवाली संस्था (श्येनम्) बाज के समान सहसा अपने शत्रु पर (पतत्रिणम्) सेना के दोनों पक्षों (wings) के साथ वेग से जा टूटने वाले विजयी को और (सिंहम्) सिंह के समान पराक्रमी शूरवीर पुरुष की (पाति) रक्षा करती है, उसको सब प्रकार से शत्रु की चालें बतलाकर उसको शत्रु के हाथों पड़ने से बचाती है (सा) वह (इमं) इस नये प्रतिष्ठित राजा को भी शत्रु की ओर से होने वाले (अंहसः) शत्रु वध आदि क्रूर कर्म से (पातु) बचावे । व्याघ्र, वृक, बाज़ पक्षी, और सिंह ये जीव दूर से ही अपने आहार आदि के विषय में जान लेते हैं उनकी जान लेने की प्राण शक्ति 'विपूचिका' है । इसी प्रकार सेनापति, राजा, पराक्रमी पुरुषों को भी अपने अधीन गुप्त, समाचार देनेवाली, जासूस संस्था को नियुक्त करना चाहिये जो शत्रु की सब चालों का पता दे । वही संस्था 'विसूचिका' कहाती है । इसका वर्णन अर्थ शास्त्र 'गुप्त प्रणिधिसंस्था' रूप में किया गया है । शत० १२ । ७ । ३ । २१ ॥

अध्यात्म में—विविध ज्ञानों को देनेवाले अन्न प्रज्ञा विविध पदार्थों के ज्ञाता 'व्याघ्र', कर्म फलों के आदाता 'वृक', तीक्ष्ण ज्ञानी श्येन, पतत्री

हंस आत्मा, दोषों के नाशक 'सिंह' रूप आत्मा की रक्षा करती है वही उसको पाप से बचावे।

यदा॑ पि॒पेष॑ मा॒तरं॑ पु॒त्रः प्रमु॑दितो॒ धय॑न्। ए॒तत्तद॑ग्ने अनृ॒णो भ॑वा॒म्यह॑तौ पि॒तरौ॒ मया॑। सम्पृच॑ स्थ॒ सं मा॑ भ॒द्रेण॑ पृङ्क्त वि॒पृच॑ स्थ॒ वि मा॑ पा॒प्मना॑ पृङ्क्त ॥ ११ ॥

अग्निर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जब (पुत्रः) पुत्र (प्रमुदितः) अत्यन्त हर्षित होकर (धयन्) स्तन्य पान करता हुआ (मातरं) अपनी माता को (आ पिपेष) गाढ़ आलिंगन करता या चिपटता है। (तत्) तब (एतत्) इस प्रकार से ही हे (अग्ने) अग्रणी, ज्ञानवान्, विद्वन्! मैं (अनृणः) माता पिताओं के ऋण से मुक्त (भवामि) हो जाता हूं और समझता हूं कि (मया) मुझ पुत्र ने गृहस्थ होकर जो माता पिता के ऋण को चुका दिया इससे (मया) मैंने (पितरौ) माता पिता को (अहतौ) पीड़ित न रखकर सुखी कर दिया। अर्थात् पुत्र रहित होना माता पिता को दुःखित रखना है। हे प्रेमी विद्वान् पुरुषो! आप लोग (संपृचः स्थ) मुझ से सत्संग करनेवाले हो, आप लोग (मां) मुझे (भद्रेण) सुखप्रद कल्याण कार्य से (सं पृङ्क्त) संयुक्त करो। हे विवेकी विद्वान् पुरुषो! आप लोग (विपृचः स्थ) विविध विषयों का ज्ञान करके और विवेक करनेवाले हो आप लोग (मा) मुझे (पाप्मना) पाप से (वि पृङ्क्त) विमुक्त रखो। शत० १२। ७। ३। २१-२२॥

राजा पक्ष में—(यद्) जब (पुत्रः) पुरुषों को त्राण करने में समर्थ पुरुष, वीर राजा (प्रमुदितः) अति हर्षित होकर (धयन्) माता या गाय के बछड़े के समान पृथ्वी के पुत्र के समान ही उसका पुत्र होकर उसके अन्नादि का पान करता हुआ (मातरं आपिपेष) माता के तुल्य

सब प्राणियों के उत्पादक पृथ्वी को मैं पैरों आदि से या सेना बल से लताड़ता भी हूं तो भी हे (अग्ने) परमेश्वर या विद्वन् ! राजन् ! (अहम् (अनृणोभवामि) मैं ऋण मुक्त ही होता हूं (मया|) मेरे द्वारा (पितरौ) माता पिता के समान पालक पुरुष सदा (अहतौ) कभी पीड़ित न हों, कष्ट न पावें ! हे (सम्पृचः) हे संपर्क करनेवाले पुरुषो ! आप लोग सदा मुझे (भद्रेण संपृंक्त) कल्याण फल से युक्त करो और हे (विपृचः) पाप से पृथक् रखनेवाले पुरुषो ! तुम लोग (मा पाप्मना विपृङ्क्त) मुझे पाप मार्ग से पृथक् रखो ।

देवा यज्ञमतन्वत भेषजं भिषजाश्विना ।
वाचा सरस्वती भिषगिन्द्रायेन्द्रियाणि दधतः ॥ १२ ॥

१२–३२ सोम सम्पत् । अनुष्टुभः । गांधारः ॥

भा०—(भिषजा) रोगों को चिकित्सा करने में कुशल (आश्विनौ) आयुर्वेद के विज्ञान में पारंगत औषधवित् और शल्य चिकित्सक दोनों और (सरस्वती) सरस्वती, वेदवाणी, या विद्वत्सभा जो (वाचा) वाणी के उपदेश द्वारा (भिषक्) अज्ञान दोषों को दूर करने में कुशल, और (देवाः) विद्वान् लोग (इन्द्राय) इन्द्र के निमित्त (इन्द्रियाणि) राजोचित ऐश्वर्यों और सामर्थ्यों को (दधतः) धारण कराते हुए (भेषजम्) रोग, निर्बलता को दूर करनेवाले (यज्ञम्) परस्पर संगति करनेवाले प्रजा पालन व्यवहार का यज्ञ के समान ही (अतन्वत) उपदेश करते हैं ।

दीक्षायै रूपꣳ शष्पाणि प्रायणीयस्य तोक्मानि ।
क्रयस्य रूपꣳ सोमस्य लाजाः सोमाꣳशवो मधु ॥ १३ ॥

१२—३२ देवायज्ञ मिति ब्राह्मणानुवाकः विंशतिरनुष्टुभः । सोम सम्पत् । इति सर्वानु० । अयंविंशतिकाण्डात्मको ब्रह्मणानुरूपोऽनुवाकः इति याज्ञिको ऽनन्तदेवः ॥

भा०—१. (शष्पाणि) शष्प-अर्थात् नये उगे धान्य, (दीक्षायै रूपम्) दीक्षा अर्थात् दीक्षणीयेष्टि के रूप हैं। यज्ञ में जिस प्रकार दीक्षणीयेष्टि है उसी प्रकार 'सौत्रामणी' में 'शष्प' नये हरे धान्य हैं। उत्तम रीति से पालन करनेवाले सुत्रामा नाम राजा प्रजापालनी वृत्ति में (शष्पाणि) शत्रुओं को हनन करने के साधन ही राष्ट्रपात की दीक्षा का रूप हैं।

'शष्पाणि'—शष्यते हन्यते इति तच्छष्पम्। बालतृणं कान्तिक्षयो वा इति दया० उणा० ॥ शष् हिंसार्थो भ्वादिः ॥ हिंसार्थस्य शसेर्वा स्तुत्यर्थस्य शंसेर्वा रूपम्।

२. (तोक्मानि प्रायणीयस्य रूपम्) तोक्म अर्थात् नये जौ यज्ञ में 'प्रायणीय' इष्टि के रूप हैं। राज्य पालन पक्ष में–(तोक्मानि) शत्रु के हनन करने या प्रजा के प्रसन्न करने के कार्य ही 'प्रायणीय' अर्थात् उत्कृष्ट पद का प्राप्ति का स्वरूप हैं।

'तोक्मानि'—तोकं तुद्यतेः। निरु० १०। १। ७॥ तोक्म, तुजे स्तुचेः, तवतेः तुद्यतेर्वा मनिनि ककारोन्त देशः। तुज हिंसायाम्। भ्वादिः। ष्च प्रसादे। भ्वादिः।

३. (लाजाः सोमस्य क्रयस्य रूपम्) लाजाएं सोम के क्रय के रूप हैं। अर्थात् (लाजाः) प्रफुल्लित व्रीहि या प्रसन्न प्रजाएं या समृद्ध विभूतियें ही सोम रूप राजा के राजपद के वेतन के स्वरूप हैं, 'लाजाः' दीप्त्यर्थस्य राजतेः। लत्वं छान्दसम्। आदित्यानां वा एतद्रूपं यल्लाजाः। तै० ३। ८। १४। ४॥ नक्षत्राणां वा एतद्रूपं यल्लाजाः। तै० १।३।२।१।४॥

४. (मधु सोमांशवः) मधु यज्ञ में सोम के अंशों के समान हैं। राजा के पक्ष में–(मधु) दुष्टों के धमन, या पीड़न करनेवाला सैनिक बल या प्रजा के तृप्तिकारक या हर्षकर, बलकारी अन्न, सोम नाम राजा के अंशु अर्थात् राष्ट्र में व्यापक बल के समान है।

एतद् वै प्रत्यक्षात् सोमरूपं यन्मधु । श० १२ । ८ । २ । १५ ॥
घर्मतेर्वा मधु । देवय० ।

आतिथ्यरूपं मासरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥ १४ ॥

भा०—५. (मासरम् आतिथ्यरूपं) मासर अर्थात् धान और सांवा चावल के भातों का और पूर्व कहे शष्प, तोक्म, लाज आदि पदार्थों का मिश्रित पदार्थ 'मासर' कहाता है । वह आतिथ्य इष्टि का रूप है । इसी प्रकार राष्ट्र पक्ष में-(मासरं आतिथ्यरूपम्) राष्ट्र के कार्यकर्त्ताओं को जो प्रतिमास वेतनादि रूप में दिया जाता है वह 'मासर' कहाता है । प्रतिमास का वेतन देना यज्ञ में 'आतिथ्य' इष्टि के समान है ।

'मासर'–मासं मासं रीयते दीयते यत् तत् मासरम् ।

६. (नग्नहुः महावीरस्य) नग्नहु, महावीर अर्थात् यज्ञ में घर्मेष्टि का रूप है । राष्ट्र पक्ष में-नग्न अर्थात् अकिंचन पुरुषों को अन्न वस्त्रादि प्रदान करना ही 'महावीर' बड़े वीर्यवान् त्यागी पुरुष का रूप है । यः नग्नान् जुहोत्यादत्ते इति नग्नहूः । इति दया० ।

७. (उपसदाम्) उपसद् इष्टियों का (एतत् रूपम्) यह रूप है जो (तिस्रः रात्रीः) तीन रातों तक (सुरा=सुता) सुरा, अन्नरस, सवन किया जाता है । राष्ट्र पक्ष में-(एतत्) यह (उपसदाम्) समीप विराजनेवाले अधिकारी पुरुषों और समस्त राष्ट्रगत अधिकारों का ही (रूपम्) उज्ज्वल स्वरूप है जो (तिस्रः) तीन (रात्रीः) रातों तक, तीन दिनों तक (सुरा) सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी का (सुता) राजा के निमित्त अभिषेक किया जाता है । अर्थात् इन तीन दिनों में ही समस्त राज्याधिकार राजा को सौंपे जाते हैं । अथवा (तिस्रः रात्रीः) तीन प्रकार की

राजपालक शक्तियों से (सुरा सुता) अभिषेक क्रिया का सम्पादन किया जाता है, यही उपसद अर्थात् समस्त अधिकारों का उत्तम स्वरूप है।

'उपसदः'—वज्रा वा उपसदः। श० १०। २। ५। २॥ जितयो वै नामैता यदुपसदः। ऐ० १। २४॥ इषुं वा एते देवाः समस्कुर्वत यदुपसदस्तस्य अग्निरनीकमासीत्, सोमः शल्यः, विष्णुस्तेजनः वरुणः पर्णानि। ऐ०। १। २५॥

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिस्रुत्परिषिच्यते।
अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳ सरस्वत्या॥ १५॥

८. (परिस्रुत् परिषिच्यते) जो परिस्रुत् का परिषेक किया जाता है। वह (क्रीतस्य सोमस्य रूपम्) कीने हुए सोम का रूप है। अर्थात् राष्ट्रपक्ष में—(परिस्रुत्) सब देशों से प्राप्त राज्यलक्ष्मी से जो अभिषेक किया जाता है वही राज्यलक्ष्मी द्वारा कीने गये, तदधीन हुए, या उससे प्राप्त सोम अर्थात् सर्वाज्ञापक राजा का उत्तम रूप है। देखो शोडषिग्रहप्रकरण शत० ५।१।२।१६॥

९. (अश्विभ्याम्) अश्वियों, स्त्री पुरुषों और (सरस्वत्या) सरस्वती, वेद के विद्वानों की बनी सभा द्वारा (इन्द्राय) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा के हित के लिये (भेषजम्) सब कष्टों का निवारण करनेवाला (ऐन्द्रं) इन्द्र का पद (दुग्धम्) सब प्रकार से पूर्ण किया जाता है।

आसन्दी रूपꣳ राजासन्द्यै वेद्यै कुम्भी सुराधानी।
अन्तरऽउत्तरवेद्या रूपं कारोतरो भिषक्॥ १६॥

१०. (आसन्दी) आसन्दी, यह पृथिवी ही (राजासन्द्यै रूपम्) राजा के बैठने के लिये आसन पीढ़ी का रूप है।

'आसन्दी'—इयं पृथिवी या आसन्दी अस्या हिं इदं सर्वमासन्नम्। श० ६। ७। १। १२॥

११. (सुराधानी कुम्भी वेद्यै रूपम्) सुरा अर्थात् राज्यलक्ष्मी को धारण

करने वाली (कुम्भी) घट के समान गोलाकार पात्र (वेद्यै) वेदी, पृथ्वी का ही उत्तम रूप है ।

१२. (अन्तरः उत्तरवेद्याः रूपम्) अन्तर लोक अर्थात् अन्तरिक्ष उत्तर वेदी का रूप है ।

१३. (कारोतरः भिषक्) कारोतर अर्थात् 'छनना' के समान सार और असार पदार्थों का विवेचन करनेवाला विवेकी पुरुष ही अच्छा (भिषक्) रोग और पीड़ाओं को दूर करने में समर्थ है । अतः छनना भिषक का प्रतिनिधि है ।

वेद्या वेदिः समाप्यते बर्हिषा बर्हिरिन्द्रियम् ।
यूपेन यूपऽआप्यते प्रणीतोऽअग्निरग्निना ॥ १७ ॥

१४. (वेद्या वेदिः समाप्यते) यज्ञ के वेदी से (वेदिः) यह समस्त पदार्थ के प्राप्त करानेवाली भूमि (सम् आप्यते) समान रूप से ली जाती है।

१५. (बर्हिषा) यज्ञवेदी में बिछे कुश से (बर्हिः इन्द्रियम्) महान् इन्द्र, राजा का ऐश्वर्य (समाप्यते) तुलना किया जाता है ।

१६. (यूपेन यूपः) यज्ञ के 'यूप' नामक स्तम्भ से (यूपः) सूर्य, वज्र, खड्ग या स्वयं राजा ही (आप्यते) ग्रहण किया जाता है ।

१७. (अग्निना अग्निः) यज्ञ में प्रदीप्त अग्नि से (अग्निः) अग्रणी अग्नि के समान तेजस्वी राजा को तुलना किया जाता है ।

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती ।
इन्द्रायैन्द्रꣳ सदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः ॥ १८ ॥

१८. राष्ट्र के (अश्विनौ) स्त्री पुरुष गण (हविर्धानम्) अन्नों के रखने वाले यज्ञ में ग्राह्य हविष्य पदार्थों के रखने वाले शकट के समान है ।

१९. (यत् सरस्वती) जो सरस्वती, विज्ञान का उपदेश करने का कार्य है वह यज्ञ में (आग्नीध्रम्) अग्नीध् नामक ऋत्विक् के स्थान या आसन के समान है ।

२०. (इन्द्राय) इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (ऐन्द्रं) जो इन्द्रोचिति ऐश्वर्य (कृतम्) किया जाता है वह यज्ञ में (ऐन्द्रं सदः) ऐन्द्र सदस् के समान है।

२१. इसी प्रकार—(ऐन्द्रं पत्नीशालम्) पालन करने वाली राजा की राजसभा का भवन यज्ञ में पत्नीशाला के समान है।

२२. (ऐन्द्रं गार्हपत्यः) राजा का राज्य में गृहपति के समान रहना ही (गार्हपत्यः) यज्ञ में 'गार्हपत्य' अग्नि स्थापन के समान है।

प्रैषेभिः प्रैषानाप्नोत्याप्रीभिराप्रीर्यज्ञस्य।
प्रयाजेभिरनुयाजान्वषट्कारेभिराहुतीः॥ १९॥

२३. (प्रैषेभिः) उत्तम आज्ञा-कर्मों द्वारा (प्रैषान्) भृत्यों को (आप्नोति) प्राप्त करता है। अथवा (यज्ञस्य प्रैषैः) यज्ञ के 'प्रैष' कर्मों से (प्रेषान्) राष्ट्र के कार्यों में प्रेरित भृत्यों के प्रति की गयी आज्ञाओं की तुलना की जाती है।

२४. (यज्ञस्य आप्रीभिः) यज्ञ की 'आप्री' ऋचाओं से राष्ट्र की (आप्रीः) सब को प्रसन्न रखने वाली वेतनादान, पारितोषिक आदि क्रियाओं की तुलना की जाती है।

२५. (प्रयाजेभिः [प्रयाजान्]) यज्ञ के प्रयाजों द्वारा राष्ट्र के प्रयाज अर्थात् उत्तम २ अधिकार स्थानों से बड़े २ दानों की तुलना की जाती है।

२६. ([अनुयाजेभिः] अनुयाजान्) यज्ञ के 'अनुयाजों' द्वारा राष्ट्र के अनुयाज अर्थात् अनुकूल या तदधीन पुरुषों के प्रति अधिकार ऐश्वर्य प्रदान के कार्यों की तुलना की जाती है।

२७. (वषट्कारेभिः [वषट्कारान्]) यज्ञ के वषट्कार अर्थात् स्वाहाकारों से राष्ट्र के वषट्कारों अर्थात् योग्य पुरुषों को योग्य अधिकार दानों से तुलना की जाती है।

पशुभिः पशूनाप्नोति पुरोडाशैर्हवीᳪष्या ।
छन्दोभिः सामिधेनीर्याज्याभिर्वषट्कारान् ॥ २० ॥

२८. (पशुभिः पशून् आप्नोति) यज्ञगत पशुओं द्वारा राष्ट्र के पशुओं की तुलना है ।

२९. (पुरोडाशैः हवींषि) यज्ञ के पुरोडाशों से राष्ट्र के अन्न आदि भोग्य पदार्थों की तुलना है ।

३०. (छन्दोभिः [छन्दांसि]) यज्ञ में मन्त्ररूप छन्दों से राष्ट्र में नाना अधिकार और व्यवहारों की तुलना है ।

३१. ([सामिधेनीभिः] सामिधेनीः) यज्ञ में समिधा आधान की ऋचाओं द्वारा सामिधेनी अर्थात् राष्ट्र में सेना के विशेष अधिकार और सेनाबलों की तुलना है ।

३२. (याज्याभिः [याज्याः]) यज्ञ की याज्या ऋचाओं से राष्ट्र की याज्या अर्थात् भूमि, अन्न और धन के दानों की तुलना है ।

वज्रो वै सामिधेन्यः । कौ० ३ । २, ३ ॥

३३. ([वषट्कारैः] वषट्कारान्) यज्ञ के वषट्कारों से राष्ट्र में योग्य पुरुषों को योग्य अधिकार दानों की तुलना है ।

'याज्याः'—इयं पृथिवी याज्या । श० १ । ७ । २ । ११ ॥ अन्नं वै याज्या । कौ० १४ । ३ ॥ प्रत्तिर्वै याज्या पुण्यैव लक्ष्मीः । ऐ० २ । ४० ॥

धानाः करम्भः सक्तवः परीवापः पयो दधि ।
सोमस्य रूपᳪं हविषऽआमिक्षा वाजिनम्मधु ॥ २१ ॥

भा०—यज्ञमें (धानाः) भुने धान, खीलें, (करम्भः) भात की लप्सी, (सक्तवः) सत्तु, (परीवापः) हविष्य, (पयः) दूध (दधि) दही, (आमिक्षा) गरम दूध में खट्टा डालने से फटे दूध के स्थूल भाग आमिक्षा और (वाजिनम्) जल भाग 'वाजिन' और (मधु)

मधुर मधु, ये सब पदार्थ (सोमस्य) सोमरूप (हविषः) अन्न हवि का (रूपम्) रूप हैं । उसी प्रकार राष्ट्र में भी (धानाः) धारण पोषण करने वाली गौएं, (करम्भः) राज्य के कार्य करने वाले कर्मचारीगण, (सक्तवः) समूह या संघ में एकत्र प्रजागण, (परीवापः) पृथ्वी पर सर्वत्र अन्नादि बीजों का आवपन और शत्रुकानाशन, (पयः) पुष्टिकारी पदार्थों का संग्रह, (दधि) धारण पोषण के उपाय, (आमिक्षा) राजा और प्रजा के अधिकारियों का सम्मिलित गण, (वाजिनम्) पशु समृद्धि और (मधु) अन्न समृद्धि, ये सब (हविषः) ग्रहण करने योग्य (सोमस्य) राष्ट्र और राजा का (रूपं) उज्ज्वल रूप हैं ।

धानानाᳬं रूपं कुवलं परीवापस्य गोधूमाः ।
सक्तूनाᳬं रूपं बदरमुपवाकाः करम्भस्य ॥ २२ ॥

भा०—(धानानां रूपं कुवलम्) धाना, लाजाओं का रूप 'कुवल' अर्थात् कोमल 'बेर' का फल है । अर्थात् जिस प्रकार कोमल बेर को बकरी आदि पशु अनायास गुठली सहित खा जाते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के पोषणकारी गौ आदि पशु भी अनायास दूसरों के वश हो जाते हैं । (गोधूमाः परीवापस्य रूपम्) गोधूम, गेहूँ परिवाप का उत्तम रूप है । अर्थात् गेहूँ अन्न कृषि का उत्तम फल है ।

(सक्तूनां रूपं बदरम्) सक्तुओं का 'बदर' उत्तम रूप है । अर्थात् राष्ट्र में संघ बनाकर रहना शत्रु के लिये 'बेर' के समान होना है अर्थात् जैसे बेर कांटें खाकर प्राप्त होता है उसी प्रकार संघ में रहने से शत्रु को बड़ा कष्ट होता है ।

(उपवाकाः करम्भस्य रूपम्) करम्भ दही से मिले सत्तू का रूप उपवाक अर्थात् 'यव' है । करम्भ अर्थात् वीर्य से युक्त प्रजागण (उप-

वाकाः=उपपाकाः) शत्रु के समीप आने पर उसके दग्ध करने में समर्थ होते हैं ।

पय॑सो रू॒पं यद्यवा॑ द॒ध्नो रू॒पं क॒र्कन्धू॑नि ।
सोम॑स्य रू॒पं वा॒जिन॑ꣳ सौ॒म्यस्य॑ रू॒पमा॒मिक्षा॑ ॥ २३ ॥

भा०—(पयसः रूपं यद्यवाः) जो पयस् अर्थात् दूध के रूप हैं । अर्थात् दूध जिस प्रकार शरीर को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार यव अन्न राष्ट्र की प्रजा को पुष्ट करता है । और जिस प्रकार (पयः) पुष्टिकारक वीर्य शरीर का पोषक है उसी प्रकार (यवाः) शत्रुओं को दूर करने में समर्थ सैनिक वीरजन राष्ट्र को पुष्ट करते हैं ।

(दध्नः रूपं कर्कन्धूनि) दधि का रूप 'कर्कन्धू' अर्थात् पके बेरी के फल के समान है । दही जिस प्रकार वीर्य उत्पन्न करती है इसी प्रकार पके बेर भी बल उत्पन्न करते और स्वाद में खट्टे होते हैं । (दध्नः) राष्ट्र में धारण समर्थ बलका स्वरूप (कर्कन्धूनि) कांटेदार बेरी की झाड़ियों के समान हैं । वे जिस प्रकार बाड़ के रूप में रहकर पशुओं से कोमल विटपों को खाये जाने से बचाते हैं उसी प्रकार कांटों के समान पीड़ाकारी हिंसाजनक शस्त्रों को धारण करने वाले वीर सैनिकबल राज्य के (दधि) धारण-कारी बलका स्वरूप हैं ।

'कर्कन्धू'—कर्क कण्टकं दधाति इति कर्कन्धूः । इति दया० उणा० । अथवा कर्कान् कण्टकरूपान् शत्रून् धुन्वते इति कर्कन्धूनि सेनाबलानि ।

(सोमस्य रूपं वाजिनम्) सोम का रूप 'वाजिन' है । सोम का रूप 'वाजिन' के समान है । 'सोम' अर्थात् राजा का रूप 'वाजिन' वाज अर्थात् अन्न और बल और संग्राम बल का स्वामी होता है । (सोमस्य रूपम् आमिक्षा) सोम राजा के राजत्व का रूप 'आमिक्षा' है । 'आमिक्षा' अर्थात् प्रजा पर सब सुखों का वर्षण करना अथवा सब ओर से राज्य के मुख्य पद पर

अभिषेक क्रिया होना अथवा सब ओर से दुष्ट पुरुषों का नाश करना है।

'आमिक्षा'—समन्तात् मेषति हिनस्ति इत्यामिक्षा। दया० उणा०। मेहति सिञ्चति वा सा आमिक्षा।

आ श्रा॑वयेति॑ स्तो॒त्रियाः॑ प्रत्याश्रा॒वोऽअनु॑रूपः।
यजेति॑ धाय्यारू॒पं प्र॑गा॒था ये॑यजाम॒हाः॥ २४॥

भा०—('आश्रावय' इति स्तोत्रियाः) 'आश्रावय' इस प्रकार कहना यज्ञ में स्तोत्रिय अर्थात् प्रथम तीन ऋचा के पाठ के समान हैं।

राष्ट्रपक्ष में—(स्तोत्रियाः) विद्वान्, सत्यासत्य विद्याओं के योग्य विद्यार्थीगण (आश्रावय) सब प्रकार की विद्याओं को 'हे गुरो श्रवण कराओ' (इति) इस प्रकार विनय से प्रार्थना करें।

(प्रत्याश्रावो अनुरूपः) यज्ञ में प्रत्याश्राव 'अस्तु श्रौषट्' इस प्रकार कहना अनुरूप अर्थात् अन्त की तीन ऋचाओं के पाठ करने के समान है।

राष्ट्रपक्ष में—(प्रत्याश्रावः) विद्यार्थियों के प्रति विद्याओं का उपदेश करना (अनुरूपः) उनके योग्यता के अनुरूप होना चाहिये।

(यज इति धाय्यारूपम्) 'यज' इस प्रकार कहना 'धाय्या' नाम ऋचा के पठन के समान है।

राष्ट्रपक्ष में—(यज इति) 'प्रदान कर' इस प्रकार आदर से कहना (धाय्या रूपम्) धारण या ग्रहण करने योग्य पदार्थ का उत्तम रूप है। अर्थात् दानरूप में लेने के लिये दाता को (यज) प्रदान कर (इति) ऐसा कहे।

(प्रगाथाः ये यजामहाः) 'ये यजामहे' इत्यादि शब्द प्रगाथा ऋचाओं का पाठ करने के समान हैं।

राष्ट्रपक्ष में—(ये) जो हम लोग (यजामहाः) यज्ञ दान आदि

करते हैं, इस प्रकार श्रेष्ठाचारवान् हैं वे (प्रगाथाः) उत्तमरूप से स्तुति करने योग्य हैं।

अर्धऽऋचैरुक्थानांᳪरूपं पदैराप्नोति निविदः।
प्रणवैः शस्त्राणांᳪरूपं पयसा सोमऽआप्यते॥ २५॥

भा०—(अर्ध ऋचैः उक्थानां रूपं आप्नोति) अर्ध ऋचाओं द्वारा उक्थ नाम स्तोत्रों का रूप प्राप्त करता है।

राष्ट्रपक्ष में—समृद्ध स्तुतिवचनों से (उक्थानाम्) विशेष स्तुतियों का स्वरूप प्राप्त होता है।

(पदैः निविदः आप्नोति) पदों द्वारा 'निविद्' नाम ऋचाओं का ग्रहण करता है।

राष्ट्रपक्ष में—(पदैः) अधिकारों या अधिकार सूचक पद के द्वारा (निविदः) निखिल पदार्थों को प्राप्त करनेवाले ज्ञानवान् पुरुषों को प्राप्त करता है।

(प्रणवैः शस्त्राणां रूपम् आप्नोति) यज्ञ में प्रणव अर्थात् ओंकारों द्वारा शस्त्रों अर्थात् स्तुतियुक्त मन्त्रों का स्वरूप प्राप्त करता है।

राष्ट्रपक्ष में—(प्रणवैः) उत्कृष्ट नवयुवकों द्वारा (शस्त्राणां) शस्त्रधारी पुरुषों का उत्तम स्वरूप प्राप्त करता है।

(पयसा सोमः आप्यते) 'पयस्' अर्थात् दुग्ध से यज्ञ में सोमलता के रस का रूप प्राप्त किया जाता है।

राष्ट्रपक्ष में—पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थ से ही (सोमः) समस्त राज्य का सार या राजा का पद प्राप्त किया जाता है।

अश्विभ्यां प्रातःसवनमिन्द्रेणैन्द्रं माध्यन्दिनम्।
वैश्वदेवᳪसरस्वत्या तृतीयमाप्तᳪसवनम्॥ २६॥

भा०—(अश्विभ्यां) अश्वियों से (प्रातःसवनम् आप्तम्) प्रातः सवन की तुलना की आती है।

(इन्द्रेण) इन्द्र ग्रह से (ऐन्द्रं माध्यंदिनम्) इन्द्र देवताक माध्यंदि सवन की तुलना की है ।

(सरस्वत्या) सरस्वती द्वारा (तृतीयम्) तीसरे (वैश्वदेवं सवनम् आप्तम्) विश्वेदेव सम्बन्धी सवन की तुलना की गई है ।

राष्ट्रपक्ष में—'अश्वि' नामक पदाधिकारियों का स्थापन राष्ट्र के प्रातः सवन प्रातःकालिक आह्निक कृत्य के समान है । इन्द्र पदाधिकारी का स्थापन माध्यंदिन सवन अर्थात् मध्याह्नकाल के कृत्य के समान है। सरस्वती, वेदवाणी का प्रसार (वैश्वदेवं) समस्त प्रजाओं के हितकारी सायंसवन के समान है । अर्थात् प्रातः समय जिस प्रकार सूर्य और चन्द्र दोनों विद्यमान होते हैं, उसी प्रकार राष्ट्र के दो वीर रक्षक राजा और अमात्य हैं । मध्याह्न में जिस प्रकार प्रखर सूर्य है उसी प्रकार राष्ट् के बीच प्रचण्ड सेनापति है । सायंकाल रात्रि के समय जिस प्रकार सब दीप्तिमान नक्षत्र हैं उसी प्रकार ज्ञान से उज्ज्वल समस्त विद्वान्‌गण हैं ।

वा॒य॒व्यै᳕र्वा॑य॒व्या᳖न्याप्नोति॒ सते॑न द्रोणकल॒शम् ।
कु॒म्भीभ्या॑मम्भृ॒णौ सु॒ते स्था॒लीभि॒ स्था॒लीरा॑प्नोति ॥ २७ ॥

भा०—(वायव्यैः वायव्यानि आप्नोति) सोम और सौत्रामणी दोनों यज्ञों में वायव्य नामक पात्रों से वायव्यों की तुलना करे ।

(सतेन द्रोणकलशम् आप्नोति) वेत के बने पात्र से सोमयाग के द्रोणकलश की तुलना होती है ।

(सुते कुम्भीभ्यां अम्भृणौ) सोम सवन होजाने पर दो कुम्भियों से अम्भृण नाम पात्रों की तुलना होती है ।

(स्थालीभिः स्थालीः आप्नोति) स्थाली पात्रों से स्थालीपात्रों की तुलना होती है ।

राष्ट्रपक्ष में—वायु के समान तीव्र वेगवान् सैनिकों द्वारा उनके योग्य वेग के कार्यों को प्राप्त करता है।

(सतेन) सम्भाग करने हारे व्यवहार से (द्रोणकलशम्) राष्ट्र को प्राप्त करता है।

(सुते) राज्याभिषेक होजाने पर जलाधार और धान्याधार दोनों प्रकार के (कुम्भीभ्याम्) पात्रों से (अम्भृणौ) प्रजाका पालन पोषण करता है।

(स्थालीभिः) स्थापन क्रियाओं से राष्ट्र के व्यवस्थापक शक्तियों को प्राप्त करता है।

यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहा ग्रहै स्तोमाश्च विष्टुतीः।
छन्दोभिरुक्था शस्त्राणि साम्नावभृथ आप्यते ॥ २८ ॥

भा०—(यजुर्भिः [यजूंषि] आप्यन्ते) यजुओं से यजुओं की तुलना की जाती हैं (ग्रहा ग्रहैः) ग्रहों से ग्रहों की, (स्तोमाः [स्तोमैः]) स्तोमों से स्तोमों की और ([विष्टुतिभिः] च विष्टुतीः) विविध स्तुतियों से विविध स्तुतियों की, और (छन्दोभिः छन्दांसि) छन्दों से छन्दों की (उक्थशस्त्रैः उक्थशस्त्राणि) उक्थ शस्त्रों से उक्थ शस्त्रों की, (साम्ना साम, अवभृथेन अवभृथः) साम गायन से साम गान की और अवभृथ से अवभृथ स्नान की तुलना की जाती है।

राष्ट्रपक्ष में—जैसे यज्ञ में यजुर्वाक्य हैं उसी प्रकार राष्ट्र में (यजुः) व्यवस्थाकारक आज्ञाएं और नियम है। यज्ञ में जैसे 'ग्रह' होम हैं वैसे राष्ट्र में (ग्रहाः) अंग प्रत्यंग, अधिकार विभाग हैं। जैसे यज्ञ में 'स्तोम' हैं उसी प्रकार राष्ट्र में, स्तुति योग्य अधिकार पद हैं। जैसे यज्ञ में 'विष्टुति' नाम ऋचाएं हैं उसी प्रकार राष्ट्र में आदर योग्य पुरुषों की विशेष स्तुतियां हैं।

जैसे यज्ञ में छन्द हैं वैसे राष्ट्र में यथाशक्ति अधिकार कार्य

विभाग हैं। जैसे यज्ञ में 'उक्थशस्त्र' है वैसे राष्ट्र में वीर्यानुसार शस्त्र धारण हैं। जैसे यज्ञ में 'साम' हैं राष्ट्र में सामादि उपाय हैं। जैसे यज्ञ में 'अवभृथस्थान' है वैसे राष्ट्र में अधीनों के भरण पोषण का कर्त्तव्य है।

इडाभिर्भक्षानाप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः।
शंयुना पत्नीसंयाजान्त्समिष्टयजुषा स॒ꣳस्थाम् ॥ २९ ॥

भा०—(इडाभिः इडाम्) इडाओं से इडाओं को (भक्षैः भक्षान् आप्नोति) भक्षों से भक्षों को, (सूक्तवाकेन सूक्तवाकम्) सूक्तवाक से सूक्तवाक को, (आशीर्भिः आशिषः) आशीर्वादों से आशीर्वादों को (शंयुना शंयुम्) शंयु से शंयु को, (पत्नीसंयाजान् पत्नीसंयाजैः) पत्न संयाजों से पत्नीसंयाजों को (समिष्टयजुषा समिष्टयजुः) समिष्ट यजु से समिष्ट यजु को और (संस्थया संस्थाम्) संस्था से संस्था को (आप्नोति) प्राप्त करता है। अर्थात् सोमयाग के इडादि विभागों से सौत्रामणी के इडादि विभागों की तुलना करता है।

राष्ट्र में—जैसे यज्ञ में 'इडा' है उसी प्रकार राष्ट्र में इडा, अन्न समृद्धियां और पृथिवियें हैं। यज्ञ में जैसे 'सोमभक्ष' हैं उसी प्रकार इधर नाना भोग्य फल हैं। यज्ञ में 'सूक्तवाक' है, राष्ट्र में उत्तम वचन प्रयोग हैं। यज्ञ में आशीर्वाद, राष्ट्र में, आशीर्वादों के समान हैं, यज्ञ में 'शंयु' अर्थात् शांति वाचन है, राष्ट्र कार्यों में भी शांतिकर्म हैं। यज्ञ में पत्नीसंयाज है, राष्ट्र में पालनशक्ति से समस्त प्रजाओं को सुखप्रदान रूप कर्म हैं। यज्ञ में 'समिष्ट यजु' है राष्ट्र में समस्त विद्वानों और शासकों को परस्पर सुसंगत कर उनको योग्य वेतन आदि देना 'समिष्टयजु' है। यज्ञ में 'संस्था' है। राष्ट्र में राजसभा आदि 'संस्था' या व्यवस्था है।

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥ ३० ॥

भा०—(व्रतेन) सत्यभाषण, ब्रह्मचर्यादि नियम पालन से (दीक्षाम् आप्नोति) पुरुष दीक्षा को प्राप्त करता है । (दीक्षया) दीक्षा से (दक्षिणाम् आप्नोति) दक्षिणा, प्रतिष्ठा और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है । (दक्षिणा) प्रतिष्ठा से या शक्ति से (श्रद्धाम्) श्रद्धा, सत्य धारण करने की इच्छा को प्राप्त होता है । (श्रद्धया सत्यम् आप्यते) श्रद्धा, से सत्य ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा से सत्य प्राप्त किया जाता है ।

एतावद्रूपं यज्ञस्य यद् देवैर्ब्रह्मणा कृतम् ।
तदेतत्सर्वमाप्नोति यज्ञे सौत्रामणी सुते ॥ २१ ॥

भा०—(देवैः) विद्वान् पुरुषों और (ब्रह्मणा) चारों वेदों ने (यज्ञस्य) यज्ञ कर्म का और राष्ट्र प्रजापालन रूप यज्ञ का और अध्ययनाध्यापन यज्ञ का भी (एतावद् रूपम्) इतना पूर्वोक्त क्रिया और इष्टियों सहित उज्ज्वल, एवं उत्तम स्वरूप (यत्) जो (कृतम्) वर्णन किया है (तत्) वह सब (सौत्रामणी यज्ञे सुते) सौत्रामणी नाम यज्ञ में अभिषवन करने पर भी (तत् एतत् सर्वम्) वह सब यज्ञ का स्वरूप (आप्नोति) प्राप्त होता है ।

(सौत्रामणी यज्ञे सुते) 'सुत्रामा' उत्तम रीति से त्राण, पालन करने वाले राजा के राष्ट्र पालन के निमित्त अभिषेक करने में भी यज्ञ का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध होता है । इसी प्रकार स्वाध्याय यज्ञ में सौत्रामणी यज्ञ अर्थात् यज्ञोपवीत आदि सूत्र जिस क्रिया में मणि, ग्रन्थि आदि रूप से धारण किये जांय वह गुरु द्वारा किये शिष्योपनयन, वेदारम्भ, अध्ययन, अध्यापन आदि कार्य भी सौत्रामणी यज्ञ हैं । उनमें शिष्य रूप सोम ज्ञान रूप अमृत या सुरा का पान करता है ।

सूत्राणि यज्ञोपवीतादीनि मणिना ग्रन्थिना युक्तानि ध्रियन्ते यस्मिन् इति सौत्रामणी । इति दयानन्दः ॥

सुरावन्तं बर्हिषदꣳ सुवीरं यज्ञꣳ हिन्वन्ति महिषा नमोभिः ।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥ ३२ ॥

अश्विनौ सरस्वती इन्द्रश्च देवताः । त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—(महिषाः) महान् पूजनीय पुरुष (सुरावन्तं) राज्यलक्ष्मी से युक्त (बर्हिषदम्) आकाश में सूर्य के समान वृद्धिकर, पूजनीय आसन और प्रजागण के ऊपर अधिष्ठाता रूप से विराजमान, (सुवीरम्) उत्तम प्राणों से युक्त, आत्मा के समान उत्तम वीर पुरुषों से युक्त (यज्ञम्) सब के पूजनीय, सबको सुव्यवस्थित, सुसंगत करने में कुशल, प्रजापति राजा को (नमोभिः) नमस्कार युक्त आदर वचनों और शत्रुओं को नमाने में समर्थ शस्त्र बलों, वीर्यों से (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं । और हम (देवतासु) विद्वान् पुरुषों के समूहों में, विद्वत्सभाओं में और (दिवि) राजसभा में (सोमं) सब के प्रेरक और (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा को (दिवि) आकाश में सूर्य के समान सर्वप्रकाशक, सर्वोपरि मार्गदर्शक के रूप में (दधानाः) धारण करते हुए (स्वर्काः) उत्तम अर्चना योग्य ज्ञान और अन्नादि पदार्थों सहित (यजमानाः) उसकी सत्संगति लाभ कर और परस्पर सम्मिलित होकर हम (मदेम) स्वयं आनन्द लाभ करें । और उस राजा को भी (मदेम) तृप्त, प्रसन्न संतुष्ट करें । शत० १२।८।१।१॥

यस्ते रसः सम्भृतऽओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य ।
तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥ ३३ ॥

अश्व्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! (सुरया सुतस्य) उत्तम रूप से दान देने योग्य या उपभोग या रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी से अभिषिक्त हुए (सोमस्य) सब के प्रेरक (ते) तुझ राजा का (यः) जो (रसः) रस, बल,

---

३३—'०मश्विना इन्द्र' इति काण्व० ।

(ओषधिषु) रोग निवारक ओषधियों, रसवती, स्वतः शत्रुदाहक वीर्य को धारण करने वाली सेनाओं और प्रजाओं में (सम्भृतः) एकत्र संगृहीत है (तेन) उस (मदेन) हर्षकारी बल से (यजमानं) दानशील प्रजाजन को, (सरस्वतीम्) ज्ञानवती विद्वत्सभा को और (अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री पुरुषों को दो मुख्य अधिकारी राजा रानी या और राजा मन्त्री दोनों को और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक सेनापति और (अग्निम्) ज्ञानवान् आचार्य एवं अग्रणी पुरुष को (जिन्व) तृप्त कर। अर्थात् प्रजाओं के धन से राजा वैश्यों को, विद्वानों को, प्रजा के स्त्री पुरुषों और सेनापति आदि को पालन करे। शत० १२। ८। १४॥

यम॒श्विना॒ नमु॑चेरासु॒राद॑धि॒ सर॑स्वत्य॒सु॑नोदिन्द्रि॒याय॑।
इ॒मंतꣳ शु॒क्रं मधु॑मन्त॒मिन्दु॒ꣳ सोम॒ꣳ राजा॑नमि॒ह भ॑क्षयामि ॥३४॥

अश्वादयो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री और पुरुष अथवा सूर्य और चन्द्र के समान तापकारी और सौम्यस्वभाव के सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष नाम दो अधिकारी और (सरस्वती) वेद वाणी के विज्ञ विद्वानों की सभा (नमुचेः) कर आदि न देने वाले या दुर्भिक्षकालिक मेघ के समान प्रजा के निमित्त कुछ भी सुख और राष्ट्र भोग को प्रदान न करने वाले (आसुरात्) असुर, दुष्ट स्वभाव के राजा से (अधि) अधिक बलवान् (यम्) जिस बलवान् पुरुष को (असुनोत्) अभिषिक्त करती है, राज्यपद पर बैठाती है (तं) उस (इमम्) इस प्रत्यक्ष (शुक्रं) बलवान् तेजस्वी, (मधुमन्तम्) अन्नादि ऐश्वर्य और शत्रुपीड़नकारी बल से युक्त, (इन्दुम्) ऐश्वर्यकारी या दुखी प्रजा के प्रति दयार्द्र (सोमम्) सबको सन्मार्ग में प्रेरणा करने में समर्थ पुरुष को, (राजानम्) राजा रूप से (इह) इस राष्ट्र में (भक्षयामि) ऐश्वर्य के भोग का अधिकार

प्रदान करता हूं। अथवा उस राजा के होने का सुख समस्त प्रजाजन को भोग कराता हूं, अथवा मैं प्रजाजन उस पुरुष को राजा (भक्षयामि) भोग करता हूं, उसको स्वीकार करता हूं। शत० १२। ८। १। ३॥

यह राजा का भोग करना ऐसा ही समझना चाहिये जैसे ग्रहों का राशि भोग, अथवा किसी के 'स्वास्थ्य का पान' करना व्यवहार में प्रचलित है।

यदत्र रिप्तꣳ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रोऽअपिबच्छचीभिः। अहं तदस्य मनसा शिवेन सोमꣳ राजानमिह भक्षयामि॥ ३५॥

ऋष्यादि पूर्ववत्॥

भा०—(अत्र) इस राष्ट्र में (रसिनः) बलवान् (सुतस्य) अभिषिक्त राजा के (यत्) जिस (रिप्तम्) क्रूर कर्म को (इन्द्रः) शत्रु-नाशक सेनापति ने (शचीभिः) अपनी शक्तिवाली सेनाओं द्वारा (अपिबत्) स्वयं ग्रहण किया है (अहम्) मैं प्रजाजन, एवं राष्ट्र के शासक वर्ग सब (तत्) उसको (शिवेन मनसा) कल्याणमय शुभ चित्त से (अस्य) इस राष्ट्र के (राजानं सोमम्) सर्वशासक, ऐश्वर्यवान् राज्य के रूप में (भक्षयामि) भोग करता हूं। अथवा—जो राष्ट्र का भाग प्रथम विजय के समय सेनापति के अधीन था जो पहले ऐश्वर्यांश सेना पर व्यय हो रहा था अब उसको विजय और अभिषेक के अनन्तर राजा को भोगने के लिये प्रदान करता हूं। शत० १२। ८। १। ५॥

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः। पितरः शुन्धध्वम्॥ ३६॥

पितरो देवताः। निचृदादि त्रिष्टुप्। मध्यमः।

भा०—(स्वधायिभ्यः) स्वधा, अन्न, जल या शरीर के पोषण योग्य वेतन स्वीकार करनेवाले (पितृभ्यः) राष्ट्र और प्रजा के पालक पुरुषों का (स्वधा नमः) अन्न जल एवं योग्य वेतन द्वारा आदर सत्कार और अधिकार दान किया जाय। इसी प्रकार (पितामहेभ्यः) उक्त पालकों के भी पालकों को और (प्रपितामहेभ्यः) उनसे भी ऊँचे पद पर विराजमान उनके भी पालक, शासक उन पुरुषों का जो (स्वधायिभ्यः) अन्न, वेतनादि को ग्रहण करनेवाले हैं (स्वधा नमः) अन्नादि वेतनों द्वारा सत्कार किया जाय। राष्ट्र के शासकों में क्रम से तीन श्रेणियां हों। जो क्रम से एक दूसरे के ऊपर उत्तरोत्तर अपना अधिकार रक्खें।

(पितरः) पालक पुरुष (अक्षन्) यह स्वीकार करें। (पितरः अमीमदन्त) पालक लोग तृप्त सन्तुष्ट होकर रहें। (पितरः अतीतृपन्त) पालक जन प्रसन्न होकर रहें। हे (पितरः) पालकपुरुषो ! (शुन्धध्वम्) हम प्रजाजन को शुद्ध आचरण वाला शत्रु रहित करें, एवं राजा का अभिषेक करें। शत० १२ । ८ । ७ । ८ ॥

पुनन्तु मा पितरः सोम्यासः पुनन्तु मा पितामहाः। पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा। पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः। पवित्रेण शतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै ॥ ३७ ॥

३७—४५ पावमानं सूक्तम्। भुरिगष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—(सोम्यासः) ऐश्वर्य, राज्य कार्य में स्थित सोम राजा के सामान शान्त और तेजस्वी (पितरः) पालक गुरु, आचार्य, विद्वान् ऋत्विग् आदि पूज्य पुरुष (मा पुनन्तु) मुझे पवित्र करें। निन्दा योग्य, असत् आचार से छुड़ाकर सदाचार, शुद्ध व्यवहार में प्रवृत्त करावें। (पितामहाः मा पुनन्तु) पिता के पिता के समान पालकों के भी पालक, गुरुओं के गुरु, शासकों के भी शासक पुरुष मुझे पवित्र आचार

व्यवहारवाला करें। (पितामहाः पुनन्तु) उनके पूज्य लोग भी मुझे पवित्राचारवान् बनावें। वे (पवित्रेण) पवित्र (शतायुषा) सौ वर्ष के पूर्ण दीर्घ जीवनवाले आहार आदि से मुझे पवित्र करें। (पुनन्तु पिता०, पुनन्तु प्रपिता०, पवित्रेण शतायुषा) इति पूर्ववत्। जिससे मैं (विश्वम्) समस्त, सम्पूर्ण (आयुः) जीवन का (व्यश्नवै) भोग करूं। (३७–४५) शत० १२। ८। ६–१८॥

पुरुषायुषजीविन्यो निरातङ्का निरीतयः।
यन्मदीयाः प्रजास्तस्य हेतुस्त्वद् ब्रह्मवर्चसम्॥ रघुवंशे० १। ६३॥

अग्नऽ आयूᳬषि पवस ऽआ सुवोर्जमिषं च नः।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम्॥ ३८॥

प्रजापतिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् विद्वन्! राजन्! पितः! पितामह! प्रपितामह! तू (नः आयूंषि) दीर्घ जीवन और उसके प्रदान करनेवाले अन्न घृत आदि पदार्थ और प्राणायाम आदि साधनों को (पवसे) प्रदान कर (ऊर्जम्) परम उत्तम अन्नरस और पराक्रम (इषम्) इच्छानुरूप फल और अन्नादि ऐश्वर्य भी हमें (आसुव) प्रदान कर। और (आरे) समीप और दूर के (दुच्छुनाम्) दुष्ट, पगले कुत्तों के समान प्रजाओं को व्यर्थ काटने और डराने, धमकाने वाले शठ पुरुषों को (बाधस्व) पीड़ित कर,

पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः।
पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ ३९॥

वैखानस ऋषिः। देवजना धियो भूतानि च देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(मा) मुझको (देवजनाः) विद्वान्, दानशील, ज्ञानद्रष्टा, प्रकाशमान्, गुरु, सूर्य आदि जन (पुनन्तु) पवित्र करें। (मनसा धियः) मन, विज्ञान से युक्त, सोच विचार कर किये गये कर्म भी मुझे पवित्र करें। (विश्वा) समस्त (भूतानि) प्राणीगण और पृथिवी, अप्, तेज, वायु

आकाशादि पदार्थ और हे (जातवेदः) विद्वान् और परमेश्वर ये ! सब (मा पुनन्तु) मुझ राजा और प्रजाजन को पवित्र करें।

पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत्।
अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२ऽ रनु ॥ ४० ॥

ब्रह्म अग्निर्वा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (देव) देव ! परमेश्वर, आचार्य एवं विद्यादातः ! हे (दीद्यत्) दीप्यमान ! तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवान् ! (मा) मुझको (शुक्रेण) शुद्ध, दीप्तिमय, (पवित्रेण) अपने पवित्र ज्ञान स्वरूप और आचार के उपदेश से (पुनीहि) पवित्र कर। और (क्रत्वा) अपने ज्ञान और उत्तम कर्म से (अनु) तदनुसार किये (क्रतून्) हमारे कर्मों और ज्ञानों को भी पवित्र कर।

यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने विततमन्तरा । ब्रह्म तेन पुनातु मा ॥ ४१ ॥

अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! (ते) तेरे (अर्चिषि) पूजनीय शुद्ध तेज के (अन्तरा) बीच में (पवित्रं) पवित्र, शुद्ध (ब्रह्म) ब्रह्म, वेद ज्ञान (विततम्) विस्तृत है (तेन मा पुनातु) तू उससे मुझे पवित्र कर।

विद्वान् के पक्ष में—हे अग्ने ज्ञानवन् (ते अर्चिषि अन्तरा) तेरे ज्वाला के समान तेजस्वी मुख या जिह्वा पर जो (पवित्रं ब्रह्म विततम्) पवित्र ब्रह्म या वेदमन्त्र व्याख्यासहित विद्यमान हैं उनके उपदेश द्वारा तू मुझे पवित्र कर।

राजा के पक्ष में—तेरे शुद्ध, पापशोधक ज्वाला, या तेज में जो पवित्र, पावन (ब्रह्म) ब्राह्मणगण विद्यमान है वह मुझ प्रजाजन को ज्ञान, सदाचार, उपदेश द्वारा पवित्र करे।

पवमानः सो ऽअद्य नः पवित्रेण विचर्षणिः ।
यः पोता स पुनातु मा ॥ ४२ ॥

सोमो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(यः) जो (अद्य) आज, नित्य ही, (विचर्षणिः) सब का सूर्य के समान द्रष्टा, (पवमानः) वायु और प्राण के समान सब का पवित्र कर्त्ता एवं व्यापक (पोता) अग्नि के समान शोधक परमेश्वर, विद्वान् एवं राजा है (सः) वह (नः) हमें (पवित्रेण) पवित्र ज्ञान और कर्म से (मा) मुझ राजा और प्रजा को पवित्र करे ।

उभाभ्यां देव सवितः पवित्रेण सवेन च ।
मां पुनीहि विश्वतः ॥ ४३ ॥

सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप ! हे (सवितः) सबके उत्पादक ! आप (पवित्रेण) पवित्र, शुद्ध ज्ञान कर्म और (सवेन च) ऐश्वर्य, एवं राज्याभिषेक (उभाभ्यां) दोनों से (मां) मुझ अभिषेक योग्य राजा और प्रजाजन को भी (विश्वतः पुनीहि) सब प्रकार से पवित्र कर ।

वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्यस्यामिमा बह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ।
तया मदन्तः सधमादेषु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ४४ ॥

विश्वेदेवा देवताः । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(देवी) समस्त उत्तम कार्यों का प्रकाश करने वाली, (वैश्वदेवी) समस्त शासकों और विद्वानों की महासभा (पुनती) समस्त राज्य को पवित्र करती हुई, सत्यासत्य धर्माधर्म का चालनी या सूप के समान विवेक करती हुई, (आगात्) प्राप्त हुई है । (यस्याम्) जिसमें (बह्व्यः) बहुत सी (इमाः) ये (वीतपृष्ठाः) कमनीय स्वरूप वाले, ज्ञान प्राप्त किये, (तन्वः) शरीर अर्थात् शरीरधारी जन विद्यमान हैं ।

(तया) उनसे (सधमादेषु) एकत्र आनन्दोत्सवों के अवसरों पर (मदन्तः) प्रसन्न और हर्षित होते हुए (वयं) हम सब (रयीणां पतयः) ऐश्वर्यों के पालक, स्वामी (स्याम) हों। विशेष २ अवसरों पर समस्त प्रजाजनों के प्रतिनिधि, बड़े २ आदमी, अधिकारी आदि की महासभा हो। उसमें वे अपनी उन्नति के विषयों पर विचार करें।

इसी प्रकार (वैश्वदेवी) समस्त स्त्रियों में अधिक विद्यासम्पन्न विदुषी आचार्याणी प्राप्त हो। (यस्यां) जिसके आधीन (बह्वयः) बहुत सी (वीतपृष्ठाः) प्रश्न करने में कुशल जिज्ञासु, विद्यार्थिनी कन्याएं हों। उनके द्वारा हम प्रजाजन (सधमादेषु) गृहस्थ के कार्यों में भी अति सुख प्राप्त करें और ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

ये स॑मा॒नाः सम॑नसः पि॒तरो॑ यम॒राज्ये॑।
तेषां॑ लो॒कः स्व॒धा नमो॑ य॒ज्ञो दे॒वेषु॑ कल्पताम् ॥ ४५ ॥

पितरो देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(यमराज्ये) नियन्ता राजा के राज्य में (ये) जो (समानाः) समान मान वाले, (समनसः) समान चित्त वाले, (पितरः) राज्य के पालक, अधिकारी जन हैं (तेषां) उनको (लोकः) रहने का निवास-स्थान और (स्वधाः) आत्मभरण पोषण योग्य अन्न, वस्त्र, वेतनादि (नमः) सत्कार प्राप्त हो जिससे (यज्ञः) यज्ञ, प्राप्त करने योग्य न्याय और प्रजापालन, परस्पर सुसंगत राजव्यवस्था (देवेषु) विद्वानों, शासकों और कर अधीन माण्डलिकों के बीच (कल्पताम्) और भी दृढ़ और उत्तम प्रद हो। शत० १२।८।१।१९॥

ये स॑मा॒नाः सम॑नसो जी॒वा जी॒वेषु॑ माम॒काः।
तेषा॒ᳪ श्रीर्मयि॑ कल्पताम॒स्मिँल्लो॒के श॒तᳪ समाः॑ ॥ ४६ ॥

आशीः। श्रीर्देवता। त्रिष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(जीवेषु) जीवित मनुष्यों में से (ये) जो (मामकाः) मेरे (जीवाः) जीवित सम्बन्धी लोग (समानाः) मेरे समान मान वाले और (समनसः) मेरे समान ज्ञान और चित्तवाले प्रेमीजन हैं (तेषां) उनकी (श्रीः) समस्त शोभा, लक्ष्मी, सम्पत्ति (अस्मिन् लोके) इस लोक में (शतं समाः) सौ वर्ष तक, पूर्ण आयु भर (मयि कल्पताम्) मेरे में, मेरे अधीन, मेरे निमित्त सदा बढ़ती और बनी रहे। शत० १२।८।१।२०॥

द्वे सृती ऽअशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ४७ ॥

पितरो देवताः । स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(अहम्) मैं (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के लिये, उनके जीवन व्यतीत करने के (द्वे सृती) दो मार्ग (अशृणवम्) श्रवण करता हूं। (पितॄणाम्) एक पितरों का पितृयाण मार्ग (उत) और दूसरा (देवानाम्) देव, विद्वान् मुमुक्षुओं का (यत्) जो भी (पितरं मातरं च अन्तरा) पिता और माता के बीच, दोनों के संसर्ग से उत्पन्न (इदं) यह (विश्वम्) समस्त (एजत्) चर, जीवित संसार है वह (ताभ्याम्) उन दो मार्गों से ही (सम्-एति) सुखपूर्वक उत्तम रीति से प्रयाण करता है। जीवन व्यतीत कर रहा है। शत० १२ । ८ । १ । २१ ॥

अथवा—(अहम्) मैं जीवों के दो उत्तम मार्ग सुनता हूं। (देवानाम् उत पितॄणाम्) एक देवों का देवयान और दूसरा पितरों का 'पितृयाण' मार्ग। (उत) और शेष तीसरा (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा जीवों का मार्ग है। उन दोनों से यह जीव संसार (सम् इति) सम्यक् पद या लोक को प्राप्त होता है जो भी पिता माता के बीच या आकाश और भूमि के बीच उत्तम हैं।

छान्दोग्य में तीन मार्ग जैसे—(१) तद्य इत्थं विदुः ये चेमेऽरण्ये

श्रद्धा तप इत्युपासते तेऽर्चिषमभिसंभवन्ति स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवयानः पन्थाः ॥ (२) अथ य इमे ग्रामे इष्टापूर्ते दत्तम् इत्युपासते ते धूममभिसंभवन्ति (३) अथैतयोः पथोर्न कत्तरेणचन । तानीमानि क्षुद्राण्य सकृदावर्त्तीनि भूतानि भवन्ति जायस्व म्रियस्वेत्येतत् तृतीयं स्थानं तेनासौ-लोको न संपूर्यते ।

राष्ट्रपक्ष में—समस्त राष्ट्र वासी प्रजाजन के जीवन यापन के दो ही मार्ग हैं । एक पालक शासक रूप से राजा की सरकारी सेवा में लगने का, दूसरा (मर्त्यानाम्) साधारण प्रजा का अपने माता पिता के पेशे में लगे रहने का ।

इदं हविः प्रजननं मे अस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये । आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि । अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त ॥ ४८ ॥

अग्निर्देवता । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(इदं) यह (मे) मेरे (हविः) दान करने और गर्भ में स्त्री द्वारा स्वीकार करने योग्य (प्रजननं) उत्तम सन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य (दशवीरम्) दश पुत्र उत्पन्न करनेवाला अथवा दशों प्राणयुक्त (सर्वगणम्) सर्व अंगों में व्यापक, अथवा सब उत्तम गुणों और अंगों से पूर्ण, सर्वाङ्ग सुन्दर होकर (स्वस्तये) कल्याण के लिये हो । वह (आत्मसनि) अपने देह में बल धारण करनेवाला, (प्रजासनि) प्रजा देनेवाला, (पशुसनि) पशुओं और प्राणगण का बल दाता, (लोकसनि) लोक, आत्मा को बल देनेवाला और (अभयसनि) अभय देनेहारा हो । (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी, वीर, पति (मे) मेरी (बहुलां प्रजां) बहुतसी प्रजाओं को (करोतु) उत्पन्न करे । और (अस्मासु) हम में (अन्नं) अन्न, (पयः) पुष्टिकारक दुग्ध आदि पदार्थ और (रेतः) वीर्य को भी (धत्त) धारण करावे । शत० १२ । ८ । १ । २२

राष्ट्रपक्ष में—(इदं हविः) यह आदान योग्य कर (प्रजननं) उत्तम फलजनक हो। यह (दशवीरम्) शरीर में दश प्राणों के समान दशवीर नेताओं से युक्त (सर्वगणम्) समस्त प्रजाजन को (स्वस्तये करोति) सुख कल्याणयुक्त करे। वह (हविः) कर द्वारा प्राप्त अन्न आदि ऐश्वर्य (आत्मसनि) राजा के भोग योग्य, (प्रजासनि पशुसनि लोकसनि अभयसनि) प्रजा, पशु, अन्य लोक आश्रय का देनेवाला, या उनको पुष्ट करने वाला हो। (अग्निः) अग्रणी वीर नेता सेनापति मेरी प्रजाओं की वृद्धि करे और राष्ट्र में अन्न (पयः) दूध आदि पशु सम्पत्ति और (रेतः) वीर्य, बल की वृद्धि करे।

उदीरतामवर ऽउत्परास ऽउन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ऽईयुरवृका ऽऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥४९॥

४१—६१—शंख ऋषिः। पितरो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अवरे) निकृष्ट, तृतीय श्रेणी के (परासः) उत्कृष्ट श्रेणी के और (मध्यमाः) बीच की श्रेणी के (सोम्यासः) राजा के अधीन रहनेवाले राष्ट्र के हितकारी अधिष्ठाता रूप, (पितरः) राज्य के पालक अधिकारी जन, (उद् ३ ईरताम्) उन्नति को प्राप्त हों और राष्ट्र की उन्नति करें, उसे उठावें। (ये) जो (ऋतज्ञाः) सत्य व्यवहारों के जाननेहारे एवं ऋत, सत्य व्यवस्था नियमों के विज्ञ और स्वयं (अवृकाः) वृक, भेड़िये या चोरों के समान प्रजा के घातक और राजकार्य में धन के चोर न होकर (असुम्) अपने प्राण को (ईयुः) धारण करते हैं। अर्थात् ईमानदारी से जीवन व्यतीत करते हैं (ते) वे (पितरः) पालक जन (नः) हमारी संग्रामों में (अवन्तु) रक्षा करें।

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा ऽअथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ ५० ॥

भा०—(नः) हमारे (पितरः) पालन करनेवाले, पिता के समान पूजनीय, (अंगिरसः) अग्नि और अंगारों के समान तेजस्वी, दुष्टों के संतापक, (नवग्वाः) नवीन या स्तुति योग्य, उत्तम २ वाणियों, ज्ञानों का उपदेश करने और स्वयं प्राप्त करनेवाले, (अथर्वाणः) अहिंसक, शत्रु से कभी परास्त न होने वाले, (भृगवः) दुष्ट पुरुषों को भूननेवाले, एवं स्वयं परिपक्व ज्ञानी, तेजस्वी (सोम्यासः) सौम्य, गुणवान्, एवं सोम अर्थात् राष्ट्, ऐश्वर्य के हितकारी हैं। (तेषां) उन (यज्ञियानां) यज्ञ, राष्ट् व्यवस्था के करनेहारे पुरुषों की (सुमतौ) शुभ मति और (भद्रे सौमनसे) कल्याणकारी, सुखप्रद शुभ चित्तता में (वयम्) हम सदा (स्याम) रहा करें।

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः।
तेभिर्यमः सꣳरराणो हवीꣳष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ५१॥

भा०—(ये) जो (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व के या पूर्ण सामर्थ्य वाले, (पितरः) पालक पिता, गुरु, आचार्य आदि पूज्य पुरुष (वसिष्ठाः) अति अधिक ऐश्वर्यवान्, (सोम्यासः) सोम, राज्यैश्वर्य के हितकारी होकर (सोमपीथं) राज्य, ऐश्वर्य या राजपद के पालन एवं भोग को (अनु-ऊहिरे) उचित रीति से अनुकूल रहकर वहन करते हैं राजा की आज्ञा और नियमानुसार राज्य कार्यों के भार उठाते हैं (यमः) नियन्ता, राजा पुत्र के समान (उशद्भिः) नाना कामनाएं करनेहारे (तेभिः) उनके साथ स्वयं भी (उशन्) कामनावान् या कान्तिमान् तेजस्वी होकर (हवींषि संरराणः) अन्न आदि भोग्य पदार्थों का अन्यों को दान करता एवं स्वयं रमण करता हुआ (प्रतिकामम्) प्रत्येक कामना योग्य भोग का (अनु) भोग करे।

त्वꣳ सोम प्रचिकितो मनीषा त्वꣳ रजिष्ठमनु नेषि पन्थाम्।

तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीराः॑ ॥ ५२ ॥

भा०—हे (सोम) सर्व आज्ञापक अभिषेकयुक्त, राजन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (प्रचिकितः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् है । अतः (मनीषा) अपनी बुद्धि से (त्वं) तू (रजिष्ठम्) अति सरल (पन्थाम्) मार्ग पर (नेषि) ले चल । (तव) तेरी (प्रणीती) उत्तम शासन नीति में हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! चन्द्र के समान, दयार्द्र एवं शीतलस्वभाव ! (धीराः) बुद्धिमान्, धैर्यवान् (पितरः) प्रजापालक जन, पुत्र के शासन में पिताओं के समान (देवेषु) राजाओं और ज्ञानवान् विद्वानों के बीच (रत्नम्) रमण करने योग्य श्रेष्ठ पद एवं राष्ट्र को (अभजन्त) प्राप्त करें ।

त्वया॒ हि नः॑ पि॒तरः॑ सोम॒ पूर्वे॒ कर्मा॑णि च॒क्रुः प॑वमान॒ धीराः॑ ।
व॒न्वन्नवा॑तः परि॒धीँ१॥ऽरपो॑र्णु वी॒रेभि॒रश्वै॑र्म॒घवा॑ भवा नः ॥५३॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! हे (पवमान) वायु के या सूर्य के समान शुद्ध करनेहारे ! (हि) क्योंकि (त्वया) तेरे द्वारा ही (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व के या विद्याओं में पूर्ण, (धीराः) बुद्धिमान् (पितरः) पालक पुरुष भी (कर्माणि) समस्त कार्य (चक्रुः) करते हैं । तू स्वयं (अवातः) किसी से पीड़ित और कम्पित न होकर, (वन्वन्) राष्ट्र का भोग करता हुआ, सेनाओं को उचित स्थानों पर संविभक्त करता हुआ (परिधीन्) चारों तरफ स्थित शत्रुओं को (अप ऊर्णु) दूर हटा देता । और (वीरेभिः अश्वेभिः) वीर अश्वारोहियों द्वारा (नः) हमारे लिये (मघवा) परम ऐश्वर्यवान् होकर (भव) रह ।

त्वꣳ सो॑म पि॒तृभिः॑ संविदा॒नोऽनु॒ द्यावा॑पृथि॒वीऽआ त॑तन्थ ।
तस्मै॑ तऽइन्दो ह॒विषा॑ विधेम व॒यꣳ स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥५४॥

भा०—हे (सोम) सोम ! राजन् ! (त्वं) तू (पितृभिः) राष्ट्र-

पालक शासकों एवं राजसभा के सभासद् पुरुषों से (संविदानः) सहमति करता हुआ (अनु) तदनुसार (द्यावा पृथिवी) सूर्य पृथिवी के समान राजशक्ति और प्रजागण को (आततन्थ) विस्तृत कर। हे (इन्दो) चन्द्र के समान प्रिय ! (ते तस्मै) उस तुझे हम (हविषा) स्वीकार करने और प्रदान करने योग्य उत्तम आदर एवं पुरस्कार द्वारा (विधेम) सत्कार करें, तेरी आज्ञा पालन करें। और (वयं) हम (रयीणाम्) ऐश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) हों।

बर्हिषदः पितरऽ ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम्।
त आ गतावसा शन्तमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥ ५५ ॥

भा०—हे (बर्हिषदः) प्रजाओं के ऊपर शासकरूप से विराजमान एवं उत्तम आसनों और पदों पर स्थित (पितरः) पालक जनो ! (वः) आप लोगों के लिये (इमा हव्या) इन अन्नादि भोग्य पदार्थों को हम (चकृम) उत्पन्न करते हैं। आप लोग (ऊत्या) अपने रक्षा के निमित्त (जुषध्वम्) उनको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करें। (ते) वे आप लोग (शंतमेन) अति अधिक शान्तिदायक, सुखकारी (अवसा) रक्षण सामर्थ्य से (आगत) आओ। (नः) हमें (शं) शान्ति, सुख (योः) और कष्टों का निवारण कर (अरपः) पाप और दुःख से रहित, सदाचार और सुख (दधात) प्रदान करो।

आहं पितॄन्त्सुविदत्राँ२ऽ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः।
बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त ऽइहागमिष्ठाः ॥५६॥

भा०—(अहम्) मैं (सुविदत्रान्) उत्तम, विविध शुभ ज्ञानों के देने और जानने वाले (पितॄन्) पिता के समान पूजनीय, गुरु आदि पालक पुरुषों को (आ अवित्सि) प्राप्त करूं। और (विष्णोः) व्यापक परमेश्वर के

(नपातं च) अविनाशी, सामर्थ्य और (विक्रमणं च) विविध व्यापक सृष्टि-क्रम को भी (आ अचित्सि) जानूं। और (ये) जो (बर्हिपदाः) महान् ब्रह्म में ही स्थित ब्रह्मिष्ठ पुरुष (स्वधया) आत्म धारणा शक्ति से (सुतस्य) स्वयं निष्पादित । साक्षात् किये, (पित्वः) पान योग्य, परमानन्द, रसस्वरूप आत्मा का या ब्रह्म का (भजन्ते) भजन, सेवन करते हैं (ते इह) वे इस राष्ट्र या गृह में (आ अगमिष्ठाः) आवें ।

राजा के पक्ष में—मैं प्रजाजन (सुविदत्रान्) उत्तम रीति से नाना प्रकार के पदार्थों के दाता, एवं पालक पुरुषों को प्राप्त करूं और जानूं और (विष्णोः) व्यापक सामर्थ्यवान् राजा के (नपातं) अखण्ड तेज और (विक्रमणं) पराक्रम को भी प्राप्त करूं। (ये) जो (स्वधया) अपने वेतन के द्वारा ही (बर्हिषदाः) उच्च आसन या प्रजाओं पर अधिकारी रूप से विराजते हैं और (सुतस्य पित्वः) उत्पादित अन्नादि पदार्थों का भोग करते अथवा अभिषिक्त परिपालक राजा की सेवा करते हैं (ते इह) वे इस राष्ट्र में (आ अगमिष्ठाः) आवें।

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त ऽआ गमन्तु त ऽइह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५७ ॥

भा०—(सोम्यासः) सोम, राष्ट्र, ऐश्वर्य एवं राजा के हित कर, उसके चाहने वाले (पितरः) पालक जन (बर्हिष्येषु) प्रजाओं के संगृहीत उत्तम उत्तम पदार्थों अथवा आसनों के योग्य (प्रियेषु) प्रिय, अतिमनोहर (निधिषु) धन कोशों के आधार पर उनके भोग करने के लिये (उपहूताः) निमन्त्रित किये जाते हैं । (ते) वे (आगमन्तु) आवें, (ते) वे (इह) इस राष्ट्र में आकर (श्रुवन्तु) हमारे वचन सुनें । (ते अधि ब्रुवन्तु) वे अधिष्ठाता होकर आज्ञा और उपदेश दें । (ते) वे (अस्मान्) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें ।

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्त तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५८ ॥

भा०—(नः) हमारे (सोम्यासः) राष्ट्र समृद्धि और ऐश्वर्य के इच्छुक (अग्निष्वात्ताः) अग्नि, अग्रणी रूप में स्वात्त, स्वीकृत; अथवा अग्रणी; ज्ञानी, विद्वान् आचार्य आदि पदों का भोग करने वाले; अथवा अग्नि के समान तेजस्वी राजा द्वारा स्वीकृत या उत्तम पदों पर प्राप्त होकर (पितरः) पालक जन (देवयानैः) देवों, विद्वानों से चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से, (आ यन्तु) आवें । (ते) वे भी (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में, ज्ञान मार्ग एवं प्रजा पालन के कार्य में (स्वधया) अन्नादि वेतनों द्वारा (मदन्तः) तृप्त, संतुष्ट होकर (अधि ब्रुवन्तु) शासक होकर आज्ञा करें और (अस्मान्) हमें (अवन्तु) दुष्ट पुरुषों के आघात से बचावें ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिꣳ सर्ववीरं दधातन ॥५९॥

भा०—हे (अग्निष्वात्ताः पितरः) पूर्वोक्त अग्निष्वात्त, अग्रणी रूप से राजा द्वारा स्वीकृत एवं पालक पुरुषो ! आप लोग (इह आगच्छत) यहां आओ । और (सुप्रणीतयः) उत्तम सुखदायक मार्ग में लेजाने एवं उत्तम न्याय और राजनीति के वर्त्तन में कुशल होकर (सदः सदः सदत) अपने २ पृथक् घरों और एवं राजसभाओं में विराजमान होओ । और (प्रयतानि) नियमपूर्वक नियत (हवींषि) स्वीकार योग्य अन्नादि वेतनों को (अत्त) भोग करो । (अथा) और (बर्हिषि) विशाल राष्ट्र एवं गण पर (सर्ववीरम् रयिम्) समस्त वीरों के उत्पादक ऐश्वर्य को (दधातन) धारण करो ।

ये ऽअग्निष्वात्ता ये ऽअनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति ॥ ६० ॥

भा०—(ये) जो (अग्निष्वात्ताः) अग्रणी आदि पदों पर स्थित अथवा राजा से स्वीकृत हैं और (ये) (अनग्निष्वात्ताः) जो अग्रणी मुख्य पदों पर नहीं स्थित हैं अथवा जिनको राजा की ओर से नहीं चुना गया है प्रत्युत जो प्रजा द्वारा चुने गये हैं या ज्ञाननिष्ठ आदर योग्य हैं और जो (मध्ये दिवः) ज्ञान प्रकाश से युक्त राजसभा के बीच (स्वधया) अपनी धारणा, शक्ति, सामर्थ्य से (मादयन्ते) आनन्द प्रसन्न रहते और अन्यों को ज्ञान से तृप्त करते हैं। (तेभ्यः) उनके लिये भी (स्वराड्) स्वयं सर्वों पर विराजमान, सूर्य के समान तेजस्वी, बड़ा राजा (यथावशं) यथाशक्ति (असुनीतिम्) प्राण धारण कराने वाली (तन्वं) शरीरवृत्ति को (कल्पयाति) लगादे।

अग्निष्वात्तानृतुमतो हवामहे नाराशꣳसे सोमपीथं य ऽआशुः।
ते नो विप्रासः सुहवा भवन्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥६१॥

भा०—(ये) जो (नाराशंसे) उत्तम पुरुषों के प्रशंसा के समय, उत्तम आदर सत्कार व्यवहार में (सोमपीथम्) राज्यैश्वर्य के पालन करने के पदाधिकार को (आशुः) प्राप्त करते हैं उन (अग्नि-ष्वात्तान्) अग्रणी, तेजस्वी पद को प्राप्त या सेनानायकों द्वारा स्वीकृत (ऋतुमतः) क्षात्र-बल के स्वामी पुरुषों को (हवामहे) आदर से बुलावें। (ते) वे (विप्रासः) मेधावी, विद्वान् पुरुष (नः) हमें (सुहवाः) उत्तम समृद्धि के देने वाले (भवन्तु) हों। और हम (रयीणां पतयः स्याम) ऐश्वर्यों के स्वामी बनें।

'ऋतुमतः'—याः षड् विभूतयः ऋतवस्ते। जै० १।२।१।१॥ ऋतव उपसदः। श० १०।२।९॥ तदस्या ऋतवोऽभवन्। तै० ३।१२।९।४॥ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो, यथा, मनुष्यस्य। ऐ० १।१३॥ ऋतव एते यदृतव्याः। क्षत्रं वा ऋतव्याः, विश इमा इतरा

इष्टकाः ॥ श० । ७ । १ । १ । ७२ ॥ विभूतियें उपसद् अर्थात् उपसभाएं, या मोर्चे, राजाओं के सम्बन्धी जन, राजसभा के सदस्य और क्षत्रिय पदाधिकारी ये सब 'ऋतु' कहाते हैं ।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व ऽआगः पुरुषता कराम ॥६२॥

६२—७१ पितरो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(जानु) गोड़े को (आच्य) संकोच कर (दक्षिणतः) दायें तरफ (निषद्य) बैठ कर (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ, सब राष्ट्र को सुसंगत करने वाले प्रजा पालक राजा को लक्ष्य करके (विश्वे) आप लोग सब (अभिगृणीत) अपना २ वक्तव्य प्रकट करो । हे (पितरः) प्रजा के पालक पुरुषो ! (केनचित्) किसी भी प्रकार से (नः) हमें (मा हिंसिष्ट) मत मारो । (यद्) जब हम (वः) आप लोगों के प्रति (पुरुषता= पुरुषतायाम्) पुरुषार्थ करते हुए अथवा पुरुष अर्थात् सामान्य मनुष्य होने से (आगः) अपराध या त्रुटि भी (कराम) करदें ।

आसीनासो ऽअरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त ऽइहोर्जं दधात ॥ ६३ ॥

भा०—हे (पितरः) पालक पिता लोगो ! आप लोग (अरुणीनाम्) गौर वर्ण, एवं गौओं के समान प्रिय, मनोहर मातृजनों के (उपस्थे) समीप में (आसीनासः) बैठे हुए (दाशुषे मर्त्याय रयिं धत्त) दानशील त्यागी पुरुष को ऐश्वर्य प्रदान करो । हे (पितरः) पालक पिता जनो ! (पुत्रेभ्यः) पुत्रों को (तस्य वस्वः) उस २ धन को प्रदान करो । (ते) वे आप लोग (इह) इस गृहाश्रम में रह कर (ऊर्जं) बल पराक्रम के गुण (दधात) धारण करो ।

राज्यपक्ष में—(अरुणीनाम्) लाल ऊन के गद्दियों के (उपस्थे) पीठ

पर या भूमियों पर अधिकारी रूप से (आसीनासः) बैठे हुए आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) कर आदि देने वाले प्रजाजन को (रयिं धत्त) ऐश्वर्य भूमि आदि अधिकार प्रदान करो। (पितरः पुत्रेभ्यः) पुत्रों को जिस प्रकार पिता लोग अपनी २ जायदाद देते हैं उसी प्रकार आप लोग (तस्य वस्वः) उस २ नाना प्रकार के धन का प्रजाओं को (प्रयच्छत) प्रदान करो। (ते) वे आप लोग (इह) इस राष्ट्र में, या इस राजा में इसके अधीन रह कर इसके निमित्त (ऊर्जं) बल पराक्रम को (धत्त) धारण करो।

यमग्ने कव्यवाहन त्वं चिन्मन्यसे र॒यिम् ।
तन्नो॑ गी॒र्भिः श्र॒वाय्यं॑ देव॒त्रा प॑नया यु॒जम् ॥ ६४ ॥

त्रिष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! अग्रणी नेतः ! राजन् ! हे (कव्यवाहन) विद्वान्, कवि, पुरुषों के देने योग्य ऐश्वर्य के धारक ! अथवा स्तुत्य गुणों को धारण करने हारे ! (त्वं) तू (यम्) जिस (रयिम्) ऐश्वर्य को, (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (श्रवाय्यम्) अन्यों को सुनाने योग्य, प्रशंसनीय (देवत्रा) देव, विद्वानों को (युजम्) देने योग्य (चित्) ही (मन्यसे) मानता है (तत्) उसको (नः) हमें (पनय) प्रदान कर।

यो॒ऽअ॒ग्निः क॑व्य॒वाह॑नः पि॒तॄन्यक्ष॑दृता॒वृधः॑ ।
प्रेदु॑ ह॒व्यानि॑ वोचति दे॒वेभ्य॑श्च पि॒तृभ्य॒ऽआ ॥ ६५ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः । अग्निर्देवता ॥

भा०—(यः) जो (अग्निः) ज्ञानवान् विद्याओं के प्रकाश से प्रकाशमान् (कव्यवाहनः) विद्वान् मेधावी पुरुषों के योग्य ज्ञानवचनों को धारण करने हारा विद्वान् (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वाले, (पितॄन्) पालक पुरुषों को (यक्षत्) पूजा सत्कार करता है। और (हव्यानि)

ग्रहण करने योग्य ज्ञानों का (देवेभ्यः) ज्ञानवान् पुरुषों और (पितृभ्यः) पालक पुरुषों के लिये, (आ प्रवोचत्) प्रवचन द्वारा सर्वत्र प्रदान या उपदेश करता है, वह (आ) सर्वत्र विख्यात होता है ।

त्वमग्न ऽईडितः कव्यवाहनावाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी । प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥ ६६ ॥

अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवान् ! हे (कव्यवाहन) विद्वानों के वर्णन योग्य कर्मों और सामर्थ्यों को धारण करने वाले ! (त्वम्) तू (ईडितः) स्तुति को प्राप्त होकर (हव्यानि) अन्नादि पदार्थों को (सुरभीणि कृत्वा) उत्तम सुगन्ध युक्त, अन्नों के समान सुखजनक करके (अवाट्) ग्रहण कर और (पितृभ्यः) पालक जनों को भी (प्रादाः) प्रदान कर । (ते) वे लोग (स्वधया) अपने देह के पोषणकारी अन्न और वेतन के रूप से उसका (अक्षन्) भोग करें और (त्वं) तू हे (देव) देव ! राजन् ! (प्रयता) उत्तम रीति से साधित अन्नादि के समान उन (हवींषि) प्रदत्त कर आदि भोग्य पदार्थों को (अद्धि) भोग कर ।

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ२ऽ उ च न प्रविद्म । त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व ॥ ६७ ॥

भा०—(ये च पितरः) जो पालक जन, शासक (इह) यहां विद्यमान हैं (ये च) और जो (न इह) यहां नहीं हैं, (यान् उच विद्मः) जिनको हम जानते हैं और (यान् उ च न प्रविद्म) जिनको हम नहीं भी जानते हैं, हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! (ते) (यति) जितने भी हों (त्वं) तू उनको (वेत्थ) जान और (स्वधाभिः)

६६—त्वमग्न ईळितो जातवेदो वाड्ढव्यानि० इति काण्व० ।

योग्य अन्न आदि देहपोषक सामग्रियों से (सुकृतम्) उत्तम रूप से सम्पादित (यज्ञम्) प्रजापालनरूप 'यज्ञ' को (जुषस्व) सेवन करो। उनको राष्ट्र-कार्य से प्रेम उत्पन्न करो। उनसे राष्ट्र की सेवा करो।

इ॒दं पि॒तृभ्यो॒ नमो॑ऽअस्त्व॒द्य ये पूर्वा॑सो॒ यऽ उप॑रास॒ऽ ई॒युः।
ये पार्थि॑वे॒ रज॒स्या निष॑त्ता॒ ये वा॑ नू॒नꣳ सु॑वृ॒जना॑सु वि॒क्षु ॥६८॥

भा०—(अद्य) आज विशेष नियत दिन में (ये पूर्वासः) जो पूर्व के, हमारे पहले के और हमसे पूर्व ही कार्य में नियुक्त हैं और (ये) जो (उपरासः) अपने कार्य की अवधि समाप्त करके (ईयुः) चले गये हैं उन (पितृभ्यः) पालक पुरुषों के निमित्त (इदं नमः) यह नमस्कार, आदर भाव एवं अन्न आदि पदार्थ (अस्तु) प्राप्त हो। और (ये) जो (पार्थिवे रजसि) पृथिवी लोक में (आ निषत्ताः) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान हैं (ये वा) और जो (नूनम्) निश्चय से (सु-वृजनासु) उत्तम बल और उत्तम आचार वाली (विक्षु) प्रजाओं पर (आनिषत्ताः) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान हैं उनको भी (इदं नमः अस्तु) यह अन्नादि वेतन प्राप्त हो।

अधा॒ यथा॑ नः पि॒तरः॒ परा॑सः प्र॒त्नासो॑ऽअग्न ऋ॒तमा॑शुषा॒णाः।
शुचीद॑य॒न्दीधि॑तिमुक्थ॒शासः॒ क्षामा॑ भि॒न्दन्तो॑ अरु॒णीरप॑ व्रन् ॥६९॥

पितरो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! (अध) और (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारे (परासः) पर, उत्कृष्ट पद को प्राप्त (प्रत्नासः) पूर्व के (पितरः) गुरु जन (शुचि) शुद्ध पवित्र (ऋतम्) सत्य, परम ज्ञान को (आशुषाणाः) प्राप्त होते हुए और (उक्थशासः) ज्ञानोपदेश करते हुए (क्षामाः) विनाशकारिणी नीच प्रवृत्तियों को या

भूमियों को (भिन्दन्तः) भेदते हुए (दीधितिम्) ज्ञान-रश्मि या आदित्य स्वरूप परमेश्वर को (अप व्रन्) प्राप्त होते हैं। अथवा-(अप) सदूरवर्त्ती (अरुणीः) प्रकाशमय उच्चकोटि की भूमियों को (व्रन्) प्राप्त होते अथवा-अन्धकार भूमियों को दूर छोड़ते हुए प्रकाशमय लोकों को प्राप्त करते हैं।

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत ऽआवह पितॄन्हविषे ऽअत्तवे ॥ ७० ॥

पितरो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! पुत्र के समान प्रिय राजन् ! हम लोग (उशन्तः) कामना करते हुए (त्वा) तुझको (निधीमहि) राज्यासन पर स्थापित करते हैं। और (उशन्तः) कामनावान् होकर ही (सम्-इधीमहि) सब मिल कर तुझे अग्नि के समान नित्य प्रदीप्त करते, तुझे अधिक तेजस्वी करते हैं। तू (उशन्) स्वयं भी यश और अर्थ की कामना करता हुआ (उशतः) कामना वाले (पितॄन्) राज्य के पालक हम लोगों को (हविषे अत्तवे) अन्न, कर आदि ग्राह्य पदार्थों के प्राप्त करने और भोग करने के लिये (आ वह) प्राप्त करा या हमें प्राप्त कर लेने की आज्ञा दे।

अपां फेनेन नमुचेः शिर ऽइन्द्रोदवर्तयः ।
विश्वा यदजय स्पृधः ॥ ७१ ॥

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुविदारक ! वीर सेनापते ! राजन् ! (यत्) जब तू (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) संग्राम में प्रतिस्पर्धा करने वाली शत्रु सेनाओं को (अजयः) विजय करता है तब (अपां फेनेन) जिस प्रकार सूर्य, वायु या विद्युत् वर्षा योग्य जलों की वृद्धि करके (नमुचेः) जल न छोड़ने वाले मेघ के (शिरः) घनीभूत भाग को (उत् अवर्त्तयः)

छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार राजा भी (अपां) प्रजा और आप्त पुरुषों के (फेनेन) बल की वृद्धि करके उससे (नमुचेः) आग्रह और संग्राम भूमि को न छोड़ने वाले शत्रु के (शिरः) शिर, सेना के मुख्य भाग को (उत् अवर्त्तयः) काट डालता है।

'उत् अवर्त्तयः'—उत् पूर्वो वृति धातु छेदनेऽर्थे वर्त्तते इति उवटः। 'फेनः'—स्फायते वर्धते इति फेनः। दया० उणा०।

सोमो राजामृतꣳ सुतऽऋजीषेणाजहान्मृत्युम्। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳशुक्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयो ऽमृतं मधु ॥ ७२ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयः। ग्रहाः सोमो राजा च देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(सोमः) सर्वप्रेरक (राजा) राजा, सब से ऊपर विराजमान पुरुष भी (सुतः) राज पद पर अभिषिक्त होकर (अमृतम्) अमृत, अखण्ड राज्याधिकार को प्राप्त करता है और (ऋजीषेण) सरल, धर्मानुकूल आचरण से, अथवा संगृहीत प्रभूत धनकोष और सेनाबल द्वारा (मृत्युम्) प्रजा और राजा पर आने वाले मृत्यु अर्थात् प्राण संकट को (अजहात्) दूर करता है। (ऋतेन) सत्य वेदज्ञान से (सत्यम्) सच्चे (विपानम्) विविध प्रकार से राष्ट्र की रक्षा करने में समर्थ (इन्द्रियम्) राजोचित ऐश्वर्य और (अन्धसः) अन्न के (शुक्रं) शुद्ध, सारभूत वीर्य और (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् सेनापति के (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य और (इदम्) इस प्रत्यक्ष (पयः) पुष्टिकारक अन्न, (अमृतम्) दीर्घ जीवन या उत्तम जल और (मधु) मधुर पदार्थ, सभी उत्तम पदार्थ को प्राप्त करता है।

अध्यात्म में—(सोमः राजा) प्रकाशवान् ज्ञानी पुरुष (सुतः) योग आदि द्वारा ज्ञानसम्पन्न शुद्ध बुद्ध होकर (अमृतं) अमृत हो जाता

है और (मृत्युम् अजहात्) मृत्यु को पार कर जाता है। (अन्धसः) अन्न से जिस प्रकार वीर्य को प्राप्त करता है उसी प्रकार (ऋतेन) सत्य के बल पर (सत्यम् इन्द्रियं) सच्चे आत्मिक बल को और (इन्द्रस्य) अपने ऐश्वर्यवान् आत्मा के (इन्द्रियम्) ऐश्वर्यमय स्वरूप को (इदम्) साक्षात् (पयः) दूध के समान स्वच्छ (अमृतम्) अमृत के समान अविनाशी (मधु) मधु के समान मधुर आनन्दमय रूप को प्राप्त करता है।

अद्भ्यः क्षीरं व्यपिबत् क्रुङ्ङाङ्गिरसो धिया। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धस ऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदम्पयोऽमृतं मधु ॥ ७२ ॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(क्रुङ्) हंस जिस प्रकार (अद्भ्यः) जलों के बीच में से (क्षीरम्) दूध को (वि अपिवत्) विशेष रूप से पान कर लेता है उसी प्रकार (आङ्गिरसः) ज्ञानवान् आत्मा, अङ्गों २ में रस या सार, शक्तिरूप में व्यापक (क्रुङ्) अति सूक्ष्म, आत्मा या ज्ञानी, योगी, परमहंस (धिया) अपनी योगधारणावती बुद्धि से (अद्भ्यः) प्राणों के बीच में से (क्षीरम्) परम उपभोग्य परमानन्द रस को (वि अपिबत्) विशेष रूप से पान करता है। (ऋतेन सत्यम् इत्यादि) पूर्ववत् ॥

इसी प्रकार राजा के पक्ष में—(क्रुङ्) हंस के समान अति सूक्ष्म या व्यापक, कुटिल दुर्बोध, गहन, नीतिमान् (आङ्गिरसः) शरीर में प्राण के समान राष्ट्र में व्यापक, कार्यप्रवर्त्तक एवं आङ्गिरस वेद का ज्ञाता, विद्वान् राजा (धिया) अपने धारण पालन करने वाली राजनीति से (अद्भ्यः) आप्त प्रजाओं से ही (क्षीरम्) भोग योग्य सार पदार्थ को (वि अपिवत्) विविध रूपों में पान करता, ग्रहण करता है।

सोममद्भ्यो व्यपिबच्छन्दसा हꣳसः शुचिषत्। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७४ ॥

सोमो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(हंसः) हंस जिस प्रकार (अद्भ्यः) जलों के बीच में से (सोमम) परम साररूप अंश को (वि अपिबत्) विशेष रूप से पान कर लेता है उसी प्रकार (शुचिषत्) शुद्ध ब्रह्म में विद्यमान योगी (हंसः) अपने समस्त सांसारिक दुःखों का नाश करने में समर्थ होकर (छन्दसा) स्वच्छन्द अपने आत्म सामर्थ्य से या प्राण के बल से यथेच्छ (अद्भ्यः) प्राणों के बीच में से या प्राप्त ज्ञानों और कर्मों में से ही (सोमम्) परम ब्रह्मानन्द रसों का (वि अपिबत्) विविध प्रकारों से पान करता है। और उसी प्रकार राष्ट्र में राजा (शुचिषत्) शुचि, निष्पाप, निश्छल, शुद्ध निष्कपट, धर्माध्यक्ष के आसन पर विराजमान राजा भी (हंसः) शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों के हनन करने के अधिकार को प्राप्त करके (छन्दसा) प्रजा के आच्छादन या रक्षण बल से (अद्भ्यः) आप्त प्रजाओं के बीच में से (सोमम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वि अपिबत्) विविध उपायों से प्राप्त करता है । (ऋतेन सत्यम् इत्यादि) पूर्ववत् ॥

अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत् क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७५ ॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (परिस्रुतः) परिपक्व (अन्नात्) अन्न से प्राप्त (रसम्) रस के समान प्राप्त (क्षत्रं)

क्षात्रबल, (पयः) पुष्टिकार अन्न और (सोमम्) ऐश्वर्य को (ब्रह्मणा) ब्रह्मवेद और वेदज्ञ विद्वान् के साथ मिलकर (वि अपिबत्) विविध प्रकार से पान करने में समर्थ होता है । (ऋतेन० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

अध्यात्म में—(प्रजापतिः) आत्मा (ब्रह्मणा) ब्रह्मज्ञान से परिपक्व अन्न से रस के समान (परिस्रुतः) परिस्रवण करने वाले आत्मा में प्रवाहित होने वाले ज्ञान का (क्षत्रम्) रक्षाकारी, पुष्टिकर, अध्यात्म ऐश्वर्य का पान करता है ।

रेतो मूत्रं विजहाति योनिं प्रविशदिन्द्रियम् । गर्भो जरायुणावृतऽउल्वं जहाति जन्मना । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७६ ॥

इन्द्रो देवता । भुरिगति शक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—जो (इन्द्रियं) इन्द्रिय (मूत्रं जहाति) मूत्रोत्सर्ग करता है परन्तु (योनिम्) स्त्री योनि में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ वही (इन्द्रियम्) पुरुष का उपस्थ इन्द्रिय जिस प्रकार (रेतः) वीर्य को (विजहाति) विशेष रूप से उत्सर्ग करता है । उसी प्रकार (इन्द्रियम्) राजा या इन्द्र का बल, सेना बल भी जो अन्यत्र प्रायः (मूत्रं) छोड़ देने योग्य, त्यागने योग्य पदार्थों का दान करता है अथवा जो छोड़ने या फेंकने योग्य अस्त्रों को शत्रु पर फेंकता है वही राजा का ऐश्वर्य बल (योनिम्) अपने आश्रयभूत राष्ट्र में (प्रविशत्) प्रवेश करता हुआ (रेतः) वीर्य, अर्थात् उत्पादन सामर्थ्य को (वि जहाति) विविध उपायों से और विविध रूपों में छोड़ता या फैला देता है । और जिस प्रकार (गर्भः जरायुणावृतः) गर्भ जरायुओं से ढका होकर भी (जन्मना) जन्म लेकर (उल्वं)

उस 'उल्व' अर्थात् जेर को (जहाति) छोड़ देता है। उसी प्रकार राजा भी (गर्भः) राष्ट्र को अपने वश करने में समर्थ होकर (जरायुणा) शत्रुनाशक बल से आवृत होकर अपने (जन्मना) राज्याभिषेक द्वारा या विशेष प्रादुर्भाव के द्वारा (उल्वं) संघ में एकत्र हुए अधिक सेना के भाग को (जहाति) परित्याग कर देता है। (ऋतेन सत्यम्०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत्सत्यानृते प्रजापतिः । अश्रद्धामनृतेऽदधाच्छ्रद्धाꣳ सत्ये प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७७ ॥

प्रजापतिर्देवता । अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक परमेश्वर, राजा और न्यायकर्त्ता, (ऋतेन) सत्य ज्ञान के बल से (सत्यानृते रूपे) सत्य और अनृत, सच और झूठ दोनों के स्वरूपों को पृथक् २ विवेचना द्वारा (दृष्ट्वा) देखकर (वि आ अकरोत्) पृथक् २ उपदेश करता है। वह (अनृते) असत्य, सत्यज्ञान से रहित पदार्थ में (अश्रद्धाम्) अश्रद्धा, अप्रेम, या अग्राह्य बुद्धि को (अदधात्) धारण करता और कराता है और (सत्ये) सत्य में (श्रद्धाम् अदधात्) श्रद्धा अर्थात् सत्य करके मानने की बुद्धि को धारण कराता है। उसी प्रकार प्रजापालक राजा भी सत्य और असत्य को (ऋतेन) वेद के द्वारा निर्णय करा कर प्रकट करे और असत्य मन्तव्यों को अग्राह्य ठहरावें और सत्य में प्रेम, विश्वास और ग्राह्यता या मान्यता बुद्धि उत्पन्न करे। (ऋतेन) सत्य वेद द्वारा प्राप्त (सत्यम्) सत्य पदार्थ (इन्द्रियम्) आत्मा का हितकारी (विपानम्) विविध प्रकार से रक्षा करनेवाला, (शुक्रम्) आत्मा की शुद्धि करनेवाला, (अन्धसः इन्द्रस्य) अन्धकार के निवर्त्तक ऐश्वर्यवान् आत्मा और परमेश्वर प्रभु का (इन्द्रियम्)

परम ऐश्वर्य है जो (इदम्) साक्षात् (पयः) पुष्टिकारी दूध के समान सुखप्रद बुद्धिवर्धक, (अमृतम्) जल के समान जीवनप्रद, मृत्यु के भय को हरनेवाला और मधु के समान मधुर एवं ज्ञानरूप से मनन करने योग्य है। इसी प्रकार (ऋतेन) व्यवस्था ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त (सत्यं) सत्यनिर्णय या सज्जनों का हितकारी (इन्द्रियम्) चक्षु के समान मार्गदर्शक, मनके समान निर्णयकारी, (विपानं) प्रजा का विशेष पालक, (शुक्रम्) शुद्ध, (अन्धसः इन्द्रस्य) अज्ञाननाशक राजा का (इन्द्रियम्) विशेष ऐश्वर्य के समान शोभाकर है, जो (इदम्) साक्षात् (पयः) सबको तृप्तिकारक, (अमृतम्) अमर, अविनाशी और (मधु) दुष्टों को दमनकारी है।

वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽ इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७८ ॥

प्रजापतिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा (वेदेन) परम ज्ञान, ईश्वर से प्रकाशित सत्य ज्ञान, वेद के द्वारा (सुतासुतौ) 'सुत', इन्द्रियग्राह्य एवं विद्वानों द्वारा उपदिष्ट और 'असुत' इन्द्रियों द्वारा अप्राप्य, एवं विद्वानों द्वारा न उपदेश किये गये दोनों प्रकार के पदार्थों का (वि-अपिबत्) विशेष रूप से ज्ञान ग्रहण करे। (ऋतेन० इत्यादि) पूर्ववत्।

दृष्ट्वा परिस्रुतो रसꣳ शुक्रेण शुक्रं व्यपिबत् पयः सोमं प्रजापतिः। ऋतेन सत्यमिन्द्रियं विपानꣳ शुक्रमन्धसऽइन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥ ७९ ॥

प्रजापतिर्देवता। भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—(परिस्रुतः) सब प्रकार से अभिषिक्त (प्रजापतिः) प्रजापालक राजा (शुक्रेण) शुद्धि करनेवाले उपाय से (शुक्रम्) शुद्ध किये

गये (रसं) सारवान् पदार्थ को (दृष्ट्वा) पर्यालोचन करके (पयः) पुष्टिकारक (सोमम्) ऐश्वर्य को (वि अपिवत्) विविध उपायों से ग्रहण करता है। अथवा-(परिस्रुतः रसम्) परिपक्व अन्न के रस के समान उत्तम या भपके द्वारा प्राप्त सार पदार्थ के समान (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तिमान् अन्न, सुवर्ण आदि पदार्थ को भी (प्रजापतिः) राजा (शुक्रेण) शुद्ध निष्पाप उपाय से (दृष्ट्वा) देखभाल कर (पयः सोमम्) पुष्टिप्रद दूध के समान ऐश्वर्य को ओषधि के समान स्वच्छ करके (वि अपिबत्) पान करे, ग्रहण करे। (ऋतेन सत्यम्० इत्यादि) पूर्ववत्।

सीसे॑न॒ तन्त्रं॒ मन॑सा मनी॒षिण॑ऽऊर्णासू॒त्रेण॑ क॒वयो॑ वयन्ति।
अ॒श्विना॑ य॒ज्ञꣳ स॑वि॒ता सर॑स्व॒तीन्द्र॑स्य रू॒पं वरु॑णो भिष॒ज्यन् ॥८०॥

सविता सरस्वती वरुणश्च देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(कवयः) क्रान्तदर्शी (मनीषिणः) बुद्धिमान्, विद्वान् पुरुष जिस प्रकार (सीसेन) सीसा के बल पर (तन्त्रं) राष्ट्र को (वयन्ति) वृद्धि करते हैं अर्थात् सीसा की गोलियों से दुष्ट शत्रुओं का संहार करके राष्ट्र की वृद्धि करते हैं और जिस प्रकार वे (मनसा) मन से, आत्मचिन्तन से (तन्त्रम्) अति विस्तृत शास्त्र सिद्धान्त को (वयन्ति) उहापोह द्वारा विस्तृत ज्ञान करते और व्याख्या करते हैं और जिस प्रकार (ऊर्णासूत्रेण) ऊन और अन्य कोमल सूत्रमय पदार्थों के सूत से उसके समान (तन्त्रं) विस्तृत पट को (वयन्ति) बुनते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री पुरुष, (सविता) आज्ञापक, सूर्य के समान विद्वान् पुरुष और (सरस्वती) ज्ञानी वेदज्ञ और (वरुणः) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ सेनापति ये सब मिलकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राजा के (रूपं) उज्वल कान्तिमान् रूप को (भिषज्यन्) शरीर के समान पीड़ा और बाधाओं से रहित, निष्कण्टक करते हुए (तन्त्रं) राष्ट्र का (वयन्ति) विस्तार करते हैं।

तद॑स्य रू॒पम॒मृत॒ꣳ शची॑भिस्ति॒स्रो द॑धुर्दे॒वताः॑ सꣳररा॒णाः। लोमा॑नि॒ शष्पै॑र्बहु॒धा न तोक्म॑भि॒स्त्वग॑स्य मा॒ꣳसम॑भव॒न्न ला॒जाः ॥ ८१ ॥

अश्विनौ सविता सरस्वती वरुणश्च देवताः। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(तिस्रः देवताः) तीनों विजयशाली देवगण, (शचीभिः) अपनी २ शक्तियों से (अस्य) इस राष्ट्र-प्रजा-पालक राजा को (अमृतम्) अविनाशी, अखण्ड (रूपम्) रूप (संरराणाः) अच्छी प्रकार प्रदान करते हुए (दधुः) धारण पोषण करते हैं। वे (बहुधा) बहुत प्रकारों के (शष्पैः) शष्पों अर्थात् शत्रुओं को मारने और पालन करनेवाले साधन अस्त्र शस्त्रों से (अस्य लोमानि संदधुः) इस राष्ट्रमय प्रजापति के रोमों को निर्माण करते हैं। जैसे शरीर पर या पशु के शरीर पर बाल उसकी रक्षा करते हैं और सेहे के शरीर के रोमरूप कांटे ही उसकी शत्रु से रक्षा करते हैं उसी प्रकार शस्त्रास्त्र भी राजा और राज्य की रक्षा करते हैं। अतः वही राष्ट्र शरीर के लोम हैं। (न) और (तोक्मभिः) शत्रु को व्यथा देनेवाले और मारनेवाले सेनाओं के बल एवं महास्त्रों द्वारा वे विद्वान् (अस्य) इस राष्ट्रमय प्रजापति के (त्वक्) शरीर पर लगी त्वचा के समान आवरण परकोट की रचना करते हैं। वही २ सेनाएं और परकोट आदि राष्ट्र की त्वचा के समान हैं। (न) और (लाजाः) शोभाजनक, कान्तिमान् विभूतियां ही (मांसम्) इसका 'मांस' अर्थात् मनको लुभानेवाले पदार्थ के समान (अभवन्) हैं। अथवा—वही राष्ट्र में विद्यमान भोग साधन, पुष्ट शरीर के घटक मांस के समान है। राष्ट्र में विभूति समृद्धि ही राष्ट्र के हृष्ट पुष्ट शरीर में मांस के समान है। उस समृद्धि से ही राष्ट्र हृष्ट पुष्ट रहता है, पर दूसरे उसी को देखकर लुभा जाते हैं और उनका मन हरने से ही समृद्धियां 'मांस' के समान हैं।

'न'—अध्यायसमाप्तिपर्यन्तं नकाराः सर्वे चकारार्थाः इति महीधरः। नकारः समुच्चये आ अध्याय परिसमाप्तेरिति उवटः। यज्ञपक्षे—'न' निषेधार्थे इति दयानन्दः।

स्वाध्याय यज्ञपक्ष में—(तिस्रः देवताः) शिष्य गुरु और परीक्षक, परस्पर ज्ञान का आदान प्रदान करते हुए (अस्य अमृतं रूपं) इसके अमृतरूप को धारण करते हैं। और (शष्पैः लोमानि दधुः) लम्बे २ बालों के सहित लोमों को धारण करते हैं अर्थात् जटिल होकर व्रत से रहते हैं। (न तोक्मभिः) बालकों से यह यज्ञ नहीं होता। और (अस्य त्वग् मांसम् लाजा न अभवन्) उसके हवि में त्वचा, मांस, खीलें आदि हवि नहीं होतीं।

तद॒श्विना॑ भि॒षजा॑ रु॒द्रव॑र्तनी॒ सर॑स्वती वयति॒ पेशो॒ऽअन्त॑रम्। अ॒स्थि म॒ज्जानं॒ मास॑रैः कारोत॒रेण॒ दध॑तो॒ गवां॑ त्व॒चि ॥ ८२ ॥

अश्विनौ सरस्वती च देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(रुद्रवर्त्तनी) शरीर में एकादश रुद्रों, प्राणों के समान राष्ट्र में जीवन सञ्चार कराने वाले (अश्विना) अश्विगण, विद्वान् स्त्री पुरुष एवं गुरु और शिष्य और (सरस्वती) वेदविद्या या विद्वत्-सभा ये तीनों मिलकर (तत्) उस राष्ट्र के (अन्तरं) भीतरी (पेशः) सुन्दर रूप को (वयति) बनाते हैं। और (मासरैः) परिपक्व ओषधि रसों से जिस प्रकार वैद्य लोग शरीर के (अस्थि मज्जानम्) हड्डी और मज्जा भाग को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार उक्त विद्वान् लोग भी (कारोतरेण) कूप समूहों से और उत्तम शिल्पी, क्रियानिष्ठ मुख्य पुरुषों और (गवां त्वचि) भूमियों के पृष्ठ पर और (मासरैः) मासिक वेतनबद्ध भृत्यों से राष्ट्र के (अस्थि) अस्थि के समान स्थिर कार्यों, आधार स्थानों और (मज्जानम्) मज्जा के समान दृढ़ संधिबन्धों को अथवा वर्ष के दिन

रातों के समान राष्ट्रशरीर के समस्त मुख्य और गौण अङ्ग प्रत्यङ्गों को (दधतः) धारण करते हैं।

'अस्थि मज्जानम्'—सप्त च ह वै शतानि विंशतिश्च संवत्सरस्याहानि च रात्रयश्चेत्येतावन्त एव पुरुषस्यास्थीनि च मज्जानश्चेत्यत्र तत्समम् ॥ गो० पू० ५ । ५ ॥

सरस्वती मनसा पेशलं वसु नासत्याभ्यां वयति दर्शतं वपुः ।
रसं परिस्रुता न रोहितं नग्नहुर्धीरस्तसरं न वेम ॥ ८२ ॥

सरस्वती देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती) विज्ञानवाली, विदुषी स्त्री जिस प्रकार अपना (दर्शतम्) दर्शनीय (वपुः) शरीर बनाती है उसी प्रकार (सरस्वती) विज्ञानवान् विद्वानों की परिषद् भी (नासत्याभ्याम्) असत्य व्यवहारों से रहित, स्त्री पुरुषों से मिलकर राजा के लिये (मनसा) अपने ज्ञान के बल से (पेशलं) अति सुन्दर, सुवर्ण आदि से समृद्ध (वसु) ऐश्वर्य को (वयति) पट के समान निरन्तर बुनती सी रहती, पैदा ही करती रहती है। और जिस प्रकार स्त्री (परिस्रुता) परिस्रवण किये गये चुआये गये लाख से, मेंहदी के पीसे हुए रस से (रोहितं रसं न) लाल रस को पैदा कर देती है उसी प्रकार पूर्वोक्त विद्वत्सभा और (धीरः नग्नहुः) बुद्धिमान्, 'नग्न' अर्थात् विशुद्ध ज्ञान के ग्रहण करने हारा सभापति (परिस्रुता) राष्ट्र के समस्त प्रान्तों से प्राप्त राज्यलक्ष्मी से ही (रोहितं) 'रोहित', आदित्य के समान तेजस्वी, (रसम्) सारभूत लाल पोषाक पहने राजा को उसी प्रकार उत्पन्न करते हैं जैसे (तसरं वेम न) तसर और वेमा मिलकर (रोहितं न) लाल पट बुना करते हैं।

अथवा—(सरस्वती) स्त्री और (नग्नहुः) सुन्दर स्त्री को

स्वीकार करने वाला उसका पति दोनों मिलकर (रोहितं) रक्त, कांचन वर्ण (तसरं वेम न) दुःखक्षयकारक पुत्र को जिस प्रकार उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (सरस्वती नग्नहुः धीरः) विद्वत् सभा और शुद्ध तत्वज्ञानी बुद्धिमान् सभापति दोनों (तसरम्) प्रजा के दुःखनाशक (रसं) आनन्दप्रद (रोहितं) लोहित, काञ्चन ऐश्वर्य से युक्त अथवा आदित्य के समान तेजस्वी और लाल पोषाक पहने राजा को (वयति) उत्पन्न करते हैं ।

सरस्वती—प्रशस्तं सरः विज्ञानं यस्याः साः । दया० ।

'नग्नहूः'—नग्नं शुद्धं जुहोति गृह्णाति । अथवा–पतिपक्षे 'न-ग्नां' अन्येनानुपगतां कन्यां, अथवा नग्नशरीरे शुभलक्षणवतीं कन्यां जुहोति गृह्णाति यः सः ।

'नग्निकां श्रेष्ठां यवीयसीमुपयच्छेत' इति मानवगृह्यसूतत्रम् । 'नग्न-शरीरेपि शुभलक्षणवतीमिति' अष्टावक्रः ।

'रोहितं'—देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य रोहित सूक्त (३ खण्ड) ।

पयसा शुक्रममृतं जनित्रꣳ सुरया मूत्राज्जनयन्त रेतः ।
अपामतिं दुर्मतिं बाधमाना ऊवध्यं वातꣳ सब्वं तदारात् ॥८४॥

सोमो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(पयसा) जिस प्रकार पुष्टिकारक अन्न से (अमृतं) अमृत, आनन्दप्रद (जनित्रम्) पुत्रोत्पादक, (मूत्रात्) मूत्रेन्द्रिय से (रेतः) वीर्य को (सुरया) सुख से रमण करने योग्य स्त्री के संग सुरति द्वारा उत्पन्न कर (जनयन्त) प्रजा को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार (पयसा) पुष्टिकारक अन्न और बलके आधार पर (सुरया) सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी के संग से (मूत्रात्) शत्रु से त्राण करने वाले सेना-बल से ही (शुक्रम्) शुद्ध, (अमृतम्) अविनश्वर, अखण्ड (जनित्रम्)

और अधिक उत्पादक (रेतः) वीर्य या राजोचित तेज को (जनयन्त) विद्वान् लोग उत्पन्न करते हैं । (तत्) और तब (अमतिम्) राष्ट्र में से अमति, अज्ञानी या अदम्य और (दुर्मतिं) दुष्टमति वाले या दुर्दान्त पुरुषों को (अप बाधमाना) विनष्ट करते हुए (ऊवध्यं वातं) पेट में बैठी अपान वायु और (सब्वं) पक्वाशयगत मल को जिस प्रकार दूर फेंक दिया जाता है उसी प्रकार (ऊवध्यम्) लटका कर मारने योग्य (वातम्) वायु के समान प्रबल (सब्वं) राजा के विपरीत संघ या षड्यन्त्र बना कर बैठने वाले शत्रु को (आरात्) दूर निकाल देते हैं ।

राष्ट्र के कार्यों को शरीर के दृष्टान्त से समझाया है कि उसमें वीर्य और सन्तति जनक शक्ति के समान ही राष्ट्र में राजा का पद है । बुरे व्यक्ति मल और अपान वायु के समान हैं ।

'मूत्रात्'—मुच्यते यत् तत् मूत्रम् । उणादि० ४ । १६२ ॥

'सब्वं'—सप समवाये । समवायं संघ कृत्वा स्थितम् इत्यर्थः । सामवायिकों के वशीकरण का प्रकरण राजनीति के ग्रन्थों से जानना चाहिये ।

इन्द्रः सुत्रामा हृदयेन सत्यं पुरोडाशेन सविता जजान । यकृत् क्लोमानं वरुणो भिषज्यन्मतस्ने वायव्यैर्न मिनाति पित्तम् ॥ ८५ ॥

सविता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सविता) उत्पादक पुरुष देह जिस प्रकार (पुरोडाशेन) सुसंस्कृत अन्न से (सत्यं) सात्विक बल वीर्य को (जजान) उत्पन्न करता है और जिस प्रकार (सविता) सूर्य (पुरोडाशेन) प्रकाश से (सत्यं जजान) सत्पदार्थों के सत्य स्वरूप को प्रकट करता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (सुत्रामा) उत्तम प्रजापालक (सविता)

सूर्य के समान तेजस्वी राजा (हृदयेन) अपने हृदय से (सत्यं) सज्जनों के हितकारक राज्य को (जजान) प्रकट करता है ।

और जिस प्रकार (वरुणः) शरीर में स्थित अपान (यकृत्) यकृत्-कलेजे को (क्लोमानं) पिलही या कण्ठ नाड़ी को और (पित्तम्) पित्तखण्ड को और (मतस्ने) गुर्दों को (वायव्यैः) अपने वायु वेगों से (भिषज्यन्) पीड़ाएं दूर करता हुआ भी (न मिनाति) नहीं विनष्ट होने देता उसी प्रकार (वरुणः) समस्त प्रजाओं द्वारा वरण किया गया एवं दुष्टों का वारक राजा (वायव्यैः) अपने वायु के समान बलवान् वीर पुरुषों द्वारा (भिषज्यन्) राष्ट्र-शरीर में बैठे रोग को दूर करके उसको स्वस्थ सुखी बनाना चाहता हुआ भी (यकृत्) शरीर में यकृत्=कलेजे के समान राष्ट्र में यथानियम समस्त प्रजाओं को परस्पर सत्कर्म में लगाने वाले, दानशील विद्वान्, धार्मिक पुरुष को (क्लोमानं) शरीर में क्लोम, पिलही के समान दुष्ट पुरुषों के नाशक या कण्ठ नाड़ी के समान प्राण-धारक पुरुषों को (मतस्ने) आनन्द से सब को स्नान कराने वाले, शरीर में गुर्दों के समान मलशोधकों के समान 'मत्-स्ने' आनन्द से तृप्तिकारक ज्ञान से हृदय पवित्र करने वाले अध्यापक और उपदेशक, या आनन्द से रहने वाले स्त्री पुरुषों और राष्ट्र के भीतरी घटक और उपकारक अंगों को (पित्तम्) शरीर में पित्त के समान पालनकारी, पवित्रकारी, गुरुजन को भी (न मिनाति) पीड़ित नहीं करता ।

यकृत् । यजतीति यकृत् । यजेर्ऋतन् उणादिप्रत्ययः । इति दया० उणा० ।

आन्त्राणि स्थालीर्मधु पिन्वमाना गुदाः पात्राणि सुदुघा न धेनुः । श्येनस्य पत्रं न प्लीहा शचीभिरासन्दी नाभिरुदरं न माता ॥ ८६ ॥

सविता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(श्येनस्य) बाज के समान तीव्र वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में वीर राजा की (स्थालीः) राज्य स्थापना की शक्तियां (आन्त्राणि) शरीर में आँतों के समान राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को भीतर ही उपयोग करती हैं। वे (पात्राणि) पालन करने वाले अधिकारी शासकों के पद शरीर में (मधु पिन्वमानाः) अन्न को समस्त शरीर में पहुंचा देने वाले (गुदाः) गुदागत स्थूल नाड़ियों के समान स्वयं भी (गुदाः) आनन्द या मधु ऐश्वर्य को (पिन्वमानाः) सर्वत्र पहुं-चाने हारे (गुदाः) आनन्द या उत्तेजना उत्पन्न करने वाले या गति प्रदान करने वाले सञ्चालक रूप हैं। और (सुदुघा) समस्त उत्तम ऐश्वर्यों की देने वाली यह पृथिवी (धेनुः न) दुधार गौ के समान है। शरीर में स्थित (प्लीहा न) पिलही जिस प्रकार शरीरस्थ विकारों को नाश करती है उसी प्रकार (श्येनस्य) बाज के समान शत्रु पर झपटने वाले वीर पुरुष का (पत्रम्) तलवार या विजय रथ है। (नाभिः आसन्दी) जिस प्रकार शरीर में नाभि केन्द्र है सब नाड़ियें वहां सम्बद्ध हैं उसी प्रकार 'आसन्दी' राजा के बैठनी की गद्दी या राजधानी है। जिस प्रकार (उदरं न माता) शरीर में उदर, पेट समस्त अन्नों को लेकर रस ग्रहण करता और अपरस को बाहर निकालता है उसी प्रकार राजा की 'माता' उसको उत्पन्न करने वाली अथवा 'माता' ज्ञान करने हारी परिषद् सत्या-असत्य, ग्राह्य-अग्राह्य का विवेक करती है। वह (शचीभिः) अपनी प्रज्ञाओं और शक्तियों से और राज्य का सञ्चालन करती है।

कुम्भो वनिष्ठुर्जनिता शचीभिर्यस्मिन्नग्रे योन्यां गर्भो ऽअन्तः।
प्लाशिर्व्यक्तः शतधार उत्सो दुहे न कुम्भी स्वधां पितृभ्यः ॥८७॥

भा०—(वनिष्ठुः) शरीर में 'वनिष्ठु' अर्थात् जिस में स्थूल आँतें रहती हैं वह कटि का चूतड़ भाग जिसमें (अग्रे) सब से प्रथम

स्त्री-शरीर में (योन्यां) योनि के (अन्तः) बीच में स्थित (गर्भः) गर्भ रहता है उसके समान ही राजा भी स्वयं (कुम्भः) पृथ्वी को भी पोषण करने में समर्थ और (शचीभिः) अपनी शक्तियों से (जनिता) राष्ट्र का उत्पादक होता है। शरीर में जिस प्रकार (प्लाशिः) शिश्न भाग (व्यक्तः) प्रकट है जो मूत्रादि बहाने में (शतधारः उत्सः इव) शतधार स्रोत के समान है उसी प्रकार राष्ट्र शरीर में भी (प्लाशि:=प्राशि:) उत्तम पदों और ऐश्वर्यों को प्राप्त करने वाला वैश्य भाग है जो (शतधारः उत्सः इव) सैकड़ों धारा वाले स्रोत या मेघ के समान ऐश्वर्यों को बहाता है। और (कुम्भी) घर की धान और जल से भरी गगरी जिस प्रकार (पितृभ्यः) घर के पालक वृद्धजनों को भी (स्वधां दुहे) अन्न और जल प्रदान करती है (न) उसी प्रकार (कुम्भी) पृथिवीवासिनी प्रजा का पालन करने वाली यह पृथिवी (पितृभ्यः) पालक, शासक पुरुषों को (स्वधाम्) अन्न और स्व अर्थात् देहधारक, वेतन आदिक (दुहे) प्रदान करती है।

गृहस्थ प्रकरण में—(कुम्भः) कलश के समान वीर्य शौर्य आदि से पूर्ण, (वनिष्ठुः) भोक्ता, (जनिता) सन्तानोत्पादक, (प्लाशिः) समस्त पदार्थों का संग्रहीता, (शतधारः) सैकड़ों वाणी वाला, (उत्सः) कूप के समान गंभीर प्रेम का स्रोत होकर पति रहे। और (कुम्भी) इसी प्रकार वीर्यादि से पूर्ण स्त्री भी रहे। दोनों (पितृभ्यां स्वधां दुहे) अपने पालक जनों को अन्न भोजन दें। पुरुष (यस्मिन् अग्रे) जिसमें प्रथम ही वीर्य रूप में सन्तान विद्यमान होती है और स्त्री जिसमें बाद में (योन्यामन्तः गर्भः) योनि के भीतर गर्भ रूप से सन्तान उत्पन्न होती है, दोनों ही अपने (पितृभ्यां) पिताओं के ऋण रूप (स्वधाम्) उनके अपने अंश रूप सन्तति को (दुहे) उत्पन्न करके सफल हों।

८

मुखꣳ सद॑स्य शिर॒ऽइत् सते॑न जि॒ह्वा प॒वित्र॑म॒श्विना॒सन्त्सर॑स्वती।
च॒प्यं॑न पा॒युर्भि॒षग॑स्य॒ वालो॑ व॒स्तिर्न शेपो॒ हर॑सा तर॒स्वी ॥८८॥

भा०—(अस्य) इस राजा का (मुखं) शरीर में मुख के समान और (शिरः) शिर के समान (सत्) संसत्, राजसभा है। (आसन्) मुख में जिस प्रकार (जिह्वा) जिह्वा होती है उसी प्रकार (सतेन) विभक्त राजसभा में (पवित्रम्) सदाचारवान् (अश्विना) स्त्री पुरुष और (सरस्वती) पवित्र वेदवाणी, व्यवस्था पुस्तक है। (पायुः) शरीर में 'पायु' गुदा भाग जिस प्रकार शरीर में से मल मूत्रादि दूर करके शरीर को शान्ति देता है (न) उसी प्रकार (चप्यं) राष्ट्र में दुष्टों को दूर करके प्रजा को सान्त्वना और सुख की आशा दिलाने के श्रेष्ठ कार्य हैं। (वालः) शरीर में जिस प्रकार वाल समस्त रोगों को दूर करते हैं और पुच्छादि के वाल जिस प्रकार मशक आदि को दूर करते हैं उसी प्रकार (अस्य) इस राजा के राष्ट्र के (भिषग्) रोगों के निवारक वैद्यगण हैं। (वस्तिः शेपः न) जिस प्रकार शरीर में वस्ति अर्थात् मूत्र स्थान और पुरुष-शरीर में 'शेप' अर्थात् प्रजनेन्द्रिय दोनों में एक तो वेग से मूत्र प्रवाहित करके शरीर को शुद्ध करता है दूसरा काम वेग से तीव्र होकर भोगभिलाषी होता है उसी प्रकार राष्ट्र में (हरसा) शत्रु को मार भगाने में समर्थ वीर्य से (तरस्वी) अति वेगवान सेनाबल दुष्ट को राष्ट्र से बाहर निकालता है और राष्ट्र के निमित्त समस्त सुखों को प्राप्त भी कराता है।

गृहस्थ पक्ष में—इसी मन्त्र से स्त्री पुरुष के व्यवहार का भी वर्णन किया है।

'सतः' तिरः सतः इति प्राप्तस्य। निरु० ३। ४। ३॥ 'चप्यं' चप सान्त्वने। भ्वादिः॥

अ॒श्विभ्यां॒ चक्षु॑र॒मृतं॒ ग्रहा॑भ्यां॒ छाग॑ेन॒ तेजो॑ ह॒विषा॑ शृ॒तेन॑।
पक्ष्मा॑णि गो॒धूमैः॒ कुव॑लैरु॒तानि॒ पेशो॒ न शु॒क्रमसि॑तं वसाते ॥८९॥

अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(ग्रहाभ्यां) एक दूसरे को ग्रहण या स्वीकार करनेवाले (अश्विभ्यां) एक दूसरे को व्याह को करके परस्पर का सुख आनन्द भोग करने वाले राजा प्रजा और स्त्री पुरुष दोनों से ही राजा या ऐश्वर्यमय राष्ट्र की (अमृतम्) अमृतमय (चक्षुः) शरीर में आंख के समान सत् असत् दिखानेवाली चक्षु बनती है। (छागेन) बकरी के दूध से और (शृतेन हविषा) परिपक्व अन्न से जिस प्रकार शरीर में चक्षु के (तेजः) तेज, कान्ति की वृद्धि ही होती है उसी प्रकार राष्ट्र के शरीर में (छागेन) पर पक्ष के छेदन करनेवाले तर्क अथवा शत्रु पक्ष के छेदन करनेवाले नीति और सैन्य बल से और (शृतेन हविषा) संपक्क अन्न के भोजन से (तेजः) तेज, बल, पराक्रम की वृद्धि होती है। जिस प्रकार (पक्ष्माणि) आंख के पलकों के बाल होते हैं उसी प्रकार राष्ट्र में उनकी तुलना (गोधूमैः) खेत में उगे गेहूं आदि धान्यों से करनी चाहिये। (उतानि) जिस प्रकार आंख के बचाव के लिये भौंहों के बाल हैं उनकी तुलना (कुवलैः) राष्ट्र भूमि में उगे झरबेरीयों के कांटेदार वृक्षों से करना चाहिये। और जिस प्रकार चक्षु को (शुक्रम् असितं न) श्वेत और काला (पेशः) दोनों प्रकार के चर्म (वसाते) आंख को ढके हुए हैं उसी प्रकार राष्ट्ररूप चक्षु को (शुक्रम्) शुद्ध स्वच्छ कान्तिमान् स्वर्ण, रजतादि धातु और (असितं) काले वर्ण के लोहे, सीसा आदि धातु दोनों (पेशः) बहुमूल्य सुवर्ण आदि पदार्थ अथवा (शुक्रम् असितं पेशः) श्वेत और काले, उजले और कृष्ण वर्ण के अथवा गृहस्थ और मुमुक्षु लोग (वसाते) बसा रहे हैं, आच्छादित करते हैं।

राष्ट्रवासी स्त्री पुरुषों ने मिलकर मानो राष्ट्र को एक आंख का रूप दे दिया है। शस्त्र, बल और अन्न उसका तेज है, गेहूं धान उसकी पलकें हैं, बेरी आदि कांटेदार वृक्ष भौंहें हैं। गोरे और काले या गृहस्थ और

मुमुक्षु आदमी या उजली काली धातुएं, या चमकदार और बेचमकदार काले उसके सफेद पदार्थ भीतरी चमड़े हैं जो उसको ढांपते हैं ।

अविर्न मेषो नसि वीर्याय प्राणस्य पन्था ऽअमृतो ग्रहाभ्याम् ।
सरस्वत्युपवाकैर्व्यानं नस्यानि बर्हिर्वदरैर्जजान ॥ ६० ॥

इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—इन्द्र अर्थात् ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की 'नासिका' से तुलना करते हैं । (नसि) नाक में जिस प्रकार (अविः मेषः) बल और जीवन का सेचन करनेवाला प्राण है और वह शरीर की (न) भी (अविः) रक्षा करता और (वीर्याय) शरीर में बल उत्पन्न करने के लिये है उसी प्रकार राष्ट्र में (अविः) राष्ट्र का रक्षक पुरुष और (मेषः) उसको सुख समृद्धि से सेचन करने और शत्रुओं के प्रति स्पर्द्धा करने में समर्थ होकर राष्ट्र के (वीर्याय) वीर्य, बल वृद्धि के लिये होता है । और यह नाक (ग्रहाभ्याम्) सदा ग्रहण करने योग्य प्राण और अपान या उच्छ्वास और निःश्वास दोनों द्वारा या श्वास ग्रहण करनेवाले मार्गों से बनी है और वही (प्राणस्य) प्राण का भी (अमृतः) अमृत, जीवनप्रद (पन्थाः) मार्ग है । उसी प्रकार (ग्रहाभ्याम्) एक दूसरे को स्वीकार करनेवाले स्त्री पुरुषों से ही इस राष्ट्र की रचना है, वह (प्राणस्य) मुख्य प्राण या बल का (अमृतः) अमृत, जीवनप्रद, अविनाशी (पन्थाः) मार्ग बना है । और वही (सरस्वती) वाणी शरीर में जिस प्रकार (उपवाकैः) समीप ही स्थित वचनों से नासिका में (व्यानं) व्यान नामक प्राण के विविध सामर्थ्यों को प्रकट करता है उसी प्रकार राष्ट्र में (सरस्वती) विज्ञानों से पूर्ण विद्वत्सभा (उपवाकैः) नाना शास्त्र-प्रवचनों से (व्यानं) विविध सामर्थ्य प्रकट करती है । (नस्यानि) जिस प्रकार नाक के लोम हैं वे नाक में शुद्ध वायु का प्रवेश कराते हैं और नासिका के हितकारी हैं उसी प्रकार

(बर्हिर्बदरैः) कुश आदि ओषधियें और बेर आदि वन्य फल के वृक्षों से मानो राष्ट्ररूप नाक में लोम के समान (जजान) प्रतीत होते हैं। संक्षेप में-राष्ट्र-रूप नाक में रक्षक राजा प्राण है स्त्री पुरुष दो प्राण के मार्ग हैं, विद्वत्सभा द्वारा बनाई नियमाज्ञावचन नाक में स्थित व्यान है और जंगल के ओषधि फलादि वृक्ष नाक के लोम हैं।

इन्द्रस्य रूपमृषभो बलाय कर्णाभ्याᳬश्रोत्रममृतं ग्रहाभ्याम्। यवा न बर्हिर्भ्रुवि केसराणि कर्कन्धु जज्ञे मधु सारघं मुखात् ॥ ९१ ॥

इन्द्रो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—राष्ट्र की मुख से तुलना करते हैं। (बलाय) बल के कार्य करने के लिये जिस प्रकार (ऋषभः) बड़ा बैल गाड़ी में लगाया जाता है उसी प्रकार (ऋषभः) शरीर में व्यापक, उसे गति देनेवाला आत्मा या मुख्य प्राण ही (बलाय) शरीर में बल उत्पन्न करने और बलके कार्य करने के लिये है। उसी प्रकार राष्ट्र में (ऋषभः) समस्त नरों में श्रेष्ठ पुरुष बलवान् कार्य के लिये नियुक्त किया जाता है। वही (इन्द्रस्य रूपम्) शत्रु नाशक राजा, एवं आत्मा का स्वरूप उत्तम मुख के समान है। कैसे? (ग्रहाभ्याम् कर्णाभ्यां तस्य अमृतं श्रोत्रम्) जैसे शब्दों के ग्रहण करनेवाले कानों से उस आत्मा का 'अमृत' अविनाशी, (श्रोत्रम्) श्रोत्र अर्थात् श्रवण शक्ति बनी है उसी प्रकार वेतन आदि स्वीकार करनेवाले कानों के समान प्रिय वचनों को श्रवण करनेवाले स्त्री पुरुषों से ही उस राष्ट्ररूप मुख का मानो 'श्रोत्र' बना है। और (यवाः बर्हिः न) और ओषधि आदि मानो राष्ट्ररूप मुख पर लगे (भ्रुवि केसराणि) भौंहों के रोमों के समान है। (कर्कन्धु) परिपक्व फल मानो (सारघं मधु) मधु मक्खियों का मधु आदि पदार्थ और अन्न (मुखात्) मुख से निकलनेवाले (सारघं मधु) सारवान्, अर्थ संपूर्ण मधुर वचन के समान है।

आत्मन्नुपस्थे न वृकस्य लोम मुखे श्मश्रूणि न व्याघ्रलोम। केशा न शीर्षन्यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि ॥९२॥

आत्मा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्र की शरीर से तुलना करते हैं (आत्मन्) समस्त देह में और (उपस्थे) गुह्य भाग में (लोम) जितने रोम या बाल हैं वे मानो राष्ट्र में विद्यमान (वृकस्य लोम) भेड़िये के लोमों के समान है। अर्थात् भेड़िये के स्वरूप या स्वभाव वाले पुरुष शरीर में सामान्य लोम गुह्यांग लोमों के तुल्य हैं। और (व्याघ्रलोम) व्याघ्र के लोम अर्थात् व्याघ्र के समान बड़े जन्तुओं पर भी आक्रमण करनेवाले शौर्य गुण के सम्पन्न पुरुष (मुखे श्मश्रूणि) शरीर में मुख पर लगे मोंछ के बालों के समान हैं। (यशसे) यश के लिये, बड़े साहस के कार्य करने वाले पुरुष देह में (शीर्षन्) शिर पर लगे (केशः न) केशों के समान हैं। लक्ष्मी और शोभामात्र के लिये उद्यम करनेवाले लोग (शिखा) सिर पर चोटी के बालों के समान हैं। (सिंहस्य लोम) सिंह के समान पराक्रम करनेवाले स्वभाव के लोग शरीर में विद्यमान (त्विषिः) तेज या कान्ति के समान एवं (इन्द्रियाणि) शरीर में लगे ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के समान हैं।

अङ्गान्यात्मन् भिषजा तदश्विनात्मानमङ्गैः समधात् सरस्वती। इन्द्रस्य रूपं शतमानमायुश्चन्द्रेण ज्योतिरमृतं दधानाः ॥९३॥

अश्विनौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(भिषजौ) समस्त रोगों की चिकित्सा करने वाले (अश्विनौ) सद्वैद्य जिस प्रकार (आत्मन्) देह में (अङ्गानि) अंगों को (सम् अ धाताम्) जोड़ देते हैं और जिस प्रकार (अश्विनौ) शरीर में व्यापक प्राण और अपान दोनों (आत्मन्) आत्मा के समक्ष (अंगानि) ज्ञाने-

न्द्रिय और कर्मेन्द्रियों को सम्बद्ध किये रहते हैं (तत्) उसी प्रकार (अश्विना) व्यापक सामर्थ्य वाले स्त्री और पुरुष या मुख्य दो अधिकारी (आत्मन्) आत्मस्वरूप राष्ट्र के राज्य में ही समस्त (अङ्गानि) राज्य के अंगों को (सम् अधातम्) भली प्रकार जोड़ते हैं। और (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त स्त्री के समान राजसभा (अङ्गैः) राज्य के सारे अंगों के साथ (आत्मानम्) आत्मा के समान व्यापक शक्तिमान् राजा को (सम अधात्) संयुक्त करती है। पूर्वोक्त दो अश्विगण और सरस्वती तीनों (चन्द्रेण) चन्द्र के बल से (अमृतं ज्योतिः) अमृतमय सुखप्रद ज्योति के समान (चन्द्रेण) आह्लादकारी राजा या राज्य के साथ (अमृतम्) अविनाशी, सुखप्रद अन्नादि समृद्धि और (ज्योतिः) परम तेज को (दधानाः) धारण करते हुए (इन्द्रस्य) शत्रुनाशक राजा के (रूपं) स्वरूप को और (आयुः) जीवन को (शतमानम्) सौगुणा अथवा सौ वर्षों के परिमाण वाला कर देते हैं।

अध्यात्म में—(अश्विनौ अङ्गानि आत्मन्) प्राण और अपान दोनों का अभ्यास योग के अंगों को समाहित, सुसम्पन्न करता है। (सरस्वती आत्मानम् अङ्गैः सम् अधात्) सरस्वती, वेद वाणी का स्वाध्याय आत्मा को योगाङ्गों से युक्त करता है। प्राणायाम और स्वाध्याय दोनों (इन्द्रस्य रूपं शतमानम् आयुः) जीव की आयु को सौ वर्षों का बना देते हैं। वे (चन्द्रेण) आह्लादजनक वीर्य के साथ या सोमचक्र के साथ (अमृतं ज्योतिः दधानाः भवन्ति) अमृत-आत्म-ज्योति या प्रकाश को धारण कराते हैं।

'अंगानि'—मन्त्राङ्गानि—सहायाः साधनोपायाः विभागो देशकालयोः।
विनिपात प्रतीकारः मन्त्रः पञ्चांगइष्यते।

सप्ताङ्गानि—स्वाम्यमात्यसुहृत-कोश-राष्ट्र-दुर्ग-बलानि च।

योग के अष्टांग—यम, नियमासन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा समाधयः ॥

गृहस्थ पक्ष में—(अश्विनौ) स्त्री पुरुष (आत्मान्) अपने आत्मा के भीतर समस्त अंगों को (सम् अधाताम्) संधान करें, धारण करें। (सरस्वती) वाणी, (अंगैः) अपने समस्त अंगों से आत्मा या जीव को युक्त करे। समस्त प्राणगण (चन्द्रेण) वीर्य के साथ (अमृतं ज्योतिः दधानाः) अमर आत्मा की ज्योति को धारण करने वाले अंग ही (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् आत्मा के (शतमानम् आयुः) सौ वर्ष के दीर्घ जीवन को धारण करते हैं।

सर॑स्वती॒ योन्या॒ङ्गर्भ॑म॒न्तर॒श्विभ्यां॒ पत्नी॒ सुकृ॑तं बिभर्त्ति।
अ॒पा᳖ᳫं रसे॑न॒ वरु॑णो॒ न साम्नेन्द्र॑ᳫं श्रि॒यै ज॒नय॑न्न॒प्सु राजा॑ ॥ ९४ ॥

सरस्वती देवता। विराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—जिस प्रकार (सरस्वती) स्त्री (पत्नी) गृहपत्नी होकर (योन्याम् अन्तः) योनिस्थान में (सुकृतम्) उत्तम रीति से स्थापित (गर्भम्) गर्भ को (बिभर्त्ति) धारण पोषण करती है, उसी प्रकार (योन्याम् अन्तः) संगत होने या एकत्र होने के स्थान सभाभवन के भीतर (पत्नी) राष्ट्र का पालन करने वाली (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा (अश्विभ्याम्) राजा और प्रजा दोनों के लिये (सुकृतम्) उत्तम रूप से बनाये गये (गर्भम्) राष्ट्र के ग्रहण करने वाले राजा को (बिभर्त्ति) धारण करती है। और (वरुणः) स्वयं वरण किया पति जिस प्रकार (अपां रसेन) प्राणों के वीर्य से (इन्द्रं जनयत्) जीव, बालक को उत्पन्न करता है। (वरुणः) समस्त प्रजा द्वारा वरण किया गया (राजा) राजा राजपद पर विराजमान होकर (अपां रसेन) आप्त पुरुषों के बल से (साम्ना) और साम उपाय से (अप्सु) प्रजाओं में (श्रियै) लक्ष्मी,

धन समृद्धि की वृद्धि के लिये (इन्दम्) ऐश्वर्य रूप राष्ट्र को (जनयत्) उत्पन्न करता है।

तेजः पशूनाᳬं हविरिन्द्रियावत् परिस्रुता पयसा सारघं मधु। अश्विभ्यां दुग्धं भिषजा सरस्वत्या सुता सुताभ्याममृतः सोम ऽइन्दुः ॥ ६५ ॥

अश्विनौ देवते। निचृज्जगती। निषादः॥

भा०—जिस प्रकार (पशूनां) पशुओं का (दुग्धं) दुहा गया दूध (हविः) खाने योग्य, (इन्द्रियावत्) शरीर में बलकारक, (तेजः) तेज उत्पन्न करने वाला है। और जिस प्रकार (सारघम् मधु) मधुमक्खियों से प्राप्त किया, फूलों २ से दुहा गया 'मधु' (इन्द्रियावत् तेजः) बल और तेज को उत्पन्न करता है। उसी प्रकार (अश्विभ्याम्) राष्ट्र के स्त्री पुरुषों या मुख्य अधिकारियों ने और (सरस्वत्या) विद्वत्सभा ने मिलकर (परिस्रुता) सब ओर से स्रवण करने वाले अभिषेक के (पयसा) जल से (सुत-असुताभ्याम्) अभिषिक्त राजाओं और अनभिषिक्त प्रजाओं से (अमृतः) राष्ट्र के जीवन स्वरूप, अमर (इन्दुः) परमैश्वर्यवान् (सोम) सबका आज्ञापक राजा (दुग्धः) मानो दुहकर प्राप्त किया है।

॥ इत्येकोनविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥

अथ विंशोऽध्यायः

प्रजापतिर्ऋषिः ।

॥ ओ३म् ॥ क्षत्रस्य योनिरसि क्षत्रस्य नाभिरसि ।
मा त्वा हिंꣳसीन्मा मा हिꣳसीः ॥ १ ॥

राजा सभेशो देवता । द्विपदा विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (क्षत्रस्य) वीर्य, क्षात्रबल और राज्य का (योनिः) आश्रयस्थान (असि) है । (क्षत्रस्य) राजकुल, क्षात्र सेना-बल का (नाभिः) नाभि के समान केन्द्र, उनको परस्पर सुप्रबद्ध करने वाला मुख्य पुरुष (असि) है । यह राष्ट्रवासी प्रजाजन (त्वा) तुझे (मा हिंसीत्) न मारे, विनाश न करे । हे राजन् ! (मा) मुझ राष्ट्रवासी जन को भी तू (मा हिंसीः) मत मार ।

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः । मृत्योः पाहि विद्योत् पाहि ॥ २ ॥

भुरिग् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(धृतव्रतः) व्रतों, नियमों को धारण करने वाला, (सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञावान्, कुशल पुरुष (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, प्रजा के कष्टों को वारण करनेहारा (पस्त्यासु) न्यायगृहों में या प्रजाओं के बीच, (आ नि-ससाद) साक्षात् विराजमान हो । हे राजन् ! तू (मृत्योः) प्रजा को मृत्यु अर्थात् मरने के कारण से (पाहि) बचा । (विद्योत्) विद्युत् के समान अग्नि आदि के बने नाशक अस्त्रों से (पाहि) बचा । अर्थात् राजा प्रजा की अकारण, एवं अकाल मृत्यु से रक्षा करे और शत्रु के आक्रमणों से रक्षा करे ।

१—क्षत्रस्य नाभिरसि क्षत्रस्य योनिरसि० । इति काण्व० ।

देवस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्याम् ।
अ॒श्विनो॒र्भैष॑ज्येन तेज॑से ब्रह्मवर्च॒साया॒भि षि॑ञ्चामि ।
सर॑स्वत्यै॒ भैष॑ज्येन वी॒र्या॒या॒न्नाद्या॑या॒भि षि॑ञ्चामि ।
इन्द्र॑स्येन्द्रि॒येण॒ बला॑य श्रि॒यै यश॑से॒ऽभि षि॑ञ्चामि ॥ २ ॥

अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—अभिषेक का वर्णन करते हैं। हे राजन् ! मैं अध्वर्यु, वेदज्ञ पुरुष, राजा और प्रजाजन दोनों का प्रतिनिधि होकर (सवितुः) सर्वोत्पादक (देवस्य) सर्वप्रकाशक परमेश्वर के (प्रसवे) महान् ऐश्वर्यमय जगत् में (अश्विनोः) विद्या और कर्म दोनों में पारंगत विद्वान् और कर्मिष्ठ पुरुषों के (बाहुभ्याम्) शत्रुओं को पीड़न करने में समर्थ बाहुओं से और (पूष्णः) पुष्टि करने वाले अन्नादि से सबके पोषक भूमिवासी कृषक वर्ग के हाथों से और (अश्विनोः) वैद्यक विद्याओं में निष्णात पुरुषों के (भैषज्येन) चिकित्सा या रोगनिवृत्ति के द्वारा सम्पादित (तेजसे) तेज, पराक्रम की वृद्धि और (ब्रह्मवर्चसाय) ब्रह्मवर्चस, वीर्यरक्षा वेदज्ञान की वृद्धि के लिये (अभि षिञ्चामि) तुझे अभिषिक्त करता हूं। और (सरस्वत्यै) प्रशस्त ज्ञान वाली वेदवाणी के द्वारा (भैषज्येन) अविद्यादि दोषों के दूर करने के उपाय से मैं तुझको (वीर्याय) वीर्य, बल की वृद्धि के लिये और (अन्नाद्याय) राष्ट्र के भोग्य अन्नादि पदार्थों के भोगार्थ अधिक शक्ति प्राप्त करने के लिये (अभि षिञ्चामि) अभिषेक करता हूं और (इन्द्रस्य) शत्रुहन्ता सेनापति और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (इन्द्रियेण) बल से (बलाय) बल या सेनाबल की वृद्धि और (श्रियै) राज्यलक्ष्मी की वृद्धि और (यशसे) कीर्त्ति के लिये (अभि षिञ्चामि) अभिषिक्त करता हूं।

कोऽसि कत॒मोऽसि॒ कस्मै॑ त्वा॒ काय॑ त्वा ।
सु॒श्लो॒क॒ सुम॑ङ्गल॒ सत्य॑राजन् ॥ ४ ॥

निचृदार्षी गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे उत्तम पुरुष ! तू (कः असि) तू कौन है, तू (कतमः असि) उपस्थित पुरुषों में से कौन सा है । यह अपना परिचय समस्त पुरुषों को दे । (कस्मै त्वा) किस प्रयोजन के लिये तुझे यहां अभिषेक किया है, इसका भी परिचय दे । (काय) प्रजापालक, प्रजापति, राजा पद के लिये (त्वा) मैं तुझे अभिषेक करता हूं । अध्वर्यु राजा को राजपद पर बैठा कर तिलक कर के सम्बोधन करे । हे (सु-श्लोक) उत्तम कीर्त्ति वाले ! हे (सुमङ्गल) उत्तम मङ्गल कार्यों के करने हारे ! हे (सत्यराजन्) सत्य के प्रकाशक ! और सत्य न्याय से प्रकाशमान या सत्यधर्मों के प्रकाशक राजन् ! या सत्य यथार्थ राजा स्वरूप तुझे मैं अभिषिक्त करता हूं । अथवा—हे राजन् ! (कः असिः) तू प्रजापति है । तू (कतमः असि) प्रजापालकों में सब से उत्तम है । (कस्मै त्वा) प्रजापति के पद के लिये तुझे अभिषिक्त करता हूं । (काय त्वा) ब्रह्म, या वेद ज्ञान की वृद्धि के लिये तुझे अभिषिक्त करता हूं । इत्यादि पूर्ववत् ॥

शिरो॑ मे॒ श्रीर्यशो॒ मुखं॒ त्विषिः॒ केशा॑श्च॒ श्मश्रू॑णि ।
राजा॑ मे प्रा॒णोऽअ॒मृत॑ᳪ स॒म्राट् चक्षु॑र्वि॒राट् श्रोत्र॑म् ॥ ५ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! राज्य में अभिषिक्त (मे) मुझ राजा का (श्रीः) शोभा या धनैश्वर्य (शिरः) मेरे शिर के समान है । (यशः मुखं) यश मुख के समान है । (त्विषिः) ओज, कान्ति, पराक्रम, शौर्य (श्मश्रूणि केशाः च) शिर के केश और मूछों के समान है । (मे) मुझ राष्ट्र का (प्राणः) प्राण (राजा) राजा का पद या स्वयं राजा (अमृतम्) जीवन

रूप है। (सम्राट्) सम्राट् का पद (चक्षुः) आंख के समान साक्षीरूप है। (विराट्) विविध विद्वान् सभासदों से प्रकाशमान् राजसभा (श्रोत्रम्) शरीर में लगे श्रोत्र के समान प्रजा राजा के समस्त व्यवहारों को सावधान होकर श्रवण करने वाला हो।

जिह्वा मे भद्रं वाङ्महो मनो मन्युः स्वराड् भामः।
मोदाः प्रमोदाऽअङ्गुलीरङ्गानि मित्रं मे सहः ॥ ६ ॥

अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(जिह्वा मे भद्रम्) शरीर में जिस प्रकार जिह्वा है उसी प्रकार (मे) मेरे राष्ट्र में (भद्रम्) समस्त कल्याण के कार्य हैं। (वाक् महः) वाणी विज्ञान है। (मनः मन्युः) मन ज्ञानवान् पुरुष के समान है। (स्वराड् भामः) स्वराड् का पद शरीर में विद्यमान क्रोध के समान है। (मोदाः प्रमोदाः) राष्ट्र में विद्यमान आमोद, प्रमोद (अङ्गुलीः अङ्गानि) हाथ की अंगुलियों और अन्य अंगों के समान है। (मे सहः) शत्रु के पराजय करने में समर्थ सैन्यबल (मे मित्रम्) मेरा मित्र है।

बाहू मे बलमिन्द्रियꣳ हस्तौ मे कर्म वीर्यम्।
आत्मा क्षत्रमुरो मम ॥ ७ ॥

भा०—(इन्द्रियं बलम् मे बाहू) इन्द्र, सेनापति का समस्त बल मेरे बाहू हैं। (वीर्यं कर्म मे हस्तौ) वीर्योचित कर्म मेरे हाथ हैं। (आत्मा उरः च मम क्षत्रम्) राष्ट्र को क्षति से बचाने वाला क्षात्रबल मेरा आत्मा और विशेष कर छाती के समान है।

पृष्ठीर्मे राष्ट्रमुदरमꣳसौ ग्रीवाश्च श्रोणी।
ऊरूऽअरत्नी जानुनी विशो मेऽङ्गानि सर्वतः ॥ ८ ॥

निचृदनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(राष्ट्रं मे पृष्ठीः) राष्ट्र, जनपद मेरी पसुलियों के समान हैं। (विशः) समस्त प्रजाएं (उदरम्) पेट, (अंसौ) कन्धे, (ग्रीवाः

च) गर्दन के मोहरे, (श्रोणी) कटि, (ऊरू) जांघ, (अरत्नी) हाथ के भाग, (जानुनी) गोड़े (सर्वतः) ये सब (मे अङ्गानि) मेरे अंगों के समान हैं।

नाभिर्मे चित्तं विज्ञानं पायुर्मेऽपचितिर्भसत्।
आनन्दनन्दावाण्डौ मे भगः सौभाग्यं पसः।
जङ्घाभ्यां पद्भ्यां धर्मोऽस्मि विशि राजा प्रतिष्ठितः ॥ ६ ॥

षट्पदाऽनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—(चित्तं) चित्त (मे नाभिः) मेरी नाभि के समान है। (विज्ञानं) विज्ञान (पायुः) पायु अर्थात् गुदा के समान है। (अपचितिः) पूजासामग्री या प्रजाओं का उत्पन्न होना, (मे भसत्) स्त्री शरीर के प्रजननाङ्ग के समान (भगः) प्रजाओं का ऐश्वर्य, दोनों (मे) मेरे (आनन्द-नन्दौ) स्त्रीसंभोग द्वारा प्राप्त सुख में सुखी होने वाले (आण्डौ) अण्ड-कोशों के समान हैं। मैं (जंघाभ्यां पद्भ्यां) समृद्ध जंघाओं और पैरों से (धर्मः अस्मि) धारण करने वाला सामर्थ्य धर्म हूं। इस प्रकार से (विशि) समस्त प्रजा के स्वरूप में भी (राजा) राजा मानों शरीर धर के (प्रतिष्ठितः) प्रतिष्ठा को प्राप्त है।

इसी प्रकार—प्रत्येक शरीर में राष्ट्र के समस्त धर्म विद्यमान हैं वे भी कह दिये गये हैं। समाज के भिन्न २ विभागों के कर्त्तव्य शरीर के भिन्न २ भागों के धर्मों से तुलना द्वारा जानने चाहियें।

प्रति क्षत्रे प्रति तिष्ठामि राष्ट्रे प्रत्यश्वेषु प्रति तिष्ठामि गोषु।
प्रत्यङ्गेषु प्रति तिष्ठाम्यात्मन् प्रति प्राणेषु प्रति तिष्ठामि पुष्टे
प्रति द्यावापृथिव्योः प्रति तिष्ठामि यज्ञे ॥ १० ॥

विराट् शक्वरी। धैवतः ॥

भा०—राजा की राष्ट्र के भिन्न २ ऐश्वर्यों और भागों में प्रतिष्ठा। 'मैं' राजा (प्रति क्षत्रे) प्रत्येक क्षत्रियकुल में (प्रति तिष्ठामि) प्रतिष्ठा

को प्राप्त करूं। (राष्ट्रे प्रतितिष्ठामि) प्रत्येक राष्ट्र में प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। (अश्वेषु) अश्वों में और (गोषु) गौवों में भी (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं। (अङ्गेषु) समस्त अङ्गों में प्रतिष्ठित होऊं। (आत्मन् प्रतितिष्ठामि) आत्मा में प्रतिष्ठित होऊं। (प्राणेषु) प्राणों में (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठित होऊं। (पुष्टे प्रति) पुष्ट, पोषणकारी अन्न आदि पदार्थों में प्रतिष्ठित होऊं। (द्यावापृथिव्योः) आकाश और पृथिवी पर और (यज्ञे) यज्ञ में भी (प्रतितिष्ठामि) प्रतिष्ठा को प्राप्त करूं।

त्रया॑ दे॒वाऽ एका॑दश त्रयस्त्रि॒ꣳशाः सु॒राध॑सः।
बृह॒स्पति॑पुरोहिता दे॒वस्य॑ सवि॒तुः स॒वे। दे॒वा दे॒वैर॑वन्तु मा ॥११॥

भा०—(त्रयाः एकादश) तीन विशेष शक्तियों के ही अंशांश रूप से विद्यमान ११, ११, और ११ ये (त्रयः त्रिंशाः) तेंतीस (देवाः) देव-विद्वान्गण (सुराधसः) उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न एवं (बृहस्पति पुरोधसः) बृहस्पति, वेदज्ञ विद्वान् को अपना महामात्य पुरोहित, अग्रवर्ती प्रमुख बनाकर (देवस्य) देव (सवितुः) सबके प्रेरक राजा के भी राजा परमेश्वर के (सवे) परमैश्वर्य युक्त शासन या जगत् में रहें। और वे (देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष (देवैः) अपने दिव्य गुणों और व्यवहारों से (मा अवन्तु) मेरी, मुझ प्रजाजन और राजा की रक्षा करें।

साधारणतः—पृथ्वी अप, तेज, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ये आठ वसु, दश प्राण और ११ वां जीव, ये ११ रुद्र, १२ मास, १२ आदित्य, विद्युत् और यज्ञ ये सब मेरी रक्षा करें।

अर्थात्—शत्रु मित्र दोनों के देशों को वश करूं, पशु, गौ अश्वादिमान् होऊं। प्राणों से नीरोग होऊं, आत्मप्रतिष्ठ अर्थात् मानस दुःख से रहित

होऊं। धनसमृद्ध, इह और पर दोनों लोकों में कीर्त्तिमान्, धर्मात्मा और प्रभावशाली होऊं।

प्रथमा द्वितीयैर्द्वितीयास्तृतीयैस्तृतीयाः सत्येन सत्यं यज्ञेन यज्ञो यजुर्भिर्यजूᳬंषि सामभिः सामान्यृग्भिर्ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः पुरोऽनुवाक्या याज्याभिर्याज्या वषट्कारैर्वषट्कारा आहुतिभिराहुतयो मे कामान्त्समर्धयन्तु भूः स्वाहा ॥ १२ ॥

विश्वेदेवा देवताः। प्रकृतिश्छन्दः। धैवतः॥

भा०—(प्रथमाः) प्रथम कोटि के विद्वान् या देव, रक्षकजन (द्वितीयैः) द्वितीय कोटि के विद्वानों या रक्षकों के साथ मिल कर हमारे समस्त कामनायोग्य पदार्थों की वृद्धि करें। और (द्वितीयाः) द्वितीय कोटि के विद्वान् (तृतीयैः) तृतीय, सर्वोत्तम कोटि के विद्वान् पुरुषों से मिल कर और (तृतीयाः) तीसरे, उच्च कोटि के विद्वान् (सत्येन) सत्य व्यवहार, वेदानुकूल न्याय और धर्म से युक्त होकर, (सत्यं यज्ञेन) सत्य सत्यव्यवहार भी, यज्ञ, परस्पर आदर और संगति और सत्यवाणी से सम्पन्न होकर, (यज्ञः यजुर्भिः) यज्ञ, यजुर्वेद के मन्त्रों से वाणी को मानस विचारों से और प्रजापालन को क्षत्रियों से और (यजूंषि सामभिः) यजुर्वेद के मन्त्र सामवेदोक्त गायनों से, (सामानि ऋग्भिः) सामवेद के गायन ऋग्वेद की ऋचाओं से, (ऋचः पुरोऽनुवाक्याभिः) ऋचाएं पुरोनुवाक्या अर्थात्-अथर्ववेद के प्रकरणों से (पुरोनुवाक्याः) पुरोनुवाक्याएं (याज्याभिः) ऋचाओं से, (याज्याः वषट्कारैः) ज्याया ऋचाएं वषट्कारों या स्वाहाकारों से, (वषट्कारैः आहुतिभिः) वषट्कार अर्थात् स्वाहाकार आहुतियों से समृद्ध हों। और (आहुतयः) आहुतियें (मे कामान्) मेरी समस्त कामनाओं को (समर्धयन्तु) समृद्ध करें। (भूः स्वाहा) यह समस्त पृथिवी मेरे वशमें अच्छी प्रकार हो।

(१) 'सत्यं'—तद् यत् सत्यं त्रयी सा विद्या । २ । ७ । ५ । १ । १८ ॥ सत्यं वा ऋतम् २ । ७ । ३ । १ । २३ ॥ यो वै धर्मः सत्यं वै तत् । सत्यं वदन्तमाहु धर्मं वदन्तीति । धर्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति । श० १४ । ४ । २ । २६ ॥ एतत् खलु वै व्रतस्य रूपं यत् सत्यम् । श० १२ । ८ । २५ ॥ एकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति सत्यमेव । श० ३ । ४ । २ । ८ ॥

(२) 'यज्ञः'—स (सोमः) तायमानो जायते स यत् जायते तस्माद् यञ्जः । यञ्जो ह वै नाम एतत् यद् यज्ञः । श० ३ । ७ । ४ । २३ ॥ यज्ञो वै विशः । यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि प्रतिष्ठितानि । श० ८ । ७ । ३ । २१ ॥ वाग् यज्ञस्य रूपम् । श० १२ । ८ । २ । ४ ॥

(३) 'यजूंषि'—एष हि यन् एव इदं सर्वं जनयति । एतं यन्तमिदमनुप्रजायते । तस्माद् वायुरेव यजुः । अयमेवाकाशो जूः । यदिदमन्तरिक्षमेतं हि आकाशमनुजायते तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षं यच्च जूश्च । तस्माद् यजुः । तस्माद् यजुः । श० १० । ३ । ५ । २ ॥ 'इषे त्वा । ऊर्जे त्वा । वायव स्थ । देवो वः सविता । प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे । इत्येवमादिं कृत्वा यजुर्वेदमधीयते । गो० पू० १ । २७ ॥ मन एव यजूंषि । श० ४ । ६ । ७ । ५ । यजुर्वेदं क्षत्रियास्याहुर्योनिम् । तै० ३ । १२ । १ । २ ॥

(४) 'सामानि'—देवाः सोमं साम्ना समानयन् । तत्साम्नः सामत्वम् । तै० २ । २ । ८ । ७ ॥ स प्रजापतिः हैवं षोडशधा आत्मानं विकृत्य सार्धं समैत् । तद् यत्सार्धं समैत् तत्साम्नः सामत्वम् । जै० ३ । १ । ५ । ७ । तद्यत् संयन्ति तस्मात्साम । जै० उ० १ । ३ । ३ । ६ ॥ तद्यदेष सर्वैर्लोकैः समः तस्मात् साम । जै० उ० १ । १२ । ५ ॥ सा च अमश्चेति तत्साम अभवत् । जै० उ० १ । ५ । ३ । २ ॥ साम हि नाष्ट्राणां रक्षसामपहन्ता । श० ४ । ७ । ५ । ६ ॥ क्षत्रं वै साम । श० १२ । ८ । ३ । २३ ॥ साम हि सत्याशीः । तां० ११ । १० । १० ॥ धर्म इन्द्रो राजा । तस्य देवाः विशः । सामानि वेदः । श० १३ । ४ । ३ । १४ ॥

(५) 'ऋचः '— प्राणा वा ऋक् । कौ० ७ । १० ॥ वाग् ऋक् । जै० ३ । ४ । २३ । ४ ॥ अमृतं ऋक् । कौ० ७ । १० ॥ अस्थि वा ऋक् । श० ७ । ५ । २ । २५ ॥ पय आहुतयो यदृचः । श० १ । ५ । ६ । ४ ॥

(६) 'पुरोऽनुवाक्याः '—प्राण एव पुरोऽनुवाक्या । श० १४ । ६ । १ । १२ ॥ पृथिवीलोकमेव पुरोनुवाक्यया यजति । शत० १४ । ६ । १ । ६ ॥

(७) 'याज्या '—इयं पृथिवी याज्या । श० १ । ४ । २ । १६ ॥ वृष्टिर्वै याज्या विद्युदेव । ऐ० २ । ४ । अन्नं वै याज्या । गो० उ० ३ । २२ । प्रत्तिर्वै याज्या पुण्या लक्ष्मीः । ऐ० ३ । ४० ॥

(८) 'वषट्काराः '—स वै 'वौक्' इति करोति । वाग् वै वषट्कारः वाग् रेतः । रेत एतत् सिञ्चति । षड् इति ऋतवः । ऋतवो वै षट् । ऋतुष्वेवैतद् रेतः सिच्यते । यो धाता स एव वषट्कारः । ऐ० ३ । ४६ ॥

(९) 'आहुतयः '—तद् यदाह्वयति तस्मादाहुतिर्नाम । श० ११ । २ । २ ॥ आहितयो ह वै ता आहुतय इत्याचक्षते । श० १० । ६ । १ । २ ।

अर्थात्—प्रथम श्रेणी के पुरुष द्वितीय श्रेणीके पुरुषों के द्वारा बलवान् बनें, द्वितीय कोटि के तृतीय अर्थात् उच्च-कोटि के पुरुषों से समृद्ध हों । उच्च कोटि के लोग सत्य, न्याय और धर्म से बढ़ें । सत्य वाग् यज्ञ से बढ़ें । प्रजाजन रूप यज्ञ सत्य व्यवहार को बढ़ावें । यज्ञ यजुओं से बढ़े अर्थात् वाणी, मनके विचार से पुष्ट हो । और प्रजा का परस्पर संगठन रूप यज्ञ वायु के समान बलवान् और अन्तरिक्ष के समान आवरणकारी रक्षक राजा के बल से बढ़े । यजुर्वेद सामवेद से बढ़े अर्थात् क्षात्रबल एक साथ कार्य करके, सबके समान पोशाक, एक साथ सञ्चालनादि के कार्य से पुष्ट हो। सामवेद ऋक् से बढ़े अर्थात् क्षत्रिय लोग पुष्टिकारी अन्न या वैश्यों की सहायता से बढ़ें । ऋचाएं पुरोनुवाक्या से बढ़ें अर्थात् अन्न का बल प्राण या अन्न की वृद्धि पृथिवी की वृद्धि से हो । पुरोनुवाक्या याज्या से बढ़े अर्थात् पुण्य

लक्ष्मी अन्न सम्पत्ति से बढ़ें। याज्या वषट्कार से बढ़े अर्थात् पुण्य लक्ष्मी वीर्य और सामर्थ्य की वृद्धि से बढ़े। वषट्कार आहुतियों से बढ़ें अर्थात् बल वीर्य परस्पर के संघर्ष और स्थिर सम्पत्तियों के प्रदान कर्तव्य रक्षणों से बढ़ें। शत० १२। ८। ३। ३०॥

लोमा॑नि॒ प्रय॑ति॒र्मम॒ त्वङ् म॒ आन॑ति॒राग॑तिः।
मा॒ꣳसं म॒ ऽउप॑नति॒र्वस्व॒स्थि म॒ज्जा म॒ ऽआन॑तिः॥ १२॥

अनुष्टुप्। गांधारः। लोमत्वङ्मांसास्थिमज्जानो लिंगोक्ता देवताः॥

भा०—राजा के शरीर की राष्ट्र से प्राप्त राजा की शक्तियों से तुलना। (प्रयतिः) राष्ट्र में समस्त जनों का प्रयत्न करना, श्रम करना या उत्तम नियमन या शासन व्यवस्था करना (मम) मेरे शरीर के (लोमानि) लोम के समान राष्ट्र की बाह्य या प्रत्यक्ष रक्षा करने वाले साधन हैं। (आनतिः) अपने समस्त शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों को झुकाने वाली शक्ति और (आगतिः) मेरी आज्ञा प्राप्त करते ही मेरे सामने उनका आजाना, उपस्थित हो जाना, ये दोनों शक्तियां (मे त्वङ्) मेरी त्वचा के समान मेरे राष्ट्र की रक्षा करने वाली हैं। (उपनतिः) मेरे समीप आने वाले लोगों को आदर से झुकाने वाली शक्ति (मे मांसम्) मेरे शरीर के मांस के समान राष्ट्र-शरीर के स्वस्थ और हृष्टपुष्ट होने की समृद्धि के समान है। (वसु अस्थि) मेरा समस्त प्रजाजनों को बसाने वाला सामर्थ्य और ऐश्वर्य मेरे शरीर में विद्यमान अस्थि या हड्डी के समान राष्ट्र-शरीर के दृढ़ मूल आधार के समान है। (मज्जा मे आनतिः) प्रेम से, स्नेह से लोगों को आदर पूर्वक मुग्ध करके मेरे गुणों के समक्ष झुकाने वाला बल (मे) मेरे शरीर में विद्यमान (मज्जा) मज्जा के समान, राष्ट्र-शरीर में सब को आनन्द, सुख, शान्ति देनेवाला एवं सब अंगों के पालन धारण करने वाला है। शत० १२। ८। ३। ३१॥

यद्दे॑वा देवहेड॑नं॒ देवा॑सश्चकृ॒मा व॒यम्।

अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १४ ॥

अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजिगीषु पुरुषो ! (देवासः) उत्तम गुण और विद्यावान्, एवं विजयशील (वयम्) हम लोग (यत्) जो भी (देवहेडनम्) उत्तम विद्वान्, ज्ञानी पुरुषों का अनादर और अपराध (चकृम) करें (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् परमेश्वर, आचार्य और प्रतापी राजा (मा) मुझको (तस्मात् विश्वात्) उस सब प्रकार के (एनसः) अपराध और पाप से (मुञ्चतु) मुक्त करे, छुड़ावे। शत० १२ । ६ । २ । २ ॥

यदि दिवा यदि नक्तमेनाꣳसि चकृमा वयम् ।
वायुर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १५ ॥

वायुर्देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यदि) चाहे (दिवा) दिन के समय (यदि नक्तम्) चाहे रात्रिकाल में (वयम्) हम लोग (एनांसि) अपराध और पाप (चकृम) करें तो भी (वायुः) वायु के समान व्यापक, अन्तर्यामी परमेश्वर, उसके समान आप्त पुरुष, एवं बलवान् राजा (तस्मात् एनसः) उस अपराध से और (विश्वात् अंहसः) सब प्रकार के पाप से भी (मा मुञ्चतु) मुझे मुक्त करे। शत० १२ । ६ । २ । २ ॥

यदि जाग्रद्यदि स्वप्न ऽएनाꣳसि चकृमा वयम् ।
सूर्यो मा तस्मादेनसो विश्वान्मुञ्चत्वꣳहसः ॥ १६ ॥

सूर्यो देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यदि जाग्रत्) यदि जागते और (यदि स्वप्ने) यदि सोते में भी (वयम्) हम (एनांसि) पाप (चकृम) करें तो (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर विद्वान् राजा (मा) मुझको (तस्मात्

१४—(१४-१६) तिस्रः कूष्माण्डीसंज्ञा ऋचः । '०हेळनं०' इति काण्व० ।

एनसः) उस पाप से और (विश्वात् अंहसः) समस्त प्रकार के पाप से (मुञ्चतु) मुक्त करे । शत० १२ । ७ । २ । २ ॥

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा व॒यं यदेक॑स्याधि॒ धर्म॑णि॒ तस्या॑व॒यज॑नमसि ॥ १७ ॥

लिंगोक्ता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वयम्) हम (यत्) जो (एनः) पाप (ग्रामे) ग्राम में, (यत् अरण्ये) जो पाप जंगल में, (यत् सभायाम्) जो पाप सभा में, और (यत् इन्द्रिये) जो अपराध चित्त में और चक्षु आदि इन्द्रियों से, परस्त्री दर्शन आदि, (यत् शूद्रे) जो शूद्र या सेवक जन पर, (यद् अर्ये) और जो पाप स्वामी के प्रति, (चकृम) करें और (यत्) जो अपराध हम (एकस्य) एक, किसी भी पुरुष के (धर्मणि अधि) धर्म या कर्त्तव्य पालन या व्रत पालन के भङ्ग करने में करें (तस्य) उस अपराध का, हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे राजन् ! तू (अवयजनम्) नाश करने वाला (असि) हो । शत० १२ । ६ । २ । ३ ॥

यदापो॑ अ॒घ्न्या इति॒ वरु॒णेति॒ शपा॑महे॒ ततो॑ वरुण नो मुञ्च । अव॑भृथ निचुम्पुण नि॒चेरुर॑सि निचुम्पु॒णः । अव॑ दे॒वैर्दे॒वकृ॑त॒मेनो॑ऽयक्ष्यव॒ मर्त्यै॒र्मर्त्य॑कृतम्पुरु॒राव्णो॑ देव रि॒षस्पा॑हि ॥ १८ ॥

भा०—(यदाप० इत्यादि) देखो अ० ६ । २२ ॥ (अवभृथ० इत्यादि) देखो व्याख्या अ० ३ । ४८ ॥

स॒मु॒द्रे ते॒ हृद॑यम॒प्स्व॒न्तः सन्त्वा॑ विश॒न्त्वोष॑धीरु॒तापः॑ । सु॒मि॒त्रि॒या न॒ऽआप॒ ऽओष॑धयः सन्तु दु॒र्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु॒ यो॑ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ १९ ॥

भा०—(समुद्रे० इत्यादि) व्याख्या देखो अ० ८ । २५ ॥ (सुमित्रिया० इत्यादि) व्याख्या देखो अ० ६ । २२ ॥

द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः ॥ २० ॥

आपो देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(आपः) जलों के स्वच्छ करने वाले, स्वतः शान्ति और जीवन के देने वाले आप्त जन, या सदा प्राप्त परमेश्वर (मा) मुझको (एनसः) पाप से ऐसे (शुन्धन्तु) शुद्ध करें जैसे (मुमुचानः) मुक्त होने या टूटने वाला फल (द्रुपदात् इव) वृक्ष से अथवा (मुमुचानः द्रुपदादिव) जिस प्रकार छूटने वाला पशु काष्ठ के बने खूंटे से छूट जाता है, और जिस प्रकार (स्विन्नः) पसीने से भरा पुरुष (स्नातः) नहा धोकर (मलात् इव) मल से रहित हो जाता है, और जिस प्रकार (पवित्रेण) छानने के कम्बल या वस्त्र से (पूतम्) छना हुआ (आज्यम्) घी, कीट, मल आदि से स्वच्छ हो जाता है । शत० १२ । ६ । २ । ७ ॥

उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २१ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । विराड् त्रिष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(वयम्) हम (उत्तरम्) इस लोक से उत्कृष्ट और उच्च, (स्वः) सुखमय लोक को और (उत्तमम्) सब से उत्तम, उत्कृष्ट, (ज्योतिः) परम ज्योतिःस्वरूप, (देवत्रा देवम्) प्रकाशमान पदार्थों में भी सब से अधिक प्रकाशमान, दानशीलों में सब से अधिक दानशील, विजिगीषुओं में सब से अधिक विजिगीषु (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर और राजा को (पश्यन्तः) देखते हुए (तमसः) अन्धकार से (परि) दूर (उत् अगन्म) ऊपर उठें । शत० १२ । ६ । २ । ८ ॥

अपो अद्यान्वचारिषꣳ रसेन समसृक्ष्महि । पयस्वानग्न ऽ

आगमं तं मा सꣳसृज वर्चसा प्रजया च धनेन च ॥ २२ ॥

अग्निर्देवता । पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! पापवारक ! (अद्य) आज मैं (अपः) जलों में नियमानुसार स्नान करने के समान आप्त पुरुषों को प्राप्त होकर ज्ञान और कर्मानुष्ठानों को (अनु अचारिषम्) नियमानुकूल यथाविधि आचरण कर चुका हूं और (रसेन) ज्ञान के उत्तम रस या बल से हम (सम् असृक्ष्महि) संयुक्त हो जावें। (पयस्वान्) उस शक्तिवर्धक ज्ञान-रस से युक्त होकर ही, (आगमम्) तेरी शरण आता हूं (तं मा) उस मुझको (वर्चसा) तेज, वीर्य और अधिकार से, (प्रजया) प्रजा से और (धनेन च) धन, ऐश्वर्य से (संसृज) युक्त कर।१२।६।२।६॥

लौकिक कर्मकाण्ड में 'यदापः०' मन्त्र से स्नान करते हैं। 'द्रुपदा०' मन्त्र से वस्त्र बदलते हैं। 'उद्वयं०' से जल से बाहर आते हैं, 'अपो अधा०' मन्त्र से उपास्य अग्नि के पास आते हैं। 'एधोसि०' से समित् लेकर अग्नि को परिचर्या करते हैं।

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ।
समाववर्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः । समु विश्वमिदं जगत् ।
वैश्वानरज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः स्वाहा ॥२३॥

समिद् अग्निर्वैश्वानरश्च देवताः । स्वराड् अतिशक्वरी । पञ्चमः ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे प्रभो ! (त्वम्) तू (एधः असि) काष्ठ जिस प्रकार अग्नि में रख देने से उसको अधिक प्रदीप्त करता है उसी प्रकार तू तेज को बढ़ा देने वाला है। हम (एधिषी महि) सदा वृद्धि को प्राप्त हों। तू (समित् असि) काष्ठ के समान संग लगे अग्नि को प्रज्वलित कर देने और प्रकाशित करने वाला है, तू स्वयं (तेजःअसि) तेजः स्वरूप है।

(मयि) मुझ में तू (तेजः देहि) तेज प्रदान कर । (पृथिवी) पृथिवी, यह लोक (सम् आववर्ति) अच्छी प्रकार रहे, सुखदायक हो । (उषाः) प्रातःकालीन उषा (सम्) अच्छी प्रकार सुखदायिनी हो, (सूर्यः सम् उ) सूर्य भी हमें सदा सुखदायी हो । (इदं विश्वं जगत्) यह समस्त जगत् (सम् उ) सदा हमें सुखकारी हो । और मैं (वैश्वानर-ज्योतिः) समस्त विश्व के हितकारक जाठर अग्नि, सामान्य अग्नि, विद्युत् और सूर्य को और परमेश्वर सब के ज्योतियों के समान ज्योति को धारण करने वाला, अथवा, सर्व हितकारी ज्योति के समान सर्वोपकारक (भूयासम्) होऊं । मैं (विभून्) बड़े २, विविध (कामान्) कामना योग्य ऐश्वर्यों को (व्यश्नवै) प्राप्त करूं । (भूः स्वाहा) समस्त संसार के उत्पादक, सत्ता-मात्र परमेश्वर को और पृथ्वी को उत्तम न्यायानुकूल धर्माचरण और सत्य ज्ञान द्वारा प्राप्त करूं । शत० १२ । ६ । २ । १० ॥

अभ्या दधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि ।
व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम् ॥ २४ ॥

अश्वतराश्वि ऋषिः । अग्निर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (व्रतपते अग्ने) समस्त व्रतों और सत्य कर्मों के पालक अग्ने ! तेजस्विन् ! (त्वयि) जिस प्रकार अग्नि में काष्ठ या समिधा रखदी जाती है उसी प्रकार तुझमें (समिधम्) अच्छी प्रकार प्रदीप्त होजाने में समर्थ अपने आपको मैं तुझ में (अभि आदधामि) तेरे समक्ष शिष्यरूप से स्थापित करता हूं । और (व्रतं च) व्रत और (श्रद्धां च) सत्य धारणा, दृढ़ विश्वास बुद्धि को (उप-एमि) प्राप्त होता हूं । और (अहम्) मैं (दीक्षितः) दीक्षित होकर (त्वा इन्धे) तुझे भी प्रज्वलित करूं ।

गुरु शिष्य के समीप व्रत और श्रद्धा को प्राप्त करके उसकी दीक्षा प्राप्त करे और काष्ठ जिस प्रकार अग्नि में जलके अग्नि को भी प्रदीप्त

करता है उसी प्रकार शिष्य भी व्रत और विद्या से प्रदीप्त होकर गुरु के यश का कारण हो। इसी प्रकार वीरगण अपने नायक रूप अग्नि में अपने को काष्ठ के समान समर्पित करें और उसी के अधीन कर्म और सत्य विश्वासबुद्धि रख कर उसी की आज्ञा पालन करते हुए उसके तेज और पराक्रम की वृद्धि करें।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥ २५॥

अश्वतराश्विर्ऋषिः। अग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(यत्र) जहां (ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म, ब्राह्मणगण और वेद ज्ञान, क्षात्रबल, शौर्य, वीर्य और क्षत्रियगण, दोनों (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार से पुष्ट होकर (सह) एक साथ (चरतः) विचरण करें, विद्यमान हों (तम्) उस दर्शनीय (लोकं) जनसमाज को मैं (पुण्यं) पुण्य, निष्पाप, पवित्र, (प्रज्ञेषं) उत्कृष्ट जानता हूं, (यत्र) जहां (देवाः) विद्वान् गण और विजयशील सैनिकजन (अग्निना) तेजस्वी आचार्य एवं नायक सेनापति या राजा के साथ निवास करते हैं।

वह आत्मा अच्छा है जिसमें वेदज्ञान और बाहुबल दोनों पूर्ण हों जिसमें इन्द्रिय गण आत्मा के साथ सुख से रहें। वह समाज और देश उत्तम है जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय हृष्ट पुष्ट रहें और देव अर्थात् विद्वान् गण प्रजा-गण अपने नायक के साथ रहें। वह परब्रह्म आचार्य कुल भी उत्तम है जिसमें दीक्षित होकर ब्रह्म क्षत्र अर्थात् ब्राह्मण और क्षत्रिय सभा सदाचारी होकर धर्म का आचरण करें और देव अर्थात् विद्वान् शिष्यगण आचार्य के साथ रहें।

यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते॥ २६॥

ऋष्यादि पूर्ववत्।

भा०—(यत्र) जहां, जिस लोक में (इन्द्रः च वायुः च) इन्द्र और वायु (सम्यञ्चौ) पूर्ण बलवान् होकर (सह चरतः) एक साथ विचरण करते हैं मैं (तं लोकं) उस लोक, स्थान, प्रदेश, आत्मा और समाज को (पुण्यं) पवित्र (प्रज्ञेषं) जानता हूं। (यत्र) जहां (सेदिः) अन्नादि के न मिलने के कारण उत्पन्न विपत्ति, दुर्भिक्ष आदि क्लेश (न विद्यते) नहीं होता।

जिस मोक्ष में इन्द्र अर्थात् जीव और वायु अर्थात् व्यापक परमेश्वर दोनों साथ विचरते हैं, वह पुण्य लोक है। वहां भूख प्यास के कष्ट नहीं, या वहां जन्म मरण के कष्ट नहीं। वह देश जिसमें इन्द्र अर्थात् राजा, वायु अर्थात् सेनापति दोनों बलवान् होकर भी परस्पर (सम्यञ्चौ) सुसंगत होकर प्रेम से रहते हैं वह देश पुण्य है जहां (सेदिः) अन्नादि का अभाव और प्रजाजन का नाश नहीं होता है। वह शरीर पवित्र है जिसमें (इन्द्रः) आत्मा और (वायुः) प्राण सुसंगत होकर रहें, जहां (सेदिः) रोगादि क्लेश नहीं रहते।

अ॒ꣳशुना॑ ते अ॒ꣳशुः पृ॑च्यतां॒ परु॑षा॒ परुः॑।
ग॒न्धस्ते॒ सोम॑मवतु॒ मदा॑य॒ रसो॒ऽअच्यु॑तः ॥ २७ ॥

सूर्यो देवता। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(ते अंशुना) तेरे व्यापक सामर्थ्य से (अंशुः) राष्ट्र का व्यापक सामर्थ्य और (परुषा परुः) पोरू से पोरू (पृच्यताम्) जुड़ा रहे। (ते) तेरा (गन्धः) गन्ध या शत्रुनाशक बल और (अच्युतः) कभी न्यून न होने वाला (रसः) रस, परम बल (मदाय) परम आनन्द और सुख प्राप्त करने के लिये (सोमम्) सोम, ऐश्वर्य और राष्ट्र के राज-पद को (अवतु) रक्षा करे।

अध्यात्म में—व्यापक परमेश्वर से तेरा आत्मा और पालन करने

वाले सामर्थ्य अर्थात् वीर्य से तेरा पौरु २ सदा युक्त रहे। तेरा गन्ध अर्थात् सद्भाव (सोम) परमेश्वर को प्राप्त हो। अच्युत, परब्रह्म रस (ते मदाय) तेरे परम आनन्द के लिये हो।

सिञ्चन्ति परि षिञ्चन्त्युत्सिञ्चन्ति पुनन्ति च।
सुरायै बभ्र्वै मदे किन्त्वो वदति किन्त्वः ॥ २८ ॥

सोम इन्द्रो वा देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—दानशील राजा का वर्णन करते हैं। सभी प्रजाजन (सिञ्चन्ति) राजा को अभिषेक करते हैं, (परि षिञ्चन्ति) वे सब ओर से आये प्रजा-जन उसको अभिषेक करते हैं, (उत्सिञ्चन्ति) उसको उत्तम पद पर अभिषिक्त करते हैं। और उसको (सुरायै) सुखपूर्वक देने योग्य, या उत्तम रमण करने योग्य, एवं (बभ्र्वै) सब के भरण पोषण करने वाली राज्य-लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये (पुनन्ति) पवित्र करते हैं, जिससे राजा राज-पद को प्राप्त करके पापमय व्यसनों में न फंसे, प्रत्युत, उत्तम धर्मात्मा बना रहे। वह भी (मदे) राज्यलक्ष्मी के प्राप्ति के परम सुख में तृप्त होकर सब को (वदति) कहता है (किंत्वः किंत्वः) हे प्रजाजन तुझे क्या चाहिये ? तुझे क्या चाहिये ? तुझे क्या कष्ट है, तुझे क्या दुःख है। वह राज्य-लक्ष्मी पाकर दरिद्रों को अन्न वस्त्र आदि जो आवश्यक हों दे। दुःखितों का कष्ट निवारण करे, दण्डितों के अपराध क्षमा करे।

राज्याभिषेक के समय सभी लोकों का राजा को स्नान कराना उसको राजपद के लिये पवित्र करने और अनाचार, अधर्म, पाप से मुक्त करने के लिये होता है।

धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्।
इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥ २६ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री षड्जः ॥

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हम में से (धानावन्तं) धारण पोषण करने वाली नाना गौओं या शक्तियों से युक्त, (करम्भिणम्) क्रियाशील, उद्यमी पुरुषों से सम्पन्न, (अपूपवन्तम्) इन्द्रियों के सामर्थ्य वाले और (उक्थिनम्) वेद शास्त्र के ज्ञान प्रवचन से युक्त प्रजाजन को (प्रातः) प्रातः सब से प्रथम (जुषस्व) प्राप्त कर ।

करोतेरम्बच । करम्बः । उणादि० । अपूपमिन्द्रियम् । श० ।

बृहदिन्द्राय गायत मरुतो वृत्रहन्तमम् ।
येन ज्योतिरजनयन्नृतावृधो देवं देवाय जागृवि ॥ ३० ॥

नृमेध पुरुमेधावृषी । इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! वायु के समान तीव्र, वेगवान् वीर पुरुषो ! हे शत्रुओं को मारने हारो ! आप लोग (वृत्रहन्तमम्) नगर को रोक लेने वाले शत्रु को मारने वालों में सब से श्रेष्ठ (बृहत्) महान् शक्तिमान् राष्ट्र के उस अधिकार का (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा को (गायत) उपदेश करो (येन) जिस द्वारा (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान और न्याय व्यवहार की वृद्धि करने वाले (देवाय) देव, दानशील राजा की (जागृवि) सदा जागने वाले, सदा सावधान, (देवं) सर्व विजयकारी, (ज्योतिः) तेज को (अजनयन्) उत्पन्न करते हैं, प्रकट करते हैं ।

उपासना विषय में—अज्ञाननाशक (इन्द्राय) परमेश्वर के महान् सामर्थ्य का वर्णन करो, जिससे (ऋतावृधः) ज्ञानवृद्धि करने वाले लोग परमेश्वर के सदा चेतन, प्रकाशस्वरूप ज्योति को साक्षात् करें ।

अध्वर्यो॑ऽ अद्रि॑भिः सु॒तꣳसोमं॑ प॒वित्र॒ऽ आ न॑य ।
पु॒नी॒हीन्द्रा॑य॒ पात॑वे ॥ ३१ ॥

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! विद्वन् ! यज्ञ के समान अहिंसित अखण्ड राज्य के संयोजक महामात्य पुरुष ! तू (अद्रिभिः) अजेय शस्त्रधारियों से (सुतम्) अभिषिक्त हुए (सोमम्) राजा को (पवित्रे) पवित्र, पुण्य, राज सिंहासन पर (आ नय) प्राप्त करा, उसको बैठा । और (इन्द्राय) ऐश्वर्य युक्त, परमैश्वर्यवान्, राष्ट्र के (पातवे) पालन करने के लिये (पुनीहि) उसको पवित्र कर । उसके, आत्मा, मन और इन्द्रियों को भी पवित्र कर । उसको उसके परम, उच्च कर्त्तव्यों का उपदेश कर ।

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोकाऽ अधिश्रिताः । यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ३२ ॥

नारायणीयः कौण्डिन्य ऋषिः । आत्मा परमात्मा च देवते । पंक्तिः पञ्चमः ।

भा०—राजा के कर्त्तव्यों का उपदेश । हे राजन् ! (यः) जो परमेश्वर (भूतानाम्) समस्त चराचर प्राणियों का (अधिपतिः) सबसे बड़ा पालक, स्वामी है । (यस्मिन् लोकाः) जिसके भीतर, जिसके आश्रय पर समस्त लोक, समस्त ब्रह्माण्ड (अधिश्रिताः) आश्रित हैं, स्थान पा रहे हैं, (यः) जो (महान्) सबसे महान् होकर (महतः) बड़े २ आकाशादि महत् परिमाण के पदार्थों और महत् तत्व आदि प्रकृति के विकारों को भी (ईशे) अपने वश कर रहा है (तेन) उस परमेश्वर के परम ऐश्वर्य से (त्वाम्) तुझको (अहम्) मैं (गृह्णामि) राज्य पद के लिये स्वीकार करता हूं । (त्वाम्) तुझको (अहम्) मैं राज्य कार्य का मुख्य प्रवर्त्तक 'अध्वर्यु' (मयि) अपने ही उत्तरदातृत्व या सामर्थ्य पर (गृह्णामि) ग्रहण या स्वीकार करता हूं । अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा समस्त भूतों का पति है वैसे तू भी राष्ट्र के समस्त प्राणियों का स्वामी बन, जैसे उसमें समस्त लोक स्थित हैं, वैसे तेरे आश्रय पर समस्त लोक जन हैं । जैसे वह

बड़े आकाशादि पर वश करता है वैसे तू बड़े २ राजाओं पर वश कर। उसी ऐश्वर्य से तुझे राज पद के लिये चुनता हूं।

उपयामगृहीतोऽस्यश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे।
एष ते योनिरश्विभ्यां त्वा सरस्वत्यै त्वेन्द्राय त्वा सुत्राम्णे ॥३३॥

भा०—इसकी व्याख्या देखो अ० १० । २२ ॥

प्राणपा मेऽअपानपाश्चक्षुष्पाः श्रोत्रपाश्च मे।
वाचो मे विश्वभेषजो मनसोऽसि विलायकः ॥ ३४ ॥

लिंगोक्ता देवता। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे परमेश्वर! परमात्मन्! राजन्! हे विद्वन्! आचार्य! तू (मे) मुझ शिष्य जन और प्रजाजन के (प्राणपाः) प्राणों का पालक, (अपानपाः) अपानों का पालक, (श्रोत्रपाः) श्रोत्रों का पालक, (मे वाचः) मेरी वाणियों के (विश्वभेषजः) सब दोषों को दूर करने वाला और (मनसः) मनको (विलायकः) विविध मार्गों में लगाने हारा है। तू सदा पिता, गुरू, आत्मा के समान आदर करने योग्य है।

अश्विनकृतस्य ते सरस्वतिकृतस्येन्द्रेण सुत्राम्णा कृतस्य।
उपहूतऽ उपहूतस्य भक्षयामि ॥ ३५ ॥

ग्रहाः लिंगोक्ता देवताः। निचृदुपरिष्टाद् बृहती। मध्यमः।

भा०—मैं गौण, अधीनस्थ अधिकारी पुरुष को भी (उपहूतः) आदरपूर्वक निमन्त्रित हूं। हे राष्ट्रजन! मैं (अश्विन कृतस्य) प्रजा के स्त्री पुरुषों द्वारा कृत, निश्चित, (सरस्वतीकृतस्य) विद्वत्सभा द्वारा निश्चित और (सुत्राम्णा) उत्तम, सर्वोत्तम रक्षक राजा द्वारा (कृतस्य) नियत (ते) तेरे हितके लिये (उपहूतस्य) आदरपूर्वक प्राप्त अधिकार का मैं (भक्षयामि) उपभोग करूं।

समिद्धऽ इन्द्रऽ उषसामनीके पुरोरुचा पूर्वकृद् वावृधानः।

त्रिभिर्देवैस्त्रिꣳशता वज्रबाहुर्जघान वृत्रं वि दुरो ववार ॥ ३६ ॥

[३६–४७] इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ आंगिरस ऋषिः ।

भा०—(समिद्धः) अति प्रदीप्त, अति तेजस्वी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सूर्य जिस प्रकार (उपसाम् अनीके) उषाओं या प्रभात काल के मुख में (पुरोरुचा) अपने आगे चलने वाली अति दीप्ति से (पूर्वकृत्) पूर्व विद्यमान अन्धकार को नाश करता हुआ आगे बढ़ता है इसी प्रकार (समिद्धः) सूर्य के समान तेजस्वी, (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक इन्द्र, सेनापति (उपसाम्) शत्रु के गढ़ों को जलाने हारे, या शत्रु सेनाओं को अपने आग्नेयास्त्रों से जलाने वाले सैन्यों के, या (उषसाम) स्वयं दाहकारी आयुधों के (अनीके) सेना समूह के, अग्र भाग में (पुरोरुचा) आगे फैलने वाली दीप्ति से या दीप्तिमान् शक्ति से (पूर्वकृत्) पूर्व ही शत्रु पर आक्रमण करने हारा होकर, या पूर्ण बलवान्, शत्रु का नाशक होकर स्वयं (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (वज्रबाहुः) खड्ग को हाथ में लिये, बलवान्, दण्डधर राजा, (त्रिभिः त्रिंशता देवैः) तेंतीस देवों अर्थात् राष्ट्र के निमित्त विजय करने वाले कुशल पुरुषों के साथ मिलकर (वृत्रं जघान) आवरणकारी शत्रु का नाश करे । और (दुरः) शत्रु दुर्गके द्वारों को (वि ववार) विविध रूप से खोलदे ।

आत्मा के पक्ष में—(इन्द्रः समिद्धः) इन्द्र, आत्मा योगद्वारा तेजस्वी होकर (उपसाम् अनीके) अज्ञानदाहक, ध्यान योग से प्रकट होने वाली ज्योतिष्मती प्रज्ञाओं के प्रारम्भ में स्वयं उग्र दीप्ति से अन्धकार को नाश करके ज्ञानवज्र से युक्त होकर आवरणकारी तम और बन्धनकारी देहबन्धन का नाश करे और द्वारों को खोलदे ।

नराशꣳसः प्रति शूरो मिमानस्तनूनपात्प्रति यज्ञस्य धाम ।

३९—स्तः सौत्रामणिकं होतम् ॥ अत; प्रसादेन्द्रस्याभिवः ।

गोभिर्वपावान्मधुना समञ्जन्हिरण्यैश्चन्द्री यजति प्रचेताः ॥३७॥

इन्द्रस्तनूनपाद् देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(नराशंसः) अपने आश्रित जनों से स्तुति के योग्य, (शूरः) शूरवीर, निर्भय, (प्रति मिमानः) राष्ट्र के प्रत्येक कार्य को स्वयं जानता और करता हुआ (तनूनपात्) अग्नि के समान, तेजस्वी, जाठर अग्नि जिस प्रकार शरीर को नहीं गिरने देता उसी प्रकार राष्ट्र का पतन न होने देने वाला और प्राण जिस प्रकार शरीर नष्ट नहीं होने देता उसी प्रकार राष्ट्र का रक्षक होकर विराजमान (यज्ञस्य) राज्यावस्था रूप यज्ञ या प्रजापति राजा को (धाम) धारण सामर्थ्य और प्रताप के। (प्रति) प्रतिस्पर्द्धा में बनाये रक्खे। वह (गोभिः) गवादि पशुओं से (वपावान्) अति लक्ष्मीवान् एवं (गोभिः वपावान्) भूमियों से कृषि-सम्पत्तिमान्, (गोभिः वपावान्) शास्त्र-वाणियों से विस्तृत बुद्धिमान् होकर (मधुना) स्वयं मधु, ज्ञान, अन्न और बल से (समञ्जन्) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता हुआ, (हिरण्यैः) सुवर्ण आदि रमणीय और हितकारी पदार्थों से (चन्द्री) प्रजा के आनन्दकारी, ऐश्वर्यवान् होकर (प्रचेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (यजति) यज्ञ करता, दान देता, राष्ट्र को सुव्यवस्थित करता है।

ईडितो देवैर्हरिवाँ२॥ अभिष्टिराजुह्वानो हविषा शर्द्धमानः ।
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुरायातु यज्ञमुप नो जुषाणः ॥ ३८ ॥

इड इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (देवैः) देव, विजिगीषु वीर पुरुषों और विद्वानों द्वारा (ईडितः) स्तुति और आदर, प्राप्त (हरिवान्) उत्तम घोड़ों वाला, (अभिष्टिः) सब दिशाओं में आक्रमण करने और गमन करने में समर्थ, (आजुह्वानः) शत्रुओं द्वारा ललकारा गया, या विद्वानों द्वारा आदर से

बुलाया हुआ (हविषा) राष्ट्र से प्राप्त कर रूप ऐश्वर्य से (शर्धमानः) शत्रुओं का पराजय करता हुआ, (पुरन्दरः) शत्रु के गढ़ों को तोड़ने वाला, (गोत्रभिद्) शत्रुवंशों के उच्छेद करने वाला, (वज्रवाहुः) खड्ग आदि वीर्य को धारण करने वाला वह राजा (नः) हमारे (यज्ञम्) राष्ट्र के पालन कार्य, प्रजापति पद को (जुषाणः) प्रेम से स्वीकार करता हुआ हमें (आ यातु) प्राप्त हो।

जुषाणो बर्हिर्हरिवान्न ऽइन्द्रः प्राचीनꣳसीदत्प्रदिशा पृथिव्याः। उरुप्रथाः प्रथमानꣳस्योनमादित्यैरक्तं वसुभिः सजोषाः ॥ ३६ ॥

बर्हिष्मान् इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(बर्हिः जुषाणः इन्द्रः) अन्तरिक्ष में विराजमान सूर्य जिस प्रकार (पृथिव्याः) पृथिवी के (प्राचीनं) प्राचीन दिशा के प्रदेश में (प्र-दिशा) प्रबल तेज से विराजता है और (हरिवान्) किरणों से युक्त सूर्य जिस प्रकार (आदित्यैः) अपने किरणों से (अक्तं) प्रकाशित (बर्हिः) महान् ब्रह्माण्ड या अन्तरिक्ष में (आ सीदत्) विराज जाता है। (हरिवान्) तीव्र वेगवान् अश्वों और तीव्र मतिमान् विद्वान्, वीर पुरुषों का स्वामी, (इन्द्रः) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् राजा (प्र-दिशा) अपने उत्कृष्ट शासन के बल से (पृथिव्याः) पृथिवी (बर्हिः) महान्, बृहत् राष्ट्र या ऐश्वर्य को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ (उरुप्रथाः) अति विस्तृत शक्तिशाली होकर (आदित्यैः) सूर्य के किरणों के समान तेजस्वी, (वसुभिः) बसने वाले प्रजा के विद्वान् पुरुषों द्वारा अथवा (आदित्यैः वसुभिः) प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्यों से (सजोषाः) सम्पन्न होकर (अक्तं) प्रकाशित, तेजोमय (स्योनम्) सुखकारी (प्रथमानम्) विख्यात एवं विस्तृत एवं (प्राचीनं) अति उत्कृष्ट राज्य को (आसीदत्) विराजे।

३६—'हरिवा०' इति काण्व०।

इन्द्रं दुरः कवष्यो धावमाना वृषाणं यन्तु जनयः सुपत्नीः ।
द्वारो देवीरभितो वि श्रयन्ताꣳसुवीरा वीरं प्रथमाना महोभिः ॥४०॥

ऋ० २ । ३ । ५ ॥

द्वारवान् इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार (कवष्यः) उत्तम स्तुति करने वाली, (जनयः) पुत्रजनन में समर्थ (सुपत्नीः) उत्तम गृहपत्नियां, स्त्रियां (धावमानाः) रजोधर्म शुद्ध हुई (वृषाणं) वीर्य सेचन में समर्थ अपने पतियों के पास जाती हैं उसी प्रकार (कवष्यः) उत्तम, हर्ष ध्वनि करने वाली, (दुरः) अति वेगवती (जनयः) उत्तम रूप से सजाई गई, (सुपत्न्यः) उत्तम रीति से नगर की रक्षा करने वाली (द्वारः) द्वारों के समान शत्रुओं का वारण करने वाली (धावमानाः) बड़े उत्सुकता से समीप आती हुई सेनाएं (वृषाणं) बलवान् (इन्द्रम्) राजा या सेनापति को (यन्तु) प्राप्त हों और जिस प्रकार (सुवीराः) उत्तम पुत्रवती स्त्रियें (महोभिः) आनन्द उत्सवों से (वीरं प्रथमानाः) अपने वीर पति की प्रशंसा करती हुई विराजती हैं उसी प्रकार (सुवीराः) उत्तम वीर पुरुषों से सजीं (देवीः) शोभा वाली, विजयशील (महोभिः) तेजों से (वीरं) वीर्यवान् राजा की (प्रथमानाः) शक्ति और यश को विस्तृत करती हुई (द्वारः) शत्रुओं का वारण करने वाली द्वारों के समान सुदृढ़ सेनाएं (विश्रयन्ताम्) विविध रूप से विविध देशों और दिशाओं में खड़ी हों ।

अथवा—जिस प्रकार पत्नियां पति के स्वागत के लिये (दुरः यन्तु) द्वार पर आजाती हैं उसी प्रकार (जनयः) प्रजाएं राजा के स्वागत के लिये (दुरः यन्तु) द्वार पर आवें । उसी प्रकार (सुवीराः देवीः द्वारः विश्रयन्ताम्) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त उत्तम प्रजाएं द्वारों पर खड़ी हों ।

संस्कृत में 'द्वार' शब्द स्त्रीलिङ्ग होने से उनकी श्लिष्टोपमा स्त्रियों के साथ की गई है । फलतः ऐसे वीर राजा के स्वागत और नगर की रक्षा के लिये बहुत से द्वार तथा रक्षक कटक खड़े किये जायं ।

उषासानक्ता बृहती बृहन्तं पयस्वती सुदुघे शूरमिन्द्रम् ।
तन्तुं ततं पेशसा संवयन्ती देवानां देवं यजतः सुरुक्मे ॥ ४१ ॥

ऋ० २ । ३ । ६ ॥

उपासानक्तौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार (उषासानक्ता) उषा अर्थात् प्रभातवेला, और नक्त-रात्रिवेला दोनों (इन्द्रम्) सूर्य को (पेशसा) उत्तम रुचिकारक तेज से (संवयन्ती) आवरण करती हुई (यजतः) संगत होती हैं उसी प्रकार (बृहती) बड़ी भारी दो सेनाएं या प्रजा और सेना की पंक्तियें (पयस्वती) पुष्टिकारक तेज पराक्रम और अन्न को धारण करने वाली, (सुदुघे) उत्तम शक्ति और ऐश्वर्य से राजा को पूर्ण करने वाली होकर (शूरम् इन्द्रम्) शूरवीर राजा को (तन्तुम्) पट के तन्तुओं के समान स्वयं (ततं) विस्तृत (पेशसा) ऐश्वर्य या उज्ज्वल रूप से (संवयन्ती) मानो बुनतीसी हुई उसके विस्तृत रूप को प्रकट करती हुई (सुरुक्मे) सुखप्रद ऐश्वर्य सहित होकर (देवानां) तेजस्वी और विजयी पुरुषों के बीच (देवम्) तेजस्वी विजिगीषु पुरुष को (यजतः) प्राप्त होती हैं ।

दैव्या मिमाना मनुषः पुरुत्रा होताराविन्द्रं प्रथमा सुवाचा ।
मूर्धन्यज्ञस्य मधुना दधाना प्राचीनं ज्योतिर्हविषा वृधातः ॥ ४२ ॥

दैव्यौ होतारौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(दैव्यौ होतारौ) देवों, विद्वानों में उत्तम प्रतिष्ठा से विद्यमान, (होतारौ) यज्ञ के होताओं के समान राष्ट्र को अपने वश करने में समर्थ अधिकारी वायु और अग्नि, सेनापति और विद्वान् महामात्य दोनों (प्रथमा) सबसे मुख्य (सुवाचा) उत्तम वाणी वाले, (पुरुत्रा मनुषः) बहुतसे मनुष्यों को (मिमानौ) अपने वश करके राज्य का निर्माण करते हुए और (इन्द्रम्) शत्रुनाशक या ऐश्वर्यवान् राजा को (यज्ञस्य) सुव्यवस्थित

४२—०होतारा इन्द्रं० इति काण्व० ।

राज्य के या प्रजापति के पद के (मूर्धन्) मुख्य शिरोभाग पर (मधुना) अपने ज्ञान और बल से (दधाना) स्थापन करते हुए (प्राचीनं ज्योतिः) प्राची दिशामें उत्पन्न सूर्य के समान उदित होते हैं। तेजस्वी राजा को (हविषा) अन्न, बल, ज्ञान और कर द्वारा होता जिस प्रकार हविसे अग्नि को बढ़ाते हैं उसी प्रकार (वृधातः) बढ़ाते हैं, अधिक शक्तिशाली बनाते हैं।

तिस्रो देवीर्हविषा वर्द्धमाना॒ऽइन्द्रं जुषाणा जनयो न पत्नीः।
अच्छिन्नं तन्तुं पयसा सरस्वतीडा देवी भारती विश्वतूर्तिः ॥४३॥

ऋ० २ । ३ । ८ ॥

इडासरस्वतीभारत्यस्तिस्रो देव्यो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती) सरस्वती, विद्वत्-सभा या विद्वान् जन ! (इडा) इडा, धर्मसभा और (देवी) विजयशालिनी (भारती) धारण पोषण कर्त्री, प्रबन्धक सभा, (विश्वतूर्तिः) तीनों समस्त कार्यों को बिना विलम्ब के अति शीघ्रता से करने में समर्थ, (तिस्रः) तीनों (देवीः) दिव्य गुण वाली, एवं विद्वान् सदस्यों से बनीं सभाएं (हविषा) अन्नादि ऐश्वर्य, ज्ञान और बल से (वर्धमानाः) बढ़ती हुई (जनयः पत्नीः नु) पुत्रोत्पादन करने वाली पत्नियों के समान, (इन्द्रं) अपने ऐश्वर्यशील स्वामी, राजा या राज्य कार्य को (जुषाणाः) प्राप्त करके (पयसा) ऐश्वर्य, वीर्य, सामर्थ्य से (अच्छिन्नं तन्तुम्) अटूट सन्तान के समान विस्तृत राज्य-प्रबन्ध को (वर्धयन्ति) बढ़ावें।

त्वष्टा दध॒च्छुष्ममिन्द्राय वृष्णेऽपा॑कोऽचि॑ष्टुर्यशसे पुरूणि।
वृषा यजन्वृषणं भूरिरेता मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥ ४४ ॥

त्वष्टा रूपेयेन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

४३—०तिस्रा० इति काण्व० ।

भा०—(त्वष्टा) राज्य के समस्त उत्तम कार्यों को सम्पादन करने में समर्थ तेजस्वी वीर क्षत्रिय (वृष्णे) शत्रुओं की शक्ति को बांधने वाले *(इन्द्राय) इन्द्र ऐश्वर्यवान्, राज पद या सेनापति पद के लिये (शुष्मम्) शत्रुओं* को सुख देने वाला बल वीर्य को (दधत्) धारण करे। और वह (अपाकः) जिससे अधिक और प्रशंसनीय, योग्यतम प्राप्त न हो ऐसा, सब से अधिक प्रशंसनीय और (यशसे) यश और कीर्त्ति के लिये (अचिष्टुः) समस्त देश भर में पूजनीय होकर (पुरूणि) बहुतसी प्रजाओं को (दधत्) धारण करे। वही (वृषा) जल सेचन में समर्थ मेघ और वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के समान (भूरिरेताः) प्रचुर वीर्यवान्, शक्तिशाली होकर (वृषणं) मेघ के समान समस्त सुखों की धाराएं वर्षाने वाले राष्ट्र को या प्रभूत बल को (वजभू) प्राप्त करता हुआ (यज्ञस्य) प्रजा पालक राष्ट्र के (मूर्धन्) सर्वोच्च पद पर रह कर (देवान्) विजयशील, विद्वान् पदाधिकारियों को और राज-सभासदों को (सम् अनक्तु) एकत्र करे।

वन॒स्पति॒रव॑सृष्टो॒ न पाशै॒स्त्मन्या॑ सम॒ञ्जञ्छ॑मि॒ता न दे॒वः।
इन्द्र॑स्य ह॒व्यैर्ज॒ठरं॑ पृणा॒नः स्वदा॑ति य॒ज्ञं मधु॑ना घृ॒तेन॑ ॥ ४५ ॥

वनस्पतिरूप इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(वनस्पतिः) वन में लगे वृक्षों के समान अगणित असंख्य प्रजाजनों और सेनाजनों का पालक अथवा वनस्पति, महा वृक्ष वट आदि के समान बहुतों को अपने नीचे शीतल छाया और आश्रय का देने वाला राजा स्वयं (पाशैः) सभी बंधनों से (अवसृष्टः) मुक्त सा होकर भी (त्मन्या) अपने ही तेजः सामर्थ्य से (सम् अञ्जन्) प्रकाशमान होता हुआ वह (देवः) सूर्य के समान तेजस्वी, अन्यों को प्रकाशप्रद होकर (शमिता न) सब को शान्तिदायक एवं दण्डकर्ता हो जाता है। वह (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (जठरं) उदर के समान यहां कोश को (हव्यैः)

ग्रहण करने योग्य अन्न और ऐश्वर्यमय बहुमूल्य रत्नों से (पृणानः) पूर्ण करता हुआ (यज्ञं) व्यवस्थित, सुसंगत राष्ट्र को (मधुना घृतेन) मधुर घी से भोजन के समान (मधुना) मधुर (घृतेन) तेज से (स्वदाति) स्वयं भोगता है।

स्तोकानामिन्दुं प्रति शूर ऽइन्द्रो वृषायमाणो वृषभस्तुराषाट्। घृतप्रुषा मनसा मोदमानाः स्वाहा देवा ऽअमृता मादयन्ताम् ॥४६॥

भा०—(स्तोकानाम्) अल्प शक्ति वाले पुरुषों में से जो (वृषभः) महान् (तुराषाट्) हिंसक, दुष्ट पुरुषों को पराजित करने हारा, (वृषायमाणः) सब प्रजाओं पर मेघ के समान वर्षक और राष्ट्र पर आने वाले संकटों का प्रतिबन्धक होकर (शूरः) शूर वीर है, वह (इन्द्रः) इन्द्र पद के योग्य है। उस (इन्द्रम् प्रति) ऐश्वर्यवान्, दयार्द्र स्वभाव, राजा के (प्रति) प्रति (घृतप्रुषा) स्नेह और तेज को सेचन करने वाले (मनसा) मन या विज्ञान से (मोदमानाः) अति प्रसन्न होते हुए (अमृताः देवाः) जीवित, अधिकारी राज पुरुष (स्वाहा) उत्तम यश या अपने आत्मसमर्पक वचनों द्वारा (मोदयन्ताम्) हर्ष अनुभव करें और प्रजा को सुप्रसन्न, सुतृप्त करे।

आ यात्विन्द्रोऽवस ऽउप न ऽइह स्तुतः सधमादस्तु शूरः। वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥ ४७ ॥

ऋ० ४। २१। १॥

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का विदारण करनेवाला, विजयी (शूरः) शूरवीर (नः अवसे) हमारी रक्षा करने के लिये (इह) इस राष्ट्र में (उप आयातु) प्राप्त हो। (स्तुतः) उत्तम गुणों से प्रशंसित वह

४७—(४७–५२) षड् याज्यानुवाक्याः।

(सधमाद् अस्तु) समस्त प्रजा और शासन के साथ सु-प्रसन्न होकर रहे। (यस्य) जिसके (पूर्वीः) पूर्ण सामर्थ्यवाले (तविषीः) बल के बड़े २ कार्य और शक्तियां विद्यमान हैं और जो स्वयं (वावृधानः) सदा वृद्धिशील है वह (अभिभूति) शत्रु के पराजय करने में अपने समर्थ (क्षत्रम्) क्षात्र बल, वीर्य को (द्यौः न) सूर्य के समान (पुष्यात्) तेजस्वी, प्रचण्ड और पुष्ट करे।

आ न॒ऽइन्द्रो॑ दू॒रादा न॑ऽआ॒साद॑भिष्टि॒कृदव॑से यासदु॒ग्रः।
ओजि॑ष्ठेभिर्नृ॒पति॒र्वज्र॑बाहुः स॒ङ्गे स॒मत्सु॑ तु॒र्वणि॑: पृत॒न्यून् ॥४८॥
ऋ० ४ । २० । १ ॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(नः) हमारा (इन्द्रः) शत्रुओं को फोड़देने में समर्थ ऐश्वर्यवान् राजा (दूरात्) दूर देश से और (आसात्) समीप से भी (नः अवसे) हमारी रक्षा के लिये (उग्रः) अति बलवान् होकर (आ यासत्) आवे। और वह (ओजिष्ठेभिः) अति पराक्रमी, वीर पुरुषों के (सङ्गे) संग में (समत्सु) संग्राम के अवसरों पर (पृतन्यून्) सेना द्वारा आक्रमण करने वाले शत्रुओं को (तुर्वणिः) विनाश करने में समर्थ (वज्रबाहुः) वीर्यवान् बाहुओं वाले शस्त्रास्त्र सम्पन्न (नृपतिः) नरों का पालक हो।

आ न॒ऽइन्द्रो॒ हरि॑भिर्या॒त्वच्छा॑र्वाची॒नोऽव॑से॒ राध॑से च।
तिष्ठा॑ति व॒ज्री म॒घवा॑ विर॒प्शी॒मं य॒ज्ञमनु॑ नो॒ वाज॑सातौ ॥ ४९ ॥
ऋ० ४ । २० । २ ॥

इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(वज्री) वीर्यवान्, शस्त्र बल से युक्त, (मघवा) ऐश्वर्यवान्, (विरप्शी) महान्, (इन्द्रः) इन्द्र, सेनापति, (अर्वाचीनः) अभिमुख दिशा में आगे की तरफ बढ़नेवाला, सदा उदयशील, होकर (नः)

हमारे (अवसे) रक्षा के लिये और (राधसे च) हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (अच्छे) भली प्रकार (आयातु) आगे बढ़े। वह (वाजसातौ) संग्राम में या वाज=ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (इमं यज्ञम्) इस यज्ञ अर्थात् प्रजापति के महान् कार्य को (अनु तिष्ठाति) करे।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवेहवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥५०॥

ऋ० ४। ४७। ११ ॥

गर्ग ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—मैं (इन्द्रम्) शत्रुओं के विदारण करनेवाले और (त्रातारम्) कष्टों से बचाने वाले पुरुष को (ह्वयामि) बुलाता हूं। (हवे हवे) प्रत्येक संग्राम में मैं (अवितारम्) रक्षा करनेवाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्य-वान् पुरुष को बुलाता हूं। मैं (सुहवं) उत्तम संग्राम करनेवाले शूरवीर, (इन्द्रम्) इस राष्ट्र के धारणकर्त्ता 'इन्द्र', राजा को बुलाता हूं। मैं (शक्रं) शक्तिशाली, (पुरुहूतम्) बहुत प्रजाओं द्वारा स्वीकृत, (इन्द्रम्) अन्नादि के रक्षक पुरुष को (ह्वयामि) बुलाता हूं। वह (मघवान्) धनादि समृद्ध (इन्द्रः) पृथ्वी का पालक (नः) हमें (स्वस्ति) कल्याण और सुख (धातु) प्रदान करे।

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ२ऽ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो ऽअभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ५१ ॥

ऋ० ४। ५७। १२ ॥

इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप् भुरिक् पंक्तिर्वा पञ्चमो वा। धैवतः ॥

भा०—(सुत्रामा) राज्य के उत्तम साधनों से पालन करनेवाला, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, (स्ववान्) अपने नाना सहायकों से युक्त (विश्व-वेदाः) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करके (अवोभिः) अपने नाना

प्रकार के रक्षण साधनों से (सुमृडीकः भवतु) प्रजा को सुखकारी हो। वह (द्वेषः) शत्रुता करनेवालों को (बाधताम्) पीड़ित करे और दण्डित करे और राष्ट्र में (अभयं कृणोतु) समस्त प्रजा को परस्पर भय रहित करे। और हम प्रजाजन (सुवीर्यस्य) उत्तम सामर्थ्य और पराक्रम के (पतयः) स्वामी (स्याम) होकर रहें।

तस्यं व॒यꣳ सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म। स सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒२ऽ इन्द्रो॑ऽअ॒स्मेऽआ॒राच्चि॒द्द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु ॥ ५२ ॥

ऋ० ४। ४७। १२॥

इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(वयम् अपि) हम भी (तस्य) उस (यज्ञियस्य) प्रजापति पद के योग्य, राज्य व्यवस्थापन में कुशल पुरुष के (सुमतौ) शुभ उत्तम ज्ञान और (भद्रे) सुखकारी (सौमनसे) उत्तम चित्त के व्यवहार में, उसकी प्रसन्नता में (स्याम) रहें। (सः) वह (सुत्रामा) उत्तम रक्षक (स्ववान्) उत्तम धनैश्वर्य और सहायकों से युक्त, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति (सनुतः) सदा (द्वेषः) द्वेष करनेवाले पुरुषों को (अस्मे) हम से (अरात् चित्) दूर ही (युयोतु) करे।

आ म॒न्द्रैरि॑न्द्र॒ हरि॑भिर्या॒हि म॒यूर॑रोमभिः। मा त्वा॒ के चि॒न्नि य॑म॒न्विं न पा॒शिनोऽति॒ धन्वे॑व॒ ताँ२ऽ इ॑हि ॥५३॥ ऋ० ३। ४५। १॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! राजन् ! तू (मयूररोमभिः) मोर के पंखों के समान नील वर्ण के लोमों वाले (मन्द्रैः) अति उत्तम (हरिभिः) अश्वों सहित, अथवा (मयूररोमभिः) मोर के पंखों से सजे (हरिभिः) शत्रुसंहारक सेनानायकों सहित (आयाहि) तू प्राप्त हो। (पाशिनः विं न) फांसा फेंकनेवाले शिकारी लोग जिस प्रकार पक्षी के फांस लेते हैं

उसी प्रकार (त्वा) तुझ को (के चित्) कोई भी (मा नियमन्) न बांध लें। तू (तान्) उन दुष्ट बन्धकों को भी (अतिधन्वा इव) बड़े धनुर्धर के समान (अति) वीरता पूर्वक अतिक्रमण करके, पार करके (आ इहि) हमें प्राप्त हो।

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः।
स न स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५४॥

ऋ० ७।२३।६॥

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(वृषणम्) बड़े बलवान्, (वज्रबाहुम्) वीर्यवान् और शस्त्रों से सुसज्जित बाहु वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की (एव इत्) ही (वसिष्ठासः) बड़े २ धनाढ्य राष्ट्रवासी पुरुष (अर्कैः) उत्तम आदर सत्कारों से (अभि अर्चन्ति) सब प्रकार से पूजा सत्कार करें। (सः) वह (स्तुतः) कीर्तिमान् पुरुष, (नः) हमारे (वीरवद्) वीरों से युक्त और (गोमत्) गौ, अश्व आदि पशुओं से समृद्ध राष्ट्र की (धातु) रक्षा करे। हे वीर पुरुषो! (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (सदा) सदा काल, (स्वस्तिभिः) सुखकारी उपायों से (पात) पालन करो।

समिद्धोऽअग्निरश्विना तप्तो घर्मो विराट् सुतः।
दुहे धेनुः सरस्वती सोमꣳ शुक्रमिहेन्द्रियम् ॥ ५५ ॥

विदर्भिर्ऋषिः। अश्विनौ सरस्वती इन्द्रश्च देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (अश्विनौ) प्रजा के स्त्री पुरुषो! (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी राजा (सम् इद्धः) अपने तेज से अति प्रदीप्त (तप्तः) पराक्रम से शत्रु प्रतापी, (घर्मः) आदित्य के समान (विराट्) विविध

५५—अतो द्वादशऽध्यायाः।

ऐश्वर्यों से युक्त होकर (सुतः) अभिषिक्त है । (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से युक्त वेदवाणी के समान विदुषी, विद्वत्सभा (धेनुः) गाय के समान समस्त सार पदार्थों को प्रदान करने वाली (इह) इस राष्ट्र में (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तिमान्, (इन्द्रियम्) इन्द्र राजा के पद के योग्य (सोमम्) समस्त राज्यैश्वर्य या राज्य को (दुहे) दोहन करती, पूर्ण करती है । उसको पूर्ण बलवान् करती है ।

तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती ।
मध्वा रजांꣳसीन्द्रियमिन्द्राय पथिभिर्वहान् ॥ ५६ ॥

भा०—(तनूपा) शरीर की रक्षा करने वाले, (भिषजा) सर्व रोग निवारक वैद्यों के समान राष्ट्र के विस्तृत शरीर के रक्षक, दुष्ट पुरुषों के चिकित्सक, (उभे अश्विना) दोनों अश्व युक्त, सेना के पति, राजा मन्त्री या सज स्त्री और पुरुष गण और (सरस्वती) वेद वाणी के समान ज्ञान से पूर्ण विद्वत्सभा ये सब (मध्वा) मधुर अन्न, ज्ञान और बल से (रजांसि) समस्त लोक और (इन्द्रियम्) राजोचित ऐश्वर्य का, (पथिभिः) नाना सत्-उपायों और मार्गों से (इन्द्राय) परम ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (वहान्) प्राप्त करावें, एकत्र करें ।

इन्द्रायेन्दुꣳ सरस्वती नराशꣳसेन नग्नहुम् ।
अधातामश्विना मधु भेषजं भिषजा सुते ॥ ५७ ॥

भा०—(सरस्वती) उत्तम ज्ञानसम्पन्न विद्वत् सभा, (इन्द्राय) दुःखों के नाश करने वाले परम ऐश्वर्य युक्त राजपद के लिये (नराशंसेन) समस्त उत्तम पुरुषों द्वारा गुण स्तवन के सहित (नग्नहुम्) दरिद्रों के पालक, प्रजा के सुखदायक (इन्दुम्) दयालु, आर्द्रस्वभाव, ऐश्वर्यवान् आल्हादक पुरुष को (अधात्) राज्य पद पर स्थापित करे । और (भिषजा अश्विना) रोग निवारक वैद्यों के समान विवेकी विद्वान् स्त्री पुरुष

(सुते) अभिषिक्त राजा के निमित्त या राष्ट्र में (भेषजम्) रोग निवारक ओषधि के समान (मधु) मधुर अन्न और सेना बल को (अधाताम्) धारण करें, स्थापित करें। सेना पोलीस आदि भी शरीर में रोग शमन, कारी ओषधि के समान उपद्रवकारी पुरुषों को शान्ति के लिये और अन्नादि पदार्थ भूख शान्ति के लिये हों। वह व्यर्थ प्रजा के पीड़न करने और अन्नादि पदार्थ व्यसनों में फंकने या दुरुपयोग के लिये न हों।

आजुह्वाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्यम्।
इडाभिरश्विनाविषꣳ समूर्जꣳ सꣳ रयिं दधुः ॥ ५८ ॥

भा०—(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों के सामर्थ्यों और इन्द्रोचित ऐश्वर्यों का और (वीर्यम्) परम शक्ति, अधिकार (आजुह्वाना) प्रदान करती हुई (सरस्वती) प्रशस्त ज्ञानवती विदुषी स्त्री के समान विद्वत्सभा और (अश्विनौ) ओषधियों से ही अन्न और बल को उत्पन्न करा देने वाले वैद्यों के समान (अश्विनौ) नाना विद्याओं में विख्यात स्त्री और पुरुष, या उच्च दो अधिकारी (इडाभिः) नाना प्रकार के अन्नों से (इषं) इच्छानुसारी (ऊर्जम्) बल पराक्रम को और (रयिम्) ऐश्वर्य को भी (सं सं दधुः) प्रदान करें।

अश्विना नमुचेः सुतꣳ सोमꣳ शुक्रं परिस्रुता।
सरस्वती तमाभरद्बर्हिषेन्द्राय पातवे ॥ ५९ ॥

भा०—(अश्विनौ) नाना विद्याओं में कुशल राष्ट्र के स्त्री पुरुष अथवा वसन्त और ग्रीष्म के समान सौम्य और प्रचण्ड अधिकारी, सन्धि और विग्रह के कर्ता अधिकारीगण, (नमुचेः) न छोड़ने योग्य शत्रु से ही प्राप्त करके (परिस्रुता) अभिषेक क्रिया द्वारा (सुतं) अभिषिक्त (शुक्रं) शुद्ध किये गये (सोमम्) राज्य को प्राप्त करते हैं। (सरस्वती) विद्वत्सभा भी (तम्) उसको (बर्हिषे) बड़े भारी सामर्थ्य से या प्रजारूप से

(इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शासक के (पातवे) भोग के लिये (आभरत्) प्रस्तुत करती है।

'* 'अश्विनौ'—अथ यदेनं (अग्निम्) द्वाभ्याम् बाहुभ्यां द्वाभ्याम् अरणीभ्यां मन्थन्ति द्वौ वा अश्विनौ तदस्याश्विनं रूपम् ॥ ऐ० ३ । ४ ॥ मुख्यौ वा अश्विनौ यज्ञस्य । श० ४ । १ । ५ । १७ ॥ वसन्तग्रीष्मावेवाश्विनाभ्यामवरुन्धे । श० १२ । २ । २ । ३४ ॥

गृहस्थपक्षमें—स्त्री पुरुष, ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी, या गुरु और शिष्य (नमुचेः) अत्याज्य, अखण्ड ब्रह्मचर्यकाल से प्राप्त जिस (सोमं) वीर्य को सम्पादित करते हैं उसको (सरस्वती) उत्तम स्त्री, (बर्हिषा) सन्तति रूप से (इन्द्राय पातवे) अपने सौभाग्य के भोग के लिये अपने भीतर (आभरत्) धारण करती है। अर्थात् वीर्याधान द्वारा पुरुष को भोग और सन्तति लाभ, दोनों प्राप्त हों।

कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिशः ।
इन्द्रो न रोदसी ऽउभे दुहे कामान्त्सरस्वती ॥ ६० ॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (अश्विभ्याम्) दिन और रात्रि द्वारा या वायु सूर्य और चन्द्र द्वारा (व्यचस्वतीः) विस्तृत रूप से व्यापक (दिशः) दिशाओं को पूर्ण करता है, उनमें व्यापता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक, एवं ऐश्वर्यवान् राजा (अश्विभ्याम्) नाना भोग समृद्धि के भोक्ता स्त्री पुरुषों द्वारा, या व्यापक अधिकार वाले मुख्य अधिकारियों द्वारा (कवष्यः) नाना स्तुति समान शत्रुवारण करने वाली वीर प्रजाओं और सेनाओं को वचनों और वाद्य ध्वनियों से गूंजती हुई (दुरः) नगर की द्वारों या शत्रुवारक सेनाओं को (दुहे) पूर्ण करता है। द्वारों को शोभा और उत्सवों से और सेनाओं को युद्ध साधनों से युक्त करता है। इसी प्रकार (इन्द्रः) सूर्य जिस प्रकार (सरस्वती१) अपनी तीव्र

व्यापक शक्ति से (उभे रोदसी) दोनों आकाश और पृथ्वी को (दुहे) पूर्ण करता है और उनसे दोनों के रसों का दोहन करता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा द्वारा (उभे) दोनों राजा और प्रजागण तथा स्त्री और पुरुषों के वर्गों को (दुहे) पूर्ण करता और उनसे सारवान् रत्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करता है।

उ॒षासा॒नक्त॑म॒श्विना॒ दिवेन्द्र॑ꣳ सा॒यमि॑न्द्रि॒यैः।
सं॒जा॒ना॒ने सु॒पेश॑सा॒ सम॑ञ्जाते॒ सर॑स्वत्या ॥ ६१ ॥

भा०—अश्वि नामक राष्ट्र के दो मुख्य कार्यकर्त्ताओं के कर्त्तव्य—(अश्विना) दोनों अश्विगण, (उषासा नक्तम्) उषा दिन और रात्रि काल के समान हैं। उषा अर्थात् दिन जिस प्रकार अपने तेज से पदार्थों को तपाता है उसी प्रकार राजा के वह मुख्य अधिकारी हैं जो दुष्ट पुरुषों को तपावें। दूसरा रात्रि जिस प्रकार शीतल स्वभाव है उसी प्रकार दुःखितों को सान्त्वना देने वाला दूसरा अध्यक्ष है। वे दोनों अधिकारी राष्ट्र के कार्यों में व्यापक होने से 'अश्वि' हैं। उनमें से एक प्रजा के हितकारी नियमों का प्रकाशन करता है दूसरा उसको न पालन करने वालों को दण्ड देता है। वे दोनों (इन्द्रम्) ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र को या राष्ट्र के राजा को (इन्द्रियैः) इन्द्र पद के योग्य अधिकारों और बलों से (समञ्जाते) युक्त करते हैं। और स्वयं (संजानाने) परस्पर सहमति करके तत्पश्चात् (सरस्वत्या) उत्तम ज्ञानसम्पन्न विद्वत्सभा द्वारा राजा को (सुपेशसा) उत्तम ऐश्वर्य या रूप से (सम्-अञ्जाते) सम्पन्न करते और अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं।

पा॒तं नो॑ अश्विना॒ दिवा॑ पा॒हि नक्त॑ꣳ सरस्वति।
दैव्या॑ होतारा भिषजा पा॒तमिन्द्र॑ꣳ सचा॑ सु॒ते ॥ ६२ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्र और दिन रात्रि के समान, प्रताप और शान्ति से युक्त मुख्य दो अधिकारी जनो! आप दोनों (नः) हमारी (दिवा) दिन के समय रक्षा करो और हे (सरस्वति) सरस्वति!

विद्वत्सभे ! तू हमें (नक्तम्) जिस काल में कोई सत्य पदार्थ स्पष्टरूप में प्रकट न हों वहां ज्ञान द्वारा उत्तम रीति से दर्शा कर (पाहि) अनर्थ से बचा। (दैव्या होतारा) दिव्यगुण सम्पन्न, सब प्रकार के सुख देनेवाले (भिषजा) शरीर के रोगों की चिकित्सा करनेवाले वैद्यों के समान राष्ट्र शरीर के दोषों को दूर करने वाले आप दोनों (सुते) उत्तम रीति से व्यवस्थित राष्ट्र में (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की (सचा) एक साथ मिलकर (पातम्) रक्षा करें।

अध्यात्म में—प्राणपानौ वै दैव्यौ होतारौ। ए० २। ४॥ वाक् सरस्वती। इन्द्र आत्मा।

ति॒स्रस्त्रे॒धा सर॑स्वत्य॒श्विना॒ भार॑ती॒डा।
ती॒व्रं परि॒स्रुता॒ सोम॒मिन्द्रा॑य सुषुवु॒र्मद॑म्॥ ६३॥

भा०—(सरस्वती) सरस्वती, (भारती) भारती (इडा) इडा ये (तिस्रः) तीनों और (अश्विनौ) दोनों, सद्-वैद्यों के समान उक्त अधिकारी (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (इन्द्राय) इन्द्र, राजा के लिये (तीव्रं) तीव्र (मदम्) आनन्द और हर्ष जनक (सोमम्) राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को (सुषुवुः) उत्पन्न करते हैं। अथवा—(इन्द्राय) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के लिये (मदम्) हर्षजनक (तीव्रम्) तीव्र, तीक्ष्ण स्वभाव के राजा को उत्पन्न करते हैं।

अ॒श्विना॑ भेष॒जं मधु॑ भेष॒जं नः॒ सर॑स्वती।
इन्द्रे॒ त्वष्टा॒ यशः॒ श्रिय॑ꣳ रू॒पꣳ रू॒पम॑धुः सु॒ते॥ ६४॥

भा०—(अश्विनौ) पूर्वोक्त दोनों अश्वि नाम अधिकारियों ने (मधु) मधुर (भेषजम्) समस्त रोगों और दोषों को शान्त करने वाला उपाय, अन्न, बल और ज्ञान (सुते इन्द्रे) अभिषिक्त राष्ट्र और राष्ट्रपति में स्थापित किया

६०—१. तृतीयाविभक्तेर्लुक्।

और (सरस्वती) विदुषी माता के समान विद्वत्सभा भी (सुते इन्द्रे) अभिषिक्त इन्द्र राजा में (भेषजम्) सर्व रोगों और उपद्रवों को शान्त करने वाले (यशः) यश या वीर्य बल और अधिकार प्रदान करती है। (त्वष्टा) शिल्पी, समस्त पदार्थों को घड़ कर बनाने वाला विश्वकर्मा जिस प्रकार (इन्द्रे) विद्युत् के बल पर (श्रियम्) नाना शोभाजनक, बहुमूल्य सम्पत्ति और (रूपम् रूपम्) नाना सुन्दर २ पदार्थ, (अधुः) स्थापित करता है उसी प्रकार विश्वकर्मा लोग राजा के आधार पर नाना राष्ट्र के कार्य करें।

ऋतुथेन्द्रो वनस्पतिः शशमानः परिस्रुता।
कीलालमश्विभ्यां मधु दुहे धेनुः सरस्वती ॥ ६५ ॥

भा०—(वनस्पतिः) वृक्ष जिस प्रकार (शशमानः) वृद्धि को प्राप्त होकर (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार (परिस्रुता) जलादि सेचन करने से (मधु कीलालं दुहे) मधुर अन्न फल प्रदान करता है उसी प्रकार वनस्पति स्वभाव का (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (शशमानः) उत्तम रीति से वृद्धि को प्राप्त होकर (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (ऋतुथा) अपने बल वीर्य के अनुसार (मधु) मधुर बलकारी (कीलालम्) अन्न और अन्न के समान नाना भोग्य पदार्थों को (दुहे) उत्पन्न करता है। अथवा—(मधु) शत्रु को कंपन करने वाला (कीलालम्) बल उत्पन्न करता है। (धेनुः) दुधार गाय के समान (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा भी (अश्विभ्याम्) दो प्रधान विद्वान् मन्त्रि और सभापति के साहाय्य से, (मधु कीलालम्) मधुर दुग्ध के समान मनन करने और धारण करने योग्य ज्ञान को, अथवा—(मधु) आनन्दजनक सुखकारी, (कीलालम्) राज्य के प्रबन्ध को (दुहे) उत्पन्न करती है।

कीलालम्—कीलालममृतं पयः इति अमरः। कल गतौ चौरादिः। कील बन्धने खण्डने च भ्वादिः। कलयति कल्पते वा तत् ज्ञानं कीलालम्।

कीलयति बध्नाति, खण्डयति घ्यते खण्ड्यते वा तत् कीलालम् प्रबन्धः, शत्रुच्छेदकं बलं, अन्नं वा ।

गोभिर्न सोममश्विना मासरेण परिस्रुता ।
समधातᳪं सरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुतं मधु ॥ ६६ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) अश्विगणो ! दो मुख्य अधिकारीजनो ! आप लोग (सरस्वत्या) सरस्वती नामक विद्वत्समिति के साथ मिलकर (गोभिः) पशुओं से और (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा प्राप्त सब दिशाओं की प्राप्त लक्ष्मी और (मासरेण) प्रति मास देने योग्य वेतन के नियम से (स्वाहा) उत्तम राज्य की नीति से (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में (मधु सुतम्) मधुर, सर्वप्रिय अभिषिक्त पुरुष को (सम् अधातम्) स्थापित करो । अथवा—(इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् पुरुष में (मधु) मधुर, आनन्द-जनक (सुतं) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को (सम् अधातम्) अच्छी प्रकार स्थापन करो ।

अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

[६७–६९] अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(अश्विना) पूर्वोक्त दो अधिकारी जन और (सरस्वती) विद्वत्सभा (धिया) बुद्धिपूर्वक और राष्ट्र के धारण करनेवाली शक्ति से (नमुचेः) कभी न छोड़ने योग्य, सदा बध कर देने योग्य शत्रु से अथवा शत्रु के हाथ कभी न देने योग्य राष्ट्र से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक राजा के लिये (हविः) अन्न समृद्धि या स्वीकार करने योग्य (इन्द्रियं) ऐश्वर्य या इन्द्रपद और (शुक्रम्) शुद्ध तेजोमय (वसु) प्रजा को बसानेवाला राष्ट्र और (मघम्) ऐश्वर्य सम्पत्ति इन पदार्थों को (आ जभ्रिरे) प्राप्त कराते हैं ।

यम॒श्विना॒ सर॑स्वती ह॒विषेन्द्र॒मव॑र्द्धयन् ।
स बि॑भेद ब॒लं म॒घं नमु॑चावासु॒रे सचा॑ ॥ ६८ ॥

भा०—(अश्विना, सरस्वती) दोनों प्रकार के वैद्य और विदुषी माता जिस प्रकार पुत्र को (हविषा) अन्न से (अवर्धयन्) पुष्ट करते हैं (आसुरे नमुचौ) प्राणों में रमण करनेवाले आत्मा के निमित्त (मघं बलं विभेद) अति उत्तम बल प्राप्त करता है उसी प्रकार (अश्विनौ सरस्वती) उत्तम पदों को प्राप्त होकर अश्विजन और विद्वत्सभा तीनों मिलकर (हविषा) अन्नादि समृद्धि और उत्तम उपाय से (यम् इन्द्रम्) जिस शत्रु नाश करनेवाले पुरुष को (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं (सः) वह ही (आसुरे नमुचौ) असुर स्वभाव के नमुचि अर्थात् उपेक्षा न करने योग्य, शत्रु के पास (सचा) विद्यमान (मघम्) ऐश्वर्य को (बिभेद) उससे छीन लेता है और (बलम्) उसके बल, सेना-बल और यन्त्र-बल को (बिभेद) तोड़ डालता है ।

तमिन्द्रं॑ प॒शव॒: सचा॒श्विनो॒भा सर॑स्वती ।
दधा॑ना अ॒भ्य॑नूषत ह॒विषा॑ य॒ज्ञऽइ॑न्द्रि॒यैः ॥ ६६ ॥

भा०—(पशवः) नाना पशु सम्पत्तियें, अथवा बहुतसे दूरदर्शी पुरुष (सचा उभा अश्विना) परस्पर संयुक्त दोनों मुख्य पदाधिकारी और (सरस्वती) सरस्वती नामक विद्वत्-सभा (तम् इन्द्रम्) उस ऐश्वर्य-वान्, शत्रुनाशक, राष्ट्र और राष्ट्रपति को (दधानाः) धारण करते हुए (यज्ञैः) प्रजापालनरूप यज्ञ में (हविषा) अन्नादि सामग्री और (इन्द्रियैः) ऐश्वर्यों और राजकीय बलों से (अभि अनूपत) सब प्रकार से बढ़ाते और उसकी प्रशंसा और कीर्ति उत्पन्न करते हैं ।

य॒ऽइन्द्र॒ऽइ॑न्द्रि॒यं द॒धुः स॑वि॒ता वरु॑णो॒ भग॑: ।

६८—'०मुचा आसु०' इति काण्व० ॥

स सुत्रामा हविष्पतिर्यजमानाय सश्चत ॥ ७० ॥

[७०-७२] इन्द्रसवितृवरुणा देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(सविता) उत्पादक या अभिषेककर्त्ता, (वरुणः) राज का वरण करनेवाला, (भगः) राजा का सेवक अथवा (सविता) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष सबका आज्ञापक, (वरुणः) राष्ट्र के विपत्तियों का निवारक सेनापति और (भगः) ऐश्वर्यवान्, कोषाध्यक्ष ये तीनों मिलकर (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् शत्रुविजयी-इन्द्र पद के योग्य पुरुष में (इन्द्रियम्) इन्द्रपद के योग्य ऐश्वर्य और बल को (दधुः) स्थापन करते हैं । (सः) वह (सुत्रामा) राष्ट्र का उत्तम रीति से रक्षा करनेहारा (हविष्पतिः) समस्त ग्राह्य पदार्थों का स्वामी होकर (यजमानाय) दानशील, करप्रद अधीन माण्डलिक और अपने साथ आ मिलनेवाले अथवा पूजनीय प्रजाजन के लाभ के लिये उस राजपद को (सश्चतु) प्राप्त करें ।

सविता वरुणो दधद्यजमानाय दाशुषे ।
आदत्त नमुचेर्वसु सुत्रामा बलमिन्द्रियम् ॥ ७१ ॥

भा०—(सविता) सबका प्रेरक और (वरुणः) दुष्टों का निवारक श्रेष्ठ पुरुष, (दाशुषे) करप्रद (यजमानाय) अपने से मिले हुए मित्र राजा को (सुत्रामा) उत्तम त्राणकर्त्ता होकर (नमुचेः) आत्याज्य शत्रु के (बलम् इन्द्रियम्) बल, ऐश्वर्य और (वसु) धन को स्वयं (आदत्त) ले ले ।

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥ ७२ ॥

भा०—(वरुणः) शत्रुओं का निवारक, (इन्द्रियं) इन्द्र, राजा के योग्य (क्षत्रं) क्षात्रबल को (सविता) सर्वाज्ञापक अथवा ऐश्वर्य का

उत्पन्न करनेवाला, स्वयं (भगेन) कोप के ऐश्वर्य के साथ मिलकर (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी को और (सुत्रामा) उक्त रीति से राष्ट्र की रक्षा करनेहारा राजा स्वयं (यशसा) अपने अंश से, वीर्य से (बलं) सेनाबल को (दधानाः) धारण करते हुए (यज्ञम्) यज्ञ सुव्यवस्थित राष्ट्र को (आशत) छाये रहें, वश किये रहें, या भोग करें ।

अश्विना गोभिरिन्द्रियमश्वेभिर्वीर्यं बलम् ।
हविषेन्द्रꣳ सरस्वती यजमानमवर्द्धयन् ॥ ७३ ॥

[७३–७५] अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अश्विनौ) राज्य के दो मुख्य पदाधिकारी, (गोभिः) दुग्धों से जिस प्रकार शरीर में इन्द्रिय सामर्थ्य बढ़ता है और (अश्वेभिः) व्यापक प्राणों से वीर्य और बल बढ़ता है उसी प्रकार (अश्विनौ) राज्य के दोनों मुख्य पदाधिकारी क्रम से (गोभिः) गौ आदि पालतू पशुओं से (इन्द्रियम्) राजा के ऐश्वर्य को बढ़ावें । और (अश्वेभिः) घोड़ों से या घुड़सवारों से (वीर्यम्) शरीर में वीर्य के समान राष्ट्र में तेज और वीरकर्म से युक्त (बलम्) सेना के बल की वृद्धि करें । और (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली विद्वत्सभा (यजमानम्) सबके स्नेही, राज्य के व्यवस्थापक, सर्वाश्रयप्रद (इन्द्रम्) इन्द्र, राजा को (हविषा) आदान योग्य करके (अवर्धयन्) वृद्धि करें ।

ता नासत्या सुपेशसा हिरण्यवर्त्तनी नरा ।
सरस्वती हविष्मतीन्द्र कर्मसु नोऽवत ॥ ७४ ॥

भा०—(ता) वे दोनों (नासत्या) सदा सत्य धर्म में वर्त्तमान, (सुपेशसा) उत्तम रूप वाले, (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण आदि धातुओं के व्यापार वृत्ति करने वाले, अथवा हितकारी मनोरम मार्ग से जाने वाले (नरा) नेता और (सरस्वती) विद्वत्-सभा (हविष्मती) प्रदान करने

योग्य ज्ञान और श्रवण करने योग्य उपायों से सम्पन्न होकर हे (इन्द्र) राजन् ! (नः) हमारे (कर्मसु) समस्त कार्यों में (अवत) रक्षा करो ।

ता भिषजा सुकर्मणा सा सुदुघा सरस्वती ।

स वृत्रहा शतक्रतुरिन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ७५ ॥

भा०—(ता) वे दोनों (सुकर्मणा) उत्तम राष्ट्र के कर्म करने वाले (भिषजा) उत्तम वैद्य के समान राष्ट्र के दोषों को दूर करने हारे हैं । (सा) वह (सरस्वती) ज्ञानवती विद्वत् सभा (सुदुघा) उत्तम दुग्ध देने वाली गौ के समान ज्ञानरस को दोहन करती है । और (शतक्रतुः) सैकड़ों कर्म करने वाले (वृत्रहा) शत्रुओं को मारने वाले, (इन्द्राय) इन्द्र पद, राज्य के लिये (ऐश्वर्यम् दधुः) ऐश्वर्य को धारण करें ।

युवꣳ सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।

विपिपानाः सरस्वतीन्द्रं कर्मस्वावत ॥ ७६ ॥

[७६, ७७] अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (अश्विना) पूर्वोक्त मुख्य पदाधिकारियो ! (युवं) तुम दोनों एवं हे (सरस्वति) ज्ञानवाली विद्वत्सभे तुम मिलकर ! तीनों (आसुरे) असुर स्वभाव के (नमुचौ) शत्रु के सदा विद्यमान रहते हुए (सुरामम्) उत्तम रीति से रमण करने योग्य, सुन्दर (इन्द्रम्) इन्द्र पद को या ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को (कर्मसु) समस्त कर्मों में (विपिपानाः) विविध उपायों से रक्षा करते हुए (अवतम्) प्राप्त होवे अथवा सदा उसकी रक्षा करता रहें ।

पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दꣳसनाभिः ।

यत्सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥७७॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । ३४ ॥

७६—'०नमुचा आसुरे०' इति काण्व० ।

७७—'०तरा अश्वि०' इति काण्व० ।

यस्मिन्नश्वास॑ऽऋष॒भास॑ऽउ॒क्षणो॑ व॒शा मे॒षाऽअ॑वसृ॒ष्टास॒ आहु॑ताः।
की॒ला॒ल॒पे सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑ हृ॒दा म॒तिं ज॑नय॒ चारु॑म॒ग्नये॑ ॥ ७८ ॥

ऋ० १० । ६१ । १४ ॥

[७८, ७९] अग्निर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आश्रय, जिसके निमित्त, और जिसके अधीन (अश्वासः) अश्व के समान वेगवान् अश्वारोही जन, (ऋषभासः) श्रेष्ठजन, एवं महावृषभ के समान परोपकारी, (उक्षाणः) सेचन समर्थ, युवा पुरुष, (वशाः) इन्द्रियों और देशों पर वश करने में समर्थ वशी, तपस्वी और तेजस्वी लोग (मेषाः) शत्रुओं से स्पर्द्धा पूर्वक लड़ने वाले योद्धा लोग (आहुताः) आदरपूर्वक बुला २ कर (अवसृष्टासः) उनके अधीनस्थ अधिकारी बनाये गये हैं उस (कीलालपे) शत्रु छेदन में समर्थ बल की रक्षा करने वाले (सोमपृष्ठाय) राष्ट्र और राजपद को पालन करने एवं उसको अपने ऊपर लेने वाले (वेधसे) बुद्धिमान्, महापुरुष (अग्नये) ज्ञानवान् सबके नेता पुरुष के लिये (हृदा) हृदय से (चारुम्) श्रेष्ठ (मतिम्) मान आदर (जनय) करो।

ईश्वर के पक्ष में—जिस परमेश्वर में (अश्वासः) तीव्र वेगवान् सूर्य विद्युत् आदि पदार्थ, (ऋषभासः) मेघ के समान (उक्षाणः) नद, जल वर्षक, (वशाः) पृथिवी, (मेषाः) सूर्य ये सब (अवसृष्टासः) उत्पन्न होते और प्रलय काल में फिर लीन होजाते हैं। उस (कीलालपे) नाशवान् स्वतः उच्छेद्य संसार के रक्षक अथवा कीलाल-अमृत के रक्षक, (सोमपृष्ठाय) संसार के पालक, (वेधसे) जगत् के विधाता (अग्नये) ज्ञानवान् स्वप्रकाश, परमेश्वर के लिये (हृदा मतिं चारुं जनय) हृदय से उत्तम स्तुति कर। उवट और महीधर दोनों ने इस मन्त्र का अर्थ किया है;—'जिस अग्नि में घोड़े, बैल, सांड, वांझ गायें और मेंढे काट २ कर डाल दिये और पकड़ २ कर ला ला कर झोंक दिये उस अग्नि के लिये उत्तम शुद्ध चित्त रख।'

विद्वान् के पक्ष में—जिस पुरुष के अधीन घोड़े, बैल, सांड, बांझ गौएं और मेंढे भी (आहुताः) पकड़ पकड़ कर लाये गये और (अवसृष्टासः) सधा लिये जाते, अधीन रहकर नाना कार्यों में नियुक्त करने योग्य बना लिये जाते हैं, उस (कीलालपे) उत्तम अन्नाहारी या अन्न-रक्षक (सोमपृष्ठाय) सोम्य गुण के पोषक (अग्नये) विद्वान् के लिये हृदय से उत्तम विचार रक्खो। अर्थात् पशुओं के सधाने वाले लोगों को भी तुच्छ दृष्टि से न देखो। मं० दया० ॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः।
वाजसनिꣳ रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥७९॥

ऋ० १० । ९१ । १५ ॥

अग्निर्देवता । जगती छन्दः । निषादः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक ! (ते) तेरे (आस्ये) शत्रु के उखाड़ फेंकने वाले बल के निमित्त (हविः) ग्रहण करने योग्य समस्त राष्ट्र (स्रुचि घृतम् इव) स्रुवे में घृत के समान और (चम्वि) यज्ञपात्र में (सोमः इव) सोम के समान, अथवा (चम्वि) सेना के ऊपर (सोमः) उसके आज्ञापक के समान, अथवा (चम्वि सोमः) पृथ्वी पर राजा के समान (अहावि) प्रदान किया, या धरा जाता है वह तू (अस्मे) हम पर (वाजसनिम्) संग्राम द्वारा प्राप्त होने योग्य अथवा बहुत अन्न और ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (धेहि) दे और हम पर (प्रशस्तं सुवीरम्) उत्तम, बढ़िया सुस्वभाव के वीर (यशसं) यशस्वी (बृहन्तम्) बड़े पुरुष को (धेहि) स्थापित कर।

अश्विना तेजसा चक्षुः प्राणेन सरस्वती वीर्यम्।
वाचेन्द्रो बलेनेन्द्राय दधुरिन्द्रियम् ॥ ८० ॥

[८० — ९०] एकादशर्चं शस्त्रम् । अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अश्विनौ) शरीर में प्राण और अपान दोनों (तेजसा) तेज के साथ (चक्षुः) चक्षु इन्द्रिय को (दधतुः) धारण करते हैं। और (सरस्वती) बल को धारण करने वाली चेतना शक्ति (प्राणेन वीर्यम्) प्राण के द्वारा वीर्य को शरीर में धारण करती है। (इन्द्रः) इन्द्र, मुख्य प्राण (वाचा) वाक्-शक्ति के साथ और (बलेन) बल से (इन्द्राय) जीव के लिये (इन्द्रियम्) इन्द्रियगण को (दधौ) धारण करता है। उसी प्रकार (अश्विनौ) राष्ट्र के स्त्री पुरुष या मुख्य अधिकारी (तेजसा) तेजसे जिस प्रकार चक्षु को धारण करते हैं और जिस प्रकार (प्राणेन वीर्यम्) प्राण से बलवीर्य को धारण करते हैं और (वाचा) वाक्शक्ति से (इन्द्रः) जीव (इन्द्रियम्) इन्द्रियगणों को धारण करता है। उसी प्रकार (अश्विनौ) दोनों मुख्य अधिकारी दो आंखों के समान (तेजसा) तेज, पराक्रम से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राज्य के (चक्षुः) चक्षु या निरीक्षण के कार्य को धारण करें और (सरस्वती) विद्वत्सभा, (प्राणेन) प्राण के समान जीवनप्रद अन्न और वेतन आदि आदि पदार्थों द्वारा राष्ट्र के (वीर्यम्) वीर्य, बल और पराक्रम को धारण करे। (इन्द्रः) सभापति (वाचा) ज्ञानमय वाणी, व्यवस्था पुस्तक से और सेनापति (वाचा) अपनी आज्ञाकारिणी वाणी से और (बलेन) सेना-बल से (इन्द्राय) ऐश्वर्य सपन्न राज्य के (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (दधुः) धारण करें।

गोमदू षु णासुत्याश्वावद्यातमश्विना।
वृर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥ ८१ ॥ ऋ० २ । ४१ । ७ ॥

[८१—८३] गृत्समद ऋषिः। अश्विनौ देवते। निचृद् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्यव्यवहार में रहनेवाले, (अश्विना) राष्ट्र के व्यापक शक्ति से युक्त ! हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलानेहारे (वर्त्ती) न्यायोचित मार्ग से वर्त्तनेवाले अधिकारी पुरुषो ! आप दोनों (गोमत्) गौ

आदि पशुओं से सम्पन्न (अश्वावत्) अश्वों और अश्वारोहियों से भरपूर, (नृपाय्यम्) और मनुष्यों की रक्षा करनेवाले राज्य को आप दोनों (सु यातम्) उत्तम रीति से प्राप्त करो।

न यत्परो नान्तर ऽआदधर्षद्वृषण्वसू।
दुःशꣳसो मर्त्यो रिपुः ॥ ८२ ॥ ऋ० २ । ४१ । ८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) जलों के वर्षण करनेवाले मेघ और विद्युत् के समान सुखों का वर्षण करनेवाले होकर प्रजाओं को बसानेवाले आप दोनों अधिकारी सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष बनो ! (यत्) जिससे (परः) बाहर का शत्रु और (आन्तरः) राजा के भीतर का शत्रु और (दुःशंसः) दुःसाध्य (मर्त्यः रिपुः) शत्रु पुरुष अथवा बुरी अपकीर्ति फैलानेवाला (रिपुः) पापी (मर्त्यः) पुरुष (न आदधर्षत्) राष्ट्र का और राजा का अपमान और आघात न कर सके वैसे आप राज्य को वश करो।

ता न ऽआ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसन्दृशम्।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥ ८३ ॥ ऋ० २ । ४१ । ९ ॥

भा०—हे (धिष्ण्या) बुद्धिमान् एवं विशेष आसन पर प्रतिष्ठित (ता) वे आप दोनों (अश्विना) राष्ट्र पर विशेष अधिकार प्राप्त पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (पिशङ्गसंदृशम्) सुवर्ण के समान सुन्दर दीखनेवाले (वरिवोविदम्) धन समृद्धि को प्राप्त करानेवाले (रयिम्) राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को (आ वोढम्) धारण करो, उसका सञ्चालन करो।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ ८४ ॥ ऋ० १ । ३ । १० ॥

[८४—८६] मधुच्छन्दा ऋषिः । सरस्वती देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा० – (पावका) पवित्र करने वाली, (वाजेभिः) ऐश्वर्यों और

८३—०वोळ्हम० इति काण्व० ६ ॥

बलों से (वाजिनीवती) बलयुक्त पुरुषों से बनी सेनाओं और विद्वान् पुरुषों से बनी उप समितियों से युक्त (धियावसुः) बुद्धि और क्रिया व्यापार द्वारा ऐश्वर्यवती अथवा अपने धारण पालन सामर्थ्य से सबको बसानेवाली होकर (यज्ञं) प्रजा पालक यज्ञ को या प्रजापति राजा को (वष्टु) तेजस्वी बनावे ।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥ ऋ० १ । ३ । ११ ॥

भा०—(सूनृतानाम्) उत्तम सत्य वाणियों की (चोदयित्री) प्रेरणा देनेवाली, आज्ञा करनेवाली, (सुमतीनाम्) उत्तम बुद्धियों को और बुद्धिमान् पुरुषों को (चेतन्ती) ज्ञानवान् करती हुई, (सरस्वती) सरस्वती वेदवाणी जिस प्रकार (यज्ञं दधे) यज्ञ, परमेश्वर को (दधे) धारण करती उसका ज्ञान धारण करती और उसका प्रतिपादन करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (सूनृतानां) उत्तम सत्य सिद्धान्तों, उत्तम सत्य व्यवस्थाओं को प्रेरित और ओघापित करती हुई, (सुमतीनां) राष्ट्र के हित के लिये शुभ मतियों, विचारों को (चेतन्ती) प्रकट करती हुई लोगों को चेताती हुई, (यज्ञं) प्रजापति राजा को और राज्य को भी (दधे) धारण करती है ।

महो ऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ ८६ ॥ ऋ० १ । ३ । १२ ॥

भा०—(सरस्वती) वेदवाणी (केतुना) अपने महान् ज्ञान से (महः अर्णः) बड़े भारी ज्ञान या शब्दसागर को (प्र चेतयति) प्रकट करती है । और (विश्वाः धियः) समस्त कर्मकाण्डों, कर्मों, कर्त्तव्यों को (वि राजति) प्रकाशित करती है । उसी प्रकार विद्वत्सभा (केतुना) विज्ञापक बल से (महः अर्णः) बड़ा ज्ञान प्रकट करती है । राष्ट्र के

(विश्वा धियः) समस्त कर्मों को या समस्त (धियः) बुद्धियों, बुद्धिमान् पुरुषों या धारण सामर्थ्यों को (वि राजति) विविध रूपों में प्रकाशित करती है ।

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता ऽइमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ८७ ॥ ऋ० १ । ३ । १२ ॥

(८७-८९) मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे (चित्रभानो) अद्भुत २ ज्ञानों के प्रकाश करनेवाले ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! (इन्द्र) ज्ञानों के द्रष्टा ! सभापते ! राजन् ! (इमे) ये (सुताः) समस्त प्राप्त राष्ट्रगत ऐश्वर्य एवं अभिषिक्त या पालक राजगण (त्वायवः) तुझे ही प्राप्त हो रहे हैं और वे (अण्वीभिः) अपने से छोटी प्रजा के द्वारा (तना) अपने विस्तृत गुण कीर्ति द्वारा (पूतासः) अभिषेक द्वारा पवित्र हैं ।

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ८८ ॥ ऋ० १ । ३ । ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (धिया) बुद्धि और उत्तम कर्म द्वारा प्रेरित (विप्रजूतः) विद्वान् मेधावी पुरुषों से शिक्षित होकर (सुतावतः) ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले (वाघतः) विद्वान् पुरुषों को (ब्रह्माणि उप) अन्नों, धनों, ऐश्वर्यों, वीर्यों और अधिकारों को प्राप्त करने के लिये (उप आ याहि) प्राप्त हो ।

इन्द्रायाहि तूतुजान ऽउप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ८९ ॥ ऋ० १ । ३ । ५ ॥

भा०—हे (हरिवः) ज्ञानी पुरुषों और वीर अश्वारोहियों के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) राजन् ! तू (तूतुजानः) क्षिप्रकारी, राष्ट्र के समस्त कार्यों को विद्युत् के समान अति शीघ्रता से करने हारा होकर (ब्रह्माणि) समस्त अधिकारों, वीर्यों और ऐश्वर्यों को (उप आयाहि) प्राप्त कर । (नः)

बलों से (वाजिनीवती) बलयुक्त पुरुषों से बनी सेनाओं और विद्वान् पुरुषों से बनी उप समितियों से युक्त (धियावसुः) बुद्धि और क्रिया व्यापार द्वारा ऐश्वर्यवती अथवा अपने धारण पालन सामर्थ्य से सबको बसानेवाली होकर (यज्ञं) प्रजा पालक यज्ञ को या प्रजापति राजा को (वष्टु) तेजस्वी बनावे ।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ८५ ॥ ऋ० १ । ३ । ११ ॥

भा०—(सूनृतानाम्) उत्तम सत्य वाणियों की (चोदयित्री) प्रेरणा देनेवाली, आज्ञा करनेवाली, (सुमतीनाम्) उत्तम बुद्धियों को और बुद्धिमान् पुरुषों को (चेतन्ती) ज्ञानवान् करती हुई, (सरस्वती) सरस्वती वेदवाणी जिस प्रकार (यज्ञं दधे) यज्ञ, परमेश्वर को (दधे) धारण करती उसका ज्ञान धारण करती और उसका प्रतिपादन करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (सूनृतानां) उत्तम सत्य सिद्धान्तों, उत्तम सत्य व्यवस्थाओं को प्रेरित और ओवापित करती हुई, (सुमतीनां) राष्ट्र के हित के लिये शुभ मतियों, विचारों को (चेतन्ती) प्रकट करती हुई लोगों को चेताती हुई, (यज्ञं) प्रजापति राजा को और राज्य को भी (दधे) धारण करती है ।

महो ऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ ८६ ॥ ऋ० १ । ३ । १२ ॥

भा०—(सरस्वती) वेदवाणी (केतुना) अपने महान् ज्ञान से (महः अर्णः) बड़े भारी ज्ञान या शब्दसागर को (प्र चेतयति) प्रकट करती है । और (विश्वाः धियः) समस्त कर्मकाण्डों, कर्मों, कर्त्तव्यों को (वि राजति) प्रकाशित करती है । उसी प्रकार विद्वत्सभा (केतुना) विज्ञापक बल से (महः अर्णः) बड़ा ज्ञान प्रकट करती है । राष्ट्र के

(विश्वा धियः) समस्त कर्मों को या समस्त (धियः) बुद्धियों, बुद्धिमान् पुरुषों या धारण सामर्थ्यों को (वि राजति) विविध रूपों में प्रकाशित करती है ।

इन्द्रायाहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः ।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ८७ ॥ ऋ० १ । ३ । १२ ॥

(८७-८९) मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृद् गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे (चित्रभानो) अद्भुत २ ज्ञानों के प्रकाश करनेवाले ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! (इन्द्र) ज्ञानों के द्रष्टा ! सभापते ! राजन् ! (इमे) ये (सुताः) समस्त प्राप्त राष्ट्रगत ऐश्वर्य एवं अभिषिक्त या पालक राजगण (त्वायवः) तुझे ही प्राप्त हो रहे हैं और वे (अण्वीभिः) अपने से छोटी प्रजा के द्वारा (तना) अपने विस्तृत गुण कीर्ति द्वारा (पूतासः) अभिषेक द्वारा पवित्र हैं ।

इन्द्रायाहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः ।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ८८ ॥ ऋ० १ । ३ । ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! तू (धिया) बुद्धि और उत्तम कर्म द्वारा प्रेरित (विप्रजूतः) विद्वान् मेधावी पुरुषों से शिक्षित होकर (सुतावतः) ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले (वाघतः) विद्वान् पुरुषों को (ब्रह्माणि उप) अन्नों, धनों, ऐश्वर्यों, वीर्यों और अधिकारों को प्राप्त करने के लिये (उप आ याहि) प्राप्त हो ।

इन्द्रायाहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ८९ ॥ ऋ० १ । ३ । ५ ॥

भा०—हे (हरिवः) ज्ञानी पुरुषों और वीर अश्वारोहियों के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) राजन् ! तू (तूतुजानः) क्षिप्रकारी, राष्ट्र के समस्त कार्यों को विद्युत् के समान अति शीघ्रता से करने हारा होकर (ब्रह्माणि) समस्त अधिकारों, वीर्यों और ऐश्वर्यों को (उप आयाहि) प्राप्त कर । (नः)

हमारे (सुते) अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्र में (चनः) भोग्य ऐश्वर्य और अन्न समृद्धि को (दधिध्व) धारण कर, जिससे प्रजा भूखी न मरे।

अश्विना पिबतां मधु सरस्वत्या सजोषसा ।
इन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताᳬ सोम्यं मधु ॥ १० ॥

ऋ० १ । ३ । ६ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्राः देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अश्विनौ) राष्ट्र के मुख्य दो अधिकारी (सजोषसा परस्पर प्रीतियुक्त होकर (सरस्वत्या) सरस्वती, विद्वत्सभा के साथ मिलकर (मधु) उत्तम राष्ट्र के ऐश्वर्य को (पिबताम्) भोग करें। वे और (सुत्रामा) राष्ट्र का उत्तम रीति से पालन करने में समर्थ। (इन्द्रः) शत्रुनाशक राजा, (वृत्रहा) शत्रु एवं विघ्नकारी वारक या बाधक कारणों का नाश करके (सोम्यं) ऐश्वर्य एवं राजपद के योग्य (मधु) मधुर अन्नादि से युक्त राष्ट्र का (जुषन्ताम्) भोग करें, या प्रेम से पालन करें।

॥ इति विंशोऽध्यायः ॥

इति पूर्वविंशतिः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्ये विंशोऽध्यायः ॥

रसवस्वङ्कचन्द्राब्दे कार्तिकेऽपरपक्षके ।
द्वादश्यां मङ्गले शुक्लयजुषोऽर्द्धं समाप्यते ॥

॥ अथैकविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ इमं मे वरुण श्रुधी हवंमद्या चं मृडय ।
त्वामंवस्युराचंके ॥ १ ॥ ऋ० १ । २५ । १९ ॥

[१,२] शुनःशेप ऋषिः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (वरुण) सब द्वारा वरण करने योग्य ! सर्वश्रेष्ठ (मे) मेरी, मुझ प्रजाजन की (हवम्) स्तुति, आह्वान, पुकार को (श्रुधि) श्रवण कर और (अद्य च) आज और सदा ही, हमें (मृडय) सुखी कर । (अवस्युः) रक्षा चाहता हुआ मैं (त्वाम्) तुझे मैं अपना रक्षक बनाना (आचके) चाहता हूं । ईश्वर और राजा के पक्ष में समान है ।

तत्त्वा यामि ब्रह्मंणा वन्दंमानुस्तदा शांस्ते यजंमानो हुविर्भिः ।
अहेंडमानो वरुणेह बोध्युरुशथंस मा नु ऽआयुः प्र मोषीः ॥२॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १९ । मं० ४९ ॥

त्वं नों अग्ने वरुंणस्य विद्वान् देवस्य हेडो ऽअवं यासिसीष्ठाः ।
यजिंष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुंमुग्ध्युस्मत् ॥३॥
ऋ० ४ । १ । ४ ॥

[३,४] वामदेव ऋषिः । त्रिष्टुप् धैवतः । अग्निर्वरुणश्च देवते ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नेतः ! ज्ञानवन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे बीच में (विद्वान्) विद्यावान् है । अतः तू (वरुणस्य देवस्य) समस्त शत्रुओं के वारक एवं सर्वश्रेष्ठ, देव, विजयशील राजा के द्वारा (हेडः) प्राप्त अनादर एवं उसके प्रति हमसे हुए अनादर या अवज्ञा के भाव को या उसके कोप को (अव यासिसीष्ठाः) दूर कर । तू ही

१—'०मृडय'० इति काण्व० । २—'हेळो'० इति काण्व० ।

(यजिष्ठः) सब से अधिक पूजा करने योग्य, (वह्नितमः) समस्त कार्य-भार को वहन करने में सब से उत्तम, नेता होने योग्य और (शोशुचानः) और अग्नि के समान स्वयं शुद्ध और अन्यों को शुद्ध पवित्र करने हारा तथा ज्ञान दीप्ति से प्रकाशमान है। तू गुरु या आचार्य के समान शिक्षक होकर (अस्मत्) हम से (विश्वा द्वेषांसि) समस्त प्रकार के द्वेषभावों को (प्र मुमुग्धि) दूर कर।

स त्वं नो ऽअग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो ऽअस्या ऽउषसो व्युष्टौ।
अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न ऽएधि ॥४॥

ऋ० ४।१।५॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! (सः) वह (त्वं) तू (नः) हमारा (ऊती) अपने रक्षा सामर्थ्य से (अवमः) सब से उत्तम रक्षक, (नेदिष्ठः) हमारे अति समीप (भव) हो। और (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात काल के (व्युष्टि) प्रकाशित होने पर (नः) हमें (वरुणम्) सबसे वरण करने योग्य राजा का (अव यक्ष्व) सत्संग करा। और तू (रराणः) उत्तम भेंट पुरस्कार आदि प्रदान करता हुआ (मृडीकम्) सुखकर राजा को (वीहि) प्राप्त हो अथवा (मृडीकम्) सुखकारी, पद, या भोग्य ऐश्वर्य को प्राप्त कर। (नः) हमें (सुहवः) सुख प्रदान करता (एधि) रह। प्रजा अपने में से को उत्तम अपने अति निकट प्रेमी अधिकारी नेता बना कर स्वयं भी राज्य में सुख प्राप्त करे।

महीमू षु मातरꣳ सुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसे हुवेम।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम् ॥५॥

अथ० ७।६।२॥

अदितिर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

४—०मृळीकं० इति काण्व०।

भा०—हम लोग, (महीम्) बड़ी, माननीय, (सुव्रतानाम् मातरम्) उत्तम व्रतों, नियमों, कर्तव्य आचरणों को निर्माण करने वाली एवं सदाचारवान् पुरुषों की माता के समान (ऋतस्य) सत्य व्यवस्था धर्म और न्याय के (पत्नीम्) पालन करने वाली (तुविक्षत्राम्) बहुत से क्षत्र बल से युक्त, (अजरन्तीम्) वह भी नाश न होने वाली सदा नूतन २ सभासदों से बनी, (उरूचीम्) विशाल राष्ट्र के शासक रूप से व्यापक (सुशर्माणम्) उत्तम गृह, सभाभवन में विद्यमान उत्तम सुख देने वाली (सुप्रणीतिम्) उत्तम, सुखकारी नीति, राजनैतिक प्रगतियों वाली (अदितिम्) सदा अखण्ड शासन वाली, महासभा को (हुवेम) हम बनावें और उसको स्वीकार करें।

इसी प्रकार जो उत्तम सदाचारी पुरुषों की माता है, (ऋत) अन्न, यज्ञ और जीवन की मालिक है, जो बहुतसे ऐश्वर्य और वीर्यवान् वीरों से सुरक्षित सदा अजर, विस्तृत सुखप्रद, अखण्ड उत्तम नीतियुक्त उस पृथिवी या राष्ट्र को हम (हुवेम) अपनावें।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसंꣳ सुशर्माणमदितिꣳ सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावꣳ स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥ ६ ॥

अथ० ७ । ६ । ३ ॥ ऋ० १० । ६३ । १० ॥

गयप्लात ऋषिः । अदितिर्देवता । भुरिक्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सुत्रामाणम्) उत्तम रीति रक्षा करने वाली, (पृथिवीम्) अति विस्तृत, (द्याम्) ज्ञान प्रकाश से युक्त, (अनेहसम्) गौ के समान नाश न करने योग्य, अथवा क्रोध रहित। (सुशर्माणम्) उत्तम भवन या शरणप्रद साधनों और सुखसाधनों से युक्त, (सुप्रणीतिम्) उत्तम राजा प्रजा की नीति से युक्त, (सु-अरि-त्राम्) उत्तम रीति से शत्रुगण से प्रजा की रक्षा करने वाली, (अस्रवन्तीम्) अपना रहस्य शत्रुको न देने वाली

छिद्र रहित, (अनागसम्) अपराध रहित निर्दोष धर्मानुकूल, (दैवीम्) विद्वानों की बनी हुई (नावम् [इव]) नाव के समान समस्त कष्टों से पार उतारने और सबको सन्मार्ग में चलाने वाली (अदितिम्) दूसरों के उपजाप आदि के प्रयोगों से अखण्डित, एकमत, फूट से रहित राजसभा का या राज्यव्यवस्था का (स्वस्तये) सुख और कल्याण प्राप्त करने के लिये (आरुहेम) आश्रय लें ।

नाव के पक्ष में—(सुत्रामाणं) डूबने से बचाने वाली, (पृथिवीम्) विस्तृत, (अनेहसम्) निर्दोष, उथल पुथल न होने वाली, (सुशर्माणम्) उत्तम घर उक्त तथा डूबते को बचाने के साधनों वाली, (सुप्रणीतिम्) उत्तम रचना और चाल वाली अथवा उत्तम संचालन प्रबन्ध वाली, (सु अरित्राम्) उत्तम पतवारों वाली, (अनागसम्) निर्दोष, मृत्यु आदि के भय से रहित, (अस्रवन्तीम्) बिना छिद्र को, जल की भीतर आने न देने वाली, (दैवीं नावं) विद्वानों की बनाई नाव को हम (स्वस्तये) सुख वृद्धि के लिये चढ़ें ।

'सुत्रामा' इन्द्र का वर्णन पूर्व अध्याय में सौत्रामणी प्रकरण में आचुका है। यहां उसी प्रजा पालक राजशक्ति एवं विद्वत्सभा का नौका रूप से श्लेष विशेष से वर्णन किया गया है यह मन्त्र पृथिवी और सूर्य पक्षमें भी लगता है ।

सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीमनागसम् ।
शतारित्राᳬ स्वस्तये ॥ ७ ॥

गयप्लातऋषिः । स्वार्यानौर्देवता । यवमध्या गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(अस्रवन्ती) अपना रहस्य अपने से किसी भी प्रकार बाहर न जाने देने वाली, गुप्त मन्त्र रखने वाली, (अनागसम्) निर्दोष, प्रजा के हित में किये सब धर्मानुकूल कार्यों को करने वाली, (शतारित्राम्) संकट

से पार जाने के सैकड़ों उपायों से युक्त (सुनावम्) उत्तम मार्ग से प्रेरित करने वाली नौका के समान राजसभा और धर्मसभा का (आरुहेयम्) मैं राजा भी आश्रय लूं।

नौका के पक्ष में—गत मन्त्र में सब विशेषणों को दर्शा दिया गया है। 'नावम्, सुनावम्'—नौः नुदति प्रेरयतीति नौः। ग्लानुदिभ्यां डौप्रत्यय उणादिः। २। ६४ ॥ इति उणा० दया० ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्।
मध्वा रजांᳬसि सुक्रतू ॥ ८ ॥ ऋ० ३। ६२। १२ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(मित्रावरुणौ) हे मित्र! समस्त लोकों को स्नेह से देखने और मृत्यु से बचाने वाले न्यायाधीश! और हे वरुण! सबसे वरण, करने योग्य सब को संकटों से वारक, दुष्ट चोरों के वारण करने हारे अधिकारिन्! तुम दोनों (गव्यूतिम्) मार्ग को दो दो कोस (घृतैः) जलों से, और तेजस्वी पुरुषों से (नः) हमारे हित के लिये (आ उक्षतम्) सेचित करो। जिस प्रकार मित्र और वरुण, वायु और मेघ जलों से सेचन करते हैं उसी प्रकार राजा के दो महकमे प्रति दो कोसों पर (घृतैः) जलस्थानों, जनरक्षक पुलिस के सैनिकों और विद्वान् पुरुषों से प्रजाजन को भरदें। अर्थात् प्रति दो कोश में पुलिस की चौकी जल के प्याऊ और पाठशाला हों। और हे (सुक्रतू) उत्तम कर्मों को करने एवं उत्तम प्रज्ञा वालो! आप इस प्रकार (मध्वा) मधुर ज्ञान, अन्न और बल सुख ऐश्वर्य से (रजांसि) समस्त लोकों को (सिञ्चतम्) युक्त करो। अथवा-(घृतैः गवि-ऊतिम् आ उक्षतम्) तेजस्वी पुरुषों से पृथिवी पर, प्रजापालन की नीति को फैलाओ। अथवा पृथिवी पर कृषि को सेचन करो।

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न ऽआ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन । आ मा जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ६ ॥

ऋ० ७ । ६२ । ५ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र, सबके स्नेही एवं मरण से त्राणकारिन्! और हे (वरुण) दुष्टों के वारक ! तुम दोनों (नः जीवसे) हम प्रजाजनों के जीवन की रक्षा के लिये (बाहवा) अपने बाहुओं को, शत्रुगण या विपक्षों के बाधन, पीड़न करने वाले साधनों को और बाहुओं के समान वीरों को (प्र सिसृतम्) आगे बढ़ाओ या तुम दोनों बाहुओं के समान आगे बढ़ो । अर्थात् जिस प्रकार शरीर की रक्षा के लिये बाहुएं आगे बढ़ती हैं उसी प्रकार प्रजा की रक्षा के लिये राष्ट्र की बाहुएं, क्षत्रिय लोग, आगे बढ़ें । और (घृतेन) मेघ जिस प्रकार जल से पृथिवी को सींचता है, उसी प्रकार आप दोनों अधिकारी (नः) हमारे (गव्यूतिम्) राष्ट्र के प्रति दो कोस की भूमि को (घृतेन) जल के समान प्राणप्रद या तेजस्वी विद्वान् और वीर क्षत्रिय गण से (आ उक्षतम्) सर्वत्र सेचन करदो । हे (युवानौ) सदा युवाओ । अथवा संधि और विग्रह, मेल और फूट कराने में कुशल पुरुषो ! आप दोनों (जने) समस्त राष्ट्र जन के बीच (मा) मुझको राजा, शासक रूप से (आ श्रवयतम्) आघोषित करदो । और (मे) मेरी (इमा हवा) इन आज्ञाओं को (श्रुतम्) श्रवण करो ।

राजा, मित्र और वरुण दोनों अधिकारियों को अपने समस्त राज्य में प्रति दो कोश में राज्य की चौकी, प्याऊ, पाठशाला, धर्म स्थान आदि बनाने की आज्ञा दे, प्रजा की रक्षा के लिये बाहुओं के समान वे प्रजा की रक्षा करें, राजा की आज्ञा आघोषित करें, उसकी आज्ञा पर ध्यानदें और पालन करें ।

शन्नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्काः ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकꣳ रक्षांꣳसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवाः ॥ १० ॥
वाजे-वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा ऽअमृता ऽऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥ ११ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । १६, १८ ॥

समिद्धो ऽअग्निः समिधा सुसमिद्धो वरेण्यः ।
गायत्री छन्द ऽइन्द्रियं त्र्यविर्गौर्वयो दधुः ॥ १२ ॥

[१२–२२] स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । आप्रियो देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् पुरुष, अग्रणी नेता, (समिधा समिद्धः) काष्ठ से प्रज्वलित आग के समान (सम्-इधा) उत्तम ज्ञान प्रकाश से (सम्-इद्धः) खूब प्रज्वलित और (सु-सम्-इद्धः) सूर्य के समान अत्यन्त देदीप्यमान, तेजस्वी होकर (वरेण्यः) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष (गायत्री) समस्त जीवों के प्राणों की रक्षा करने वाली पृथिवी के समान (छन्दः) समस्त जनों का आच्छादन या रक्षा करने वाला पुरुष, (त्र्यविः) शरीर, इन्द्रिय और आत्मा इन तीनों की रक्षा करने वाला, (गौः) विद्वान् पुरुष, ये सब 'इन्द्र' या राजा के ऐश्वर्यमय राज्य में (इन्द्रियं) ऐश्वर्य आत्मिक बल और (वयः) बल, ज्ञान, दीर्घ आयु को (दधुः) धारण, स्थापन करें ।

तनूनपाच्छुचिव्रतस्तनूपाश्च सरस्वती ।
उष्णिहा छन्द ऽइन्द्रियं दित्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १३ ॥

भा०—(तनूनपात्) शरीरों को न गिरने देने वाले प्राण के समान (शुचिव्रतः) शुद्ध धर्माचरण, शीलवान् पुरुष और (तनूपाः) शरीरों अर्थात् पुत्रादि की रक्षा करने वाली (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री और

१०—अतः परं ६ । १६ पठ्यते । काण्व० ।

विद्वत् सभा, और (उष्णिहा छन्दः) उष्णिहा छन्द, और (दित्यवाड् गौः) 'दित्यवाड्' बैल ये चारों ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र में (इन्द्रियम्) राजा के योग्य ऐश्वर्य को और (वयः) दीर्घ आयु, ज्ञान, बल को (दधुः) धारण करें। अर्थात् (उष्णिहा छन्दः) २८ अक्षरों के समान २८ वर्षों तक अपने बल वीर्य को आच्छादित करने वाला पुरुष और दित्यवाड् गौ अर्थात् दो वर्ष का वृषभ जिस प्रकार (इन्द्रियं) हृष्ट पुष्ट वीर्य और बल को धारण करते हैं उसी प्रकार के लोग राष्ट्र में राजा के ऐश्वर्य और बल की वृद्धि करें।

१. उष्णिहा छन्दः—उष्णिक् इत्युत्स्नावात् । स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणः । अपिवोष्णीपिणोवेत्यौपमिकम् । दैवय० ३ । ४ ॥ आयुर्वा उष्णिक् । ऐ० १ । ५ ॥ चक्षुरुष्णिक् । शत० १० । ३ । १ । १ ॥ पशवो वा उष्णिक् । तां० २ । १० । १४ ॥

दित्यवाड् गौः—द्विवर्षः पशुःइति महीधरः । अथवा दित्यं खण्डनीय धान्यं वहति इति दित्यवाड् ।

इडाभिरग्निरीड्यः सोमो देवो ऽअमर्त्यः ।
अनुष्टुप् छन्द ऽइन्द्रियं पञ्चाविर्गौर्वयो दधुः ॥ १९ ॥

भा०—(इडाभिः) हवियों-अन्नों द्वारा (ईड्यः) पूजनीय अग्नि के समान (इडाभिः) अन्नों और स्तुतियों द्वारा प्रशंसनीय (अग्निः) ज्ञानवान् नेता पुरुष और (अमर्त्यः) कभी नाश न होने वाला (देवः) देव, दिव्य गुणों से युक्त, तेजस्वी, (सोमः) सूर्य या वायु के समान प्राण देने वाला राजा, (अनुष्टुप् छन्दः) अनुष्टुप् छन्द, अर्थात् ३२ वर्ष तक इन्द्रियों और बलों का रक्षक ब्रह्मचारी और (पञ्चाविः गौः) अढ़ाई वर्ष का बल अथवा पांचों इन्द्रियों का संयमी

१९—'इळा०' इति काण्व० ।

जिस प्रकार (इन्द्रियं) प्राण बल, और (वयः) दीर्घ, जीवन को धारण करते हैं वैसे ही लोग राष्ट्र में ऐश्वर्य बल और वीर्य जीवन को धारण करें ।

अनुष्टुप् छन्दः—द्वात्रिंशदक्षरा अनुष्टुप् । कौ० २६ । १ ॥ प्रजापतिर्वा अनुष्टुप् । तां० ४ । ८ । ६ ॥

पञ्चाविः गौः । सार्धद्विवर्षः । पण्मासात्कः कालोऽविः ।

> सुबर्हिरग्निः पूषण्वान्त्स्तीर्णबर्हिरमर्त्यः ।
> बृहती छन्द ऽइन्द्रियं त्रिवत्सो गौर्वयो दधुः ॥ १५ ॥

भा०—(पूषण्वान्) पृथिवी को धारण करने वाला (अग्निः) सूर्य जिस प्रकार (सु बर्हिः) उत्तम रीति से आकाश में व्याप्त है वैसे (पूषण्वान्) पुष्टिकारक भूमि और अन्नों से युक्त अथवा पोषक जनों से युक्त (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष (सु-बर्हिः) उत्तम प्रजा से युक्त होता है । (स्तीर्णबर्हिः) वह पुरुष यज्ञ में वेदि पर कुशाओं को बिछाने वाले यज्ञकर्त्ता के समान पृथिवी पर अपनी प्रजाओं को फैला देता है । वह (अमर्त्यः) अमर हो जाता है । वह सदा मानो प्रजा रूप से जीता रहता है । इसी प्रकार अग्नि के समान तेजस्वी राजा (सु-बर्हिः) उत्तम प्रजा वाला, (पूषण्वान्) पोषक अन्न सम्पत्ति और भूमियों और प्रजाओं के पोषक अधिकारियों से युक्त हो । वह (स्तीर्णबर्हिः) शत्रु के नाशकारी क्षात्रबल को फैला कर बैठने वाला (अमर्त्यः) फिर मृत्यु को प्राप्त नहीं होता । (बृहती छन्दः) छत्तीस अक्षरों के बृहती छन्द के समान ३६ वर्षों तक के ब्रह्मचर्य का पालक पुरुष और (त्रिवत्सः गौः) तीन वर्ष के हृष्टपुष्ट बैल के समान युवा पुरुष, ये सब (इन्द्रियम्) ब्रह्मचर्य बल और दीर्घ जीवन को धारण करते हैं । उनके समान प्रजागण भी राष्ट्र में बल वीर्य और दीर्घ जीवन धारण करें ।

दुरो देवीर्दिशो महीर्ब्रह्मा देवो बृहस्पतिः ।
पङ्क्तिश्छन्द ऽइहेन्द्रियं तुर्यवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १६ ॥

भा०—(देवीः) तेजवाली स्त्रियां, (दुरः) प्रकाश वाले बड़े २ द्वार और (महीः) बड़ी विस्तृत (दिशः) दिशाओं के समान (महीः दिशः) पूजनीय, गुरुवाणियां और (ब्रह्मा) चतुर्वेदों का विद्वान् (देवः) ज्ञान का प्रकाशक, (बृहस्पतिः) वेद वाणी का पालक, अथवा महान् राष्ट्रपति देव, राजा और (पंक्तिः छन्दः) चालीस अक्षरों वाले पंक्ति छन्द के समान ४० वर्ष तक का ब्रह्मचारी पुरुष, और (तुर्यवाड् गौः) चतुर्थ वर्ष का बैल अथवा (तुर्यवाड्) चतुर्थ आश्रम का सेवी परिव्राट् और (गौः) आदित्य के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ये सब (इन्द्रियं) ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन स्वयं धारण करते हैं, वे ही राष्ट्र में भी ऐश्वर्य तेजबल और दीर्घ जीवन धारण करावें ।

उषे यह्वी सुपेशसा विश्वे देवा ऽअमर्त्याः ।
त्रिष्टुप् छन्द ऽइहेन्द्रियं पष्ठवाड् गौर्वयो दधुः ॥ १७ ॥

भा०—(यह्वी) बड़ी, पूजनीय, (सुपेशसा) उत्तम रूप वाली, (उषे) उषा और सायं वेलाओं के समान पूज्य, उत्तम ज्ञान प्रकाश वाली, पाप और अज्ञान का दहन करने में समर्थ, उपदेशिका और अध्यापिका, अथवा धर्मसभा और विद्वत्-सभा और (विश्वे देवाः) समस्त ज्ञानी और विजयी पुरुष, (अमर्त्याः) दिव्य पदार्थ पृथिवी सूर्य के समान स्थिर रहने वाले, अनश्वर, सुरक्षित एवं नित्य हैं । वे और (त्रिष्टुप् छन्दः) ४४ अक्षरों वाले त्रिष्टुप् के समान ४४ वर्षों तक के अक्षत ब्रह्मचर्यवान् पुरुष और (पष्ठवाड् गौः) पृष्ठ से भार उठाने वाले बैल के समान राष्ट्र का कार्यभार अपने ऊपर लेने वाले पुरुष ये

सब (इह) इस राष्ट्र में (इन्द्रियं) बल, वीर्य, ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ जीवन, अन्न और ज्ञान को (दधुः) स्वयं धारण करें और धारण करावें ।

दैव्या होतारा भिषजेन्द्रेण सयुजा युजा ।
जगती छन्द ऽइन्द्रियमनड्वान् गौर्वयो दधुः ॥ १८ ॥

भा०—(दैव्या) देवों, शरीरस्थ प्राणों में व्यापक, (होतारौ) सब को अपने भीतर ग्रहण करने वाले, (भिषजा) वैद्यों के समान शरीर के समस्त रोग विकारों को दूर करने वाले, (इन्द्रेण सयुजौ) इन्द्र आत्मा के साथ सदा संयुक्त और (युजा) सदा स्वयं साथ रहने वाले प्राण अपान और उनही के समान (दैव्या होतारा) देवों, विद्वानों में हितकारी, (भिषजाः) शरीर और मन एवं समाज शरीर के दोषों को भी सद्वैद्य के समान दूर करने वाले (इन्द्रेण) राजा के साथ (सयुजौ) सहयोग रखने वाले, (युजा) सदा परस्पर संयुक्त और (जगती छन्दः) ४८ अक्षर के जगती छन्द के समान ४८ वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालक पति और (अनड्वान् गौः) शकट को उठाने वाले बैल के समान राष्ट्र के शकट को उठाने वाला वीर बलवान् पुरुष, ये सभी (इन्द्रियम्) बल ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ आयु और ज्ञान को (दधुः) धारण करते हैं और ऐश्वर्यमय राष्ट्र में भी धारण कराते हैं ।

तिस्र ऽइडा सरस्वती भारती मरुतो विशः ।
विराट् छन्द ऽइहेन्द्रियं धेनुर्गौर्न वयो दधुः ॥ १९ ॥

भा०—(इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती और भारती नामक, (तिस्रः) तीनों समितियें और (मरुतः) वायुओं के समान तीव्र वेग वाली या देश देशान्तर में गमन करने वाली अथवा—शत्रु मारक वीर सेनारूप (विशः) प्रजाएं और (विराट् छन्दः) ४० अक्षरों के विराट्

छन्द के अनुसार ४० वर्षों का अक्षत ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला पुरुष और (धेनुः गौः) दुधार गौ ये सब राष्ट्र में (इन्द्रियम्) राजा के ऐश्वर्य और (वयः) दीर्घ जीवन को धारण करते हैं वे उसमें भी धारण करावें ।

त्वष्टा तुरीपो ऽअद्भुत ऽइन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना ।
द्विपदा छन्द ऽइन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः ॥ २० ॥

भा०—(त्वष्टा) शिल्पी, नये यन्त्र और पदार्थों को गढ़ कर बनाने वाला त्वष्टा या कान्तिमती विद्युत् (अद्भुतः) आश्चर्यजनक रूप से (तुरीपः) शीघ्रता से स्थानान्तर में जाने में समर्थ है। इसी प्रकार (इन्द्राग्नी) सेनापति ग्राम और नगर के नेता दोनों ही (पुष्टिवर्धना) राज्य की पुष्टि को बढ़ाते हैं। (द्विपदा छन्दः) द्विपदा ऋचा के समान दो पैरों से प्रतिष्ठित होने वाली मानव सृष्टि और (उक्षा गौः) वीर्य सेचनमें समर्थ वृषभ ये सब राष्ट्र में (इन्द्रियम् वयः) ऐश्वर्य और दीर्घ जीवन को (दधुः) धारण करावें ।

शमिता नो वनस्पतिः सविता प्रसुवन् भगम् ।
ककुप् छन्द ऽइहेन्द्रियं वशा वेहद्वयो दधुः ॥ २१ ॥

भा०—(वनस्पतिः) वन का पालक या वट आदि महावृक्ष के समान (शमिता) शान्तिप्रद छाया और शरण देने वाला (सविता) और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (भगम्) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को (प्रसुवन्) उत्पन्न करता हुआ और (ककुप् छन्दः) ककुप्-२८ अक्षरों का छन्द, तदनुसार २८ वर्ष के ब्रह्मचर्य का पालक पुरुष अथवा प्राण के समान श्रेष्ठ मुख्य नेता, (वशा) पृथ्वी या राष्ट्र को वश करने वाली सभा और (वेहत्) दुष्टों के षड्यन्त्रों को गर्भ में ही विविध उपायों से नाश करने वाली राजा की नीति, ये सब ऐश्वर्य से पूर्ण राष्ट्र और राजा में

(वयः) दीर्घ जीवन, बल, और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को स्वयं धारण करें और (दधुः) धारण करावें ।

स्वाहा युज्ञं वरुणः सुक्षत्रो भेषुजं करत् ।
अतिछन्दा ऽइन्द्रियं बृहद्दृषुभो गौर्वयो दधुः ॥ २२ ॥

भा०—(वरुणः) सब से वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ राजा, (सुक्षत्रः) उत्तम धन-ऐश्वर्य और क्षात्रबल से युक्त होकर (स्वाहा) उत्तम उपदेश, शिक्षा, सत् रीति नीति से (यज्ञम्) सुसंगत राष्ट्र या प्रजापति के पदको (भेषजं) शरीर में से रोग को दूर करने वाली औषधि के समान राष्ट्र के दोष दूर करने में समर्थ उपाय (करत्) करता है। जिस प्रकार (अतिछन्दाः) और अति शब्द के योग्य से कहे जाने वाले छन्द, अति धृति, अत्यष्टि अतिशक्करी और अतिजगती, ये चारों छन्द अपने विशुद्ध नाम धृति, अष्टि, शक्करी और जगती इनसे ४, ४ अक्षर अधिक होते हैं उसी प्रकार अन्यों से सामर्थ्यों में अधिक पुरुष, (बृहत् ऋषभः गौः) और बड़े विशाल वलीवर्द के समान बहुत अधिक भार उठाने में समर्थ महा पुरुष ये सब (वयः) दीर्घ जीवन, बल और (इन्द्रियं) वीर्य, इन्द्रियसामर्थ्य और ऐश्वर्य को स्वयं धारण करते हैं वे ऐश्वर्य सम्पन्न राष्ट्र में उसके स्वामी राजा में भी इन पदार्थों को धारण करावें।

वुसन्तेनं ऽऋतुनां देवा वसंवस्त्रिवृतां स्तुताः ।
रुथन्तरेण तेजसा हुविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २३ ॥

(२३—२८) लिंगोक्ता देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(वसवः देवाः) वसु नामक देव, विद्वान् पुरुष, (वसन्तेन ऋतुना त्रिवृता) त्रिवृत् स्तोम और (रथन्तरेण) रथन्तर साम से और तेज, पराक्रम से (इन्द्रे) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में या निमित्त (हविः वयः दधुः) अन्न और बल, दीर्घजीवन को धारण कराते और स्वयं धारण करते हैं ।

ग्रीष्मेण ऽऋतुना देवा रुद्राः पञ्चदशे स्तुताः ।
बृहता यशसा बलꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २४ ॥

भा०—(रुद्राः देवाः) रुद्र नामक देव, विद्वान् गण, (ग्रीष्मेण ऋतुना) ग्रीष्म ऋतु से (पञ्चदशे) पंचदश नामक स्तोम के आधार पर (बृहता) बृहत् नामक साम से (यशसा) और यश से (इन्द्रे) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में (बलं वयः हविः दधुः) बल, दीर्घायु और अन्नादि ऐश्वर्य धारण करते और कराते हैं ।

वर्षाभिर्ऋतुनादित्या स्तोमे सप्तदशे स्तुताः ।
वैरूपेण विशौजसा हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २५ ॥

भा०—(आदित्याः) 'आदित्य' नामक विद्वान् गण, (वर्षाभिः ऋतुना) वर्षाऋतु से (सप्तदशे स्तोमे) सप्तदशस्तोम के आधार पर (वैरूपेण) वैरूप साम से (विशौजसा) प्रजा और पराक्रम से (इन्द्रे हविः वयः दधुः) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में अन्न और दीर्घ जीवन को धारण कराते और करते हैं ।

शारदेन ऽऋतुना देवा ऽएकविꣳश ऽऋभवं स्तुताः ।
वैराजेन श्रिया श्रियꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २६ ॥

भा०—(शारदेन ऋतुना) शरद् ऋतु से, (देवाः ऋभवः) ऋभु नामक विद्वान् गण, (एकविंशे) एक विंशस्तोम के आधार पर (वैराजेन) वैराज साम से और (श्रिया) लक्ष्मी से (इन्द्रे) इन्द्र, राजा और राष्ट्र में (श्रियं) शोभा, लक्ष्मी, ऐश्वर्य (हविः) अन्न और (वयः) दीर्घ जीवन को (दधुः) धारण कराते और स्वयं धारण करते हैं ।

हेमन्तेन ऽऋतुना देवास्त्रिणवे मरुतं स्तुताः ।
बलेन शक्वरीः सहो हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २७ ॥

भा०—(मरुतः देवाः) मरुत् नामक देव, विजिगीषु पुरुष, (हेमन्तेन ऋतुना) हेमन्त ऋतु से, (त्रिनवे स्तुताः) त्रिनव नामक स्तोम में स्तुत होकर

(बलेन) बल से (शक्करीः) शक्वरी नामक सोम से (इन्द्रे हविः सहः वयः) राष्ट्र और राष्ट्रपति इन्द्र में अन्न, शत्रु-विजयकारी बल और दीर्घ जीवन (दधुः) धारण कराते हैं और उसके निमित्त स्वयं भी धारण करते हैं।

शैशिरेणं ऽऋतुनां देवास्त्रंयस्त्रिꣳशेऽमृतां स्तुताः।
सत्येनं रेवतीः क्षत्रꣳ हविरिन्द्रे वयो दधुः ॥ २८ ॥

भा०—(अमृताः देवाः) अमृत नामक देव, विद्वान् पुरुष (शैशिरे-ऋतुना) शिशिर ऋतु के साथ, (त्रयस्त्रिंशे) त्रयस्त्रिंश नामक स्तोम में (स्तुतः) वर्णित या प्रस्तुत होकर (रेवतीः) रेवती साम द्वारा (सत्येन) सत्य के बल से (इन्द्रे) राष्ट्र और राष्ट्रपति इन्द्र में या उसके निमित्त या उसके आश्रय पर (क्षत्रं हविः वयः दधुः) धन, अन्न और दीर्घ जीवन धारण कराते और स्वयं करते हैं।

संवत्सर और यज्ञ दोनों ही प्रजापति के स्वरूप हैं। इधर राजा भी प्रजापति है। आत्मा और परमात्मा भी प्रजापति है। उनके अंग प्रत्यंगों की कल्पना द्वारा राजा के अधीन २ अधिकारीगणों के कर्त्तव्यों का निरूपण उक्त ६ मन्त्रों में किया गया है, जैसे—

१—वर्ष में ६ ऋतु हैं राजा या प्रजापति के ६ प्रकार के प्रधान रूप हैं। प्रथम ऋतु वसन्त है। जिसके आश्रय पर लोग वसें जो सबको वसावे वह मुख्य अधिकारी 'वसन्त' के समान है। एवं उस प्रकृति का स्वतः राजा भी 'वसन्त' है। अधीन प्रजाओं को सुखपूर्वक वास देने हारे अधिकारी जन 'वसु' हैं पृथिव्यादि आठ वसुओं के समान वे प्रजाओं के को शरण दें। शरीर में वसे प्राणों के समान प्रजा के जीवन प्रद हों, उनका स्तोम अर्थात् मुख्य पुरुष संघ "त्रिवृत्" हैं त्रिवृत स्तोम में जिस प्रकार तीन ऋचाएं हैं उसी प्रकार तीन अधिकारी हैं। उसका बल रथन्तर है रथों से देश देशान्तर में जाएं आवें और तेज, पराक्रम से रथ सेना

संग्रामों को तरते हैं। वे उस पराक्रम से ही राज्य और राजा का बल बढ़ाते हैं।

२. नेता, प्रजापति राजा का दूसरा स्वरूप है, उसका प्रधान नेता ग्रीष्म ऋतु के समान है। सूर्य जिस प्रकार प्रखर होकर भूभागों को तपा कर उनसे जल शोष लेता है उसी प्रकार अपने तेज से बलपूर्वक अधीन किये भूपतियों से राजा करों द्वारा ऐश्वर्य ग्रहण करता है। उस कार्य में नियुक्त पुरुष 'रुद्र' रूप देव हैं। उनको देखकर जमींदार लोग रोते हैं। वे भी शरीर में भूख प्यास लगाने वाले तीव्र प्राणों के समान होने से रुद्र हैं। उनके पञ्चदश स्तोम हैं। अर्थात् जिस प्रकार शरीर में अंग और पांच प्राण हैं उसी प्रकार राष्ट्र में उनके १५ अधिकारियों की स्थिति है। उनका 'यश' अर्थात् वीर्य और ख्याति यज्ञ में बृहत् साम के समान महान् है। वे राज्य में बल, अन्न और दीर्घायु धारण कराते हैं।

३. वर्षा ऋतु प्रजापति का तीसरा रूप है। उसका कार्य वर्षा के मेघ के समान प्रजा या पृथिवी से संगृहीत ऐश्वर्य को प्रजा के हित के लिये पुनः प्रजा पर वर्षा देना है। यह कार्य 'आदित्य' नामक अधिकारियों का है। उनकी स्थिति सूर्य में किरणों के समान है। उनका वर्णन 'सप्तदश' स्तोम से किया जाता है अर्थात् दश इन्द्रिय, पंच प्राण और आत्मा, मन इन १७ के समान ये राष्ट्र शरीर में व्याप्त रहते हैं और कार्य करते हैं। उसका ओज पराक्रम नाना रूप से विविध प्रकारों से प्रकाशित होने से यज्ञ में वैराज साम के समान एवं प्रजा को समस्त ऐश्वर्य प्राप्त होने से वे प्रजा के द्वारा राष्ट्र की सम्पत्ति और बल को बढ़ाते हैं।

४. प्रजापति का तीसरा रूप 'शरद् ऋतु' है। शरद् काल वर्षाकालिक मेघों को छिन्न भिन्न करके जैसे आकाश को स्वच्छ करता, चन्द्रमा को निर्मल करता, अन्न और फलों को वृद्धि करता और जलों को स्वच्छ करता है

उसी प्रकार राजा प्रजा के ऊपर आयी शत्रु घटाओं को दूर करता, संकटों को हटाता, अन्नादि सम्पदाओं को बढ़ाता, सबको उत्सवादि से प्रसन्न करता है। इस कार्य में नियुक्त अधिकारी 'ऋतु देव' हैं। 'ऋत' सत्य से प्रकाशित होना, ज्ञान विज्ञान कौशल से समस्त प्रजा को सुखी करना, संकटों को दूर करना उनका कर्त्तव्य है। उसी से वे 'ऋतु' कहाते हैं इस वर्ग में न्यायाधीश, विद्वान्, शिल्पी, वैज्ञानिक आजाते हैं। ये 'एकविंश-स्तोम' से स्तुत या वर्णित हैं। यज्ञ में २१ ऋचा वाले स्तोम के समान एवं शरीर में हाथ पांओं की दश २ अंगुली एवं २१ वां आत्मा, इनके समान नये २ पदार्थों को प्राप्त करते हैं। और राष्ट्र को उत्तम मार्गों में चलाते और नाना सुख भोग प्रदान करते हैं। विविध ऐश्वर्यों से प्रकाशित होने से उनकी तुलना वैराज साम के साथ है। वे 'श्री', लक्ष्मी, शोभा, शिल्प, कला कौशल से राज्य और राजा के राजकार्य में भी ऐश्वर्य और शोभा करते और अन्न, ऐश्वर्य और दीर्घजीवन प्रदान करते हैं।

५. प्रजापति का पांचवां स्वरूप 'हेमन्त ऋतु' है। हेमन्त ऋतु जिस प्रकार अपने तीव्र शीत से समस्त प्राणियों को कष्ट देता, जलों को असह्य शीतल कर देता है, नदियों को संकोचित कर देता है। उसी प्रकार दुष्ट जनोंओ को तीव्र दण्डों से दण्डित करता है, उनको संकुचित करता है, प्रजाओं को वश करता है। उसके तीव्र शीतल वायुओं के समान मरुद्गण, देव हैं जो दुष्टों को दमन करने वाले वायु के समान वेगवान् सैनिकबल हैं। उनका स्तोम 'त्रिनव' है अर्थात् शरीर में हाथ पांव के २० अंगुलियों पांच प्राण, मन और आत्मा के समान राष्ट्र के २७ अंग हैं। यज्ञ में शाक्वर साम के समान उनका भी स्वरूप 'शक्वरी' अर्थात् शक्तिमती सेनाएं हैं वे सैन्य-बल से ही शक्तिमती होने से 'शक्वरी' कहाती हैं। वे शत्रु को पराजय करने का परम सामर्थ्य 'सहः' को और वीर्य और राष्ट्र के दीर्घजीवन को उत्पन्न करते हैं।

६. प्रजापति का ६ ठा रूप शिशिर-ऋतु है। शिशिर जिस प्रकार पत-भड़ के बाद वृक्षों में नया रस सेचन करता है नये पत्र और नये पुष्प खिलाने के निमित्त रस उत्पन्न करता है उसी प्रकार प्रजा में नवीन साहस, नवीन शक्ति, नवीन ऐश्वर्य संचारित करने वाला राजा शिशिर के समान है। उसके अधीन कार्यकर्त्ता 'अमृत देव' हैं। वे प्रजा में जलों के समान अमर जीवन प्रदान करते हैं। उनकी स्थिति यज्ञ में त्रयस्त्रिंश स्तोम के समान है, अर्थात् जिस प्रकार शरीर में पञ्च स्थूल भूत, पंचतन्मात्रा, पंच-कर्मेन्द्रिय, पञ्चज्ञानेन्द्रिय, चार अन्तःकरण, जीव, शिर, २ हाथ, २ जांघें, १ उदर, २ उरःस्थल, ये अंग हैं। उसी प्रकार वे भी राष्ट्र-शरीर के स्थूल, सूक्ष्म विभागों के घटक, संयोजक और अंग हैं। वे सत्य के बल से ऐश्वर्यवान् होने से 'रेवतीः' कहाती हैं। वे यज्ञ में रैवत साम के समान ऐश्वर्यजनक हैं। वे राष्ट्र में 'क्षत्र' धन अन्न, वीर्य, दीर्घायु धारण कराते हैं।

सभी मुख्य, गौण अधिकारी राजा ही के प्रतिनिधि हैं। और राजा ही सबका स्वरूपवान् आत्मा के समान है। इसलिये गुण भेद से 'वसन्त' आदि राजा के ही स्वरूप होकर राजा के भिन्न २ विभागों के प्रधान पदा-धिकारियों के भी ये नाम हैं। उनके भिन्न २ कर्त्तव्य वर्ष में ऋतुओं के अनुसार, ब्रह्माण्ड में सूर्य की किरणों के और जगत् की मुख्य दिव्य शक्तियों के अनुसार, यज्ञ में स्तोमों के अनुसार, शरीर में अंगों के अनु-सार जानने चाहियें। उन दृष्टान्तों से स्थूल रूप से, और शब्द में छिपे धात्वर्थगत स्वरूपों और निर्वचनों से सूक्ष्मरूप से राजा के उन स्वरूपों के और अधीन अधिकारियों के कर्त्तव्यों का वर्णन जानना चाहिये। अन्ततः, वे सब व्यवस्थाएं, पद, अधिकार आदि राष्ट्र और राष्ट्र पति में ही अपने समस्त बल, अधिकार ऐश्वर्यों को समर्पित करते हैं। यही वेद ने उपदेश किया है। इस विषय में विशेष संगतियें देखने के लिये देखो। अ० १०। मं० १०, १४॥ अ० ९। २४॥ अ० ११। ४८, ६०, ६५॥

वसन्तादि ऋतुओं के विशेष रहस्य एवं तुलना के लिये देखो अ० १३। मं० ५४–५८ ॥ तथा अ० १३। मं० २५ ॥ तथा अ० १४। मं० ६, १५, २७, ५७ ॥ वसु आदि के कर्त्तव्यों के विषय में अ० १४। मं० २५ ॥ स्तोमों के स्वरूप देखो अ० १४। २८—३१ ॥

होता यक्षत्सुमिधाग्निमिडस्पदेऽश्विनेन्द्रꣳ सरस्वतीमजो धूम्रो न गोधूमैः कुवलैर्भेषजं मधु शष्पैर्न तेजं ऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २६ ॥

(२६–४१) एता द्वादश आप्रियः । अश्विसरस्वत्यिन्द्राः लिंगोक्ता देवताः । निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०— (१) (होता समिधा अग्निम् इडस्पदे अश्विनौ, इन्द्रं सरस्वती यक्षत्) यज्ञ में (होता) होता नामक विद्वान् ऋत्विक् जिस प्रकार (समिधा) काष्ठ से (अग्निम्) अग्नि को प्रज्वलित करता है उसी प्रकार (होता) राष्ट्र को पदाधिकारियों के प्राप्त करने और उनको मननपूर्वक स्वीकार करने वाला पुरुष (इडस्पदे) इस पृथ्वी के प्रधान आसन पर (अश्विनौ) विद्याओं और राष्ट्र भागों के अच्छे ज्ञाता, सूर्य और चंद, और शरीर में प्राण और अपान के समान दोषनाशक प्रधान सचिव रूप दो अधिकारियों को (इंद्रम्) शत्रुनाशकारी, ऐश्वर्यवान्, बलवान् सेनापति को और (सरस्वतीम्) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की बनी विद्वत्सभा को (यक्षत्) नियुक्त करे और उचित स्थानों पर संगत करे ।

(२) (अजो धूम्रो न गो, धूमैः कुवलैः भेषजम्) (अजः) बकरा बकरी जाति का पशु और अजवायन, अजमोद नामक ओषधि जिस प्रकार अपने उग्रगन्ध से नाना रोगों को (भेषजम्) दूर करता है और (धूम्रः) तीव्र धूम जिस प्रकार रोगकारी अंशों को नष्ट करता है और (गोधूमैः) हूंग के अन्नों से जिस प्रकार शरीर पुष्ट होता है और (कुवलैः) बेर

आदि झाड़ियों से जिस प्रकार पौधों को अन्य पशुओं से खाये जाने से बचाया जाता है उसी प्रकार (अजः) शत्रुओं पर नाना अस्त्र शस्त्रों को फेंकने में कुशल वीर योद्धा पुरुष (न) और (धूम्रः) उनको अपने बल, साहस, वीरता, पराक्रम और युद्ध नीति से कंपा देने और धुन डालने वाला पुरुष (गोधूमैः) पृथ्वी के देशों को कम्पाने में समर्थ वीर पुरुषों और अस्त्रशस्त्रों से और (कुवलैः) अति घोर गर्जनाकारी अथवा शत्रु की भूमि को घेर लेने वाले सेना दलों सहित (भेषजम्) शत्रु तथा प्रजा-पीड़कों को दूर करने का उचित उपाय प्राप्त होता है ।

(३) (शष्पैः मधु न तेजः इन्द्रियम्) (शष्पैः) शष्प, नवांकुरित धान और उसकी जाति के धान्यों से जिस प्रकार (मधु) मधु खाद्य अन्न (न) और (तेजः) तेज, प्राणबल और (इन्द्रियम्) शरीर में इन्द्रिय सामर्थ्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार राष्ट्र में (शष्पैः) शत्रु के मारने में समर्थ वीर पुरुषों और घोर घातक अस्त्रों से शस्त्र आदि साधनों से राष्ट्र और राजा (मधु) शत्रुओं को पीड़न में समर्थ (तेजः) पराक्रम और (इन्द्रियम्) इन्द्र, विद्युत् और सूर्य का सा राजकीय ऐश्वर्य और पराक्रम उत्पन्न होता है ।

(४) (पयः सोमः परिस्रुता) (परिस्रुता) उत्तम रीति से प्राप्त रस से जिस प्रकार (पयः) दुग्ध आदि पुष्टि प्रद अन्न और (सोमः) परिस्रवणक्रिया से प्राप्त सोम, ओषधियों का रस जिस प्रकार तीव्र गुण-कारी हो जाता है उसी प्रकार (परिस्रुता) अभिषेक द्वारा (पयः) राष्ट्र के पोषकवर्ग और (सोमः) ऐश्वर्यवान् अभिषिक्त राजा दोनों ही राष्ट्र में बलवान् और तेजस्वी हो जाते हैं ।

(५) (घृतं मधु व्यन्तु) हे पूर्वोक्त अश्वि, इन्द्र, सरस्वती, सोम आदि पदाधिकारियों सर्व विद्वत्सभा के सभासद्गण ! साधारण मनुष्य जैसे शरीर

की उन्नति और पुष्टि के लिये घी दुग्ध और अन्न ग्रहण करता है उसी प्रकार आप सब लोग (घृतं) तेज और (मधु) बल, अन्न और ज्ञान को राष्ट्र की उन्नति और अभ्युदय के लिये (व्यन्तु) प्राप्त करें।

(६) (आज्यस्य होतः यज) हे (होतः) होता जन ! तू जिस प्रकार यज्ञ में घृत की आहुति देता है उसी प्रकार हे (होतः) राष्ट्र के पदों को प्रदान करने हारे विद्वन् ! तू (आज्यस्य) वीर्य, विजयोपयोगी सामर्थ्य और बलको (यज) प्रदान कर या प्राप्त करा।

होता यक्षत्तनूनपात्सरस्वतीमविर्मेषो न भेषजं पथा मधुमता भरन्नश्विनेन्द्राय वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

अतिधृतिः । षड्जः ।

भा०—(१) (तनूनपात् होता सरस्वतीम् अश्विनौ इन्द्राय यक्षत्) (तनूनपात्) शरीर के न्यून अंश को पुष्ट कर उसको पालन और पूर्ण करने में समर्थ (होता) राष्ट्र के पदाधिकारों का प्रदाता, विद्वान् (सरस्वतीम्) ज्ञानमय वाणी के उपदेष्टा गुरु के समान उत्तम ज्ञानमय विद्वत्सभा को और (अश्विनौ) विद्याओं में पारंगत दो मुख्य विद्वान् पुरुषों को (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र की उन्नति के लिये (यक्षत्) नियुक्त करे।

(२) (पथा मधुमता इन्द्राय वीर्यं हरन्) जिस प्रकार (मधुमता) जल वाले, जल से हरे भरे या नदी के मार्ग से जाने वाला सुगमता से और सुख से चला जाता है इसी प्रकार राष्ट्र के सञ्चालकों को (मधुमता) मधुर, उत्तम फलों से युक्त (पथा) नीति मार्ग से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा को (वीर्यं) बल (हरन्) प्राप्त करावे।

(३) (अविः मेषः न भेषजम्) शीतकाल में जिस प्रकार शीत निवारण के लिये भेड़, भेड़ा ही अपनी ऊन द्वारा उसके उपाय हैं उसी

प्रकार राष्ट्र पर आने वाले बाधक कारणों का उपाय (मेषः न) मेढ़े के समान प्रतिपक्ष से टक्कर लेने वाला, शत्रुजन पर शस्त्रों का और प्रजा पर सुख साधनों का वर्षण करने वाला (अविः) रक्षक का होना ही (भेषजम्) बाधाओं को दूर करने का उत्तम उपाय है।

(४) (बदरैः उपवाकाभिः तोक्मभिः भेषजम् यक्षत्) जिस प्रकार (बदरैः) बेर जैसी झाड़ियों से बाड़ बना कर उद्यानों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र पर आने वाले शत्रुओं को (बदरैः=बधरैः) हिंसाकारी शस्त्रों का प्रहार करने वाले सेना दलों से (यक्षत्) उपाय करे। राष्ट्र की मूर्ख जनता को (उपवाकाभिः) गुरुओं के दीक्षा द्वारा उपदेश क्रियाओं से शिक्षित करे। (तोक्मभिः) व्यथादायी उपायों से राष्ट्र के भीतरी दुष्टों का उपाय करे।

(५) (पयः सोमः परिस्रुतः। घृतं मधु व्यन्तु। आज्यस्य होतः यज) इत्यादि पूर्ववत्॥

होता यक्षन्नराशꣳसं न नग्नहुं पतिꣳ सुरया भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्रथो न चन्द्र्यश्विनोर्वपाऽइन्द्रस्य वीर्यं बदरैरुपवाकाभिर्भेषजं तोक्मभिः पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥ ३१॥

अतिधृतिः। षड्जः।

भा०—(१) (होता नराशंसं नग्नहुं पतिं न सुरया यक्षत्) (न) जिस प्रकार (नराशंसं) समस्त पुरुषों से प्रशंसनीय (नग्नहुं) सुन्दर स्त्री को स्वीकार करने वाले (पतिं) पति को (सुरया) उत्तम रमणी के साथ संगत कर दिया जाता है उसी प्रकार (होता) राष्ट्र के पदाधिकारियों का नियोजक विद्वान् पुरुष (सुरया) उत्तम रमणयोग्य, राज्यलक्ष्मी से (नराशंसं) समस्त नेतृ पुरुषों से प्रस्तुत, स्तुति योग्य, (नग्नहुम्)

दरिद्रों के पोषक, दुष्ट पुरुषों के विनाशक, (पतिम्) पालक, राष्ट्रपति को (यज्ञत्) संगत करे ।

(२) (भेषजं मेषः सरस्वती भिषग्) पति-पत्नी के परस्पर विवाहित होजाने पर यदि प्रजोत्पत्ति में कोई बाधक कारण हो तो जिस प्रकार (मेषः) वीर्य सेचन करने में वीर्यपुष्टिकर औषध ही (भेषजम्) रोगनाशक होता है और (सरस्वती भिषग्) उत्तम ज्ञानमय वाणी या उसका धारक विद्वान् ही भिषक्, चिकित्सक है । अथवा विवाहित होजाने पर भी परस्पर मिलने में (मेषः) वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष ही उत्तम प्रजोत्पत्ति का (भेषजम्) उपाय है और (सरस्वती) स्त्री ही (भिषक्= अभि-षक्) प्रजोत्पत्ति करने वाली, उससे संगत होती है । उसी प्रकार राष्ट्रपति बनाने में आये बाधक कारणों को दूर करने में (मेषः भेषजम्) प्रतिद्वन्द्वी से टक्कर लेने वाले मेढे के समान वीर, प्रतिस्पर्द्धी पुरुष ही (भेषजम्) उपाय है । और (सरस्वती) वेदवाणी विद्वत्सभा ही (भिषग्) उस उपाय को बतलाने वाले वैद्य के समान है ।

(३) (रथो न चन्द्री) दम्पति के लिये जिस प्रकार मार्ग पार करने का साधन रथ है उसी प्रकार राष्ट्र लक्ष्मी और राष्ट्रपति को नीति मार्ग पर चलने का उत्तम साधन (चन्द्री) सुवर्ण आदि धन वाला कोशवान् पुरुष ही है ।

(४) (अश्विनोः वपा इन्द्रस्य वीर्यम्) जिस प्रकार (अश्विनोः) स्त्री पुरुषों की (वीर्यम्) वीर्य ही (वपा) सन्तानोत्पत्ति की शक्ति है, उसी प्रकार (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति और राष्ट्र का (वीर्यम्) बल ही (अश्विनोः) प्रधान पदपर नियुक्त महामात्यों की (वपा) शत्रु-उच्छेदन करने की शक्ति है ।

(५) (बदरैः उपवाकाभिः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

होता यक्षदिडेडित आजुह्वानः सरस्वतीमिन्द्रं बलेन वर्धयन्नृषभेण

गवेन्द्रियमश्विनेन्द्राय भेषजं यवैः कर्कन्धुभिर्मधु लाजैर्न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

विराड् अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(१) (होता सरस्वतीम् आजुह्वानः इडा यक्षत्) पूर्व वर्णित पदाधिकारियों को नियुक्त करने हारा विद्वान् 'होता' (ईडितः) स्वयं आदर सत्कार प्राप्त करके (सरस्वतीम्) उत्तम विद्वानों से पूर्ण विद्वत्-सभा या वेदवाणी की व्यवस्था को (आजुह्वानः) प्रदान करता हुआ, या स्वीकार करता हुआ (इडा) अन्न सम्पदा से (इन्द्राय) सम्पन्न राष्ट्र को (यक्षत्) संयुक्त करे ।

(२) (बलेन इन्द्रं वृषभेण गवा इन्द्रियं वर्धयन्) बल से, सेना-बल से 'इन्द्र' राजा को (वर्धयन्) अधिक शक्तिशाली करता हुआ, और (वृषभेण) सांड और (गवा) गौ इन जाति के पशुओं से (इन्द्रियम्) इन्द्र अर्थात् राजा के ऐश्वर्य को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ ।

(३) (यवैः कर्कन्धुभिः मधु लाजैः न मासरं भेषजं यक्षत्) (यवैः) जौ आदि धान्यों से (मधु) राष्ट्र के अन्न और उनके समान रोगनाशक, (यवैः) शत्रुनाशक पुरुषों से राष्ट्र के (मधु) बल को उसी प्रकार (कर्कन्धुभिः) कांटेदार वृक्षों से (मधु) बेर के समान मधुर फल एवं हिंसाकारी शस्त्रों के धारक वीर पुरुषों से (मधु) शत्रु के नाशक बल को और (लाजैः न) लाजाओं, खीलों के समान शुभ्रवर्ण से (मासरम्) प्रति-मास दिये जाने वाले वेतन को (भेषजम्) उपायन, या भेंट रूप धातुओं से (यक्षत्) नियत करे ।

(४) (पय सोमः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

'०दिव्लेक्षित' इति काण्व० ।

होता यक्षद्बर्हिरूर्णम्रदा भिषङ्नासत्या भिषजाश्विनाश्वा शिशुमती भिषग्धेनुः सरस्वती भिषग्दुह इन्द्राय भेषजं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(होता) उक्त होता नाम पदाधिकारी पुरुषों का नियोक्ता विद्वान् 'होता' नाना प्रकार के दोषों को दूर करने के साधनों और उपायों को (यक्षत्) प्राप्त करे । (१) (बर्हिः ऊर्णम्रदाः भिषक्) ऊन जिस प्रकार कोमल होकर शरीर की शीत से रक्षा करती है उसी प्रकार (बर्हिः) प्रजा भी (ऊर्णम्रदाः) कोमल होकर भी राजा और राष्ट्र की कम्बल के समान रक्षाकारी होकर (भिषक्) उसकी त्रुटियों को दूर करती है । (२) (नासत्या अश्विना भिषजा) कभी असत्य व्यवहार न करने हारे, सदा सत्यप्रेमी पूर्वोक्त दो अधिकारी भी वैद्यों के समान राष्ट्र के भीतर विद्यमान असद्-व्यवहारों को दूर करते हैं । (अश्वा) वेगवती घोड़ी के समान तीव्र बुद्धि वाली अथवा (अश्वा) हृदयग्राहिणी और (शिशुमती) उत्तम बालकों से युक्त (धेनुः) गौ के समान मधुर रस देने वाली विदुषी स्त्री राजा और राष्ट्र के दोषों को (भिषग्) दूर करती है । और (सरस्वती) सरस्वती विदुषी स्त्री और विद्वत्सभा भी (भिषग्) नाना दोषों को दूर करते हैं ये सब भी (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र और राजा के लिये (भेषजम्) ओषधि रसों के समान नाना उपाय (दुहे) प्रदान करती है । (पयः सोमः० इत्यादि । पूर्ववत् ।

होता यक्षद्दुरो दिशः कवष्यो न व्यचस्वतीरश्विभ्यां न दुरो दिश ऽइन्द्रो न रोदसी दुघे । दुहे धेनुः सरस्वत्यश्विनेन्द्राय भेषजꣳ शुक्रं न ज्योतिरिन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

भुरिगतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता यक्षत्) उक्त होता नामक विद्वान् अश्वि नामक अधिकारी और सरस्वती नामक विद्वत्सभा को नियुक्त करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (अश्विभ्यां) उक्त दोनों राजनीति कुशल अधिकारियों द्वारा (दिशः न) दिशाओं के समान (कवस्यः) विशाल अवकाशवाली और (व्यचस्वतीः) अति विस्तृत (दुरः) द्वारों और (दुरः) द्वारों के समान (दिशः) अवकाश वाली विस्तृत दिशाओं को, और (रोदसी न) सूर्य चन्द्र या वायु और सूर्य द्वारा आकाश और पृथ्वी जिस प्रकार दुही जाती हैं, उनके पूर्ण उपभोग्य पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं, उसी प्रकार विद्वान् नेता और सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों द्वारा राष्ट्रवासी स्त्री पुरुषों या राज प्रजावर्ग दोनों को (दुघे) दोहता है, उनसे ऐश्वर्य प्राप्त करता है। (सरस्वती) सरस्वती नाम विद्वत्सभा (इन्द्राय) राजा के लिये (पयः) दूध को (धेनुः) दुधार गौ के समान (भेषजं) सर्व रोग-हर औषध, (शुक्रं) शरीर में बलकारी, वीर्य और (ज्योतिः) प्रकाश और (इन्द्रियं) ऐश्वर्य उत्पन्न करे। इसी प्रकार (अश्विनौ) शरीर में व्यापक प्राण और अपान के समान दोनों अधिकारी (इन्द्राय) शरीर के अधिष्ठाता, इन्द्र, जीव के समान राष्ट्र के स्वामी के लिये (भेषजं शुक्रं न) सर्व रोगहर औषध और वीर्य के समान ऐश्वर्य और (ज्योतिः) जीवन-बल और (इन्द्रियम्) राज्य सामर्थ्य को (दुहे) उत्पन्न करें। (सोमः परिस्रुता०) इत्यादि पूर्ववत्।

होता॑ यक्षत् सु॒पेश॑सो॒षे नक्तं॒ दिवा॒श्विना॒ सम॑ञ्जाते॒ सर॑स्वत्या।
त्विषि॒मिन्द्रे॒ न भे॑ष॒जꣳ श्ये॒नो न रज॑सा हृ॒दा श्रि॒या न मास॑रं॒
पय॒: सोम॑: परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३५ ॥

भुरिगतिधृतिः। षड्जः ॥

भा०—(होता) होता नामक विद्वान् (यक्षत्) राष्ट्र की सुव्यवस्था के अधिकारियों को योग्यपद पर नियुक्त करे। (सुपेशसा) उत्तम रूप वाली, उत्तम धनैश्वर्य से सम्पन्न, (उषे) प्रातःसायं की सन्ध्याओं के समान, या सूर्य चन्द्र के समान (अश्विना) अश्वि नामक विद्वान् दोनों अधिकारी (दिवानक्तम्) दिन और रात (सरस्वत्या) सरस्वती नामक विद्वत्सभा से (सम् अञ्जाते) एक मत करके रहते हैं। और (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में (त्विषिम्) कान्ति या तेज को (भेषजम्) रोगहारी रस के समान स्थापन करते हैं। तब वह (श्येनः न) श्येन या बाज़ जिस प्रकार बड़े वेग से अपने निर्बल पक्षियों पर आक्रमण करता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने (रजसा) कान्ति से या तेजस्वी लोक-समूह से निर्बल शत्रुपक्ष पर आक्रमण करने में समर्थ हो जाता है। तब वह (हृदा) हृदय से या हरणकारी आक्रमण से और (श्रिया) श्री—शोभा और ऐश्वर्य से (न) भी (मासरं) भात के समान या अपने मासिक वेतन के समान अपने अधीन शत्रु को भोग करता है। (पयः सोम० इत्यादि) पूर्ववत्।

होता यक्षद्दैव्या होतारा भिषजाश्विनेन्द्रं न जागृवि दिवा नक्तं न भेषजैः। शूषꣳ सरस्वती भिषक् सीसेन दुहऽइन्द्रियं। पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३६ ॥

निचृदष्टिः। मध्यमः ॥

भा०—(होता) पदाधिकारियों का नियोक्ता विद्वान् (दैव्या होतारा) देवों, प्रजा के विद्वान् दानशील पुरुषों के हितकारी दो (होतारौ) प्रधान वशकारी अधिकारी पुरुषों को और (अश्विना) अधिकार, और राजनीति विद्या में व्यापक, (भिषजा) शरीर के रोगों के चिकित्सकों के समान राष्ट्र दोषों के सुधारक पुरुषों को और (इन्द्रं न) शत्रुहन्ता पुरुष को भी (यक्षत्) नियुक्त करे। (भिषक् भेषजैः न) वैद्य

जिस प्रकार अपने ओषधों द्वारा शरीर में बल उत्पन्न करता है उसी प्रकार (सरस्वती) उत्तम विद्वत्सभा (दिवा नक्तं) दिन रात (जागृवि) जागती हुई, सावधान रह कर, (सीसेन) सीसा के बने गुलिकास्त्र से (शूषं) बल, सामर्थ्य और (इन्द्रियं) इन्द्र, राजा के उचित मान, ऐश्वर्य को भी (दुहे) उत्पन्न करती है । (पयः सोमः०) इत्यादि पूर्ववत् ।

होता यक्षत्तिस्रो देवीर्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसो रूपमिन्द्रे हिरण्ययमश्विनेडा न भारती । वाचा सरस्वती महऽइन्द्राय दुहऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३७ ॥

धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(होता) पूर्वोक्त पदाधिकारियों का नियोजक व्यक्ति 'होता' ही (तिस्र देवीः) तीन सभाओं को (यक्षत्) व्यवस्थित करे । (त्रिधातवः) शरीर की तीन धारक धातु वात पित्त, कफ जिस प्रकार (भेषजं न) वैद्य से दी गई ओषधि को धारण कर लेते हैं उसी प्रकार (त्रयः) वे तीन (अपसः) कर्मों के करने वाले प्रधान नेताओं के अधीन होकर (इन्द्रे) राजा में (रूपं) रुचि-रूप धारण कराती हैं । (अश्विनौ) इनमें भी दो मुख्य अधिकारी अश्वि नामक हैं वे दोनों और (इडा) इडा नाम भूमि की प्रबन्धकर्त्री संस्था (इन्द्रे) राजा में (हिरण्ययम् दुहे) सुवर्ण आदि धातुमय ऐश्वर्य को धारण कराती हैं । भारती और भारती नाम कला कौशल की नियामक संस्था भी और (अश्विना) दो अधिकारियों को प्राप्त होकर (इन्द्रे रूपं हिरण्ययम् दुहे) राजा में ऐश्वर्य को प्रदान करती है । (सरस्वती) सरस्वती नाम विद्वत्सभा (वाचा) वाक् या त्रयी विद्या, वाणी, व्यवस्था और आज्ञा द्वारा (इन्द्राय महः इन्द्रियम् दुहे) राजा के प्रति आदर योग्य बड़े भारी सामर्थ्य को प्रदान करती है । (पयः सोमः०) इत्यादि पूर्ववत् ।

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसं त्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं

न सर॑स्वती॒मोजो॒ न जू॒तिरि॑न्द्रि॒यं वृको॒ न र॑भ॒सो भि॒षग्य॒शः सुर॑या भेष॒जꣳ श्रि॒या न मास॑रं॒ पय॒: सोम॑: परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ३८ ॥

भुरिक् कृतिः । निषादः ॥

भा०—(होता) उचित पदों पर उचित व्यक्तियों को नियुक्त करने वाला अधिकारी होता, (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान्, (ऋषभम्) सेचने में समर्थ वृषभ के समान उत्तम भूमि में उत्तम बीज वपन करने में समर्थ, एवं मेघ के समान उत्तम जलरूप उत्पादक सामर्थ्य से युक्त, (नर्यापसम्) लोकोपकारी कर्म करने वाले, (त्वष्टारम्) शिल्पी, एन्जी-नीयर और (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष को, और (अश्विनौ) दो मुख्य अधिकारियों को (भिषजम्) सब दोषों को दूर करने वाले वैद्य के समान (सरस्वतीम्) उत्तम ज्ञान और ज्ञानी पुरुषों से युक्त विद्वत्सभा को (यक्षत्) राष्ट्र में नियुक्त करे । वे सब लोग क्रम से (ओजः ; पराक्रम (न) और (जूतिः) वेग से, चुस्ती से कार्य संचालन, (इन्द्रियम्) राजा के उचित ऐश्वर्य और इन्द्रियों के तीव्र सामर्थ्य को उत्पन्न करते हैं । और (वृकः न) जिस प्रकार-भेड़िया छुपकर अपने से निर्बल जीव को ताकता है और बेखबर पर वेग से जा पड़ता है उसी प्रकार वह राजा भी अपने ओज और शीघ्रकारिता से उसी प्रकार अपने निर्बल शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ होता है । और (रभसः भिषग्) अति कार्य-कुशल वैद्य जिस प्रकार अपनी चुस्ती से (सुरया) उचित ओषधि से या सुरा के योग से (भेषजं) रोगहारी ओषधि को देता है और (यशः) धन और सुख्याति प्राप्त करता है और मरणासन्न रोगी को भी बचा लेता है उसी प्रकार (सुरया) उत्तम राज्यलक्ष्मी से या उत्तम सुव्यवस्था से राजा राष्ट्र शरीर में उठी अव्यवस्था का उपाय करता है और (यशः) यश, ऐश्वर्य और ख्याति प्राप्त करता है और (श्रिया) अपने ऐश्वर्य से,

ही (मासरम्) अपने राष्ट्र और पर-राष्ट्र को परिपक्व भात के समान भोग करता है, अथवा लक्ष्मी के बल से सब को प्रति मास वेतन भी देता है। (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत् ॥

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं भीमं न मन्युꣳ राजानं व्याघ्रं नमसाश्विना भामꣳ सरस्वती भिषगिन्द्राय दुह ऽइन्द्रियं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥३९॥

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(होता) योग्य पदाधिकारियों का नियोक्ता 'होता' नामक विद्वान् पुरुष (वनस्पतिम्) वट आदि महावृक्ष के समान समस्त प्रजाओं को निःस्वार्थ भाव से आश्रय देने वाले, (शमितारम्) वन में लगी आग को जलधाराओं से शमन करने वाले मेघ के समान संतप्त प्रजाओं को शान्ति देने वाले, (शतक्रतुम्) सैकड़ों प्रकार के कर्म करने में समर्थ विद्युत् के समान सैकड़ों सामर्थ्यों से युक्त और (मन्युं न भीमं) मन्यु, क्रोध के समान अति भयकारी (व्याघ्रं राजानम्) पशुओं पर व्याघ्र के समान, अन्य बड़े राजाओं पर भी आक्रमण करने में निर्भय राजा को (नमसा) सब को नमाने वाले दण्डाधिकार से युक्त करके और (अश्विनौ) दो मुख्य पदाधिकारियों को भी (यक्षत्) नियुक्त करे। (सरस्वती) उत्तम ज्ञानपूर्ण विदुषी, विद्वत्-सभा और वेदवाणी (इन्द्राय) इन्द्र को (भामम्) असह्य क्रोध रूप तेज और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (दुहे) प्रदान करती है। (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत्।

होता यक्षदग्निꣳस्वाहाज्यस्य स्तोकानाꣳस्वाहा मेदसां पृथक् स्वाहा छागमश्विभ्याꣳ स्वाहा मेषꣳसरस्वत्यै स्वाहऽऋषभमिन्द्राय सिꣳहाय सहसऽइन्द्रियꣳ स्वाहाग्निं न भेषजꣳ स्वाहा सोममिन्द्रियꣳ स्वाहेन्द्रꣳ सुत्रामाणꣳ सवितारं वरुणं भिषजां

पति॑ᳩ॑स्वाहा॒ वन॒स्पति॑ प्रि॒यं पाथो॒ न भे॑ष॒जᳩ॑स्वाहा॑ दे॒वाऽआ॑ज्य॒पा जु॑षा॒णोऽअ॒ग्निर्भे॑ष॒जं पयः॒ सोमः॑ परि॒स्रुता॑ घृ॒तं मधु॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ४० ॥

निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(होता) पूर्वोक्त उचित पदों पर उचित पुरुषों को नियुक्त करने वाला होता नामक विद्वान् (अग्निम्) अग्रणी सेनापति को (स्वाहा) उत्तम रीति, सुख्याति और उत्तम अन्नादि वृत्ति से (यक्षत्) पद पर नियुक्त करे । (आज्यस्य) प्राप्त होने योग्य, विनयकारी सेना बल, साधन के लिये (स्तोकानां) छोटी वृत्ति वालों को भी (सु-आहा) उत्तम शिक्षा द्वारा (यक्षत्) नियुक्ति करे । (मेदसां) व्याघ्र सिंह आदि हिंसक जन्तुओं के समान एक स्थान पर मिलकर न रहने वाले हिंसाकारी पुरुषों को (पृथक्) सब से पृथक् (स्वाहा) उत्तम रीति से, उत्तम शिक्षा और व्यवस्था से नियुक्त करे । (अश्विभ्याम्) अश्वि, राष्ट्र में व्यापक, बड़े दो पदों के लिये (छागम्) प्रजाओं के दुःखों और दुष्टों के गर्वों के काटने में समर्थ पुरुष को (स्वाहा) उत्तम अन्न द्रव्य की वृत्ति देकर (यक्षत्) नियुक्त करे । (सरस्वत्यै मेषम्) सरस्वती, प्रशस्त ज्ञान वाली स्त्री के लिये जिस प्रकार वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष को संगत किया जाता है उसी प्रकार उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों की विद्वत्सभा के लिये भी (मेषम्) मेष के समान प्रतिस्पर्द्धी से टक्कर लेने वाले, ज्ञान जलों के वर्षक और विजयी स्पर्द्धालु मस्तक बल से जीने वाले विद्वान् पुरुष को नियुक्त करे । (इन्द्राय) इन्द्र, राजा पद के लिये (ऋषभम्) मेघ के समान प्रजाओं पर जल के वर्षक, सर्वश्रेष्ठ, सौम्य पुरुष को (यक्षत्) नियुक्त करे । इसी प्रकार (सिंहाय सहसे) सिंह के समान बलशाली पुरुष के योग्य (सहसे) शत्रु को पराभव करने वाले बल कार्य के लिये (इन्द्रियम्) इन्द्र अर्थात् महाराज पद को प्राप्त करने योग्य, ऐश्वर्यवान् एवं शत्रु को पराभव करने

वाले बल से युक्त पुरुष को (स्वाहा) उत्तम वेतन वृत्ति, भूमि एवं यश, मान द्वारा (यक्षत्) नियुक्त करे । (अग्निम् न) अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष को (भेषजं) दोष को दूर करने वाले औषध के समान (स्वाहा) उत्तम आदर से (यक्षत्) नियुक्त करे । (सोमम् इन्द्रियम्) सोम, राजा पद को भी (इन्द्रियम्) इन्द्र, शत्रु-नाशक बलधारी के पुरुष के समान ही (स्वाहा) उत्तम मान आदर से (यक्षत्) नियुक्त करे । (इन्द्रम्) शत्रुहन्ता, (सुत्रामाणम्) उत्तम प्रजा के रक्षक, (सवितारम्) सब के प्रेरक (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ सब के वरण योग्य पुरुष को (भिषजां पतिम्) सर्व दोषों के चिकित्सकों ज्ञानवान् पुरुषों के भी पालक बनाकर उनको (स्वाहा) उत्तम आदर करके उचित रीति से (यक्षत्) नियुक्त करे । (प्रियम् पाथः न) प्रिय, मनोहारी अन्न के समान, (वनस्पति) महावृक्ष के समान सर्वाश्रय दाता ऐश्वर्यवान् पुरुष को (भेषजम्) उपद्रवों के शान्त करने वाले औषध के समान जानकर (स्वाहा) आदर से (यक्षत्) रक्खे । (देवाः) देव, विजिगीषु लोग सभी (आज्यपाः) संग्राम के विजयकारि पदों के पालक हों । (जुषाणः) आदरपूर्वक नियुक्त (अग्निः) ज्ञानी विद्वान् नेता ही (भेषजम्) औषध के समान राष्ट्र शरीर के सब अंगों को शान्त, स्वस्थ रखता है । (पयः सोमः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

होता यक्षदश्विनौ छागस्य वपाया मेदसो जुषेताᳬं हविर्होतर्यज । होता यक्षत्सरस्वतीं मेषस्य वपाया मेदसो जुषताᳬं हविर्होतर्यज । होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य वपाया मेदसो जुषताᳬं हविर्होतर्यज ॥ ४१ ॥

त्रयो वपानां प्रैषाः । सप्तलिंगोक्ता देवताः । अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता) पदों पर योग्य अधिकारियों का नियोजक 'होता' नामक अधिकारी पुरुष (अश्विनौ यक्षत्) अश्वि नामक दो अधिकारी

पुरुषों को नियुक्त करे। वे दोनों (छागस्य) शत्रु और प्रजा के पीड़कों के उच्छेदन करने में समर्थ पुरुष की (वपायाः) उच्छेदन करने वाली शक्ति और (मेदसः) हिंसन या दण्ड देने के सामर्थ्य को (जुषेताम्) प्राप्त करें। हे (होतः) होतः ! तू उन दोनों को (हविः) उचित अन्न, वीर्य और अधिकार (यज) प्रदान कर। इसी प्रकार (होता) होता नामक विद्वान् (सरस्वतीम्) ज्ञान से पूर्ण विद्वत्सभा को (यजत्) नियुक्त करे। वह (मेषस्य) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करने वाले विद्वान्गण के (वपायाः) परस्पर खण्डन मण्डन की शक्ति और (मेदसः) परस्पर स्नेह या परपक्ष के खण्डन की शक्ति का (जुषेताम्) सेवन या अभ्यास करें। (होता इन्द्रम् यक्षत्) होता 'इन्द्र' नामक शत्रुनाशक सेनापति को नियुक्त करे। वह (ऋषभस्य) सर्वश्रेष्ठ, सर्वोच्च पुरुष के (वपायाः) दूसरे की यश कीर्त्ति के उच्छेदन करने की शक्ति और (मेदसः) स्पर्धा में दूसरे के नाशक बल वीर्य को (जुषताम्) प्राप्त करे। (होतः) हे होतः ! तू इस अधिकारी को (हविः यज) मान, अन्न, वेतन, अधिकार प्रदान कर।

गृहस्थ पक्षमें—(अश्विनौ) स्त्री पुरुषों को होता यज्ञ करावे। परस्पर नियुक्त करे, वे (छागस्य) बकरे की सी उत्पादक शक्ति और परस्पर के स्नेह को करें। (सरस्वती) विदुषी स्त्री, वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष के (वपायः) बीजवपन शक्ति और स्नेह का लाभ करे। इन्द्र ऐश्वर्यवान् पुरुष (ऋषभस्य) श्रेष्ठ पुरुष के (वपायाः) ज्ञान और ऐश्वर्य और श्रेष्ठ पुरुष के समान शिष्यों और पुत्रों को स्नेह से अपने समान बनाने और देखने की प्रेममयी शक्ति को प्राप्त करे। हे (होतः) विद्वन् ! तू उन तीनों स्त्री पुरुष विदुषी ब्रह्मचारिणी स्त्री और श्रेष्ठ आचार्य को (हविः यज) अन्न आदि प्रदान कर।

होता यक्षदश्विनौ सरस्वतीमिन्द्रꣳ सुत्रामाणमिमे सोमाः सुरामाणश्छागैर्न मेषैर्ऋषभैः सुताः शष्पैर्न तोक्मभिर्लाजैर्महस्वन्तो मदा मासरेण परिष्कृताः शुक्राः पयस्वन्तोऽमृताः प्रस्थिता वो मधुश्चुतस्तानश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा वृत्रहा जुषन्ताꣳ सोम्यं मधु पिबन्तु मदन्तु व्यन्तु होतर्यज ॥ ४२ ॥

अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता) योग्य पुरुषों को योग्य अधिकारों का प्रदाता विद्वान् पुरुष (अश्विनौ सरस्वतीम्) विद्या और राज्य-कार्यों में अच्छी प्रकार कुशल दो पुरुषों को और सरस्वती नामक विद्वत्सभा को, और (इन्द्रं सुत्रामाणम्) उत्तम रीति से राज्य के पालन करनेहारे इन्द्र, राजा को (यक्षत्) आदरपूर्वक योग्य अधिकार प्रदान करे। (इमे सोमाः) ये परम ऐश्वर्य सम्पन्न विद्वान्, राज पदाधिकारी जन (सुरामाणः) उत्तम राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होकर (छागैः) शत्रुनाशक, (मेषैः) विद्या और बल में प्रतिस्पर्द्धा वाले (ऋषभैः) और प्रजा में प्रतिष्ठित, उत्तम पुरुषों द्वारा (सुताः) अभिषिक्त होकर, (शष्पैः) शत्रुओं को हिंसाकारी शस्त्रों, (तोक्मभिः) शत्रु के व्यथादायी महास्त्रों और (लाजैः) विशेष दीप्तिजनक ऐश्वर्यों से (महस्वन्तः) बड़े भाग्यशाली, आदर और अधिकार को प्राप्त, (मदा) तृप्ति कर, उनके चित्तों को संतोष-जनक (मासरेण) प्रतिमास दिये जाने वाले वेतन, पुरस्कार आदि या अन्न आदि भोग्य सामग्री से (परिष्कृताः) सत्कृत, (शुक्राः) शुद्ध आचारवान्, (पयस्वन्तः) पुष्टिकारक, अन्न, दुग्ध एवं पशु आदि समृद्धि से सम्पन्न, अथवा वीर्यवान्, (अमृताः) अजर, आत्मज्ञानी, दीर्घायु, (प्रस्थिताः) उत्तम पद पर स्थित हैं। हे ऐश्वर्यवान्, विद्वान्, सौम्य पुरुषो ! (तान्) उन (मधुश्चुतः) ज्ञान को प्रदान करने वाले (वः) आप लोगों को (अश्विनौ) दोनों

प्रधान पुरुष, (सरस्वती) विद्वत्-सभा और (सुत्रामा वृत्रहा) उत्तम पालक, शत्रुनाशक (इन्द्रः) इन्द्र राजा, ये सब (जुषन्ताम्) प्रेम और आदर से प्राप्त करें। और (सोम्यं मधु) सोम्य=राष्ट्र के हितकारी ऐश्वर्य या ज्ञान को (पिबन्तु) उत्तम रीति से सुनें, प्राप्त करें। और (मदन्तु) तृप्त और सन्तुष्ट हों। और (व्यन्तु) उसको ग्रहण करें। हे (होतः) विद्वन् होतः! तू उनको (यज) अधिकार प्रदान कर।

[1]होता यक्षदश्विनौ छागस्य [2]हविष आत्तामद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳬं सुमत्क्षराणाᳬं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करतऽएवाश्विना जुषेताᳬं हविर्होतर्यज ॥ ४३ ॥

(१) याजुषी पंक्तिः। पंचमः। (२) उत्कृतिः। षड्जः॥

भा०—(होता) पदाधिकारों का प्रदाता (अश्विनौ) व्यापक अधिकारों वाले दो मुख्य अधिकारियों को (यक्षत्) नियुक्त करे। और वे दोनों (छागस्य) शत्रुओं के बल को नष्ट करने वाले राष्ट्र के (हविषः) उपादान योग्य अन्न आदि कर को (आ अत्ताम्) प्राप्त करें। (अद्य) अब, नित्य (मध्यतः) राष्ट्र के बीच में से (मेदः) शत्रु के बल को नाश करने वाला सेना बल (उद्भृतम्) प्राप्त किया जाय। उक्त दोनों अधिकारी (द्वेषोभ्यः पुरा) शत्रुओं के हाथ में आजाने से पूर्व और (पौरुषेय्याः गृभः पुरा) लोगों के पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त करलेने के पूर्व ही (नूनं) निश्चय से (घस्ताम्) वे उसको लेलें। कैसे अन्नों को लें सो बतलाते हैं? दोनों अधिकारी (घासे अज्राणां) अन्न में जिनका रस नष्ट न हुआ हो, जिनको भोजन के निमित्त प्राप्त किया जा सके, ऐसे (यवसप्रथमानाम्) यव, गोहूं आदि जाति के अन्नों में भी सब से

उत्तम कोटि के (सुमत्क्षराणाम्) उत्तम रीति से तृप्ति और आनन्द देने वाले, (शतरुद्रियाणाम्) सैकड़ों रुद्र नाम पदाधिकारियों द्वारा प्राप्त करने योग्य अथवा उनके निमित्त लेने योग्य, (अग्निष्वात्तानाम्) सूर्य रूप अग्नि से उत्तम रीति से परिपक्क, अथवा अग्नि और ज्ञानी पुरुषों द्वारा उत्तम रीति से परीक्षा करके लिये गये, (पीवोपवसनानाम्) आहार व्यवहार द्वारा पुष्टि करने वाले, (पार्श्वतः) राष्ट्र के पार्श्वों पर के बसे देशों से, (श्रोणितः) बीच के देशों से, (शितामतः) अति वीर्यवान् या विस्तृत या विशेष रूप से व्यवहित देशों से और (उत्सादतः) जो देश राजा के विपरीत सिर उठाते हैं उन देशों से भी अर्थात् (अङ्गाद् अङ्गाद्) राष्ट्र के प्रत्येक अंग से (अवत्तानाम्) प्राप्त किये, करों को (अश्विनौ) उक्त दोनों 'अश्विनामक' अधिकारीगण (नूनम्) अवश्य संग्रह करलें और (जुषेताम्) उनको सेवन करें। अथवा (करतः एव जुषेताम्) कर रूप से ही सेवन करें। हे (होतः) होतः ! तू (हविः) अन्न आदि ग्राह्य पद को (यज) प्रदान कर।

इसी प्रकार, अश्विनामक व्यापक अधिकार वाले अधिकारी गण (छागस्य) शत्रुओं के छेद न करने वाले (हविषः) राष्ट्र से संग्रह करने योग्य सेना बल को (आ अत्ताम्) प्राप्त करें। यह सेना बल कहां से प्राप्त करें ? (मेदः) यह शत्रुनाशक एवं बलकारी प्रजा का अंश भी (मध्यतः उद् भृतम्) राष्ट्र के बीच में से उठाया जाय, प्राप्त किया जाय। कब ? (द्वेषोभ्यः पुरा) शत्रुओं के वश में चले जावे के पहले ही अर्थात्, जब प्रजा में राजा के शत्रुपक्ष प्रजा के बलवान् अंश को राजा के विपरीत संगठित करें इसके पहले ही प्रजा के बीच में से बलवान् प्रजा के अंश को अश्वि नामक अधिकारी अपनी सेना और अन्यान्य कार्यों में लगावें। और कब ? (पुरा पौरुषेय्याः गृभः) वे स्वयं अपने विशेष पुरुषार्थ, धनार्जन धर्मार्थ, एवं मोक्ष मार्ग के निमित्त, विशेष व्यवसाय को पकड़ें अथवा स्वयं

पुरुपार्थ करके वे कोई अधिकार या बल पकड़लें इससे भी पूर्व उनको राजकार्य में लगा लिया जाय। और वे दोनों अधिकारी (नूनं वस्ताम्) अवश्य ही इस अंश को लेही लें, उपेक्षा न करें। राष्ट्र-बल के और सेना के निमित्त जिन प्रजाजनों को लिया जाय वे किस प्रकार के हों? (घासे) अन्न या राज से भोजन-वृत्ति प्राप्त करलेने पर (अज्राणाम्) शत्रु से कभी पराजित न होनेवाले, अथवा अन्न प्राप्त करने पर या अन्नद्वारा कभी शरीर में जीर्ण न होनेवाले, हृष्ट पुष्ट, (यवस-प्रथमानाम्) शत्रुओं को नाश करने में सबसे श्रेष्ठ, अथवा सबसे उत्तम यव आदि प्राप्त करने वाले, (सुमत्-चराणाम्) उत्तम हर्ष आनन्द के सेचन करनेवाले, स्वयं सुप्रसन्न, स्वामी की सदा प्रसन्नता के उत्पादक, स्वामी के सेवक. (शत-रुद्रिया-णाम्) सैकड़ों दुष्टों को रुलानेवाले, अथवा वीर सेनापतियों के अधीन, अथवा सेनापति पद के योग्य, (पीवोपवसनानाम्) स्थूल, मजबूत, पक्की पोशाक, कवच आदि पहनने वाले, (पार्श्वतः) पासों से. (श्रोणितः) कमर से, (शितामतः) गुल्फांग से और (उत्सादतः) उखड़नेवाले, निर्बल (अङ्गाद् अङ्गात् अवंत्तानाम्) प्रत्येक अंग अंग पर सुबद्ध अर्थात् छाती पर कसी पोषाक, कमर में पेटी और गुल्फांगों में लंगोट बांधने वाले, उत्साद अर्थात् विनाश योग्य, या ढीले प्रत्येक अंग को पेटी कवच आदि से बांधनेवाले, कसे कसाये वीर पुरुषों को (करतः एव) अवश्य प्राप्त करें। और (अश्विनौ) विद्या और अधिकार वाले जन उनको (जुषेतां) प्रेम से स्वीकार करें। (होतः) हे होतः! अधिकार दातः! तू (हविः यज) उनको अन्न और अधिकार, वृत्ति और पद प्रदान कर।

अध्यात्म में—होता, प्राणापान का साधक, प्राणापान को वश करनेहारा (अश्विनौ) प्राण और अपान दोनों को वश करे। वे दोनों (छागस्य) अज सर्वच्छेत्ता. आत्मा के (हविषः) बल को (आत्तान्) प्राप्त करें। (मेदः) बल पूर्वक प्राण को (नक्षतः) अपने

शरीर के बीच में से (उद्भृतम्) उठाया जाय । वे प्राण और अपान, अपने ग्राह्य सूक्ष्म अंशों को (द्वेषोभ्यः पुरा, पौरुषेय्याः गृभः पुरा) अप्रीति जनक, बाधक व्यसनों, रोगों और पुरुष देह पर आनेवाली विपत्तियों के द्वारा उन अंशों के नष्ट होने के पहले ही, (नूनं घस्ताम्) देह के उन अंशों को अवश्य ग्रहण करे, वश करे । वे सूक्ष्म अंश कैसे हों ? (घासे अज्राणाम्) अन्नरस खाने में कभी नष्ट न होनेवाले, सदा बलवान्, (यवस-प्रथमानाम्) मिश्रण अमिश्रण, उचित अंश के ग्रहण और हानि-कारक अंश के त्याग में श्रेष्ठ, (सुमत्क्षराणाम्) उत्तम हर्षजनक, (शत रुद्रियाणां) सैकड़ों प्राणों के स्वरूप में प्रकट, (अग्नि-ष्वात्तानाम्) जठराग्नि द्वारा उत्तम रीति से सुपाचित, (पीवोपवसनानाम्) पुष्टिकारी आवरण में सुरक्षित, (पार्श्वतः) कोखों से, (श्रोणितः) कटि भाग से, (शितामतः) गुह्यांग से और (उत्सादतः अङ्गाद् अङ्गाद् अवत्तानाम्) हानि प्राप्त करनेवाले प्रत्येक मर्म अंग से उन प्राणों के सूक्ष्म अंशों को (करतः एव) वे प्राण और अपान क्रिया शक्ति से ही (जुषताम्) संचालित करे । (होतः हविः यज) हे साधक ! तू ! प्राण की अपान में और अपान की प्राण में हवि को प्रदान कर । अर्थात् इसी विधि से प्राणायाम का अभ्यास कर ।

इस मन्त्र को उवट और महीधर ने बकरे के कोख, कमर, लिंग, गुदा आदि भागों से मांस काट २ कर अश्वि देवताओं के निमित्त आहुति करने परक अर्थ किया है । सो असंगत है । वस्तुतः इसमें अश्विनाम व्यापक बड़े अधिकारी लोगों को नियुक्त करने और सेनाबल के निमित्त सैनिक लेने एवं अध्यात्म में, प्राणापान द्वारा शरीर को पुष्ट करने के नियमों का उपदेश किया है ।

(१) 'छागस्य'—छ्यतेश्छेदनार्थाद् धातोरौणादिको गन् प्रत्ययः । छ्यति छिनत्ति इति छागः । इति दया० उणादि० । छापूखडिभ्यः कित् ।

उणादिसूत्रम् । १ । १२४ ॥ छो छेदने । दिवादिः । छोगुग् ह्रस्वश्च इति कल् प्रत्यये गुगागमोह्रस्वश्च उणादि० १ । १०४ ॥ छ्यति छिनत्तीति छगलः छागः बर्करो वा इति दया० उणादि० । 'अजः'—न जायते इत्यजः । अजति गच्छति, व्याप्नोति इत्यजः । अथ यः सः कपाले रसो लिप्त आसीदेष सोऽजः । श० ६ । ३ । १ । २८ ॥ ब्रह्म वा अजः श० ७ । ५ । २ । २१ ॥ प्रजापति र्वा एष यदजपर्भः । श० ५ । २ । १ । २४ ॥

'मेदः'—मिद मेद मेधा हिंसनयोः । भ्वादिः । मेदो वा मेधः । श० ३ । ८ । ४ । ६ ॥ मेधाय अत्रायेत्येतत् । श० ७५ । २ । ३२ ॥ ते मेधं (देवाः) खनन्त इवान्वीयुस्तमन्वविन्दन् ताविमौ व्रीहियवौ । मेधो वा आज्यम् । तै० ३ । १ । १२ । १ ॥

'अग्राणां'—यैरजितं स्वेच्छया, यान्यजराणि वा इत्युवटः ।

[1]होता यक्षत् सरस्वतीं मेषस्य [2]हविष आवयदद्य मध्यतो मेद उद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳬ सुमत्क्षराणाᳬ शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामत उत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवᳬ सरस्वती जुषताᳬ हविर्होतर्यज ॥ ४४ ॥

(१) याजुषी त्रिष्टुप् । धैवतः ॥ (२) स्वराट् उत्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—(होता) अधिकार प्रदाता अधिकारी (सरस्वतीम्) पूर्वोक्त विद्वत्सभा को (यक्षत्) संयोजित करे । वह (मेषस्य) ज्ञान और बलमें प्रतिस्पर्द्धा करने वाले विद्वान् के (हविः) ग्रहण करने योग्य ज्ञान बल को (आवयत्) प्राप्त करें । (मध्यतः मेदः उद्भृतम्) विद्वानों के बीच में से मेधा ज्ञानवती वाणी का बल उत्पन्न होता है । वह भी पूर्वोक्त रीति से ही (पुरा द्वेषोभ्यः. पुरा पौरुषेय्याः गृभः) शत्रुओं के हाथ में जाने और उनके अपने उदरों में लगने से पहले ही (घस्नन् नूनं) उनको अवश्य

प्राप्त करले । (घासे अज्राणां) अन्नादि वृत्ति पाने पर कभी जीर्ण न होने वाले, सदा विजयी, (यवसप्रथमानाम्) सब से प्रथम अन्न प्राप्त करने वाले. (सुमत्क्षराणां) उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाले, (शतरुद्रियाणां) सैकड़ों ज्ञान स्तुतियों को देने वाले (अग्नि-स्वात्तानाम्) ज्ञानवान् आचार्य द्वारा सुशिक्षित, (पीवोपवसनानाम्) दृढ़ता से निवास करने वाले, (पार्श्वतः श्रोणितः शितामतः उत्सादतः अङ्गाद् अङ्गाद् अवत्तानां) देश के समस्त भागों से प्राप्त, अथवा पार्श्व, कमर, लिङ्ग, और मर्म के अंगों अंगों में दृढ़, अर्थात् जितेन्द्रिय पुरुषों को (करत्) नियुक्त करे । (सरस्वती एवं जुषताम्) विद्वत् सभा इस प्रकार राष्ट्र के कार्य को स्वीकार करे । हे (होतः हविः यज) विद्वन् ! तू अधिकार और वेतनान्न प्रदान कर ।

[1]होता यक्षदिन्द्रमृषभस्य हविष[2] आवयदद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाᳬं सुमत्क्षराणाᳬं शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानाम्पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादङ्गादवत्तानां करदेवमिन्द्रो जुषताᳬं हविर्होतर्यज ॥ ४५ ॥

(१) भुरिक् प्राजापत्या उष्णिक् । (२) भुरिगभिकृतिः ॥ ऋषभः ॥

भा०—(होता इन्द्रम् यक्षत्) पूर्वोक्त अधिकारप्रदाता पुरुष इन्द्र नाम पदाधिकारी सेनानायक या राजा को नियुक्त करे । वह इन्द्र नाम पदाधिकारी (ऋषभस्य) ज्ञानवान्, सर्वश्रेष्ठ पुरुष के (हविषः) ग्रहण-योग्य अधिकार और अन्नादि भृति को (आवयत्) प्राप्त करे । (अद्य मध्यतः० ०यज । इत्यादि) पूर्ववत् ।

होता यक्षद्वनस्पतिमभि हि पिष्टतमया रभिष्ठया रशनयाधित । यत्राश्विनोश्छागस्य हविषः प्रिया धामानि यत्र सरस्वत्या मेषस्य

हुविषः प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्यऽ ऋषभस्य हुविषः प्रिया धामानि यत्राग्नेः प्रिया धामानि यत्र सोमस्य प्रिया धामानि यत्रेन्द्रस्य सुत्राम्णः प्रिया धामानि यत्र सवितुः प्रिया धामानि यत्र वरुणस्य प्रिया धामानि यत्र वनस्पतेः प्रिया पाथांऽसि यत्र देवानामाज्यपानां प्रिया धामानि यत्राग्नेर्होतुः प्रिया धामानि तत्रैतान् प्रस्तुत्येवोपस्तुत्येवोपावस्रक्षद्रभीयसऽ इव कृत्वी करदेवं देवो वनस्पतिर्जुषतांऽ हुविर्होतर्यज ॥ ४६ ॥

भुरिगभिकृतिश्छन्दः । ऋषभः ॥

भा०—(होता) योग्य पदाधिकारों का दाता 'होता' नामक विद्वान्, (वनस्पतिम्) वनस्पति, महावृक्ष के समान अपने आश्रितों के पालक बड़े उच्च पदाधिकारी को (यक्षत्) नियुक्त करे। और जिस प्रकार (पिष्टतमया) अत्यन्त कूट पीस कर बनाये महान २ सूतों से बनी और (रभिष्ठया) और खूब दृढ़ता से बांधने वाली, मज़बूत, (रशनया) रस्सी से पशु को बांधते हैं, उसी प्रकार उस मुख्य प्रजापालक सर्वाश्रय राजा को भी खूब (पिष्टतमया) अधिक पिसी या अति सुविचार और विवेक और तर्कद्वारा निर्धारित और (रभिष्ठया) अति दृढ़ता से बांधने वाली (रशनया) अतिव्यापक राजानियमव्यवस्था से राजा और अधीन पदाधिकारियों को (हि अभि-अधित) निश्चय से बांधे। उनको कहां नियुक्त करे ? (यत्र) जिस स्थान पर (अश्विनोः छागस्य) पूर्वोक्त व्यापक, राष्ट्र के अधिकारी मुख्य दो पुरुषों के अधीन दुष्टों के छेदन करने वाले शूर पुरुष को (हविषः) देने योग्य पदाधिकार (प्रियाणि) अति प्रिय, उसके मन के अनुकूल, हितकर, उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाले (धामानि) स्थान, या पद हों उनपर। और (यत्र सरस्वत्याः) जहां सरस्वती नाम विद्वत्सभा के ऊपर (मेषस्य) नियुक्त अतिविद्वान्, ज्ञानी पुरुष के (प्रिया धामानि) मनोनुकूल पद हों,

और यत्र (इन्द्रस्य ऋषभस्य) ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष सभापति के (प्रिया धामानि) मनोनुकूल पद हों, और (यत्र अग्नेः) जहां अग्रणी नायक, विद्वान् आचार्य आदि के अधीन (प्रिया धामानि) उनके मन के अनुकूल पद हों, इसी प्रकार यत्र, (सोमस्य) सोम, सर्व प्रेरक राजा, के (सुत्राम्णः इन्द्रस्य) उत्तम पालक, शत्रुनाशक इन्द्र के, (सवितुः) सर्वप्रेरक, एवं उत्पादक सविता के (वरुणस्य) सर्व कष्टों के वारक, दुष्टों के नाशक, सब के वरणीय पुरुष के, (वनस्पतेः) वट आदि के समान प्रजा के आश्रयरूप पुरुष के, और (यत्र) जहां (आज्यपानाम्) विजय साधन शस्त्रास्त्रों के पालक, (देवानाम्) विजयशील पुरुषों के और (यत्र अग्नेः होतुः) जहां सब विज्ञानों के प्रकाशक, सब को पदाधिकारों के प्रदाता होता नामक अधिकारी के (प्रिया धामानि) उन २ अधिकारियों के मनोनुकूल पद और (प्रिया पाथांसि) प्रिय, अन्नादि द्रव्य, या पालन करने योग्य सेवा स्थान हों (तत्र) उन २ स्थानों पर (एतान्) इन २ नाना पदाधिकार योग्य २ पुरुषों को (प्रस्तुत्य इव) स्वयं बुला २ कर, सब के समक्ष आदर २ पूर्वक दर्शन करा कर उन को प्रस्तुत कर २ के, या प्रस्तव करके और (उपस्तुत्य च) साथ ही उनके सम्बन्ध में उत्तम परिचय करा कर, या उनका समर्थन करके (उप अव अस्रक्षत्) उन २ मुख्य पदाधिकारियों के अधीन स्थापित करे । और उनको भी (रभीयसः इव) खूब नियम में प्रबद्ध, एवं कार्यकुशल (कृत्वी) बना कर स्वयं (वनस्पतिः) आश्रय वृक्ष के समान सर्वाश्रयदाता, वनस्पति नामक पद पर स्थित मुख्य पुरुष (करद्) अपने राष्ट्र में नियुक्त करे । (एवं) इस प्रकार (देवः वनस्पतिः) विजिगीषु राजा, या सबको अधिकार देनेवाला, (वनस्पतिः) सर्वाश्रय, मुख्य पदाधिकारी (हविः जुषताम्) ग्रहण करने योग्य पद और राष्ट्र को स्वीकार करे । हे (होतः यज) होतः ! तू उसको यह पद प्रदान कर ।

किसी व्यक्ति को कोई पदाधिकार या सभासद् पद प्रदान करने के पूर्व उसका परिचय और गुणस्तुति आवश्यक है। इसी को वेद 'प्रस्तुत्य, उपस्तुत्य' कहता है। प्रथम 'प्रस्ताव' हो उसके पश्चात् 'उपस्ताव' या समर्थन हो।

[1]होता यक्षद॒ग्निꣳ स्वि॑ष्ट॒कृत॑म्[2] अया॑ड॒ग्निर॒श्विनो॒श्छाग॑स्य ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॑न्ययाट् सर॑स्वत्या मे॒षस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॑न्यया॒डिन्द्र॑स्य ऽऋ॒ष॒भस्य॑ ह॒विषः॑ प्रि॒या धामा॑न्यया॒ड॒ग्नेः प्रि॒या धामा॑न्ययाट् सोम॑स्य प्रि॒या धामा॑न्ययाडिन्द्र॑स्य सु॒त्राम्णः॑ प्रि॒या धामा॑न्ययाट् सवि॒तुः प्रि॒या धामा॑न्ययाड् वरु॑णस्य प्रि॒या धामा॑न्ययाड् वन॒स्पतेः॑ प्रि॒या पाथा॑ꣳस्ययाड् दे॒वाना॑माज्य॒पानां॑ प्रि॒या धामा॑नि॒ यक्ष॑द॒ग्नेर्होतुः॑ प्रि॒या धामा॑नि॒ यक्ष॑त् स्वं म॑हि॒मान॒माय॑जता॒मेज्या॒ऽइषः॑ कृ॒णोतु॒ सो ऽअ॑ध्व॒रा जा॒तवे॑दा जु॒षता॒ꣳ ह॒विर्होत॒र्यज॑ ॥ ४७ ॥

१. गुरिगाकृतिः । (२) आकृतिः । पञ्चमः ॥

भा०—(होता) पूर्वोक्त अधिकार प्रदाता विद्वान् पुरुष (स्विष्ट कृतम्) स्विष्टकृत, राज्यरूप सुव्यवस्थित राष्ट्र के संचालन की न्यूनाधिकता को पूर्ण करने वाले और सर्वाश्रय क्षत्रपति, (अग्निम्) अग्रणी तेजस्वी, ज्ञानी, विद्वान् पुरुष को भी (यक्षत्) आदर से नियुक्त करे। वह (अग्निः) नेता, क्षात्र बलका नायक पुरुष भी (अश्विनोः) उक्त अश्विनाम पदाधिकारी जनों के (छागस्य हविषः) शत्रु नाशक साधन के (प्रिया धामानि) अनुकूल पदों को (अयाट्) सुव्यवस्थित करे। वह (सरस्वत्याः मेषस्य हविषः) सरस्वती नाम विद्वत्सभा के ज्ञान प्रतिस्पर्द्धी नायक के (प्रिया धामानि) मनो नीत पदों को सुसंगत करे। वह (इन्द्रस्य ऋषभस्य हविषः) इन्द्र पद पर बैठे, सर्व श्रेष्ठ पुरुष के मनोनीत पद को (अयाट्)

सुसंगत करे । इसी प्रकार (अग्नेः, सोमस्य, सुत्राम्णः इन्द्रस्य, सवितुः) अग्नि, सोम, उत्तम रक्षक सेनापति इन्द्र, और सविता नाम मुख्य पदाधिकारियों के (प्रिया धामानि अयाट्) मनोनुकूल प्रिय पदों को या तेज, और वीर्यों को प्राप्त करे करावे । वह (वनस्पतेः प्रिया पाथांसि अयाट्) वनस्पति नामक अधिकारी के प्रिय, अधिकारों को प्राप्त करावे । (आज्यपानां देवानाम्) युद्धोपयोगी सामग्री के रक्षक देव, विजयी पुरुषों के या ज्ञान के रक्षक विद्वानों के (प्रिया धामानि यक्षत्) प्रिय अधिकारों को प्राप्त करावे । (होतुः अग्नेः) सब के अधिकारों को प्रदान करने वाले नेता पुरुष के भी (प्रिया धामानि यक्षत्) प्रिय, मनोनुकूल अधिकारों को प्राप्त करावे । इस प्रकार वह 'स्विष्ट कृत्' अग्रणी नेता 'अग्नि' (स्वम्) अपने (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को ही (आयजताम्) सब को प्रदान करे । और वही (एज्याः) प्रदान करने योग्य (इषः) अभिलषित वेतन और अन्नादि सामग्री (कृणोतु) उत्पन्न करता है । (सः) वह ही (जातवेदाः) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी होकर (अध्वरा) प्रजा का पालन करने वाले राज्यों को (जुषताम्) सेवन करे, प्राप्त करे । हे (होतः हविः यज) होतः ! तू उसको (हविः) उचित अधिकार (यज) प्रदान कर ।

'स्विष्टकृतम्':—क्षत्रं वै स्विष्टकृत् । श० १२ । ८ । ३ । १९ ॥ तपः स्विष्टकृत् । श० ११ । २ । ७ १९ ॥ अयमेवावाङ् प्राणः स्विष्टकृत्- शत० ११ । १ । ६ । ३० ॥ वास्तु स्विष्टकृत् श० १ । ७ । ३ । १८ ॥ प्रतिष्ठा वै स्विष्टकृत् । ऐ० २ । १० ॥

स्विष्टम्—यद्वै यज्ञस्य न्यूनातिरिक्तं तत्स्विष्टम् । श० ११ । २ । ३ । १९ ॥

क्षत्रं वै स्विष्टकृत् । क्षत्रेणैवैनमेतदभिषिञ्चति । सोमो वै वनस्पतिरग्निः स्विष्टकृत् । अग्नीषोमाभ्यामेवैनमेतत् परिगृह्याभिषिञ्चति । तस्माद्ये चैते

विदुर्ये च न, त आहुः क्षत्रियो वाव क्षत्रियस्याभिषेक्ता । इति ॥ श० १२ । ८ । ३ । १९ ॥

देवं बर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे॑ऽअश्विना॑ । तेजो॒ न चक्षु॑र॒क्ष्योर्ब॒र्हिषा॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४८ ॥

(४८—५९) सरस्वत्यादयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः

भा०—(सरस्वती) उत्तम बल वीर्य, और ज्ञानवती स्त्री जिस प्रकार (देवं) अपने कामना योग्य पति को (बर्हिः) आसन, या विष्टर प्रदान करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्-सभा (सुदेवम्) उत्तम राजा को (बर्हिः) बृहत् राष्ट्र या प्रजा के ऊपर शासन पद प्रदान करे । (अश्विनौ) सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार (अक्ष्योः चक्षुः न) दोनों आंखों को दर्शन शक्ति प्रदान करते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) उक्त मुख्य विद्वान् एवं व्यापक शक्तिमान् 'अश्वि' नामक अधिकारी दोनों (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में (तेजः इन्द्रियं दधतुः) तेज और ऐश्वर्य को प्रदान करें । और दो अश्विन्, और सरस्वती तीनों मिलकर (इन्द्रे) राजा और राष्ट्र में (बर्हिषा) इस प्रजामय राष्ट्र के महान् पद या प्रजागण द्वारा ही (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य, धन समृद्धि के रक्षा स्थान कोष के योग्य धनको (वसुवने) धन समृद्धि प्राप्त करने वाले राजा के लिये स्वयं (व्यन्तु) प्राप्त करें । हे (होतः) अधिकार प्रदातः ! तू (यज) उनको वह अधिकार प्रदान कर ।

दे॒वीर्द्वारो॑ऽअ॒श्विना॑ भि॒षजेन्द्रे॒ सर॑स्वती । प्रा॒णं न वी॒र्यं॑ न॒सि द्वारो॑ दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४९ ॥

भुरिक्त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती) सुशिक्षिता स्त्री जिस प्रकार (इन्द्रे) अपने सौभाग्यवान् पति के लिये (देवीः) प्रकाशवाले, उत्तम सजे (द्वारः) द्वारों को खोल देती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा

(इन्द्रे) राजा के लिये (देवीः द्वारः) उत्तम शोभा से युक्त द्वारों और विजयशील शत्रुवारक शक्तियों को खोलती, प्रकट करती है। और (अश्विना) प्राण और अपान जिस प्रकार (नासि प्राणं न दधतुः) नासिका में प्राण का स्थापन करते हैं उसी प्रकार (भिषजा अश्विना) रोग चिकित्सक, विद्यापारंगत अश्वि नामक वैद्य या पूर्वोक्त राष्ट्र शरीर के दोषों, उपद्रवों को शान्त करने वाले दोनों अधिकारी गण (नासि प्राणं न) नाक में प्राण के समान ही मुख्य पुरुष में (वीर्यं दधुः) वीर्य, इन्द्रिय, राजा के ऐश्वर्यों और बलको धारण कराते हैं। और वे तीनों मिलकर (वसुधेयस्य वसुवने) कोश के निमित्त धन को धनाभिलाषी राजा के लिये (व्यन्तु) प्राप्त करावें। और हे होतः! तू उनको (यज) अधिकार प्रदान कर।

देवीऽ उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती। बलं न वाचमास्यऽउषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५० ॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा० —(सरस्वती देवी उपासा) स्त्री जिस प्रकार प्रकाशमान प्रातः और सायं दोनों कालों को (इन्द्रे) उत्तम परिपालक पति के निमित्त अर्पण करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (उपासा देवी) दिव्य गुणवाली दिन रात्रि प्रातः सायं दोनों कालों को (इन्द्रे) इन्द्र, राजा के निमित्त व्यय करे। और (सुत्रामा) उत्तम रक्षक स्वरूप (अश्विना) प्राण और उदान जिस प्रकार शरीर में (आस्ये वाचम्) मुख में वाणी को धारण कराते हैं उसी प्रकार उक्त अश्वी नामक पदाधिकारी (उषाभ्याम्) दोनों कालों, दिन और रात (बलं दधतुः) बल को धारण करावें। और (इन्द्रियं वसुवने०) इत्यादि पूर्ववत्।

देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन्। श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५१ ॥

भा०—(सरस्वती) पूर्वोक्त सरस्वती (देवी जोष्ट्री) गृहदेवी पति के प्रति अति प्रेमवती होकर जिस प्रकार उसको बढ़ाती है उसी प्रकार विद्वत्सभा और (अश्विनौ) प्राण और अपान जिस प्रकार (इन्द्रम्) आत्मा को बढ़ाते हैं और (कर्णयोः) कानों में (श्रोत्रं न) श्रवणेन्द्रिय के समान (यशः) उत्तम ख्याति को उक्त तीनों (जोष्ट्रीभ्रां दधुः) प्रेम और सेवा करनेवाली प्रजा और राजवर्ग दोनों से धारण कराते हैं इस प्रकार वे (इन्द्रियं दधुः) ऐश्वर्य को भी प्रदान करते हैं। वे तीनों (वसुवने) धनवान् राजा के लिये (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त करें। हे होतः ! तू उनको (यज) पदाधिकार दे।

देवीऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः। शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्तऽइन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज॥५२

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सरस्वती) स्त्री जिस प्रकार सायं प्रातः दोनों समय (इन्द्रे) अपने पति के लिये (देवी) उत्तम गुणवाली, मन को लुभाने वाली (ऊर्जाहुती) अन्न की थाली प्रदान करती है। उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (इन्द्रे) राजा के निमित्त (देवी) उत्तम गुणों वाली होकर (दुघे) बलकारक (ऊर्जाहुती) अन्न और वीर्य के आहुतियों को प्रदान करती है। और (सुदुघा) उत्तम रीति से समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाले (अश्विना) दोनों अश्वी नामक अधिकारी (भिषजा) दो वैद्यों के समान (अवतः) इन्द्र, अर्थात् राजा और राज्य की रक्षा करते हैं। और स्त्री जिस प्रकार (स्तनयोः शुक्रं न) स्तनों में दूध धारण करती है और प्राण और अपान जिस प्रकार शरीर में (ज्योतिः) कान्ति को या दिन रात्रि जिस प्रकार द्यौ और पृथिवी के बीच में कान्तिमान् (ज्योतिः) सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार वे तीनों

(ज्योतिः) तेज और पराक्रम को और (आहुती) अन्नाहुति और वीर्याहुति दोनों प्रकार की आहुतियों द्वारा (इन्द्रे इन्द्रियं धत्त) राजा और राष्ट्र में ऐश्वर्य और राजोचित बल (धत्त) धारण करावें। वे (वसुवने) राष्ट्र-सम्पत्ति के भोक्ता राष्ट्रपति के लिये (वसुधेयस्य) धन कोश को (व्यन्तु) प्राप्त करें। हे होतः! उनको (यज) तू अधिकार प्रदान कर।

दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑। व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳ होतृ॑भ्यां दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ५३ ॥

अतिजगती। निषादः ॥

भा०—(सरस्वती देवानां होतारौ देवौ) स्त्री जिस प्रकार विद्याप्रेमियों को विद्या प्रदान करनेवाले गुरु और उपदेशक दोनों को अपने पति के बढ़ाने के लिये (वषट्कारैः) सत्कारपूर्वक अन्नादि प्रदान करके सत्कार करती है उसी प्रकार (सरस्वती) विद्वत्सभा (वषट्कारैः) राष्ट्र के निमित्त सन्धि आदि छहों कार्यों द्वारा (दैव्यौ होतारौ) उत्तम विद्वान् कर्म-शिक्षा और ज्ञान देनेवाले दो विद्वानों को नियत करे और (इन्द्रम् अवर्धयत्) इन्द्र राजा की वृद्धि करे। और जिस प्रकार (भिषजा अश्विना) वैद्यों के समान प्राण और उदान शरीर में (होतृभ्यां) आदान और प्रतिदान करनेवाले बलों से (हृदये मतिम्) मस्तक में मनन शक्ति की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (अश्विनौ) वे दोनों अश्विनामक अधिकारी और सरस्वती नाम विद्वत्सभा राष्ट्र में (त्विषिं) उग्र तेज (होतृभ्याम्) उक्त प्रकार के दोनों विद्वानों द्वारा और (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य को (दधुः) स्थापन करें। और (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत्।

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर॒श्विनेडा॒ सर॑स्वती। शूषं॒ न मध्ये॒ नाभ्या॒-

मिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५४ ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सरस्वती इन्द्राय यथा तिस्रः देवीः) स्त्री जिस प्रकार अपने पति के लिये अन्न, कान्ति और उत्तम वाणी तीनों अभिलषणीय शक्तियों का प्रयोग करती है, उसी प्रकार (इन्द्राय सरस्वती तिस्रः देवीः) राजा के लिये विद्वत्सभा भी तीनों प्रकार की सभाओं की स्थापना करे। और (अश्विनौ) अश्वि नामक अधिकारी, और (इडा) इडा नाम भूमि की प्रबन्ध-कारिणी सभा तीनों (नाभ्यां मध्ये शूषं न) नाभी के बीच में बल के समान (इन्द्रियं दधुः) वीर्य को धारण करें। और (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत्।

देवऽ इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः। रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५५ ॥

स्वराट् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(देवः) विजिगीषु विद्वान् (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (नराशंसः) समस्त जनों से स्तुति योग्य, राजा (त्रिवरूथः) अपने तीनों तरफ़ तीन शत्रुवाहक सेनाओं सहित होकर (सरस्वत्या अश्विभ्याम्) सरस्वती, और दोनों अश्वीनामक अधिकारी इन तीनों से (त्रिवरूथः रथ इव) तीन छज्जों से सुरक्षित रथ के समान (ईयते) प्रतीत होता है। (त्वष्टा) शिल्पी, बढ़ई जिस प्रकार (इन्द्राय रूपम् इन्द्रियाणि दधत्) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये रुचिकर सुन्दर, पदार्थ, और नाना ऐश्वर्य के योग्य बहु-मूल्य पदार्थ बनाता है और जिस प्रकार (त्वष्टा) जगत् का कर्त्ता परमेश्वर (इन्द्राय) जीव के भोग के लिये (अमृतम्) अमृत स्वरूप, (जनित्रम्) सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ (रेतः न) वीर्य को और (इन्द्रियाणि)

चक्षु, नाक, कान आदि इन्द्रियों को (दधत्) शरीर में रचता है (न) उसी प्रकार (त्वष्टा) नाना शिल्पों का विज्ञ, विश्वकर्मा, अधिकारी (इन्द्राय) राजा के भोग के लिये (रूपम्) सुन्दर २ भवन, आभूषण युक्त प्रोपाक और (इन्द्रियाणि) नाना राज्योचित ऐश्वर्य, यन्त्र कौशल आदि प्रदान करता है। (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत्।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णोऽश्विभ्याᳬं सरस्वत्या सुपिप्पल ऽइन्द्राय पच्यते मधु। ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५६ ॥

निचृदत्यष्टिः। गान्धारः ॥

भा०—(वनस्पतिः) महावृक्ष वट, गूलर आदि जिस प्रकार बहुतों को आश्रय देता है उसी प्रकार समस्त प्रजाजनों को आश्रय देनेवाला पुरुष, अथवा वृक्ष समूहों के समान सघन सैनिक दलों का पति (देवः) विजयशील सेनापति स्वयं (देवैः) विजयेच्छु सैनिकों से (हिरण्यवर्णः) सुवर्ण के पत्रों या सुन्दर पत्रों से सजे वृक्ष के समान और (सुपिप्पलः) उत्तम पालन सामर्थ्यों से उत्तम बलवान् (अश्विभ्यां सरस्वत्या च) अश्वि-गण और सरस्वती, विद्वत्-सभा द्वारा (इन्द्राय) सम्राट् के लिये (मधु पच्यते) मधुर रस के समान उत्तम बल को परिपक्व करता है। वह (ऋषभः वनस्पतिः) सर्वश्रेष्ठ बलवान् वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट 'वनस्पति,' सेनापति (ओजः न, भामं न) देह में स्थित ओज और क्रोध के समान राष्ट्र में भी (ओजः भामं) पराक्रम और तेजस्विता को और (इन्द्रियाणि) शरीर के इन्द्रियों के समान राष्ट्र में नाना ऐश्वर्यों को (दधत्) धारण करावे। (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत्।

अग्निर्वै वनस्पतिः। कौ० १० । ६ प्राणो वै वनस्पतिः। कौ० १२ । ७ ॥

देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः सरस्वत्या

स्योनमिन्द्र ते सदः । ईशायै मन्युᳬराजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५७ ॥

भा०—माता पिता द्वारा (उर्णम्रदाः स्तीर्णवर्हिः) ऊन के समान कोमल बिछाया आसन जिस प्रकार (सदः) वर के बैठने का आसन होता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (वारितीनाम्) संकटों और शत्रु के आक्रमणों को निवारण करने वाली सेनाओं के (अध्वरे) राज्य पालन के कार्य में (सरस्वत्याः अश्विभ्याम्) सरस्वती और अश्वि नामक प्रधान पदाधिकारियों द्वारा (स्तीर्णम्) विस्तृत (अध्वरे) यज्ञ में या गृह में (सरस्वत्या अश्विभ्याम्) विदुषी कन्या और उसके द्वारा किया गया (देवं) ज्ञान और उत्तम गुणों से युक्त, भव्य (बर्हिः) प्रजारूप राष्ट्र या जनपद (ते) तेरे लिये (ऊर्णम्रदाः) ऊन के समान कोमल एवं आच्छादक या राजा के गुणों के आच्छादन करनेवाले लोगों को मर्दन करे देनेवाले (स्योनं सदः) सुखकारी आसन के समान आश्रय हो। सरस्वती और दोनों अश्विगण (मन्युम्) शत्रुओं का स्तम्भन करनेवाले (राजानम्) राजा को (ईशायै) राष्ट्र के शासन करने के लिये (इन्द्रियं) ऐश्वर्य को (दधुः) धारण कराते हैं । (वसुवने० इत्यादि) पूर्ववत् ।

क्षत्रं वै प्रस्तरो विश इतरे वर्हिः । श० १ । ३ । ४ । १० ॥ अयं वै लोको वर्हिः । श० १ । ४ । १ । २४ ॥ प्रजा वै वर्हिः । कौ० ५ । ७ ॥

गृहस्थपक्ष में—पशवो वै बर्हिः । ऐ० २ । ४ ॥

[1]देवो॒ऽअ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वान्य॑क्षद्यथाय॒थᳬ होता॑राविन्द्र॑म॒श्विना॑ वा॒चा वाच॒ᳬ सर॑स्वतीम॒ग्निᳬ सोम॑ᳬ स्विष्ट॒कृत् स्वि॑ष्ट॒ऽ इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सवि॒ता वरु॑णो भि॒षगि॒ष्टो दे॒वो वन॒स्पतिः॑ स्विष्टा दे॒वा आ॑ज्य॒पाः [2]स्वि॑ष्टो॒ऽअ॒ग्निर॒ग्निना॒ होता॑ हो॒त्रे स्वि॑ष्ट॒कृद्यशो॒ न द॒धदि॑न्द्रि॒यमू॒र्जमप॑चिति॒ᳬ स्व॒धां व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५८॥

भा०—(स्विष्टकृत्) उत्तम रीति से अधिकार प्रदान करनेवाला (देवः अग्निः) विद्वान् अग्रणी पुरुष (देवान् यक्षत्) अन्य विद्वान्, विजयशील, एवं इच्छानुकूल पुरुषों को (यक्षत्) नियुक्त करे। (होतारौ) अधिकार प्रदान करनेवाले (अश्विना) अश्वि नामक व्यापक अधिकार वाले विद्वान् पुरुष (वाचा) अपनी आज्ञा रूप वाणी से (इन्द्रम्) इन्द्र ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष को नियुक्त करते हैं। वे ही (वाचम्) व्यवस्था-पुस्तक, वाणी का विधान करते हैं। वे ही (सरस्वतीम्) विद्वत्–सभा को, (अग्निम्) अग्रणी, सेनापति को, और (सोमम्) ऐश्वर्यवान् राजा को, नियुक्त करते हैं। (स्विष्टकृत् स्विष्टः) उत्तम शासक पुरुष भी उत्तम आदर के पद को प्राप्त हो। (सुत्रामा इन्द्रः) उत्तम रक्षक इन्द्र नामक पदाधिकारी, (सविता, वरुणः भिषग्) सविता, वरुण और चिकित्सक, (देवः वनस्पतिः) वनस्पति नामक विजेता, ये सब (इष्टः) उचित आदर प्राप्त करें। (आज्यपाः देवाः) बल वीर्य के रक्षक विद्वान् पुरुष (स्विष्टाः) उत्तम आदर प्राप्त करें। (अग्निना) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष द्वारा ही (अग्निः) उसी प्रकार का तेजस्वी पुरुष (स्विष्टः) उत्तम रीति से आदर पद प्राप्त करे। और (होता) अधिकार दाता पुरुष (होत्रे) अन्य अधिकार दाता पुरुष को (स्विष्टकृत्) उत्तम आदर मान देनेवाला हो। और वह (यशः) यश, (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य (ऊर्जम्) उत्तम अन्न, बल, पराक्रम, (अपचितिम्) आदर पूजा, (स्वधाम्) अन्न वेतनादि (दधत्) प्रदान करे। ये सभी (वसुवने) ऐश्वर्य के अधिकारी बड़े राजा के कार्य के लिये (वसुधेयस्य व्यन्तु) उचित धनैश्वर्य प्राप्त करें। हे होतः ! (यज) उन सबको अधिकार और वेतनादि प्रदान कर।

अ॒ग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मान॒: पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पुरो॒डाशा॑न् ब॒ध्नन्न॒श्विभ्यां॒ छाग॒ꣳ सर॑स्वत्यै मे॒षमिन्द्रा॑य ऋ॒ष॒भꣳ सु॒न्व-

अश्विभ्याᳪसरस्वत्या ऽइन्द्राय सुत्राम्णे सुरासोमान् ॥ ५९ ॥

धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(अद्य) आज, अब, नित्य (अयं यजमानः) यह यजमान, सब राज्यव्यवस्था को सुसंगत करने और सबको पदाधिकार देनेवाला राजा (अग्निम्) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को (होतारम्) 'होता' पद के लिये (अवृणीत) वरण करता है । और वह यजमान, (पक्तीः) नाना कर्मों के बदले में देने योग्य प्रति फलों को और (पुरोडाशान्) काम करने के पूर्व ही पेशगी देने योग्य पदार्थों को (पचन् २) पकाता या नियत करता हुआ उनको पक्का करता हुआ और (अश्विभ्यां) पूर्वोक्त अश्वि नामक व्यापक या बड़े पद के अधिकारियों के कार्य के लिये (छागम्) छेदन भेदन में कुशल पुरुष को और (सरस्वत्यै) सरस्वती, विद्वत्सभा के लिये (मेषम्) प्रतिपक्षी की स्पर्द्धा में बोलने वाले पुरुष को और (इन्द्राय) इन्द्र, सेनापति पद के लिये, या राष्ट्र के संचालक पद के लिये (ऋषभम्) सर्वश्रेष्ठ पुरुष को (बध्नन्) बड़े वेतन पर बांधता हुआ और (अश्विभ्यां) अश्वियों, (सरस्वत्यै) सरस्वती, विद्वत्सभा और (सुत्राम्णे इन्द्राय) उत्तम त्राणकारी, सुरक्षक इन्द्र पद के लिये (सुरासोमान्) राज्य-लक्ष्मी और राष्ट्र के अंशों को, या (सुरासोमान्) स्त्री पुरुषों को, या अभिषेक क्रिया से अभिषिक्त पुरुषों को (सुन्वन्) नाना पदों पर अभिषिक्त करता हुआ 'होता' का वरण करता है ।

सूपस्था ऽअद्य देवो वनस्पतिरभवदश्विभ्यां छागेन सरस्वत्यै मेषेणेन्द्राय ऽऋषभेणाक्षँस्तान् मेदस्तः प्रति पचतागृभीषतावीवृधन्त पुरोडाशैरपुरश्विना सरस्वतीन्द्रः सुत्रामा सुरासोमान् ॥ ६० ॥

धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(अद्य) आज, अब, अभिषेक हो चुकने और पदाधिकारियों

के नियुक्त हो जाने पर, (वनस्पतिः) वट आदि महावृक्ष के समान समस्त प्राणियों को अपनी सुख देने वाली छत्रछाया में रखने हारा (देवः) राजा (अश्विभ्यां) मुख्य अधिकारियों के निमित्त स्थापित (छागेन) संशय छेदन करने वाले विद्वान् द्वारा और (सरस्वत्यै) सरस्वती, वेदवाणी या विद्वत्सभा के कार्य के लिये नियुक्त (मेपेण) प्रतिपक्षियों के स्पर्द्धाशील, विद्वान् से और (इन्द्राय ऋषभेण) इन्द्र के निमित्त नियुक्त सर्वश्रेष्ठ पुरुष से (सूपस्थाः) उत्तम रीति से राष्ट्र में व्यवस्थित (अभवत्) हो जाता है। (मेदस्तः) उनके स्नेह से या उनके प्रिय पदार्थ या उनको शत्रुनाशक बल से ही वे अश्वि आदि पदाधिकारी उक्त पुरुषों को (अघन्) प्राप्त करते हैं। और (पचता) परिपक्व, सुअभ्यस्त, दृढ़ करने योग्य पुरुषों को दृढ़ करने के लिये (प्रति अग्रभीषत) प्राप्त करते हैं, उनको भर्ती करते हैं। और बहुतों को (पुरोडाशैः) पद पर नियुक्त होने के पूर्व ही वृत्तियां देकर उन पूर्व प्रदत्त वृत्तियों से (अवीवृधन्त) उन पुरुषों के उत्साहों को बढ़ाते हैं, और इस प्रकार (अश्विनौ) दोनों उच्च पदाधिकारी अश्विजन और (सरस्वती) विद्वत्सभा और (सुत्रामा इन्द्रः) उत्तम प्रजारक्षक राजा, (सुरासोमान्) अभिषेक क्रिया द्वारा अभिषिक्त योग्य पुरुषों को अथवा राज्यलक्ष्मी से ऐश्वर्यवान् पुरुषों को (अपुः) पालन करते हैं।

त्वाम॒द्यऽ ऋ॑षऽ आर्षेयऽ ऋषीणां नपादवृणीतायं यज॑मानो ब॒हुभ्य॒ऽ आ सङ्ग॑तेभ्यऽ ए॒ष मे॑ दे॒वेषु॒ वसु॒ वार्या य॑क्ष्यत॒ऽइति॒ ता या दे॒वा दे॑व॒ दाना॒न्यदु॒स्तान्य॑स्मा॒ऽ आ च॒ शास्स्वा च॑ गुरस्वेषि॒तश्च॑ होत॒-र॑सि भद्र॒वाच्या॑य॒ प्रेषि॑तो॒ मानु॑षः सूक्तवा॒काय॑ सू॒क्ता ब्रू॑हि ॥६१॥

भुरिग् विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—हे (ऋषे) विद्वन्! मन्त्रार्थों के देखने वाले! (आर्षेय) ऋषि मन्त्रार्थ द्रष्टाओं में उत्तम विद्वन्, ! हे (ऋषीणां नपात्) मन्त्रार्थ-

द्रष्टा ऋषियों के पुत्र ! अथवा उनके सिद्धान्तों को न गिरने देनेहारे ! (अयं यजमानः) यह यजमान, वेतन पुरस्कार आदि देने वाला राजा, गृहपति, यजमान के समान (बहुभ्यः) बहुतसे (संगतेभ्यः) एकत्र हुए विद्वानों में से (अद्य) आज (त्वाम् आ अवृणीत) तुझे ही वरण करता है । क्योंकि वह जानता है (एषः) यह आप (मे) मुझ यजमान को (देवेषु) विद्वानों और राजाओं के बीच (वसु) धनैश्वर्य, (वार्यि) और वरण करने योग्य सकल पदार्थ (आयक्ष्यते) प्राप्त करा देंगे (इति) इसलिये वह आपको वरता है । हे (देव) विद्वन् ! (देवाः) विद्वान् पुरुष या दानशील राजागण, धनाढ्य पुरुष (या) जो २ (ता) वे नाना प्रकार के (दानानि) दान करने योग्य पदार्थों को (अदुः) प्रदान किया करते हैं (तानि) वे सब प्रकार के पदार्थ (अस्मै) इसके लिये भी (आशास्स्व च) प्राप्त करने की आशा कर । (इषितः च) इस प्रकार प्रार्थना किया गया तू (आगुरस्व च) उद्यम कर । हे (होतः) होतः ! विद्वन् ! उपदेष्टः ! ज्ञान प्रदान करने हारे ! तू (भद्रवाच्याय) सुख और कल्याण करने वाले हितकारी कार्यों के उपदेश के लिये (प्रेषितः असि) प्रार्थना किया जाता है । हे विद्वन् ! तू (मानुषः) विचारवान् पुरुष होकर (सूक्तवाकाय) उत्तम सुवचनों के उपदेश के करने के लिये (सूक्ता ब्रूहि) उत्तम २ वचनों और वेद के सूक्तों का उपदेश कर ।

पारिप्लव विधिमें होता समस्त राज्य के प्रजाजनों को नाना वेदों का उपदेश करता है ।

॥ इत्येकविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्य एकविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वाविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ तेजो॑ऽसि शु॒क्रम॒मृत॑मायु॒ष्पाऽआयु॑र्मे पाहि । दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो हस्ता॑भ्या॒माद॑दे ॥

[अ० २२—२५] प्रजापतिर्ऋषिः । सविता देवता । निचृत् पंक्तिः । पंचमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (तेजः) तेज है । तू (शुक्रम्) शरीर में शुक्र धातु के समान राष्ट्र में बलकारी है । (अमृतम्) शरीर में वीर्य, पृथ्वी में जल और अग्नि के समान राष्ट्र में भी अमृत, जीवन का रक्षक है । तू (आयुष्पाः) सब के आयुओं का पालक (असि) है । तू (मे आयुः पाहि) मेरे में दीर्घजीवन का पालन कर । परमेश्वर के पक्ष में स्पष्ट है ।

हे राष्ट्र वासिजन ! (त्वा) तुझको (सवितुः) सर्वोत्पादक परमेश्वर के (प्रसवे) बनाये जगत् में (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्र के समान प्रचण्ड और सौम्य स्वभाव के अधिकारियों की (बाहुभ्याम्) शत्रुओं के बाधक शक्तियों या बाहू के समान बलवान् क्षात्रबल से और (पूष्णः) पृथ्वी के समान पोषक वैश्य वर्ग के या राजा के (हस्ताभ्याम्) हाथों के समान ग्रहण करनेवाले या दुष्टों के हनन करनेवाले साधनों के द्वारा (त्वा आददे) तुझ राष्ट्र को मैं अपने वश करता हूं । (देवस्य त्वा सवितुः०) इत्यादि व्याख्या देखो अ० १ । मं० १० ॥

इ॒माम॑गृभ्णन् रश॒नामृ॒तस्य॒ पूर्व॒ऽआयु॑षि वि॒दथे॑षु क॒व्या ।
सा नो॑ऽअ॒स्मिन्त्सु॒त आ ब॑भूवऽऋ॒तस्य॒ साम॑न्त्स॒रमा॒रप॑न्ती ॥२॥

यज्ञपुरुष ऋषिः । रशना देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

अथातश्चतुर्भिरध्यायैरश्वमेधः ॥

भा०—(अस्मिन् सुते) इस उत्पन्न जगत् में भी (नः) हमें (सा) वह व्यापक शक्ति (आबभूव) प्राप्त होती है जो (ऋतस्य) मूल, परम

सत्य कारणरूप परमेश्वर और प्रकृति के सत्य तत्व के (सरम्) व्यापार या चेष्टा को (सामन्) आदि से अन्त तक (आ रपन्ती) स्पष्ट बतलाती है। (इमाम्) उस (रशनाम्) व्यापक शक्ति की ज्ञान शृंखला को ही (ऋतस्य पूर्वे आयुषि) संसार के प्रारम्भ के काल में (कवयः) क्रान्त-दर्शी ऋषि लोग (विदथेषु) यज्ञों और ज्ञान के अवसरों में या ज्ञानरूप वेदों में (अगृभ्णन्) ग्रहण करते हैं, जानते हैं।

राष्ट्र के पक्ष में—(ऋतस्य पूर्वे आयुषि) व्यक्त जगत् के प्रारम्भ के आदि काल में (वृषभः) क्रान्तदर्शी ऋषि लोग (इमाम् रशनाम्) रस्सी के समान व्यापक या विस्तृत संसार की नियामक शक्ति को या व्यवस्था को (विदथेषु) ज्ञानमय वेदों में (अगृभ्णन्) प्राप्त करते हैं। (सा) वह व्यापक व्यवस्था (अस्मिन् सुते) राजा के अभिषेक के अवसर पर भी (नः आबभूव) हमें प्राप्त हो। वह (ऋतस्य) सत्य व्यवहार से पूर्ण राष्ट्र के (सामन्) आदि से अन्त तक हमें (सरम्) ज्ञान का (आरपन्ती) स्पष्ट उपदेश करनेवाली रहे। शत० १३।१।२।१॥

अभिधाऽ असि भुवनमसि यन्तासि धर्त्ता।
स त्वमग्निं वैश्वानरꣳ सप्रथसङ्गच्छ स्वाहाकृतः॥ २॥

अग्निर्देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे परमेश्वर! तू (अभिधाः असि) समस्त पदार्थों को साक्षात् बतलाने वाला है। तू (भुवनम् असि) जलके समान समस्त चराचर प्राणियों और लोकों का प्राण देने वाला आश्रय, उत्पादक है। तू (यन्ता असि) समस्त संसार का नियन्ता, उसको नियम में रखने वाला है। तू (धर्त्ता) सबका धारण करने वाला है। (सः) वह तू (सप्रथसम्) अति विस्तृत शक्ति से युक्त (वैश्वानरम्) समस्त ब्रह्माण्ड को चलाने वाली प्रवर्त्तक शक्तियों के सञ्चालक (अग्निम्) ज्ञानरूप, तेजोमय, स्वतः

प्रकाश, सर्वप्रकाशक सूर्य आदि को भी (स्वाहाकृतः) उत्तम गुण-कीर्त्तनों और सत्य वाणियों द्वारा स्तुति किया जाकर (गच्छ) व्याप्त है।

विद्वान् नेता एवं राजाके पक्षमें—हे राजन् ! तू (अभिधाः असि) ज्ञानों का उपदेश करने वाला या राष्ट्र को सब प्रकार से बांधने या प्रबन्ध करने में समर्थ है। तू (भुवनम् असि) सबका आश्रय, (यन्ता) नियामक और (धर्त्ता) कर्त्ता, धर्त्ता, धारण करने हारा है। (सः त्वम्) वह तू (स्वाहाकृतः) उत्तम स्तुति से युक्त होकर या उत्तम यश कीर्त्ति से सम्पन्न होकर, या सत्यवाणी से विश्वासयोग्य होकर, (सप्रथसम्) अतिविस्तृत यश से युक्त, (वैश्वानरम्) समस्त जनों के हितकारी (अग्निम्) अग्रणी नेता पद को (गच्छ) प्राप्त हो। शत० १३।१।२।३॥

स्व॒गा त्वा॑ दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ ब्रह्म॒न्नश्वं॑ भ॒न्त्स्यामि॑ दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ तेन॑ राध्यासम्। तं ब॑धान दे॒वेभ्यः॑ प्र॒जाप॑तये॒ तेन॑ राध्नुहि ॥४॥

अश्वो विश्वेदेवाश्च देवताः। जगती। निषादः॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! मैं अभिषेककर्त्ता (त्वा) तुझको (स्वगा) स्वतन्त्र, यथेच्छा पूर्वक जाने का अधिकार देता हूं। (देवेभ्यः) समस्त विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के लिये और (प्रजापतये) प्रजा के पालक राजा के पद के लिये, हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मन् ! ज्ञानवृद्ध पुरुष ! (देवेभ्यः) विद्वानों, विजिगीषु पुरुषों के हित के लिये और (प्रजापतये) प्रजा के पालन करने वाले राजा के कर्त्तव्य पालन के लिये (अश्वं) मैं अति शीघ्रगामी अश्व के समान व्यापक शक्तिवाले, शूरवीर एवं राष्ट्र के भोक्ता पुरुष को (भन्त्स्यामि) बांधूंगा, राजपद पर नियुक्त करूंगा। (तेन) उससे मैं (राध्यासम्) समृद्ध होऊं, बढ़ूं, उद्देश्य को प्राप्त करूं। हे विद्वन् ! तू (देवेभ्यः प्रजापतये) विद्वानों, विजयेच्छु पुरुषों के लिये और प्रजापति पद के लिये (तं बधान)

उसको बांध, नियुक्त कर। उसको भोग्य सामग्री देकर उसे वेतनादि पर रक्ख। तू (तेन राध्नुहि) उससे समृद्ध हो, कार्य को पूर्ण कर।

अश्वमेध में इस मन्त्र से अश्व को बांधकर खुला विचरने देते हैं। वह अश्व राष्ट्रपति का प्रतिनिधि है। शत० १३। १। २। ३, ४॥

वीर्यं वा अश्वः। श० २। १। ४। २३॥ क्षत्रं वा अनु अश्वः। श० ६। ४। ४। १२॥ क्षत्रं वा अश्वो विडितरे पशवः। श० १३। २। २। १५॥ वज्रो वा अश्वः। श० १३। १। २। ९॥ इन्द्रो वा अश्वः। कौ० १५। ४॥ वज्री वा अश्वः प्राजापत्यः। तै० ३। ८। ४। २॥

अध्यात्ममें—अश्व=आत्मा, ब्रह्म=परमात्मा। ब्रह्मचर्य पक्षमें—ब्रह्म= आचार्य। अश्व=वीर्य।

प्रजापतये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीन्द्राग्निभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वायवे त्वा जुष्टं प्रोक्षामि विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि सर्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यो जुष्टं प्रोक्षामि। योऽअर्वन्तं जिघांसति तमभ्यमीति वरुणः। परो मर्त्तः परः श्वा॥ ५॥

इन्द्रादयो देवताः। अतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—हे विद्वन्! श्रेष्ठ पुरुष! (जुष्टं) सबके प्रेमपात्र (त्वा) तुझको मैं (प्रजापतये) प्रजा के पालक पद के लिये, (इन्द्राग्नीभ्यां त्वा) इन्द्र और अग्नि, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी सेनापति और अग्रणीपद के लिये, (वायवे) वायु के समान शत्रुरूप वृक्षों के डाले तोड़ डालने वाले शूरवीर के पद पर और (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) समस्त प्रजा के विद्वान् पुरुषों के हित के लिये, (जुष्टं) सब लोगों से प्रसन्न, एवं चाहे गये (त्वा) तुझको (प्रोक्षामि ५) अभिषिक्त करता हूं। (यः) जो पुरुष भी (अर्वन्तम्) अश्व के समान तीव्र वेगवान् वीर, एवं विद्वान् पुरुष, और सब पदों के प्राप्त करने वाले राजा को

(जिघांसति) मारना चाहता है (वरुणः) दुष्टों का वारक पदाधिकारी (तम्) उसको (अभि-अमोति) विनष्ट करे । ऐसा (मर्त्तः) राजद्रोही, पुरुष (परः) शत्रु है, उसको देश से निकाल कर दूर कर दिया जाय और (परः श्वा) पर अर्थात् शत्रु पुरुष कुत्ते के समान दुत्कार दिया जाय। अथवा (श्वा) कुत्ते के स्वभाव के व्यर्थ निन्दा करनेवाला पुरुष भी (परः) पर, अर्थात् शत्रु है उसे भी राष्ट्र से बाहर कर दिया जाय । शत० १३ । १ । २ । ५-६ ॥

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहा॒पां मोदा॑य॒ स्वाहा॑ सवि॒त्रे स्वाहा॑ वा॒यवे॒ स्वाहा॒ विष्ण॑वे॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये॒ स्वाहा॑ मि॒त्राय॒ स्वाहा॒ वरु॑णाय॒ स्वाहा॑ ॥ ६ ॥

भुरिगति जगती । निषादः ॥ अग्न्यादयो देवताः ॥

भा०—राजा के समस्त स्वरूपों के लिये आदर सत्कार करने का उपदेश करते हैं । (अग्नये स्वाहा) अग्नि के समान ज्ञानदाता आचार्य और उसके समान तेजस्वी राजा आदि पुरुष का उत्तम स्तुति और सत्कार करो । 'अग्नि' तत्व का सदुपयोग लो । (सोमाय स्वाहा) सब के आज्ञापक, ऐश्वर्यवान्, ज्ञानी और सोमरस के समान आनन्द और पुष्टिकारक पुरुष का आदर करो और ओषधियों के रस रूप सोम का सेवन करो । (अपां मोदाय) जलों के समान स्वच्छ, शान्तिदायक एवं प्रवाह से चलने वाले आप्त जनों के आनन्द देनेवाले और प्रजाओं के हर्षकारी राजा के कर्मों और ज्ञानों को प्रसन्नता से प्राप्त कराने वाले गुरु का आदर सत्कार करो और जलों से प्राप्त आनन्द का उत्तम रीति से सेवन करो । (सवित्रे स्वाहा) सविता, सूर्य, सर्वोत्पादक परमेश्वर, आज्ञापक राजा, नेता, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् का आदर करो और सूर्य के प्रकाश और ताप का उचित प्रयोग और ज्ञान करो । (वायवे स्वाहा) वायु के

दशाश्वस्तोमीयाः ।

समान तीव्र, गतिमान् सैनिक, उसके समान शत्रु रूप वृक्षों को उखाड़-ने में समर्थ सेनापति, राजा, और वायु के समान जीवनाधार पुरुष का आदर करो और वायु और प्राण का उत्तम उपयोग और ज्ञान करो। (विष्णवे स्वाहा) सर्वव्यापक परमेश्वर की उपासना, स्तुति प्रार्थना करो और व्यापक शक्तिशाली राजा शास्त्र में पारंगत विद्वान् का आदर सत्कार करो। विष्णु अर्थात् यज्ञ का अनुष्ठान करो, और विद्युत् का प्रयोग करो। (बृहस्पतये स्वाहा) सब बड़ों से भी बड़े, ब्रह्माण्डों के पालक परमेश्वर की उपासना करो। बृहती वेदवाणी के पालक विद्वान् ब्राह्मण का, राजा के विद्वान् मन्त्री का और बड़े राष्ट्र के पालक सम्राट् का आदर करो। (मित्राय स्वाहा) सबके स्नेही, मृत्यु से बचानेवाले परमेश्वर की उपासना करो। एवं मित्र, स्नेही पुरुष, सूर्य के समान तेजस्वी राजा, स्नेही न्यायाधीश और मित्र राजा का भी आदर करो। (वरुणाय स्वाहा) दुष्टों के वारक, रक्षक, सब से श्रेष्ठ, वरण करने योग्य पुरुष का आदर और ऐसे परमेश्वर की स्तुति करो। शत० १३। १। २। ३॥

हिङ्काराय स्वाहा हिंकृताय स्वाहा क्रन्दते स्वाहाऽवक्रन्दाय स्वाहा प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा निविष्टाय स्वाहोपविष्टाय स्वाहा सन्दिताय स्वाहा वल्गते स्वाहासीनाय स्वाहा शयानाय स्वाहा स्वपते स्वाहा जाग्रते स्वाहा कूजते स्वाहा प्रबुद्धाय स्वाहा विजृम्भमाणाय स्वाहा विचृताय स्वाहा सᳫंहानाय स्वाहोपस्थिताय स्वाहाऽयनाय स्वाहा प्रायणाय स्वाहा ॥ ७ ॥

यते स्वाहा धावते स्वाहोद्द्रावाय स्वाहोद्द्रुताय स्वाहा शूकाराय स्वाहा शूकृताय स्वाहा निषण्णाय स्वाहोत्थिताय स्वाहा जवाय

७—प्रक्रमहोमय एकोनपञ्चाशत्।

स्वाहा वलाय स्वाहा विवर्तमानाय स्वाहा विवृत्ताय स्वाहा विधून्वानाय स्वाहा विधूताय स्वाहा शुश्रूषमाणाय स्वाहा शृण्वते स्वाहेक्षमाणाय स्वाहेक्षिताय स्वाहा वीक्षिताय स्वाहा निमेषाय स्वाहा यदत्ति तस्मै स्वाहा यत् पिबति तस्मै स्वाहा यन्मूत्रं करोति तस्मै स्वाहा कुर्वते स्वाहा कृताय स्वाहा ॥ ८ ॥

अत्यष्टिः । गान्धारः । ८ अतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(हिंकाराय स्वाहा) 'हिं' ऐसा शब्द करने वाले साम गायक विद्वान् का, राजा का, (हिंकृताय) 'हिं' कर चुकनेवाले विद्वान् का (स्वाहा) आदर सत्कार करो । और अश्व प्राणी का उपयोग करो । वज्रो हिङ्कारः । कौ० ३ । २ ॥ हिङ्कारेण वज्रेण अस्माल्लोकादसुराननुदत । जै० उ० २ । ८ । ३ ॥ अर्थात् वज्र को धारण करनेवाले राजा का और शासन करने वाले शासक का आदर करो । शुक्लमेव हिंकारः । जै० उ० १ । ३४ । १ ॥ उत्तम धर्म कार्य करनेवाले और धर्मात्मा का आदर करो । प्राणो वै हिंकारः । श० ४ । २ । २ । ११ ॥ प्राण साधक और प्राण विद्यावित् का आदर करो । प्रजापतिर्वै हिंकारः । ता० ६ । ८ । ५ ॥ प्रजा के पालक पुरुष का आदर करो । जिसने प्रजा का पहले पालन किया हो ऐसे वृद्ध, भूतपूर्व पालक की भी प्रतिष्ठा करो । (क्रन्दते स्वाहा अवक्रन्दाय स्वाहा) शत्रु को ललकारने वाले, विद्वानों को बुलाने वाले और ललकारने वाले का दबानेवाले राजा का, या विजय से बुलानेवाले सत्पुरुष का आदर करो । (प्रोथते स्वाहा प्रप्रोथाय स्वाहा) स्वयं सब पदार्थों को स्वतः प्राप्त करनेवाले उत्कृष्ट कोटि के धनैश्वर्यादि प्राप्त करनेवाले का आदर सत्कार करो । (गन्धाय स्वाहा घ्राताय स्वाहा) गन्ध लेनेवाले और गन्धादि के भोग के अनुभवी, सुगन्ध प्रेमी स्वामी का और पुरुष का भी आदर करो । (निविष्टाय स्वाहा) छावनी बनाकर, या बस्ती बसाकर बैठे हुए और (उपविष्टाय) 'आसन'

वृत्ति से नीति पूर्वक विराजनेवाले राजा का आदर करो । इसी प्रकार पूज्य पुरुष जो लेटा हो या बैठा हो उसका उसी अवस्था में भी आदर करे । (संदिताय स्वाहा) अच्छी प्रकार से शत्रुओं को काटनेवाले या न्यायपूर्वक विभाग करनेवाले का आदर करो । (वल्गते स्वाहा) गमन करते हुए, या आतिथ्य सत्कार करते हुए, उत्तम उपदेश करने वाले पुरुष का आदर करो । (आसीनाय स्वाहा) बैठे हुए आदर करो । (शयानाय स्वाहा) सोते हुए का आदर करो । (स्वपते, जाग्रते, कूजते स्वाहा) सोते हुए, जागते हुए, बुद बुदाते हुए का भी आदर करो । (प्रबुद्धाय, विजृम्भमाणाय, विचृताय स्वाहा) अच्छी तरह से जागे हुए, जम्भाई लेते हुए, बन्धनादि से युक्त होते हुए का भी आदर करो । (संहानाय स्वाहा) विस्तर त्यागते हुए का आदर करो । (उपस्थिताय स्वाहा) सभाभवन में उपस्थित हुए का, (अयनाय) मार्ग से जाते हुए का (प्रायणाय) विशेष रूप से जाते हुए का भी (स्वाहा) आदर करो ॥ ७ ॥

(यते) गमन करते हुए, (धावते) दौड़ते हुए, (उद्द्रावाय) बहुत तीव्र गति से जाते हुए (उद्द्रुताय स्वाहा) और उछल २ कर द्रुत गति से जाने वाले शूरवीर का भी आदर करो । (शूकाराय, शूकृताय) शीघ्र काम करने वाले और शीघ्रता करने वाले, (निषण्णाय, उत्थिताय,) बैठे और उठे का भी आदर करो । (जवाय, बलाय, विवर्तमानाय, विवृत्ताय) वेग और बल वाले, लोटते पोटते और पासे पलटते हुए का भी आदर करो । (विधून्वानाय, विधूताय) विविध शत्रुओं अथवा विविध मानस वासनाओं को धुनते हुए और शत्रुओं को परास्त कर चुके हुए या पापमलसे रहित का भी आदर करो । (शुश्रूषमाणाय, शृण्वते,) विद्वानों से ज्ञान श्रवण करने के लिये उनकी सेवा शुश्रूषा करने वाले और ज्ञान श्रवण करते हुए को भी आदर करो । (ईक्षमाणाय, ईक्षिताय, वीक्षिताय) साक्षात्

करते हुए, साक्षात् किये, और विशेष रूप से साक्षात् हुए का भी आदर करो। (निमेषाय) पलक चलाते हुए, इशारा करते हुए (यदत्ति तस्मै) जब खावे तब उसका, (यत् पिबति तस्मै) जब कुछ पान करता हो तब उसका, (यत् मूत्रं करोति) जब मूत्र करता हो तब उसका, (कुर्वते, कृताय स्वाहा) काम करते हुए और काम कर चुकने पर भी उसका आदर करो ॥ ८ ॥ शत० १३ । १ । ३ । ५ ॥

इस प्रकार ४९ दशाओं में आदरणीय पुरुष का आदर करना चाहिये और इन ४९ दशाओं में राजा को भी उत्तम रीति से आदर सत्कार और संरक्षा करनी चाहिये ।

तत्स॑वि॒तुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि ।
धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ ९ ॥ ऋ० ३ । ६२ । १० ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३ । ३५ ॥

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ ह्वये ।
स चेत्ता॑ दे॒वता॑ प॒दम् ॥ १० ॥ ऋ० १ । २२ । ५ ॥

१०—१४ सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(हिरण्यपाणिम्) सुवर्ण को कंकण रूप में धरने । हाथों में रखने वाले, अथवा हिरण्य अर्थात् लोह के बने तलवार को हाथ में रखने वाले (सवितारम्) सबके आज्ञापक, वीर राजा को मैं (ऊतये) रक्षा के लिये (उपह्वये) बुलाता हूं । (सः) वह (चेत्ता) समस्त बातों का ज्ञाता और सब को सत्यासत्य का बतलाने वाला राजा (देवता) साक्षात् देव सब का दाता और परम सर्वोच्च पद है । अथवा वह (देवता पदम्) समस्त विद्वानों का आश्रय है ।

परमेश्वर के पक्षमें—(हिरण्यपाणिम्) सूर्यादि पदार्थों को वश करने वाले, (सवितारम्) सर्वोत्पादक, परमेश्वर की मैं स्तुति करता हूं वह

(चेत्ता) सर्वज्ञ, सत्यासत्य का ज्ञापक और (पदम्) परम प्राप्य (देवता) देव, प्रकाशक और सर्वप्रद है ।

देवस्य चेततो महीं प्र सवितुर्हवामहे ।
सुमतिꣳ सत्यराधसम् ॥ ११ ॥

भा०—(सवितुः) सब के शासक, (चेततः) सब को चैतन्य अर्थात् सावधान करने वाले, (देवस्य) दानशील राजा की (महीम्) बड़ी भारी (सत्यराधसम्) सत्य, धर्मानुकूल ऐश्वर्य के देनेवाली (सुमतिम्) उत्तम मति, शासन शक्ति की (प्र हवामहे) स्तुति करते हैं ।

ईश्वर पक्षमें—(चेततः सवितुः) चित्स्वरूप, सर्वोत्पादक (देवस्य) परमेश्वर देव के (सत्यराधसम्) सत्य ज्ञान, ऐश्वर्ययुक्त (सुमतिं) उत्तम ज्ञानमयी वेदवाणी की (प्र हवामहे) याचना करते हैं ।

सुष्टुतिꣳ सुमतीवृधो रातिꣳसवितुरीमहे ।
प्र देवाय मतीविदे ॥ १२ ॥

भा०—(सुमतीवृधः) उत्तम स्तुति और मति, ज्ञान की वृद्धि करने वाले (सवितुः) सर्वोत्पादक, परमेश्वर और सर्वप्रेरक राजा का (देवाय) धन विद्यादि की कामना करने वाले (मतीविदे) विद्वान् के प्रति देने योग्य (रातिम्) दान की (ईमहे) याचना करते हैं ।

रातिꣳ सत्पतिं महे सवितारमुप ह्वये ।
आसवं देववीतये ॥ १३ ॥

भा०—(रातिम्) दानशील, (सत्पतिम्) सत् जनों, सत् पदार्थों और समस्त जीवों के पालक, (सवितारम्) सब के शासक, सब के उत्पादक (आसवं) सब कार्यों की अनुज्ञा देनेहारे, अथवा सब प्रकार से ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और राजा की (देववीतये) दिव्यगुणों और विद्वान् पुरुषों के प्राप्त करने के लिये (उपह्वये) स्तुति करता हूं ।

देवस्यं सवितुर्मतिमासवं विश्वदेव्यम् ।
धिया भर्ग मनामहे ॥ १४ ॥

भा०—(देवस्य) सब सुखों के दाता, सब कुछ देखने वाले (सवितुः) शासक और उत्पादक राजा और परमेश्वर की (मतिम्) मति अर्थात् ज्ञान का और (विश्वदेव्यम्) समस्त विद्वानों के हितकारी, (आसवम्) समस्त ऐश्वर्यों के उत्पादक (भगम्) ऐश्वर्य का (धिया) धारणावती बुद्धि से हम (मनामहे) मनन करते हैं ।

अग्निं॑ स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम् ।
हव्या देवेषु नो दधत् ॥ १५ ॥

[१५—१७] अग्निर्देवता । सुतम्भरविश्वामित्रविश्वरूपा ऋषयः ।
गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे पुरुष ! तू (अमर्त्यम्) अविनाशी, कारणरूप से नित्य (अग्निम्) अग्नि को जिस प्रकार (स्तोमेन) काष्ठ समूह से जलाया जाता है उसमें (हव्या) हव्य, चरु पदार्थ डाल कर वायु आदि दिव्य-गुण वाले पदार्थों में पहुंचा दिये जाते हैं उसी प्रकार तू (सम् इधानः) ज्ञान से प्रदीप्त होता हुआ भी (स्तोमेन) स्तुतियां द्वारा (अमर्त्यम्) अमर, मरणधर्म से रहित, आत्मारूप (अग्निम्) अग्नि, स्वतःप्रकाश तेजोमय को (बोधय) प्रदीप्त कर । और (नः देवेषु) हमारे देव अर्थात् अन्य प्राणों में भी (हव्या) ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थों को (दधत्) धारण कर ।

दूत के पक्ष में—(स्तोमेन) स्तुतियों से (अमर्त्यम्) अमर्त्य, सुरक्षित, न मारने योग्य, अवध्य, (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी, विद्वान् पुरुष को (समिधानः) प्रदीप्त करता हुआ (बोधय) चेता । और वह (नः देवेषु) हमारे अन्य विजिगीषु शासकों और विद्वान् पुरुषों को (हव्या)

अन्न आदि भोग्य पदार्थ अथवा राजा की ग्रहण और स्वीकार करने योग्य आज्ञाओं को (दधत्) प्रदान करें।

स ह॒व्य॒वाळम॑र्त्य॑ऽ उ॒शिग्दू॒तश्चनो॑हितः।
अ॒ग्निर्धि॒या सम॑ृण्वति ॥ १६ ॥ ऋ० ३ । ११ । २ ॥

भा०—(सः) वह (हव्यवाड्) स्वीकार करने योग्य आज्ञाओं को दूसरों तक पहुंचाने वाले, (अमर्त्यः) न मारने योग्य (उशिग्) स्वयं कान्तिमान्, अन्यों को प्रिय, विद्वान् (दूतः) दूत (चनोहितः) वचनों को धारण करने में समर्थ है वह (अग्निः) तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष (धिया) अपनी बुद्धि से (सम् ऋण्वति) समस्त कर्म सम्पादन करता है।

अग्नि के पक्ष में—हव्य चरु को वायु आदि तक पहुंचानेवाला कारण, नित्य, (उशिक्) कान्तिमान्, (दूतः) तापवान्, (चनोहितः) परिपाक करने में लगाने योग्य (अग्निः) अग्नि (धिया) धारण सामर्थ्य या दाहक्रिया से ही (सम्-ऋण्वति) अन्य दिव्य पदार्थों से संगत होता है।

अध्यात्म में—वह ज्ञानी, कान्तिमान्, (दूतः) उपासक (चनो-हितः) सञ्चित ज्ञान या उत्तम वचन को धारण करनेवाला (अग्निः) ज्ञानी आत्मा (धिया) धारणा के बल से परमेश्वर को (सम्-ऋण्वति) प्राप्त करता है।

'चनः'—वचनशब्दस्य वकारलोपेनान्ते सकारोपजनेन 'चनः'। यद्वा वचे रसुनि बाहुलकात् नोन्तादेशः इति दे० य० ॥ चनः इत्यन्न नाम। तथैव पचनस्य पकारलोपे सकारोपजनेन च। पचेर्वासुनि नोन्तादेशः। चीयतेर्वा।

अ॒ग्निं दू॒तं पु॒रो द॑धे हव्य॒वाह॒मुप॑ ब्रुवे। दे॒वाँ२ऽ
आ॒सा॒द॒या॒दि॒ह ॥ १७ ॥ ऋ० ८ । ४४ । ३ ॥

१६—०वाळ० इति काण्व०। इतः परमेका ऋगधिका पठ्यते काण्व० परिशिष्टे द्रष्टव्या।

भा०—मैं राजा (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य संदेश को जानेवाले (दूतम्) दूत बनकर आये, (अग्निम्) ज्ञानी विद्वान् को (पुरः) सबके समक्ष, आगे (दधे) स्थापित करता हूं और (उपब्रुवे) उससे प्रार्थना करता हूं कि वह (इह) इस पद पर रहकर (देवान् आसादयात्) अन्य राजाओं तक पहुंचे।

अग्नि के पक्ष में—हव्य, चरु को वहन करनेवाले (दूतं) तापयुक्त अग्नि को मैं आगे स्थापित करता हूं। वह (देवान् आसादयात्) वायु आदि पदार्थों तक चरुको पहुंचावे।

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ॥ १८ ॥ ऋ० ९।११०।३॥

अरुणत्रसदस्यू ऋषी। पवमानो देवता। पिपीलिकमध्याकृतिः अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे (पवमान) सबको पवित्र करनेहारे विद्वन्! अग्नि तत्व जिस प्रकार (सूर्यं) सूर्य को उत्पन्न करता है उसी प्रकार तू (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष राजा को (अजीजनः) उत्पन्न करता है। और सूर्य जिस प्रकार (गोजीरया) समस्त पृथ्वी लोक को जीवन देने और (पुरन्ध्या) पुर देह, ब्रह्माण्ड को धारण पोषण करनेवाली शक्ति से (रंहमाणः) गति करता हुआ (शक्मना) अपनी शक्ति से (पयः) जल को (विधारे) विशेष रूप से धारण करता है और उसी प्रकार (गोजीरया) गौ आदि पशुओं के जीवन देनेवाली और (पुरंध्या) पुर को धारण करनेवाली राजनीति से (रंहमाणः) चलता हुआ (शक्मना) अपनी शक्ति से (पयः) पुष्टिकारक राष्ट्र को धारण करता है।

विभूर्मात्रा प्रभूः पित्राश्वोऽसि हयोऽस्यत्योऽसि मयोस्यर्वासि सप्तिरसि वाज्यसि वृषासि नृमणाऽ असि। ययुर्नामासि शिशुर्नामास्यादित्यानां पत्वान्विहि। देवाऽ आशापालाऽ एतं देवेभ्यो-

ऽश्वं मेधाय प्रोक्षितꣳ रक्षत। इह रन्तिरिह रमतामिह धृतिरिह स्वधृतिः स्वाहा ॥ १९ ॥

अग्निर्देवता। भुरिग् विकृतिः। मध्यमः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (मात्रा विभूः) माता के प्रभाव से विविध गुणों से युक्त है। और (पित्रा प्रभूः) पिता के द्वारा उत्कृष्ट प्रभु शक्ति या ऐश्वर्य से युक्त है। अर्थात् तू मातृमान् और पितृमान् है। गर्भ के उत्तम संस्कारों में माता और विनय आदि में पिता द्वारा शिक्षित है। तू (अश्वः असि) समस्त राष्ट्र का भोक्ता है। तू (हयः असि) अति वेगवान्, पराक्रमी है। तू (अत्यः असि) निरन्तर गतिशील, बराबर आगे बढ़नेवाला, सबको अतिक्रमण करने हारा है। तू (मयः असि) प्रजा का सुखकारी अथवा नियन्ता है। तू (अर्वा असि) सब ऐश्वर्यों को प्राप्त करने हारा, एवं सब विद्याओं का ज्ञाता है। तू (सप्तिः असि) शत्रु का पीछा करने हारा, अथवा राष्ट्र के सातों अंगों का स्वामी, या राष्ट्र में समवाय बनाकर रहने में समर्थ है। तू (वाजी असि) ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् और आक्रमण में वेगवान् है। तू (नृमणाः असि) मनुष्यों के मान और आदर योग्य, सबके मनों का आकर्षक है। तू (ययुः नाम असि) शत्रुओं पर विजय करने के लिये प्रयाण करनेवाला होने से 'ययु' नाम से विख्यात है। तू (शिशुः नाम असि) शत्रियों को कृश, या दुर्बल, या नाश करनेवाला, राष्ट्र में व्यापक होकर रहने वाला होने से 'शिशु' नाम से कहाता है। पृथ्वी का पुत्र या शासक होने से भी तू 'शिशु' है। (आदित्यानां) सूर्य जिस प्रकार मासों के अनुसार द्वादश राशियों में गमन करता है उसी प्रकार तू आदित्य के समान तेजस्वी होकर द्वादश राज-मण्डल के बीच में (पत्वा) राजमार्ग से (अनु इहि) गमन कर। अथवा—(आदित्यानां) आदित्यों के समान विद्वान् पुरुषों के (पत्वा) गमनयोग्य मार्ग का (अनु इहि) अनुसरण कर। हे (देव) विजय की

कामना करनेवाले ! (आशापालाः) दिशावासिनी प्रजा के पालक मण्डलिक राजगण ! आप लोग (देवेभ्यः) विद्वान् पुरुषों, विजयी और दानशील पुरुषों की उन्नति और (मेधाय) राष्ट्र के बलवृद्धि या शत्रुओं के नाश के लिये (एतं) इस (प्रोक्षितं) अभिषिक्त हुए राजा की (रक्षत) रक्षा करो । (इह) इस राष्ट्र में (रन्तिः) चित्त की प्रसन्नता है । (इह रमताम्) यहां रमण करें । (इह धृतिः) इस राष्ट्र में धारण करने की सामर्थ्य है (इह) इसमें ही (स्वधृतिः) अपनी पूर्ण धृति अर्थात् धारण शक्ति हो । (स्वाहा) इससे तेरा उत्तम यश और आदर हो ।

यही विशेषण अश्व, विद्वान्, परमेश्वर और आत्मा पक्ष में भी लगते हैं । मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद । शत० ।

[1]काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा स्वाहाधिमाधीताय स्वाहा मनः प्रजापतये स्वाहा चित्तं विज्ञातायादित्यै स्वाहादित्यै मह्यै स्वाहादित्यै सुमृडीकायै स्वाहा सरस्वत्यै स्वाहा [2]सरस्वत्यै पावकायै स्वाहा सरस्वत्यै बृहत्यै स्वाहा पूष्णे स्वाहा पूष्णे प्रपथ्याय स्वाहा पूष्णे नरन्धिषाय स्वाहा त्वष्ट्रे स्वाहा त्वष्ट्रे तुरीपाय स्वाहा त्वष्ट्रे पुरुरूपाय स्वाहा विष्णवे स्वाहा विष्णवे निभूयपाय स्वाहा विष्णवे शिपिविष्टाय स्वाहा ॥ २० ॥

कादयो देवताः । (१) विराड् अतिधृतिः । (२) निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(काय, कस्मै, कतमस्मै) साधनों के करनेवाले, सुख-स्वरूप साधकों में भी श्रेष्ठ, प्रजापालक प्रजापति का (स्वाहा) उत्तम मान, आदर करो । (आधिम्)' आधीन, अग्निस्थापन या पदार्थसंग्रह करनेवाले का और (आधीताय) समस्त विद्याओं को पढ़नेवाले का (स्वाहा)

२० औद्ग्राभणानि । ' मृळीकाय ०' इति काण्व० ।

उत्तम अन्नादि से सत्कार करो। (मनः=मनसे) मननशील और (प्रजापतये) प्रजा के पालक का (स्वाहा) उत्तम रीति से आदर करो। (चित्तं-चित्ताय) चित्त के समान चिन्तन करनेवाले का और (विज्ञाताय) विज्ञान और उसके विशेष ज्ञाता का आदर करो। (आदित्यै स्वाहा) पृथिवी और माता का आदर करो। (आदित्यै मह्यै) अखण्ड, पृथ्वी, पूजनीय माता और विशाल अखंड शासन की व्यवस्था और पूज्य गोमाता का (स्वाहा) आदर करो। (सुमृडीकायै आदित्यै स्वाहा) समस्त सुखों के देनेवाली, माता, वेदवाणी का उत्तम उपयोग करो। (सरस्वत्यै स्वाहा) सरस्वती, वेदवाणी, स्त्री और विद्वत्सभा का आदर, आज्ञापालन, संमान करो। (पावकायै सरस्वत्यै) पावन, पवित्र करनेवाली ज्ञानमयी ब्रह्मशक्ति की (स्वाहा) पूजा करो। (बृहत्यै सरस्वत्यै) बृहती, बड़ी भारी, विद्वानों की सभा या प्रभुवाणी का (स्वाहा) अभ्यास, मनन, श्रवण और अध्यापन, वाचन, दान करो। (पूष्णे स्वाहा) पोषक पुरुष का आदर करो। (प्रपथ्याय) उत्तम पथ्य, आहारयोग्य पोषक अन्न का (स्वाहा) सदुपयोग करो। और (नरन्धिषाय पूष्णे) मनुष्यों को धारण पोषण करनेवाले प्रजापालक राजा का (स्वाहा) उत्तम रीति से आदर करो। (त्वष्ट्रे स्वाहा) त्वष्टा, शिल्पी का आदर करो, उसे उत्तम उपयोग में लगाओ। (तुरीपाय त्वष्ट्रे स्वाहा) तुरीप अर्थात् नौकाओं के पालक अथवा बुनने के यन्त्रों के पालक, अथवा वेगवान् रथों के पालक, निर्माता का आदर और (पुरुरूपाय त्वष्ट्रे) नाना रूपों के पदार्थों के बनाने वाले, त्वष्टा, परमात्मा की उपासना करो। (विष्णवे स्वाहा) व्यापक परमेश्वर की उपासना करो। (निभूयपाय विष्णवे स्वाहा) सब के नीचे, सब का आश्रय होकर, जो सब की रक्षा करे उस व्यापक शक्तिमान् राजा का आदर करो। और (शिपिविष्टाय विष्णवे स्वाहा) समस्त पशुओं में व्यापक रूप से, अथवा शक्ति रूप से या किरणों में तेज रूप से विद्यमान तेजस्वी, सर्वोत्पादक प्रभु शक्ति का आदर करो।

यही सब नाम ईश्वर, परमेश्वर, आत्मा और राजा के भी होने से उन में उन गुणों को रक्खा जा सकता है।

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम्।
विश्वो रायऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ॥ २१ ॥

अग्निर्ऋषिः । आर्ष्यनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(विश्वः) समस्त (मर्त्तः) मनुष्य, मरणशील प्राणीमात्र (नेतुः देवस्य) नायक राजा के (सख्यम्) मित्रभाव को (वुरीत) प्राप्त करे । (विश्वः मर्त्तः) समस्त मनुष्य (रायः) धनों को (इषुध्यति) चाहते हैं । और सभी (पुष्यसे) पुष्टि के लिये (द्युम्नं) धनैश्वर्य को (वृणीत) प्राप्त करना चाहते हैं । उसी के लिये (स्वाहा) उत्तम व्यवहार से रहो । विशेष व्याख्या देखो (अ० ४ । ८) ।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे-निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ २२ ॥

लिंगोक्ता देवता । स्वराड्‌त्कृतिः । षड्जः ॥

भा०—हे (ब्रह्मन्) ! महान् शक्ति वाले ब्रह्मन् ! परमेश्वर ! (राष्ट्रे) राष्ट्र में (ब्राह्मणः) ब्रह्म, वेद का विद्वान्, ज्ञाता पुरुष (ब्रह्मवर्चसी) ब्रह्मवर्चस्वी, वीर्यवान् (आ जायताम्) हो । और राष्ट्र में (राजन्यः) राजा का पुत्र या क्षत्रियगण (शूरः) शूर, (इषव्यः) धनुर्धर (अति व्याधी) अति वेग और बल से शत्रु को परास्त करने वाला, (महारथः) महारथी, बड़े २ रथारोही वीरों का स्वामी, (आ जायताम्) हो । (धेनुः

२२—०' वोळ्हा ०' इति काण्व० ।

दोग्ध्री) गाय बहुत दूध देने वाली, (अनड्वान् वोढा) बैल खूब बोझा उठाने में समर्थ, (आशुः सप्तिः) घोड़ा अति वेगवान् और (योषा पुरन्धिः) स्त्री कुटुम्ब को धारण करने में समर्थ हो । (जिष्णुः रथेष्ठाः) रथ पर स्थित वीर विजयशील हो । (अस्य यजमानस्य) सब को वेतन और जीवन वृत्ति देने हारे राजा के राष्ट्र में (सभेयः युवा) सभा में साधु उत्तम वक्ता और युवा, स्त्रियों के हृदयों का ग्रहण करने वाला, (वीरः) वीर्यवान् पुरुष (आ जायताम्) हो । (नः) हमारे राष्ट्र में (निकामे निकामे) प्रत्येक प्रार्थना के अवसर पर जब जब भी हमें आवश्यकता हो तब २ (पर्जन्यः वर्षतु) मेघ बरसे । (नः) हमारी (ओषधयः) ओषधि, अन्न आदि (फलवत्यः) फल वाली होकर (पच्यन्ताम्) पकें । (नः) हमारे राष्ट्र में (योगक्षेमः) जो धन पहले प्राप्त न हो वह प्राप्त हो, जो प्राप्त है वह सुरक्षित (कल्पताम्) रहे ।

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ २३ ॥

प्राणादयो देवताः । स्वराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(प्राणाय) भीतर से बाहर आने वाला निःश्वास 'प्राण' है । और (अपानाय) बाहर से भीतर जाने वाला उच्छ्वास अपान है । अथवा इससे विपरीत समझें । अथवा नाभि तक संचरण करने वाला श्वासोच्छ्वास 'प्राण' है । नाभि से गुदा तक व्याप्त, एवं नीचे की तरफ़ के मलों को बाहर करने वाला बल 'अपान' है । इन दोनों को (स्वाहा) योग क्रिया से वश करना चाहिये । (व्यानाय स्वाहा) इसी प्रकार शरीर के अन्य शिर, बाहु, जंघा आदि में विद्यमान प्राण ही 'व्यान' है । उसका भी उत्तम रीति से ज्ञान और अभ्यास करना चाहिये । (चक्षुषे स्वाहा, श्रोत्राय स्वाहा) चक्षु को उत्तम रीति से देखने के कार्य में लगाओ, एवं दर्शन शक्ति को उत्तम

रीति से प्राप्त करो। श्रोत्र को गुरु के उपदेश में लगाओ और श्रवण शक्ति की वृद्धि करो। (वाचे स्वाहा, मनसे स्वाहा) वाणी को उत्तम रीति से योग करो और मन को उत्तम रीति से एकाग्र करो। शरीर में प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र वाग् और मन को हृष्ट पुष्ट करो इसी प्रकार राष्ट्र शरीर के इन भागों को भी पुष्ट करो।

प्राच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा दक्षिणायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा प्रतीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोदीच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहोर्ध्वायै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहावाच्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २४ ॥

दिशो देवताः। निचृदतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—(प्राच्यै दिशे) सूर्य प्रातः जिस दिशा को प्रथम स्पर्श करता है वह सूर्योदय की दिशा 'प्राची' है। (अर्वाच्यै दिशे) उसके समीप की कोण दिशा 'अर्वाची' है। (दक्षिणायै दिशे) पूर्वाभिमुख के दाहिने हाथ की दिशा 'दक्षिणा' है उसके समीप की (अर्वाच्यै दिशे) एक कोण दिशा 'अर्वाची' है। (प्रतीच्यै दिशे) पूर्वाभिमुख खड़े पुरुष की पीठ पीछे की दिशा 'प्रतीची' या पश्चिम दिशा है। उसके पास की दिशा (अर्वाच्यै दिशे) 'अर्वाची' है। (उदीच्यै दिशे) पूर्वाभिमुख पुरुष के बायें हाथ की दिशा 'उदीची' है उसके समीप की दिशा (अर्वाच्यै दिशे) 'अर्वाची' है। इसी प्रकार (ऊर्ध्वायै दिशे, अर्वाच्यै दिशे) पुरुष के शिर के ऊपर की दिशा ऊर्ध्वा है उसके पास की कोण-दिशा 'अर्वाची' है। और (अवाच्यै, अर्वाच्यै दिशे) पैरों के नीचे की दिशा 'अवाची' और उसकी कोण दिशा 'अवाची' है।

इस प्रकार ६ दिशाएं, १२ उपदिशाएं हैं उनका उत्तम रीति से ज्ञान और उपयोग करो। इसी प्रकार राष्ट्र की सभी दिशाओं की उत्तम रीति

से रक्षा और विजय करनी चाहिये। इसी प्रकार विजिगीषु और प्रजापति की भी दिशाएं हैं। देखो व्रात्यसूक्त अथर्ववद।

अद्भ्यः स्वाहा वार्भ्यः स्वाहोदकाय स्वाहा तिष्ठन्तीभ्यः स्वाहा स्रवन्तीभ्यः स्वाहा स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा कूप्याभ्यः स्वाहा सूद्याभ्यः स्वाहा धार्याभ्यः स्वाहार्णवाय स्वाहा समुद्राय स्वाहा सरिराय स्वाहा ॥ २५ ॥

जलादयो देवताः। अष्टिः। मध्यमः॥

भा०—(अद्भयः) सामान्य जल, (वार्भ्यः) रोगनिवारक, उत्तम जल, (उदकाय) गहरे प्रदेशों से ऊपर निकाले गये या गीला करने वाले, (तिष्ठन्तीभ्यः) एक स्थान पर खड़े रहने, या स्थिर परिमाण वाले (स्रवन्तीभ्यः) चूने या झरने वाले, (स्यन्दमानाभ्यः) प्रवाह से या नदी रूप से प्रवाह में वहने वाले, (कूप्याभ्यः) कूप के जल, (सूद्याभ्यः) झरनों के जल, (धार्याभ्यः) पात्रादि में धरे जल, (अर्णवाय) समुद्र और (समुद्राय) आकाशस्थ जल (सरिराय) वायुस्थ अथवा मध्यस्थ जल। इन सब को (स्वाहा) उत्तम रीति से शुद्ध करो, प्रयोग करो, संग्रह करो, उपयोग में लाओ जिससे सुख हो। जलों के समान प्रजाओं और सेनाओं के भी इतने भेद जानने चाहियें राजा उनको वश करे। जैसे आप्त प्रजा-जन 'आपः' हैं। शत्रुवारक वीर प्रजाएं 'वार्' हैं। सदा खड़े रहने वाली सावधान वीर सेनाएं 'तिष्ठन्ती' हैं। साधारण वेग से जाने वाली 'स्रवन्ती' हैं। रथ-वेग से दौड़ने वाली 'स्यन्दमाना' हैं। गहरी खाइयों की आड़ में बैठी 'कूप्या' हैं। शत्रु पर प्रहार करने वाली 'सूद्या' हैं। विशेष अवसर के लिये सुरक्षित सेनाएं 'धार्या' हैं। संग्रहीत समस्त सेना समूह 'अर्णव' है, और उमड़ती सेनाएं 'समुद्र' हैं और शत्रु पर आक्रमण करती सेना 'सरिर' हैं।

वाताय स्वाहा धूमाय स्वाहाभ्राय स्वाहा मेघाय स्वाहा विद्योतमानाय स्वाहा स्तनयते स्वाहावस्फूर्जते स्वाहा वर्षते स्वाहावर्षते स्वाहोग्रं वर्षते स्वाहा शीघ्रं वर्षते स्वाहोद्गृह्णते स्वाहोद्गृहीताय स्वाहा प्रुष्णते स्वाहा शीकायते स्वाहा प्रुष्वाभ्यः स्वाहा ह्रादुनीभ्यः स्वाहा नीहाराय स्वाहा ॥ २६ ॥

विराड्अभिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(वाताय, स्वाहा) वहने वाली, तीव्र वायु का उत्तम उपयोग करो, उसके समान प्रबलता से शत्रु पर आक्रमण करने और शत्रुरूप वृक्ष को तोड़ने वाले सेनापति का आदर करो । अथवा (स्वाहा) उसको उत्तम बल प्राप्त हो । (धूमाय स्वाहा) धूम, और धूम के समान नीले मेघ, उत्तम रीति से उत्पन्न हों । धूम अर्थात् शत्रु को कपाने वाले को आदर, बल, मान प्राप्त हो । (अभ्राय स्वाहा) वर्षणकारी मेघ की पूर्व दशा के मेघ अच्छे प्रकार बनें । अभ्र अर्थात् बदली के समान राष्ट्र या शत्रु सेना पर छा जाने वाले को उत्तम अधिकार, मान आदर प्राप्त हो । (मेघाय स्वाहा) जल वर्षाने वाला 'मेघ' कहाता है, उसी के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला पुरुष भी 'मेघ' है, उसका आदर हो । (विद्योतमानाय स्वाहा) विविध विद्युतों को पैदा करने वाला मेघ 'विद्योतमान' है उसकी उत्पत्ति हो । और विविध विद्याओं और गुणों से प्रकाशमान और अन्यों को प्रकाश देने वाला पुरुष 'विद्योतमान' है, उसको आदर और उन्नति प्राप्त हो । (स्तनयते स्वाहा) गर्जते हुए मेघ की वृद्धि हो । सिंहनाद करते पुरुष की वृद्धि हो । (अवस्फूर्जते स्वाहा) नीचे विद्युतें फेंकते हुए मेघ बढ़ें । और उस मेघ के समान ही आग्नेयास्त्रों का शत्रु पर प्रयोग करने वाले वीर सेनापति की विजय हो । (वर्षते स्वाहा, उग्रं वर्षते स्वाहा) बरसते

२६—' प्रश्नते ' इति काण्व० ।

हुए, प्रचण्ड वेग से बरसते हुए और भयंकर तीव्रता से बरसते हुए मेघ बढ़ें और लाभकारी हों। उनके समान प्रजाओं पर सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करते हुए शत्रुओं पर भयंकरता से शस्त्र बरसाते हुए और अति शीघ्रता से अस्त्र फेंकते हुए वीर सेनापति की वृद्धि और विजय हो। (उद्गृह्णते स्वाहा, उद्गृहीताय स्वाहा) जलों को पुनः ऊपर उठाते हुए, और खूब जल लेलेने वाले मेघ अच्छी प्रकार उठें और बरसें। उनके समान शत्रु से और मित्र राष्ट्र और अपने राष्ट्र से बल, धन, ऐश्वर्य संग्रह करते हुए और कर चुके हुए वीर पुरुष की वृद्धि और विजय हो। (प्रुष्णते स्वाहा) स्थूल बूंदों से सींचते हुए या नदी ताल आदि को भरते हुए मेघ की वृद्धि हो। और प्रजा पर स्नेह से देखते हुए उस पर कृपा करते और धनधान्य से पूर्ण करते हुए की सदा वृद्धि और यश हो। (शीकायते स्वाहा) सेचन करते हुए, फुहार छोड़ते हुए मेघ की अच्छी प्रकार से उत्पत्ति हो। और इसी प्रकार सुखकारी धनधान्य, उपकारों और सद्वचनों से प्रजा पर सुख सेचन करते हुए राजा की खूब वृद्धि हो। (प्रुष्वाभ्यः स्वाहा) मेघ के स्थूल बिन्दु सेचन करने वाली धाराओं की वृद्धि हो, राजा की भयंकर प्रजा को समृद्ध करने वाली शक्तियों की वृद्धि हो। (ह्रादुनीभ्यः स्वाहा) शब्द करने वाली विद्युतें बढ़ें। राजा की गरजती तोपें बढ़ें। (नीहाराय स्वाहा) कुहरे की वृद्धि हो। उसके समान शत्रु की लक्ष्मी को निःशेष रूप से हर लेने वाले सेनापति और राजा की वृद्धि हो।

इस मन्त्र में मेघ की सब दशाओं का और उसके समान आचरण करने वाले वीर सेनापति का वर्णन और उसकी वृद्धि की प्रार्थना भी है।

अ॒ग्नये॒ स्वाहा॒ सोमा॑य॒ स्वाहेन्द्रा॑य॒ स्वाहा॑ पृथि॒व्यै स्वाहा॒न्तरि॑क्षाय॒ स्वाहा॑ दि॒वे स्वाहा॑ दि॒ग्भ्यः स्वाहाशा॑भ्यः॒ स्वाहो॒र्व्यै दि॒शे

स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ॥ २७ ॥

अग्न्यादयो देवताः । जगती । निषादः ॥

भा०—(अग्नये स्वाहा) अग्नि का सदुपयोग, जाठराग्नि की वृद्धि और स्वस्थता तथा अग्रणी नेता का अभ्युदय हो । (सोमाय स्वाहा) सोम आदि ओषधि रस प्राप्त हों, सब के प्रेरक राजा की उन्नति हो । (इन्द्राय स्वाहा) जीव की उन्नति हो, परमेश्वर प्रसन्न हो, विद्युत् गुणकारी हो, वह ऐश्वर्य सुख प्रदान करे । (पृथिव्यै स्वाहा) पृथिवी, (अन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा) अन्तरिक्ष और २ द्यौ तीनों लोक सुखकारी हों, (आशाभ्यः स्वाहा) आशाएं दिशाएं सुखकारी हों, प्रजाएं बढ़ें, (ऊर्ध्वायै दिशे स्वाहा) ऊपर की दिशा और (अर्वाच्यै दिशे स्वाहा) नीचे की दिशा ये सब खूब फलें, फूलें और सुखकारी हों।

नक्षत्रेभ्यः स्वाहा नक्षत्रियेभ्यः स्वाहाहोरात्रेभ्यः स्वाहार्धमासेभ्यः स्वाहा मासेभ्यः स्वाहऽऋतुभ्यः स्वाहार्त्तवेभ्यः स्वाहा सँवत्सराय स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳪस्वाहा चन्द्राय स्वाहा सूर्याय स्वाहा रश्मिभ्यः स्वाहा वसुभ्यः स्वाहा रुद्रेभ्यः स्वाहादित्येभ्यः स्वाहा मरुद्भ्यः स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा मूलेभ्यः स्वाहा शाखाभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा पुष्पेभ्यः स्वाहा फलेभ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा ॥ २८ ॥

नक्षत्रादयो देवताः । भुरिगष्टी । मध्यमः ।

भा०—(नक्षत्रेभ्यः, नक्षत्रियेभ्यः स्वाहा २) नक्षत्र, जो कभी अपने स्थान से च्युत नहीं होते और 'नक्षत्रिय', नक्षत्रों में गति करने वाले ग्रह, उपग्रह, ये सभी हमें सुखकारी हों । (अहोरात्रेभ्यः, अर्धमासेभ्यः, ऋतुभ्यः, आर्त्तवेभ्यः, संवत्सराय स्वाहा ५) दिन-रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु और ऋतुओं में होने वाले विशेष परिवर्त्तन और संवत्सर ये हमें सुखकारी हों। (द्यावापृथिवीभ्यां, चन्द्राय, सूर्याय, रश्मिभ्यः स्वाहा ४) द्यौ, पृथिवी,

चन्द्र, सूर्य और रश्मियें सुखकारी हों। इनके शुभ लक्षण प्रकट हों। (वसुभ्यः रुद्रेभ्यः आदित्येभ्यः स्वाहा ३) आठ वसु, पृथिवी आदि ११ रुद्र= प्राण आदित्य द्वादश मास या अविनाशी काल के अवयव और (मरुद्भ्यः स्वाहा) नाना वायुएं ये हमें सुखकारी हों। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) समस्त अन्य दिव्य शक्तियां सुखकारी हों। (मूलेभ्यः शाखाभ्यः वनस्पतिभ्यः, पुष्पेभ्यः, फलेभ्यः ओषधीभ्यः स्वाहा ६) मूल, शाखा, वनस्पतियें, फूल, फल और ओषधिगण ये सब हमारे लिये सुखकारी हों और हम उन सब उक्त पदार्थों को सुखकारी बनाने के उत्तम साधन उपस्थित करें।

पृथिव्यै स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहौषधीभ्यः स्वाहा वनस्पतिभ्यः स्वाहा परिप्लवेभ्यः स्वाहा चराचरेभ्यः स्वाहा सरीसृपेभ्यः स्वाहा ॥ २९ ॥

पृथिव्यादयो देवताः। निचृदत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—(पृथिव्यै, अन्तरिक्षाय, दिवे, सूर्याय, चन्द्राय, नक्षत्रेभ्यः स्वाहा) पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र ये सब हमें सुख दें, हम इनको सुखकारी बनाने के उत्तम उपाय करें। (अद्भ्यः ओषधीभ्यः वनस्पतिभ्यः स्वाहा) जल, ओषधि और वनस्पति उनको हम उत्तम बनाने का साधन करें जिससे ये सुखकारी हों। (परिप्लवेभ्यः चराचरेभ्यः सरीसृपेभ्यः स्वाहा) आकाश में स्वच्छन्दता से विहार करने, उपद्रव करने वाले धूमकेतु उल्का आदि, चराचर प्राणि और सर्प आदि रेंगने वाले जन्तु ये सभी हमें सुखकारी हों, हम इनको सुखकारी बनाने का उत्तम उपाय करें।

असवे स्वाहा वसवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाभिभुवे स्वाहाधिपतये स्वाहा शूषाय

स्वाहा सᳬसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवा पतयते स्वाहा ॥ ३० ॥

अस्वादयो देवताः । कृतिः । निषादः ॥

भा०—(असवे स्वाहा) शरीर के रोगों को बाहर फेंकने वाले 'प्राण' की हम उत्तम साधना करें । (वसवे स्वाहा) शरीर में बसने वाले जीव की उत्तम साधना करें । (विभुवे स्वाहा) व्यापक वायु और परमेश्वर की हम साधना और उपासना करें । (विवस्वते स्वाहा) विविध वसु, वास योग्य लोकों को धारण करने वाले सूर्य को हम सुखकारी बनावें । इसी प्रकार शत्रु को बाहर निकालने के लिये अस्त्रों के फेंकने वाला 'असु', प्रजा को बसाने वाला 'वसु', विशेष सामर्थ्यवान् 'विभु', विविध ऐश्वर्यों से युक्त 'विवस्वान्', इन सब प्रकार के उत्तम आदर योग्य पुरुषों का हम आदर करें । (गणश्रिये) गण, संघ, सैनिक संघ से सुशोभित या संघों में सुशोभित सैनिकों को उत्तम अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हों । (गणपतये स्वाहा) उन गणों के पालक का उत्तम आदर हो । (अभिभुवे स्वाहा) सन्मुख जाने वाले का और (आधिपतये) अधिपति का उत्तम मान आदर हो । (शूषाय स्वाहा) सैन्य बल की उत्तम वृद्धि और विजय लाभ हो । (संसर्पाय स्वाहा) शत्रुगण में गुप्त रूप से फैल कर उनके भेद लेने वालों को उत्तम जीविका प्राप्त हो । (चन्द्राय स्वाहा) आह्लादकारी पुरुष को और (ज्योतिषे) दीप्ति प्रकाश के उत्पादक को उत्तम पद प्राप्त हो । (मलिम्लुचाय स्वाहा) मारा मारी करके दूसरे के धन हरण करने वाले दुष्ट पुरुष का अच्छा दमन हो । और (दिवापतये स्वाहा) दिन के पालक अथवा दिन के समय दूर तक चलने वाले पथिक की उत्तम रक्षा हो ।

मधवे स्वाहा माधवाय स्वाहा शुक्राय स्वाहा शुचये स्वाहा नभसे स्वाहा नभस्याय स्वाहेषाय स्वाहोर्जाय स्वाहा सहसे

स्वाहा सहस्याय स्वाहा तपसे स्वाहा तपस्याय स्वाहांऽहसस्पतये स्वाहा ॥ ३१ ॥

मध्वादयो देवताः । भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(मधवे स्वाहा) मधुरादि गुणों के उत्पादक 'मधु' नाम चैत्र को हम सुखकारी बनावें । इसी प्रकार (माधवाय, शुक्राय, शुचये, नभसे, नभस्याय, इषाय, ऊर्जाय, सहसे, सहस्याय, तपसे, तपस्याय, स्वाहा) वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण भाद्र, आश्विन, कार्त्तिक, मार्गशीर्ष, पौष माघ और फाल्गुन इन समस्त मासों को हम सुखकारी बनायें । और (अंहसः पतये स्वाहा) सब मासों में अवशिष्ट तिथियों के रूप में सटे हुए काल के पालक १३ वें मल मास को भी हम सुखदायी बनावें । इसके अतिरिक्त संवत्सर के समान प्रजापति के ये द्वादश मासों के समान द्वादश अधिकारी और तदनुसार प्रजापति राजा के १२ स्वरूपों के भी क्रम से ये नाम हैं ।

मधुर स्वभाव होने से 'मधु', अन्न आदि मधु या उनका उत्पादक प्रबन्धक 'माधव', शुद्धि करने एवं तेजस्वी होने से 'शुक्र', ज्योतिष्मान्, सत्य व्यवहारवान् होने से 'शुचि', जलवर्षक होने या सब को बांधने वाला प्रबन्धक होने से 'नभस्', उस कार्य में उत्तम सहायक 'नभस्य' अन्नोत्पादक होने से 'इष्', बलोत्पादक या पराक्रमी होने से 'ऊर्ज', शत्रुदमनकारी बलवान् 'सहस्', उसका उत्तम सहयोगी 'सहस्य' शत्रुतापक 'तपस्', उसका उत्तम सहयोगी 'तपस्य' और पापी पुरुषों का अध्यक्ष जेलर 'अंहसस्पति' ये राजपदाधिकारी समझने चाहियें ।

वाजाय स्वाहा प्रसवाय स्वाहापिजाय स्वाहा क्रतवे स्वाहा स्वः स्वाहा मूर्ध्ने स्वाहा व्यश्नुविने स्वाहान्त्याय भौवनाय स्वाहा भुवनस्य पतये स्वाहाधिपतये स्वाहा प्रजापतये स्वाहा ॥३२॥

आयुर्यज्ञेन कल्पतां स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पतां स्वाहापानो

यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा व्यानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा समानो यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा मनो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहात्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा पृष्ठं यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬस्वाहा ॥ ३३ ॥

भा०—(३२ । ३३) की व्याख्या देखो क्रम से, अ० १८ मन्त्र २८ । २९ ॥ (स्वः स्वाहा,) सुख और प्रकाश हमें उत्तम रीति से प्राप्त हो, (मूर्ध्ने स्वाहा) शिर हमारा उत्तम सुख प्राप्त करे, उसको हम उत्तम रीति से शुद्ध पवित्र बलवान् करें। (व्यश्नुविने स्वाहा) विविध अंगों में व्यापक, वीर्य और उसके समान बलकारी पुरुष की वृद्धि हो।

(प्राणः अपानः, व्यानः, उदानः, समानः, यज्ञेन, कल्पताम्, स्वाहा) प्राण अपान, व्यान, उदान, समान पांचों शरीरस्थ वायुएं हमारे यज्ञ, परस्पर संगति, योगाभ्यास और साधना से अधिक बलशाली हों।

एकस्मै स्वाहा द्वाभ्याᳬ स्वाहा शताय स्वाहैकशताय स्वाहा व्युष्ट्यै स्वाहा स्वर्गाय स्वाहा ॥ ३४ ॥

एकादयो देवताः । आर्चिउष्णिक् । धैवतः ॥

भा०—(एकस्मै, द्वाभ्यां, स्वाहा) एक परमेश्वर, दो कार्य और कारण, इनको उत्तम साधना से साधो। ईश्वर की उपासना करो और कार्य और कारण का ज्ञान करो। इसी प्रकार (एकस्मै, द्वाभ्यां, त्रिभ्यः, चतुर्भ्यः, इत्यादि) एक, दो, तीन, चार, पांच आदि सभी संख्या से परिमित

३३—'आन्त्यायाय स्वाहा आन्त्यायनाय स्वाहा भौ०' इति काण्व० ।

पदार्थों को सुख से प्राप्त करो, उनका सदुपयोग करो। और इन संख्या से परिमित आयु के वर्ष भी सुखकारी हों। उनको हम सुखकारी बनावें। और अन्त में सौ वर्ष तक जीवें तब (शताय स्वाहा) सौ वर्ष का जीवन भी सुखकारी हो और अधिक जीवन हो तो (एकशताय स्वाहा) एक-सौ एकवां वर्ष भी सुखकारी हो। इससे अधिक की गणना दो, तीन आदि पहले कह चुके। विशेष पाप भावों को दहन करने वाली शक्ति की (व्युष्ट्यै स्वाहा) उन्नति हो, वह हमें प्राप्त हो। और (स्वार्गाय स्वाहा) स्वर्ग, अर्थात् सुख देनेवाले पदार्थ और उसके निमित्त पुरुषार्थ हमें उत्तम रीति से प्राप्त हों, उस आनन्दमय मोक्ष को हम साधना करें।

॥ इति द्वाविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते
यजुर्वेदालोकभाष्य एकविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्। स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३।४॥

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिः सूर्य्यस्ते महिमा। यस्तेऽहन्त्संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा सम्बभूव यस्ते दिवि सूर्य्ये महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ॥ २ ॥

प्रजापतिर्देवो देवता। निचृदाकृतिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे राजन्! तू (उपयाम-गृहीतः असि) राजव्यवस्था या समस्त प्रजा के निर्धारित राजनियमों द्वारा स्वीकृत या बद्ध है (जुष्टं) सबके प्रेमपात्र (त्वा) तुझको (प्रजापतये) प्रजापति के पद के लिये (गृह्णामि) स्वीकार करता हूं और नियुक्त करता हूं। (ते एषः योनिः) तेरा यह स्थान, पद, अधिकार है। (सूर्यः ते महिमा) सूर्य तेरा महान् सामर्थ्य है। अर्थात् सूर्य तेरे बड़े अधिकार और सामर्थ्य को बतलाता है। अर्थात् सूर्य जिस प्रकार दिन को प्रकट करता है वह अन्धकार को नाश करता है इससे दिन में सूर्य का महान् सामर्थ्य प्रकट होता है, उसी प्रकार शत्रुरूप अन्धकार और अज्ञान को नाश करके प्रजा में सुख, शान्ति और ज्ञानप्रकाश फैला कर सब प्रजाजन को कार्यों में प्रवृत्त कराने रूप (यः) जो (ते) तेरा (अहनि) दिन में दिन के समान तेरे उज्ज्वल

२—वाया अन्तरिक्षे० इति काण्व०।

राज्य में (महिमा) महान् सामर्थ्य (संबभूव) अच्छी प्रकार प्रकट हो रहा है और (संवत्सरे) सूर्य जैसे वर्ष में १२ मासों को उत्पन्न कर उनमें भूलोक से जल ग्रहण कर, पुनः वर्षा कर अन्नादि उत्पन्न करता, एवं समस्त प्राणियों को पालन करता है उसी प्रकार प्रजा से कर लेकर दुष्टों का दमन कर, सब को वर्षा के समान शान्ति देकर, ऐश्वर्य को प्रजा के हित लगा कर (संवत्सरे) पुनः समस्त प्रजाओं को एकत्र बसा देने रूप कार्य में (यः ते महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य है, और (वायौ) वायु जिस प्रकार सब प्राणों का आधार है उसी प्रकार सब के जीवनों का आधार होने से (यः) जो तेरा महान् सामर्थ्य (वायौ) वायु नाम महाभूत में और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष जिस प्रकार सब को आच्छादित करता है उसी प्रकार सब पर छत्र-छाया रखने वाले तेरा (यः) जो (महिमा) महान् सामर्थ्य (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (संबभूव) प्रकट होता है। अथवा—(अन्तरिक्षे वायौ) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार वायु सर्वव्यापक और बेरोकटोक बड़े वेग से व्यापता, गति करता है उसी प्रकार तू (अन्तरिक्षे) अपने और शत्रु राष्ट्र के बीच में स्थित मध्यम राष्ट्र में बेरोक गति करने का बड़ा प्रबल, महान् सामर्थ्य है, (दिवि सूर्ये) परले महान् आकाश में जिस प्रकार सूर्य प्रखर तेज से चमकता है, कभी अस्त नहीं होता, सबको प्रकाशित करता है उसी प्रकार (दिवि) तेजोमय राजसभा में तेरा सूर्य के समान जो प्रखर (यः महिमा संबभूव) महान् सामर्थ्य प्रकट है (तस्मै) उस (ते) तुझ (प्रजापतये) प्रजापालक राजा के (महिम्ने) महान् सामर्थ्य के लिये और (देवेभ्यः) तेरे अन्य देव, दानशील, विजयी, विद्वान् तेजस्वी पुरुषों के लिये भी (स्वाहा) हम उत्तम आदर सत्कार करते हैं। परमेश्वर पक्ष में—योग के यम नियमों से तू साक्षात् किया जाता है। (जुष्टं) अति सेवनीय तुझको (प्रजापतये गृह्णामि) प्रजापालक परमेश्वर करके मानता हूं (एषः) यह समस्त

विश्व (ते) तेरा निवासस्थान है। (सूर्यः ते महिमा) सूर्य तेरी महिमा है, (यः ते अहन् संवत्सरे) प्रतिदिन और प्रतिवर्ष में जो तेरा महान् सामर्थ्य (सं बभूव) प्रकट होता है, (यः ते महिमा वायौ अन्तरिक्षे संबभूव) जो तेरी महिमा वायुगण और अन्तरिक्ष में विद्यमान है और (यः ते दिवि सूर्ये महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य तेजोमय सूर्य में प्रकट है उस महान् सामर्थ्य स्वरूप समस्त प्रजापालक परमेश्वर की और (देवेभ्यः) उसके प्रकट दिव्य गुणों की मैं (सु-आहा) सदा उत्तम स्तुति करूं।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक ऽइद्राजा जगतो बभूव ।
य ऽईशे ऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

कः प्रजापतिर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—परमेश्वर पक्षमें—(यः) जो परमेश्वर (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (प्राणतः) प्राण लेने वाले और (निमिषतः) नेत्रादि के चेष्टा करने वाले सजीव, चर (जगतः) जगत् का (एक इत्) एकमात्र (राजा बभूव) राजा है। और (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) दोपाये मनुष्य, पक्षी और (चतुष्पदः) चौपाये पशु संसार का भी (ईशे) स्वामी है, (कस्मै देवाय) उस 'क' प्रजा के विधाता, परमेश्वर, प्रजापति, देव, सर्वद्रष्टा, सर्व सुखदाता के लिये (हविषा) भक्ति से (विधेम) स्तुति, सेवा, प्रार्थना करें।

राजा के पक्षमें—(यः) जो (महित्वा) अपने बड़े सामर्थ्य से समस्त प्राणधारी जगत् का राजा है, और दुपाये चौपायों का स्वामी है, उस राज्यकर्त्ता, विधाता, प्रजापति का हम (हविषा) उसकी आज्ञानुसार चल कर अथवा अन्नादि भेंट योग्य पदार्थ द्वारा (विधेम) सत्कार करें।

उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा। यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥ ४ ॥

विकृति । मध्यमः ॥

भा०—(उपयामगृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत्। हे राजन्! (ते महिमा चन्द्रमाः) तेरे महान् सामर्थ्य का एक स्वरूप चन्द्र है। अर्थात् तू चन्द्र के समान सबको आह्लादित, सुखी करता, रात्रि में भी प्रकाश और पहरेदारी करता है। अर्थात् (यः ते रात्रौ संवत्सरे महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य रात्रि और संवत्सर में (सं बभूव) प्रकट होता है और (यः ते महिमा पृथिव्याम् अग्नौ सं बभूव) जो तेरा महान् सामर्थ्य पृथिवी पर अग्नि अर्थात्—शत्रुसाधक नायक अग्रणी के रूप में प्रगट होता है, (यः ते महिमा) जो तेरा महान् सामर्थ्य (नक्षत्रेषु चन्द्रमसि) नक्षत्रों और उसके बीच में उपस्थित चन्द्रमा में (सं बभूव) प्रकट है, उस (ते प्रजापतये महिम्नः) तुझ प्रजापति के महान् सामर्थ्य और (देवेभ्यः) तेरे दिव्य गुणों के लिये (स्वाहा) हम तेरा आदर सत्कार करते हैं। राजा का महान् सामर्थ्य रात्रि में कैसे? रात्रि में जिस प्रकार चन्द्र प्रकट होता है, उसको प्रकाशित करता है और रात्रि चन्द्र को अधिक उज्ज्वल करती है इसी प्रकार ऐश्वर्यों को देनेवाली, समस्त प्राणियों को रमण कराने वाली राजसभा या राष्ट्र–शक्ति में राजा की महत्ता प्रकट होती है। जिस राजव्यवस्था में प्रजाएं सुखी, रात को सुख से निर्भय रहेंगी वह व्यवस्था राजा की महिमा है। इसी प्रकार चन्द्रमा संवत्सर में नाना स्वरूप प्रकट करता है। सभी मासों, पक्षों का प्रवर्त्तक है। उसी प्रकार जो संवत्सररूप राष्ट्र है जिसमें सब प्राणी एकत्र सुख से रहते हैं, उसमें चन्द्र

स्वरूप राजा की महत्ता प्रकट होती है। पृथिवी पर अग्नि की महती सत्ता प्रकट होती है, वह सब को भस्म कर देती है उसी प्रकार राजा पृथिवी पर समस्त प्रतिद्वन्द्वी शत्रुओं को भस्म कर देता है। नक्षत्रों के बीच में जैसे चन्द्रमा की शोभा है वैसे ही 'नक्षत्र' अर्थात् क्षत्र-बल से रहित प्रजाओं के बीच क्षत्रिय राजा की शोभा है।

परमेश्वर के पक्षमें—परमेश्वर का महान् सामर्थ्य चन्द्र है उसका महान् सामर्थ्य रात्रि में, संवत्सर में, पृथिवी में, अग्नि में, नक्षत्रों में, चन्द्रमा में, सभी दिव्य पदार्थों में विद्यमान है। उन्ही दिव्य गुणों के लिये हम प्रजापालक परमेश्वर की स्तुति उपासना करें।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ ५ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। सूर्यराजाश्वात्मपरमेश्वराः स्तुतिविषया देवताः। गायत्री षड्जः।

भा०—परमेश्वर पक्षमें—जो विद्वान्, योगाभ्यासी जन (ब्रध्नम्) महान्, सूर्य के समान, सब के मध्य में स्थित होकर, सबको अपनी आकर्षण शक्ति से बांधने वाले, (परि तस्थुषः) अपने चारों ओर स्थिर चेतना रहित, महान्, पांच भूत आदि प्रकृति के विकार-पदार्थों के भीतर और बाहर सब प्रकार से (चरन्तम्) व्यापक (अरुषं) शरीर के सभी मर्मों में विराजमान आत्मा को (युञ्जन्ति) योग द्वारा साक्षात् करते हैं। वे (दिवि) ज्ञानमय मोक्ष में (रोचनाः) स्वतः दीप्तिमान् एवं यथा काम, यथारुचि होकर (रोचन्ते) प्रकाशित होते हैं।

आत्मा के पक्षमें—जो योगाभ्यासी (परितस्थुषः) चारों ओर स्थित इन्द्रियों में व्याप्त, (ब्रध्नम्) सब को अपने साथ बांधने वाले आत्मा को, अथवा, (तस्थुषः) स्थावर या स्थूल स्थिर देहों के (परि)

आधार पर (चरन्तम्) भोग करने हारे (अरुषम्) मर्मों में व्यापक आत्मा को योग द्वारा प्राप्त करते हैं वे (दिवि) ज्ञान प्रकाश में (रोचनाः) यथेष्ट प्रज्वलित होकर (रोचन्ते) सबके प्रीतिपात्र होते हैं, अथवा प्रकाशित होते हैं, अथवा यथेष्ट कामों को प्राप्त करते हैं।

सूर्यपक्षमें—(दिवि) आकाश में (रोचनाः) तेजस्वी नाना सूर्य (रोचन्ते) चमकते हैं। (परि तस्थुषः) चारों ओर स्थित ग्रहों तक (चरन्तम्) प्रकाश से व्यापनेवाले (ब्रध्नम्) उनको आकर्षण सामर्थ्य से बांधने वाले (अरुषम्) अति दीप्त सूर्य को (युञ्जन्ति) सब के सञ्चालक रूप से नियुक्त करते हैं।

राजा के पक्ष में—विद्वान् लोग (परितस्थुषः) चारों ओर खड़े रहनेवाले, अनुयायी लोगों और देशों को (चरन्तम्) भोग और पराक्रम द्वारा प्राप्त करनेवाले (अरुषम्) रोष रहित, सौम्य स्वभाव के, (ब्रध्नम्) सूर्य के समान तेजस्वी, सबके बांधनेवाले, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, महान् पुरुष को (युञ्जन्ति) राष्ट्रपति के पद पर नियुक्त करें और (रोचनाः) तेजस्वी पुरुष (दिवि) राजसभा में (रोचन्ते) विराजें।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ ६ ॥

सूर्यो देवता। विराड् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(काम्या) कमनीय, कान्तिमान्, सुन्दर (विपक्षसा) विविध बन्धनों से बंधे (हरी) दो घोड़ों को (रथे) रथ में जिस प्रकार (युञ्जन्ति) जोड़ते हैं उसी प्रकार (रथे) रमण योग्य इस शरीर में (काम्या) कान्तियुक्त, (विपक्षसा) विविध उपायों से वश में आये (हरी) वेगवान् प्राण और अपान को (युंजन्ति) योग द्वारा नियुक्त करते हैं। उसी प्रकार योगी जन (अस्य रथे) इस परमेश्वर के परम रस

में अपने (काम्या हरी) कमनीय, सुन्दर वेगवान् ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को भी लगा देते हैं। (अस्य रथे) इस राष्ट्रपति के राष्ट्र में भी (काम्या) सब की अभिलाषा के पात्र, (विपक्षसा) विविध पक्ष अर्थात् अनुयायियों वाले, (हरी) समर्थ पुरुषों को (युञ्जन्ति) नियुक्त करते हैं। अश्व कैसे ? (शोणा) लाल रंग के (धृष्णू) बलवान् दृढ़, (नृवाहसा) मनुष्यों को ढो लेजाने वाले। प्राणापान कैसे हैं, (शोणा) गतिशील, (धृष्णू) अन्य समस्त प्राणों को दमन करनेवाले, (नृवाहसा) शरीर के नेता प्राणों को अपने में धारण करनेवाले। दो विद्वान् नेता कैसे हों ? (शोणा) ज्ञानी अथवा लाल पोषाक पहनने वाले, अथवा तेजस्वी, (धृष्णू) धर्षणशील, (विपक्षसा) विपक्ष के पराभव करनेवाले, (नृवाहसा) नेता पुरुषों को सन्मार्ग पर लेजाने वाले।

यद्वातो॑ऽ अ॒पो अग॑नीगन्प्रि॒याम्मिन्द्र॑स्य त॒न्व॑म्।
ए॒तᳬ स्तो॑तर॒नेन॑ प॒था पुन॒रश्व॒मावर्त्तयासि नः ॥ ७ ॥

भा०—(यद्) जब (वातः) वायु के समान तीव्रगति होकर या प्रचण्ड होकर यह राजा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (प्रियाम्) प्रिय (तन्वम्) स्वरूप और (अपः) जल के समान शीतल स्वभाव वाले आप्त प्रजाओं को (अगनीगत्) प्राप्त हो, तब हे (स्तोतः) विद्वन्! (नः) हमारे (एतं) इस (अश्वम्) राष्ट्र के भोक्ता स्वामी को अश्व के समान (अनेन पथा) इस सन्मार्ग से (आवर्त्तयासि) लेआ। अर्थात् जब राजा अपनी प्रिय प्रजा को प्राप्त होकर स्वयं वायु के समान प्रचण्ड होकर चलने लगे तब विद्वान् पुरुष उसको सौम्य मार्ग में प्रवृत्त करें।

वस॑वस्त्वाञ्जन्तु गाय॒त्रेण॒ छन्द॑सा रु॒द्रास्त्वा॑ञ्जन्तु॒ त्रैष्टु॑भेन॒ छन्द॑सादि॒त्यास्त्वा॑ञ्जन्तु॒ जाग॑तेन॒ छन्द॑सा। भूर्भुव॒: स्व॒र्लाजी३ञ्छाची३न्यव्ये॒ गव्य॑ऽ ए॒तद॒न्नम॑त्त देवा ए॒तद॒न्नम॑द्धि प्रजापते ॥ ८ ॥

वाय्वादयो देवताः अत्यष्टिः। गांधारः॥

भा०—हे राजन् ! (वसवः) वसु नामक विद्वान् जन (त्वा) तुझको (गायत्रेण छन्दसा) गायत्री मन्त्र से, अथवा पृथ्वी पालन, अथवा ब्राह्मबल से (अञ्जन्तु) ज्ञानवान् एवं युक्त करें। (रुद्राः) रुद्र नैष्ठिक पुरुष (त्वा) तुझको (त्रैष्टुभेन छन्दसा) त्रिष्टुभ मन्त्र से (त्वा अञ्जन्तु) तुझको ज्ञानवान् करें अथवा (रुद्राः) क्षात्रियगण तुझको क्षात्रबल से युक्त करें। (आदित्याः) आदित्य ब्रह्मचारी लोग (त्वा) तुझको (जागतेन छन्दसा) जगती छन्द के मन्त्रों से शिक्षित करें और वैश्यगण व्यापारों द्वारा तुझे समृद्ध करें।

इसी प्रकार परमेश्वर के स्वरूप को (वसवः) बसनेवाले, जीवगण जीवों के बसाने वाले पृथिवी आदि लोक (गायत्रेण छन्दसा) पृथ्वी लोक के ज्ञान से प्रकाशित करते हैं। (रुद्राः) अन्तरिक्षस्थ वायु प्राण आदि पदार्थ (त्रैष्टुभेन छन्दसा) अन्तरिक्षस्थ जल वायु विद्युत् पदार्थों से परमेश्वर के स्वरूप को प्रकट करते हैं। सूर्य आदि लोक जागत छन्द से अर्थात् नाना जगतों के स्वरूप से ईश्वर के महान् सामर्थ्य को प्रकट करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! (भूःभुवः स्वः) पूर्व कहे उक्त तीनों लोक हैं भूः, भुवः, स्वः, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और प्रकाशस्थ लोक इन तीनों को तू वश कर। हे (लाजिन्) प्रकाशों से प्रकाशवान् और हे (शाचिन्) शक्ति से शक्तिमान् ! तू उक्त लोकों को अपने वश कर। हे (देवाः) विद्वान् पुरुष ! (यव्ये) जव आदि से बने और (गव्ये) गो दुग्ध आदि के बने पदार्थ के स्वरूप में विद्यमान (एतत्) इस (अन्नम्) भोजन करने योग्य अन्न को (अत्त) खाओ। हे (प्रजापते) प्रजापालक राजन् ! तू भी (एतत् अन्नम्) इस अन्न को (अद्धि) भोजन कर।

लाजिन् शाचिन् इत्येतत् संबोधनपदद्वयम्। दूरादाह्वाने प्लुतिः। लाजाः दीप्तयोऽस्य सन्तीति लाजी दीप्तिमान्। शाचाः शक्तयोऽस्य सन्तीति स शाची। शक्तिमान् इत्यर्थः।

कः स्विदेकाकी चरति कऽ उ स्विज्जायते पुनः ।
किꣳ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ९ ॥

[९-१२] ब्रह्मोद्यम् । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—बतलाओ (कः स्वित्) कौन (एकाकी चरति) अकेला विचरता है ? (कः उ स्वित्) बतलाओ कौन (पुनः) बार २ पैदा होता है ? (किं स्वित्) बतलाओ क्या पदार्थ (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) उपाय है ? (किम्) और कौनसा पदार्थ (महत्) बड़ा भारी (आवपनम्) बोने का खेत है ?

सूर्यऽ एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ १० ॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य, सूर्य के समान सबका प्रेरक परमेश्वर और विद्वान् परिव्राट् और राजा (एकाकी चरति) अकेला, अद्वितीय विचरता है । (चन्द्रमाः) चन्द्र जिस प्रकार बार २ पैदा होता है कला घटते २ नाम शेष होकर पुनः कलावृद्धि से बढ़ता है उसी प्रकार जीव आत्मा बालक रूप से बढ़कर युवा होता, पुनः क्षीण होकर मृत्यु द्वारा अदृष्ट हो जाता है, अथवा योग द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होकर पुनः संसार में आता है । इसी प्रकार प्रजा को अह्लादित करनेवाला राजा युद्धादि में क्षीण होकर पुनः समृद्ध हो जाता है । (अग्निः) अग्नि, (हिमस्य) शीत का (भेषजम्) उपाय है । (हिमस्य) हनन करनेवाले शत्रु या दुष्ट पुरुष का वश करने का उपाय भी (अग्निः) अग्नि के समान प्रतापी राजा ही है । (भूमिः) यह भूमि ही (महत् आवपनम्) बड़ाभारी बीज बोने के योग्य खेत है । समस्त स्थूल विकारों को उत्पन्न करनेवाली प्रकृति ही परमेश्वर के बीज वपन का स्थान है । वही 'क्षेत्र' है । परमात्मा 'क्षेत्री' है ।

आदित्यस्य हि सहायनैरपेक्ष्येण जगद्भ्रमणं प्रसिद्धम्। कृष्णपक्षे क्षीणश्चन्द्रः शुक्लपक्षे पुनर्जायत इति प्रसिद्धम्। अग्निसेवया हि शैत्योपद्रवो निवर्तते इति सायणः तै० ब्रा० भाष्ये [तै० ब्रा० । ८ । ३ । ६ । ५ ॥]

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किꣳ स्विदासीद् बृहद्वयः।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ११ ॥

भा०—(पूर्वचित्तिः) सबसे पूर्व की स्मरण करने योग्य (का आसीत्) कौनसी स्थिति है। और (किं स्वित्) बताओ ! कौनसा (बृहद् वयः) सबसे बड़ा बल है। (का स्वित्) कौनसी (पिलिप्पिला) 'पिलिप्पिला' सुन्दर अर्थात् शोभावती है ? (का स्वित्) कौनसी (पिशंगिला) 'पिशंगिला' अर्थात् समस्त रूपों को निगल जाने वाली है।

द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ १२ ॥

भा०—(द्यौः) द्यौ, वृष्टि ही (पूर्वचित्तिः) 'पूर्वचित्ति' है अर्थात् सबसे प्रथम स्मरण करने योग्य पदार्थ है। (अश्वः) समस्त पदार्थों को भस्मकर खाजाने वाला, सर्वव्यापक अग्नि ही (बृहत् वयः) सबसे बड़ा बल है और (अविः) सब की रक्षिका भूमि (पिलिप्पिला) 'पिलिप्पिला' सब से अधिक शोभा वाली है। (पिशंगिला) और 'पिशंगिला', समस्त पदार्थों के रूपों को निगलजाने वाली (रात्रिः आसीत्) रात्रि है।

राष्ट्र पक्षमें—सबसे पूर्व चयन या निर्माण करने योग्य, (द्यौः) प्रकाश ज्ञानवाली राजसभा है। (अश्वः) सर्व राष्ट्र का भोक्ता राजा या तुरंग बल ही (बृहद् वयः) बड़ा भारी बल है। (अविः) सबकी रक्षा करनेवाली राजशक्ति (पिलिप्पिला) पालन करनेवाली 'राष्ट्र श्री' है। (रात्रिः) समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करनेवाली, सबको रमानेवाली रात्रि, राजशक्ति ही (पिशंगिला) समस्त रूपवान् पदार्थों को अपने भीतर निगल जाती है।

श्रीर्वै पिलिप्पिला । अहोरात्रे वै पिशंगिले । शत० १३ । २ । ६ । १६ ॥ या वृष्टिकारणभूता द्यौः सैव प्रथमतः श्वेतयमाना । प्रथमतो वृष्टौ सत्यां पश्चादोपधिद्वारा सर्वे प्राणिनो जीवन्ति ॥ युद्धद्वारा वीरजीवन हेतुत्वादश्वो वृहद्वयः ॥ अतिशयेन रूपवती पिशङ्गिला रात्रिश्च तादृशी चान्द्रिकया नक्षत्रैश्च रूपत्वप्रतिभासात् प्रजासमूहनिमित्तस्य ध्वनिविशेषस्य-पिलिप्पिलेत्यनुकरणं श्रीश्च तथाविधध्वनियुक्ता यस्मिन् गृहे धनं समृद्धिस्तत्र जनबाहुलतया निरन्तरं तथाविधः शब्दो भवति । इति सायणः ।

वायुष्ट्वा पचतैरवत्वसितग्रीवश्छागैर्न्यग्रोधश्चमसैः शल्मलिर्वृद्ध्या । एष स्य राथ्यो वृषा पड्भिश्चतुर्भिरेदगन्ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु नमोऽग्नये ॥ १३ ॥

ब्रह्मादयः अश्वो वा देवता । भुरिगतिजगती । निषादः ।

भा०—हे राजन् ! (त्वा) तुझको (वायुः) वायु के समान वेगवान्, शत्रुओं को अपने प्रबल आक्रमण से उखाड़ने वाला वीर पुरुष (पचतैः) अपने शत्रुओं को परिपाक या पीड़न करने के साधनों से (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे । (असितग्रीवः) नीले गर्दन वाला, अर्थात् नीले मणि या विशेष चिह्न को कण्ठ में पहिनने वाला वीर पुरुष तुझे (छागैः) शत्रुओं के छेदन करने वाले अस्त्रों या वीरों से (अवतु) तेरी रक्षा करे । (न्यग्-रोधः) वट जिस प्रकार ज्यों २ फैलता जाता है त्यों स्थान २ पर अपने मूल छोड़ता है उसी प्रकार जिस २ देश को विजय करता जा र वहां वहां ही छावनी जमा कर राजा के शासन-सूत्रों को छोड़नेहारा 'वनस्पति' नामक अधिकारी (चमसैः) पर राष्ट्र को वश करने या हड़प जाने वाले सैनिकों द्वारा या पिण्डभोजी, वेतनबद्ध भृत्यों से (त्वा अवतु) तेरी रक्षा करे । (शल्मलिः वृद्ध्या) और सैमर वृक्ष के समान खूब विशाल प्रकाण्ड फैला २ कर बढ़ने और परिणाम में रूई

उड़ा २ कर मानो राजा की कीर्त्ति फैलाने वाला अधिकारी या प्रधान माण्डलिक अपनी वृद्धि से तुझे बढ़ावे। (एषः) यह (अस्य) इस राजा का (राथ्यः) रथ समूहों का स्वामी (वृषा) बलवान् सेनापति (चतुर्भिः पड्भिः) चार पदों या अधिकारों से युक्त होकर (आ अगन् इत्) आवे और (अकृष्णः च) अकृष्ण अर्थात् शुक्ल, निष्पाप या शुद्ध श्वेतवस्त्र धारण करने हारा (ब्रह्मा) चारों वेदों का ज्ञाता होकर (नः) हमें (अवतु) रक्षा करे। (नमः अग्नये) उस अग्नि के समान तेजस्वी वेदज्ञ विद्वान्, अग्नि के समान तेजस्वी राजा और सेनापति का हम प्रजाजन झुक कर आदर करें।

सꣳशितो रश्मिना रथः सꣳशितो रश्मिना हयः।
सꣳशितो अप्स्वप्सुजा ब्रह्मा सोमपुरोगवः ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (रश्मिना) रस्सी से (संशितः) अच्छी प्रकार बँधा (रथः) रथ अच्छा सुखकारी होता है और जिस प्रकार (हयः) घोड़ा भी (रश्मिना) रासों से बंधा हुआ उत्तम और वशीभूत रहता है उसी प्रकार (अप्सुजाः) प्रजा में से उत्पन्न विद्वान् (अप्सु संशितः) प्रजाओं द्वारा ही भली प्रकार नियम व्यवस्थाओं और कर्म, कर्त्तव्यों से बद्ध हो। और (ब्रह्मा) ब्रह्म अर्थात् वेद का जानने हारा विद्वान् ही (सोम-पुरोगवः) राजा के आगे २ चलने हारा, उसका मार्गदर्शक हो। अथवा—(अप्सुजाः) प्रजाओं में विशेष तेज से स्वामी बनने वाला राजा (अप्सु संशितः) प्रजाओं द्वारा ही खूब तीक्ष्ण, एवं कर्त्तव्यपरायण, व्यवस्था बद्ध किया जाकर (ब्रह्मा) महान् शक्तिमान् प्रभु और विद्वान् के समान (सोम-पुरोगवः) ऐश्वर्य या राष्ट्र का नेता हो।

अध्यात्म में—(रथः) रमण साधन देह, (रश्मिना) सूर्य के किरण के समान तापदायी तप से (संशितः) तीक्ष्ण किया जाय।

(हयः) इन्द्रियें भी तप से तीक्ष्ण हों । (अप्सुजाः) प्राण भी तप से तप्त हो । और तब (ब्रह्मा) विद्वान् योगी (सोम-पुरोगवः) सोमनाम ब्रह्म रस प्राप्ति में अग्रसर होता है ।

स्वयं वाजिँस्तन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व ।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे ॥ १५ ॥

विराट् छन्दः ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् ! तू (तन्वं) अपने शरीर या विस्तृत राष्ट्र को (स्वयं) स्वयं, अपनी इच्छानुसार (कल्पयस्व) सजा, उत्तम और समर्थ, अधिक बलवान् बना । (स्वयं यजस्व) स्वयं यथेच्छ दान कर, अथवा स्वयं अन्यों से संगति लाभ कर । (स्वयं जुषस्व) स्वयं यथेच्छ राष्ट्र का प्रेम से सेवन कर । (अन्येन) अन्य, तेरे से भिन्न २ कोई, तेरा शत्रु राजा (ते) तेरे (महिमा) महान् सामर्थ्य को न (सं नशे) प्राप्त नहीं कर सके । अथवा तेरी महिमा को कोई नष्ट नहीं करे ।

अध्यात्म में—हे (वाजिन्) आत्मन् ! तू अपने शरीर को यथेच्छ ग्रहण कर । स्वयं (यजस्व) अध्यात्म यज्ञ कर। स्वयं (जुषस्व) सेवन कर । तेरी महिमा तुझ से अन्य, जड़ देह, प्राणादि प्राप्त नहीं कर सकती ।

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽ इदेषि पथिभिः सुगेभिः ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥ १६ ॥

अश्वो देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—(न वा) और न ही (एतत्) इस प्रकार शक्तिशाली होजाने पर तू (म्रियसे) मर सकता है । (न देवान्) और न देवों, अन्य विद्वान्, एवं शासक और विजयशील, या तुझे चाहने, या तुझ से धन चाहने वाले लोगों को (इत्) ही (रिष्यसि) विनष्ट

करे। तू (सुगेभिः) सुख से गमन करने योग्य, सुगम (पथिभिः) प्रजा पालन के मार्गों से (एपि) गमन कर। (यत्र) जिस मार्ग में (सुकृतः) उत्तम सदाचारी पुरुष (आसते) स्थित रहते हैं और (यत्र) जिस पर उच्च यशस्वी पद को (ते ययुः) वे प्राप्त होते हैं। (देवः सविता) सब का द्रष्टा और दाता, सर्वोत्पादक परमेश्वर या तेरा मार्गदर्शक प्रेरक विद्वान् (तत्र) वहां ही (दधातु) स्थापित करे।

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽएतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः स ते लोको भविष्यति तञ्जेष्यसि पिबैताऽ अपः। वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्वायुः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अपः। सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त सऽ एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैताऽ अपः ॥ १७ ॥

अग्न्यादयो देवताः। अतिशक्वर्यौ पञ्चमः ॥

भा०—(अग्निः) 'अग्नि', ज्ञानी (पशुः) सर्वद्रष्टा, मार्गदर्शक, निरीक्षक (आसीत्) है। (तेन) उससे विद्वान् लोगों के समान दिव्य पांचों भूत (अयजन्त) यज्ञ किया करते हैं। (सः) वह (एतं लोकम्) इस लोक को (अजयत्) विजय कर लेता है, (यस्मिन् अग्निः) जिसमें अग्नि तत्व ही मुख्य बल है। तू भी हे राजन्, अग्नि के समान तेजस्वी होकर राष्ट्र का निरीक्षक साक्षी होकर रह। और इससे (सः) वह यह भूलोक (ते लोकः) तेरा अपना आश्रयस्थान (भविष्यति) हो जाएगा। तू (तं जेष्यसि) उसी लोक को विजय कर लेगा। इसके लिये (एताः अपः) इन आप्त पुरुषों का ज्ञान रस और इन प्रजाओं के ऐश्वर्य रस का (पिब) पान कर।

(वायुः पशुः आसीत्) 'वायु' सर्वद्रष्टा है, (तेन अयजन्त) देवगण उससे यज्ञ करते हैं। (सः) वह वायु (एतम् लोकम् अजयत्) इस

अन्तरिक्ष लोक का विजय करता है (यस्मिन् वायुः) जिसमें वायु प्रधान बल है। (ते सः लोकः भविष्यति) तेरा वही लोक हो जायगा (एताः अपः पिब) तू इन आप्त जनों और प्रजागणों के ज्ञान और ऐश्वर्य का पान कर।

(सूर्यः पशुः आसीत्) सूर्य पशु, सर्वद्रष्टा है। देवगण (तेन अयजन्त) उससे ही यज्ञ सम्पादन करते हैं। (सः एतं लोकम् अजयत्) सूर्य उस लोक का विजय करता है (यस्मिन् सूर्यः) जिसमें सूर्य स्वयं विराजता है। (ते सः लोकः भविष्यति) तेरा भी वही लोक हो जायगा। (एताः अपः पिब) इन आप्तजनों के ज्ञानों और प्रजाओं का ऐश्वर्य पान कर।

अर्थात् राजा वायु के समान प्रचण्ड हो तो उसको मुख्य बनाकर 'देव' विजिगीषु जन युद्ध यज्ञ करते हैं। उससे वे अन्तरिक्ष लोक अर्थात् मध्यम राजाओं पर विजय करते हैं। इससे वह अन्तरिक्ष में वायु के समान और प्रजा का प्राण होकर विराजता है। यही राजा का अन्तरिक्ष विजय है। इसी प्रकार सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी को मुख्य बनाकर विजिगीषु गण युद्धयज्ञ करते हैं इससे वह स्वयं राजा सूर्य के समान 'द्युलोक' अर्थात् समस्त राजाओं और विद्वानों पर वश पाता है वह समस्त राजाओं के बीच, ग्रहों के बीच सूर्य के समान विराजता है। इन तीनों दशा में उसको प्रजा का ऐश्वर्य और विद्वानों का साहाय्य प्राप्त करना आवश्यक है।

इस मन्त्र की योजना अ० ६। १० के साथ लगाकर देखो॥

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा।
अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्॥ १८॥

प्राणादयो देवताः। विराड् जगती। निषादः॥

भा०—(प्राणाय, अपानाय, व्यानाय स्वाहा) प्राण, अपान और व्यान इन तीनों मुख्य शरीर के प्राणों को उत्तम रीति से प्रयोग करो और उनको उत्तम सामर्थ्य प्राप्त हो ।

सामर्थ्यवान् पुरुष के न होने से राजा से रहित राज्यलक्ष्मी कहती है हे (अम्बे) मातः पृथिवि ! हे (अम्बिके) मातः पृथिवि ! हे (अम्बालिके) मातः पृथिवि ! (अश्वकः) कुत्सित राजा तो (ससस्ति) आलस्य और अज्ञान से पड़ा सोता है । (सुभद्रिकाम्) उत्तम सुख-सम्पदा से युक्त (काम्पीलवासिनीम्) सुन्दर सुखप्रद, शोभाजनक वस्त्रों से ढकी सुन्दरी स्त्री के समान (काम्पीलवासिनीम्) सुखों के बांधनेहारे पति को राष्ट्रपति के अपने ऊपर बसाने में समर्थ (मा) मुझको (कः चन) कोई भी वीर-जन (न नयति) प्राप्त नहीं करता । कुत्सित आचरण वाला राजा मुझ राज्यलक्ष्मी को क्या भोग कर सकता है ? वीरभोग्यावसुन्धरा ।

'काम्पीलवासिनीम्'—काम्पीलनगरे हि सुभगा सुरूपा विदग्धा स्त्रियो भवन्तीत्युवटः । तथैव च महीधरः । काम्पीलशब्देन वस्त्रविशेष उच्यते । तं वस्ते आच्छादयति इति काम्पीलवासिनी इति सायणस्तैत्तिरीयसंहिता भाष्ये । का० ७ । ४ । १६ ॥ शृङ्गारार्थं विचित्रदुकूलवस्त्रोपेते इत्यपि सायणः । तैत्तिरीयब्राह्मणभाष्ये का० ३ । ६ । ६ ॥ कं सुखं पीलयति बध्नाति गृह्णाति इति कंपीलः । स्वार्थे अण् । तं वासयितुं शीलमस्यास्ताम् लक्ष्मीम् । इति दयानन्दः स्वभाष्ये । कं सुखं पीलयति बध्नाति इति कम्पीलः, अथवा कं प्रजापतिं पीड़यति । डो लत्वं छान्दसम् । सुखेन बध्नाति आश्लिष्यति यः सः पतिः प्रियतमः । तं वासयितुं शीलमस्याः स्त्रियाः राज्य-लक्ष्म्याः वा । सा काम्पीलवासिनी । अथवा कामेन यथाकामं वा पीडयति आश्लिष्यतियः स काम्पीलः । अलोपो लं त्वं च छान्दसम् । पृषोदरादित्वाद्

साधुः । तं वासयति तदधीनं वा वसति या सा काम्पीलवासिनी स्त्री । तत्सादृश्याच्च राजलक्ष्मीः । वेदे नगरविशेषाप्रसिद्धेरुवटमहीधरौ न समीचीनौ ।

उक्त मन्त्र का शुक्ल कृष्ण दोनों शाखाओं में विनियोग भेद होने से कर्म काण्डानुसारी योजना व्यभिचरित है इसलिये उवटादिकृत कर्मकाण्डपरक योजना असंगत, अव्यवस्थित और अश्लील है ।

स्वयंवरा कन्या का माता आदि बूढ़ी स्त्रियों से ऐसा कहना कि–हे माता ! क्षुद्र पुरुष तो आलस्य में सोते हैं । मुझ कल्याणी को कोई वैसा पुरुष न प्राप्त करे, बहुत उपयुक्त है । उस पक्ष में योजना नीचे लिखे प्रकार से है ।

हे (अम्बे अम्बालिके अम्बिके) माता ! हे दादी ! हे परदादी ! (अश्वकः ससस्ति) क्षुद्र पुरुष प्रायः आलस्य किया करता है । वह (सुभद्रिकाम्) उत्तम कल्याण लक्षणों से युक्त (काम्पीलवासिनीम्) शुभ, सुखप्रद पति के पास रहने योग्य (मां) मुझको (कः चन) वैसा कोई भी (न नयति) न लेजावे ।

इससे अगले १९–३१ तक १२ मन्त्र राष्ट्र की प्रजा और राजा के प्रबल दुर्बल और समबल के परस्पर भोग्य-भोक्तृरूप वर्त्ताव का वर्णन करते हैं और श्लेष से गृहपति और गृहपत्नी के परस्पर रहस्य का भी वर्णन करते हैं । यहां विशेषतः प्रथम पक्ष ही मुख्य है क्योंकि शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण दोनों में उस पक्ष को लेकर ही व्याख्यान है । और अश्वमेध का प्रकरण भी उसी अर्थ को पुष्ट करता है ।

अध्यात्म में—हे (अम्बे) जगत् की माता स्वरूप परमात्मन् सबको परमोपदेश देने वाली शक्ते ! (अश्वकः ससस्ति) कुत्सित विषयों का भोक्ता मनुष्य प्रमाद में पड़ा सोता है । और (मां) मुझ पुरुष, या आत्मा को (सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्) अति कल्याण कारिणी एवं परम सुख

मय ब्रह्म में रहने वाली ब्रह्मविद्या के प्राप्त (मा कश्चन न नयति) मुझे कोई नहीं लेजाता ।

गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ॥ १६ ॥

गणपतिर्देवता । शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—हे (वसो) सब राष्ट्र को बसाने हारे ! परमेश्वर और राजन् ! हे विद्वन् ! हम (त्वा) तुझको (गणानां) समस्त गणों का (गणपतिम्) गणपति, गणनायक (हवामहे) स्वीकार करते हैं । (प्रियाणां) सब प्रिय पदार्थों का तुझको (प्रियपतिम्) प्रियपति, पालक (हवामहे) स्वीकार करते हैं । और (निधीनां) समस्त ख़जानों का तुझको (निधिपतिम्) निधिपति, कोशपाल, (हवामहे) स्वीकार करते हैं । हे (वसो) राष्ट्र को बसाने हारे राजन् ! परमेश्वर ! तू (मम) मुझ पृथ्वीवासी राष्ट्र प्रजा का भी पति है । (अहम्) मैं प्रजा (गर्भधम्) अपने 'गर्भ'=ग्रहण करने या वश करने के सामर्थ्य को धारण करने वाले तुझ पति को (आ अ जानि) प्राप्त होती हूं । तू (गर्भधम्) अपने भीतर समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने वाली मुझको (अजासि) प्राप्त हो ।

पति-पत्नी के पक्ष में—हे पते ! मैं समस्त गणों में स्त्री के समान अपना गणपति, समस्त प्रिय जनों में तुझको प्रियपति, अपने समस्त ऐश्वर्यों का निधिपति तुझको ही कहती हूं । मैं गर्भ धारण कराने में समर्थ तुझको (आ अजानि) प्राप्त होती हूं । गर्भ धारण में समर्थ, उर्वरा मुझ पत्नी को तू प्राप्त हो ।

परमेश्वर सबका गणपति, प्रियपति और निधिपति है । प्रकृति कहती है—हे ईश्वर ! हिरण्यगर्भ को धारण करनेवाले, तुझको मैं (आ

अजानि) प्राप्त होती हूं और तू (गर्भधम्) समस्त संसार को अपने भीतर अव्यक्त रूप में धारण करनेवाली मुझ प्रकृति को (त्वम् अजासि) तू प्राप्त होता और सृष्टि को उत्पन्न करता है । अथवा (अहम्) मैं जीव (गर्भधम्) हिरण्यगर्भ के धारक और संसार को अपने बीच धारण करनेवाली प्रकृति के भी धर्त्ता तुझको जानूं, प्राप्त होऊं और तू प्रकृति को प्राप्त हो ।

'गर्भधं'—गर्भधारकं कलत्ररूपं इति सायणः । तै० ब्रा० भा० । 'गर्भधात्री' इति सायणः । तै० सं० भा० ॥

ताऽ उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके प्रोर्णुवाथां वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु ॥ २० ॥

लिंगोक्ते राजप्रजे, पतिपत्नी च देवते । स्वराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(तौ उभौ) वे हम दोनों राजा और प्रजा मिलकर (चतुरः पदः) चारों पद धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन प्राप्तव्य पुरुषार्थों को (सम्प्रसारयाव) भली प्रकार विस्तृत करें, बढ़ावें । और (स्वर्गे लोके) सुखमय लोक में (प्र ऊर्णुवाथाम्) एक दूसरे को अच्छी प्रकार ढापें, एक दूसरे की अच्छी प्रकार रक्षा करें । (वृषा) दुष्टों को बांधनेवाला और राष्ट्र का प्रबन्ध करनेवाला राजा और (रेतोधाः) वीर्य, सामर्थ्य, बल, पराक्रम को धारण करनेहारा होकर (रेतः) राष्ट्र में भी वीर्य, बल, पराक्रम को (दधातु) धारण करे ।

पतिपत्नी पक्षमें—(तौ उभौ) वे दोनों पति पत्नी परस्पर (चतुरः पदः) चारों पद, अर्थात् प्राप्तव्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनको विस्तृत करें । (स्वर्गे लोके) सुखमय लोक, गृहस्थ आश्रम में (प्र ऊर्णुवाथाम्) दोनों उत्तम रीति से अच्छे वस्त्र धारण करें या दोनों एक दूसरे को कवच के समान

२०—तौ सह चतुरः पदः । संप्रसार यावहै । सुवर्गे लोके सं प्रोर्णवाम् । वृषांग रेतोधा रेतो दधातु । इति तै० सं० । काण्व० च ।

आच्छादित करें, रक्षा करें। उन दोनों में से (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष (वाजी) वेगवान् अश्व के समान बल वीर्यवान् एवं (रेतोधा) स्वयं वीर्य धारण करनेहारा और कलत्र में भी वीर्य स्थापन करने में समर्थ होकर (रेत:) वीर्य का (दधातु) स्थापन करे।

महीधर और उवट ने इस मन्त्र को घोड़े और रानी के भोग में लगाने का जो भ्रष्ट और असंगत अर्थ किया है वह अमान्य है।

'सम्प्रोर्णुवाथाम्' वौसं वस्त्रं सम्यागाच्छादयतम्। इति सायण: तै० सं० भा० का० ७।४।१६॥

उत्स॑क्थ्या॒ऽअव॑ गु॒दं धे॑हि॒ सम॒ञ्जिं चा॑रया वृषन्।
य स्त्री॒णां जी॑व॒भोज॑नः॥ २१॥

भुरिग्गायत्री। षड्ज:। लिंगोक्तो वृषा देवता॥

भा०—हे (वृषन्) दुष्टों के शक्ति को दमन करनेवाले! तू (उत्-सक्थ्याः) सत्संग से वर्तमान प्रजा के बीच में (गुदं) उस केवल क्रीड़ा-शील, व्यसनी पुरुष को (यः) जो (स्त्रीणां) स्त्रियों के ऊपर (जीव-भोजनः) अपनी आजीविका का भोग करता है। (अव धेहि) नीचे गिरा। और (अञ्जिम्) विद्या और न्याय के प्रकाश को (सं चारय) अच्छी प्रकार फैला।

पति-पत्नीपक्षमें—हे (वृषन्) वीर्यसेक्तः पुरुष! तू (उत्सक्थ्याः) जांघें उठाये स्त्री के (गुदम् अव अञ्जि धेहि, संचारय) उस अंग में सुख-पूर्वक वीर्य आधान कर (स्त्रीणां) स्त्रियों का (य:) जो अंग (जीवभोजनः)

२१—उत्सक्थ्योर्गृदं धेह्यञ्जिमुदञ्जिमवज। यः स्त्रीणां जीवभोजनो य आसां बिलधावनः। प्रियः स्त्रीणामपीच्यं। य आसां कृष्णे लक्ष्मणि सर्दिगृदिं पराव-धीत्। इति तै० सं०। अत्र उत् इतिः। सक्थ्योः। इति पदपाठः॥

न्यायधीशो देवता। द०। अश्व० इति सर्वा०॥

सन्तान रूप जीव का पालन करनेहारा है अथवा, हे नृपन् ! युवा पुरुष (यः) जो तू (स्त्रीणां) स्त्रियों के जीवन की रक्षा करता है वह तू सन्तानोत्पत्ति कर इत्यादि इस रहस्य के विशेष जिज्ञासा के लिये चरक के प्रजोत्पत्ति विषयक शास्त्र भाग का मनन करना चाहिये ।

अजिः शुक्ल वर्णः । इति सायणः तै० । सं० ७ । ३ । १७ ॥

य॒कास॒कौ श॑कुन्ति॒काह॒लगिति॒ वञ्च॑ति ।
आह॑न्ति ग॒भे प॒सो निग॑ल्गलीति॒ धार॑का ॥ २२ ॥

राजप्रजे देवते । विराड् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यका असकौ=या असौ) यह जो (शकुन्तिका) शक्ति सम्पन्न प्रजा (आहलक्) मेरा भूपति सर्वत्र कृषि के निमित्त हलादि चलाने के कार्य में कुशल है (इति) इस कारण (वञ्चति) अपने भूपति को प्राप्त होती है । वह भूमिपति (गभे=भगे) भाग्यवान् समृद्ध प्रजा में (पसः=सपः) संघ बनाकर बैठे, सुसम्बद्ध, सुप्रबद्ध राष्ट्र के राज्य-प्रबन्ध को (आ हन्ति) विस्तृत करता है । और वह (धारका) ऐश्वर्य धारण करने में समर्थ प्रजा उसकी आज्ञा को (नि गल्गलीति) अच्छी प्रकार श्रवण करती है ।

'निगल्गलीति'—गल श्रवणे । भ्वादिः ॥

गभः, पसः, वर्णव्यत्ययेन भगः सपः । षप समवाये । भ्वादिः ॥

'शकुन्तिका'—शके रुनोन्तोन्त्युन्तयः । उणा० । पू० २ । ४६ ॥ शक्नोतीति शकुनः । शकुन्तः । शकुन्तिः । शकुनिः ॥ इति दया० उणा० । 'यका', 'असकौ', अकच् प्राक् टेः ॥

२२—इयं यका शकुन्तिकाऽऽहलगिति सर्पति । आहतं गभे पसो निजल्गुलीति धाणिका इति तै० सं० । इतो दश अभिमेथिन्यः ॥

दंम्पति पक्षमें—(यका) जो वह (शकुन्तिका) शक्तिमती, प्रजोत्पत्ति में समर्थ स्त्री (असकौ आहलक्) यह पुरुष मेरे हृदय को विलेखन, प्रेम से अंकन या आकर्षण करता है (इति) इस कारण से (वञ्चति) उसको प्राप्त हो। वह प्रेमी पति, (गभ पसः आहन्ति) उसके ऐश्वर्य सौभाग्य के निमित्त उससे संगत होता है। वह (धारिका) गर्भ धारण में समर्थ स्त्री (निगल्गलीति) उसके वचन आदर से श्रवण करती है। अर्थात् शक्तिमती स्त्री समर्थ पति को प्रेम से प्राप्त हो। वे सुसंगत होकर रहें। प्रेम से एक दूसरे के वचन श्रवण करें।

यकोऽसकौ शंकुन्तक ऽआहलगिति वञ्चति।
विवक्षतऽ इव ते मुखमध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः ॥ २३ ॥

भा०—(यकः=यः) जो पुरुष (शकुन्तः) शक्तिशाली है, (असकौ=असौ) वह (आहलक्) मैं सब प्रकार से भूमि को विलेखन करने में समर्थ हूं (इति) इस हेतु से (वञ्चति) भूमि को प्राप्त होता है। राज्य प्राप्त होजाने पर आगे उपदेश है कि—हे (अध्वर्यो) अध्वर्यो ! हिंसा रहित ! प्रजापालन के कार्यभार को संचालन करने हारे राजन् ! (विवक्षतः ते) विशेषरूप से राष्ट्र भार को उठाना चाहने वाले तेरा पद (मुखम् इव) शरीर में मुख के समान मुख्य है। अतः तू (नः) हम से (मा अभिभाषथाः) व्यर्थ बातें मत किया कर।

दम्पति पक्ष में—(यः शकुन्तः) जो पुरुष शक्तिमान् है वह (आहलक्) मैं अमुक स्त्री के हृदय को खींचने में समर्थ हूं (इति वञ्चति) इसलिये उसको प्राप्त हो। हे अध्वर्यो ! गृहस्थ यज्ञ के मार्ग में युक्त होना चाहने वाले पुरुष ! (ते विवक्षतः इव मुखम्) तेरा मुख अब विवाहेच्छु पुरुष के समान है। तू (नः मा अभिभाषथाः) अब हम सामान्य स्त्री पुरुषों से अधिक व्यर्थालाप मत कर। महीधर ने इसमें भ्रष्ट अर्थों की पराकाष्ठा करदी है। जिसकी यहां गन्ध भी नहीं।

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः ।
प्रतिलामीति ते पिता गभे मुष्टिमतꣳसयत् ॥ २४ ॥

भूमिसूर्यौ देवते । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! हे सूर्य ! (ते माता च) तेरे मध्य में माता अर्थात् ज्ञानवान् पुरुष तुझे निर्माण करने वाला, (ते च पिता) और तेरा पिता, पालक राजा, वे दोनों (वृक्षस्य) समस्त भूमि को आच्छादन करने वाले शासन के (अग्रम्) मुख्य पद पर (रोहतः) आरूढ़ होते हैं। और (ते पिता) तेरा पालक राजा भी (प्रतिलामि इति) स्नेह करता हूं इस भाव से ही (गभे=भगे) प्रजा के ऐश्वर्य के आधार पर (मुष्टिम्) अपने दुःखों से छुड़ाने वाले सुसंगठित राष्ट्र को अथवा शत्रु नाशक शस्त्र-बल को (अतंसयत्) सुशोभित करता है।

'अग्रं'—श्री वै राष्ट्रस्य अग्रम् । श्रियमेवेनं राष्ट्रस्याग्रं गमयति । विड्वै गभो । राष्ट्रं मुष्टिः । राष्ट्रम् एव विशि आहन्ति । तस्माद् राष्ट्री विशं घातुकः । श्री राष्ट्र का अग्र भाग है । 'गभ' प्रजा है । राष्ट्र राज्य-प्रबन्ध या शासन मुष्टि है । अर्थात् जिस प्रकार ढीले हाथ में कुछ शक्ति नहीं, परन्तु उसकी मुट्ठी बांध लेने पर वह बलवान् होजाता है उसी प्रकार अव्यवस्थित प्रजा को शासन में बांध लेने पर वह एक दृढ़ मुट्ठी के समान होजाता है। वह राष्ट्र ही प्रजा के आधार पर चलता है। इसीसे राष्ट्रपति भी प्रजा को ही प्राप्त होता है। राजा का यह स्नेह ही है कि वह बिखरी प्रजा को मुष्टि का रूप देता है जिस स्नेह से पांचों अंगुलियों के समान पांचों जन मिलकर एक होजाते हैं और यही प्रजा की शोभा है।

'वृक्षस्य'—वृत्वा क्षां तिष्ठतीति । निरुक्तम् ।

'मुष्टिम्'—मोचनाद् मोषणाद्, मोहनाद्वा । निरु० ६ । १ । १ ॥

गृहस्थ पक्षमें—हे पुरुष ! (ते माता च पिता च वृक्षस्य अग्रं रोहतः) तेरे माता पिता ही गृहस्थाश्रमरूप आश्रय वृक्ष के मुख्य पद पर स्थित हैं। (ते पिता) तेरे पिता स्नेह करता हूं इस भाव से ही (गभे = भगे) ऐश्वर्य के बल पर अथवा स्त्री के आधार पर ही अपने (मुष्टिम्) मुट्ठी के समान एक कर देने वाली पारिवारिक स्नेहकी व्यवस्था को सुशोभित करता है।

माता च॑ ते पि॒ता च॑ तेऽग्रे॑ वृ॒क्षस्य॑ क्रीडतः ।
विव॑क्षतऽ इव ते॒ मुखं॒ ब्रह्म॒न्मा त्वं व॑दो ब॒हु ॥ २५ ॥

निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे प्रजाजन ! हे पुरुष ! (ते माता च) तेरी माता, उत्पादक जननी के समान परिपालक राजसभा और (पिता च) तेरा पिता, पालक राजा, दोनों (वृक्षस्य) समग्र पृथ्वी पर फैले राज्य के (अग्रे) मुख्य पद पर (रोहतः) विराजमान होते हैं। हे (ब्रह्मन्) महान् राष्ट्रपते ! और हे ब्रह्मज्ञान के जानने वाले विद्वन् ! (विवक्षतः इव) भार वहन करने वाले के समान (ते) तेरा (मुखम्) मुख्य कार्य है अर्थात् शरीर में मुख के समान राष्ट्र की व्यवस्था करना तेरा मुख्य और दर्शनीय कार्य है, इसलिये हे (ब्रह्मन्) महान् शक्तिशालिन् ! (त्वं) तू (बहु) बहुत सा व्यर्थ (मा वदः) मत बोला कर। उत्तरदायी जिम्मेवार पुरुष को व्यर्थ बहुत नहीं बोलना चाहिये। मुख्य अधिकारी को अपना आज्ञाकारी मुख बहुत सम्भाल कर रखना चाहिये। उससे बहुत अनर्थ होने सम्भव होते हैं।

ऊ॒र्ध्वामे॑ना॒मुच्छ्रा॑पय गि॒रौ भा॒रꣳ हर॑न्निव ।
अथा॑स्यै॒ मध्य॑मेधताꣳ शी॒ते वाते॑ पु॒नन्नि॑व ॥ २६ ॥

श्रीर्देवता अनुष्टुप् । गांधारः ॥

२५—०क्रीळतः० इति काण्व० ।

भा०—(गिरौ) पर्वत पर (भारं) भार, बोझा को (हरन् इव) उठा कर लेजाने वाला पुरुष जिस प्रकार सिर या पीठ पर लदी पोट को ऊपर लेजाता है उसी प्रकार (एनाम्) इस प्रजा, पृथ्वी को (ऊर्ध्वाम्) उन्नत पद पर (उत् श्रापय) उठा कर उन्नत कर। (श्रथ) और (अस्यै) इस राष्ट्र की प्रजा का (मध्यम्) मध्य भाग, बीच की राजधानी का भाग (एधताम्) बढ़े, समृद्ध हो। और (शीते वाते) शीतल वायु में जिस प्रकार किसान अन्न को छाज से गिरा २ कर साफ करता है और वायु के बल से तुषों को दूर करता है और स्वच्छ अन्न की ढेरी को बढ़ाता है, उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (शीते वाते) शीत अर्थात् बढ़े हुए वात अर्थात् वायु के समान प्रचण्ड बल पर राष्ट्र को पवित्र कर, उसे दुष्ट पुरुषों से रहित कर।

दम्पति के पक्षमें—(एनाम् ऊर्ध्वम् उत् श्रापय) इस स्त्री को तू उच्च पद पर स्थापित कर, हे पुरुष ! तू (गिरौ भारं हरन् इव) पर्वत पर बोझा उठाकर लेजाने हारे के समान है। (श्रथ श्रस्य मध्यम्) और जब इसका मध्य भाग, गर्भाशय पुत्र सन्तान आदि से वृद्धि को प्राप्त हो तब तू उस समय पूर्वोक्त अन्न को साफ करनेवाले के समान (शीते) वृद्धि-कारी और (वाते) पवित्र पदार्थों के आधार पर अपने आचार व्यवहार को पवित्र रख और बालक पर उत्तम संस्कार डाल। स्त्री के गर्भिणी होने के काल में पुरुष को संयम से रहना चाहिये। उसको 'शीत' अर्थात् वृद्धि-कर, पुष्टिप्रद और पवित्र पदार्थों पर पुष्ट करे।

'शीतम्'—श्यैङ् वृद्धौ। भ्वादिः। श्रीर्वै राष्ट्रस्य भारः। श्रीर्वै राष्ट्रस्य मध्यम्, क्षेमो वै राष्ट्रस्य शीतम्। श० ३। ३। १–४॥

ऊर्ध्वमेनमुच्छ्रयताद्गिरौ भारꣳ हरन्निव।
अथास्य मध्यमेजतु शीते वाते पुनन्निव॥ २७॥

अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(गिरौ भारं हरन् इव) पर्वत पर बोझा उठाकर लेजाने वाला जिस प्रकार बोझा को पर्वत के शिखर पर लेजाता है और स्वयं भी ऊपर चढ़ जाता है उसी प्रकार हे प्रजे ! (ऊर्ध्वम्) ऊंचे पद पर स्थित (एनम्) इस राजा को (उच्छ्रयतात्) उन्नत कर। (अथ) और जब (अस्य मध्यम्) इसका मध्य भाग बीच का शासन का केन्द्र-बल (शीते वाते) परिपुष्ट ऐश्वर्य के आधार पर ऐसे (एजतु) कम्पन करें, ऐसे प्रदीप्त हो जैसे (वाते) वायु में (पुनन् इव) तुष, अन्न को साफ करता हुआ पुरुष चेष्टा करता है। अर्थात् राज्य का मुख्यबल देश के लुच्चे लोगों को दूर करे। सदा ऐसा प्रयत्न होता रहे।

दम्पति के पक्ष में—स्त्री पुरुष को उन्नत करे। पुरुष का मध्यभाग, धनसम्पत्ति अथवा प्रजनन भाग वीर्य बल से युक्त हो। और वह अपने आचार को ब्रह्मचर्य से पवित्र करें।

यद॑स्या अꣳहुभेद्या॑: कृधु स्थूलमु॒पात॑सत् ।
मुष्का॒विद॑स्याऽ एजतो गोश॒फे श॑कु॒लावि॑व ॥ २८ ॥

प्रजापतिर्देवता । निचृदनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(यद्) जब (अस्याः) इस (अंहुभेद्याः) पाप को भेदन करनेवाली, स्वच्छ, दुष्टों से रहित, प्रजा को (कृधु) दुष्टों का नाशक (स्थूलम्) स्थूल, स्थिर दृढ़ राज्य (उपातसत्) पृथवी पर जम जाता है। तब (अस्याः) इसके (मुष्कौ) शत्रुओं और अज्ञान का खण्डन या विनाश करनेवा[illegible] अथवा बन्धन से छुड़ानेवाले अथवा पुष्टि करनेवाले क्षात्र और ब्राह्म[illegible] दोनों (गोशफे) गौ के चरण में (शकुलौ) लगे खुर के दो [illegible] के समान (राजतः) शोभा देते हैं। अर्थात् जिस प्रकार गौ के चरण [illegible] खुर के दो भाग ही पूरे शरीर को थामे रहते हैं उस

२८—मुष्काविद० इति काण्व० ।

प्रकार प्रजा में से दुष्टों के नाशक क्षात्रबल और अज्ञान, अविद्या का नाशक ब्राह्म बल विद्वान् गण, दोनों पृथिवी के शासनरूप चरण में विराजते और पृथिवी रूप गौ का भार उठाये रहते हैं।

'मुष्कः' मुषेः कः। श्रौण० ३। ४१॥ अथवा 'मुखे खण्डने' इत्यस्मात् कः षत्वं छान्दसम्। मुष्टिवद् मोचनाद्वेति इतिनिरुक्तम्:। पुषेर्वा। पस्य मश्छान्दसः। 'कृधु' कृणोतेर्हिंसार्थस्य। करोतेर्वा। 'स्थूलं' तिष्ठतेः।

यद्देवासो ललामंगुं प्र विष्टीमिनमाविपुः।
सक्थ्ना देदिश्यते नारी सत्यस्याक्षिभुवो यथा॥ २६॥

देवा: देवताः। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—(यत्) जब (देवासः) विद्वान् पुरुष (ललामगुम्) सुन्दर उत्तम वाणी वाले विद्वान् (विष्टीमिनम्) विशेष दयालुता के भावों से युक्त, अथवा विशेष प्रजा के विविध कर्मों के विवेचक न्यायाधीश पुरुष को (प्र आविपुः) प्राप्त होते हैं तब जैसे (सक्थ्ना) शरीर के जंघा भाग से (नारी देदिश्यते) स्त्री या मादीन का पता लग जाता है उसी प्रकार (अक्षिभुवः सत्यस्य) आंख से देखे गये सत्य और (अक्षिभुवः) प्रत्यक्ष से उत्पन्न होनेवाले (सत्यस्य) सत्य अनुमान ज्ञान का भी (देदिश्यते) वर्णन किया जाय।

'ललामगुः' ललाम सुखं कर्तुं गच्छति इति ललामगुः। इति उवटः (विष्टीमिनम्) विविधाः ष्टीमाः आर्द्रीभूताः पदार्था यस्मिन् अथवा 'विष्टी-मिनम्' विष्टीः कर्माणि वेतनानि वा मिनोति, माति, मन्यते, विवेचयति वा शब्दयति उपदिशति वा स 'विष्टीमी' तम्। माङ् माने शब्दे च अयादिः। माङ् माने। दिवादिः। ललामः ललाटश्वैत्ययुक्तः इति सायणः

अथवा—(नारी) नेता पुरुषों की बनी सभा में (सबन्धा) प्रेम से, सम्मिलित शक्ति से (यथा) यथावत् (अक्षिभुवः सत्यस्य देदिश्यते) आंख से देखे सत्य पदार्थ का प्रतिपादन करना उचित है।

पच सेवने सेचने च । पच समवाये भ्वादिः ।
'नारी' इति लुप्तसप्तमाकं पदम् । नराणां इयं नारी तस्याम् ।

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशुं मन्यते ।
शूद्रा यदर्यजारा न पोषाय धनायति ॥ ३० ॥

राजा देवता । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जब (हरिणः) हरिण (यवम्) जौं को (अत्ति) खाता है तब क्षेत्रपति (पशुम्) पशु को (पुष्टं) पुष्ट हुआ (न मन्यते) नहीं मानता। प्रत्युत क्षेत्रपति अपने खेत का विनाश हुआ ही गिना करता है। इसी प्रकार यदि राष्ट्र की राजसत्ता यवरूप प्रजा को खाजाय तो प्रजा का स्वामी राजा (पशुं) राजसत्ता को पुष्ट हुआ नहीं मानता, प्रत्युत प्रजा के विनाश को होता देखकर अधिक दुःखी होता है। इसलिये राजा को चाहिये कि वह प्रजा को हानि पहुंचा कर राज्य प्रबन्ध या राजशक्ति को न पुष्ट करे। (यद्) जब (शूद्रा) शूद्र वर्ण की स्त्री नौकरानी (अर्यजारा) वैश्य या स्वामी को जार रूप से प्राप्त करती है तब वह (पोषाय) अपने कुटुम्ब पोषण के लिये धन नहीं चाहती। इसी प्रकार जो प्रजा (शूद्रा) केवल श्रमशील होकर (अर्य-जारा) अपने स्वामी की बल वृद्धि के लिये ही स्वयं जीर्ण और निर्बल होती रहती है और वह (पोषाय) अपने को समृद्ध वा पुष्ट करने के लिये (न धनायति) धन की आकांक्षा नहीं करती तब वह नष्ट ही होजाती है। इसलिये प्रजा को चाहिये कि राजा के भोग ऐश्वर्य के बढ़ाने के लिये वह अपना नाश न करे। इसी कारण विद्वान्जन वैशी पुत्र या वैश्यवृत्ति के राजा का अभिषेक नहीं करते वह प्रजा का समस्त ऐश्वर्य हर लेता है और प्रजा को धन समृद्ध नहीं करता है।

यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते ।
शूद्रो यदर्यायै जारो न पोषमनुमन्यते ॥ ३१ ॥

राजप्रजे देवते । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(यत्) जो (हारिणः) हरिण के समान राजा (यवम्) यव के समान प्रजाजन को खालेता है वह राजा (पुष्टम्) पुष्ट प्रजाजन को (वहु) अधिक आवश्यक (न मन्यते) नहीं जानता । इसी प्रकार वह (शूद्रः) शूद्र वर्ण का पुरुष, नौकर (यत्) जो (अर्यायैः जारः) गृहस्वामिनी का भोग करता है तब वह भी (पोषम्) अपने भरण पोषण की आजीविका पर (न अनुमन्यते) विचार नहीं करता । अर्थात्–जो राजा अपनी प्रजा को लूट कर पीड़ित करके खाता है वह उस हरिण के समान है जो खेत में लगे जौं को खाजाता है और खेत के जौं को बढ़ने नहीं देता । इसी प्रकार वह राजा उस शूद्र, नौकर के समान है जो व्यभिचार से घर की मालकिन का भोग करके उसका और उसके यश का नाश कर देता है और उसकी सम्पदा, मान कीर्ति और लक्ष्मी की वृद्धि की परवाह नहीं करता । वह राजा व्यभिचारी दुराचारी भृत्य के समान समृद्ध प्रजा को लूट खसोट के दरिद्र कर देता है और उसकी समृद्धि को बढ़ने नहीं देता । और प्रजा के भी आचार, व्यवहार, मान, कीर्ति और धन सब का नाश कर देता है ।

दधिक्राव्णो ऽअकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ ३२ ॥

जिष्णुर्वाजी राजा वा देवता । अनुष्टुप् । गान्धारः । दधिक्रावा ऋषिः ॥

भा०—(दधिक्राव्णः) अपने धारक पोषक पुरुषों को प्राप्त होने वाले (जिष्णोः) विजयशील, (वाजिनः) ऐश्वर्यवान्, (अश्वस्य) राष्ट्र

के भोक्ता पुरुष को (अकारिषम्) मैं नियत करता हूं । वह (नः) हमारे (मुखा) मुख्य पदों को (सुरभि) उत्तम, बलवान्, यशस्वी (करत्) बनावे । (नः आयूंषि) हमारे जीवनों को (प्र तारिषत्) दीर्घ, चिरकाल तक स्थिर करे । ईश्वर पक्ष में—(दधिक्राव्णः) ध्यान करने वाले को प्राप्त होने वाले (जिष्णोः) सब दुखों के नाशक, ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की (अकारिषम्) स्तुति करता हूं। वह (नः मुखा) हमारे मुख्य प्राणों को (सुरभि) बलवान् बनावे, हमें दीर्घ जीवन दे ।

गायत्री त्रिष्टुब् जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३३ ॥

वाच; विद्वांसो देवता । उष्णिक् । ऋषभः ।

भा०—हे पुरुष ! (गायत्री) गायत्री, (त्रिष्टुप्) त्रिष्टुप्, (जगती) जगती, (अनुष्टुप्) अनुष्टुप् ये समस्त छन्द (पंक्त्या सह) पंक्ति छन्द के साथ और (बृहती) बृहती और (ककुप्) ककुप् ये दोनों (उष्णिहा) उष्णिक् छन्द के साथ मिलकर (सूचीभिः) ज्ञान को सूचित करनेवाली ऋचाओं से तेरे हृदय को शान्त करती हैं । उसी प्रकार (गायत्री) गान और उपदेश करने वालों को त्राण या पालन करने वाली (त्रिष्टुप्) तीनों प्रकारों के सुखों को वर्णन करने वाली (जगती) जगत् में विस्तृत शक्ति, अनुष्टुप् , सबको अनुकूल उपदेश करनेहारी, (पंक्त्या सहा) परिपाक याः पुनः २ अभ्यास करने की क्रिया के सहित और (बृहती) बड़े प्रयोजनवाली, (ककुप्) सुन्दरपद-लालित्यवाली वाणी, (उष्णिहा) उत्तम स्नेहमयी वाणी के साथ मिलकर (सूचीभिः) ज्ञान और साधनों की सूचना देनेवाली अथवा वस्त्र खण्डों के समान नानादेश के भागों को मिलाकर सीकर सन्धियों द्वारा एक करदेने वाली नाना प्रकार की सन्धिकारिणी, वाणियों से विद्वान् लोग, हे राजन् ! (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति प्रदान करें ।

३३—१. 'वाच', इति पद ३५ मन्त्रादाकृष्यते ।

द्विपदा याश्चतुष्पदास्त्रिपदा याश्च षट्पदाः ।
विच्छन्दा याश्च सच्छन्दाः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३४ ॥

वाचः देवताः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे पुरुष (द्विपदाः) दो चरणवाली, (याः च चतुष्पदाः) और जो चार चरणवाली (याः च षट् पदाः) और जो छः चरणवाली, (विच्छन्दाः) विना छन्द की और (सच्छन्दाः) जो छन्द वाली हैं वे सब प्रकार की वाणियां (सूचीभिः) विशेष २ अभिप्राय बोधक शैलियों से (त्वा शम्यन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें ।

महानाम्न्यो रेवत्यो विश्वा आशाः प्रभूवरीः ।
मैघीर्विद्युतो वाचः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ३५ ॥

वाचो देवताः । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(महानाम्न्यः) 'महानाम्नी' नामक वेद वाणियां, (रेवत्यः) रेवती नामक ऋचाएं और (विश्वाः आशाः) समस्त 'आशा' शब्दवाली ऋचाएं, (प्रभुवरीः) 'प्रभु' शब्दावली, (मैघीः) मेघ सम्बन्धी ऋचाएं, (विद्युतः) विद्युत् सम्बन्धी ऋचाएं, ये सब (वाचः) वाणियें (सूचीभिः) अपनी ज्ञानसूचक शैलियों से (त्वा शम्यन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें । ऊपर की तीनों ऋचाएं वाणियों के साथ २ प्रजाओं का भी वर्णन करती हैं । जैसे—(गायत्री) ब्राह्मण वर्ग, (त्रिष्टुप्) क्षत्रिय वर्ग, (जगती) वैश्य वर्ग, (अनुष्टुप्) भृत्य वर्ग, (पंक्ति) पञ्चजन, (बृहती) बड़े राष्ट्र की जनपद वासिनी या बड़ी शक्तिवाली, (उष्णिहा) सबके प्रेमी, (ककुप्) सर्व श्रेष्ठ पुरुष ये अपनी ज्ञान सूचक वाणियों से हृदय को शान्त करें ।

(२) (द्विपदाः) ब्रह्मचारी वर्ग, (चतुष्पदाः) गृहस्थ वर्ग, (त्रिपदा) वानप्रस्थ, (षट्पदा) षट्-साधनी, मुमुक्षु, (विच्छन्दाः) त्यागी

(सच्छन्दाः) विशेष साधननिष्ठ ये सब भी तुझे ज्ञानप्रद वाणियों से सुखी करें। (३) (महानाम्न्यः) बड़ी यशस्विनी, (रेवत्यः) धन धान्य सम्पन्न, (विश्वाः आशा) समस्त दिशाओं में बसी, (प्रभूवरीः) प्रभूत, बल और धन सामर्थ्य वाली, (मैघीः) मेघ के समान सब पर सुख वर्षण करनेवाले ज्ञानोपदेशक वर्ग, (विद्युतः) विद्युत के समान प्रकाश देने- वाले शिल्पिवर्ग, (वाचः) वेद वाणियों के वक्ताजन ज्ञानसाधनों से तुझे शम्यन्तु) शान्ति दें।

नार्य॑स्ते पत्न्यो॒ लोम॒ विचि॑न्वन्तु मनी॒षया॑।
दे॒वानां॒ पत्न्यो॒ दिशः॑ सू॒चीभिः॑ शम्यन्तु त्वा ॥ ३६ ॥

भा०—हे राजन्! (ते) तेरे राष्ट्र को (पत्न्यः) पालन करनेवाली (नार्यः) नेता पुरुषों की बनी राजसभाएं और (नार्यः) पुरुषों के हित के लिये बनी सेनाएं, (मनीषया) बुद्धि से (ते) तेरे (लोम) काटने योग्य, उच्छेद्य शत्रु को, नाइ जिस प्रकार केशों को पकड़ कर काटता है उसी प्रकार (विचिन्वन्तु) विशेषरूप से संग्रह करें। और (देवानां पत्न्यः) विद्वानों की पालक (दिशः) दिशाओं में रहनेवाली प्रजाएं और सेनापति के आज्ञा में मार्ग देखनेहारी सेनाएं (सूचीभिः) अपने ज्ञान सूचक नीतियों से और सेनाएं शस्त्रों से (त्वा शम्यन्तु) तुझको शान्ति, सुख, अभय प्रदान करें।

र॒ज॒ता हरि॑णीः सीसा॒ युजो॒ युज्यन्ते॒ कर्म॑भिः।
अश्व॑स्य वा॒जिन॑स्त्व॒चि सिमाः॑ शम्यन्तु शम्य॑न्तीः ॥ ३७ ॥

रजतादयः स्त्रियो देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(रजताः) राग से युक्त, (हरिणीः) मन को हरण करने- वाली, (सीसाः) प्रेम को बांधने वाली, (युजः) गृहकार्य में चतुर, समस्त कार्यों में सहयोग देने, और सावधान रहनेवाली, स्त्रियें (कर्मभिः) धर्मानुकूल क्रियाओं और व्रत पालन की प्रतिज्ञाओं द्वारा (अश्वस्य)

उनके हृदय में व्यापक, (वाजिनः) उत्तम बलवान् श्रेष्ठ पुरुष की (त्वचि) रक्षा में, उसके साथ (युज्यन्ते) सदा के लिये जोड़ दी जाती है, संग करदी जाती हैं। वे (सिमाः) बद्ध होकर (शम्यन्तीः) स्वयं शान्ति सुख प्राप्त करती हुई उस पति को भी शम्यन्तु) सुख प्रदान करें।

राजा प्रजा पक्षमें—(रजताः) अनुरक्त या सुवर्णादि धनैश्वर्य से सम्पन्न (हरिणीः) हरणशील, बलवती, (सीसाः) और सन्धियों से या वेतनों से बंधी (युजः) राजा का राज्य कार्यों में सहयोग देनेवाली, प्रजाएं (अश्वस्य वाजिनः) राष्ट्र के भोक्ता, बलवान् पुरुष के (त्वचि) रक्षा में (कर्मभिः युज्यन्ते) कर्मों में नियुक्त की जांय। वे (सिमाः) बद्ध होकर (शम्यन्तीः) स्वयं शान्त रह कर (शम्यन्तु) राजा को सुखी करें।

कुविदङ्ग यवमन्तो यवंञ्चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूयं।
इहेहैषाङ्कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमऽउक्तिं यजन्ति ॥ ३८ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । ३२ ॥

कस्त्वाच्छ्यति कस्त्वा विशास्ति कस्ते गात्राणि शम्यति।
क उ ते शमिता कविः ॥ ३९ ॥

भा०—हे प्रजाजन ! (त्वा कः आछ्यति) तुझको कौन विद्वान् पुरुष सब तरफ़ से काटता, या तुझे दण्डित करता है ? (त्वा कः विशास्ति) तुझको कौन नाना प्रकारों से विविध शास्त्रों में उपदेश करता है (ते गात्राणि) तेरे अंगों को (कः शम्यति) कौन सुख पहुंचाता है। और बतला, (कः उ) कौन सो विद्वान् पुरुष (ते शमिता) तुझे शान्ति प्रदान करता है। उन प्रश्नों का उत्तर इसके बीच में ही हैं। (कः) सुखकारक प्रजापति, प्रजा- पालक राजा ही प्रजा को दण्ड देता है। वही उस पर शासन करता है,

३८—०नयउक्तिनजगतुः। इति काण्व०।

वह राज्य के समस्त अंगों को सुखी करता है, वही इसका (शमिता) शान्तिप्रद है।

ऋतवस्त ऽऋतुथा पर्व शमितारो वि शासतु।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ ४० ॥

ऋतवो देवताः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(ऋतवः) सत्यज्ञानवान्, राजसभा के सदस्यगण, (ऋतुथा) अपने ज्ञान के अनुसार (शमितारः) शान्तिदायक होकर (पर्व) प्रजा पालन करने के कार्य का (वि शासतु) विविध रूपों से उपदेश या शासन करें। और (संवत्सरस्य) समस्त प्राणियों और लोकों को बसाने वाले सर्वाश्रय राजा के (तेजसा) तेज, बल, पराक्रम से (शमीभिः) शान्तिदायक उपायों से हे राष्ट्र (त्वा) तुझे (शम्यन्तु) शान्ति प्रदान करें, सुख पहुंचावें।

सदस्या ऋतवोऽभवन्। तै० ३। १२। ९। ४॥ ऋतवो वै विश्वेदेवाः। यजु० १२। ६१॥ ऋतवो वै वाजिनः। कौ० ५। २॥ ऋतवो वै सोमस्य राज्ञो राजभ्रातरो यथा मनुष्यस्य। ऐ० १। १३॥

जिस प्रकार कालात्मक संवत्सर में ऋतुएं हैं उसी प्रकार राजा के अधीन विद्वान्, कार्यकुशल मुख्य राजसभासद्, शासक पुरुष हैं। वे सदा प्रजापालन के नये २ उपाय सोचें।

अर्द्धमासाः परूंᳪषि ते मासा आ च्छ्यन्तु शम्यन्तः।
अहोरात्राणि मरुतो विलिष्टᳪ सूदयन्तु ते ॥ ४१ ॥

प्रजाः राष्ट्रं वा देवता। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—जिस प्रकार संवत्सर के पर्वों को अर्धमासों और मासों में विभक्त करते हैं। उसी प्रकार हे राष्ट्र! (ते) तेरे (परूंषि) पालन कार्य, राज्य-व्यवस्था के अंगों को (अर्धमासाः) विशेष समृद्ध विद्वान् पुरुष और (मासाः) विद्वान् पुरुष (शम्यन्तः) शान्ति प्राप्त करानेहारे (आ

च्छ्यन्तु) सब तरफ विभक्त करें । परिमाण करने या मापने में कुशल जन ही भूमि रूप राष्ट्र को भी माप २ कर विभाग करें । (अहोरात्राणि) वर्ष में दिन और रात्रि के समान विद्यमान (मरुतः) विद्वान्गण और दण्ड देनेहारे नियुक्त राजपुरुष (ते) तेरे व्यवस्थाकार्य में (विलिष्टम्) होनेवाली त्रुटि को (सूदयन्तु) विनष्ट करें । सामान्य मनुष्य पक्षमें—हे मनुष्य ! तेरे पर्वों को मास, पक्ष और दिन, रात विभक्त करें । और वे तुझे शान्ति दें । (मरुतः) विद्वान् पुरुष तेरी (विलिष्टम्) त्रुटि को दूर करें ।

दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छ्यन्तु वि च शासतु ।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः ॥ ४२ ॥

भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! (दैव्याः) विद्वानों में भी कुशल, श्रेष्ठ कोटि के (अध्वर्यवः) यज्ञ के समान न नष्ट होनेवाले राष्ट्र के पालनकर्त्ता पुरुष (त्वा) तुझे (छ्यन्तु) विभक्त करें और (वि शासतु च) विविध उपायों से शासन करें । और वे (ते) तेरे (गात्राणि) अंगों को (पर्वशः) प्रति पर्व या पोरु २ पर (शम्यन्तीः) शान्तियुक्त सुखी करती हुई (सिमाः) तुझे बांधनेवाली मर्यादाएं, राज नियमानुकूल व्यवस्थाएं (कृण्वन्तु) करें ।

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते ।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया ॥ ४३ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः । पृथिव्यादयो देवताः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! (ते) तेरे (छिद्रं) छिद्र को (द्यौः) आकाश और उसके समान ज्ञानमय विद्वान्रूप सूर्यों से प्रकाशित राजसभा (पृथिवी) पृथिवी और उसके समान सर्वाश्रय राजा, (वायुः) वायु और वायु के समान तीव्र बलवान् सेनापति (पृणातु) पूर्ण करे । (सूर्यः) सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् राजा (नक्षत्रैः) नक्षत्रों और उनके समान

सामान्य प्रजाओं, अथवा युद्ध में चत और विचलित न होनेवाले वीर सैनिकों के (सह) साथ (ते) तेरे में वसे (लोकं) जन समूह को (साधुया) साधु, सच्चरित्र (कृणोतु) बनावे ।

शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः ।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव ॥ ४४ ॥

भा०—हे राष्ट्र ! और हे राजन् ! (ते) तेरे (परेभ्यः) पर उत्कृष्ट अंगों को (शम् अस्तु) कल्याण और शान्ति प्राप्त हो । और (अवरेभ्यः) गौण अंगों को भी (शम्) शान्ति प्राप्त हो । (अस्थभ्यः) शरीर में विद्यमान हड्डियों को और उनके समान राष्ट्र में विद्यमान उन दृढ पुरुषों को जो शत्रुओं और दुष्टों पर शस्त्र फेंकते हों, या उनको परे हटाते हों और (तव मज्जभ्यः) तेरी मज्जाओं और तुझे राष्ट्र के कण्टक शोधन करनेहारे, दमनकारी अथवा नगरों, ग्रामों और वसतिस्थानों में सफाई करानेवाले अधिकारी लोगों को और (तव तन्वे) तेरे शरीर को और तेरे सम्पूर्ण राष्ट्र को (शम् अस्तु) शान्ति प्राप्त हो, सदा कल्याण सुख बना रहे ।

'अस्थि'—अस्येः क्थिन् उणादिः । ३ । १५४ ॥ अस्यति प्रक्षिपति येन तद् अस्थि । 'मज्जा'—मज्जतेः मज्जति शुन्धतीति मज्जा । उणादि निपातनम् । १ । १५७ ॥

कः स्विदेकाकी चरति क उ स्विज्जायते पुनः ।
कि४ स्विद्धिमस्य भेषजं किम्वावपनं महत् ॥ ४५ ॥

सूर्य ऽएकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।
अग्निर्हिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥ ४६ ॥

भा०—(४५–४६) इन दोनों मन्त्रों को व्याख्या देखो इसी अध्याय के मन्त्र ९, १० में ।

किꣳ स्वित्सूर्य्यसमं ज्योतिः किꣳ समुद्रसमꣳ सरः ।
किꣳ स्वित्पृथिव्यै वर्षीयः कस्य मात्रा न विद्यते ॥ ४७ ॥

अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(सूर्यसमं ज्योतिः किम्) सूर्य के समान प्रकाश कौनसा है ? (समुद्रसमं सरः किम्) समुद्र के समान तालाव कौनसा है ? (पृथिव्यै वर्षीयः) पृथिवी से भी अधिक वर्षों का पुराना (किं स्वित्) कौनसा पदार्थ है ? (कस्य मात्रा न विद्यते) किसका परिमाण नहीं है ?

ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिर्द्यौः समुद्रसमꣳ सरः ।
इन्द्रः पृथिव्यै वर्षीयान् गोस्तु मात्रा न विद्यते ॥ ४८ ॥

ब्रह्मादयो देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(सूर्यसमं ज्योतिः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश (ब्रह्म) ब्रह्म, वेद, वेदज्ञ और महान् परमेश्वर है । (समुद्रसमं) समुद्र के समान (सरः) जलों को निरन्तर बहानेवाला तालाब महान् जलाशय (द्यौः) आकाश या सूर्य है । (पृथिव्यै वर्षीयान्) पृथिवी से भी अधिक चिरकाल पुराना (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्य है । अथवा पृथिवी के लिये (वर्षीयान्) प्रभूत जल वर्षानेवाला, इन्द्र, वायु या मेघ है और पृथिवी से भी अधिक (वर्षीयान्) वृद्धतर, पूज्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा समस्त पृथिवी का पूज्य है । (गोः तु) गौ, वाणी और सूर्य की किरणों की (मात्रा न विद्यते) मात्रा या परिमाण कोई नहीं है ।

पृच्छामि त्वा चितये देवसख यदि त्वमत्र मनसा जगन्थ ।
येषु विष्णुस्त्रिषु पदेष्वेष्टस्तेषु विश्वं भुवनमाविवेशाँ ३ऽ ॥ ४९ ॥

ब्रह्मविषयकः प्रश्नः ।

४९—०'विवेशा' इति काराव० ।

भा०—हे (ब्रह्मन्) विद्वन् ! ब्रह्मन् ! हे (देवसख) देवों-विद्वानों के परम मित्र ! मैं (चितये) ज्ञान प्राप्ति के लिये (त्वा पृच्छामि) तुझ से प्रश्न करता हूं । (यदि) क्या (त्वम्) तू (अत्र) इस देवसभा में (मनसा) ज्ञान के साथ दत्तचित होकर (जगन्थ) उपस्थित है । अथवा यह प्रश्न स्वयं परमेश्वर से ही उपासक करता है । हे (देवसख) विद्वानों के सखा परमेश्वर ! (त्वा) तुझ से (चितये) ज्ञान को उत्तम रीति से प्राप्त करने के लिये (पृच्छामि) मैं पूछता हूं । (यदि) क्या (त्वम्) तू (अत्र) यहां (मनसा) ज्ञानरूप से (जगन्थ) व्याप्त है ? (येषु त्रिषु पदेषु) जिन तीन ज्ञान कराने वाले साधनों या ज्ञान करने योग्य पदों और लोकों, चरणों, सृष्टि, स्थिति, संहार इन त्रिविध सामर्थ्यों में (विष्णुः) तू व्यापक परमेश्वर ही (इष्टः) उपासना किया गया है (तेषु) उनमें ही क्या (विश्वं भुवनम्) यह समस्त उत्पन्न जगत् (आ विवेशाँ ३॥ऽ) समा जाता है ?

अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेश ।
सद्यः पर्य्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनाङ्गेन दिवोऽ अस्य पृष्ठम् ॥५०॥

परमेश्वरो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—[उत्तर]-(तेषु) उन (त्रिषु पदेषु) सृष्टि, स्थिति और संहार, द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों जानने योग्य स्वरूपों में (अपि) भी (अस्मि) मैं ही हूं (येषु) जिन में (विश्वम् भुवनम्) समस्त उत्पन्न जगत् भी (आविवेश) आविष्ट है । मैं (पृथिवीम्) पृथिवी को (सद्यः) बहुत शीघ्र या अब भी समान भाव से (परि एमि) व्याप्त हूं । (उत द्याम्) और द्यौ, सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों से व्याप्त आकाश में भी सदा व्याप्त हूं । और (एकेन अंगेन) एक अंग या एक अंश से (अस्य दिवः) इस तेजोमय सूर्य के भी (पृष्ठम्) ऊपर के भाग को या सेचन करने वाले सामर्थ्य को भी व्याप्त हूं ।

केष्वन्तः पुरुष आ विवेश कान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किंस्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ॥५१॥

पुरुषो देवता । प्रश्नः । पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(पुरुषः) पुरुष, जीव और परमेश्वर (केषु) किन पदार्थों के (अन्तः) बीच (आ विवेश) प्रविष्ट है । और (कानि) कौन २ से और कितने तत्व (पुरुषे अर्पितानि) पुरुष के आश्रय पर विद्यमान हैं । हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मन् ! ब्रह्मवित् विद्वन् ! (एतत्) यह बात हम (त्वा उप-वल्हामसि) तुझ से पूछते हैं ? तू (अत्र) इस विषय में (नः) हमें (किंस्वित्) क्या (प्रतिवोचासि) प्रत्युत्तर कहता है ?

पुरुष, अर्थात् जीव या चेतन शक्ति किन २ तत्वों पर आश्रित है । और चेतन तत्व में क्या २ तत्व गुंथे हैं ? यह प्रश्न है । इस प्रश्न को वैज्ञानिक भी अभी तक सरल नहीं कर सके ।

पञ्चस्वन्तः पुरुष आविवेश तान्यन्तः पुरुषे अर्पितानि ।
एतत्त्वात्र प्रतिमन्वानो अस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ॥५२॥

पुरुषो देवता । प्रतिवचनम् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(पञ्चसु अन्तः) पांच प्राणों के भीतर (पुरुषः) पुरुष, जीवात्मा चेतन, (आविवेश) प्रविष्ट है, ओत प्रोत है । और (तानि) वे पांचों (पुरुषे अर्पितानि) पुरुष, आत्मा में आश्रित हैं । इसी प्रकार पांचों भूत और उन पांचों सूक्ष्म रूप पञ्चतन्मात्राओं के भीतर पुरुष, पूर्ण परमेश्वर आविष्ट है और वे पांचों भूत और तन्मात्राएं पूर्ण परमेश्वर में ओत प्रोत हैं । (एतत्) यह (त्वा) तुझे मैं (प्रतिमन्वानः) बतला रहा (अस्मि) हूं । हे प्रश्न करनेवाले ! (मायया) बुद्धि या ज्ञान से तू (मत्) मुझ से (उत्तरः) बढ़कर उत्कृष्ट समाधान करने वाला (न भवसि) नहीं है ।

का स्विदासीत्पूर्वचित्तिः किᳬ स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ॥ ५३ ॥
द्यौरासीत्पूर्वचित्तिरश्व आसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला ॥ ५४ ॥

भा०—(५३,५४) दोनों की व्याख्या देखो अ० २३ । ११ । १२ ॥

काऽ ईमरे पिशङ्गिला काऽ ईं कुरुपिशङ्गिला ।
कऽ ईमास्कन्दमर्षति क ईं पन्थां विसर्पति ॥ ५५ ॥

प्रश्नः । अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(अरे) हे विद्वन् ! बतला (का ईम् पिशङ्गिला) 'पिशङ्गिला' क्या वस्तु है ? (कुरुपिशङ्गिला का ईम्) 'कुरुपिशङ्गिला' यह क्या वस्तु है ? (आस्कन्दम्) उछल उछल के (कः ईम् अर्षति) कौन चलता है । (पन्थाम्) मार्ग में (कः ईम्) कौन (विसर्पति) सरकता जाता है ।

अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ।
शशऽ आस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ॥ ५६ ॥

प्रतिवचनम् । स्वराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(अरे) हे प्रश्नकर्त्तः ! सुन, (पिशङ्गिला) समस्त रूपों को अपने भीतर निगल जाने वाली (अजा) अजा प्रकृति है। वह कारणरूप समस्त कार्य पदार्थों को अपने में विलीन कर लेती है । (श्वावित्) सेही जिस प्रकार धान्यादि उत्पन्न अन्न को खाजाता है उसी प्रकार 'श्वा' कुत्ते के समान केवल विषय रस के पीछे भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला जीव, (कुरुपिशङ्गिला) स्वयं अपने कर्मों से उत्पादित रूपों को अपने में धारण करता है इसलिये वह 'कुरुपिशंगिला' है । (शशः) शशक जिस प्रकार कूद २ कर चलता है । उसी प्रकार (शशः) सबको क्षीण करने

वाला काल ही 'शश' है वह (आस्कन्दम्) सब पदार्थों पर आक्रमण करता हुआ (अर्षति) गुजरता जा रहा है । (अहिः) सर्प जिस प्रकार मार्ग पर सरकता जाता है उसी प्रकार मेघ (पन्थाम्) आकाश मार्ग में (विसर्पति) भ्रमण करता है । अथवा (अहिः) आघात करने वाला काल या मृत्यु (पन्थाम् विसर्पति) जीवन मार्ग में व्यापता है ।

क॒त्य॑स्य वि॒ष्ठाः क॒त्य॒क्षरा॑णि॒ कति॒ होमा॑सः कति॒धा समि॑द्धः ।
य॒ज्ञस्य॑ त्वा वि॒दथा॑ पृच्छ॒मत्र॒ कति॒ होता॑र ऋतु॒शो य॑जन्ति ॥५७॥

प्रश्नः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्य) इस जगत् के (कति विष्ठाः) कितने विशेष आश्रय हैं, जिन में यह जगत् स्थित है ? (कति अक्षराणि) इसमें कितने अक्षर अर्थात् अविनाशी पदार्थ हैं जो कारण रूप होने से भी कभी नष्ट नहीं होते ? (कति होमासः) कितने प्रकार के 'होम' अर्थात् कारण पदार्थों के संयोग विभाग हैं ? (कतिधा समिद्धः) यह कितने प्रकारों से प्रकाशित एवं प्रेरित है अथवा (कतिधा समिद्धः) इसमें कितने प्रकाशक और प्रेरक तत्व हैं ? हे विद्वन् ! (यज्ञस्य विदथा) इन 'यज्ञ' विषयक विज्ञानों को मैं (त्वा) तुझ से (पृच्छम्) पूछता हूं और यह भी बतला कि (कति होतारः) कितने होता (ऋतुशः) ऋतुओं के अनुकूल (यजन्ति) यज्ञ कर रहे हैं ।

ष॒ड॑स्य वि॒ष्ठाः श॒तम॒क्षरा॑ण्यशी॒तिर्होमाः॑ स॒मिधो॑ ह ति॒स्रः ।
य॒ज्ञस्य॑ ते वि॒दथा॒ प्र ब्र॑वीमि स॒प्त होता॑र ऽऋतु॒शो य॑जन्ति ॥ ५८ ॥

प्रतिप्रश्नः । यज्ञो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

५८—षळस्य इति काण्व० ।

भा०—(अस्य) इस अध्यात्म यज्ञ के (विष्ठाः षट्) छः आश्रय हैं। जिनमें वह विशेषरूप से स्थित हैं ५ प्राण, ६ ठा मन या आत्मा। (शतम् अक्षराणि) जीवन के सौ वर्ष, सौ अक्षर हैं। (अशीतिः होमाः) इस पुरुष यज्ञ में (अशीतिः) अन्न का अशन, अर्थात् भोजन करना ही 'होम' है। (तिस्रः समिधः) तीन समिधा हैं बाल्य, तारुण्य और वार्धक्य। (यज्ञस्य विदथा) यज्ञ विषयक ज्ञानों को (प्र ब्रवीमि) मैं बतलाता हूं कि (सप्त होतारः) सात होता, शिर में स्थित सात प्राण (ऋतुशः) ऋतु अर्थात् प्राणों के बल पर (यजन्ति) यज्ञ करते, ग्राह्य विषयों से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

संवत्सररूप यज्ञ में—६ विष्ठा अर्थात् आश्रय, ६ ऋतुएं हैं, (शतं अक्षराणि) सौ अक्षर हैं। अर्थात् सैकड़ों दिन रात हैं। (अशीतिर्होमाः) अन्न का भोजन ही होम योग्य पदार्थ हैं। तीन समिधाएं तीन मुख्य ऋतु हैं, गर्मी, सरदी और वर्षा और सात रश्मियां जल ग्रहण करने से 'होता' है।

को ऽअस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षम्। कः सूर्य्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥५६॥

प्रश्नः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अस्य भुवनस्य) इस उत्पन्न जगत् की (नाभिम्) नाभि, बन्धनस्थान, या आश्रय को (कः वेद) कौन जानता है? (कः द्यावापृथिवी) आकाश भूमि और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को कौन जानता है कि वे कहां से पैदा हुए हैं? (बृहतः सूर्यस्य) महान् सूर्य के (जनित्रम्) मूल कारण को (कः वेद) कौन जानता है? (चन्द्रमसं कः वेद) चन्द्रमा के विषय में कौन जानता है कि वह (यतः-जाः) कहां से पैदा हुआ है?

वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवी ऽअन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः ॥ ६० ॥

प्रतिवचनम् । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अहम्) मैं (अस्य भुवनस्य) इस समस्त उत्पन्न जगत् के (नाभिम्) परम आश्रय, मुख्य केन्द्र को (वेद) जानता हूं । और मैं (द्यावापृथिवी, अन्तरिक्षम्) आकाश पृथिवी और वायु स्थान, अन्तरिक्ष के विषय में भी जानता हूं कि ये जहां से उत्पन्न होते हैं । (सूर्यस्य बृहतः) महान् सूर्य के (जनित्रम्) उत्पत्ति स्थान को भी (वेद) जानता हूं । (अथो) और (चन्द्रमसं) चन्द्रमा के विषय में भी जानता हूं कि वह (यतः-जाः) जहां से उत्पन्न होता है । वह सब परमात्मा से उत्पन्न होते हैं । वह सबका कर्त्ता है और 'प्रकृति' जगत् का उपादान कारण है ।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।
पृच्छामि त्वा वृष्णो ऽअश्वस्य रेतः पृच्छामि वाचः परमं व्योम ॥६१॥

प्रश्नः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे विद्वन् ! (त्वा) तुझ से मैं (पृथिव्याः) पृथिवी का (परम् अन्तम्) परला अन्त, परली सीमा (पृच्छामि) पूछता हूं । (यत्र) जिस स्थान पर (भुवनस्य) इस जगत् का (नाभिः) केन्द्र है, जिस पर बद्ध होकर वह ठहरा है वह भी (पृच्छामि) पूछता हूं । और (पृच्छामि) पूछता हूं कि (वृष्णः) उस महान्, सब सुखों के वर्षक (अश्वस्य) सर्वव्यापक परमेश्वर का (रेतः) उत्पादक वीर्य क्या पदार्थ है ? और पूछता हूं (वाचः) वाणी का (परमं) परम, सर्वोत्कृष्ट (व्योम) विशेष रक्षास्थान कौनसा है ?

इयं वेदिः परो ऽ अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।
अयꣳ सोमो वृष्णो ऽअश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥६२॥

भा०—(इयं वेदिः) यह 'वेदि' (पृथिव्याः परः अन्तः) पृथिवी का परम अन्त है। (अयं यज्ञः) यह यज्ञ सर्व पूजनीय परमेश्वर (भुवनस्य नाभिः) समस्त संसार का परम आश्रय है। वही उसका व्यवस्थापक, संयोजक, और प्रबन्धक है। (अयं सोमः) यह 'सोम' सबका प्रेरक सूर्य, वायु, अग्नि, विद्युत् आदि पदार्थ समूह ही (वृष्णः) महान् (अश्वस्य) व्यापक परमेश्वर का (रेतः) परम वीर्य, सर्वोत्पादक सामर्थ्य है। (अयं ब्रह्मा) यह ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञ विद्वान् ब्रह्मा ही (वाचः) वाणी का (परमम् व्योम) परम रक्षास्थान है।

ये सब प्रश्नोत्तर राष्ट्र के पक्षमें भी नीचे लिखे प्रकार से नाना प्रश्नों का समाधान करते हैं। जैसे—

मं० [४७-४८] ब्रह्म, वृहत् राष्ट्रपति या महान् ब्रह्मज्ञ सूर्य के समान प्रकाशक है। 'द्यौः' राजसभा समुद्र के समान ज्ञानप्रसारक होने से अगाध समुद्र के समान अगाध ज्ञान का भण्डार है। 'इन्द्र' अर्थात् राजा पृथिवी से महान् है। 'गौ' अर्थात् पृथिवी या वाणी का कोई परिमाण नहीं।

मं० [४९-५०] राजा तीनों पदों में विद्यमान है, राजा, शासकजन और प्रजा। उन्हीं में सब राष्ट्र स्थित हैं। पृथिवी और (द्यौः) राजसभा को प्राप्त करके राजा एक अङ्ग से सिंहासन पर विराजता है।

मं० [५१-५२] पुरुष, सबका पालक राजा पांचों जनों में स्थित है और पांचों जन उसमें आश्रित हैं।

[५६-५७] राष्ट्रवासी पुरुष चार प्रकार के स्वभाव वाले हैं एक 'अजा' स्वभाव के हैं जो सब स्थानों से धन प्राप्त करते हैं दूसरे 'श्वावित्' जो कर्म करके धन प्राप्त करते हैं। तीसरे 'शश' हैं जो उन्नति की उछाल भरते हैं, चौथे 'अहि' जो पथिक हैं।

(५७, ५८) ६ अमात्य राष्ट्र के ६ आधार हैं । सैकड़ों अक्षर. अक्षय कोष हैं । अन्नप्राप्ति होम है । प्रज्ञा, उत्साह, सेना ये तीन समिधाएं हैं । ६ अमात्य और सातवां राजा या राज्य के सप्ताङ्ग सात होता हैं ।

[५६, ६०] समस्त राष्ट्र का प्रबन्धक, राजा, राजसभा और शासक, सबका मूल, महान् सूर्य राजा है । आह्लादक राजा का उत्पत्ति स्थान यह राष्ट्र है ।

[६१, ६२] राज्याभिषेक की वेदि सर्वोत्कृष्ट स्थान है यह राज्य प्रबन्ध राष्ट्र का प्रबन्ध है । सोम, ऐश्वर्य या राष्ट्र स्वतः राजा का बल है । ब्रह्मा, वेदज्ञ विद्वान्, वाणी अर्थात् समस्त आज्ञाओं का उत्कृष्ट स्थान है ।

सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे ।
दधे ह गर्भमृत्वियं यतो जातः प्रजापतिः ॥ ६३ ॥

प्रजापतिर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०— (सुभूः) सब से श्रेष्ठ, सर्वोत्पादक, (स्वयं भूः) स्वयं अपनी सत्ता से विद्यमान, (प्रथमः) सबसे प्रथम, पूर्व विद्यमान, जगदीश्वर (महति अर्णवे) बड़े भारी अर्णव, प्रकृति के परमाणु रूप सागर के (अन्तः) बीच में, (ऋत्वियं) स्त्री के देह में ऋतुकाल के अवसर पर पुरुष जैसे संतति उत्पादक गर्भ को स्थापित करता है उसी प्रकार (ऋत्वियं) ऋतु अर्थात् ठीक नियत काल में (गर्भम्) हिरण्यगर्भ को (दधे) स्थापन करता है । (यतः) जहां से (प्रजापतिः) प्रजा का पालक, सूर्य या संवत्सर (जातः) उत्पन्न होता है । राजा के पक्षमें—(सुभूः) उत्तम सामर्थ्यवान्, (स्वयंभूः) स्वयं सत्तावान्, (प्रथमः) सब से श्रेष्ठ विद्वान् (महति अर्णवे अन्तः) बड़े भारी जन-सागर के बीच (ऋत्वियं) राजसभा के सदस्यों के अनुकूल (गर्भम्) राष्ट्र को वश करने वाले प्रबन्ध को (दधे) स्थापित करता है (यतः) जिसमें से (प्रजापतिः) प्रजा का पालक राजा और राष्ट्र (जातः) उत्पन्न होता है ।

होता यक्षत्प्रजापतिꣳ सोमस्य महिम्नः ।
जुषतां पिबतु सोमꣳ होतर्यज ॥ ६४ ॥

भा०—(होता) सब को अधिकार देनेहारा होता नामक विद्वान् (प्रजापतिम्) प्रजापति, अर्थात् प्रजा के पालक पुरुष को (सोमस्य) समग्र राष्ट्र के ऐश्वर्य के (महिम्नः) बड़े भारी अधिकार को (यक्षत्) प्रदान करे । और वह (सोमं) समग्र राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को (जुषताम्) प्रेम से स्वीकार करे । और (पिबतु) उसका उपभोग करे । हे (होतः) होतः ! तू (यज) अधिकार प्रदान कर ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयꣳ स्याम पतयो रयीणाम् ॥ ६५ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । २० ॥

॥ इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः कृष्णग्रीवऽ आग्नेयो रराटे पुरस्तात्सारस्वती मेष्यधस्ताद्धन्वोराश्विनावधो-रामौ बाह्वोः सौमापौष्णः श्यामो नाभ्याᳬ सौर्ययामौ श्वेतश्च कृष्णश्च पार्श्वयोस्त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योर्वायव्यः श्वेतः पुच्छऽ इन्द्राय स्वपस्याय वेहद्वैष्णवो वामनः ॥ १ ॥

भुरिक् संकृतिः । गान्धारः ॥

भा०—राजा के अधीन राष्ट्र के अन्य अंग प्रत्यङ्गों का वर्णन करते हैं—(१) 'अश्वस्तूपरो गोमृगस्ते प्राजापत्याः॥' (अश्वः) घोड़ा, (तूपरः) सींगों वाला मेढ़ा, (गोमृगः) गोमृग अर्थात् नील गाय, ये तीन (प्राजापत्याः) प्रजापालक राजा के स्वरूप हैं अर्थात् राजा के ही स्वभाव के हैं। घोड़ा जिस प्रकार विजयशील है, अपने कन्धों पर दूसरों को उठाता है, गाड़ी में लग कर उसको खींचता है, इसी प्रकार राजा संग्राम में विजयी, अपने कन्धों पर प्रजाओं का भार उठाने वाला, राष्ट्र के रथ में आगे जुड़कर राष्ट्र का संचालन करता है। मेढ़ा अपना सिर दूसरे से जोप में लड़ाता है, अपने प्राणान्त तक लड़ना नहीं छोड़ता। इसी प्रकार राजा प्रजापालक भी अपने प्रतिस्पर्धी शत्रु से लड़े और प्राण रहते तक प्रतिपक्ष से टक्कर ले। 'गोमृग' नर बारहसींगा या नीलगाय मृग, नीली मादा गाय के लिये प्राण पण से लड़ता है इसी प्रकार राजा अपनी भूमि के लिये प्राण दे। अथवा जिस प्रकार नीलगाय अपने चंवर वालों के लिये जान देती है राजा भी अपनी शोभा और मान के लिये प्राण दे। इस प्रकार प्रजापति के ये तीन पशु प्रतिनिधि हैं। इनसे राजा

१—०'तूपराः' ०इति काण्व० ।

देवता की (मेषी) भेड़ (हन्वोः अधस्तात्) दोनों जबाड़ों के नीचे। अर्थात् भेड़ का स्वभाव है कि दो लड़ाऊ भेड़ों में जो प्रबल है वह उसको प्राप्त होती है। अर्थात्, (हन्वोः) परस्पर आघात प्रतिघात करने वालों के (अधःस्तात्) मूल में, उनके नीचे जिस प्रकार उन दोनों की स्पर्धा का विषय वह मेढ़ी होती है और जिस प्रकार (सरस्वती) सरस्वती, वाणी स्वयं (हन्वोः अधस्तात्) दोनों जबाड़ों के नीचे होती है इसी प्रकार (सारस्वती मेषी) सरस्वती नामक विद्वान् की प्रतिस्पर्द्धा में प्रवृत्त सभा भी (हन्वोः) पक्ष प्रतिपक्ष से एक दूसरे का खंडन करने वाले दोनों दलों के (अधस्तात्) नीचे, उनके किये निर्णय के अधीन रहे।

(४) 'अश्विनौ अधोरामौ बाह्वोः ॥' शरीर में (बाह्वोः) जिस प्रकार बाहू हैं उसी प्रकार राष्ट्र शरीर में दो बाहुओं के स्थानों पर (अश्विनौ) 'अश्वि' देवता वाले (अधोरामौ) नीचे से श्वेत वर्ण के दो बकरों के समान स्वभाव के दो पुरुष नियुक्त किये जांय। अर्थात् बकरे जिस प्रकार सदा चरते हैं उस प्रकार वे दोनों भी राष्ट्र को चर सकें, निरन्तर भोग सकें, निरन्तर भोगने में समर्थ होने से ही वे (अश्विनौ) अश्वि देवता के हैं। अर्थात् वे राष्ट्र में व्याप्त होकर भोगने में समर्थ हैं। उनके पोशाक ऊपर से काले नीचे से श्वेत हों। ऊपर से भयंकर और नीचे से उज्वल हों। ऐसे भीतर में हितैषी और प्रकट में क्रूर, कठोर स्वभाव के पुरुषों को राष्ट्र के (बाह्वोः) बाहुओं अर्थात् रक्षा के निमित्त नियुक्त करें।

(५) 'सौमापौष्णः श्यामः नाभ्याम् ॥' सोम और पूषा देवता वाला श्याम वर्ण का नाभिस्थान में हो। (श्यामः) श्याम, हरे वर्ण का खेतों में लगा हुआ अन्न (नाभ्याम्) राष्ट्र के नाभि या केन्द्रस्थान या मध्य भाग में हो। वे (सौमापौष्णाः) सोम, राष्ट्र के ऐश्वर्य और 'पौष्ण' प्रजा के पोषणकारी हैं। इस श्यामल वनस्पति वर्ग के दो देव, विद्वान्

अधिकारी है सोम, ओषधि रस का वेत्ता वैद्य और पोषक अन्न का उत्पादक कृषि-विभागाध्यक्ष ।

(६) सौर्ययामौ श्वेतः च कृष्णः च पार्श्वयोः ॥ सूर्य और यम अर्थात् वायु और आकाश इन दो के गुणों के दिखानेवाले काले और सफेद पोषाक को पहनने वाले दो मुख्य अधिकारी (पार्श्वयोः) शरीर में दो पासों या बगलों के समान राष्ट्र की दो बगलें बनावें अर्थात् राष्ट्र में एक बगल श्वेत सूर्य के समान तेजस्वी प्रखर राजा और दूसरी बगल में यम अर्थात् दिन के विपरीत रात्रि के समान समस्त राष्ट्र में शान्तिस्थापन करनेवाला नियन्ता पुरुष हो । वह 'सूर्य' नामक पदाध्यक्ष श्वेत हो अर्थात् राष्ट्र के सब कार्यों को बढ़ानेवाला और यशस्वी, तेजस्वी हो, दूसरा नियन्ता 'यम' कृष्ण, रात्रि के समान सुख में प्रजा को प्रेम से खेंचनेवाला और पीड़ाओं से शत्रुओं को (कर्षण) अर्थात् बन्धनागार में खेंचनेवाला हो । राष्ट्र-व्यवस्था की ये ही दो बगलें या पहलू हैं । एक प्रजा की वृद्धि और दूसरा दुष्टों का दमन ।

(७) "त्वाष्ट्रौ लोमशसक्थौ सक्थ्योः ॥" (लोमशसक्थौ) जिनकी सक्थि अर्थात् समवाय अर्थात् एका करके शत्रुओं का छेदन करनेवाले दो नायक जो (त्वाष्ट्रौ) शत्रु सेनाओं को शस्त्रों से विनष्ट करनेवाले हों उनको (सक्थ्योः) राष्ट्र-शरीर के 'सक्थि' अर्थात् जंघा भाग समझे ।

(८) "वायव्यः श्वेतः पुच्छे ॥" पुच्छ भाग, आधार स्थान पर (वायव्यः) वायु के समान तीव्र प्रचण्ड बलवान् (श्वेतः) अति वृद्धिशील तेजस्वी पुरुष को नियुक्त करे ।

(९) स्वपस्याय इन्द्राय वेहत् ॥ (स्वपस्याय) उत्तम कर्म और प्रज्ञावान् (इन्द्राय) इन्द्र सेनापति के कार्य के लिय (वेहत्) विशेष

रूप से या विशेष २ साधनों से शत्रुओं का नाश करनेवाला पुरुष नियुक्त किया जाय ।

(१०) "वैष्णवो वामनः ॥" सर्वव्यापक सामर्थ्यवान् पद के लिये (वामनः) अति सुन्दर, हृदयग्राही पुरुष को नियुक्त करें ।

रोहि॑तो धू॒म्ररो॑हितः क॒र्कन्धु॑रोहितस्ते सौ॒म्या ब॒भ्रुर॑रुणब॑भ्रुः शुक॑बभ्रुस्ते वा॑रु॒णाः । शिति॑रन्ध्रो॒ऽन्यतः॑शितिरन्ध्रः सम॒न्तशि॑तिरन्ध्रस्ते सा॑वि॒त्राः । शि॑तिबा॒हुर॒न्यतः॑ शितिबाहुः सम॒न्तशि॑तिबाहुस्ते बा॑र्हस्प॒त्याः पृष॑ती क्षु॒द्रपृ॑षती स्थू॒लपृ॑षती ता मै॑त्रावरु॒ण्यः॑ ॥ २ ॥

निचृत् संकृतिः । गांधारः ॥

भा०—(११) "रोहितः धूम्ररोहितः कर्कन्धुरोहितः ते सौम्याः ॥" (रोहितः) लाल रंग, (धूम्ररोहितः) धूआं मिला लाल रंग, लाल नीला और (कर्कन्धु रोहितः) वेर के फल का सा लाल, ये तीन रंग की पोशाक वाले अधीन अधिकारी (सौम्याः) सोम अर्थात् राजा के पद के साथ सम्बद्ध हैं।

(१२) (बभ्रुः) भूरा, (अरुणबभ्रुः) लाल भूरा, (शुक्रबभ्रुः) हरा भूरा ये तीन प्रकार के रंग की पोशाकों वाले (वारुणाः) वरुण नाम पद के सम्बन्धी पुरुष हों ।

(१३) (शितिरन्ध्रः) श्वेत चिटकनों वाला, (अन्यतः शितिरन्ध्रः) एक तरफ श्वेत चिटकनेवाला, (समन्त शितिरन्ध्रः) सारे शरीर पर श्वेत चिटकनवाला ये तीन प्रकार के वस्त्रों के पुरुष (सावित्राः) सविता पद के सम्बन्ध के पुरुष हों ।

(१४) "शितिबाहुः अन्यतः शितिबाहुः समन्तशितिबाहुः ते बार्हस्पत्याः ॥" (शितिबाहुः) बाहु भागों पर श्वेत, (अन्यतः शितिबाहुः) किसी एक ओर की बाहु भाग पर श्वेत, (समन्त शितिबाहुः) समस्त

बाहुओं पर श्वेत, (ते) ऐसी पोशाक वाले सब (बार्हस्पत्याः) बृहस्पति अर्थात् महामात्य पद के अधीन हों ।

(१५) पृषती, क्षुद्रपृषती, स्थूलपृषती ता मैत्रावरुण्यः ॥ (पृषती) विचित्र वर्ण के विन्दु या छींटवाली, (क्षुद्रपृषती) छोटी २ छींट वाली, (स्थूल पृषती) बड़ी २ छींटवाली पोशाकों वाली स्त्रियां (मैत्रावरुण्यः) मित्र, न्यायाधीश और वरुण, दुष्टों के वारक पोलीस विभाग की समझनी चाहियें ।

ये १५ विभाग या अङ्ग राष्ट्र के 'पर्यङ्ग' कहाते हैं ।

शुद्धवा॑लः स॒र्वशु॑द्धवालो मणि॒वाल॒स्तऽआ॑श्वि॒नाः श्येतः श्येता॒क्षो॒ऽरुण॒स्ते रु॒द्राय॑ पशु॒पत॑ये क॒र्णा॒ या॒माऽअ॑वलि॒ता रौ॒द्रा नभो॑ रूपाः पार्ज॒न्याः ॥ ३ ॥

भा०—(शुद्धवालः) शुद्ध श्वेत, वालों वाले, (सर्वशुद्धवालः) समस्त श्वेत वालों वाले, (मणिवालः) मणि के समान नीले वाल वाले (ते आश्विनाः) वे आश्विन पद के अधिकारियों के अधीन हों ।

"श्येतः श्येताक्षः अरुणः ते रुद्राय पशुपतये ।" (श्येतः) श्वेत वर्ण का (श्येताक्षः) आंख पर श्वेत वर्णवाला और (अरुणः) लाल ये (रुद्राय) सब दुष्टों के रुलाने वाले (पशुपतये) पशु पालकजन के अधीन जानो ।

(कर्णाः यामाः) कानों वाले अर्थात् बहुश्रुत लोग 'यम' नामक अधिकारी के हों ।

(अवलिप्ताः रौद्राः) शरीर पर चन्दन आदि के विशेष रङ्ग का लेप करने वाले 'रुद्र' पद से सम्बद्ध जानो । (नभोरूपाः पार्जन्याः) आकाश के समान वर्णवाले हलके नीले रंग के (पार्जन्याः) 'पर्जन्य' अर्थात् मेघ के समान पुरुष जल-धाराओं से अग्नि बुझानेवाले विभाग के हों ।

पृश्निस्तिरश्चीनपृश्निरूर्ध्वपृश्निस्ते मारुताः फल्गूर्लोहितोर्णी पलक्षी ताः सारस्वत्यः प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णोऽध्यालोहकर्णस्ते त्वाष्ट्राः कृष्णग्रीवः शितिकक्षोऽञ्जिसक्थस्त ऐन्द्राग्नाः कृष्णाञ्जिरल्पाञ्जिर्महाञ्जिस्त उपस्याः ॥ ४ ॥

भा०—(पृश्निः) चित्रविचित्र वर्ण, (तिरश्चीनपृश्निः) तिरछे या आड़े शरीर पर चिटकने वाला, (ऊर्ध्वपृश्निः) ऊपर की ओर चित्र विन्दु-वाले, (मारुताः) 'मरुत' विभाग के हैं ।

फल्गूः, लोहितोर्णी, पलक्षी ताः सरस्वत्यः ॥ (फल्गूः) स्वल्पबल वाली, (लोहितोर्णी) लाल ऊन पहनने वाली और (पलक्षी) श्वेत ऊन वाली अथवा अतिचञ्चल आंखों वाली स्त्रियां (ताः) वे (सारस्वत्यः) सरस्वती, वाणी या आज्ञाएं पहुंचाने के कार्य में लगाई जायं ।

प्लीहाकर्णः शुण्ठाकर्णः अध्यालोहकर्णः ते त्वाष्ट्राः ॥ (प्लीहाकर्णः) तीव्र गति से भीतर प्रवेश करने वाले साधन, (शुण्ठाकर्णः) शुष्क काष्ठ के बने अथवा छोटे उपकरण और (अध्यालोहकर्णः) समस्त लोह के बने साधनों वाला (ते) ये सब (त्वाष्ट्राः) त्वष्टा अर्थात् शिल्पि वर्ग के पुरुष हैं ।

"कृष्णग्रीवः शितिकक्षः अञ्जिसक्थः ते ऐन्द्राग्नाः ॥" काली ग्रीवा वाला या ग्रीवा पर काले चिह्न वाला, कक्ष अर्थात् बगल में श्वेत चिह्न वाला और जांघ पर श्वेत चिह्न वाला ये सब भी इन्द्र, अग्नि, सेनापति और अग्रणी-नेता पुरुषों के वर्ग के हैं ।

कृष्णाञ्जिः, अल्पाञ्जिः महाञ्जिः तेः उपस्याः । काले लंगोट के छोटे लंगोट के और बड़े लंगोट के ये पुरुष 'उपस्याः', उपा शत्रुदाहक या प्रकाशकारी विभाग के पुरुष हों ।

शिल्पा वैश्वदेव्यो रोहिण्यस्त्र्यवयो वाचेऽविज्ञाताऽअदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्य्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ५ ॥

निचृद् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(वैश्वदेव्यः शिल्पाः) सब प्रकारों के शिल्पों को दर्शाने वाले सभी कोटि के विद्वान् गण हैं । (रोहिण्यः) पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाली लताएं या उनके समान बढ़ती उमर की कुमारी कन्याएं (त्र्यवयः) माता, पिता और गुरु इन तीन की रक्षा में रहने वाली होकर (वाचे) ज्ञान वाणी की शिक्षा के लिये जावें । (अविज्ञाताः) ज्ञान रहित प्रजाएं (अदित्यै) पृथ्वी के ऊपर कृषि और खोदने आदि श्रम के कार्य पर लगें । अथवा (अविज्ञाताः) अज्ञात कुल की कन्याएं पालनार्थ (अदित्यै) अखण्ड स्थिर गृहस्थों को पालनार्थ देदी जायं । (सरूपाः) समान रूप, गुण, कीर्त्ति वाली स्त्रियें (धात्रे) पोषण करने और उत्तम सन्तानार्थ बीज वपन करने में समर्थ पतियों को प्राप्त हों । (वत्सतर्यः) बहुत छोटी उमर की कन्याएं (देवानां पत्नीभ्यः) विद्वान् गुरुओं की स्त्रियों के अधीन रहकर शिक्षा प्राप्त करें ।

कृष्णग्रीवा आग्नेयाः शितिभ्रवो वसूनाꣳरोहिता रुद्राणाꣳश्वेताऽअवरोकिणऽआदित्यानां नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ ६ ॥

विराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) गर्दन पर काले चिह्न वाले पुरुष 'अग्नि' अर्थात् अग्रणी सम्बन्धी हों । (शितिभ्रवः वसूनाम्) भ्रवों पर श्वेत चिह्न के पुरुष ' वसु ' नाम के प्रजा बसाने वाले अधिकारियों के हों । (रोहिताः रुद्राणां) लाल वर्ण के पोषाक वाले 'रुद्र' नाम अधिकारियों के हों । श्वेत वस्त्र वाले दूसरों को बुरे काम करने और कुमार्ग से जाने में रोकने वाले पुरुष (आदित्यानां) आदित्य नाम के अधिकारियों के हैं । (नभोरूपाः

पार्जन्याः) नील मेघ के वर्ण की पोशाक वाले पुरुष 'पार्जन्याः' पर्जन्य, मेघ के समान जलदाता विभाग के हों।

उन्नतऽऋृषभो वामनस्तऽऐन्द्रावैष्णवाऽउन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठस्तऽऐन्द्राबार्हस्पत्याः शुकरूपा वाजिनाः कल्माषाऽआग्निमारुताः श्यामाः पौष्णाः ॥ ७ ॥

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(उन्नतः) ऊंचा, (ऋषभः) हृष्ट पुष्ट और (वामनः) बौना, या अतिसुन्दर रूप वाले ये तीनों प्रकार के पुरुष (ऐन्द्रावैष्णवाः) इन्द्र और विष्णु नाम अधिकारी के अधीन हों। (उन्नतः शितिबाहुः शितिपृष्ठः ते) ऊंचे, बाहु पर श्वेत वस्त्र वाले और पीठ पर श्वेत वस्त्र वाले ये तीनों (ऐन्द्राबार्हस्पत्याः) 'इन्द्र बृहस्पति' राजा, राजमन्त्री के विभाग के हों। (शुकरूपाः वाजिनाः) तोते के समान हरे पोषाक के पुरुष वेगवान् अश्वों के ऊपर नियत हों। (कल्माषाः आग्निमारुताः) श्वेत काले, खाखी रङ्ग की पोशाक वाले 'अग्नि और मरुत्' विभाग के हों। (श्यामाः पौष्णाः) नीले रङ्ग के पूषा अर्थात् कर-संग्राहक विभाग के हों।

एताऽऐन्द्राग्ना द्विरूपाऽअग्नीषोमीया वामनाऽअनड्वाहऽआग्नावैष्णवा वशा मैत्रावरुण्योऽन्यतऽएन्यो मैत्र्यः ॥ ८ ॥

विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(एताः) कर्बुर रंग के (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि-विभाग के हैं। (द्विरूपाः अग्निषोमीयाः) दो २ रंग की पोशाक वाले (अग्निषोमीया) अग्नि और सोम विभाग के हैं। (वामनाः) छोटे अंग के पुरुष या पशु (अनड्वाहः) जो गाड़ी खींच कर लेजावें के (आग्नावैष्णवाः) अग्नि और विष्णु विभाग के हैं। (वशाः) वशकारिणी संस्थाएं और पुरुष (मैत्रावरुण्यः) 'मित्र और वरुण' विभाग के हैं। एक तरफ़ से चित्रित

वर्ण के वस्त्र पहनने वाली स्त्रियां (मैत्र्यः) 'मित्र' विभाग के अधीन हों।

कृष्णग्रीवाऽआग्नेया बभ्रवः सौम्याः श्वेता वायव्याऽअविज्ञाता अदित्यै सरूपा धात्रे वत्सतर्यो देवानां पत्नीभ्यः ॥ ९ ॥

निचृत्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) गर्दन पर काले चिह्न वाले 'अग्नि' विभाग के हैं। (बभ्रवः सौम्याः) बभ्रु, नेवले के रंग के, या भूरे रंग के 'सोम' विभाग के हैं। (श्वेता वायव्याः) श्वेत वर्ण के वायु विभाग के हैं। (अविज्ञाताः) इत्यादि म० ५ के समान।

कृष्णा भौमा धूम्राऽआन्तरिक्षा बृहन्तो दिव्याः शबला वैद्युताः सिध्मास्तारकाः ॥ १० ॥

विराड् गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(कृष्णाः भौमाः) कृषि के उपयोगी, कर्षक पुरुष और पशु (भौमाः) भूमि के उपायोगी हों। (धूम्रा आन्तरिक्षाः) धूम जिस प्रकार अन्तरिक्ष में जाता है ऐसे धूम के द्वारा रमण करने में कुशल पुरुष अन्तरिक्ष में जाने में कुशल हों। (बृहन्तः) बड़े शक्तिशाली पुरुष (दिव्याः) सूर्य के समान तेजस्वी एवं ज्ञान, विजय और तेज को प्राप्त करते हैं। (शबलाः) बल को प्राप्त करने वाले तीव्र गतिमान् यन्त्र (वैद्युताः) विद्युत् से उत्पन्न करने के योग्य हैं। (सिध्माः) तीव्र वेग से जाने हारे साधन (तारकाः) दूर देशों तक लेजाने के लिये हों।

धूम्रान् वसन्तायालभते श्वेतान् ग्रीष्माय कृष्णान् वर्षाभ्योऽरुणाञ्छरदे पृषतो हेमन्ताय पिशङ्गाञ्छिशिराय ॥ ११ ॥

विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(वसन्ताय) वसन्त ऋतु के लिये (धूम्रान्) धुमेले रंग के वस्त्रादि को (आलभते) प्राप्त करे। (ग्रीष्माय श्वेतान्) ग्रीष्म काल

के लिये श्वेत वस्त्रों का उपयोग करे। (वर्षाभ्यः कृष्णान्) वर्षा काल के लिये काले या नीले रंग के वस्त्रों का उपयोग करे। (अरुणान् शरदे) शरद् काल के लिये लाल रंग के वस्त्रों का उपयोग करे। (पृषतः हेमन्ताय) नाना वर्ण के चिटकनेदार अथवा मोटे वस्त्रों को हेमन्त काल में उपयोग करे। (पिशङ्गान् शिशिराय) पीले, वसन्ती रंग के वस्त्रों का उपयोग शिशिर ऋतु के लिये करे। विशेष ऋतु में विशेष रंग के वस्त्रों, तथा अन्य पदार्थों के उपयोग से प्राकृतिक लाभ और चित्तप्रसाद और स्वास्थ्य उत्पन्न होता है। अथवा ऋतु भेद से जिस प्रकार मेघों का वर्ण भेद है उसी प्रकार सदस्यों के भेद से राजा के कर्त्तव्यों का भेद है। जैसे वसन्त के निमित्त धूमाकार मेघों को प्राप्त करता है। ग्रीष्म में श्वेत मेघों को, वर्षा में काले, शरद् में सायं समय में लाल, हेमन्त में कई रंग के और शिशिर के लिये पीले मेघों को प्राप्त करते हैं।

त्र्यविंर्यो गाय॒त्र्यै पञ्चा॑वयस्त्रि॒ष्टुभे॑ दित्य॒वाहो॒ जग॑त्यै त्रिव॒त्सा ऽअ॑नु॒ष्टुभे॑ तुर्य॒वाह॑ऽउ॒ष्णिहे॑ ॥ १२ ॥

पृ॒ष्ठ॒वाहो॑ वि॒राज॑ऽउ॒क्षाणो॑ बृह॒त्याऽऋ॑ष॒भाः क॒कुभे॑ऽन॒ड्वाहः॑ प॒ङ्क्त्यै धे॒नवो॑ऽति॑च्छन्दसे ॥ १३ ॥

विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—जैसे गौओं में अवस्था भेद से भेद है उसी प्रकार गौ रूप वाणी में भी छन्दो भेद से भेद है। गौ की अवस्थाओं को वाणी के छन्दों से तुलना करते हैं। (त्र्यवयो गायत्र्यै) १½ वर्ष की गौएं गायत्री के स्थान पर हैं। (पञ्चावयः त्रिष्टुभे) २⅓ वर्ष की गौएं त्रिष्टुप् की तुलना के लिये हैं। (दित्यवाहः जगत्यै) कटे धानों को पीठ पर लेकर चलने वाली २ वर्ष की गौएं जगती के समान जानो। (त्रिवत्सा अनुष्टुभे) तीन तीन वर्ष की गौ अनुष्टुप् के समान हैं। (तुर्यवाह उष्णिहे) चतुर्थ वर्ष की

गो-जाति उष्णिग् छन्द के समान है। (पष्ठवाहः विराजे) पृष्ठ से बोझ उठाने वाली गो-जाति विराट् छन्द के समान है। (उक्षाणः बृहत्याः) वीर्य सेचन में समर्थ बैल बृहती के समान हैं (ऋषभाः ककुभे) ऋषभ, बड़े बल, ककुप् छन्द के समान समझो। (अनड्वाहः पंक्त्यैः) शकट का बोझ उठाने वाले बैल, (पंक्त्यै) पंक्ति छन्द के समान हैं और (धेनवः) दुधार गौवें (अतिछन्दसे) अति शब्दयुक्त छन्द के समान जानो।

कृष्णग्रीवा आग्नेया बभ्रवः सौम्याऽउपध्वस्ताः सावित्रा वत्सतर्यः सारस्वत्यः श्यामाः पौष्णाः पृश्नयो मारुता बहुरूपा वैश्वदेवा वशा द्यावापृथिवीयाः ॥ १४ ॥

भा०—(कृष्णग्रीवाः आग्नेयाः) गर्दन पर काले चिह्नवाले सेवक-जन (आग्नेयाः) 'अग्नि' पद के सम्बन्ध के हैं। (बभ्रवः सौम्याः) भूरे पोशाक वाले 'सोम' पद के सम्बन्ध के हैं। (उपध्वस्ताः सावित्राः) अन्य वर्ण से मिले २ वर्ण के 'सवितृ' पद के सम्बन्धी जन हैं। (वत्सतर्यः सारस्वत्याः) अत्यन्त छोटे वर्ष की बालक प्रजाएं (सारस्वत्याः) सरस्वती अर्थात् शिक्षा अथवा विभाग के अथवा गृहस्थ स्त्री द्वारा पोषण योग्य हैं। (श्यामाः पौष्णाः) श्याम, हरे धान, 'पूषा' अर्थात् भाग-धुक् नामक अधिकारी के हैं अथवा (श्यामाः पौष्णाः) नीले मेघ पृथ्वी के और अन्न के निमित्त हों। (पृश्नयः) रसों से पूर्ण गौएं (मारुताः) वैश्यगण की हैं। (बहुरूपाः वैश्वदेवाः) नाना प्रकार की प्रजाएं सामान्य समस्त विद्वान् पुरुषों की हैं। (वशाः) वशकारिणी शक्तियां (द्यावा पृथिवीयाः) द्यौ पृथिवी के समान माता पिता और राजा प्रजा के बीच में प्रयुक्त हैं।

उक्ताः सञ्चराऽएताऽऐन्द्राग्नाः कृष्णा वारुणाः पृश्नयो मारुताः कायास्तूपराः ॥ १५ ॥

विराड् उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(सञ्चराः) भिन्न २ विभागों के योगा उनके भृत्य और अनुचरों का (उक्ताः) वर्णन कर दिया गया है । जैसे (पृताः ऐन्द्राग्नाः) कर्बुर रंग के इन्द्र और अग्नि के (कृष्णाः वारुणाः) काले रंग के वरुण के, (पृश्नयः मारुताः) चित्र वर्ण के मरुतों के, (तूपराः कायाः) हिंसक स्वभाव के प्रजापति के हों ।

अग्नयेऽनीकवते प्रथमजानालभते मरुद्भ्यः सान्तपनेभ्यः सवात्यान् मरुद्भ्यो गृहमेधिभ्यो वष्किहान् मरुद्भ्यः क्रीडिभ्यः सꣳसृष्टान् मरुद्भ्यः स्वतवद्भ्योऽनुसृष्टान् ॥ १६ ॥

शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(अनीकवते) मुख्य सेना के स्वामी (अग्ने) अग्रणी सेना नायक के कार्य के लिये, (प्रथमजान्) प्रथम श्रेणी के, एवं श्रेष्ठ गुणों और विद्याओं में कुशल पुरुष को (आ लभते) प्राप्त करे और उनको अग्रणी के बलवृद्धि के लिये नियुक्त करे ।

(सांतपनेभ्यः) अच्छी प्रकार स्वयं तपस्या करने और शत्रुओं के तपानेहारे (मरुद्भ्यः) विद्वान् पुरुषों या वायु के समान तीव्र वेग से आक्रमण करनेवाले पुरुषों के लिये (सवात्यान्) प्राणों को या तीव्र वायु के समान तेज़ी से भागनेवाले, हवा से बात करनेवाले पुरुषों और यानादि को (आलभते) प्राप्त करे । (गृहमेधिभ्यः मरुद्भ्यः) गृहस्थ विद्वान् के रक्षा के लिये (वष्किहान्) हिंसकों के भी मारनेवाले रक्षकों को (आलभते) प्राप्त करे । (क्रीडिभ्यः) क्रीड़ा अर्थात् आनन्द विनोद, या युद्ध क्रीड़ा करनेवाले (मरुद्भ्यः) प्रजाओं या वीर पुरुष के लिये (संसृष्टान्) उनके साथ मिलकर काम करने में समर्थ, या खूब सधे हुए साथियों को प्राप्त करे । (स्वतवद्भ्यः) अपने ही बल पर कार्य करनेवाले (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (अनुसृष्टान्) उनके अनुकूल चलनेवाले पुरुषों को प्राप्त करे ।

१६ — साकमेधाः ।

उक्ताः सञ्चराऽएता ऐन्द्राग्नाः प्राशृङ्गा माहेन्द्रा बहुरूपा वैश्वकर्मणाः ॥ १७ ॥

भा०—(सञ्चराः उक्ताः) इनके साथ के अनुचर पूर्व कह चुके हैं। ये विशेष समझो कि (ऐन्द्राग्नाः) इन्द्र और अग्नि के (एताः) चितकबरे वर्ण के (प्राशृङ्गाः माहेन्द्राः) महान् राज के अनुचर खुले हिंसा साधन, हथियारों को आगे थामे हुए हों। (वैश्वकर्मणाः) विश्वकर्मा एञ्जीनियर के अधीन (बहुरूपाः) नाना प्रकार के कर्मचारी हों।

इस प्रकार राष्ट्र के भिन्न २ पदाधिकारियों के अधीन उनके भृत्य, साथी सङ्गियों के नाना वर्ण के पोषाकों, स्वभावों और प्रकारों का वर्णन कर दिया। तदनुसार ही उनके विभाग में काम आनेवाले पशुओं और यान आदि के भी भिन्न २ रूप संकेतार्थ कर लेने चाहियें।

अश्वमेध यज्ञ में प्रतिनिधिवाद से इन वर्णों के बकरों को ही लेकर २१ यूपों में बांधने का लिखा है। पर जब अश्व राष्ट्र का प्रतिनिधि है तो ये बकरे भी राष्ट्र के कार्यों में नियुक्त पुरुषों के उपदर्शक मात्र हैं। ऐसा जानना चाहिये।

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितृणांᳬ सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः। पितृणां बर्हिषदां कृष्णा बभ्रुनीकाशाः पितृणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥ १८ ॥

भुरिग् अतिजगती। निषादः ॥

भा०—(सोमवतां पितृणां) राज्य के विशेष पालन करने वाले रक्षक पुरुषों के अधीन पुरुष (धूम्राः) धुमैले रंग के और (बभ्रुनीकाशाः) भूरे के से पोशाक के हों। (बर्हिषदां पितृणाम्) प्रजा पर अधिष्ठित पालक पुरुषों के अधीन चाकर (बभ्रवः) भूरे रङ्ग के (धूम्रनीकाशाः) धुमैले छापवाले, हों। अर्थात् उन के वस्त्रों पर धूमैले रंग पर भूरे रङ्ग की धारियां हों। दूसरों के वस्त्रों

पर भूरे रंग पर धूमेली धारियां हो। (अग्निष्वात्तानां पितॄणाम्) विद्वान् अग्नि, स्वभाव के अग्रणी नेता पुरुषों के अधीन पालक पुरुषों के (कृष्णाः बभ्रुनीकाशाः) काले वस्त्रों पर भूरे चिह्न हों। (त्रैयम्बकाः) 'त्रियम्बक' अर्थात् तीन २ अधिकारों में लगे पुरुष (कृष्णाः पृषन्तः) काले रङ्ग पर चितकबरे नाना वर्णों के चिह्न के वस्त्र वाले हों।

उक्ष्णाः सञ्चरा एताः शुनासीरीयाः श्वेता वायव्याः श्वेताः सौर्याः ॥ १९

भा०—(सञ्चराः उक्ष्णाः) उनके साथ के अनुचर भी इसी प्रकार कहे जानने चाहियें। (शुनासीरीयाः) शुनासीर-विभाग, कृषि विभाग के लोग (एताः) कर्बुर रंग के हों। (वायव्याः) वायु विभाग के श्वेत और (सौर्याः श्वेताः) सूर्य अर्थात् प्रकाशकारी विभाग के श्वेत वस्त्र के पुरुष हों।

वसन्ताय कपिञ्जलानालभते ग्रीष्माय कलविङ्कान्वर्षाभ्यस्तित्तिरी-ञ्छरदे वर्त्तिका हेमन्ताय ककराञ्छिशिराय विककरान् ॥ २० ॥

विराड् जगती। निषादः ॥

भा०—ऋतुओं के अनुसार पक्षियों का वर्णन करते हैं। (वसन्ताय) वसन्त में (कपिञ्जलान्) कपिञ्जल नामक पक्षियों को (आलभते) देखता है। (ग्रीष्माय कलविङ्कान्) ग्रीष्म में 'कलविङ्क' नाम पक्षी को देखे। (वर्षाभ्यः तित्तिरीन्) वर्षा ऋतु में 'तित्तिरि' तीतर नाम के पक्षियों को देखे। (शरदे वर्त्तिकाः) शरत् काल में बटेर नामक पक्षियों को देखे। (हेमन्ताय ककरान्) हेमन्त में ककर नाम के पक्षियों को प्राप्त करे। (शिशिराय विककरान्) शिशिर के लिये 'विककर' नाम के पक्षियों को देखे।

भिन्न २ ऋतुओं में भिन्न २ पक्षी प्रकट होते हैं। उसी २ ऋतु में ही उन २ पक्षियों को पक्षिशास्त्रज्ञ प्राप्त करें, जानें और उनका अध्ययन करे, विपरीत कालों में विपरीत पक्षियों का प्राप्त होना राष्ट्र के लिये दैवी

विपत्तियों का सूचक होता है। इसलिये राष्ट्र प्रकरण में इसका उल्लेख किया जाता है।

समुद्राय शिशुमारानालभते पर्जन्याय मण्डूकानद्भ्यो मत्स्यान् मित्राय कुलीपयान् वरुणाय नाक्रान् ॥ २१ ॥

विराट् । मध्यमः ॥

भा०—(समुद्राय शिशुमारान् आलभते) समुद्र में शिशुमार घड़ियालों प्राप्त करे। (पर्जन्याय मण्डूकान्) मेघ काल में मेण्डक, (अद्भ्यः मत्स्यान्) जलों में मच्छियां, (मित्राय कुलीपयान्) मित्र अर्थात् मित्रता के लिये अथवा सूर्य सेवन या जल विहार के लिये 'कुलीपय' मुर्गाबी नाम के जन्तु, (वरुणाय नाक्रान्) वरुण अर्थात् भारी जलों में, या परस्पर वरण के निमित्त बड़े २ नाकों को प्राप्त करे, उनका स्वाध्याय करे।

सोमाय हꣳसानालभते वायवे बलाकाऽइन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान् मित्राय मद्गून् वरुणाय चक्रवाकान् ॥ २२ ॥

विराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(सोमाय हंसान्) राजा के विनोद या चांदनी में या जल की शोभा के लिये, हंस को प्राप्त करे। (वायवे बलाकान्) वायु में बलाका या बक पङ्क्तियां देखे। (इन्द्राग्निभ्यां क्रुञ्चान्) इन्द्र, सूर्य और अग्नि के अवसरों पर क्रुञ्च नाम पक्षी देखे। (मित्राय मद्गून्) सूर्य या सुखद जलाशय के निमित्त या मित्रता के लिये मद्गु नामक छोटे हंस को देखे। और (वरुणाय चक्रवाकान्) परस्पर प्रेम पूर्वक वरण के निमित्त चकवों को देखे। हंस, बलाका, क्रुञ्च, आदि पक्षी उन स्थानों पर जिस २ विशेषता को रखते हैं उन २ विशेषताओं का ज्ञान और अध्ययन करे।

अग्नये कुटरूनालभते वनस्पतिभ्यऽउलूकानग्नीषोमाभ्यां चाषानश्विभ्यां मयूरान् मित्रावरुणाभ्यां कपोतान् ॥ २३ ॥

पङ्क्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(अग्नये) अग्नि के प्रयोग के लिये (कुटरून्) कुटरु नामक मुर्गा, पक्षियों को (आलभते) प्राप्त करे । (वनस्पतिभ्यः उलूकान्) वनस्पतियों के ज्ञान के लिये उल्लू जातियों के पक्षियों को प्राप्त करे, उनके जीवन का अनुशीलन करे । (अग्निषोमाभ्यां) अग्नि और जल की परीक्षा के लिये (चाषान्) चाष नामक पक्षियों को देखे । (अश्विभ्यां मयूरान्) स्त्री पुरुषों के संयमी और प्रेमी और सुन्दरता सुखप्रद आलाप के लिये (मयूरान्) मयूरों को देखे । (मित्रावरुणाभ्यां कपोतान्) मित्र और वरुण अर्थात् मित्रता, स्नेह और परस्पर वरण के लिये (कपोतान्) कपोत नाम पक्षियों को देखे ।

सोमा॑य लवाना॒लभ॑ते॒ त्वष्ट्रे॑ कौ॒लीका॑न् गो॑षा॒दीर्दे॒वाना॒ं पत्नी॑भ्यः कु॒लीका॑ देवजा॒मिभ्यो॒ऽग्नये॑ गृ॒हप॑तये पारु॒ष्णान् ॥ २४ ॥

भा०—(सोमाय लवान् आलभते) सोम, सौम्य भाव के लिये 'लवा' नामक पक्षी को देखे (त्वष्ट्रे कौलीकान्) त्वष्टा, अर्थात् कारीगरी के काम देखने के लिये 'कौलिक' बया नाम पक्षी को देखे । (देवानां पत्नीभ्यः) विद्वान् पुरुषों या राजाओं की पत्नी या पालक शक्तियों के अच्छे दृष्टान्त के लिये (गोषादीभ्यः) गौओं पर बैठने वाली 'गुरुसल' नामक पक्षियों को देखे । वे गौ पर बैठती हैं, उनके नाशकारी कीड़ों को खाजाती हैं और गौ को हानि नहीं पहुंचातीं । इसी प्रकार पृथ्वी के पास शक्तियों को राष्ट्रवासी प्रजाओं को हानि न पहुंचा कर उनके बीच में दुष्ट पुरुषों को पकड़ २ कर नष्ट करें । (कुलीकाः देवजामिभ्यः १) देव, विद्वानों या राजाओं या विजयी पुरुषों के 'जामि' भगिनियों या स्त्रियों के लिये दृष्टान्त रूप से 'कुलीक' नामक पक्षी को देखना चाहिये । (अग्नये गृहपतये पारुष्णान्) गृहपति के उत्तम दृष्टान्त के लिये पारुष्ण

१—जामिः स्वसृकुलस्त्रियोः ।

नामक पक्षियों को देखना चाहिये। वे प्रत्येक अंग में उष्ण होते हैं और अपने बच्चों को अपने अंगों से लगा कर पालते हैं।

अन्हे पारावतानालभते राज्यै सीचापूरहोरात्रयोः सुन्धिभ्यो जतूर्मासेभ्यो दात्यौहान्त्संवत्सराय महतः सुपर्णान् ॥ २५ ॥

विराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—दिन के प्रारम्भ के लिये (पारावतान्) कबूतरों को देखे, वे भोर में ही उठते हैं, घूत्कार करते हैं। वैसे मनुष्य भी शीघ्र उठे और मन्त्रपाठ करे। अथवा दिन के कार्य के लिये पारावत, कबूतरों के प्रयोग करे वे दिन में दूर तक देखते हैं। (राज्यै सीचापूः) रात्रि के कार्य के लिये 'सीचापू:' नाम पक्षी का ज्ञान करे। (अहोरात्रयोः संधिभ्यः जतू:) दिन और रात की संधिकाल या संध्या समय में 'जतू' अर्थात् चमगीदड़ों का ज्ञान करे। वे उस समय अच्छा देखती और आहार पाती हैं। (मासेभ्यः दात्यौहान्) मासों के उत्तमता के ज्ञान के लिये काले कौओं का ज्ञान करे। (संवत्सराय महतः सुपर्णान्) संवत्सर की उत्तमता को जानने के लिये बड़े २ पक्षियों का अध्ययन करे।

भूम्या॑ऽआखूनालभतेऽन्तरिक्षाय पाङ्क्तान् दिवे कशान् दिग्भ्यो नकुलान् बभ्रुकानवान्तरदिशाभ्यः ॥ २६ ॥

भा०—(भूम्यै आखून् आलभते) भूमि की उत्तमता के लिये मूषकों का स्वाध्याय करे। (अन्तरिक्षाय पांक्तान्) अन्तरिक्ष विज्ञान के लिये पंक्ति बनाकर चलनेवाले पक्षियों को देखे। (दिवे कशान्) प्रकाश के लिये 'कश' नाम के पक्षियों को प्राप्त करे। (दिग्भ्यः नकुलान्) दिशाओं के ज्ञान के लिये (नकुलान्) नेवलों को स्वाध्याय करे। (अवान्तर दिग्भ्यः) उपदिशाओं के ज्ञान के लिये (बभ्रुकान्) बभ्रुक नामक जन्तुओं को देखे।

वसुभ्य॒ऽऋश्या॒नाल॑भते रु॒द्रेभ्यो॒ रुरू॑नादि॒त्येभ्यो॒ न्यङ्कू॑न् विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्य॑: पृष॒तान्त्सा॒ध्येभ्य॑: कुलु॒ङ्गान् ॥ २७ ॥

भा०—प्रजा में वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वदेव और साध्य ये पांच श्रेणियां उसी प्रकार उत्तरोत्तर उत्कृष्ट जानो जैसे वन के मृगों में ऋष्य, रुद्र, न्यङ्कु, पृषत और कुलुङ्ग ये पांच हरिण जातियां हैं। इनमें क्रम से एक के लिये एक को दृष्टान्तरूप से ले ले। (वसुभ्यः ऋष्यान् आलभते) वसु, २४ वर्ष के ब्रह्मचारियों के लिये मृग जाति में (ऋष्यान् आलभते) ऋष्य नामक मृगों को लेलें। (रुद्रेभ्यः रुरुन्) रुद्रों के लिये रुरु नामक मृगों को और (आदित्येभ्यः) आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (न्यंकून्) न्यङ्कु जाति के मृगों को और (साध्येभ्यः कुलङ्गान्) साध्य अर्थात् योग साधनाशील पुरुषों के लिये कुरङ्ग जाति के मृगों को ग्रहण करें। अथवा उक्तवसु आदि के लिये अमुक २ मृगों के चर्म वस्त्र, आसनादि के लिये प्राप्त करे।

ईशा॑नाय॒ पर॑स्वत॒ऽआल॑भते मि॒त्राय॑ गौ॒रान् वरु॑णाय महि॒षान् बृह॒स्पत॑ये गव॒याँस्त्वष्ट्र॒ उष्ट्रा॑न् ॥ २८ ॥

बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(ईशानाय) ऐश्वर्य या सामर्थ्यवान् जन के लिये (परस्वतः) परस्वान् नामक मृगों का निरीक्षण करे। (मित्राय गौरान्) मित्र, स्नेही व्यक्ति के लिये (गौरान्) गौर मृगों का दृष्टान्त देखे। ये परस्पर बहुत ही स्नेह करते हैं। (वरुणाय महिषान्) वरुण, प्रतिद्वन्द्वी को वारण करने वाले के लिये महिष अर्थात् भैंसा को देखना चाहिये। (बृहस्पतये गवयान्) बृहस्पति के बड़े राष्ट्र की रक्षा के लिये नील गायों को देखना चाहिये। वे अपने रेवड़ की बड़ी धीरता से रक्षा करते हैं, नर गवय मादीनों के बीच में घेर के रक्षा करते हैं। (त्वष्ट्रे उष्ट्रान्) त्वष्टा, शिल्पियों के लिये उष्ट्र जाति के बोझा उठाने वाले जन्तुओं का निरीक्षण करना चाहिये। जिस प्रकार

लम्बी टांगों पर भारी शरीर किस कारीगरी से लगा है उसका अनुकरण करना चाहिये। या भार वाले पदार्थों के उठाने के लिये ऊंटों का उपयोग करना चाहिये।

प्रजापतये पुरुषान् हस्तिन ऽआलभते वाचे प्लुषींश्चक्षुषे मशकाञ्छ्रोत्राय भृङ्गाः ॥ २९ ॥

भा०—(प्रजापतये) प्रजापालक राजा की सेवा के लिये (पुरुषान्) वीर पुरुषों को और (हस्तिनः) हाथियों को (आलभते) प्राप्त करे। (वाचे) वाणी के लिये (प्लुषीन्) प्लुषी नामक जन्तुओं को प्राप्त करे। (चक्षुषे मषकान्) आंख के लिये छोटे २ मच्छरों को देखें। जिस प्रकार चक्षु के रूप को देखकर वे मुग्ध होते हैं ऐसे उत्तम रूपों पर चक्षु को लगावे। (श्रोत्राय भृङ्गाः) श्रवणेन्द्रिय के सुख के लिये (भृङ्गाः) भृङ्गों को प्राप्त करे, उनके सुन्दर झंकार श्रवण करे।

प्रजापतये च वायवे च गोमृगो वरुणायारण्यो मेषो यमाय कृष्णो मनुष्यराजाय मर्कटः शार्दूलाय रोहिदृषभाय गवयी क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका नीलङ्गोः कृमिः समुद्राय शिशुमारो हिमवते हस्ती ॥ ३० ॥

भा०—(प्रजापतये वायवे च) प्रजा के पालक और वायु के समान वेग से जाने के लिये (गोमृगः) गवय अनुकरण करने योग्य है। (वरुणाय) शत्रु को वरण करने के लिये (आरण्यः मेषः) जंगली मेढा अनुकरण करने योग्य है। अर्थात् शत्रु को वारण करने वाला वीर मेढे के समान शत्रु से टक्कर ले। और (यमाय कृष्णः) यम, नियमपालक ब्रह्मचारी के लिये (कृष्णः) कृष्ण मेष अनुकरणीय है, वह उसके समान हृष्ट पुष्ट हो। (मनुष्यराजाय मर्कटः) मनुष्य स्वभाव के राजा के लिये वानर का दृष्टान्त समझना चाहिये। अर्थात् प्रायः मनुष्य-स्वभाव के राजा

वानर के समान चपल और क्रोधी होते हैं, अथवा वे उनके समान दिखावटी क्रोध के हों। भीतर से वे क्रोध न करें। (शार्दूलाय रोहित्) जिस प्रकार सिंह के लिये एक मृग पर्याप्त होता है उसी प्रकार शार्दूल के समान वीर पराक्रमी के लिये (रोहित्) वृद्धिशील प्रजा प्राप्त हो (ऋषभाय गवयी) जिस प्रकार बैल को भोग के लिये गौ प्राप्त होती है उसी प्रकार नरश्रेष्ठ को यह पृथिवी भोग के लिये प्राप्त हो। (क्षिप्रश्येनाय वर्त्तिका) जिस प्रकार वेग से झपटने वाले बाज को (वर्त्तिका) बटेरी शिकार में प्राप्त होती है। उसी प्रकार वेग से सेन पक्षी के समान परराष्ट्र पर आक्रमण करने में समर्थ वीर पुरुष को भी (वर्तिका) वृत्ति राज्य से प्राप्त हो (नीलंगोः कृमिः) नीड़ में बैठने वाले विशेष छोटी जाति के पक्षी को जिस प्रकार भोजन के लिये (कृमिः) कृमि प्राप्त होता है उसी प्रकार 'नीड़' अर्थात् आश्रय रक्षास्थान में बैठे पुरुष को उसके कर्म का फल प्राप्त हो। (समुद्राय शिशुमारः) समुद्र में जिस प्रकार स्वयं 'शिशुमारः' नाम का घड़ियाल आश्रय किये रहते हैं। उसी प्रकार ऐश्वर्य के समुद्र राजा के पास घड़ियाल के समान परशत्रु को अपने बल से खींचलाने वाले भयंकर विजयी पुरुष प्राप्त हों। (हिमवते हस्ती) जिस प्रकार विशालकाय हाथी जन्तु हिमवान् पर्वत का आश्रय लेता है उसी प्रकार हिमालय के समान उन्नत पुरुष के अधीन नर कुंजर भी प्राप्त होते हैं।

मयुः प्राजापत्य ऽउलो हलिक्ष्णो वृषदꣳशस्ते धात्रे दिशां कङ्को धुङ्क्षाग्नेयी कलविङ्को लोहिताहिः पुष्करसादस्ते त्वाष्ट्रा वाचे क्रुञ्चः ॥ ३१ ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(मयुः) उत्तम आज्ञा देने वाला पुरुष (प्राजापत्यः) प्रजापति प्रजापालक राजापद के योग्य है। अथवा (मयुः) गान, संगीत आदि के उत्तम

शब्द गान करने हारा (प्राजापत्यः) प्रजापति, राजा के सुख के लिये हो। (उलः) ऊन के वस्त्र देने वाला, (हलिक्ष्णः) सिंह के समान निर्भय चक्षु वाला और (वृषदंशः) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट दिखाई देने वाला (ते) ये तीनों प्रकार के पुरुष (धात्रे) राष्ट्र में धाता, प्रजा के पोषणकारी पद के योग्य हैं। (धुङ्क्षा) शत्रुओं को धुन डालने या कंपा देने वाली और उसको क्षीण करने वाली सेना (आग्नेयी) 'अग्नि' नामक अग्रणी नायक के अधीन रहे। (कलविङ्कः) मधुरध्वनियों को या कलायन्त्रों को प्रकट करने वाला, (लोहिताहिः) लोहित अर्थात् लोहादि के बने पदार्थों को आघात करने वाला लोहकार और (पुष्कर-सादः) तालाब को बनाने वाला, अथवा पुष्ट करने वाले दृढ़ दुर्गों को बनाने वाला (ते) ये सब (त्वाष्ट्राः) शिल्पकार के अधीन हों। (वाचे क्रुञ्चः) उत्तम वाणी के लिये ज्ञानवान्, चतुर पुरुष प्राप्त हो।

सोमा॑य कुलु॒ङ्ग ऽआ॑र॒ण्यो॒ऽजो न॑कु॒लः शका॒ ते पौ॒ष्णाः क्रो॒ष्टा मा॒योरिन्द्र॑स्य गौरमृ॒गः पि॒द्वो न्यङ्कुः॑ कक्कु॒टस्तेऽनु॑मत्यै प्रति॒श्रुत्का॑यै चक्रवा॒कः ॥ ३२ ॥

भुरिग् जगती । निषादः ॥

भा०—(सोमाय कुलुङ्गः) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्यवान् पद के लिये (कुलुङ्गः) मृग के समान उछाल भर कर शत्रु पर धावा करने वाला पुरुष प्राप्त हो। (आरण्यः अजः) जंगली 'अज' 'अजाशृंगी नामक औषध' या शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला पुरुष, (नकुलः) नेवुरा और उस स्वभाव का विषवैद्य, (शकाः) मधु-मक्खियें और उनसे तैयार मधु अथवा समवाय बनाकर शक्तिशाली हुए पुरुष (ते पौष्णाः) ये सब पुष्टि करने के लिये प्राप्त किये जायँ। (मायोः) दीर्घ शब्द करने के निमित्त पद के लिये (क्रोष्टा) दूर तक बुलाने वाला पुरुष प्राप्त किया जाय। (इन्द्रस्य गौरमृगः)

ऐश्वर्यवान् या इन्द्र आचार्य के पद के लिये (गौरमृगः) वाणियों में रमण करने और अन्तःकरणों को शुद्ध करने में समर्थ पुरुष चाहिये अथवा ऐश्वर्यवान् होने के लिये (गौरमृगः) गौओं और भूमियों में रमण करने और धनादि के खोजने वाला पुरुष चाहिये। (पिद्वः) ज्ञानवान् पुरुष, (न्यङ्कुः) नीचे, शनैः भाषणशील और (कक्कटः) निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करने वाला (ते) वे (अनुमत्यै) अनुमति, सलाह करने के लिये प्राप्त करने चाहियें। (चक्रवाकः) चक्र, राजचक्र में भाषण करने में समर्थ, वाग्मी पुरुष (प्रति-श्रुत्काय) सभा में स्थित प्रत्येक को राजा की घोषणा श्रवण कराने के लिये प्राप्त किया जाय।

'पिद्वः'—पी गतौ। भ्वादिः। दुगागमः। न्यक्कवति इति न्यङ्कुः। कटी गतौ। भ्वादिः, गति ज्ञानं गमनं प्राप्तिश्चेति त्रयोर्थाः। चक्रे वक्तीति चक्रवाकः। प्रति प्रति श्राव्यते यया क्रियया सा प्रतिश्रुत्का तस्यै। गोषु, वाणीषु, भूमिषु, गोषु धनेषु वा रमते इति गौरः। मृजू शुद्धौ। मृगयतेर्वा। कुलुंगः कुलं गच्छति इति कुलंगः उत्वं छान्दसम्। अथवा कुत्सितं लुनाति इति कुलुः शत्रुकुलं आकुलयति वा। अजति क्षिपति रोगान् बहिरिति अजः। अरण्ये भवः आरण्यः। न कुत्सितं मलं लाति इति नकुलः शुद्धान्नौषधप्रापकः। शकाः शचन्ते समवायेन वर्त्तन्ते, शक्नुवन्तीति वा शकाः।

सौरी बलाका शार्गः सृजयः शयाण्डकस्ते मैत्राः सरस्वत्यै शारिः पुरुषवाक् श्वाविद्भौमी शार्दूलो वृकः पृदाकुस्ते मन्यवे सरस्वते शुकः पुरुषवाक् ॥ ३३ ॥

भा०—(बलाका) बल से जाने वाली सेना को (सौरी) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के लिये प्राप्त करे। (शार्गः=सारगः) सार पदार्थों तक पहुंचने वाला अथवा 'शार-ग' शरसमूहों सहित जाने वाला, अथवा (शार्ङ्गः) शृङ्ग के धनुष का धारण करने वाला, या शस्त्रधर (सृजयः) वेग

से विजय करने वाला और (शयाण्डकः) शयन से सुख कराने वाला, (ते) ये तीनों (मैत्राः) स्नेही एवं प्रजा को मरण से बचाने वाले राजा के लिये प्राप्त करो। (सरस्वत्यै) विद्या के अभ्यास के लिये (पुरुषवाक् शारिः) पुरुष वाणी बोलने वाली मैना के समान पढ़े पाठ को पुनः अभ्यास करने वाला पुरुष हो। (भौमी श्वावित्) भूमि के भीतरी तत्वों को प्राप्त करने वाला (श्वावित्) सेहे के समान खोदने वाला हो। (शार्दूलः) शार्दूल के समान पराक्रमी, (वृकः) भेड़िये के समान साहसी और (पृदाकुः) अजगर के समान तपस्वी ये तीनों प्रकार के पुरुष (मन्यवे) 'मन्यु' अर्थात् क्रोधशीलता के लिये राजा को अनुकरणीय है (सरस्वते) प्रशस्त ज्ञान का अगाध सागर होने के लिये (पुरुषवाक् शुकः) पुरुष की वाणी बोलने वाले शुक के समान पुनः २ पाठशील पुरुष को प्राप्त करो।

सुपर्णः पार्जन्य ऽआतिर्वाहसो दर्विदा ते वायवे बृहस्पतये वाचस्पतये पैङ्गराजोऽलज आन्तरिक्षः प्लवो मद्गुर्मत्स्यस्ते नदीपतये द्यावापृथिवीयः कूर्मः ॥ ३४ ॥

स्वराट् शक्करी। धैवतः ॥

भा०—(सुपर्णः) उत्तम पालनशक्ति से सम्पन्न सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (पार्जन्यः) मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों का प्रदाता हो। (आतिः) निरन्तर सर्वत्र भ्रमण करने में समर्थ, (वाहसः) वाहनों को साथ रखने वाला और (दर्विदा) दारु, अर्थात् काष्ठों के विद्वान् (ते) वे तीनों पुरुष (वायवे) वायु के समान तीव्र वेग से गति करने में उपकारी होवें, वे शीघ्रगामी रथ बनावें।

(वाचस्पतये पैङ्गराजः) वाणी के पालकस्वरूप वाचस्पति पद के लिये उत्तम उपदेश और अध्यापन कार्य, एवं उत्तम सूक्त पद्यादि कहने वालों में सर्वश्रेष्ठ पुरुष को प्राप्त करो। (अलजः) जो पुरुष अपने कामों

से दूसरों को संताप न दे ऐसा व्यक्ति (आन्तरिक्षः) अन्तरिक्ष के समान सब का रक्षक होने योग्य है। (प्लवः) जहाज़, (मद्गुः) जलकाग के समान जल और स्थल दोनों स्थानों पर विहार करने में समर्थयान और (मत्स्यः) मछली के समान रचना वाला यान (ते नदीपतये) ये नदीपति समुद्र के संतरण के लिये चाहिये।

(द्यावापृथिवीयः कूर्मः) क्रिया उत्पन्न करने में समर्थ सूर्य जैसे द्यौ और पृथिवी को प्रकाश करता है। इसी प्रकार (कूर्मः) क्रियाशील, कर्मक्षम, तेजस्वी पुरुष राजा और प्रजा दोनों का हितकारी हो। नीचे की पृथिवी और ऊपर का आकाश दोनों मिल कर महान् 'कूर्म' अर्थात् कच्छप का आकार बनाते हैं। यह विराट् कूर्म है, वह जैसे पृथिवी और आकाश का मिलकर कूर्म है उसी प्रकार पृथिवी और उसका रक्षक राजा दोनों का मिलकर राज्य रूप एक कूर्म बनता है। वह उत्तम राज्य राजा प्रजा दोनों का ही होने से द्यावा पृथिवी दोनों का कहाता है।

'पैङ्गराजः'—पिजिर्भापार्थः। 'अलजः'—अज लजीभर्जने भ्वादिः।

पुरुषमृगश्चन्द्रमसो गोधा कालका दार्वाघाटस्ते वनस्पतीनां कृकवाकुः सावित्रो हꣳसो वातस्य नाक्रो मकरः कुलीपयस्तेऽकूपारस्य ह्रियै शल्यकः ॥ ३५ ॥

निचृत् शक्करी। धैवतः ॥

भा०—(चन्द्रमसः पुरुषमृगः) पुरुषों को अपने उपदेश, आचार व्यवस्था द्वारा पवित्र करने वाला पुरुष 'चन्द्रमा' के पदके योग्य है। वह चन्द्र के समान सब का आह्लादक है। (गोधा) गौओं का पालक (कालका) यथाकाल, ऋतु अनुसार फल प्राप्त करने वाला और (दार्वाघाटः) काष्ठों को चीरने फाड़ने वाला (ते) ये तीन पुरुष (वनस्पतीनाम्) वन के वनस्पतियों के पालने और प्रयोग के लिये हों। (कृकवाकुः)

कण्ठ से शुद्ध वाणी बोलने वाला विद्वान् (सावित्रः) सविता, सर्वप्रेरक आज्ञापक और सविता के समान ज्ञानी आचार्य पद के योग्य है। (हंस वातस्य) हंस के समान जल में निर्लेप रह कर विहार करने वाला योगी (वातस्य) प्राण के संयमन में कुशल (नाक्रः) नक्र के शरीर के समान बनी नाव, (मकरः) मगरमच्छ के शरीर के समान बनी नाव और (कुलीपयः) कुलीपय नामक जलजन्तु के समान रचना वाला जलयान (अकूपारस्य) समुद्र के विहार के लिये बनाना चाहिये। (ह्रियै शल्यकः) लज्जा के लिये सेहा या जंगली कांटेदार चूहा अनुकरण करने योग्य है वह आहट और स्पर्श पाते ही मुंह छिपाकर पड़ जाता है।

एण्यह्नो मण्डूको मूषिका तित्तिरिस्ते सर्पाणां लोपाश ऽआश्विनः कृष्णो रात्र्या ऋक्षो जतूः सुषिलीका त ऽइतरजनानां जहका वैष्णवी ॥ ३६ ॥

निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(एणी) नित्य आनेवाली उषा (अह्नः) दिन को प्रकाश करती है। (मूषिका तित्तिरिः मण्डूकः) मेंढक, मूसा और तीतर ये तीनों (सर्पाणाम्) सांपों के आहार होते हैं। (लोपाशः आश्विनः) स्त्री और पुरुष दोनों का परस्पर सम्बन्ध 'लो' [पाश=लोहपाश] अर्थात् लोह से बने पाश के समान दृढ़ हो। (कृष्णः) काला अंधकार (रात्र्याः) रात्रि का स्वरूप है। (ऋक्षः जतूः सुषीलिका ते इतरजनानाम्) रीछ, चमगीदड़ और सुषीलिका नामक पक्षी ये तीनों श्रेष्ठ पुरुषों से भिन्न २ जनों के स्वभाव के दृष्टान्त हैं। रीछ क्रूर है वह पशु होकर भी अपुच्छ है, चमगीदड़ न पक्षी है न पशु है। सुषीलिका पक्षी होकर बिल बनाकर रहती है। इस प्रकार ये जिस वर्ग के हैं उसमें होकर भी उनसे भिन्न रूप और स्वभाव के हैं इसी प्रकार जो लोग श्रेष्ठ पुरुषों में होकर भी उनसे भिन्न

आचार व्यवहार के हों वे इन जन्तुओं के समान हैं। (जहका वेध्णवी) सर्वत्र फैलाने वाली व्यापक शक्ति परमेश्वर की है। राष्ट्र में व्यापक शक्ति राजा की है। 'जहका'—ओहाङ् गतौ।

अन्यवापोऽर्द्धमासानामृश्यो मयूरः सुपर्णस्ते गन्धर्वाणामपामुद्रो मासान् कश्यपो रोहित्कुण्डृणाची गोलत्तिका तेऽप्सरसां मृत्यवेऽसितः ॥ ३७ ॥

भुरिग् जगती। निषादः ॥

भा०—(अन्यवापः अर्धमासानाम्) स्वक्षेत्र में दूसरों द्वारा बीज वपन केवल (अर्धमासानाम्) आधे मास, ऋतुकाल-मात्र के लिये हो। उसके अतिरिक्त समय नियुक्त पुरुष का क्षेत्र से कोई सम्बन्ध नहीं। जिस प्रकार 'अन्यवाप' अर्थात् दूसेर के बीज से उत्पन्न कोयल का काक से पालन मात्र का सम्बन्ध है बाद में वह पुनः कोमल का ही बच्चा कहाता है इसी प्रकार असमर्थ पुरुष के स्त्री में अन्य वीर्य द्वारा उत्पादित नियोगज पुत्रों का भी वीर्य सेक्ता के साथ केवल ऋतुकाल के १५ दिनों के संग-मात्र का सम्बन्ध है। उसके अतिरिक्त वे पुत्र स्त्री के पाणिग्रहीता पति के ही कहाते हैं।

(ऋष्यः मयूरः सुपर्णः ते गन्धर्वाणाम्) ऋष्य नामक मृग जो गान पर मुग्ध हो जाता है (मयूरः) मोर जो मधुर षड्ज स्वर का आलाप करता है (सुपर्णः) हंस ये गन्धर्व अर्थात् गान-विद्या के विशेष २ पुरुषों के लिये स्वर-निर्णय में अनुकरण करने योग्य हैं। ऋष्य मृग का स्वर ऋषभ, मयूर का षड्ज और हंस का पञ्चम है।

(अपाम् उद्रः) उद्र, अर्थात् उदक में रमण करनेहारे कर्कट नाम जीव का अनुकरण करके (अपाम्) जलों के विहार करने के साधन तैयार करना चाहिये। (कश्यपः) सर्वप्रकाशक, सूर्य (मासान्) मासों, १२ महीनों का उत्पादक होता है। (रोहित् कुण्डृणाची गोलत्तिका ते

अप्सरसाम्) रोहित्, कुण्डृणाची और गोलत्तिका ये तीन पशुजातियें (अप्सरसाम्) स्त्रियों के स्वभाव बतलाने वाले दृष्टान्त हैं। अथवा ये स्त्रियों के तीन नमूने हैं, १. 'रोहित्' जो पुरुष का सङ्ग लाभ कर पुत्र सन्तानादि से फूलती फलती हैं। अथवा लता स्वभाव की हैं। वे पुरुष का आश्रय करके रहती हैं । दूसरी (कुण्डृणाची)दाह या कामानल से पीड़ित होकर पुरुष के पास आती हैं । तीसरी 'गोलत्तिका' अर्थात् गोरतिका, गौ के स्वभाव की, अन्न वस्त्र ही से संतोष करनेवाली अथवा गौ, इन्द्रियों को सुख देनेवाली. पशु के समान रतिमात्रफला । कदाचित् कामशास्त्र की दृष्टि से रोहित्=मृगी । कुण्डृणाची = हस्तिनी और गोलत्तिका = चित्रिणी हों ।

(असितः) बन्धन रहित जीव (मृत्यवे) मृत्यु अर्थात् शरीर त्याग के वश होता है । अर्थात् मृत्यु का स्वरूप देहबन्धन से छूटना है । अथवा (असितः) कृष्ण, पापी बन्धनरहित, निर्मर्याद पुरुष (मृत्यवे) मृत्युदण्ड के योग्य है ।

वर्षाहूर्ऋतूनामाखुः कशो मान्थालस्ते पितृणां बलायाजगरो वसूनां कपिञ्जलः कपोत उलूकः शशस्ते निर्ऋत्यै वरुणायारण्यो मेषः ॥ ३८ ॥

स्वराड् जगती । निषादः ॥

भा०—(वर्षाहूः ऋतूनाम्) वर्षाओं को लानेवाला काल (ऋतूनाम्) ऋतुओं में सबसे श्रेष्ठ है । (आखुः) सब ओर से भूमि को खनकर उसमें से रत्न, जल, अन्नादि प्राप्त करने वाला, (कशः) कशा के समान शासन करने हारा या सर्व विद्याओं का प्रकाशक और (मान्थालः) मथन करके सार भाग प्राप्त करने वाला. ये तीनों प्रकार के पुरुष (पितृणाम्) पालक माता पिता के समान प्रिय, हितकारी होते हैं। (बलाय) बल के सम्पादन के लिये (अजगरः) अजगर का अनुकरण करना चाहिये । अर्थात् जिस प्रकार अजगर सुदृढ़, यथेच्छ बलवाला होता है उसी प्रकार

शरीर देखने में कोमल होकर भी इच्छानुसार कठोर और बलपूर्ण हो। (वसूनां कपिञ्जलः) उत्तम वचन कहने वाला पुरुष (वसूनाम्) राष्ट्र-वासी प्रजाओं का प्रिय होता है। (कपोत उलूकः शशः ते निर्ऋत्यै) कपोत, उलूक और शशक ये तीनों जन्तु संकट, विपत्ति की सूचना देने वाले और उस काल में सहायक हैं। उसके लिये इनकी प्रकृति का स्वाध्याय अर्थात् चाहिये। (आरण्यो मेषः वरुणाय) जंगली मेढ़ा या जंगली भैंसा, 'वरुण' अर्थात् शत्रुनिवारण करने वाले पुरुष को अनुकरण करने योग्य हैं। वह जैसे शत्रु से प्राणपण से जुट जाता है उसी प्रकार शत्रु मारने के काम में लगे पुरुष को अपने कार्य में प्राणपण से जुट जाना चाहिये।

श्वित्र ऽआ॑दि॒त्याना॒मुष्ट्रो॒ घृणी॑वान् वार्ध्रीन॒सस्ते ऽम॒त्या अर॑ण्या॒य सृम॒रो रुरू॑ रौ॒द्रः क्वयिः॑ कु॒टरु॑र्दात्यौ॒हस्ते वा॒जिनां॒ कामा॑य पिकः॑ ॥ ३९ ॥

स्वराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(श्वित्रः आदित्यानाम्) श्वेत प्रकाश सूर्य की किरणों का होता है। वह श्वित्र, निश्पाप चरित्र आदित्य ब्रह्मचारियों को अनुकरण करना चाहिये। (उष्ट्रः घृणिवान्, वार्ध्रीनसः ते मत्यैः) उष्ट्र, अर्थात् पापों का दहन करने वाला (घृणिवान्) सूर्य के समान तेजस्वी और (वार्ध्रीनसः) नाक में नकेल लगालेने के समान अपने इन्द्रियों पर निग्रह करने वाला ये तीन प्रकार के पुरुष (मत्यै) उत्तम मति, ज्ञान प्राप्त करने के लिये उपासना करने योग्य हैं। (अरण्याय सृमरः) गवय के समान नित्य जंगलों में घूमने वाला पुरुष जंगल के प्रदेश के लिये पथप्रदर्शक होने योग्य है। (रुरुः) निरन्तर उपदेश करने वाला (रौद्रः) उपदेशक विद्वान् होने योग्य है। अथवा भयंकर शब्द करने वाला पुरुष भयजनक है।

(क्वयिः कुटरुः दात्यौहः ते) क्वयि कुटरु=कुक्कुट और काला काक ये तीनों (वाजिनाम्) घोड़ों के हितकारी होते हैं। अथवा बटेरा कुक्कुर और काक

ये तीन दृष्टान्त (वाजिनाम्) युद्ध करनेवालों को अनुकरण करने योग्य हैं। (कामाय पिकः) काम, मनोभिलाषा पूर्ण करने के लिये (पिकः) कोकिल के समान मनोहर वाणी से बोलनेहारा हो।

खड्गो वैश्वदेवः श्वा कृष्णः कर्णो गर्दभस्तरक्षुस्ते रक्षसामिन्द्राय सूकरः सिंहो मारुतः कृकलासः पिप्पका शकुनिस्ते शरव्यायै विश्वेषां देवानां पृषतः ॥ ४० ॥

भा०—(खड्गः) गैण्डा नामक पशु (वैश्वदेवः) समस्त विजिगीषु, योद्धा पुरुषों के ढाल बनाने के काम का होता है। अथवा (खड्गः) खड्ग, तलवार सब सैनिकों के उपयोग की है। (कृष्णः श्वा) काला कुत्ता, (कर्णः गर्दभः) कानों वाला गधा और (तरक्षुः) चीता ये पदार्थ (रक्षसाम्) दुष्ट पुरुषों से बचने के लिये उपाय और अनुकरणीय दृष्टान्त हैं। (इन्द्राय सूकरः) भूमि विदारण करने के काम में 'सूकर' सूअर नाम का लम्बी थोथन वाला पशु अनुकरण करने योग्य है। (सिंहः मारुतः) सिंह, प्रयाण करने वाले योद्धा के लिये वीरता और तीव्रता के लिये अच्छा अनुकरण योग्य दृष्टान्त है। (कृकलासः) कृकलास नाम सरट. गिरगट; (पिप्पका) पिप्पका नाम का छोटा पक्षी और (शकुनिः) शक्तिशाली बड़ा पक्षी, ये तीनों पदार्थ (शरव्यायै) बाण बनाने के उपयोग के हैं। गिरगट के समान बाण का मुख पिप्पका के पूंछ के समान बाण की पूंछ और बड़े पक्षियों के पंखों के खण्डों से बाण बनाया जाता है। (पृषतः विश्वेषां देवानाम्) पृषत् नामक सामान्य मृग समस्त विद्वान् पुरुषों के लिये मृगछाला आदि के आसन और वस्त्र के कार्य का है।

॥ इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ पञ्चविंशोऽध्यायः ॥

॥ ओ३म् ॥ [1] शादं द॒द्भिरव॑कां दन्तमू॒लैर्मृदं॒ बस्वैस्ते॒ गान्द॒ꣳष्ट्रा॑भ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या॒ऽ अ॑ग्रजि॒ह्वं जि॒ह्वाया॑ऽ उत्सा॒दम॑वक्र॒न्देन॒ तालु॒ वाज॒ꣳ हनु॑भ्याम॒प ऽआ॒स्ये॒न वृष॑णमा॒ण्डाभ्या॑म् । [2] आ॒दि॒त्याँ श्मश्रु॑भि॒: पन्था॑नं भ्रू॒भ्यां द्यावा॑पृथि॒वी व॒र्तोभ्यां॑ वि॒द्युतं॑ क॒नीन॑काभ्यां॒ꣳ शु॒क्लाय॒ स्वाहा॑ कृ॒ष्णाय॒ स्वाहा॑ पार्या॑णि॒ पक्ष्मा॑ण्यवा॒र्या॑ इ॒क्षवो॑ऽवा॒र्या॑णि पक्ष्मा॑णि॒ पार्या॑ इ॒क्षव॑: ॥ १ ॥

भुरिक् शक्वरी (२) निचृदतिशक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(शादं दद्भिः) काटने की क्रिया को दांतों से सीखो । (दन्तमूलैः) दांतों के मूल भागों से (अवकाम्) रक्षा करने की विधि का प्रयोग सीखो । काटने का विज्ञान दांतों से सीखना चाहिये कि किस प्रकार वे पदार्थों को काटते हैं । उसी प्रकार दन्तमूल काटने के अवसर पर दांतों की कैसे रक्षा करते हैं । (बस्वैः मृदं) दांतों के पृष्ट-भागों से (मृदम्) मर्दन करने की क्रिया का पाठ सीखें । वे चबाये पदार्थ को कैसे मसलते हैं । (दंष्ट्राभ्यां तेगाम्) दांतों से तीक्ष्णता का ज्ञान करो । (सरस्वत्यै अग्रजिह्वम्) सरस्वती, शुद्ध वाणी के उच्चारण के लिये जिह्वा के अग्रभाग का उपयोग करो । (जिह्वायाः) जीभ से (उत्सादम्) उखाड़ने के व्यापार की शिक्षा लो । वह अपनी चतुरता से दांतों में फंसे अन्नादि के अवयवों को किस प्रकार उखाड़ती है । (अवक्रन्देन तालु) नीचे शब्द के प्रयोग से (तालु) तालु का प्रयोग सीखो (हनूभ्याम् वाजम्) दोनों जबाड़ों से बल की शिक्षा लो । (आस्येन अपः) मुख से जलों के

१—शादंदद्भिरित्यारभ्य पृथिवीं त्वचा [२९ । ६] इत्यन्तः संहिता भागो ब्राह्मणं न मन्त्राः इति महीधरः ॥

प्रकट होने का विज्ञान देखो, किस प्रकार मुख में लगी ग्रन्थियों से जल छूटता है और नित्य सदा मुख जल से गीला रहता है। (आण्डाभ्याम् वृषणम्) अण्डकोषों से वीर्य सेचन के ज्ञान को प्राप्त करो। (श्मश्रुभिः) दाढ़ी मोंछ के बालों से (आदित्यान्) आदित्य ब्रह्मचारियों को पहचानो, अथवा दाढ़ी मोंछ के बालों से (आदित्यान्) सूर्य की किरणों को जानो। अर्थात् मनुष्य के मुख पर दाढ़ी मोंछे उसी प्रकार हैं जिस प्रकार सूर्यबिम्ब के चारों ओर उससे निकलने वाली किरणें। (भ्रूभ्याम् पन्थानम्) भौंहों से मार्ग को जानो अर्थात् जिस प्रकार नाक पर दो भौंहें एक दूसरे के विपरीत दिशा में लगी हैं उसी प्रकार भिन्न २ दिशा में गये मार्गों को सूचित करना चाहिये। अथवा (भ्रूभ्याम्) भौंहों के इशारे से ही (पन्थानम्) जाने योग्य मार्ग को समझो। बुद्धिमान को इशारों से ही अपने कर्त्तव्या-कर्त्तव्य को जानना चाहिये। (वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी) ऊपर नीचे की पलकों से आकाश और पृथिवी को जाने अर्थात् जैसे दो पलकें ऊपर नीचे हैं वे चक्षु को अपने भीतर लिये रहती हैं उसी प्रकार आकाश ऊपर और पृथिवी नीचे वे दोनों दो पलकों के समान सूर्य रूप तेज को अपने भीतर धारण करती हैं। (कनीनकाभ्यां) आंख की पुतलियों से (विद्युतम्) विद्युत् या विशेष द्युतिमय सूर्य को समझो। पलकों के बीच की पुतली उसी प्रकार है जैसे आकाश और भूमि के बीच विशेष तेजस्वी सूर्य है। (शुक्लाय स्वाहा) आंख के शुक्ल भाग का भी ज्ञान करो और (कृष्णाय स्वाहा) कृष्ण भाग का भी ज्ञान करो। वे दोनों दिन और रात्रि के प्रकाश और अन्धकार के समान हैं। (पक्ष्माणि) पलकों पर के लोम (पार्याणि) नदी के परले तट पर लगे कासों के समान हैं। (इक्षवः) नीचे की पलकों के लोम (अवार्याणि) मानो इस तीर के कासों के समान हैं। अथवा (पक्ष्माणि) स्वीकार करने योग्य वस्तु (पार्याणि) पालन करने योग्य हैं। (इक्षवः) इच्छानुकूल पदार्थ (अवार्याणि)

वारण नहीं करने चाहियें । और इसी प्रकार (पद्याणि अवार्याणि) अपने पक्ष के, ग्रहण योग्यों को तिरस्कार न किया जाय । (इत्तवः पार्या) इष्ट सम्बन्धियों को पालन करना चाहिये ।

अथवा—इस मन्त्र में राष्ट्र की मनुष्य के मुँह से तुलना की गई प्रतीत होती है । जैसे (शादं दद्भिः) 'शाद'अर्थात् छेदन करनेवाले शस्त्र बल की दांतों से तुलना करो । (अवका दन्तमूलैः) शैवाल को दन्तमूलों से तुलना कर । अथवा कांटने वाले हथियारों की दांतों से तुलना कर । राष्ट्र की रक्षा करने वाली सेना को दांतों के मूलों के तुल्य मानो । (तेगां दंष्ट्राभ्याम्) तीक्ष्ण शस्त्र की दाढ़ों से तुलना करो । (सरस्वत्या अग्रजिह्वं) सरस्वती या विद्वत्स-मिति से मुखस्थ जीभ की तुलना करो । (जिह्वायाः उत्सादम्) मुख में लगी जीभ की राष्ट्र में शत्रु को उखाड़ देने की शक्ति से तुलना करो । (अव-क्रन्देन) शत्रु को ललकारने वाले या दबाने वाले बल से (तालु) तालु की तुलना करो । जिस प्रकार भोज्य पदार्थ को तालु दबा लेता है उसी प्रकार राजा भोग्य राष्ट्र को दबाकर भोग करे ।(वाजं हनुभ्याम्) राष्ट्र के बल वीर्य की मुख के जबाड़ों से तुलना करो । (अपः आस्येन) राष्ट्र में स्थिर जलों की (आस्येन) गीले मुख से तुलना करो । अथवा (अपः आस्येन) प्रजाओं की समस्त खाने वाले मुख से तुलना करो । (वृषणम् आण्डाभ्याम्) शरीर में स्थित अण्डकोशों से वर्षा करनेवाले मेघ की तुलना करो । (आदित्यान् श्मश्रुभिः) सूर्य की किरणों की मुख के मूंछ दाढ़ी से तुलना करो । (पन्थानं भ्रूभ्याम्) राष्ट्र में बने मार्ग की मुख पर लगी भौहों से तुलना करो । (वर्त्तोभ्यां द्यावापृथिवी) दो पलकों से आकाश और पृथिवी की तुलना करो । (विद्युतं कनीनकाभ्याम्) आकाश पृथिवी के बीच स्थित विशेष कान्तिवाले सूर्य या विद्युत् की आंखों की पुतलियों से तुलना करो । (शुक्लाय स्वाहा कृष्णाय स्वाहा अर्थात् शुक्लेन शुक्लं सुष्टु आह । कृष्णेन कृष्णं सुष्टु उच्यते । अथवा, शुक्लः

शुक्लं स्वम् उपमानमाह कृष्णः कृष्णं स्वम् उपमानम् आह) आंख के श्वेत भाग और कृष्ण भाग के लिये भी दिन और रात्रि के शुक्ल और कृष्ण, प्रकाश और अन्धकार दोनों की उत्तम रीति से तुलना करो। (पक्ष्माणि पार्याणि) ऊपर के पलक के लोम राष्ट्र के पालन करने वाले अथवा दूर के देश वासी जन के समान हैं। और (इक्षवः) निचली पलक के रोम (अवार्याणि) समीप के प्रान्तों के वासी जनों के समान हैं। अथवा इससे विपरीत (पक्ष्माणि अवार्याणि पार्या इक्षवः) ऊपर की पलकों के लोम पास के प्रान्तों की प्रजा और नीचे के पलक के रोम दूर के प्रान्तों की प्रजा के समान हैं।

वातं प्राणेनापानेन नासिके उपयाममधरेणौष्ठेन सदुत्तरेण प्रकाशेनान्तरमनूकाशेन बाह्यं निवेष्यं मूर्ध्ना स्तनयित्नुं निर्बाधेनाशनिं मस्तिष्केण विद्युतं कनीनकाभ्यां कर्णाभ्याᳬ श्रोत्रᳬ श्रोत्राभ्यां कर्णौ तेदनीमधरकण्ठेनापः शुष्ककण्ठेन चित्तं मन्याभिरदितिᳬ शीर्ष्णा निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा संक्रोशैः प्राणान् रेष्माणᳬ स्तुपेन ॥ २ ॥

भुरिगतिशक्वर्यौ । धैवतः ॥

भा०—(प्राणेन वातम्) शरीरगत प्राण से राष्ट्रगत वायु की तुलना करो। (अपानेन नासिके) शरीर की नासिका को अपान वायु से तुलना करो। (अधरेण ओष्ठेन उपयामम्) नीचे की होठ से राज्यव्यवस्था की तुलना करो। (सत् उत्तरेण) ऊपर के होंठ से राज्य के सदाचार व्यवस्था की तुलना करो। (प्रकाशेन अन्तरं) राज्य में विद्यमान् विद्या, विज्ञान और सूर्यादि के प्रकाश से शरीर के भीतर विद्यमान् अङ्गों की ज्ञानपूर्वक रचना की तुलना करो। (अनूकाशेन) उसके अनुरूप प्रकाश से (बाह्यम्) देह के बाह्य स्वरूप की तुलना करो। (मूर्ध्ना निवेष्यं) शरीर

के शिरो भाग से राष्ट्र के भीतर व्यापक या एक स्थान पर राजधानी में बसे मुख्य भाग की तुलना करो। (स्तनयित्नुं निर्बाधेन) शरीर में स्थित शिर के बीच के भेजे के श्वेत भाग की तुलना आकाश में स्थित गर्जनकारी मेघ से करो। (अशनिं मस्तिष्केण) मस्तक में स्थित भेजे या भूरे रंग के भाग से मेघस्थ वज्र की तुलना करो। (विद्युतं कनीनकाभ्यां) चक्षुओं में स्थित पुतलियों से मेघस्थ विद्युत् की तुलना करो। (कर्णाभ्यां श्रोत्रम्) दिशाओं के दो कोनों से शरीर के श्रोत्र की, या कानों से आकाश की तुलना करो। (श्रोत्राभ्यां कर्णौ) शरीरगत श्रवण के साधन कानों से (कर्णौ) शेष दो कोनों की तुलना करो। (तेदनीम् अधरकण्ठेन) राष्ट्र की 'तेदनी'=तेजनी, तीक्ष्ण शक्ति को शरीरगत कण्ठ के अधर भाग से तुलना करो। (शुष्ककण्ठेन अपः) शरीरगत सूखे कण्ठ से राष्ट्र की (अपः) प्रजाओं की तुलना करो। अर्थात् वे सदा सूखे गले के समान अन्न जल की प्यासी रहती हैं। (चित्तं मन्याभिः) शरीर में स्थित चित्त को (मन्याभिः) राष्ट्र की मान करने वाली राजसभाओं से तुलना करो। (अदितिं शीर्ष्णा) शरीरस्थ शिर से प्रभु की अखण्ड आज्ञा की तुलना करो। (निर्ऋतिं निर्जर्जल्पेन शीर्ष्णा) राष्ट्र के नाश या विपत्ति की तुलना शरीर में लगे विना बोलने वाले मृत्युग्रस्त अथवा (निर्जर्जल्पेन) अत्यन्त जर्जर, उस बेसुध शिर से करो जिसका बोलना बन्द हो चुका हो। (संक्रोशैः प्राणान्) राष्ट्र में एक दूसरे के प्रति बोले हुए शब्द, वार्तालाप, आह्वान आदि की तुलना शरीरस्थ प्राणों से करो। (रेष्माणं स्तुपेन) शिर में लगे आघात आदि से राष्ट्र में उत्पन्न परस्पर घात प्रतिघात उपद्रव की तुलना करो।

अथवा—(प्राणेन वातम् आपूरय) हे अभ्यासी पुरुष! तू प्राणवृत्ति अर्थात् बाहर से भीतर श्वास द्वारा वायु को पूर्ण कर। (अपानेन नासिके) और फिर अपान अर्थात् भीतर से बाहर आते हुए निःश्वास द्वारा दोनों नाकों को रिक्त करे। (अधरेण ओष्ठेन उत्तरेण सत् उपयामम्) ऊपर और नीचे

के ओष्ठों से प्राप्त या स्वीकृत नियम, मौनमुद्रा या वाक् संयम की साधना कर। (प्रकाशेन अन्तरम्) ज्ञान के प्रकाश से भीतर को उज्ज्वल कर और (अनुकाशेन वाह्यम्) तदनुसार स्वच्छ आचरण से अपने बाह्य शरीर को सुन्दर बना। (मूर्ध्ना निवेश्यम्) अपने शिर से ध्यान करने योग्य ध्येय पदार्थ की चिन्ता कर। (निर्बाधेन) अच्छी प्रकार रोक लेने के उपाय से (स्तनयित्नुम्) मेघ को या गर्जनकारी विद्युत् को प्राप्त कर अथवा (निर्बाधेन) निरन्तर ताड़ना या प्रहार से (स्तनयित्नुम्) शब्द करने की क्रिया को उत्पन्न कर। (मस्तिष्केण अशनिम्) मस्तिष्क--मस्तक में स्थित मज्जा तन्तु के जाल से देह में व्यापक विद्युत् की साधना कर। (कनीनकाभ्याम् विद्युतम्) आंख की पुतलियों से विशेष दीप्ति को प्राप्त कर। (कर्णाभ्यां श्रोत्रम्) कानों से श्रवण शक्ति को प्राप्त कर। (श्रोत्राभ्यां कर्णौ) श्रवण करने वाले भीतरी इन्द्रियों से बाह्य कानों को शक्तियुक्त कर। (अधरकण्ठेन तेदनीम्) कण्ठ के नीचे के भाग से 'तेदनी' भोजन की क्रिया को कर। (शुष्ककण्ठेन अपः) सूखे कण्ठ से जलों का पान कर। (मन्याभिः चित्तम्) मन्या नाम की धमनियों से या मनन करने की विज्ञान क्रियाओं से चित्तम्) चित्त को तीव्र कर। (शीर्ष्णा अदितिम्) शिर से अविनाशिनी अर्थात् न नाश होने वाली अखण्ड ब्रह्मविद्या या प्रज्ञा को प्राप्त कर। (निर्जर्जल्पेन) सर्वथा जर्जर हुए शिर से (निर्ऋतिम्) मृत्यु को या भूमि को प्राप्त हो। अर्थात् शिर की ज्ञान चेतना के सर्वथा नाश या लोप होजाने पर पुनः देह से मृत्यु द्वारा मिट्टी में मिल जा। (संक्रोशैः प्राणान्) लम्बे २ आह्वान अर्थात् दीर्घ शब्दों से प्राणों की शक्ति को बढ़ा (स्तुपेन रेष्माणं) हिंसा के प्रयोग से अपने हिंसक को विनाश कर।

'निर्जल्पेन' इतिबम्बईनिर्णयसागरीयः पाठः', 'निर्जर्जल्पेन इत्यजमेर मुद्रितः पाठः।' 'निर्जर्जल्येन' इति स्वाध्यायमण्डलप्रकाशितः शुद्धः पाठः

मशकान् केशैरिन्द्रꣳ स्वपसा वहेन बृहस्पतिꣳ शकुनिसादेन कूर्म्माञ्छफैराक्रमणꣳ स्थूराभ्यामृक्षलाभिः कपिञ्जलान् जवं जङ्घाभ्यामध्वानं बाहुभ्यां जाम्बीलेनारण्यमग्निमतिरुग्भ्यां पूषणं दोर्भ्यामश्विनावꣳसाभ्याꣳ रुद्रꣳ रोराभ्याम् ॥ ३ ॥

भा०—राष्ट्र में स्थित (मशकान्) मशक, मच्छर आदि क्षुद्र जन्तुओं की शरीर में स्थित (केशैः) केशों से तुलना करो। (वहेन स्वपसा) उत्तम कर्म करने और भार उठाने में समर्थ स्कन्ध देश से (इन्द्रम्) राष्ट्र के इन्द्र या मुख्य राजा की तुलना करो, (शकुनिसादेन) पक्षी या शक्तिशाली पुरुष के समान पैर जमाकर बैठने की शक्ति से (बृहस्पतिम्) राष्ट्र के बृहस्पति पद, महामात्य की तुलना करो। (शफैः कूर्मान्) पैर के खुरों से राष्ट्र के कछुओं या क्रियाशील पुरुषों की तुलना करो।(स्थूराभ्याम् आक्रमणम्) स्थूल चूतड़ों से राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण कर उसे दबा बैठने की तुलना करो। अर्थात् जैसे मनुष्य चूतड़ों से आसन पर बैठ जाता है और उस जगह को घेर लेता है उसी प्रकार एक राष्ट्र दूसरे पर आक्रमण करके उसे अपने वश कर लेता है, उसे घेर लेता है। (ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान्) चूतड़ के नीचे की नाड़ियों से राष्ट्र में विद्यमान कपिञ्जल अर्थात् उत्तम २ उपदेश देनेवाले विद्वानों की तुलना करो। (जङ्घाभ्याम् जवम्) शरीर के जंघाओं से राष्ट्र के वेग के कार्यों की तुलना करो। (बाहुभ्याम् अध्वानम्) शरीर के हाथों से राष्ट्र के मार्ग की तुलना करो। (जाम्बीलेन अरण्यम्) गाड़ी के नीचे के भाग से राष्ट्र के जंगल के भाग की तुलना करो। (अतिरुग्भ्याम् अग्निम्) अति दीप्तिवाले सुन्दर दोनों जानु भागों से राष्ट्र के 'अग्नि' अग्रणी पद से तुलना करो। (दोर्भ्यां पूषणं) बाहुओं से राष्ट्र के पूषा नामक अधिकारी की तुलना करो। (अंसाभ्याम् अश्विनौ) कन्धों से 'अश्वी' नामक दो मुख्य अधिकारियों की तुलना करो। (रोराभ्यां रुद्रम्) कन्धों की गांठों से रुद्र नामक अधिकारी की तुलना करो।

अथवा—(केशैः मशकान्) बालों की चौअरियों से जिस प्रकार मच्छरों को दूर किया जाता है उसी प्रकार मच्छर के स्वभाव के दुःखदायी जीवों को (केशैः=क्लेशैः) क्लेशदायी साधनों से विनष्ट करो। (स्वपसा) उत्तम कर्म और प्रज्ञा से (इन्द्रम्) आत्मा और ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को प्राप्त करो। (वहेन) उत्तम प्राप्ति के साधन रथादि से (बृहस्पतिम्) बृहती वेद वाणी के पालक आचार्य को, या बड़े राष्ट्र के पालक राजा को प्राप्त करो। (शकुनिसादेन) पक्षियों को पकड़ने के साधन जाल से ही कूर्म के जाति के जन्तुओं को जल में से जिस प्रकार पकड़ा जाता है उसी प्रकार (शकुनिसादेन) पक्षियों के पकड़ने की विधि अर्थात् प्रलोभन दिखा २ कर (कूर्मान्) कर्म करनेवाले योग्य पुरुषों को वश करो। (शफैः आक्रमणम्) खुरों से जिस प्रकार वेग से आक्रमण किया जाता है इसी प्रकार वेगवान् साधनों से आक्रमण करो। (स्थूराभ्यां जंघाभ्यां जवम्) हृष्ट पुष्ट जंघाओं से वेगपूर्वक गमन करो। (ऋक्षलाभिः कपिञ्जलान्) 'ऋक्षरा' अर्थात् कपाटिकाओं से जिस प्रकार गौरय्या जैसे छोटे २ पंछियों को पकड़ा जाता है उसी प्रकार 'ऋक्षरा' अर्थात् विद्वानों की वृत्तियों द्वारा उत्तम उपदेश देनेवाले विद्वानों को प्राप्त करो। (जंघाभ्याम् अध्वानम्) जांघों से ही मार्ग को तय करो। (जाम्बीलेन अरण्यम्) जम्बीर जाति के कांटेदार वृक्षों से जंगल को पूर्ण करो। (अतिरुग्भ्याम् पूषणं अग्निम्) रुचि और पुष्टिकारक अन्न को और दीप्ति से अग्नि को प्राप्त करो। (दोर्भ्यां अंसाभ्यां) बाहुओं और कन्धों से (अश्विनौ) राजा और प्रजा को प्राप्त करो। अर्थात् राजा अपने बाहुओं के बल से प्रजा को वश करे और प्रजाएं अपने कन्धों से राजा का वहन करें। (रोराभ्याम्) श्रवण और उपदेश द्वारा (रुद्रं) विद्वान् उपदेशक को प्राप्त करो।

अग्नेः पक्षतिर्वायोर्निपक्षतिरिन्द्रस्य तृतीया सोमस्य चतुर्थ्यदित्यै

पञ्चमीन्द्राण्यै षुष्ठी मुरुताᳪ सप्तमी बृहस्पतेरष्टम्यर्य्यम्णो नवुमी धातुर्दशमीन्द्रस्यैकादुशी वरुणस्य द्वादुशी युमस्य त्रयोदुशी ॥४॥

स्वराड् धृतिः । ऋषभः ॥

भा०—राष्ट्र के अंगों की, शरीर के छाती की पसुलियों के अंगों से तुलना करते हैं। (अग्नेः पक्षतिः) अग्नि अर्थात् अग्रणी पुरुष की शरीर में प्रथम पसुली से तुलना करो। (वायोर्निपक्षितिः) वायु की दूसरी पसली से तुलना करो। (इन्द्रस्य तृतीया) इन्द्र विद्युत् की तीसरी पसुली से तुलना करो। (सोमस्य चतुर्थी) सोम, ओषधि आदि की तीसरी पसुली से तुलना करो। (पञ्चमी अदित्यै) अदिति अर्थात् भूमि से पांचवीं पसुली की तुलना करो। (इन्द्राण्यै षष्ठी) इन्द्र राजा की स्त्री, महाराणी, से छठी पसुली की तुलना करो। (मरुतां सप्तमी) वायुएं और वैश्य प्रजाओं या विद्वान् पुरुषों से सातवीं पसली की तुलना करो। (बृहस्पतेः अष्टमी) बृहस्पति, मन्त्री की आठवीं पसुली से तुलना करो। (अर्यम्णः नवमी) अर्यमा, न्यायकारी न्यायाधीश की नवीं पसुली से तुलना करो। (धातुर्दशमी) धाता, राष्ट्रपोषक से दशवीं पसुली की तुलना करो। (इन्द्रस्य एकादशी) इन्द्र, सेनापति की ११ वीं पसुली से तुलना करो। (वरुणस्य द्वादशी) वरुण की १२ वीं पसुली से तुलना करो। (यमस्य त्रयोदशी) नियन्ता ब्रह्मचारी पुरुष 'यम' की तेरहवीं पसुली से तुलना करो। इस प्रकार १३ अधिकारी मानो राष्ट्र की दायीं ओर की छाती के १३ अधिकारी हैं। इसी प्रकार अगले मन्त्र में वाम पार्श्व की १३ पसुलियों से अन्य १३ अंगों का वर्णन करेंगे।

इन्द्राग्न्योः पक्षतिः सरस्वत्यै निपक्षतिर्मित्रस्य तृतीयापां चतुर्थी निर्ऋत्यै पञ्चम्यग्नीषोमयोः षुष्ठी सुर्पाणाᳪ सप्तमी विष्णोरष्टमी

४—तृतीयायां चतुर्थी० इति काण्व० ।

पूष्णो नवमी त्वष्टुर्दशमीन्द्रस्यैकादशी वरुणस्य द्वादशी यम्यै त्रयोदशी द्यावापृथिव्योर्दक्षिणं पार्श्वं विश्वेषां देवानामुत्तरम् ॥५॥

स्वराड् विकृतिः । मध्यमः ॥

भा०—(इन्द्राग्न्योः पक्षतिः) बायें पार्श्व की प्रथम पसुली इन्द्र और अग्नि दोनों पदों की समझो। (सरस्वत्यै निपक्षतिः) सरस्वती की दूसरी पसुली से तुलना करो। (मित्रस्य तृतीया) 'मित्र' की तीसरी पसुली से तुलना करो। (अपां चतुर्थी) प्रजाओं की चौथी पसुली से तुलना करो। (निर्ऋत्यै पञ्चमी) 'निर्ऋति' अर्थात् मृत्यु दण्ड की पांचवीं पसुली से तुलना करो। (अग्नीषोमयोः षष्ठी) अग्नि और सोम की छठी पसुली से तुलना करो। (सर्पाणां सप्तमी) सर्प अर्थात् चरों की सातवीं पसुली से तुलना करो। (विष्णोः अष्टमी) व्यापक विष्णु या राजा की आठवीं पसुली से तुलना करो। (त्वष्टुः) त्वष्टा अर्थात् शिल्पशास्त्र वेत्ता की (नवमी) नवमी पसुली से तुलना करो। (इन्द्रस्य एकादशी) इन्द्र की ११ वीं पसुली से तुलना करो। (वरुणस्य द्वादशी) 'वरुण' की १२ वीं पसुली से तुलना करो। (यम्यै त्रयोदशी) यमी, ब्रह्मचारिणी स्त्रियों की १३ वीं पसुली से तुलना करो। इस प्रकार (द्यावापृथिव्योः) द्यौ और पृथिवी के समान एवं राजा और प्रजा दोनों का (दक्षिणं पार्श्वम्) दायां पार्श्व है और (विश्वेषां देवानाम् उत्तरम्) समस्त विद्वान् पुरुषों का बायां पार्श्व है।

अर्थात् राजसभा के दो भाग होगये एक में राजा और प्रजा के अधिकारीगण और दूसरे में समस्त विद्वान् जन।

मरुताᳪं स्कन्धा विश्वेषां देवानां प्रथमा कीकसा रुद्राणां द्वितीयादित्यानां तृतीया वायोः पुच्छमग्नीषोमयोर्भासदौ कुञ्चौ

५—० तृतीया सोमस्य० इति काण्व० ।

श्रोणिभ्यामिन्द्राबृहस्पतीऽऊरुभ्यां मित्रावरुणावल्गाभ्यामाक्रमणꣳ स्थूराभ्यां बलं कुष्ठाभ्याम् ॥ ६ ॥

निचृदतिधृतिः । षड्जः ॥

भा०—(मरुतां स्कन्धाः) जैसे शरीर में कन्धे हैं वैसे ही राष्ट्र में 'मरुत्' अर्थात् शत्रु को वायुवेग से झपट कर मारने वाले सैनिकों के (स्कन्धाः) स्कन्धावार या छावनियां ही राष्ट्र के कन्धे हैं। (विश्वेषां देवानाम्) समस्त विद्वान् पुरुषों की (प्रथमा) सब से प्रथम, सर्वोत्तम (कीकसा) उपदेश क्रिया (प्रथमा कीकसा) प्रथम 'कीकसा' अर्थात् कूल्हे की पहली मोहरी के समान परम आधार है। (रुद्राणां द्वितीया) रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले दमनकारी पुरुषों की शासन व्यवस्था दूसरी मोहरी के समान है। (तृतीया आदित्यानां) आदित्य के समान तेजस्वी अखण्डित शासन कारी अधीशों का शासन तीसरी मोहरी के समान है । (वायोः पुच्छम्) 'वायु' न्यायाधीश का पद शरीर में पूंछ के समान राष्ट्र का आश्रय अथवा (पुच्छम्) दुष्ट पुरुषों का नाशक है। (अग्निसोमयोः) अग्नि, अग्रणी, सेनापति और सोम, ऐश्वर्यवान् राजा इन दोनों तेजस्वी पदाधिकारी राष्ट्र के (भासदौ) दो नितम्ब भागों के समान राष्ट्र के आधार हैं। (क्रुञ्चौ) हंसों के समान विशेष विवेकी, दो विद्वान् (श्रोणिभ्याम्) राष्ट्र के कटीप्रदेशों से तुलना किये जाते हैं। (इन्द्रा बृहस्पती) इन्द्र और बृहस्पति, राजा और मन्त्री दोनों (ऊरुभ्याम्) राष्ट्र के दो जांघों से तुलना किये जाते हैं। (अल्गाभ्यां) अति वेग से गमन करने वाले ऊरुओं के दो सन्धि भागों से (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण इन दो पदाधिकारियों की तुलना की जाती है। (आक्रमणं) राष्ट्र का विजयार्थ आक्रमण करना (स्थूराभ्याम्) स्थूल जांघों के भागों से तुलना किया

६—मित्रावरुणा अलगा० इति काण्व० ।

जाता है। (कुष्ठाभ्याम्) जांघ और चूतड़ दोनों के बीच गहरे स्थानों से (बलं) राष्ट्र के सैन्य-बल की तुलना की जाती है।

पूषणं वनिष्ठुनान्धाहीन्त्स्थूलगुदया सर्पान् गुदाभिर्विह्रुत ऽआन्त्रैरपो वस्तिना वृषणमाण्डाभ्यां वाजिनꣳ शेपेन प्रजाꣳ रेतसा चाषान् पित्तेन प्रदरान् पायुना कूश्मान्छकपिण्डैः ॥ ७ ॥

भा०—(वनिष्ठुना पूषणम्) स्थूल आँतों से पूषा नाम अधिकारी की तुलना करो। (स्थूलगुदया अन्धाहीन्) अन्धे साँपों की स्थूल गुदा के भाग से तुलना करे। (गुदाभिः सर्पान्) गुदाओं से सांपों की तुलना करो। (आन्त्रैः विह्रुतः) शरीर की आंतों से अन्य कुटिलगामी सर्पों की तुलना करो। (वस्तिना अपः) राष्ट्र के भीतर जल, जलाशयों नादियों की वस्ति भाग से तुलना करो। (वृषणमाण्डाभ्याम्) वर्षणकारी मेघ की वीर्य सेचन समर्थ अण्डकोशों से तुलना करो। (वाजिनं) वीर्यवान् पुरुष बलवान् को शरीर में पुं-लिङ्ग से तुलना करो। (रेतसा प्रजां) राष्ट्र की प्रजा की शरीरस्थ वीर्य से तुलना करो। (चाषान् पित्तेन) खाने योग्य पदार्थों की शरीरस्थ पित्त पदार्थ से तुलना करो। (पायुना प्रदरान्) शरीरस्थ पायु या गुदा मार्ग से राष्ट्र के भीतर विशेष फटे २ दरारभागों की तुलना करो। (कूश्मान्) 'कूश्म' अर्थात् शासक पदाधिकारी अथवा अग्नि के बल से फेंके जाने वाले गोलों और अग्निमय पदार्थों को (शकपिण्डैः) शक्तिमान् पिण्डों के समान शरीर में स्थित विष्ठा के पिण्डों से तुलना करो।

अथवा—(पूषणम्) पोषक पुरुष को उससे (वनिष्ठुना) याचना द्वारा शक्ति और अन्न प्राप्त करो। (स्थूलगुदया सहितान् अन्धाहीन् गुदया सर्पान्) मोटी गुदा से युक्त अंधे सापों को और गुदा भाग से साधारण सांपों को पकड़ कर वश करो। (आन्त्रैः विह्रुतः) विशेष कुटिल सापों को उनकी आंतों से वश करो। (वस्तिना अपः) वस्ति

क्रिया द्वारा जलों को प्राप्त करो। (अण्डाभ्याम् वृषणम्) अण्ड-कोषों से वीर्याधार स्थान को पूर्ण करो। (शेपेन वाजिनम्) लिङ्ग-भाग से वीर्यवान् अश्व या वीर्यवान् पुरुष की परीक्षा करो। (रेतसः) वीर्य से (प्रजाम्) प्रजा को प्राप्त करो। (पित्तेन) पित्त के बल से (चाषान्) भुक्त पदार्थों को पचाओ। (प्रदरान् पायुना) गुदा भाग से पेट के भीतरी भागों को स्वच्छ और बलवान् करो। (शकपिण्डैः) शक्ति के संघों से (कूश्मान्) शासन बलों को प्राप्त करो।

इन्द्र॑स्य क्रो॒डोऽदि॑त्यै पाज॒स्यं॒ दि॒शां ज॒त्रवोऽदि॑त्यै भ॒सज्जी॒मूता॒न्हृ॑दयौप॒शेना॒न्तरि॑क्षं पु॒री॒तता॒ नभ॑ उद॒र्ये॒ण चक्रवा॒कौ म॑त॒स्नाभ्यां॒ दिवं॑ वृ॒क्काभ्यां॑ गि॒रीन् प्ला॒शिभि॒रुप॑लान् प्ली॒हा व॒ल्मीका॑न् क्लो॒मभि॑र्ग्लौ॒भिर्गुल्मा॑न्हि॒राभिः॒ स्रव॑न्तीर्ह्र॒दान् कु॒क्षिभ्या॑ᳲ समु॒द्रमु॒दरे॑ण वैश्वान॒रं भस्म॑ना ॥ ८ ॥

निचृदतिकृतिः । ऋषभः ॥

भा०—(क्रोडः इन्द्रस्य) शरीर का गोद का भाग इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा का है। शरीर में जिस प्रकार पेट का अगला भाग, नाभि स्थान केन्द्र है उसी प्रकार राष्ट्र के नाभि भाग में राजा का स्थान है। (अदित्यै पाजस्यं) अदिति पृथिवी का स्वरूप शरीर में पाद या खड़े होने का स्थान है। (दिशां जत्रवः) दिशाओं का स्वरूप शरीर में जत्रु अर्थात् कन्धे और कोखके बीच की पसुलियां है। (अदित्यै भसत्) अदिति, द्यौः, आकाश ही राष्ट्र की (भसत्) प्रकाशक, तेजस्वरूप होने से वह शरीर में भी (भसत्) लिङ्गभाग, तेजोमय, वीर्यवान् अंग के समान है। (जीमूतान् हृदयौपशम्) राष्ट्र के विजयशील पुरुषों को, या मेघों को शरीर के हृदय भाग में विद्यमान बल, या रुधिर सञ्चारक उपकरणों से तुलना करो। (पुरीतता अन्तरिक्षम्) शरीर में स्थित पुरीतत् नामक हृदय की नाड़ी से अन्तरिक्ष

की तुलना करो। (उदर्येण) उदर में स्थित यन्त्रों से (नमः) आकाश की तुलना करो। (मतस्नाभ्यां) हृदय के दोनों पार्श्व पर स्थित फुप्फुसों को (चक्रवाकौ) राष्ट्र में स्थित चकवा चकवी के समान प्रेम से बद्ध स्त्री पुरुषों की तुलना करो। (दिवं वृक्काभ्याम्) शरीर में वृक्का अर्थात् गुर्दों से (दिवम्) द्यौ या आकाश की तुलना करो। अर्थात् जिस प्रकार आकाश से जल गिरता है उसी प्रकार शरीर के गुर्दों से मूत्र जल स्रवित होता है। (गिरीन् प्लाशिभिः) शरीर में स्थित 'प्लाशि' नामक पेट के भीतरी अन्नरस ग्रास करने वाली नाड़ियों से (गिरीन्) राष्ट्र में स्थित पर्वतों की तुलना करो। (उपलान् प्लीहा) शरीर में स्थित प्लीहा, पिलही भाग से मेघों की तुलना करो। (क्लोमभिः वल्मीकान्) राष्ट्र में स्थित वल्मीक के बने ढेरों की शरीर के 'क्लोम' नाम कलेजों के खण्डों से तुलना करो। दोनों सछिद्र होने से एक जैसे हैं। (ग्लौभिः गुल्मान्) राष्ट्र में विद्यमान लता आदि से आवृत प्रदेशों को 'ग्लौ' नामक हृदय की हर्ष, क्षय या शोक, पीड़ा, आघात संवेदना आदि अनुभव करने वाली विशेष नाड़ियों से तुलना करो। (हिराभिः स्रवन्तीः) शरीर में स्थित अन्नरस और रुधिर को वहन करने वाली नाड़ियों से राष्ट्र में स्थित नदियों की तुलना करो। (ह्रदान् कुक्षिभ्याम्) राष्ट्र में विद्यमान ताल, जलाशयों की शरीर में स्थित कोखों के बीच रुधिर से भरे स्थानों से तुलना करो। (समुद्रम् उदरेण) समुद्र की उदर भाग से तुलना करो। जिस प्रकार समुद्र से जल उठकर समस्त भूमि पर वर्षा होती और बलकारी अन्नरस ओषधियां उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार उदर से अन्नरस उठकर सर्वत्र पहुंचते हैं और केश, लोम, मांस, त्वचा आदि सब पुष्ट होते हैं। (वैश्वानरं भस्मना) भस्म के समान निस्सार अथवा भुक्त अन्न को जीर्ण करने वाली कान्तिजनक जाठर अग्नि से वैश्वानर नामक समस्त नरों के हितकारी अग्नि की तुलना करो।

इस मन्त्र की तुलना तैत्तिरीय संहिता के का० ७ । प्र० ५ । २५ से तथा बृहदारण्यक के १ । १ । से करो, उसमें अश्व के अङ्गों से यज्ञ पुरुष, एवं विराट् प्रजापति और राष्ट्र शरीर की तुलना की गई है।

विधृतिं नाभ्यां घृतꣳ रसेनापो यूष्णा मरीचीर्विप्रुड्भिर्नीहार-मूष्मणा शीनं वसया प्रुष्वा अश्रुभिर्ह्रादुनीर्दूषीकाभिरस्ना रक्षां-ꣳसि चित्राण्यङ्गैर्नक्षत्राणि रूपेण पृथिवीं त्वचा ।

भुरिगत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(विधृतिं) विशेष रूप से लोकों को धारण पालन करने वाली शक्ति को (नाभ्या) शरीर के मध्य में स्थित नाभि के भाग से तुलना करो। (घृतं रसेन) घृत के समान तेजोवर्धक पदार्थ की शरीरस्थ बलकारी रस से तुलना करो। (यूष्णा आपः) शरीर में पक्वाशय में स्थित पक्वरस से राष्ट्र में स्थित जनों की या परिपक्व ज्ञान वाले विद्वान् आप्त पुरुषों की तुलना करो। (मरीचीः विप्रुड्भिः) सूर्य की किरणों की तुलना विशेष पूर्ण रूप करने वाले शरीर के वसा आदि धातुओं से करो। (ऊष्मणा नीहारम्) शरीर में स्थित उष्णता से राष्ट्र के 'नीहार' अर्थात् प्रभात काल में पड़े जलके ओस के फुहार से तुलना करो। अर्थात् जैसे शरीर की गर्मी से सब अंग जीवित जागृत रहते हैं उसी प्रकार ओस से वनस्पति आदि जीवित, वर्धित होते हैं। (शीनं वसया) शरीर में स्थित अंग प्रत्यंग या मांस के प्रत्येक परमाणु में बसे जीवन के कारणस्वरूप जीवन शक्ति से शीन अर्थात् वनस्पतियों और प्राणियों की वृद्धि करने वाली शीतलता की तुलना करो। (प्रुष्वा अश्रुभिः) शरीर के आँसुओं से वृक्षों को सींचने वाले फुहारों की तुलना करो। (ह्रादुनीः दूषिकाभिः) नेत्र में उत्पन्न मल, गीदों से आकाश में उत्पन्न विद्युतों की तुलना करो। (अस्ना रक्षांसि) शरीर के रुधिर से रक्षा करने वाले साधनों और रक्षा करने योग्य पदार्थों

की तुलना करो। (चित्राणि अङ्गैः) शरीर के भिन्न २ अङ्गों से राष्ट्र के चित्र विचित्र, स्थानों, दृश्यों और देशों की तुलना करो। (नक्षत्राणि रूपेण) नक्षत्रों की तुलना शरीर के बाह्य रूप या रुचिकर तेज से करो। (पृथिवीं त्वचा) पृथिवी या राष्ट्र के पृष्ठ की तुलना (त्वचा) शरीर की त्वचा से करो।

जुम्ब॒काय॒ स्वाहा॑ ॥ ९ ॥

शुण्डिभो मुण्डिभोवा औदन्यऋषिः। जुम्बको वरुणो देवता।
द्विपदा यजुर्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(जुम्बकाय) सब शत्रुओं के नाश करने में समर्थ, सब से अधिक वेगवान्, बलवान् पुरुष को यह राष्ट्र (स्वाहा) उत्तम सत्य प्रतिज्ञा करा कर उसी तरह सौंप दिया जाय जिस प्रकार (जुम्बकाय) रोगनाशन में समर्थ या वेगवान् बलकारी, अपान के अधीन यह समस्त शरीर है।

वरुणो वै जुम्बकः। श० १३ । ३ । ६ । ५ ॥

हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भः सम॑वर्त॒ताग्रे॑ भू॒तस्य॑ जा॒तः पति॒रेक॑ऽआसीत् ।
स दा॑धार पृथि॒वीं द्यामु॒तेमां कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १० ॥
यः प्रा॑ण॒तो नि॑मिष॒तो म॑हि॒त्वैक॒ऽइद्राजा॒ जग॑तो ब॒भूव॑ ।
यऽईशे॑ अ॒स्य द्वि॒पद॒श्चतु॑ष्पदः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ११ ॥

भा०—व्याख्या (१०—११) को देखो अ० २३ । १, ३ ॥

यस्ये॒मे हि॒मव॑न्तो महि॒त्वा यस्य॑ समु॒द्रꣳ र॒सया॑ स॒हाहुः ।
यस्ये॒माः प्र॒दिशो॒ यस्य॑ बा॒हू कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १२ ॥

कः प्रजापतिर्देवता । स्वराट्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(यस्य) जिसके (महित्वा) महान् सामर्थ्य से (इमे) ये (हिमवन्तः) हिमवाले वर्फों से ढके पर्वत बने हैं और (यस्य महित्वा) जिसके महान् सामर्थ्य से (रसया सह) स्नेह गुण या जलों से बद्ध, ठोस हुई

स्थल रूप पृथिवी के साथ (समुद्रम्) महान् समुद्र को वर्तमान (आहुः) बतलाते हैं । और (यस्य) जिसके महान् सामर्थ्य से बनी (इमाः) ये (प्रदिशाः) दिशाएं और उपदिशाएं (यस्य बाहू) जिसके बाहुओं के समान फैली हैं, उस (कस्मै) सुखस्वरूप, प्रजापालक (देवाय) कान्तिमान् तेजस्वी परमेश्वर की (हविषा) स्तुति द्वारा हम (विधेम) उपासना करें । राजा के पक्ष में—(यस्य महित्वा) जिसके महान् सामर्थ्य के अधीन ये हिमवाले पर्वत और पृथ्वी सहित समुद्र कहे जायं, दिशा प्रदिशा के वासी जिसके आधीन रहकर (यस्य बाहू) जिसके बाहु के समान बल या सहायक हों उस महान् प्रजापालक राजा को हम (हविषा) कर और अन्न और ज्ञान द्वारा सेवा करें ।

यऽआत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (आत्मदाः) आत्मा, चेतन जीव को प्राणियों के शरीर में प्रदान, स्थापन करता है और जो (बलदाः) जीवों को जीते रहने और बाधक कारणों को दूर करने का बल प्रदान करता है अथवा (यः) जो (आत्मदाः) समस्त विश्व को अपना ऐश्वर्य प्रदान करता है (यस्य) जिसके (प्रशिषं) उत्कृष्ट शासन को (विश्वे देवाः) समस्त सामान्य जन और विद्वान् गण एवं छोटे बड़े सूर्य आदि लोक भी (उपासते) शरण के समान प्राप्त करते हैं और उसके शासनकारी स्वरूप की उपासना, या ध्यान करते हैं । (यस्य) जिसकी (छाया) आश्रय लेना (अमृतम्) अमृत स्वरूप, अभय और मृत्यु पर विजय है । और (यस्य) जिसके शासन का भङ्ग करना ही (मृत्युः) मृत्यु है । (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुखस्वरूप प्रजापालक सब सुखों के दाता परमेश्वर की हम ज्ञान स्तुति द्वारा उपासना करें ।

राजा के पक्ष में—जो (आत्मदाः) अपने आपको राष्ट्र में सौंपता और राष्ट्र शरीर में आत्म के समान ऐश्वर्य को भोगता है, (बलदा) राष्ट्र में बल प्रदान करता है। समस्त सामान्य जन और (देवाः) विजिगीषु राजा भी जिसके शासन का आश्रय लेते हैं जिसकी (च्छाया) छत्रछाया अभय, अमृत के समान है (यस्य) जिसकी आज्ञा भङ्ग करना, करने वालों के लिये मृत्यु है उसकी हम अन्न आदि द्वारा सेवा करें।

आ नो॑ भ॒द्राः क्रत॑वो यन्तु वि॒श्वतोऽद॑ब्धासो॒ऽअप॑रीतासऽउ॒द्भिदः॑।
दे॒वा नो॒ यथा॒ सद॒मिद्वृ॒धेऽअस॒न्नप्रा॑युवो रक्षि॒तारो॑ दि॒वे दि॑वे ॥१४॥

[१४—२३] गोतम ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। [१४—१९] जगतीः। निषादः॥

भा०—(नः) हमें (विश्वतः) सब प्रकार से सब से, (अदब्धासः) अविनाशी, नित्य, (अपरीतासः) अविज्ञात, जिनको अभी तक किसी ने न पाया हो ऐसे, (उद्भिदः) नाना फलों को उत्पन्न करने वाले, (भद्राः) सुखकारी, (क्रतवः) विज्ञान और बल (नः) हमें (विश्वतः) सब ओरों से, (आयन्तु) प्राप्त हों। (यथा) जिससे (नः रक्षितारः) हमारे रक्षक (देवाः) देव, दिव्य पदार्थ और विद्वान् पुरुष (अप्रायुवः) दीर्घायु और अप्रमादी होकर (दिवे दिवे) प्रतिदिन (वृधे) वृद्धि, उन्नति के लिये (नः सदम्) हमारा सभा में (असत्) विद्यमान हों।

दे॒वानां॑ भ॒द्रा सु॑म॒तिर्ऋ॑जूय॒तां दे॒वानां॑ रा॒तिर॒भि नो॒ निव॑र्त्तताम्।
दे॒वानां॑ स॒ख्यमुप॑सेदिमा व॒यं दे॒वा न॒ आयुः॒ प्रति॑रन्तु जी॒वसे॑ ॥१५॥

भा०—(देवानां) विद्वान्, विद्या के दाता, ज्ञानप्रकाशक पुरुषों की (भद्रा) कल्याणकारिणी सुखप्रद (सुमतिः) उत्तम ज्ञानमयी, शुभ मति, (नः) हमें (नि वर्त्तताम्) सब प्रकार से प्राप्त हो। और (ऋजूयतां) सरल, धर्म के मार्गों से आने वाले या सब की वृद्धि की कामना करने वाले

(देवानां) दानशील विद्वान् और पुरुषों के (रातिः) ज्ञान और धन के दान (नः) हमें (अभि निवर्त्तताम्) सब ओर से प्राप्त हों । (वयम्) हम (देवानां सख्यम्) विद्वानों के मित्र भाव को (उप सेदिम) प्राप्त हों । (देवाः) विद्वान् पुरुष (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (आयुः प्रतिरन्तु) आयु की वृद्धि करें ।

तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्रिधम् । अर्यमणं वरुणꣳ सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥ १६ ॥

भा०—(वयम्) हम (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (मित्रम्) स्नेही, (अदितिम्) अखण्ड ब्रह्मचारी, अखण्ड विद्यावान्, (दक्षम्) ज्ञानवान्, बलवान्, कार्यचतुर, (अस्रिधम्) बात से न चूकने वाला, सदा सद्भाव युक्त, अहिंसक, (अर्यमणम्) न्यायकारी, स्वामी, (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ, दुःखों के वारक, (सोमम्) सन्मार्ग में प्रेरक, ऐश्वर्यवान्, (अश्विनौ) विद्या में निष्णात स्त्री और पुरुष और (सुभगा) उत्तम सौभाग्य से युक्त (सरस्वती) वेदवाणी, विद्वत्सभा या विदुषी स्त्री इन (तान्) नाना विद्वानों को हम (पूर्वया) सब से पूर्व विद्यमान अथवा पूर्णभाव से युक्त, अथवा प्रथम जिस रूप में चित्त में आई, ऐसी अकृत्रिम सत्य (निविदा) ज्ञानयुक्त वाणी से (हूमहे) आदर सत्कार करें । वह (नः) हमें (मयः) सुख कल्याण (करत्) करे ।

तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद् ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ॥ १७ ॥

भा०—(वातः) वायु (नः) हमें (तत्) नाना प्रकार के (भेषजं) रोगनाशक, (मयोभु) सुखकारी ओषधि (वातु) प्राप्त करावे या औषध

रूप होकर बहे। (माता) माता और उसके समान सर्वोत्पादक (पृथिवी) पृथिवी और (तत्) उसी के समान (पिता) पालक पिता और (द्यौः) सूर्य, (तद्) उसी के समान (सोमसुतः) ज्ञान ऐश्वर्य के देने वाले (ग्रावाणः) उपदेशक विद्वान् पुरुष, ये सब (मयोभुवः) सुख के उत्पादक हों। (तत्) और हे (अश्विना)विद्या में निष्णात उत्तम पुरुषो! या स्त्री और सारथी के समान राजा और मन्त्री जनो ! (धिष्ण्या) प्रज्ञावान् एवं राष्ट्र की व्यवस्था के धारक और मुख्य पदाधिकार पर स्थित होकर (युवम्) तुम दोनों (नः शृणुतम्) हम, प्रजा के हितों का श्रवण करो।

तमीशा॑नं जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ धियंजि॒न्वमव॑से हूमहे व॒यम्।
पू॒षा नो॒ यथा॒ वेद॑सा॒मस॑द्वृ॒धे र॑क्षि॒ता पा॒युरद॑ब्धः स्व॒स्तये॑ ॥१८॥

भा०—(तम्) उस (जगतः तस्थुषः) जंगम और स्थवर संसार के (पतिम्) पालक, (धियं जिन्वम्) अपने कर्म और ज्ञान से सबको तृप्त और प्रसन्न करनेहारे (ईशानम्) परमेश्वर और स्वामी को (वयम्) हम (अवसे) रक्षा के लिये (हूमहे) बुलाते हैं, प्रार्थना और स्तुति करते हैं। (यथा) जिससे (पूषा) सब का पोषक, (रक्षिता) रक्षक, (वायुः) सबका पालक, (अदब्धः) किसी से भी न पराजित होकर (नः) हमारे (वेदसां) धनैश्वर्यों और ज्ञानों के (वृधे) वृद्धि करने के लिये और (स्वस्तये) सुख पूर्ण जीवन स्थिति या कल्याण के लिये (असत्) हो।

स्व॒स्ति न॒ऽइन्द्रो॑ वृ॒द्धश्र॑वाः स्व॒स्ति नः॑ पू॒षा वि॒श्ववे॑दाः।
स्व॒स्ति न॒स्तार्क्ष्यो॒ऽअरि॑ष्टनेमिः स्व॒स्ति नो॒ बृह॒स्पति॑र्दधातु ॥१९॥

इन्द्रो देवता। स्वराड् बृहती। मध्यमः॥

भा०—(वृद्धश्रवाः) बहुत अधिक ज्ञान, यश, धन से युक्त आचार्य, राजा और परमेश्वर (नः) हमें (स्वस्ति दधातु) सुख प्रदान

करे। (विश्ववेदाः) समस्त ज्ञान रूप वेदों और समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी, (पूषा) सबका पोषक, परमेश्वर (नः) हमें (स्वस्ति दधातु) कल्याण, सुख प्रदान करे। (तार्क्ष्यः) रथ या अश्व जिस प्रकार (अरिष्टनेमिः) चक्र धारा के बिना टूटे, सुखपूर्वक मार्ग से इष्ट देश को पहुंचाता है उसी प्रकार (अरिष्टनेमिः) अखण्ड, अटूट या नित्य सामर्थ्यवान् (तार्क्ष्यः) अश्व के समान बलवान् राजा और व्यापक शक्तिमान् परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमें कल्याण सुख प्रदान करे। (बृहस्पतिः) महान् राष्ट्र का पालक राजा और बृहती वेदवाणी का पालक विद्वान् और महती शक्ति का स्वामी परमेश्वर (नः स्वस्ति दधातु) हमारा कल्याण करे।

पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवाऽअवसागमन्निह ॥ २० ॥

मरुतो देवताः। गोतम ऋषिः। निषादः ॥

भा०—(पृषदश्वाः) हृष्ट पुष्ट अश्वों वाले, (पृश्निमातरः) पृथिवी को अपनी माता मानने वाले (शुभंयावानः) शुभ, कल्याण मार्ग पर गमन करने वाले (विदथेषु जग्मयः) संग्रामों में जाने वाले, (मरुतः) वायुओं के समान तीव्र वेगगामी, (मनवः) मननशील एवं शत्रु स्तम्भन में समर्थ, (अग्निजिह्वाः) विद्वान् को प्रमुख प्रवक्ता रखने वाले, (सूरचक्षसः) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् को अपने आँखों के समान मार्गदर्शक बनाने वाले (देवाः) विजयी पुरुष (अवसा) अपने रक्षण और ज्ञान सामर्थ्य सहित (इह) इस राष्ट्र में (नः) हमें (आ गमन्) प्राप्त हों।

वायु पक्ष में—(पृषदश्वाः) पुष्ट अश्वों के समान तीव्रगामी या महान् आकाश को व्यापने वाले, (पृश्निमातरः) मेघों के उत्पादक, अथवा अन्तरिक्ष में उत्पन्न, (शुभंयावानः) प्रजा के कल्याण के लिये गमन करने वाले, (विदथेषु) आकाश मार्गों में चलने वाले (अग्निजिह्वाः)

विद्युत्‌रूप जिह्वा से युक्त अथवा अग्नि की लपटों की ज्वाला से युक्त (सूरचक्षसः) सूर्य के प्रकाश से प्रेरित, (मनवः) जलस्तम्भक, (देवाः) सुखदायक (अवसा) अपने रक्षण, सामर्थ्य और अन्न, जल समृद्धि सहित (इह) यहां (आगमन्) आवें।

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥ २१ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (कर्णेभिः) कानों से (भद्रं) कल्याणकारी, सुखजनक, हितवचनों का (शृणुयाम) श्रवण करें। हे (यजत्राः) ईश्वरोपासक, एवं सत्संगतियोग्य पुरुषो! हम सदा (भद्रम्) सुख कल्याणजनक पदार्थ को ही (अक्षभिः) आंखों से देखा करें। हम (स्थिरैः) स्थिर, दृढ़ (अङ्गैः) अङ्गों से (तुष्टुवांसः) ईश्वर की स्तुति करते हुए अथवा सत्य तत्वों का उपदेश करते हुए, (तनूभिः) शरीरों से (देवहितं) विद्वानों द्वारा 'हित' अर्थात् निश्चित की हुई (यत्) जो (आयुः) उचित १०० या १२५ वर्ष आयु की अवधि है उसको (वि अशेमहि) विशेष प्रकार से और विविध उपायों से प्राप्त करें और उसका आनन्द लाभ करें। साग्रं वर्षशतं जीवेत्। इति स्मृतिः। भूयश्च शरदः शतात् इति श्रुतिः॥

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः॥२२॥

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो! (अन्ति) आप लोगों के समीप (यत्र) जब, जिस काल में, (शतम् शरदः) सौ वर्ष (इत् नु) का ही जीवन कम से कम (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (जरसं) वृद्धावस्था को (चक्र) बनावे। अर्थात् विद्वानों के सत्संग से हम १०० वर्षों

२१—"व्यशेम देव" इति काण्व॥

के वृद्ध हों। (यत्र) जब (पुत्रासः) मनुष्यों को बुढ़ापे के कष्ट से बचाने वाले पुत्र और शिष्य लोग (पितरः) बच्चों के बाप और बूढ़ों और कुटुम्बियों के पालक (भवन्ति) होजायं तब तक आप लोग (गन्तोः) गुजरते हुए (नः) (आयुः) आयु को (मध्या) हमारे बीच में (मा रीरिपत) मत विनष्ट करो।

वृद्धावस्था आदि बाह्य कष्टों को देख कर भी विद्वान् लोग जीवन को बीच ही में विनष्ट न किया करें। मनुष्यों में जीवन भोगने दिया करें।

अदि॑ति॒र्द्यौरदि॑तिर॒न्तरि॑क्ष॒मदि॑तिर्मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः।
विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः॒ पञ्च॒ जना॒ अदि॑ति॒र्जा॒तमदि॑ति॒र्जनि॑त्वम्॥२३॥

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(द्यौः) आकाश और सूर्यादि कारणरूप तेज (अदितिः) कभी खंडित या टुकड़े २ या विनष्ट नहीं होते। (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष भी (अदितिः) अविनाशी, सत् है। (माता) सब जगत् की निर्माण करने वाली प्रकृति भी (अदितिः) कभी विनाश को प्राप्त नहीं होती। (सः पिता) वह सबका पालक परमेश्वर और (सः पुत्रः) वह पुत्र, पुरुषदेह का पालक जीव, ये भी (अदितिः) कभी नाशशील नहीं हैं। (विश्वेदेवाः अदितिः) सब दिव्य पदार्थ या मूल तत्व जो अपने गुण इन नाशवान् पदार्थों को प्रदान कर रहे हैं वे भी नाश न होने वाले हैं। (पञ्चजनाः) पांच उत्पन्न होने वाले तत्व, भी (अदितिः) विनष्ट होने वाले नहीं हैं। (जातम् अदितिः) उन पांचों भूतों के सूक्ष्म परमाणुओं से उत्पन्न हुआ यह जगत् भी (अदितिः) कारण रूप से नाशवान् नहीं है। और (जनित्वम्) जो आगे पैदा होता है वह भी सत् कारण रूप से विनष्ट नहीं होता।

राजा के पक्ष में—(द्यौः) राजसभा, (अन्तरिक्षम्) सर्वोपरि रक्षक राजा, (माता) राजा को बनाने वाली प्रजा, (सः पिता) वह पालक राजा और पुत्र के समान (सः) वही राजा पृथिवी का पुत्र है। समस्त

विद्वान् लोग और (पञ्चजनाः) पांचों जन चार वर्ण और वर्णबाह्य, पांचवां (जातम्) नव उत्पन्न सन्तान और (जनित्वं) अगली उत्पन्न होने वाली सन्तान ये सब (अदितिः) पृथिवी या अखण्ड राष्ट्र का रूप है और ये सब (अदितिः) अदीन, दीनता रहित या प्रवाह से नाश न होने वाली हों ।

**मा नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतः॒ परि॑ख्यन् ।
यद्वा॒जिनो॑ दे॒वजा॑तस्य सप्तेः॑ प्र व॒क्ष्यामो॑ वि॒दथे॑ वी॒र्या॒णि ॥ २४ ॥**

[२४–३६] दीर्घतमा ऋषिः । त्रिष्टुप् धैवतः । मित्रादयो देवताः ॥

भा०—(मित्रः) सबका स्नेही, प्राण के समान प्रिय मित्र, (वरुणः) दुष्टों का वारक, उदान के समान श्रेष्ठ, (अर्यमा) न्यायाधीश के समान नियन्ता (आयुः) दीर्घ जीवन, अन्न (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति, राजा के समान आत्मा, (ऋभुक्षाः) सत्य व्यवहार से उज्ज्वल पुरुषों में निवास करने वाले बड़े पुरुष और (मरुतः) विद्वान् पुरुष (नः) हमें (मा परि ख्यन्) त्याग न करें, हमारी निन्दा और उपेक्षा न करें । (यत्) क्योंकि (देव-जातस्य) विद्वान् पुरुषों द्वारा उत्पन्न और दिव्य गुणों से प्रसिद्ध (वाजिनः) वेग और ऐश्वर्यवान् (सप्तेः) सर्पणशील अश्व के समान बलवान् एवं समवाय बनाकर कार्य करने वाले राजा के (वीर्याणि) बल पराक्रम और पदाधिकारों का ही हम (प्र वक्ष्यामः) विशेष रूप से वर्णन करते हैं ।

**यन्नि॒र्णिजा॒ रेक्ण॑सा॒ प्रावृ॑तस्य रा॒तिं गृ॑भी॒तां मु॑ख॒तो नय॑न्ति ।
सुप्रा॑ङ॒जो मेम्य॑द्वि॒श्वरू॑प इन्द्रापू॒ष्णोः प्रि॒यमप्ये॑ति॒ पाथः॑ ॥ २५ ॥**

भा०—(यत्) जब (निर्णिजा) विशेष राज्य अभिषेक और (धनेन) ऐश्वर्य से (प्रावृतस्य) घिरे हुए सुशोभित राजा के (रातिम्) प्रदान की हुई और पुनः (गृभीताम्) स्वीकार की गई वृत्ति को सब अधीनस्थ लोग (मुखतः) मुख्य रूप से (नयन्ति) प्राप्त करते हैं । तभी (सुप्राङ्) उत्तम रीति से आगे बढ़ाने वाला, उन्नतिशील (विश्वरूपः)

सब अधिकारियों के स्वरूपों को धारण करने वाला (अजः) सब का प्रेरक राजा, (मेम्यत्) सब को आज्ञा करता हुआ (इन्द्रपूष्णोः) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा और सर्व पोषक पूषा, दोनों पक्षों के (प्रियम्) मनोहर (पाथः) पालन करने हारे सामर्थ्य और भोग्य ऐश्वर्य को (अप्येति) प्राप्त करता है।

अर्थात् जब राजा राज्याभिषेक और राष्ट्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करले और अधीन नियुक्त पुरुष उसकी दी वृत्ति और पुरस्कार का मुख्य रूप से ग्रहण करें उसी को सर्वस्व मानें, वे और सब पेशे छोड़ दें और वे सबको आज्ञा में चलावें, तभी यह राजा, प्रजा पोषक के प्रिय ऐश्वर्य पद को प्राप्त करता है। वह दान देने से 'इन्द्र' है, वृत्ति द्वारा पोषक होने से पूषा है।

परमेश्वर के पक्ष में—(यत्) क्योंकि (निर्णिजा) शुद्ध स्वरूप से और (रेक्णसा) ऐश्वर्य से युक्त परमेश्वर के दिये दान और प्राप्त वृत्ति को ही लोग मुख्य मानते हैं। वह सुख से पूर्व दिशा में प्राप्त सूर्य के समान उज्ज्वल (विश्वरूपः) समस्त विश्वका प्रकाशक, वेदवाणी द्वारा उपदेश करता सब लोकों को अपनी आज्ञा में चलाता है। वह इन्द्र और पूषा के परम ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

विद्वान के पक्ष में—(निर्णिजा रेक्णसा प्रावृतस्य) जो विद्वान्गण शुद्ध, निष्पाप, धन से युक्त पुरुष के दान को प्राप्त कर सुख से खाते हैं, वे और विश्व के पदार्थों को निरूपण करने वाला विद्वान् ऐश्वर्यवान् और पोषक दोनों के प्रिय अन्न भोग्य को प्राप्त करता है।

एष छागः पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः।
अभिप्रियं यत्पुरोडाशमर्वता त्वष्टेदेनꣳ सौश्रवसाय जिन्वति ॥२६॥

निचृत जगती। निषादः॥

भा०—(यत्) जब (विश्वदेव्यः) समस्त विजयी पुरुषों से, सबसे श्रेष्ठ, एवं सब विद्वानों का हितकारी (एषः) यह (छागः) शत्रुओं का छेदन भेदन करने हारा अथवा राष्ट्र को भिन्न २ विभागों में बांटने वाला पुरुष (वाजिना) ऐश्वर्य युक्त (अश्वेन) राष्ट्र के द्वारा (पुरः) सबके आगे, सबसे प्रथम, (पूष्णः) पूषा, सर्व राष्ट्र पोषक के पद को (भागः) सेवन करने वाला (नीयते) प्राप्त किया जाता है। तब (त्वष्टा इत्) त्वष्टा, शत्रुनाशक सेनापति ही (अर्वता) व्यापक राष्ट्र के सहित विद्यमान, (अभि प्रियम्) सबको प्रिय लगने वाले (पुरोडाशम्) सबसे प्रथम देने योग्य पदाधिकार को (सौश्रवसाय) उत्तम कीर्त्ति के लिये (जिन्वति) पूर्ण करता, या राजा को प्रदान करता है।

यद्धविष्यमृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यश्वं नयन्ति ।
अत्रा पूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥२७॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जब (हविष्यम्) अन्न के समान श्रेष्ठ हवि. के रूप में स्वीकार करने योग्य (देवयानं) देवों, विद्वानों को प्राप्त करने योग्य (अश्वं) अश्व के समान बलवान्, राष्ट्र के भोक्ता राष्ट्रपति को (मानुषाः) मनुष्य लोग (ऋतुशः) ऋतु, ऋतु में भिन्न २ अवसरों में (त्रिः) वर्ष में तीन वार (परि नयन्ति) सर्वत्र लेजाते हैं उसको भ्रमण कराते हैं तव (अत्र) इस राष्ट्र में (पूष्णः) पोषक, पृथ्वी का (प्रथमः भागः) सबसे अधिक श्रेष्ठ, सेवनीय (अजः) सबका प्रेरक विद्वान् (देवेभ्यः) समस्त विद्वानों के हित के लिये (यज्ञं) प्रजापालक, सबके संयोजक राजा को (प्रतिवेदयन्) विज्ञापित करता हुआ (एति) प्राप्त होता है।

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राभ उत शꣳस्ता सुविप्रः ।
तेन यज्ञेन स्वरङ्कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आ पृणध्वम् ॥ २८ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में होता, अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता अग्नीध्र, ग्रावस्तुत्, प्रशास्ता, और ब्रह्मा ये ऋत्विग् होते हैं उसी प्रकार राष्ट्ररूप यज्ञ में (होता) अधिकारों का प्रदाता, (अध्वर्युः) मुख्य महामात्य या पुरोहित (आवयाः) आहुति प्रदान करने वाले के समान, सबको परस्पर सुसंगत करने वाला, या अधनों को वेतन देने वाला, (अग्निमिन्धः) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले अग्नीध्र के समान राजा को विशेष ज्ञान और मान से उज्वल करने वाला, (ग्रावग्राभः) सोमयज्ञ में प्रस्तरों के ग्रहण करने वाले के समान राष्ट्र में विद्वानों का आदर सत्कार से ग्रहण करने वाला या शस्त्रास्त्र धर, (शंस्ता) राजा का प्रशंसक अथवा उत्तम उपदेष्टा, (सुविप्रः) यज्ञ के ब्रह्मा के समान उत्तम मेधावी, ज्ञानी विद्वान् सभापति पद पर स्थित हो। (तेन) उस (स्वरङ्कृतेन) उत्तम रीति से सुसज्जित सुशोभित (स्विष्टेन) उत्तम रीति से सुसञ्चालित (यज्ञेन) सुव्यवस्थित राष्ट्र से (वक्षणाः) जलों से नदियों के समान अपनी अभिलाषाओं या प्रजाओं को (आ पृणध्वम्) पूर्ण करो।

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चषालं ये अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचनꣳ सम्भरन्त्युतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥ २९ ॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(ये)जो पुरुष (यूपव्रस्काः) यज्ञ के यूप को गढ़ने वालों के समान शत्रुओं के विनाश करने वाले राजा या उसके बल अधिकार को बनाते हैं— (उत) और (ये) जो (यूपवाहाः) उस शत्रुनाशक, सूर्य समान तेजस्वी अधिकारी को अपने ऊपर धारण करते हैं। जो (ये) और (अश्वयूपाय) अश्व के लिये खड़े यशस्तम्भ के समान राष्ट्र संचालक राजा के लिये (चषालम्) यूप के छल्ले या अग्र भाग के समान राजा के अग्रासन का (तक्षति) निर्माण करते हैं और (ये च) जो (अर्वते) ज्ञानवान् राजा के लिये

(पचतं) पाक योग्य नाना भोग्य ऐश्वर्य सामग्री को (संभरन्ति) संग्रह करते हैं, लाते हैं (तेषाम्) उन सबका (अभिगूर्त्तिः) उद्यम (नः) हमें (इन्वतु) प्राप्त हो।

उप प्रागात्सुमन्मेऽधायि मन्म देवानामाशा उप वीतपृष्ठः।
अन्वेनं विप्रा ऋषयो मदन्ति देवानां पुष्टे चकृमा सुबन्धुम् ॥३०॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—जो पुरुष (मे) मुझ प्रजाजन के हित के लिये (वीतपृष्ठः) विशाल हृष्ट पुष्ट पीठ वाला, सबको आश्रय देने में समर्थ, अश्व के समान बलवान् (सुमत्) स्वयं (उप प्र अगात्) मुझे अनायास ही प्राप्त है और (येन) जो (देवानाम्) विद्वानों और शासकों के मन को अभिप्रेत ऐश्वर्य को और (आशाः) समस्त कामनाओं और दिशावासी प्रजाजनों को भी (उप अधायि) धारण पोषण करता है (एनम् अनु) उसको देखकर (विप्राः) विद्वान्, मेधावी (ऋषयः) ज्ञानी, मन्त्रद्रष्टा, ऋषिजन भी (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं। और (पुष्टे) हृष्ट पुष्ट, धन से समृद्ध प्रजाजन के बीच उसको ही हम (देवानाम्) विद्वानों और विजयशील सैनिकों के (सुबन्धुम्) उत्तम बन्धु और उत्तम प्रबन्धकर्त्ता (चकृम) नियत करें।

यद्वाजिनो दाम सन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य।
यद्वा घास्य प्रभृतमास्ये तृणꣳ सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥३१॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (वाजिनः) वेगवान् अश्व के (दाम) दमन करने वाला बन्धन, नियन्त्रण उसके पेट पर, (संदानम्) और जैसा नियन्त्रण पैरों आदिक में रहता है। और (अर्वतः) शीघ्र वेग से जाने वाले अश्व के (या) जो (शीर्षण्या) शिर पर बन्धी (रज्जुः)

रस्सी होती है उसी प्रकार (वाजिनः) ऐश्वर्यवान् पुरुष पर भी (दाम) दमनकारी नियन्त्रण और (संदानम्) उत्तम दान करने के नियम या दण्ड भय अथवा (दाम संदानम्) सुन्दर, प्रभावशाली शिरोवेष्टन या मुकुट आदि होता है (अर्वतः) ज्ञानी पुरुष को (अस्य) इसके (शीर्षण्या) शिर की या मुख्य अङ्ग या पद के लिये शोभा देने वाली (रशना) राष्ट्र में व्यापक (रज्जुः) सदा सर्जनकारिणी, व्यवस्थानिर्मात्री शक्ति या अधिकार प्राप्त हों। (यत्) और जिस प्रकार (अस्य आस्ये तृणं प्रभृतम्) इस पशु के मुख में तृण, घास आदि दिया जाता है उसी प्रकार (अस्य आस्ये) इसके मुख्य अधिकार के स्थान में (तृणम्) शत्रु और संकटों के काटने वाले बल, (प्रभृतम्) भली प्रकार भृति या वेतन पर नियत किया जाय, (ता ते सर्वा) वे तेरे सब पदार्थ (देवेषु अपि) विद्वान् पुरुषों के आश्रय पर (अस्तु) हों।

रशनाः—अशेरशच् । अश्नुते व्याप्नोतीति रशना । उ० २ । ७५ ।

रज्जुः—सृजेरसुम् च । उ० २ । १५ ॥ सृज्यते सृजति वा इति रज्जुः । तृणम्-तृहेः क्नो हलोपश्च । उ० ५ । ८ ॥ तृह्यते हन्यते तृन्धि हिनस्ति वा तत् तृणम् ।

अर्थात् ऐश्वर्य राष्ट्र और राष्ट्रपति पर भी उत्तम व्यवस्था और नियन्त्रण हों, उसके रचना और निर्माण की शक्ति विद्वान् के हाथ में हो, उसका नाशकारी मुख्य बल वेतनबद्ध हो वे सब विद्वानों के आश्रय पर हों।

यदश्वस्य क्रविषो मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्धस्तयोः शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३२ ॥

निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(क्रविषः) विजय करने योग्य (अश्वस्य) अश्व के समान बड़े बलवान् राष्ट्र का (यत्) जो अंश (मक्षिका) शिक्षा या उपदेश या रोष का कार्य करने वाली सभा या सेना (आश) खाजाती है (यत् वा) और जो अंश (स्वरौ) अति तापदायक, शत्रुसन्तापक (स्वधितौ) वज्र आदि शस्त्रास्त्रों में (रिप्तम् अस्ति) लग जाता है और (यत्) जो भाग (शमितुः) शान्ति कराने वाले मध्यस्थ पुरुष या दुष्टों के उपद्रव शान्त करने वाले के (हस्तयोः) हाथों में या हनन करने के साधनों और उपायों में है । और (यत् नखेषु) जो भाग राष्ट्र के प्रबन्धकर्त्ताओं और प्रबन्ध के कार्यों में राष्ट्र का है (सर्वा ता अपि) ये सब भी कार्य (देवेषु) विद्वानों के अधीन हों ।

अर्थात् सेना, शस्त्रागार, शान्ति, सन्धि, विग्रह आदि, राज्य प्रबन्ध आदि पर होने वाले सब राष्ट्र के व्यय विद्वानों के अधीन हों ।

'मक्षिका'—मश शब्दे रोषकरणे च । भ्वादिः । हनिमशिभ्यां सिकन् । उणा० ४ । १५४ ॥ मशति शब्दयति रोषं करोति वा सा मक्षिका ।

'क्रविषः' ॥ क्रवि हिंसाकरणयोश्च ॥ अत्र करणमर्थः ॥ 'स्वरुः' स्व,, शब्दोपतापयोः । अत्र उपतापार्थः । स्वधितिर्वज्रः । 'नखेषु' नहेः हलोपश्चेतिखः । उ० ५ । २३ ॥ नह्यति बध्नाति इति नखः ॥

यदूवध्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविषो गन्धो अस्ति ।
सुकृता तच्छमितारः कृण्वन्तूत मेधं शृतपाकं पचन्तु ॥३३॥

नृचिल् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यद्) जो भी (ऊवध्यम्) उच्छेद करने योग्य या मलिन कार्य करने वाला राष्ट्र का भाग (उदरस्य) पेट से अधकचे अजीर्ण अन्न के समान उपद्रवियों के उच्छेदक विभाग से (अप वाति) निकल भागे और (यः) जो (आमस्य) रोगकारी, हिंसक जन्तुओं का (गन्धः)

हिंसा का व्यापार (अस्ति) है । (शमितारः) उपद्रवों और संतापक द्वों और मानुषी विपत्तियों के शान्त करने वाले विद्वान् (सुकृता) उत्तम उपाय द्वारा (तत्) उसका (कृण्वन्तु) प्रतिकार करें । और (मेधं) हिंसा योग्य दुष्टजन को अन्न के समान (शृतपाकं) खूब परि संताप से (पचन्तु) संतप्त करें ।

उदि दृणातेरलचौ पूर्वपदान्त्यलोपश्च । 'उदरम्' । उणा० ५ । ७६ ॥
अम रोगे । आमः । गन्ध चूर्णने । गन्धः । मेधः । मेधृ हिंसानादरयोः ।

यत्ते गात्राद्ग्निना पच्यमानाद्भि शूलं निहतस्यावधावति ।
मा तद्भूम्यामाश्रिषन्मा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥३४॥

भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! (शूलम्) पीड़ाजनक शूल, हल आदि शस्त्रों से (अभिनिहतस्य) मारे या खोदे गये और (अग्निना) अग्नि के समान संतापक सूर्य या राजपुरुष द्वारा (पच्यमानात्) परिपक्व किये हुए (गात्रात्) शरीर रूप खेतों आदि से (यत्) जो भाग भी (अवधावति) अलग प्राप्त हो (तत्) वह भाग (भूम्याम्) भूमि पर (मा) न (आशिश्रिषन्) पड़ा रहे, (मा तृणेषु) वह अंश तिनकों में न मिल जाय प्रत्युत (तत्) वह (उशद्भ्यः) चाहने वाले (देवेभ्यः) देवों, विद्वान् पुरुषों को (रातम् अस्तु) दान कर दिया जाय ।

हल आदि चला कर सूर्य द्वारा पके हुए अन्न और ओषधि आदि जो पदार्थ राष्ट्र के शरीर से उत्पन्न हों वे मट्टी में और घासफूस में न मिल जायं प्रत्यतु वे विद्वानों को प्राप्त हों । वे उससे प्रजा का पालन और रोग नाश करें ।

ब्रह्मचर्य पक्ष में—हे ब्रह्मचारि ! (अग्निना पच्यमानात्) ब्रह्मरूप अग्नि या तप से संतप्त (शूलम् अभि निहतस्य) संतापकारी कामदेव से

पीड़ित (गात्रात्) गात्र से जो वीर्य नीचे के अंगों में स्रवित होता है वह वीर्य भूमि स्त्री योनि में भी न जावे और तिनकों, या तुच्छ व्यसनों में भी न नष्ट हो बल्कि (उशद्भ्यः) वह सुरक्षित वीर्य या बलको चाहने वाले अंगों की पुष्टि में लगाया जावे ।

ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्त्तिर्न इन्वतु ॥३५॥

स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवत ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् लोग (वाजिनम्) अन्नादि समृद्धि से युक्त या संग्रामादि समृद्धि से युक्त राष्ट्र को खूब (पक्वं) परिपक्व, पके खेतों वाला और दृढ (परि पश्यन्ति) देख लेते हैं और (ये) जो (ईम्) इसके प्रति (आहुः) कहा करते हैं कि वह (सुरभिः) बड़े उत्तम पक्व धान के गन्ध से युक्त हैं (निः हर) इसे अच्छी प्रकार काट लाओ और (ये च) जो इस (अर्वतः) भोग योग्य राष्ट्र के (मांसभिक्षाम्) मन के लुभाने वाले अन्न आदि पदार्थों की भिक्षा या याचना का (उपासते) आश्रय करते हैं (तेषाम्) उनका (अभिगूर्तिः) उद्यम (नः) हमें सफलता पूर्वक प्राप्त हो ।

पूर्ण ब्रह्मचारी के पक्ष में—जो विद्वान् (वाजिनं) ज्ञानवान् बलवान् ब्रह्मचारी को (परिपश्यन्ति) देखते हैं और (ये) जो (ईम्) इसको लक्ष्य करके (पक्वं) उसे परिपक्व (आहुः) कहते हैं और (सुरभिः) उत्तम वीर्य पालक होकर उत्तम आचार के सुगन्धि से युक्त पुरुष (निर्हर) हम से भिक्षा ले (इति) इस भाव से (ये च) जो गृहस्थ जन (अर्वतः) ज्ञानवान् पुरुष के (मांसभिक्षाम्) मनको प्रिय लगने वाले पदार्थों की भिक्षा की (उपासते) प्रतीक्षा करते हैं उन हितैषी पुरुषों का (अभिगूर्त्तिः) उद्यम, प्रयत्न (नः) हमें (इन्वतु) सफल होकर प्राप्त हो ।

शूरवीर पुरुष के पक्ष में—(ये) जो (वाजिनं) बलवान् पुरुष को देखते हैं, (ये ईम् पक्वम् आहुः) जो उसको परिपक्व, शस्त्रकौशल में सुअभ्यस्त बतलाते हैं (सुरभिः निर्हर इति ये च) सुरक्षित होकर परराष्ट्र की लक्ष्मी को लेआ इस प्रकार जो (अर्वतः मांस भिक्षाम् उपासते) बलवान् पुरुष के शरीर की याचना की प्रतीक्षा करते हैं (तेषां) उनका (अभिगूर्त्तिः) राष्ट्र के प्रति किया श्रम (नः) हमें प्राप्त हो। राजा राष्ट्र में बलवान् पुरुषों को परिपक्व करे और फिर उनके शरीरों को युद्धादि कार्यों के लिये लगावे।

यन्नीक्षणं माᳬस्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामङ्काः सूनाः परि भूषन्त्यश्वम् ॥ ३६ ॥

भुरिक् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—(यत्) जो (मांसपचन्याः) मनको अच्छे लगने वाले नाना फलों को परिपाक करने वाली (उखायाः) उत्तम फल देने वाली भूमि का (नीक्षणं) निरंतर देखभाल करना, या दर्शन करने योग्य दृश्य और (या) जो (पात्राणि) पालन करने वाले (यूष्णः) रस या जल के (आसेचनानि) सेचन करने के साधन कूप तड़ाग आदि स्थान हैं और जो (चरूणाम्) विचरने वाले पथिकों के निमित्त (ऊष्मण्या) ग्रीष्मकाल में सुखकारी (अपिधाना) के आच्छादित स्थान, विश्राम गृह हैं और जो (अङ्काः) स्थान २ पर अंकित मार्ग और (सूनाः) स्नान करने के तीर्थ स्थान हैं वे ही सब सुखद पदार्थ (अश्वम्) अश्व अर्थात् विशाल राष्ट्र को (परि भूषन्ति) सर्वत्र सुभूषित करते हैं।

उवट आदि की दृष्टि से--मांस की हांडी को खोल २ कर झांकना, मांसरस के पात्र, उनके गरम ढक्कन और मांस काटने के छाबड़े ये अश्व को सुभूषित करते हैं। अश्व को इन आभूषणों से सजाया जाय तो बस समस्त संसार के अश्व विनष्ट हो जायं।

अध्यात्म में—(मांस्पचन्याः उखायाः) मांस आदि देहगत धातुओं को अन्न रस से परिपक्व या दृढ़ करने वाले देह रूप इस पात्र का (यत्) जो (निईक्षणं) स्वयं ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्यपदार्थों का देखना, और (या) जो (पात्राणि) कोष्ठ भाग (Sells) (यूष्णः) अन्न रस को सर्वत्र (आसेचनानि) सेचन करते हैं और (चरूणाम्) अंगों के (ऊष्मण्या) देह के ताप की रक्षा करने वाली (अपिधाना) त्वचाएं हैं और जो (अंकाः) बाह्य पदार्थों का भीतर ज्ञान करना और (सूनाः) भीतरी मन के विचारों को बाहर प्रकट करना है ये सब अद्भुत बातें (अश्वम् परिभूषन्ति) भोक्ता आत्मा के शोभाजनक हैं ।

मा त्वाग्निर्ध्वनयीद्धूमगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिविक्त जघ्रिः ।
इष्टं वीतमभिगूर्त्तं वषट्कृतं तं देवासः प्रतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥ ३७ ॥

स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे राष्ट्र ! एवं राष्ट्रपते ! (धूमगन्धिः) धूएं के गन्ध वाला (अग्निः) आग जिस प्रकार मनुष्य को छींक और आंसू ला देता है उसी प्रकार (धूमगन्धिः) परराष्ट्र को कम्पा देने वाले बल से प्रजा को पीड़ित कर देने वाला (अग्निः) कोई अग्रणी, अग्नि के समान सन्तापक पुरुष अथवा विषैली धूम से प्रजा को पीड़ित करने वाला अग्नि (त्वा) तुझको (मा ध्वनयीत्) पीड़ित कर न रुलावे । अग्निमयी हांडी, कृत्या या बॉम्ब जिस प्रकार चटखका २ फूट जाता है और पास बैठने वाले के लिये भय का कारण होता है उसी प्रकार (भ्राजन्ती) तेज और क्रोध से अति प्रदीप्त होती हुई (उखा) पृथिवी, (जघ्रिः) प्रचण्ड व्याधि के समान तुझे सूंघती हुई तेरा पीछा करती हुई, तुझे (मा अभिविक्त) उद्विग्न न करे । (इष्टं) सब को प्रिय, (वीतम्) कान्तिमान् तेजस्वी, (अभिगूर्त्तं) परिश्रमी, (वषट्कृतं) दानशील, (तं अश्वम्) उस नरश्रेष्ठ शीघ्रकारी चतुर पुरुष को (देवासः) विद्वान् पुरुष (प्रतिगृभ्णन्ति) अपना नेता स्वीकार करते हैं ।

'आजन्ती उखा' कदाचित् विस्फोट पदार्थों से फूटने वाली विशेष घातक कृत्या प्रतीत होती है जिसका वर्णन अथर्ववेद का० ११ सू० १ में स्पष्ट है। इसी प्रकार 'धूमगन्धी अग्नि' धूममात्र से मार देने वाली आग विषैली गैस प्रतीत होती है।

निक्रमणं निषदनं विवर्त्तनं यच्च पड्वीशमर्वतः।
यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वा ता ते अपि देवेष्वस्तु ॥ ३८ ॥

विराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—(अर्वतः) अश्व का जिस प्रकार कदम बढ़ाना, बैठना, लेटना पैरों का बान्धना, जल पीना, घास खाना आदि सब विवेक पूर्वक हो उसी प्रकार (अर्वतः) व्यापक राष्ट्र का भी (निक्रमणम्) सुरक्षित रूप से निकलने के मार्ग, (निषदनम्) सुरक्षित रूप से गुप्त बैठने के स्थान, (यत् च पड्वीशम्) और जो पदाधिकारों पर योग्य पुरुषों का नियुक्त करने का कार्य, (विवर्त्तनम्) विविध प्रकार के राजकीय कारबार के स्थान और राष्ट्रवासी जन और अधिकारी राष्ट्रपति आदि (यत् च पपौ) जो पदार्थ पान करते और (यत् च घासिं जघान) जो खाने योग्य पदार्थ खाते हैं (ते) तुझ राष्ट्र और राष्ट्रवासी जन और राष्ट्रपति राजा के (सर्वा ता) वे सब कार्य भी (देवेषु) देव अर्थात् विद्वानों के अधीन (अस्तु) हों।

यदश्वाय वास उपस्तृणन्त्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै।
सन्दानमर्वन्तं पड्वीशं प्रिया देवेष्वा यामयन्ति ॥ ३९ ॥

विराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—(यत्) जो (अश्वाय) अश्व के समान वेगवान्, तीव्र पराक्रमी राष्ट्रपति के आदर के लिये (वासः) वस्त्र (उपस्तृणन्ति) बिछाये जाते हैं और (यत्) जो (अधिवासं) ऊपर पहनने का लम्बा गौन दिया जाता है और (या) जो (अस्मै) उसको (हिरण्यानि) सुवर्ण के

आभूषण पहनाये जाते हैं और (अर्वन्तं) उस व्यापक, महान् अधिकारवान् पुरुष को (संदानं) शिर का विशेष मुकुट दिया जाता है और जो (पड्वीशं) पैर का पीढ़ा दिया जाता है वह सब (प्रिया) प्रिय, मनोहर पदार्थ उसको (देवेषु) विद्वान् पुरुषों के अधीन (आयामयन्ति) सर्वथा नियमानुकूल रूप से सुरक्षित रखते हैं ।

यत्ते॑ सा॒दे मह॑सा॒ शूकृ॑तस्य॒ पार्ष्ण्या॑ वा॒ कश॑या वा तु॒तोद॑ ।
स्रु॒चेव॒ ता ह॒विषो॑ अध्व॒रेषु॒ सर्वा॒ ता ते॒ ब्रह्म॑णा सूदयामि ॥४०॥

भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! (महसा) अपने तेज से (शूकृतस्य) शीघ्रता से कार्य करने वाले, अविवेक से कुपथ पर पैर रखने वाले (ते) तेरे (सादे) अवसाद, अर्थात् कार्यभ्रष्ट हो जाने पर यदि कोई पुरुष, (पार्ष्ण्या) प्रमादयुक्त घोड़े को अश्वारोही जिस प्रकार 'शू' करके एडी या चाबुक से चला देता है उसी प्रकार कोई (पार्ष्ण्या) तेरे पीठ पीछे से आक्रमण करने वाली सेना द्वारा और (कशया) अपनी शासन शक्ति से तुझे (तुतोद) व्यथा या पीड़ा पहुंचावे तो (ते) तेरी (ता) उन (सर्वा) सब त्रुटियों को मैं पुरोहित (हविषः स्रुचा इव) स्रुवों से जैसे हवि, चरु दिया जाता है उसी प्रकार उनको (ब्रह्मणा सूदयामि) वेद ज्ञान द्वारा अथवा महान् साम्राज्य शक्ति से (सूदयामि) दूर करूं नष्ट करूं कश गतिशासनयोः । भ्वादिः ॥

चतु॑स्त्रिꣳशद्वा॒जिनो॑ दे॒वब॑न्धो॒र्वङ्क्री॒रश्व॑स्य॒ स्वधि॑तिः॒ समे॑ति ।
अच्छि॑द्रा॒ गात्रा॑ व॒युना॑ कृणोत॒ परु॑ष्परुरनु॒घुष्या॒ वि श॑स्त ॥४१॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(स्वधितिः) स्वयं समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ वीर्यवान् पुरुष तथा वज्र, दण्ड, शासन चक्र, (वाजिनः) ऐश्वर्यवान्, (देवबन्धोः) विद्वानों के बन्धु (अश्वस्य) व्यापक राष्ट्र के (चतुस्त्रिंशत्) इन ३४ (वंक्रीः) अंगों को (समेति) भली प्रकार प्राप्त करता है, अपने वश करलेता है। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग राष्ट्र के (गात्रा) अंगों को (वयुना) ज्ञान द्वारा (अच्छिद्रा) त्रुटि रहित, निर्दोष (कृणोतु) करें और उसके (परुः परुः) प्रत्येक पोरु २, अंग २ अर्थात् प्रत्येक विभाग को (अनुघुष्य) यथा क्रम आघोषित कर २ के प्रजाजन को (वि शस्त) विविध प्रकार से बतला।

स्पष्टीकरण देखो शतपथ में पारिप्लव विधि।

एकुस्त्वष्टुरश्वस्या विशुस्ता द्वा युन्तारा भवतुस्तथुऽऋतुः।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ता ता पिण्डानां प्रजुहोम्युग्नौ ॥४२॥

स्वराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—संवत्सर रूप प्रजापति की राष्ट्रमय प्रजापति से तुलना करते हैं। (त्वष्टुः) सूर्य के (अश्वस्य) आशुगामी काल का (एकः ऋतुः) एक पूर्ण वत्सर (विशस्ता) उसको विभाग करता है और इसके (द्वा यन्तारा) दो अयन नियन्ता (भवतः) होते हैं। (तथा) उसी प्रकार (ऋतुः) एक २ ऋतु संवत्सर को विभक्त करता है और उस ऋतु के भी (द्वा यन्तारा) दो दो मास नियम से (भवतः) होते हैं। इसी प्रकार हे प्रजापते! प्रजापालक राष्ट्र ! (ते) तेरे (गात्राणाम्) अङ्गों में से (या) जिन अङ्गों को मैं विद्वान् पुरुष (ऋतुथा) संवत्सर के ऋतु के समान नियामक, बली पुरुष के सामर्थ्य के अनुसार (कृणोमि) पृथक् २ विभक्त करूं उन विभक्त (पिण्डानाम्) अवयवों में से (ता ता) उन २ अवयवों, या राष्ट्र के विभागों को (अग्नौ) ज्ञानवान्, नेता, अग्रणी पुरुष के अधीन (प्र जुहामि) प्रदान करूं।

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आ तिष्ठिपत्ते।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रा गात्राण्यसिना मिथू कः ॥४३॥

भा०—हे राजन्! हे राष्ट्र! (प्रियः आत्मा) अपने देह और आत्मा के समान प्रिय पुरुष (अपियन्तम्) प्रयाण करते समय (त्वा) तुझको (मा तपत्) सन्तप्त न करे, तुझे शोकातुर न बनाये, अथवा तुझे पीड़ित न करे। (स्वधितिः) वज्र, तलवार या शस्त्र-बल भी (ते तन्वः) तेरे शरीर के भागों पर (मा आ आतिष्ठिपत्) अपना अधिकार न करे। अर्थात् शस्त्र-बल भी तुझे व्यर्थ न सतावे। (अविशस्ता) उत्तम शासक न होकर कोई (गृध्नुः) लालची महामात्य या राजा (ते छिद्राणि) तेरे भीतर विद्यमान त्रुटियों को (अतिहाय) छोड़कर (मिथू) व्यर्थ, झूठ मूठ, निष्प्रयोजन (ते गात्राणि) तेरे अंगों, राज्यांगों को (असिना) शस्त्र बल से (मा कः) मत काटे। राष्ट्र जिसको अपना हितू समझे वह उसको पीड़ित न करे, व्यर्थ शस्त्र-बल सेना आदि प्रजा को न सतावे। राजा या मन्त्री उत्तम शासक न होकर केवल लोभ, ज़ोर जबरदस्ती करके अपने पैसे के लोभ में राष्ट्र के अंग छेदन न करें अर्थात् प्रजा को न सतावे।

अध्यात्म में—(अपियन्तम्) ब्रह्म में 'अप्यय' अर्थात् लीन होने वाले या परिव्राजक मार्ग या गुरुगृह में जाते हुए (त्वा प्रियः आत्मा मा तपत्) तेरा प्रिय देह, या बन्धु तुझे शोक से संतप्त मत करे। (स्वधितिः) अपनी ही विशेष धारण करने की अहंकार वासना अथवा स्व=धन की लालसा (ते तन्वः) तेरे शरीर को (मा आतिष्ठिपत् आस्थापयेत्) न बनाये रक्खे। (अविशस्ता) अविद्वान्, उपदेश से अनभिज्ञ, अविद्वान् पुरुष (गृध्नुः) केवल लोभ वश (ते छिद्राणि अतिहाय) तेरे दोषों को छोड़कर, तेरे अपराधों के विना ही, (गात्राणि) तेरे अंगों को (असिना इव) तलवार के समान दुख-

द्वारा शस्त्रादि या वाणी से (मा मिथू कः) व्यर्थ मत काटे, व्यर्थ अंग भेदन छेदन और पीड़ित आदि न करे।

न वाऽ उऽएतन् म्रियसे न रिष्यसि देवाँ२ऽ इदेषि पथिभिः सुगेभिः। हरी ते युञ्जा पृषतीऽ अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥४४॥

स्वराड् पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—हे राष्ट्रवासीजन! (एतत्) इस प्रकार सुव्यवस्था से तू (न वा उ म्रियसे) कभी मृत्यु को प्राप्त न हो। (न रिष्यसि) तू कभी पीड़ित न हो, (सुगेभिः पथिभिः) उत्तम गमन करने योग्य मार्गों, राज-नियम और मर्यादाओं से (देवान्) इस उत्तम २ राज प्रजा के परस्पर व्यवहारों, श्रेष्ठ गुणों और उन्नत प्रजाओं और विद्वानों को (एषि) प्राप्त हो। (ते) तेरे सञ्चालक (पृषती हरी) रथ में हृष्ट पुष्ट घोड़ों के समान खूब दृढ़ राज्य के सञ्चालन में कुशल हो कर (युञ्जा) नियुक्त (अभूताम्) हों और (रासभस्य) मार्गोपदेश करने वाले महामन्त्री के (धुरि) पद पर (वाजी) ज्ञानैश्वर्यवान् पुरुष (उप अस्थात्) स्थित हो, स्थापित किया जाय।

हे साधक पुरुष! तू तपस्या में लग कर मर मत, (न रिष्यसि) कष्ट मत पा। इन (सुगेभिः) सुगम मार्गों से विद्वानों को प्राप्त होते हुए तेरे (पृषती हरी) बलवान् प्राण और अपान (युञ्जा) योग द्वारा युक्त हों और (रासभस्य धुरि) उपदेश करने वाले आचार्य के पद पर (वाजी) ज्ञानवान् पुरुष (उप अस्थात्) उपस्थित हो।

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ२ऽ उत विश्वापुषꣳ रयिम्। अनागास्त्वं नोऽ अदितिः कृणोतु क्षत्रं नोऽ अश्वो वनताꣳ हविष्मान् ॥४५॥

स्वराट् पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(वाजी) ज्ञानैश्वर्यवान्, संग्राम में कुशल राष्ट्रपति पुरुष (नः) हमें (सुगव्यम्) उत्तम गोधन, (सु-अश्वं) उत्तम अश्व धन, (पुंसः पुत्रान्) पुमान्, वीर पुरुष स्वभाव के मर्द, पुत्र को (उत) और (विश्वापुषम् रयिम्) समस्त विश्व को पोषण करने में समर्थ ऐश्वर्य प्रदान करे। हे राजन्! तू (अदितिः) अखण्ड शासन और अदीन, स्वतन्त्र शासन वाला होकर (नः) हमें (अनागाः) अपराधों से रहित, शुद्ध आचार व्यवहार वाला (कृणोतु) बनावे। (नः) हमारा (अश्वः) राष्ट्र का भोक्ता श्रेष्ठ पुरुष (हविष्मान्) अन्नादि समृद्धि से युक्त एवं ज्ञान और उपायों से युक्त होकर (क्षत्रं) क्षात्र बल को (वनताम्) प्राप्त करे।

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः। आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्मभ्यं भेषजा करत्। यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह सीषधाति ॥ ४६ ॥

अयास्यपुत्रो भुवन ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। भुरिक् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—(नुकं इमा भुवनानि) इन समस्त भुवनों, लोकों को, हम (सीषधाम) अपने वश करें, (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् सेनापति, राजा, (विश्वे चः देवाः) समस्त विद्वान्, शासकजन या विजयी सैनिक लोग, (इन्द्रः आदित्यैः) १२ मासों सहित सूर्य के समान राष्ट्र को अपने वश में करने हारे शासकों से युक्त इन्द्र, राजा, (सगणः) अपने गणों या-दलों सहित (मरुद्भिः) वैश्यों या तीव्र वेगवान् रथों से जाने वाले वीर पुरुषों सहित (अस्मभ्यं) हमारे राष्ट्र का (भेषजं करत्) यथोचित प्रबन्ध करे। दोषों को दूर कर उसे शरीर के समान हृष्ट पुष्ट करे। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, (आदित्यैः सह) १२ मासों सहित सूर्य के समान अपने आदित्य समान तेजस्वी विद्वान्, सभासदों, या मन्त्रियों

सहित (नः) हमारे (यज्ञं) सुसंगत प्रजापालक राष्ट्र को और (नः तन्वं) हमारे शरीरों को और (प्रजां च) हमारी प्रजा को भी (सीपधाति) हृष्ट पुष्ट कर अपने अधीन रक्खे।

अग्ने त्वन्नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः॥ ४७॥
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः।
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्याणो अघायतः समस्मात्॥ ४८॥

भा०—[४७–४८] दोनों की व्याख्या देखो अ० २। २५, २६॥

॥ इति पञ्चविंशोऽध्यायः॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चविंशोऽध्यायः।

४८—बहुव 'सखिभ्य' इत्यन्तो मन्त्रः। 'स नो बोधीति०' चरणद्वयं अ० २। २६। इत्यस्योत्तरार्धभागः॥

॥ अथ षड्विंशोऽध्यायः ॥

[अ० २६–४०] विवस्वान् याज्ञवल्क्यश्च ऋषी ॥

॥ ओ३म् ॥ अग्निश्च पृथिवी च संनते ते मे संनमतामदो। वायुश्चान्तरिक्षं च संनते ते मे संनमतामदऽआदित्यश्च द्यौश्च संनते ते मे संनमतामदः। आपश्च वरुणश्च संनते ते मे सन्नमतामदः। सप्त सꣳसदो अष्टमी भूतसाधनी। सकामाँ२॥ अध्वनस्कुरु संज्ञानमस्तु मेऽमुना ॥ १ ॥

अभिकृतिः। ऋषभः ॥

भा०—(अग्निः च पृथिवी च) अग्नि अर्थात् सूर्य और पृथिवी दोनों (संनते) परस्पर एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं। (ते) वे दोनों (अदः) अमुक मेरे प्रेम और अभिलाषा के पात्र को (मे संनमताम्) मेरे अनुकूल करें, उसे मेरे प्रति प्रेम से झुकावें। (वायुः च अन्तरिक्षं च) वायु और अन्तरिक्ष दोनों (संनते) परस्पर एक दूसरे के उपकार्य उपकारक होकर एक दूसरे के अनुकूल रहते हैं। वे दोनों अपने दृष्टान्त से (अदः) अमुक को (मे) मेरे लिये (संनमतात्) प्रेम से संगत करें। (आदित्यः च द्यौः च) सूर्य और आकाश दोनों (संनते) एक दूसरे के साथ उपकार्य उपकारक भाव से संयुक्त हैं। वे (मे) मेरे लिये अमुक को (संनमताम्) अपने दृष्टान्त से मेरे अनुकूल प्रेम व्यवहार युक्त करें। (आपः च वरुणः च) जल और वरुण, महान् समुद्र या मेघ दोनों (संनते) एक दूसरे के अनुकूल होकर रहते हैं। (ते) वे दोनों (मे) मेरे लिये (अदः संनमताम्) अमुक को मेरे प्रति प्रेमयुक्त, अनुकूल करें।

अथ खिलानि। अतः सप्तसन्नति मन्त्राः ॥

(सप्तसंसदः) ये सात संसद् हैं इनके आश्रय समस्त जीव स्थिर हैं इनमें (अष्टमी) आठवीं (भूतसाधनी) समस्त भूतों अर्थात् प्राणियों को अपने वश करती है। अर्थात् अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष आदित्य द्यौ, आपः और वरुण ये सात 'संसत्' हैं इनके आश्रय समस्त लोक विराजते हैं। और आठवीं पृथ्वी सब प्राणियों को अपने वश में करती है। वह सबको उत्पन्न करती और पालती है। हे राजन् ! तू (अध्वनः) समस्त मार्ग को (सकामान्) अपने कामनानुकूल कर। (अमुना) अमुक, २ शक्ति और पदार्थ से मे संज्ञानम् अस्तु) मुझे सम्यक् अर्थात् सत्य, यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो।

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्याᳬ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणायच। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु॥ २॥

स्वराड् अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—मैं परमेश्वर और राजा (यथा) जिस प्रकार (इमां) इस (कल्याणीं वाचम्) सब को सुख देनेवाली वाणी के (जनेभ्यः) समस्त उत्पन्न लोकों के हित के लिये (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय (शूद्राय) शूद्र और (अर्याय च) वैश्य, (स्वाय च) अपने प्रिय लगने और (अरणाय) प्रिय न लगने वाले, अपने और पराये सब जनों के लिये (आवदानि) सर्वत्र उपदेश करूँ। इसी प्रकार मैं भी सब जनों के हितकारी वाणी बोलूँ जिससे मैं (देवानां) विद्वानों का और (दक्षिणायै दातुः) दक्षिणा वृत्ति देनेहारे पुरुष का भी (इह) इस राष्ट्र में या लोक में (प्रियः भूयासम्) प्रिय होऊँ। (मे अयं कामः) मेरी यह कामना, (समृध्यताम्) पूर्ण हो। (अदः) अमुक पुरुष और मेरा अमुक प्रयोजन (मा उपनयतु) मुझे प्राप्त हो, मेरे अनुकूल हो, मेरे वश या अधीन हो।

परमेश्वर जिस प्रकार सब के हितार्थ वेद-वाणी का उपदेश करता है

इसी प्रकार राजा भी अपनी आज्ञा वाणी को सर्वहितार्थ बोले वह विद्वानों और प्रजाजनों के वृत्तिदाता धनकुबेरों का भी प्रिय होकर रहे। उसकी सब इच्छा पूर्ण हों, इस प्रकार उसके अनुकूल, प्रतिकूल समीप और दूर के सभी व्यक्ति और राष्ट्र भी इसके अधीन हों।

बृह॑स्पते॒ अति॒ यद॒र्यो अर्हा॑द् द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑म॒ज्जने॑षु। यद्दी॒दय॒च्छव॑सऽऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि॒ बृह॒स्पत॑ये त्वै॒ष ते॒ योनि॒र्बृह॒स्पत॑ये त्वा ॥ ३ ॥

गृत्समदो बृहस्पतिर्वा ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। भुरिग् अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े बड़ों के पालक, उनके स्वामिन्! उनमें प्रधान पुरुष! (यत्) जिस कारण से तू (अर्यः) सबका स्वामी होकर (अर्हात्) पूजने योग्य है। और (जनेषु) समस्त जनों में (द्युमत्) सूर्य के समान तेजस्वी (क्रतुमत्) प्रज्ञावान् और क्रियावान् होकर (अति विभाति) सब से अधिक चमकता है और (यत्) जिस कारण से हे (ऋतप्रजात) सत्य व्यवहार, धर्म और ज्ञान द्वारा प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट पद पर स्थित तू (शवसा) बल से ही (दीदयत्) सब की रक्षा करता है अतः तू (अस्मासु) हम प्रजाजनों में (चित्रम्) संग्रह करने योग्य (द्रविणम्) ऐश्वर्य का (धेहि) प्रदान कर, धारण करा। हे विद्वान् पुरुष! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र के सुव्यवस्थित राजनियमों द्वारा स्वीकार किया गया है। (त्वा) तुझको (बृहस्पतये) बृहस्पति पद के लिये चुनते हैं। (एषः ते योनिः) यह तेरे योग्य आसन, पदाधिकार है। (बृहस्पतये त्वा) तुझे बृहस्पति पद के लिये नियुक्त करता हूँ।

परमात्मा के पक्षमें—हे (बृहस्पते!) महान् लोकों और बृहती वेद वाणी और बृहती अर्थात् प्रकृति के स्वामिन्! तू (जनेषु क्रतुमत्) समस्त

उत्पन्न होनेहारे पदार्थों में क्रियावान् और ज्ञानवान् है, तू प्रकाशस्वरूप, सर्व से पूज्य और स्वामी रूप से प्रकाशमान है। हे (ऋतुप्रजात) व्यक्त जगत् के उत्पादक और सत्यरूप से प्रसिद्ध हमें उत्तम ऐश्वर्य प्रदान कर। तू (उपयामगृहीतः) यम नियमों और तप द्वारा योग से प्राप्त होता है यही तेरा स्वरूप है, तुझको बृहस्पति करके मानता हूँ ।

इन्द्र गोमन्निहा याहि पिबा सोमꣳ शतक्रतो विद्युद्भिर्ग्रावभिः सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमत एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (गोमन्) वाणी, आज्ञा एवं गवादि पशु और गौ=पृथ्वी के स्वामिन्! तू (इह) यहां इस राष्ट्र में (आयाहि) प्राप्त हो, हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रज्ञाओं क्रिया सामर्थ्यों और अधिकारों से युक्त! तू (विद्युद्भिः) विशेष रूप से विद्यमान अथवा विविध खण्डन-मण्डन करने वाले (ग्रावभिः) विद्वानों द्वारा (सुतम्) सिद्धान्त रूप से प्राप्त किये (सोमम्) ज्ञान रस का पान कर। अथवा (विद्युद्भिः) विविध शस्त्रास्त्रों से शत्रुओं का खण्डन करनेवाले (ग्रावभिः) शस्त्रधारियों और विद्वानों से (सुतम्) प्राप्त किये गये (सोमम्) अभिषेक द्वारा प्रदत्त सोम नाम राजपद या राष्ट्र और ज्ञान का (पिब) पान कर, उपभोग कर। हे वीर पुरुष! तू (उपयामगृहीतः असि) राष्ट्र द्वारा शासन व्यवस्था द्वारा स्वीकृत या नियुक्त है (त्वा गोमते इन्द्राय) तुझको 'गोमत् इन्द्र' अर्थात् पृथिवी के स्वामी 'इन्द्र' पद के लिये नियुक्त करता हूँ। (एष ते) यह तेरे योग्य (योनिः) आश्रय, पदाधिकार है। (इन्द्राय त्वा गोमते) 'गोमान् इन्द्र' पद के लिये तुझे स्थापित किया जाता है।

इन्द्रा याहि वृत्रहन् पिबा सोमꣳ शतक्रतो। गोमद्भिर्ग्रावभिः

सुतम्। उपयामगृहीतोऽसीन्द्राय त्वा गोमतऽ एष ते योनिरिन्द्राय त्वा गोमते ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) हे शत्रुओं के विदारक ! हे (वृत्रहन्) विघ्नकारियों के नाशक ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रजा और अधिकारों से सम्पन्न ! तू (गोमद्भिः) पृथ्वी के स्वामी, (ग्रावभिः) शस्त्रधारी भूपतियों द्वारा (सुतम्) अभिषेक द्वारा प्राप्त (सोमम्) राष्ट्र ऐश्वर्य को शिलाओं से कुटे सोमरस के समान (पिब) उपभोग कर। (उपयाम गृहीत० इत्यादि) पूर्ववत्।

ऋतावानं वैश्वानरमृतस्य ज्योतिषस्पतिम्। अजस्रं घर्ममीमहे। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥६॥

भा०—(ऋतावानं) सत्य ज्ञानवान् (ऋतस्य ज्योतिषः) सत्यज्ञान रूप ज्योति के पालक (घर्मम्) अति देदीप्त विद्वान्, (वैश्वानरम्) समस्त पुरुषों के हितकारी पुरुष को (अजस्रं) निरन्तर (ईमहे) प्राप्त हों।

सूर्य के पक्ष में—(ऋतावानम्) जल को रश्मियों से ग्रहण करने वाला (ऋतस्य ज्योतिषः पतिम्) जल और प्रकाश के पालक, सूर्य से (धर्मम्) अविनाशी ज्योति या दीप्ति, तेज को (ई महे) प्राप्त करें। (उपयाम० इत्यादि) पूर्ववत्।

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः। इतो जातो विश्वमिदं विचष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥ ७ ॥

जगती। निषादः ॥

भा०—हम लोग (वैश्वानरस्य) समस्त विश्व के, या समस्त राष्ट्र के नायक के (सुमतौ) शुभ बुद्धि के अधीन (स्याम) रहें। (राजा) वह राजा ही (भुवनानां) समस्त लोकों के लिये (अभिश्रीः) सब प्रकार से आश्रय करने योग्य है। वह (जातः) प्रादुर्भूत होकर (इतः) इस मुख्य पद से

ही (विश्वम् इदम्) इस समस्त विश्व को सूर्य के समान (विचष्टे) देखता है और प्रकाशित करता है। इसी से (वैश्वानरः) समस्त राष्ट्र का नेता वैश्वानर नाम राजा, (सूर्येण) सूर्य के समान तेजस्वी होकर (यतते) राष्ट्र के कार्यों में उद्योग करता है। (उपयाम० इत्यादि पूर्ववत्)।

अध्यात्म में—पाञ्च ज्ञानेन्द्रिय और आठवीं वाणी है। हे वाणि ! तू मेरे लिये सब ज्ञान मार्गों को सफल कर और अमुक अभ्यास, प्रयत्न और पदार्थ से मुझे यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो।

पृथिवी पर जिस प्रकार अग्नितत्व प्रधान है, पृथिवी अग्नि के अधीन है। और पृथिवी अग्नि का ही उपकारक है इसी प्रकार राष्ट्र की प्रजा का राजा से, स्त्री का पुरुष से सम्बन्ध है। इसी प्रकार अन्तरिक्ष में वायु व्यापक है और स्वच्छन्द विहार करती है इसी प्रकार वायु के समान तीव्र वेगवान् बलवान् सेनापति अपने आच्छादक बल पर रहे। आदित्य सूर्य जिस प्रकार आकाश में तेजस्वी है, आकाश को प्रकाशित करता है उसी प्रकार सभापति सभा में विराजे, जल जिस प्रकार समुद्र के आश्रय है आप्तजन या प्रजाजन वरुण, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ पुरुष में अपना आश्रय समझें। उसी से अपनी वृद्धि करें। परन्तु पृथिवी और तत्स्थानीय राष्ट्र प्रजा ही आठवीं समस्त प्राणियों को अपने आश्रय में रखती है। हे पुरुष ! राजन् ! तू अपने (अध्वनः) मार्गों, राज्य के संञ्चालन के नियमों को अपने प्रयोजन और इच्छा और आवश्यकतानुसार बना। (अमुना) अमुक २ विद्वान् पुरुष से मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हो सदा ऐसा यत्न कर।

वैश्वानरो नऽ ऊतयऽ आ प्रयांतु परावतः। अग्निरुक्थेन वाहसा। उपयामगृहीतोऽसि वैश्वानराय त्वैष ते योनिर्वैश्वानराय त्वा ॥८॥

भा०—(वैश्वानरः) समस्त राष्ट्र का नेता, अथवा समस्त नेता पुरुषों का स्वामी, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी (उक्थेन)

अपने प्रशंसनीय (वाहसा) साधनों और वाहनों से (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (परावतः) दूर देश तक भी (आ प्रयातु) जाए और दूर देश से भी आजाया करे। (उपयाम० इत्यादि) पूर्ववत्।

अ॒ग्निर्ऋषि॒: पव॑मान॒: पाञ्च॑जन्यः पु॒रोहि॑तः। तमी॑महे महाग॒यम्। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽस्य॒ग्नये॑ त्वा॒ वर्च॑सऽए॒ष ते॒ योनि॑र॒ग्नये॑ त्वा॒ वर्च॑से ॥ ९ ॥

वसिष्ठभारद्वाजावृषी। अग्निर्देवताः। जगती। निषादः ॥

भा०—(अग्निः) ज्ञानवान् अग्नि के समान तेजस्वी, (ऋषिः) ज्ञानों, मन्त्रार्थों का देखने वाला, (पाञ्चजन्यः) पांचों जनों का हितकारी (पुरोहितः) पुरोहित, सब कर्मों का साक्षी हो। (महागयम्) अति स्तुति योग्य या बड़े विशाल गृहों, धनैश्वर्यों और बड़ी प्रजावाले (तम्) उससे हम अपने अभिलषित पदार्थ की (याचामहे) याचना करें। (उपयामगृहीतः असि०) इत्यादि पूर्ववत्।

म॒हाँ२ऽ इन्द्रो॒ वज्र॑हस्तः षो॒ड॒शी शर्म॑ यच्छतु। हन्तु॑ पा॒प्मानं॒ यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॑। उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि मह॒ेन्द्राय॑ त्वै॒ष ते॒ योनि॑र्म॒हेन्द्राय॑ त्वा ॥ १० ॥

वसिष्ठ ऋषिः। महान् इन्द्रो देवता। निचृज्जगती। निषादः ॥

भा०—(महान्) बड़ा भारी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक इन्द्र राजा, (वज्रहस्तः) खांडा हाथ में लिये हुए, बलवान् वीर्यवान्, (शोडषी) सोलहों कलाओं के समान सोलह अमात्यों या राज्यांगों से चन्द्र के समान पूर्ण होकर हमें (शर्म) सुख (यच्छतु) प्रदान करे। (यः) जो (अस्मान्) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करे उस (पाप्मानं) पापी, दुष्टाचारी पुरुष को (हन्तु) दण्ड दे। (उपयामगृहीत०) इत्यादि पूर्ववत्।

तं वो॑ द॒स्ममृ॑ती॒षहं॒ वसो॑र्मन्दा॒नमन्ध॑सः।

अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव॒ऽ इन्द्रं॑ गी॒र्भिर्न॑वामहे ॥ ११ ॥

नोधा गोतमः आदित्ययाज्ञवल्क्यौ वा ऋषी । इन्द्रो देवता । गान्धारः । विराड् अनुष्टुप् ॥

भा०—(स्वसरेषु) दिनों के पूर्व भाग में (धेनवः वत्सं न) गौवें जिस प्रकार अति प्रेम से अपने बच्छे के प्रति हंभारती हैं उसी प्रकार हम भी (वत्सं) अभिवादन और स्तुति करने योग्य, (दस्मम्) दर्शनीय, शत्रुओं के विनाशक, प्रियवादी और कार्यसाधक (वसोः) बसनेवाले राष्ट्र और (अन्धसः) अन्नादि नानाभोग्य पदार्थ से (मन्दानम्) स्वयं और अन्यों को तृप्त, आनन्दित करनेवाले (ऋतीषहम्) अपने ज्ञान, प्रयाण या चालों से शत्रुओं को परास्त करनेवाले (इन्द्रम्) इन्द्र, सेनापति और राजा को हम (गीर्भिः) स्तुतिवाणियों द्वारा (अभि नवामहे) साक्षात् होने पर स्तुति करें, उसका आदर करें ।

यद्वाहिष्ठन्तद॒ग्नये॑ बृहद॑र्च विभावसो ।
महि॑षीव॒ त्वद्र॒यिस्त्वद्वाजा॒ऽ उदी॑रते ॥ १२ ॥

सयुर्ऋषिः । अग्निर्देवता । विराड् गायत्री ॥ षड्जः ॥

भा०—हे मनुष्यो! (यत्) जो (वाहिष्ठम्) सब से अधिक सुख प्राप्त कराने-वाला, बड़े जिम्मेवारी का (बृहत्) बड़ा महान् पद है वह (अग्नये) ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष को प्रदान करो । (अर्च) उसका आदर सत्कार करो । हे (विभावसो) तेजो रूप ऐश्वर्यवान् तेजस्विन् ! (महिषी इव) जिस प्रकार रानी अपने पति के लिये बड़ी उत्कंठा और प्रेम से उसके आदरार्थ उठती है, उसे प्राप्त होती है, इसी प्रकार (त्वत् रयिः) तेरे निमित्त ऐश्वर्य और (त्वत्) तेरे निमित्त, (वाजाः) समस्त वीर्य, पदाधिकार (उदीरते) उठते हैं और तुझे प्राप्त होते हैं ।

एह्यू षु ब्रवाणि तेऽग्नऽइत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्द्धासऽइन्दुभिः ॥१३॥

भरद्वाज ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (एहि) आ । (ते) तुझे मैं विद्वान् पुरुष (इतराः) और नाना (गिरः) उपदेश वाणियों का (इत्था) यथार्थ रूप से (सु ब्रवाणि) उत्तम रीति से उपदेश करूँ। (एभिः) इन (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों से तू (वर्धासे) वृद्धि को प्राप्त हो ।

ऋतवस्ते यज्ञं वि तन्वन्तु मासा रक्षन्तु ते हविः ।
संवत्सरस्ते यज्ञं दधातु नः प्रजां च परि पातु नः ॥ १४ ॥

भुरिग् बृहती । निषादः । संवत्सरो देवता ॥

भा०—हे नायक ! राजन् ! (ऋतवः) जिस प्रकार जगत् रूप यज्ञ को ऋतुएँ करते हैं उसी प्रकार उनके समान सदस्यगण (ते यज्ञम्) तेरे राष्ट्र पालन रूप यज्ञ को (वितन्वन्तु) विविध उपायों से करें । (मासाः) मास जिस प्रकार जगत् के अन्नादि पदार्थों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (मासाः) ज्ञानवान् और दुष्ट के नाशक अधिकारीगण (ते) तेरे (हविः) अन्न और राष्ट्र की (रक्षन्तु) रक्षा करें । (ते यज्ञं) तेरे यज्ञ को (संवत्सरः) जिसमें समस्त प्राणी सुख से बसें और रमण करें ऐसे प्रजा पालक विद्वान् पुरुष वर्ष के समान सर्वगुणनिधान, (दधातु) धारण करे । और वही (नः) हमारे (प्रजां) प्रजा का (परिपातु) परिपालन करे ।

उपह्वरे गिरीणाᳪं सङ्गमे च नदीनाम् ।
धिया विप्रोऽअजायत ॥ १५ ॥

वत्स ऋषिः । सोमो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(गिरीणाम्) पर्वतों के (उपह्वरे) समीप में (नदीनां च सङ्गमे) और नदियों के संगम स्थान में, रह कर (धिया) ध्यान, धारणा,

कर्म; और विद्याभ्यास करके (विप्रः) विविध विद्याओं से संपूर्ण, निष्णात होकर विद्वान् सोम और सूर्य के समान जन (अजायत) प्रकट होता है ।

उच्चा ते जातमन्धसो दिवि सद्भूम्या ददे ।
उग्रꣳशर्म महि श्रवः ॥ १६ ॥

[१६–१८] आमहीयवऋषिः । गायत्री । षड्जः ॥

भा० —(ते) तेरे हे (सोम) ऐश्वर्यसम्पन्न ! सूर्य के समान सबके प्रेरक राजन् ! (अन्धसः ते) तुझ अखिल विश्व को धारण करनेवाले तेरा जो (उच्चा दिवि) ऊँचे आकाश में (सत्) सत् शक्ति रूप से वही (उग्रम्) बड़ा बल, (शर्म) सुखकारी शरण और (महि श्रवः) बड़ा ऐश्वर्य (जातम्) प्रकट होता है उसको (भूमि आददे) भूमि स्वयं ग्रहण करती है, अथवा उसको मैं प्रजाजन (भूमि इव) सर्वोत्पादक सर्वाश्रय रूप से स्वीकार करता हूँ ।

स नऽ इन्द्राय यज्यवे वरुणाय मरुद्भ्यः ।
वरिवोवित्परि स्रव ॥ १७ ॥

भा०—हे सोम ! राजन् ! (सः) वह तू (नः) हमारे (इन्द्राय) शत्रुनाशक, (यज्यवे) दानशील, (वरुणाय) सर्व श्रेष्ठ, आपत्ति निवारक और (मरुद्भ्यः) विद्वान् मनुष्यों के लिये (वरिवोवित्) धनवान् ऐश्वर्यवान् सेवा करो कर्त्तव्य जानकर (परिस्रव) प्राप्त हो ।

एना विश्वान्यर्यऽआ द्युम्नानि मानुषाणाम् ।
सिषासन्तो वनामहे ॥ १८ ॥

भा०—(एना) ये (विश्वा) सब प्रकार के (मानुषाणां द्युम्नानि मनुष्यों के उपयोगी धनों का (अर्यः) स्वामी ही (आ) प्राप्त करता

है। हम (सिषासन्तः) उनका सेवन करना चाहते हुए (वनामहे) उन्हीं पदार्थों की याचना करते हैं।

अनु वीरैरनु पुष्यास्म गोभिरन्वश्वैरनु सर्वेण पुष्टैः।
अनु द्विपदानु चतुष्पदा वयं देवा नो यज्ञमृतुथा नयन्तु ॥१९॥

आशीः। त्रिष्टुप्। धैवतः। मुगल ऋषिः॥

भा०—(देवाः) देवगण (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर संगत, गृहस्थ, समाज और राष्ट्र रूप यज्ञ को या प्रजापालक राजा को (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार, यथाकाल, यथावसर इस प्रकार (नयन्तु) ले जावें। इस प्रकार मार्ग दिखावें कि (वयम्) हम (वीरैः) वीरों से (अनुपुष्यास्म) पुष्ट हों, (गोभिः अनु) गौओं से समृद्ध हों, (पुष्टैः अश्वैः अनु) हृष्ट पुष्ट अश्वों से समृद्ध हों, (सर्वेण द्विपदा चतुष्पदा) सब प्रकार के दोपाये और चौपाये भृत्यु और पशुओं से (अनु) खूब पुष्ट हों।

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप।
त्वष्टारꣳ सोमपीतये ॥ २० ॥

मेधातिथिर्ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! राजन् अग्रणी! पुरुष! (इह) इस परस्पर सुसंगत राष्ट्र और समाज के कार्य में (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों की उन (पत्नीः) स्त्रियों को जो (उशतीः) कार्य के करने की अभिलाषा करती हों (उप वह) प्राप्त करा, उनको भी इस कार्य में लगा और (सोमपीतये) सोम या राजापद के स्वीकार करने के लिये (त्वष्टारं) शत्रुहन्ता, प्रजापालक पुरुष को भी प्राप्त करा।

अथवा—राष्ट्र के पालन के लिये (देवानां पत्नीः) देवों विद्वानों और राजा और विजयी पुरुषों की पालन शक्तियों, सेनाओं को एकत्र कर (त्वष्टारं) सब के त्वष्टा, शिक्षक या भूमि आदि के मापन राजप्रासाद दुर्गआदि के निर्माता शिल्पी को भी प्राप्त कर।

अभि युज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिबंऽऋतुनां ।
त्वꣳ हि रत्नुधाऽअसि ॥ २१ ॥

[२१-२२] मेधातिथिर्ऋषिः । ऋतुर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (नेष्टः) नेता ! नायक पुरुष ! राजन् ! (नः) हमारे (यज्ञं) प्रजापालक राष्ट्र के स्वरूप को (अभि) स्पष्टरूप को (नः गृणीहि) हमें बतला। हे (ग्नावः) पालक शक्ति से युक्त वाग्मिन् ! इस राष्ट्र को (ऋतुना) अपने बल और ज्ञान से या अन्य अधिकारियों द्वारा (पिब) भोग कर। (त्वं हि) तू ही (रत्नधा असि) राज्य के रत्नों और पुरुषों का धारक और पोषक है ।

द्रुविणोदाः पिपीपति जुहोत प्र च तिष्ठत । नेष्ट्रादृतुभिरिष्यत ॥२२॥

भा०—(द्रविणोदाः) धन और यश का देनेवाला पुरुष ही (पिपीषति) सृष्टि का भोग करना चाहता है । (जुहोत) उसको पदाधिकार प्रदान करो और (प्रतिष्ठत च) शत्रु पर प्रस्थान करो । (नेष्टाद्) नेष्टा, नायक से (ऋतुभिः) ऋतुओं के अनुसार उसके मुख्य सदस्यों सहित (इष्यत) इष्ट फल को प्राप्त करो ।

तवायं सोमुस्त्वमेह्यर्वाङ्शश्वत्तमꣳ सुमना अस्य पाहि । अस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्यां दधिष्वेमं जठर् इन्दुमिन्द्र ॥ २३ ॥

भा०—हे राजन् ! (अयं सोमः) यह ऐश्वर्य युक्त राज्य या राष्ट्र (तव) तेरा है । (त्वं) तू (सुमनाः) शुभ चित्त होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (शश्वत्तमम्) सदा काल से चले आये ऐश्वर्य को (अर्वाङ्) अपने अधीन रख के (पाहि) पालन कर । (अस्मिन् यज्ञे) इस महान् यज्ञ में, और इस (बर्हिषि) राजगद्दी पर या प्रजा जन के ऊपर (आनिषद्य) विराज कर (इमं) इस (इन्दुम्) ऐश्वर्य शील राष्ट्र को (इन्द्र) ऐश्वर्य

के इच्छुक (जठरे) पेट में अन्न के, या ओषधि रस के समान (दधिष्व) धारण कर ।

अ॒मेव॑ नः सुहवा॒ ऽआ हि गन्त॑न॒ नि ब॒र्हिषि॑ सदतना॒ रणि॑ष्टन ।
अथा॑ मदस्व जुजुषा॒णो ऽअन्ध॑स॒स्त्वष्ट॑र्दे॒वेभि॒र्जनि॑भिः सु॒मद्ग॑णः ॥२४

गृत्समद ऋषिः । जगती । निषादः । त्वष्टा देवपत्न्यश्च देवताः ॥

भा०—हे (सुहवाः) सुन्दर, शुभ नामवाली देवपत्नियों अर्थात् विद्वान् पुरुषों के स्त्री जनो ! और हे विद्वान् जनो ! आप सब लोग (आ गन्तन हि) आइये । (बर्हिषि) उत्तम आसन पर (नि सदतन) निश्चिन्त होकर विराजिये । और (रणिष्टन) उत्तम उपदेश, शिक्षा प्रदान कीजिये । हे (त्वष्टः) विद्वन् ! राजन् ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार सूर्य अपने (देवेभिः) किरणों से जल को ग्रहण करता है उसी प्रकार तू भी (देवेभिः) सहयोगी विद्वान् पुरुषों और (जनिभिः) सहयोगी माता भगिनी पत्नी आदि आनन्द प्रसन्न स्त्रियों के सहित और (सुमत्-गणः) उत्तम गुणों वाले गणों अर्थात् भृत्यजनों सहित (अन्धसः) अन्न आदि का (जुजुषाणः) भोग करता हुआ (मदस्व) हृष्ट-पुष्ट हो ।

स्वादि॑ष्ठया॒ मदि॑ष्ठया॒ पव॑स्व सोम॒ धार॑या ।
इन्द्रा॑य॒ पात॑वे सु॒तः ॥ २५ ॥

भा०—हे (सोम) सबके प्रेरक ! तू (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद अर्थात् समृद्ध राज्य के लिये (सुतः) अभिषिक्त होकर (स्वादिष्ठया) अति स्वाद वाली, अति मधुर (मदिष्ठया) सबको अति आनन्द देनेवाली, (धारया) प्रजा को धारण पोषण करने वाली, दुग्ध-धारा के समान मधुर वाणी और शक्ति से (इन्द्राय) ऐश्वर्य के (पातवे) पालन करने और भोग करने के लिये (पवस्व) निरन्तर शुद्ध पवित्र होकर रह ।

रक्षोहा विश्वचर्षणिरभि योनिमयोहते ।
द्रोणे सधस्थमासदत् ॥ २६ ॥

भा०—(रक्षोहा) राक्षसों और दुष्ट पुरुषों का नाशक (विश्वचर्षणिः) समस्त प्रजाओं का द्रष्टा होकर सुवर्ण आदि से व्याप्त, ऐश्वर्य युक्त (द्रोणे) राष्ट्र में (सधस्थम्) योग्य स्थान, मान और पद के समान योग्य प्रतिष्ठित पद और (योनिम्) अपने गृह या अधिकार पद पर (आसदत्) विराजे और उत्तम गृह में रहे ।

॥ इति षड्विंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षड्विंशोऽध्यायः ॥

॥ अथ सप्तविंशोऽध्यायः ॥

[अ० २७] प्रजापतिर्ऋषिः । अग्निर्देवता ॥

॥ ओ३म् ॥ समास्त्वाग्न ऽऋतवो वर्द्धयन्तु संवत्सराऽ ऋषयो यानि सत्या । सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन विश्वा ऽआभाहि प्रदिशश्चतस्रः ॥ १ ॥

[१—६] अग्निर्ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! अग्रणी नायक ! राजन् ! (त्वा) तुझको (समाः) एक समान मान, पद और ज्ञानवाले विद्वान् पुरुष और (ऋतवः) बलवान् सभासद् गण, (संवत्सराः) अच्छी प्रकार प्रजाओं को बसाकर उनमें स्वयं रमण करनेहारे प्रजापालक नरपति लोग और (ऋषयः) वेदमन्त्रों और सत्य ज्ञानों के गूढ़ तत्वों के अध्यापक तथा अध्येता जन और (यानि-सत्या) जितने होनेवाले सत्य, यथार्थ विज्ञान और सत्य व्यवहार हैं वे सब (त्वा) तुझको (सं वर्धयन्तु) बढ़ावें, तेरे यश, बल और ऐश्वर्य की वृद्धि करें । तू (दिव्येन) उत्तम कान्तियुक्त (रोचनेन) सबको अच्छा लगने वाले तेज से (सं दीदिहि) सूर्य के समान प्रकाशित हो । और सूर्य के समान ही (विश्वा) समस्त (चतस्रः) चारों दिशा उपदिशाओं सबको (आभाहि) जगमगा, प्रकाशित कर ।

सूर्यपक्ष में—(समाः) वर्ष (ऋतवः) वसन्तादि, (संवत्सराः) प्रभव आदि सब सूर्य की महिमा को बढ़ाते हैं ।

सं चेध्यस्वाग्ने प्र च बोधयैनमुच्च तिष्ठ महते सौभगाय ।
मा च रिषदुपसत्ता ते ऽअग्ने ब्रह्माणस्ते यशसः सन्तु मान्ये ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! विद्वन् ! नायक ! राजन् ! तू (सं इध्यस्व च)

अग्नि के समान खूब प्रज्वलित, तेजस्वी हो। (एनम्) इस राष्ट्र को भी (प्र बोधय च) खूब जगा, प्रबुद्ध और शिष्य को गुरु के समान सोते से, या अज्ञान दशा से जगा कर ज्ञानवान् कर। तू स्वयं भी (महते सौभगाय) बड़े सौभाग्य और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये, (उत् तिष्ठ) ऊँचे आसन पर विराज। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (ते उपसत्ता) तेरे समीप आनेवाला, तेरा उपासक और तेरे समीप बैठने वाला अमात्य, शिष्य, मित्र आदि (मा रिपत् च) कभी कष्ट प्राप्त न करे। हे (अग्ने) विद्वन् तेजस्विन्! (ब्रह्माणः) ब्रह्म वेद और ऐश्वर्य के ज्ञानी विद्वान्गण (ते) तेरे आश्रय रह कर (यशसः) यशस्वी (सन्तु) हों। (ते अन्ये) और वे दूसरे अर्थात् तेरे शत्रु जन (मा) कभी यशस्वी न हों। अथवा (यशसः ब्रह्माणः अन्ये मा सन्तु) यशस्वी विद्वान् ब्राह्मण तेरे विरोधी शत्रु न हो जायं।

त्वाम॑ग्ने वृणते ब्राह्म॒णा ऽइ॒मे शि॒वो ऽअ॑ग्ने सं॒वर॑णे भवा नः।
स॒प॒त्न॒हा नो॑ ऽअभिमाति॒जिच्च॒ स्वे गये॑ जागृ॒ह्यप्र॑युच्छन् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) राजन्! तेजस्वी पुरुष! (त्वां) तुझको (इमे ब्राह्मणाः) ये ब्रह्म के जाननेहारे विद्वान् ब्राह्मण लोग (वृणते) वरण करते हैं, अपना नेता स्वीकार करते हैं। हे (अग्ने) अग्ने! तेजस्विन्! तू (नः) हमारे (संवरणे) वरण करलेने पर (शिवः) हमारे प्रति कल्याण और सुख का देनेहारा (भव) हो। और तू (सपत्नहा) शत्रुओं का नाशक और (अभिमाति-जित् च) गर्वीले, दुष्ट पुरुषों को विजय करनेहारा होकर (स्वे गये) अपने गृह और विजित राष्ट्र में (अप्रयुच्छन्) कभी प्रमाद न करता हुआ (जागृहि) सदा सावधान होकर पहरेदार के समान जागता रह।

इ॒हैवाग्ने॒ ऽअधि॑ धारया र॒यिं मा त्वा॒ नि क्र॑न् पूर्व॒चितो॑ निका॒रिणः॑।
क्ष॒त्रम॑ग्ने सु॒यम॑मस्तु॒ तुभ्य॑मुपस॒त्ता व॑र्द्धतां ते॒ ऽअनि॑ष्टृतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे राजन् ! तू (इह एव) यहां ही इस राष्ट्र में, या पद पर (रयिम्) धन ऐश्वर्य को (अधि धारय) धारण कर। और (पूर्वचितः) तेरे पूर्व परिचित जन (निकारिणः) तेरा अपमान करने में समर्थ पुरुष भी (त्वा मा निक्रन्) तेरा निरादर न करें। अथवा—(पूर्वचितः) पूर्व ही प्राप्त अधिक विज्ञानवान् पुरुष और (कारिणः) निरन्त कर्मशील, उद्योगी जन (त्वा मा नि क्रन्) तुझे नीचे न गिरादें, तुझे राजसिंहासन से न उतार दें। (तुभ्यम्) तेरी रक्षा के लिये तेरा (क्षत्रम्) वीर्य और क्षात्रबल (सुयमम्) उत्तम प्रबन्ध में व्यवस्थित (अस्तु) हो। (ते उपसत्ता) तेरे समीप बैठा हुआ मन्त्री, आदि आश्रित प्रजाजन भी (अनिस्तृतः) किसी प्रकार क्षति को प्राप्त न होकर, सुरक्षित रह कर (वर्धताम्) सदा वृद्धि को प्राप्त हो।

क्षत्रेणाग्ने स्वायुः सꣳरभस्व मित्रेणाग्ने मित्रधेये यतस्व।
सजातानां मध्यमस्था ऽएधि राज्ञामग्ने विहव्यो दीदिहीह ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! राजन् ! तू (क्षत्रेण) क्षात्रबल, क्षत अर्थात् त्रुटि के पूर्ण करने वाले, धन और प्रजा को क्षय होने से बचाने वाले राज्य से (सु-आयुः, स्व-आयुः) अपने उत्तम आयु को (संरभस्व) प्राप्त कर, अपने जीवन को सुरक्षित रख। हे अग्ने ! राजन् ! (मित्रेण) अपने स्नेही, मित्र राजा और धार्मिक विद्वान् पुरुषों से (मित्रधेये) मित्रता के बनाये रखने का (यतस्व) यत्न कर। और (सजातानाम्) कुल, शील, राज्य और ऐश्वर्य और पद में समान प्रतिष्ठा वाले पुरुषों के बीच में (मध्यमस्थाः) मध्यम राजा के रूप में सबको बल तोलने में समर्थ होकर (एधि) रह। हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! तू (राज्ञाम्) राजाओं के बीच में (विहव्यः) विशेष आदर से स्तुति योग्य और विशेष आदर से बुलाये जाने योग्य होकर (इह) इस राष्ट्र में (दीदिहि) प्रदीप्त, तेजस्वी होकर चमक।

अति॒ निहो॑ऽ अति॒ स्रिधो॒ऽत्यचि॑त्ति॒मत्यरा॑ति॒मग्ने ।
विश्वा॒ ह्य॑ग्ने दुरि॒ता सह॒स्वाथा॒स्मभ्य॑ᳫं स॒हवी॑रा॑ᳫं र॒यिं दा॑ः ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! तेजस्विन् ! विद्वन् ! राजन् ! तू (निहः अति) प्रजाके घातकों को दवा कर, (स्रिधः अति) निन्दित आचार व्यवहार वालों को दवाकर, (अचित्तिम्) अज्ञानी और मूर्ख या हृदय-हीन को दवा कर और (अरातिम्) अदानशील शत्रु को दवा कर (विश्वा दुरिता) समस्त प्रकार के दुष्ट आचरणों को (सहस्व) विनष्ट कर। (अथ) और (अस्मभ्यम्) हमें (सहवीराम्) वीर पुत्रों और वीर सैनिकों सहित (रयिम्) राष्ट्र और ऐश्वर्य का (दाः) प्रदान कर।

अ॒ना॒धृ॒ष्यो जा॒तवे॑दा॒ऽअनि॑ष्टृतो वि॒राड॑ग्ने क्षत्र॒भृद्दी॑दिही॒ह ।
विश्वा॒ऽआशा॑ः प्रमु॒ञ्चन्मानु॑षीर्भि॒यः शि॒वेभि॑र॒द्य परि॑ पाहि नो वृ॒धे ॥७॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! राजन् ! सभापते ! तू (अनाधृष्यः) दूसरे से कभी अपमान करने एवं पराजय करने योग्य न हो। तू (जातवेदाः) विद्यावान् ऐश्वर्यवान्, (अनिस्तृतः) अहिंसित, (विराट्) विशेषरूप से तेजस्वी, (क्षत्रभृत्) क्षात्र-बल को पालन और धारण करने हारा होकर (इह) इस राष्ट्र में (दीदिहि) हमें प्रेम कर या प्रकाशमान होकर रह। और (मानुषीः भियः) समस्त प्रकार के मनुष्यों को या मनुष्यों से होने वाले भयों को (प्र मुञ्चन्) छोड़ कर और अन्यों को भी भय से मुक्त करता हुआ (नः) हमारी (विश्वाः आशाः) सब आशाओं, मनोरथों को और दिशाओं को और उनमें रहने वाली प्रजाओं को (अद्य) अब, निरन्तर (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (परिपाहि) पालन कर।

बृह॑स्पते सवितर्बो॒धयै॑न॒ᳫं सᳫं शि॑तं चित्स॒न्त॒राᳫं सᳫं शि॑शाधि ।
व॒र्धयै॑नं मह॒ते सौभ॑गाय॒ विश्व॑ऽएन॒मनु॑ मदन्तु दे॒वाः ॥ ८ ॥

भा०—हे (बृहस्पते) बड़े लोकों के पालक, बड़े राज्यों और राजकार्यों के पालक, अधिष्ठातः ! बृहस्पते ! विद्वन् ! हे (सवितः) सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् ! आचार्य ! तू (एनं) इस अपने अधीन प्रजाजन और शिष्य को (संशितम्) और अच्छी प्रकार तप, और विद्या-अभ्यास द्वारा तीक्ष्ण, बुद्धिमान् करके (संबोधय) अच्छी प्रकार ज्ञानवान् कर। (संतराम् सं शिशाधि) अच्छी प्रकार इसका शासन कर और उपदेश कर। (एनं) उसको (महते सौभगाय) बड़े भारी सौभाग्य, उत्तम लक्षण, चरित्र और ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (वर्धय) बढ़ा। (एनम् अनु) इसको देखकर इसके पीछे २ (देवाः) समस्त विद्वान् पुरुष और उसको चाहनेवाले प्रेमी तथा विजयेच्छुजन भी (अनु मदन्तु) आनन्द प्रसन्न हों।

अमुत्र भूयादध यद्यमस्य बृहस्पते ऽअभिशस्तेरमुञ्चः।
प्रत्यौहतामश्विना मृत्युमस्माद्देवानामग्ने भिषजा शचीभिः॥ ९॥

भा०—हे (बृहस्पते) बृहत् राष्ट्र के पालक ! और विद्वन् ! (यत्) जो (यमस्य) राष्ट्र के नियन्ता राजा को (अमुत्र भूयात्) अमुक, दूसरे देश में होने वाले (अभिशस्तेः) अपराध, अपवाद, लोक निन्दा से और (अध) और (यत्) भी जो अयुक्त बात हो उससे उसको (अमुञ्चः) छुड़ा। हे (अग्ने) राजन् ! (अश्विना) विद्या में पारंगत 'अश्वी' नामक अधिकारीजन (देवानां भिषजा) विद्वान् पुरुषों में वैद्यों के समान सब राज्यगत दोषों के उपाय करने में कुशल होकर (शचीभिः) अपनी शक्तिशाली सेनाओं से (अस्मा) इस राष्ट्र में (मृत्युम्) मृत्यु या मारनेवाले दुष्ट जन को (प्रति औहताम्) यत्नपूर्वक दूर करें।

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १०॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २०। २१॥

ऊर्ध्वा ऽअस्य समिधो भवन्त्यूर्ध्वा शुक्रा शोचीँष्युग्नेः।
द्युमत्तमा सुप्रतीकस्य सूनोः ॥ ११ ॥

[११—१२] द्वादश आप्रियः । प्रजापतिरग्निर्देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(अस्य) इस (अग्नेः) अग्नि के जिस प्रकार ऊपर जलते हुए काष्ठ उज्ज्वल, तेजवान् होते हैं उसी प्रकार (समिधः) प्रकाशक, उत्तम ज्ञान से उसकी बुद्धि को चमकाने वाले जन भी (ऊर्ध्वाः भवन्ति) उच्चपद पर विराजमान होते हैं। और उस अग्नि रूप प्रजापालक परमेश्वर और राजा के (शुक्राः) शुद्ध करने वाले (शोचींषि) तेज भी (ऊर्ध्वाः) सबके ऊपर विद्यमान् होते हैं। (सुप्रतीकस्य) सुन्दर उज्ज्वल मुख वाले, उत्तम ज्ञानवान् (सूनोः) पुत्र और शिष्य के समान सौम्य स्वभाव वाले, अथवा सबके प्रेरक आदित्य के समान तेजस्वी ईश्वर और राजा के तेज (द्युमत्तमानि) अति ऐश्वर्य-वान् अति उज्ज्वल हों।

तनूनपादसुरो विश्ववेदा देवो देवेषु देवः।
पथो अनक्तु मध्वा घृतेन ॥ १२ ॥

भा०—(तनूनपात्) शरीरों को न गिरने देने वाला, (असुरः) प्राणों में रमण करने वाला, (देवः) शक्ति देने और ज्ञान के देखने वाला जीव (देवेषु देवः) श्रोत्र आदि पदार्थ द्रष्टा उपकरणों में (देवः) सबका अध्यक्ष है वह (मध्वा) ज्ञान से (घृतेन) और प्रकाश से (पथः) अपने जीवन के मार्गों को (अनक्तु) प्रकाशित करे।

वायु के पक्ष में—शरीरों को न गिरने देने वाला (असुरः) बलवान् (देवः) दिव्य गुणवाला सर्वत्र व्यापक, (देवेषु देवः) अग्नि आदि पदार्थों को शक्ति देने वाला, (मध्वा) मधुर (घृतेन) जल से (पथः) मार्गों को (अनक्तु) सींचे, वृष्टि करे।

राजा के पक्ष में—विस्तृत राष्ट्र का पालक, (विश्ववेदाः) समस्त ऐश्वर्य वाला, (असुरः) बलवान्, ऐश्वर्यवान्, (देवेषु देवः) दानशीलों में सब से अधिक दानशील, (देवः) सबका द्रष्टा, (मध्वा घृतेन) मधुर आकर्षण और तेज से, सौम्यता और प्रखरता दोनों से (पथः) प्रजा के व्यवस्थापक मार्गों, राजनियमों को (अनक्तु) प्रकाशित करे।

परमेश्वर के पक्ष में—सब शरीरों का रक्षक होने से 'तनूनपात्' है, सर्वज्ञ होने से 'विश्ववेदा', सब सूर्यादि का प्रकाशक होने से 'देवों का देव', सर्वप्रद होने से 'देव' और सबके प्राणों का और ऐश्वर्यों का दाता होने से [वसु-र] 'असुर' है। वह (मध्वा) मधुर आनन्द से और (घृतेन) प्रकाशमय ज्ञान से हमारे जीवन के समस्त ऐहिक और पारलौकिक मार्गों को वेदोपदेश द्वारा प्रकाशित करे।

मध्वा यज्ञं नक्षसे प्रीणानो नराशꣳसोऽअग्ने।
सुकृद्देवः सविता विश्ववारः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! राजन् ! तू (यज्ञम्) परस्पर के आदान प्रतिदान व्यवहार और प्रजा-पालन-रूप यज्ञ को, (मध्वा) मधुर चित्ताकर्षक वचन से, या सुन्दर, मधुर रूप से (नक्षसे) व्याप्त है। यदि राजा की व्यवस्था न हो तो प्रजा के परस्पर व्यवहार बड़े कर्कश और दुःखदायी हों, व्यवस्था होने से वे सौम्य होजाते हैं। तू (नराशंसः) विद्वानों का प्रशंसक और सर्व साधारण से स्तुति योग्य, या सबको शिक्षा देने हारा और (प्रीणानः) सबको तृप्त और प्रसन्न करने हारा हो। तू स्वयं (सुकृत्) शुभ कार्यों का करने वाला, (सविता) सबका प्रेरक और (विश्ववारः) सबको वरने या स्वीकारने वाला, सब से वरने योग्य, या सबका रक्षक एवं सब बुरे पदार्थों का वारण करने हारा हो।

अच्छायमेति शवसा घृतेनेडानो वह्निर्नमसा।

अ॒ग्निँ स्रुचो॑ अध्व॒रेषु॑ प्र॒यत्सु॑ ॥ १४ ॥

भा०—(अयम् वह्निः) यह राज्य-भार को वहन करने में समर्थ पुरुष, (शवसा) बल से, (घृतेन) तेज से और (नमसा) दुष्टों को नमाने या दमन करने वाले बल से (ईडानः) स्तुति योग्य होता हुआ (अच्छ एति) प्राप्त होता है। (अध्वरेषु प्रयत्सु) हिंसा रहित, प्रजा के पालन कार्यों के प्रारम्भ होजाने पर (स्रुचः) स्रुवे जिस प्रकार अग्नि को उद्दीप्त करते हैं उसी प्रकार (स्रुच्) दानशील प्रजाएं अपने अंशों से (अग्निम्) इस नायक को प्रदीप्त तेजस्वी और बलवान् करें।

स य॑क्षदस्य महि॒मान॑म॒ग्नेः सऽई॑ म॒न्द्रा सु॑प्र॒यसः॑ ।
वसु॒श्चेति॑ष्ठो वसु॒धात॑मश्च ॥ १५ ॥

भा०—जो (वसुः) प्रजाओं को वसानेहारा, (वसिष्ठः) सबसे अधिक ज्ञानवान्, (वसुधातमः) वसनेवाली प्रजाओं का धारण पोषण करनेवाला, सबको ऐश्वर्य देनेवाला है। वह (अस्य अग्नेः) इस अग्नि, अग्रणी नामक पद के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य को (यक्षत्) प्राप्त करें और (सः) वही (सुप्रयसः) उत्तम अन्नादि योग्य पदार्थों से सम्पन्न धनाढ्य पुरुष के (मन्द्रा) आनन्दप्रद सुखों को (ईम् यक्षत्) भी प्राप्त करे।

द्वारो॑ दे॒वीरन्व॑स्य॒ विश्वे॑ व्र॒ता द॑दन्ते अ॒ग्नेः ।
उ॒रु॒व्यच॑सो॒ धाम्ना॒ पत्य॑मानाः ॥ १६ ॥

भा०—(द्वारः) द्वार जिस प्रकार गृह के स्वामी को आने और जाने देते हैं और गृहस्वामी के ऐश्वर्य के अनुसार ही सजते हैं, उसी के इच्छानुसार खुलते और बंद होते हैं। और (देवीः) स्त्रियां जिस प्रकार गृहस्वामी के ऐश्वर्यानुसार सजती और उसी के आज्ञानुसार कार्य, धर्माचरण आदि करती हैं उसी प्रकार (अस्य) इस (अग्नेः) ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष के (अनु) अनुकूल, उसके पीछे, (देवीः द्वारः)

विजयशील शत्रु वारक सेनाएं और (विश्वे) समस्त पुरुष (व्रता) नाना सत्य भाषण आदि कर्मों को (दधन्ते) धारण करते हैं और (उरुव्यचसः) महान् व्यापक सामर्थ्य वाले इसके ही (धाम्ना) तेज, ऐश्वर्य से और पराक्रम या पद से वे स्वयं (पत्यमानाः) ऐश्वर्यवान्, समृद्ध हो जाते हैं।

ते ऽअ॒स्य॒ योष॑णे दि॒व्ये न योना॒ ऽउ॒षासा॒नक्ता॑ ।
इ॒मं य॒ज्ञम॑वताम॒ध्व॒रं नः ॥ १७ ॥

भा०—(ते) वे दोनों स्त्री और लक्ष्मी, वर की शोभा का आश्रय स्थान स्त्री और राज्यलक्ष्मी दोनों (उपासा नक्ता न) दिन और रात्रि के समान (दिव्ये योषणे) दिव्य, उत्तम गुणवती और दानशील दो स्त्रियां हैं। वे दोनों (नः इमं यज्ञम्) हमारे इस यज्ञ और राष्ट्र को (अध्वरम्) अविनष्ट रूप में (अवताम्) पालन करें।

'श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यावहोरात्रे' इत्यादि २८।···यजु०।

दैव्या॒ होता॑रा ऊ॒र्ध्वम॑ध्व॒रं नो॒ऽग्नेर्जि॒ह्वाम॒भि गृ॑णीतम् ।
कृ॒णु॒तं नः॒ स्वि॑ष्टिम् ॥ १८ ॥

भा०—(दैव्या होतारो) विद्वानों, आप्त प्रसिद्ध विद्या, कला कौशल की शिक्षा देने में कुशल (नः अध्वरम्) हमारे विनष्ट होनेवाले (ऊर्ध्वम्) सबके ऊपर विद्यमान् उन्नत 'यज्ञ' राज्यव्यवस्था का (अभिगृणीतम्) सब प्रकार से उपदेश करें। और वे दोनों (अग्नेः) ज्ञानवान्, अग्रणी नायक पुरुष की (जिह्वाम्) मुख, वाणी की अथवा (जिह्वाम्) वश-कारिणी व्यवस्था की शिक्षा दें। और (नः) हम प्रजाजनों को (सु-इष्टिम्) उत्तम फल देनेवाली व्यवस्था (कृणुतम्) करें।

ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॒दꣳ स॑द॒न्त्विडा॒ सर॑स्वती॒ भार॑ती ।
म॒ही गृ॑णा॒ना ॥ १९ ॥

भा०—(मही) बड़ी, उच्च गुणोंवाली, (देवीः) ज्ञान की प्रकाशक, (गृणाना) उत्तम उपायों का उपदेश देती हुई (इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती, और भारती, पृथ्वी, वाणी और तेज को धारण करने-वाली (तिस्रः) तीनों सभाएं (इदं बर्हिः) इस महान् प्रजा या राष्ट्र पर (आ सदन्तु) आकर विराजें, ये तीनों सभाएं शासन करें।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुक्षु त्वष्टा सुवीर्यम्।
रायस्पोषं वि ष्यतु नाभिमस्मे ॥ २० ॥

भा०—(त्वष्टा) अति दीप्तिमान्, अति शीघ्रता से सर्वत्र व्यापने-वाला, शीघ्रगामी। शिल्पज्ञ पुरुष (नः) हमें (तुरीपम्) वेग से पहुंचा देने और प्राप्त होनेवाले (अद्भुतम्) आश्चर्यकारक (पुरुक्षु) नाना प्रकार के पदार्थों में विविध प्रकार से विद्यमान (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य या बलयुक्त (रायस्पोषम्) धनैश्वर्य के पोषण करनेवाले ऐश्वर्य को (अस्मे नाभिम्) हमारे राष्ट्र के बीच में (वि ष्यतु) प्रदान करे।

वनस्पतेऽवसृजा रराणस्त्मना देवेषु।
अग्निर्हव्यꣳ शमिता सूदयाति ॥ २१ ॥

भा०—हे (वनस्पते) सेवन करने योग्य राष्ट्र के पालक! (शमिता) शान्तिदायक, राष्ट्र के उपद्रवों को शान्त करदेने में समर्थ, (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, सेनानायक (हव्यं) ग्रहण करने योग्य राष्ट्र आदि ऐश्वर्य को (सूदयाति) तुझे प्रदान करे। और तू (त्मना) स्वयं (देवेषु) विद्वान्, विजयशील पुरुषों के हाथों उसको (रराणः) प्रदान करता हुआ (अव सृज) उसको अपने अधीन रख।

अग्ने स्वाहा कृणुहि जातवेद इन्द्राय हव्यम्।
विश्वे देवा हविरिदं जुषन्ताम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! हे (जातवेदः) विद्याओं में कुशल पुरुष ! तू (स्वाहा) उत्तम उपदेशप्रद वाणी से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र या राष्ट्रपति के लिये (वृषम्) स्वीकार करने योग्य स्तुति एवं राष्ट्र पदाधिकार को (कृणुहि) कर। (इदं हविः) इस स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को (विश्वे देवाः) सभी विद्वान् शासकगण (जुषन्ताम्) प्राप्त करें।

पीवो॑ऽअन्ना रयि॒वृध॑: सुमे॒धाः श्वे॒तः सि॑षक्ति नि॒युता॑मभि॒श्रीः।
ते वा॒यवे॒ सम॑नसो॒ वि त॑स्थु॒र्विश्वेन्नर॑: स्वप॒त्यानि॑ चक्रुः ॥ २३ ॥

[२३—२४] वसिष्ठ ऋषिः। वायुर्देवता त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(नियुताम्) नियुक्त हुए शासकों को (अभि श्रीः) सब प्रकार से आश्रय करने योग्य, मुख्य, पुरुष (श्वेतः) उनकी वृद्धि करने वाला होकर (पीवः-अन्नाः) पुष्टिकर अन्नों को खानेवाले, (रयिवृधः) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले, (सुमेधाः) उत्तम बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुषों को (सिसक्ति) अपने साथ मिलाकर समवाय बना कर रहे। और (ते) वे (समनसः) सब एक समान चित्त होकर, (वायवे) अपने प्राण-स्वरूप वायु के समान जीवनप्रद नेता के लिये (वि तस्थुः) विविध कार्यों पर अधिष्ठाता या अध्यक्ष होकर विराजें। और (नरः) नेता लोग या सर्वसाधारण मनुष्य (विश्वा) सब अपने (सु-अपत्यानि) उत्तम २ सन्तानों को (चक्रुः) बनावें।

रा॒ये नु यं ज॒ज्ञतू॒ रोद॑सी॒मे रा॒ये दे॒वी धि॒षणा॑ धाति दे॒वम्।
अध॑ वा॒युं नि॒युत॑: सश्चत॒ स्वा उ॒त श्वे॒तं वसु॑धितिं निरे॒के ॥२४॥

भा०—(इमे रोदसी) पृथिवी और सूर्य के समान सम्बद्ध राजा और प्रजायें दोनों (यं) जिस मध्यस्थान अन्तरिक्ष में व्यापक वायु के समान दोनों के धारण पोषण करने में समर्थ पुरुष को (राये) ऐश्वर्य

की रक्षा के लिये (जज्ञतुः) प्रकट करते हैं। और (धिषणा) समस्त कर्म और विज्ञानों और अधिकारों को धारण करने वाली (देवी) स्त्री जिस प्रकार विद्वान् पतिको अपने पतिरूप से स्वीकार करती है उसी प्रकार यह राजसभा जिस (देवम्) विद्वान्, मार्गद्रष्टा पुरुष को (धाति) धारण करती या मुख्य पद पर स्थापित करती है। (अथ और जिस प्रकार (नियुतः) अश्वगण अपने 'वायु' अर्थात् प्रेरक सारथी को धारण करते हैं उसी प्रकार (नियुतः) नियुक्त हुए पदाधिकारी लोग जिस (वायुम्,) प्राण और जीवनवृत्ति के दाता अपने स्वामी को (स्वाः) अपने अपने बन्धु-जनों के समान (सश्चत) सेवन करते, उसका आश्रय लेते हैं (उत) और उस (श्वेतम्) परम वृद्ध, आदर योग्य पुरुष को (निरेके) निर्भय या बहुत से जनों से बसे स्थान में, या (निरेके) अक्षय कोश पर (वसुधितिम्) समस्त ऐश्वर्य की रक्षा करने वाला बना कर (सश्चत) स्थापित करते हैं और स्वयं उसकी रक्षा करते हैं।

अक्षयकोष के रक्षक राजा या खजानची को ' वायु ' पद प्रदान किया जाय।

आपो॑ ह॒ यद् बृ॑ह॒तीर्विश्व॒माय॒न् गर्भ॒न्दधा॑ना ज॒नय॑न्तीर॒ग्निम् ।
ततो॑ दे॒वाना॒ꣳ सम॑वर्त्त॒तासु॒रेकः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥२५॥

भा०—(यत्) जब (बृहतीः आपः) बड़ी भारी शक्तिशाली (आपः) प्रकृति की व्यापक तन्मात्राएं, अर्थात् सूक्ष्म कारणावयव (विश्वम्) अपने भीतर प्रवेश करने वाले परमेश्वर के सामर्थ्य को (गर्भम्) गर्भ रूप से (दधानाः) धारण करती हुई (अग्निम्) अग्नि, सूर्य आदि तेजस्तत्व को प्रकट कर रही होती हैं (ततः) तब भी (देवानाम्) सब दिव्य शक्तियों, पृथिवी आदि पदार्थों का (एकः) एक ही (असुः) प्राणस्वरूप सबको स्वतन्त्र रूप से गति देनेहारा प्रवर्त्तक होता है। (कस्मै) उस सर्वकर्त्ता

(देवाय) सबको गति देनेवाले, सर्व जगत् के प्रकाशक परमेश्वर का हम (हविषा) ज्ञान और स्तुति से (विधेम) प्रतिपादन करें ।

उसी प्रकार से राजा के पक्षमें—(बृहतीः) बड़ी भारी, बड़े सामर्थ्य वाली, वृद्धिशील, (आपः) जलों के समान राष्ट्र में व्यापक, आप्त प्रजाएं (यत्) जब, (विश्वम्) उनमें प्रविष्ट होनेवाले, व्यापक, बलवान् पुरुष को (आयन्) प्राप्त होती हैं और (गर्भम्) ग्रहण करनेहारे गर्भ को स्त्री के समान, राष्ट्रैश्वर्यवान् (अग्निम्)अग्रणी नेता को अपने बीचमें (जनयन्तीः) प्रकट कर रही होती हैं (ततः) तब वह (देवानां) समस्त विद्वान् शासकों का (एकः) एकमात्र (असुः) प्रवर्त्तक, इन्द्रियों के प्रवर्त्तक प्राण के समान होता है । (कस्मै) उस प्रजापालक, सर्वकर्त्ता (देवाय) राजा का हम (हविषा) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य आदि से (विधेम) आदर सत्कार करें ।

यश्चिद्रापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२६॥

[२५—२६] हिरण्यगर्भ ऋषिः । प्रजापति र्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यः चित्) और जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (दक्षं दधानाः) बल और क्रियावेग को धारण करती हुई (यज्ञं जनयन्तीः) सुसंगत, नियमबद्ध संसार को प्रकट करती हुई (आपः) प्रकृति की सूक्ष्म तन्मात्राओं को (परि अपश्यत्) साक्षात् देखता, उनपर साक्षी रूप से विद्यमान् रहता है । और (यः) जो (देवेषु) समस्त क्रीड़ाशील, एवं फलाकांक्षी जीवों पर, और पृथिव्यादि कान्तिमान् लोकों पर भी (एकः देवः) एक अकेला सबको प्रकाशक सुखदाता परमेश्वर (अधि आसीत्) अधिष्ठाता रूप से विद्यमान् है, (कस्मै) उस विश्व के कर्त्ता-सुखकारक प्रजापति परमेश्वर को हम (हविषा) ज्ञान और क्रियायोगसे (विधेम) परिचर्या करें ।

राजा के पक्षमें—(यः चित्) जो (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (दक्षं दधानाः) अपने ही बलका धारण करती हुईं, (यज्ञम्) राष्ट्र को और राष्ट्रपति को प्रकट करती हुईं (आपः) प्रजाओं को अध्यक्षरूप से (परि अपश्यत्) देखता है । और (यः देवेषु अधिदेवः एकः) जो एक अकेला ही सब विद्वानों और शासकों पर भी शासक है उसका हम अन्नादि से सत्कार करें ।

प्र याभिर्यासि दाश्वाᳬं सुमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिᳬं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥२७॥

भा०—हे (वायो) सब के प्राण के समान जीवनाधार वायु ! अधिकारिन् ! तू (याभिः) जिन (नियुद्भिः) नियुक्त पुरुषों के साथ या जिन सेवाओं के साथ (दाश्वांसम्) दानशील राष्ट्र के प्रति (दुरोणे) अपने आश्रय स्थान, गृह में (इष्टये) इष्टि अर्थात् योग्य कार्य सम्पादन करने के लिये (प्रयाति) प्रयाण करता है (अच्छ) वह ठीक ही है । (नः) हमें (सुभोजसं) उत्तम अन्नादि भोग्य पदार्थों से युक्त या उत्तम रक्षावाले (रयिम्) ऐश्वर्य को (नि युवस्व) निरन्तर प्रदान कर । और (वीरं) वीरें, (गव्यम्) गौओं और (अश्व्यम्) अश्वों से युक्त (राधः) धन का भी (नियुवस्व) प्रदान कर ।

'नियुत्' शब्द उभयलिङ्गः, इति उवटः ॥

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरᳬं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२८॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान प्राणरक्षक ! वायु के समान प्रचण्डता से शत्रुओं के उखाड़ देने हारे वीर ! सेनापते ! तू (शतिनीभिः) सैकड़ों पुरुषों से बनी और (सहस्रिणीभिः) हज़ारों से बनी (नियुद्भिः) शत्रुओं को छिन्न-भिन्न करनेहारी सेनाओं के साथ (नः)

हमारे (अध्वरम्) रक्षा करने योग्य (यज्ञम्) प्रजापति, सबके व्यवस्थापक, राष्ट्रपति को (उपयाहि) प्राप्त हो । तू (अस्मिन् सवने) उस राज्याभिषेक काल में (सादयस्व) सबको प्रसन्न कर । (यूयम्) आप सब लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी उपायों से (नः) हमारी (सदा) सदा काल (पात) रक्षा करो ।

नियुत्वान् वायवागह्ययꣳ शुक्रो ऽअयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥ २९ ॥

गृत्समद ऋषिः । वायुर्देवता । गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे (वायो) ! ज्ञानवन् ! बलवन् ! सेनापते ! तू (नियुत्वान्) सेनाओं का नियन्ता होकर (आ गहि) आ, प्राप्त हो । (अयं) यह मैं (शुक्रः) शुद्ध, ज्योतिष्मान्, तेजस्वी होकर (ते) तेरे पास (अयामि) प्राप्त होता हूं । तू भी (सुन्वतः) अभिषवन या आभिषेक करनेहारे के (गृहम्) गृह अर्थात् ग्रहण करनेहारे सामर्थ्य या अधीनता को (गन्तासि) प्राप्त हो ।

वायो शुक्रो ऽअयामि ते मध्वो ऽअग्रं दिविष्टिषु ।
आ याहि सोमपीतये स्पार्हो देव नियुत्वता ॥ ३० ॥

पुरुमीढाजमीढौ ऋषी ॥ वायुर्देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवन्, सर्व प्राणाधार ! मैं (शुक्रः) शुद्ध तेजस्वी होकर (दिविष्टिषु) ज्ञान प्राप्त करानेवाला विद्वत्सभाओं में (ते) तेरे (मध्वः अग्रं) मधु, मधुर ज्ञान के (अग्रम्) उत्तम सार भाग को (अयामि) प्राप्त होऊँ । हे (देव) राजन् ! तू (सोमपीतये) सोम अर्थात् राष्ट्र के ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (स्पार्हः) अति स्पृहा, इच्छा या प्रेमवाला होकर (नियुत्वता) नियुक्त, शत्रु उच्छेदन में समर्थ सेनावाले सेनापति के सहित (आ याहि) आ ।

वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ ३१ ॥

भा०—तू (अग्रेगाः) सबके आगे चलनेहारा, अग्रणी और (शिवः) कल्याणकारी होकर (यज्ञप्रीः) राष्ट्र को प्रसन्न अनुरञ्जित करके स्वयं (वायुः) वायु के समान बलवान् होकर (मनसा) अपने चित्त से (शिवाभिः नियुद्भिः साकम्) कल्याणकारिणी, नियुक्त सेनाओं या शक्तियों और नियुक्त पुरुषों सहित (यज्ञम् आ गहि) तू यज्ञ अर्थात् व्यवस्थित राष्ट्र या राष्ट्रपति के माननीय पद को प्राप्त हो ।

वायो ये ते सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥ ३२ ॥

गायत्री षड्जः ॥

भा०—हे (वायो) वायु के समान बलवान् सेनापते ! (ये) जो (ते) तेरे (सहस्रिणः) सहस्रों पुरुषों से अधिष्ठित (रथासः) रथ, या रमणकारी साधन हैं (तेभिः) उनसे (नियुत्वान्) तू विशेष शक्तिशाली और सेना-सम्पन्न होकर (सोमपीतये , सोम अर्थात् राष्ट्रैश्वर्य के पालन और भोग के लिये (आ, गहि) आ, प्राप्त हो ।

एकया च दशभिश्च स्वभूते द्वाभ्यामिष्टये विंशती च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च नियुद्भिर्वायविह ता विमुञ्च ॥३३॥

त्रिष्टुप् धैवतः ॥

भा०—हे (वायो) वायो ! ऐश्वर्यवन् ! हे (स्वभूते) स्वयं ऐश्वर्यवन् ! तू (एकया दशभिः च) दस दस की एक (द्वाभ्याम् विंशती= विंशत्या च) या बीस २ की दो और (तिसृभिः त्रिंशता च) तीस २ की तीन, (नियुद्भिः) सभाओं और सेनाओं से (इष्टये) इष्ट लाभ के लिये

(ता) उन नाना अधिकारियों या अंगों को (वहसे) धारण करता है तू (वियुञ्ज) उनको विविध कार्यों में नियुक्त कर।

परमेश्वर के पक्ष में—हे (स्वभूते) जगत् रूप अपनी ही विभूति से युक्त अथवा हे राजन् ! तू ११ से, २२ से और ३३ से राष्ट्र एवं जगत् के नाना कार्यों को धारण करता है। उनको विविध कार्यों में लगा।

तव॑ वायवृतस्पते त्वष्टु॒र्जामातरद्भुत। अवा॒ᳪस्या वृ॑णीमहे ॥३४॥

भा०—हे (ऋतस्पते) सत्यपालक ! जगत्पालक ! ज्ञानपालक ! सत्य राष्ट्रपालक ! (वायो) बलवन् ! हे (त्वष्टुः) तेजस्वी राजा के (जामातः) जवाई के समान उसको स्वयं उत्पादित सेना के पते ! हे (अद्भुत) आश्चर्य कर्मकारक ! अभूतपूर्व बलशालिन् ! हम तेरे (अवांसि) रक्षा-संधनों को (आवृणीमहे) सब प्रकार से वरण करते हैं, चाहते हैं।

अ॒भि त्वा॑ शूर नोनुमोऽदुग्धाऽइव धेनवः।
ईशा॑नम॒स्य जग॑तः स्व॒र्दृश॒मीशा॑नमिन्द्र त॒स्थुषः॑ ॥ ३५ ॥

वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती।

भा०—हे शूरवीर पुरुष ! हे परमेश्वर ! हे स्वामिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! तुझे हम साक्षात् स्तुति करते हैं और तेरे लिये हम (अदुग्धाः धेनवः इव) विना दुही गायें जैसे अपने बछड़ों को दूध पिलाने के लिये सदा नमती हैं उसी प्रकार हम तेरे आगे (नोनुमः) नमते हैं। तू हमारा सारभूत ऐश्वर्य प्राप्त कर। और (अस्य जगतः) इस चराचर जगत् के (ईशानम्) ईश्वर, स्वामी और इस (तस्थुषः ईशानम्) स्थावर संसार के स्वामी (स्वर्दृशम्) आदित्य के समान दर्शनीय, तेजस्वी एवं सुखस्वरूप (त्वाम् नोनुमः) तेरी हम स्तुति करते हैं।

न त्वावाँ२ऽ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥ ३८ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । सतो बृहती । मध्यमः ।

भा०—हे (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वावान्) तेरे जैसा (अन्यः) और कोई (दिव्यः न) द्यौलोक में सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ नहीं है । और (न पार्थिवः त्वावान् अन्यः) पृथिवी के पदार्थों में भी तेरे जैसा कोई और नहीं है । (न जातः) न अभी तक पैदा हुआ है और (न जनिष्यते) न पैदा होगा । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (इन्द्र) साक्षात् दर्शनीय ! परमेश्वर ! हम (वाजिनः) ज्ञानवान्, अन्नवान् और ऐश्वर्यवान् होकर (अश्वायन्तः) अश्व और (गव्यन्तः) गौओं के समान कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों की विशेष कामना करते हुए या उन पर वश करते हुए (त्वा हवामहे) तेरी स्तुति करते हैं ।

राजा के पक्ष में—(न त्वावान् अन्यः दिव्यः) तेरे जैसा उत्तम गुणवान्, तेजस्वी कोई न राजसभा में, (न पार्थिवः) न पृथिवी में कोई (न जातो न जनिष्यते) न पैदा हुआ है, न आगे पैदा होगा । हम (वाजिनः) ऐश्वर्यवान् होकर भी (गव्यन्तः अश्वायन्तः त्वा हवामहे) गौओं और घोड़ों की इच्छा करते हुए तेरी शरण आते, तुझे राजा स्वीकार करते हैं ।

त्वामिद्धि हवामहे सातौ वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्वर्वतः ॥ ३९ ॥

ऋ० ६ । ४६ । १ ॥

शंयुर्ऋषिः । निचृदनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्विन्, राजन् ! (कारवः) उत्तम कर्मों और शिल्पों को करनेवाले विद्वान् पुरुष (वाजस्य सातौ) ऐश्वर्य और अन्न की प्राप्ति के लिये (वृत्रेषु) विघ्नकारियों के उपस्थित हो

जाने पर मेघों में सूर्य के समान (सत्पतिम्) सज्जनों के प्रतिपालक (त्वाम् इत् हि) तुझको ही हम उसी प्रकार (हवामहे) स्मरण करते हैं, बुलाते हैं जिस प्रकार (नरः) लोग (काष्ठासु) दूर की सीमाओं और दिशाओं को पार करने के लिये (अर्वतः) अश्व को याद करते हैं।

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो ऽअद्रिवः।
गामश्वꣳ रथ्यमिन्द्र संकिर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥ ३८ ॥
ऋ० ६ । ४६ । २ ॥

स्वराड् बृहती । निषादः ॥

भा०—हे (वज्रहस्त) खड्गहस्त ! शत्रुवारक शस्त्रास्त्र युक्त सेनाओं के वशकारिन् ! (अद्रिवः) प्रस्तर सेवने शस्त्रों वाले, अथवा अभेद्य शिला के समान दुर्गवाले ! हे (चित्र) आश्चर्य कर्म करनेहारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! (सः त्वं) वह तू (धृष्णुया) शत्रुओं को धर्षण करने वाले सामर्थ्य और (महः) महान् बलवान् (स्तवानः) स्तुति किया जाकर (गाम्) गौ और (रथ्यम्, अश्वम्) रथ में लगने योग्य अश्व और (जिग्युषे) विजयशील पुरुष (सत्रा) रक्षाकारी (वाजम्) विज्ञान और ऐश्वर्य (न) भी (संकिर) प्रदान कर।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ३९ ॥ ऋ० ४ । ३१ । १ ॥

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (चित्र) अद्भुत कर्म करनेहारे वीर पुरुष ! तू (सदावृधः सखा) सदा बढ़ाने हारे पुरुष का मित्र है। तू (कया ऊती) किस रक्षण सामर्थ्य से और (कया) किस (वृता) सदा विद्यमान् (शचिष्ठया) अतिशक्ति शाली रक्षा से (नः) हमारा (सदावृधः) सदा वृद्धिशील (सखा) मित्र (आभुवत्) बना रह सकता है। अथवा—(कया) सुख देनेहारी,

अतिशक्ति मती (वृता) व्यवहार शैली और (ऊती) रक्षा द्वारा तू हमारा सदा वृद्धिशील मित्र बना रहता है।

कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ४० ॥ ऋ० ४ । ३१ । २ ॥

निचृद् गायत्री । षड्जः । इन्द्रो देवता । वामदेव ऋषिः ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! (मदानां) हर्षजनक पदार्थों में से (मंहिष्ठः) सब से उत्तम (अन्धसः) भोग योग्य राष्ट्र का (कः) कौन-सा विशेष अंश या स्वरूप (त्वा मत्सत्) तुझे सब से अधिक सुखी और हर्षयुक्त करता है। जिससे (दृढा चित्) दृढ़ (वसु) वास योग्य पुरों को भी (आरुजे) तोड़ने को समर्थ करता है, वही अंश तुझे प्राप्त हो।

अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम्।
शतं भवास्यूतये ॥ ४१ ॥ ऋ० ४ । ३१ । ३ ॥

भा०—हे इन्द्र राजन् ! तू (अभि) साक्षात् (नः) हम (सखीनाम्) मित्रों और (जरितॄणाम्) स्तुति और उपदेश करनेहारे विद्वान् पुरुषों का (सु-अविता) उत्तम रक्षक है। और (ऊतये) रक्षा करने के लिये भी तू (शतं) सैकड़ों प्रकार से समर्थ (भवासि) हो जाता है।

यज्ञायज्ञा वो ऽअग्नये गिरागिरा च दक्षसे।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शꣳसिषम् ॥ ४२ ॥
ऋ० ६ । ४८ । १ ॥

बृहती । मध्यमः । शंयुर्ऋषिः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यज्ञे यज्ञे) प्रत्येक यज्ञ, संग्राम और सभा में और (गिरा गिरा च) प्रत्येक वाणी से (दक्षसे) बलवान्, बुद्धिमान्, (अग्नये) ज्ञानी, परमेश्वर और विद्वान् अग्रणी नायक राजा को (वयम्) हम लोग (अमृतम्) अविनाशी, नित्य (जातवेदसम्) ज्ञानवान्,

ऐश्वर्यवान्, (प्रियम् मित्रं न) प्रिय मित्र के समान (प्र प्र शंसिषम्) प्रशंसा करें ।

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जां पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ४३ ॥

ऋ० ८ । ४६ । ६ ॥

गर्ग ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक, ज्ञानी विद्वन् ! (नः) हमें (एकया) एक शिक्षा से (पाहि) पालन कर । (उत) और (द्वितीयया) दूसरी अध्यापन क्रिया से भी (पाहि) पालन कर (तिसृभिः गीर्भिः) तीन वाणियों से भी (पाहि) पालन कर । (ऊर्जां पते) सब अन्नों, बलों और पराक्रमों के पालक ! (वसो) सबको बसानेहारे ! तू (चतसृभिः) हमें चारों वाणियों से (पाहि) रक्षा कर । (एकया) ऋग्वेदरूप प्रथम वाणी (द्वितीयया) दो ऋक् और यजुर्वेद स्वरूप, (तिसृभिः) तीन ऋग्, यजुः, साम और (चतसृभिः) चारों ऋग्, यजुः, साम और अथर्व से हमारी रक्षा कर ।

अथवा—साम 'दान' भेद और दण्ड इन चारों उपायों से, चारों प्रकार की आज्ञाओं से हमारा पालन कर । मित्रों में साम, लोभियों में दान, शत्रुओं में भेद और दुष्टों पर दण्ड वाणी का प्रयोग कर के राष्ट्र की रक्षा कर ।

ऊर्जो नपातꣳ स हि नायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥ ४४ ॥

ऋ० ६ । ४८ । २ ॥

अग्निर्देवता । स्वराड् बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (सः) वह तू (ऊर्जः नपातम्) बल पराक्रम को कभी नष्ट न होने देनेवाले, सदा बलवान् सुसज्ज पुरुष को सदा (हिन) बढ़ा, उन्नत पद पर स्थापित कर। (अयम्) वह (अस्मयुः) हमारी ही उन्नति चाहने वाला हो। और उसके (हव्यदातये) ग्राह्य पदार्थों के देनेवाले, या स्तुति योग्य दानशील या उपदेश करने वाले अन्नादि दान के योग्य पदार्थ को (दाशेम) अन्नादि पदार्थ प्रदान करें। वह (वाजेषु) संग्रामों में (अविता) रक्षक हो और वही (वृधे) वृद्धि के लिये हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (त्राता) रक्षक (भुवत्) हो।

सं॒व॒त्स॒रो᳖ऽसि परिवत्स॒रो᳖ऽसीदावत्स॒रो᳖ऽसीद्वत्स॒रो᳖ऽसि वत्स॒रो᳖ऽसि। उ॒षस॑स्ते कल्पन्तामहोरा॒त्रास्ते॑ कल्पन्तामर्द्धमा॒सास्ते॑ कल्पन्तां मासा॑स्ते कल्पन्तामृ॒तव॑स्ते कल्पन्ताᳬ संवत्स॒रस्ते॑ कल्पताम्। प्रेत्या॒ ऽएत्यै॒ सं चाञ्च॒ प्र च॑ सारय। सु॒प॒र्ण॒चिद॑सि॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वः सी॑द ॥ ४५ ॥

अग्निर्देवता। निचृदतिकृतिः। ऋषभः॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान तेजस्विन् ! सूर्य जिस प्रकार पांच वर्ष वाले युग में संवत्सर, परिवत्सर, इदावत्सर, इद्वत्सर और वत्सर इन पंचरूपों में परिवर्तित होता है इसी प्रकार तू भी (संवत्सरः असि) तेरे संग समस्त प्राणी आकर बसते हैं, तुझे प्रेम से सब अभिवादन करते और स्तुति करते हैं इसलिये तू 'संवत्सर' है। (परिवत्सरः असि) चारों ओर घेर कर तेरे इर्दगिर्द तेरी शरण में लोग आबसते हैं, चारों ओर तू स्तुति और अभिवादन किया जाता है, इसलिये तू 'परिवत्सर' है। (इदावत्सरः असि) अन्न के द्वारा तू सबको बसाता है, इससे तू 'इदावत्सर' है। (इद्वत्सरः असि) तू इस लोक को बसाता है इससे, अथवा जल आदि से तू लोकों का पालन करता है इससे तू 'इद्वत्सर' है। (वत्सरः असि) तू

पुत्रों के समान सब को आनन्द प्रसन्न रखता है, उनको ऐश्वर्य प्रदान करता है इससे तू 'वत्सर' है। इस प्रकार राजा को संवत्सर प्रजापति के समान तुलना करके अब उसके अंगों की तुलना भी करते हैं। (ते उषसः कल्पन्ताम्) वर्ष की जिस प्रकार ३६५ उषाएं होती हैं इसी प्रकार तेरी उषाएं, अर्थात् दुष्टों के दमन और राष्ट्र के व्यवहार प्रकाशक कार्य को समृद्ध करनेवाली शक्तियां नित्य बढ़ें। (अहोरात्राः ते कल्पन्ताम्) वर्ष के दिनों और रातों के समान तेरे राज्य में स्त्री पुरुषों की वृद्धि हो। (अर्ध मासाः ते कल्पन्ताम्) अर्ध मासों के समान तेरे राज्य में अह्लादकारी, समृद्ध विद्वानों की वृद्धि हो। (मासाः ते कल्पताम्) वर्ष के मासों के समान तेरे राज्य में आदित्य के समान तेजस्वी विद्वान् बढ़ें। (ऋतवः ते कल्पन्ताम्) ऋतुओं के समान तेरे राष्ट्र में राजसभा के सदस्यों की वृद्धि हो। (संवत्सरः ते कल्पताम् ; तेरा पूर्ण संवत्सर स्वरूप प्रजापति पद उन्नति को प्राप्त हो। (प्र इत्य) आगे बढ़कर और (आ इत्य च) पुनः लौट २ कर तू (सम् अञ्च) अपनी शक्तियों को अच्छी प्रकार प्राप्त कर और (प्रसारय च) आगे भी बढ़ा। तू (सुपर्णचित् असि) आदित्य के समान उत्तम पालन करनेवाले साधनों से युक्त, एवं उत्तम पुष्टिकारी पदार्थों का संग्रह करने वाला है। अथवा—सुपर्ण, उत्तम बलवान् पक्षी जिस प्रकार आकाशमार्ग को भली प्रकार तय करने के लिये अपने पंखों को संकोच करता और फैलाता है और सुन्दर, सुखदायी किरणों वाला सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों को नित्य नियम से फैलाता और संकुचित करता है उसी प्रकार हे अग्ने! राजन्! सेनापते! तू भी अपनी सेनाओं को (सम् अञ्च) संयुक्त कर, संकुचित कर और फिर (प्रसा रयच) फैला। इस प्रकार तू (सुपर्णचित्) गरुड़ पक्षी और सूर्य के समान है। अथवा प्राण जिस प्रकार (प्र इत्य आ इत्य च) एकबार बाहर जाता फिर लौटकर आता है (सम् अञ्च,

प्र सारय च) इसी प्रकार तू भी अपने राष्ट्र से एकबार विदेश में प्रयाण कर एकबार पुनः अपने देश में आकर (समूअञ्च) धन को संग्रह कर और उसको राष्ट्र में विस्तारित कर। इस प्रकार शरीर में प्राण के समान राष्ट्र के बीच में तू राष्ट्र का प्राण, जीवन होकर उसको चैतन्य किये रह। (तया देवतया) उस चित्स्वरूप शरीरधारिणी देवता, आत्मा के समान रूप से तू (अंगिरस्वत्) अंग २ में रस रूप होकर राष्ट्र के प्रत्येक भाग में बलरूप होकर (ध्रुवः) निश्चित, स्थिर होकर (सीद) विराज, सिंहासन पर बैठ।

॥ इति सप्तविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते

यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तविंशोऽध्यायः।

॥ अथाष्टाविंशोऽध्यायः ॥

प्रजापत्यश्विसरस्वत्य ऋषयः ।

॥ ओ३म् ॥ होता यक्षत्समिधेन्द्रमिडस्पदे नाभा पृथिव्या अधि । दिवो वर्ष्मन्त्समिध्यत ऽओजिष्ठश्चर्षणीसहां वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १ ॥ ऋग्वेद परिशिष्टे ॥

बृहदुक्थो वामदेव्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(होता) आहुति प्रदान करने वाला पुरुष 'होता' जिस प्रकार (समिधा) समित् अर्थात् काष्ठ से यज्ञ करता है उसी प्रकार (इडस्पदे) पृथिवी के सर्वोच्च मान, आदर प्रतिष्ठा के पद अर्थात् केन्द्र स्थान पर (समिधा) अच्छी प्रकार चमकने वाले तेज से (इन्द्रम्) शत्रुओं के नाशक और ऐश्वर्य के वर्धक वीर पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे । (पृथिव्याः नाभौ) पृथिवी की नाभि अर्थात् राष्ट्र में (अधि) अधिष्ठाता होकर (दिवःवर्ष्मन्) आकाश से सुखों की वर्षा करने वाले मेघ के समान प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले पद पर (चर्षणीसहाम्) समस्त मनुष्यों को अपने पराक्रम से वश करने वालों में (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, तेजस्वी पुरुष ही (समिध्यते) सब से अधिक प्रकाशित होता है । वही (आज्यस्य) विजयलक्ष्मी, ऐश्वर्य का (वेतु) भोग करे । हे (होतः) अधिकार प्रदान करने में समर्थ विद्वन्! तू (यज) ऐसे पुरुष को ही अधिकार प्रदान कर । देखो अ० २१ । २९ ॥

होता यक्षत्तनूनपातमूतिभिर्जेतारमपराजितम् । इन्द्रं देवꣳस्वर्विदं पथिभिर्मधुमत्तमैर्नराशꣳसेन तेजसा वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २ ॥

तनूनपादिन्द्रो देवता । निचृज्जगती । निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकारों को प्रदान करने हारा विद्वान् 'होता' (तनूनपातम्) समस्त राष्ट्रवासियों के शरीरों की रक्षा करने हारे, उनको क्षति न पहुंचाने वाले (अपराजितं) कभी भी न हारे हुए, (जेतारम्) विजेता, (स्वर्विदम्) सुख समृद्धि का लाभ करने और कराने वाले, (देवम्) विद्वान्, दानशील, राष्ट्र के द्रष्टा पुरुप को (इन्द्रम्) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् पद पर (यक्षत्) संगत करे, स्थापित करे, उसको यह पद प्रदान करे। वह (मधुमत्तमैः) अत्यन्त मधु, ज्ञान और मनोहर चित्ताकर्षक, मधुर (पथिभिः) उपायों, मार्गों और व्यवस्था-मर्यादाओं से (नाराशंसेन तेजसा) समस्त नेता पुरुषों को आदेश करने में समर्थ, एवं सब द्वारा स्तुति योग्य तेज से, पराक्रम से (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वेतु) प्राप्त करे। हे (होतः) विद्वन्! ऐसे पुरुष को (यज) तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । ३० । ३१ ॥

होता॑ यक्ष॒दिडा॑भि॒रिन्द्र॑मीडि॒तमा॒जुह्वा॑न॒मम॑र्त्यम्।
दे॒वो दे॒वैः सवी॑र्यो॒ वज्र॑हस्तः पुर॒न्द॒रो वे॒त्वाज्य॑स्य॒ हो॒त॒र्यज॑ ॥३॥

स्वराट् पंक्तिः। पञ्चमः॥

भा०—(होता) सर्वाधिकारप्रद विद्वान् (इडाभिः) उत्तम प्राणियों से (ईडितम्) स्तुत, प्रशंसा प्राप्त, (आजुह्वानम्) शत्रुओं को मैदान में ललकारने वाले, प्रतिस्पर्द्धी, (अमर्त्यम्) साधारण मनुष्यों से विशेष बलशाली, (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे। वह (देवः) विद्वान्, कान्ति और तेज वाला, सबको रुचिकर, (देवः) विजिगीषा या विजय की इच्छा करने वाले वीर सैनिकों से (सवीर्यः) वीर्यवान् होकर (वज्रहस्तः) शस्त्रास्त्रों को अपने हाथ में अर्थात् वश में लेकर (पुरन्दरः) शत्रुओं के गढ़ तोड़ने में समर्थ होकर (आज्यस्य वेतु) राज्य को प्राप्त करे। हे (होतः यज) विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर। देखो अ० २१ । ३२ ॥

होता॑ यक्षद्ब॒र्हिषीन्द्रं॑ निषद्व॒रं वृ॑ष॒भं नर्या॑पसम् ।
वसु॑भी रु॒द्रैरा॑दि॒त्यैः स॒युग्भि॑र्ब॒र्हिरास॑दद्वे॒त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥४॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(होता) सबको अधिकार प्रदान करने वाला विद्वान्, (निषद्वरम्) राज-सभा में विराजने वालों में से सब से श्रेष्ठ, (वृषभम्) अति-बलवान् (नर्यापसम्) सब मनुष्य-हितकारी कार्यों के करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्य और उत्तम गुणों वाले पुरुष को (बर्हिषि) महान्, वृद्धि युक्त, प्रजाओं के राष्ट्र के न्यायासन पर (यक्षत्) संगत करे । वह (वसुभिः) प्रजा को सुख से वसाने वाले, (रुद्रैः) दुष्टों को दण्डों द्वारा रुलाने वाले (आदित्यैः) आदित्य के समान तेजस्वी, उत्तम सद्गुण प्रदान करने हारे और परस्पर आदान प्रतिदान करने वाले (सयुग्भिः) साथ योग देने वाले विद्वान् पुरुषों के साथ मिलकर अथवा वसु, रुद्र, आदित्य, क्रमसे एक, दो, तीनों वेदों के अभ्यासी और योगी पुरुषों सहित (बर्हिः) न्यायासन या राज-सभा के ऊपर (आसदत्) विराजे और (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य, उत्तम न्याय, शासन को प्राप्त करे । हे (होतर्यज) विद्वन् योग्य पुरुष को अधिकार प्रदान कर । देखो अ० २१ । ३३ ॥

होता॑ यक्ष॒दोजो॒ न वी॒र्यꣳ᳖ सहो॒ द्वार॒ इन्द्र॑मवर्द्धयन् । सु॒प्रा॒य॒णा अ॒स्मिन्य॒ज्ञे वि श्र॑यन्तामृता॒वृधो॒ द्वार॒ऽइन्द्रा॑य मी॒ढुषे॒ व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ५ ॥

भा०—(होता) योग्य पुरुषों को योग्याधिकार देनेवाला विद्वान् (यक्षत्) योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे । (ओजः) जल प्रवाह के समान वेगवान् (वीर्यम्) वीर्य और (सहः) शत्रु को नाश करनेवाला बल और (द्वारः) शत्रुओं को वारण करनेवाली वीर सेनाएं ये सभी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा को (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं । (द्वारः) द्वार जिस

प्रकार (यज्ञे) यज्ञ गृह में (सुप्रायणाः) सुख से निर्गम और प्रवेश कराने हारे बनाये जाते हैं उसी प्रकार (ऋतावृधः) सत्य व्यवहारों को बढ़ाने वाले या ऋत अर्थात् राष्ट्र के बल और ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले (द्वारः) शत्रुओं के दारक वीर पुरुष (सुप्रायणाः) शुभ, उच्च पदाधिकार स्थानों पर विराजमान होकर (अस्मिन्) इस (यज्ञे) परस्पर सुव्यवस्थित राष्ट्र में (वि श्रयन्ताम्) विविध रूपों में स्थापित किये जायं। वे (मीढुषे) नाना सुखों और ऐश्वर्यों से प्रजाओं का सेचन करनेवाले, वीर्यवान् (इन्द्राय) इन्द्र, राजा और राज्य के (आज्यस्य) ऐश्वर्य को (व्यन्तु) प्राप्त हों। उसका भोग करें। हे (होतः) विद्वन् ! तू (यज) योग्य पुरुषों को 'द्वार' अर्थात् शत्रुनिवारक पदों पर (यज) अधिकार प्रदान कर।

'द्वारः'—द्रवतेर्वा, जवतेर्वा, वारयतेर्वा। नि०।

होता॑ यक्षत्सु॒दुघे॒ इन्द्र॑स्य धे॒नू सु॒दुघे॑ मा॒तरा॑ म॒ही। स॒वा॒तरौ॒ न तेज॑सा व॒त्समिन्द्र॑मवर्द्धतां वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ ६ ॥

त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(होता यक्षत्) पदाधिकारों का दाता विद्वान् योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे। (सुदुघे धेनू वत्सं न) उत्तम दूध देते ही दो गौएं या माता पिता दोनों मानो जैसे एक बच्चे को दूध पिलाकर पालते हों उसी प्रकार प्रतापयुक्त, तेजस्विनी, उषाओं की तरह समस्त व्यवहारों को प्रकाशित करने वाली (मही) बड़ी (मातरौ) माता पिता के समान पूज्य एवं राष्ट्र को बनाने वाली और राजा को उत्पन्न करने वाली, (सवातरौ) वेगवान् वायु के समान बलवान् पुरुषों से युक्त होकर (तेजसा) तेज से, (वत्सम् इन्द्रम्) स्तुति योग्य इन्द्र को (अवर्धताम्) बढ़ावें और वे दोनों (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वीताम्) प्राप्त करें। हे (होतः) होतः विद्वन् ! (यज) तू अधिकार प्रदान कर।

ये दोनों उषाएं, उषासानक्ता, उषा और रात्रि हैं। दोनों समान हैं जो राज्य की दो शक्तियों की प्रतिनिधि हैं। एक विजयशालिनी और दूसरी राष्ट्र को शान्तिपूर्वक व्यवस्थित करनेवाली। अथवा एक ज्ञान विज्ञान की प्रवर्त्तक दूसरी संस्थापक।

होता॑ यक्ष॒द्दैव्या॒ होता॑रा भि॒षजा॒ सखा॑या ह॒विषेन्द्रं॑ भिषज्यतः। क॒वी दे॒वौ प्रचे॑तसा॒विन्द्रा॑य धत्त ऽइन्द्रि॒यं वी॒तामाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥७॥

जगती। निषादः॥

भा०—(होता यक्षत्) अधिकारदाता विद्वान् योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान करे। (दैव्या) विद्वान् और विजिगीषु पुरुषों में श्रेष्ठ (होतारा) उत्तम सुख के देनेवाले, (भिषजा) उत्तम रोग चिकित्सकों के समान (सखायौ) मित्र होकर (हविषा) उत्तम अन्नादि उपायों से इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् राजा को (भिषज्यतः) शारीरिक और मानसिक तथा राष्ट्र संबंधी रोगों और कष्टों से निवृत्त रखते हैं। वे (कवी) उत्तम दूरदर्शी (देवौ) स्वयं ज्ञान के प्रदाता, (प्रचेतसौ) उत्तम ज्ञानवान्, उत्तम चित्तोंवाले होकर (इन्द्राय) इन्द्र, राष्ट्रपति के इन्द्रियम्) ऐश्वर्य युक्त पद को (धत्तः) रक्षा और पालन करते हैं वे भी (आज्यस्य) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (वीताम्) प्राप्त करें। हे (होतः यज) विद्वन्! तू उनको अधिकार प्रदान कर।

होता॑ यक्षत्ति॒स्रो दे॒वीर्न भे॑ष॒जं त्रय॑स्त्रि॒धात॑वो॒ऽपस॒ इडा॒ सर॑स्वती॒ भार॑ती म॒हीः। इन्द्र॑पत्नीर्ह॒विष्म॑ती॒र्व्यन्त्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑॥८॥

निचृज्जगती। निषादः॥

भा०—(होता यक्षत्) होता, सर्वाधिकारप्रद विद्वान् अधिकार प्रदान करे। शरीर में (त्रिधातवः) तीन धातुओं वाले (त्रयः) तीन (अपसः) सब कर्म करनेवाले पदार्थ शरीर के लिये (भेषजम्) उत्तम

रोग विनाशक होते हैं उसी प्रकार (तिस्रः देवीः) तीन विद्वानों की परिषदें राष्ट्र के लिये (भेषजम्) उसके दोषों को दूर करने वाली औषध के समान हैं। वे (इडा, सरस्वती, भारती) इडा, सरस्वती भारती, इन तीन नामोंवाली (महीः) बड़े आदर योग्य हैं। वे तीनों (हविष्मतीः) विविध विज्ञानों से युक्त होकर, (इन्द्रपत्नीः) शरीर में तीन धातुएं जैसे जीव का पालन करती हैं उसी प्रकार ये भी राष्ट्र में 'इन्द्र' के पद की पालन करनेहारी, राजा के अधिकार की रक्षा करनेहारी होती हैं। वे तीनों भी (आज्यस्य व्यन्तु) समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्य को अपने अधीन करें। हे (होतः यज) विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्त्वष्टारमिन्द्रं देवं भिषजꣳ सुयजं घृतश्रियम्। पुरुरूपꣳ सुरेतसं मघोनमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ६ ॥

निचृद्-अतिजगती। निषादः ॥

भा०—(त्वष्टारं) शरीर में कान्ति के उत्पन्न करने वाले, (भिषजं) रोग के निवारक, (सुयजं) उत्तम पुष्टि बलदायक, (घृतश्रियम्) शोभा को धारण करनेवाले, (पुरुरूपं) नाना रूपों में प्रकट, (सुरेतसम्) उत्तम वीर्य को जिस प्रकार मनुष्य सदा धारण करे उसी प्रकार (होता) सबको अधिकार पद प्रदान करनेहारा होता नामक विद्वान् पुरुष (त्वष्टारम्) तेजस्वी, (इन्द्रं) शत्रुनिवारक, (देवम्) दानशील राष्ट्र निरीक्षक, देख भाल करने में चतुर, (भिषजं) उसकी त्रुटियों को दूर करनेवाले, (सुयजम्) उत्तम संगति, व्यवस्था करने में कुशल, (घृतश्रियम्) समस्त राज्य-लक्ष्मी को धारण करने में समर्थ, (पुरुरूपम्) नाना प्रकार के पशु, मनुष्य, मृगादि के स्वामी; (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान्, (मघोनम्) ऐश्वर्यवान् पुरुष के (इन्द्राय) 'इन्द्र' पद के लिये (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे। (त्वष्टा) वह तेजस्वी पुरुष (इन्द्रियाणि) इन्द्रोचित समस्त

अधिकारों को और बलों, सामर्थ्यों को (वेतु) प्राप्त करे, उनका उपभोग करे और (आज्यस्य) राष्ट्र के प्राप्त समृद्धि को वह भी भोगे । (होतर्यज) हे विद्वन् ! तू उनको अधिकार प्रदान कर ।

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुं धियो जोष्टारमिन्द्रियम् । मध्वा समञ्जन् पथिभिः सुगेभिः स्वदाति यज्ञं मधुना घृतेन वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ १० ॥

स्वराड् जगती । निषादः ॥

भा०—(होता) योग्य अधिकार प्रदान करने वाला विद्वान् पुरुष 'होता' (वनस्पतिम्) किरणों के पालक सूर्य के समान तेजस्वी वनों के समान या वने बसे प्रजागणों के स्वामी, सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों के स्वामी, महावृक्ष के समान सबको अपने आश्रय में लाकर सुख देनेवाले, (शमितारम्) सबको शान्ति के दाता, (शतक्रतुम्) सैकड़ों विद्वानों से युक्त (धियः) प्रज्ञा और कर्म के (जोष्टारम्) सेवन करने वाले (इन्द्रियम्) इन्द्र के पद के योग्य, पुरुष को भी (यक्षत्) पदाधिकार प्रदान करे । वह (मध्वा) मधुर ज्ञान से और (सुगेभिः) सुख से गमन करने योग्य, (पथिभिः) पालन करने योग्य मार्गों और मर्यादाओं से (यज्ञम्) प्रजा के पालन करने वाले प्रजापति के राज्य को (सम् अंजन्) अच्छी प्रकार सुशोभित करता हुआ उसको (स्वदाति) सुख से भोगे । वह (मधुना) ज्ञानपूर्वक (घृतेन) तेजसे (आज्यस्य) राज्यैश्वर्य को (वेतु) प्राप्त करे । हे (होतः) होतः ! (यज) तू उसको अधिकार प्रदान कर ।

होता यक्षदिन्द्रꣳ स्वाहाज्यस्य स्वाहा मेदसः स्वाहा स्तोकानाꣳ स्वाहा स्वाहाकृतीनाꣳ स्वाहा हव्यसूक्तीनाम् । स्वाहा देवा आज्यपा जुषाणा इन्द्र आज्यस्य व्यन्तु होतर्यज ॥ ११ ॥

निचृतशक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकार प्रदाता पुरुष (इन्द्रं यक्षत्) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् और शत्रुनाशक वीर पुरुष को योग्य पद प्रदान करे। (आज्यस्य स्वाहा) 'आज्य', राज्य, अथवा संग्रामोपयोगी अधिकार उत्तम रीति से प्रदान करे। (मेदसः स्वाहा) स्नेहयुक्त अथवा हिंसा, करने और राष्ट्र की वृद्धि करनेवालों को उत्तम रीति से अधिकार दे। (स्तोकानां स्वाहा) छोटे २ पदाधिकारियों पर उसका उत्तम अधिकार हो। (स्वाहाकृतीनां स्वाहा) उत्तम वचन बोलनेवाले विद्वानों पर उसको अधिकार प्रदान करे। (हव्यसूक्तीनाम् स्वाहा) आदान योग्य, उत्तम स्तुति वचनों को स्वीकार करने का उत्तम रीति से अधिकार दे। (स्वाहा) उत्तम रीति से (आज्यपाः) पूर्वोक्त राज्यैश्वर्य का पालन और वृत्ति से भोग करनेवाले सभी (देवाः) विद्वान् पुरुष और (इन्द्रः) राज (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र को प्राप्त करें। हे (होतः यज) विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर।

दे॒वं ब॒र्हिरिन्द्र॑ꣳ सुदे॒वं दे॒वैर्वी॒रव॑त् स्ती॒र्णं वेद्या॑मवर्द्धयत्। वस्तो॑र्वृ॒तं प्राक्तो॑र्भृ॒तꣳ रा॒या। ब॒र्हिष्म॑तो॒ऽत्य॑गाद्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वे॒तु यज॑॥ १२॥

अश्विनावृषी। निचृदति जगती। निषादः॥

भा०—(बर्हिः) इस लोकवासिनी प्रजाएं और वैश्यगण स्वयं (वीरवत्) वीर पुरुषों से युक्त और (वेद्याम्) प्राप्त पृथिवी पर फैल कर (देवं) दिव्य गुण वाले उत्तम दानशील, विजयी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, इन्द्र पद पर विराजमान, (सुदेवम्) उत्तम विद्वान्, दाता पुरुष को (देवैः) अन्य विद्वानों और विजयी पुरुषों द्वारा (अवर्धयत्) बढ़ावें। जिस प्रकार जंगल के कुशादि तृण दिन के समय ऊपर से काटलेने पर रात्रि के शीतल समय में बढ़ जाते हैं उसी प्रकार (वस्तोः) दिन के प्रखर ताप के समान राजा के

शत्रुओं के प्रति प्रचण्डता के युद्धादि के अवसरों पर (वृतम्) काट लिया जाकर भी (अक्तोः) रात्रि के समान शान्तिदायक राज्यव्यवस्था में (राया) धनैश्वर्य से (प्रभृतम्) खूब अच्छी प्रकार हृष्ट पुष्ट होकर (बर्हिष्मतः) प्रजा के पालक अधिकारी राजाओं, भूपतियों से भी (अति अगात्) अधिक समृद्धिशाली होजाता है। अर्थात् ऐश्वर्य विभूति से उनको भी लांघ जाता है। तत्र (वसुवने) वह ऐश्वर्य वसु अर्थात् राष्ट्र के भोक्ता राजा के (वसुधेयाय) ऐश्वर्य के रखने के स्थान कोष के लिये (वेतु) प्राप्त हो। प्रजा की समृद्धि के अवसर से प्राप्त ऐश्वर्य राष्ट्रवासी जनों के हित के लिये राष्ट्र कोष में जमा हो। हे (यज) होतः ! तू ऐसी आज्ञा प्रदान कर।

देवीर्द्वारं इन्द्रंᳬ सङ्घाते वीड्वीर्यामन्नवर्द्धयन्। आ वत्सेन तरुणेन कुमारेण च मीवता पार्वाणᳬ रेणुककाटं नुदन्तां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १३ ॥

भुरिक् शक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—(देवीः) जिस प्रकार कान्तिमती और पति की कामना करने वाली स्त्रियां (यामन्) उपयम अर्थात् विवाह के अवसर पर (इन्द्रं) अपने इच्छानुकूल पति की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार विजय की कामना या इच्छा करनेवाली विजिगीषा से युक्त, (द्वारः) शत्रुओं का वारण करने वाली सेनाएं (संघाते वीड्वीः) संघात अर्थात् परस्पर एकत्र होकर व्यवस्था द्वारा अति बलशालिनी होकर (यामन्) राज्य के नियम व्यवस्था के कार्य में (इन्द्रम्) राजा या सेनापति को गृह द्वारों के समान बढ़ाते हैं। वे सेनाएं (वत्सेन) स्तुति योग्य, (तरुणेन) हृष्ट पुष्ट, जवान, (कुमारेण) बुरी तरह शत्रुओं को मारनेवाले या ब्रह्मचारी (मीवता) हिंसक, घातप्रतिघात में कुशल पुरुषों द्वारा शत्रुओं का (अर्वाणं)

तीव्र वेगवान् अश्व, और घुड़सवार सैन्य की (रेणुककाटम्) ऐसे वेग से कि उनकी उड़ी धूल से कूप आदि भी भर जायं (अप नुदन्ताम्) परे भेजें। इस प्रकार विजय से प्राप्त (वसुवते) ऐश्वर्य के प्राप्त करने वाले राजा के (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य कोष को वे भी और शत्रुवारक सेनाएं भी (व्यन्तु) भोग करें। (यज) हे होतः ! ऐसी आज्ञा प्रदान कर।

देवी उषासानक्तेन्द्रं यज्ञे प्रयत्यह्वेताम्। देवीर्विशः प्रायासिष्टाᳪ सुप्रीते सुधिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १४ ॥

भा०—(देवी) दिव्य गुणों वाली, व्यवहार और आनन्द विनोद करने-वाली (उषासानक्ता) दिन और रात्रि के समान प्रजाओं को उद्योग और विश्राम देनेवाली, (इन्द्रम्) इन्द्र, राजा को भी (प्रयति यज्ञे) उत्तम रीति से सञ्चालित राज्य-कार्य में (अह्वेताम्) बुलावें। उसमें उसको सदा सचेत रखें। वे (देवीः) राजा को (विशः) प्रजाओं को (प्र अयासिष्टाम्) उत्तम रीति से प्राप्त कर हैं, उनको उद्योगों में लगाती रहें, वे दोनों (सुप्रीते) उत्तम रीति से प्रसन्न होकर (सुधिते) सुखपूर्वक हित करनेवाली होकर (वसुवते) धन के विभाग कार्य में (वसुधेयस्य) राज्यकोष को (वीताम्) उपभोग करें। (यज) हे होतः ! उनको यह आज्ञा प्रदान कर।

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रमवर्द्धताम्। अयाव्यन्याघा द्वेषाᳪस्यान्या वक्षद्वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १५ ॥

भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—(देवी) दिन और रात्रि दोनों जिस प्रकार सूर्य से प्रकाशित होते हैं उसी प्रकार राजा के प्रभाव से उत्तम गुणों को धारण करने वाले स्त्री पुरुष या दो संस्थाएं (जोष्ट्री) राष्ट्र की यथायोग्य सेवा करने वाली, (वसुधिती)

बसने योग्य राष्ट्र और ऐश्वर्य को धारण करनेवाली दोनों (इन्द्रम्) राजा के (अवर्धताम्) शक्ति और ऐश्वर्य को बढ़ावें । (अन्या) दोनों में से एक (अघा) पापी (द्वेषांसि) प्रजा को दुःख देनेवाले, द्वेषसे, वर्त्ताव न करने वाले शत्रुओं को (अयावि) दूर हटावे । और (अन्या) दूसरी (वार्याणि) वरण करने योग्य (वसू) ऐश्वर्यों को (वत्तत्) धारण करे । और वे दोनों (शिक्षिते) सुशिक्षित (यजमानाय) दानशील राज्य को दृढ़ करने वाले (वसुवने) ऐश्वर्य के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) धन को (वीताम्) प्राप्त करें ।

देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रमवर्द्धताम् । इषमूर्जमन्यावक्षत्सग्धिꣳ सपीतिमन्या नवेन पूर्वं दयमाने पुराणेन नवमधातामूर्जमूर्जाहुती ऊर्जयमाने वसु वार्याणि यजमानाय शिक्षिते वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ १६ ॥

भुरिगाकृतिः । निषादः ॥

भा०—(सुदुघे पयसा) उत्तम रीति से दूध देनेवाली दो गौवें जिस प्रकार अपने स्वामी या बछड़ों को पुष्ट करती हैं, उसी प्रकार दो संस्थाएँ (देवी) उत्तम अन्न आदि देने में समर्थ, (दुघे) समस्त राष्ट्र को पूर्ण करनेवाली, (ऊर्जाहुती) अन्न देनेवाली, (पयसा) पुष्टिकारक अन्न से (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राष्ट्रपति और राष्ट्र की (अवर्धताम्) वृद्धि करें । उन दोनों में से भी (अन्या) एक संस्था (ऊर्जम्) राष्ट्र के अन्न को धारण करे । और (अन्या) दूसरी (सग्धिम् सपीतिम्) सब के एक समान जल आदि पान के योग्य पदार्थों को (आवक्षत्) प्राप्त करावे । वे दोनों (नवेन) नये अन्न से (पूर्वम्) पूर्व विद्यमान अन्न की और (पुराणेन) पुराने गत वर्ष के अन्न से (नवम्) नये (ऊर्जम्) अन्न को (अधाताम्) सुरक्षित रक्खें । अर्थात् नया अन्न प्राप्त करके पुराने

की रक्षा करें और पुराने अन्न को प्रयोग में लाकर उसको बीज रूप में क्षेत्रों में डलवा कर नये अन्न को प्राप्त करें। इस प्रकार वे (ऊर्जम्) राष्ट्र को अन्न का (दुयमाने) प्रदान करती हुई, और रक्षा करती हुई ही (ऊर्जाहुती) राष्ट्र को अन्न सम्पत् देनेवाली होने के कारण 'ऊर्जाहुती' कहाती हैं। वे दोनों (ऊर्जयमाने) अन्न द्वारा बल की वृद्धि करती हुई (शिक्षिते) नाना विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करके (वार्याणि वसु) प्राप्त करने योग्य नाना उत्तम ऐश्वर्यों को (वसुवने) ऐश्वर्य के भोक्ता (यजमानाय) राजा के (वसुधेयस्य) लाभार्थ धनैश्वर्य को (वीताम्) प्राप्त करें और उसकी रक्षा करें। हे (होतः यज) होतः ! विद्वन् ! तू उन दोनों संस्थाओं को उत्तम अधिकार प्रदान कर।

दे॒वा दैव्या॒ होता॑रा दे॒वमिन्द्र॑मवर्द्धताम्। ह॒ताघ॑शꣳसा॒वाभा॑र्ष्टां॒ वसु॒ वार्या॑णि॒ यज॑मानाय शिक्षि॒तौ व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ १७ ॥

भुरिग् जगती। निषादः ॥

भा०—(देवौ) दो विद्वान् (दैव्या विद्वानों और राजा के हितकारी, (होतारा) उत्तम सुखों और ऐश्वर्यों के देनेवाले, (देवम्) विजिगीषु (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक राजा को (अवर्धताम्) पुष्ट करें। वे दोनों ही (हताघशंसौ) पाप की शिक्षा देनेवाले दुष्ट पुरुषों को नाश करके (वार्याणि) उत्तम वरण योग्य, श्रेष्ठ (वसु) ऐश्वर्यों को (अभार्ष्टाम्) प्राप्त करावें। वे दोनों (शिक्षितौ) उत्तम विद्याओं में शिक्षा प्राप्त करके, (यजमानाय वसुवने) दानशील राष्ट्र के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) कोश योग्य ऐश्वर्य को (वीताम्) रक्षा करें। (यज) हे होतः! इन दोनों को भी अधिकार प्रदान कर।

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीः पति॒मिन्द्र॑मवर्द्धयन्। अस्पृ॑क्ष॒द्भार॑ती

दिवꣳ रुद्रैर्यज्ञꣳ सरस्वतीडा वसुमती गृहान्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ १८ ॥

अतिजगती । निषादः ॥

भा०—(देवी) देवियां जिस प्रकार अपने (पतिम्) पालक पति के वंश की वृद्धि करती हैं, उसी प्रकार (तिस्रः देवीः) दिव्य गुण वाली तीन संस्थाएँ भी (पतिम् इन्द्रम्) अपने पति इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा की (अवर्धयन्) वृद्धि करें । उनमें से एक (भारती) 'भारती' नामक 'संस्था' है । (दिवम्) द्यौलोक को जिस प्रकार सूर्य रूप समस्त नक्षत्र ही नक्षत्र जगमगा देते हैं उसी प्रकार 'भारती' नामक परिषत् (दिवम् अस्पृक्षत्) परम विद्वान् पुरुषों की बनी 'दिव' नाम सर्वोच्च राजसभा को संयोजित करती है । और (सरस्वती) सरस्वती नामक विद्वत्सभा (रुद्रैः) दुष्टों के रुलाने वाले तीव्र बलवान् ज्ञानोपदेश करना भी पुरुषों से (यज्ञम् अस्पृक्षत्) सुव्यवस्थित राष्ट्र का प्रबन्ध करती है और तीसरी (इडा) इडा (वसुमती) वसु अर्थात् राष्ट्र के वासियों को अपने में धारण करने वाली जनपद सभा या प्रजासभा, (गृहान्) गृहों का प्रबन्ध करती है । (वसुवने) राजा के (वसुधेयस्य व्यन्तु) राष्ट्र धन की ये तीनों संस्थाएं वृद्धि या रक्षा करें । हे होतः ! (यज) तीनों सभाओं की तू योजना कर । भारती, 'विद्वत् सभा' ज्ञान की वृद्धि करती है, 'सरस्वती' वह राजसभा है जो शासक पुरुषों के निमित्त उपद्रवकारी, दुष्टों के दमन के उपायों का विचार करती है । तीसरी 'इडा' है जो गृहों की या जनपद वासियों की व्यवस्था करती है ।

देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथस्त्रिवन्धुरो देवमिन्द्रमवर्द्धयत् । शतेन शितिपृष्ठानामाहितः सहस्रेण प्रवर्त्तते मित्रावरुणेदस्य

होत्रमर्हतो बृहस्पतिस्तोत्रमश्विनाध्वर्यवं वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ १९ ॥

कृतिः । निषादः ॥

भा०—(देवः) विजीगीषु, तेजस्वी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (नराशंसः) समस्त नेता पुरुषों द्वारा प्रशंसा योग्य होकर (त्रिवरूथः) तीनों सभारूप गृहों का स्वामी, (त्रिवन्धुरः) तीनों के नियमों को बांधने वाला होकर (देवः) उत्तम गुणवान्, उदार दानशील, तेजस्वी, कान्तिमान् (इन्द्रं) इन्द्र पद को (अवर्धयत्) वृद्धि करता है। वह स्वयं (शित-पृष्ठानाम्) तीक्ष्ण स्वभाव वाले, तीव्र बुद्धिवाले या श्यामवर्ण की पीठवाले, पीठ भाग पर श्याम रंग के काले गौन पहने (शतेन) सौ राजपुत्रों और (सहस्रेण) हज़ार अर्थात् अनेक सरदारों से (आहितः) चारों ओर से घिरा (प्रवर्त्तते) रहता है। (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण सर्वस्नेही न्यायाधीश और 'वरुण' दुष्टों का वारक पुलिस विभाग का अध्यक्ष दोनों शरीर में प्राण अपान के समान इसके (होत्रम् अर्हतः) अधिकार को प्राप्त करके कार्य सम्पादन करते हैं। (बृहस्पतिः) बृहती वेद वाणी का पालक विद्वान् पुरुष (स्तोत्रम्) ज्ञानोपदेश का कार्य करता है। और (आध्वर्यवम्) हिंसा रहित मित्र पद या राज्य शासक के कार्य के (अश्विनौ) अश्विगण, (अर्हतः) योग्य सम्पादन करते हैं। वह इन्द्र (वसुवने) राष्ट्र कार्य के प्राप्त करने हारे इन्द्र पद के (वसुधेयस्य) धन को (वेतु) भोग करे, रक्षा करे। (यज) हे होतः ! तू उसको अधिकार प्रदान कर।

देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो मधुशाखः सुपिप्पलो देवमिन्द्रम-वर्द्धयत्। दिवमग्रेणास्पृक्षदान्तरिक्षं पृथिवीमदृंहीद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २० ॥

निचृदतिशक्करी । पञ्चमः ॥

भा०—(देवः) ज्ञानद्रष्टा, विजयशील, सुखप्रद, शरणप्रद, विद्वान् (वनस्पतिः) सर्व सेवन योग्य पदाधिकारों का पति, स्वामी, सर्वश्रेष्ठ, ऐश्वर्यों का स्वामी, (हिरण्यपर्णः) सुवर्ण के समान तेजो युक्त पत्रों वाले महावृक्ष के समान (हिरण्यपर्णाः) तेज और यश, पराक्रम युक्त पालन सामर्थ्यों और ज्ञानों से युक्त, (मधुशाखः) मधुर, मनोहर शाखाओं के समान ब्रह्म ज्ञानमय वेद शाखाओं से युक्त, (सुपिप्पलः) उत्तम ज्ञानमय फलों से भरा हुआ, विद्वान् पुरुष (देवम् इन्द्रम्) सर्वोत्तम ऐश्वर्यवान् राजा के पद की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है। महावृक्ष जिस प्रकार (अग्रेण) चोटी से आकाश को छूता है उसी प्रकार अपने (अग्रेण) मुख्य पद से, (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य को, ज्ञान को (अस्पृक्षत्) धारण करता है और मध्य और चरणभाग से (अन्तरिक्षम् पृथिवीम्) अन्तरिक्ष और पृथिवी अर्थात् रक्षक शासकों और प्रजाजनों को भी मध्यमवृत्ति और चरण, अर्थात् विनयवृत्ति से (अदृंहीत्) बढ़ाता है। वह (वसुवने) ऐश्वर्य के स्वामी राजा के (वसुधेयस्य) राष्ट्रैश्वर्य की (वेतु) रक्षा करे। (यज) होतः तू ऐसे विद्वान् पुरुष को अधिकार प्रदान कर।

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रमवर्द्धयत् । स्वासस्थमिन्द्रेणासन्न-न्या बर्हींष्यभ्यभूद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २१ ॥

त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(बर्हिः) अन्तरिक्ष अर्थात् वायु जिस प्रकार (वारितीनाम्) जलों के स्थान मेघों के बीच में (इन्द्रम् देवम् अवर्धयत्) प्रकाशमय विद्युत् को बढ़ाता है उसी प्रकार (देवं बर्हिः) दानशील प्रजागण, राष्ट्र, (वारितीनाम्) शत्रुओं को वारण करने वाली सेनाओं के बीच स्थित (इन्द्रम् देवम्) शत्रुनाशक राजा की वृद्धि करते हैं। वह अन्तरिक्ष के समान अधिक शक्ति सम्पन्न मुख्य प्रजागण या प्रजा के दानशील पुरुष (स्वा-

सस्थम्) उत्तम रीति से राष्ट्र में जमकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् राज के (आसन्नम्) अति समीप, होकर उस द्वारा (अन्या वहोंषि) अन्य प्रजाओं को भी (अभि अभूत्) अपने अधीन कर लेते हैं। वह मुख्य प्रजाजन भी (वसुवने) ऐश्वर्य के स्वामी राजा के (वसुधेयस्य) कोष योग्य धन की रक्षा करे। हे होतः! तू उनको भी (यज) अधिकार प्रदान कर।

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। स्विष्टं कुर्वन्त्स्विष्टकृत् स्विष्टमद्य करोतु नो वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ २२ ॥

त्रिष्टुप। धैवतः ॥

भा०—(अग्निः देवः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रणी विद्वान् पुरुष (स्विष्टकृत्) उत्तम यज्ञों या परिमित कार्यों का कर्त्ता भी (देवम् इन्द्रम् अवर्धयत्) देव, इन्द्र' अर्थात् राजा की वृद्धि करता है। वह (स्विष्टम्) शुभ इष्ट, इच्छानुकूल समस्त कार्यों का सम्पादन (कुर्वन्) करता हुआ ही (स्विष्टकृत्) 'स्विष्टकृत्' कहाता है। वह (नः) हम प्रजाजनों का भी (अद्य) आज (सु-इष्टं करोतु) उत्तम हमारे इच्छित कार्यों को करे।

अग्निमद्य होतारमवृणीतायं यजमानः पचन् पक्तीः पचन् पुरोडाशं बध्नन्निन्द्राय छागम्। सूपस्था अद्य देवो वनस्पतिरभवदिन्द्राय छागेन। अघत्तं मेदस्तः प्रति पचताग्रभीदवीवृधत्पुरोडाशेन त्वामद्य ऋषे ॥ २३ ॥

कृतिः निषादः ॥

भा०—(यजमानः) यजमान जिस प्रकार विद्वान् पुरुष को अपना होता वरण करता है उसी प्रकार (अयं यजमानः) दानशील राष्ट्रवासी जन भी (अग्निम्) ज्ञानवान् अग्रणी पुरुष को(होतारम्) पूर्वोक्त 'होता', सर्वाधिकारों के दाता और स्वीकर्त्ता पद पर (अद्य) आज (अवृणीत)

वरण करता है। और वह (पक्तीः) पाक करने योग्य क्रियाओं को (पचन्) परिपक्व करता हुआ अर्थात् जिन कार्यों के एवज में बाद में परिश्रमिक प्राप्त हो उन क्रियाओं का (पचन्) फलरूप से परिश्रमिक निर्धारित करता हुआ, अथवा (पक्तीः) परिपक्व ज्ञान वाली संस्थाओं को (पचन्) परिपक्व, दृढ़ करता हुआ और (पुरोडाशं पचन्) इसी प्रकार कार्य कर्त्ताओं के कार्यारम्भ में ही (पुरोडाशं) पूर्व ही देने योग्य धनको भी (पचन्) परिपक्व अर्थात् निश्चित करता हुआ, और (इन्द्राय) इन्द्र नाम पद या ऐश्वर्यमय राष्ट्र को रक्षा के लिये शत्रुओं को काट गिराने वाले प्रधान पुरुष या सैन्यबल और सेनापति को (बध्नन्) वेतन पर बांध कर, उसको भी स्थिर करता हुआ (अग्निम् होतारम् अवृणीत) विद्वान् 'होता' नामक पुरुष को वरण करे।

(इन्द्राय छागेन) ऐश्वर्यमय राष्ट्र की रक्षा के लिये, शत्रु के काट गिरा देने वाले सैन्यबल के द्वारा (वनस्पतिः देवः) वनस्पतियों में श्रेष्ठ महावृक्ष के समान सर्वाश्रय राजा, (अद्य) आज (सु उपस्थाः) प्रजा द्वारा उपासना करने योग्य, आश्रय प्राप्त करने योग्य है।

हे (अग्ने) मन्त्रद्रष्ट ! विद्वन् ! होतः ! (मेदस्तः) स्नेह से या सार पदार्थ को स्वीकार करके अथवा हिंसनीय शत्रु से रक्षा करके (तम्) उस राष्ट्र का वह पूर्वोक्त राजा (अद्यत्) भोजन के समान उपभोग करे। उसको अपना जीवनाधार समझे। हे (अग्ने) विद्वन् ! सर्वद्रष्टः ! (पचता) परिपाक योग्य, तेरे श्रम के एवज में प्रदान करने योग्य फलस्वरूप पदार्थों को भी वह (प्रति अग्रभीत्) तुझे प्रदान करे। और (पुरोडाशेन) पुरोडाश अर्थात् प्रारम्भ में श्रद्धा और प्रेम से भी देने योग्य पदार्थों द्वारा (त्वाम् अवीवृधत्) तेरी वृद्धि करे। इसी के समान देखिये अ० २१। मन्त्र ५९–६१॥

होता॑ यक्षत्स॒मिधा॑नं म॒हद्यश॒: सुस॑मिद्धं॒ वरे॑ण्यम॒ग्निमिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्। गा॒य॒त्रीं छन्द॑ इन्द्रि॒यं त्र्यवि॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ २४ ॥

स्वराड् जगती। निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकार देनेवाला विद्वान् पुरुष (सम् इधानम्) स्वयं अच्छी प्रकार प्रकाशमान, (महत् यशः) बड़े यश से (सुसमिद्धं) उत्तम गुणों से विख्यात, (वरेण्यम्) वरण करने योग्य, (अग्निम्) ज्ञानवान् (वयोधसम्) दीर्घ जीवन, बल, ब्रह्मचर्य को धारण करने और कराने वाले (इन्द्रम्) दुष्ट वासनाओं को दूर करने वाले आचार्य पुरुष को (यक्षत्) उच्च अधिकार प्रदान करे और वह (गायत्रा छन्दः) गायत्री छन्द, (इन्द्रियं) इन्द्रोचित ऐश्वर्य अथवा उत्तम इन्द्रियों में बल, और (त्र्यविम्) मन, वाणी और देह तीनों की रक्षा करने वाले को (गाम्) वाणी को और (वयः) वीर्य और दीर्घजीवन को राष्ट्र में (दधत्) धारण करावे। और (आज्यस्य वेतु,) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करें। हे (होतः यज) होतः ! विद्वन् ! तू योग्य पुरुषों को यह अधिकार प्रदान कर।

राज्य में विद्वान् आचार्यों की स्थापना की जाय। वे गुरुमन्त्र का उपदेश करें। २४ वर्ष का ब्रह्मचर्य का पालन करावें, लोगों में दीर्घजीवन का साधन करें।

होता॑ यक्ष॒त्तनू॒नपा॑तमु॒द्भिदं॒ यं गर्भ॒मदि॑तिर्द॒धे शुचि॒मिन्द्रं॑ वयो॒धस॑म्। उ॒ष्णिहं॒ छन्द॑ इन्द्रि॒यं दि॑त्य॒वाहं॒ गां वयो॒ दध॒द्वेत्वाज्य॑स्य॒ होत॒र्यज॑ ॥ २५ ॥

अति जगती। निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकार दाता विद्वान् (तनूनपातम्) शरीरों के न गिरने देनेवाले, शरीरों के रक्षक (उद्भिदं) ज्ञान के तत्वों को

खोल २ कर बतलाने वाले, अथवा (यं) जिस बीज को (अदितिः) पृथिवी (गर्भम् दधे) गर्भ में धारण करती है और वह ऊपर की तह को तोड़ कर उत्पन्न होता है उसी प्रकार (अदितिः) माता के समान अखण्ड राजशक्ति (यं) जिसको अपने (गर्भम्) गर्भ में (दधे) धारण करती है ऐसे (उद्भिदम्) वृक्ष की तरह से उसके बीच में बढ़े हुए, स्थिर, आश्रय वृक्ष के समान, (शुचिम्) अति शुद्ध चरित्रवान्, (वयोधसम्) बल, आयु के धारक और वर्धक (इन्द्रम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (यक्षत्) आदरपूर्वक उत्तम पद से युक्त करे। इस प्रकार वह (उष्णिहं छन्दः) राष्ट्र में उष्णिक् छन्द के समान २२ वर्ष के गुरु के अधीन ब्रह्मचर्य, (इन्द्रियं) शारीरिक बल, (दित्यवाहं गाम्) दित्यवाड् बैल के समान (वयः) बल वीर्य को राज्य में (दधत्) धारण करावें। उक्त विद्वान् (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र ऐश्वर्य की वृद्धि करे। हे (होतः यज) विद्वन् ! तू उसको योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षद्वीडेन्यमीडितं वृत्रहन्तममिडाभिरीड्यꣳ सहः सोममिन्द्रं वयोधसम्। अनुष्टुभं छन्द इन्द्रियं पञ्चाविं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

निचृत् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकारका दाता विद्वान् (ईडेन्यम्) स्तुति करने योग्य, (वृत्रहन्तमम्) मेघ या अन्धकार को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य के समान अज्ञान और बाधक कारणों को दूर करने वालों में सब से श्रेष्ठ, (इडाभिः ईड्यम्) उत्तम वाणियों से प्रशंसा के योग्य (सहः) बल के कारण (सोमम्) सोम अर्थात्—चन्द्र के समान आह्लादक, या वायु के समान बलवान्, (इन्द्रम्) विद्वान् (वयोधसम्) दीर्घायु पुरुष को (यक्षत्) स्थापित करे। (आनुष्टुभं छन्दः) अनुष्टुप् छन्द के समान, ३२ वर्ष के ब्रह्मचर्य पूर्वक

(इन्द्रियम्) शरीर के भीतर (इन्द्रिय) वीर्य और (पञ्चाविं गां) ढाई वर्ष के बैल के समान (वयः) बलको (दधत्) राष्ट्र में धारण करावे। वह उक्त विद्वान् भी (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि करे। हे (होतः यज) विद्वन्! तू उसे योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षत्सुबर्हिषं पूषण्वन्तममर्त्यꣳ सीदन्तं बर्हिषि प्रियेऽमृतेन्द्रं वयोधसम्। बृहतीं छन्द इन्द्रियं त्रिवत्सं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २७ ॥

स्वराडति जगती। निषादः ॥

भा०—(होता) अधिकार देनेवाला विद्वान् (सुबर्हिषम्) उत्तम प्रजा से युक्त, (पूषण्वन्तम्) अच्छे पोषक अन्न और भूमि से युक्त, (अमर्त्यम्) अन्य मनुष्यों से कहीं अधिक, (बर्हिषि) आसन पर (सीदन्तम्) बैठे हुए के समान (बर्हिषि सीदन्तम्) महान् राष्ट्र पर शासक रूप से विराजमान, (प्रिये) प्रिय (अमृते) अन्न और वीर्य और जल के आश्रय पर (वयोधसम्) बल और दीर्घ आयु को धारण करने वाले (इन्द्रम्) विद्वान् पुरुष को (यक्षत्) उत्तम पद पर स्थापित करे। (बृहती छन्दः इन्द्रियं) बृहती छन्द के समान ३६ वर्ष का इन्द्रिय दमन या ब्रह्मचर्य पालन और (त्रिवत्सं गां वयः) तीन वर्ष के बैल के समान बल (दधत्) धारण करावे। वह (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा करे। और हे (होतः यज) विद्वन्! तू उस योग्य पुरुष को पद प्रदान कर।

होता यक्षद्व्यचस्वतीः सुप्रायणा ऋतावृधो द्वारो देवीर्हिरण्ययीर्ब्रह्माणमिन्द्रं वयोधसम्। पङ्क्तिं छन्द इहेन्द्रियं तुर्यवाहं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ २८ ॥

स्वराट् शक्करी। धैवतः ॥

भा०—(होता) पदाधिकार प्रदाता विद्वान् (व्यचस्वतीः) विशेष रूप से और विविध प्रकारों से गमन करने और फैलने वाली, (सुप्र-अयनाः) उत्तम और अच्छे पदों और अधिकारों पर स्थित, (ऋतावृधः) बल, राष्ट्र, और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली (देवीः) विजयशील, रक्षाकारिणी, (हिरण्ययीः) लोह के आयुधों से तेजोयुक्त (द्वारः) युद्ध में वेग से धावन करने प्रबल वेग से आक्रमण करने और शत्रुका वारण करने वाली, सेनाओं को राष्ट्र रूप विशाल भवन में (व्यचस्वतीः) विविध मार्गों से लोगों के प्रवेश निर्गम के अवकाश वाली (सुप्रायणाः) सुख से गुजरने योग्य, (ऋतावृधाः) ऐश्वर्यवर्धक, (हिरण्ययीः) सुवर्ण, लोहादि से भूषित, महाद्वारों के समान (यक्षत्) राष्ट्र में सुसंगत करे और (वयो-धसम्) बलधारी (ब्रह्माणाम्) महान् राष्ट्र के पोषक (इन्द्रम्) सेनापति को (यक्षत्) नियुक्त करे। (इह) इस निमित्त (पंक्ति छन्दः इन्द्रियम्) पंक्ति छन्द के समान ४० अक्षरों के समान ४० वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य को और (तुर्यवाहं गां वयः) ४ वर्ष के वृषभ के समान बल को भी (दधत्) धारण करावे। वे वीर सेना और शक्तिशाली सेनापति सब (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा और भोग करें। (होतः यज) हे विद्वन् ! तू उनका योग्य पद प्रदान कर।

होता यक्षत्सुपेशसा सुशिल्पे बृहती उभे नक्तोषासा न दर्शते विश्वमिन्द्रं वयोधसम्। त्रिष्टुभं छन्द इहेन्द्रियं पष्ठवाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ २९ ॥

निचृदतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—(होता) अधिकार प्रदान करने वाला पुरुष (सुपेशसा) शुभ, उत्तम स्वरूप वाली, (सुशिल्पे) उत्तम शिल्प, वाली, (उभे) दोनों (नक्तोषासा न) दिन और रात्रि के समान (दर्शते) दर्शनीय,

पूर्वोक्त दोनों संस्थाओं को और (विश्वम्) उसमें प्रविष्ट (वयोधसम्) बल के धारण करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (यक्षत्) अधिकार प्रदान करे। (इह) इस कार्य में (त्रिष्टुप् छन्दः इन्द्रियम्) त्रिष्टुप् छन्द के ४४ अक्षरों के समान ४४ वर्षों के अक्षत वीर्य पालन या ब्रह्मचर्य और (पष्ठवाहं गाम् वयः) पीठ से बोझा उठाने में समर्थ और बैल के समान बल, उमर को (दधत्) धारण करावें। वे दोनों संस्थाएँ और उनका पालक इन्द्र (आज्यस्य वीताम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य का पालन, वृद्धि और उपभोग करें। हे (होतः यज) हे होतः! विद्वन्! तू अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्प्रचेतसा देवानामुत्तमं यशो होतारा दैव्या कवी सयुजेन्द्रं वयोधसम्। जगतीं छन्द इन्द्रियमनड्वाहं गां वयो दधद्वीतामाज्यस्य होतर्यज ॥ ३० ॥

निचृद् अतिशक्वरी। पञ्चमः ॥

भा०—(होता) योग्य अधिकार के देनेवाला विद्वान् (प्रचेतसा) उत्कृष्ट कोटि के ज्ञानवाले, (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों में (उत्तमं) सब से ऊँचे (यशः) यश, वीर्य, परम ज्ञान (होतारौ) प्राप्त करनेवाले, (दैव्या) सर्व विद्वानों में श्रेष्ठ, (कवी) दूर तक देखने वाले, दीर्घदर्शी (सयुजो) मिल कर परस्पर सहयोग से विचार करनेहार दो विद्वान् और (वयोधसम् इन्द्रम्) राष्ट्र के बल को धारण करने वाले तेजस्वी पुरुष को (यक्षत्) योग्य पद पर संगत करें। (जगती छन्दः इन्द्रियम्) जगती छन्द के ४८ अक्षरों के समान अक्षय इन्द्रिय के बल वीर्य, ब्रह्मचर्य और (अनड्वाहं गां वयः) शकट का बोझा उठा कर चलने में समर्थ बलवान् बलीवर्द के समान बल को (दधत्) धारण करावे। वे दोनों (आज्यस्य वीताम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि,

पालन और भोग करें। हे (होतः) विद्वन्! तू उनको उचित अधिकार (यज) प्रदान कर।

होता यक्षत्पेशस्वतीस्तिस्रो देवीर्हिरण्ययीर्भारतीर्बृहतीर्महीः पतिमिन्द्रं वयोधसम्। विराजं छन्द ऽइहेन्द्रियं धेनुं गां न वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज॥ ३१॥

सरस्वती ऋषिः। तिस्रो देव्य इन्द्रश्च देवताः। भुरिक् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—(होता) योग्याधिकार प्रदाता विद्वान् होता' (पेशस्वतीः देवीः) रूपवती स्त्रियों को जिस प्रकार (वयोधसम् पतिम्) पूर्ण अवस्था को धारण करनेवाले पति को (यक्षत्) प्राप्त कराता है उसी प्रकार (हिरण्ययीः) हित और रमणीय गुणों को धारण करनेवाली (तिस्रः) तीन (बृहतीः) बड़ी २ (महीः) अति आदर योग्य (भारतीः) ज्ञान, दीप्ति और क्रियाओं में कुशल (देवीः) विद्वानों की संस्थाओं को (वयोधसम्) बल और ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्य के स्वयं धारण करने और राष्ट्र में धारण कराने में समर्थ (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक पुरुष को (पतिम्) उनका पालक, पति, प्रधान पद के भोक्ता रूप से (यक्षत्) सुसंगत करे, नियत करे। वह पालक राजा (इह) इस राष्ट्र में (विराजं छन्दः) विराट् छन्द के ३२ अक्षरों के समान ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत पालन (गां) पृथिवी को (इन्द्रियं) राष्ट्र के बलवीर्य स्वरूप और (धेनुं गां न वयः) दुधार गाय के समान जान कर उस अन्न, बल को (दधत्) धारण करें। वे सब (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा और वृद्धि प्राप्ति करें। हे (होतः) विद्वन्! (यज) इनको उचित अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत्सुरेतसं त्वष्टारं पुष्टिवर्द्धनं रूपाणि बिभ्रतं पृथक्

पुष्टिमिन्द्रं वयोधसम् । द्विपदं छन्द इन्द्रियमुक्षाणं गां न वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३२ ॥

भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—योग्याधिकार देनेवाला विद्वान् 'होता' (सुरेतसम्) उत्तम वीर्यवान्, उत्पादक बल से सम्पन्न (त्वष्टारं) कान्तिमान् तेजस्वी, (पुष्टि वर्धनम्) पुष्टिकारक अन्नादि सम्पत्ति के वर्धक, (रूपाणि बिभ्रतम्) नाना प्रकार पशुओं को पालन पोषण करनेवाले, (वयोधसम्) पूर्ण दीर्घायु को धारण करनेवाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (पृथक्) पृथक् २, अलग २ नाना प्रकार के (पुष्टिम्) पुष्टियुक्त समृद्धि को (यक्षत्) धारण करावे। वह राष्ट्र में (द्विपदं छन्दः) द्विपदा गायत्री के २० अक्षरों के समान २० वर्षों तक (इन्द्रियं) इन्द्रिय-संयम का पालन करावे और (उक्षाणं गां न वयः) वीर्य सेचन में समर्थ बैल के समान बल वीर्य को (दधत्) धारण करे। और (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के ऐश्वर्य या वीर्य की रक्षा करे। हे (होतः यज) विद्वन् ! ऐसे उत्तम पुरुष को योग्य अधिकार प्रदान कर।

अर्थात् धन, धान्य, सम्पत्ति, भूमि आदि का पृथक् अधिकार बालिग होने पर दिया जाय और वह अधिकार पुरुष को (द्विपदं छन्दः) द्विपद् छन्द अर्थात् १२ + ८=२० वर्ष के बाद प्राप्त हो। ऐसी उमर में वह ब्रह्मचारी हो, सदाचारी, कमाऊ हो, नपुंसक, निर्बल और अल्पायु न हो।

होता यक्षद्वनस्पतिꣳ शमितारꣳ शतक्रतुꣳ हिरण्यपर्णमुक्थिनꣳ रशनां बिभ्रतं वशिं भगमिन्द्रं वयोधसम्। ककुभं छन्द ऽइहेन्द्रियं वशां वेहतं गां वयो दधद्वेत्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३३ ॥

निचृद् अत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकार प्रदाता विद्वान् पुरुष (वनस्पतिम्) महा वट के समान सबको आश्रय देने में समर्थ, वन-पालक के समान नाना भोग्य पदार्थों या जनों के पालक, (शमितारं) शान्तिदायक, (शत-क्रतुम्) सैकड़ों प्रज्ञाओं और कर्म सामर्थ्यों से युक्त, (हिरण्यपर्णम्) सुवर्ण आदि ऐश्वर्य से सबके पालन करने वाले, अथवा अति सुन्दर ज्ञान से युक्त, (उक्थिनम्) वेदोक्त गुरु-उपदेश को धारण करने वाले (रशनां) राष्ट्र के या समाज के और अपने शरीर की इन्द्रियों पर दमन को (बिभ्र-तम्) धारण करने वाले, लंगोटबन्द मेखलाधारी, जितेन्द्रिय, (वशिम्) पूर्णवशी, (भगम्) ऐश्वर्यवान्, (वयोधसम्) बल, वीर्य और दीर्घायु के धारण करने वाले (इन्द्रम्) श्रेष्ठ पुरुष को (यक्षत्) योग्य 'वनस्पति' नामक अधिकार पद प्रदान करे। (इह) इस कार्य में वह (ककुभं छन्दः) ककुप् छन्द के (८+१२+८) २८ अक्षरों के समान २८ वर्ष का (इन्द्रियम्) इन्द्रिय अर्थात् ब्रह्मचर्य और (वेहतं गाम् इव) गर्भघातिनी गौ या (वशां) वेशा, बांझ गौ के समान (वयः) बल (दधत्) धारण करे। अर्थात् जिस प्रकार 'वशा' अर्थात् वंध्या गाय नाना नरों का भोग करके भी विक्षत नहीं होती और गर्भ धारण नहीं करती, इसी प्रकार वह 'वनस्पति' नामक पदाधिकारी भी नाना भोक्ताओं के आजाने पर भी सबको वश करने में समर्थ शक्तिमान् बना रहे। और जिस प्रकार गर्भ-घातिनी गौ नाना सांडों से भोग करके भी गर्भ में आये बीज का नाश कर डालती है उसी प्रकार इस पृथ्वी पर नाना भोक्ता राजाओं के आजाने पर भी और उन द्वारा राष्ट्र का क्रम से या एक ही काल में यथेच्छ भोग कर लेने पर भी उनके भोग के प्रभाव को न रहने दें प्रत्युत उनके भुक्त राष्ट्र को भी भरा पूरा ही बनाये रक्खे। ऐसे पुरुष को 'वनस्पति' पद पर नियुक्त करे। इसी प्रकार सेना रूप जन वनों के पालक सेनापति को भी ऐसा बनावे जो वशा के समान अन्यों के भोग के प्रभाव को जमने न दे

और शत्रु-राजाओं के किये क्षत विक्षत को स्थिर न रहने दे। प्रत्युत गर्भ-घातिनी गौ के समान उनको गर्भ में ही नाश करदे। वह (आज्यस्य वेतु) राष्ट्र के युद्धोपयोगी बल, वीर्य, ऐश्वर्य की रक्षा वृद्धि करे। हे (होतःयज) विद्वन् होतः ! ऐसे पुरुष को तू उक्त अधिकार प्रदान कर।

होता यक्षत् स्वाहाकृतीरग्निं गृहपतिं पृथग्वरुणं भेषजं कविं क्षत्रमिन्द्रं वयोधसम्। अतिच्छन्दसं छन्द ऽइन्द्रियं बृहदृषभं गां वयो दधद्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ॥ ३४ ॥

अतिशक्वरीः। पञ्चमः ॥

भा०—(होता) योग्याधिकार दाता विद्वान् पुरुष (स्वाहा-कृतीः) उत्तम ज्ञान, वाणियों के उपदेश करने वाली संस्थाओं को (यक्षत्) योग्य अधिकार प्रदान करे। और (अग्निम्) ज्ञानवान्, तेजस्वी (गृह-पतिम्) गृह के पालक (वरुणम्) सर्व दोषों के वारण करने में समर्थ श्रेष्ठ पुरुष को (कविम्) क्रान्तदर्शी, विद्वान् (भेषजम्) रोगचिकित्सा में कुशल वैद्य और (क्षत्रम्) बल, वीर्य से सम्पन्न राज्यकर्त्ता क्षत्रिय (वयोधसम्) दीर्घायु, बल वीर्य, अन्न के धारक (इन्द्रं) राजा को (पृथक्) पृथक् २ नाना पदों पर (यक्षत्) नियुक्त करे। इन पदों पर नियुक्त पुरुषों में (अतिछन्दसं छन्दः इन्द्रियम्) क्रम से 'अति' शब्द से युक्त अति-धृति, अत्यष्टि, अतिशक्करी और अति जगती इन चार छन्दों के क्रम से ७६, ६८, ६० और ४८ अक्षरों के समान इतने २ वर्षों का (बृहत् इन्द्रियं) विशाल ब्रह्मचर्य पालन और (ऋषभं गाम्) ऋषभ बैल के समान (ऋषभं) सर्वश्रेष्ठ पद को (दधत्) धारण करे। वे ही लोग (आज्यस्य व्यन्तु) राष्ट्र के ज्ञान ऐश्वर्य की वृद्धि और पालन करें। हे (होतः यज) विद्वन् ! उन योग्य पुरुषों को अधिकार प्रदान कर।

देवं बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्रमवर्द्धयत्। गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षु-

रिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ३५ ॥

इन्द्रो देवता । भुरिक् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(देवं) दिव्य गुणवाला (बर्हिः) आकाश जिस प्रकार (इन्द्रम् देवम्) प्रकाशमान सूर्य को (अवर्धयत्) बढ़ाता है, उसके सामर्थ्य की वृद्धि करता है, उसके तेज को फैलने देता है और वहीं प्रकाश, (इन्द्रे) जीव में (चक्षुः इन्द्रियं वयः दधत्) चक्षु नामक तेजोमय इन्द्रिय को धारण कराता है उसी प्रकार (देवम् बर्हिः) दानशील, करप्रद प्रजा (वयोधसम्) बल और ऐश्वर्य के धारण करने वाले (देवं) तेजस्वी (इन्द्रम्) राजा की (अवर्धयत्) वृद्धि करती है। वह प्रजागण, (गायत्र्या छन्दसा) गायत्री छन्द अर्थात् ब्राह्मण-रूप बल से (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राजा में (चक्षुः इन्द्रियम्) आँख के समान देखने वाली शक्ति को और (वयः) बल को (दधत्) धारण करावे। वह प्रजारूप गायत्री (वसुवने) ऐश्वर्यवान् राजा के (वसुधेयस्य) ऐश्वर्य का (वसु) पालन और भोग करे। हे होतः! (यज) तू उसको यह अधिकार प्रदान कर।

देवीर्द्वारो वयोधसꣳ शुचिमिन्द्रमवर्द्धयन्। उष्णिहा छन्दसेन्द्रियं प्राणमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ३६ ॥

भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(देवीः द्वारः) उत्तम प्रकाश से युक्त बड़े २ द्वार जिस प्रकार (वयोधसम्) दीर्घ जीवन प्रदान करनेवाली (शुचिम्) शुद्ध (इन्द्रम्) वायु को (अवर्धयन्) गृह में बढ़ा देते हैं। और वह वायु (उष्णिहा छन्दसा) अंग प्रत्यंग में व्यापक स्निग्ध पदार्थ के बल से युक्त होकर (इन्द्रियम्) जीव के हितकारी (प्राणम्) प्राण वायु को (इन्द्रे) जीव में (वयः दधत्) दीर्घ जीवन और बलरूप से धारण कराता है उसी प्रकार (देवीः)

विजयशील (द्वारः) शत्रुओं को वारण करने में समर्थ सेनाएं (वयोध-सम्) शक्तिशाली (शुचिम्) निष्कपट (इन्द्रम्) सेनापति और राजा को (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं, उसके बलको बढ़ाती हैं। और वह (उष्णिहा) अति अधिक स्नेह से युक्त (छन्दसा) छन्द अर्थात् रक्षा सामर्थ्य से (प्राणम् इन्द्रियम्) दृढ़ प्राण के समान विशेष इन्द्र पद के उचित ऐश्वर्य और बल को (इन्द्रे दधत्) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में धारण कराता है। अतः हे होतः विद्वन्! (वसुवने) ऐश्वर्य के भोक्ता राजा के (वसुधेयस्य) राज्य-कोष को ये विजयशील सेनाएं भी (व्यन्तु) पालन, वृद्धि और उपभोग करें। (यज) उनको तू यह अधिकार प्रदान कर।

दे॒वी ऽउ॒षासा॒नक्ता॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वी दे॒वम॑वर्द्धताम्। अ॒नु॒ष्टु॒भा छन्द॑सेन्द्रि॒यं बल॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वीतां॒ यज॑ ॥ ३७ ॥

भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—(देवी) जिस प्रकार पतिव्रता पति-प्रिया स्त्री (देवम्) अपने कामना योग्य प्रिय पति को बढ़ाती है और जिस प्रकार (देवी) प्रकाशयुक्त (उषासानक्ता) दिन और रात्रि दोनों (इन्द्रम्) सूर्य के ही महिमा और बल की (अवर्धताम्) वृद्धि करते हैं। उसी प्रकार (देवी उषासानक्ता) विजय कामना से युक्त, उत्तम व्यवहार में कुशल, तेज से शत्रुओं को दाह या संताप देनेवाली 'उषा' नामक संस्था और अव्यक्त रूप से व्यवस्था करने वाली 'नक्त' नामक राजसंस्था दोनों (वयोधसम्) बलधारी (इन्द्रम्) इन्द्र ऐश्वर्यवान् राजा और राष्ट्र के (अवर्धताम्) बल की वृद्धि करती हैं। वह राजा (इन्द्रे) समृद्ध राज्य में (अनुष्टुभा) प्रजा के अनुकूल राजा और राजा के अनुकूल प्रजा के परस्पर प्रशंसा और गुण स्तुतियुक्त (छन्दसा) परस्पर रक्षा व्यापार से (इन्द्रियं बलं दधत्)

राजोचित उत्तम बलको धारण कराता है। हे होतः विद्वन्! (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) उक्त दोनों संस्थाएं भी ऐश्वर्य भोक्ता राजा के कोश की वृद्धि, पालन और उपभोग करें। (यज) तू उनको अधिकार प्रदान करा।

देवी जोष्ट्री वसुधिती देवमिन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्। बृहत्या छन्दसेन्द्रियꣳ श्रोत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥ ३८॥

भुरिगतिजगती। निषादः॥

भा०—(देवी देवम्) प्रियतमा स्त्री जिस प्रकार अपनी कामना के अनुकूल प्रिय पुरुष को सन्तानादि से बढ़ाती है और (देवी जोष्ट्री) जिस प्रकार उत्तम व्यवहार वाले, एक दूसरे को प्रेम करने वाले (वसुधिती) ऐश्वर्य को धारण करने वाले नरनारी (देवं) कामना योग्य (वयोधसम्) दीर्घजीवन और बलप्रद (इन्द्रम्) शुभ सन्तान को बढ़ाते हैं उसी प्रकार (देवी) उत्तम तेजोयुक्त, (जोष्ट्री) परस्पर प्रेमयुक्त, विद्या संस्थाएं (वसुधिती) राष्ट्र में बसने वाले लोकों को धारण करने में समर्थ होकर (वयोधसम्) दीर्घजीवी (देवम् इन्द्रम्) विद्वान् राजा को (अवर्धताम्) बढ़ावें। और वह (बृहत्या छन्दसा) बृहती छन्द अर्थात् बड़ी भारी वेदवाणी के बल से (श्रोत्रम् इन्द्रियम्) शरीर में श्रवण इन्द्रिय के समान (श्रोत्रम् वयः दधत्) श्रवण योग्य ज्ञानरूप बलको धारण कराता है। (वसुवने वसुधेस्य वीताम्) राजा के राज्यकोष की वे दोनों संस्थाएं भी वृद्धि, पालन और उपभोग करें। हे विद्वन्! (यज) तू उनको वह अधिकार प्रदान कर।

देवी ऽऊर्जाहुती दुघे सुदुघे पयसेन्द्रं वयोधसं देवी देवमवर्द्धताम्। पङ्क्त्या छन्दसेन्द्रियꣳ शुक्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज॥ ३९॥

निचृत् शक्वरी। धैवतः॥

भा०—(देवी देवम्) पति की कामना के अनुकूल रहनेवाली उत्तम स्त्री जिस प्रकार अपनी अभिलाषा के योग्य उत्तम पुरुष को प्रेम और सन्मान से बढ़ाती है और (सुदुघे) उत्तम दूध देनेवाली दो गौएं जिस प्रकार (पयसा) अपने दूध से (वयोधसम्) अन्न देनेवाले स्वामी को बढ़ाती हैं और जिस प्रकार (ऊर्जाहुती पयसा) अन्न और जल को प्रदान करनेवाली द्यौ और पृथिवी दोनों (पयसा) अन्न और जल द्वारा (दुघे) समस्त मनोरथों की पूरक होकर (इन्द्रम्) जीव प्राण को (अवर्धताम्) बढ़ाती हैं उसी प्रकार (ऊर्जाहुती) उत्तम जल और अन्न को प्रदान करने वाली (देवी) विद्वानों की दो संस्थाएं (दुघे) सब कार्यों को पूर्ण करने वाली (सुदुघे) उत्तम पदार्थों को देने वाली होकर (पयसा) अन्न और जल से (वयोधसं देवम् इन्द्रम्) दीर्घजीवन-धारी उत्तम व्यवहार युक्त राष्ट्र की (अवर्धताम्) वृद्धि करें । (पङ्क्त्या छन्दसा शुक्रम् इन्द्रियम्) जिस प्रकार अन्न की परिपाक क्रिया से 'शुक्र' वीर्य को बल रूप से और (वयः) दीर्घ जीवन को (दधत्) धारण करता है उसी प्रकार (पङ्क्त्या छन्दसा) पंक्ति छन्द या अन्न के परिपक्व होने की क्रिया से (शुक्रम्) शुद्ध, वीर्य के जनक (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य बलकारी (वयः) अन्न को (इन्द्रे) राष्ट्र में (दधत्) धारण करावे । (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) धन भोक्ता राजा के ऐश्वर्य की वे दोनों संस्थाएं भी पालन और उपभोग करें । हे होतः ! (यज) उनको यह अधिकार प्रदान कर ।

देवा दैव्या होतारा देवमिन्द्रं वयोधसं देवौ देवमवर्द्धताम् । त्रिष्टुभा छन्दसेन्द्रियं त्विषिमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वीतां यज ॥ ४० ॥

अति जगती । निषादः ॥

भा०—(देवौ देवम्) विद्वान्, माता पिता जिस प्रकार उत्तम गुण-

वान् पुत्र को बढ़ाते हैं उसी प्रकार (दैव्या होतारा) विद्वानों में उत्तम विद्वान् (देवौ) कार्य-व्यवहार में कुशल (होतारौ) योग्य पदाधिकारों या ज्ञानों के देने हारे पुरुष (देवम् इन्द्रं वयोधसं) ऐश्वर्य के दाता बलशाली राजा की भी वृद्धि करते हैं। (त्रिष्टुभा छन्दसा) त्रिष्टुप् छन्द अर्थात् क्षात्र बल से वे (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् राष्ट्र में (त्विषिम् इन्द्रियं) शरीर में प्राणापान जिस प्रकार कान्ति को धारण कराते हैं उसी प्रकार वे राष्ट्र में तेज को और (वयः) बल, दीर्घ जीवन को धारण कराते हैं। (वसुवने वसुधेयस्य वीताम्) वे भी राष्ट्र पालक राजा के धन कोश की वृद्धि, पालन और उपभोग करें। (यज) हे विद्वन् ! उनको पदाधिकार प्रदान कर।

दे॒वीस्ति॒स्रस्ति॒स्रो दे॒वीर्व॑यो॒धसं॒ पति॒मिन्द्र॑मवर्द्धयन्। जग॑त्या॒ छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ शूष॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥ ४१ ॥

भुरिगतिजगती। निषादः ॥

भा०—(तिस्रः देवीः) तीनों श्रेणियों की उत्तम स्त्रियां जिस प्रकार अपने (पतिम्) पति की वृद्धि करती हैं उसी प्रकार (तिस्रः देवीः) तीनों पूर्वोक्त विद्वत्संस्थाएँ (वयोधसम्) राष्ट्र के बल को धारण करनेवाले (पतिम् इन्द्रम्) पालक राजा को बढ़ाती हैं। वे (जगत्या छन्दसा) जगती छन्द से अर्थात् वैश्य बल से (इन्द्रे) राष्ट्र में (शूषम्) पर राष्ट्रशोषक (इन्द्रियम्) बल और (वयः) जीवन को (दधत्) धारण कराते हैं। (वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु) वे भी राष्ट्रभोगी राजा के कोष की वृद्धि, पालन और उपभोग करें। (यज) हे होतः ! उनको तू अधिकार प्रदान कर।

दे॒वो न॑रा॒शꣳसो॑ दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वो दे॒वम॑वर्द्धयत्। वि॒राजा॑

छन्द॑सेन्द्रि॒यꣳ रू॒पमिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥४२॥

निचृदतिजगती । निषादः ॥

भा०—(नराशंसः) सब मनुष्यों से प्रशंसित अथवा जनों का उप-देष्टा (देवः) उत्तम पदार्थों और ज्ञानों का देने हारा है । (देवः) उत्तम विद्वान् जिस प्रकार (देवम्) विद्या के अभिलाषी पुरुष की ज्ञान से वृद्धि करता है उसी प्रकार वह विद्वान् पुरुष भी (वयोधसम् देवम् इन्द्रम् अवर्धयत्) दीर्घजीवी, बलको धारण करने वाले या अन्नदाता राजा इन्द्र की वृद्धि करता है । (विराजा छन्दसा) विराट् छन्द, अर्थात् विशेष कान्तिजनक ज्ञान से (इन्द्रे) राजा और राष्ट्र में (इन्द्रियं रूपम् वयः दधत्) इन्द्र पद के योग्य रूप और बलको धारण कराता है । वह भी (वसुधेयस्य वेतु) लोक के भोक्ता राजा के राज्य-कोष का उपभोग करे । यज) हे होतः ! विद्वन् उसको अधिकार दे ।

दे॒वो वन॒स्पति॑र्दे॒वमिन्द्रं॑ वयो॒धसं॑ दे॒वोदे॒वम॑वर्द्धयत् । द्विप॑दा॒ छन्द॑-सेन्द्रि॒यं भग॒मिन्द्रे॒ वयो॒ दध॑द्वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य वेतु॒ यज॑ ॥ ४३ ॥

पूर्ववत् ॥

भा०—(देवः देवम्) दानशील पुरुष जिस प्रकार धनके अभिलाषी पुरुष को धन देकर बढ़ाता है इसी प्रकार (वनस्पतिः देवः) वनों के पालक, वट आदि के समान आश्रितजनों को शरण देनेवाला, विद्वान् दाता पुरुष भी (वयोधसं) अन्न के दाता (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् राजा की (अवर्धयत्) वृद्धि करता है । वह (द्विपदा छन्दसा) दो चरणवाले भृत्य मनुष्यों के बल से (इन्द्रे) राष्ट्र और राजा में (इन्द्रियम्) इन्द्र पद के योग्य (भगम्) ऐश्वर्य और (वयः) बल को (दधत्) धारण कराता है । (वसुधेयस्य इत्यादि) पूर्ववत् ॥

देवं बर्हिर्वारितीनां देवमिन्द्रं वयोधसं देवं देवमवर्द्धयत् । ककुभा च्छन्दसेन्द्रियं यशऽइन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥४४॥

पूर्ववत् ॥

भा०—(वारितीनाम्) जलों द्वारा अति अधिक उन्नत नदियों का (देवं बर्हिः) उत्तम जल जिस प्रकार (देवम्) दिव्य समुद्र को बढ़ाता है उसी प्रकार (वारितीनाम्) वारण करने में समर्थ गतियों वाली सेनाओं का (बर्हिः) अति विस्तृत (देवम्) विजयशील सेना बल, (वयोधसम्) अन्नदाता, (इन्द्रं देवं) ऐश्वर्यवान् राजा के बल को (अवर्धयत्) वृद्धि करता है । (ककुभा छन्दसा) ककुप् अर्थात् दिशाओं में व्यापक या सर्वश्रेष्ठ, सर्वाच्छादक बल से (इन्द्रे) राष्ट्र और राजा में (इन्द्रियं) इन्द्र पद के योग्य (वयः) बल और (यशः) यश, कीर्त्ति (दधत्) धारण कराता है । (वसुवने०) इत्यादि पूर्ववत् ।

देवो अग्निः स्विष्टकृद्देवमिन्द्रं वयोधसं देवो देवमवर्द्धयत् । अतिच्छन्दसा छन्दसेन्द्रियं क्षत्रमिन्द्रे वयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतु यज ॥ ४५ ॥

स्वराट् अति जगती । निषादः ॥

भा०—(देवः देवम्) परमेश्वर जिस प्रकार जीव को बढ़ाता है, विद्वान् जिस प्रकार ज्ञान के इच्छुक शिष्य को बढ़ाता है उसी प्रकार (स्विष्टकृत्) समस्त राष्ट्र के सुख इष्ट धन जन को उत्पन्न करनेवाला (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष (देवः) सर्व विद्याप्रकाशक होकर (वयोधसम्) सब के अन्नदाता (इन्द्रम् देवम् अवर्धयत्) राजा और राज्य की वृद्धि करता है । और (अतिछन्दसा छन्दसा) अति बलशाली रक्षा साधन से (इन्द्रे) राज्य में (इन्द्रियं) इन्द्र पद के योग्य (क्षत्रम्) क्षात्र-बल और ऐश्वर्य और (वयः) अन्न और बल (दधत्) धारण कराता है । (वसुवने०) इत्यादि पूर्ववत् ।

अग्निम॒द्य होता॑रमवृणीता॒यं यज॑मानः॒ पच॒न् पक्तीः॒ पच॑न् पुरो॒डाशं॑ब॒ध्नन्निन्द्रा॑य व॒यो॒ध॒से छाग॑म् । सू॒प॒स्था ऽअ॒द्य दे॒वो वन॒स्पति॑रभवदिन्द्रा॑य व॒यो॒ध॒से छागे॑न । अघ॒त्तं मे॑द॒स्तः प्रति॑पचताग्र॑भीदवी॑वृधत्पुरो॒डाशे॑न । त्वाम॒द्य ऽऋ॑षे ॥ ४६ ॥

भा०—व्याख्या देखो इसी अध्याय का मन्त्र २३ ।

॥ इत्यष्टाविंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते

यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तविंशोऽध्यायः ।

॥ अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥

[अ० २९] प्रजापतिर्ऋषिः ॥

॥ ओ३म् ॥ समिद्धोऽ अञ्जन् कृदरं मतीनां घृतमग्ने मधुमत् पिन्वमानः । वाजी वहन्वाजिनं जातवेदो देवानां वक्षि प्रियमा सधस्थम् ॥ १ ॥

[१–११] अश्वः सामुद्रिः, बृहदुक्थो वामदेव्यो वा ऋषिः । आप्रियः । अग्निर्जातवेदा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! अग्रणी विद्वान् पुरुष ! हे (जातवेदः) विद्याओं में निष्णात, ज्ञानप्रद बुद्धिमन् ! जिस प्रकार (समिद्धः) खूब प्रदीप्त हुआ अग्नि (मधुमत्) मधुर अन्न से युक्त (घृतम्) घी को (पिन्वमानः) सेवन करके अर्थात् चरु और स्निग्ध पदार्थ पाकर (कृदरं अञ्जन्) सकल पदार्थों के छिन्न-भिन्न करनेवाले गुण को प्रकट करता है इसी प्रकार तू भी (मधुमत् घृतम् पिन्वमानः) मधुर अन्न से युक्त घृत आदि स्निग्ध, पुष्टिकारक पदार्थों का सेवन करता हुआ (मतीनाम्) मनन योग्य बुद्धियों के (कृदरम्) समस्त पदार्थों के विवेक करनेवाले गुण को (अञ्जन्) प्रकट करता हुआ (देवानां प्रियम्) विद्वानों के प्रिय (सधस्थम्) एक साथ स्थिर होने योग्य, सर्वमान्य सिद्धान्त तक (वाजिनं) वीर्यवान् पुरुष को (वहन्) उठा कर जिस प्रकार (वाजी) घोड़ा स्थानान्तर को ले जाता है उसी प्रकार (आ वक्षि) पहुँचा ।

जाठराग्नि के दृष्टान्त से जैसे—(मधुमत् घृतं पिन्वमानः) अन्न युक्त घृत को सेवन करके जिस प्रकार जाठराग्नि (मतीनां कृदरं) मनुष्यों के उदर की शक्ति को (अञ्जन्) प्रकट करता है उसी प्रकार हे पुरुष !

मधुर घृत का सेवन करके (मतीनाम्) बुद्धियों के (कृदरम्) विवेक-जनक रहस्य को प्रकट कर। और हे (जातवेदः) बुद्धिमान् पुरुष! (वाजिनं वहन् वाजी) बलवान् पुरुष को जिस प्रकार वेगवान् अश्व उठा कर लेजाता है उसी प्रकार तू स्वयं (वाजी) संग्राम सम्पन्न, युद्धविजयी होकर (वाजिनम्) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (वहन्) धारण करता हुआ (देवानां प्रियम् सधस्थम्) देवों के प्रिय, एकत्र होने के स्थान सभा-भवन को (आ वक्षि) धारण कर, उसका सभापति बनकर उसको चला।

अर्थात्—जैसे जठराग्नि अन्नादि खाकर मनुष्यों के उदर शक्ति को प्रकट करता है और (देवानां) देव, इन्द्रियों के (सधस्थं आवक्षि) एकत्र रहने के स्थान शरीर को धारण करता है उसी प्रकार राजा या सभापति (मधुमत्) अन्न युक्त या मधुर फलों से युक्त (घृतम्) तेजस्वी सूर्य के पद को सेवन करता हुआ बुद्धियों के या मनुष्यों के बीच राजधानी या केन्द्र स्थान को प्रकट करता हुआ स्वयं (समिद्धः) अति तृप्त होकर (सधस्थम्) एकत्र रहने के स्थान सभास्थल या राष्ट्र को धारण करे।

घृतेनाञ्जन्त्सं पथो देवयानान् प्रजानन्वाज्यप्येतु देवान्। अनु त्वा सप्ते प्रदिशः सचन्ताᳬ स्वधामस्मै यजमानाय धेहि ॥ २ ॥

भा०—हे (सप्ते) राष्ट्र में व्यापक ! हे युद्ध में सर्पणशील ! हे समवाय या परस्पर संघ बनानेहारे ! (घृतेन अञ्जन्) जिस प्रकार आग घी से और विद्युत् जल से प्रकट होता है उसी प्रकार तू स्वयं (घृतेन) तेज से (अञ्जन्) प्रकट होता हुआ (देवयानान्) विद्वानों के चलने योग्य संग्राम-विजयी पुरुषों के वर्त्तने योग्य, राजनीति, उत्तम (पथः) मार्गों मर्यादाओं या चालों को (प्रजानन्) भली प्रकार जानता हुआ (वाजी) संग्रामों में कुशल, ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् और अश्व के समान वेगवान् होकर

(देवान्) विद्वानों और विजयशील राजाओं को (अपि एतु) प्राप्त हो। हे (सप्ते) संघ बना लेने में कुशल ! समवायकारिन् ! (त्वा अनु) तेरे अनुकूल ही (प्रदिशः) उत्तम विद्वान् पुरुष अथवा (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं के वासीजन, (सचन्ताम्) संघ बनाकर, सुव्यवस्थित होकर रहें । और तू (अस्मै यजमानाय) इस दानशील, करप्रद माण्डलिक पुरुष को (स्वधाम् धेहि) अपने राष्ट्र धारण करने के बल, अधिकार आदि प्रदान कर । अथवा हे राष्ट्र! तू (अस्मै यजमानाय) इस दानशील या संगतिकारक सुव्यवस्थापक राजा को (स्वधाम् देहि) अपने शरीर, बल, राष्ट्र के धन आदि के धारण करने के बल आदि प्रदान कर ।

ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्नाशुश्चासि मेध्यश्च सप्ते ।
अग्निष्ट्वा देवैर्वसुभिः सजोषाः प्रीतं वह्निं वहतु जातवेदाः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! संग्रामजयशील ! तू (ईड्यः च असि) स्तुति के योग्य है । और तू (वन्द्यः च असि) अभिवादन करने योग्य है । (आशुः च असि) अति शीघ्र कार्यकारी, वेगवान् भी है । और (मेध्यः च) सत्संग करने योग्य है । (अग्निः) अग्रणी, ज्ञानवान् (जातवेदाः) विद्वान् प्रज्ञावान् पुरुष, (वसुभिः देवैः) प्रजाओं को बसाने वाले विद्वानों या स्वयं राष्ट्र में बसने वाले व्यवहारकुशल प्रजाजनों के साथ (सजोषाः) समान भाव से प्रेमयुक्त होकर (प्रीतं त्वा) अति प्रसन्न तुझ (वह्निं) राष्ट्र के वहन करने में समर्थ पुरुष को (वहतु) प्राप्त हो, तेरे दिये पदों को धारण करे ।

स्तीर्णं बर्हिः सुष्टरीमा जुषाणोरु पृथु प्रथमानं पृथिव्याम् ।
देवेभिर्युक्तमदितिः सजोषाः स्योनं कृण्वाना सुविते दधातु ॥ ४ ॥

भा०—राष्ट्रपक्ष में—हम लोग (स्तीर्णम्) आच्छादित, सुरक्षित, (बर्हिः) प्रजा लोक को (सु स्तरीम) उत्तम रीति से विस्तृत करें ।

और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (उरु) वहुत बड़े रूप में (पृथु) और विस्तृत रूप में (प्रथमानम्) स्वयं फैलनेवाले (देवेभिः युक्तम्) वीर विजयी, विद्वान्, व्यवहारकुशल, तेजस्वी, रक्षाशील पुरुषों से युक्त प्रजा-जन को, (सजोषाः) अति प्रेम युक्त होकर (अदितिः) अखण्ड शासन व्यवस्था, (स्योनं कृण्वाना) सुखदायी करती हुई (सु-इते) उत्तम रीति से संचालित मार्ग में (दधातु) रक्खे, उसका पालन करे।

विद्युत्पक्ष में—(स्तीर्णम्) आच्छादित, साङ्गोपाङ्ग यानादि यन्त्रों को और (पृथु प्रथमानम्) विस्तृत, विख्यात एवं फैले हुए (बर्हिः) आकाश या जल में भी व्यापक (देवेभिः युक्तम्) दिव्य पदार्थ जलादि से युक्त सबको (जुषाणा) प्राप्त और सबको (स्योनं कृण्वाना) सुखकारी करती हुई (अदितिः) अखण्ड शक्ति विद्युत् आदि (सुविते) उत्तम गतिशील यन्त्रादि में बल (दधातु) धारण करावे।

एताऽ उ वः सुभगा विश्वरूपा विपक्षोभिः श्रयमाणाऽ उदातैः।
ऋष्वाः सतीः कवषः शुम्भमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा भवन्तु ॥५॥

भा०—(एताः) ये नाना उत्तम (द्वारः) गृह के द्वार और (देवीः) देवियां दोनों समान रूप से आगे लिखे प्रकार की हों। द्वारों के पक्ष में—(एताः द्वारः) ये द्वार (देवीः) प्रकाशयुक्त, (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, उत्तम रीति से सेवन योग्य, सुखकारी, सुकर, (विश्वरूपाः) नाना रूपों के (आतः) बराबर चलने वाले, आने जानेवाले (विपक्षोभिः) विविध प्रकार के पक्षों से (उत् श्रयमाणा) खूब ऊंचे तक विस्तृत (ऋष्वाः) बड़ी (सतीः) होकर भी (कवषः) उत्तम शब्द करनेहारी, (शुम्भमानाः) सुशोभित (सुप्रायणाः) सुख से आने जाने योग्य (भवन्तु) हों।

स्त्रियों के पक्ष में—(एताः) वे (देवीः) स्त्रियां (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्य और अंग सौन्दर्य से युक्त, उत्तम भगवती हों, दुर्भगा न हों, वे

(विश्वरूपाः) नाना रूपों और नाना रुचिकर गुणोंवाली, (विपक्षोभिः) नाना ग्राह्य पदार्थों से और (विश्रयमाणाः) विविध प्रकार से सेवन करने वाली और (आतैः) नाना प्रकार के आचार व्यवहारों से (उत्-श्रयमाणाः) उत्तम पदको प्राप्त होती हुई (ऋष्वा) बड़ी (सतीः) सदाचारिणी (कवषः) उत्तम मधुर शब्द बोलनेहारी, (शुम्भमानाः) सुशोभित, आभूषित, (सुप्रायणाः) उत्तम चाल चलनेवाली, सुख से गमन करने योग्य अथवा उत्तम गृह स्थान आदि से सम्पन्न होकर (भवन्तु) रहें।

शत्रुवारक सेनाओं के पक्ष में—(द्वारः देवीः) विजयशील, शत्रुओं के वारण करने में समर्थ सेनाएं (सुभगाः) उत्तम ऐश्वर्यवाली, (पक्षोभिः) पक्षों-बाजुओं से (आतैः) नाना चालों से (विश्रयमाणाः) विविध रूप धारण करने वाली (उत्-श्रयमाणाः) उत्तम रूप को धारण करने वाली (ऋष्वाः) शत्रुनाशक (सतीः) होकर, (कवषः) नाना शब्द करती हुई, (शुम्भमानाः) चमचमाती हुई, (सुप्रायणाः भवन्तु) उत्तम २ अयन, पदों और स्थानों से युक्त हों।

अन्तरा मित्रावरुणा चरन्ती मुखं यज्ञानामभि संविदाने।
उषासा वाᳫं सुहिरण्ये सुशिल्पे ऽऋतस्य योनाविह सादयामि ॥६॥

भा०—(अन्तरा) शरीर के भीतर जिस प्रकार (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, प्राण और उदान, विचरते हैं और जिस प्रकार ब्रह्माण्ड में सूर्य और वायु विचरते हैं उसी प्रकार राष्ट्र के बीच में (मित्रावरुणौ) 'मित्र' अर्थात् प्रजा के प्रति स्नेहवान् और उनको मृत्यु से बचाने वाला और 'वरुण' दुष्टों का वारक अर्थात्, न्यायाधीश और दुष्टों का दमनकारी दो विभाग (उषासा) दिन और रात्रि के समान न्याय-प्रकाशक और प्रजा-पालक, (यज्ञानां) समस्त श्रेष्ठ व्यवहारों, परस्पर की सुसंगत व्यवस्थाओं, या प्रजा के पालनरूप यज्ञ के (मुखम्) मुख्य स्वरूप, राजा के साथ (अभि

भा०—(त्वष्टा) कान्तिमान्, वीर्यवान् पुरुष (देवकामम्) विद्वानों के प्रिय (वीरं) वीर पुत्र को (जजान) उत्पन्न करता है। (त्वष्टा) त्वष्टा के शिल्पों से ही (अर्वा) गतिशील यन्त्र भी (आशुः) वेगवान् (अश्वः) अश्व के समान मार्ग तय करने वाला (जायते) उत्पन्न होता है। (त्वष्टा) समस्त विश्व का रचयिता विश्वकर्मा परमेश्वर (विश्वं भुवनम्) समस्त भुवन, जगत् को पैदा करता है। इस कारण हे (होतः) होतः ! विद्वन् ! (बहोः कर्त्तारम्) बहुत से वीर कार्यों और वीर पुरुष उत्पन्न करनेवाले बहुत से पदार्थों के रचनेवाले और बहुत बड़े विश्व के रचने वाले, उत्तम गृहस्थ और राजा, उत्तम शिल्पी और महान् परमेश्वर को (इह) इस महान् यज्ञ, अश्वमेध या राष्ट्रकार्य में और उपासना में (यक्षि) क्रम से अधिकार प्रदान करता, नियुक्त करता एवं उपासना करता हूं। अर्थात् वीर्यवान् गृहस्थ को गृहस्थ यज्ञ अर्थात् पुत्रप्रजनन कार्य में नियुक्त कर, शिल्पवान् पुरुष को राष्ट्र में नियुक्त कर के देवोपासना में परमेश्वर उपासक नियुक्त कर ।

अश्वो॑ घृ॒तेन॒ त्मन्या॒ सम॑क्त॒ उप॑ दे॒वाँ२॥ ऋ॑तु॒शः पाथ॑ एतु। वन॒स्पति॑र्देवलो॒कं प्र॑जा॒नन्न॒ग्निना॑ ह॒व्या स्व॑दि॒तानि॑ वक्षत् ॥ १० ॥

भा०—(अश्वः) सूर्य जिस प्रकार (घृतेन त्मन्या) अपने तेज से (समक्तः) युक्त होकर (ऋतुशः) प्रत्येक ऋतु में (देवान्) किरणों के द्वारा (पाथः एतु) जल को ग्रहण करता है उसी प्रकार (अश्वः) राष्ट्र का भोक्ता राजा (त्मन्या) स्वयं (घृतेन सम् अक्तः) तेज से सम्पन्न होकर (ऋतुशः) प्रति ऋतु, (पाथः) अपने पालन कार्य के निमित्त (देवान् उप एतु) देवों, विद्वानों को प्राप्त हो। (वनस्पतिः) मनुष्यों या सेवनीय पदार्थों का पालक (देवलोकं प्रजानन्) विद्वान् जनों को जानता हुआ, (अग्निना स्वदितानि हव्यानि) अग्निद्वारा स्वदित,

स्वीकृत, सुपक्व अन्नों को (वस्तु) प्राप्त करे। अर्थात् अन्नों को प्रथम यज्ञाग्नि में देकर उसके बाद स्वयं अन्नों को ग्रहण करे। अथवा (अग्निः) अग्रणी पुरुष द्वारा प्रथम उपभुक्त शेष अन्नों को धारण करे।

प्रजापतेस्तपसा वावृधानः सद्यो जातो दधिषे यज्ञमग्ने।
स्वाहाकृतेन हविषा पुरोगा याहि साध्या हविरदन्तु देवाः ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्रणी पुरुष! राजन्! विद्वन्! तू (प्रजापतेः) प्रजा के पालक राजा पद के (तपसा) तप से, प्रभाव से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (सद्यः जातः) शीघ्र ही राजा बनकर (यज्ञम्) राष्ट्र रूप सुव्यवस्थित कार्य को (दधिषे) धारण कर। तू (स्वाहाकृतेन) स्वाहा द्वारा अग्निमें आहुति किये हुए (हविषा) अन्न से अथवा (सु-आह-कृतेन) उत्तम कीर्ति के जनक, उत्तम रीति से सम्पादित (हविषा) उपाय से (पुरोगाः) सबको अग्रगामी होकर (याहि) प्रयाण कर। और (साध्याः) उत्तम रीति से साधन सम्पन्न (देवाः) देव, विद्वान्गण और विजयी वीर जन (हविः अदन्तु) अन्न और उपादेय राष्ट्र का उपभोग करें।

जिस प्रकार अग्नि में आहुति किया चरु भस्म होकर अन्य दिव्य पदार्थों में लीन हो जाता है इसी प्रकार राजा द्वारा प्राप्त किया, कर रूप में अन्नादि पदार्थ विद्वानों और वीर, विजेता सेना पुरुषों को प्राप्त होता है।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥ १२ ॥

ऋ० १। १६३। १॥

[१२–२४] जमदग्निर्दीर्घतमाश्च ऋषी। अश्वस्तुतिः। त्रिष्टुभः। धैवतः ॥

भा०—हे (अर्वन्) वेग से प्रयाण करनेहारे राजन्! (यत्) जब तू (समुद्रात् उद्यन्) समुद्र से ऊपर उठते हुए सूर्य या मेघ के समान

उदय को प्राप्त होकर (प्रथमं जायमानः) पहले २ उत्पन्न होकर, राजा बनाया जाकर समस्त जन-सागर में (वा) और (पुरीषात्) ऐश्वर्यमय पदार्थों के बीच में से ऊपर उठता हुआ, उन्नत राजपद पर विराजता हुआ (अक्रन्दः) शब्द करता है, आज्ञा प्रदान करता है या गर्जना या अपनी राजा होने की घोषणा करता है उस समय तेरी (पक्षा) दोनों बाजू (श्येनस्य) बाज पक्षी के समान अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने में समर्थ दायें बायें दो सेनाओं के दस्ते (Wings) और (हरिणस्य) हरिण की (बाहू) अगली टांगों के समान अति शीघ्रगामी दो सेनादल (बाहू) बाहुओं के समान शत्रु पीड़न में समर्थ आगे को होते हैं और उस समय (ते) तेरा स्वरूप (महि) बहुत अधिक (उपस्तुत्यं जातम्) वर्णन करने योग्य हो जाता है।

यमेन दत्तं त्रित ऽएनमायुनगिन्द्र ऽएणं प्रथमो ऽअध्यतिष्ठत् ।
गन्धर्वो ऽअस्य रशनामगृभ्णात्सूरादश्वं वसवो निरतष्ट ॥ १३ ॥

ऋ० १ । १६३ । २ ॥

भा०—(त्रितः) तीनों वेदों का विद्वान् त्रिविध शक्तियों से सम्पन्न पुरुष, (यमेन) नियम करने वाले पद द्वारा (दत्तम्) प्रदत्त, स्वीकृत (एनम्) इस राष्ट्र को (आयुनग्) नियुक्त करता है। (इन्द्रः) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष (एतम्) इस राष्ट्र को (प्रथमः) सबसे प्रथम (अधि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता रूप से विराजता है। (गन्धर्वः) गौ, पृथिवी या आज्ञारूप वाणी के धारण करने में समर्थ पुरुष (अस्य) इस राष्ट्र रूप अश्व की (रशनाम्) रस्सी, राज्यशासन की बागडोर को (अगृभ्णात्) धारण करता है। (वसवः) हे वसुगणो ! प्रजाजनो ! विद्वानो ! (सूरात्) सबके प्रेरक सूर्य के तेज से (अश्वम्) इस व्यापक राज्य को (निर् अतष्ट) निर्माण करो। बनाओ, सुव्यवस्थित करो।

अध्यात्म में—(यमेनदत्तं) प्राण वायु से धारण किये हुए इस शरीर को (त्रितः) तीन धातुओं से युक्त अन्न या आत्मा (आयुनक्) युक्त करता है। (इन्द्रः) जीव इसका अधिष्ठाता है। गन्धर्व मन इसको 'रशना' वागडोर को सम्भालता है। (वसवः) बसनेवाले चक्षु आदि इन्द्रिय (सूरात्) प्रेरक प्राण से ही इसको निर्माण करते हैं।

असि यमो ऽअस्यादित्यो ऽअर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन। असि सोमेन समया विपृक्त ऽआहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ १४ ॥

ऋ० १। १६३। ३॥

भा०—हे राजन्! तू (यमः असि) स्वयं प्राण वायु के समान राष्ट्र का नियामक है। (आदित्यः असि) तू सूर्य के समान सब कार्यों का प्रकाशक, सूर्य के समान प्रजा से कर लेनेहारा है। तू ही (अर्वन् असि) शीघ्र गतिवाला होकर (गुह्येन व्रतेन) रक्षा करने योग्य हम से (त्रितः) तीनों लोकों में व्यापक वायु के समान उत्तम मध्यम और अधम, व राजा, शासक और प्रजा तीनों में व्यापक है और (सोमेन) ऐश्वर्य मय राष्ट्र स (समया विपृक्तः) सदा संयुक्त रहता है। (ते) तेरे (दिवि) राजसभा में (त्रीणि बन्धनानि) तीनों प्रकार के बंधन के (आहुः) बतलाते हैं। सूर्य लोक को बांधने वाले तीन बंधन, आकर्षण प्रकाश और प्राण है। परस्पर समाज के तीन बंधन शरीररक्षा, वाणी की प्रतिज्ञा और मानस प्रेम। राजा इन तीनों से बंधा रहे। वह आचार में पवित्र रहे, वाणी में सच्चा रहे और मन में प्रजा के प्रति प्रेमी रहे। सूर्य के द्यौ लोक में तीन बांधने के साधन हैं आकर्षण, तेज और गति या चेतन सामर्थ्य। इसी प्रकार उत्पन्न जीव के भी ज्ञानमय जीवन में तीन बंधन हैं देव ऋण, पितृ ऋण और ऋषि ऋण जिनके प्रतिनिधि यज्ञोपवीत के तीन सूत्र हैं।

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त ऽआहुः परमं जनित्रम् ॥ १५ ॥

ऋ० १ । १६३ । ४ ॥

भा०—हे राजन् ! हे विद्वन् ! हे आत्मन् ! (दिवि) द्यौ लोक में जिस प्रकार सूर्य के (त्रीणि बन्धनानि) तीन बांधनेवाले बल हैं और (त्रीणि अप्सु) तीन ही बंधन जलों में हैं, अन्न, स्थान और बीज । और इसी प्रकार (त्रीणि अन्तः समुद्रे) तीन ही बंधन अन्तरिक्ष में वृष्टि के उत्पादक हैं मेघ, विद्युत् और गर्जन । उसी प्रकार हे राजन् ! (दिवि) ज्ञान प्रकाश करनेवाली राजसभा में (ते त्रीणि बंधनानि) तेरे तीन प्रकार के बंधन या मर्यादाएँ हैं । (त्रीणि अप्सु) तीन बंधन आप्तजनों या प्रजाओं के बीच में है और (त्रीणि अन्तः समुद्रे) समुद्र के समान अपार अनंत सुखजनक पदार्थों के उत्पादक, राष्ट्र या सेना समुदाय में भी तीन प्रकार के बंधन कहे जाते हैं । हे (अर्वन्) अर्वन् ! राजन् ! विद्वन् ! (उतेव) और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ होकर तू (मे) मुझ राष्ट्र जन को (छन्त्सि) सन्मार्ग का उपदेश कर (यत्र) जहां जिस कार्य में (ते) तेरा (परमं) परम, सब से उत्कृष्ट (जनित्रं) जन्म या विकास हुआ (आहुः) बतलाते हैं ।

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानांᳬं सनितुर्निधाना । अत्रा ते भद्रा रशना ऽअपश्यमृतस्य या ऽअभिरक्षन्ति गोपाः ॥ १६ ॥

भा०—हे (वाजिन्) संग्रामशील, ऐश्वर्यवान् ! राजन् ! (ते) तेरे (इमा) ये (अवमार्जनानि) राष्ट्र के कण्टक शोधन करने के उपाय हैं । और (सनितुः) राष्ट्र के विभाग करनेहारे तेरे (शफानां) चरणों या पदों के ये (निधाना) रखने के स्थान या (शफानां निधाना) खुरों के समान आश्रयभूत राज्याङ्गों या अधिकार पदों के लिये खजाने हैं।

और (अत्र) यहां (ते) तेरे निमित्त (भद्राः) कल्याण करनेवाली (गोपाः) रक्षण करनेवाली (रशनाः) रस्सियों के समान बांधनेवाली मर्यादाएँ हैं (याः) जो (ऋतस्य) सत्य व्यवहार, यज्ञ, राष्ट्र की (अभिरक्षन्ति) रक्षा करती हैं ।

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।
शिरो ऽअपश्यम्पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ १७ ॥

भा०—मैं (दिवा) दिन के समय आकाश मार्ग से (पतयन्तं) जाते हुए (पतङ्गम्) सूर्य के समान (ते आत्मानम्) हे राष्ट्रपते ! तेरे आत्मा, स्वरूप को (मनसा) मन से, ज्ञानपूर्वक (आरात्) सदा निकट में ही (अजानाम्) जानता हूं, समीप ही विचारता हूं । और (अरेणुभिः) धूलि आदि से रहित (सुगेभिः) सुगम, सरल (पथिभिः) मार्गों से (जेहमानं) जाते हुए (पतत्रि) नित्य गमन करते हुए (शिरः) तेरे शिर अर्थात् मुख्य भाग को, मुख्य पदपर स्थित व्यक्ति को (अपश्यम्) देखूं । अर्थात् राजा स्वयं साक्षात् आकाश में सूर्य के समान तेजस्वी होकर रक्षा कार्य में रहे । उसका शिर, मुख्य भाग उत्तम विशुद्ध मार्गों से गमन करे । वह सात्विक सन्मार्ग पर चले ।

आत्मा के पक्ष में—हे जीव ! तेरे आत्मा को मैं आकाश में जाते सूर्य के समान जानूं । (सुगेभिः) सुखदायी (अरेणुभिः) राजस् तामस विकारों से रहित (पथिभिः) मार्गों से जाते हुए (शिरः) मुख्य, मनको जाता हुआ देखूं । अर्थात् आत्मा को सूर्य के समान तेजस्वी जानूं और मस्तक को सद्विचारों से युक्त स्वच्छ मार्ग में जाता पाऊं ।

अत्रा ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिष आ पदे गोः ।
यदा ते मर्त्तो ऽअनु भोगमानडादिद्ग्रसिष्ठ ओषधीरजीगः ॥१८॥

भा०—हे राजन् ! (अत्र) इस (गोः पदे) पृथ्वी के शासनाधिकार पद पर विराजमान (इषः) अन्नादि पदार्थों या सेनाओं को (जिगीषमा-

णम्) विजय करने की इच्छा वाले (ते) तेरे (उत्तमम्) उत्तम (रूपम्) रूप को (अपश्यम्) देखता हूं। और (यदा) जब (ते) तेरे अधीन रहने वाला (मर्त्तः) मनुष्यजन, (भोगम् अनु आनड्) भोग-योग्य सम्पत्ति प्राप्त करता है (आत् इत्) तभी तू (ग्रसिष्ठः) बहुत खाने वाला जीव जिस प्रकार (ओषधीः) अन्नादि पदार्थ खाता है उसी प्रकार तू भी (ग्रसिष्ठः) शत्रुओं के राज्यों और धनों को सब से अधिक ग्रसन में समर्थ होकर (ओषधीः) संताप देने वाले शत्रुओं को, (अजीगः) ग्रस लेता है।

आत्मा के पक्ष में—हे आत्मन् ! (गोः पदे) वाणी के या गमन योग्य, प्राप्तव्य अपने (पदे) ज्ञानमय स्वरूप पर विजय चाहने वाले तेरे (रूपम्) सुन्दर रूप को मैं देखूं। (ते मर्त्तः) तेरा मरणधर्मा शरीर जब (भोगम् अनु आनड्) भोग को चाहता है तभी (ग्रसिष्ठः) बहुत खाने वाला भोक्ता होकर (ओषधीः अजीगः) जीवनाग्नि देनेवाले अन्नादि ओषधियों और उनके समान तापदायी भोगों को ग्रसता है।

अनु॑ त्वा॒ रथो॒ऽअनु॒ मर्यो॑ऽअर्व॒न्ननु॒ गावो॒ऽनु भगः॑ क॒नीना॑म्।
अनु॒ व्राता॑स॒स्तव॑ स॒ख्यमी॑यु॒रनु॑ दे॒वा म॑मिरे वी॒र्यन्ते ॥ १९ ॥

भा०—हे (अर्वन्) ज्ञानवन्, व्यापक ! राष्ट्र ! हे राष्ट्रपते ! जिस प्रकार अश्व के पीछे (रथः, मर्य, गावः) रथ, मनुष्य और अन्य पशु आदि रहते हैं उसी प्रकार (त्वा अनु) तेरे पीछे २ (रथः) रथ आदि यान, एवं रमण योग्य पदार्थ, (अनु मर्यः) तेरे पीछे समस्त मनुष्य, (अनु गावः) तेरे पीछे, समस्त गौ आदि दुधार पशुगण, (अनु कनीनां भगः) तेरे पीछे २ तेरे अधीन कन्याओं का सौभाग्य, (अनु व्रातासः) तेरे अधीन समस्त मनुष्य गण (सख्यम् ईयुः) तेरे अधीन होकर ही मित्रता को प्राप्त होते हैं (देवाः) देवगण, (ते वीर्यम्) तेरे ही बल का (अनु ममिरे) तेरे अनुकूल

निर्माण करते हैं। राजा के सुव्यवस्था कारी रहने पर रथ, जन, पशु, स्त्रियों की रक्षा, मनुष्य संघ, उनके परस्पर मैत्री भाव आदि स्थिर हैं।

हिर॑ण्यशृङ्गोऽयो॑ ऽअस्य॒ पादा॒ मनो॑जवा॒ अव॑र॒ऽ इन्द्र॑ऽ आसीत्।
दे॒वाऽ इद॑स्य हवि॒रद्य॑माय॒न्योऽ अर्व॑न्तं प्रथ॒मो ऽअ॒ध्यति॑ष्ठत्॥२०॥

भा०—(यः) जो (प्रथमः) सब से प्रथम, सर्वश्रेष्ठ, सब से मुख्य होकर (अर्वन्तम्) व्यापक शक्ति वाले, अतिवेगवान् इस राष्ट्र पर (अधि अतिष्ठत्) अधिष्ठाता होकर विराजता है (देवाः) देव, विद्वान् एवं विजय-शील शूरवीर पुरुष भी (अस्य) इसके (हविरन्नम्) अन्न के समान भोग्य वस्तु (आयन्) बन जाते हैं। (हिरण्यशृङ्गः) लोह के बने हिंसा साधनों, हथियारों से युक्त (इन्द्रः) इन्द्र, शत्रुनाशक सेनापति भी (अस्य अवरः) इसके अधीन नीचे पद पर (आसीत्) होता है। और (अस्य) इसके (मनोजवाः पादाः) मनके समान अति वेग वाले पैरों के समान इसके शेष अङ्ग अर्थात् नीचे के पदाधिकारी भी (मनोजवाः) इसके मन को अनुकूल वेग से कार्य करने वाले और (अयः) सुवर्णादि वेतन से बद्ध हैं।

ई॒र्मान्ता॑सः॒ सिलि॑कमध्यमासः॒ सꣳ शूर॑णासो दि॒व्यासो॒ ऽअत्याः॑।
ह॒ꣳसा ऽइ॑व श्रेणि॒शो य॑तन्ते॒ यदाक्षि॑षुर्दि॒व्यमज्म॒मश्वाः॑ ॥ २१ ॥

भा०—(ईर्मान्तासः) ईर्म अर्थात् बाहुरूप से पृथ्वी के परले अन्त को विजय करनेवाले, (सिलिकमध्यमासः) कृश पेट वाले, अथवा अपने बीच मुखिया को रखनेवाले ऐसे (शूरणासः) शीघ्र युद्धविजयी, (दिव्यासः) तेजस्वी (अत्याः) नित्य गतिशील, वेगवान्, (अश्वाः) अश्वारोहीगण (यद्) जब (दिव्यम्) विजय करने योग्य (अज्मम्) संग्राम (सम् आक्षिषुः) प्राप्त करते हैं तब (हंसा इव) पंक्तिबद्ध सारस पक्षियों के समान (श्रेणिशः) श्रेणि, दल या दस्ता बना २ कर (यतन्ते) युद्ध करते हैं।

अध्यात्म योगियों के पक्षमें—(ईर्मान्तासः) प्रेरित प्राप्त अन्न वाले, सिद्धान्त के विज्ञ, या उद्देश्य तक पहुँचे हुए (सिलिकमध्यमासा:) मध्यम भाग जिनके क्षीण, कृश हो गये हैं ऐसे (शूरणासः) अति वीर, (अत्या:) नित्य गतिशील आत्मा, (अश्वा.) ज्ञानी होकर यदा (दिव्यम्) दिव्य (अज्मम्) 'अजनि' अर्थात् मोक्ष को (समाक्षिपुः) प्राप्त होते हैं तब (हंसा इव) हंसों के समान (श्रेणिशः) श्रेणि बना २ कर एक दूसरे के पीछे सन्मार्ग पर चलने का अभ्यास करते हैं ।

'ईर्मान्तासः'—ईर्मौ इति बाहू । समीरितान्तः पृथ्व्यन्ताः वा (निरु०) । 'सिलिकमध्यमास:'—संसृत मध्यमाः, शीर्षमध्यमाः (निरु०) संलग्न मध्यमाः इति दया० । मध्ये निबिडा इति सायणः । संश्लिष्टोदरा, निरुदरा इति उवटः । कृष्णोदराः इति महीधरः ।

'हंसाः'—'घ्नन्त्यध्वानं' इति (निरु०) ।

'अज्मम्'—अजनिम्, आजिम् (निरु०) । अजन्ति गच्छन्ति यम् मार्गम् इति दया० । अज्मम् संग्रामम् इति मही० ।

'श्रेणिशः'—बद्धपंक्तयः इति दया० । शीघ्रधावनाय श्रेणिशः पंक्ती भूय । इति सा० ।

तव॒ शरी॑रं पतयि॒ष्ण्व॑र्व॒न्तव॑ चि॒त्तं वात॑ऽइव॒ ध्रजी॑मान् ।
तव॒ शृङ्गा॑णि॒ विष्ठि॑ता पुरु॒त्रार॑ण्येषु॒ जर्भु॑राणा चरन्ति ॥ २२ ॥

भा०—हे (अर्वन्) वीर पुरुष ! (तव शरीरम्) तेरा शरीर (पतयिष्णु) वेग से जाने में समर्थ हो । (तव चित्तं) तेरा चित्त (वातः इव) वायु के समान (ध्रजीमान्) बहुत अधिक बल से युक्त हो । तेरे (शृङ्गाणि) सींगों के समान हिंसा करने वाले सेना दल (अरण्येषु) जंगलों में (पुरुत्रा) नाना स्थानों पर (विष्ठिता) विविधरूपों में स्थित होकर (जर्भुराणाः) खूब परिपुष्ट होते हुए, अथवा राष्ट्र का निरन्तर धारण पालन करते हुए (चरन्ति) विचरें ।

उप प्रागाच्छसनं वाज्यर्वा देवद्रीचा मनसा दीध्यानः ।
अजः पुरो नीयते नाभिरस्यानु पश्चात्कवयो यन्ति रेभाः ॥ २३ ॥

भा०—(वाजी अर्वा) वेगवान् अश्व के समान तीव्र गति होकर बलवान् पुरुष (देवद्रीचा) देव अर्थात् विजयशील पुरुषों और विद्वानों से प्राप्त होनेवाले (मनसा) ज्ञान से (दीध्यानः) स्वयं प्रकाशित, तेजस्वी होता हुआ (शसनम्) शासन-कार्य पर (उप प्र अगात्) नियुक्त होता है । (अजः) शत्रुओं को दूर हटाने वाला और उन पर शर वर्षा करने वाला वीर पुरुष (नाभिः) सब को बांधने या व्यवस्थित करने में समर्थ होकर (अस्य) इस राष्ट्र के (पुरः) आगे, मुख्य पद पर (नीयते) लाकर बैठाया जाता है । (पश्चात्) पीछे उसके पोषक रूप से (रेभाः) विद्याओं के उपदेश करने में कुशल (कवयः) मेधावी, विद्वान् पुरुष (अनु यन्ति) अनुगमन करते हैं, उसका साथ देते हैं ।

उप प्रागात्परमं यत्सधस्थमर्वाँ२॥ अच्छा पितरं मातरं च ।
अद्या देवाञ्जुष्टतमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुषे वार्याणि ॥२४॥

भा०—(अर्वान्) ज्ञानी, बलवान् पुरुष, (यत्) जब (परमम्) सब से उत्तम (सधस्थम्) एकत्र रहने के स्थान, सभा भवन, देश या स्थान को (उप अगात्) प्राप्त होता है और जब (पितरं मातरं च) पालक पिता और मानयोग्य माता को भी साक्षात् करता है । (अद्य) तब वह (जुष्टतमः) अति प्रेमयुक्त होकर (देवान्) देव, विद्वान् पुरुषों को (गम्याः) प्राप्त होता है । (अथ) और (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिये (वार्याणि) उत्तम २ पदार्थों को (आशास्ते) प्रदान करता है ।

अध्यात्म में—जीव ज्ञानी होकर (परमं सधस्थं) परम एकत्र होने के स्थान, मोक्ष को प्राप्त होता है, वहां वह पिता परमेश्वर और माता

प्रकृति का साक्षात् ज्ञान करता है। देव, दिव्य पदार्थों और भोगों को भी पाता है। दानशील परमेश्वर से नानावरण योग्य पदार्थ प्राप्त करता है।

समिद्धो ऽअद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः॥ २५॥
ऋ० १०। ११०। १॥

[२५–३६] जमदग्नी रामो वा जामदग्न्य ऋषिः। आप्रियः समित्तनूनपादादयो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (जातवेदः) अग्ने! ज्ञानवन्! जातप्रज्ञ! विद्वन्! (अद्य) आज तू (समिद्धः) अच्छी प्रकार ज्ञान से अग्नि के समान प्रकाशित एवं प्रज्वलित, तेजस्वी, स्वयं (देवः) दानशील राजा के समान, सर्वद्रष्टा होकर (मनुषः दुरोणे) मनुष्यों के दुःख से रक्षण करने योग्य गृह के समान इस राष्ट्र में (देवान् यजासि) विद्वान् एवं विजयशील शूरवीर पुरुषों को (यजासि) आदरपूर्वक सुसंगत कर। और (मित्रम्) मित्र राजा को भी (आ वह च) प्राप्त कर। (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (त्वं) तू (दूतः) शत्रु को उपताप देने में समर्थ, (कविः) क्रान्तदर्शी और (प्रचेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान् (असि) होकर रह।

सामान्य विद्वान् के पक्ष में—वह ज्ञानवान् होकर मनुष्य के गृह में अग्नि के समान (देवान्) विद्वानों और प्रेमी पुरुषों का सत्कार करे, मित्र को प्राप्त करे। मेधावी, ज्ञानी बने।

दूत के पक्ष में—स्वयं तेजस्वी होकर राजाओं को (यजासि) संगत करे, मित्र राजा को प्राप्त करे।

तनूनपात्पथ ऽऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः॥ २६॥
ऋ० १०। ११०। २॥

भा०—हे (तनूनपात्) विस्तृत राष्ट्र को पतन न होने देने वाले, उसके रक्षक ! हे (सुजिह्व) उत्तम वाणी वाले ! तू (ऋतस्य) सत्य के (यानान् पथः) आचरण करने योग्य, चलने योग्य मार्गों को (मध्वा) मधुर उपदेश रस से (सम् अञ्जन्) अच्छी प्रकार प्रकाशित करता हुआ (स्वदय) सबके लिये रुचिकर बना। अर्थात् धर्म के कार्यों को उत्तम आकर्षक भाषा में लोगों के सामने रखकर उन पर उनको चलने की प्रेरणा कर। और (धीभिः) अपनी बुद्धियों से (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञातव्य विषयों को (उत) और (यज्ञम्) परस्पर संगत राष्ट्र को, समाज को, अथवा उपास्य देव को (ऋन्धन्) अति समृद्ध, सुशोभित, करता हुआ, (नः) हमारे (अध्वरम्) हिंसा से रहित या अविनाशी यज्ञ, राष्ट्रपालन के कार्य को (देवत्रा च) देवों, विद्वानों, कार्यकुशल, व्यवहार श्रेष्ठ पुरुषों के आधार पर (कृणुहि) सम्पादन कर।

नराशꣳसस्य महिमानमेषामुपस्तोषाम यजतस्य यज्ञैः।
ये सुक्रतवः शुचयो धियन्धाः स्वदन्ति देवा ऽउभयानि हव्या ॥२७॥

भा०—(यज्ञैः) सत्संग आदि उत्तम, आदर सत्कार के कार्यों से (यजतस्य) सत्कार करने योग्य, (नराशंसस्य) समस्त पुरुषों द्वारा प्रशंसनीय, प्रजापालक या विद्वान् उत्तम पुरुष के (महिमानम्) महिमा, महान् सामर्थ्य की हम (एषाम्) इन प्रजाजनों के बीच (उपस्तोषाम) वर्णन करें। (ये) जो (सुक्रतवः) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले (शुचयः) शुद्ध, निष्कपट, (धियन्धाः) बुद्धिमान्, उत्तम कर्मशील, (देवाः) विद्वान् अभिलाषुक होकर (उभयानि) शरीर और आत्मा के सुखकारी अथवा राजा और प्रजा दोनों के हितकारी (हव्या) प्राप्त करने योग्य पदार्थों या पदाधिकारों का (स्वदन्ति) भोग करते हैं।

आजुह्वान ऽईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः।
त्वं देवानामसि यह्व होता स ऽएनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥ २८ ॥
ऋ० १० । ११० । ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (आजुह्वानः) सब अपने समान बल वालों से स्पर्द्धा किया जाता है या दुःखितों से पुकारा जाता है अथवा सबको स्वयं अपने राष्ट्र में या स्पर्द्धा में बुलाने हारा, (ईड्यः) सबके आदर योग्य, (वन्द्यः) सबके अभिवादन करने योग्य, (वसुभिः सजोषाः) राष्ट्रवासी प्रजाजनों का समान रूप से प्रेम पात्र, (देवानां) विद्वानों, राजाओं में से (यह्वः) महान् (होता) सबको योग्य अधिकार, मान, पद और धन का दाता, (यजीयान्) सबको उत्तम सुसंगत करने वाला, होकर (एनान्) इन सब पुरुषों को (इषितः) प्रेरित या स्वयं अभिलाषा युक्त होकर (यक्षि) सुसंगत कर।

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते ऽअग्रे ऽअह्नाम्। व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो ऽअदितये स्योनम् ॥ २९ ॥

ऋ० १० । ११० । ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में वेदि पर बिछाने के लिये पूर्वाभिमुख आसनार्थ कुशा बिछाई जाती है उसी प्रकार (अस्याः पृथिव्याः) इस पृथिवी की (प्रदिशा) समस्त उत्तम दिशाओं में या उत्तम शासन से (प्राचीनं) उत्कृष्ट दिशा में जाने वाला उन्नतिशील उत्तम ज्ञानवान् प्रजाजन (वस्तोः) बसने के लिये (अह्नाम् अग्रे) दिनों के पूर्व भाग में (वस्तोः) सूर्य के आच्छादक, विस्तृत प्रकाश के समान (वृज्यते) लाया जाता है। वह (देवेभ्यः) विजयी, वीर पुरुषों विद्वानों और (अदितये) आदित्य के समान तेजस्वी राजा के लिये भी (वितरं) विस्तृत (स्योनम्) सुखकारी (वरीयः) धन ऐश्वर्य को (वि प्रथते उ) विविध प्रकार से फैलाता है।

व्यचस्वतीरुर्विया विश्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः।

देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥ ३० ॥

ऋ० १० । ११० । ५ ॥

देवीर्द्वारो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(न) जिस प्रकार (पतिभ्यः) अपने पतियों के लिये (जनयः) स्त्रियें, (देवीः) गृहदेवियें (व्यचस्वतीः) विविध प्रकार से गमन करने वाली (उर्विया) सब प्रकार से आश्रय लेती हैं और उसके प्रति अपने को समर्पण कर देती हैं, उसके प्रति अपने अङ्गों को प्रकट करती हैं, उसी प्रकार (द्वारः) गृह के द्वार भी (व्यचस्वतीः) विविध प्रकार के आवागमन करने वाले, (उर्विया) अपने दो बड़े बड़े कपाटों को खोलें । हे (देवीः) पतियों की कामना करने वाली गृह देवियो ! आप (बृहतीः) विशाल हृदयवाली, (विश्वमिन्वाः) समस्त जगत् को उत्पन्न करने वाली हो । अतः (देवेभ्यः) तुमारी अभिलाषा करने वाले पुरुषों के लिये ही तुम (सुप्रायणाः) सुख पूर्वक प्राप्त होने वाली होकर सुखप्रद उत्तम अयन अर्थात् गृह बनाकर (भवत) रहो । इसी प्रकार हे (द्वारः देवीः) प्रकाश वाले द्वारो ! तुम (बृहतीः) बड़े २ और (विश्वमिन्वाः) सबको अपने भीतर गुजारनेहारे हो । तुम (देवेभ्यः) उत्तम विद्वान् पुरुषों के लिये (सु-प्र-अयनाः भवत) सुख से आने-जाने के साधन होवो ।

सेनाओं के पक्ष में—जैसे स्त्रियें अपने पतियों के प्रति अपने को खोलती हैं उसी प्रकार (व्यचस्वतीः) विविध देशों में जानेवाली, अथवा विविध प्रकार की चालों और व्यूहों में जानेवाली, आप सेनाएँ (पतिभ्यः) अपने सेनापतियों के प्रति (उरु विश्रयन्ताम्) अपने विशाल स्वरूप को प्रकट करें । हे (देवीः) विजयेच्छु, (द्वारः) शत्रुओं को वारण करने वाली सेनाओ ! (बृहतीः) बड़ी भारी (विश्वमिन्वाः) पूर्ण राष्ट्र या शत्रु-देश में और युद्धभूमि में व्यापने वाली होकर भी (देवेभ्यः) विजिगीषु

पुरुषों के लिये (सुप्रायणाः भवत) सुख से अपने २ उत्तम अयन अर्थात् नियत स्थान में स्थित रहो।

'सुप्रायणाः'—'अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः'। गीता।

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियꣳ शुक्रपिशं दधाने ॥३१॥

उषासानक्ते देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(उषासानक्ता) दिन और रात्रि के समान स्त्री और पुरुष (उपाके) परस्पर एक दूसरे के पास आकर (यजते) सुसंगत होकर (सुष्वयन्ती) लेटते हुए, (दिव्ये) परस्पर की कामना करके (योषणे) परस्पर संगत होनेवाले दोनों (बृहती) प्रजा को वृद्धि करने वाले, (सुरुक्मे) सुख पूर्वक एक दूसरे को चाहने वाले, कान्तिमान्, होकर (श्रियम्) लक्ष्मी को और (शुक्रपिशं) वीर्यांशों को (दधाने) स्थापन और धारण करते हुए (योनौ) एक ही गृह में (आ निसदताम्) विराजें (२) उसी प्रकार राष्ट्र में दिन रात्रि के समान उषाः और नक्त नाम की दो संस्थाएं (यजते उपाके) परस्पर मिल कर रहने के स्थान में समीप २ आकर (सुरुक्मे) अति रोचन स्वरूप धारण करती हैं और (शुक्रपिशं दधाने) राष्ट्र के शुद्ध स्वरूप को धारण करती हैं। इसी प्रकार राजा प्रजा परस्पर एक ही राष्ट्र में लक्ष्मी, धारण करके रहें।

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥३२॥

भा०—(दैव्या) विद्वानों में कुशल, (होतारा) उत्तम शिक्षा के देनेवाले, (सुवाचा) शुभ वाणियों के बोलने वाले, (मनुषः यजध्यै) मनुष्यों को परस्पर सुसंगत रखने के लिये (यज्ञं मिमाना) यज्ञ, सुव्य-

वस्थित राष्ट्र का निर्माण करते हुए (विदथेषु) उत्तम विज्ञानों और लाभ के कार्यों में (प्र चोदयन्ता) भली प्रकार प्रेरणा करते हुए (कारू) क्रिया कुशल होकर (प्राचीनं ज्योतिः) प्राचीन, पुरातन, सनातन से प्राप्त वेदमय, ज्ञानमय ज्योति को (प्रदिशा) अपने उपदेश से (दिशन्ता) उपदेश करते हुए दो विद्वान् रहें।

आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विडा॒ मनुष्व॒दि॒ह चे॒तय॑न्ती।
ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेद॑ᳪ᳭ स्यो॒नᳪ᳭ सर॑स्वती॒ स्वप॑सः सद॒न्तु ॥ ३३ ॥

भा०—(भारती) भारती, (इडा) इडा, और (सरस्वती) सरस्वती (तिस्रः देवीः) ये तीनों दिव्यगुण वाली, ज्ञान प्रकाश से युक्त संस्थाएं (मनुष्वत्) मननशील पुरुष के समान (चेतयन्ती) ज्ञान का प्रकाश करनेवाली और (स्वपसः) उत्तम ज्ञानों और कर्मों को सम्पन्न करने वाली होकर (इह) यहां (नः यज्ञम्) हमारे यज्ञ और राष्ट्र को (तूयम्) शीघ्र (एतु) प्राप्त हों। (इदं बर्हिः) इस लोक को (स्योने) सुखपूर्वक (आ सदन्तु) आसन के समान सुशोभित करें।

य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री रू॒पैरपि॑ᳪ᳭शद्भुव॑नानि॒ विश्वा॑।
तम॒द्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान्दे॒वं त्वष्टा॑रमि॒ह य॑क्षि वि॒द्वान् ॥ ३४ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (जनित्री) संसार को उत्पन्न करने वाले (द्यावापृथिवी) आकाश और पृथिवी या सूर्य और पृथिवी (इमे) इन दोनों को और (विश्वा भुवना) समस्त लोकों, और प्राणियों को (रूपैः) नाना रूपों और रुचिकर पदार्थों से (अपिंशत्) प्रत्येक अवयव अवयव में बनाता है। हे (होतः) ज्ञानप्रद ! तू (इषितः) प्रेरित होकर (यजीयान्) नाना पदार्थों को सुसंगत करने में कुशल होकर (तम् त्वष्टारम्) उस निर्माणकर्त्ता, विधाता (देवं) देव, परमेश्वर की (अद्य) आज, सदा, (इह) इस राष्ट्र, या संसार में (विद्वान्) सबको भली प्रकार जान

कर (यक्षि) उपासना कर, उसके बनाये पदार्थों की रचना के अनुसार इस राष्ट्र में भी नाना कौशल के पदार्थों को सुसंगत कर और बना।

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पार्थऽ ऋतुथा हवीꣳषि।
वनस्पतिः शमिता देवोऽ अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन॥ ३५॥

भा०—हे विद्वन्! (देवानां) विद्वानों के (पाथः) पान, भोजन करने योग्य जल, दुग्ध और (हवींषि) अन्नों को (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार (त्मन्या) स्वयं अपनी बुद्धि से (सम् अञ्जन्) प्रकट करता हुआ (उप अवसृज) प्रदान कर। इसी प्रकार (हव्यं) हवन करने योग्य चरु को (मधुना) मधुर गुण युक्त (घृतेन) घृत से (सम् अञ्जन्) मिला कर (उप अवसृज) आहुति प्रदान कर जिससे (वनस्पतिः) किरणों का पालक सूर्य, और (शमिता देवः) शान्तिदायक मेघ और (देवः अग्निः) तेजस्वी, आग, तीनों (स्वदन्तु) ग्रहण करें।

राष्ट्र और गृहपक्ष में—विद्वान् पुरुष मधुर घृत आदि से अन्नों को मिलाकर ऋतु २ के अनुसार अन्नों का प्रदान करे। (वनस्पतिः) वनस्पति के समान सर्वाश्रय राजा, या गृहपति (शमिता) शान्तिप्रद ब्राह्मण विद्वान् और (अग्निः देवः) अग्रणी सेनापति आदि प्रमुख पुरुष उन सब पदार्थों को यथावत् उपभोग करें। उन मुख्य पुरुषों का भोजन विद्वान् वैद्य के निरीक्षण में हो, वह ऋतु अनुसार पुष्टिकारी पदार्थों के साथ मिलाकर उनको भोजन दे।

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः। अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतꣳ हविरदन्तु देवाः॥ ३६॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (यज्ञं वि अमिमीत) यज्ञ को विविध रूपों में प्रकट करता है। और वह अग्नि ही (देवानां पुरोगाः अभवत्) समस्त वायु आदि दिव्य पदार्थों का अग्रगामी है। और (अस्य-

वाचि स्वाहा कृते हविः देवाः अदन्ति) इस अग्नि के ज्वाला में स्वाहा किये हुए हविष् को अन्य वायु, जल आदि भी प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी ज्ञानवान् पुरुष जो (देवानाम्) विद्वानों और विजय की कामना करने वाले और व्यवहार कुशल पुरुषों का (पुरोगाः) अग्र-गामी, नेता (अभवत्) हो जाता है। वह (सद्यः जातः) शीघ्र ही सामर्थ्यवान् होकर (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत, सुव्यवस्थित, प्रजापालन करने वाले राष्ट्र का (वि अमिमीत) विशेष २ रूप से और विविध प्रकारों में निर्माण कर लेता है। (अस्य होतुः) सबको यथा योग्य पदाधिकार प्रदान करनेवाले इस विद्वान् के (प्रदिशि) उत्कृष्ट शासन में और (ऋतस्य वाचि) सत्य व्यवहार, या ज्ञान, शासन विधान की वाणी, या आज्ञा के अधीन रहकर (देवाः) समस्त सुख चाहने वाले विद्वान् शासक सैनिक और प्रजागण, (स्वाहाकृतं) उत्तम रीति से न्यायानुकूल या आदर से प्रदान किये (हविः) अन्न और भोग्य पदार्थ को (अदन्तु) भोग करें।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः ॥३७॥

मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (उषद्भिः) दाहकारी किरणों के सहित उदित होता है उसी प्रकार जो (मर्याः) मनुष्य (अकेतवे) अज्ञानी पुरुष को (केतुम्) ज्ञान प्रदान करते हैं और जो (अपेशसे) धन हीन पुरुष को (पेशः) धन प्रदान करते हैं उन (उषद्भिः) अज्ञान और दारिद्र्य का नाश करने वाले तेजस्वी पुरुषों के साथ २ तू भी हे राजन्! (अकेतुस्) प्रज्ञाहीन पुरुष के (केतुं कृण्वन्) प्रज्ञा प्रदान करता हुआ और (अपेशसे) सुवर्णादि से रहित पुरुष को (पेशः कृण्वन्) सुवर्ण प्रदान करता हुआ तू (अजायथाः) प्रसिद्ध हो।

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।

अनाविद्धया तुन्वा जय त्वꣳ स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्त्तु ॥३८॥

ऋ० ६ । ७५ । १ ॥

पायुर्भारद्वाज ऋषिः । सन्नाहादीनि संग्रामाङ्गानि देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(यत्) जब (वर्मी) कवच पहने हुए योद्धाजन (समदाम्) संग्रामों के (उपस्थे) समीप (याति) जाता है तब (प्रतीकम्) सेना का मुख (जीमूतस्य) मेघ के (इव) समान होता है । अर्थात् जिस प्रकार मेघ निरन्तर बिजुलियों, गर्जनाओं और बराबर पड़नेवाली बौछारों से भयंकर होता है उसी प्रकार आग्नेयास्त्रों की लपट, शस्त्रों की चमक, उनके गर्जन और शस्त्रों की वर्षा से सेना का मुख भी बड़ा विकट भयंकर होता है। अथवा (प्रतीकं) उस कवचधारी वीर का ही स्वरूप मेघ के समान होता है। शरीर पर मेघ के समान श्याम कवच और हाथ में बिजुली के समान तीव्र तलवार और वर्षण करने को शस्त्रास्त्र होते हैं । हे वीर पुरुष ! (त्वं) तू ऐसे रण संकट में भी (अनाविद्धया) विना चोट खाये, सुरक्षित (तन्वा) शरीर से, या अनष्ट विस्तृत सेना से (जय) विजय कर। (वर्मणः) कवच का (सः महिमा) वह महान् सामर्थ्य ही (त्वा पिपर्तु) तेरी रक्षा करे ।

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥ ३९ ॥

ऋ० ६ । ७५ । २ ॥

भा०—(धन्वना) धनुष से हम (गाः जयेम) गौओं और भूमियों को विजय करें । (धन्वना आजिम्) धनुष के बल से हम संग्राम का (जयेम) विजय करें । (धन्वना) धनुष के बल से (तीव्राः) अति तीव्र आनेवाली (समदाः) मद और हर्ष से भरी शत्रु सेनाओं का (जयेम) विजय करें । (धनुः) धनुष (शत्रोः) शत्रु के (अपकामम्)

मन चाहे फल का नाश (कृणोति) कर देता है। और (धन्वना) धनुष से हम (सर्वाः प्रदिशः) समस्त दिशाओं का (जयेम) विजय करें।

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियꣳ सखायं परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्या इयꣳ समने पारयन्ती ॥४०॥

ऋ० ६। ७५। ३॥

भा०—(योषा इव) स्त्री जिस प्रकार (वक्ष्यन्ती इव इत्) मानों कुछ कहती हुई सी (कर्णम् आगनीगन्ति) कान के समीप आती और (प्रियं सखायम्) अपने प्यारे सखा, पति को (परि-सस्वजाना) आलिंगन करती हुई (समने पारयन्ती) एक चित्त हो करने योग्य गृहस्थोचित कृत्य पुत्रोत्पत्ति आदि कार्यों के पार लगा देती है उसी प्रकार (इयम् ज्या) यह धनुष की डोरी, (अधिधन्वन्) धनुष पर (वितता) कसी हुई (वक्ष्यन्ती इव इत्) मानो कुछ कहती हुई सी (कर्णम् आगनीनन्ति) कान के पास तक आती है। और अपने (सखायं प्रियं परि सस्वजाना) मित्र के समान प्रिय धनुर्दण्ड को आलिंगन करती हुई, (शिङ्क्ते) ध्वनि करती है वही (समने) संग्राम में (पारयन्ती) पार पहुंचा देती है या पालन करनेवाला या पूर्ण सामर्थ्यवान् करती है।

तेऽआचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे। अप शत्रून्विध्यतांꣳ संविदानेऽआर्त्नीऽ इमे विष्फुरन्तीऽ अमित्रान् ॥४१॥

ऋ० ६। ७५। ४॥

भा०—(समना योषा इव) एक चित्त होकर रहने वाली प्रियतमा स्त्री अपने पति की और (माता इव) माता दोनों (सं विदाते) परस्पर मिलकर अपने उस ही प्रेमपात्र (पुत्रं) पुत्र को (उपस्थे) अपनी गोद या क्रोड़ में आलिंगन कर (विभृताम्) धारण करती हैं। उसी प्रकार (इमे आर्त्नी) ये दोनों धनुष की डोरियां भी धनुर्दण्ड को अथवा

(पुत्रं) पुरुषों की रक्षा करने वाले वीर सेनापति को (विभृताम्) पोषण करती हैं। और (ते) वे दोनों (आचरन्ती) उसके दोनों तरफ पत्नी और माता के समान रक्षक और सेवक रूप से आचरण करनेवाली होकर (तान् शत्रून् अपविध्य) उन शत्रुओं को दूर से ही ताड़न करके और (अमित्रान्) शत्रुओं को (विस्फुरन्ती) विविध प्रकारों से विनष्ट करती हुई राजा की (बिभृताम्) रक्षा करें। इसी से धनुर्व्यूह की दोनों सेनाओं का भी वर्णन कर दिया है।

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चाकृणोति समनावगत्यं।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥४२॥

भा०—(बह्वीनां पिता) बहुतसी कन्याओं का पिता और जिसके (बहुः पुत्रः) बहुत से पुत्र भी हों वे सब बच्चे मिल कर जिस प्रकार (समना अवगत्य) एकत्र होकर मिलने के स्थान में आकर (चिश्चा कृणोति) चीं चां करते हैं उसी प्रकार (इषुधिः) बाणों को धारण करने वाला तूणीर या तरकस (बह्वीनां पिता) बहुत से तीरों का 'पिता' पालक है। (अस्य पुत्रः बहुः) इसके गर्भ से निकलने वाले पुत्र भी बाणरूप (बहु:) संख्या में बहुत से हैं। वे सब (समना अवगत्य) युद्ध स्थान में आकर (चिश्चा कृणोति) च, चा, इत्यादि ध्वनि करता है। वह (इषुधिः) तरकस (सर्वाः) समस्त (सङ्काः) संघ बना कर खड़ी हुई (पृतनाः) समस्त शत्रु सेनाओं को (पृष्ठे निनद्धः) पीठ पीछे बंधा रह कर भी (प्रसूतः सन्) जब अपने गर्भ से बाणों को पैदा करता है तब शत्रु का (जयति) विजय कर लेता है।

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुषारथिः।
अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥४३॥

भा०—(सु-सारथिः) उत्तम सारथि, कोचवान्, रथका चलाने वाला,

(रथे तिष्ठन्) रथ पर बैठा हुआ भी (यत्र यत्र कामयते) जहां जहां भी चाहता है वहां २ (वाजिनः) वेगवान् अश्वों को (पुरः नयति) अपने आगे २ लेजाता है। (मनः) मन जिस प्रकार इन्द्रियों को अपने वश रखता है उसी प्रकार (रश्मयः) रासें (पश्चात्) घोड़ों को पीछे से (अनु यच्छन्ति) नियम में बांधे रहती हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! (अभीशूनां) इन मन की प्रवृत्तियों के समान वेग से सब तरफ लेजाने वाली रासों के ही (महिमानम्) महान् सामर्थ्य की (पनायत) स्तुति करो उनको ही बड़े महत्व का जानो। उनही के वश करने के कार्य को बड़ा आवश्यक जानो।

अध्यात्म में—मन रासें रूप है। उसकी ही सब महिमा है कि वह इन्द्रियों को वश करता है। इन्द्रियों को वश करने के लिये भी मनको वश करना बड़ा आवश्यक कार्य है।

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
बुद्धीन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्विचक्षणाः॥

काठकोपनिषत् वल्ली ३। ३,४॥

तीव्रान् घोषा॑न् कृण्वते॒ वृष॑पाणयोऽश्वा॒ रथे॑भिः स॒ह वा॒जय॑न्तः।
अ॒व॒क्राम॑न्तः॒ प्रप॑दैर॒मित्रा॑न् क्षि॒णन्ति॒ शत्रूँ॒२॥ रन॑पव्ययन्तः॥४४॥

ऋ० ६। ७५। ७॥

भा०—(वृषपाणयः) शस्त्रों के वर्षण करने वाले, धनुषों को हाथ में लिये वीर पुरुष (तीव्रान् घोषान् कृण्वते) तीव्र, कर्णकटु शब्दों को करते हैं। इसी प्रकार (रथेभिः सह) रथों के साथ २ (वाजयन्तः) वेग से जाने हारे (अश्वाः) घोड़े भी (अवक्रामन्तः) भागते २ भी

(प्रपदैः) अगले पाश्वों से (अनपव्ययन्तः) स्वामी का अपव्यय न करते हुए, अथवा–स्वयं दूर न भागते हुए, खड़े रहकर भी, या स्वयं नष्ट न होते हुए भी (अमित्रान् शत्रून्) मित्रों से भिन्न, द्वेषी शत्रुओं को (क्षिणन्ति) विनाश करते हैं।

रथवाहनꣳ हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्रा रथमुपशग्मꣳ सदेम विश्वाहा वयꣳ सुमनस्यमानाः॥४५॥

ऋ० ६ । ७५ । ७ ॥

भा०—(यत्र) जिस रथ पर (रथवाहनं) रथ को चलाने योग्य उपकरण (हविः) खाने पीने, पहनने की अन्नादि सामग्री, (नाम) शत्रुओं का नमाने वाले (आयुधं) शस्त्र अस्त्र, और (अस्य) इस वीर सेनापति, रथी का (वर्म) कवच भी (निहितम्) रखा जाता है (तत्र) उस (शग्मं) सुखकारी (रथम्) रथ को (वयम्) हम सब (सुमनस्यमानाः) उत्तम मन वाले, शुभ चित्त होकर (विश्वाहा) सब दिनों (उप सदेम) प्राप्त हों।

अध्यात्म में—(रथम्) रस स्वरूप उस आत्मा को हम प्राप्त हों वही (रथवाहनं) रस को प्राप्त कराने हारा है। जिसमें (आयुधम्) सब प्रकार के आनन्द (वर्म) परम रक्षा स्थान और (हविः) परम उपादेय ज्ञान भरा है।

स्वादुषꣳसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः।
चित्रसेना ऽइषुबला ऽअमृध्राः सतोवीरा ऽउरवो व्रातसाहाः॥४६॥

ऋ० ६ । ७५ । ९ ॥

भा०—(स्वादु-संसदः) स्वादु, रसवान्, उत्तम पदार्थों को सब मिलकर आनन्द लाभ करने हारे, अथवा–स्वादु अर्थात् सुख से एक स्थान पर खड़े हुए, (पितरः) राष्ट्र पालन करने में समर्थ, (वयोधाः) बल वीर्य के धारण करने वाले, (कृच्छ्रेश्रितः) संकट समय में विपत्तियों में रहकर

भी (शक्तिवन्तः) शक्तिमान्, सदा बलवान्, या शक्ति नाम अष्टचक्रा तोपों को धारण करने वाले (गभीराः) गम्भीर स्वभाव वाले (चित्र सेनाः) नाना प्रकार की सेनाओं के स्वामी (इषुबलाः) अस्त्रों द्वारा फेंकेजाने वाले वाण आदि के बल से युद्ध करने में कुशल, (अमृध्राः) अहिंसनीय, दृढ़ शरीर, (सतोवीराः) विद्यमान सेनाके बीच में विद्यमान, अथवा अति विस्तृत, बलवान्, वीर पुरुषों से युक्त, (व्रातसाहाः) वीर समूहों भी पराजय करने में समर्थ (उरवः) विशाल बाहुओं और शरीर वाले हों।

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी ऽअनेहसा। पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो ऽअघशंस ऽईशत ॥ ४७ ॥ ऋ० ६ । ७५ । १० ॥

भा०—(ब्राह्मणासः) ब्रह्म के जाननेहारे वेदज्ञ विद्वान् और (पितरः) पालकजनः क्षत्रिय लोग (सोम्यासः) सोम अर्थात् राष्ट्र के हित-कारी और सौम्य स्वभाव के हों। वे दोनों (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि या सूर्य और पृथिवी के समान प्रकाशक और सब के आश्रय (शिवे) कल्याणकारी, (अनेहसा) निष्पाप, बुरे कर्मों से रहित हों। (पूषा) सर्व पोषक राजा और (ऋतावृधः) सत्य व्यवहार और यथार्थ, ज्ञान 'ऋत' सत्य ज्ञान के प्रतिपादक, या वेद के धर्म के बढ़ानेहारे जन (नः) हमें (दुरिताद्) दुष्ट आचरणों से (पातु) बचावें और (रक्ष) पालन करें। (अघशंसः) पाप की शिक्षा देनेवाला जन (नः माकिः ईशत) हम पर कभी स्वामी न हो, वह कभी अधिकार प्राप्त न करे।

सुपर्णं वस्ते मृगो ऽअस्या दन्तो गोभिः संनद्धा पतति प्रसूता। यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥४८॥ ऋ० ६ । ७५ । ११ ॥

भा०—(मृगः) तीव्र मृग के समान गति शील बाण (सुपर्णं)

शोभन पत्रों को (वस्ते) धारण करता है। और (अस्याः दन्तः) इस बाण का मुख या फला केवल दन्त के समान ही काटने वाला होता है। अथवा—बाण (सुपर्णं वस्ते) पत्नी के पंखों को धारण करता और (अस्य दन्तः मृगः) इसका काटने का साधन मृग अर्थात् व्याघ्र के दांत के समान तीक्ष्ण होता है। वह स्वयं (गोभिः) गो चर्म की बनी तांतों से (सन्नद्धा) खूब बंधी जकड़ा हुआ और (प्रसूता) धनुष द्वारा प्रेरित होकर (पतति) बड़ी दूर जा पड़ता है (यत्र) जहां (नरः) मनुष्य (संद्रवन्ति) परस्पर एक दूसरे के साथ वेग से भागते हैं और (विद्रवन्ति च) एक दूसरे के विपरीत होकर दौड़ते हैं। (तत्र) उस युद्ध काल में भी (इषवः) वाण (अस्मभ्यम्) हमें (शर्म) सुखप्रद आश्रय (यंसन्) प्रदान करते हैं।

'सुपर्ण', 'मृग', 'गो', इत्यादिशब्दाः कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति इति यास्कवचनात् तद्विकारवाचका भवन्ति।

ऋजीते परि वृङ्ग्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो ऽअधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥ ४९ ॥

ऋ० ६ । ७५ । १२ ॥

विराट् अनुष्टुप् गांधारः ॥

भा०—हे (ऋजीते) सरल, सीधे मार्ग से जाने वाले वाण! (नः परिवृङ्ग्धि) तू हमें आघात करने से छोड़ दे, या हमें बढ़ा। अथवा—हे राजन्! (ऋजीते) सरल व्यवहार में हमें (परि वृङ्ग्धि) चला। (नः तनूः) हमारा (तनूः) शरीर (अश्मा भवतु) पत्थर के समान कठोर हो। (सोमः) सबका प्रेरक विद्वान् राजा हमें (अधि ब्रवीतु) उत्तम मार्ग का उपदेश करे। और (अदितिः) अखण्ड राजनीति या पृथिवी (नः) हमें (शर्म) शरण, सुख (यच्छतु) प्रदान करे।

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ२ ऽउप जिघ्नते।

अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥ ५० ॥

ऋ० ६ । ७५ । १३ ॥

अश्वाजनिर्देवता । जनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञान वाले विद्वान् पुरुष (एषां) इन अश्वों के (सानु) टांगों पर और (जघनान्) जांघों के भागों पर (आजंघन्ति) थोड़ा २ मारते हैं और (उप जिघ्नते) हलका २ ताड़ते हैं, तब हे (अश्वाजनि) अश्वों के प्रेरणा देनेवाली कशे ! या उसको धारण करने वाले सारथे ! तू (अश्वान्) अश्वों को (समत्सु) संग्रामों में (चोदय) प्रेरित कर ।

अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः । हुस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान् पुमांश्रसं परिपातु विश्वतः ॥ ५१ ॥   ऋ० ६ । ७५ । १४ ॥

भा०—(हस्तघ्नः) हाथ में बंधी डोरी के आघातों से वार २ ताड़ित होनेवाला हाथवन्द नामक कवच जिस प्रकार (बाहुं) बाहु को (अहिः इव भोगैः) सांप के समान अपने अंगों से (बाहुं परि एति) बाहु पर चारों ओर से लिपट जाता है और (ज्यायाः) डोरी के (हेतिम्) आघात को (परिबाधमानः) दूर से ही बचाता हुआ मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार (हस्तघ्नः) अपने हाथों से ही शस्त्रास्त्र चलाने में कुशल वीर पुरुष (भोगैः) अपने पालन करनेवाले साधनों से (अहिः इव) मेघ के समान (परि एति) नगर को चारों ओर से घेर लेता है (बाहुं) बाधा, पीड़ा देनेवाले शत्रु को और (ज्याया हेतिम्) डोरियों से फेंके गये बाणों को (परि बाधमानः) दूर से ही नष्ट करता हुआ (विश्वा वयुनानि) सब प्रकार के ज्ञानों और युद्ध कौशलों को जानने हारा (विद्वान् पुमान्) ज्ञानी पुरुष (पुमांसं) नगरवासी जन को (विश्वतः) सब प्रकारों से (परि पातु) रक्षा करे ।

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया ऽअस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो ऽअसि वीडयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥५२॥

ऋ० ६ । ४७ । २६ ॥

गर्गो भारद्वाज ऋषिः । वनस्पतिर्देवता । भुरिक्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य, जलों के पालक मेघ के समान मुख्य सेना पुरुषों के पालक सेनापते ! तू (अस्मत्सखा) हमारा मित्र, (प्रतरणः) युद्ध आदि सकटों के अवसरों से रथ के समान नदी पर नाव के समान पार कराने वाला, (सुवीरः) उत्तम वीर योद्धाओं से युक्त, एवं स्वयं भी वीर होकर (वीड्वङ्गः) दृढ़ अंगों वाला (भूयाः) होकर रह । तू (गोभिः) रथ जिस प्रकार गोचर्म से ढका एवं रासों से बंधा हुआ होता है उसी प्रकार तू भी (गोभिः) दूध के बने नाना पदार्थों से या अपने मुख्यनायक की आज्ञाओं से (संनद्धः असि) अच्छी प्रकार बद्ध है । तू (वीडयस्व) खूब वीरकर्म कर । (ते अस्थाता) तेरे आश्रय पर रहने वाला तेरा अधिष्ठाता भी रथी के समान (जेत्वानि) विजय करने योग्य सभी पदार्थों को (जयतु) जीते ।

दिवः पृथिव्याः पर्योज ऽउद्भृतं वनस्पतिभ्यः पर्य्याभृतꣳ सहः ।
अपामोज्मानं परि गोभिरावृतमिन्द्रस्य वज्रꣳ हविषा रथं यज ॥५३॥

ऋ० ६ । ४७ । २७ ॥

विराड् जगती । निषादः ॥

भा०—(दिवः) सूर्य या द्यौलोक, आकाश से और (पृथिव्याः) पृथिवी से सब प्रकार का (ओजः) बल और पराक्रम (परिभृतं उद्भृतं च) प्राप्त किया जाता और उत्पन्न किया जाता है । और (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वृक्षों से भी (सहः) शत्रुओं के विजय करने में समर्थ बल को (परि आभृतम्) संग्रह किया जाता है । इसी प्रकार (अपाम्) जलों

के (ओज्मानं) बल को (परि) सब तरफ से एकत्र करके प्राप्त कर। (इन्द्रस्य) सूर्य के (गोभिः) किरणों से (आवृतम्) घिरे हुए (वज्रं) प्रकाशमय तीक्ष्ण ताप रूप वज्र को भी (हविषा) उसके ग्रहण करने वाले उपाय द्वारा (रथम्) रथ या रस, या सार रूप से (यज) प्राप्त कर।

राष्ट्र पक्ष में—(दिवः) आकाश से जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश रूप ओज प्राप्त होता है उसी प्रकार ज्ञानवान् पुरुषों से विज्ञान को प्राप्त करो। पृथिवी से जिस प्रकार अन्न उत्पन्न किया जाता है उसी प्रकार पृथिवी निवासी प्रजा से अन्न संग्रह करो। वनस्पतियों से जिस प्रकार औषध संग्रह किया जाता है उसी प्रकार प्रजाओं के पालक माण्डलिक राजाओं से शत्रुओं के पराजयकारी सेनाबल का संग्रह करो। जलों से जिस प्रकार नहर आदि एवं यन्त्रों के चलाने का बल प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार आप्त प्रजाओं का संगृहीत पुरुषबल प्राप्त किया जाय। सूर्य की किरणों से जिस प्रकार आतसी शीशे द्वारा तेज प्राप्त किया जाता है उसी प्रकार (इन्द्रस्य) सेनापति के (गोभिः) आज्ञाओं द्वारा (आवृतम्) उनके भीतर छिपे (वज्रं) बल वीर्य को (रथं) रथ, साररूप रस के समान या शिल्पी जिस प्रकार रथ के नाना अंगों को जोड़ कर रथ बनाता है उसी प्रकार (यज) संगत कर, उन सब बलों को प्राप्त करके (हविषा) उपाय से, ज्ञान से संयोजित कर।

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥ ५४ ॥

ऋ० ६। ४७। ५८॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(इन्द्रस्य वज्रः) सेनापति या राजा का जल वर्षक मेघ के

विद्युत् के समान प्रखर (वज्रः) शत्रु निवारक बल वीर्य, और (मरुताम्) प्रचण्ड वायुओं के समान तीव्र वेगवान् एवं शत्रुमारक सेनापतियों का (अनीकम्) सैन्य है और (मित्रस्य गर्भः) सूर्य के समान तेजस्वी, स्नेही मित्र का ग्रहण सामर्थ्य और (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष, दुष्ट निवारक बलवान् स्वयं वृत राजा का (नाभिः) प्रबन्ध बल या संघ बल है (सः) वह सब हे (देव) राजन् तू ही है। हे (रथ) रथ के समान वेग से जाने वाले अंग प्रत्यंग में दृढ़ एवं रमणीय गुणों से युक्त! वह तू (नः) हमारे (हव्यदातिं) अन्नादि के दान को (जुषाणः) स्वीकार करता हुआ (हव्या) समस्त ग्राह्य पदार्थों को (प्रति) गृभाय) ग्रहण कर।

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनुतां॒ विष्ठि॑तं॒ जग॑त्।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ऽअप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥ ५५ ॥

ऋ० ६।४७।२७॥

दुन्दुभिर्देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (दुन्दुभे) नगारे के समान गम्भीर गर्जन करनेहारे एवं शत्रुगणों को निरन्तर मारनेहारे अथवा शत्रु बल को वृक्ष के समान चीर देनेहारे परशु के समान तीक्ष्ण! तू (पृथिवीम्) पृथिवी निवासिनी प्रजा को (द्याम्) आकाश के समान उन्नत पुरुषों या राज सभा को भी (उप श्वासय) आश्वासन दे, उनको प्राणयुक्त कर। (जगत्) समस्त जगत् (विष्ठितम्) विविध प्रकारों से स्थित सुरक्षित होकर (ते) तुम्हें (पुरुत्रा) बहुत प्रकार से (मनुताम्) जाने। (सः) वह तू (इन्द्रेण) राजा और सेनापति के साथ (देवैः) और देवों विद्वान् पुरुषों के साथ (सजूः) मिलकर (दूरात् दवीयः) दूर से भी दूर के (शत्रून) शत्रुओं को (अप-सेध) पराजित कर। जिस प्रकार दुन्दुभिः अपने भयंकर शब्द से दूर से ही शत्रुओं को दहलाकर नाश करता है उसी प्रकार राजा भी

अपनी भेद नीति, गर्जना और मन्त्र बल से अपने राष्ट्र की रक्षा करे और पर बल का नाश करे।

'दुन्दुभिः—' दुन्दुभिरिति शब्दानुकरणं। द्रुमो भिन्नमिति वा दुंदुभ्यतेर्वा स्याद् वधकर्मणः॥ निरु०।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निष्टनिहि दुरिता बाधमानः।
अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीडयस्व ॥५६॥

ऋ० ६। ४७। ३०॥

त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभे! भेरी के समान भैरव गर्जन करने हारे, शत्रुओं को पशु के समान काट डालने और भेदने हारे नीतिमान्! तू (बलम् आक्रन्दय) अपने सैन्य-बल को सब तरफ़ से बुलाकर तैयार रख। (नः) हम प्रजाओं में भी (ओजः) पराक्रम को (आ धाः) सब प्रकार से धारण करा (निः स्तनिहि) खूब गर्जना कर या सेना बल की वृद्धि कर। और (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) दूर करता हुआ (दुच्छुनाः) पागल कुत्तों के समान दुःखदायी पुरुषों को (इतः) हमारे राष्ट्र से (अप प्रोथ) दूर भगा। तू (इन्द्रस्य मुष्टिः असि) इन्द्र अर्थात् राजा के प्रहार करने वाले मुक्के के समान प्रबल प्रहार करने वाला (असि) है। तू (वीडयस्व) सदा अपने को दृढ़ बनाये रख।

दुन्दुभि के पक्ष में—दुन्दुभि बल को एकत्र करे। सेना बल में बल फूंक दे, बुरे भावों को बाधकर वीर भाव संचारित करे। सेनापति के मुक्के के समान दुःखदायी शत्रुओं के दिलों को धुन डाले।

आमूरज प्रत्यावर्त्तयेमाः केतुमद् दुन्दुभिर्वावदीति।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥५७॥

ऋ० ६॥ ७७। ३१॥

भुरिक् पंक्तिः। पञ्चमः।

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! सेनापते! (अमूः) इन परायी शत्रु सेनाओं को (आभज) सम्मुख से परे फेंक दे। (इमाः प्रति आवर्त्तय) इनको लौटा डाल। (केतुमत् दुन्दुभिः) ध्वजा वाला नगारा जिस प्रकार बड़े जोर से शब्द करता है, उसी प्रकार यह (केतुमत्) प्रज्ञावान्, शत्रु-हिंसक, सेनापति (वावदीति) बराबर आज्ञाएं देता चला जाय। और (नः) हमारे (अश्वपर्णाः) अश्वों से दौड़ने वाले, घुड़ सवार (नरः) वीर सैनिक पुरुष (चरन्ति) गति करें, वेग से चलें, और (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) रथारोही वीर गण (जयन्तु) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।

आग्नेयः कृष्णग्रीवः सारस्वती मेषी बभ्रुः सौम्यः पौष्णः श्यामः शितिपृष्ठो बार्हस्पत्यः शिल्पो वैश्वदेव ऽऐन्द्रोऽरुणो मारुतः कल्माष ऽऐन्द्राग्नः सꣳहितोऽधोरामः सावित्रो वारुणः कृष्ण एकशितिपात्पेत्वः ॥ ५८ ॥

भा०—राष्ट्र के भिन्न २ अधिकारियों के अधीन नियुक्त पुरुषों के भिन्न लक्षण दर्शाते हैं। (कृष्णग्रीवः आग्नेयः) अग्नि नामक प्रधान अग्रणी पुरुष गर्दन में कृष्ण वर्ण का चिन्ह रखें। (सारस्वती मेषी) सरस्वती नामक सभा के विद्वान् पुरुष मेषी अर्थात् भेड़ी के समान श्वेत वस्त्र वाले अथवा ऊन का वस्त्र धारण करें। (सौम्यः बभ्रुः) 'सोम' नाम पदाधिकारी पुरुष 'बभ्रु' अर्थात् भूरे रंग की पोशाक पहने। (पौष्णः श्यामः) पूषा अधिकारी के पुरुष श्याम रंग के पोशाक पहनें। (बार्हस्पत्यः शिति-पृष्ठः) बृहस्पति के अधीन पुरुष पीठ पर काले रंग के पोशाक वाला हो। (वैश्वदेवः शिल्पः) विश्वेदेव अर्थात् सामान्य प्रजा के सेवक जन नाना वर्णों के पोशाक वाले हों। (ऐन्द्रः अरुणः) 'इन्द्र' सेनापति के लाल केसरिया। (मारुतः कल्माषः) मरुत्, तीव्र वेगवान् सेना के सैनिक जन कल्माष,

---

५८, ५९, ६०—इमानि ब्राह्मणवाक्यानि द्रव्यदेवताप्रतिपादकानि नतु मन्त्राः इति महीधरो याज्ञिकोऽनन्तदेवश्च ॥

चितकबरे या खाखी रंग की पोशाक पहने। (ऐन्द्राग्नः संहितः) इन्द्र और अग्नि दोनों के समान रूप से कर्त्ताजन, मिले हुए पोशाक पहनें। (सावित्रः अधोरामः) 'सविता' के नीचे से श्वेत हों, (वारुणः कृष्णः) वरुण के भृत्य काले पोशाक के हों, परन्तु (पेत्वः) अति वेग से जाने वाले का या पूरे सवारी में (एकशितिपात्) एक पैर काले रंग का हो।

ये चिह्न भिन्न २ विभागों के कार्यकर्त्ताओं के नियत किये जायं अथवा उन २ विभाग के चिह्नों पर इस २ प्रकार के पशु का चित्र हो।

अ॒ग्नये॑ऽनी॑कवते॒ रोहि॑ताञ्जिरन॒ड्वान॒धोरा॑मौ सा॑वि॒त्रौ पौ॒ष्णौ र॑ज॒तना॑भी वैश्वदे॒वौ पि॒शङ्गौ॑ तूप॒रौ मा॑रु॒तः क॒ल्माष॑ऽआग्ने॒यः कृ॒ष्णोऽजः सा॑रस्व॒ती मे॒षी वा॑रु॒णः पेत्वः॑ ॥ ५६ ॥

भा०—(अनीकवते अग्नये रोहिताञ्जिः अनड्वान्) अनीकवान्, सेना-मुख के स्वामी, अग्रणी पुरुष का लक्षण लाल वर्ण का वृषभ हो। अर्थात् जिस प्रकार लाल लंगोटी का वैल शकट को ढोता है उसी प्रकार वह अग्रणी पुरुष सेना व्यूह के अग्र में रह कर सेना व्यूह को मार्ग पर लेजाता है। इसी से उस अग्रणी नेता का व्यंग्य लक्षण लाल चिन्ह का शकटवाही वैल है। (अधोरामौ सावित्रौ) सविता अर्थात् पुत्र प्रजनन करने में समर्थ स्त्री पुरुष अपने अधो भाग, इन्द्रियों से रमण करते हैं इससे उनके प्रति-निधि चिह्न 'अधोराम'—नीचे को शुक्र वाले या अधो भाग में शुक्र = श्वेत भाग वाले वकरे नियत जानो। (पौष्णौ) प्रजाओं के पालन पोषण करने वाले धनाढ्य स्त्री पुरुष दोनों (रजतनाभी) मानो सबको सुवर्ण, चान्दी, धन से अपने साथ बांध लेने में समर्थ होते हैं। इसलिये उनके लक्षण नाभि में स्थित श्वेत वर्ण वाले दो पशु कल्पित हैं। (वैश्वदेवौ पिशङ्गौ) विश्वदेव, सामान्य प्रजा के स्त्री पुरुष निःशस्त्र होने से (तूपरौ) विना सींग के पशु ही उनके चिह्न हैं। (मारुतः कल्मापः) वायु जिस प्रकार वेग से आकाश को धूलिधूसरित या नाना मेघावृत कर देता,

है उसी प्रकार मरुत् के समान तीव्र वेगवान् सेना के जन युद्धस्थल को नाना वर्णों से रंग देते हैं इसलिये उनका निदर्शक चिह्न चितकबरा या खाखी पशु है। (आग्नेयः कृष्णः अजः) अग्नि अस्त्र आदि के विभाग का चिह्न श्याम अज है, क्योंकि उनके अग्नि-अस्त्र में श्याम अर्थात् काला बारूद, मसाला और अज अर्थात् गोले आदि के दूर फेंकने के लिये बल प्रयुक्त होता है इस श्लेष से उनका निदर्शक 'कृष्ण अज' है। (सारस्वती मेषी) भेड़ जिस प्रकार शिर झुका कर चलती है और मेष जिस प्रकार माथे से प्रहार करता है उसी प्रकार सरस्वती के उपासक विद्वान् विनय से रहते हैं और मस्तक से विज्ञान द्वारा स्पर्द्धा करते हैं, इसलिये उनकी सभा सरस्वती का लक्षण मेषी है। (वारुणः पेत्वः) जल जिस प्रकार अति शीघ्रगामी है कौर जिस प्रकार दुष्टों का वारक दमनकारी सिपाही भी अति शीघ्रकारी है उसका का चिह्न भी (पेत्वः) शीघ्रगन्ता अश्व है।

अ॒ग्नये॑ गाय॒त्राय॑ त्रि॒वृ॒ते॒ राथ॑न्तराया॒ष्टाक॑पाल॒ऽइन्द्रा॑य॒ त्रैष्टु॑भाय पञ्च॒द॒शाय॒ बार्ह॑ताय॒ैका॑दशकपालो॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यो॒ जाग॑तेभ्यः सप्तद॒शेभ्यो॑ वैरू॒पेभ्यो॒ द्वाद॑शकपालो मि॒त्रावरु॑णाभ्यामानु॒ष्टुभाभ्या-मेकवि॒ꣳशाभ्यां॑ वैरा॒जाभ्यां॑ पय॒स्या॒ बृह॒स्पत॑ये॒ पाङ्क्ता॑य त्रिण॒-वाय॑ शाक्व॒राय॑ च॒रुः सा॑वि॒त्र ऽऔष्णि॑हाय त्रयस्त्रि॒ꣳशाय॑ रैव॒-ता॒य॒ द्वाद॑शकपालः प्राजाप॒त्यश्च॒रुरदि॑त्यै॒ विष्णु॑पत्न्यै च॒रुर॒ग्नये॑ वैश्वान॒राय॒ द्वाद॑शकपा॒लोऽनु॑मत्या अ॒ष्टाक॑पालः ॥ ६० ॥

भा०—(गायत्राय) गायत्री छन्द से जाने गये ब्राह्म बल से युक्त और (राथन्तराय) रथ, बल या आत्मज्ञान से तरण करने वाले (अग्नये) अग्नि अर्थात् अग्रणी, प्रधान पुरुष के लिये (अष्टाकपालः) आठ कपालों में परिपक्व विचार आवश्यक है। वह अपने अधीन विचारार्थ आठ विचारवान् पुरुषों को नियुक्त करे। (त्रैष्टुभाय) क्षात्र बल से युक्त (पञ्चदशाय) पन्द्रह अंगों से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् राजा के लिये (एकादश

कपालः) ११ कपालों अर्थात् विद्वान् पुरुषों से परिपक्व विचार आवश्यक है। (जागतेभ्यः) जागत अर्थात् वैश्यों से समृद्ध (वैरूपेभ्यः) नाना प्रकार की रुचि वाले (विश्वेभ्यः देवेभ्यः) समस्त दानशील पुरुषों के लिये (द्वादशकपालः) १२ कपालों अर्थात् १२ विद्वानों द्वारा सुविचारित परिपक्व विचार आवश्यक है। (मैत्रावरुणाभ्यांआनुष्टुभाभ्यां एकविंशाभ्यां वैराजाभ्यां पयस्या) प्राण और अपान के समान मित्र और वरुण, दोनों आनुष्टुभ अर्थात् इस सामान्य जनों के हितकारी २१ अधिकारियों से युक्त विशेष कान्ति दोनों को 'पयस्या' चरु हो अर्थात् दूध जिस प्रकार शुद्ध सात्विक एवं पुष्टिप्रद है उसी प्रकार शुद्ध सात्विक और पुष्टिप्रद पुरुष ही प्रजा के न्याय निर्णय और दुष्ट दमन के कार्यों का विधान करें। (पांक्ताय त्रिनवाय, शाक्वराय बृहस्पतये चरुः) पाचों जनों के हितकारी २७ विभागों से युक्त शक्तिशाली बृहस्पति के लिये (चरुः) अन्नमात्र भोग्य पदार्थों की व्यवस्था होनी चाहिये। (सवित्रे) प्रजोत्पत्ति करने वाले (औष्णिहाय) अति अधिक स्नेहवान् (त्रयः त्रिंशाय) तेतींस विभागों से युक्त, (रैवताय) धनधान्यवान् के लिये (द्वादशकपालः) १२ कपालों में संस्कृत अर्थात् १२ विद्वानों द्वारा सुविचारित (प्राजापत्यः) प्रजा पालक पिता माता के निमित्त (चरुः) विधान होना चाहिये। (अदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुः) राजा की अखण्ड पालक शक्ति के लिये भी परिपक्व विचार होना आवश्यक है। (वैश्वानराय अग्नये द्वादशकपालः) समस्त नरनारी के हितकारी नेता के लिये द्वादश कपाल अर्थात् उसके अधीन १२ विद्वान् विचारक हों। (अनुमत्या अष्टाकपालः) अनुमति नाम सभा के लिये आठ कपाल अर्थात् आठ विद्वान् आवश्यक हैं।

कपाल शब्द केवल विभागप्रदर्शक है।

इत्येकोनत्रिंशोऽध्यायः।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

[अ० ३०, ३१] नारायण ऋषिः । *

॥ ओ३म् ॥ देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥१॥

सविता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (सवितः) सब जगत् के उत्पादक ! हे (देव) सब के द्रष्टा और प्रकाशक परमेश्वर ! एवं विद्वन् ! (यज्ञं) परस्पर संगति से होने वाले कार्य का (प्रसुव) भली प्रकार संचालन कर । और (भगाय) ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (यज्ञपतिम्) यज्ञ, प्रजापालक, राष्ट्र के पालक राजा का (प्रसुव) उत्तम रीति से अभिषेक कर । (दिव्यः) ज्ञान और प्रकाशक गुणों से युक्त होकर (गन्धर्वः) गौ, वाणी और पृथ्वी का धारण करने वाला परमेश्वर, विद्वान् और राजा (केतपूः) अपने ज्ञान से सब को पवित्र करने हारा होकर (नः केतं) हमारे ज्ञान और चित्त को (पुनातु) पवित्र करे । और वह (वाचस्पतिः) समस्त वाणियों का पालक प्रभु, विद्वान्, समस्त आज्ञाओं और वाणियों का स्वामी (नः) हमारी (वाचं) वाणी को (स्वदतु) स्वादयुक्त, मधुर करे, अथवा स्वयं स्वीकार करे । शत० १३।६।२।९ ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ २ ॥

गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(सवितुः देवस्य) सर्वोत्पादक सर्वप्रेरक और सब के प्रकाशक

---

* अथ पुरुषमेधः । शत० १३।६।२।१—२० ॥

प्रभु, परमेश्वर के (वरेण्यम्) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त करने वाले, एवं सबों से वरण करने योग्य, सर्वोत्तम (भर्गः) पापों के भून डालने वाले तेज का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं। (यः) जो (नः) हमारे (धियः) बुद्धियों, कर्मों और स्तुति-वाणियों को (प्रचोदयात्) उत्तम मार्ग में प्रेरित करे। शत० १३।६।२।९ ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आसु॑व ॥ ३ ॥

श्यावाश्व ऋषिः। सविता देवता। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे (देव सवितः) सर्व प्रकाशक! सर्वोत्पादक परमेश्वर! (विश्वानि) सब प्रकार के (दुरितानि) दुष्ट आचरणों और दुःखदायी, बुरे व्यसनों को (परासुव) दूर करो। (यत् भद्रम्) जो सुखदायक, कल्याणकारी है (तत्) उसे (नः) हमें (आसुव) प्राप्त कराइये॥ शत० १३।६।२।९॥

वि॒भ॒क्तार॑ꣳ हवामहे॒ वसो॑श्चि॒त्रस्य॒ राध॑सः।
स॒वि॒तारं॑ नृ॒चक्ष॑सम् ॥ ४ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः। सविता। देवता। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(चित्रस्य) विचित्र, (वसोः) इस पृथ्वी पर बसने वाले चराचर जीवसंसार रूप संसार के बसाने वाले प्रभु के (राधसः) धन के (विभक्तारम्) विभाग करने वाले, उनको नाना वर्गों, श्रेणियों और कर्मों में विभक्त करने वाले, (नृचक्षसम्) सब मनुष्यों के द्रष्टा, सर्व साक्षी, (सवितारम्) सर्वोत्पादक, परमेश्वर और सर्वप्रेरक 'सविता' नाम विद्वान् और परमेश्वर की (हवामहे) हम स्तुति करते हैं।

ब्रह्म॑णे ब्राह्म॒णं क्ष॒त्राय॑ राज॒न्यं᳖ म॒रुद्भ्यो॒ वैश्यं॒ तप॑से शू॒द्रं तम॑से॒ तस्क॑रं नार॒काय॑ वीर॒हणं॑ पा॒प्मने॑ क्ली॒बमा॑क्र॒याया॒ ऽअ॒यो॒गूं

कामाय पुँश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥ ५ ॥

भा०—(१) (ब्रह्मणे ब्राह्मणम्) ब्रह्म, परमेश्वर की उपासना, ब्रह्म ज्ञान, वेदाध्ययन, अध्यापन इन कार्यों के लिये 'ब्राह्मण' ब्रह्मवेत्ता, वेदज्ञ विद्वान् को नियुक्त करो ।

(२) (क्षत्राय राजन्यम्) प्रजा को विनष्ट होने से बचाने, राज्य पालन और वीर्य पराक्रम के कार्य करने के लिये 'राजन्य' अर्थात् श्रेष्ठ राजा को नियुक्त कर ।

(३) (मरुद्भ्यः वैश्यम्) मनुष्यों के हित के लिये, उनके अन्न आदि उत्पन्न करने, गो पालन और प्रदान और अन्य नाना व्यवसाय बढ़ाने के लिये (वैश्यं) वैश्य को नियुक्त करो ।

(४) (तपसे) श्रम के कार्य के लिये (शूद्रम्) शीघ्रता से द्रुत गति से जाने वाले, श्रमशील पुरुष को नियुक्त करो ।

(५) (तमसे) अन्धकार के भीतर कार्य करने के लिये (तस्करम्) उसमें जो पुरुष कार्य करने में समर्थ है उसको ही नियुक्त करो ।

(६) (नारकाय वीरहणम्) नीचे की योनि के कष्ट भोगने के लिये (वीरहणम्) पुत्रों और अपने ही वीर्यवान् पुरुषों के नाश करने वाले को पकड़ो ।

(७) (पाप्मने क्लीवम्) पाप को नष्ट करने के लिये कार्य में 'क्लीव' अर्थात् ऐसे शक्तिहीन पुरुष को नियुक्त करो कि वह पाप कर ही न सके । अथवा, उसका अनुकरण करो, पाप के प्रति स्वतः नपुंसक के समान उदासीन होकर रहो ।

(८) (आक्रयाय अयोगूम्) सब प्रकार के पदार्थों के क्रय विक्रय करने के लिये 'अयोगू' अर्थात् चांदी साने आदि के परिमाण सिक्कों की गणना और व्यवहार विज्ञ पुरुष को नियुक्त करो ।

[५-२०] ब्रह्मणे ब्राह्मणमिति द्वे कण्डिके, 'तपसे'० नुवाकश्च (इत्यध्यायपरिसमाप्तिपर्यन्तो नुवाकश्च) ब्राह्मणम् इति सर्वानुक्रमणिका ।

(९) (कामाय पुंश्चलूम्) काम के उपभोग में गिरने के निमित्त पुरुषों में अति चंचल स्वभाव की पुरुष या स्त्री को दोष युक्त फंसा जानो।

(१०) (अतिक्रुष्टाय मागधम्) अति राग से आलाप करने के लिये 'मागध' को उपयुक्त जानो। शत० १३।६।२।१०॥

नृत्ताय सूतं गीताय शैलूषं धर्माय सभाचरं नरिष्ठायै भीमलं नर्माय रेभथं हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीपखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारं धैर्य्याय तक्षाणम् ॥ ६ ॥

निचृदष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(११) (नृत्ताय) नाट्य के लिये (सूतम्) दूसरे से प्रेरित होने वाले अथवा नाट्य के पात्रों के प्रेरक पुरुष को नियुक्त करो।

सूतम् क्षत्रियाद् ब्राह्मण्यां जातम् इति दयानन्दस्तच्चिन्त्यम्।

(१२) (गीताय शैलूषम्) गीत कर्म के लिये 'शैलूष' अर्थात् ऐसे नट को उपयुक्त जानो जो नाना भाव विकारों को दर्शाते हुए गा सके।

(१३) (धर्माय सभाचरम्) धर्म, अर्थात् स्मृति शास्त्र राज-नियम या विधान के निर्णय के लिये 'सभाचर' अर्थात् धर्मसभा में कुशल पुरुष को उपयुक्त जानो।

(१४) (नरिष्ठायै) नेता के पद पर स्थिति प्राप्त करने के लिये (भीमलम्) भयङ्कर, भीतिप्रद पुरुष को नियुक्त करो जिसके भय से प्रजाजन उस पद का मान करें।

(१५) (नर्माय) कोमल वचनों के प्रयोग करने के कार्य में (रेभम्) सुन्दर वचनों को प्रयोग करने वाले स्तुति करने में चतुर पुरुष को प्राप्त करो।

(१६) (हसाय) आनन्द विनोद और उपहास के काम में (कारिम्) नकल उतारने वाले को चतुर जानो।

(१७) (आनन्दाय) आनन्द, गृहसुख प्राप्त करने में (स्त्रीसखम्) अपनी स्त्री के साथ मित्र रूप से रहने वाले पति को योग्य जानो।

(१८) (प्रमदे) अति अधिक हर्ष, काम वेग के उत्पन्न करने के कार्य में (कुमारीपुत्रम्) कुमारी दशा में व्यभिचार से उत्पन्न कानीन बच्चे को जानो। अर्थात् कुमारी दशा में विना विवाह के जो नाजायज पुत्र पैदा होते हैं वे अयुक्त काम व्यसनों में फंसकर प्रायः दुराचारी होते हैं इसलिये उनको दूर करने का यत्न करो।

(१९) (मेधाय) बुद्धि के कार्य में (रथकारम्) रथकार को दृष्टान्त के रूप से जानो। रथकार जिस प्रकार नाना कौशल से रथ के नाना प्रकार के अवयवों को जिस बुद्धिमत्ता से लगाता है उसी प्रकार बुद्धिपूर्वक कार्ययोजना के लिये रथकार शिल्पी का अनुकरण करना चाहिये।

(२०) (धैर्याय) धैर्य की शिक्षा के लिये (तक्षणम्) तरखान को दृष्टान्त रूप से जानो। जिस प्रकार श्रम से तरखान अपने छोटे से औज़ार से बड़ी धीरता से अपने हाथ पांवों को बचाते हुए लकड़ी को गढ़ कर उत्तम कपाट, मेज, कुर्सी आदि बना देता है उसी प्रकार हम धैर्य से अपने साधनों का प्रयोग करके श्रम से पदार्थों को तैयार करें। अधीर होकर जल्दबाज़ी से कार्य बिगड़ जाते हैं अपने ही औज़ार अपना नाश करते हैं।

तप॑से कौला॒लं मा॒यायै॑ क॒र्मार॑ꣳ रू॒पाय॑ मणिका॒रꣳ शु॒भे व॒पꣳ श॑र॒व्याया॑ इषुका॒रꣳ हे॒त्यै ध॑नुष्का॒रं कर्म॑णे ज्याका॒रं दि॒ष्टाय॑ रज्जुस॒र्जं मृ॒त्यवे॑ मृग॒युमन्त॑काय श्व॒निन॑म् ॥ ७ ॥

भा०—(२१) (तपसे कौलालम्) अग्नि से तपाने के कार्य में (कौलालम्) कुलाल अर्थात् घड़े के बनाने वाले कुम्हार का अनुकरण करो। वह जिस प्रकार कच्चे भाण्डों को बड़ी विधि से रख कर अग्नि से उनको

तपाता है इसी प्रकार हम भी मां बाप आचार्य अपने शिष्यों और राजा अपने प्रजा और राष्ट्र के कार्यों की रक्षा करते हुए उनको परिपक्क करे।

(२२) (मायायै कार्मारम्) बुद्धि और आश्चर्य के कार्य करने के लिये लोहकार का अनुकरण करो। जैसे वह बुद्धिमत्ता से लोहे आदि पदार्थों के नाना द्रव्य बनाता है वैसे ही बुद्धिपूर्वक नाना पदार्थों को उत्पन्न करने का कौशल उससे सीखना चाहिये।

(२३) (रूपाय मणिकारम्) रुचिकर, सुन्दर जड़ाऊ पदार्थ को बनाने के लिये 'मणिकार' का अनुकरण करो। मणिकार, मणियों के आभूषण बनाने वाले जिस प्रकार सूक्ष्मता से मणियों को धैर्य से जड़ता है वह सुन्दर आभूषण बन जाता है उसी प्रकार धैर्य से पदार्थों को सुन्दर बनाने का यत्न करो।

(२४) (शुभे) मुख की शोभा के लिये (वपम्) केश डाढ़ी के काटने वाले नाई को लो। इसी प्रकार राष्ट्र की समृद्धि के लिये (वपम्) बीज वपन करने वाले किसान को लो। सुन्दरता को पैदा करने के लिये जिस प्रकार नाई अपने औज़ारों से मुख पर की शोभा के विघातक बालों को छांट कर सुन्दर बना देता है उसी प्रकार राजा भी राष्ट्र के उत्तम पदार्थों की शोभा के नाशक कारणों को दूर करे। महामारी दुर्भिक्षादि को दूर करने के लिये कृपकों को भी नियुक्त करे। या कृपक के समान ही मनुष्य अपनी शोभा, शुभ सन्तान के लिये धैर्य से स्त्री रूप भूमि में बीज वपन करे और उसके समान ही सन्तानों की रेख देख करे।

(२५) (शरव्यायै) बाणों को प्राप्त करने के लिये (इषुकारम्) बाण बनाने वाले को प्राप्त करो, उसे राष्ट्र में बसाओ।

(२६) (हेत्यै धनुष्कारम्) दूर फेंकने वाले अस्त्रों के लिये धनुष आदि बनाने वाले शिल्पि को प्राप्त करो।

(२७) (कर्मणे) अधिक देर तक युद्ध कार्थ करने के लिये (ज्याका-

रम्) डोरी के बनाने वाले को प्राप्त करो। अधिक कार्य से डोरी बार २ टूटना सम्भव है, इसलिये उसके बनाने वाले से बराबर डोरियां प्राप्त हो सकेंगी।

(२८) (दिष्टाय) बहुत लम्बी रचना करने के लिये (रज्जुसर्जम्) लम्बी रस्सी बनाने वाले का अनुकरण करो। वह जिस प्रकार छोटे २ तृणों से भी लम्बा रस्सा बना लेता है उसी प्रकार राजा अल्प शक्ति वाले मनुष्यों की भी लम्बी और दृढ़ सेना बनावे। और उनको उसके समान पुनः आवर्त्तन या अभ्यास द्वारा परिपक्व करे।

(२९) (मृत्यवे मृगयुम्) मृत्यु अर्थात् दुष्ट प्राणियों के वध के लिये (मृगयुम्) व्याध को उपयुक्त जानो। दुष्ट पुरुषों के विनाश के लिये राजा व्याध का अनुकरण करे। उसी के समान खोज २ कर दुष्ट पुरुषों को नाना उपाय से प्रलोभन आदि के जाल में फांस कर पकड़े और उनको निर्दय होकर मृत्युदण्ड दे।

(३०) (अन्तकाय श्वनिनम्) दुष्ट प्राणियों का अन्त करने के लिये 'श्वनी' अर्थात् कुत्ते पालने वाले शिकारी को नियुक्त करो। अथवा—जिस प्रकार कुत्तों को साथ लेकर शिकारी अपने शिकार को चारों ओर से घेर कर व्याघ्र आदि को भी मार डालता है उसी प्रकार राजा भी शत्रु और दुष्ट पुरुषों को घेर २ कर नष्ट करे।

'दिष्टाय रज्जुसर्पम्' और 'अन्तकाय स्वनिनम्' ऐसा पाठ मान लेना श्री पं० श्री पाद दामोदर भट्टजी का असंगत है। वह उन्हीं के प्रकाशित शुद्ध यजुर्वेद के पाठ से विपरीत भी है।

नदीभ्यः पौञ्जिष्ठमृक्षीकाभ्यो नैषादं पुरुषव्याघ्राय दुर्मदं गन्धर्वाप्सरोभ्यो व्रात्यं प्रयुग्भ्य ऽउन्मत्तꣳ सर्पदेवजनेभ्योऽप्रतिपदमयेभ्यः कितवमीर्यताया ऽअकितवं पिशाचेभ्यो विदलकारीं यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम् ॥ ८ ॥

(३१) (नदीभ्यः) नदीयों के पार करने के लिये (पौञ्जिष्ठम्) काष्ठखण्डों के पुञ्जों पर बैठ कर नदी पार करने वाले या बड़े पशुओं की खालों की मशक बना कर उस पर तैरने वाले पुरुषों को नियुक्त करे ।

(३२) (ऋक्षीकाभ्यः नैषादम्) ऋच्छ छाति के वनचारी जन्तुओं के लिये नैषाद, अर्थात् निषाद या जंगली जाति के पुरुषों को नियुक्त करो । वे ऋक्ष आदि को सुगमता से वध कर देते हैं । अथवा—(ऋक्षीकाभ्यः) कुटिल चालों को चलने वाली स्त्रियों को वश करने के लिये (नैषादम्) नीच धर्म से रहने वाले पुरुषों को ही नियुक्त करे ।

(३३) (पुरुषव्याघ्राय) पुरुषों में व्याघ्र के समान शूरवीर पुरुषों के पद के लिये (दुर्मदम्) दुर्दान्त, अदम्य पुरुष को नियुक्त करे ।

(३४) (गन्धर्वाप्सरोभ्यः) युवा पुरुष और युवति स्त्रियों की रक्षा के लिये (व्रात्यम्) व्रात अर्थात् मनुष्यों के हितकारी विद्वान् को नियुक्त करो ।

(३५) (प्रयुग्भ्यः) उत्कृष्ट योगाभ्यासों के लिये प्रवृत्त, (उन्मत्तम्) उत्तम कोटि के हर्ष से युक्त योगी को जानो ।

(३६) (सर्वदेवजनेभ्यः अप्रतिपदम्) सर्व, राष्ट्र भर में गुप्तचर के काम करने के लिये और 'देवजन' अर्थात् युद्ध के विजय करने निमित्त सैनिक के कार्य करने के लिये (अप्रतिपदम्) अर्थात् अज्ञात पुरुष को प्राप्त करे अर्थात् जिसको कोई जान न सके ऐसे को चर बनावे और जो किसी को कुछ नहीं समझे ऐसे को सिपाही बनावे ।

(३७) (अयेभ्यः) पासों के खेलने के लिये (कितवम्) ज्वारी पुरुष को दोषी जाने ।

(३८) (ईर्यतायै अकितवम्) दूसरों को सन्मार्ग पर ले चलने के लिये छल कपट से रहित सज्जन पुरुष को नियुक्त करे ।

(३९) (पिशाचेभ्यः) कच्चे मांस पर गीध की तरह रूप भोग पर पड़ने वाले पुरुषों को वश करने के लिये (विदलकारीम्) विरुद्ध

दल खड़ा करा देने वाली मांसपिण्ड पर गीधों के समान आपस में फोड़ डाल देने वाली नीति का प्रयोग करे ।

(४०) (यातुधानेभ्यः कण्टकीकारीम्) कुटिल मार्गों से धन प्राप्त करने वाले और प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, ठगों, चोर लुटेरों के वश करने के लिये कण्टकी अर्थात् हिंसा करने वाली नीति को अपने व्यवहार में लाने वाली सेना को अथवा उन पर आंख रखने की नीति का प्रयोग करे।

कण्टकः कन्तपो वा कृन्ततेर्वा कण्टतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। निरु० ॥ कण्टति पश्यति परान् इति स्कन्दस्वामी ।

सन्धये जारं गेहायोपपतिमार्त्यै परिवित्तं निर्ऋत्यै परिविविदानमराद्ध्या एदिधिषुःपतिं निष्कृत्यै पेशस्कारीᳪं संज्ञानाय स्मरकारीं प्रकामोद्यायोपसदं वर्णायानुरुधं बलायोपदाम् ॥ ९ ॥

भा०—(४१) (संधये) परस्त्रीगमन के लिये जाने वाले (जारम्) जार, व्यभिचारी पुरुष को राष्ट्र से दूर करे । अथवा—(संधये) परराष्ट्र से संधि करने के लिये (जारम्) उत्तम रीति से बात कहने वाले, वाक्य-कुशल विद्वान् को या वृद्ध पुरुष को नियुक्त करे ।

(४२) (गेहाय) घर में विद्यमान स्त्री के प्रति दुर्बुद्धि से (उपपतिम्) पति के समान भोग करने में प्रवृत्त उपपति पुरुष को राष्ट्र से दूर करे ।

(४३) (आर्त्यै) आर्त्ति अर्थात् क्षुधा आदि पीड़ा को दूर करने के लिये (परिवित्तम्) पर्याप्त धनवान् पुरुष को प्राप्त करो ।

(४४) (निर्ऋत्यै) निर्ऋति अर्थात् भूख, महाभारी आदि कष्टों को दूर करने के लिये (परि-विविदानम्) सब तरफ़ से साधनों को प्राप्त करने वाले को नियुक्त करो ।

(४५) (अराद्ध्या) कार्य में सिद्धि न होती हो तो उसको या दरि-

द्रता को दूर करने के लिये (एदिधिपुः पतिम्) पूर्व ही धारण करने योग्य सम्पत्ति के पालक स्वामी को प्राप्त करो ।

परिवित्त, परिविविदान और एदिधिपुः पति इन शब्दों का लौकिक संस्कृत में अर्थ इस प्रकार है । छोटे भाई के विवाहित होजाने पर जो बड़ा अविवाहित है वह 'परिवित्त' कहाता है । और वह छोटा भाई 'परिविविदान' कहाता है । इसी प्रकार बड़ी बहिन के विवाह के पूर्व ही छोटी बहिन विवाह करे तो वह 'एदिधिपु' या 'अग्रे दिधिपु' है उसका पति 'एदिधिपूपति' कहाता है । महर्षि के मत में—(आर्त्यै) काम पीड़ा में प्रवृत्त हुए (परिवित्तम्) विवाहित छोटे भाई के अविवाहित बड़े भाई को दूर करो । अर्थात् उसका भी विवाह करो । या राजा ऐसा नियम बनावे कि बड़े भाई के पहले छोटे भाई का विवाह न हो । इससे स्त्री की अभिलाषा के कारण गृह कलह न होंगे । (निर्ऋत्यै परिविविदानम्) निर्ऋति अर्थात् पृथिवी के लेने के लिये प्रवृत्त परिविविदान बड़े भाई की उपेक्षा करके दाय भाग लेने वाले छोटे भाई को दूर करो । अर्थात् राजा नियम बना दे कि बड़े भाई की उपेक्षा करके छोटे भाई को जायदाद न मिले ।

इसी प्रकार (अराद्ध्यै एदिधीपुः पतिम्) बड़ी कन्या के अविवाहित रहते हुए भी छोटी कन्या को विवाह करने वाले पुरुष को 'अराधि' अर्थात् अविद्यमान सिद्धि में प्रवृत्त जान कर उसे दूर करो । इसका तात्पर्य यह है कि बड़ी कन्या के विवाह योग्य होजाने पर यदि कोई पुरुष अप्राप्तकाला छोटी कन्या से ही विवाह करने में प्रवृत्त हो तो राजा उसको दूर करे । अर्थात् राजा ऐसा नियम बना दे कि प्राप्तकाला बड़ी कन्या के होते हुए अप्राप्तकाला छोटी कन्या को कोई विवाह न करे ।

(४६) (निष्कृत्यै) निष्कृति अर्थात् प्रायश्चित्त, संताप आदि द्वारा मलशोधन करना 'निष्कृति' है उसके लिये (पेशस्कारीम्) सुवर्ण को तपा २ कर शुद्ध करने की शैली का प्रयोग करो । महर्षि के मत से—प्राय-

श्चित्त के लिये (प्रवृत्त) 'पेशस्कारी' अर्थात् रूप बनाकर बैठने वाली व्यभिचारिणी स्त्री को दूर करो। अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। अथवा—(निष्कृत्यै) प्रायश्चित्तों द्वारा मानसिक मलों को दूर करने के लिये (पेशस्कारीम्) रूप बना कर लुभा लेने वाली व्यभिचारिणी स्त्रियों को दूर करे अर्थात् उनके प्रलोभनों से बचे।

(४७) (संज्ञानाय स्मरकारीम्) ज्ञान को भली प्रकार प्राप्त करने के लिये (स्मरकारीम्) स्मरण, अनुचिन्तन, पुनः २ ध्यान, मनन कराने वाली क्रिया का अभ्यास करो। कठिन बातों का बार २ अभ्यास और मनन करने से उत्तम ज्ञान हो जाता है।

महर्षि के मत में—(संज्ञानाय प्रवृत्ताम् स्मरकारीं परासुव) भली प्रकार काम चेष्टा को जगाने में लगी स्मरकारी अर्थात् काम जगाने वाली दूती को दूर करो। इससे काम-प्रबोध न होगा।

(४८) (प्रकामोद्याय) उत्तम कामनाओं से कार्य करने में उद्यत पुरुष के लिये (उपसदम्) जो उसके निकट तम व्यक्ति हो उसको ही लगाओ।

अथवा—(प्रकामोद्याय = प्रकाम-उद्याय) उत्तम इच्छाओं के कथन या यथेष्ट विषयों पर विवाद या कथनोपकथन द्वारा निर्णय करने के लिये (उपसदम्) समीप २ स्थित होकर विचार करने वाली उपसमिति को प्रयुक्त करो। अथवा—यथेष्ट बात चीत करने के लिये निकटतम मित्र को प्राप्त करो।

(४९) (वर्णाय) किसी बात को स्वीकार करा देने के लिये (अनुरुधं) अनुरोध करने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

(५०) (बलाय उपदाम्) बल अर्थात् सैन्य बल की वृद्धि के लिये उनमें अधिक उत्साह बढ़ाने के लिये (उपदाम्) भेट पुरस्कार देने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

उत्सादेभ्यः कुब्जं प्रमुदे वामनं द्वार्भ्यः स्रामथं स्वप्नायान्धमधर्माय बधिरं पवित्राय भिषजं प्रज्ञानाय नक्षत्रदर्शमाशिक्षायै प्रश्निनमुपशिक्षाया अभिप्रश्निनं मर्यादायै प्रश्नविवाकम् ॥ १० ॥

(५१) (उत्सादेभ्यः) विनाशकारी कार्यों के लिये (कुब्जम्) कुत्सित मार्ग से चलने वाले पुरुष को दण्डित कर ।

(५२) (प्रमुदे) विनोदकारी कार्यों के लिये (वामनम्) बौने पुरुष को नियुक्त करो ।

(५३) (द्वार्भ्यः) द्वारों की रक्षा के लिये (स्रामं) जिसकी आँखों से सदा जल बहता हो ऐसे चक्षु दोष के रोगी पुरुष को मत रक्खो । द्वारों की रक्षा के लिये तीव्र दृष्टि और प्रभावजनक चक्षु-वाला चाहिये ।

(५४) (स्वप्नाय) सुखपूर्वक शयन करने के लिये (अन्धम्) अन्धे, नेत्रहीन पुरुष को मत नियुक्त करो । प्रत्युत अच्छे देखने वाले को पहरेदार बनाओ । अथवा जिस प्रकार अंधे को रूप का ज्ञान न होने से उसको रूप के स्वप्न नहीं आते इसी प्रकार स्वप्नदोष से बचने के लिये (अन्धम्) अन्धे, लोचनहीन पुरुष का अनुकरण करो । बुरे पदार्थों और व्यसनों के लिये अन्धे के समान बने रहो, उनकी तरफ़ दृष्टि न करो ।

(५५) (अधर्माय बधिरम्) अधर्म के कार्यों के लिये बधिर, बहरे कान से न सुनने वाले का अनुकरण करो । अर्थात् अधर्म की बात पर कान मत दो । अथवा अधर्माचरण के लिये बहरा कर दो ।

(५६) (पवित्राय भिषजम्) शरीर और राष्ट्र को पवित्र करने रोग-और मलों से रहित करने के लिये 'भिषग्' अर्थात् रोग निवारक, और रोग कारी मैले पदार्थों को दूर करने वाले पुरुष को नियुक्त कर ।

अथवा—पदार्थों को स्वच्छ पवित्र रखने के लिये वैद्य या भिषग् को स्वास्थ्य विभाग का अध्यक्ष नियत करो ।

(५७) (प्रज्ञानाय) दूर के पदार्थों का ज्ञान करने के लिये (नक्ष-

त्रदर्शम्) नक्षत्रों को देखने वाले या नक्षत्रों को दिखा देने वाले दूरवीक्षण यन्त्र के समान दूरदर्शी विद्वान को नियुक्त करो ।

(५८) (आशिक्षायै) सब प्रकार की विस्तृत शिक्षा के लिये (प्रश्निनम्) प्रश्न करने वाले अध्यापक को नियुक्त करो । जितने ही प्रश्न प्रतिप्रश्न उठाए जायंगे उतना ही विस्तृत ज्ञान प्राप्त होगा ।

(५९) (उपशिक्षायै अभि प्रश्निनम्) समीप स्थित विद्यार्थियों की शिक्षा या अति सूक्ष्म विषयों की शिक्षा के लिये उनके सन्मुख नाना प्रश्न करने वाले विद्वान् को नियुक्त करो ।

(६०) (मर्यादायै) मर्यादा, न्याय अन्याय की व्यवस्था के निर्णय के लिये (प्रश्नविवाकम्) प्रश्नों को विविध प्रकार से कहने वाले विवेचक पुरुष को नियुक्त करो ।

अर्मेभ्यो हस्तिपं ज॒वाया॑श्व॒पं पुष्ट्यै॑ गोपा॒लं वी॒र्या॒याविपा॒लं तेज॑सेऽजपा॒लमिरा॑यै की॒नाशं॑ की॒ला॒ला॑य सुराका॒रं भ॒द्राय॑ गृह॒पꣳश्रेय॑से वित्त॒धमाध्य॑क्ष्याया॒नुक्ष॒त्तार॑म् ॥ ११ ॥

भा०—(६१) (अर्मेभ्यः) बड़ी सवारियों के लिये (हस्तिपम्) हाथीवान् को नियुक्त कर ।

(६२) (जवाय अश्वपम्) वेग से देशान्तर पहुंचने के लिये अश्वों के पालक पुरुष को नियुक्त करो ।

(६३) (पुष्ट्यै) अन्न, गोदुग्ध आदि पुष्टिकारक पदार्थों के प्राप्त करने के लिये (गोपालम्) गौओं के पालक पुरुष को रक्खो ।

(६४) (वीर्याय अविपालम्) वीर्य की वृद्धि के लिये भेड़ों के पालने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

(६५) (तेजसे अजपालम्) तेज, स्फूर्ति की वृद्धि के लिये बकरियों के पालक पुरुष को नियुक्त करो ।

यहां अश्व-पालन के अनुभवी पुरुषों की यह अनुभवसिद्ध बात है कि

भैंस का दूध सुस्ती बढ़ाता है, गौ का दूध पुष्टिकारक, वीर्यवर्धक है और बकरी का दूध कान्ति और स्फूर्ति पैदा करता है।

धन्वन्तरि के मत से गोदुग्ध—

पथ्यं रसायनं बल्यं हृद्यं मेध्यं गवां पयः ॥

अजादुग्ध—छागं कषायं मधुरं शीतं ग्राहितरं लघु ।

अविदुग्ध—आविकं तु पयः स्निग्धं कफपित्तहरं परम् ।

स्थौल्यमेहहरं पथ्यं लोमशं गुरुवृद्धिदम् ॥

(६६) (इरायै) अन्न की वृद्धि के लिये (कीनाशम्) किसान को नियुक्त कर ।

(६७) (कीलालाय) अन्न ओषधि के सार-भाग को प्राप्त करने के लिये (सुराकारम्) सुरा विधि से भपके द्वारा चुवाने वाले पुरुष को नियत कर ।

(६८) (भद्राय गृहपम्) सुख और कल्याण की वृद्धि के लिये गृह के पालक पुरुषों को नियुक्त करे ।

(६९) (श्रेयसे वित्तधम्) सबके कल्याण के लिये धर्म कार्य करने के निमित्त वित्तधारण करने वाले धनाढ्य पुरुषों को प्रेरित कर ।

(७०) (आध्यक्ष्याय) अध्यक्ष के कार्य के लिये (अनुक्षत्तारम्) क्षत्ता अर्थात् अश्वों को चलाने वाले सारथि या कोचवान के समान अपने अधीन पुरुषों को सन्मार्ग पर चलाने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

भायै दार्वाहारं प्रभाया॑ ऽअग्न्येधं ब्रध्नस्य॑ विष्टपा॑याभिषेक्तारं॒ वर्षि॑ष्ठाय॒ नाका॑य परिवेष्टारं॑ देवलोका॑य पेशितारं॑ मनुष्यलोका॑य प्रकरितार॑ꣳ सर्वे॑भ्यो लोकेभ्य॑ ऽउपसेक्तार॒मव॑ ऽऋत्यै वधायो॑पमन्थितारं॒ मेधा॑य वासःपल्पूलीं॑ प्रकामाय॑ रजयित्रीम् ॥ १२ ॥

भा०—(७१) (भायै) अग्नि के लिये (दार्वाहारम्) लकड़हारे

को नियुक्त करो । पञ्जाब के पश्चिम प्रान्त मुलतान आदि स्थानों में अभी-तक 'भा' अग्नि का वाचक है ।

(७२) (प्रभाये अग्न्येधम्) और अधिक तीव्र अग्नि के लिये अग्नि को और अधिक प्रदीप्त करने वाले पुरुष को नियुक्त कर ।

(७३) (ब्रध्नस्य विष्टपाय अभिषेक्तारम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के विशेष तापकारी बल या तेजस्वी पद को प्राप्त करने के लिये 'अभि-षेक्ता' अर्थात् राज्य-अभिषेक करने वाले विद्वान् को प्राप्त कर । अथवा सूर्य के विशेष ताप को दूर करने के लिये जल से स्नान कराने वाले को नियुक्त कर । अथवा, अश्व के मार्ग पर जल सेचने वाले को नियुक्त कर (दया०)

(७४) (वर्षिष्ठाय) अति अधिक सर्वश्रेष्ठ (नाकाय) दुःख रहित परमसुख प्राप्त करने के लिये (परिवेष्टारम्) सर्वत्र व्यापक या सब सुखों के दाता परमेश्वर की उपासना कर ।

(७५) (देवलोकाय) विद्वान् जनों के कार्य के लिये (पेशितारं) प्रत्येक अवयव २ के ज्ञान करने वाले को प्राप्त करो । अथवा–(देवलोकाय) विजयेच्छु पुरुषों या विद्वानों के लिये (पेशितारम्) शत्रुओं को पीस डालने वाले नेता को नियुक्त कर । पिश नाशने । चुरादिः ।

(७६) (मनुष्य लोकाय) मनुष्यों को अपने वश करने के लिये (प्रकरितारम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले को अथवा (मनुष्यलोकाय) मनुष्यों के हित के लिये उत्तम ज्ञान आदि पदार्थों के प्रदान करने वाले को नियुक्त कर ।

(७७) (सर्वेभ्यः लोकेभ्यः उपसेक्तारम्) समस्त प्राणियों के हित के लिये मेघ के समान या माली के समान जल और सुखों का सेचन करने वाले उदार पुरुष को नियुक्त करो, अथवा समस्त लोकों और प्राणियों की सन्तति-वृद्धि के लिये वीर्य सेचन में समर्थ, नर-जीवों को प्राप्त करो ।

(७८) (अव ऋत्यै) नीचे की ओर, दुष्टाचरणों की तरफ जाने और (वधाय) प्राणि-वध को रोकने के लिये (उपमन्थितारम्) दुष्टाचरण करने वालों और वधकारी पुरुषों को दण्ड देने वाले प्रबल पुरुष को नियुक्त कर । स्पष्टता के लिये देखो 'भक्ति' अधिकारी का वर्णन। अ० ७।१७॥

(७९) (मेधाय) ताड़ना करने या दण्ड देने के लिये (वासः पल्पूलीम्) वस्त्र को धोने वाली धोबिन का अनुकरण करो । अर्थात् जिस प्रकार वस्त्र को धोने वाला तभी तक वस्त्र को छांटता, कूटता है जब तक उसमें मल रहता है इसी प्रकार अपराधियों को राजा उतनी ही ताड़ना करे जिससे उनके मलिन आचार नष्ट हो जायं। इसी बात का अध्यापक और माता पिता भी अपने शिष्य और पुत्रों की ताड़ना के समय ध्यान रक्खें ।

अथवा—(मेधाय) बुद्धि की वृद्धि या सत्संग लाभ के लिये (वासः पल्पूलीं) वस्त्रों को शुद्ध करने वाली धोबिन उसकी क्रिया का अनुकरण करे । जिस प्रकार खार लगाने से वस्त्र शुद्ध हो जाता है इसी प्रकार सत्संग लाभ करके मनुष्य सदाचारी होजाय ।

अथवा—संग के वस्त्र के समान स्वच्छ अपने उपसेवनीय अंगों और पदार्थों को भी स्वच्छ रखने वाली स्त्री को प्राप्त करो ।

वास उपसेवायाम् । चुरादिः । पल्पूल प्रक्षालनच्छेदनयोः । पल्पूल लवनपवनयोः । चुरादिः ॥

(८०) (प्रकामाय) उत्तम कामना, काम्य गृहस्थ सुख को प्राप्त करने के लिये (रजयित्रीम्) हृदय को रंगने वाली अर्थात् अनुराग, प्रेम करने वाली, शुभ स्त्री को प्राप्त करो ।

अथवा—उत्तम अभिलाषा के लिये (रजयित्रीम्) रंगने वाली स्त्री का अनुकरण करो । जिस प्रकार रंगने वाली वस्त्र को स्वच्छ कर के रंग में रंग देती है इसी प्रकार हृदय को स्वच्छ करके मनुष्य कामना करे तो उसकी अवश्य सिद्धि होती है ।

ऋ॒तये॑ स्ते॒नहृ॑दयं वै॒रह॑त्याय॒ पिशु॑नं॒ विवि॑क्त्यै क्ष॒त्तार॒मौप॑द्रष्ट्र्या- याऽनुक्ष॒त्तारं॒ बला॑यानुच॒रं भू॒म्ने प॑रिष्क॒न्दं प्रि॒याय॑ प्रियवा॒दिन॒म- रि॑ष्ट्या अश्वसा॒दꣳ स्व॒र्गाय॑ लो॒काय॑ भागदु॒घं वर्षि॑ष्ठाय॒ नाका॑य परिवे॒ष्टार॑म् ॥ १३ ॥

(८१) (ऋतये) अर्थात् 'ऋति' हत्या आदि के कार्य्य के लिये (स्तेनहृदयम्) स्तेन और-चौर के समान भीरु हृदय को पकड़ लेना चाहिये । हत्यारे आदि दण्ड से भागते हैं । उसको दिल से परख कर पकड़ना चाहिये ।

अथवा—(ऋतये) शत्रु नाश करने के लिये (स्तेन-हृदयम्) चोर के हृदय के समान अप्रकट, छुपे आकार विचार के पुरुष को नियुक्त करे ।

(८२) (वैरहत्याय) वैर से हत्या के कर्म को रोकने के लिये (पिशुनम्) उन अपराधों को तुरन्त सूचित करने वाले पुरुषों और साधनों को नियुक्त करे ।

(८३) (विविक्तये) विवेक के लिये (क्षत्तारम्) सारथि के समान इन्द्रियों को सन्मार्ग में चलाने वाले मन एवं मनुष्यों को सन्मार्ग में चलाने वाले पुरुष को नियुक्त करे ।

(८४) (औपद्रष्ट्र्याय अनुक्षत्तारम्) सूक्ष्मता सब पदार्थों को दिखाने वाले के कार्य के लिये मार्गदर्शक एवं अश्वों के समान उच्छृंखल वृत्तियों को नियम में रखने वाले, तपस्वी पुरुष को नियुक्त करे । महाभारत काल में धृतराष्ट्र का सञ्जय और दुर्योधन का विदुर 'क्षत्ता' पद पर नियुक्त थे । दशरथ का 'क्षत्ता' सुमन्त्र था । यह भी एक आवश्यक पद था जो राजा को संदिग्ध कार्यों में सलाह देने और सूक्ष्म बातों का विवेचन करने और मोहादि के समय में ज्ञानप्रदर्शन करने का काम करता था । यह कार्य संजय,

विदुर और सुमन्त्र ने अच्छी प्रकार किया था। जाति जन्मादि का इसमें कोई विचार नहीं है।

(८५) (बलाय अनुचरम्) अपने बल बढ़ाने के लिये अपने आज्ञा में चलने वाले पुरुषों को स्वीकार कर।

(८६) (भूम्ने परिष्कन्दम्) बहुत से प्रजा को उत्पन्न करने के लिये सर्वत्र वीर्य सेचन में समर्थ पुरुषों को आज्ञा करे। अर्थात् यह राजनियम हो कि नपुंसक, निर्वीर्य पुरुष गृहस्थ में प्रवेश न करें उनको विवाह करने का हक न हो। अथवा—(भूम्ने) बहुतसे सेनाबल के लिये (परिस्कन्दम्) विशेष छावनी, स्कन्धावार को नियुक्त करे।

(८७) (प्रियाय प्रियवादिनम्) अपने प्रिय कार्य के लिये मधुरभाषी पुरुष को नियुक्त करे।

(८८) (अरिष्ट्यै अश्वसादम्) राष्ट्र को नाश न होने देने और उसमें शान्ति स्थापन और कुशल क्षेम करने और विघ्न नाश करने के लिये अश्वारोही सैन्य को नियुक्त करे।

(८९) (स्वर्गाय लोकाय भागदुघम्) विशेष सुख प्राप्त करने और लोक के हित के लिये कररूप से राजा के भाग को एकत्र करने वाले पुरुष को नियुक्त करो।

(९०) (वर्षिष्ठाय नाकाय परिवेष्टारम्) सबसे उत्तम सुख, आनन्द को प्राप्त करने के लिये विज्ञान को सर्वत्र प्रदान करने वाले विद्वान् और ऐश्वर्य देने वाले धनाढ्य को नियुक्त करो।

मन्यवेऽयस्तापं क्रोधाय निसरं योगाय योक्तारꣳ शोकायाभिसर्त्तारं क्षेमाय विमोक्तारमुत्कूलनिकूलेभ्यस्त्रिष्ठिनं वपुषे मानस्कृतꣳ शीलायाञ्जनीकारीं निर्ऋत्यै कोशकारीं यमायासूम् ॥ १४ ॥

भा०—(९१) (मन्यवे) मन्यु अर्थात् राष्ट्र के भीतरी क्रोध को शान्त करने के लिये (अयःस्तापम्) लोहे को तपाने वाले लोहार को दृष्टान्त

के रूप में लो। वह जिस प्रकार तपे लोहे को एक दम शीतल जल में डालता है या वह उसको संडासी से पकड़ कर उस पर चोटें मार कर यथेष्ट वस्तु बना देता है उसी प्रकार राजा क्रोधान्ध पुरुषों को भी उपाय से वश करे और शान्ति के उपचार करे।

(९२) (क्रोधाय निसरम्) राष्ट्र के बाह्य क्रोध को शान्त करने के लिये (निसरम्) नियमपूर्वक शत्रु के प्रति अभिसरण या चढ़ाई करने वाले को नियुक्त करे।

(९३) (योगाय योक्तारम्) योग अर्थात् चित्त वृत्ति के निरोध के अभ्यास के लिये (योक्तारम्) योग करने वाले पुरुष की आराधना करे।

(९४) (शोकाय) 'शोक' अर्थात् तेजस्वी होने के के लि (अभिसर्त्तारम्) शत्रुओं के प्रति मुकाबले पर अभिसरण या प्रयाण करने हारे पुरुष को नियुक्त करो।

(९५) (क्षेमाय विमोक्तारम्) रक्षण आदि कुशल प्राप्ति के लिये दुःखों और संकटों से मुक्त करने वाले को नियुक्त करो।

(९६) (उत्कूलनिकूलेभ्यः त्रिष्ठिनम्) ऊंचे नीचे स्थानों और अवसरों के लिये तीनों प्रकार के ऊंचे, नीचे और सम एवं तीनों प्रकार के कालों में स्थिति करने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

(९७) (वपुषे मानस्कृतम्) शरीर के हित के लिये विचारपूर्वक कर्म करने वाले को नियुक्त करो।

(९८) (शीलाय आञ्जनीकारीम्) शील स्वभाव की रक्षा के लिये आञ्जनी—अञ्जन लगाने वाली सुशील, सुरूप स्त्री का अनुकरण करो।

(९९) (निर्ऋत्यै कोशकारीम्) विपत्ति आदि दूर करने के लिये (कोशकारीम्) कोश सञ्चय करने वाली स्त्री या नीति का अनुकरण करो।

अथवा (निर्ऋत्यै) भूमि के प्राप्त करने के लिये (कोशकारीम्) कोश-धनैश्वर्य की वृद्धि करने वाली भूमि को प्राप्त करो।

(१००) (यमाय असूम्) यम अर्थात् ब्रह्मचारी पुरुष के लिये (असूम्) जिसने अभीतक पुत्र न जना हो ऐसी ब्रह्मचारिणी कुमारी स्त्री को प्राप्त कराओ। अथवा—(यमाय) नियन्ता राजा के लिये या नियन्त्रण के लिये (असूम्) शत्रुओं पर शस्त्रादि फेंकने वाली सेना को प्राप्त कर।

यमार्यं यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाᳫं संवत्सरार्य पर्य्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराय विजर्जराᳫं संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसंधᳫं साध्येभ्यश्चर्मम्नम् ॥ १५ ॥

(१०१) (यमाय) नियन्ता पुरुष के लिये (यमसूम्) यम, नियन्त्रण करने वाले नियमों को बनाने वाली या, नियामक पुरुषों को आज्ञा चलाने वाली राजसभा प्राप्त हो।

(१०२) (अथर्वभ्यः) प्रजापालक विद्वान् पुरुषों के लिये (अवतोकां) शत्रुओं को अपने नीचे दवा कर दुःख देने वाली सेना प्राप्त हो।

(१०३) (संवत्सराय पर्यायिणीम्) संवत्सर ज्ञान के लिये 'पर्याय' अर्थात् क्रम से कालों का ज्ञान कराने वाली यन्त्रकला या गणितविद्या को प्राप्त करो।

(१०४) अथवा जो स्त्री 'अवतोका' है अर्थात् जिसका बालक गर्भ में नष्ट हो जाते हैं उस स्त्री को 'अथर्वा' नामक उन विद्वानों केपास चिकित्सार्थ लेजाय जो बालक के प्राणों को नष्ट न होने दें। अथवा 'अवतोका' वह स्त्री है जिसका बालक प्रसवकाल में नीचे की ओर बाहर को आने को हो ऐसे प्राप्तप्रसवा स्त्री को बालरक्षा के विज्ञ विद्वानों के सुपुर्द करे। (यमाय मयसूम्) जो स्त्री जोड़ा जनती है उसको 'यम' अर्थात् संयमी पुरुष के व्रत पालन के लिये अधीन रक्खो।

(१०५) (संवत्सराय पर्यायिणीम्) एक वार नर और एक वार

मादा सन्तान उत्पन्न करने वाली स्त्री को (संवत्सराय) एक वर्ष के लिये संयम से रक्खे । उसका यह दोष नष्ट हो जायेगा ।

(१०६) (अविजाताम् परिवत्सराय) विशेष कारण से सन्तान जो न उत्पन्न करती हो तो उसको 'परिवत्सर' अर्थात् द्वितीय वर्ष में वैद्य की चिकित्सा करानी उचित है ।

(१०७) (अतिष्कद्वरीं इदावत्सराय) अति अधिक पतिसंग करने वाली–अति कामिनी स्त्री को पुत्र लाभ के निमित्त तीसरे वर्ष तक प्रतीक्षा करे ।

(१०८) (अतिष्कद्वरीं इद्वत्सराय) अति अधिक रजःस्राव करने हारी स्त्री की सन्तान के निमित्त पांचवें वर्ष तक प्रतीक्षा करे ।

(१०९) (वत्सराय विजर्जराम्) विशेष रोगादि कारण से कृश या जर्जर शरीर की स्त्री को (वत्सराय) एक वर्ष के लिये संयम से रहने दे ।

(११०) (संवत्सराय पलिक्नीम्) जिस स्त्री के उमर से पहले ही पलित आजाय ऐसी स्त्री को सन्तान के निमित्त ४ वर्ष तक प्रतीक्षा करे ।

(१११) (अजिनसंधं ऋभुभ्यः) शिल्पी लोगों के कार्य के लिये 'अजिन संध' अर्थात् चर्म के पदार्थों को सीने जोड़ने वाले कारीगर को नियुक्त करो । अथवा विद्वान् पुरुषों या 'ऋत' अर्थात् राष्ट्र से चमकने वाले राजाओं के कार्य के लिये ऐसे पुरुष को नियुक्त करो जो (अजिनसंधं) अजेय राष्ट्रों को भी चर्मों के समान परस्पर संधि या मेल कराने में समर्थ है । इससे राजाओं और विद्वान् विज्ञानी पुरुषों की हत्या न होकर परस्पर सहयोग से विज्ञान कला कौशल और व्यापार, राज्य, ऐश्वर्य की उन्नति होती है ।

(११२) (साध्येभ्यः चर्मम्नम्) साध्य अर्थात् बनाने योग्य चर्मों को जिस प्रकार चमड़े घोटने वाला रगड़ २ कर मुलायम कर लेता है इसी प्रकार (साध्येभ्यः) वश करने योग्य उद्दण्ड पुरुषों के वश करने के लिये उनपर बराबर दण्ड का प्रयोग करने वाले पुरुष को नियुक्त करे ।

सरोभ्यो धैवरमुपस्थावराभ्यो दाशं वैशन्ताभ्यो वैन्दं नड्वलाभ्यः शौष्कलं पाराय मार्गारमवाराय केवर्त्तं तीर्थेभ्य आन्दं विषमेभ्यो मैनालꣳ स्वनेभ्यः पर्णकं गुहाभ्यः किरातꣳ सानुभ्यो जम्भकं पर्वतेभ्यः किम्पूरुषम् ॥ १६ ॥

भा०—(११३) (सरोभ्यः) सरोवरों के स्वच्छ रखने के लिये (धैवरम्) धीवर को नियुक्त करो। अथवा (सरोभ्यः) उत्तम ज्ञानों के प्राप्त और शिक्षण के लिये (धीवरम्) बुद्धि में श्रेष्ठ पुरुष को नियुक्त करो।

(११४) (उपस्थावराभ्यः दाशं) उपवन में लगे छोटे २ स्थावर वृक्षों की वाटिकाओं के कार्य के लिये या उपस्थित तुच्छ कार्यों के लिये (दाशं) वेतन बद्ध भृत्य को नियुक्त कर लो।

(११५) (वैशन्ताभ्यः) छोटे २ ताल तलैयों के प्रबन्ध और रक्षा के लिये (वैन्दम्) वैन्द ।अर्थात् उससे लाभ लेने वाले पुरुष को नियुक्त करे। उन ताल तलैयों को वे ही अच्छा रक्खें जो उससे कुछ फ़ायदा उठाते हैं।

(११६) (नड्वलाभ्यः शौष्कलम्) जिन भूमियों में नड्, सरकण्डे आदि उत्पन्न हों उन दलदल वाली भूमियों को बसाने के लिये (शौष्कलम्) शोषण करने या उनके सुखा डालने वाले उपायों से विज्ञ पुरुष को नियुक्त करे।

(११७) (पाराय मार्गारम्) परले पार या दूर के देशों को जाने के लिये जल जन्तुओं के शत्रु, उनके नाशक पुरुष को नियुक्त कर। और—

(११८) (अवाराय केवर्तम्) उरले पार आने के लिये जल के भीतर रहने वाले, उसी में आजीविका करने वाले को नियुक्त करो।

(११९) (तीर्थेभ्यः आन्दम्) तीर्थ, जलों के भीतर उतरने की सीढ़ियों के या घाटों के बनाने के लिये बांध लगाने में चतुर, जो किनारा दृढ़ता से बांध दे ऐसे पुरुष को नियुक्त करो।

(१२०) (विषमेभ्यः मैनालम्) ऊंचे नीचे विषम संकटमय स्थानों के लिये भी हिंसक जन्तुओं के नाश करने वाले पुरुष को नियुक्त करो ।

(१२१) (स्वनेभ्यः) नाना प्रकार के शब्दों को उत्पन्न करने के लिये (पर्णकम्) जो पुरुष रक्षा और युद्धादि कार्य में कुशल हो ऐसे को नियुक्त कर ।

(१२२) (गुहाभ्यः किरातम्) पर्वतों की गुहाओं की रक्षा और प्रबन्ध के लिये, तुच्छ कर देने वाले पुरुषों को लगावें । वे उन स्थानों में रहें ।

(१२३) (सानुभ्यः जम्भकम्) पर्वत शिखरों के प्रबन्ध के लिये हिंसक जन्तुओं के नाशक पुरुष को नियुक्त करे ।

(१२४) (पर्वतेभ्यः) पर्वतों में बसने के लिये (किम्पूरुषम्) अल्प शक्ति और व्यवसाय वाले अथवा पुरुष प्रमाण से भी छोटे कद वाले पुरुषों को बसावे ।

बी॒भ॒त्सायै॑ पौल्क॒सं वर्णा॑य हिरण्यका॒रं तु॒लायै॑ वणि॒जं प॑श्चादो॒षाय॑ ग्ला॒विन॒ं विश्वे॑भ्यो भू॒तेभ्य॑ सिध्म॒लं भू॒त्यै जा॑गर॒णमभू॑त्यै स्वप॒नमार्त्यै॑ जनवा॒दिन॒ं व्यृ॑द्ध्या अपग॒ल्भꣳ सꣳश॒राय॑ प्र॒च्छिद॑म् ॥ १७ ॥

भा०—(१२५) (बीभत्सायै) बीभत्स क्रियाओं के लिये (पौल्कसम्) पुक्कस नाम घृणित पदार्थ के व्यवहारी पुरुष को लगावे ।

(१२६) (वर्णाया हिरण्यकारं) उत्तम वर्ण या सुन्दर वरण करने योग्य पदार्थ के लिये (हिरण्यकारम्) सुवर्णकार को नियुक्त करो ।

(१२७) (तुलायै वणिजम्) तुला, तराजू के व्यवहार के लिये वणिग् व्यवसाय में कुशल पुरुष को लगावे ।

(१२८) (पश्चादोषाय ग्लाविनम्) पीछे से दोष देने के लिये अप्रसन्न पुरुष, जिसको ग्लानि होजाय वही पीछे से दोष दिया करता है ।

(११९) (विश्वेभ्यः भूतेभ्यः) समस्त प्राणियों के सुख के लिये (सिध्मलम्) त्वचा रोग के रोगी पुरुष को सदा दूर रक्खे। अथवा समस्त प्राणियों के सुख के लिये सुधसाधक पदार्थों से युक्त पुरुष को नियुक्त करो।

(१२०) (जागरणंभूत्यै) जागना, सावधान रहना भूति, ऐश्वर्य वृद्धि के लिये आवश्यक है।

(१२१) (स्वपनम्) सोना, आलस्य करना (अभूत्यै) ऐश्वर्य के नाश के लिये है।

(१२२) (आर्त्यै जनवादिनम्) पीड़ा को दूर करने और उससे खबरदार करने के लिये सर्वसाधारण जनों के प्रति स्पष्ट रूप से बतला देने और उनको सूचित कर देने वाले पुरुष को नियुक्त कर।

(१२३) (व्यृद्ध्यै अपगल्भम्) ऋद्धि सम्पत्ति के नाश करने के लिये प्रवृत्त हुए (अपगल्भम्) बुरे प्रकार के ढीठ पुरुष को दमन करे। अथवा (व्यृद्ध्यै) सम्पत्ति समृद्धि के नाश या विपरीत गुण वाली समृद्धि से बचने के लिये (अपगल्भम्) दुरभिमानी को दमन कर। और विनीत पुरुष को नियुक्त कर।

(१२४) (संशराय) अच्छी प्रकार शरों या बाणों का प्रयोग करने के लिये (प्रच्छिदम्) दूर तक छेदन भेदन में कुशल पुरुष को नियुक्त कर।

अक्षराजाय कितवं कृतायादिनवदर्शं त्रेतायै कल्पिनं द्वापरायाधिकल्पिनमास्कन्दाय सभास्थाणुं मृत्यवे गोव्यच्छमन्तकाय गोघातं क्षुधे यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण उपतिष्ठति दुष्कृताय चरकाचार्यं पाप्मने सैलगम् ॥ १८ ॥

भा०—(१२५) (अक्षराजाय) पासों से खेलने वाले पुरुषों के बीच राजा, सबका मुख्य होने के लिये (कितवं) कितव, बड़े भारी जूआ

खोर धूर्त्त को, या चतुर पुरुष को जानो। अथवा अक्षों अर्थात् इन्द्रियों के वीच में उनका स्वामी होने के लिये (कितवः) अति चतुर, चेतना युक्त मन या आत्मा जिस प्रकार है उसी प्रकार 'अक्ष' अर्थात् अध्यक्ष पुरुषों के वीच में राजा पद के लिये भी 'कितव' अर्थात् विशेष ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष, अथवा सबका स्वामी होने से प्रत्येक को यह कहने वाला कि 'किं तव' तेरा क्या कार्य है ? इस प्रकार प्रत्येक के कार्य का निरीक्षण करने वाला सूक्ष्म विवेचक पुरुष को सबका निरीक्षक रखना चाहिये।

(१३६) (कृताय) किये कर्म के निरीक्षण के लिये या उसकी और अधिक उन्नति के लिये (आदिनवदर्शम्) किये कर्म में विद्यमान दोष या त्रुटियों को देख लेने में चतुर पुरुष को नियुक्त करे।

(१३७) (त्रेतायै कल्पिनम्) भूत, भविष्यद् और वर्त्तमान तीनों कालों में होने वाले कार्यों को देखने के लिये सामर्थ्यवान् या कल्पनाशील, दूरदर्शी, विज्ञ पुरुष को नियुक्त करो।

(१३८) (द्वापरायै अधिकल्पिनम्) करने वाले और देखने वाले दोनों के करने और निरीक्षण से परे के और भी उत्तम कार्य को करा लेने के लिये और भी अधिक कल्पनाशील चतुर मस्तिष्क को नियुक्त करो।

(१३९) (आस्कन्दाय) सब तरफ़ से राष्ट्र के रसों को सूर्य के समान शोषण या चूस लेने के कार्य व्यवस्था के लिये (सभास्थाणुम्) सभी के वीच में स्थित मुख्य पदाधिकारी को नियुक्त करना चाहिये।

(१४०) (मृत्यवे गोव्यच्छम्) गौ आदि पशुओं पर विविध कष्टदायी विकार या चेष्टा करने वाले को मृत्युदण्ड के लिये दे दो।

(१४१) (अन्तकाय गोघातम्) गौ को मारने वाले पुरुष को अन्त कर देने वाले जल्लाद के हाथ सौंप दो।

(१४२) (यः) जो (भिक्षमाणः) अन्न की भीख मांगता हुआ प्रजाजन (उपतिष्ठति) उपस्थित हो तो उसकी (क्षुधे) भूख की निवृत्ति

के लिये (गां विकृन्तन्तं) भूमि को खोदने, हल चलाने वाले कृषक को नियुक्त करो।

(१४३) (दुष्कृताय चरकाचार्यं) दुष्कर्म के दूर करने के लिये (चरकाचार्यम्) भोज्य पदार्थों के ऊपर आचार्य को नियुक्त कर जो सबको उत्तम पुष्टिकारक भोजन करने का उपदेश करे। और बुरे २ भोजनों के दुर्व्यवहार और हानियों को बतलाता रहे। इससे लोग बुरे आचार व्यवहारों को छोड़ कर उत्तम आहार विहार करना सीखेंगे।

(१४४) (पाप्मने) पाप कार्य को रोकने के लिये (सैलगम्) दुष्टों के वश करने वाले को नियुक्त कर। अथवा (पाप्मने) पापाचरण के लिये दुष्ट पुरुषों के सन्तानों और शिष्यों, साथियों को भी दण्डित कर। उनको पकड़।

प्रतिश्रुत्कायाऽअर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकꣳ शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शङ्खध्मं वनाय वनपमन्यतोऽरण्याय दावपम् ॥१९॥

भा०—(१४५) (प्रतिश्रुत्काय) प्रतिज्ञा पूर्त्ति के लिये (अर्त्तनम्) ऐसे व्यक्ति को नियत कर जो लोकों से प्रतिज्ञा निभवा सके। उसके लिये वह उनको दबा भी सके।

(१४६) (घोषाय भषम्) घोषणा करने के लिये बड़ी आवाज़ से बोलने वाले को नियुक्त कर।

(१४७) (अन्ताय बहुवादिनम्) सिद्धान्त प्रतिपादन, या मर्यादा निर्णय करने के लिये बहुत अधिक कहने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

(१४८) (अनन्ताय मूकम्) अनन्त अर्थात् जिस वाद विवाद की मर्यादा न हो उसको दूर करने के लिये 'मूक' गूंगे का अनुसरण करे। मौन रहे।

(१४९) (शब्दाय आडम्बराघातम्) शब्द करने के लिये आड-म्बर पूर्वक बाजों को बजाने वाले को नियुक्त करो। अथवा भयंकर शब्द के लिये कोलाहल करने वाले को दण्डित करो।

(१५०) (महसे वीणावादम्) महत्त्व पूर्ण कार्य के लिये वीणा बजाने वाले को नियुक्त करो।

(१५१) (क्रोशाय तूणवध्मम्) सैन्य बल और जन समूह को निमन्त्रण देकर बुलाने के लिये (तूणवध्मम्) तूणव नामक ढोल या ढक्का बजाने वाले को नियुक्त करो।

(१५२) (अवरस्पराय शङ्खध्मम्) आस पास और दूर के लोगों को बुलाने के लिये शंख बजाने वाले को नियुक्त करो।

(१५३) (वनाय वनपम्) बन की रक्षा के लिये वनपाल को नियुक्त करो।

(१५४) (अन्यत अरण्याय) जिस देश में एक तरफ वन हों ऐसे देश की रक्षा के लिये (दावपम्) जंगल में लगने वाली आग से देश की रक्षा के रक्षा करने में कुशल पुरुष को नियुक्त करो।

नर्माय पुँश्चलूꣳ हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकम-भिक्रोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायान-न्दाय तलवम् ॥ २० ॥

भा०—(१५५) (नर्माय) कोमल, मन लुभाने वाले वचनों को बोलने में लगी (पुंश्चलूम्) व्यभिचारिणी स्त्री को दूर करो।

(१५६) (हसाय) उपहास के लिये (कारिम्) नकल उतारने वाले को दण्डित कर। अथा शोभाजनक पदार्थों को बनाने के लिये कारी-गर शिल्पी को नियुक्त कर।

(१५७) (यादसे शबल्याम्) जल जन्तुओं की रक्षा के लिये

'शबल' वर्ण अर्थात् मलिन कार्य करने वाली जाति को दूर करो। वे उनका विनाश न करें।

(१५८–१५९) (महसे) बड़े कारबार, या राज्य प्रबन्ध के लिये (ग्रामण्यम्) ग्रामनायक, (गणकम्) गणक, हिसाब में चतुर और (अभिक्रोपकम्) सबको बुलाने वाले (तान्) इन तीन को नियुक्त करे।

(१६०–१६१) (नृत्ताय) नृत्य के लिये (वीणावादं) वीणा बजाने वाले, (पाणिघ्नम्) हाथ से तबले आदि बजाने वाले और (तूणव-ध्मम्) तुरही बजानेवाले को नियुक्त करो।

(१६२) (आनन्दाय तलवम्) आनन्द, प्रसन्नता के लिये करताल-बजाने वाले को नियुक्त करो।

अग्नये पीवानं पृथिव्यै पीठसर्पिणं वायवे चाण्डालमन्तरिक्षाय वंशनर्तिनं दिवे खलतिᳪ सूर्याय हर्यक्षं नक्षत्रेभ्यः किर्मिरं चन्द्रमसे किलासमह्ने शुक्लं पिङ्गाक्षᳪ रात्र्यै कृष्णं पिङ्गाक्षम् ॥२१॥

भा०—(१६३) (अग्नये पीवानम्) अग्रणी पद के लिये, प्रबल हृष्ट पुष्ट पुरुष को नियुक्त करो।

(१६४) (पृथिव्यै) पृथिवी के शासन के लिये (पीठसर्पिणम्) सिंह-आसन या मुख्य आसन पर विराजनेहारे तेजस्वी पुरुष को नियुक्त कर।

(१६५) (वायवे चाण्डालम्) वायु के समान तीव्र बल से शत्रु के अंग भंग करने के लिये चण्डता से युद्ध करने वाले, प्रचण्डपुरुष को नियुक्त कर।

(१६६) (अन्तरिक्षाय वंशनर्त्तिनम्) अन्तरिक्ष में रहने के लिये वंश या बांस पर नाचने वाले का अनुकरण करो। वह व्यायाम से बहुत चुस्त शरीर होकर कूदने फांदने में समर्थ होता है, वह निरवलम्ब स्थान में भी भयभीत नहीं होता।

(१६७) (दिवे) द्यौलोक के ज्ञान के लिये (खलतिम्) नक्षत्रों और ग्रहों के सञ्चालन के जानने वाले को नियुक्त करो।

सञ्चलनार्थस्य स्खलतेः खलतिरिति औणादिको निपातः ॥ स्खलति सञ्चलति इति खलतिः। उपचारात् स्खलनविज्ञः ॥ स्खलनं ग्रहगतिभ्रंशो वा।

(१६८) (सूर्याय हर्यक्षम्) सूर्य के समान तेजस्वी पद के लिये हरि अर्थात् सिंह के समान या सूर्य के समान तेजस्वी चक्षु वाले प्रभाव-शाली पुरुष को नियुक्त करो। अथवा—(सूर्याय) सूर्य के दुष्प्रभाव को रोकने के लिये या उससे बचने के लिये (हर्यक्षम्) हरे रंग के काच के बने देखने के यन्त्र का प्रयोग करो।

(१६९) (नक्षत्रेभ्यः किर्मिरम्) नक्षत्रों के ज्ञान के लिये 'किर्मिर' अर्थात् चित्र विचित्र, काले पर श्वेत चित्र का प्रयोग करो।

(१७०) (चन्द्रमसे किलासम्) चन्द्रमा के प्रकाश का आनन्द लेने के लिये 'किलास' अर्थात् श्वेत वर्ण के पदार्थों पर दृष्टि करो।

(१७१) (अन्हे शुक्ल-पिंगाक्षम्) दिन का स्वरूप श्वेत, पीले सूर्य रूप चक्षु को धारण करने वाला जानो।

(१७२) (रात्र्यै कृष्ण-पिंगाक्षम्) रात्रि का स्वरूप श्याम और पीली आंख वाला जानो, अर्थात् रात में काला अन्धकार में पीत वर्ण का अग्नि प्रकाश ही चक्षु है।

अथैतानष्टौ विरूपाना लभतेऽतिदीर्घं चातिह्रस्वं चातिस्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्णं चातिकुल्वं चातिलोमशं च। अशूद्रा ऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः। मागधः पुंश्चली कितवः क्लीबोऽशूद्रा ऽअब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ २२ ॥

भा०—(अथ) और (एतान्) इन (अष्टौ) आठ (विरूपान्) विकृत रूप वाले पुरुषों को (आलभते) राजा अपने अधीन रक्खे। (अति-दीर्घं) बहुत अधिक लम्बा, (अतिह्रस्वं च) बहुत छोटा, बौना, (अति-

कृशं च) बहुत दुबला, पतला, (अतिशुक्लं च) बहुत श्वेत, अति गौर, (अति-कृष्णं च) बहुत ही काला (अति लोमशं च) बहुत अधिक लोम वाला। ये आठ विचित्र होने से संग्रह करने योग्य हैं। यदि ये (अशूद्राः) शूद्र कर्म करने वाले न हों और (अब्राह्मणाः) ब्राह्मण के काम करने वाले विद्वान् भी न हों तो (ते) वे (प्राजापत्याः) प्रजापालक राजा के ही अधीन उसकी सम्पत्ति एवं भरण पोषण योग्य जीव समझे जायं। इसी प्रकार (अशूद्राः अब्राह्मणाः) शूद्र और ब्राह्मण के काम के अयोग्य (मागधः) स्तुति पाठक, या नृशंस घोर लोभी (पुंश्चली) पुरुषों के भीतर व्यभिचार का जीवन बिताने वाली, चञ्चल नारी, (कितवः) जूआखोर और (क्लीबः) नपुंसक (ते) ये चारों भी (प्राजापत्याः) प्रजापालक राजा के ही अधीन रहें।

अर्थात् यदि ये ब्राह्मण का ज्ञान, सदाचार का जीवन और शूद्र आदि की पराधीनता का जीवन बिता सकें तो राजा इनको अपने अधीन न ले ये क्षत्रियों में रह नहीं सकते क्योंकि वहां वीर चाहियें। स्तुति पाठक, खुशामदी जुआचोर, व्यभिचारी पुरुषों से क्षात्र कर्म नहीं हो सकता। किसी व्यापार में ये लग नहीं सकते। व्यभिचारी जूआखोरी से असत्य व्यवहार और दुराचार बढ़ता है इसलिये ऐसों को राजा अपने नियन्त्रण में रक्खे। मागध को वन्दी बनाकर स्तुति पाठ के लिये रक्खे। 'कितव' को क्रीड़ा के लिये, पुंश्चली को सेवा के लिये, क्लीब को अन्तःपुर की भृत्यता के लिये रखे। अथवा ऐसे व्यक्तियों को सबसे अलग कैदखाने में रक्खे जिससे ये दुराचारादि न फैला सकें।

इति त्रिंशोऽध्यायः।

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

[१-१६] नारायण ऋषिः । पुरुषो देवता । पुरुष सूक्तम् । १—१५ अनुष्टुप् गान्धारः ।

॥ ओ३म् ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥

भा०—(सहस्रशीर्षाः) हज़ारो शिरों वाला, (सहस्राक्षः) हज़ारों, अनन्त आंखों वाला, (सहस्रपात्) हज़ारों, अनन्त पैरों वाला (पुरुषः) 'पुरुष' सर्वत्र पूर्ण जगदीश्वर है । वह (भूमिम्) सबको उत्पन्न करने वाली भूमि के समान सर्वाश्रय प्रकृति को भी (सर्वतः) सब प्रकार (ऋत्वा) व्यापकर (दशाङ्गुलम्) और भी दश अंगुल अर्थात् दश अंग-विकार महत् आदि या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूतों का (अतिष्ठत्) अति क्रमण करके, उनमें भी व्याप्त होकर उनसे भी अधिक शक्तिमान् होकर विराजता है ।

(१) 'सहस्रशीर्षाः सहस्राक्षः सहस्रपात्'—सहस्रशब्दस्य उपलक्षणत्वाद् अनन्तैः शिरोभिर्युक्त इत्यर्थः । यानि सर्वप्राणिनां शिरांसि तानि सर्वाणि तद्देहान्तःपातित्वात्तदीयान्येवेति सहस्रशीर्षत्वम् । एवं सहस्राक्षत्वं सहस्रपादत्वं चेति सायणो ऋग् भाष्ये ।

अर्थ—'सहस्र' शब्द केवल उपलक्षण है । वह अनन्त शिरों से युक्त है, यह अभिप्राय है । सब प्राणियों के शिर उसी महान् पुरुष के देह के भीतर समा जाने से वे सब उसी के हैं । इससे उसके हज़ारों सिर हैं । इसी प्रकार उसकी हज़ारों आंखें और हज़ारों पैर भी हैं । सायण ऋ० भाष्य ।

[१—१६]—शत० १३ । ६ । २ । १२ ॥ ऋग्वेद १० । ९० ॥ अथर्ववेद १९ । ६ ॥

जैसे गीता में भी—'अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं'। अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुम्। 'रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं। इत्यादि। गी० ११॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।

ऋ० १०।८१।३॥

इस मन्त्र के अनुसार अनन्त पदार्थों का द्रष्टा होने से वह सहस्राक्ष आदि है।

(२) 'भूमिम्' भूगोलम् इति दयानन्दः। ब्रह्माण्डगोलकरूपान् इति सायणः। भुवनकोशस्य भूमिरिति उवटः।

(३) 'दशाङ्गुलम् अति अतिष्ठत्।'—'दशाङ्गुलम्' इत्युपलक्षणम्। ब्रह्माण्डाद् बहिरपि सर्वतो व्याप्यस्थित इत्यर्थः। इति सायणः॥ 'दशांगुल' यह उपलक्षण मात्र है। अर्थात् ब्रह्माण्ड को व्याप कर और दश अंगुल बाहर तक भी वह व्याप्त है, अभिप्राय यह है कि ब्रह्माण्ड से बाहर भी सर्वत्र व्याप कर विराजता है।

दश च तानि अंगुलानि दशाङ्गुलानीन्द्रियाणि। केचिदन्यथा रोचयन्ति दशाङ्गुलप्रमाणं हृदयस्थानम्। अपरे तु नासिकाग्रं दशांगुलम्। इत्युवटः॥

दश अंगुल दश इन्द्रिय हैं। आत्मा उनसे परे, उनको विषय गोचर नहीं है। कइयों के मत में हृदय दश अंगुल प्रमाण है वह उसमें विराजता है। कोई नासिका-अग्र के आगे दश अंगुल मापते हैं। यह उवट का मत है।

पञ्चस्थूलसूक्ष्मभूतानि दशाङ्गुलान्यंगानि यस्य तत् जगत्। इति दया०। पांच स्थूलभूत और पांच सूक्ष्मभूत, इन दस अंगों वाला जगत् 'दशाङ्गुल' कहाता है वह परमेश्वर इस समस्त जगत् को व्याप कर विराजता है। जैसा लिखा है—

वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकः तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम्। उप०। यह महर्षि दयानन्द का मत है।

पुरुषः—सर्वप्राणि समष्टिरूपो ब्रह्माण्डदेहो विराडाख्यो यः पुरुषः इति सायणः। नारायणाख्य इत्युवटः। सर्वत्र पूर्णो जगदीश्वरः इति दयानन्दः।

सायण के मत से—सब प्राणियों का समष्टि रूप, ब्रह्माण्ड देह के समान धारण करने वाला विराट् नामक पुरुष है। उव्वट के मत से नारायण नामक पुरुष है। म० दयानन्द के मत से—सर्वत्र पूर्ण परमेश्वर पुरुष है। पुरुषः पुरिषादः पुरिशयः। पूरयतेर्वा पूरयति अन्तरित्यन्तरपुरुषमभिप्रेत्य। यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्। यस्मान्नाणीयो नज्यायोऽस्ति किञ्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णपुरुषेण सर्वम्॥ निरु० प० अ० २। ख० ३॥

नाना इमे वै लोकाः पूः। अयमेव पुरुषो योयं पवते। सोऽस्यां पुरि शेते। तस्मात् पुरुषः। इति शत०॥

पुरु॑ष ए॒वेद॑ꣳ सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भाव्य॑म्।
उ॒ताम॑ृत॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति॥ २॥

भा०—(पुरुषः एव) वह जगत् में पूर्ण व्यापक परमेश्वर ही (यत् भूतम्) जो जगत् उत्पन्न है (यत् च) और जो (भाव्यम्) भविष्य में उत्पन्न होगा और (यत्) जो (अन्नेन) भोग्य अन्न के समान भोग्य कर्म फल से स्वयं (अति रोहति) शरीर, स्थावर जंगम रूप पृथिव्यादि पर उत्पन्न होता (इदं सर्वम्) इस सबका (उत) और (अमृतत्वस्य) अमृतत्व, मोक्ष या सत्, अविनाशी स्वरूप का (ईशानः) स्वामी, परमेश्वर है। वही सब कुछ रचता है।

सायण के मत में—भूत और भव्य सब वही पुरुष है। वही अमृतत्व का स्वामी भी है। वही भोग्य अन्न के निमित्त से जगत् रूप में प्रकट होता है।

'अन्नेनातिरोहति'—भोग्येन अन्नेन निमित्तभूतेन स्वकीयकारणावस्थामतिक्रम्य परिदृश्यमानां जगदवस्थां प्राप्नोति। तस्मात्प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थास्वीकारन्नेदं तस्य वस्तुतत्वम्। इति सायणः॥ भोग्य अन्न के कारण अपनी कारण-दशा से पार होकर पुरुष दृश्य-जगत्

का रूप प्राप्त करता है। फल भोग के लिये वह जगत् की दशा में आता है। वह वैसा है नहीं।

सायण के मत में ब्रह्म परिणामी हो जाता है। जीवों के कर्म फल भोग के लिये जीव शरीर धारण करे, सो युक्तियुक्त है ईश्वर ही स्वयं ब्रह्माण्ड शरीर में बंधे यह अनुचित है।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इस जगदीश्वर का (एतावान्) इतना ये सब दृश्य, ब्रह्माण्डमय जगत् (महिमा) महान् सामर्थ्य का स्वरूप है। (पूरुषः) इस जगत् में परिपूर्ण परमेश्वर (अतः) इससे (ज्यायान् च) कहीं बड़ा है। (विश्वा भूतानि) समस्त उत्पन्न होने वाले पृथिवी आदि लोक (अस्य पादः) इसका एक पाद, एक अंश अथवा उसका ही ज्ञान कराने वाले कार्यरूप ज्ञापक हैं। और (त्रिपात्) तीन अंशों वाला (अस्य) इस परमेश्वर का स्वरूप (दिवि) तेजोमय अपने स्वरूप (अमृतम्) अमृत, नित्य, अविनाशी रूप से विद्यमान है।

यद्यपि 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इत्यास्मात्तस्य परब्रह्मण इयत्ताया अभावात् पादचतुष्टयं निरूपयितुमशक्यं। तथापि जगदिदं ब्रह्मस्वरूपापेक्षया अत्यल्पम् इति विवक्षितत्वात्पादत्वोपन्यासः। इति सायणः॥

इदं सर्वं सूर्यचन्द्रादिलोकलोकान्तरं चराचरं जगत्...परमेश्वरस्य चतुर्थांशे तिष्ठति नैवास्य तुरीयांशस्याप्य वधिं प्राप्नोति।...नानेन कथनेन तस्यानन्तत्वं हन्यते। किन्तु जगदपेक्षया तस्य महत्वं जगतो न्यूनत्वं च ज्ञाप्यते। इति दया० 'सत्य ज्ञानमनतं ब्रह्म' ज्ञानस्वरूप और अनन्त है ऐसा कहा है। इसका परिमाण नहीं है। इसलिये उसके चार पाद नहीं कहे जा सकते। तो भी जगत् ब्रह्म के स्वरूप की अपेक्षया बहुत छोटा है इस अभिप्राय से 'पाद' रूप से कहा है। (सायण)

सूर्य चन्द्रादि लोक लोकान्तर वाला चर अचर समस्त जगत् परमेश्वर के एक चौथाई अंश में स्थित है। अर्थात् उसके चौथाई अंश के भी बराबर नहीं है। ऐसा कहने से परमेश्वर की अनन्तता नहीं खण्डित होती। परन्तु जगत् की अपेक्षा उसका बड़प्पन और जगत् की अपेक्षा न्यूनता ही कही गई है। (म० दया०)

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने ऽअभि ॥ ४ ॥

भा०—(त्रिपात् पुरुषः) तीन अंशों वाला पुरुष (ऊर्ध्व उत् ऐत्) सबसे ऊंचा, संसार से पृथक् शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रूप होकर रहता है। और (अस्य पादः) उसका एक अंश (पुनः) वार वार (इह अभवत्) इस संसार में व्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। (ततः) उस एक अंश से ही वह परमेश्वर (साशनानशने अभि) खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़, दोनों प्रकार के चराचर लोकों को (विश्वङ्) सब प्रकार से व्याप्त होकर (वि-अक्रामत्) विविध प्रकारों से उनको उत्पन्न करता है।

'उदैत्'—'देदीप्यमानस्तिष्ठति' इति उवटः। सूर्य के समान स्वयं उज्वल होकर सबको प्रकाशित करता हुआ विराजता है।

'साशनानशने'—साशनमशनादिव्यवहारोपेतम्। प्राणिजातम्। अनशनं तद्रहितम् चेतनं गिरिनद्यादिकम्। इति सायणमहीधरदयानन्दाः। साशनं स्वर्गः अनशनं मोक्ष इति उवटः॥

ततो विराडजायत विराजो ऽअधि पूरुषः।
स जातो ऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः॥ ५ ॥

भा०—(ततः) उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से (विराट् अजायत) 'विराट्' अर्थात् विविध पदार्थों, नाना सूर्यादि लोकों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। (विराजः अधि) उस विराट् के भी ऊपर अधिष्ठाता रूप से

५—'विराळजायत' इति काण्व०।

(पूरुषः) पुरमें बसने वाले स्वामी के समान उस ब्रह्माण्ड को पूर्ण करने हारा व्यापक परमेश्वर ही था। (सः) वह (पुरः) सबसे पूर्व विद्यमान रह कर (जातः) कार्य-जगत् में शक्ति रूप से प्रकट होकर भी (अति अरिच्यत) उससे भी कहीं अधिक बड़ा है। (पश्चात्) पीछे से वह (भूमिम्) प्राणियों और वृक्षादि को उत्पन्न करने वाली भूमि को उत्पन्न करता है। अथवा—(स जातः अतिअरिच्यत) वह प्रादुर्भूत होकर भी उस जगत् से पृथक् रहा। और (सः पश्चाद्) वह पीछे (भूमिम् अथो पुरः) भूमि और जीवों के शरीरों को उत्पन्न करता है। विशेष विवरण देखो अथर्ववेदालोकभाष्य, कां० १८। ६। ९॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये॥ ६॥

ऋ० १०। ९०। ८॥

भा०—(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) सर्वपूज्य, सर्वसम्मत (यज्ञात्) सर्वोपास्य, सबको प्राण आदि सब कुछ देने हारे परमेश्वर प्रजापति से (पृषद्-आज्यम्) दधि, घृत आदि भोग्य पदार्थ (सम्भृतम्) उत्पन्न हुआ। और वह ही (तान्) उन (वायव्यान्) वायु के समान गुण वाले, तीव्र वेगवान् अथवा (वायव्यान्) वायु से जीने हारे (पशून्) पशुओं के (ये) जो (आरण्याः) जंगल के सिंह, शूकर आदि और (ग्राम्याः च) ग्राम के गौ, अश्व आदि सबको (चक्रे) उत्पन्न करता है।

अथवा—(पृषदाज्यं सम्भृतम्) (पृषत्-आज्यम्) शरीर में पालक और पूरक रूप से विद्यमान वीर्य या शुक्र को व्यक्त रूप में प्रकट करने वाला अथवा जिस वीर्य से प्राणियों के नाना देह यथाक्रम सन्तान रूप में बराबर उत्पन्न होते हैं वह वीर्य भी उसी परमेश्वर की शक्ति से उत्पन्न होता है।

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ ७॥

भा०—(तस्मात्) उस (यज्ञात्) पूजनीय, सर्वोपास्य एवं सब के दाता, (सर्वहुतः) सर्वसम्मत, सब कुछ के त्यागने के पात्र अथवा समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लेने हारे उस परमात्मा से ही (ऋचः) ऋग्वेद, ऋचाएं, मन्त्र, (सामानि) सामवेद, साम के समस्त गायनों के ज्ञान (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उससे ही (छन्दः ह) 'छन्द' अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) उससे ही (यजुः अजायत) यजुर्वेद उत्पन्न होता है।

तस्मादश्वा ऽअजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽअजावयः॥ ८॥

भा०—(अश्वाः) घोड़े (ये च के च) और जो भी कोई गधे आदि (उभयादतः) दोनों जबाड़ों में दांत वाले जीव हैं और (गावः) गौएं भी (तस्मात् ह) उससे ही (जज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। (तस्मात्) (अजावयः) बकरी, भेड़ें भी (जाताः) पैदा हुई हैं।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा ऽअयजन्त साध्या ऽऋषयश्च ये॥ ९॥

भा०—(तं) उस (यज्ञं) पूजनीय, (अग्रतः जातम्) सबसे आगे, प्रादुर्भूत जगत् के कर्त्ता, (पुरुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (अग्रतः) सृष्टि के पूर्व (बर्हिषि) विद्यमान महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ में (प्र औक्षन्) खूब अभिषिक्त करते हैं। (तेन) उसी ज्ञानमय परम पुरुष से (साध्याः) योगाभ्यास आदि के साधना वाले ज्ञानी और (ऋषयः च) ऋषिगण (ये च) और जो भी हैं वे (अयजन्त) परमेश्वर की उपासना करते हैं।

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्।
मुखं किमस्यासीत्किं बाहू किमूरू पादा ऽउच्येते॥१०॥

भा०—(यत्) जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष (पुरुषम्) उस महान् पूर्ण, पुरुष का (वि अदधुः) विविध प्रकारों से विधान करते हैं, वर्णन

करते हैं, उसके महान् सामर्थ्य का प्रतिपादन करते हैं, वे उसको (कतिधा) कितने प्रकार से (वि अकल्पयन्) विभक्त करते या कल्पना करते हैं। (अस्य मुखम् किम्) इसका मुख भाग क्या है? (बाहू किम्) बाहुएं क्या हैं (ऊरू किम्) जांघे क्या पदार्थ हैं? (पादौ उच्यते) दोनों पैर क्या कहे जाते हैं।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो ऽअजायत ॥११॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर की बनाई सृष्टि में (ब्राह्मणः मुखम् आसीत्) ब्राह्मण, वेद और वेदज्ञ और ईश्वरोपासक जन मुख रूप हैं। (बाहू राजन्यः कृतः) राजन्य, क्षत्रिय लोग शरीर में विद्यमान बाहु के समान बनाये हैं। (यत् वैश्यः) जो वैश्य हैं (तत्) वह (अस्य ऊरू) उसके जंघा हैं। और (पद्भ्यां) पैरों से (शूद्रः अजायत) शूद्र को प्रकट किया जाता है।

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो ऽअजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ १२ ॥

भा०—प्रजापति के ब्रह्माण्डमय विराट् शरीर का वर्णन करते हैं। (चन्द्रमाः) चन्द्र (मनसः) मन रूप से (जातः) कल्पना किया गया है। अर्थात् चन्द्र मानो प्रजापति का मन है। जैसे शरीर में मन वैसे विराट् शरीर में चन्द्र। (सूर्यः चक्षोः अजायत) चक्षु से सूर्य को प्रकट किया जाता है। मानो उसकी आंख सूर्य है। (श्रोत्रात् वायुः च प्राणः च) श्रोत्र से वायु और प्राण प्रकट किये जाते हैं। मानो श्रोत्र वायु और प्राण हैं। (मुखाद्) मुख से (अग्निः अजायत) अग्नि को प्रकट किया जाता है, मानो अग्नि मुख है।

नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षᳬ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ऽ अकल्पयन् ॥१३॥

भा०—(नाभ्याः अन्तरिक्षम् आसीत्) नाभि-भाग से अन्तरिक्ष

भाग कल्पित है। (द्यौः) आकाश (शीर्ष्णः सम् अवर्त्तत) शिर भाग से कल्पित हुआ। (पद्भ्याम् भूमिः) पैरों से भूमि और (दिशः श्रोत्रात्) श्रोत्र से दिशाएं तथा (लोकान्) लोंको को (अकल्पयन्) कल्पित किया गया है। उस विराट् के अन्तरिक्ष नाभि है, सिर द्यौ है, भूमि पैर हैं, कान दिशाएं तथा लोक हैं।

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ॥१४॥

भा०—(यत्) जब (हविषा) स्वीकार करने योग्य, साक्षात् करने योग्य, परम वेद्य, (पुरुषेण) पूर्ण परमेश्वर से (देवाः) विद्वान गण (यज्ञम्) उपासनामय ज्ञानयज्ञ का (अतन्वत) सम्पादन करते हैं तब (अस्य) इस यज्ञ का (वसन्तः) वर्ष के प्रारम्भ काल, वसन्त ऋतु के समान सौम्य भाग दिन वा पूर्वाह्न भाग (आज्यम्) अग्नि को घृत के समान आत्मा के बल वीर्य की प्राप्ति करता है। (ग्रीष्मः इध्मः) वर्ष में ग्रीष्म ऋतु के समान दिन का मध्यान्ह भाग, अग्नि को इंधन के समान आत्मा की ज्ञानाग्नि को अधिक प्रखर कर देता है। (शरत् हविः) वर्ष के शरत् भाग के समान शीतल, शान्तिदायक रात्रि काल आत्मा के समस्त प्राणों को पुनः आत्मा में आहुति देने वाला होने के कारण यज्ञ में हवि के समान वह भी 'हवि' है।

इसी प्रकार प्रारम्भ में बाल्यकाल वसन्त, यौवन, ग्रीष्म और वृद्धता शरत् है। उवटाचार्य के मत में—वसन्त सत्व। ग्रीष्म रजस और शरत् तमो गुण है।

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽअबध्नन् पुरुषं पशुम् ॥ १५ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान्गण (यद्) जिस (यज्ञं) यज्ञ को (तन्वानाः) करते हुए (पुरुषं) पूर्ण पुरुष को (पशुम्) सर्वद्रष्टा रूप

से (अबध्नन्) ध्यान सूत्र से बांधते हैं (अस्य) उसके (सप्त) सात (परिधयः) परिधि अर्थात् धारण सामर्थ्य हैं। और (त्रिःसप्त) २१ (समिधः) उसके प्रकाशक सामर्थ्य (कृताः) विधान किये गये हैं।

'सप्त परिधयः—सात परिधियें, सात छन्द। अध्यात्म में—जीवन यज्ञ को कहते हैं। (पशुम्) जिस द्रष्टा पुरुष आत्मा को (देवाः) दिव्य शक्तियें, चक्षु आदि इन्द्रियें बांध रही हैं उसके सात परिधियें सात शीर्षण्य प्राण और २१ समिधें, प्राकृतिक २१ विकार अहंकार आदि हैं। अथवा—सात समिधें, शरीर की सात धातुएं। 'त्रिः सप्त समिधः'-प्रकृति, महत्, अहंकार, ५ तन्मात्राएं, ५ स्थूलभूत, ५ इन्द्रिय और तीन गुण। अथवा ५ तन्मात्रा, ५ भूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय और मन (अन्तःकरण चतुष्टय)। संवत्सर यज्ञ में १२ मास, ५ ऋतु, ३ लोक, १ आदित्य ॥

यज्ञेन॑ यज्ञम॑यजन्त देवास्तानि धर्मा॑णि प्रथमान्या॑सन्। ते ह नाकं॑ महिमानः॑ सचन्त यत्र पूर्वे॑ साध्याः सन्ति॑ देवाः ॥ १६ ॥

भा०—(यज्ञेन) पूर्वोक्त मानस यज्ञ से (देवाः) विद्वान् जन (यज्ञम्) उस प्रजापति पुरुष को (अयजन्त) उपासना करते हैं। (तानि धर्माणि) वे सब धारक सामर्थ्य (प्रथमानि आसन्) प्रथम ही विद्यमान रहे। (ते ह) वे (महिमानः) महान् सामर्थ्य वाले, ईश्वरोपासक जन, (नाकम्) उस सुखमय परमेश्वर को ही (सचन्त) प्राप्त होते हैं, उसी में विराजते हैं, (यत्र) जिसमें (पूर्वे) पूर्व के (साध्याः) साधनाशील, (देवाः) विद्वान् ब्रह्मात्म-ज्ञान के साक्षात् द्रष्टा लोग (सन्ति) नित्य विराजते हैं।

अद्भ्यः सम्भृ॑तः पृथिव्यै रसा॑च्च विश्वक॑र्मणः सम॑वर्त्तताग्रे॑। तस्य त्वष्टा॑ विदध॑द्रूपमे॑ति तन्मर्त्य॑स्य देवत्वमाजानमग्रे॑ ॥ १७ ॥

भा०—(अद्भ्यः) जलों से और (पृथिव्यै) पृथिवी, (विश्वकर्मणः) समस्त संसार के कर्त्ता परमेश्वर के (रसात्) प्रेरक बल से (अग्रे)

सब से प्रथम जो ब्रह्माण्ड (सम् अवर्त्तत) उत्पन्न हुआ। (त्वष्टा) वह विधाता ही (तस्य) उसके (रूपम्) रूप को (विदधत्) स्वयं विविध रूपों से धारण करता हुआ (एति) प्राप्त होता है। (मर्त्यस्य) मरण धर्मा पुरुष के (तत्) उस (आजानं) समस्त जनों के करने योग्य कर्म और (देवत्वम्) दर्शन करने योग्य ज्ञान को (अग्रे) सबसे पूर्व (एति) स्वयं धारण करता और प्राप्त कराता है।

सोऽकामयत। बहुः स्यां प्रजायेयेति। सतपोऽतप्यत। सतपस्तप्त्वा। इदं सर्वमसृजत। यदिदं किञ्च। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तैत्ति० उप०।

अथवा—जल और पृथिवी से विश्वकर्मा जगत्-स्रष्टा ने उसको बनाया। स्वयं बनाने वाला 'त्वष्टा' तदनुरूप हो गया। यही उस (मर्त्यस्य) मरण-धर्मा विनाशी पदार्थ का भी (अग्रे) पहले से ही (आजानम् देवत्वम्) जन्म से ही देव अर्थात् स्वतः देव रूप है। वह स्वतः ईश्वर की शक्ति की दिव्य शक्ति का मूर्त्तिमान् अंश है।

'देवत्वम्, आजानम्'—मर्त्ये देवत्वं प्रभुत्वं, आजानम् आप्तम् इत्यर्थः (उवटः)। पुरुषस्य विराडाख्यस्य सम्बन्धि, तत् विश्वं प्रसिद्धं देवमनुष्यादिरूपं सर्वं जगत् अग्रे सृष्ट्यादौ आजानं सर्वतःउत्पन्नम्। इति सायणः॥ देवत्वं विद्वत्त्वम्। आजानं समन्तात् जनानां मनुष्याणामिदं कर्तव्यं कर्म इति दयानन्दः। आजानदेवत्वं, मुख्यं देवत्वम्। द्विविधा देवाः। कर्मदेवा आजान देवाश्च। उत्कृष्टेन कर्मणा देवत्वं प्राप्ताः कर्मदेवाः। सृष्ट्यादावुत्पन्ना आजान-देवाः। ते कर्मदेवेभ्यः श्रेष्ठाः। ये शतं कर्मदेवानामानन्दाः स एक आजानदेवानामानन्दः। तै०। उप०। इति श्रुतेः सूर्यादय आजानदेवाः॥ इति महीधरः।

वेदा॒हमे॒तं पुरु॑षं म॒हान्त॑मादि॒त्यव॑र्णं॒ तम॑सः प॒रस्ता॑त्।
तमे॒व वि॑दि॒त्वाति॑ मृ॒त्युमे॑ति॒ नान्यः पन्था॑ विद्य॒तेऽय॑नाय॥ १८॥

निचृत् त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—(अहम्) मैं (एतम्) उस (महान्तम्) बड़े भारी (पुरुषं) ब्रह्माण्ड भर में व्यापक पूर्ण परमेश्वर को (आदित्यवर्णम्) सूर्य के समान तेजस्वी और (तमसः) अन्धकार के (परस्तात्) दूर विद्यमान (वेद) जानता और साक्षात् करता हूं। (तम्) उसको ही (विदित्वा) जानकर (मृत्युम् अति एति) मृत्यु को पार कर जाता है। (अन्यः) दूसरा (पन्थाः) मार्ग (अयनाय) कोई अभीष्ट मोक्ष स्थान को प्राप्त करने के लिये (न विद्यते) नहीं है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे ऽअन्तरजायमानो बहुधा विजायते।
तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥१९॥

भा०—(प्रजापतिः) वह समस्त प्रजा का पालक (गर्भे अन्तः) गर्भ, गर्भस्थ जीवात्मा में भी अथवा—हिरण्यगर्भ के भीतर, व्यापक होकर (चरति) विचरता है, विद्यमान है। वह (अजायमानः) स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ भी (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विविध रूपों से प्रकट होता है। (तस्य) उसके (योनिम्) परम कारणस्वरूप को (धीराः) धीर, ध्याननिष्ठ योगिजन ही (परिपश्यन्ति) भली प्रकार देखते, साक्षात् करते हैं। (तस्मिन ह) उस सबके मूलकारण परमेश्वर में ही (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवन, नाना ब्रह्माण्ड एवं सूर्यादि लोक (तस्थुः) स्थित हैं। वे सब उसी के आश्रय पर ठहरे हैं।

यो देवेभ्य ऽआतपति यो देवानां पुरोहितः।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥ २० ॥

अनुष्टुप्। गांधारः।

भा०—(यः) जो (देवेभ्यः) दिव्य गुण वाले पृथिवी, अग्नि, जल, तेज आदि के उत्पन्न करने के लिये स्वयं (आतपति) सब प्रकार तप करता है। और (यः) जो (देवानां) पृथिव्यादि लोकों, पञ्चभूतों में से भी (पुरः हितः) सब से पूर्व उनके बीच में उनको मूल कारणों को

धारण करने वाला होकर विद्यमान रहा। और (यः) जो (देवेभ्यः) तेजोमय सूर्यादि पदार्थों से भी (पूर्वः) प्रथम (जातः) हिरण्यगर्भ रूप से प्रकट होता है। उस (ब्राह्मये) ब्रह्म अथवा वेद द्वारा प्रतिपादित, (रुचाय) स्वयं प्रकाशमान् परमेश्वर को (नमः) नमस्कार है। सूर्य के पक्ष में—(यः) जो सूर्य पृथिव्यादि लोकों के लिये तपता है, जो सब के बीच (पुरोहितः) पुरोहित, उनके प्रवर्त्तक के समान प्रकाशक है, जो उनसे पहले उत्पन्न हुआ उस ब्रह्म, परमेश्वर के सन्मान प्रकाशमान् सूर्य से (नमः) अन्नादि उत्पन्न होता है।

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा ऽअग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा ऽअसन्वशे ॥ २१ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान गण, (ब्राह्मं) पर ब्रह्म सम्बन्धी, (रुचं) तेज, या ज्ञान को अथवा (रुचं ब्राह्मं) तेजस्वी ब्रह्म के विद्वान, को (जनयन्तः) उत्पन्न करते हुए, विद्योपदेशादि के द्वारा, प्रकट करते हुए (अग्रे) सबसे प्रथम (तत्) उस परमेश्वर का ही (अब्रुवन्) उपदेश करते हैं। (एवं) इस प्रकार से ब्रह्मचर्य, तपस्या द्वारा (यः) जो ब्रह्मनिष्ठ, वेदवेत्ता, विद्वान् (विद्यात्) उस परमेश्वर के विज्ञान को प्राप्त करता है (तस्य) उसके (वशे) अधीन समस्त (देवाः) देव, विद्वान् गण, एवं उत्तम व्यवहार और दिव्य आत्मिक और भौतिक शक्तियां (असन्) रहती हैं।

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म ऽइषाण सर्वलोकं म ऽइषाण ॥२२॥

निचृदार्षी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे परमेश्वर (श्रीः च) सबको आश्रय देने वाली और (लक्ष्मीः च) सबके बीच में तुझको व्यापक और शक्तिमान् दिखाने वाली, दोनों

२२—'पत्न्या अहो ०ठे' इति काण्व०।

शक्तियां (ते) तेरी (पत्न्यौ) समस्त संसार को पालन करने हारी होने से तेरी दो स्त्रियों के समान हैं । (अहोरात्रे पार्श्वे) दिन और रात्रि ये दो जिस प्रकार सूर्य से उत्पन्न किये जाते हैं, जब वह प्रत्यक्ष होता है तब दिन और जब वह नहीं प्रत्यक्ष हो तब रात्रि होती है इसी प्रकार हे परमेश्वर ! दिन रात के समान तुम्हारे दो पार्श्व या पासे हैं । जब तुम साक्षात् होते हो तब हृदय में ज्ञान का प्रकाश हो जाने से दिन के समान हो जाता है । तामस आवरण से जबतुम प्रत्यक्ष नहीं होते तब रात्रि के समान अन्धकार हो जाता है । जिस प्रकार (नक्षत्राणि रूपम्) समस्त नक्षत्र सूर्य के ही रूप हैं, वे सब सूर्य हैं, उसी प्रकार नक्षत्रों के समान सब तेजोमय पदार्थ परमेश्वर के ही अंश हैं ।

यद् यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवावगच्छस्व मम तेजोंशसम्भवम् । गीता ॥

अतः वे सब (रूपम्) उसी के रूप अर्थात् कान्ति हैं ।

तस्य भासा सर्वम् इदं विभाति । कठो प० ॥

(अश्विनौ व्यात्तम्) आकाश और पृथिवी, वे दोनों मानो खुले मुख के समान हैं । अथवा (अश्विनौ) प्राण और अपान, दो जबाड़ों के या खुले मुख के समान हैं । तू ही (इष्णन्) समस्त जगत् को प्रेरणा कर रहा है । तू सबको (इषाण) प्रेरित कर । (अमुम्) उस परम प्राप्तव्य मोक्ष पद को (मे इषाण) मुझे प्राप्त करा । और (मे) मुझे (सर्वलोकं इषाण) समस्त लोक, समस्त प्रकार के दर्शन, ज्ञान और समस्त लोकों का भोग्य सुख (इषाण) प्रदान कर ।

इस प्रकार ब्रह्मपरक पुरुष सूक्त का विवरण किया गया है । महर्षि दयानन्द इसके उपसंहार में लिखते हैं—अत्रेश्वरसृष्टिराजगुणवर्णना-देतदध्यायोक्तार्थस्य पूर्वाध्यायोक्तार्थेन सह संगतिरस्ति इति वेद्यम् । अर्थात् इस अध्याय में ईश्वर की सृष्टि, राजगुणों का भी वर्णन किया है । इसी से

इस अध्याय की पूर्व अध्याय से संगति है। फलतः इस अध्याय की योजना राजा के पक्ष में नीचे लिखे प्रकार से जाननी चाहिये—

(१) (सहस्र०) वह राजा रूप पुरुष हज़ारों शिरों वाला, हज़ारों आंखों वाला, हज़ारों पैरों वाला है। वह समस्त भूमि को अधीन करके दश अंगुल ऊंचा होकर विराजे, अर्थात् सहस्रों मस्तिष्क उसके अधीन राज-सभा के सभासद् रूप उसी के शिर हैं। वे उसी की आंखे हैं एवं नाना चर उसकी सहस्रों आंखें हैं और सहस्रों भृत्य, सैनिकादि उसके सहस्रों पद हैं। वह अपनी राज-सत्ता से भूमि को व्याप कर अपने राज्य के दशों अंगों पर दश दिशाओं पर अधिष्ठाता रूप से विराजे।

(२) जो भूत और भव्य अर्थात् सब राष्ट्र का उत्पन्न और भावी सम्पत्ति है वह सब राजा की ही है। (अमृतत्व) जीवन-प्रद पदार्थ जल और अन्न का भी वही स्वामी है। जो पदार्थ भी अन्न के रूप में उगता है उसका भी वही स्वामी है।

(३) यह उसका बड़ा सामर्थ्य है। वह उससे भी अधिक शक्ति शाली होकर रहे। समस्त राष्ट्र के प्राणी उसका एक भाग हों और (दिवि) राजसभा आदि दिव्य, तेजः सामर्थ्य में उसके तीन भाग सुरक्षित रहें।

(४) वह उन तीन गुणा अधिक सामर्थ्य को स्वयं धारण करके ही सब से ऊंचा रहे। एक अंश से राष्ट्र में रहे। चर अचर, स्थावर जंगम सबकी विशिष्ट व्यवस्था करे।

(५) वह स्वयं विराट् सभा को बनावे, उसपर स्वयं अधिष्ठाता होकर रहे। वह सब से अधिक सामर्थ्यवान् हो। वह भूमियों और पुर गढ़ और दुर्ग आदि भी बनावे।

(६) वह सब से पूज्य होकर समस्त (पृषदाज्यम्) पालक, सेना-

बल को भी धारण करे। अन्नादि भी संग्रह करे। ग्राम और जंगल की पशु सम्पत् को भी बढ़ावे।

(७) वह ऋक्, साम, अथर्व और यजुः सब वेदों का ज्ञान करे, और उनकी रक्षा करे। उनके अध्ययनाध्यापन के द्वारा उनको प्रचारित और प्रकाशित करे।

(८) अश्व, गौ, भेड़, बकरी सबकी वृद्धि करे।

(९) पुरुषोत्तम को विद्वान् लोग (बर्हिषि) महान् राष्ट्र प्रजाजन पर (प्रौक्षन्) अभिषिक्त करें। उसके बल पर साधनसम्पन्न, बलवान् और ऋषि ज्ञानी पुरुष सब (अयजन्त) संगत होकर, परस्पर मिल कर कार्य करें।

(१०) यह जो महान् राष्ट्ररूप पुरुष हैं इसको कितने विभागों में विद्वान् कल्पना करते हैं? उसका मुख, बाहु, जांघ और पैर क्या हैं?

(११) उस महान् राष्ट्रमय पुरुष के एवं पुरुष रूप राजा के भी, ब्राह्मण मुख, क्षत्रिय लड़ने वाले बाहू, व्यापारी वैश्य जंघाएं और शूद्र, सेवक जन चरण हैं।

(१२) उसका मन चन्द्र के समान आह्लादक हो। आंख सूर्य के समान तेजस्वी हो। कान वायु के समान व्यापक और मुख अग्नि के समान तेजस्वी हो।

(१३) अन्तरिक्ष के समान उसका नाभि अर्थात् केन्द्रस्थ राजधानी सर्वाश्रय हो, आकाश के समान शिर तेजस्वी नाना नक्षत्रों के समान विद्वानों से मण्डित राजसभा हो। पैर भूमि के समान स्थिर, प्रतिष्ठित हों। लोक सब श्रोत्र के समान एक दूसरे के दुख श्रवण करने हारे हों।

(१४) यह पुरुष ही राज्याधिकार के लिये स्वीकार करने योग्य 'हवि' है। उससे राष्ट्रयज्ञ विस्तृत करते हैं। उसका राज्य, बल, ऐश्वर्य वसन्त के समान शोभाजनक और प्रजाओं का बसाने वाला हो। इध्म अर्थात्

तेज ग्रीष्म के समान प्रखर असह्य हो। ग्रहण करने वाला सेना बल 'शरत्' अर्थात् शीत काल के समान भयजनक, शत्रुनाशक और कंपाने वाला हो।

(१५) उसके ७ परिधि, सप्ताङ्ग राज्य हों, २१ 'समिध्' २१ महामात्य हों। देव, विद्वान् गण राष्ट्रयज्ञ को विस्तृत करते हुए पशु अर्थात् सर्व साक्षी, द्रष्टा, पुरुष को राज्य कार्य में बद्ध या दृढ़ता से स्थापन करें।

(१६) उस सर्व पूज्य राजा से प्रजापालक राष्ट्र यज्ञ का सम्पादन करते हैं। वे नाना राष्ट्र धारक प्रथम नियत, स्थिर हों। वे महान् सामर्थ्यवान् शासक जन उस सुखमय राष्ट्र पर (सचन्त) समवाय बनाकर रहें। उसी में साधनों से सम्पन्न विद्वान् और विजयी लोग रहें।

(१७) राजा जल, पृथिवी और विश्वकर्मा, शिल्पी विद्वानों के बल से नाना प्रकार के साधनों से सम्पन्न हो। शिल्पी जन या त्वष्टा प्रजापति राज्य का दर्शनीय स्वरूप बनाता है। इसी से उस भृत्य मनुष्य को भी 'देवत्व' प्राप्त होता है। वह राजा देव कहाता है।

(१८) मैं उसी तेजस्वी, शोक, अज्ञान से परे निर्दोष, निष्पक्षपात सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को प्राप्त करूं। उसको बिना पाये प्रजा को दूसरा शरण नहीं।

(१९) प्रजापालक राजा सब राज्य-कार्यों के भीतर व्यापक रहें वही स्वयं उपस्थित होकर नाना प्रकार के राज्य कार्यों को प्रकट करता है। वीर पुरुष उसके राजपद को साक्षात् करते हैं। उसमें समस्त राष्ट्र-विभाग और जन आश्रित रहते हैं।

(२०) वह विजयी, शासकों के लिये उग्र होकर सूर्य के समान तपता है। वह विद्वानों के समक्ष गुरु के समान व्यवस्थापक है। वह उन द्वारा ही राजा बनाया जाता है। वह ब्रह्म, वेद और ब्राह्म-बल से उत्पन्न होकर तेजस्वी है। उसको (नमः) सब आदर करें।

(२१) ब्राह्म अर्थात् ब्राह्मणों से उत्पन्न इस (रुचं) तेजस्वी राजन्य को

उत्पन्न करते हुए विद्वान् लोग प्रथम ही उसको उपदेश करें। जो ब्रह्मज्ञ पुरुष इस प्रकार के पद का लाभ करता है सब उसके अधीन रहें।

(२२) सबको आश्रय देने वाली श्री, राष्ट्र-सम्पत्, शोभा और लक्ष्मी उसको राजा रूप से दिखावे, ऐसी राज्यलक्ष्मी वैभव ये दोनों उसकी पत्नी के समान हैं। सूर्य के जिस प्रकार दिन रात दो स्वरूप हैं इसी प्रकार राजा के दो स्वरूप दिन और रात्रि हैं, सर्व प्रकाशक दिन, और सर्व प्राणियों को सुख से रमाने वाली राज्यव्यवस्था रात्रि हैं। (नक्षत्राणि) युद्ध में न भागने वाले वीर और क्षत्र से भिन्न दूसरे प्रजागण ये सब राज्य के रूप हैं। अश्विनी नामक दो मुख्य पदाधिकारी राजा के मुख हैं। वह सबको प्रेरणा करता हुआ सबका सञ्चालन करे। दूर के भोग्य पदार्थों को भी राष्ट्र में प्राप्त करावे। समस्त प्रकार के लोकों को वह प्राप्त करे, उनका संचालन करे। और सबका अधिपति होकर रहे।

इत्येकत्रिंशोऽध्यायः।

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्य एकत्रिंशोऽध्यायः॥

अथ द्वात्रिंशोऽध्यायः

[३२—३३ । ५४] स्वयंभु ब्रह्म ऋषिः । आत्मा देवता ।

॥ ओ३म् ॥ तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ १ ॥

१, २ अनुष्टुप् गान्धारः ॥

भा०—(तत्) वह, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सनातन सच्चिदानन्द नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, न्यायकारी दयालु, जगत्-स्रष्टा, जगत्-हर्त्ता, जगत्-नियन्ता परमेश्वर ही (अग्निः) स्वयंप्रकाश, सर्वत्र, सर्वप्रकाशक, सबके आगे विद्यमान होने से 'अग्नि' है । (तद् आदित्यः) वह ही परमेश्वर, समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लय कर लेने वाला होने और सूर्य के समान तेजस्वी होने से 'आदित्य' है । (तद् वायुः) वह ही अनन्त बलवान्, सर्वप्राण, सर्वकर्त्ता एवं व्यापक होने से 'वायु' है । (तत् उ चन्द्रमाः) वह ही आह्लादजनक, आनन्दमय होने से 'चन्द्रमा' है । (तद् एव शुक्रम्) वह ही शुद्धस्वरूप और जगत् के सब कार्यों को अति शीघ्रता से, विना विलम्ब के यथाविधि करते और सबका प्रकाशक एवं स्वयं देदीप्यमान होने से 'शुक्र' है । (तत् ब्रह्म) वह ही सबसे महान्, सबसे बड़ा, सबका बढ़ाने वाला होने से ब्रह्म है । (ताः आपः) वही सब में व्यापक होने से 'आपः' है । (सः प्रजापतिः) वही समस्त प्रजाओं का पालक होने से प्रजापति है ।

राजा के पक्ष में—अग्नि के समान शत्रुतापक और अग्रणी, सूर्य के समान तेजस्वी, वायु के समान बलवान्, प्रजा का प्राण, चन्द्र के समान

१—अथातः सर्वमेधः आ प्रवायुमच्छे [३३ । ५४] तिमन्त्रात् । इय-मेव 'तदेवोपनिषत्' ।

बलधारक, अन्न के समान सबको पोषक, जलों के समान प्राणप्रद, प्रजा पालक होने से वह राजा ही आदित्य, वायु चन्द्र, शुक्र ब्रह्म, आपः, प्रजापति आदि नामों से कहा जाता है। अन्यत्र भी—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परि जग्रभत्॥ २॥

भा०—(विद्युतः) विद्युत् से जिस प्रकार (निमेषाः) निमेष उत्पन्न होते हैं, अर्थात् मेघस्थ विद्युत् जिस प्रकार सहस्रों वार चमकती और सहस्रों बार फिर छिप २ जाती है, वे सब विलास उसी से उत्पन्न होते हैं और जिस प्रकार (विद्युतः) विशेष तेजस्वी सूर्य से (निमेषाः) दिन और रात्रि उत्पन्न होते हैं, अथवा जिस प्रकार सूर्य के (निमेषाः) नियम से बराबर 'मेष' आदि राशि प्रवेश या मेष, वृष आदि राशि के संक्रमण से मास और वर्ष उत्पन्न होते हैं अथवा निमेष त्रुटि, काष्ठा, विपल, पल, घड़ी, होरा, याम, दिन, पक्ष, मास, वर्ष आदि सभी उत्पन्न होते हैं, अथवा— (विद्युतः) विशेष तेजस्वी सूर्य से (निमेषाः) निरन्तर वर्षणशील मेघ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार (विद्युतः पुरुषात्) विशेष द्युति से प्रकाशमान् एवं समस्त जगत् के प्रकाशक उस पूर्ण पुरुष परमेश्वर से (सर्वे निमेषाः) समस्त निमेष, अध्यात्म में आत्मा के द्वारा नेत्रादि इन्द्रियों के निमीलन, उन्मीलन, सूर्य से, कला, काष्ठा आदि काल के अवयव और जगत् के उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, तथा निरन्तर होने वाला उत्पाद और विनाश सब (अधिजज्ञिरे) उत्पन्न होते हैं। कोई भी (एनम्) उसको (न तिर्यञ्चं) न तिरछे, (न ऊर्ध्वम्) न ऊपर से और (न मध्ये) न बीच में से (परिअग्रभत्) ग्रहण करता है, अर्थात् उसको किसी विशेष अंग से भी पकड़ा नहीं जा सकता, उसका पूर्ण ज्ञान नहीं किया जा सकता।

स एष नेति नेत्यात्मा अगृह्यो नहि गृह्यते । बृहदारण्यकोप० ॥

राजा के पक्ष में—विशेष तेजस्वी पुरुष से राष्ट्र के समस्त निमेष, छोटे बड़े कार्य उत्पन्न होते हैं । उसको कोई ऊपर से, बीच में से, या तिरछे भी नहीं पकड़ सकता । कोई उसको वश नहीं कर सकता ।

न तस्य॑ प्रति॒मा ऽअ॑स्ति॒ यस्य॒ नाम॑ म॒हद्यशः॑ । हि॒र॒ण्य॒ग॒र्भ ऽइत्ये॒ष मा मा॑ हिꣳसी॒दित्ये॒षा यस्मा॒न्न जा॒त ऽइत्ये॒षः ॥ ३ ॥

निचृत् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(यस्य) जिसका (महत्) बड़ा भारी (नाम) नाम, स्वरूप और जगत् को वश करने का सामर्थ्य है और जिस का (महद् यशः) बड़ा भारी यश है । अथवा—जिसका (नाम) प्रसिद्ध (महत् यशः) बड़ा यश है (तस्य) उसकी (प्रतिमा न अस्ति) कोई मापक साधन, परिमाण, प्रतिकृति नहीं है । (हिरण्यगर्भः इति) 'हिरण्य गर्भः समवर्तताग्रे०' यह अनुवाक (अ० २५ । १०–१३) (यस्मान्न जातः इति एषा) 'यस्मान्न जातः० [अ० ८ । ३६] इत्यादि ऋचा और (मा मा हिंसदित्येषा) 'मा मा हिंसीत्०' इत्यादि अनुवाक में (१२ । १०२) (यस्य-महत् यशः) जिसका बड़ा यशोगान है ।

अथवा—(एषः हिरण्यगर्भः इति) वह परमेश्वर ही अपने भीतर सूर्यादि लोकों को धारण करने हारा होने से 'हिरण्यगर्भ' इस प्रकार कहाता है । (मा मा हिंसीत् इति एषा) मुझे मत मार इस प्रकार की प्रार्थना उसी से की जाती है । (यस्मात् न जातः) जिससे बढ़ कर कोई नहीं पैदा हुआ ऐसा जो प्रसिद्ध है ।

राजा के पक्ष में—जिसका मननकारी बल और यश बड़ा हो उसका (प्रतिमा) मुकाबले का कोई नहीं । उसका 'हिण्यगर्भः' इत्यादि सूक्तों से भी वर्णन किया जाता है ।

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः॥४॥

४-७ त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—(एषः देवः) निश्चय से यह ही सब पदार्थों का द्रष्टा और प्रकाशक (सर्वाः प्रदिशः) समस्त दिशाओं को (अनु) व्यापे हुए है । (ह) वही निश्चय से (पूर्वः) सबसे पूर्व (जातः) प्रथम प्रकट होता है । (सः उ) और वह ही (अन्तः गर्भे) भीतर गर्भ में आत्मा और हिरण्यगर्भ में परमात्मा विद्यमान रहता है । (सः एव) वह (जातः) समस्त लोकों में शक्ति रूप से प्रकट होता है । (सः) वह ही (जनिष्यमाणः) भविष्य में भी प्रकट होगा । हे (जनाः) पुरुषो ! वह (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थ में व्यापक होकर (सर्वतः मुखः) सब ओर उसके मुख आदि अवयवों के समान सब प्रकार के करने की शक्ति वाला है ।

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति । गीता । १३ । १३ ॥

यस्माज्जातं न पुरा किञ्चनैव य आबभूव भुवनानि विश्वा ।
प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतीꣳषि सचते स षोडशी॥५॥

भा०—(यस्मात् पुरा) जिससे पहले (किञ्चन) कुछ भी (न जातम्) नहीं उत्पन्न हुआ । और (यः) जो (विश्वा भुवनानि) समस्त लोकों, भुवनों को (आबभूव) व्याप्त होरहा है । वह (प्रजापतिः) प्रजा पालक परमेश्वर राजा और पिता के समान (प्रजया) अपनी समस्त उत्पन्न प्रजा सृष्टि के साथ (संरराणः) उसमें ही रमण करता हुआ (त्रीणि ज्योतींषि) तीन ज्योति अग्नि, विद्युत्, सूर्य या सत्, चित्, आनन्द इनको (सचते) प्राप्त है, इनमें व्यापक है, इन तीन रूपों से स्मरण किया जाता है । और (सः) वह ही (षोडशी) १६ कलावान् चन्द्र के समान, आह्लादक १६ कला अर्थात् शक्तियों से सम्पन्न है । प्राण,

श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म और लोक ये १६ अंश या कलाएं समष्टि रूप से परमात्मा में और व्यष्टि रूप से जीवात्मा में भी विद्यमान होने से वह शोडषी है। इसी प्रकार १६ राज्याङ्गों से युक्त राजा भी शोडषी है। वह भी प्रजा से ही रमण करता है। उसी में आनन्द प्रसन्न रहता है। 'प्रजापतिः स्वां दुहितरं चकमे' इत्यादि अर्थवाद भी इसी बात को दर्शाते हैं।

अध्यात्म में तीन तेज, आत्मा, इन्द्रिय और मन समाज में ब्राह्म-बल, क्षात्र-बल और अर्थबल यही परमेश्वर के। 'त्रिपाद्' या 'त्रीणि पदानि हैं'।

येन॒ द्यौरु॒ग्रा पृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ढा येन॒ स्व॑ स्तभि॒तं येन॒ नाकः॑।
यो ऽअ॒न्तरि॑क्षे॒ रज॑सो वि॒मानः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥६॥

ऋ० १०। १५१। ५॥

भा०—(येन) जिस परमेश्वर ने (द्यौः) आकाश को (उग्रा) उग्र, विशेष बलशालिनी और वृष्टिदायिनी बना कर उसको धारण किया और (येन) जिसने (दृढा च पृथिवी) पृथिवी को दृढ बना कर उसको भी धारण किया। (येन) जिसने (स्वः स्वभितम्) स्वः अर्थात् समस्त सुख या समस्त तेजोमय आदित्य को भी धारण किया है। (येन नाकः) जिसने समस्त आनन्दमय, सर्व दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है। (यः) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में विद्यमान (रजसः) समस्त लोकों को और (विमानः) विशेष रूप से बनाने और जानने हारा है (कस्मै) उस प्रजापति स्वरूप, आनन्दमय, परमेश्वर की (हविषा) भक्ति से (विधेम) स्तुति अर्चना करें।

यं क्रन्द॑सी॒ ऽअव॑सा तस्तभा॒ने ऽअ॒भ्यैक्षे॑तां॒ मन॑सा॒ रेज॑माने।
यत्राधि॒ सूर॒ ऽउदि॑तो वि॒भाति॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम॥
आपो॑ ह॒ यद् बृ॑ह॒तीर्य॑श्चि॒दाप॑:॥ ७॥

भा०—(यम्) जिसको आश्रय लेकर (क्रन्दसी) नाना गुणों से

युक्त आकाश और पृथिवी (अवसा) व्यापक सामर्थ्य और रक्षा सामर्थ्य से अथवा—(यं अवसा) जिसको बल, सामर्थ्य से (तस्तभाने) समस्त जगत् को थाम रही हैं और स्वयं थमी खड़ी हैं। और (मनसा) मन से या जिसके ज्ञानबल या स्तम्भन सामर्थ्य से वे दोनों (रेजमाने) कांपती हुई या चलती हुई (अभि ऐक्षेताम्) दोनों एक दूसरे के सन्मुख देख रही हैं अथवा दिखाई दे रही हैं। (यत्र अधि) जिसके बलपर (सूरः) सूर्य (उदितः) उदय को प्राप्त होकर (विभाति) प्रकाश करता है (कस्मै) उस सुखस्वरूप जगत् के कर्त्ता (देवाय) सब के प्रकाशक, परम देव की हम (हविषा) भक्ति से (विधेम) उपासना करें।

(आपो ह्यद् बृहतीः० इत्यादि) और (यश्चिदापः० इत्यादि) दोनों ऋचाएं भी उसी परमेश्वर का वर्णन करती हैं।

'आपोह यद् बृहती' यह ऋचा देखो (२७।२५) 'यश्चिदापः०' यह ऋचा देखो २७।२६ ॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्। तस्मिन्निदꣳ सञ्च वि चैति सर्वꣳ स ऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥८॥

[८—१२] त्रिष्टुप्। धैवतः।

भा०—(वेनः) विद्वान् मेधावी, ज्ञानवान् पुरुष (तत्) उस परम ब्रह्म को (गुहा निहितम्) गुहा अर्थात् बुद्धि में स्थित, अथवा गूढ़ कारण रूप में विद्यमान (सत्) सत् रूप से (पश्यत्) देखता है, साक्षात् करता है। (यत्र) जिसमें (विश्वम्) समस्त विश्व, (एकनीडम्) एक ही स्थान में धरे के समान, एक आश्रय पर स्थित (भवति) होता है। (तस्मिन्) उसमें (इदं) यह दृश्य जगत् (सम् एति च) समा जाता, प्रलयकाल में लीन हो जाता है और पुनः सृष्टि के अवसर में (वि एति च) विविध रूप में प्रकट हो जाता है। (सः) वह परमेश्वर (प्रजासु विभूः)

८—०'कनीळम्' इति काण्व०।

उत्पन्न होने वाली समस्त सृष्टियों और प्राणियों में (ओतः प्रोतः च) ओत और प्रोत है। उरोया पिरोया हुआ है।

प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतं गुहा सत्। त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत्॥ ६॥

अथर्व० २। १। २॥

भा०—(गन्धर्वः) गौ अर्थात् वेदवाणी को धारण करने वाला, वेदज्ञ (विद्वान्) विद्वान्, आत्मज्ञान का साक्षात् लाभ करनेहारा पुरुष (तद्) उस (अमृतम्) अमृत स्वरूप (गुहा) बुद्धि में, गुहास्थान में (विभृतं) विशेष रूप से विद्यमान (धाम) सब को धारण करने वाले, परम तेजोमय, सर्वाश्रय, परमेश्वर के स्वरूप का (प्रवोचेत् नु) हमें प्रवचन करे, उसका उपदेश करे। (अस्य) उस परमेश्वर के (त्रीणि पदानि) तीन पद, जानने योग्य तीन स्वरूप (गुहा निहितानि) बुद्धि में स्थित हैं। (यः) जो (तानि) उनको (वेद) साक्षात् कर लेता है (सः) वह (पितुः पिता) हमारे पिता से भी बढ़कर (पिता) पालक (असत्) होने योग्य है।

'त्रीणि पदानि'—त्रिपादस्यामृतं दिवि। त्रीणि पदा विचक्रमे। त्रिपानस्यः। त्रिपस्त्यं। ऋ० ८।३९।८॥ त्र्यनीकः। ऋ० ३।५६।३॥ त्रि ऊधन्। त्रिप्रतिष्ठितः। अ० १०।२।३२। त्रिसधस्थः। ऋ० ५।४।८॥ त्रिदिवः त्रिनाक, त्र्यरुण, त्रिधातु, त्रिवृत इत्यादि नाना त्रिक लेने योग्य हैं।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा। यत्र देवा ऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥ १०॥

अथर्व० २। १। ३॥

भा०—(सः) वह (नः) हमारा (बन्धुः) बन्धु, भाई के समान सहायक एवं सबको हृदयों में बांधने वाला है। (जनिता) वह उत्पन्न करने वाला पिता है। (सः विधाता) वह विविध उपायों से धारण

पोपण करने हारा है। वह (विश्वा) समस्त (धामा) धारण सामर्थ्यों, स्थानों और (भुवनानि) लोकों को भी (वेद) जानता है। (यत्र) जिस परमेश्वर में (देवाः) विद्वान्‌गण, एवं सूर्यादि तेजस्वी पदार्थ (अमृतम्) अमृत, मोक्ष-सुख और कभी नाश न होने वाले सत् तत्व को (आनशानाः) प्राप्त करते हुए उस (तृतीये) परम, सबसे परे विद्यमान, जीव और प्रकृति से भी विलक्षण (धामन्) परम तेज में (अधि-ऐरयन्त) स्वच्छन्दतया विचरते हैं।

'तृतीये धामनि'—तृतीय रजस्, तृतीय नाक, तृतीय पृष्ठ, तृतीय लोक ये सब रचना एकार्थक हैं। 'तृतीयं' तीर्णतमम् इति निरु०। सर्वोच्च लोक।

**प॒रीत्य॑ भू॒तानि॑ प॒रीत्य॑ लो॒कान् प॒रीत्य॒ सर्वाः॑ प्र॒दिशो॒ दिश॑श्च।
उ॒प॒स्थाय॑ प्रथम॒जामृ॒तस्या॒त्मना॒त्मान॑म॒भि सं वि॑वेश ॥ ११ ॥**

भा०—(भूतानि परीत्य) पांचों भूतों को व्याप्त होकर, (लोकान् परीत्य) समस्त लोकों को व्याप्त होकर, (सर्वाः प्रदिशः दिशः च) सब दिशाओं और उपदिशाओं को व्याप्त होकर, (ऋतस्य) अभिव्यक्त हुए इस संसार के भी (प्रथमजाम्) प्रथम विद्यमान प्रकृति को (उपस्थाय) प्राप्त होकर, उसके साथ (आत्मना) अपने स्वरूप से (आत्मानम्) आत्मा अर्थात् अपने को स्त्री के साथ पुरुष के समान (अभि संविवेश) सब प्रकार से संयुक्त करता है। अध्यात्म में—आत्मवित् ज्ञानी भूतों को, लोकों को और दिशा उपदिशाओं को जान कर (ऋतस्य प्रथमजाम् उपस्थाय) सत्य परमात्मा को प्रथम उत्पन्न वाणी का सेवन, ज्ञान करके वह (आत्मना) परमात्मा के साथ (आत्मानम् अभि संविवेश) अपने को उसके साथ जोड़ देता है।

मम योनिर्महद् ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत। गी० १४।३॥

परि॒ द्यावा॑पृथि॒वी स॒द्य ऽइ॒त्वा परि॑ लो॒कान् परि॒ दिशः॒ परि॒ स्वः॑।
ऋ॒तस्य॒ तन्तुं॒ वित॑तं वि॒चृत्य॒ तद॑पश्य॒त्तद॑भव॒त्तदा॑सीत् ॥ १२ ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) द्यौ, आकाश, पृथिवी (परि त्वा) सब प्रकार से व्याप कर (लोकान् परि इत्वा) समस्त लोकों को व्याप कर (दिशः परि) समस्त दिशा और (स्वः परि) परम मोक्षमय सुख को व्याप कर (ऋतस्य) महान् संसार की (विततं) व्यापक (तन्तुं) परम आश्रय, मूलकारण प्रकृति तत्व को (विचृत्य) विशेष रूप से बांध कर (तत्) इसको (अपश्यत्) देखा। और (तत् अभवत्) प्रधान तत्व के साथ संयुक्त हुआ और (तत् आसीत्) इस ब्रह्माण्ड अर्थात् जगत् रूप में उत्पन्न हुआ।

अथवा अध्यात्म में—ज्ञानयोगी (द्यावापृथिवी सद्यः परि इत्वा) द्यौ और पृथिवी दोनों को शीघ्र जान कर (लोकान् दिशः) समस्त लोकों को और दिशाओं को (परि) जान कर, (स्वः) उस सुखमय मोक्ष को प्राप्त करके (ऋतस्य) सत्यमय परमेश्वर के यज्ञमय प्रजापति के (विततं) विस्तृत (तन्तुम्) जन्म मरण के सूत्र को (विचृत्य) काट कर, मुक्त होकर (तत् अपश्यत्) उस आत्मस्वरूप को साक्षात् करता है (तत् अभवत्) वही 'तत्' अर्थात् तन्मय हो जाता है (तत् आसीत्) वैसा ही, या उसमें ही रहता है।

सद॑स॒स्पति॒मद्भु॑तं प्रि॒यमिन्द्र॑स्य॒ काम्य॑म्।
स॒निं मे॒धाम॑यासिष॒ꣳ स्वाहा॑ ॥ १३ ॥

ऋ० १।१८।६॥

भा०—(सदसः) सबके विराजने योग्य, सभा मण्डप के समान इस सर्वाश्रय ब्रह्माण्ड के (पतिम्) पालक, (अद्भुतम्) सर्वाश्चर्यकारी, (इन्द्रस्य) जीव के (काम्यम्) कामनायोग्य, (प्रियम्) अति प्रिय (सनिम्) भजन करने योग्य, परम सेव्य, (मेधाम्) अति पवित्र, मुक्त आत्मा

को अपने में धारण करने वाले परमेश्वर को (स्वाहा) उत्तम स्तुति से ही मैं (अयासिषम्) प्राप्त होऊं ।

यां मे॒धां दे॑वग॒णाः पि॒तर॑श्चो॒पास॑ते ।
तया॒ माम॒द्य मे॒धया॑ग्ने मे॒धावि॑नं कुरु॒ स्वाहा॑ ॥ १४ ॥

भा०—(याम्) जिस (मेधाम्) आत्मज्ञान को धारण करने वाली परम बुद्धि को (देवगणाः) देव, विद्वान् गण (पितरः) पालक जन पूर्व के विद्वान् (च) भी (उपासते) उपासना करते हैं (तया मेधया) उस परम प्रज्ञा से हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! या गुरो ! (माम्) मुझको भी (स्वाहा) उत्तम उपदेश वाणी और योगाभ्यास द्वारा (मेधाविनं कुरु) मेधवान् प्रज्ञावान् कर ।

मे॒धां मे॒ वरु॑णो ददातु मे॒धाम॒ग्निः प्र॒जाप॑तिः ।
मे॒धामिन्द्र॑श्च वा॒युश्च॑ मे॒धां धा॒ता द॑दातु मे॒ स्वाहा॑ ॥१५॥

भा०—(वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब दुःखों का वारण करने वाला परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा, प्रज्ञा का प्रदान कर । (अग्निः) ज्ञानस्वरूप (प्रजापतिः) प्रजा का स्वामी, आचार्य और परमेश्वर (मेधाम्) मेधा प्रदान करे । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर और (वायुः च) सर्वज्ञ, सर्व-व्यापक परमेश्वर (मे मेधाम् ददातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे । (धाता) सबका पोषक परमेश्वर (स्वाहा) उत्तम उपदेश वाणी द्वारा (मे मेधां ददातु) मुझे मेधा बुद्धि प्रदान करे ।

इ॒दं मे॒ ब्रह्म॑ च क्ष॒त्रं चो॒भे श्रिय॑मश्नुताम् ।
मयि॑ दे॒वा द॑धतु॒ श्रिय॑मुत्त॑मां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ॥ १६ ॥

भा०—(ब्रह्म च क्षत्रं च) ब्रह्म, ब्राह्मण विद्वान् जन और क्षत्रिय लोग (उभे) दोनों (मे) मेरे (श्रियम्) लक्ष्मी का (अश्नुताम्) उपभोग करें । (देवाः) देव, विद्वान् गण या ईश्वरप्रदत्त दिव्य गुण (मयि)

मुझमें (उत्तमां श्रियम्) उत्तम श्री, लक्ष्मी को (दधातु) धारण करावें (तस्यै ते स्वाहा) उस तुझ लक्ष्मी से मैं उत्तम यश को प्राप्त करूं।

१३ मन्त्र में आये 'सदसस्पति' शब्द का अर्थ 'महर्षि दयानन्द ने सभा या ज्ञानस्य न्यायस्य दण्डस्य वा पतिम् पालकम् ऐसा किया। इस लिङ्ग में यह समस्त अध्याय दण्डपति शासक, सभापति राजा के पक्ष में भी लगाता है जिसको संक्षेप से दर्शाते हैं—

१—राजा शत्रुतापक होने से अग्नि कर लेने से आदित्य, बलवान् उग्र होने से 'वायु' आह्लादक होने से 'चन्द्र' वीर्यवान् होने से 'शुक्र' आप्त पुरुषों का आश्रय होने से 'आपः' और प्रजा पालक होने से प्रजापति है।

२—उस तेजस्वी राजा से ही राष्ट्र के सब (निमेषाः) छोटे बड़े कार्य व्यवहार उत्पन्न होते हैं। उस राजा को कोई शत्रु भी न ऊपर से, न पीछे से, न बीच से आक्रमण करे।

३—उसके बराबरी का कोई नहीं। उसका महान् नाम और यश हो।

४—वह सबसे मुख्य हो, वह सब प्रदेशों का शासक हो। वह प्रसिद्ध हो, राष्ट्र का प्रत्येक पदार्थ और जन का स्वामी हो। वह सबसे मुख्य अधिकारी होकर रहे।

५—जिससे बढ़ कर सब पर कोई शासक नहीं वह प्रजापालक राजा प्रजा से ही सुखी होता हुआ तीनों प्रकार के ज्योति, बलों, अधिकारों को प्राप्त करे और १६ हों अमात्यों या राज्याङ्गों से युक्त हो। शरीर बल, ज्ञान-बल और अर्थबल तीन ज्योति हैं। अथवा, अपने देह, सभा और राष्ट्र का बल।

६—वह आकाश, पृथिवी, सुख प्रद ऐश्वर्य और सर्व सुख कर राष्ट्र का वश कर्त्ता हो अन्तरिक्ष को पद पर रह कर समस्त (रजसः) लोकों को वश करे।

७—राजा और प्रजावर्ग उसके रक्षण-बल से सुव्यवस्थित होकर चित्त से उसका भय मानें। वह सूर्य के समान उदय को प्राप्त हो।

८—विद्वान् जन उस राजा को राष्ट्र के मध्य भाग में स्थित देखता है, समस्त राष्ट्र उस पर एकाश्रय होकर रहता है। वह उसी के आश्रय पर बढ़ता घटता है। वह विशेष सामर्थ्यवान् होकर प्रजाओं में करने योग्य व्यवस्थाओं से ओत प्रोत हो जाता है।

९—विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेज के धारण करने वाले उस अमर, अखण्ड शासन का उपदेश करे। जिसमें तीन पद उसी में विराजमान हैं। जो उस राज्य-तत्व को जानता है वह पालकों से बढ़ कर पालक है।

१०—वह समस्त प्राणियों, लोकों, देशों और दिशाओं को प्राप्त करके 'प्रथमजा' अर्थात् भूमि को प्राप्त कर स्वयं अपने बल से उसमें जमकर बैठता है।

११—वह राजा प्रजावर्ग और समस्त लोकों और (स्वः) राज-सभा को प्राप्त कर, वश कर (ऋतस्य) राष्ट्र की सत्य व्यवस्था, क़ानून सूत्र को बांध कर राष्ट्र पर आंख रखता है और तन्मय हो जाता है और राष्ट्रस्वरूप होकर रहता है।

१२—मैं प्रजाजन 'सदसस्पति' अर्थात् राष्ट्रपति, सभापति, दण्डपति, अद्भुत, (इन्द्रस्य काम्यम्) ऐश्वर्यमय राष्ट्र के कामना योग्य, जिसको सब कोई चाहे, ऐसे आश्चर्यजनक वीर, प्रिय राजा को प्राप्त करूं और (सनिम्) सेवनीय, सुखप्रद और (मेधाम्) मुझ राष्ट्र प्रजा के धारक पोषक या शत्रुनाशक शक्ति को प्राप्त करूं।

१३—जिस (मेधाम्) संगतिकारक शक्ति को या शत्रुनाशक शक्ति को देव, विजेता राजा लोग और राष्ट्र के पालक लोग उपासना करते, उसका आश्रय लेते हैं, हे अग्रणी नेतः! तू उससे मुझे युक्त कर।

१४—शत्रुओं का वारक, अग्रणी, प्रजापालक, शत्रुनाशक पृथ्वी-पति, वायु के समान उग्र, बली पुरुष मुझे वह 'मेधा' शक्ति प्रदान करे।

१६—मेरी राष्ट्र सम्पत्ति का ब्राह्मण, क्षत्रिय, विद्यावान् और बलवान् पुरुष भोग करें। विजेता लोग और विद्वान् लोग मुझ में श्री, सम्पत्ति को धारण करें, (तस्यै ते स्वाहा) उसका वे उत्तम पात्र में प्रदान करें।

इति द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

१—१७ अग्निर्देवता ।

॥ओ३म्॥अस्याजरासो दमामरित्रा ऽअर्चद्धूमासो ऽअग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥१॥

ऋ० १० । ४६ । ७ ॥

वत्सप्री ऋषिः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्य) इस राजा के राज्य और परमेश्वर की सृष्टि में (अग्नयः) अग्रणी, नेता पुरुष और अग्नि, विद्युत् आदि अति तीव्र ताप के पदार्थ (पावकाः) दूसरों को पवित्र करने वाले (दमाम्) गृहों की (अरित्राः) शत्रुओं और रोगादि से रक्षा करने वाले और (अर्चद्-धूमासः) उज्वल, दीप्ति-युक्त धूम वाले अग्नि के समान तेजस्वी, बलशाली हों। वे (श्वितीचयः) श्वेत पदार्थ चान्दी, रजत, मुक्ता आदि ऐश्वर्यों के, यश के और शुक्ल अर्थात् शुभ चरित्रों के सञ्चय करनेहारे (श्वात्रासः) अति धनवान्, अथवा आलस्यरहित शीघ्रता से कार्य करने वाले (भुरण्यवः) प्रजाओं के धारण पोषण करने वाले, (वनर्षदः) वन में रहने वाले, तपस्वी, सेवनीय, संविभक्त धनों ऐश्वर्यों या गृहों में निवास करनेवाले या रश्मियों में स्थित, सूर्य के समान तेजस्वी या जलों से अभिषिक्त, (वायवः न) वायुओं के समान, बलवान् तीव्र (सोमाः) प्रेरक, जीवनप्रद, राष्ट्र के प्राणस्वरूप, एवं ऐश्वर्यप्रद (अजरासः) जरारहित युवा, बलवान् हों ।

हरयो धूमकेतवो वातजूता ऽउप द्यवि ।
यतन्ते वृथगग्नयः ॥ २ ॥ ऋ० ८ । ४३ । ४ ॥

विश्वरूप ऋषिः । गायत्री । षड्जः ॥

१-१७ अग्निदैवत्याः पुरोरुचः ॥

भा०—जिस प्रकार (पृथक्) नाना प्रकार के (अग्नयः) अग्निएं (हरयः) पीत वर्ण के अति तेजस्वी (धूमकेतवः) धूमरूप ध्वजा से दूरसे ही जानने योग्य, (वातजूताः) वायु द्वारा अति प्रदीप्त होकर (द्यवि) प्रकाश के निमित्त (उप यतन्ते) जला करते हैं, उसी प्रकार (अग्नयः) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष (हरयः) ज्ञान का धारण करने हारे (धूमकेतवः) धूम के समान चतुर्दिगन्त में फैलने वाले ज्ञान से युक्त और (वातजूताः) वायु के समान सबके प्राणप्रद, परमेश्वर की उपासना से तेजस्वी, अथवा प्राणायाम से बलवान्, अथवा वायु के बल के समान बल से बलवान् होकर (द्यवि) प्रकाश और ज्ञान के निमित्त (उप यतन्ते) सदा यत्न किया करते हैं ।

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ२ऽ ऋतं बृहत् ।
अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥ ३ ॥ ऋ० ५ । ७५ । ५ ।

गोतम ऋषिः ।

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्, अग्रणी नेतः ! तू (नः मित्रावरुणा) हमारे मित्र, स्नेही पुरुषों और 'वरुण', श्रेष्ठ और दुःखनिवारक पुरुषों का (यज) सत्कार कर, आदर कर । तू (देवान् यज) विद्वान् पुरुषों का सत्संग कर, उनको दान दे । और (स्वं) अपने (दमम्) दमन करने हारे राष्ट्र को (यक्षि) सुसंगत, सुव्यवस्थित कर ।

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ२ऽ अश्वाँ२ऽ अग्ने रथीरिव ।
नि होता पूर्व्यः सदः ॥ ४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १३ । ३७ ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे ऽअन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो ऽअन्यस्याँ ददृशे सुवर्चाः ॥५॥
ऋ० १ । ९५ । १ ॥

भा०—जैसे (द्वे) दो (विरूपे) भिन्न २ रूप रंग वाली स्त्रियें

(सु-अर्थे) शुभ प्रयोजन में लगी हुई (चरतः) भिन्न २ प्रकार का आचरण करती हैं और भिन्न २ प्रकार से आहार विहार करती हैं। और (अन्या-अन्या) वे दोनों पृथक्, २ या एक दूसरे के (वत्सम्) बालक को (उपधापयेते) दूध पिलाती हैं। (अन्यस्यां) एक में से तो (हरिः) श्याम वर्ण का, मनोहर (स्वधावान्) उत्तम, शान्ति आदि गुणों वाला पुत्र (भवति) हो और (अन्यस्याम्) दूसरी में से (शुक्रः) शुचिकर, शुद्ध, (सुवर्चाः) उत्तम, तेजस्वी पुत्र (ददृशे) प्रकट हुआ दिखाई दे इसी प्रकार रात्रि और दिन (द्वे विरूपे चरतः) दोनों प्रकाश और अन्धकार के कारण भिन्न २ रूप होकर विचरते हैं। दोनों (अन्या-अन्या वत्सम् उपधापयेते) पृथक् २ एक दूसरे के बालक के समान चन्द्र और सूर्य को पोषित करते हैं। अथवा वे दोनों एक दूसरे से मिल कर (वत्सम्) बसे हुए संसार को पालते पोसते हैं। एक में (हरिः) ताप आदि हरने से हरि, मनोहर, (स्वधावान्) अन्नादि ओषधि के पोषक रसों एवं जल, ओस आदि से युक्त चन्द्र उत्पन्न होता है और (अन्यस्याम्) दूसरी, दिन वेला में (शुक्रः) कान्तिमान् (सुवर्चाः) उत्तम तेजस्वी सूर्य (ददृशे) दिखाई देता है। अथवा—दिन वेला रात्रि से उत्पन्न हुए सूर्य को अधिक तेजस्वी करती है और रात्रि वेला दिन के अन्तिम प्रहर में उत्पन्न अग्नि को अधिक उज्वल कर देती है। जलादि रस के शोषण करने से सूर्य हरि है और कान्तिमान् होने से अग्नि शुक्र है।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ॥ ६ ॥
ऋ० ४। ७। १ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३। १५ ॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥ ७ ॥
ऋ० ३। ९। ९ ॥

स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥ विश्वामित्र ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः ।

भा०—(त्रीणि शता, त्री सहस्राणि, त्रिंशत् च नव च) तीन सहस्र, तीन सौ, तीस और ९ अर्थात् ३३३९ इतने (देवाः) विजयशील सैनिक (अग्निम्) अपने अग्रणी सेनापति की (असपर्यन्) आज्ञा मानें। वे उसको (घृतैः) जलों से (औक्षन्) अभिषेक करें। और (अस्मै) उसके लिये (बर्हिः) बड़ा, वृद्धिसूचक आसन, पद भी (अस्तृणन्) प्रदान करें। और (आत् इत्) उसके पश्चात् उसको ही (होतारम्) सबका होता, दाता, एवं वेतन और अधिकार देने वाला बना कर (नि-असादयन्त) मुख्य आसन पर बैठावें।

मूर्द्धानं दिवो ऽअरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत ऽआ जातमग्निम्। कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥८॥

ऋ० ६। ७। १॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ७। २४॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्द्रविणस्युर्विपन्यया।
समिद्धः शुक्र ऽआहुतः ॥ ९ ॥ ऋ० ६। १६। ३४॥

भारद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। गायत्री। षड्जः॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) सूर्य और वायु (वृत्राणि) आकाश को घेरने वाले मेघों को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (द्रविणस्युः) यश और धनैश्वर्य का इच्छुक (अग्निः) अग्रणी, दुष्ट संतापक, विद्वान्, नेता और राजा (विपन्यया) विविध प्रकार के व्यवहारों से युक्त नीति से स्वयं (समिद्धः) अति तेजस्वी (शुक्रः) शीघ्रकारी होकर (आहुतः) शत्रुओं से ललकारा जाकर, या दुःखी प्रजाओं से कष्ट निवारणार्थ पुकारा जाकर (वृत्राणि) प्रजा के नगरों के घेरने वाले शत्रुओं को और सदाचार नाश करने वाले पापाचारों को (जंघनत्) नाश करे।

अथवा—यश का अभिलाषी नेता राजा (विपन्यया समिद्धः) प्रजाओं

की विविध प्रकार की स्तुतियों प्रार्थना से प्रेरित, उत्तेजित होकर (शुक्रः) तेजस्वी (आहुतः) सर्व स्वीकृत होकर (वृत्राणि) कदाचारियों और राज्य के विघ्नों को नाश करे।

विश्वेभिः सोम्यं मध्वग्न इन्द्रेण वायुना।
पिबा मित्रस्य धामभिः ॥ १० ॥

मेधातिथिर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (अग्ने) सूर्य के समान तेजस्विन्! तू (वायुना) वायु के समान अपने आक्रमण के प्रबल वेग से शत्रुओं को हिला देने वाले (इन्द्रेण) शत्रुघातक सेनापति और (विश्वेभिः) समस्त विजयशील वीर नेता पुरुषों के साथ मिल कर (मित्रस्य धामभिः) मित्र, स्नेही राजा के पदाधिकारियों सहित (सोम्यं) राष्ट्र के ऐश्वर्य रूप (मधु) मधुर, भोग्य ऐश्वर्य को (पिब) स्वीकार कर। अग्नि या सूर्य का ताप जिस प्रकार रसधारक वायु के साथ अपने किरणों से जल को पान कर लेता है उस प्रकार राजा अपने मित्रों सहित सेनापति के बल से राष्ट्र का भोग्य अन्न आदि ऐश्वर्य प्राप्त करे।

आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके।
अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयच्च ॥ ११ ॥

ऋ० १।७१।८॥

पराशर ऋषिः। अग्निर्देवता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (नृपतिम्) नर रूप नायक पति अर्थात् पुरुष को (इषे) कामनापूर्त्ति वा निषेक करने के निमित्त (तेजः) तेज, वीर्य (आनट्) प्राप्त होता है तभी वह (शुचि) शुद्ध, दीप्तियुक्त (रेतः) पुत्रादि का उत्पादक वीर्य (द्यौः अभीके) कामना युक्त स्त्री में (निषिक्तम्) निषिक्त हो तो (अग्निः) वह तेजस्वी पुरुष (शर्धम्) बलवान्, (अनवद्यम्) निर्दोष, अनिन्द्य, सुन्दर (स्वाध्यं) उत्तम विचारानुसार (युवानं)

जवान, दीर्घायु हृष्ट पुष्ट सन्तान को (जनयत्) उत्पन्न करता है। और (सूदयत् च) इसी के निमित्त वीर्य निषेक करता है उसी प्रकार (यत्) जब (इषे) वर्षा के निमित्त या अन्नादि के उत्पन्न होने के लिये राजा के समान नेतृ शक्तियों के पालक या सब मनुष्यों के पालक राजा का (तेजः) तेज (आ आनट्) सर्वत्र व्याप्त होता है तब और (द्यौः अभीके) आकाश में सर्वत्र (शुचि रेतः निषिक्तम्) शुद्ध जल गुप्तरूप से गर्भित हो जाता है। तब भी (अग्निः) वह सूर्य (शर्धम्) बलकारी (अनवद्यम्) निर्दोष (युवानम्) यौवन या बल के वर्धक परस्पर मिश्रित, (स्वाध्यं) सुख से स्मरण या धारण करने योग्य, उत्तम पोषक जल को (जनयत्) उत्पन्न करता है और (सूदयत् च) भूमि पर वर्षाता है।

इसी प्रकार राजा के पक्ष में—(यत्) जब (इषे) अन्नादि के वितरण के लिये (नृपतिं तेजः आनट्) नरों के नायक वीरों के पालक राजा का तेज फैलता है तब वह (द्यौरभीके) ज्ञान प्रकाश से युक्त राजसभा में अपने (शुचि रेतः) विशुद्ध सामर्थ्य को प्रदान करता है। और तब (अग्निः) अग्रणी नेता (अनवद्यम्) दोष रहित, स्तुतियोग्य, (युवानं) राष्ट्र के यौवन को बनाने वाले (स्वाध्यं) उत्तम ध्यान या धारण करने योग्य (शर्धम्) बलकारी सामर्थ्य को (जनयत्) उत्पन्न करता है और (सूदयत् च) उसको पुनः प्रजा पर ही वर्षा कर देता है।

प्रजानामेव भूत्यर्थं स ताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः॥ रघु०।

अग्ने शर्द्धं महते सौभंगाय तवं द्युम्नान्युत्तमानिं सन्तु।
सं जांस्पत्यꣳ सुयममाकृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महांꣳसि॥१२॥

ऋ० ५। ६८। ३॥

विश्ववारा ऋषिका। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! विद्वन्! राजन्! तू (महते)

बड़े भारी (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त पद को प्राप्त करने के लिये (शर्द्ध) बल प्रकट कर, उद्योग कर। (तव) तेरे (द्युम्नानि) धन और ऐश्वर्य (उत्तमानि) उत्तम, उच्च कोटि के (सन्तु) हों, तेरे पास उत्तम २ धन प्राप्त हों। तू (जास्पत्यम्) पति पत्नी के सम्बन्ध को (सुयमम्) उत्तम नियमों से सुबद्ध, खूब दृढ़ (आ कृणुष्व) बना। (शत्रूयताम्) शत्रुता का व्यवहार चाहने वाले पुरुषों के (महांसि) तेजों और बड़े २ ऐश्वर्यों पर तू (अभि तिष्ठ) आक्रमण कर, उनको विजय कर।

त्वाँ हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥१३॥

ऋ० ६।४।७॥

भारद्वाज ऋषिः। अग्निर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! विद्वन्! राजन्! आचार्य! हम लोग (मन्द्रतमम्) अति अधिक गम्भीर, सबको प्रसन्न करने हारे, स्वयं सुप्रसन्न, सबसे आदरणीय, एवं अति कोमल हृदय वाले दयालु (त्वां हि) तुझको ही (अर्कशोकैः) सूर्य के समान तेजों से युक्त पुरुषों सहित (ववृमहे) वरण करते हैं। तू (नः) हमारे (महि) बड़े प्रयोजन वाले वचन को (श्रोषि) श्रवण कर। (नृतमाः) श्रेष्ठ मनुष्य (शवसा) बल, ज्ञान के कारण (इन्द्रं न) सूर्य के समान तेजस्वी, (वायुं न) और वायु के समान व्यापक, बलशाली एवं प्राणों के पालक (देवता) देव स्वरूप, दाता और द्रष्टा, ज्ञानप्रकाशक जान कर (राधसा) धन और ऐश्वर्य से (त्वां) तुझको (पृणन्ति) पालते एवं पूर्ण करते हैं।

'अर्कशोकैः'—मन्त्रैः दीप्तैः यथोक्तस्थानकर्मानुप्रदानवद्भिः। देवतात्म वित्तसन्तानगर्भगुरुशुश्रूषाधिगताविप्लवितब्रह्मचर्यैः। इति उवटः॥

त्वे ऽअग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ १४ ॥

ऋ० ७ । १६ । ७ ॥

वासिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (स्वाहुत) अग्नि के समान उत्तम २ पदार्थों और ज्ञानों को प्राप्त करने हारे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ये) जो (सूरयः) सूर्य के समान तेजस्वी, विद्वान् (यन्तारः) स्वयं जितेन्द्रिय, अथवा (जनानां यन्तारः) मनुष्यों को नियम में रखने वाले (मघवानः) धन ऐश्वर्य से सम्पन्न होकर भी (गोनां उर्वान्) गौ आदि पशुओं के नाश करने वालों को (दयन्त) नाश करते एवं दण्ड देते हैं वे (त्वे) तेरे (प्रियासः) प्रिय (सन्तु) हों।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः । आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो ऽअर्य्यमा प्रातर्य्यावाणो ऽअध्वरम् ॥१५॥

ऋ० १ । ४४ । ३ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । अग्निर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (श्रुत्कर्ण) अभ्यर्थना करने वाले के वचनों को श्रवण करनेवाले, अथवा (श्रुत्कर्ण) गुरुओं द्वारा बहुश्रुत कर्णों वाले ! अथवा बहुत विद्वानों को अपने अधीन रखने हारे ! (अग्ने) अग्रणी, विद्वन् ! राजन् ! तू (सयावभिः) सदा साथ जाने वाले, सहयोगी (वह्निभिः) राज-कार्यों को भली प्रकार निर्वाहने वाले (देवैः) विद्वानों के साथ मिल कर (श्रुधि) प्रजा के व्यवहारों को सुना कर । और (बर्हिषि) इस आसन पर, अथवा इस महान्, राष्ट्र व राजसभा में (मित्रः) सबको स्नेह से देखने हारा (अर्यमा) स्वामी के समान मान करने योग्य होकर तू और (प्रातर्यावणः) प्रातःकाल ही राज-कार्यों पर जाने वाले अधिकारी जन (अध्वरम्) अहिंसनीय, अनाश्य, उल्लंघन न करने योग्य राज्यकार्य में (आसीदन्तु) आ २ कर बैठें ।

विश्वे॑षा॒मदि॑ति॒र्य॒ज्ञिया॑नां॒ विश्वे॑षा॒मति॑थि॒र्मानु॑षाणाम् ।
अ॒ग्निर्दे॒वाना॒मव॑ऽआवृणा॒नः सु॑मृडी॒को भ॑वतु जा॒तवे॑दाः ॥१६॥

ऋ० ३ । १ । २० ॥

गोतम ऋषिः । अग्निर्जातवेदा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ।

भा०—(विश्वेषाम्) समस्त (यज्ञियानाम्) पूजनीय, राष्ट्रपालन रूप यज्ञ के सम्पादक पुरुषों में (अदितिः) अखण्ड ज्ञान और आज्ञा वाला (विश्वेषाम्) और समस्त (मानुषाणाम्) मनुष्यों में से (अतिथिः) सबसे अधिक पूज्य, सर्वोपरि स्थित और (देवानाम्) विद्वान्, विद्या और धन के दानशील एवं विजयेच्छु पुरुषों में से (जातवेदाः) ज्ञानवान् (अग्निः) अग्रणी, तेजस्वी विद्वान् राजा (अवः) रक्षण कार्य और अन्न आदि को (आवृणानः) प्रदान करता हुआ (सुमृडीकः भवतु) उत्तम सुख देने वाला हो ।

म॒होऽअ॒ग्नेः स॑मिधा॒नस्य॒ शर्म॒ण्यना॑गा मि॒त्रे वरु॑णे स्व॒स्तये॑ ।
श्रेष्ठे॑ स्याम सवि॒तुः सवी॑मनि॒ तद्दे॒वाना॒मवो॑ऽअ॒द्या वृ॑णीमहे ॥१७॥

ऋ० १० । ३६ । १२ ॥

लुशो धानाक ऋषिः । त्रिष्टुप् । धैवतः । अग्निर्देवता ।

भा०—हम लोग (समिधानस्य) अति तेजस्वी, (अग्नेः) संतापकारी, दुष्ट-संहारक, अग्रणी, नायक राजा के (महः) बड़े भारी (शर्मणि) शरण में रह कर (मित्रे) स्नेहवान् मित्र और (वरुणे) श्रेष्ठ पुरुष के आश्रय पर, उनके प्रति (स्वस्तये) कल्याण के लिये (अनागाः) अपराध रहित होकर (स्याम) रहें । और (सवितुः) सबके प्रेरक परमेश्वर और राजा के (श्रेष्ठे) परम कल्याणमय, सर्वोत्तम (सवीमनि) शासन या आज्ञा में (स्याम) रहें । और (देवानाम्) विद्वान्, ज्ञानप्रद और विजयेच्छु पुरुषों के (तम्) उस (अवः) रक्षण और ज्ञान को (अद्य) आज, एवं सदा (वृणीमहे) प्राप्त करें ।

आपश्चित्पिप्युस्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त ऽइन्द्र । याहि वायुर्न नियुतो नो ऽअच्छा त्वꣳ हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥ १८ ॥

ऋ० ७ । २३ । ४ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(आपः न) जल जिस प्रकार (ऋतम्) जीवन की (पिप्युः) वृद्धि करते हैं उसी प्रकार (आपः) आप्त जन (ऋतं) सत्य ज्ञान की (पिप्युः) वृद्धि करें । और हे (इन्द्र) परमेश्वर ! हे विद्वन् ! (गावः न) वेदवाणियां जिस प्रकार (ऋतं नक्षन्) यज्ञ, पूजनीय ब्रह्म और सत्य तत्व को व्यापती हैं उसी प्रकार (ते जरितारः) तेरे स्तुति करने हारे एवं तेरे अधीन यथार्थ तत्व का उपदेश करने वाले गुरुजन (ऋतं) सत्य ज्ञान को (नक्षन्) प्राप्त करें, उसी में रमे । हे विद्वन् ! राजन् ! (वायुः न) वायु जिस प्रकार (नियुतः) अपने तीव्रता आदि विशेष गुणों को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार तू वायु के समान प्रचण्ड बलशाली होकर (नियुतः) निरन्तर युद्ध करने हारी सेनाओं को अथवा निरन्तर संयोग विभाग करने वाली शक्तियों को (याहि) प्राप्त कर । और (त्वं हि) तू ही (धीभिः) अपने कर्म और विज्ञानों द्वारा (वाजान्) नाना ऐश्वर्यों और अन्नों को (नः) हमें (अच्छ) भली प्रकार (विदयसे) विविध प्रकार से प्रदान और ग्रहण करता है ।

गाव ऽउपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा ।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १९ ॥ ऋ० ८ । ६१ । १२ ॥

भा०—(गावः) सूर्य की किरण जिस प्रकार (यज्ञस्य) इस महान् ब्रह्माण्डमय यज्ञ की रक्षा करती हैं उसी प्रकार हे (गावः) गौओ ! तुम (यज्ञस्य) राष्ट्र के सुसंगत यज्ञ की (उप अवत) अच्छी प्रकार रक्षा करो । हे (मही) बड़ी सूर्य और पृथिवी (रप्सुदा) रूप शोभा प्रदान करने वाली तुम दोनों जिस प्रकार प्रजापालन रूप व्यवहार की (अवतम्)

रक्षा करते हो उसी प्रकार हे (मही) बड़ी शक्ति वाली (रप्सुदा) रूप शोभा को देने वाली राजा प्रजाओ ! तुम दोनों (यज्ञस्य अवतम्) परस्पर के सुसंगत व्यवहार की, गृहस्थ धर्म की स्त्री पुरुषों के समान (अवतम्) रक्षा और पालन करो। और जिस प्रकार (उभा) दोनों स्त्री पुरुष (हिरण्यया) सुवर्ण के आभूषण और हित और प्रिय वचनों से युक्त कानों वाले होकर (यज्ञस्य अवतम्) मैत्री उत्पन्न करने वाले प्रेम वचन को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो तुम दोनों (हिरण्यया) हित और रमणीय आचरणशील (कर्णा) करने वाले होकर (यज्ञस्य) परस्पर के मित्रता के प्रेम व्यवहार की (अवतम्) रक्षा करो। उसी प्रकार राजा प्रजा ये दोनों भी (हिरण्यया) धनैश्वर्य से सम्पन्न होकर (कर्णा) एक दूसरे के कार्य करने वाले, उपकारक बन कर (यज्ञस्य) राष्ट्र रूप सुसंगत व्यवहार की (अवतम्) रक्षा करें।

'उभा कर्णा हिरण्यया' अर्थात् 'दोनों कान सोने वाले' इस शब्द से कानों में स्वर्ण के आभूषण पहनना एवं उनका यज्ञ का रक्षण अर्थात् शरीर की रक्षा करने का तत्व भी स्फुट होता है।

अथवा—(यथा मही रप्सुदा यज्ञस्य अवतम् तथा उभा हिरण्यया कर्णा यज्ञस्य अवतम्। यथा च गावः मही अवन्ति तथा गावः उभा कर्णा अवत।) जैसे नाना रूप वाली बड़ी द्यौ और पृथिवी यज्ञ प्रजापति विराट् पुरुष को प्राप्त हैं, उनमें दोनों सूर्य, चन्द्र दो कुण्डल के समान हैं। उसी प्रकार दोनों सुवर्ण से भूपित कान यज्ञ आत्मा या पुरुष पुरु को प्राप्त हों। और जिस प्रकार किरणें आकाश पृथिवी को व्यापती हैं उसी प्रकार वाणियें दोनों कानों को व्यापें।

अथवा—(गावः उपावत) जब किरणें व्यापती हैं, तब (मही यज्ञस्य रप्सुदा अवतम्) ब्रह्माण्ड को रूप देने वाली बड़ी आकाश और पृथिवी प्राप्त होती हैं। उसी प्रकार (गावः उपावत) हे वेदवाणियो ! तुम प्राप्त

हो अतः (उभौ कर्णौ) हमारे दोनों कान (हिरण्यया) सुवर्ण से मण्डित होकर जैसे शरीर की रक्षा करते हैं उसी प्रकार ज्ञान श्रवण से सुशोभित होकर (यज्ञस्य अवतम्) वे दोनों कान गुरूपदेश श्रवण से मण्डित होकर यज्ञ, अर्थात् आत्मा की रक्षा करें ।

यद॒द्य सूर॒ उदि॑ते॒ऽना॑गा मि॒त्रो ऽअ॑र्य॒मा ।
सु॒वाति॑ सवि॒ता भगः॑ ॥ २० ॥ ऋ० ७ । ६६ । ४ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । सविता देवता । गायत्री । षड्जः ।

भा०—(यत्) जब (मित्रः) सबका स्नेही, मित्र के समान (अर्यमा) स्वामी रूप से अभिमत न्यायकारी, (सविता) सबका प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्वी, (भगः) सर्वैश्वर्यवान् (सुवाति) राज्य करता है तब (सूरे उदिते इव) सूर्य उग आने पर जैसे कोई पुरुष अपराध, चोरी आदि नहीं करता, कहीं अन्धकार नहीं रहता, समस्त प्रजागण उसी प्रकार (अद्य) आज (सूरे अदिते) तेजस्वी सूर्य समान राजा के उदय होने पर प्रजाजन (अनागाः) पाप से दूर रहें ।

आ सु॒ते सि॑ञ्चत॒ श्रिय॑ᳪ रोद॑स्योरभि॒श्रिय॑म् ।
र॒सा द॑धीत वृष॒भम् ॥ ऋ० ८ । ६१ । १३ ॥

सुनीतिर्ऋषिः । रसा देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! तुम (रसा) सारवान् , बलवान् एवं तीव्र वेग से जाने वाले जलप्रवाहों के समान बलवान् होकर (रोदस्योः अभिश्रियम्) आकाश और पृथिवी के बीच सर्वत्र शोभाजनक (वृषभम्) वर्षणशील सूर्य या मेघ के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग या दो बड़े राज्यों के बीच (अभिश्रियम्) अति अधिक शोभा पाने वाले आश्रय करने योग्य, एवं (वृषभम्) अति बलवान् पुरुष को (सुते) राष्ट्र के बीच में (श्रियम्) राज्यलक्ष्मी (आसिञ्चत) प्रदान करके अभिषेक करें । और वह राज्य को (दधीत) धारण करे ।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० ॥ २१ ॥

भा०—'तं प्रत्नथा०' और 'अयं वेनः०' ये दोनों (अ० ७।१२) और (२६) मन्त्रों की प्रतीक मात्र हैं। उनकी व्याख्या वहीं देखो।

आ तिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥२२॥

ऋ० ३। ३८। ४ ॥

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(तिष्ठन्तं) एकत्र स्थिर हुए राजा को (विश्वे) सब लोग (परि) चारों ओर से (अभूषन्) घेर कर खड़े होते हैं। और वह (स्वरोचिः) स्वयंप्रकाश, सूर्य के समान तेजस्वी (श्रियः) शोभाजनक ऐश्वर्यों को (वसानः) धारण करता हुआ (चरति) विचरता है। (वृष्णः असुरस्य) वर्षा करने वाले मेघ के समान (असुरस्य) समस्त प्राणियों को प्राण दान करनेवाले उसका (महत् नाम) नमाने का बड़ा भारी सामर्थ्य है कि वह (विश्वरूपः) विश्वरूप होकर अर्थात् समस्त पदाधिकारियों का स्वरूप धर कर (अमृतानि) अविनश्वर ऐश्वर्यों पर (तस्थौ) शासक होकर विराजता है।

विद्युत् पक्ष में—वर्षाशील मेघ में वह बड़ा भारी बल है जो नाना रूप होकर जलों में व्याप्त है।

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे।
इन्द्रस्य यस्य सुमखꣳ सहो महि श्रवो नृम्णञ्च रोदसी सपर्य्यतः॥२३

ऋ० १०। ५०। १ ॥

सुचीक ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्

२१—'तं प्रत्नथायं वेनश्चोदयत्' इति काण्व०।

परमेश्वर और राजा का (सुमख) उत्तम यज्ञ, (सहः) शत्रु के पराजयकारी बल, (महि श्रवः) बड़ा भारी यश और (नृम्णं च) धन इन पदार्थों को (रोदसी) द्यौ और पृथिवी ज्ञानी अज्ञानी और राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों (सपर्यतः) उपहार में प्रदान करते हैं। उस (विश्वानराय) समस्त नरों और राजा की नेताओं के उत्पादक (विश्वाभुवे) समस्त विश्व के उत्पादक, सर्व विश्वव्यापक (अन्धसः) अन्न के दान करने वाले (महे) महान् (मन्दमानाय) सबको आनन्द देने वाले, स्वयं आनन्दस्वरूप उस परमेश्वर की (वः) तुम लोग (अर्च) अर्चना और स्तुति आदर करो।

बृहन्निदिध्म ऽएषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ २४ ॥ ऋ० ८ । ४५ । २ ॥

त्रिशोक ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(येषाम्) जिनका (सखा) मित्र (बृहन्) महान् (इध्म) तेजस्वी, (पृथुः) विस्तीर्ण राज्य वाला (स्वरुः) शत्रुओं का तापक, सूर्य के समान तेजस्वी (युवा) युवा पुरुष के समान सदा बलवान् उत्साही हो, (एषां) उन प्रजाओं का (भूरि) बहुत (शस्तम्) उत्तम, प्रशंसा योग्य फल होता है।

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महाँ२ऽ अभिष्टिरोजसा ॥ २५ ॥ ऋ० १ । ९ । १ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (सोमपर्वभिः) सोम, राजपद या राज्य के पालन करने वाले पुरुषों सहित (अन्धसः) अन्न या राज्यैश्वर्य से (मत्सि) तृप्त हो और (ओजसा) बल पराक्रम से तू स्वयं (महान्) बड़ा (अभिष्टिः) आदर सत्कार करने योग्य है।

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्द्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑ममिना॒द्वर्प॑णीतिः ।
अह॒न् व्यं॑समु॒शध॒ग्वने॑ष्वा॒विर्धेना॑ ऽअकृणोद्रा॒म्याणा॑म् ॥२६॥

ऋ० ३ । ३४ । ३ ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(शर्धनीतिः) बल अर्थात् सेनाबल को अग्रणी होकर ले चलने वाला (इन्द्रः) शत्रुसंहारक सेनापति (वृत्रम् अवृणोत्) नगर-रोधी शत्रु को रोक ले और (वर्पणीतिः) नाना रूपों के व्यूहों के करने और चलाने में चतुर सेनापति (मायिनाम्) मायावी पुरुषों को भी (अमिनात्) विनाश करे । (वनेषु) वनों में लगा (उशधग्) अग्नि जिस प्रकार सबको भस्म कर देता है । उसी प्रकार (उशधग्) पराये धन के लोभी चोर डाकू आदि को संतप्त या पीड़ित करने में कुशल राजा (वनेषु) वनों में स्थित (व्यंसम्) अपने पराये धनों के हरने वाले चोर को उसके बाहुएं या कन्धे काट करके (अहन्) मारे । और (राम्याणाम्) प्रसन्न करने वाले स्तुति पाठकों की (धेना) वाणियों को (आविः अकृणोत्) प्रकट करे ।

कु॒त॒स्त्वमि॑न्द्र॒ माहि॑नः॒ सन्नेको॑ यासि सत्पते॒ किन्त॑ऽइ॒त्था ।
सं॒पृ॒च्छ॒से स॑मरा॒णः शु॑भा॒नैर्वो॒चेस्तन्नो॑ हरिवो॒ यत्ते॑ ऽअ॒स्मे ॥

ऋ० १ । १६५ । ३ ॥

अगस्त्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (इन्द्र) इन्द्र ! हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! (त्वम्) तू (माहिनः) अति पूज्य और महान् सामर्थ्यवान् होकर (एकः) अकेला (यासि) प्रयाण करता है, सो (कुतः) क्यों किस प्रयोजन से ? (ते) तेरा (इत्था) इस प्रकार के कार्य करने में (किम्) क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार (समराणः) ठीक रास्ते पर जाता हुआ तू (शुभानैः) शुभ, मङ्गल-कामना करने वाले हितैषी पुरुषों से (सम्पृच्छसे) पूछा जावे ।

(नः) हमें (तत्) उस सब कारणों को (वोचः) बतला, हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन् ! यत् क्योंकि (अस्मे) हम (ते) तेरे ही हितैषी हैं ।

महाँ२ऽ इन्द्रो य ओजसा० । कदा चन स्तरीरसि० ॥
कदा चन प्रयुच्छसि ॥ २७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् इन्द्र । (ओजसा महान्) तू बल पराक्रम से महान् है । यह मन्त्र प्रतीक देखो ७ । ४० ॥ (कदाचन स्तरीः असि) तू कभी प्रजा का नाश नहीं करता । यह मन्त्र प्रतीक देखो ८ । २ (कदा च न प्रयुच्छसि) तू कभी प्रमाद नहीं करता । यह मन्त्र प्रतीक देखो अ० ८ । ३ ॥

आ तत्तऽइन्द्रायवः पनन्ताभि य ऽऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥ २८ ॥

ऋ० १० । ७४ । ४ ॥

गौरिवीति ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (ये) जो लोग (ऊर्वं) हिंसक, दुष्ट, (गोमन्तम्) भूमि के मालिक को (तितृत्सान्) मरना चाहते हैं और जो (पुरुपुत्राम्) बहुत से पुत्रों वाली, (सकृत्स्वम्) एक ही वार बहुत अन्नादि उत्पन्न करने में समर्थ, (महीम्) भूमि को और (सहस्रधाराम्) सहस्रों को धारण पोषण करने वाली भूमि या सहस्रों धाराओं से वर्षण करने वाली, (बृहतीम्) विशाल द्यौ को (दुदुक्षन्) गौ के समान दोह लेना चाहते हैं अर्थात् जो उसके ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेने के इच्छुक हैं वे (आयवः) मनुष्य (ते) तेरे (तत्) उस विजय और प्रजापालन के कार्य की (पनन्त) निरन्तर स्तुति करते हैं ।

(ये ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान्) जो आंगिरस लोग प्राप्त हुए गो संघ को मारना चाहते हैं, यह सायणकृत अर्थ असंगत है ।

(ये गोमन्तं उदकवन्तं ऊर्वं अन्नं तितृत्सान् हिंसितुमिच्छन्ति) जो

पानी वाले अन्न अर्थात् सोम को मारना चाहते हैं। यह अर्थ उव्वट और महीधर का है।

अचार्य पक्ष में—हे इन्द्र! आचार्य! (ये) जो (गोमन्तम् ऊर्वम्) वाणी के स्वामी अर्थात् विद्वान् होकर भी हिंसक या दुष्ट पुरुष हैं उसको जो नाश करना चाहते हैं और बहुत से शिष्य रूप पुत्रों वाली सहस्रों ज्ञानों का धारण और प्रदान करने वाली, बड़ी (सकृत्स्व) एक ही बार समस्त ज्ञान प्रकट करने वाली, (बृहतीं) वेद वाणी को दोहना चाहते हैं वे (ते आपनन्त) तेरी शरण आते हैं।

इमान्ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त ऽआनजे। उत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥२९॥

ऋ० १।१०२।१॥

कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन्! मैं (महतः) महान् सामर्थ्य वाले (ते) तेरे लिये (इमां) इस (धियम्) धारण योग्य कर्म और ज्ञान को (प्र भरे) धारण करता हूं। (अस्य) इस तेरे सेवक की (स्तोत्रे) स्तुति करने में (यत् धिषणा) जो बुद्धि या वाणी है वह (ते आनजे) तेरे ही महान् सामर्थ्य को प्रकट करती है। (तम्) उस (सासहिम्) सत्रुओं को पराजय करने में समर्थ (इन्द्रम्) राजा या सेनापति को (देवासः) वीर विजिगीषु लोग शवसा बल के कारण (उत्सवे) उत्सव और (प्रसवे) ऐश्वर्य प्राप्ति और उत्तम शासन के कार्य में प्राप्त करके उसके (अनु अमदन्) आनन्द के साथ २ स्वयं भी आनन्दित, हर्षित होते हैं।

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविहुतम्। वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति॥३०॥

ऋ० १०।१७०।१॥

विभ्राड् ऋषिः। सूर्यो देवता।

भा०—(विभ्राट्) विविध दिशाओं में विशेष रूप से प्रदीप्त, तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार (बृहत्) बड़ा है । वह (सोम्यं मधु) सोम अर्थात् जीवन के हितकारी, मधु अर्थात् जल को किरणों से पान कर लेता है । (वातजूतः) वायु से किरणों द्वारा युक्त होकर वह स्वयं समस्त प्रजाओं को पालता और पोषता है और बहुत सी प्रजाओं और लोकों को धारण करता हुआ विविध रूप से प्रकाशित होता है उसी प्रकार (विराट्) विशेष तेज से देदीप्यमान तेजस्वी राजा (बृहत्) बड़े भारी (सोम्यम्) ऐश्वर्य-जनक सोम अर्थात् राजपद के योग्य (मधु) अन्न, ज्ञान और शत्रुनाशक राष्ट्र-स्तम्भक बल और मान को (पिबतु) भोग करे और वह (यज्ञ-पतौ) यज्ञ अर्थात् परस्पर सुसंगत व्यवस्था और पूज्य पदों के पालन करने वाले पुरुष में (अविह्रुतम्) अखण्डित, सम्पूर्ण (आयुः दधत्) दीर्घ जीवन धारण करता हुआ, अथवा (यज्ञपतिं) राष्ट्रपति के पद पर (अविह्रुतम् आयुः दधत्) अपने सम्पूर्ण अखण्डित, जीवन को धारण करता हुआ या प्रदान करता हुआ (यः) जो (वातजूतः) वायु के समान प्रचण्ड वेग वाले बलवान् सेनापति के बल से स्वयं वेगवान्, बलवान् होकर (त्मना) अपने सामर्थ्य से (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (प्रजाः अभि रक्षति) प्रजाओं की रक्षा करता है और (पुपोष) उनको पुष्ट और समृद्ध करता है वह (वि राजति) इस प्रकार स्वयं विशेष रूप से प्रकाशित होता है ।

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥ ३१ ॥ ऋ० १ । ५० । १ ॥

भा०—व्याख्या देखो (७ । ४१)

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ२॥ अनु ।
त्वं वरुण पश्यसि ॥ ३२ ॥ ऋ० १ । ५० । ६ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री षड्जः ॥

३१—'यज्ञपतावविह्रुतम्' इति काण्व० ।

भा०—हे (वरुण) सब पापों के निवारक! सर्वश्रेष्ठ वरुण ! परमेश्वर ! राजन् ! हे (पावक) सूर्य और अग्नि के समान पवित्रकारक, जनों के तीक्ष्ण दण्ड आदि से निष्पापकारक ! (येन) जिस (चक्षसा) दर्शन या प्रकाश से मार्गदर्शक, प्रकाशक ज्ञान (भुरण्यन्तम्) सबके पालक पुरुष को (पश्यसि) देखता है उसी से (त्वं) तू अन्य मनुष्यों को भी (अनु पश्यसि) देख, उनको ज्ञान प्रदान कर और मार्ग दिखा। राजा छोटे बड़े सबको एक समान दृष्टि से देखे और एक समान दृष्टि से उन पर शासन करे।

दैव्यावध्वर्यू ऽआ गतꣳ रथेन सूर्यत्वचा ।
मध्वा यज्ञꣳ सम॑ञ्जाथे ॥

भा०—हे (दैव्यौ अध्वर्यू) देवों, विद्वानों और दिव्य गुणों के निमित्त कुशल अध्वर अर्थात् यज्ञ, अहिंसा-युक्त राज्यपालन में कुशल दो पदाधिकारी पुरुषो ! आप दोनों (सूर्यत्वचा) सूर्य के समान चमकने वाले बाह्य आवरण से मढ़े (रथेन) रथ से या तेजस्वी, रक्षा के साधन शस्त्रास्त्र बल और रथारोही सैन्य सहित (आ गतम्) आओ। और (यज्ञम्) राष्ट्र-यज्ञ को (मध्वा) अन्न, यश और मधुर भोग्य पदार्थों से (सम् अञ्जाथे) युक्त करो।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० । चित्रं देवानाम्० ॥ ३३ ॥

भा०—तं प्रत्नथा० यह प्रतीक है। व्याख्या देखो अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः०' यह मन्त्र प्रतीक देखो ७।१६ ॥ 'चित्रं देवानाम्०' यह प्रतीक देखो ७ । ४२ ॥

आ न ऽइडाभिर्विदथे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव ऽएतु ।
अपि यथा युवानो मत्सथा नो विश्वं जगदभिपित्वे मनीषा ॥३४॥
— ऋ० १ । १८६ । १ ॥

३३—'दैव्या अध्व०' इति काण्व० । 'वेनश्चोदयत्' इति काण्व० ।

३४—इळा० इति काण्व० ।

अगस्त्य ऋषिः । त्रिष्टुप् । सविता देवता । धैवतः ॥

भा०—(विश्वानरः) सबका नेता, नायक, अग्रणी, सबका स्वामी, (सविता) सबका प्रेरक, उत्पादक एवं सूर्य के समान (देवः) उत्तम ज्ञान प्रकाशों का दिखलाने हारा, उत्तम पदार्थों का दाता, विद्वान् (नः) हमारे (विदथे) संग्राम कार्य, एवं ज्ञानमय संगम स्थान में (सुशस्ति) उत्तम उपदेश करने वाली (इडाभिः) वाणियों सहित (नः) हमें (आ एतु) प्राप्त हो। हे (युवानः) युवा, तरुण, बलवान् पुरुषो ! तुम लोग (अभिपित्वे) अपने आगे आने वाले (नः) हमारे (विश्वं जगत्) समस्त पुत्र पशु आदि संसार को (यथा) जिस प्रकार से (अपि मत्सथाः) आनन्द प्रसन्न एवं भोजन वस्त्रादि से तृप्त करते रहो ऐसी (मनीषा) उत्तम बुद्धि से काम करो ।

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ऽअ॒भि सू॑र्य ।
सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑ ॥ ३५ ॥ ऋ० ८ । ८३ । ४ ॥

श्रुतकक्षः सुकक्षश्च ऋषि । सूर्यो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (सूर्य) समस्त ऐश्वर्य के उत्पादक ! हे (वृत्रहन्) मेघ के नाशक, सूर्य के समान विघ्नकारी शत्रुओं के नाशक ! तू (अभि उद् अगाः) सब प्रकार से, सबके समक्ष उदय को प्राप्त हो, उन्नत पद पा। (अद्य) आज दिन (यत् यत्) जो कुछ भी है (तत् सर्वम्) वह सब हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते वशे) तेरे ही वश में है ।

त॒रणि॑र्वि॒श्वद॑र्शतो ज्योति॒ष्कृद॑सि सूर्य ।
विश्व॒मा भा॑सि रोच॒नम् ॥ ३६ ॥ ऋ० १ । ५० । ४ ॥

प्रस्कण्व ऋषिः । सूर्यो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—तू (तरणिः) सब कष्टों से पार तराने वाला (विश्वदर्शतः) सबसे दर्शन करने योग्य है । (ज्योतिःकृत्) तू समस्त सूर्यादि तेजस्वी लोकों को बनाने वाला है । हे (सूर्य) समस्त जगत् के प्रेरक और सञ्चालक !

तू (रोचनम्) तेजस्वी, दीप्तिमान् (विश्वम्) समस्त संसार को (आ-भासि) प्रकाशित करता है।

इसी प्रकार हे सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष ! तू प्रजाजनों को पार लगाने वाला होने से 'तरणि' है, तू सबमें दर्शनीय है, तू ज्योति अर्थात् ज्ञान प्रकाश का करने वाला है, समस्त रुचिकर पदार्थों का प्रकट करने वाला है।

तत्सूर्य्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्त्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ३७ ॥

ऋ० १। ११५। ४॥

[३७, ३८] कुत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य सब के प्रेरक सञ्चालक और उत्पादक परमेश्वर का (तत् देवत्वम्) यही अवर्णनीय 'देवत्व' अर्थात् सर्व शक्तिप्रद स्वरूप है और (तत्) वही अलौकिक (महित्वम्) महान् सामर्थ्य है कि वह (विततं) इस नाना प्रकारों से बने, फैले विस्तृत संसार को (कर्त्तोः) बनाने में समर्थ है और वही (मध्या) बीच में व्यापक है और वही (सं जभार) इसका संहार करता है। (यदा इत्) जब भी वह (सधस्थात्) एकत्र होने के केन्द्र स्थान से (हरितः) अपनी तीव्र गतिदायिनी शक्तियों को और विस्तृत दिशाओं को भी, समस्त किरणों को सूर्य के समान (अयुक्त) एकत्र कर लेता है (आत्) तभी (रात्री) रात्रि के समान ही प्रलयकाल की रात्रि (सिमस्मै) इस समस्त ब्रह्माण्ड के ऊपर (वासः तनुते) आवरण सा छा देती है।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा का यही देवत्व और महत्त्व है कि वह (मध्या) समस्त राष्ट्र के बीच में रहकर विस्तृत राष्ट्र को बनाने और बिगाड़ने में समर्थ है। वह जब एक ही मुख्य पद से समस्त (हरितः) दिशाओं अर्थात् देशों को या समस्त विद्वानों और वीर पुरुषों को (अयुक्त) रथ में अश्वों के समान, राष्ट्र के कार्य में नियुक्त करता है तभी (रात्री)

सबको आनन्द सुख देने वाली राज्य-व्यवस्था सबके लिये वस्त्र के समान गर्मी, सर्दी, दुःख, पीड़ा विपत् से बचाने वाली होकर रक्षा प्रदान करती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ॥ ३८ ॥

ऋ० १। ११५। ५॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार (द्योः उपस्थे) आकाश के बीच में रहकर (मित्रस्य) वायु और (वरुणस्य) जल के (तत् रूपं कृणुते) उस रूप प्रकट करता है जिसे (अभिचक्षे) समस्त जगत् का प्राणी देखता है। इसी प्रकार (सूर्यः) सबका प्रेरक, उत्पादक परमेश्वर भी (द्योः) प्रकाशमय, ज्ञानमय स्वरूप में (उपस्थे) विद्यमान रह कर (मित्रस्य वरुणस्य) मित्र और वरुण, सब में विद्यमान प्राण और उदान इन दोनों का ऐसा (रूपं कृणुते) रुचिकर स्वरूप उत्पन्न करता है (अभिचक्षे) जिसे यह मनुष्य भी देखता है। अथवा—[मित्रम् अहः वरुणो रात्रिः] मित्र अर्थात् दिन और वरुण अर्थात् रात्रि इन दोनों का ऐसा रूप उत्पन्न करता है जिन से यह जन या वह स्वयं सबको देखता है। (अस्य) इसका भी (रुशत्) तेजो युक्त सूर्य के समान (अनन्तम्) अनन्त (पाजः) बल, सामर्थ्य (अन्यत्) एक प्रकार का है। और (अन्यत् कृष्णम्) दूसरा, एक और सामर्थ्य 'कृष्ण' अर्थात् काला है। अर्थात् सूर्य के जिस प्रकार दो सामर्थ्य है एक चमकने वाला, दिन करने वाला दूसरा कृष्ण, काला, रात्रि करने वाला, उसी प्रकार परमेश्वर के दो सामर्थ्य हैं एक (रुशत् पाजः) तेजो युक्त अर्थात् सबको प्रकाशमय, चेतनामय करने वाला उत्पादक सामर्थ्य और दूसरा 'कृष्ण' सब संसार को 'कर्षण' करने वाला या कृन्तन, विनाश करने वाला, प्रलयकारी बल है जिस प्रकार सूर्य के दोनों प्रकार के सामर्थ्यों को (हरितः) दिशाएं धारण करती हैं उसी प्रकार इस परमेश्वर के भी दोनों सामर्थ्यों को (हरितः) अतिवेग वाली

शक्तियां (संभरन्ति) भरण पोषण करती हैं और वे ही (संभरन्ति) संहार करती हैं।

अध्यात्म में—सूर्य सब का प्रेरक आत्मा (द्योः उपस्थे) सर्व प्रकाशमय चेतनामय मस्तक के बीच रहकर मित्र-प्राण और वरुण-अपान दोनों का ऐसा रूप करता है कि यह देह देखता है। इसका अनन्त सामर्थ्य एक (रुशत्) रोचक है जो इस को सात्विक कर्म कराता है, चेतन रखता है। दूसरा 'कृष्ण' तामस बल है जो समस्त प्राणों को कर्षण करता है जिसको (हरितः) इन्द्रियें धारण करती हैं। [२] इसी प्रकार राष्ट्र में सूर्य के समान तेजस्वी राजा मित्र और वरुण के रूप धारण करता है, अर्थात् वह सज्जनों पर अनुग्रह और दुष्टों पर निग्रह करने वाले दो विभाग करता है। एक उसका तेजस्वी रूप है, दूसरा 'कृष्ण' अर्थात्, भयानक, शत्रु नाशकारी बल है। जिसे संहारकारी वीर सेनाएं और प्रजाएं धारण करती हैं।

बण्महाँ२॥ असि सूर्य्य बडादित्य महाँ२॥ असि।
महस्ते सतो महिमा पनस्यतेऽद्धा देव महाँ२ऽ असि॥ ३९॥

ऋ० ८। ९०। ११॥

[३९, ४०] जमदग्नि ऋषिः। सूर्यो देवता। सतो बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (सूर्य) सबके प्रेरक, सूर्य के समान तेजस्विन्! तू (बट्) सच मुच (महान् असि) महान् है। हे (आदित्य) सबको अपने में ग्रहण करने हारे तू (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है। (सतः) सत्, नित्य, सबके कारण रूप में विद्यमान तेरा (महः महिमा) महान् सामर्थ्य (पनस्यते) कहा जाता है (अद्धा) सचमुच हे (देव) देव! तू सचमुच (महान् असि) महान् है। सब पक्षों में समान है।

बट् सूर्य्य श्रवसा महाँ२ऽ असि सत्रा देव महाँ२ऽ असि।
महा देवानामसुर्यः पुरोहितो विभु ज्योतिरदाभ्यम्॥ ४०॥

ऋ० ८। ९०। १२॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन्! सर्व प्रेरक प्रभो! राजन्! (श्रवसा) श्रवण करने योग्य, ऐश्वर्य, ज्ञान और यश से तू (बट्) सचमुच (महान् असि) महान् है। हे (देव) सबके प्रकाशक हे सर्वत्र दानशील कान्तिमय! तू (सत्रा) सत्य ही अथवा सत्य के द्वारा (महान् असि) महान् है। (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (देवानाम्) समस्त दानशील पुरुषों या पृथिव्यादि लोकों के बीच, सूर्य के समान (असुर्यः) प्राणियों का हितकारी है। तू (पुरोहितः) दीपक के समान विवेक से मार्ग चलने के लिये (पुरः हितः) आगे के मुख्य अग्रणी पद पर स्थापित किया जाता है। तू (विभु) विविध सामर्थ्यों से युक्त (अदाभ्यम्) अविनाशी (ज्योतिः) ज्योति, आनन्दमय, तेज स्वरूप है।

श्रा॑यन्त ऽइव॒ सूर्य्यं॒ विश्वेदिन्द्र॑स्य भक्षत।
वसू॑नि जा॒ते जन॑मान॒ ऽओज॑सा प्रति॑ भा॒गं न दी॑धिम॥ ४१॥

ऋ० ८। ८८। ३॥

नृमेध ऋषिः। सूर्यो देवता। बृहती छन्दः। मध्यमः॥

भा०—हे मनुष्यो! तुम लोग (सूर्यम्) सबके प्रेरक सर्वोत्पादक परमेश्वर का (श्रायन्तः इव) आश्रय लेते हुए ही (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् आत्मा के (विश्वा वसूनि) समस्त देह में बसने से प्राप्त करने योग्य आनन्दों का (भक्षत) भोग करो। हम लोग (जाते) उत्पन्न हुए और (जनमाने) आगे उत्पन्न होने वाले संसार में जिस प्रकार (भागं न) अपने कमाये धन को प्रदान करते हैं उसी प्रकार (ओजसा) बल पराक्रम से कमाए हुए (भागं) सेवन करने योग्य कर्म-फल को (जाते जनमाने) अबतक उत्पन्न और आगे उत्पन्न होने वाले जन्म या देह में (दीधिम) धारण करते हैं, प्राप्त करते हैं।

राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा का आश्रय लेकर ही

हम ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के धनों का भोग करें और उत्पन्न और आगे होने वाले प्रजा आदिक में अपने पराक्रम से कमाये सेवनीय पदार्थ को प्रदान करे।

अद्या देवा उदिता सूर्य्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥४२॥

कुत्स ऋषिः। सूर्यो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (देवाः) सब अर्थों के प्रकाश करने वाले, प्रिय, विद्वान् पुरुषो ! आप (सूर्यस्य) सूर्य के उदय हो जाने पर जिस प्रकार किरणें अन्धकार को दूर कर देती हैं उसी प्रकार आप लोग (सूर्यस्य उदिता) सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्म ज्ञान के हृदय में उदित हो जाने पर और राष्ट्र में तेजस्वी राजा के उदय हो जाने पर आप लोग हमें (अंहसः) पाप से और (अवद्यात्) कहे जाने के अयोग्य, निन्दनीय कर्म से भी (पिपृत) बचावें। पापों से पृथक् करें। और (मित्रः) सबका स्नेही न्यायाधीश, (वरुणः) दुष्टों का वारक, सर्वश्रेष्ठ, (अदितिः) अखण्ड शासनाज्ञा वाला, (सिन्धुः) नदी के समान वेगवान्, बलवान् अथवा, राष्ट्र को बांधने वाला, प्रबन्धक (पृथिवि) पृथिवी के समान सर्वाश्रय, उत (द्यौः) आकाश के समान विशाल पुरुष (नः) हमारे (तत्) उस संकल्प को (मामहन्ताम्) सत्कार करें।

भौतिक पक्ष में—सूर्य के उदय होने पर (देवाः) सूर्य की किरणें हमें बुरे कर्म (अंहसः) पाप और रोग से दूर करें। हम स्वच्छ नीरोग, शुभ संकल्पवान् हों (मित्रः) सूर्य, (वरुणः) जल, (अदितिः) आकाश, (सिन्धुः) सागर या विशाल जल प्रवाह, (पृथिवी) पृथिवी और (द्यौः) सूर्य का प्रकाश (नः तत् मामहन्ताम्) हमारे इस शरीर को उत्तम बनावे।

आ कृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ ४३

ऋ० १। ३५। २॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः । सविता देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (कृष्णेन रजसा) परस्पर आकर्षण करने वाले लोक समूह के साथ सर्वत्र भ्रमण करता हुआ मर्त्य, नाशवान् प्राणियों और अनाशवान् भौतिक तत्वों को अपने २ स्थान पर स्थिर करता है और (हिरण्ययेन रथेन) तेजस्वी स्वरूप से सब लोकों को प्रकाशित करता हुआ जाता है उसी प्रकार (कृष्णेन) शत्रुओं को काट गिरा देने वाले (रजसा) सैन्य-बल से (आवर्त्तमानः) सर्वत्र विद्यमान रहता हुआ (सविता) सबका शासक राजा (अमृतम्) अमृत, अखण्ड, अविनाश्य स्थिर पदार्थों को और (मर्त्यं च) मरने वाले सामान्य जनों को (निवेशयन्) यथा स्थान स्थापित करता हुआ (देवः) विजिगीषु राजा (हिरण्ययेन) स्वर्ण या लोह के बने (रथेन) रथ से अथवा धनैश्वर्यादि रमणसाधन रथ आदि से (भुवनानि) समस्त प्राणियों को (पश्यन्) देखता, उनका निरीक्षण करता हुआ (याति) प्रयाण करे ।

प्र वा॑वृजे सुप्र॒या ब॒र्हिरे॑षा॒मा वि॒श्पती॑व॒ बीरि॑ट ऽइयाते ।
वि॒शाम॒क्तोरु॒षसः॑ पू॒र्वहू॑तौ वा॒युः पू॒षा स्व॒स्तये॑ नि॒युत्वा॑न् ॥ ४४ ॥

ऋ० ७ । ३९ २ ॥

वशिष्ठ ऋषिः । वायुः पूषा च देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सुप्रयाः वायुः) जिस प्रकार उत्तम वेग से चलने वाला वायु (एषाम्) इन लोकों में से (बर्हिः) जल को (प्र वावृजे) उत्तम रीति से ले लेता है और जैसे (पूषा) सबका पोषक सूर्य (एषाम्) इन लोकों में से (बर्हिः प्र वावृजे) किरणों द्वारा जल के अंश को पृथक् कर लेता है । अथवा (सुप्रयाः वायुः यथा बर्हिः प्र वावृजे) उत्तम वेग से चलने वाला वायु जिस प्रकार अन्न को भली प्रकार तुषों से पृथक् कर देता है उसी प्रकार यह राजा (वायुः) वायु के समान प्रचण्ड वेग से जाने वाला, एवं प्रजा का प्राणस्वरूप, (सुप्रयाः) उत्तम अन्न

आदि सामग्री से सम्पन्न अथवा (सुप्रयाः) उत्तम रीति से प्रयाण करने वाला बलवान् होकर (एषाम्) इन मनुष्यों में से (बर्हिः) प्रबल जन संघ को (प्र वावृंजे) पृथक् कर लेता है। इसी प्रकार (पूषा) सर्व पोषक पूषा, भागदुघ् नामक अधिकारी भी (एषाम्) इन प्रजा जनों के (बर्हिः) वृद्धिकर अन्न का उत्तम रीति से संग्रह करता है। और जिस प्रकार (वायुः पूषा) वायु और सूर्य दोनों (विरिटे इयाते) अन्तरिक्ष मार्ग से जाते हैं उसी प्रकार ये दोनों भी (विश्पती इव) प्रजा जनों के पालक राजा और पोषक होकर (विरिटे) भयभीत शत्रु पर और अधीन प्रजा के बीच (नियुत्वान्) अश्वारोहिगण से युक्त होकर (इयाते) गमन करते हैं। और (अक्तोः) रात्रि के और (उषसः) दिन के (पूर्वहूतौ) पूर्व ही बुलाये वायु और सूर्य के समान वे दोनों (विशां स्वस्तये) प्रजाओं के कल्याण के लिये होते हैं।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम्।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ४५ ॥ ऋ० १ । १४ । ३ ॥

[४५, ४६] मेधातिथि ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(इन्द्र वायू) विद्युत्, वायु, (बृहस्पतिम्) बड़े लोकों के पालक सूर्य, (मित्राग्निम्) मित्र, प्राण और अग्नि, (पूषणम् भगम्) पुष्टिकारक, अन्न और सेवन योग्य ऐश्वर्य (आदित्यान्) सूर्य की किरणों या १२ मासों और (मरुतां गणम्) वायुओं के समूह का ज्ञान करके उत्तम उपयोग करो।

राष्ट्र-पक्ष में—(वायू) इन्द्र राजा, वायु के समान प्रचण्ड सेनापति, (बृहस्पतिं) विद्वान् पुरुष (मित्राग्निम्) सर्वस्नेही न्यायकारी, अग्नि, अग्रणी नेता, (पूषणं) पोषक, पृथ्वी या भागदुघ्, (भगं) ऐश्वर्यवान् (आदित्यान्) आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष,

(मारुतं गणम्) मनुष्यों के गण इन सबको अपने २ पद पर नियुक्त करो। जैसे अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है ।

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ४६ ॥ ऋ० १ । २३ । ६ ॥

भा०—(वरुणः) सब दुष्ट पुरुषों का निवारण करने हारा, एवं प्रजा द्वारा वरण करने योग्य मुख्य पदाधिकारी और (मित्रः) प्रजा को मरने से बचाने हारा, सबका स्नेही पदाधिकारी पुरुष ये दोनों शरीर में उदान और प्राण के समान (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपने समस्त रक्षा के कार्यों से (प्र-अविता) उत्तम रक्षक (भुवत्) हों और (नः) हमें (सुराधसः) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त (करताम्) करें ।

अधि न ऽइन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् ।
इता मरुतो ऽअश्विना । ऋ० ८ । ७२ । ७ ॥

कुसीदिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (विष्णो) व्यापक शक्ति वाले ! हे (मरुतः) शत्रु के मारने हारे वीर भटो ! हे (अश्विना) विद्याओं में पारंगत राष्ट्र में व्यापक अधिकार के स्वामियो ! आप सब यथाधिकार (नः) हमारे और (एषां) इन (सजात्यानाम्) हमारे ही समान धन, मान और कुल में प्रसिद्ध पुरुषों के बीच में (अधि) अधिकारी रूप से (इत) मान प्रतिष्ठा को प्राप्त करो ।

तम्प्रत्नथा० । अयं वेनः० । ये देवासः० । आ न इडाभिः० । विश्वेभिः सोम्यं मधु० । ओमासश्चर्षणीधृतः० ॥ ४७ ॥

भा०—ये सब प्रतीक मात्र हैं । 'तम् प्रत्नथा' अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः' ० ७ । १६ ॥ 'ये देवासः' ० ७ । १९ ॥ 'आ न इडाभिः'०

४७—अयं वेनश्चोदयत् । आन इळाभि० इति काण्व० ।

३२ । ३४ ॥ 'विश्वेभिः सोम्यं मधु'० ३३ । १० ॥ 'ओमासश्चर्षणीधृतः'० ७ । ३३ ॥ इनकी व्याख्या वहीं देखो ।

अग्न॒ इन्द्र॒ वरु॑ण॒ मित्र॒ देवा॒: शर्द्धः॒ प्र य॑न्त॒ मारु॑तो॒त वि॑ष्णो ।
उ॒भा नास॑त्या रु॒द्रो॒ ऽअध॒ ग्नाः पू॒षा भग॒: सर॑स्वती जुषन्त ॥४८॥

ऋ० ५ । ४६ । २ ॥

प्रतिक्षत्र ऋषिः । इन्द्रादयो विश्वेदेवाः देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ज्ञानवन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ! हे (मित्र) सर्वस्नेहिन्! हे (मारुत) मनुष्यों शत्रुहन्ता लोगों के समूह! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले! (देवाः) आप सब देव, विद्वान्गण बल और ज्ञान देने हारे आप (शर्द्धः) शरीर और आत्मा के बल का (प्रयन्त) प्रदान करो । (उभा नासत्या) कभी असत्य का व्यवहार न करने वाले दोनों (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला था ज्ञानों का उपदेष्टा, और (ग्नाः) गमन योग्य स्त्रियें और ज्ञान करने योग्य वाणियें, (भगः) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान वाली स्त्री या राजसभा, ये सब (जुषन्त) प्रेम से राष्ट्र का सेवन करें । प्रेम से वर्त्ताव करें ।

इ॒न्द्रा॒ग्नी मि॒त्रावरु॒णादि॑ति॒ᳪ स्व॒: पृ॑थि॒वीं द्यां म॒रुत॒: पर्व॑ताँ२ऽ ऽअ॒पः । हु॒वे विष्णुं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॒ भगं॒ नु शᳪस॑ᳪ सवि॒तार॑मू॒तये॑ ॥ ४९ ॥ ऋ० ५ । ४६ । ३ ॥

वत्सार ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । जगती । मध्यमः ॥

भा०—मैं (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, (मित्रा वरुणा) मित्र और वरुण, (अदितिम्) अदिति, अखण्ड शासन करनेवाली राजसभा या अन्तरिक्ष, (स्वः) शत्रुओं का तापकारी, ज्ञानोपदेष्टा और सुखकारी, आकाश, (पृथिवीम्) पृथिवी, भूमि (द्याम्) सूर्य, (मरुतः) वायुएं और मरुद्गण, (पर्वतान्) पर्वतों, मेघों और पालनसामर्थ्य से युक्त

स्थिर राज्य कर्त्ताजन, (अपः) जलों, और आप्त पुरुषगण, (विष्णुं) व्यापक सामर्थ्यवान्, (पूषणम्) पुष्टिकारक अन्न, पशु आदि या भागदुध्, (ब्रह्मणस्पतिम्) ब्रह्माण्ड और वेद के पालक परमेश्वर और आचार्य (भगम्) ऐश्वर्य और ऐश्वर्यवान् धनकुबेर, (शंसम्) स्तुति योग्य या विद्योपदेशक, (सवितारम्) उत्पादक, पिता या आचार्य को मैं (ऊतये) रक्षा, ज्ञान, प्रियाचरण, आदि विविध प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिये (हुवे) स्तुति करूं, उनको प्राप्त करूं, उनका अन्यों को उपदेश करूं ।

अ॒स्मे रु॒द्रा मे॒हना॒ पर्व॑तासो वृत्र॒हत्ये॒ भर॑हूतौ स॒जोषाः॑ । यः शंस॑ते स्तुव॒ते धायि॑ प॒ज्रऽइन्द्र॑ज्येष्ठा ऽअ॒स्माँ२ऽअ॑वन्तु दे॒वाः ॥५०॥

ऋ० ८ । ५२ । १२ ॥

प्रगाथ ऋषिः । रुद्रो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(अस्मे) हममें से (यः) जो (शंसते) उत्तम २ उपदेश करता, (स्तुवते) और परमेश्वर की स्तुति करता है एवं ज्ञान से सत्य गुणों का वर्णन करता है । और (यः पज्रः) जो धनादि ऐश्वर्यों को कमाने हारा, ऐश्वर्यवान् पुरुष (धायि) नाना प्रजाओं को धारण पोषण करता है । उसको अथवा वह (रुद्राः) उपदेश करने वाले विद्वान् और शत्रुओं को रुलाने वाले वीर गण, (मेहनाः) प्रजाओं पर मेघों के समान सुख समृद्धियों के वर्षण करने वाले (पर्वतासः) पोरू २ अर्थात् नाना टुकड़ियों से बने सेनादल, अथवा पर्वतों के समान अभेद्य और अलंघनीय गंभीर, अथवा मेघों के समान शत्रुओं पर बाण वर्षण करने वाले, अथवा पर्वतों पर यज्ञ, उत्सवों वाले (सजोषाः) परस्पर समान प्रीति से युक्त, (इन्द्र, ज्येष्ठाः) शत्रुनाशक, ऐश्वर्यवान् पुरुष को अपना सर्वोपरि श्रेष्ठ स्वामी स्वीकार करने वाले अपने नायक के अधीन रहकर (देवाः) विजय के इच्छु सैनिक गण और विद्वान् पुरुष (भरहूतौ) संग्राम के लिये आह्वान या ललकार आ जाने पर (अस्मान्) हम प्रजाजनों की (अवन्तु) रक्षा करें ।

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा ऽआ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्त्तादवपदो यजत्राः ॥५१॥

ऋ० २। २९। ६ ॥

कूर्मो गार्त्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (यजत्राः) अभय दान करने और राष्ट्रों को सुसंगत करने वाले वीर, युद्ध-यज्ञ के सम्पादक एवं पूज्य, सत्संग योग्य पुरुषो ! (अद्य) आज आप लोग (अर्वाञ्चः) हमारे सन्मुख, हमें प्राप्त (भवत) होवो । (वः) आप लोगों के (हार्दि) हृदय में स्थित भीतरी भाव को (आ वि-अयेयम्) भली प्रकार जानूं । मैं प्रजाजन (भयमानः) शत्रुगण से भय करता हुआ आपकी शरण हूं । हे (देवाः) विजयशील विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें (निजुरः) सब प्रकार सर्वथा विनाश करने वाले, (वृकस्य) हमारा सर्वस्व अपहरण करने वाले चोर, डाकू तथा भेड़िये के समान क्रूर पुरुषों और जीवों से भी (त्राध्वम्) हमारी रक्षा करो । और हे (यजत्राः) सुसंगत, संघ बना कर रहने वाले सेनाजनो! आप लोग (अवपदः) गढ़े के समान गिरने के स्थान, संकट और विपत्ति रूप गहरे (कर्त्तात्) गड़े से, अथवा (अवपदः कर्त्तात्) विपत्ति के जनक पुरुष से अथवा राष्ट्र को नीचे गिरा देने वाले हिंसा कार्य, शस्त्रादि वध से (त्राध्वम्) रक्षा करो ।

वृकः—वृक आदाने । भ्वादिः । श्वापि वृक उच्यते विकर्त्तनात् । निरु० ५ । ४ । २ ॥ 'अवपदः कर्त्तात् ।'—यत्र अवपद्यन्ते पतन्ति ततः कर्त्तात् कूपात् इति उवटमहीधरदयानन्दाः । विपदः कर्त्तुरिति सायणः । हिंसार्थस्य वा करोतेः कर्तस्तस्मात् । अथवा गर्त्तो वा कर्त्तः । कत्वं छान्दसम् ।

विश्वे ऽअद्य मरुतो विश्व ऽऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।
विश्वे नो देवा ऽअवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥५२॥

लुशोधानाक ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—व्याख्या देखो । अ० १८ । ३१ ॥

विश्वे देवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ । ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ।५३।

ऋ० ६ । ५२ । १३ ॥

सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (विश्वेदेवाः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (मे) मेरे (इमं) इस (हवम्) स्तुति, आह्वान या विद्योपदेश का (शृणुत) श्रवण करो । (ये) जो आप लोग (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष के समान सबके पालक और (द्यवि) सूर्य के समान सर्वप्रकाशक पद पर (उपस्थ) सदा हमारे समीप विद्यमान रहते हो (उतवा) और जो (अग्निजिह्वा) जिह्वा के समान अग्नि अर्थात् ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष को मुख्य पद या उपदेशक और ज्ञानप्रद गुरु पद पर स्थापन करने वाले (यजत्राः) परस्पर सत्संग करने एवं पूजा करने योग्य हैं वे आप लोग भी (अस्मिन् बर्हिषि) इस महान् आसन के समान उत्तम राष्ट्र, प्रजा या पदासनों पर (आसद्य) विराज कर (मादयध्वम्) समस्त प्रजाओं को आनन्द और हर्षयुक्त करो ।

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वꣳ सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानꣳ सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥५४॥

ऋ० ४ । ५४ । २ ॥

वामदेव ऋषिः । सविता देवता । जगती । मध्यमः ॥

भा०—हे (सवितः) सूर्य के समान समस्त पदार्थों के प्रकाशक और उत्पादक परमेश्वर ! तू (हि) जिस कारण (यज्ञियेभ्यः) आत्मा और परमात्मा के उपासक एवं ज्ञान यज्ञ के करने वाले (देवेभ्यः) ज्ञान के द्रष्टा पुरुषों को (प्रथमम्) सबसे प्रथम, सर्वश्रेष्ठ और (उत्तमम्)

५४—इति समाप्तं सार्वमेधिकम् । इत वैश्वदेवस्तुत चतुर्थमहः ।

उत्तम (भागम्) सेवन करने योग्य (अमृतत्वम्) अमृतस्वरूप मोक्ष का (सुवसि) प्रदान करता है (आत्) और (दामानम् इत्) सब सुखों और ज्ञानों के देने वाले अपने प्रकाशस्वरूप को भी (व्यूर्णुषे) विविध प्रकार से फैलाता है। इसीसे (मानुषेभ्यः) मनुष्यों को हितार्थ (अनूचीना) उनके अनुकूल सुख प्राप्त कराने वाले (जीवितानि) जीवनों और जीवनों के उत्पादक कर्मों को भी (वि उर्णुषे) विविध प्रकार से प्रकट करता है, उपदेश करता है।

राजा के पक्ष में—हे तेजस्विन् ! राजन् ! तू (यज्ञियेभ्यः देवेभ्यः) प्रजा के सुव्यवस्थित राष्ट्र के सञ्चालक एवं विजयी स्त्री पुरुषों को प्रथम (अमृतत्वम्) जीवनोपयोगी अन्न जल और उत्तम सेवन योग्य पदार्थ प्रदान करता है और दानशील पुरुष को प्रकट करता है। और मनुष्यों को नाना अनुकूल जीवनोपयोगी साधन भी प्रदान करता है।

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारꣳ रथप्राम्।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥५५॥

ऋ० ६ । ४९ । ४ ॥

[५५—अ० ३४ । ५८] आदित्यो याज्ञवल्क्यश्चऋषी । अनारभ्याधीतमन्त्रा ॥ ब्रह्मयज्ञार्हाः । तत्र 'प्रवायुम्' इति ऋजिष्वा ऋषिः । वायु देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (प्रयज्यो) उत्तम रीति से यज्ञ करने हारे, उत्तम उपासक एवं उत्तम संगति, परस्पर संगठन करने में कुशल विद्वन् ! तू (नियुतः) निश्चित, नियुक्त पुरुषों अथवा निश्चित पदार्थों को प्राप्त होकर (बृहती) बड़ी भारी (मनीषा) प्रज्ञा, बुद्धिबल या मानस प्रेरणा से स्वयं (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (बृहद्रयिम्) महान् ऐश्वर्यों के स्वामी, (विश्ववारम्) सबके वरण करने वाले, सबके रक्षक, (रथप्राम्) रथों से रणाङ्गण को भर देने वाले, (द्युतयामा) तेजस्वी अग्नि को प्राप्त कर उसको और भी

५५—इत आरभ्य ६९ अदब्धेभिरित्यन्तं पुरोरुचः ॥

अधिक तेजस्वी बनाने वाले, (वायुम्) वायु के समान तीव्र, वेगवान्, बलशाली (कविम्) क्रान्तदर्शी, मेधावी, विद्वान् (वायुम्) प्राणवायु के समान सबके जीवनाधार पुरुष का (इयक्षसि) आदर कर और उससे संगति लाभ कर।

अथवा (द्युतद्-यामा कविम् कवि-इयक्षसि) समस्त याम अर्थात् आठों पहरों को प्रकाशित करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का तू विद्वान् पुरुष ही आदर कर। अथवा, तू (द्युतद्-यामा) देदीप्यमान तेजस्वी विद्वान् पुरुष को प्राप्त होकर स्वयं (कविः कविम् इयक्षसि) मेधावी होकर विद्वान् पुरुष का आदर करें।

परमेश्वर के पक्ष में—सबका जीवनाधार होने से परमेश्वर 'वायु' है। महान् ऐश्वर्यवान् होने से 'बृहद्रयि' है, सबका रक्षक होने से 'विश्ववार' है। उसकी नियमव्यवस्था सर्वत्र प्रकाशित होने से 'द्युतद्-यामा' है। रमणसाधन, परम आनन्द रस से पूर्ण करने हारा होने से 'रथप्रा' है, क्रान्तदर्शी होने से 'कवि' है। उस परमेश्वर को (नियुतः पत्यमानः) प्राणों द्वारा ऐश्वर्यवान् होकर तू साधक (इयक्षसि) उसकी उपासना करे।

आचार्यपक्ष में—आचार्य, ज्ञानवान् होने से वायु, बृहती वेद वाणी के ऐश्वर्य से युक्त होने से 'बृहद्रयि' ज्ञानरस से शिष्य को पूर्ण करने वाला होने से 'रथप्रा' है। प्रकाशमान ज्ञान का प्राप्त करने हारा होने से 'द्युतद्-यामा' है उसको विद्वान् पुरुष निश्चितसिद्धान्त तत्वों को प्राप्त होता हुआ अपने विद्वान् गुरु का विद्वान् पुरुष सदा आदर सत्कार करे।

अथवा—(वायुम्) वायु के समान सबके जीवनाधार (बृहद्-रयिम्) बड़े ऐश्वर्यवान्, (विश्ववारम्) सबसे वरण करने योग्य या सब कष्टों के निवारक (रथप्राम्) रथ को धनों, ऐश्वर्यों से पूर्ण करने हारे वीर पुरुष को (बृहती मनीषा) बड़ी मानसिक शक्ति, बुद्धि (अच्छ) प्राप्त हो। और हे (प्रयज्यो) उत्तम पूजनीय पुरुष! वह (द्युतद्यामा) अति

उज्वल मान वाला होकर (नियुतः पत्यमानः) समस्त नियुक्त अधीन पुरुषों और अश्वों को वश कर उनका स्वामी एवं (कविः) विद्वान् होकर भी (कविम्) कान्तदर्शी विद्वान् पुरुष का (इयक्षसि) सत्कार करे ।

इन्द्र॑वायू ऽइमे सु॒ता ऽउप॒ प्रयो॑भि॒रा ग॑तम् ।
इन्द॑वो वामु॒शन्ति॒ हि ॥ ५६ ॥

भा०—व्याख्या देखो । अ० ७ । ८ ॥

मि॒त्रꣳ हु॑वे पू॒तद॑क्षं॒ वरु॑णं च रि॒शाद॑सम् ।
धियं॑ घृ॒ताचीं॒ꣳ साध॑न्ता ॥ ५७ ॥ ऋ० १ । २ । ७ ॥

भा०—मैं प्रजाजन (पूतदक्षं) पवित्र ज्ञान और बल से युक्त (मित्रम्) सुहृद्, स्नेही पुरुष को और (रिशादसम्) हिंसा करने वाले शत्रुओं को भी दण्ड देने वाले उनके विनाश, (वरुणं च) सर्वश्रेष्ठ धार्मिक राजा को (हुवे) स्वीकार करूं । और वे दोनों (घृताचीम्) घृत को ग्रहण करने वाली अतितीक्ष्ण अग्निज्वाला के समान पाप दहन करने वाली उग्र शक्ति तथा शीतल जल को धारण करने वाली रात्रि के समान सबको सुख देने वाली शान्तिकारिणी शक्ति को (साधन्ता) साधन करने वाले हों । जिस प्रकार प्राण, उदान शुद्ध प्रज्ञा को उत्पन्न करते हैं और जिस प्रकार सूर्य चन्द्र सुखद रात्रि को साधते हैं उसी प्रकार मित्र और वरुण, सुहृद् वर्ग वयस्य और शक्तिशाली पुरुष स्नेह और तीक्ष्णता मधुर और तेजस्विनी वृत्ति वाली राजशक्ति की वृद्धि करें ।

दस्रा॑ यु॒वाक॑वः सु॒ता नास॑त्या वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
आया॑तꣳ रुद्रवर्त्तनी ॥ ५८ ॥ ऋ० १ । ३ । ३ ॥

मधुच्छन्दा ऋषिः । अश्विनौ देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—हे (दस्रौ) वैद्य जिस प्रकार रोगों का नाश करते हैं उसी प्रकार

५६—क्वचित् पुस्तकेषु "उ॒प॒या॒मगृ॑हीतोऽसि वा॒यव॑ इन्द्रवा॒युभ्यां॑ त्वा । ए॒ष ते॒ योनिः॑ स॒जोषो॑भ्यां त्वा ।" इत्यधिकं पठ्यते ॥

राज्य की प्रजाओं के दुःखों के विनाश करने वाले (नासत्यौ) कभी असत्य भाषण और असत्य आचरण न करने वाले पूर्वोक्त दोनों विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (रुद्रवर्त्तनी) शत्रुओं के रुलाने वाले या न्यायाधीश के वीर सैनिकों के मार्गों से चलने में समर्थ होकर (आयातम्) आओ । ये (सुताः) उत्पन्न हुए पदार्थ एवं नाना पदों पर अभिषिक्त उत्तम जन भी (युवाकवः) तुम दोनों को चाहने वाले और (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ या बर्हि अर्थात् प्रजा को बढ़ाने वाले हैं । पदार्थों के पक्ष में—(वृक्तबर्हिषः) यज्ञादि से पृथक् भोजनार्थ प्राप्त पदार्थ तुम्हारे लिये हैं उनको ग्रहण करो ।

तं प्रत्नथा० । अयं वेनः० ॥ ५८ ॥

भा०—'तं प्रत्नथा०' देखो अ० ७ । १२ ॥ 'अयं वेनः०' देखो ७ । १६ ॥ 'रुद्रवर्त्तनी'—

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यꣳ सध्र्यक्कः ।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ५६ ॥

ऋ० ३ । ३१ । ६ ॥

कुशिक ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—सेना पक्ष में—(यदि) यदि (सरमा) वीर विजयी लोगों को एकत्र रमाने अर्थात् युद्ध क्रीड़ा कराने वाली सेना (अद्रेः) मेघ के समान प्रजा पर सुखों के और शत्रुओं पर वाणों के वर्षण करने वाले एवं शत्रुओं द्वारा न दीर्ण होने वाले वज्र, अर्थात् शस्त्रबल को (रुग्णम्) टूटा हुआ (विदत्) जाने तो वह (महि) बड़े भारी (पूर्वम्) पूर्व सञ्चित (पाथः) अपने पालनकारी सामर्थ्य को (सध्र्यक्) एक ही स्थान पर एकत्र (कः) करे । वह (सुपदी) उत्तम रीति से पग चलाने वाली (अक्षराणाम्) कभी नाश न होने वाले पुरुषों के (अग्रम्) अग्र, अर्थात् मुख्य भाग को (नयत्) आगे लेजावे और वह (प्रथमा) स्वयं सबसे प्रथम होकर (रवं) उत्तम आदेश को (जानती) भली प्रकार

५८—'अयं वनश्चोदयत्' इति काण्व० ।

जानती हुई (अच्छा गात्) भली प्रकार आगे बढ़े । उत्तम सेना जब अपने बल को मग्न हुआ जाने तो वह अपने उत्तम पालक बल को एकत्र करले और उत्तम दृढ़ पुरुषों को आगे बढ़ावे और स्वयं सेनापति के आदेशों को भली प्रकार जानती हुई आगे बढ़े ।

अथवा, (यदि) जब (सरमा) साथ रमण करने वाली स्त्री (रुग्णम् विदत्) दुःखों के भंग करने वाले पति को प्राप्त करे तब (सध्र्यक्) साथ रहने वाला, सहचारी पति (पूर्व्यम्) पूर्व से ही प्राप्त (अद्रेः) मेघ से उत्पन्न होने वाले (महि पाथः कः) बहुत अन्न, धन अथवा मेघ के समान ज्ञानप्रद आचार्य के श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करे । वह स्त्री जो (सुपदी) उत्तम चरण वाली, (प्रथम) प्रथम (अक्षरणां खं जानती) अक्षर अर्थात् अविनाशी वेदवचनों के उपदेश को (जानती) जानती हुई (अग्रं) आगे २ स्वयं होकर अपने पीछे पति को लेती हुई (अन्वगात्) पति को प्राप्त हो । अर्थात् स्त्री प्राप्त करने के पूर्व पुरुष धन संग्रह करे अथवा ब्रह्मचर्य पालन करे, वह स्त्री भी ज्ञान प्राप्त करे । स्वयं ज्ञानवती होकर आगे स्वयं प्रदक्षिणा कर पति को प्राप्त करे ।

वाणी के पक्ष में—(यदि) यदि (सरमा) जब समान रूप से विद्वानों को आनन्दित करने वाली, स्त्री के समान सुखदायिनी वेदमयी वाणी, (अद्रेः) न विदीर्ण होने वाले अज्ञान के (रुग्णम्) विनाशक उपाय को (विदत्) ज्ञान करती है । तब (सध्र्यक्) उसके सहयोग से ज्ञान प्राप्त करने वाला पुरुष (पूर्व्यम्) पूर्व से चले आये (महि-पाथः) बड़े भारी ज्ञान को (कः) प्राप्त करता है । और (सुपदी) उत्तम ज्ञान कराने वाली (प्रथमा) सबसे प्रथम विद्यमान वेद वाणी (अक्षराणां) अक्षर, अविनाशी सत्य सिद्धान्त तत्वों के (खं जानती) उपदेश को जनाती हुई (गात्) प्रतीत होती है (अग्रं नयत्) हमें आगे, सर्वश्रेष्ठ, सबसे पूर्व विद्यमान परमेश्वर तक पहुंचाती है ।

स्त्री के पक्ष में—(यदि) जब (सरमा) पति के साथ रमण करने हारी प्रियतमा स्त्री (प्रथमा सुपदी) सर्व प्रथम, सुविख्यात उत्तम ज्ञान और आचरण वाली और (अक्षराणां रवं जानती) अक्षरों के यथार्थ उच्चारण, ध्वनि आदि को जानने हारी होकर (रुग्णं) दुखी, पीड़ित जन को (विदत्) जाने, तब (सध्र्यक्) वह सदा साथ रह कर (पूर्व्यम्) पूर्व प्राप्त किये हुए (अद्रेः महि पाथः) मेघ से प्राप्त महान् प्रभूत अन्न को उत्पन्न करे। वह स्त्री (पतिम् अच्छ गात्) उत्तम पति को प्राप्त हो। भाव स्पष्ट नहीं है।

नहि स्पशमविदन्नन्यमस्माद्वैश्वानरात्पुर ऽएतारमग्नेः।
एमेनमवृधन्नमृता ऽअमर्त्यं वैश्वानरं क्षैत्रजित्याय देवाः ॥ ६० ॥

विश्वामित्र ऋषिः। वैश्वानरो देवता। भुरिक् त्रिष्टुप्॥ धैवतः॥

भा०—(अस्मात्) इस (वैश्वानरात्) सब मनुष्यों के हितकारी (अग्नेः) अग्नि, सूर्य या दीपक के समान प्रकाशस्वरूप तेजस्वी राजा, विद्वान् के (अन्यम्) अतिरिक्त दूसरे किसी को (देवाः) विद्वान् और विजयी पुरुष भी (पुरः एतारम्) अपने आगे २ चलने वाले नायक रूप (स्पशं न अविदन) दूत या द्रष्टा को नहीं जानते। वे (अमृताः) स्वयं दीर्घ, शतायु जीवन वाले होकर इस (अमर्त्यं) अन्य मनुष्यों से अधिक उच्च कोटि के (वैश्वानरम्) सर्वजन-हितकारी पुरुष को ही (क्षैत्रजित्याय) क्षेत्र, भूमि विजय करने के लिये (ईम् एनम्) इसको (अवीवृधन्) बढ़ाते हैं।

अध्यात्म में—समस्त देहों में विद्यमान समस्त प्राणों के पुरोगामी इस आत्मा के सिवाय (नहि स्पशम् अविदन्) किसी दूसरे को नहीं पाते। ये (अमृताः) अमर (देवाः) विद्वान् पुरुष भी (क्षैत्रजित्याय) क्षेत्र, देह या बन्धन को विजय करने के लिये (अमर्त्यं वैश्वानरम् वृधन्) मरण रहित वैश्वानर, सर्वात्मा की शक्ति को बढ़ाते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—सर्वव्यापक परमेश्वर के सिवाय विद्वान् जन

किसी दूसरे को (स्पशम् नहि अविदन्) सर्वद्रष्टा नहीं जानते। अपने फल भोगों की प्राप्ति के लिये कर्म रूप बीजों के वपन के लिये एकमात्र क्षेत्र रूप इस देह के बन्धन को विजय करने के लिये ही (अमृतासः देवाः) अमृत, ज्ञानी, एवं अमर परमात्मा में लीन, अविनाशी विद्वान्, मुमुक्षु जन इसी अभय परमेश्वर की महिमा को स्तुतियों से बढ़ाया करते हैं।

उग्रा विघनिना मृधऽइन्द्राग्नी हवामहे।
ता नो मृडात ऽईदृशे ॥ ६१ ॥ ऋ० । १० । ६० । ५ ॥

भरद्वाज ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—(उग्रौ) उग्र, तेजस्वी, (मृधः) संग्राम करने हारे शत्रुओं को (विघनिना) विविध प्रकारों से शत्रुओं को मारने और दण्ड देनेवाले (इन्द्राग्नी) इन्द्र, सेनापति और अग्नि, अग्रणी नायक, सभाध्यक्ष, सेनाध्यक्ष हों। (ता) वे दोनों (नः) हमें (ईदृशे) इस प्रकार के संग्राम आदि के अवसर में (मृडात) सुखी करें, हम पर सदा दया करें। मृडतिरुपदयाकर्मा इति सायणः ॥

उपास्मै गायता नरः पवमानायेन्दवे।
अभि देवाँ२ऽ इयक्षते ॥ ६२ ॥ ऋ० ९ । ११ । १ ॥

भा०—हे (नरः) नायक नेता विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (पवमानाय) सदाचार एवं व्रताचरण द्वारा अपने को पवित्र करने वाले (इन्दवे) परम ऐश्वर्यवान्, सोम्य स्वभाव के एवं (देवान् अभि इयक्षते) विद्वानों का आदर सत्कार करने वाले गुरुजनों के प्रति विद्यार्थी के समान विनीत पुरुष को (उप गायत) उपदेश करो।

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ। ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमꣳ सगणो मरुद्भिः ॥ ६३ ॥
ऋ० ३ । ४७ । ४ ॥

६१—०मृडात० इति काण्व०। ६३—'ये ग इष्टौ' इति काण्व० ॥

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (अहिहत्ये) मेघों के आघात करने और उनको छिन्न भिन्न करने के कार्य में वायु और सूर्य के समान तेजस्वी प्रचण्ड और (शाम्बरे) मेघ के साथ संग्राम करने के कार्य में तीव्र ताप वाले सूर्य के समान अति प्रखर और (गविष्टौ) किरणों के एकत्र रखने के कार्य में उनके स्वामी रूप सूर्य के समान इन्द्रियों के वश करने, भूमियों को अपने अधीन रखने और गौ आदि पशु सम्पत्ति को प्राप्त करने के कार्य में (ये) जो विद्वान् और बलवान् प्रजास्थ पुरुष (त्वा) तुझको (अवर्धन्) बढ़ाते हैं, तेरी शक्ति की वृद्धि करते हैं और (ये विप्राः) जो विद्वान् मेधावी पुरुष (नूनम्) निश्चय से (त्वा अनुमदन्ति) तेरे ही हर्ष के साथ स्वयं हर्षित होते हैं, हे (हरिवः) किरणों के स्वामी सूर्य के समान, तीव्र अश्वों और अश्वारोहियों और प्रजाओं के दुःखों, अज्ञान अन्धकारों के हरण करने वाले आप्त पुरुषों के स्वामिन् ! हे (इन्द्र) सेनापते ! राजन् ! तू (मरुद्भिः) वायु के समान तीव्र सैनिक और शत्रुओं को मारने वाले एवं प्रजा के प्राणों के समान प्रिय अधिकारी पुरुषों के साथ (सगणः) गण, अर्थात् दलसहित (सोमम्) ओषधि रस के समान अति बलकारी राष्ट्र के ऐश्वर्य का (पिब) पान कर, उपभोग कर, उसको प्राप्त कर ।

जनिष्ठा ऽउग्रः सहसे तुराय मन्द्र ऽओजिष्ठो बहुलाभिमानः ।
अवर्धन्निन्द्रम्मरुतश्चिदत्र माता यद्वीरन्दधनद्धनिष्ठा ॥ ६४ ॥

ऋ० १० । ७३ । १ ॥

गौरिवीतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजन् ! तू (मन्द्रः) समस्त प्रजा को हर्षित करने हारा, (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमी, (बहुलाभिमानी) बहुत अधिक आत्माभिमान से युक्त, मनस्वी पुरुष ही (तुराय) अपने शीघ्र करनेवाले

गुण, चुस्ती, आलस्य रहितता, कार्यदक्षता अथवा शत्रुओं के नाशकारी (सहसे) और शत्रुओं के पराजय करने वाले बल के कारण ही (उग्रः) उग्र, प्रचण्ड, शत्रुओं के लिये भयंकर, (जनिष्ठाः) होवे। (मरुतः) वायुओं के समान प्रचण्ड बलवान्, शत्रुरूप वृक्षों को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने वाले शूरवीर उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक पुरुष को सूर्य को वायुओं के समान (अवर्धन्) बढ़ावे, प्रखर और प्रचण्ड करें। और (अत्र) ऐसे वीरता और राज्यपालन के कार्य के लिये ही (यत्) जब (वीरम्) वीर पुत्र को (दधत्) धारण करती है, तभी वह (धनिष्ठा) धन्य उत्तम गर्भ धारण करने वाली, ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती कहाती है। अथवा, (माता) पृथिवी, जब ऐसे वीर को धारण करती है तभी वह (धनिष्ठा) ऐश्वर्यवती, धन्य, वसुंधरा या धरा कहाती है।

आ तू नऽइन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्धमा गहि।
महान्महीभिरूतिभिः॥ ६५॥ ऋ० ४। ३२। १॥

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अस्माकम्) हमारे (अर्द्धम्) समृद्ध राष्ट्र-भाग को (आगहि) प्राप्त कर। हे राजन्! तू (महीभिः) बड़े भारी (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (महान्) बड़ा बलशाली होकर (नः) हमें भी पुष्ट कर।

'अर्धम्'—अर्धो हरतेर्वा विपरीतात्। धारयतेर्वास्यादुद्धृतं भवति, ऋध्नोतेर्वा स्याद्दृद्धतमो विभागः। समीपे इति सा०। निवासदेशमिति (म०) पक्षमिति (उ०) वर्धनमिति (द०)

त्वामिन्द्र प्रतूर्त्तिष्वभि विश्वाऽअसि स्पृधः।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य्य तरुष्यतः॥ ६६॥
ऋ० ८। ८८। ५॥

नृमेध ऋषि। इन्द्रो देवता। पथ्या बृहती।

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! (प्रतूर्त्तिषु) खूब अधिक हिंसा योग्य, या खूब अधिक हनन करने के स्थानों, संग्रामों में तू (विश्वाः स्पृधः) अपने समस्त स्पर्धा करने वाली, ईर्षालु शत्रु-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करता है । तू (जनिता) सब सुखों का उत्पादक और (अशस्तिहा) सब दुष्ट पुरुषों और अप कीर्त्तियों का विनाशक होकर (विश्वतूः) समस्त शत्रुओं का ही नाश करने हारा (असि) हो । हे राजन् ! सेनापते ! (त्वं) तू (तरुष्यतः) हमें मारना चाहने वाले एवं मारने का उद्योग करने वाले शत्रुओं को (तूर्य) विनाश कर ।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६७ ॥
ऋ० ८ । ८८ । ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (मातरा शिशुं न) माता और पिता जिस प्रकार शिशु, बालक के (अनु ईयतुः) पीछे २ प्रेम से चलते हैं उसी प्रकार (क्षोणी) अपने और शत्रु के राष्ट्र दोनों (ते) तेरे (तुरयन्तम्) शत्रु के विनाशकारी (शुष्मम्) बल, पराक्रम के (अनु ईयतुः) अनुकूल होकर चलते हैं । और (यत्) जब तू (वृत्रं) अपने राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को (तूर्वसि) मार गिराता है तब (विश्वाः स्पृधः) समस्त शत्रुसेनाएं भी (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (श्नथन्त) शिथिल, हतवीर्य, निर्बल हो जावें ।

यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृडयन्तः ।
आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्याद्ꣳहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत् ॥ ६८ ॥

भा०—व्याख्या देखो । अ० ८ । ४ ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशꣳस ईशत ॥ ६९ ॥
ऋ० ६ । ७१ । ३ ॥

६८—'०मूळयन्तः' इति काण्व० ।

भरद्वाज ऋषिः । सविता देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (अदब्धेभिः) नष्ट न होने वाली सुखकारी (वायुभिः) पवित्रकारी, पालन में समर्थ किरणों से हम (गयम्) गृह, प्राण और देह की रक्षा करता है और जिस प्रकार अग्नि (हिरण्यजिह्वः नव्यसे) सुवर्ण के समान दीप्ति वाली जिह्वा, अर्थात् ज्वाला से सदा नये २ सुख प्रदान करता है । हे (सवितः) सबके प्रेरक, उत्तम कर्मों और राज्य प्रबन्धों के उत्पादक, सूर्य के समान तेजस्विन् विद्वन् ! राजन् ! तू (अदब्धेभिः) अखण्डित, स्थिर, जिनको कोई भंग न कर सके ऐसे (शिवेभिः) कल्याणकारी (पायुभिः) रक्षण, पालन करने से उपायों से (अद्य) आज और अब के समान सदा, (नः गयम्) हमारे गृह, पुत्र, कलत्रादि की भी (परिपाहि) सब प्रकार से रक्षा कर । तू (हिरण्यजिह्वः) हित और हृदय को उत्तम लगने वाली वाणी से युक्त अथवा हिरण्य के समान सदा उज्वल, खरी, सत्य वाणी बोलने हारा होकर (नव्यसे) सदा नये से नये मनोहर (सुविताय) उत्तम ऐश्वर्य और ज्ञान के प्राप्त करने के लिये (रक्ष) हमारी रक्षा कर, हमें पालन कर । (नः) हम पर (अघशंसः) पापकर्म का उपदेश करने वाला (माकिः ईशत) कोई शासन या स्वामित्व न करे ।

'हिरण्यजिह्वः'—हिरण्यं, हितरमणं भवतीति वा, हृदयरमणं भवतीति वा निरु० २ । १० ॥ जिह्वेति वाङ्नाम । निघ० १ । ११ ॥ हिरण्यवदविचला जिह्वा यस्य । सत्यवाक् । यद्वा हिरण्या हिता रमणीया जिह्वा ज्वाला यस्येति । म० द० । सत्यवाक् । उ० ।

प्र वी॒रया॒ शुच॑यो दद्रिरे वामध्व॒र्युभि॒र्मधु॑मन्तः सु॒तासः॑ ।
वह॑ वायो नि॒युतो॑ याह्यच्छा॒ पिबा॑ सु॒तस्यान्ध॑सो॒ मदा॑य ॥७०॥

ऋ० ७ । ९० । १ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । वायुर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे राजा और प्रजाजनो ! (वाम्) तुम दोनों के परस्पर सहयोग से बनी (वीरया) वीर, बलवती सेना के बल से ही (शुचयः) शुद्ध पवित्र आचारवान्, निष्कपट पुरुष, (मधुमन्तः) ज्ञान और बलों से युक्त (सुतासः) माता पिता दोनों में से वीर माता से उत्पन्न, मधुर सौम्य गुणों वाले पुत्रों के समान (सुतासः) उत्तम विद्या और आचार-शिक्षा से सम्पन्न, एवं उत्तम पदों पर अभिषिक्त राजपुरुष (अध्वर्युभिः) परस्पर हिंसा, घात प्रतिघात से रहित, राष्ट्र यज्ञ के सञ्चालक विद्वान् पुरुषों से मिलकर (प्र दद्रिरे) शत्रुओं की सेनाओं और उनके दल बल का विदारण करें अथवा उनको भयभीत करें। हे (वायो) वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ने हारे बलवन् ! सेनापते ! तू (नियुतः) नियुक्त अपने अधीन समस्त सेनाओं को, या अश्वों को, वायु के तीव्रता आदि गुणों को (वह) स्वयं धारण कर, उनको अपने वश कर, (अच्छ याहि) शत्रुओं पर भली प्रकार चढ़ाई कर। और (मदाय) हर्ष और प्रजा के सुख, तृप्ति के लिये (अन्धसः) अन्न के और (सुतस्य) नाना प्रकार के भोग्य पदार्थ, ऐश्वर्य और अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य को ओषधि रस के समान अपने शरीर, मन आदि की शक्ति वृद्धि करने और आत्मसुख और राष्ट्र के हर्ष के लिये (पिब) पान कर, उपभोग कर।

गाव॒ ऽउपा॑वताव॒तं म॒ही य॒ज्ञस्य॑ र॒प्सुदा॑ ।
उ॒भा कर्णा॑ हिर॒ण्यया॑ ॥ ७१ ॥

भा०—इस ऋचा की व्याख्या देखो अ० ३३ । १९ ॥ तथापि, हे (गावः) सूर्य की रश्मियों के समान प्रकाशवान् तेजस्वी ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग (उप अवत) आओ, हमारी रक्षा करो। और (यज्ञस्य) यज्ञ अर्थात् सबको एकत्र मिलाये रखने वाले, राष्ट्र यज्ञ के (रप्सुदा) उत्तम रूप प्रदान करने वाले सूर्य पृथिवी के समान राजा और प्रजाजन (मही) दोनों पूज्य हैं। और (उभा) दोनों ही (हिरण्यया) एक दूसरे के प्रति

हितकर और रमणीय ज्ञानवान् और सम्पन्न कार्य करने में पतिपत्नी के समान, (कर्णा) एक ही राष्ट्र के कार्य करने हारे होकर (अवतम्) एक दूसरे की रक्षा करो। अथवा—हे (गावः) ज्ञानवान् प्रजास्थ पुरुषो ! जिस प्रकार गौवें अपने (अवतम्) रक्षक गोपति के पास आती हैं उसी प्रकार तुम भी अपने (अवतम् उप अवत) रक्षक को प्राप्त कर उसकी रक्षा करो।

काव्य॑योराजाने॑षु क्रत्वा॒ दक्ष॑स्य दुरो॒णे।
रि॒शाद॑सा स॒धस्थ॒ ऽआ ॥ ७२ ॥

दक्ष ऋषिः। मित्रावरुणौ देवते। गायत्री छन्दः। षड्जः ॥

भा०—हे (रिशादसौ) प्रजाओं के नाश करने वाले, शत्रुओं का भी नाश करनेवाले मित्र और वरुण, न्यायाधीश और सेनापते ! तुम दोनों (सधस्थे) एकत्र मिल कर बैठने के स्थान, एवं (दक्षस्य) समस्त कार्यों के सञ्चालन में उत्साहवान् राजा के (दुरोणे) गृह, सभाभवन में (काव्ययोः) क्रान्तदर्शी पुरुषों के बनाये व्यवहार और परमार्थ के प्रतिपादक दोनों प्रकार के ग्रन्थों में प्रतिपादित (आजानेषु) चतुर विद्वान् कार्य कुशल बना देने वाले, ज्ञान कराने वाले व्यवहारों के निर्णयों के लिये (क्रत्वा) अपने ज्ञानबल से (आ) कार्य सम्पादन करो। अथवा (काव्ययोः आ-जानेषु) विद्वानों के बनाये या साक्षात् किये हुए प्रजा के हितार्थ मार्ग दर्शाने वाले 'आज्ञापन' या राजनियमों के आधार पर (क्रत्वा) अपने कर्म और प्रज्ञाबल से (आ) न्याय और दण्ड का विधान करो। 'आजानम्' आज्ञापनम्, इति दया० ऋ० भू० (१३८)

दैव्या॑वध्वर्यू॒ ऽआ ग॑त॒ᳬ रथे॑न॒ सूर्य॑त्वचा।
मध्वा॑ य॒ज्ञᳬ सम॑ञ्जाथे ॥ ७३ ॥

७३—दैव्या अध्व० इति काण्व०।

भा०—व्याख्या देखो० अ० ३३ । ३३ ॥

तम्प्रत्नथा० । अयं वेनः० ॥

भा०—'तंप्रत्नथा'० (अ० ७।१२) की प्रतीक है और 'अयं वेनः'० यह मन्त्र (अ० ७ । १६) की प्रतीक है ।

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासीदुपरि स्विदासीत् । रेतोधा आसन्महिमानऽआसन्त्स्वधाऽअवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥७४

ऋ० १० । १२९ । ५ ॥

प्रजापतिर्ऋषिः । भाववृत्तो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—राष्ट्रपक्ष में—(एषाम्) इन अपने स्थानों पर आदरपूर्वक अभिषेक को प्राप्त हुए विद्वान् अधिकारी पुरुषों का शासनाधिकार या तेज (रश्मिः) तेजस्वी सूर्य आदि पदार्थों के किरणों के समान (तिरश्चीनः) बहुत दूर तक जानेवाला, प्रकाश की किरण के समान तिरछा, अपनी सीध में जाने वाला और (विततः) विविध प्रकारों से फैलता है । (अधः स्वित् आसीत्) वह नीचे भी रहता है और (उपरिस्वित्) और ऊपर भी रहता है । वे सभी राष्ट्र के भीतर (रेतो धाः आसन्) शरीर में वीर्य को धारण करने वाले अंगों के, समान स्वयं वीर्यवान् बलवान् एवं ब्रह्मचारी हों । और वे (महिमानः) महान् सामर्थ्य वाले, आदर सत्कार योग्य भी हों । उनकी (स्वधा) अपने शरीर के धारण निमित्त प्राप्त होने वाला अन्न, वेतन आदि पदार्थ (अवस्तात्) नीचे अर्थात् तुच्छ है परन्तु उनका (प्रयतिः) राष्ट्र की व्यवस्था का उत्तम यत्न और नियम का कार्य (परस्तात्) परम उच्च, उत्कृष्ट हो ।

अधिदैवत पक्ष में—(एषाम् रश्मिः) इन सूर्यादि लोकों का प्रकाशक (तिरश्चीनः विततः) तिरछा, सर्वत्र दूर २ तक फैला है । (अधः-

७४—अयंवेनश्चोदयत् । इति काण्व० ।

स्विद् आसीत्) क्या नीचे और क्या ऊपर क्या पास और क्या दूर ? सभी स्थान पर है। ये सभी ज्योतिर्मय सूर्य आदि पदार्थ, (रेतोधाः आसन्) जीव सृष्टि के उत्पन्न करने वाले वीजों को धारण करते हैं। और (महिमानः आसन्) वड़े भारी, सामर्थ्य वाले हैं । (स्वधा) स्वयं संसार को धारण करने वाली प्रकृति, शरीर को धारण करने वाले जीव और भोग्य पदार्थ अन्न आदि के समान (अवस्तात्) पर-भोग्य और अधीन रहने से नीची श्रेणी के हैं और (प्रयतिः) उनको प्रेरणा देने वाला, चलाने वाला परम प्रयत्नस्वरूप परमेश्वर (परस्तात्) बहुत ऊंचा, उनसे कहीं महान् है ।

अध्यात्म में—(एषाम् रश्मिः) प्रकृति, प्रजापति के सृष्टि उत्पादक संकल्प और सृष्टि के प्रेरक बल इन तीनों का (रश्मिः) सृष्टि नियामक वल (तिरश्चीनः) मध्य में, (अधस्तात् उपरिस्वित्) क्या ऊपर और क्या नीचे सर्वत्र ही (विततः आसीत्) व्यापक है । सृष्टि-रचना के अवसर में (रेतोधाः आसन्) बीजरूप से कर्मों को संस्कार में धारण करने वाले कर्त्ता और भोक्ता जीव भी विद्यमान थे और (महिमानः आसन्) पृथिवी आदि पांच महाभूत भोग्य रूप भी थे, परन्तु उनमें भी (स्वधा अवस्तात्) अन्न के समान भोग्य पदार्थ निकृष्ट था और (प्रयतिः परस्तात्) प्रयत्नशील आत्मा उत्कृष्ट था (सायण, मही०)।

अथवा—यहां परमेश्वर के उत्पादक और नियामक बल का वर्णन है—(एषां लोकानां मध्ये रश्मिः) इन समस्त लोकों के बीच में सबका प्रकाशक रश्मि और सर्व का नियन्ता (तिरश्चीनः) सब दूर २, (अधः स्विद् उपरिस्वित्) क्या ऊपर और क्या नीचे, सर्वत्र (विततः आसीत्) फैला हुआ, सर्वत्र व्याप्त है । ये समस्त सूर्यादि लोक और महत् आदि प्रकृति विकार गण (रेतोधाः) सृष्टि के उत्पादक ब्रह्म बीज को धारण करने वाले और उसी के (महिमानः) समान सामर्थ्य को धारण करने हारे हैं । परमात्मा (स्वधा) स्व-रूप को धारण करने वाली परम शक्ति ही (अव-

स्तात्) उरे, यहां, छोटे से छोटे पदार्थ में है। और उसका लोक-सञ्चालक (प्रयतिः) महान् प्रयत्न (परस्तात्) दूर से दूर लोक में भी विद्यमान है।

आ रोदसी ऽअपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो ऽअधारयन्।
सो ऽअध्वराय परिणीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः॥७५॥

ऋ० ३।२।७॥

विश्वामित्र ऋषिः। वैश्वानरो देवता। जगती। निषादः॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश से आकाश और पृथिवी दोनों को व्याप लेता है उसी प्रकार तेजस्वी विद्वान्, पुरुष (रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्गों को (आ अपृणत्) सब प्रकार से व्यापता और उनको भरण पालन और पूर्ण भी करता है और वह, (स्वः) अन्तरिक्ष को वायु के समान, (महत् जातम्) वड़े भारी, उत्पन्न हुए सुखमय राष्ट्र को भी अपने वश करता है। (यत्) जिससे (एनम्) उसको (अपसः) समस्त कर्म, समस्त वड़े कार्य अथवा कार्य करने वाले प्रजाजन (अधारयन्) धारण करते हैं। अर्थात् वह सब कर्मों का आश्रय, मुख्य केन्द्र हो जाता है। (सः) उस को (कविः) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी पुरुष (अध्वराय) न नष्ट होने वाले, एवं हिंसारहित, पालन करने के उत्तम कर्म के लिये (वाजसातये अत्यः न) संग्राम, ऐश्वर्य और वेगयुक्त कार्य करने के लिये जिस प्रकार अश्व को काम में लाया जाता है उसी प्रकार (परिणीयते) कार्यों में नियुक्त किया जाता है, वरण किया जाता है। वह (चनोहितः) अन्न आदि ऐश्वर्य को स्वयं धारण करने वाला होता है।

(२) अग्नि के पक्ष में—सूर्य रूप से और व्यापक रूप से भी द्यौ और पृथिवी को व्यापता, पोषता है। समस्त कर्मों को धारण करता है। वही हिंसा रहित शिल्पों के लिये प्राप्त किया जाता है। अश्व के समान यन्त्रों में भी वेग प्राप्त करने के लिये लगाया जाता है। (३) परमेश्वर भी सर्वत्र व्यापक,

सबका पोषक है । समस्त कर्म उसके आश्रय हैं, वह क्रान्तदर्शी महान् यज्ञ के लिये पुनः २ उपासना किया जाता, एवं समस्त ऐश्वर्यों का पोषण करता है ।

उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा ।
आङ्गूषैराविवासतः ॥ ७६ ॥ ऋ० ७ । ६४ । ११ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(या) जो दो (वृत्रहन्तमा) घेर लेने वाले शत्रुओं के नाश करने वालों में सबसे श्रेष्ठ, (मन्दाना) सबको आनन्दित करने वाले, हैं वे इन्द्र आचार्य और अग्नि, ज्ञानवान्, अथवा सेनापति और सभाध्यक्ष (उक्थेभिः) उत्तम वचनोपदेशों से, (गिरा) उत्तम वाणी से और (आंगूषैः) घोषणाओं द्वारा (आ आविवासः) लोकसेवा करते हैं, यथार्थ ज्ञान प्रकाश करते हैं ।

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृडीका भवन्तु नः ॥ ७७ ॥ ऋ० ६ । ५२ । ९ ॥

सुहोत्र ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(ये नः सूनवः) जो हमारे पुत्र लोग हैं वे (अमृतस्य) अमर, अविनाशी परमेश्वर की दी (गिरः) वेद-वाणियों का (शृण्वन्तु) श्रवण करें और (नः) हमारे लिये (सुमृडीकाः) उत्तम सुखकारी (भवन्तु) हों । अथवा (ये) जो (अमृतस्य) अमर प्रजापति परमेश्वर के (सूनवः) पुत्र के तुल्य उसके उपासक हैं वे (नः गिरः शृण्वन्तु) हमारी वाणियों का श्रवण करें । अथवा हमें वेद-वाणियों का श्रवण करावें । और हमें सुखकारी हों ।

ब्रह्माणि मे मतयः शꣳ सुतासः शुष्म इयर्ति प्रभृतो मे अद्रिः ।
आ शासते प्रति हर्यन्त्युक्थेमा हरी वहतस्ता नो अच्छ ॥ ७८ ॥

ऋ० १ । १६५ । ४ ॥

७७—'सुमृळीका०' इति काण्व० ।

अगस्त्य इन्द्रो वा ऋषी । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(सुतासः) विद्या और शिक्षा से अभिषिक्त हुए पुत्र या शिष्य के समान विनीत होकर (मतयः) मननशील पुरुष (मे) मुझ विद्वान् आचार्य से (ब्रह्माणि) वेदमन्त्रों के ज्ञानों की (आ शासते) अभिलाषा करते हैं । और वे (इमा उक्था) इन वेदवचनों, या सूक्तों को ही (प्रति हर्यन्ति) चाहते हैं । (मे) मेरे द्वारा (प्रभृतः) उत्तम रीति से परिपुष्ट या प्रदत्त (शुष्मः) बलकारी (अद्रिः) अज्ञान अन्धकार करने हारा ज्ञानवज्र अथवा ज्ञानवर्षण करने वाला, मेघ के समान गुरु ही उनको (शम्) सुख (इयर्त्ति) प्रदान करता है । (हरी) ज्ञान को धारण करने वाले और अज्ञान हरने वाले अध्यापक और शिष्य, दोनों (नः) आप हमें (ता) वे नाना प्रकार के वेद ज्ञानों को (वहतः) प्राप्त करावें ।

राजा के पक्ष में—(मतयः) प्रजा को स्तम्भन करने वाले बलवान् पुरुष (मे ब्रह्माणि आशासते) मेरे से धन की अभिलाषा करते हैं । और (सुतासः) पुत्र के समान प्रिय प्रजाजन (इमा उ वचा प्रति हर्यन्ति) इन उत्तम राजाज्ञा और न्यायवचनों को चाहते हैं । और (मे अद्रिः प्रभृतः शम् इयर्त्ति) मेरा यह तीक्ष्ण वज्र प्रजा को सुख शान्ति प्रदान करता है । (हरी) राष्ट्र के शकट को उठा लेने वाले अश्वों के समान अमात्य और राजा या सभापति और सेनापति प्रजाओं के दुःखहारी होकर (नः ता अच्छ वहतः) हम प्रजा को वे सब पदार्थ प्राप्त करावें । राजा धनेच्छुओं के लिये धनप्रद और ज्ञानेच्छुओं या साम वचनों के इच्छुकों के लिये ज्ञानप्रद पुरुषों को नियुक्त करे । शान्ति स्थापन के लिये वज्र या दण्ड को उपयोग में लावे । साम, दान और दण्ड तीनों का विधान है ।

अनु॑त्तमा ते मघवन्न॒किर्नु न त्वावाँ॑२ऽ अस्ति दे॒वता॒ विदा॑नः ।
न जाय॑मानो॒ नश॑ते॒ न जा॒तो यानि॑ करि॒ष्या कृ॑णुहि प्र॑वृद्ध ॥७९॥

ऋ० १ । १६५ । ९ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् (नकिः) कोई पदार्थ भी ऐसा नहीं जो (ते अनुत्तम्) तेरे द्वारा नहीं चलाया गया । तू ही सबका प्रेरक है । और (त्वावान् देवता) तेरे सदृश द्रष्टा और दानशील, (विदानः) ज्ञानवान् और समस्त पदार्थों का प्राप्त करने कराने वाला भी दूसरा (न अस्ति) नहीं है । हे (प्रवृद्ध) महान्, सबसे अधिक शक्तिशालिन्! (न जायमानः) न भविष्य में कोई पैदा होने वाला और (न जातः) न पैदा हुआ है जो (यानि करिष्ये) जिन कामों को तू भावी में करे या (कृणुहि) अब करता है उनको भी (नशते) प्राप्त कर सके ।

परमेश्वर के पक्ष में—(ते) तेरे स्वरूप को (अनुत्तम् आ) हम किसी अन्य से प्रेरित नहीं पाते अर्थात् तू अद्वितीय है । (न त्वावान् विदानः देवता अस्ति) तेरे जैसा ज्ञानवान् देव भी कोई नहीं है । तू (जायमानः न, जातः न) तू कभी न पैदा होता है, न हुआ है । (यानि करिष्या) जो करेगा और जो (कृणुहि) करता है उसको भी (नकिः नशते) कोई न जान सकता है, न उसका पार पा सकता है ।

तदिदा॑स॒ भुव॑नेषु॒ ज्येष्ठं॒ यतो॑ ज॒ज्ञऽउ॒ग्रस्त्वे॒षनृ॑म्णः ।
स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो नि रि॑णाति॒ शत्रू॒ननु॒ यं विश्वे॒ मद॒न्त्यूमाः॑ ॥ ८० ॥

ऋ० १० । १२० । १ ॥

बृहद्दिव ऋषिः । महेन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(तत्) वह (इत्) ही (भुवनेषु) समस्त उत्पन्न लोकों, प्रजाजनों के बीच में (ज्येष्ठम् आस) सबसे बड़ा, सबसे अधिक आदर के योग्य है । (यतः) जिससे (त्वेषनृम्णः) तेज रूप धन से युक्त, अति तेजस्वी, (उग्रः) शत्रुओं को भय देने वाला, बलवान् सेनापति या राजा (जज्ञे) पैदा होता है । और (सद्यः) शीघ्र ही (जज्ञानः) उत्पन्न होकर (शत्रून्) शत्रुओं को (निरिणाति) विनष्ट करता है और (यम् अनु) जिसके अनुकूल रह कर (विश्वे ऊमाः) समस्त प्रजारक्षक जन और प्राणि वर्ग (मदन्ति) अति हर्षित होते हैं ।

परमेश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर ही सबसे महान् है जिससे यह दीप्त तेजस्वी सूर्य उत्पन्न होकर अन्धकारों को विनाश करता है और जिसको उगता देख-कर सब प्राणी हर्षित होते हैं अथवा वह परमेश्वर ही महान् है जिसकी उपासना से वीर पुरुष तेजस्वी होता है और शत्रुओं का नाश करता है, जिसके अनुकूल रहकर अन्य प्रजापालक अधिकारी प्रसन्न होते हैं।

इमाऽउ॑ त्वा पुरूवसो॒ गिरो॑ वर्द्धन्तु॒ या मम॑।
पा॒वकव॑र्णाः शुच॑यो विप॒श्चितो॒ऽभि स्तोमै॑रनूषत ॥ ८१ ॥

ऋ० ८ । ३ । ३ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (पुरुवसो) बहुत से ऐश्वर्य वाले ! राजन् ! (इमाः उ गिरः) ये उत्तम उपदेशप्रद वाणियां (याः मम) जो मेरी या मुझ प्रजाजन के हित की हैं वे (त्वा) तुझको या तेरे सामर्थ्य को (वर्धन्तु) बढ़ावें। और (पावकवर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी (शुचयः) शुद्ध, आचारवान्, सत्यवादी, निश्छल, (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) स्तुति वचनों से (अभि अनूषत) तेरी साक्षात् स्तुति करें। ईश्वरपक्ष में—हे (पुरुवसो) सबमें बसने हारे ! मेरी वाणियें तेरी महिमा बढ़ावें। ब्रह्मचारी, तेजस्वी, सदाचारी विद्वान् जन तेरी स्तुति करते हैं।

यस्या॒यं विश्व॒ऽआर्यो॒ दासः॑ शेवधि॒पा ऽअ॒रिः।
ति॒रश्चि॑द॒र्य्ये रु॒शमे॒ पवी॑रवि॒ तुभ्येत्सो ऽअ॑ज्यते र॒यिः ॥ ८२ ॥

ऋ० ८ । ५१ । ९ ॥

भा०—(विश्वः आर्यः) समस्त आर्य, श्रेष्ठ पुरुष (यस्य) जिसका (दासः) दास, कर्मकर, भृत्य के समान आज्ञापालक हैं और (शेवधिपाः) अपने खजाने को बचाकर रख लेने वाले, कंजूस पुरुष ही जिसका (अरिः) शत्रु के समान प्रतिद्वन्द्वी है। और (अर्ये) वैश्य धनस्वामी (रुशमे) हिंसा कारी और (पवीरवि) शस्त्रधारी पुरुष के पास भी (तिरः चित्)

छिपा हुआ समस्त जितना भी धन है (सः रयिः) वह समस्त ऐश्वर्य भी हे राजन् (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे ही लिये खोल कर रख दिया जाता है। अर्थात् सब श्रेष्ठ पुरुष तेरे सेवक हैं, उनका सब धन तेरे ही लिये है, अपना धन बचा कर रखनेवाला तेरा शत्रु है, वैश्यों और शत्रुहिंसक क्षत्रियों के पासका सभी धन राजा के लिये ही है।

अयꣳ सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्रऽइव पप्रथे।
सत्यः सो ऽअस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ८३ ॥

ऋ० ८ । ३ । ४ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । आदित्यो देवता । सतो बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(अयम्) यह राजसभाध्यक्ष (सहस्रम् ऋषिभिः) सहस्रों मन्त्रार्थ वेत्ता विद्वानों के साथ (सहस्कृतः) बलवान् होकर (समुद्र इव) समुद्र के समान गम्भीरता आदि गुणों में विख्यात है। (यज्ञेषु) सम्मिलित नाना राजकार्यों में और (विप्रराज्ये) मेधावी, बुद्धिमान् विद्वानों के राज्य में (अस्य) उसकी (सत्यः महिमा) सत्य महिमा और (शवः) बल का (गृणे) वर्णन किया जाता है। अथवा—(अयं) यह (ऋषिभिः) यथार्थ तर्कशील विद्वानों के द्वारा (सहस्रं सहस्कृतः) हजारों प्रकार के ज्ञानों और बलों से युक्त हो जाता है। (अस्य सः महिमा समुद्र इव पप्रथे) इसकी वह महिमा समुद्र के समान बढ़ती है। मैं (यज्ञेषु विप्रराज्ये शवः गृणे) प्रजाजन इसके बल की यज्ञों और विद्वानों के राज्य में स्तुति करूं।

'सहस्रम्'—सहस्र कृत्व इत्युवटः। सहस्रैः ऋषिभिरिति सायणः। सहस्रं सख्यं ज्ञानं प्राप्त इति दयानन्दः।

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वꣳ शिवेभिरद्य परिपाहि नो गयम्।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो ऽअघशꣳस ऽईशत ८४

भा०—व्याख्या देखो (अ० ३३ । ६९)

आ नो॑ यज्ञं दि॑वि॒स्पृशं॒ वायो॑ या॒हि सु॒मन्म॑भिः।
अ॒न्तः प॒वित्र॑ ऽउ॒परि॑ श्री॒णा॒नोऽयꣳ शु॒क्रो ऽअ॑यामि ते ॥ ८५ ॥

ऋ० ८ । ९० । ६ ॥

जमदग्निर्ऋषिः । वायुर्देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (वायो) वायो ! वायु के समान अपने प्रचण्ड वेग से शत्रुरूप वृक्ष को उखाड़ देने में समर्थ ! अथवा, छाज से गिरते अन्न को अपने वेग से पवित्र करने हारे वायु के समान विवेकवान् ! वायो ! तू (सुमन्मभिः) उत्तम ज्ञानोंसहित (नः) हमारे (दिविस्पृशम्) राजसभा में आश्रित, विद्या के प्रकाश से युक्त (यज्ञम्) राज्य पालन के कार्य या प्रजापति पद को (आयाहि) प्राप्त हो । (पवित्रे अन्तः उपरि) पावन या शोधन करने वाले छाज पर जिस प्रकार अन्न रहता है उसी प्रकार (पवित्रे) शुद्ध सदाचार युक्त एवं प्रजा को पवित्र करने वाले तुझ पर (अयम्) यह (शुक्रः) शुद्ध किरणों वाले सूर्य के समान विद्वान् वेदज्ञ पुरुष (श्रीणानः) अधिष्ठित हैं । इसी कारण मैं प्रजाजन (ते अयामि) तुझ बलवान् राजा के शरण में आता हूं । अर्थात् जिस प्रकार छाज पर से अन्न गिरता है, वायु उस को पवित्र करता, उसके भी ऊपर सूर्य का प्रकाश रहता है उसी प्रकार प्रजा पालन के कार्य में विवेकी सभाध्यक्ष और उसपर भी सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष हो । प्रजा उसके अधीन रहे । अथवा—(अन्तः) प्रजा के भीतर (पवित्रे उपरि) इस परम पवित्र पद पर (श्रीणानः) आश्रय देनेहारा यह राजा ही (शुक्रः) आशु कार्यकारी, चतुर एवं सूर्य के समान तेजस्वी है । हे राजन्! (ते अयामि) मैं तेरी शरण आता हूं ।

इन्द्र॑वा॒यू सु॑स॒न्दृशा॑ सु॒हवे॒ह ह॑वामहे ।
यथा॑ नः॒ सर्व॒ ऽइज्जनो॑ऽनमी॒वः स॒ङ्गमे॑ सु॒मना॒ ऽअस॑त् ॥ ८६ ॥

ऋ० १० । १४१ । ४ ॥

८६—इन्द्रवायू बृहस्पतिः सुहवेह हवामहे । यथानः सर्व इज्जनः संङ्गत्यां सुमना असत् । ऋ० ॥

तापस ऋषिः । इन्द्र वायू देवते । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(सुसंदृशौ) उत्तम रीति देखने वाले, उत्तम रीति एवं समान निष्पक्षपात दृष्टि और सम्यक्, और निष्पाप भाव से देखने वाले (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति दोनों को सूर्य और वायु के समान (इह) इस राज्य में (हवामहे) हम बुलाते या अपना प्रधान स्वीकार करते हैं। (यथा) जिससे (नः) हमारे (सर्वः इत् जनः) सभी जन (संगमे) परस्पर मिलने के अवसर में (सुमनाः) उत्तम चित्त वाले (असत्) होकर रहें।

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय ऽआचक्रे हव्यदातये ॥ ८७ ॥

ऋ० ८ । ९० । १ ॥

भा०—जिस प्रकार मनुष्य (मित्रावरुणा) प्राण और उदान दोनों को (अभिष्टये) अपने अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये और (हव्यदातये) प्राप्त करने योग्य परम पद की प्राप्ति के लिये (आचक्रे) वश करता है उनके आगमन का अभ्यास करता है (सः मर्त्यः) वह पुरुष (देवतातये) अपने इन्द्रियों के विशेष हित के लिये (ऋधक्) अति समृद्धिमान् शक्तिशाली होकर भी (इत्था शशमे) सचमुच शान्ति को प्राप्त कर लेता है। (२) उसी प्रकार (यः) जो (नूनं) निश्चय से (मित्रावरुणा) प्रजा के स्नेही न्यायाधीश और शत्रुओं और दुष्टों के वारक श्रेष्ठ राजा दोनों को (हव्यदातये) ग्रहण करने योग्य उत्तम पदार्थों के प्रदान और स्वयं प्राप्त करने के लिये (आचक्रे) उचित रूप से आश्रय लेता है (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (देवतातये) विद्वान् और विजयी पुरुषों के हित के लिये (ऋधक्) समृद्धिमान् होकर भी (इत्था) इस प्रकार से (शशमे) बहुत अधिक शान्ति प्राप्त करता है, वह मान, मद, गर्व नहीं धारण करता। और स्वतः उपद्रव रहित भी रहता है। उसके यश और समृद्धि में दूसरे उपद्रव नहीं करते।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥ ८८ ॥
ऋ० ७ । ७४ । ३ ॥

वासिष्ठ ऋषिः । अश्विनौ देवते । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (अश्विनौ) स्त्री पुरुषों के समान एक दूसरे के अधीन रहने वाले राजा प्रजाजनो ! अथवा पूर्वोक्त राष्ट्र में व्यापक अधिकार वाले दो अधिकारी राजा और सभापति पुरुषो ! आप दोनों (आयातम्) आओ । (उप भूषतम्) इस स्थान को सुभूषित करो । अथवा दोनों समीप होकर रहो । हे (वृषणा) सुखों के वर्षाने वाले ! तुम दोनों (मध्वः पिबतम्) अन्न और उसके उत्तम रस का कर के रूप में स्वयं पान करो जिस प्रकार सूर्य और मेघ पृथ्वी से जल ग्रहण करते हैं और फिर उसी पर बरसा देते हैं उसी प्रकार (पयः दुग्धम्) उत्तम पुष्टिकारक दूध और अन्न और जल से राष्ट्र को पूर्ण करो । और (जेन्यावसू) विजयशील धन के स्वामी तुम दोनों (नः) हम प्रजाओं को (मा मर्धिष्टम्) कभी विनाश मत करो और (नः आगतम्) हमें सदा प्राप्त होवो ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता ।
अच्छा वीरं नर्यं पङ्क्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥८९॥
ऋ० १ । ४० । ३ ॥

भा०—(ब्रह्मणः पतिः) धन, वेद और महान् राष्ट्र का पालक पुरुष (प्र एतु) हमें प्राप्त हो । (सूनृता) शुभ सत्यमयी वाणी (देवी) ज्ञान से पूर्ण विदुषी स्त्री के समान हमें (प्र एतु) प्राप्त हो । (देवाः) विद्वान् पुरुष और वीर सैनिक गण (नः) हमारे (वीरं) शूरवीर (नर्यम्) सब पुरुषों के हितकारी, नरश्रेष्ठ (पंक्तिराधसम्) पंक्ति अर्थात् पांचों जनों को वश करनेहारे, अथवा सेना की पंक्तियों को वश करने में समर्थ अथवा पांचों प्रकार के धनों के स्वामी या पांचों प्रकार के राष्ट्र के वशकारी अरि,

मित्र, अरि-मित्र, मित्र-मित्र और स्वकीय इनमें (यज्ञम्) प्रजापति रूप सब के पूज्य और सब के संगतिकारक पुरुष को (अच्छ नयन्तु) साक्षात् प्राप्त करावें। ऐसे को राजा बनावें।

चन्द्रमा॑ऽअ॒प्स्व॑न्त॒रा सु॑प॒र्णो धा॑वते दि॒वि।
र॒यिं पि॒शङ्गं॑ ब॒हु॒लं पु॑रु॒स्पृह॒ꣳ हरि॑रेति॒ कनि॑क्रदत् ॥ ९० ॥
(प्र० द्वि०) १। १०५। १ ॥

त्रित ऋषिः। इन्द्रो देवता। बृहती। मध्यमः ॥

भा०—जैसे (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (अप्सु अन्तरा) जलों या जलमय मेघों या अन्तरिक्ष के बीच में गति करता है और (सुपर्णः) उत्तम किरणों से युक्त सूर्य या उत्तम पक्षों से युक्त विशाल पक्षी (दिवि धावते) आकाश में गति करता है और जिस प्रकार (कनिक्रदत्) खूब गर्जना करता हुआ (हरिः) सिंह, या हिनहिनाता हुआ अश्व गति करता है और तीनों में से प्रत्येक (पिशङ्गम्) सुवर्ण के समान उज्ज्वल (बहुलं) बहुत अधिक (पुरुस्पृहम्) बहुतों का अच्छा लगने हारा मनोहर रूप धारण करता है उसी प्रकार राजा, सभाध्यक्ष (अप्सु अन्तरा) आप्त प्रजाजनों के बीच (चन्द्रमाः) चन्द्र के समान आह्लादक कान्ति से युक्त होकर और (दिवि) ज्ञान प्रकाश में या राजसभा में (सुपर्णः) उत्तम पालन और ज्ञानमय साधनों से युक्त होकर सूर्य या महा गरुड़ के समान विजयी होकर (धावते) गति करे। और वह (हरिः) अश्व के समान या सिंह के समान स्वयं सबको आगे ले जाने में समर्थ, सबके मन को हरनेहारा, सब के दुःखों का नाशक होकर (कनिक्रदत्) गर्जन करता हुआ (पिशङ्गं) सुवर्ण के समान उज्ज्वल, (बहुलं) बहुत अधिक (पुरुस्पृहम्) बहुतों से वाञ्छित (एवं) सबकी इच्छानुकूल (रयिम्) ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

दे॒वन्दे॑वं॒ वोऽव॑से दे॒वन्दे॑वम॒भिष्ट॑ये।
दे॒वन्दे॑वꣳ हुवेम॒ वाज॑सातये गृ॒णन्तो॑ दे॒व्या धि॒या ॥ ९१ ॥
ऋ० ८। २७। १३ ॥

मनुर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(देव्या धिया) उत्तम भावों से उज्वल, प्रकाशमान विद्वान्, ईश्वर और वीर राजा के योग्य (धिया) स्तुति से और (गृणन्तः) स्तुति या आदर वचन का प्रयोग करते हुए हम लोग (अवसे) रक्षण, ज्ञान और आजीवन सुख के प्राप्त करने के लिये हम (देवं देवम्) प्रत्येक विद्वान् को बुलायें । और (अभीष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये हम (देवं देवम्) प्रत्येक व्यवहारकुशल पुरुष को (हुवेम) आदर-पूर्वक बुलावें । और (वाजसातये) संग्राम विजय के लिये और अन्नादि ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (देवं देवम्) प्रत्येक विजयेच्छु वीर पुरुष को हम अपनावें ।

दिवि पृष्ठो अरोचताग्निर्वैश्वानरो बृहन् ।
क्ष्मया वृधान ऽओजसा चनोहितो ज्योतिषा बाधते तमः ॥६२॥

मेध ऋषिः । वैश्वानरो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(वैश्वानरः) समस्त लोकों का हितकारी, (अग्निः) प्रकाश स्वरूप सूर्य जिस प्रकार (बृहन्) महान् होकर (दिवि) प्रकाश में, तेज में (पृष्टः) पूर्ण रूप से स्थित होकर (क्ष्मया) पृथिवी के साथ अपने (ओजसा) तेजो बल से (वृधानः) समस्त ओषधियों को बढ़ाता हुआ (चनोहितः) अन्न के लिये अति हितकारी होता है और (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः बाधते) अन्धकार को दूर करता है। उसी प्रकार (अग्निः) सबका अग्रणी नायक एवं विद्वान् (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों का हितकारी, (बृहन्) स्वयं महान् होकर (दिवि) ज्ञान विज्ञान से युक्त राज-सभा के बीच (पृष्टः) तेज से और ज्ञान से सिक्त होकर, अथवा अभिषेक द्वारा अभिषिक्त होकर (क्ष्मया) अपने बड़े सामर्थ्य से पृथिवी रूप राष्ट्र से और (ओजसा) तेज, पराक्रम से (वृधानः) स्वयं वृद्धि करता हुआ, (चनोहितः) अपने सामर्थ्य से अन्न आदि ऐश्वर्यों को धारण करने

वाला होकर (ज्योतिषा) अपनी ज्ञान ज्योति, तेज से (तमः) समस्त प्रजा के दुःखकारी कारण, शोक, दुःख रूप अन्धकार को (बाधते) नष्ट करता है।

इन्द्राग्नी अपादियम्पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६३॥
ऋ० ६।५९।६॥

सुहोत्र ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। प्रवल्हिका। अनुष्टुप्। गांधारः॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि! (इयम्) यह (अपात्) पाद रहित होकर (पद्वतीभ्यः) पाद वालियों से (पूर्वा) पूर्व भी विद्यमान (आ अगात्) आती है। (शिरः हित्वा) शिर त्याग कर (जिह्वया वावदत्) जीभ से बोलती है। (चरत्) चलती है, और (त्रिंशत् पदा) तीस पग (नि अक्रमीत्) चलती है। यह प्रहेलिका का शब्दार्थ है। इसकी योजना उषा और वाणी दोनों पक्षों में होती है।

उषापक्ष में—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान गुरु और शिष्य, राजा और प्रजाजनो! (इयम्) यह उषा (अपात्) विना पगों वाली होने से 'अपात्' है। अथवा सूर्य के अभाव में प्रथम प्रकट होने से निराधारसी दीखती है इसलिये अपात् है वह (पद्वतीभ्यः) पैरों वाली प्रजाओं से भी (पूर्वा) पूर्व अर्थात् सोती हुई प्रजाओं से पूर्व उदय होकर (आ अगात्) आती है, प्रकट होती है। वह (शिरः हित्वा) शिर को छोड़ कर अर्थात् विना शिर रूप सूर्य के उदय होने के पूर्व ही (जिह्वया) वाणी से या पक्षियों आदि की जिह्वा द्वारा (वावदत्) बोलती, शब्द करती और (चरत्) कालक्रम से विचरती है और (त्रिंशत् पदा) तीस मुहूर्त रूप पदों को (नि अक्रमीत्) चलती है (दया०, सायण)।

वाणी के पक्ष में—हे इन्द्र! और हे अग्ने! हे प्राण और हे पुरुष! (इयं अपाद्) यह वाणी पाद रहित गद्य वाणी (पद्वतीभ्यः पूर्वा आ अ-

गात्) पदों वाली, पद्यमयी वाणी से भी पूर्व आती है, वह मनुष्य के मन में अन्धकार में उषा के समान, ज्ञान रूप से प्रकट होती है (शिरः हित्वी) शिर अर्थात् प्रथम पद या मुख्य, आख्यात पद को छोड़ कर (जिह्वया वावदत्) वाणी द्वारा बोली जाती है। (चरत्) और इस प्रकार प्रकट होती हुई (त्रिंशत् पदा) तीस पद अर्थात् तीस अंगुल (नि अक्रमीत) गति गरती है अर्थात् मूल आधार से लेकर मुख तक ३० अंगुल गति करती है। (महीधर).

अथवा—उषापक्ष में—यह पादहित होकर पाद वाली, सोती प्रजाओं से पूर्व ही आजाती है। और (शिरः हित्वी) प्राणियों के शिर को प्रेरित करती हुई प्राणियों के जिह्वा द्वारा शब्द करती हुई (चरत्) उच्चारग करती है। और ३० मुहूर्त्त को पार करती है (सायण)

वाणीपक्ष में अर्थान्तर—(इन्द्राग्नी) हे इन्द्र, जीव और अग्ने जाठर अग्ने ! यह तुम्हारी अद्भुत क्रिया है कि वाणी (इयं) यह (पद्वतीभ्यः पूर्वा) सुबन्त, तिङन्त पदों से युक्त प्रकट वाणी से पूर्व (अपात्) पाद रहित, अव्यक्त रूप में ही अन्तःकरण में (आ अगात्) प्रकट होती है। वह प्रथम (शिरः हित्वी) शिरो भाग, तालु को प्रेरणा करके (जिह्वया) जीभ द्वारा (वावदत्) बोली जाती हुई (चरत्) प्रकट होती या उच्चारण की जाती है। और पुनः (त्रिंशत् पदानि) तीस पदों या स्थानों को (नि अक्रमीत्) व्याप लेती है। अर्थात् मूल देश से लेकर जिह्वा तक तीसों अंगुल परिमाण शरीर भाग को व्याप लेती है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्भाष्य में विद्युत् के पक्ष में भी इस मन्त्र की योजना की है। मन्त्र अस्पष्ट है और अधिक विचार की अपेक्षा करता है।

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकꣳ सरातयः।
ते नो अद्य ते ऽअपरन्तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः॥ १४॥

ऋ० ८। २७। १४॥

मनुर्ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। बृहती। मध्यमः॥

भा०—(विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान्, विजयी एवं व्यवहारकुशल पुरुष (मनवे) मननशील मनुष्य के हित के लिये (साकम्) एक साथ (समन्यवः) समान ज्ञान और मान और तेज तथा क्रोध या पराक्रम युक्त (सरातयः) समान रूप से दानशील, निष्पक्षपात होकर (हि स्म) रहा करें। और वे (अद्य) आज और (अपरम्) आगामी भविष्य में भी (नः) हमारे और (नः तुचे) हमारे दुःखहारी पुरुषों या सन्तानों के हित के लिये (वरिवोविदः) धन ऐश्वर्य के प्राप्त करने और कराने करने वाले (भवन्तु) हों।

'तुचे'—'तुग्' इति अपत्यनाम, तोजयति हिनस्ति हि पितुर्दुःखमिति तुक् पुत्रः ॥ इति सायणः ॥

अपाधमदभिशस्तीरशस्तिहाथेन्द्रो द्युम्न्याभवत्।
देवास्त ऽइन्द्र सख्याय येमिरे बृहद्भानो मरुद्गण ॥ ६५ ॥

ऋ० ८ । ७६ । २ ॥

नृमेध ऋषिः । मरुत्वान् इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति (अशस्तिहा) शासन व्यवस्था से रहित, उच्छृङ्खल पुरुषों का नाशक उनको दण्ड देने में समर्थ होकर (अभिशस्तीः) सब ओर से आने वाली हिंसाकारिणी सेनाओं और अपवादों को (अप-अधमत्) दूर भगा दे और इस प्रकार वह (इन्द्र) शत्रुहन्ता होकर (द्युम्नी) अन्नादि से समृद्ध और ऐश्वर्यवान् (अभवत्) होता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे (बृहद्भानो) अति अधिक तेज से युक्त अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन्! हे (मरुद्गण) वीर सैनिकों के गणाधीश्वर (देवाः) विजयशील पुरुष और विद्वान् एवं व्यवहार कुशल वैश्यगण भी (ते) तेरे (सख्याय) मित्र भाव के लिये (येमिरे) यत्न करते हैं, एवं नियम व्यवस्था में रहते हैं।

प्र व॒ ऽइन्द्रा॑य बृह॒ते मरु॑तो॒ ब्रह्मा॑र्चत ।
वृ॒त्रꣳ ह॑नति वृत्र॒हा श॒तक्र॑तु॒र्वज्रे॑ण श॒तप॑र्वणा ॥ ६६ ॥

ऋ० ८ । ७८ । ३ ॥

नृमेध ऋषिः । इन्द्रो देवता । बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (मरुतः) वायु के समान तीव्र वेग से शत्रुओं पर आक्रमण करने और उनको मारने वाले वीर प्रजास्थ पुरुषो और आप लोग (वः) अपने में से (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् (बृहते) बड़े पुरुष के लिये (ब्रह्म अर्चत) धन और अन्न या आदर सत्कार प्रदान करो । (शतक्रतुः) सैकड़ों प्रज्ञा और कर्म सामर्थ्यों से युक्त (वृत्रहा) विघ्नकारी, नगर घेरने वाले शत्रु को मेघ को सूर्य के समान छिन्न भिन्न करने में समर्थ वीर पुरुष ही (शतपर्वणा) सैकड़ों के पालन करने वाले एवं सैकड़ों अवयवों, पोरुओं एवं शस्त्रास्त्रों, या सेना के दलों से युक्त(वज्रेण) वीर्यवान् सैन्यबल, और शस्त्रास्त्र समूह से (वृत्रं हनति) शत्रु को नाश करे ।

अ॒स्येदिन्द्रो॑ वावृधे॒ वृष्ण्य॒ꣳ शवो॒ मदे॑ सु॒तस्य॒ विष्ण॑वि ।
अ॒द्या तम॑स्य महि॒मान॑मा॒यवोऽनु॑ ष्टुवन्ति पू॒र्वथा॑ ॥ ६७ ॥

ऋ० ८ । ३ । ८ ॥

मेधातिथिर्ऋषिः । महेन्द्रो देवता । सतो बृहती । मध्यमः ॥

भा०—जिस प्रकार (विष्णवि) व्यापक पृथ्वी पर (सुतस्य मदे) प्राप्त हुए जल से पूर्ण हो जाने पर (इन्द्रः) सूर्य (अस्य) इस मेघ के (शवः) विद्युत् बल और (वृष्ण्यं) वर्षण सामर्थ्य को (वावृधे) बढ़ाता है । उसी प्रकार (सुतस्य) अभिषेक द्वारा स्थापित (विष्णवि) व्यापक राष्ट्र में (मदे) हर्ष, सुख और समृद्धि से तृप्त, भरे पूरे रहने पर (इत्) ही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा भी (शवः) अपना बल और (वृष्ण्यं) प्रजा पर सुख सेचन या वर्ष, के सामर्थ्य को और सेना बल को उसी प्रकार बढ़ावे ।

इमा उ त्वा० । यस्यायम्० । अयं सहस्रम्० । ऊर्ध्व ऊ षु णः० ।

भा०—'इमा उ त्वा०', 'यस्यायम्०', 'अयं सहस्रम्०' ये तीनों प्रतीकें अ० ३३।८१–८३ तक के तीनों मन्त्रों की हैं। 'ऊर्ध्व ऊ षु णः'० यह प्रतीक अ० ११।४२ मन्त्र की है।

॥ इति त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

[अ० ३४] आदित्ययाज्ञवल्क्यावृषी ॥

॥ओ३म्॥ यज्जाग्र॑तो दू॒रमु॒दैति॒ दैवं॒ तदु॑ सु॒प्तस्य॒ तथै॒वैति॑ ।
दू॒र॒ङ्ग॒मं ज्योति॑षां॒ ज्योति॒रेकं॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु॥१॥

[१—६] शिवसंकल्प आदित्ययाज्ञवल्क्यौ वा ऋषी। मनो देवता। त्रिष्टुप्।
धैवतः ॥ शिवसंकल्पसूक्तम् । शिवसंकल्पोपनिषत् ।

भा०—(यत्) जो (मनः) मन, संकल्प विकल्प करने वाला भीतरी अन्तःकरण (जाग्रतः) जागते हुए पुरुष का (दूरम् उद् आ एति) दूर २ के पदार्थों तक संकल्प द्वारा ही सर्वत्र जाया करता है । और (सुप्तस्य) वह ही सोते हुए पुरुष का (तथा एव) उसी प्रकार (एति) उसके भीतर आ जाता है । (तत्) वह (उ) निश्चय से (ज्योतिषां) ज्योति-वाले, प्रकाश करने वाले ग्रह नक्षत्रादि के बीच सूर्य के समान, नाना विषयों को प्रकाशित करने वाले इन्द्रिय गण के बीच में (दूरंगमम्) दूर तक पहुंचने वाला (ज्योतिः) प्रकाशक साधन है । वह ही (देवम्) देव अर्थात् विषयों में रमण करने वाले आत्मा का (एकम्) एकमात्र भीतरी साधन है । (तत्) वह मेरा (मनः) मन, अर्थात् ज्ञान का साधन, इन्द्रिय सदा (शिवसंकल्पम्) शुभ, कल्याणमय संकल्प करने वाला (अस्तु) हो ।

येन॒ कर्मा॑ण्य॒पसो॑ मनी॒षिणो॑ य॒ज्ञे कृ॒ण्वन्ति॑ वि॒दथे॑षु॒ धीराः॑ ।
यद॑पू॒र्वं य॒क्षम॒न्तः प्र॒जानां॒ तन्मे॒ मनः॑ शि॒वस॑ङ्कल्पमस्तु ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिस मन से (अपसः) कर्म करने हारे, कर्मण्य पुरुष और (मनीषिणः) मनस्वी, दृढ़ निश्चयी, ज्ञानवान् पुरुष और (धीराः) ध्याननिष्ठ योगी जन, (विदथेषु) यज्ञों, ज्ञानयुक्त व्यवहारों,

सभास्थानों और युद्धादि के अवसरों में और (यज्ञे) यज्ञ या परम उपासनीय पूज्य परमेश्वर के निमित्त (कर्माणि) नाना उत्तम कर्मों का (कुर्वन्ति) आचरण करते हैं और (यत्) जो (प्रजानाम् अन्तः) समस्त प्रजाओं के भीतर (अपूर्वम्) अपूर्व, अद्भुत, सबसे उत्तम भीतरी इन्द्रिय (यक्षम्) सब अन्य इन्द्रियों को सुसंगति, सुव्यवस्था करने वाला है (तत्) वह (मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु) मेरा मन शुभ संकल्प वाला, धार्मिक, कल्याण ज्ञान वाला हो।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु।
यस्मान्न ऽऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥३॥

भा०—(यत्) जो मन (प्रज्ञानम्) सबसे उत्तम ज्ञान का साधन है जो (चेतः) यथार्थ ज्ञान कराने वाला और स्मरण करने का भी साधन है। और जो (धृतिः च) भीतर धारण अर्थात् चिरकाल तक स्मरण रखने का भी साधन है। और (यत्) जो (प्रजासु) प्रजाओं, प्राणियों के भीतर (अमृतम्) कभी नष्ट न होने वाला (अन्तरम्) भीतर ही विद्यमान, (ज्योतिः) सब पदार्थों का प्रकाशक गृह में दीपक के समान शरीर को 'चेतन' रखने वाला साधन भी है। (यस्मात् ऋते) जिसके बिना (किञ्चन कर्म) कुछ भी कर्म (न क्रियते) नहीं किया जाता (तत् मे मनः) वह मेरा मन (शिवसंकल्पम्) शिव, शान्त, शुभ परमेश्वर के संकल्प या इच्छा वाला और उत्तम विचारवान् (अस्तु) हो।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥४॥

भा०—(येन) जिस मन के द्वारा (इदम्) यह (भूतम्) अतीत, भूतकाल के, (भुवनम्) वर्त्तमान काल के और (भविष्यत्) भविष्यत् काल के (सर्वम्) समस्त पदार्थ (अमृतेन) अमृत, नित्य आत्मा के साथ मिलकर (परिगृहीतम्) ग्रहण किये जाते हैं, जाने जाते हैं और

जैसे ब्रह्मा द्वारा, या यजुर्वेद द्वारा (सप्तहोता) सात होता, आदि ऋत्विजों से होने वाला यज्ञ किया जाता है उसी प्रकार (येन) जिस अन्तःकरण द्वारा सात शिर में स्थित विषयों के ग्रहण करने वाले चक्षु आदि इन्द्रियों से युक्त अथवा सात शरीर को धारण और जीवन देने वाले सात धातुओं से युक्त (यज्ञः) आत्मा या देहरूप यज्ञ (तायते) सम्पादन किया जाता है (तत्) वह (मे मनः) मेरा मन (शिवसंकल्पम्) शुभ संकल्प वाला और मोक्षपथगामी (अस्तु) हो ।

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५॥

भा०—(रथनाभौ अराः इव) रथ के चक्र की नाभि में जिस प्रकार अरे लगे होते हैं उसी प्रकार (यस्मिन्) जिस मनमें (ऋचः) ऋग्वेद के मन्त्र, (साम) सामवेद और (यजूंषि) यजुर्वेद के मन्त्र गण (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं अर्थात् वेद आदि नाना विज्ञान पढ़ लेने पर स्मृति रूप से जिसमें सब स्थित रहते हैं । और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्रजाओं, प्राणियों के (सर्वम् चित्तम्) समस्त चित्त, समस्त पदार्थों का ज्ञान भी (ओतम्) सूत्र में मणियों के समान और पट में सूत्रों के समान ओत प्रोत अर्थात् पिरोये जाते हैं (तत्) वह मेरा (मनः) मननशील अन्तःकरण और उससे युक्त आत्मा भी (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ वेद तथा परमेश्वर आदि के ज्ञान, पठन, मनन आदि उत्तम विचार परम्परा से युक्त हो ।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ ६ ॥

भा०—(सुषारथिः = सु-सारथिः) उत्तम सारथि, कोचवान् (अभीशुभिः) बागों से (वाजिनः) वेगवान् (अश्वान् इव) अश्वों को जिस प्रकार (नेनीयते) नाना मार्गों पर ले जाता है उसी प्रकार (यत्) जो मन, (अभीशुभिः) सर्वत्र अपनी शीघ्र गतियों और शीघ्र क्रिया करने

वाली प्रेरक वृत्तियों से (वाजिनः) ज्ञान और बल से युक्त (मनुष्यान्) मननशील प्राणियों को भी (नेनीयते) अपने वश करके ले जाता है और (यत्) जो (हृत्-प्रतिष्ठम्) हृदय स्थान में स्थित और (अजिरम्) जरा आदि दशाओं से रहित, सदा बलवान् अथवा (अजिरम्) विषयों के प्रति इन्द्रियों को लेजाने में और स्वयं संकल्प द्वारा जाने में समर्थ है और जो (जविष्ठम्) सबसे अधिक वेगवान् है (तत् मे मनः) वह मेरा मननशील चित्त सदा (शिवसंकल्पम् अस्तु) शुभ संकल्पवाला हो ।

पितुं नु स्तोषं महो धर्माणं तविषीम् ।
यस्य त्रितो व्योजसा वृत्रं विपर्वमर्दयत् ॥ ७ ॥

ऋ० १ । १८७ । १ ॥

अगस्त्य ऋषिः । पितुर्देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥ अन्नस्तुतिः ॥

भा०—मैं उस (महः) महान् (धर्माणम्) शरीरों और राष्ट्रों के धारण करने वाले (तविषीम्) बलवान् (पितुम्) सबके पालक, अन्न के समान सबके जीवनों के आधार आत्मा और राजा के (स्तोषम्) गुणों का वर्णन करता हूं । (यस्य ओजसा) अन्न के बल पर जिस प्रकार पुरुष (वृत्रं विपर्वम् वि अर्दयत्) विघ्नकारी कालरूप मृत्यु को भी खण्ड २ कर नाना प्रकार से पीड़ित करता है अर्थात् काल पर वश पा लेता है उसी प्रकार (यस्य ओजसा) जिसके पराक्रम से (त्रितः) तीनों कालों में व्याप्त एवं उत्तम, मध्यम, अधम तीनों में प्रतिष्ठित, अथवा शत्रु, मित्र और उदासीन तीनों पर विजयशील होकर अथवा विस्तृत राष्ट्र बल वाला होकर (वृत्रं) राष्ट्र को घेरने वाले शत्रु को, जल सहित मेघ को सूर्य के समान (विपर्वम्) उसके पर्व २, ग्रन्थि २, खण्ड २ काट कर (वि अर्दयत्) विविध उपायों से पीड़ित या दण्डित करता है ।

त्रितः—त्रिस्थान इति म० । त्रिषु कालेषु इति द० । विस्तीर्णतम इति सा० ।

अन्विदनुमते त्वं मन्यासै शञ्च नस्कृधि ।
क्रत्वे दक्षाय नो हिनु प्र ण ऽआयूꣳषि तारिषः ॥ ८ ॥

अथर्व० ७ । २० । २ ॥

[८०९] ब्रह्माऋषिः । अनुमतिर्देवता । अनुष्टुप् गान्धारः ॥

भा०—हे (अनुमते) अनुकूल मति से युक्त, सब कार्यों की अनुमति, अर्थात् स्वीकृति देने वाले सभापते ! अथवा राजसभे ! तू (नः) हमें (अनु मन्यासै) अनुमति, स्वीकृति दिया कर । तू (शं च कृधि) सुख कल्याणकारी कार्यों को ही किया कर । (क्रत्वे) उत्तम मति, या बुद्धि और (दक्षाय) बल, चतुरता सम्पादन करने के लिये ही (नः हिनु) हमें आगे बढ़ा, प्रेरित कर । (नः) हमारे (आयूंषि) जीवनों को (प्र तारिषः) खूब बढ़ा ।

अनु नोऽद्यानुमतिर्यज्ञन्देवेषु मन्यताम् ।
अग्निश्च हव्यवाहनो भवतं दाशुषे मयः ॥ ९ ॥

अथर्वा ऋषिः । अनुमति देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अद्य) आज (अनुमतिः) स्वीकृति देने वाला सभापति, (नः) हमारे (यज्ञम्) परस्पर सुसंगत राज्य कार्य को (देवेषु) विद्वान् पुरुषों में (अनुमन्यताम्) स्वीकार करे अर्थात् राष्ट्र कार्य को विद्वानों के आधार पर चलावे और (हव्यवाहनः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को प्राप्त कराने वाला (अग्निः) अग्रणी नायक, एवं तेजस्वी राजा और सभापति दोनों (दाशुषे) दानशील, करप्रदा प्रजा के लिये (मयः भवतम्) सुखकारी हों ।

८—त्वं मंससे इति अथर्व० । (तृ० च०)'जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि रराস্ব नः' इति अथर्व० ।

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥ १० ॥

ऋ० २। ३२। ६ ॥ अथर्व० ७। ४६। १ ॥

गृत्समद ऋषिः। सिनीवाली देवता। अनुष्टुप्। गांधारः ॥

भा०—हे (सिनीवालि) समस्त प्रजाओं को अपने पालन और रक्षण, भरण और पोषण के सामर्थ्य से बांधने वाली, प्रतिपत् चन्द्रकला और अमावास्या के समान नव राजचन्द्र से विराजने वाली राजसभे। हे (पृथुष्टुके) बड़े भारी संघशक्ति से युक्त तू (या) जो (देवानां) देवों, विद्वानों, एवं विजयेच्छु और व्यवहार कुशल, ज्ञानद्रष्टा, तत्वदर्शी पुरुषों को (स्वसा) उत्तम रीति से अपने भीतर बैठाने वाली, विद्वान् सभासदों से बनी (असि) है। तू (आहुतम्) प्रदान किये या समस्त राष्ट्र से ग्रहण किये गये (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य कर और सञ्चित बल को (जुषस्व) स्वीकार कर। और हे (देवि) दिव्य गुणों से युक्त राजसभे! तू (नः प्रजां दिदिड्ढि) हमारी प्रजा को उत्तम मार्ग दर्शा। उत्तम सुख प्रदान कर।

स्त्री के पक्ष में—हे (सिनीवालि) हृदय में प्रेम से बंधने वाली और गृह का पालन करनेवाली! अथवा, प्रेम बन्धन में स्वयं बँधने और भरण पोषण करने योग्य! हे (पृथुष्टुके) विशालबन्धन! विशाल कामना युक्त, विशाल केशपाश से युक्त! बड़ी स्तुति योग्य, यशस्विनि! हे (देवि) कामना युक्त प्रियतमे! (या) जो तू (देवानाम्) विद्वानों या कामना करने वाले अभिलाषी वरों के बीच में (स्वसा) सुभूषित, सुन्दर रूपवती होकर (असि) विराजती है तू मेरे (आहुतम्) दिये हुए (हव्यम्) स्वीकार करने योग्य अन्न वस्त्रालंकारादि पदार्थ को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर। और (नः) हमें (प्रजां) उत्तम सन्तान (दिदिड्ढि) प्रदान कर। उत्पन्न कर और उसको उत्तम शिक्षा दे।

'सिनीवाली'—दृष्टचन्द्राऽमावास्या सिनीवालीति सायणः। सिन-

मिति अन्ननामसु व्याख्यातम् । वालं पर्व इति देवराजः ।। सिनी प्रेमबद्धा चासौ बलकारिणी चेति दया० । सिनमन्नं भवति । सिनाति भूतानि । वालं पर्व । पर्व वृणोतेः । तस्मिन्नवतीति वा । वालिनीवा, वालेनैवास्या-मणुत्वत्वाच्चन्द्रमाः सेवितव्यो भवति इति वा । निरु० १ । १ । २ । १० ॥

'स्वसा'—सुअसा भवति । स्वेपु सीदति वा । निरु० ११ । ३ । ११ ॥

पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥ ११ ॥

गृत्समद ऋषिः । सरस्वती देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(सस्रोतसः) समान रूप से स्रोत अर्थात् प्रवाह वाली नदियें जिस प्रकार अधिक जलवाली, बड़ी नदी में मिलकर उसी में लीन हो जाती हैं उसी प्रकार (पञ्च) पांचों (नद्यः) समृद्ध प्रजाएं (सरस्वतीम्) प्रशस्त वेद ज्ञानवाली विद्वत्सभा या विद्वान् को (सस्रोतसः) समान ज्ञानप्रवाह वाली होकर (अपियन्ति) आ मिलती हैं और उसी में लीन हो जाती हैं । वह (सरस्वती) सरस्वती उत्तम वेद ज्ञान को धारण करने वाली विद्वत्सभा और विद्वान् जन (पञ्चधा) पांचों प्रकार के जनों को धारण करने वाला होकर (देशे) देश, राष्ट्र में (सरित्) नदी के समान सबके जीवनाधार ज्ञान रूप जल को फैलाने वाला और नदी के समान ज्ञान के अक्षय प्रवाह और निष्पक्षपात रूप से सबके मलों का शोधक (अभवत्) हो जाता है ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद पांचों समृद्ध प्रजाएं विद्वानों के वेदमय ज्ञान-वाणी में मिलकर और उसको प्रमुख बनाकर एकाकार ज्ञानवती हो जाती हैं । वह वेदमयी वाणी पांचों को पालती पोषती है । वह नदी के समान सब के लिये समान रूप से उपयोगी, सुखजनक और पाप मलादि धोने वाली हो।

वाणी के पक्ष में—(पञ्चनद्यः) नदियों के समान प्रवाहरूप से इन्द्रिय नालिकाओं से बहने वाली पांच प्रकार की वृत्तियां (सस्रोतसः)

राजन्! (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (अव भर) अपने अधीन प्रजा का भरण पोषण कर। इससे (प्रवीता) अच्छी प्रकार कामना युक्त स्त्री के समान प्रेम से बंधकर प्रजा भी (सद्यः) शीघ्र ही (वृषणं) सब सुखों के वर्षक, वीर्यवान् राजा को (जजान) उत्पन्न करती है। वह (अरुषस्तूपः) हिंसा रहित ज्वालामय अग्नि के समान तेजस्वी हो जाता है। (अस्य) उसका (पाजः) पालन सामर्थ्य (रुशत्) शत्रुओं का नाशक होता है। और वह (इडायाः पुत्रः) पृथ्वी का पुत्र, पृथ्वीनिवासी पुरुषों को दुःखों से त्राण करने में समर्थ होकर (वयुने) उत्तम ज्ञान, कर्त्तव्य कर्म में भी (अजनिष्ट) सामर्थ्यवान् हो जाता है।

स्त्री पुरुष पक्ष में—(अरुषस्तूपः) अपने तेज या वीर्य से स्त्री को कष्टदायी न होकर पति (अस्य रुशत् पाजः) अपने तेजोमय वीर्य को (चिकित्वान् उत्तानायाम् अव भर) रोग रहित, गृहस्थ होकर उत्तान सोई पत्नी में धारण करावे। वह (प्रवीता सद्यः वृषणं जजान) प्रेम से बद्ध होकर शीघ्र ही अग्नि को अरणि के समान वीर्यवान् पुत्र को उत्पन्न करे। अथवा वह कामना युक्त होकर (वृषणं) वीर्य सेचन में समर्थ पुरुष को (जजान) उससे संग लाभ करके पुत्र रूप से उत्पन्न करे। (इडायाः) उत्तम स्त्री, या बीजारोपण की भूमि के (वयुने पुत्रः अजनिष्ट) उचित गर्भाशय में वह तेजो रूप वीर्य ही पुत्र रूप से उत्पन्न होता है।

इडा॑यास्त्वा प॒दे व॒यं नाभा॑ पृथि॒व्या ऽअधि॑।
जात॑वेदो॒ नि धी॑मह्यग्ने ह॒व्याय॒ वोढ॑वे ॥ १५ ॥

ऋ० ३ । २९ । ४ ॥

देवश्रवादेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । विराड् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन्! हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्, अग्रणी सेनानायक, (त्वा) तुझको (वयम्) हम (पृथिव्याः

१५—इळा पा०, ० वोळ्हवे इति काण्व० ।

नाभा अधि) पृथिवी के केन्द्र में और (इडायाः पदे अधि) स्तुति योग्य प्रजा के प्रतिष्ठित पद पर अथवा वाणी या आज्ञा प्रदान करने के आज्ञापक पद पर (हव्याय) स्तुति योग्य राजपद के (वोढवे) धारण करने के लिये (निधीमहि) स्थापित करते हैं।

आचार्य पक्ष में - हे विद्वन्! तुझको हम पृथिवी के बीच, उत्तम वाणी के प्रतिष्ठित आचार्य पद पर, प्रदान करने योग्य ज्ञान के प्रदान करने के लिये स्थापित करें।

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे ऽअङ्गिरस्वत्।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय॥ १६॥

ऋ० १। ६२। १॥

[१६-१७] नोधा ऋषिः। इन्द्रो देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हम लोग (शवसानाय) बल के समान दुष्टों का नाश करने वाले अथवा दुष्टों के नाश के लिये बल वृद्धि चाहने वाले (गिर्वणसे) समस्त स्तुतियों के पात्र (अंगिरस्वत्) वायु, सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी, बलवान् (सुवृक्तिभिः) उत्तम शत्रुओं का वर्जन करनेवाली शक्तियों से (स्तुवते) स्तुतियोग्य (ऋग्मियाय) विद्वान्, (विश्रुताय) विविध शौर्य आदि गुणों द्वारा प्रख्यात, (नरे) नायक के (शूषम्) बल और (आङ्गूषम्) घोषणा करने का अधिकार या यशोवृद्धि को (प्रमन्महे) अच्छी प्रकार चाहें और (सुवृक्तिभिः) उत्तम रीति से हृदय को खींचने वाली और पापनाशक ज्ञान वाणियों से (स्तुवते) शास्त्र के सिद्धान्तों का प्रवचन करनेवाले (ऋग्मियाय) स्तुतियोग्य एवं वेदमन्त्रों के ज्ञाता (विश्रुताय) विविध विद्याओं में प्रसिद्ध विद्वान् के (अर्कम्) स्तुति योग्य ज्ञान का (अर्चाम) आदर करें, उसे प्राप्त करें।

परमेश्वर के पक्ष में—विज्ञान के प्राप्त करने के लिये सर्व स्तुति योग्य

एक समान मनरूप स्रोत से ही बहती हैं। वे पांचों (सरस्वतीम् अपि-यन्ति) उत्तम ज्ञानमयी वाणी के रूप में लीन हो जाती हैं। अर्थात् पांचों ज्ञानेन्द्रियों का ज्ञान वाणी द्वारा प्रकट किया जाता है। (सा उ) वह वाणी भी (देशे) स्व-स्थान मुख में, (सरित्) निरन्तर बहनेवाली नदी के समान ही धारा प्रवाहरूप से निकलती (अभवत्) है।

दृषद्वती, शतद्रू, चन्द्रभागा, विपाशा, इरावती ये पांच नदियों का सरस्वती में मिलने परक अर्थ उवट ने किया है। पांच नदियें सरस्वती में मिल जाती हैं वह सरस्वती ही पञ्च प्रकार की या पांचगुनी होकर देश में नदी हो जाती है। 'दृषद्वती' आदि नामों का यहां उल्लेख न होने से ऐसा अर्थ करना असंगत है।

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑।
तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॒सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥१२॥

ऋ० १ । ३१ । १ ॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । जगती । निषादः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (अङ्गिराः) शरीर में रस के समान, अथवा अग्नि के समान तेजस्वी (ऋषिः) मन्त्रार्थद्रष्टा, (देवानाम्) विद्वानों और तेजस्वी पुरुषों के बीच में (देवः) सबसे अधिक विद्वान्, तेजस्वी, विजयी और (प्रथमः) सबसे प्रथम, मुख्य, सबका (शिवः सखा) कल्याणकारी मित्र (अभवः) हो। (तव) तेरे (व्रते) बनाये नियम व्यवस्था में रह कर (कवयः) विद्वान्, क्रान्तदर्शी पुरुष (विद्मनापसः) समस्त कर्त्तव्य कर्मों को जानने वाले हों और (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वीर पुरुष (भ्राजद्-ऋष्टयः) प्रखर, तेजस्वी, चमचमाते हुए शस्त्रों वाले (अजा-यन्त) हों।

परमेश्वर के पक्ष में—हे अग्ने ! परमेश्वर ! तू ही सबसे प्रथम ज्ञानवान्

सबका द्रष्टा, सब देवों का देव, सबका कल्याणकारी, सबका मित्र है ! तेरे व्रत में दीक्षित होकर विद्वान् पुरुष (विभ्रनापसः) सब सत्कर्मों के ज्ञाता और सब ज्ञानों के द्रष्टा हो जाते हैं ।

त्वन्नो॑ऽअग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॒श्च वन्द्य ।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेष॒ꣳ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते ॥१३॥

ऋ० १ । ३१ । १२ ॥

हिरण्यस्तूप आंगिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! (तव व्रते) तेरे नियम व्रत में रहने वाले (नः) हमें (त्वम्) तू हे (देव) दानशील, सर्वद्रष्टः ! हे विजिगीषो ! (तव पायुभिः) अपने पालनकारी सामर्थ्यों से (नः मघोनः) हमारे धन सम्पन्न पुरुषों और (तन्वः च) हमारे शरीरों को भी (रक्ष) पालन कर । हे (वन्द्य) वन्दनीय ! हे स्तुति करने योग्य ! तू हमारे (तोकस्य) पुत्र का और (तनये) पुत्र के पुत्र, पौत्रादि सन्तति और (गवाम्) गौ आदि पशुओं का भी (अनिमेषम्) निरन्तर (रक्षमाणः) रखवाला (असि) हो ।

परमेश्वर पक्ष में—हे अग्ने ! परमेश्वर ! तू अपने रक्षा सामर्थ्यों से ऐश्वर्यवानों की और हमारे शरीरों की रक्षा कर । हे स्तुति योग्य ! तू हमारे पुत्र, पौत्र और गौओं की निरन्तर रक्षा कर । हम तेरे बनाये नियमों में रहें ।

उ॒त्ता॒नाया॒मव॑ भरा चिकि॒त्वान्त्स॒द्यः प्रवी॑ता॒ वृष॑णं जजान ।
अ॒रु॒षस्तू॑पो॒ रुश॑दस्य॒ पाज॒ऽइडा॑यास्पु॒त्रो व॒युने॑ऽजनिष्ट ॥ १४ ॥

ऋ० ३ । २९ । ३ ॥

देवश्रवोदेववातौ भारतावृषी । अग्निर्देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(उत्-तानायाम्) उत्तम रूप से विस्तृत पृथिवी में तू हे

१०—'इळायास्पु०' इति काण्व० ।

प्राण के समान सर्व जीवनाधार, ज्ञानी, स्तुति योग्य, प्रसिद्ध परमेश्वर के बलकारी वेदमय आघोष रूप मन्त्रों या स्तुति योग्य स्वरूप की स्तुति करें और विचार और चिन्तन करें।

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्य॑ᳪं शवसा॒नाय॒ साम॑। येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा ऽअर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन्॥ १७॥

ऋ० १। ६२। २॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (वः) आप लोग (शवसानाय) बल वृद्धि के इच्छुक (महे) महान् राजा के लिये (आङ्गूष्यम्) घोषणा करने योग्य, कीर्त्तिजनक, (महि नमः) बड़ा भारी आदर सत्कार एवं शत्रु नमाने में समर्थ बल और अन्नादि ऐश्वर्य और ऐसे (साम) साम, स्तुति वचन, (प्र भरध्वम्) अच्छी प्रकार प्रदान करो, (येन) जिससे (नः) हमारे (पूर्वे पितरः) श्रेष्ठ पालक जन (पदज्ञाः) पद अर्थात् ज्ञान योग्य तत्वों के जाननेवाले (अंगिरसः) ज्ञानी और तेजस्वी पुरुष (अर्चन्तः) योग्य रूप से वर्त्तते हुए (गाः) नाना भूमियों, ज्ञान-वाणियों, और गौ आदि समृद्धियों को (अविन्दन्) प्राप्त करते हैं।

परमेश्वर और आचार्य के पक्ष में—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के लिये (आङ्गूष्यं साम महि नमः प्र भरध्वम्) आंगूष्य साम अर्थात् स्तुति योग्य सामगान और बड़ा भारी विनय प्रकट करो। (येन) जिसके बल से (नः पूर्वे पितरः) हमारे पूर्व के पालक गुरुजन और (अंगिरसः) ज्ञानवान् पुरुष (पदज्ञाः) आत्मस्वरूप को जानने हारे होकर (अर्चन्तः) स्तुति करते हुए (गाः) वेदवाणियों को ज्ञानरश्मियों के समान स्वयं प्राप्त करते और औरों को प्रदान करते हैं।

इ॒च्छन्ति॑ त्वा सो॒म्यासः॒ सखा॑यः सु॒न्वन्ति॒ सोमं॒ दध॑ति॒ प्रया॑ᳪंसि। तिति॑क्षन्ते ऽअ॒भिश॑स्तिं॒ जना॑ना॒मिन्द्र॒ त्वदा कश्च॒न हि प्र॑के॒तः॥१८॥

ऋ० ३। ३०। १॥

देवश्रवोदेववातौ ऋषी । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे इन्द्र ! राजन् ! आचार्य ! (त्वा) तुझको (सोम्यासः) राष्ट्र-ऐश्वर्य प्राप्त करनेहारे उसके योग्य (सखायः) मित्रगण (त्वा) तुझे (इच्छन्ति) चाहते हैं । (सोमं सुन्वन्ति) सोम, ऐश्वर्य को उत्पन्न करते हैं । अथवा ऐश्वर्यवान् सबके आज्ञापक तेरा (सुन्वन्ति) अभिषेक करते हैं । और (प्रयांसि दधति) मनोहर अन्नादि उत्तम पदार्थों को धारण करते और प्रदान करते हैं । और (अभिशस्तिं) शत्रुओं के द्वारा किये जानेवाले घोर शस्त्राघातों और निन्दाप्रवादों को भी (तितिक्षन्ते) सहते हैं । हे (इन्द्र) राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! (जनानाम्) प्रजाजनों के बीच में (प्रकेताः) उत्कृष्ट ज्ञानवान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और कीर्त्तिमान् (त्वत्) तुझ से (कः चन) दूसरा कौन है ? कोई भी नहीं ।

परमेश्वर के पक्ष में—सोम रस के इच्छुक यज्ञकर्त्ता और ब्रह्मानन्द रस के इच्छुक जन तुझे चाहते हैं। सोम अर्थात् परमेश्वर की स्तुति करते हैं उत्तम ज्ञानों का मनन करते हैं । निन्दा वचनों को सहते हैं और तितिक्षा का अभ्यास करते हैं । हे परमेश्वर ! तुझ से बड़ा ज्ञानी दूसरा कौन है?

**न ते॑ दू॒रे प॑र॒मा चि॒द्रजा॒ᳬस्या तु प्र या॑हि हरिवो॒ हरि॑भ्याम् ।
स्थि॒राय॒ वृष्णे॒ सव॑ना कृ॒तेमा यु॒क्ता ग्रावा॑णः समिधा॒ने ऽअ॒ग्नौ ॥१६॥**

ऋ० ३ । ३० । २ ॥

ऋष्यादि पूर्ववत् ॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के स्वामिन् ! (परमा चित् रजांसि) दूर से दूर के लोक, प्रजाजनों के निवासस्थान और शत्रुओं के देश भी (ते) तेरे लिये (दूरे न) दूर नहीं है । तू (हरिभ्याम्) अश्वों से ही(आ प्र याहि) सब देशों में प्रयाण कर, आया जाया कर । (स्थिराय) स्थिर (वृष्णे) सुखों के वर्षक एवं बलवान् तेरे लिये ही (इमा) ये सब (सवना) ऐश्वर्य उत्पादक कार्य (कृता) किये जाते हैं । और (समिधाने अग्नौ)

अति प्रदीप्त अग्नि में जिस प्रकार (सवाना कृता) यज्ञ कर्म करने पर (ग्रावाणः) मेघ उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार (समधाने अग्नौ) तुझ नायक, अग्रणी पुरुष के प्रचण्ड और अग्नि के समान युद्ध में प्रज्वलित हो जाने पर (ग्रावाणः) ज्ञानों का उपदेश करने वाले विद्वान् एवं पाषाणों के समान दुष्टों के दलन करने वाले शस्त्रधर बलवान् पुरुष भी (युक्ताः) योग्य स्थानों पर नियुक्त होते हैं ।

परमेश्वर के पक्ष में—हे ईश्वर ! दूर से दूर के स्थान भी तेरे लिये दूर नहीं । तू अपने धारण और आकर्षण सामर्थ्य से सब में व्याप्त है । तेरे ही किये हुए ये सब कार्य हैं । हृदय में तेरे प्रदीप्त हो जाने पर ही ये सब (ग्रावाणः) समस्त स्तुतिकर्त्ता विद्वान् भी योग द्वारा तेरा साक्षात् करते हैं, वे समाहित होते हैं ।

अषा॑ढं यु॒त्सु पृत॑नासु प॒प्रिꣳ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम् ।
भ॒रे॒षु॒जाꣳ सु॑क्षि॒तिꣳ सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥२०॥

ऋ० १ । ९१ । २१ ॥

२०—२३ गोतम ऋषिः । सोमो देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! सेनापते ! (युत्सु) युद्धों में (अषाढम्) शत्रुओं से जिसको पराजित न होने वाले और (पृतनासु) सेनाओं में (पप्रिम्) पूर्ण बलवान् एवं सबके रक्षा करने वाले, (स्वर्षाम्) सबको सुख और ऐश्वर्य के देने और बांटने वाले (अप्साम्) मेघ जिस प्रकार जल सबको प्रदान करता है उसी प्रकार सबको प्राण अन्न देने वाले, अथवा (अ-प्साम्) प्रजाओं के धन को स्वयं न खा जाने वाले, (वृजनस्य) शत्रुओं के वारण करने वाले सैन्य बल के (गोपाम्) रक्षक, (भरेषुजां) संग्रामों और यज्ञों एवं प्रजा के भरण पोषण के कार्यों में प्रसिद्ध एवं विजयी (सुक्षितिम्) उत्तम निवासस्थान से युक्त, उत्तम

२०—अषाळ्हं० इति काण्व० ।

भूमि के स्वामी, दृढ़ दुर्गवान्, (सुश्रवसम्) उत्तम यश ऐश्वर्य और अन्नादि से समृद्ध (जयन्तम्) विजय करने हारे (त्वाम् अनु) तेरे ही हर्ष के साथ हम प्रजाजन भी (मदेम) प्रसन्न एवं तृप्त, सुखी होकर रहें ।

सोमो॑ धे॒नुᳪं सोमो॒ अर्व॑न्तमा॒शुᳪं सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं॑ ददाति ।
सा॒द॒न्यं॑ विद॒थ्य॒ᳪं स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो दद॑श॒दस्मै ॥ २१ ॥

भा०—(सोमः) सबका प्रेरक, अभिषिक्त हुआ राजा (धेनुं ददाति) दुधार गौओं को देता है । (सोमः) वह अभिषेक योग्य आज्ञापक राजा ही (आशुम् अर्वन्तम् ददाति) वेगवान् अश्वसैन्य और कर्म कुशल वीर पुरुष प्रदान करता है । (यः) जो प्रजाजन अपने आपको और अपने राज्य को (अस्मै) इस राजा के अधीन (ददाशत्) दे देता है उस प्रजा को वह (सादन्यम्) उत्तम गृहों और राजसभाओं उत्तम पदों पर विराजने योग्य, (विदथ्यम्) ज्ञान सत्संग, यज्ञ आदि के योग्य ज्ञानवान् (सभेयम्) सभा में कुशल, (पितृश्रवणम्) पिता, पालक गुरु जनों के उपदेश और आज्ञाओं के श्रवण करने वाले अथवा पिताओं के यश कीर्ति फैलाने वाले पुरुषों को भी (ददाति) प्रदान करता है ।

त्वमि॒मा ऽओष॑धीः सोम॒ विश्वा॒स्त्वम॒पो ऽअ॑जनय॒स्त्वं गाः ।
त्वमा त॑तन्थो॒र्व॒न्तरि॑क्षं॒ त्वं ज्योति॑षा॒ वि तमो॑ ववर्थ ॥ २२ ॥

भा०—हे (सोम) अभिषिक्त राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! (इमा ओषधीः) मेघ जिस प्रकार जल वर्षा कर इन नाना ओषधियों को पैदा करता है उसी प्रकार (त्वम्) तू ऐश्वर्य प्रदान करके (इमाः) इन नाना (ओषधीः) शत्रु संतापक बल और तेज को धारण करने वाली वीर सेनाओं और वीर पुरुषों को (अजनयः) उत्पन्न करता प्रकट करता है । (त्वम्) तू मेघ जिस प्रकार जलों की वर्षा करता है उसी प्रकार (अपः अजनयः) जलों के समान शान्तिदायक आप्त पुरुषों, उत्तम बुद्धियों और कर्म व्यवस्था को (अजनयः) प्रकट करता है । (त्वं गाः) तूही गौ

आदि पशुओं और राजाज्ञा रूप वाणियों को प्रकट करता है। (त्वम्)तू (अन्तरिक्षम्) वायु के समान विशाल अन्तरिक्ष और सबको आवरण और रक्षा करने वाले रक्षक, शासक विभाग को (आततन्थ) विस्तृत कर। और (त्वं) तू ही (ज्योतिषा) सूर्य के समान प्रकाश से (तमः) अन्धकार के समान प्रजा के कष्टदायी और शोक के हेतु दुःखों को (ववर्थ) निवारण कर।

अथवा—वह राजा ही सोम आदि ओषधियों को, वही जलों की लहरों को, गौ आदि पशुओं को उत्तम बनावे। वही विशाल आकाश को वश कर ज्ञानज्योति से अविद्या, अन्यायादि को दूर करे।

परमात्मा के पक्ष में—वह समस्त अन्न आदि ओषधि, जल, पशु प्रदान करता, आकाश को बनाता और सूर्य से अन्धकार और ज्ञान से मोह को दूर करता है।

देवेन॑ नो॒ मन॑सा देव सोम रा॒यो भा॒गꣳ स॑हसावन्न॒भि यु॑ध्य।
मा त्वा त॑न॒दीशि॑षे वी॒र्य॑स्यो॒भये॑भ्यः॒ प्र चि॑कित्सा॒ गवि॑ष्टौ ॥२३॥

ऋ० १। ९१। २३॥

भा०—हे (सहसावन्) बलपूर्वक शत्रु को पराजय करके विजय लाभ करने हारे! हे (देव) राजन्! प्रजाओं के सुखदाता एवं शत्रु पर विजय करने के इच्छुक! तू (देवेन मनसा) विजय की कामना वाले मन से (नः) हमारे (रायः भागम्) ऐश्वर्य को ले लेने वाले शत्रु को (अभि-युद्धय) युद्ध में परास्त कर। तू (उभयेभ्यः) शत्रु और मित्र दोनों पक्षों के लोगों के (वीर्यस्य) बलों पर (ईशिषे) अपना स्वामित्व करने में समर्थ है। शत्रु (त्वा मा तनत्) तुझे न व्याप ले, तुझे न दबाले! तू (गविष्टौ) वाणों के निरन्तर प्रहारों के स्थान संग्राम में (प्र चिकित्स)

२३—ना इष्टौ इति काण्व०।

शत्रुओं को रोगों के समान दूर करने का यत्न कर, अथवा (प्र चिकित्स) युद्ध से प्राप्त क्षत आदि की उत्तम चिकित्सा का प्रबन्ध कर।

अथवा—(रायः भागं नः अभियुद्ध्य) ऐश्वर्य का भाग हमें प्राप्त करा। (गविष्टौ उभयेभ्यः प्र चिकित्स) स्वर्ग, सुख के निमित्त, हमारे ऐहिक पारमार्थिक सुखों के बीच में आये विघ्न निवारण कर। (मही०, दया०, उबट)

अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभः॑ पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न्।
हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व ऽआगा॒द्दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥२४॥

ऋ० १।३५।८॥

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः। सविता देवता। भुरिक् पंक्तिः। पंचमः

भा०—राजा के पक्ष में—(सविता) सबका प्रेरक, सञ्चालक, ऐश्वर्य का उत्पादक सूर्य के समान प्रखर तेजस्वी, (देवः) विजिगीषु राजा (हिरण्याक्षः) प्रजा के प्रति हित और रमणीय चक्षु वाला, सौम्य दृष्टि होकर (दाशुषे) भेंट और कर प्रदान करने वाले प्रजाजन को (वार्याणि) वरण करने योग्य, उत्तम २ (रत्नानि) रत्न रमणयोग्य पदार्थों को (दधत्) स्वयं धारण करता और प्रदान करता हुआ (आगात्) आवे, प्राप्त हो। और सूर्य जिस प्रकार (अष्टौ ककुभः) ४ दिशा, ४ उपदिशा मिलाकर आठों दिशाओं को, (पृथिव्याः योजना) पृथिवी पर के समस्त प्राणियों और (त्री धन्व) तीनों लोकों और (सप्त सिन्धून्) प्रवाहित होने वाले स्थूल सूक्ष्म जलों को भी (वि अख्यत्) विशेष रूप से प्रकाशित करता है, उसी प्रकार राजा भी (अष्टौ ककुभः) आठों दिशाओं, (पृथिव्याः योजना) पृथिवी के साथ योग रखने वाले या कोश, योजनादि भागों या पृथ्वी से युक्त प्राणियों, या (त्री धन्व) तीनों अन्तरिक्ष अर्थात् आकाश और गतिशील नद नालों, या सातों समुद्रों को (वि अख्यत्) विशेष रूप से देखे। सब पर अपनी चक्षु रक्खे।

महर्षिदयानन्दः—ऋग्वेदे—'पृथिव्यामध्ये स्थितानामेकोनपञ्चाशत् क्रोशपर्यन्तेऽन्तरिक्षे स्थूलसूक्ष्मलघुगुरुत्वरूपेण स्थितानामपां सप्तसिंध्विति संज्ञा'। यजुर्वेदभाष्ये—'पृथिवीमारभ्य द्वादशक्रोशपर्यन्तं गुरुत्वलघुत्वभूतानां सप्तविधानामपामवयवाः' इत्यादि उभयविधलेखनं सुविचार्यम् ॥

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते। अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम्ऋ॑णोति ॥२५॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः। निचृज्जगती। सविता देवता। निषादः ॥

भा०—जिस प्रकार (सविता) रसों और प्रकाशमय किरणों का उत्पादक सूर्य (हिरण्य पाणिः) सुवर्ण के समान तीक्ष्ण किरणों को जलादि ग्रहण करने वाले हाथों के समान धारण करता हुआ (विचर्षणिः) समस्त विश्व को अपने प्रकाश से दिखलाता और तीव्र ताप से पदार्थों को फाड़ता और विश्लेषण करता है। और वह सूर्य जिस प्रकार (उभे द्यावापृथिवी अन्तः) आकाश और पृथिवी दोनों के बीच में स्थित होकर गति करता है और जिस प्रकार सूर्य (अमीवां) रोगकारी पीड़ाओं को और रात्रि के अन्धकार को भी (अप बाधते) दूर करता और नष्ट करता है। और जब वह (सूर्यम्) सूर्य अपने ही स्वरूप को (वेति) प्रकट करता है तब भी (कृष्णेन) अन्धकार के नष्ट करनेवाले (रजसा) तेज से (द्याम्) आकाश को (अभि ऋणाति) सब प्रकार से व्याप लेता है उसी प्रकार यह (सविता) राष्ट्र के सब ऐश्वर्यों का उत्पादक, सबका प्रेरक राजा (हिरण्यपाणिः) सबके हितकारी और रमण योग्य व्यवहारों वाला, एवं सुवर्ण आदि रत्नों को दूसरों के देने के लिये अपने हाथ में, या वश में करके (विचर्षणिः) समस्त मनुष्यों में विशेष पुरुष होकर एवं विविध प्रकार से सबका द्रष्टा होकर (उभे द्यावापृथिवी अन्तः) दोनों राजवर्ग और प्रजावर्ग या शत्रु और मित्र दोनों राष्ट्रों के बीच में (ईयते) आ खड़ा होता है। दोनों के बीच मध्यस्थ रूप से सर्वमान्य जाना जाता है

तब ही वह (अमीवाम्) रोग पीड़ा के समान दुःखदायी शत्रु सेना को भी (अप बाधते) दूर करता है। और (सूर्यम् वेति) सूर्य पद को प्राप्त करता है। और (कृष्णेन रजसा) शत्रु बल को कर्षण अर्थात् क्षीण कर देने वाले तेज से (द्याम्) देदीप्यमान राजसभा या उच्च पद को (ऋणोति) प्राप्त करता है।

अथवा—जब (सूर्यम् = सूर्यः) सूर्य ही (वेति) अस्त हो जाता है तब (द्याम् कृष्णः न रजसा कृणोति) आकाश को काले अन्धकार से ढक देता है। (दया० यजुर्भाष्ये) अथवा—जब वह सूर्य (सूर्यम्) रश्मि समूह को (वेति) प्रकट करता है तब (कृष्णेन रजसा) आकृष्ट लोकों द्वारा अपना प्रकाश प्राप्त करवाता है। (दया० ऋग्भाष्ये)

हिरण्यहस्तो ऽअसुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः॥ २६॥
ऋ० १। ३५। १०॥

भा०—(हिरण्यहस्तः) सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त और सब दिशाओं में अपने किरणरूप हस्तों वाला (असुरः) सबको प्राणदाता, बलवान् (सुनीथः) सुखपूर्वक सबको प्राप्त, (सुमृडीकः) उत्तम सुखप्रद, (स्ववान्) अपने उत्तम गुणों से युक्त (अर्वाङ् याति) अपने समस्त गुणों को प्रकट करता हुआ सूर्य या वायु जिस प्रकार प्राप्त होता है उसी प्रकार यह राजा और सभापति (हिरण्यहस्तः) प्रजा के हित और रमण करने योग्य सुखकारी पदार्थों को और सुवर्ण आदि बहुमूल्य धनैश्वर्यों को अपने हाथ में, अपने अधीन रखने हारा, तेजस्वी (असुरः) समस्त प्रजाओं को प्राण देने वाला, उन पर अनुग्रह करने और उनको वृत्ति देने वाला, (सुनीथः) उत्तम मार्ग में प्रजा को चलाने हारा, या उत्तम स्तुतियुक्त, (सुमृडीकः) सुखकारी, दयालु, (स्ववान्) धनाढ्य,

२६—सुम्राळीक इति काण्व०।

एवं अपने आत्मबल से युक्त होकर (अर्वाङ् यातु) अपने शत्रु के अभिमुख और प्रजा के प्रति भी मान करे। और वह (यातुधानानाम्) प्रजाओं को पीड़ा देने वाले, एवं दण्डित करने योग्य (रक्षसः) दुष्ट, चोर, डाकू आदि प्रजापीड़क लोगों को (अप सेधन्) दूर करता हुआ और (प्रतिदोषम्) प्रजा के प्रत्येक दोष के सुधार के लिये उनको (गृणानः) उत्तम मार्गोपदेश करता हुआ (देवः) दानशील, विद्वान्, सर्वद्रष्टा राजा (अस्थात्) सिंहासन पर स्थिति प्राप्त करे। अथवा (प्रतिदोषं गृणानः) प्रति रात्रि काल में या प्रतिदिन लोगों को सावधान करता हुआ विराजे।

'रक्षसः'—रक्षो रक्षयितव्यमस्मात्। इति निरु०। ४। १८॥

'प्रतिदोपम्'—प्रतिजनं यो दोषः तम्। श्रुतिस्मृति विहितधर्मपराङ्मुखानां यावन्तो दोषास्तावतो गृणानः इति महीधरः।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव॥२७॥

ऋ० १। ३०। ११॥

भा०—हे (सवितः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष! राजन्! (ते) तेरे बनाये (ये) जो (पूर्व्यासः) पूर्व के विद्वानों, आप्त जनों से बनाये एवं चले गये और पालन किये गये (सुकृताः) उत्तम रीति से रचे हुए धर्म कृत्य, (अन्तरिक्षे) और आकाश में विद्यमान (अरेणवः) धूलि रहित स्थानों के समान (अरेणवः) विद्वानों के हृदय में निर्मल मार्ग, सदाचार के मर्यादा रूप मार्ग या व्रताचरण हैं (तेभिः) उन (सुगेभिः) सुख से चलने योग्य (पथिभिः) मार्गों से (नः) हमें (अद्य) आज और सदा ही (रक्ष) पालन कर। हे (देव) दानशील, विद्वन्! तेजस्विन् राजन्! (नः) हमें तू (अधि ब्रूहि च) सन्मार्गों का उपदेश भी कर।

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्।
अविद्रियाभिरूतिभिः॥ २८॥ ऋ० १। ४६। १५॥

प्रस्कण्व ऋषिः । अश्विनौ देवते । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(उभा) दोनों (अश्विना) विद्या और अधिकारों में व्यास अध्यापक, सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष दोनों मुख्य अधिकारी (पिबतम्) उत्तम राष्ट्रैश्वर्य का उत्तम रस के समान पान, पालन या स्वीकार करें। और (उभा) दोनों (नः) हमें (शर्म) सुख, शरण (अविद्रियाभिः) अखण्डित, कभी नष्ट न होने वाले, दृढ़, अथवा त्रुटि रहित, छलछिद्र रहित एवं अनिन्दित, उत्तम (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (शर्म) सुख एवं शरण, उत्तम गृह आदि साधन (यच्छतम्) प्रदान करें।

'अविद्रियाभिः'—'दृ विदारणे' इत्यस्मादौणादिकः इयक् इति मही० । घञर्थेकस्ततोघस्तद्धित इति दया० । द्रा कुत्सायां गतौ इत्यस्मादौणादिकः किः । अविद्रिर्निन्दा, तद्विरोधिनीं स्तुतिं यान्तीति अविद्रियाः, ताभिरिति सायणः ।

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २६ ॥

ऋ० १ । ११२ । २४ ॥

कुत्स ऋषिः । अश्विनौ देवते । विराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अश्विनौ) दिन और रात्रि, सूर्य और चन्द्र दोनों के समान तेज, प्रभाव तथा सर्व जनों को आल्हाद करने वाले सेनाध्यक्ष और सभाध्यक्ष दोनों पदाधिकारी गणो ! आप दोनों (अस्मे वाचम्) हमारी वाणी को (अप्नस्वतीम्) उत्तम कर्म युक्त (कृतम्) करो । और हे (दस्रा) शत्रुओं और प्रजा के पीडाकारी दुःखों और दुष्ट पुरुषों के नाश करने वालो ! हे (वृषणा) माता पिता के समान प्रजा पर सुखों के वर्षण करने वालो ! तुम दोनों (अप्नस्वतीम् मनीषाम् कृतम्) शुभ कर्म से युक्त मन की इच्छा या बुद्धि को उत्पन्न करो, मैं प्रजाजन (वाम्) तुम दोनों को (अद्यूत्ये) द्यूत आदि छल युक्त कार्यों या शर्तों रहित,

निकार्य, कार्य में अथवा (अद्यूत्ये) प्रकाश रहित, अन्धकार के समय अज्ञात स्थानों में और (अवसे) प्रजा के रक्षण कार्य करने के लिये (वां) आप दोनों को (निह्वये) निरन्तर बुलाता हूं। आप दोनों (वाजसातौ) संग्राम में या ऐश्वर्य प्राप्ति के कार्य में (नः) हमारे (वृधे) बढ़ाने के लिये (भवतम्) समर्थ होवो।

'अद्यूत्ये'—द्यूतादागतं, द्यूते भवं वा द्यूत्यम्, न द्यूत्यमद्यूत्यं तस्मिन्।

द्युभि॑र॒क्तुभि॒ः परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥३०॥

ऋ० १। ११२। २५॥

कुत्स ऋषिः। अश्विनौ देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—(अश्विना) व्यापक अधिकार और सामर्थ्य वाले सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष, सूर्य चन्द्र के समान तुम दोनों (द्युभिः अक्तुभिः) दिनों और रात्रियों में आप दोनों (अरिष्टेभिः) अविनष्ट, एवं मंगलकारक सुख-प्रद हितकारी (सौभगेभिः) सौभाग्यों, धन सम्पदाओं से (अस्मान् परि-पातम्) हम प्रजाजनों की रक्षा करो। (तत्) तब (मित्रः वरुणः) मित्र, स्नेही और वरुण, दुष्टवारक, सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश और दण्डाध्यक्ष दोनों (नः) उस पालन के कार्य को (मामहन्ताम्) और अधिक उत्तम एवं कीर्त्ति और आदर योग्य बनावें। (अदितिः) अखण्ड राज्य शासन करने वाली राजसभा और (सिन्धुः) सब राज्यप्रबन्ध द्वारा समस्त देशों और प्रजाओं को परस्पर बांधने वाला, समुद्र के समान गम्भीर राजा (पृथिवी उत द्यौः) पृथिवी के समान विस्तृत और सूर्य के समान तेजस्वी होकर दोनों (मामहन्ताम्) राजा के रक्षण कार्य को उन्नत करें।

आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च।
हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒ना दे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न्॥ ३१॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३३। ४३॥

आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः।
दिवः सदांꣳसि बृहती वि तिष्ठस ऽआ त्वेषं वर्त्तते तमः ॥ ३२॥
अथर्व० १९ । ४७ । १ ॥

काशिपा नाम भरद्वाजकन्या ऋषिका । रात्रिर्देवता । पथ्या बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे (रात्रि) रात्रि के समान समस्त प्रजाओं को रमण कराने, सबको सुख देने वाली ! सबको दान एवं वेतनादि देने वाली राजशक्ते ! (पार्थिवं) पृथिवी का (रजः) समस्त लोक (पितुः) पालन करने वाले वायु और सूर्य के समान तेजस्वी बलवान् पुरुष के (धामभिः) धारण सामर्थ्यों और तेजों, पराक्रमों से (अप्रायि) पूर्ण रहे और तू (बृहती) बड़ी भारी शक्ति वाली होकर (दिवः सदांसि) उषःकाल जिस प्रकार आकाश में फैलती है उसी प्रकार राजसभा के (सदांसि) नाना अधिकार पदों पर (वितिष्ठसे) विशेष रूप से स्थित रह । और (तमः) अन्धकार जिस प्रकार सर्वत्र फैल कर आंखों को निर्बल कर देता है और (त्वेषं) प्रकाश जिस प्रकार सर्वत्र फैल कर प्राणियों को सामर्थ्यवान् करता है उसी प्रकार हे राजशक्ते ! तेरा (त्वेषं तमः) अति तेजस्वी रूप मित्रगण को अधिक सामर्थ्यवान् कर देने वाला और शत्रुओं को निर्बल एवं दिवान्ध करनेवाला बल (आवर्त्तते) सर्वत्र फैले है । यहां राज्य प्रबन्ध करने वाली शक्ति 'रात्रि' शब्द से कही गई है । विशेष विवरण अथर्ववेद के रात्रि सूक्त के व्याख्यान में देखो ।

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ ३३ ॥ ऋ० १।९२।१३॥

गोतम ऋषिः । उषो देवता । पराष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे (वाजिनीवति) वाजिनी अर्थात् अश्व रथ आदि सेना से युक्त (उषः) शत्रुओं को दाह करने वाली, उनका नाश करने वाली, दण्डशक्ते ! तू (अस्मभ्यम्) हमारे हित के लिये (तत्) उस नाना

प्रकार के (चित्रम्) अद्भुत २ धन को (आ भर) प्राप्त करा (येन) जिससे हम लोग (तोकं च) सब दुःखों के नाशक पुत्रों और (तनयं च) अगली सन्तति के विस्तार करने वाले पौत्र आदि को भी (धामहे) धारण, पालन पोषण करें ।

स्त्री के पक्ष में—हे (वाजिनीवति उषः) बल, वीर्य, ज्ञान, बल और अन्नादि से समृद्ध उषा के समान शोभा से युक्त तू संग्रह करने योग्य उस धन को प्राप्त कर जिससे पुत्र पौत्रों का धारण पोषण करें ।

प्रातर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्र॑थ्ं हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑ ।
प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रथ्ं हु॑वेम ॥ ३४ ॥

ऋ० ७ । ४१ । १ ॥

वसिष्ठ ऋषिः । अग्न्यादयो देवताः । जगती । निषादः ॥

भा०—(प्रातः) जब पांच घड़ी रात्रि रहे तब प्रभात वेला में, प्रातःकाल, हम लोग (अग्निं हवामहे) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर का स्मरण करें और ज्ञानवान् आचार्य को नमस्कार करें । (प्रातः इन्द्रम्) प्रातःकाल में हम उस समस्त ऐश्वर्यों के दाता परमेश्वर का स्मरण करें और परम ऐश्वर्य को प्राप्त करें । अथवा आत्मा और ज्ञान के द्रष्टा आचार्य की उपासना करें । (प्रातः मित्रावरुणा हवामहे) प्रातःकाल के समय ही हम लोग मित्र अर्थात् प्राण के समान सबके स्नेहकारी, जीवनप्रद, प्रिय और वरुण अर्थात् अपान के समान सर्व मलनाशक और शक्तिमान् परमेश्वर की उपासना करें । इसी प्रकार प्रातः काल हम लोग प्राण और अपान की साधना प्राणायाम द्वारा करें । प्रातः काल हम लोग मित्र, स्नेही और श्रेष्ठ पुरुष को नमस्कार आदि सत्कार करें । (प्रातः अश्विना) माता पिता को प्रातः नमस्कार करें । सूर्य द्यौ और पृथिवी और दिन और रात्रि के उत्पादक परमेश्वर की भी प्रातः उपासना करें । (भगम्) सबके सेवन करने योग्य, (पूषणं) सबके पोषक, (ब्रह्मणस्पतिम्) वेद और ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर और ब्रह्म

अन्न बल, यश और ज्ञान के पालक विद्वान् तेजस्वी पुरुष की (प्रातः) प्रातःकाल, दिन के पूर्व भाग में, सब कार्यों से प्रथम, (सोमम्) सबके अन्तर्यामी प्रेरक, (उत) और (रुद्रम्) पापियों के रुलाने हारे, एवं सर्वरोगनाशक, सर्वज्ञानोपदेशक परमेश्वर की हम प्रातःकाल उपासना करें और इसी प्रकार विद्वान्, रोगहारी वैद्य और ज्ञानी विद्वानों का संगभी प्रातःकाल सर्व कार्यों के प्रथम करें ।

प्रातःकाल ही (सोम) सोम आदि ओषधियों का सेवन और (रुद्र) जीव आत्मा का चिन्तन भी प्रातःकाल ही किया करें । महर्षि दयानन्द ।

प्रातर्जितं भगमुग्रꣳ हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्त्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ॥३५॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष में—(यः) जो परमेश्वर (अदितेः) अखण्ड शक्ति और अखण्ड ब्रह्माण्ड का (विधर्त्ता) विविध उपायों से और विविध लोकों को धारण करने हारा है उस (जितम्) सबके विजेता और सबसे उत्कृष्ट (भगम्) सबके भजन करने योग्य और ऐश्वर्यशील, (उग्रम्) दुष्टों के प्रति सदा दण्ड देने वाले, उग्र, अति भयंकर परमेश्वर को (वयम्) हम (प्रातः) प्रातःकाल ही (हुवेम) स्मरण करें । (यं) जिस (भगं) उस भजन योग्य परमेश्वर को (आध्रः) अधीर एवं अतृप्त, भोगेच्छु या दरिद्र पुरुष (चित्) भी (तुरः चित्) अति शीघ्रकारी या शत्रुओं का नाशक बलवान् पुरुष और (राजा चित्) ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों से प्रकाशमान् राजा भी (मन्यमानः) आदर सत्कार एवं प्रेम से मनन करता हुआ (भक्षि) मुझे ऐश्वर्य का प्रदान कर (इति) इसी प्रकार (आह) प्रार्थना किया करता है ।

राजा के पक्ष में—हम उस ऐश्वर्यवान् राजा को सबसे प्रथम प्रातः बुलावें (यः अदितेः विधर्त्ता) जो पृथ्वी का विविध उपायों से धारण पोषण करता है और उसको तृप्त करता है । (यं मन्यमानः) जिसका आदर

करता हुआ (आध्रः) दरिद्र भी और (तुरः चित्, राजाचित्) शत्रु हिंसक बलवान् पुरुष और राजा भी (इति आह) ऐसा ही कहता है कि तू (भगं भक्षि) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य का विभाग कर दे, धन सम्पदाओं को बांट।

'आध्रः'—दरिद्रः इति सायणः। अपुत्रस्य पुत्रः [अथवा, अतृप्तस्य पुत्रः इति वा स्यात् न्यायादि में तृप्ति न करने वाले का पुत्र] ? इति दया० ध्रै तृप्तौ। न तृप्यति स अध्रः। दीर्घश्छान्दसः। यद्वा आ समन्तात् ध्रः। अध्र एव वा आध्रः। स्वार्थे तद्धितः। इति महीधरः।

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः।
भग॒ प्र णो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम ॥ ३६ ॥

भा०—हे (भग) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! राजन् ! हे (प्रणेतः) उत्कृष्ट मार्ग में लेजाने वाले ! उत्तम न्याय के करने हारे ! हे (सत्य-राधः) सज्जनों के योग्य धनैश्वर्यों के स्वामिन् ! सत्य के पालक, सत्यधन ! तू (नः) हमें (ददत्) नाना ऐश्वर्यों को प्रदान करता हुआ (धियम् उत् अव) हमारे कर्म और बुद्धि को उन्नत कर। अथवा (नः धियं ददत् उत् अव) हमें सद्बुद्धि और सत्कर्म की शिक्षा प्रदान करता हुआ उन्नत कर, हमारी रक्षा कर। हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! (नः) हमें (गोभिः) वेदवाणियों, गौवों और (अश्वैः) विद्वानों और वेगवान् अश्वों से (प्र जनय) उन्नत कर। हे (भग) ऐश्वर्यवन् ! हम (नृभिः) उत्तम कुलनायक और नेता पुरुषों से (नृवन्तः) उत्तम नेता वाले एवं पुत्र, भृत्य और सहायकों से युक्त (प्र स्याम) भली प्रकार हों।

उ॒तेदानीं॒ भग॑वन्तः स्यामो॒त प्रपि॒त्व उ॒त मध्ये॒ अह्ना॑म्।
उ॒तोदि॑ता मघवन्त्सूर्य्य॑स्य व॒यं दे॒वानां॑ँ सुम॒तौ स्या॑म ॥ ३७ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (उत) और हम भी (इदानीम्) अब (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान् एवं तुझ से स्वामी वाले हों।

(उत) और (अह्नाम्) दिनों के (प्रपित्वे) प्रारम्भ और (मध्ये) बीच में भी और (सूर्यस्य उदिता) सबके प्रेरक सूर्य के उदय काल में और सबके प्रेरक सूर्य के समान तेजस्वी राजा के अभ्युदय के समय में (वयम्) हम सब (देवानां) विद्वान् पुरुषों की (सुमतौ) शुभ, सुन्दर, सुखजनक सम्मति में (स्याम) रहा करें।

अभ्युदय काल में ईर्षावश हम लोग दुर्बुद्धि से नष्ट न हो जांय।

भग॑ एव भग॑वाँ२ऽ अस्तु देवास्तेन॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम।
तं त्वा॑ भग॒ सर्व॒ऽइज्जो॑हवीति॒ स नो॑ भग पुर॒ऽए॒ता भ॑वे॒ह ॥३८॥

भा०—हे (देवाः) देवगण, विजयशील एवं विद्वान् पुरुषो! (भगः) सबके सेवा भजन करने योग्य परमेश्वर और ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (भगवान् अस्तु) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी हो। (तेन) उसके द्वारा (वयं) हम भी (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्यवान्, स्वामी हों। हे (भग) ऐश्वर्यवन् (सर्व इत्) समस्त जन भी (तं त्वा) उस तुझे ही (जोहवीति) वार २ याद करता है, तेरा ही स्मरण करता है। तुझे ही सब अवसरों पर पुकारता है। हे (भग) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर! राजन्! (इह) इस लोक में (सः) वह तू (नः) हमारे (पुरः एता) सबसे आगे चलने हारा नायक (भव) हो।

सम॑ध्व॒राये॒षसो॑ नमन्त दधि॒क्रावे॑व॒ शुच॑ये प॒दाय॑।
अ॒र्वा॒ची॒नं व॑सु॒विदं॒ भगं॑ नो॒ रथ॑मि॒वाश्वा॑ वा॒जिन॒ऽआ व॑हन्तु ॥३९॥

भा०—(उषसः) उषाएं, प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (अध्वराय) हिंसारहित, परम पवित्र यज्ञ के लिये (सं नमन्त) अच्छी प्रकार आती हैं, प्रकट होती हैं। उसी प्रकार (अध्वरस्य) शत्रुओं से न मारे जाने योग्य प्रजापालन रूप राज्य कार्य के लिये (उषसः) शत्रुदाहक तेजस्वी पुरुष भी (सं नमन्त) अच्छी प्रकार एकत्र होते हैं और (दधिक्रावा) अपनी पीठ पर पुरुष को धारण करके चलने में समर्थ अश्व जिस प्रकार (पदाय)

प्राप्त कराने योग्य दूर देश को प्राप्त होता है उसी प्रकार (दधिक्रावा) राष्ट्र कार्य को अपने ऊपर धारण करके उसके चलाने और पराक्रम करने में समर्थ राजा (शुचये) अत्यन्त शुद्ध, तेजस्वी, ईर्षा, द्वेष, लोभ, काम राग आदि से रहित, ईमानदार, धर्मयुक्त (पदाय) पद प्राप्त करने के लिये (सं नमतु) प्राप्त हो। इसी प्रकार (दधिक्रावा) ध्यान बल से भ्रमण करने वाला योगी शुचि पद, परम पावन परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये यत्न करता है। और (वाजिनः अश्वाः) वेगवान् अश्व (रथम् इव) जिस प्रकार रथ को धारण करते हैं उसी प्रकार (अश्वाः) विद्या अधिकार में व्यापक सामर्थ्य वाले (वाजिनः) अन्न आदि ऐश्वर्य और ज्ञानों वाले विद्वान् पुरुष (रथम्) रथ युक्त, एवं रमण करने वाले, (अर्वाचीनम्) साक्षात् एवं हमारे अभिमुख (वसुविदं) ऐश्वर्य को देने और प्राप्त कराने वाले (भगं) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का (आ वहन्तु) उपदेश करें और (भगं आवहन्तु) ऐश्वर्यवान् राजा के राज्य को धारण करें।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः।
घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥४०॥

ऋ० ७। ४१। ७॥

भा०—जिस प्रकार (उषासः) प्रभात वेलाएं (अश्वावतीः) वेगवान् वायु और व्यापनशील प्रकाश से युक्त होने से 'अश्वावती' और (गोमतीः) किरणों से युक्त होने से 'गोमती' और (वीरवतीः) विविध पदार्थों को कंपाने वाले वायु से या सूर्य रूप पुत्र से युक्त 'वीरवती' और (भद्राः) सुखदायी होने से 'भद्रा' हैं, वे (घृतं दुहानाः) ओसरूप जल को प्रदान करती हैं उसी प्रकार (उषासः) शत्रुओं का दहन या नाश करने में समर्थ सेनाएं (अश्वावतीः) अश्वारोहियों से युक्त (गोमतीः) बैल आदि नाना पशुओं से युक्त (वीरवतीः) वीर पुरुषों वाली (भद्राः) उत्तम, सुखकारी होकर (सदम्) हमारे गृह और राजसभा या आश्रय-स्थान

राष्ट्र और राष्ट्रपति को (उच्छन्तु) प्राप्त हों, उसके यश और प्रताप को विकसित करें। वे (घृतं दुहानाः) तेज को पूर्ण करती हुई (विश्वतःप्रपीताः) सब प्रकार से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष द्वारा हृष्ट पुष्ट, सुरक्षित होकर रहें। हे अग्रणी, वीर पुरुषो ! (यूयं) तुम लोग (नः) हमारा (सदा) सदा काल (स्वस्तिभिः = सु अस्तिभिः) उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करो।

स्त्रियों के पक्ष में—(अश्वावतीः) विद्या और बल में व्याप्त एवं अश्व के समान हृष्ट पुष्ट, उत्तम पतियों से युक्त, (गोमतीः) पूर्ण इन्द्रियों, वेद वाणियों और गवादि पशुओं से समृद्ध, (वीरवतीः) पुत्रों से युक्त, (भद्राः) सुखदायिनी होकर (नः सदम् उच्छन्तु) हमारे गृह की शोभा को बढ़ावें। वे (घृतं दुहानाः) गौओं के समान प्रेमरस को भरपूर करती हुई (विश्वतः प्रपीताः) सब प्रकार उत्तम हृष्ट पुष्ट, सुरक्षित या बालकों द्वारा स्तन्य पान की जाने वाली हों। हे विद्वान् पुरुषो ! तुम उत्तम श्रेयस्कर साधनों से हमें पालन करो।

पूषन्तव॑ व्र॒ते व॒यं न रि॑ष्येम॒ कदा॑ च॒न।
स्तो॒तार॑स्त ऽइ॒ह स्म॑सि ॥ ४१ ॥ ऋ० ६ । ५४ । ९ ॥

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः सुहोत्रो वा ऋषिः। पूषा देवता। गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे (पूषन्) सब के पोषक परमेश्वर और राजन् ! हम (तव) तेरे बनाये (व्रतं) आचरण करने योग्य कर्म, नियम एवं सदाचार में रह कर (कदा चन) कभी भी (न रिष्येम) पीड़ित न हों, कष्ट न पावें। और (स्तोतारः) तेरे गुण गान करने हारे हम विद्वान् लोग (ते) तेरे ही होकर (इह) इस जगत् में (स्मसि) रहें।

प॒थस्प॑थः॒ परि॑पतिं वच॒स्या कामे॑न कृ॒तो ऽअ॒भ्या॑नड॒र्कम्।
स नो॑ रासच्छु॒रुध॑श्च॒न्द्राग्रा॒ धियं॑धियꣳ सीषधाति॒ प्र पू॒षा ॥४२॥
ऋ० ६ । ४९ । ८ ॥

ऋजिश्व ऋषिः। पूषा देवता। विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—जो (पूषा) सब प्रजाओं का पोषण पालन करने वाला राजा (वचस्या) वेदोक्त वचन और (कामेन) शुभ और प्रबल अभिलाषा से (कृतः) निष्पन्न, दृढ़, एवं तैयार होकर (पथः पथः परिपतिम्) प्रत्येक धर्म मर्यादा और उत्तम मार्ग के सब प्रकार से पालक, स्वामी (अर्कम्) स्तुति करने योग्य तेजस्वी सूर्य के तेजस्वी पद को (अभि-आनड्) साक्षात् सबके सन्मुख प्राप्त है (सः) वह (नः) हमें (चन्द्राग्राः) सुवर्णादि से सुभूषित अथवा सुवर्णादि से समृद्ध (शुरुधः) शोक और पीड़ादि के रोकने वाली सम्पदाएं (रासत्) प्रदान करें और वह ही (धियं धियं) प्रत्येक काम को (प्र सीषधाति) उत्तम रीति से चलावे ।

अथवा—मैं (कामेन कृतः) प्रबल अभिलाषा और इच्छा से युक्त होकर (वचस्या) उत्तम वेदवचनों से (पथः पथः परिपतिं) प्रत्येक सन्मार्ग-मर्यादा के पालक उस (अर्कम् अभ्यानड्) पूजनीय परमेश्वर को साक्षात् स्तुति कर प्राप्त होऊं । वह (चन्द्राग्राः) आह्लाद से भरी हुई (शुरुधः) शोकनाशनी उत्तम वाणियों को (रासत्) हमें प्रदान करें । वह (पूषा) सर्व पोषक परमेश्वर और विद्वान् (धियं धियं प्र सीषधाति) हमारी प्रत्येक बुद्धि और कर्म को अच्छे मार्ग में चलावे ।

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ ४३ ॥ ऋ० १ । २२ । १८ ॥

(४३, ४४) मेधातिथिर्ऋषिः । विष्णुर्देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(विष्णुः) व्यापक (गोपाः) गतिमान् लोकों का पालक, अथवा सबका रक्षक, (अदाभ्यः) कभी नष्ट और खण्डित न होने वाला, नित्य परमेश्वर (त्रीणि पदा) तीन जानने वा प्राप्त होने योग्य, तीनों लोकों, तीनों वेदों और तीन प्रकार के पदार्थों और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति रूप व्यवहारों को (विचक्रमे) विविध प्रकार से बनाता और चलाता है । और (अतः) उसीसे (धर्माणि) समस्त संसार के धारण करने वाले नियमों को भी (धारयन्) स्वयं धारण करता है ।

'त्रीणि पदा'—कारण, स्थूल, सूक्ष्म रूपाणि इति दया० यजुर्भाष्ये । भूम्यन्तरिक्षसूर्यरूपेण त्रिविधं जगद् इति तत्रैव भावार्थे स एव । अग्नि-वाय्वादित्याख्यानि इति उवटमहीधरौ ।

उस सबके रक्षक नित्य परमेश्वर ने तीन ज्ञान करने योग्य वेद ऋग्, यजुः, साम, बनाये । उससे ही वह समस्त धर्म मर्यादाओं को धारण करता है । इसी प्रकार राजा भी वेदत्रयी से समस्त मर्यादाओं और धर्मों को धारण करे । अथवा तीनों लोक जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति एवं सर्ग, स्थिति, प्रलय ये तीन पद हैं, उनसे ही समस्त स्थावर जंगम प्राणियों और लोकों को प्रभु धारण करता है ।

तद्विप्रा॑सो विप॒न्यवो॑ जागृ॒वांस॒ः समि॑न्धते ।
विष्णो॒र्यत्प॑र॒मं प॒दम् ॥ ४४ ॥ ऋ० १ । २२ । २१ ॥

भा०—(विप्रासः) विद्वान् मेधावी (विपन्यवः) विविध प्रकार से ईश्वर की स्तुति करने हारे विद्वान् पुरुष (जागृवांसः) सदा जागृत अप्रमादी रह कर, अथवा प्रातः उठ कर सुचित्त होकर (विष्णोः) व्यापक अन्तर्यामी परमेश्वर का (यत् परमं पदम्) जो सर्वोत्कृष्ट ज्ञातव्य स्वरूप परम पद मोक्ष है (यत्) उसको ही (सम् इन्धते) भली प्रकार प्रकाशित करते, उसी की साधना करते हैं ।

राजा के पक्ष में—सावधान विद्वान् पुरुष व्यापक, महान्, शक्तिशाली राजा के ही सर्वोत्कृष्ट पद को प्रकाशित करते हैं उसको नित्य अपने उत्तम विचारों से उत्कृष्ट बनाते हैं ।

घृ॒तव॑ती॒ भुव॑नानामभि॒श्रियो॒र्वी पृ॒थ्वी म॑धु॒दुघे॑ सु॒पेश॑सा ।
द्यावा॑पृथि॒वी वरु॑णस्य॒ धर्म॑णा॒ विष्क॑भिते अ॒जरे॒ भूरि॑रेतसा ॥४५॥
ऋ० ६ । ७० । १ ॥

भारद्वाज ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । जगती । निषादः ॥

भा०—(द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथ्वी दोनों जिस प्रकार (घृत-

वती) जल और प्रकाश से युक्त, (भुवनानाम्) उत्पन्न हुए समस्त लोक लोकान्तरों की (अभिश्रिया) सब प्रकार से शोभा और आश्रय देने वाले, (मधुदुघे) जल एवं मधुर पदार्थों के प्रदान करने वाले, (सुतेजसा) उत्तम रूप वाले तेज और सुवर्णादि से युक्त, (अजरे) कभी जीर्ण या विनष्ट न होनेवाले और (भूरिरेतसा) बहुत अधिक उत्पादक सामर्थ्य और जल से युक्त होकर भी (वरुणस्य) दोनों सूर्य और वायु के (धर्मणा) धारण सामर्थ्य से और इसी प्रकार सर्व श्रेष्ठ परमेश्वर के धारण सामर्थ्य से (विष्कभिते) विशेष रूप से थमे खड़े हैं, वे अपनी नियम मर्यादा को नहीं तोड़ते, उसी प्रकार राजवर्ग और प्रजावर्ग भी दोनों (घृतवती) पराक्रम और तेज से युक्त और घृत आदि पुष्टिकारक अन्न से युक्त हों। वे (भुवनानाम् अभिश्रिया) समस्त प्राणियों और लोकों के आश्रय देने वाले, समृद्धि से युक्त हों। दोनों (उर्वी) विशाल (पृथ्वी) विस्तृत सामर्थ्य वाले हों, (मधुदुघे) दोनों मधुर और शत्रुपीड़क बल और मधुर अन्न से भरे पूरे, एक दूसरे को पूरने वाले हों। (सुपेशसा) उत्तम रूपवान् सुवर्णादि से मण्डित हों। वे दोनों (वरुणस्य धर्मणा) स्वयं वरण किये गये श्रेष्ठ राजा के बनाये धर्म, नियम, राज्यव्यवस्था द्वारा (विष्कभिते) मर्यादा में स्थित हों, दोनों (अजरे) कभी नष्ट न हों। दोनों (भूरिरेतसा) बहुत वीर्यवान्, बलवान् हों। इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी स्नेहयुक्त, लक्ष्मीसम्पन्न, मधुर स्वभाव वाले, सुवर्णादि आभूषणों से युक्त, सुरूप, सुन्दर बुढ़ापे से रहित, अति वीर्य बल से युक्त, ब्रह्मचारी होकर (वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते) परस्पर वरण करके स्वयंवर धर्म के द्वारा अथवा सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के बनाये वेद के बतलाये धर्म से नियमित होकर रहें।

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान्।
वसवो रुद्रा ऽआदित्या ऽउपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ४६

ऋ० १० । १२८ । ६॥

विहव्य ऋषिः । वस्वादयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमारे (सपत्नाः) शत्रुगण हैं (ते) वे (अप भवन्तु) हमसे दूर रहें । (तान्) उनका हम लोग (इन्द्राग्निभ्याम्) सूर्य से जिस प्रकार मेघ और अन्धकार छिन्न भिन्न होते और अग्नि से जिस प्रकार अन्धकार दूर होता है उसी प्रकार इन्द्र, सेनापति और अग्नि, अग्रणी राजा, या वायु के समान बलवान् और अग्नि के समान तेजस्वी नायक पुरुषों से या विद्युत् और बायु के अस्त्रों से (अव बाधामहे) विनष्ट करें । उनको नीचे दबावें । और (वसवः) राष्ट्र में बसने वाले जन (रुद्राः) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुष और (आदित्याः) आदान प्रतिदान करने वाले वैश्य गण ये सब मिल कर (उपरिस्पृशम्) सबके ऊपर के पद पर पहुंचे हुए, (उग्रम्) अति बलवान् (मा) मुझको (चेत्तारम्) सबको सत्यासत्य बतलाने और चेताने वाला (अधिराजम्) अधिराज, (अक्रन्) बनावें ।

अथवा—(वसवः) पृथिवी आदि आठ वसु, (रुद्राः) १० प्राण और एक आत्मा और १२ मास सब मुझे यथार्थ विज्ञ राजा बनावें ।

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना । आयुस्तारिष्टं नीरपांꣳसि मृजतꣳ सेधतन्द्वेषो भवतꣳ सचाभुवा॥४७

ऋ० १ । ३४ । ११ ॥

हिरण्यस्तूप ऋषिः । अश्विनौ देवते । जगती । निषादः ॥

भा०—(नासत्या) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों सत्याचरण युक्त, (अश्विना) विद्या और अधिकार में व्यापक एवं एक दूसरे का उपभोग करने हारे होकर (त्रिभिः एकादशैः) तीन ग्यारह अर्थात् तेंतीस (देवैः) विद्वान् राजसभासदों या अध्यक्षों द्वारा (मधुपेयम्) ज्ञान, मधुर स्वभाव और बलपूर्वक रक्षा करने योग्य राष्ट्र को (आ यातम्) प्राप्त हों । वे (आयुः प्र तारिष्टम्) आयु, जीवन की वृद्धि करें । दीर्घ जीवन

भोगें। (अपांसि) सब प्रकार के पापों को (निर् मृक्षतम्) सर्वथा शुद्ध करें। (द्वेषः निः सेधतम्) आपस के द्वेष को दूर करें और (सचाभुवा भवतम्) सब कार्यों में एक साथ मिल कर पुरुषार्थशील होकर रहें।

इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी पृथिवी आदि पदार्थों सहित मधुर स्नेह से प्राप्त होने योग्य पालने योग्य गृहस्थ के मधुर उपभोग को प्राप्त करें। जीवन की वृद्धि करें, पापों को दूर करें, द्वेष त्याग करें, सदा साथ मिल कर रहें।

एष वु स्तोमो मरुत ऽइयङ्गीर्मान्दार्यस्य मान्यस्य कारोः।
एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ४८ ॥

ऋ० १। १६५। १५॥

अगस्त्य ऋषिः। मरुतो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो! एवं प्रजा पुरुषो! (मान्यस्य) मान करने योग्य एवं मनन करने हारे शत्रुओं का स्तम्भन करने वाले और (मांदार्यस्य) मुझे यह वीर सेनानायक काटेगा शत्रु गण में इस प्रकार का भय उत्पन्न करने हारे, सबको हर्ष देनेहारे (कारोः) क्रिया कुशल सेनापति का (वः) तुम्हारे ही हित के लिये (एषः स्तोमः) यह शस्त्रास्त्र समूह या नियम या अधिकार या व्यवस्था या सैनिक संघ है। और (इयं गीः) यह उसकी वाणी अर्थात् आज्ञा है। उसको आप लोग (वयाम्) दीर्घ जीवन वाले प्राणियों के (तन्वे) शरीरों की रक्षा के लिये (इषा) इच्छापूर्वक (आ अयासिष्ट) उसे प्राप्त होवो। हम लोग (इषं) अन्न और (जीरदानुम्) दीर्घ जीवन के देने वाले (वृजनम्) दुःखों के वारक बल को (विद्याम) प्राप्त करें। अथवा, उसको हम (इषं) सबके प्रेरक (वृजनं) शत्रुओं के वारक (जीरदानुम्) सबका जीवनप्रद (विद्याम) जानें।

सहस्तोमाः सहच्छन्दस ऽआवृतः सहप्रमा ऽऋषयः सप्त दैव्याः।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा ऽअन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥४९॥

ऋ० १०। १३०। ७॥

प्राजापत्यो यज्ञ ऋषिः । ऋषयो देवताः । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(रथ्यः) रथारोही पुरुष (न) जिस प्रकार (रश्मीन्) घोड़ों की रासों को थामे रहते हैं और वे (सहस्तोमाः) अपने दल के सदा साथ रहते हैं, (सहछन्दसः) एक साथ एक चाल से चलते हैं, (सहप्रमाः) वे एक साथ प्रयाण करते हैं और (पूर्वेषाम् पन्थाम् अनुदृश्य रश्मीन् अनु आलेभिरे) अपने से पहले गये हुए अग्रगामी, योद्धा नेताओं के मार्ग को देखकर घोड़ों की रासों को उसके अनुकूल ही चलाते हैं उसी प्रकार (धीराः) ध्यान-योगशील, धीर, बुद्धिमान् पुरुष (दैव्याः) विजयशील देव, राजा या परमेश्वर के अनुयायी, भक्त, (सप्त) शरीर में सात प्राणों के समान, एवं सदा सर्पण शील, आगे बढ़ने वाले, (ऋषयः) तर्कशील, ज्ञानद्रष्टा विद्वान् ऋषिगण भी (पूर्वेषां पन्थाम्) अपने पूर्व के विद्वान् पुरुषों के मान को (अनुदृश्य) भली प्रकार देख कर (सहस्तोमाः) एक साथ वेदस्तुतियों का प्रवचन करने वाले, (सहछन्दसः) एक साथ गुरु के अधीन वेदपाठ करने वाले, एक समान गति वाले, (सहप्रमाः) एक साथ समान रूप से यथार्थ ज्ञान करने हारे (दैव्याः) गुण कर्म में कुशल (आवृताः) गुरुकुलों से समावर्त्तन कराकर, स्नातक होकर (रश्मीन् अनु आलेभिरे) गृहस्थ और राज्य कार्य की महारथियों के समान रासों को ग्रहण करते हैं ।

आयुष्यं वर्चस्यꣳ रायस्पोषमौद्भिदम् ।
इदꣳ हिरण्यं वर्चस्वज्जैत्रायाविशतादु माम् ॥ ५० ॥

दक्ष ऋषिः । हिरण्यं तेजो देवता । भुरिगुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—(इदम्) यह (आयुष्यम्) आयु के बढ़ाने वाला, (वर्चस्यं) तेज ब्रह्मचर्य और विद्याध्ययन का हितकारी, (रायःपोषम्) धन समृद्धि को बढ़ाने वाला, (औद्भिदम्) दुःखों और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ, (वर्चस्वत्) उत्तम तेज और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त,

(हिरण्यम्) सब प्रजा का हित कर और सबको सुख देने वाला, सुवर्ण के समान तेजस्वी शस्त्र बल (माम्) मुझ राष्ट्रपति को (जैत्राय) शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिये (आविशतात्) प्राप्त हो।

न तद्रक्षांꣳसि न पिशाचास्तरन्ति देवानामोजः प्रथमजꣳह्येतत्। यो बिभर्त्ति दाक्षायणꣳ हिरण्यꣳ स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः स मनुष्येषु कृणुते दीर्घमायुः ॥ ५१ ॥ अथर्व० १ । ३५ । २ ॥

दक्ष ऋषिः । हिरण्यं तेजो देवता । भुरिक् शक्वरी । धैवतः ॥

भा०—(तत्) उस पूर्वोक्त तेज को (न रक्षांसि) न सत्कार्यों में विघ्न करने वाले, एवं दूसरों को पीड़ा देकर अपने को बचाने वाले दुष्ट, स्वार्थी पुरुष और (न पिशाचाः) न प्राणियों के मांस रुधिरादि खाने वाले, क्रूर, अत्याचारी लोग (तरन्ति) लांघते हैं। (हि) क्योंकि (एतत्) वह (प्रथमजम्) सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ सर्वश्रेष्ठ, (देवानाम् ओजः) देव, विद्वान् विजिगीषु पुरुषों का परम बल, पराक्रम एवं वीर्य है। (यः) जो (दाक्षायणः) दक्ष अर्थात् व्यवहारकुशल, एवं बलवान् प्रज्ञावान् पुरुष से संञ्चालन करने योग्य, (हिरण्यं) प्रजाओं के हितकर और सुखकारी बल, (बिभर्त्ति) धारण एवं पालन करता है (सः) वह (देवेषु) देव, विद्वान् विजिगीषु पुरुषों के बीच में (दीर्घम् आयुः कृणुते) दीर्घ जीवन उत्पन्न करता है। और (सः) वह ही (मनुष्येषु दीर्घम् आयुः कृणुते) मनुष्यों के भी जीवन को चिरस्थायी कर देता है। जो राजा अपने सेनाबल को पुष्ट करता है उसके बल का पार दुष्ट, राक्षस और पिशाच भी नहीं पाते। वह अपने वीर पुरुषों और प्रजाजनों के जीवनों की रक्षा करता है।

ब्रह्मचर्यपक्ष में—(देवानां हि एतत् प्रथमजं ओजः) विद्वान् पुरुषों का आयु के प्रथम भाग में उत्पन्न ब्रह्मचर्यरूप वीर्य है जिसको राक्षस और पिशाच नहीं पार कर सकते। दक्ष, अर्थात् बुद्धिमान् पुरुषों से प्राप्त

होने योग्य उसको जो धारण करता है वह विद्वानों और मनुष्यों में अपने जीवन को बहुत दीर्घ बना लेता है।

यदाबध्नन्दाक्षायणा हिरण्यꣳ शतानीकाय सुमनस्यमानाः।
तन्म ऽआबध्नामि शतशारदायायुष्माञ्जरदष्टिर्यथासम् ॥ ५२ ॥

अथर्व० १ । ५५ । १ ॥

दक्षऋषिः । हिरण्यं तेजो देवता । निचृत् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(दाक्षायणाः) दक्ष अर्थात् वीर्यबल और प्रज्ञा के एक मात्र आश्रय, और दक्ष, अर्थात् सेना बल के 'अयन' अर्थात् मुख्य अधिकारों पर स्थित वीर पुरुष (यद्) जिस बल को (सुमनस्यमानाः) परस्पर उत्तम चित्त वाले होकर (शतानीकाय) सैकड़ों सैनिकों के स्वामी सेनापति के लिये (आबध्नन्) बांधते हैं, उसको नियम व्यवस्था में रखते और अपने अधीन वेतनादि पर नियुक्त करते हैं। (तत्) उसी सैन्यबल को मैं (मे) अपने राष्ट्र के लिये (शतशारदाय) सौ बरस के दीर्घ जीवन तक के काल के लिये (आबध्नामि) बांधता हूं, व्यवस्थित करता हूं और (यथा) जिससे मैं (आयुष्मान्) दीर्घ आयु से युक्त होकर (जरदष्टिः) जरावस्था का भोग करने वाला पूर्णायु (असम्) होऊं।

ब्रह्मचर्य के पक्ष में—बलों और विज्ञानों के निधान विद्वान् पुरुष जिस विज्ञान और व्रत पालन रूप 'हिरण्य' अर्थात् वीर्य को शुभ चित्तवान् आचार्य गण सैकड़ों सेनाबलों से युक्त सेनापति के समान बलवान् एवं सौ वर्षों तक जीवन प्राप्त करने, एवं सैकड़ों विद्याओं को मुख से कहने में समर्थ होने के लिये नियम से पालन करते हैं उसी को मैं भी सौ वर्ष तक पूर्णायु प्राप्त करने के लिये बांधू, नियमपूर्वक पालन करूं।

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज ऽएकपात्पृथिवी समुद्रः। विश्वे देवा ऽऋतावृधो हुवाना स्तुता मन्त्राः कविशस्ता ऽअवन्तु ॥५३॥

ऋ० ६ । ५० । १४ ॥

भा०—राजापक्ष में—(बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले (अहिः) मेघ के समान सबके ऊपर शासक पद पर रह कर कभी न क्षीण होने वाला, सदा ऐश्वर्यों का वर्धक, (एकपात्) एकमात्र मोक्ष-रूप पाद, चरण या स्वरूप से युक्त (अजः) कभी उत्पन्न न होने वाले पर-मेश्वर के समान स्वयं (एकपात्) एक अद्वितीय होकर राष्ट्र के पालन करने वाला और (अजः) सब राष्ट्र का मुख्य संचालक, शत्रुओं का स्वयं उच्छेत्ता, (पृथिवी) पृथिवी के समान सर्वाश्रय और (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीर, अनेक रत्नों का आश्रय, (नः शृणोतु) हमारे कष्टों और प्रार्थनाओं को श्रवण करे। (विश्वे) समस्त (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले (हुवानाः) एक दूसरे से स्पर्धा पूर्वक बढ़ने हारे (देवाः) देवगण और (कविशस्ताः) विद्वान् दीर्घदर्शी पुरुषों से कहे गये, (स्तुताः) स्तुति युक्त एवं उत्तम (मन्त्राः) मनन करने योग्य विचार एवं वेदमन्त्र सभी (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

परमेश्वर—सर्वाश्रय होने से 'बुध्न्य' है। कभी नाश न होने से 'अहि' है। उत्पन्न न होने से 'अज' है। एकमात्र ज्ञानमय मोक्षस्वरूप होने से 'एकपात्' है। सर्वाश्रय और सब जगत् का विस्तार करने वाला होने से 'पृथिवी' है वही समस्त लोकों का उद्भव होने से 'समुद्र' है। वह हमारी प्रार्थना श्रवण करे।

इमा गिर॑ऽआदि॒त्येभ्यो॑ घृ॒तस्नूः॑ स॒नाद्राज॑भ्यो जु॒ह्वा॑ जुहोमि।
शृ॒णोतु॑ मि॒त्रो ऽअ॑र्य॒मा भगो॑ नस्तुविजा॒तो वरु॑णो॒ दक्षो॒ऽअंशः॑॥५४॥
ऋ० २।२७।१॥

कूर्मो गार्त्समद ऋषिः। आदित्या राजानो देवताः। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—मैं विद्वान् पुरुष (राजभ्यः) प्रजाओं से अधिक तेज वाले राजा रूप (आदित्येभ्यः) सूर्य के समान तेजस्वी और अदिति अर्थात् पृथिवी के के रक्षण, पालन, विभाजन आदि में कुशल शासक पुरुषों को (इमाः गिरः)

इन वेदवाणियों का (सनात्) चिरकाल से, सदा नित्य ही (जुह्वा) वाणी द्वारा (जुहोमि) उपदेश करूं। और (मित्रः) सबका स्नेही, सबको मरण से बचाने वाला, मित्र, (अर्यमा) शत्रुओं को नियम में बांधने वाला, न्यायकारी, (भगः) ऐश्वर्यवान्, सबके सेवा करने योग्य, (तुविजातः वरुणः) बहुतसे प्रजाजनों या सैनिक गणों में यशस्वी और बहुत से सेनादलों से बलवान् , सामर्थ्यवान् वरुण, दुष्टों और पापों के वारण में समर्थ पुरुष (दक्षः) दक्ष, चतुर, बुद्धिमान् (अंशः) सबके योग्य अंशों का विभाजन करने वाला इस समस्त अधिकारी वर्ग में से प्रत्येक (शृणोतु) मेरी ज्ञान-वाणियों का श्रवण करे।

अथवा—(राजभ्यः आदित्येभ्यः इमाः सनात् गिरः जुह्वा आजुहोमि) प्रदीप्त तेजस्वी आचार्यों से मैं इन नित्य वेदवाणियों को अपने ग्रहण साधन, और धारण सामर्थ्य से ग्रहण करूं, पढूं। उनको मित्र आदि जन श्रवण करें।

स॒प्त ऋष॑यः॒ प्रति॑हिताः॒ शरी॑रे स॒प्त र॑क्षन्ति॒ सद॒मप्र॑मादम्। स॒प्ताप॒ः स्वप॑तो लो॒कमी॑यु॒स्तत्र॑ जागृ॒तो ऽअस्व॑प्नजौ स॒त्र॒सदौ॑ च दे॒वौ ॥ ५५ ॥

काण्व ऋषिः। शरीर-सत्रसदो देवताः। भुरिग् जगती। निषादः ॥

भा०—जिस प्रकार (सप्त) सात (ऋषयः) विषयों को दिखाने वाले पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन और बुद्धि (शरीरे) इस शरीर में (प्रतिहिताः) प्रति विषय ज्ञान के लिये स्थापित किये गये हैं और वे (सप्त) सातों (अप्रमादम्) बिना प्रमाद के इस (सदम्) अपने आश्रयस्थान शरीर की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं। और जब वे (सप्त) सातों (आपः) सूक्ष्म व्यापनशील प्राण (स्वपतः) शयन करने वाले पुरुष के (लोकम्) द्रष्टा आत्मा को (ईयुः) प्राप्त होते हैं, उसी के भीतर लीन होते हैं उस समय भी (अस्वप्नजौ) आत्मा में अप्यय अर्थात् लीन न होने वाले, निद्रा रहित दो

(सत्रसदौ) सदा साथ रहने वाले (देवौ) देव, दिव्य गुणयुक्त प्राण और अपान गति करते हैं। उसी प्रकार (शरीरे) इस राष्ट्ररूप शरीर में (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः) सात द्रष्टा विद्वान् पुरुष प्रत्येक भिन्न २ पदों पर स्थापित किये जांय, वे सातों (अप्रमादम्) विना प्रमाद के (सदम्) सदा सभाभवन की रक्षा करें। (सप्त आपः) वे सातों आप्त पुरुष शयन करते हुए, असावधान दशा में प्रजाजन के रहते हुए भी (लोकम् ईयुः) समस्त पदार्थों के दर्शन करने वाले मुख्य पुरुष को प्राप्त रहते हैं और उस समय भी (सत्रसदौ) सज्जनों के कारण कार्य में अधिष्ठित कभी भी सोने या प्रमाद न करने वाले (देवौ) दो विद्वान् पुरुष नियुक्त हों।

सप्त ऋषयः—त्वक् चक्षुः श्रवण रसन घ्राण मनो बुद्धि लक्षणाः इति महीधरः। षडिन्द्रियाणि मनःसप्तमानि इत्युवटः।

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे।
उप प्रयन्तु मरुतः सुदानव ऽइन्द्र प्राशूर्भवा सचा॥ ५६॥

ऋ० १। १०। १॥

[५६—५७] काण्वो घौर ऋषिः। [५६—५८] ब्रह्मणस्पतिर्देवता। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) महान् ऐश्वर्य और बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन्! एवं विद्वन्! तू (उत्-तिष्ठ) उठ, उदय को प्राप्त हो। (देवयन्तः) तुझे देव अर्थात् उत्तम राजा बनाने की इच्छा करते हुए (त्वा ईमहे) तुझे प्रार्थना करते हैं। (मरुतः) मनुष्य, प्रजागण (सुदानवः) उत्तम दानशील होकर (उप प्र यन्तु) तेरे समीप आवें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सचा) समस्त समवाय या संघशक्ति से (प्राशूः भव) खूब उत्तम रीति से शत्रु पर शीघ्र यान करने हारा और राष्ट्र का उत्तम भोक्ता हो।

विद्वान् के पक्ष में—हे ब्रह्मणस्पते! विद्वन्! तू उठ हम देवों—विद्वानों और उत्तम गुणों की कामना करते हुए तेरे पास विद्यार्थी होकर आये हैं।

प्रजाजन दानशील होकर तेरे समीप दान देने के लिये आवे। तू सबके साथ उस दान का उत्तम भोक्ता हो।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रोऽअर्य्यमा देवाऽओकांꣳसि चक्रिरे ॥५७॥

ऋ० १। ४०। ५॥

भा०—राजमन्त्री के पक्ष में—(ब्रह्मणस्पतिः) वेद विद्या का पालक विद्वान् पुरुष (नूनं) निश्चय से (उक्थ्यम्) प्रवचन करने योग्य श्रेष्ठ (मन्त्रं) मन्त्र, मनन योग्य विचार का (प्र वदति) उपदेश करता है। (यस्मिन्) जिसमें (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (वरुणः) दुःखों और पापों का निवारक, शासक (मित्रः) सर्वस्नेही सभापति, (अर्यमा) न्यायकारी शासक ये (देवाः) सब विद्वान् गण (ओकांसि) अपने आश्रयस्थान (चक्रिरे) बनाते हैं।

परमेश्वर के पक्ष में—(यस्मिन् इन्द्रः वरुणः मित्रः अर्यमा देवाः ओकांसि चक्रिरे) जिस परमेश्वर में विद्युत्, चन्द्र, प्राण, वायु और अन्य पृथिवी आदि लोक और समस्त विद्वान् अपना आश्रयस्थान किये हुए हैं वह ब्रह्मणस्पति महान् जगत् और वेद का पालक परमेश्वर ही (उक्थ्यं) उपदेश करने और श्रवण करने योग्य (मन्त्रं) वेदमन्त्रों का भी (प्रवदति) उपदेश करता है। सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। योग० ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व।
विश्वन्तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥

ऋ० २। २३। १९।

गृत्समद ऋषिः। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) महान् राष्ट्र के पालक! विद्वन्! आचार्य! (यन्ता त्वम्) सब राष्ट्र को नियम में रखने हारा तू (अस्य सूक्तस्य) इस उत्तम उपदेश करने योग्य प्रवचन का (बोधि) स्वयं ज्ञान कर, औरों

को उपदेश कर । और हमारे (तनयं च) पुत्र आदि को (जिन्व) विद्या आदि में पुष्ट कर । (यत्) जब (देवाः) देव, विद्वान् पुरुष (अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) तब (विश्वम्) समस्त कार्य (भद्रम्) सबको कल्याणकारी होता है । हम (सुवीराः) उत्तम वीर होकर (विदथे) संग्राम में और ज्ञानसंघ और यज्ञ में (बृहत्) बड़ा यश कहें या बड़े उत्तम २ ज्ञान का उपदेश करें ।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर ! तू समस्त जगत् का नियन्ता है । तू इस वेदमय सूक्त का ज्ञान कराने वाला है । तू हमारे पुत्रादि का पोषण कर, समस्त कल्याणमय पदार्थ और आचरण को विद्वान् लोग पालन करें । हम यज्ञ में महान् वेद ज्ञान का प्रवचन, उच्चारण करें अथवा यज्ञ में हम (बृहत्) उस महान् परमेश्वर की स्तुति करें । स्तुति के मन्त्रों की प्रतीक आगे देते हैं ।

य इमा विश्वा० । विश्वकर्म्मा० । यो नः पिता० ।
अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि० ॥ ५८ ॥

भा०—'य इमा विश्वा०' अ० १७।१७॥ 'विश्वकर्मा०' अ० १७।२६॥ 'यो नः पिता०' अ० १७।२७॥ 'अन्नपतेऽन्नस्यनो देहि०' अ० ११।८३॥ इन चारों मन्त्रों की व्याख्या उन २ स्थानों पर देखो ।

॥ इति चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

अ० ३५, आदित्या देवाः वा ऋषयः । पितरो देवताः ॥

॥ओ३म्॥ अपेतो यन्तु पणयोऽसुम्ना देवपीयवः अस्य लोकः सुतावतः । द्युभिरहोभिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्ववसानमस्मै ॥ १ ॥

पिपीलिकामध्या गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(असुम्नाः) दूसरों को सुख न देने वाले, दुःखकारी, परपीड़क, (देवपीयवः) विद्वानों, उत्तम पुरुषों और उत्तम गुणों के नाश करने वाले (पणयः) दूसरों के द्रव्य से व्यवहार करने वाले, धूर्त्त पुरुष (इतः) इस राष्ट्र से (अप यन्तु) दूर चले जांय । यह (लोकः) लोक, समस्त प्रजाजन (सुतावतः) अभिषेक को प्राप्त (अस्य) इस राजा के अधीन है । वह ही (यमः) सब राष्ट्र का नियन्ता होकर (द्युभिः) प्रकाश से युक्त, (अहोभिः अक्तुभिः) दिन और रातों से (व्यक्तं) प्रकाशित (अवसानम्) स्थान (अस्मै) इस बसने वाले लोक समूह को (ददातु) प्रदान करे ।

परमेश्वर के पक्ष में—दुष्ट पुरुष दूर हों । उत्तम कर्म करने वाले का यह लोक है । सर्व नियन्ता परमेश्वर इस जीव को दिन रात सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि से प्रकाशित लोक प्रदान करता है ।

सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छतु ।
तस्मै युज्यन्तामुस्रियाः ॥ २ ॥

सविता देवता । गायत्री । षड्जः ॥

१—अथ पितृमेधसम्बन्धिनो मन्त्राः ॥

भा०—राजा के पक्ष में—(सविता) सबका प्रेरक राजा हे पुरुष ! (ते शरीरेभ्यः) तेरे सम्बन्धि जनों के शरीरों के भरण-पोषण के लिये (पृथिव्याम्) इस पृथिवी में (लोकम्) पर्याप्त उतना स्थान जितने की उत्तम रीति से वह देख भाल कर सके (इच्छतु) देवे । (तस्मै) इस राजा के लिये (उस्रियाः) बैल (युज्यन्ताम्) जोड़े जायं ।

परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर जीव के शरीरों के भोग के लिये पृथिवी में स्थान दे । उस जीव के शरीर में, रथ में बैलों के समान ज्ञान ग्राहक प्राण प्रदान करता है । अथवा उसी को देह से देहान्तर में और लोक से लोकान्तर में ले जाने के लिये किरणों को युक्त करता है । किरणों द्वारा जीव लोक-लोकान्तर में गमन करते हैं ।

वायुः पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्य्यस्य वर्चसा ।
विमुच्यन्तामुस्रियाः ॥ ३ ॥
सविता देवता । उष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—कृषिपक्ष में—हल वाह देने पर क्षेत्र को (वायुः) वायु (अग्नेः) आग की (भ्राजसा) ज्वाला से और (सविता) सूर्य (सूर्यस्य वर्चसा) अपने ही प्रकाश से (पुनातु) क्षेत्र को पवित्र करे । इसलिये (उस्रियाः) बैल (विमुच्यन्ताम्) छोड़ दिये जांय ।

जीवपक्ष में—जब जीव शरीर त्याग कर जाता है तो उसे (वायुः) वायु अर्थात् ज्ञानी पुरुष (अग्नेः भ्राजसा) अग्नि या परमेश्वर के दीप्ति से और (सविता सूर्यस्य वर्चसा) सर्वोत्पादक सूर्य प्रभु अपने प्रकाश से पवित्र करे । और देहान्तर प्राप्ति के समय वे पूर्वोक्त (उस्रियाः) सहयोगी कारण भी (विमुच्यन्तां) उससे छूट जांय ।

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ ४ ॥
ऋ० १० । ९७ । ५ ॥

वायुः सविता च देवते । अनुष्टुप् । गान्धरः ॥

भा०—हे मनुष्यो ! क्योंकि (वः) आप लोगों का (नि-सदनम्) नियम में रहना (अश्वत्थे) अश्वारूढ़ सावधान, क्षत्रिय राजा के अधीन है और (वः वसतिः) आप लोगों का निवासस्थान भी (पर्णे) पालन करने हारा राजा के अधीन (कृता) की गई है, अतः (यत्) जब (पूरुषम्) अपने गुरु या अध्यक्ष राजा जो (सनवथ) उसका भाग दे चुको तो आप लोग (गोभाजः) पृथिवी की उपज और वेद वाणी का सेवन करने वाले । (इत्) ही होकर (किल) निश्चय से (असथ) रहो । व्याख्या देखो अ० ११।७९॥

परमेश्वर के पक्ष में—हे जीवो ! तुम लोगों की स्थिति (अश्वत्थे) कल तक भी स्थिर न रहने वाले, अनित्य और (पर्णे) पत्ते के समान चञ्चल संसार में की है। इसलिये (यत्) अब तुम (पुरुषम् सनवथ) परमेश्वर को उपासना करो तो (गोभाजः इतकिल असथ) वेदवाणी, इन्द्रिय किरण आदि का सेवन करने वाले ज्ञानवान्, भोगवान् होवो ।

स॒वि॒ता ते॒ शरी॑राणि मा॒तुरु॒पस्थ॒ऽआ व॑पतु ।
तस्मै॑ पृथिवि॒ शं भ॑व ॥ ५ ॥

पूर्ववत् ।

भा०—हे जीव ! (सविता) सबका प्रेरक राजा (ते शरीराणि) तेरे शरीरों को, तेरे सम्बन्धि जनों को (मातुः) माता के समान पालक पोषक पृथिवी के (उपस्थे) ऊपर (आवपतु) स्थापित करे । हे (पृथिवि) पृथिवि ! (तस्मै) उस प्रजाजन को तू (शं भव) कल्याणकारिणी हो ।

जीव के प्रजनन पक्ष में—उत्पादक पिता हे जीव तेरे शरीरों को (मातुः) जननी के (उपस्थे) प्रजननाङ्ग में (आवपतु) बीज रूप से वपन करे । हे (पृथिवि) पृथिवी के समान आश्रय देने वाली माता उस गर्भगत जीव को (शं भव) शान्तिदायिन हो ।

परमेश्वर तुझ जीव के शरीरों को पृथ्वी पर स्थापित करे, पृथ्वी जीव को सुखदायिनी हो।

प्रजापतौ त्वा देवतायामुपोदके लोके निदधाम्यसौ।
अप नः शोशुचदघम् ॥ ६ ॥

प्रजापतिर्देवता। उष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे (असौ) पुरुष, प्रजाजन ! (त्वा) तुझको मैं (प्रजापतौ) प्रजा के पालक राजा के अधीन (उप-उदके लोके) पानी के समीप स्थित प्रदेश में (निदधामि) नियत रूप से स्थापित करता हूं। वह प्रजापालक राजा ही (नः) हमारे (अघम्) पापाचरण, परस्पर घात प्रतिघात आदि को (नः) हममें से (अप शोशुचत्) मल को अग्नि से जला कर नष्ट कर देने के समान दूर कर दे।

हे जीव ! जलादि जीवनोपयोगी लोक में मैं तुझे स्थापित करता हूं उस परमेश्वर के अधीन तू रह वही हमारे पापों को दग्ध कर दूर करे।

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते ऽअन्य ऽइतरो देवयानात्।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा रीरिषो मोत वीरान् ॥७

ऋ० १० । १८ । १ ॥

यमपुत्रः संकसुक ऋषिः। मृत्युर्देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे (मृत्यो) दुष्टों के मारने वाले राजन् ! (यः) जो (ते) तेरा (देवयानात्) देवों-विद्वानों के गमन करने योग्य मार्ग से (इतरः) दूसरा (अन्यः) कोई और भिन्न मार्ग है तू उस (परं पन्थान् अनु) दूसरे मार्ग को लक्ष्य करके (परा इहि) दूर ही से चला जा। (चक्षुष्मते) आंखों वाले, बुद्धिमान् और (शृण्वते) कानों वाले, प्रजाहितैषी (ते) तुझे (ब्रवीमि) उपदेश करता हूं कि तू (नः) हमारी (प्रजां) प्रजा

६—मासौ ॥ पर० इति काण्व० ।

को (उत) और (वीरान्) वीर पुरुषों को (मा रीरिषः) मत मार, उनका नाश मत कर, नियन्ता राजा शिष्टजनों के सदाचार से अतिरिक्त सदाचार के मार्ग पर दृष्टि रक्खे। वह आंख से प्रजा का व्यवहार देखे, कानों से उभय पक्ष का सुने। अर्थ प्रजा और वीर पुरुषों को न सतावे।

मृत्यु के पक्ष में—हे मृत्यो ! तू (देवयाना) अर्थात् विद्या के बल पर मोक्ष मार्ग के अतिरिक्त मार्ग से जा अर्थात् ज्ञान मार्गियों के लिये मृत्यु नहीं है जन्म मरण का चक्र पितृयाण वालों को और अविद्यामार्गियों को है। चक्षुष्मान् और कर्णवान् पुरुष तुझे ज्ञान का उपदेश करता है जिससे बाल प्रजा और वीर्यवान् युवा पुत्रों को मृत्यु न सतावे।

शं वातः शꣳ हि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः।
शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो मा त्वाभि शूशुचन् ॥ ८ ॥

विश्वेदेवा देवताः। अनुष्टुप्। गान्धारः।

भा०—हे पुरुष ! हे जीव ! हे प्रजाजन ! (वातः) वायु (ते शम्) तुझे सुखकारी और कल्याणकारी हो, (घृणिः ते शम्) सूर्य भी तुझे सुख कर हो (इष्टकाः) ईंटें, ईंटों से बने गृह आदि, तथा यज्ञ कर्म, अथवा तेरे अन्य इष्ट अभिलषित पदार्थ और प्रिय सम्बन्धी जन (ते शं भवन्तु) तुझे शान्तिदायक हों। (पार्थिवासः अग्नयः) इस पृथिवी पर के प्रसिद्ध अग्नि, विद्युत् आदि अथवा अग्नि के समान तेजस्वी पृथ्वी के राज काज ये सभी (ते शं भवन्तु) तुझे शान्ति प्रदान करें, वे (त्वा) तुझे (मा अभि शूशुचन्) न सतावें, दग्ध न करें। तेरे शोक और खेद का कारण न हों।

कल्पन्तान्ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः।
अन्तरिक्षꣳ शिवं तुभ्यं कल्पन्तान्ते दिशः सर्वाः ॥ ९ ॥

विश्वेदेवाः देवताः। बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे जीव ! प्रजाजन ! राजन् ! (दिशः) दिशाएं दिशाओं के

समस्त प्रजाजन (ते) तेरे लिये हितकारी (कल्पन्ताम्) हों। (आपः तुभ्यम् शिवतमाः) आप्त जन और जल भी तेरे लिये अत्यन्त कल्याणकारी हों। (सिन्धवः तुभ्यं शिवतमाः भवन्तु) बहने वाले नद नदियां और राष्ट्र को सूत्र में बांधने वाले बलवान् पुरुष तेरे लिये कल्याणकारी हों। (अन्तरिक्षं तुभ्यं शिवम्) अन्तरिक्ष, आकाश तथा अन्तरिक्ष के समान मध्यस्थ जन भी तेरे लिये सुखकर हों। (सर्वाः दिशः ते कल्पन्ताम्) समस्त दिशाएं और उपदिशाएं तथा उत्तम उपदेश देने हारे गुरुजन तुझे सुखकर हों।

अश्मन्वती रीयते सᳬ रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।
अत्रा जहीमोऽशिवा ये ऽअसञ्छिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥१०॥

ऋ० १०।५३।८॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो! जिस प्रकार (अश्मन्वती) पत्थरों से भरी हुई नदी (रीयते) जारही हो तो (सं रभध्वम्) उसको पार करने के लिये तैयारी करते, (उत् तिष्ठत) उठ खड़े होते, और (प्रतरत) उसको अच्छी प्रकार पार करते। (अत्र) उसमें ही (ये अशिवाः असन्) जो असुखकर, दुःखदायी मल हों उनको हम (जहीमः) त्याग देते और (वयम्) हम (वाजान् [illegible]) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों को नदी से हैं (उत् तरेम) उत्तम रीति से प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार (अश्मन्वती रीयते) शस्त्रों से युक्त यह सेना चल रही है। (संरभध्वम्) शत्रु विजय का उद्योग करो। (उत् तिष्ठत) उठो, (प्र तरत) आगे बढ़ो। (अत्र) इस संग्राम में ये (अशिवाः असन्) हमारे अकल्याणकर कष्टदायी शत्रु हैं उनको (जहीमः) त्याग दें, नाश करें और (वयम्) हम (वाजान् अभि) संग्रामों और ऐश्वर्यों को लक्ष्य करके (उत् तरेम) उत्तम रीति से, शत्रु से ऊंचे रह कर चलें और ऐश्वर्यों को प्राप्त करें।

अपाघमप किल्बिषमप कृत्यामपो रपः।
अपामार्ग त्वमस्मदप दुःष्वप्न्यᳬ सुव ॥ ११ ॥

शुनःशेप ऋषिः । अपामार्गो देवता । विराट् अनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—हे (अपामार्ग) दुष्टों को दूर करके राष्ट्र के कण्टकों को शोधन करने हारे राष्ट्रपते ! (त्वम्) तू (अस्मत्) हमसे (अवम् अप सुव) पाप, परस्पर के घात प्रतिघात को दूर कर । (किल्विषम् अप सुव) व्यर्थ, विचारशून्यता से पर-अपकार करने के पाप कृत्य को भी दूर कर । (कृत्याम् अप सुव) शत्रु से प्रयुक्त गुप्त हत्या के घातक प्रयोग को दूर कर । (रपः अप) बलात्कार से स्त्री आदि पर किये व्यभिचार आदि पापों को भी दूर कर । (दुःस्वप्न्यम् अप सुव) दुःख सहित निद्र होने के कारण को, अथवा दुःखकारी स्वप्न और मृत्यु को भी दूर कर ।

अघ, किल्विष, कृत्या, रपः, दुष्वप्न्य आदि यद्यपि सभी सामान्यतः पापवाचक और विशेषतः भिन्न २ प्रकार के अपराधों को दिखाते हैं । कृत्या और अपामार्ग के प्रकरणों के स्पष्टी करण अथर्ववेद भाष्य में विस्तार से किया गया है। 'दुःष्वप्न्य' का प्रकरण भी अथर्ववेद में ही विस्तार से कहा गया है । अपामार्ग ओषधि, स्वप्न दोष आदि रोगों को दूर करती है । उसी ~~ना से प्रजा के भीतर से पापों और हत्या आदि दुष्कर्मों को दूर कों-सह... ~~भी 'अपामार्ग' कहाता है ।
करनेवाला अधिकारी विभा...

सुमित्रिया न ऽआप ऽओषधयः सन्तु दु...त्रियास्तस्मै सन्तु
योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ १२ ॥

आपो देवताः । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । २२ ॥ अ० २० । १९ ॥

(नः) हमारे लिये (आपः ओषधयः) जल और ओषधियें और और आप्त जन (सुमित्रियाः) शुभ स्नेह वाले मित्र जनों के समान हिताचरण वाले, सुखकारी और मित्र हों । जो हम से द्वेष करें और हम जिससे द्वेष करें उसके लिये वे दुखदायी हों ।

अनड्वाहमन्वारभामहे सौरभेयं स्वस्तये ।
स न ऽइन्द्रं ऽइव देवेभ्यो वह्निः सन्तरणो भव ॥ १३ ॥

अनड्वान् देवता । अनुष्टुप् । गांधारः ॥

भा०—(अनड्वाहम्) शकट को खींचने के लिये जिस प्रकार लोग बड़े बैल को प्राप्त करते हैं और 'अनः' अर्थात् यज्ञ को धारण करने वाले अग्नि को जिस प्रकार याज्ञिक लोग ग्रहण करते हैं उसी प्रकार (अनड्वाहम्) गाड़ी के समान राष्ट्र के शकट को उठाने में समर्थ (सौरभेयम्) सुरभि अर्थात् समस्त सुखदायी कामधेनु, उत्तम भूमि के परम हितकारी, मातृभूमि के सच्चे पुत्र राजा को हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरभामहे) प्राप्त करें, स्थापित करें । (सः) वह (इन्द्रः इव) सूर्य और वायु के समान तेजस्वी, बलवान्, ऐश्वर्यवान् सेनापति और राजा होकर अथवा (देवेभ्यः इन्द्रः इव) इन्द्रियों के लिये आत्मा के समान (वन्हिः) समस्त राज्याङ्गों और देवों को वहन करने में समर्थ और उनका नेता होकर (संतरणः भव) सबको भली प्रकार युद्ध आदि के और राज्यकार्यों के पार लगाने वाला नाव के समान आश्रय और कर्णधार के समान नायक हो ।

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १० । २१ ॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ १५ ॥

संकसुक ऋषिः । मनुष्या मृत्युर्वा देवता । त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—(जीवेभ्यः) जीवों की रक्षा के लिये मैं राजा (इमं) इस (परिधिम्) नगर के चारों ओर परकोट के समान रक्षा का साधन (दधामि) स्थापित करता हूं । जिससे (अपरः) दूसरा शत्रु पुरुष (एषाम्) इन

मेहे स्वस्तये इति काण्व० ।

मेरे प्रजाजनों के (एतम्) इस (अर्थम्) धन को (मा नु गात्) प्राप्त न करे । वे प्रजाजन (पुरूचीः) बहुत से ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले होकर (शतं शरदः जीवन्तु) सौ २ वर्ष जीवें । (पर्वतेन) शत्रु को जिस प्रकार पर्वत आदि अलङ्घ्य पदार्थ से परे रक्खा जाता है उसी प्रकार (मृत्युम्) मृत्यु को और अन्य मरने के कारण रूप शत्रु और हिंसक जीवों को भी (पर्वतेन) पालन पोषण सामर्थ्यों से युक्त राजा द्वारा तथा पर्व, अध्यायों और काण्डों से युक्त वेद के ज्ञानकाण्ड द्वारा और पर्व अर्थात् वाण आदि से युक्त सेना द्वारा (अन्तः दधाताम्) दूर करें ।

अग्न ऽआयूᳬंषि पवस ऽआ सुवोर्जमिषं च नः ।
आरे बाधस्व दुच्छुनाम् ॥ १६ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० १९ । ३८ ॥

आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।
घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥ १७ ॥

वैखानस ऋषिः । अग्निर्देवता । स्वराट् त्रिष्टुप् । धैवतः ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! ज्ञानवन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! राजन् ! तू (हविषा) अन्न के समान ग्रहण योग्य षष्ठांश राज-कर से (वृधानः) बढ़ता हुआ (आयुष्मान्) दीर्घायु होकर (घृतप्रतीकः) तेज को सब के प्रति दर्शाने हारा अथवा जल के समान शान्तस्वभाव का विश्वास दिलाने वाला, अथवा तेजस्वी मुख वाला होकर और (घृतयोनिः) मेघस्थ जल में रहने वाले विद्युत् या समुद्र वासी और अग्नि या घृत से तीव्र अग्नि के समान तेज, पराक्रम को अपना आश्रय बना कर (एधि) राष्ट्र में रह । तू (गव्यं चारु मधु घृतं पीत्वा) गौ के उत्तम मधुर घृत को पान करके जिस प्रकार अग्नि तेज को धारण करता है उसी प्रकार (गव्यं) गौ अर्थात् पृथिवी के हितकारी, (चारु) उत्तम, एक देश से देशान्तरों में जाने वाले, (मधु) मधुर एवं शत्रुओं के पीड़ा देने वाले, बलस्वरूप

(घृतं) तेजस्वी सैन्यबल रूप तेज को धारण करके, (पिता पुत्रम् इव) पिता जिस प्रकार पुत्रकी रक्षा करता है उसी प्रकार (इमान्) इन राष्ट्र के प्रजाजनों की (स्वाहा) उत्तम प्रकार से ज्ञान पूर्वक (अभि रक्षतात्) सब प्रकार से रक्षा कर।

परी॒मे गाम॑नेषत॒ पर्य॒ग्निम॑हृषत।
दे॒वेष्व॑क्रत॒ श्रव॒: क ऽइ॒माँ२॥ ऽआ द॑धर्षति॥ १८॥

ऋ० १०। १५५। ५॥

भारद्वाजः शिरिम्बिठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। विराड् अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(इमे) ये राजा के जन और प्रजावर्ग भी (गाम्) पृथ्वी को और वाणी को (परि अनेषत) प्राप्त करते हैं अथवा (गाम्) शकट के वहन करने वाले बैल के समान कार्य-भार को उठाने में समर्थ पुरुष पुंगव को (परि अनेषत) सब प्रकार से नेता रूप से स्वीकार करें। और (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी और अग्रणी नायक को ही (परि अहृषत) सर्वत्र ले जावें, अपने ऊपर धारण करते रहें। और (देवेषु) विद्वान् ब्राह्मणों के अधीन रह कर (श्रवः अक्रत) वेदोपदेश का श्रवण करें। तब (इमान्) इन विद्वान्, शिष्ट पुरुषों को (कः) कौन (आदधर्षति) पराजित कर सकता है।

इसी प्रकार सब लोग ब्रह्मचर्य से गौ अर्थात् वेद-वाणी का अभ्यास करें फिर अग्नि-आधान पूर्वक गृहस्थ करें, फिर श्रवण योग्य ब्रह्म विद्या का विद्वानों से श्रवण करें। फिर मृत्यु भी उनको नहीं पछाड़ सकता।

क्र॒व्याद॑म॒ग्निं प्र हि॑णोमि दू॒रं य॑म॒राज्यं॑ गच्छतु रिप्रवा॒हः।
इ॒हैवायमित॑रो जा॒तवे॑दा दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं व॑हतु प्रजा॒नन्॥ १९॥

अथर्व० १२। २॥

दमन ऋषिः। क्रव्यादग्निर्जातवेदाश्च देवते। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—मैं (क्रव्यादम्) कच्चा मांस खाने वाले, (अग्निम्) आग

के समान संतापकारी दुष्ट जन को (दूरं प्र हिणोमि) दूर भगाऊं। (प्रवाहः) पापों के फैलाने वाला या धारनेवाला पुरुष (यमराज्यं) नियन्ता राजा के राज्य को (गच्छतु) प्राप्त हो। अर्थात् वह राजा के दमनकारी बल के अधीन रहे। और (इतरः) दूसरा पुण्यकर्मा (जातवेदाः) जो अग्नि के समान तेजस्वी, ज्ञानवान् ऐश्वर्यवान् वेदज्ञ पुरुष है (अयम्) यह (इहैव) यहां, इस राष्ट्र में ही (प्रजानन्) उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त होकर (हव्यं) ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ और अधिकार को भी (वहतु) प्राप्त करे।

वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान्वेत्थ निहितान् पराके। मेदसः कुल्या ऽउप तान्त्स्रवन्तु सत्या ऽएषामाशिषः सं नमन्तांᳬ स्वाहा॥२०॥

जातवेदा देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन्! हे ज्ञानवान् पुरुष! तू (पितृभ्यः) पालन करने वाले पुरुषों के हित के लिये (वपां) बीज वपन करने योग्य भूमि को (वह) प्रदान कर, अथवा उनके हित के लिये इस भूमि को तू स्वयं धारण कर। और (यत्र) जहां (पराके) दूर देश में भी तू (एना) इनको (निहितान्) नियुक्त हुआ या स्थित हुआ जाने, वहां भी उनकी रक्षा के लिये (वपां वह) शत्रुओं को खण्डन करने वाली सेना को पहुंचा। इसी प्रकार (मेदसः) जल की (कुल्याः) धाराएं, नहरें (तान् उप स्रवन्तु) उन तक पहुंचे। (एषाम्) उनकी (आशिषः) सब कामनाएं (स्वाहा) उत्तम क्रिया द्वारा (सत्याः) सत्य एवं सज्जनों के हितकारी होकर (सं नमन्ताम्) फलें फूलें, पूरी हों।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोशुचदघम्॥ २१॥ ऋ० १। २२। १५॥

मेधातिथिर्ऋषिः। पृथिवी देवता। गायत्री यजुरन्ता। षड्जः॥

२०—शिषः कामाः स्वाहा इति काण्व०।

भा०—हे (पृथिवि) पृथिवि ! तू (नः) हमारे लिये (स्योना) सुखकारिणी, (अनृक्षरा) कांटों और बाधक शत्रु और दुष्ट पुरुषों से रहित और (निवेशनी) बसने योग्य (भव) हो। तू (सप्रथाः) सब प्रकार से विस्तृत होकर (नः) हमें (शर्म यच्छ) शरण और सुख प्रदान कर। (नः) हमारे (अघम्) पाप को भी (अप शोशुचत्) दग्ध करके दूर कर।

अस्मात्त्वमधि जातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥ २२ ॥

अग्निर्देवता। स्वराड् गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे अग्ने ! अग्रणी नायक ! विद्वन् ! (त्वम्) तू (अस्मात्) इस लोक, प्रजाजन से ही (अधिजातः असि) ऊपर उठकर उसपर अध्यक्ष रूप से अधिकारवान् बनाया गया है इसलिये (अयं) यह लोक भी (त्वत्) तेरे से ही (पुनः) पुनः (जायताम्) ऐश्वर्यवान् हो। (असौ) वह तू (स्वर्गाय लोकाय) सुखप्रद जनसमूह के हित के लिये (सु-आहा) उत्तम कर्म और सत्य न्याय करे।

॥ इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

[अ० ३६—४०] दध्यङ् आर्थवण ऋषिः । (अ० ३६) शान्तिकरणः ॥

॥ओ३म्॥ ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्र पद्ये साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्रं प्र पद्ये। वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ॥१॥

भा०—(ऋचं वाचं प्रपद्ये) मैं मननशील अन्तःकरण के तुल्य यजुर्वेद को प्राप्त होऊं । (साम प्राणं प्रपद्ये) प्राण अर्थात् योगाभ्यासादि उपासना के निदर्शक सामवेद को प्राण के तुल्य जानूं और प्राप्त करूं । (चक्षुः श्रोत्रं प्रपद्ये) 'चक्षुः' वेद अर्थात् अथर्ववेद को 'श्रोत्र', कर्ण के समान जान कर उसको धारण करूं। अथवा—वाणी से ऋग्वेद को, यजुर्वेद को मन से, प्राण बल से सामगान के वेद को और चक्षु और श्रोत्र को मैं प्राप्त करूं। (वाग् ओजः) वाणी, मानस बल और (सह) उनके साथ (ओजः) शरीर-बल और (प्राणापानौ) प्राण और अपने उच्छ्वास और निःश्वास दोनों भी (मयि) मुझ में विद्यमान रहें ।

यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं बृहस्पतिर्मे तद्दधातु। शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ॥ २ ॥

बृहस्पतिर्देवता । निचृत्पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(मे) मेरे (चक्षुषः) आंख, (हृदयस्य) हृदय और (मनसः) मन का (यत् छिद्रम्) जो छिद्र या त्रुटि हो (वा) और जो इन इन्द्रियों का छिद्र (अति तृण्णं) अति अधिक पीड़ित हो (तत्) उसको

अथातः प्रवर्ग्याग्नि काश्वमेधोपनिषत् ।

१—सहोजो० इति काण्व० ।

(बृहस्पतिः) महान् राष्ट्र का स्वामी और बड़े जगत् का पालक परमेश्वर और वेदवित् विद्वान् (मे) मेरे उसको (दधातु) पुष्ट करे। और (यः) जो (भुवनस्य पतिः) समस्त भुवनों, प्रदेशों और लोकों का स्वामी, परमेश्वर है वह (नः शं भवतु) हमें सुखकारी शान्तिदायक हो।

भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥ ३ ॥
कया नश्चित्र ऽआ भुवदूती सदावृधः सखा।
कया शचिष्ठया वृता ॥ ४ ॥
कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढा चिदारुजे वसु ॥ ५ ॥
अभी षु णः सखीनामविता जरितृणाम्।
शतम्भवास्यूतिभिः ॥ ६ ॥

भा०—(३—६) इन चारों मन्त्रों की व्याख्या देखो अ० ३। ३५, २७, ३९—४१ ॥

कया त्वं न ऽऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य ऽआ भर ॥ ७ ॥ ऋ० ८। ८२। १९ ॥

इन्द्रो देवता। वर्धमाना गायत्री। षड्जः ॥

भा०—हे (वृषन्) सुखों और ऐश्वर्यों के वर्षक परमेश्वर एवं राजन्! (त्वं) तू (कया ऊत्या) किस प्रकार की रक्षाविधि से (अभि प्र मन्दसे) प्रजाओं को प्रसन्न करता है। और (स्तोतृभ्यः) स्तुतिशील विद्वानों के (कया) किस पालन क्रिया से (आ भर) सब प्रकार से समृद्धि प्राप्त करता है? उससे हमें भी समृद्ध कर।

इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शन्नो ऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ ८ ॥

५—'दृळ्हा० इति काण्व०।

इन्द्रो देवता । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (विश्वस्य राजति) समस्त संसार के बीच प्रकाशमान है इसी प्रकार राजा समस्त राष्ट्र में (राजति) तेजस्वी होकर विराजे । वह (नः) हनारे (द्विपदे चतुष्पदे शम् अस्तु) दोपाये मनुष्य, भृत्य आदि और चौपाये पशुओं के लिये भी सुखदायी और कल्याणकारी हो ।

शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा ।
शन्न ऽइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥ ६ ॥

ऋ० १ । ६० । ९ ॥

भा०—(मित्रः नः शम्) प्राण के समान सबका स्नेही, ईश्वर और राजा हमें सुखकारी हो । (वरुणः नः शं) जल के समान शान्तिप्रद वह हमें सुखकारी हो । (अर्यमा नः शं भवतु) न्यायाधीश और न्यायकारी परमेश्वर हमें शान्तिकारक सुखदायी हो । (इन्द्रः) शत्रु का नाशकारी, परमैश्वर्यवान्, (बृहस्पतिः) बड़े भारी राष्ट्र का पालक राजा और बृहती वेदवाणी का पालक, आचार्य, परमेश्वर (नः शं) हमें सुखदायी हो । (उरुक्रमः) संसार की रचना में बहुत प्रकारों से चेष्टा करने वाला परमेश्वर और महान् विक्रमशील राजा (विष्णुः) सेनापति, व्यापक सामर्थ्यवान् व्यापक ईश्वर और राजा (नः शम्) हमें सुखदायक हो ।

शन्नो वातः पवता॑ शन्नस्तपतु सूर्य्यः ।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो ऽअभि वर्षतु ॥ १० ॥

अथर्व० ७ । ६९ । १ ॥

वातादयो देवताः । विराडनुष्टुप् । गान्धारः ॥

भा०—(वातः) वायु (नः) हमें (शं पवताम्) सुखकरी होकर बहे । वह व्याधिजनक न हो । (नः सूर्यः शं तपतु) हमारे लिये सूर्य शान्तिदायक होकर तपे । रोगों को नष्ट करे । (कनिक्रदत्) गर्जता हुआ

(देवः) जलप्रद (पर्जन्यः) उत्तम रस बरसाने वाला मेघ और धर्ममेघमय प्रभु (नः शम् अभिवर्षतु) हमें सुख शान्ति वर्षे ।

अहा॑नि॒ शं भ॑वन्तु न॒ः शᳬं रात्री॒ः प्रति॑ धीयताम्। शन्न॑ इन्द्रा॒ग्नी भ॑वता॒मवो॑भि॒ः शन्न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या। शन्न॒ इन्द्रा॑पू॒षणा॒ वाज॑सातौ॒ शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः॥ ११॥

ऋ० ७। ३५। १॥

लिङ्गोक्ता देवताः। अति शक्करी। पञ्चमः॥

भा०—(नः) हमारे लिये (अहानि शं भवन्तु) दिन सुखकारी हों। (रात्रीः) रातें भी (नः शं) हमें शान्तिदायक (प्रतिधीयताम्) रहें। (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि (अवोभिः) अपने नाना रक्षा साधनों से (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्रवरुणा) इन्द्र और वरुण, सूर्य और मेघ, विद्युत् और जल दोनों भी (रातहव्या) प्रजा को अन्न देने वाले होकर (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्र पूषणा) इन्द्र और पूषा, सूर्य और पृथिवी (वाजसातौ) अन्नों और ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने के निमित्त संग्राम में (नः शम्) हमें शान्तिदायक हों। (इन्द्रासोमा) इन्द्र और सोम, सूर्य और ओषधिगण (सुविताय) उत्तम फल प्रदान करने और उत्तम सन्तान प्रसव करने के लिये (शंयोः) रोगों का शमन और भय संकट का निवारण करें।

शं नो॑ दे॒वीर॒भिष्ट॑य॒ऽआपो॑ भवन्तु पी॒तये॑।
शं योर॒भि स्र॑वन्तु नः॥ १२॥

आपो देवताः। गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे राजन् ! (देवीः आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल, विद्वान् आप्त पुरुष, उत्तम कर्म और ज्ञान (नः अभिष्टये)

११—रात्रिः इति काण्व०।

हमारे इष्ट कार्यों को सिद्ध करने के लिये (शं नः) हमें शान्तिदायक हों। और वे (पीतये भवन्तु) पान और पालन करने के लिये भी हों। वे ही (नः) हमें (शंयोः अभिस्रवन्तु) शान्ति सुख के वर्षण करने और बहाने वाले हों।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथाः ॥ १३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ३५ । २१ ॥

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ॥ १४ ॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः ॥ १५ ॥
तस्मा अरङ्गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः ॥ १६ ॥

भा०—[१४–१६] तीनों मन्त्रों की व्याख्या [अ० ११ । ५०–५२]

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १७ ॥

अथर्व० १९ । ११४ ॥

भा०—(द्यौः) महान् आकाश या सूर्य (शान्तिः) शान्ति देने वाला हो। (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष, (पृथिवी) पृथिवी, (आपः) जल, (ओषधयः) ओषधिगण, (वनस्पतयः) वट आदि बड़े वृक्ष, (विश्वे-देवाः) समस्त विद्वान्‌गण और तेजोमय पदार्थ और (ब्रह्म) चारों वेद और परमेश्वर और अन्न ये सभी (शान्तिः) शान्ति के देने वाले होने से शान्तिमय हों। (सर्वं शान्तिः) सब पदार्थ शान्तिप्रद हों। (शान्तिः एव शान्तिः) शान्ति स्वयं हृदय को शान्ति दे, दुःखों का शमन करे। (सा) वह परम (शान्तिः) शान्ति (मा एधि) मुझे प्राप्त हों।

दृते दृꣳह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥ १८ ॥ अथर्व ४ । ११ । १६ ॥

भा०—हे (दृते) समस्त दुःखों और अज्ञानों के विदारक ! महावीर राजन् ! परमेश्वर ! (मा दृंह) मुझे दृढ़ कर । (मा) मुझको (सर्वाणि भूतानि) समस्त प्राणी गण (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षन्ताम्) देखें और (अहम्) मैं भी (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों को (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षे) देखूं । हम सब (मित्रस्य चक्षुषा) मित्र की आंख से (समीक्षामहे) एक दूसरे को भली प्रकार देखा करें ।

दृते दृꣳह मा । ज्योक्ते संदृशि जीव्यासं ।
ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (दृते) अज्ञान और पापनाशक ! राजन् ! परमेश्वर ! (मा दृंह) मुझ प्रजाजन और उपासक को दृढ़ कर । मैं (ते) तेरे (संदृशि) सम्यक् ज्ञानरूप दर्शन और अध्यक्षता में (जीव्यासम्) जीवन धारण करूं, दीर्घ जीवन जीऊं । (ते संदृशि) तेरे समान निष्पक्ष-पात उत्तम शासन और निरीक्षण में (ज्योक् जीव्यासम्) दीर्घ जीवन व्यतीत करूं ।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे । अन्याँस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥ २० ॥

भा०—व्याख्या देखो १७ । ११ ॥

नमस्तेऽअस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे ।
नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥ २१ ॥

भगवान् ईश्वरो देवता । अनुष्टुप् गांधारः ॥

भा०—(विद्युते ते नमः) विद्युत् के समान तेजस्वी तुझे नमस्कार है। (स्तनयित्नवे ते नमः) मेघ के समान गर्जन करने वाले तुझे नमस्कार है। हे (भगवन्) ऐश्वर्यवन् राजन् एवं परमेश्वर ! (यतः स्वः समीहसे) क्योंकि तू ही समस्त प्राणियों को सुख देने के लिये समस्त व्यापार कर रहा है अतः (ते नमः अस्तु) तुझे सदा नमस्कार हो।

यतो॑ यतः स॒मीह॑से ततो॑ नो॒ ऽअभ॑यं कुरु।
शं नः॑ कुरु प्र॒जाभ्योऽभ॑यं नः प॒शुभ्यः॑ ॥ २२ ॥

भगवान् देवता। भुरिगुष्णिक्। ऋषभः ॥

भा०—हे भगवन् ! राजन् ! ईश्वर ! तू (यतः यतः समीहसे) जिस २ कारण से, जिस २ स्थान और कर्म से (सम् ईहसे) चेष्टा करे। (ततः नः अभयं कुरु) वहां २ से तू हमें भय रहित कर। (नः प्रजाभ्यः शं कुरु) हमारी प्रजाओं के लिये शान्ति प्रदान कर (नः पशुभ्यः) हमारे पशुओं के लिये (अभयम् कुरु) अभय प्रदान कर।

सु॒मि॒त्रि॒या न॒ ऽआप॒ ओष॑धयः सन्तु दु॒र्मि॒त्रि॒यास्तस्मै॑ सन्तु॒।
यो॒ऽस्मान् द्वेष्टि॒ यं च॑ व॒यं द्वि॒ष्मः ॥ २३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६। २२ ॥

तच्चक्षु॑र्दे॒वहि॑तं पु॒रस्ता॑च्छु॒क्रमु॒च्चर॑त्। पश्ये॑म श॒रदः॑ श॒तं जीवे॑म श॒रदः॑ श॒तꣳ शृणु॑याम श॒रदः॑ श॒तं प्र ब्र॑वाम श॒रदः॑ श॒तमदी॑नाः स्याम श॒रदः॑ श॒तं भूय॑श्च श॒रदः॑ श॒तात् ॥ २४ ॥

ऋ० ७। ६६। १६ ॥

सूर्यो देवा। ब्राह्मी त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—(तत्) वह (देवहितम्) देवों-विद्वानों का हितकारक, विद्वानों द्वारा स्थापित, (पुरस्तात्) सर्वत्र समक्ष (शुक्रम्) शीघ्र कार्य करने में कुशल, एवं शुद्ध, तेजस्वी, (चक्षुः) आंख के समान सबका निरीक्षक,

सर्वाध्यक्ष होकर (उत् चरत्) सब उत्तम पद पर विराजता और कार्य करता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी (पुरस्तात्) पूर्व काल से ही शुद्ध सर्वज्ञ देवों विद्वानों का हितकारी (उत् चरत्) सब से उच्च रहकर सब को जानता है। इसी प्रकार सर्वद्रष्टा, सबको आंख के समान पदार्थ निदर्शक होकर शुद्ध तेज प्रदान करता है। उसी के प्रताप से हम (शरदः शतम्) सौ वरसों तक (पश्येम) देखें। (शरदः शतं जीवेम) सौ वरसों तक जीवें। (शरदः शतं शृणुयाम) सौ वरसों तक श्रवण करें। (शरदः शतं प्र ब्रवाम) सौ वरसों तक उत्तम रीति से बोलें। (शरदः शतम् अदीनाः स्याम) सौ वरसों तक दीनता रहित होकर रहें। (शरदः शतात् भूयः च) और सौ वरसों से भी अधिक वर्षों तक हम देखें, जीवें, सुने, बोलें और अदीन होकर रहें।

॥ इति षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम् । आ ददे नारिरसि ॥ १ ॥

ऋषिरुक्तः । सविता देवता । निचृदुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५ । १४ ॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः । वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥२॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ५ । १४ ॥

देवी द्यावापृथिवी मखस्य वामद्य शिरो राध्यासं देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ३ ॥

द्यावापृथिव्यौ देवते । गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(देवी) दिव्य गुणों से युक्त (द्यावापृथिवी) द्यौ और पृथिवी, सूर्य और भूमि के समान राजा-प्रजावर्गो ! (वाम्) तुम दोनों के (मखस्य) परस्पर त्रुटि रहित राज्य पालन रूप यज्ञ के (शिरः) सिर के समान मुख्य पुरुष को (पृथिव्याः) पृथिवीनिवासिनी प्रजा के (देवयजने) विद्वानों, राजगण और विजिगीषु पुरुषों के यज्ञस्थान या संगत, एकत्र होने के स्थान में (राध्यासम्) उत्तम रीति से बनाऊं । हे वीर पुरुष (त्वा) तुझको (मखाय) त्रुटि रहित राज्य पालनरूप यज्ञ के लिये नियुक्त करता हूं । तुझे (मखस्य शीर्ष्णे) राष्ट्र रूप यज्ञ के शिर या मुख्य पद के लिये नियत करता हूं ।

१—अथातो महावीरसम्भरणम् ।

देव्यो॑ वम्र्यो भूतस्य॑ प्रथम॒जा म॒खस्य॑ वोऽद्य शिरो॑ राध्यासं देव॒यज॑ने पृथि॒व्याः । म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे ॥ ४ ॥

वम्र्यो देवता । व्यूहेनार्षी पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(वम्रयः) उपजाप करने और देश देशान्तर और पृथिवी निवासिनी प्रजा के चरित्रों को राजा तक वमन करने या पहुंचाने हारी उपजापकारिणी संस्थाएं, या धन प्रदान करने वाली प्रजाएं (देव्यः) उत्तम गुण वाली, विजयशील हों । वे ही पृथिवी या (भूतस्य) समस्त प्राणियों के वसने के पूर्व (प्रथमजाः) विद्यमान रहती हैं । वह सबसे श्रेष्ठ हैं । (पृथिव्याः देवयजने) पृथिवी पर विद्वान् राजाओं के एकत्र होने के स्थान, सभा भवन के वीच में हे प्रजाजनो ! (वः) तुम्हारे (मखस्य) त्रुटि रहित राज्य कार्य के (शिरः अद्य राध्यासम्) मुख्य पुरुष को आज नियत करता हूं। हे वीर पुरुष ! (मखाय त्वा) तुझ योग्य पुरुष को मैं प्रजापालन रूप यज्ञ एवं पूजनीय मुख्य पद के लिये नियुक्त करता हूं । (त्वा मखस्य शीर्ष्णे) तुझे मानयोग्य राज्य के शिरोमणि पद के लिये नियुक्त करता हूं ।

'मखः'—महेः खचेति खः प्रत्ययो हलोपश्च । यद्वा मख गतौ । घः । इति मख इत्येतद् यज्ञनामधेयम् । छिद्रप्रतिषेध सामर्थ्यात् । छिद्रं ख मित्युक्तं तस्यमेति प्रतिषेधः । मा यज्ञं छिद्रं करिष्यतीति । गो० उ० २।५।

स एव मखः स विष्णुः । श० १४ । १ । १ । १३ ॥ एष वै मखो य एष तपति । श० १४ । १ । ३ । ५ ॥ स एव मखः स विष्णुः । तत इन्द्रो मखवान् अभवत् । मखवान् ह वैतं मघवानित्याचक्षते । परोक्षम् । श० १४ । १ । १ । १३ ॥ इन्द्रो वै मघवान् । श० ४ । १ । २ । १५ । पूजनीय पद 'मख' है । या संग्राम या एकत्र होने और प्राप्त होने का स्थान या पद 'मख' है । इससे यज्ञ और संग्राम दोनों मख शब्द वाच्य हैं । मख यज्ञ का नाम है । 'ख' छिद्र कहाता है । छिद्र या त्रुटि का न होना प्रत्युत सम्पूर्ण होना पूर्ण व्यवस्था या यज्ञ 'मख' है । 'मख' विष्णु, व्यापक

शक्तिमान् परमेश्वर और राजा दोनों कहाते हैं। 'मख' यह सूर्य है उसके समान तेजस्वी प्रतापी राजा भी मख है। व्यापक राष्ट्र मख है। उसका पति मखवान् इन्द्र-राजा या सेनापति 'मखवान्' होने से 'मघवान्' कहाता है।

स्त्रियों के पक्ष में—हे (देव्यः वम्रयः) स्वल्प उदर की देवी, कन्याओ! आप लोग (भूतस्य) उत्पन्न होने वाले गर्भ, सन्तान के भी (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न होती हैं। (वः मखस्य अद्य शिरः राध्यासम्) आप लोगों के भावी गृहस्थ रूप यज्ञ के मुख्य पति को मैं तुम्हारे मन के अनुकूल बनाऊं। हे योग्य पुरुष! सुसंगत, पूज्य पतित्व के लिये गृहस्थ के मुख्य पद के लिये वरता हूं।

इयत्यग्र॑ आसीन्म॒खस्य॑ ते॒ऽद्य शिरो॑ राध्यासं दे॒व॒यज॑ने पृथि॒व्याः। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे ॥ ५ ॥

वराहविहतं देवता। ब्राह्मी गायत्री। षड्जः॥

भा०—हे पृथिवी! पृथिवी निवासिनी प्रजे! (अग्रे) पहले (इयती) इतनी हो तो कुल (आसीत्) रही। अर्थात् विजयशील, उत्साही राजा के लिये बड़ी भारी पृथ्वी भी थोड़ी है। हे पृथिवि (ते मखस्य) तेरे ऊपर पूज्य (पृथिव्याः देवयजने शिरः राध्यासम्) पृथिवी पर विजिगीषु पुरुषों के एकत्र होने के स्थान संग्रामभूमि और सभाभवन में मुख्य सेनापति को (राध्यासम्) मैं प्राप्त करूं। हे योग्य पुरुष! (मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे) संग्राम, राज्यशासन और उसके शिरोमणि पद के लिये तुझे वरण करता हूं।

'इयति। अग्रे।' इत्यादि पदपाठो महर्षिदयानन्दसम्मतश्चिन्त्यः शतपथादिविरोधात्।

इन्द्र॒स्यौज॑ः स्थ म॒खस्य॑ वो॒ऽद्य शिरो॑ राध्यासं दे॒व॒यज॑ने पृथि॒व्याः। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे ॥ ६ ॥

आदारा देवताः । भुरिगति जगती । निषादः ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! वीर सैनिक पुरुषो ! आप लोग ही (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, शत्रु के नाश करने वाले सेनापति के (ओजः स्थ) पराक्रम स्वरूप हो । (वः यज्ञस्य शिरः राध्यासम्) आप के यज्ञ, राष्ट्र पालन के मुख्य पदाधिकारी को मैं स्थापित करता हूं। इत्यादि० पूर्ववत् । इस प्रकार भिन्न सेनादलों के मुख्य पुरुषों को नियुक्त किया जाय ।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता । अच्छा वीरन्नर्यम्पङ्क्तिराधसन्देवा यज्ञन्नयन्तु नः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥७॥

घर्मो देवता ।

भा०—(ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्म, महान् ऐश्वर्य, वेदज्ञान का पालक राजा और विद्वान् (प्र एतु) उत्तम पद को प्राप्त हो । (सूनृता देवी) शुभ, सत्यज्ञान से युक्त विदुषी और विद्वत् सभा भी (प्र एतु) उत्तम पद को प्राप्त हो । (वीरम्) वीर, शूर, सब दुःखों और शत्रुओं के प्रक्षेपक, नाशक, (नर्यम्) सब मनुष्यों के हितकारी , (पंक्तिराधसम्) सेना की पंक्तियों को वश में करने में समर्थ वीर पुरुष को (देवाः) विजयी, युद्धक्रीड़ाशील सैनिक और उत्तम विद्वान् जन (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ अर्थात् प्रजापति पद को (नयन्तु) प्राप्त करावें । (मखाय त्वा, मखस्य शीर्ष्णे त्वा) पूज्य पद और यज्ञ या संग्राम के प्रमुख स्थान के लिये तुझे नियुक्त करते हैं । इत्यादि ।

मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखस्य शिरोऽसि मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ८ ॥

घर्मो देवता ।

भा०—हे योग्य पुरुष ! तू (मखस्य) पूजनीय व्यवस्था, राष्ट्र आदि के कार्य में (शिरः असि) शरीर में शिर के समान, ज्ञानवान्, विचार-शील और प्रमुख है । इसलिये (त्वा मखाय मखस्य शीर्ष्णे०) इत्यादि पूर्ववत् ।

महर्षि ने, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वनस्थ और मुमुक्षु आदि पक्षों में प्रमुख पुरुषों के स्थापन परक अर्थ किये हैं । भावार्थ में अन्य २ स्थानों में भी प्रमुख पुरुषों के स्थापन का निर्देश किया है । यज्ञपक्ष में तीन महावीरों की कल्पना है । सेना, राष्ट्रपालन और गृहस्थ तीनों में समान योजना है ।

अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । अश्वस्य त्वा वृष्णः शक्ना धूपयामि देवयजने पृथिव्याः । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे । मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥ ९ ॥

अति शक्करी । पञ्चमः । घर्मो देवता ।

भा०—जिस प्रकार कच्चे मट्टी के वर्त्तन को (अश्वस्य शक्ना) घोड़े की लीद को जला कर उससे, या कण २ में व्याप जाने वाले अग्नि की ताप शक्ति से संतप्त कर पकाया जाता है उसी प्रकार हे वीर नेता पुरुष ! (त्वा) तुझको (वृष्णः) बलवान् वीर्यवान्, शत्रुओं को और प्रजाओं को व्यवस्था में बांधने में समर्थ (अश्वस्य) आशुगामी, व्यापक सामर्थ्यवान् और बहुत से राष्ट्र के भोगने हारे बड़े पदाधिकारी पुरुष के (शक्ना) शक्ति, अधिकार सामर्थ्य से (पृथिव्याः देवयजने) पृथिवी के विजयी विद्वान् पुरुषों के एकत्र होने के स्थान, संग्राम, यज्ञ और सभाभवन में (धूपयामि) तुझे अधिक बलवान्, सुशोभित और सामर्थ्यवान् करता हूं । 'मखाय त्वा० इत्यादि पूर्ववत् ।' अश्वस्य त्वा० इत्यादि पूर्ववत् ।

ऋृजवे॑ त्वा सा॒धवे॑ त्वा सु॒क्षित्यै॑ त्वा॑। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे। म॒खाय॑ त्वा म॒खस्य॑ त्वा शी॒र्ष्णे ॥ १० ॥

घर्मो देवता। स्वराट् पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे वीर पुरुष! (त्वा ऋजवे) तुझको आदित्य के समान प्रकाशमान कुटिलता रहित सत्य के दर्शाने वाले न्यायकारी पद या कार्य के लिये नियुक्त करता हूं। (साधवे त्वा) वायु के समान सबके प्राण प्रदान करने वाले, सब को अपने वश करने वाले उत्तम पद के लिये स्थापित करता हूं। और (सुक्षित्यै त्वा) उत्तम पृथिवी के समान सब प्रजाओं को सुख से निवास कराने वाले पद के लिये नियुक्त करता हूं। सुविधानुसार इन तीन पदों पर तीन अथवा एक ही अधिकारी शिरोमणि स्थापित किया जासकता है। वे अधिकार और कर्तव्य भेद से तीन हैं। (मखाय त्वा०) इत्यादि पूर्ववत्।

य॒माय॑ त्वा म॒खाय॑ त्वा सूर्य॑स्य त्वा॒ तप॑से। दे॒वस्त्वा॑ सवि॒ता मध्वा॑नक्तु पृथि॒व्याः स॒ꣳस्पृश॑स्पाहि। अ॒र्चिर॑सि शो॒चिर॑सि॒ तपो॑ऽसि ॥ ११ ॥

घर्मः सविता देवता। त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—हे विद्वन्! वीर पुरुष! (यमाय) सूर्य जिस प्रकार ग्रह उपग्रहों और पृथ्वी आदि को अपने नियम में रखता है उसी प्रकार समस्त राष्ट्र को नियम में रखने वाले पद के लिये (त्वा मखाय) पूजनीय उत्तम प्रजापति पद के लिये तुझको (सूर्यस्य तपसे त्वा) सूर्य के समान शत्रुओं को संतापन करने में समर्थ 'तपस्' पद के लिये तुझे नियुक्त करता हूं। (सविता) सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक परमेश्वर (त्वा) तुझको (मध्वा)

१०—इति महावीरसंभरणम्।

१०—अतो महावीरप्रोक्षणम्। अभिषेक इति यावत्।

मधुर अन्न आदि ऐश्वर्य और शत्रुपीड़क बल से (आनक्तु) युक्त करे। हे विद्वन्! तू उस वीर पुरुष को (पृथिव्याः संस्पृशः) भूमि पर स्पर्श होने से अर्थात् उसे सामान्य जनों में मिल कर अनादृत होने से (पाहि) बचा। अथवा हे राजन्! तू राष्ट्र को पृथिवी पर आक्रमण करने वाले शत्रु से बचा। तू (अर्चिः असि) अग्नि की ज्वाला के समान दाहकारी है। (शोचिः असि) विद्युत् की दीप्ति के समान संतापकारी है। तू (तपः असि) सूर्य के ताप प्रकाश के समान तपस्वी, संतापक और धर्मात्मा है।

अनाधृष्टा पुरस्तादग्नेराधिपत्य ऽआयुर्मे दाः। पुत्रवती दक्षिणत ऽइन्द्रस्याधिपत्ये प्रजां मे दाः। सुषदा पश्चाद्देवस्य सवितुराधिपत्ये चक्षुर्मे दाः। आश्रुतिरुत्तरतो धातुराधिपत्ये रायस्पोषं मे दाः। विधृतिरुपरिष्टाद् बृहस्पतेराधिपत्य ऽओजो मे दाः। विश्वाभ्यो मा नाष्ट्राभ्यस्पाहि। मनोरश्वासि॥ १२॥

पृथिवी देवता। स्वराड् उत्कृतिः। षड्जः॥

भा०—हे पृथिवी! [१] (अनाधृष्टा) शत्रु से कभी धर्षण नहीं की जाकर तू (पुरस्तात्) पूर्व की दिशा से (अग्नेः) अग्नि अर्थात् सूर्य के (आधिपत्ये) स्वामित्व में रह कर जिस प्रकार (आयुः) जीवनप्रद अन्न का प्रदान करती है उसी प्रकार तू (अग्नेः आधिपत्ये) अग्नि के समान तेजस्वी शत्रुसंतापक, प्रतापी, अग्रणी नायक के स्वामित्व में रहकर (मे) मुझ प्रजाजन को (आयुः दाः) आयु प्रदान कर। (२) हे पृथिवि! (पुत्रवती) पुत्रों से स्त्री जिस प्रकार अपने पति के अधीन रहकर उत्तम प्रजा को प्रदान करती है, इसी प्रकार तू भी (पुत्रवती) पुरुषों को दुःखों से बचाने वाले वीर पुरुष से युक्त होकर (दक्षिणतः) दक्षिण दिशा से (इन्द्रस्य आधिपत्ये) विद्युत् या सूर्य के समान तेजस्वी और शत्रुनाशक और ऐश्वर्यवान् पुरुष के स्वामित्व में रह कर (मे) मुझ राष्ट्र के राज-वर्ग को उत्तम (प्रजां दाः) प्रजा, सन्तति को प्रदान कर। (३)

हे पृथिवि ! तू (सुपदा) सुख से बैठने और बसने योग्य समतल होकर (पश्चात्) पश्चिम से (देवस्य सवितुः) प्रकाशमान सूर्य के अधीन रह-कर जिस प्रकार चक्षु, उत्तम दर्शनशक्ति प्रदान करती है। समतल भूमि पर सूर्य का प्रकाश विस्तृत पड़ता है दूर तक, स्पष्ट दिखाई देता है। उसी प्रकार, तू (देवस्य सवितुः) दानशील, विजिगीषु, सूर्य के समान तेजस्वी, सबके प्रेरक पुरुष के अधीन रहकर (मे) मुझ शासक को (चक्षुः) ज्ञान चक्षु एवं प्रजा पर निरीक्षण करने का बल (दाः) प्रदान कर। (४) (आश्रुतिः) सब तरफ़ से उत्तम रीति से श्रवण करने हारी होकर (उत्त-रतः) उत्तर दिशा से (धातुः) धारण करने वाले, वायु के समान व्यापक, बलशाली पुरुष के (आधिपत्ये) स्वामित्व में रहकर (रायः पुष्टिः) धन समृद्धि और पशु सम्पत्ति को (मे दाः) मुझे प्रदान कर। (५) (विधृतिः) विविध पदार्थों के धारण और विशेष ज्ञान के धारण में समर्थ होकर तू (बृहस्पतेः) बृहती, वेदवाणी के पालक विद्वान् पुरुष के (अधिपत्ये) स्वामित्व में, उसके अधील रहकर (मे) मुझे (ओजः) बल पराक्रम, एवं ब्रह्मचर्य पूर्वक वीर्य (दाः) प्रदान कर। (६) (मा) मुझ को (विश्वाभ्यः) समस्त (नाष्ट्राभ्यः) नाश करनेवाली दुष्ट स्वभाव की प्रकृतिवाली शत्रु सेनाओं से (पाहि) सुरक्षित रख। तू, (मनोः) मननशील पुरुष के (अश्वा) भोग करने योग्य (असि) है।

शरीर के पांच मुख्य भाग हैं नाक मुख, प्रजननाङ्ग, चक्षु, मन और धारणा बुद्धि। इनके पांच कार्य हैं अन्न प्राण और अन्न का ग्रहण, प्रजा प्राप्त करना, देखना, दूर का श्रवण करना, ज्ञान प्राप्त करना। इन सब शक्तियों से युक्त पृथिवी निवासिनी प्रजा क्रम से (१) अन्न और प्राण के बल से वह शत्रु से कभी पराजित नहीं होती। ऐसी प्रजा अपने नायक के अधीन रह कर राजा के राज्य की आयु को बढ़ाती है। (२) खूब प्रजाओं, सन्ततियों से पृथिवी निवासिनी प्रजा पुत्रवती होकर सेनापति को वीर

सैनिक प्रदान करती है। (३) सुख से जिस में राजा शासन करता है वह प्रजा दूरदर्शिनी है वह कभी अन्धी होकर द्रोह नहीं करती। वह शान्ति से दूर तक देखने और गम्भीर विचारने का अवसर प्रदान करती है। (४) समृद्ध प्रजा राजा की आज्ञा पालन करने वाली 'आश्रुति' है। वह अपने पोपक राजा के अधीन रहे तो और समृद्ध होती है। (५) राष्ट्रपालक या सेनापालक के अधीन रह कर राष्ट्र विविध प्रजाओं के अपने भीतर धरती है वह 'विधृति' है। उसमें बल पराक्रम की मात्रा बहुत है। वह राजा को सब विपत्तियों से बचावे। वह मननशील राजा के ही भोग्य हो, मूर्ख अत्याचारी राजा उसको भोग न सके।

स्वाहा॑ म॒रुद्भिः॒ परि॑ श्रीयस्व।
दि॒वः सꣳस्पृश॑स्पाहि मधु॒ मधु॒ मधु॑ ॥ १३ ॥

सुवर्ण विद्वान्, प्राणश्च देवताः। निचृद् गायत्री षड्जः॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! तू (मरुद्भिः) प्रजा गणों और हे वीर सेनापते! तू शत्रुओं को मारने वाले वीर सैनिकों से (परिश्रीयस्व) सब तरफ से आश्रय बन। वे तेरा आश्रय लें। तू उन द्वारा पृथ्वी का भोग कर। तू इस राष्ट्र को (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी राज गण के (संस्पृशः) तीक्ष्ण स्पर्श करने वाले कष्टदायी कारण से (पाहि) रक्षा कर और (मधु मधु मधु) कर्म, उपासना और ज्ञान, इनका सेवन कर और इसी प्रकार शरीर में स्थित प्राण, उदान, व्यान के समान तीनों ब्राह्मबल, क्षात्रबल और धनबल प्राप्त कर।

गर्भो॑ दे॒वानां॑ पि॒ता म॑ती॒नां पतिः॑ प्र॒जाना॑म्।
सं दे॒वो दे॒वेन॑ सवि॒त्रा ग॑त॒ सꣳ सूर्ये॑ण रोचते॥१४॥

घर्मो देवता। भुरिगनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—सेनापति और राजा के पक्ष में—(देवानां गर्भः) देव, विजयशील वीर सैनिकों और विद्वानों, शासकों को अपने अधीन ग्रहण करने

वाले सूर्य के समान, (पिता मतीनाम्) मननशील, मेधावी, पुरुषों का पालक, (प्रजानाम् पतिः) प्रजाओं का स्वामी (देवः) दानशील, तेजस्वी, विजयी होकर (सवित्रा) सब संसार के प्रेरक (सूर्येण देवेन) सूर्य देव के समान (संगत) पृथ्वी से भली प्रकार युक्त होता है और (संरोचते) पृथ्वी पर उसी के समान प्रकाशित होता है।

ईश्वर के पक्ष में—(देवानां गर्भः) ईश्वर तेजस्वी समस्त सूर्य आदि पदार्थों के भीतर व्यापक, एवं सबको अपने भीतर लेने वाला। सविता सूर्य के समान प्रकाशित है।

सम॒ग्निर॒ग्निना॑ गत॒ सं दैवेन सवि॒त्रा सꣳ सूर्य्ये॑णारोचिष्ट।
स्वाहा॒ सम॒ग्निस्तप॑सा गत॒ सं दैव्येन सवि॒त्रा सꣳसूर्ये॑णारूरुचत १५

अग्निर्देवता। निचृद् ब्राह्मी अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—(अग्निः) वह महान् वीर सेनापति अग्नि के समान तेजस्वी होने और अग्रणी होने से 'अग्नि' है। इसी गुण से वह (अग्निना संगत) अग्नि के साथ मेल खाता है, उसकी उससे तुलना की जाती है। वह (देवेन सवित्रा) देव, सर्वप्रेरक (सूर्येण) सूर्य के साथ (सम्) तुलना पाकर (अरोचिष्ट) प्रकाशित होता है। वह (अग्निः) किसी प्रकार बुझाया न जाकर अग्नि के समान तेजस्वी होकर (स्वाहा) उत्तम, सत्य वाणी और सत्य क्रिया से और (तपसा) धर्मानुष्ठान और तपस्या से (संगत) युक्त होता है। वह भी (दैव्येन सवित्रा सूर्येण) देवों, पृथिवी आदि में सर्वोत्तम ऐश्वर्यकारी, सबके प्रेरक सूर्य के साथ तुलना पाकर (सम् अरूरुचत) भली प्रकार सदा प्रकाशित होता है।

परमेश्वरपक्ष में—यह अग्नि उसी स्वयंप्रकाश परमेश्वर के द्वारा

१४—अथातो 'मा माहिंसीः'। (२०) इत्यन्तं महावीरपरिक्रमणम्।

प्रकाशित होता है। और यह अग्नि सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित होती है। उस परमेश्वर को सत्य क्रिया, धर्मानुष्ठान से तुम लोग जानो।

धर्त्ता दिवो विभाति तपसस्पृथिव्यां धर्त्ता देवो देवानाममर्त्य-स्तपोजाः वाचमस्मे नियच्छ देवायुवम् ॥ १६ ॥

भा०—(दिवः तपसः धर्त्ता) प्रकाशमान द्यौलोक को और ताप को जिस प्रकार सूर्य धारण करता है उसी प्रकार वह (दिवः) राजसभा या तेज को धारण करने हारा, (पृथिव्यां) इस पृथिवी पर और (तपसः) तप, धर्माचरण और शत्रुसंतापक बल का (धर्त्ता) धारण करने हारा होकर (देवानां) समस्त विद्वानों में (देवः) सबसे बड़ा तेजस्वी, राजा (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों से भिन्न होकर (तपोजाः) तपोबल और धर्मानुष्ठान के बल से अधिक शक्ति सामर्थ्यवान् हो। वह (अस्मे) हमें (देवायुवम्) समस्त विद्वान् पुरुषों को एकत्र संगत करने में कुशल, विजयशील सैनिकों और शासकों को एक ही काल और स्थान में एकत्र कर लेने वाली (वाचम्) वाणी को (नियच्छ) प्रदान कर।

परमेश्वर के पक्ष में—वह परमेश्वर सूर्य का धारक तेजस्वी, अमरण धर्मा, सब देवों का देव, तप से प्रकट होने वाला है। वह हम में विद्वानों से संगति कराने वाली और पृथिव्यादि लोकों और उत्तम ज्ञानों का लाभ कराने वाली वेद वाणी को प्रदान करे।

**अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान ऽआ वरीवर्त्ति भुवनेष्वन्तः ॥१७॥**

ऋ० १। १६४। ३१ ॥

निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः ॥

भा०—मैं (गोपाम्) सबके रक्षक, (अनिपद्यमानम्) अचल, स्थिर, विपत्तियों से नष्ट न होने वाले वीर और (पथिभिः) नाना मार्गों से (आ चरन्तम्) समीप आते और (परा चरन्तं च) दूर देशों में जाते

हुए सर्वत्र शासक को (अपश्यम्) देखता हूं। यह (सध्रीचीः) अपने साथ रहने वाली और (विषूचीः) नाना दिशाओं में विस्तृत प्रजाओं पर भी (वसानः) शासक रूप से रहता हुआ (भुवनेषु अन्तः) समस्त लोकों में (आ वरीवर्त्ति) सब प्रकार से सर्वोपरि होकर रहता है।

सूर्य के पक्ष में—अपने साथ रहने वाली और सर्वत्र फैलने वाली दिशाओं या रश्मियों को धारण करता हुआ वह सब लोकों में व्याप्त होता है।

परमेश्वरपक्ष में—वह समस्त दिशाओं में व्यापक है। सबका रक्षक है और ज्ञान मार्गों से हमें इस लोक में प्राप्त होने और परलोक में भी प्राप्त होने वालों का ध्रुव रक्षक है।

विश्वा॑सां भु॒वां प॑ते॒ विश्व॑स्य मनसस्पते॒ विश्व॑स्य वचसस्पते॒ सर्व॑स्य वचसस्पते। दे॒व॒श्रुत्त्वन्दे॑व घर्म दे॒वो दे॒वान् पा॒ह्यत्र॑ प्रावी॒रनु॑ वां दे॒ववी॑तये। मधु॒ माध्वी॑भ्यां मधु॒ माधू॑चीभ्याम्॥ १८॥

ऋ० १। ११६। १२॥

अत्यष्टिः। गान्धारः॥

भा०—हे राजन्! हे ईश्वर! हे (विश्वासां) समस्त (भुवाम् पते) भूमियों के पालक! स्वामिन्! (विश्वस्य मनसः पते) समस्त प्रजाजन के मनों के स्वामिन्! समस्त ज्ञानों के पालक! (विश्वस्य वचसः पते) समस्त प्रजा की वाणियों और आज्ञाओं के स्वामिन्! समस्त वेदवाणियों के स्वामिन्! (सर्वस्य वचसः पते) समस्त लौकिक वचनों के स्वामिन्! प्रजा की वाणियों के स्वामिन्! हे (देवश्रुत्) देवों—विद्वानों को श्रवण करने हारे एवं शासकों, वीर पुरुषों से आज्ञा रूप से श्रवण करने योग्य! दोनों में प्रसिद्ध! हे (घर्म) तेजस्विन्! सबके प्रकाशक श्रवणशील, दयार्द्र! तू (देवः) सूर्य के समान तेजस्वी, दाता, रक्षक होकर (देवान्

पाहि) देवों, विद्वानों की रक्षा कर। हे राजप्रजावर्गों ! हे स्त्री पुरुषो ! वह राजा (वा) तुम दोनों को (देववीतये) दिव्य गुणों और वीर सैनिकों की प्राप्ति के लिये (प्र अवीः) उत्तम रीति से तृप्त कर, पालन कर। (माध्वीभ्याम्) मधुर गुणों से युक्त विद्या और सुशिक्षा इन दोनों के (मधु) सार युक्त ज्ञान को और (माधूचीभ्याम्) मधु-नाम ब्रह्म विज्ञान प्राप्त करने वाले शिक्षक और शिष्य गण की प्रजाओं के (मधु) मधुर गुण युक्त सत् चरित्र को भी (प्रः अवीः) उत्तम रीति से रक्षा कर और उनका बल प्रदान कर।

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्य्याय त्वा।
ऊर्ध्वो ऽअध्वरं दिवि देवेषु धेहि ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! (त्वा) तुझको (हृदे) हृदय की चेतनता को प्राप्त करने लिये, उसकी स्वस्थता के लिये (मनसे त्वा) विज्ञान युक्त अन्तःकरण के लिये, मन की स्वस्थता के लिये और (दिवे त्वा) विद्या प्रकाश के लिये और (सूर्याय त्वा) सूर्यादि लोकों के विज्ञान के लिये ध्यान करते हैं। तू सब से (ऊर्ध्वः) ऊंचा है। तू (अध्वरं) अहिंसामय यज्ञ को (दिवि) उत्तम व्यवहार में और (देवेषु) विद्वानों में (धेहि) स्थापन कर। हे राजन् ! अपने हृदय, चित्त और राजसभा में और सूर्य समान तेजस्वी पद के लिये तुझे स्थापित करते हैं। तू सब से ऊंचा होकर ज्ञानपूर्वक, विद्वान् पुरुषों के आश्रय में इस राष्ट्रमय यज्ञ को स्थापित कर।

पिता नोऽसि पिता नो बोधि नमस्ते ऽअस्तु मा मा हिᳪसीः।
त्वष्टृमन्तस्त्वा सपेम पुत्रान् पशून्मयि धेहि प्रजामस्मासु धेह्य-रिष्टाहᳪ सह पत्या भूयासम् ॥ २० ॥

निचृद् अति जगती। निषादः ॥

२०—पशून्यपि धेह्यरिष्टा० इति काण्व०।

भा०—(नः पिता असि) हे राजन् ! हे परमेश्वर ! तू हमारे पिता के समान पालक है। (नः) हमारे पिता के समान एवं गुरु के समान हो (बोधि) हमें ज्ञानवान् कर, शिक्षित कर। (ते नमः अस्तु) तुझे नमस्कार हो। (मा मा हिंसीः) मुझ प्रजाजन को मत मार, विनष्ट मत कर। हम समस्त प्रजाजन (त्वष्टृमन्तः) त्वष्टा, तेजस्वी, प्रजापति रूप स्वामी वाले होकर (त्वा सपेम) तुझे प्राप्त हों। तुझ से मिलें। तू (पुत्रान् पशून्) पुत्रों और पशुओं को (मयि धेहि) मुझ में पति के समान ही धारण करा। (अस्मान्) हम में (प्रजाम्) उत्तम सन्तान, प्रजा को धारण करा। मैं प्रजा (अरिष्टा) मङ्गलमयी स्त्री के समान शुभ गुणों वाली होकर (सह पत्या) पति के समान तुझ प्रजापति के साथ (भूयासम्) रहूं।

परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर ! तू हमारा पिता है, गुरु है, हमें ज्ञानवान् बना। हमें विनष्ट न कर। हम उत्तम गुणवान् उत्तम पदार्थों और शिल्पों से युक्त होकर तुझे प्राप्त हों। तू हमें पशु प्रदान कर। प्रजा दे। मैं तेरी प्रजा तुझ स्वामी से युक्त होकर रहूं।

गृहस्थपक्ष में—हे पितः ! हे श्वशुर ! तू हमारा पिता है हमें सचेत कर। हमें कष्ट मत दे। हे पते ! हम स्त्रियां कन्याएं प्रजन सामर्थ्य से युक्त होकर तुझ पति को प्राप्त हों। तू हमें पुत्रादि सन्तान धारण कर। मैं स्त्री सुमङ्गली होकर पति के साथ होकर रहूं।

अहः केतुना जुषता॑ᳪं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा।
रात्रिः केतुना जुषता॑ᳪं सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ॥ २१ ॥

घर्मो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः ॥

भा०—(सुज्योतिः) उत्तम ज्योति युक्त (अहः) दिन के समान प्रकाश स्वरूप तेजस्वी पुरुष (ज्योतिषा) ज्योतिर्मय (केतुना) सूर्य के समान तेजस्वी, आज्ञापक कर्म और प्रज्ञावान् पुरुष या उत्तम ज्ञापक चिन्ह और ज्ञान से (जुषताम्) युक्त हो। और (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति या तेज

वाली (रात्रिः) सब प्रजाओं को सुख ऐश्वर्य देने वाली राज्यव्यवस्था (ज्योतिषा केतुना) दीपक अग्नि वा चन्द्र के समान ज्योतिर्मय, तेजस्वी सबके आज्ञापक, विद्वान् राजा से (स्वाहा) सत्य और उत्तम कर्म द्वारा (जुषताम्) युक्त हो। (स्वाहा) हमारी यह उत्तम इच्छा पूर्ण हो।

अथवा तेजस्वी राजा से दायीं वायीं आखों के समान दो विद्वान् नियुक्त हों। रात्रि और दिन दोनों तेज हमें प्राप्त हों, हमें सुख प्रदान करें।

इति सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥

अथाष्टात्रिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ दे॒वस्य॑ त्वा सवि॒तुः प्र॑स॒वे॒ऽश्विनो॑र्बा॒हुभ्यां॑ पू॒ष्णो॒ हस्ता॑भ्याम् । आद॑देऽदि॑त्यै रास्ना॑सि ॥ १ ॥

रज्जुर्देवता ।

भा०—हे पृथिवि ! पृथिवी निवासिनि प्रजे ! हे स्त्रि ! (देवस्य) कान्तियुक्त कामनावान् (सवितुः) सकल जगत् के उत्पादक ईश्वर के (प्रसवे) उत्पन्न हुए इस संसार में (अश्विनोः) सूर्य के समान दिन और रात्रि के समान स्त्री और पुरुष धर्मों से युक्त दायें वायें देहों के (बाहुभ्याम्) बाहु रूप बलवीर्यों से और (पूष्णः हस्ताभ्याम्) पूषा, सर्वपोषक पति या स्वामी (हस्ताभ्याम्) हाथों से (त्वा) मैं तुझको (आददे) ग्रहण करता हूं । राजा या स्वामी होकर पृथ्वी को स्त्री के समान स्वीकार करता हूं । मैं पति तुझ स्त्री को अपने बाहुओं और हाथों से स्वीकार करता हूं । हे राज्यव्यवस्थे ! राजसभे तू (आदित्यै) पृथिवी की (रास्ना असि) गाय के गले में बंधी रस्सी के समान बांधने वाली, प्रजाओं को सत्य उपदेश करने वाली, सन्मार्ग पर चलाने वाली है ।

'रास्ना—'रासृशब्दे । भ्वादि० । निपतनात्नक् औणादिः । रास्ना ।

इड॒ एह्यदि॑त॒ एहि॒ सर॑स्व॒त्येहि॑ ।
असा॒वेह्यसा॒वेह्यसा॒वेहि॑ ॥ २ ॥

गौः सरस्वती देवता । निचृद्गायत्री । षड्जः ॥

भा०—(इडे) हे स्तुति योग्य ! उत्तम वाणी से युक्त ! तू (एहि) आ । हे (अदिते) अखण्डिते ! पृथिवि ! तू (एहि) प्राप्त हो । हे (सरस्वति) उत्तम विज्ञानों से युक्त ! उत्तम जलधाराओं, तलाबों से युक्त ! पृथिवि ! (एहि) प्राप्त हो । इसी प्रकार हे (असौ) अमुक २ नाम

और गुणों वाली ! सस्यश्यामले ! शुभ्रज्योत्स्ना फुल्लद्रुमदलशालिनि ! तू (एहि) तू (एहि) मुझ अपने पालक राजा को प्राप्त हो ।

राजसभा के पक्ष में—हे (इडे) वाणि ! स्तुत्ये ! हे (अदिते) अखण्ड शासन वाली ! हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति ! विद्वत्सभे ! (असौ) दशावरे, त्र्यवरे इत्यादि (एहि) तू प्राप्त हो ।

स्त्रीपक्ष में—हे (इडे) स्तुत्ये, वन्द्ये ! हे (अदिति) अखण्ड-चरित्रे ! हे (सरस्वति) आनन्द प्रदे ! ज्ञानवति ! (असौ) हे वरानने ! अखण्डित अनिन्दिताङ्गि ! इत्यादि (एहि) तू मुझ पति को प्राप्त हो ।

अदित्यै रास्नासीन्द्राण्या ऽउष्णीषः ।
पूषासि घर्माय दीष्व ॥ ३ ॥

रास्ना वत्सश्च देवते । भुरिक्साम्नी बृहती । मध्यमः ॥

भा०—हे राज्यव्यवस्थे एवं राजन् ! जैसे रज्जु गाय को वश करने हारी होती है उसी प्रकार तू (अदित्यै) पृथिवी की (रास्ना) बागडोर है । तू ही उसको वश करने वाला और सन्मार्ग पर चलाने हारा है । तू (इन्द्राण्याः) इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की लक्ष्मी का राजसभा की (उष्णीष) पगड़ी के समान शिर की शोभा है । बछड़ा जिस प्रकार गौ का प्रेमपात्र उससे उत्पन्न और उसी के दिये दूध से पलता है और वायु जिस प्रकार सबको प्राण द्वारा पुष्ट करता है, उसी प्रकार तू भी (पूषा) पृथ्वी को पोषण करने हारा और उसका प्रेमपात्र होकर उसी के दुग्ध से स्वयं पुष्ट होने हारा (असि) है । तू (घर्माय) अपने तेजस्वी पद एवं प्रजा को नाना सुख प्रदान करने के लिये (दीष्व) कृपा कर ।

गृहस्थपक्ष में—(अदित्यै रस्नासि) हे पुरुष ! अखण्डचरित्र वाली सदाचारिणी स्त्री की बागडोर है । 'इन्द्राणी' अर्थात् पति वाली, सती सौभाग्यवती स्त्री का सिरमौर है । उसका पोषक है । (घर्माय) वीर्य सेचन या पुत्रोत्पत्ति के निमित्त स्त्री का पालन कर । स्त्री के पक्ष में—हे स्त्रि ! तू अखण्ड यश, या अखण्ड वीर्यवान् कुमार को सम्बन्ध में बांधने वाली,

गृहनीति की प्रमुख, भूमि के समान पोषक है, तू गृहस्थ यज्ञ के लिये मनोयोग दे, उसमें आत्मसमर्पण कर।

अश्विभ्यां पिन्वस्व सरस्वत्यै पिन्वस्वेन्द्राय पिन्वस्व।
स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् स्वाहेन्द्रवत् ॥ ४ ॥

अश्विसरस्वतीन्द्रा देवताः। आर्ची पंक्तिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे पृथिवि! (अश्विभ्याम्) प्रजा के स्त्री और पुरुषों के लिये (पिन्वस्व) प्रचुर धनैश्वर्य प्रदान कर। (सरस्वत्यै पिन्वस्व) उत्तम ज्ञानवान् विद्वत्सभा के लिये भी ऐश्वर्य प्रदान कर। (इन्द्राय पिन्वस्व) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति और राष्ट्र के लिये ऐश्वर्य प्रदान कर। हे पुरुषो! (इन्द्रवत्) ऐश्वर्य युक्त राज्य को (स्वाहा) उत्तम, सत्य नीति से संचालित करो। (इन्द्रवत् स्वाहा) आत्मा से युक्त शरीर को उत्तम विधि से पालन करो। (इन्द्रवत् स्वाहा) विद्युत आदि से युक्त पदार्थों का उत्तम रीति से ज्ञान करो।

स्त्री के पक्ष में—हे स्त्रि! अपने माता पिता, सरस्वती, आचार्याणी और वेद के विद्वानों और (इन्द्राय) सौभाग्यशाली पति को अन्न द्वारा तृप्त कर, समस्त यज्ञ (इन्द्रवत्) अपने पति के संग कर।

यस्ते स्तनः शशयो यो मयोभूर्यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः।
येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि सरस्वति तमिह धातवेऽकः।
उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ॥ ५ ॥ ऋ० १। १६४। ४९ ॥

दीर्घतमा ऋषिः। वाग् देवता। निचृद् अतिजगती। निषादः ॥

भा०—हे (सरस्वति) सरस्वति! उत्तम ज्ञानवान् पुरुषों एवं ज्ञानों से युक्त राजसभे! (स्तनः) माता का स्तन जिस प्रकार (शशयः) बालक को सुख की नींद सुलाने वाला, (मयोभूः) सुखजनक, (रत्नधा) उत्तम ज्ञान और बल का दाता, एवं रम्य, बालक का पोषक, (वसुवित्) प्राणों को प्राप्त कराने वाला है। और जिससे समस्त (वार्याणि)

वरण करने योग्य गुणों और बलों को माता पुष्ट करती है उसी प्रकार (ते) तेरा (स्तनः) उत्तम दुग्ध के समान मधुर ज्ञानोपदेश प्रदान करने वाला पुरुष, सभापति (शशयः) प्रजा को सुख शान्ति से रखने वाला और स्वयं भी शान्ति से विद्यमान रहता है (यः) जो (मयोभूः) प्रजा के कल्याण और सुख को उत्पन्न करता है, (यः रत्नधा) जो रमण योग्य उत्तम गुणों और ऐश्वर्यों का धारण करता और उत्तम नर-रत्नों का पालन पोषण करता है, (यः वसुवित्) जो वसु नामक ब्रह्म-चारियों को आचार्य के समान, विद्वानों को प्राप्त करता या राष्ट्र में वसने वाले उत्तम प्रजाजनों को ऐश्वर्य प्राप्त करने कराने हारा है और जो (सुदत्रः) उत्तम दानशील है (येन) जिससे तू राजसभा (विश्वा) समस्त (वार्याणि) वरण करने योग्य, वाञ्छनीय ऐश्वर्यों, कार्यों और राज्यांगों को (पुष्यसि) पुष्ट करती है (तम्) उस 'स्तन' अर्थात् ज्ञानो-पदेष्टा, विद्वान् पुरुष को (इह) इस राष्ट्र में (धातवे) प्रजा को धारण, पालन पोषण करने के लिये (अकः) नियुक्त कर ।

(उरु) मैं विशाल (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष आकाश का (अनु-एमि) अनुयायी होऊं, उसका अनुकरण करूं । मैं नियुक्त विद्वान् भी अन्त-रिक्ष या मेघ के समान ज्ञान और ऐश्वर्य की धाराओं से वर्षकर प्रजा को पुष्ट करूं । सरस्वती वेद वाणी का उपदेष्टा आचार्य सरस्वती का उप-देश करने से उसका 'स्तन' है । वह बालक के समान शिष्य को शान्ति-प्रद, सुखजनक, उत्तम ज्ञानपोषक वसु ब्रह्मचर्य द्वारा प्राणों को पुष्ट करता, उत्तम ज्ञान दान करता है, उस से ही सब प्राप्य ज्ञानों और वीर्यों को पुष्ट करता है । आचार्य भी अन्तरिक्षगत मेघ के समान शिष्यों पर ज्ञानवर्षण करे । मेघ के समान आचार्य प्रजापति का वर्णन देखो बृह-दारण्यक उप० ।

गृहस्थ पक्ष में—पुरुष अन्तरिक्ष के समान पुत्रादि पर अनुग्रहकारी, एवं स्त्री का भरण पोषणकारी हो ।

'स्तनः'—ष्टन वन शब्दे । भ्वादिः । स्तन गदी देवशब्दे । चुरादिः स्तनतीति स्तनः आचार्यो विद्वान् आज्ञापकः । स्तनयतीतिस्तन मेघः ।

गायत्रं छन्दोऽसि त्रैष्टुभं छन्दोऽसि द्यावापृथिवीभ्यान्त्वा परिगृह्णा-म्यन्तरिक्षेणोपयच्छामि । इन्द्राश्विना मधुनः सारघस्य घर्मं पात वसवो यजत वाट् । स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये ॥६॥

परोशासौ, अश्विनौ घर्मश्च देवताः । निचृदत्यष्टिः । गान्धारः ॥

भा०—हे (इन्द्र) विद्वान् पुरुष ! (गायत्रं छन्दः असि) गायत्री छन्द जिस प्रकार २४ अक्षरों से युक्त होता है उसी प्रकार तू २४ वर्ष के अक्षत बल वीर्यों से युक्त हो । (त्रैष्टुभं छन्दः असि) त्रिष्टुप् छन्द जिस प्रकार ४४ अक्षरों से युक्त है उसी प्रकार ४४ वर्षों के अक्षय बल वीर्यों से युक्त हों ।

अथवा—हे (इन्द्र) राजन् ! उत्तम शासक ! सभापते ! विद्वन् ! प्रजापालक ! तू (गायत्रं छन्दः) गायत्री छन्द से प्रकाशित अर्थ या अग्नि के समान उत्तम ज्ञानप्रकाशवान् (त्रैष्टुभं छन्दः असि) त्रिष्टुप् छन्द से प्रकाशित अर्थ के समान, छन्द, या ऐश्वर्यवान् के गुणों से युक्त अथवा ब्राह्मबल और क्षात्रबल से युक्त हो । हे (अश्विना) राजा प्रजावर्गो ! (द्यावापृथिवीभ्यां) द्यौ, सूर्य और पृथिवी, उन दोनों के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों के हित के लिये (त्वा) तुझ पुरुष को (परिगृह्णामि) उचित पद के लिये स्वीकार करता हूं । (अन्तरिक्षेण उपयच्छामि) सूर्य जिस प्रकार अन्तरिक्ष से मेघ द्वारा वर्षण और वायु द्वारा सबका प्राण धारण कराता है उसी प्रकार मैं तुझ योग्य विद्वान् पुरुष से प्रजा पर ज्ञानैश्वर्य के वर्षण के निमित्त (उप यच्छामि) तुझे स्वीकार करता हूं ।

स्त्रीपक्ष में—हे (अश्विना) स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों (गायत्रं छन्दः असि त्रैष्टुभं छन्दः असि) गायत्री और त्रिष्टुप् छन्दों के समान २४ या ४४ वर्ष के अक्षत बल वीर्यवान् होवो। अथवा अग्नि और सूर्य या मेघ के समान

तेजस्वी, प्रतापी, वीर्यवान् हो। (द्यावा पृथिवी त्वा अन्तरिक्षेण उपयच्छामि) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के तेज, बल वीर्य को धारण करने कराने में समर्थ होकर जल के द्वारा स्वीकार करता हूं। अर्थात् जिस प्रकार सूर्य और पृथिवी दोनों के बीच अन्तरिक्ष रहकर एक दूसरे के साथ सम्बन्ध कराता है और अन्तरिक्ष के द्वारा ही सूर्य पृथिवी पर जल वर्षण कराता और अन्न पैदा करता है और इसी प्रकार पृथ्वी अन्तरिक्ष द्वारा सूर्य की रश्मियों का ग्रहण करती है उसी प्रकार (अन्तरिक्षेण) अन्तरिक्ष अर्थात् जल के द्वारा ही पुरुष और स्त्री परस्पर विवाहित होते हैं। वही उनमें आदान प्रतिदान का कारक है उस द्वारा (त्वा उपयच्छामि) मैं पुरुष तुझ स्त्री को और मैं स्त्री तुझ पुरुष को पत्नी और पतिरूप से स्वीकार करता और करती हूं।

हे (वसवः) पृथिवी आदि प्रजाओं के बसाने वाले पदार्थों के समान यशस्वी एवं बसने वाले प्रजास्थ पुरुषो ! आप लोग (स्वाहा) उत्तम दान प्रतिदान और सत्य वाणी द्वारा (सारघस्य) मधु मक्खी के बने विशुद्ध (मधुनः) मधु के समान मधुर व्यवहार के (घर्मम्) तेजो युक्त पराक्रम से सम्पन्न, राज्य रूप परम लाभ का (पात) पालन करो या उत्तम रस, आनन्द का पान करो, उपभोग करो। और (वाट्) उत्तम व्यवहार से उत्तम रीति से ही (यजत) परस्पर लो, दो, सुसंगति करो। और (सूर्यस्य) सूर्य के (वृष्टिवनये) वृष्टि प्रदान करने वाले (रश्मये) किरणों को जिस प्रकार पृथिवी, वायु आदि 'वसु' नामक पदार्थ 'मधु' अर्थात् जल और अन्न प्रदान करते हैं उसी प्रकार सूर्य के समान तेजस्वी राजा प्रजा के प्रति ऐश्वर्यादि वर्षण करने वाले रश्मि अर्थात् राजप्रबन्ध के कार्य के लिये हे (वसवः) समस्त प्रजागणो ! (यजत) तुम कर प्रदान करो, अथवा परस्पर संगत रहो।

गृहस्थपक्ष में—हे स्त्री पुरुषो ! (सारघस्य मधुनः घर्मं पात) मधु

मक्खियों के बनाये मधु के रस, मधुपर्क का पान करो। उसी के समान मधुर परस्पर गृहस्थ धर्म, यज्ञ का पालन एवं रसास्वादन करो। अथवा सहस्त्रों भ्रमरों द्वारा संगृहीत मधु का जिस प्रकार स्त्री पुरुष उपभोग करते हैं उसी प्रकार गतिशील प्राणों के द्वारा सञ्चित मधुर, सुखप्रद (घर्म) सेचन करने योग्य वीर्य का (पात) पालन करो। एवं गृहस्थोचित कार्य में उसका उपभोग और उपयोग करो (वाट्) यज्ञाहुति के समान ही (यजत) उस सार पदार्थ का, श्रेष्ठ फल के लिये प्रदान करो, और परस्पर संगत होवो। सूर्य के समान (वृष्टिवनये रश्मये) वृष्टि अर्थात् वीर्य सेचन आदि कार्य तथा उससे उत्पन्न पुत्रादि लाभ के लिये उत्तम रीति से संगत होवो।

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा। सरिराय त्वा वाताय स्वाहा। अनाधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अप्रतिधृष्याय त्वा वाताय स्वाहा। अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा। अशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा॥ ७॥

वातनामानि देवताः। भुरिगष्टिः। मध्यमः॥

भा०—(१) मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझ राजा विद्वान् पुरुष को (वाताय) प्राण वायु के समान, (समुद्राय) समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाले 'समुद्र' वा मेघादि से जल वर्षण करने वाले वायु के पद के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया से स्वीकार करता हूं। (त्वा) तुझको (सरिराय वाताय) समस्त प्राणियों में एक साथ और एक समान चेष्टा उत्पन्न करने वाले वायु के समान सर्वप्रेरक शासक पद के लिये (त्वा स्वाहा) तुझको मैं शासक रूप से सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं। (अनाधृष्याय वाताय त्वा स्वाहा) प्रबल वात या आन्धी को जिस प्रकार कोई काबू नहीं कर सकता उसी प्रकार शत्रुओं से कभी न दबने वाले, प्रचण्ड पराक्रमी पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं।

(त्वा अप्रतिधृष्याय वाताय स्वाहा) प्रतिस्पर्धी द्वारा दमन न किये जा सकने वालेप्रचण्ड तेजस्वी पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं। (अवस्यवे वाताय त्वा स्वाहा) रक्षा करने वाले प्राण वायु के समान विद्यमान रक्षक पद के लिये तुझको मैं सत्य क्रिया से स्वीकार करता हूं। (अशिमिदाय वाताय त्वा स्वाहा) अखण्ड शक्ति वाले वायु के समान अक्षत वीर्यवान् सामर्थ्यवान् पद के लिये तुझे स्वीकार करता हूं।

स्त्री पुरुष पक्ष में—स्त्री के लिये पुरुष वायु के समान प्राणप्रद, समुद्र के समान अनन्त सुख वर्षक मेघ हो, एक साथ सब अभिलाषाओं का प्रेरक पूरक, दूसरे से धर्षण योग्य न हो, प्रतिस्पर्धा में किसी से न दबे, रक्षण कार्य में कुशल हो। एवं वायु के समान सुखजनक, सुशीतल, अदम्य, उत्साहवान् और प्राणप्रिय हो। इसी निमित्त स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को स्वीकार करे। अक्षत वीर्य, कर्म और सामर्थ्यवान् अथवा क्लेश कर्म के दूर करने या शान्ति प्राप्त कराने वाला, अथवा आकाश में चलने के लिये, वायुशोधन, जल, गृह, वायु शुद्धि, निर्भयता, ओषधिगत वायुविज्ञान, वायु वेगविज्ञान, रस, प्राणशक्ति विज्ञान के लिये स्त्री पुरुष एक दूसरे को वरण करें।

'अशिमिदाय'—क्लेशात्मकं कर्म शिमि तन्न ददाति इत्यशिमिदः तस्मै क्लेशविवर्जकायेति महीधरः। शिमीति कर्म नाम क्लेशात्मकं चैतत् अक्लेशदाय इति उवटः। शिमीति कर्मनाम शमयतेर्वा। इति यास्कः निरु० ५।२।७॥ न शिमिं शान्तिं द्यति खण्डयति इति अशिमिदः। न शिमिं क्लेशयुक्तं कर्म ददाति इति वा। शिमिः शक्तिः न दीयते खण्डयते यस्य सोऽशिमिदः तस्मै। यदश्यते भुज्यते तदन्नं। तन्मेदते यस्मिन् तस्मै रसायेति दया०।

इन्द्रा॑य त्वा॒ वसु॑मते रु॒द्रव॑ते॒ स्वाहेन्द्रा॑य त्वादि॒त्यव॑ते॒ स्वाहेन्द्रा॑य त्वाभिमाति॒घ्ने स्वाहा॑। स॒वि॒त्रे त्व॑ऽऋ॒भुम॑ते वि॒भुम॑ते॒ वाज॑वते॒ स्वाहा॒ बृह॒स्पत॑ये त्वा वि॒श्वदे॑व्यावते॒ स्वाहा॑॥ ८॥

इन्द्रो देवता । अष्टिः । मध्यमः ॥

भा०—(वसुमते) धन ऐश्वर्य से युक्त वसने वाली प्रजा और वसने वाले उत्तम पुरुषों से युक्त और (रुद्रवते) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुषों से युक्त या प्राणों से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पद के लिये (त्वा) तुझको मैं प्रजावर्ग स्वीकार करता हूं । (आदित्यवते इन्द्राय स्वाहा) आदित्य अर्थात् १२ हों मासों से युक्त सूर्य के समान आदित्य ब्रह्मचारी, पूर्ण विद्वानों या आदान प्रतिदान करने वाले वैश्यगण से युक्त ऐश्वर्यवान्, राजपद के लिये तुझको मैं स्वीकार करता हूं । (अभिमातिघ्ने इन्द्राय त्वा) अभिमानी शत्रुओं के नाशकारी इन्द्र, सेनापति पद के लिये तुझे स्वीकार करता हूं । (सवित्रे) सूर्य के समान तेजस्वी, सर्वप्रेरक, (ऋभुमते) ऋत, सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, विद्वानों से युक्त, (विभुमते) व्यापक सामर्थ्यवान्, एवं विशेष बल और ज्ञान के उत्पादक पदार्थों, मन्त्रों और विद्वानों से युक्त, (वाजवते) अन्न, ऐश्वर्य और संग्राम बल के स्वामी, पद के लिये (त्वा) तुझको (स्वाहा) उत्तम रीति से स्वीकार करता हूं (बृहस्पतये) महान् राष्ट्र के पालक पद के लिये और (विश्वदेव्यावते) समस्त देवों, राजा और विद्वान् शासकों के हितकारी कार्य के पालक पद के लिये (स्वाहा) तुझे उत्तम रीति से हम स्वीकार करते हैं । स्त्री पुरुष भी एक दूसरे को, धन, प्राण की रक्षा, ऐश्वर्य वृद्धि, शत्रुनाश, शिल्पियों की रक्षा, अन्न, वेदवाणी, समस्त विद्वानों और हितकारी कार्यों के लिये स्वीनार करें ।

यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते । स्वाहा घर्माय ।
स्वाहा घर्मः पित्रे ॥ ६ ॥

भुरिग्गायत्री । षड्जः ॥ यमो घर्मश्च देवते ।

भा०—(अंगिरस्वते) अंगारों के समान चमकने वाले तेजस्वी पुरुषों और प्राण विद्युदादि विद्या के ज्ञाता विद्वानों से संयुक्त और (पितृ-

मते) पालक पुरुषों से युक्त (यमाय) सर्वनियन्ता राजा के पद के के लिये (स्वाहा) उत्तम सत्यवाणी से तुझ को स्वीकार करता हूं। (घर्माय) अति तेजस्वी यज्ञ, प्रजापति पद के लिये तुझे सत्य वाणी से स्वीकार करता हूं। (घर्मः) तेजस्वी पद (पित्रे) पालक पुरुष को (स्वाहा) उत्तम रीति से प्रदान किया जाय।

स्त्री पुरुष पक्ष में—हम दोनों (घर्मः) स्वयं तेजस्वी या वीर्यवान् होकर उत्तम ज्ञानी, पालक जनों से युक्त सन्तान के लिये यज्ञ के लिये उत्तम सत्य वाणी और क्रिया द्वारा एक दूसरे को स्वीकार करें।

'समुद्राय त्वा वाताय (मं० ७) से लेकर 'यमाय' त्वा० इत्यादि तक १२ नाम वायु के गुण भेद से हैं। यह शतपथकार का मत है। गुण भेद से उपमानोपमेय भाव से इसकी संगति लगानी चाहिये।

विश्वा आशा दक्षिणसद्विश्वान्देवानयाडिह।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) राष्ट्र के भोग करने वाले उसके स्वामी राज प्रजावर्ग तुम दोनो ! (स्वाहाकृतस्य) एक दूसरे के प्रति सत्य संकल्प और सत्य वाणी द्वारा उत्पन्न किये (घर्मस्य) राष्ट्ररूप यज्ञ के अति प्रदीप्त या जल सेचन से प्राप्त (मधोः) मधुर अन्न का (पिबतम्) उपभोग करो। वह राष्ट्र का नियन्ता विद्वान् राजपुरोहित (दक्षिणसत्) दक्षिण दिशा में विराजमान प्रखर, सूर्य के समान तेजस्वी एवं (दक्षिणसत्) राजासन के दक्षिण भाग और दायें ओर में विराजमान होकर (विश्वाः आशाः) समस्त दिशाओं की प्रजाओं और (देवान्) समस्त उत्तम विद्वान्, वीर पुरुषों और राजाओं को (इह) इस राष्ट्र में या सभाभवन में (अयाट्) संगत करता, आदर करता है।

१०—अयाळिह० इति काण्व०।

यज्ञपक्ष में—वेदी के दक्षिण भाग में अध्वर्यु विराज कर जलादि देवों के विशोधन के लिये अग्नि में आहुति प्रदान करता है। (अश्विनौ) दोनों स्त्री पुरुष (स्वाहा कृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतम्) आहुति किये यज्ञ के शेष का उपभोग करें।

दिवि धा इमं यज्ञमिमं यज्ञं दिवि धाः।
स्वाहाग्नये यज्ञियाय शं यजुर्भ्यः ॥ ११ ॥

घर्मो देवता । विराडुष्णिक् । ऋषभः ॥

भा०—हे विद्वन्! (इमम् यज्ञम्) इस राष्ट्र रूप यज्ञ, प्रजापालक राजा को (दिवि धाः) राजसभा के आधार पर धारण कर (इमं यज्ञं) इस प्रजापालक सत्र के संगति कराने में कुशल पुरुष को (दिवि) उत्तम ज्ञान में या राजसभा के ऊपर सभापति रूप से स्थापित कर। (यज्ञियाय) यज्ञ, राष्ट्रावस्था के हितकर, उसको संभालने में योग्य (अग्नये) ज्ञानवान्, अग्रणी, तेजस्वी पुरुष को (स्वाहा) उत्तम अधिकार, मान और आदर एवं अन्नादि पदार्थ प्रदान करो। (यजुर्भ्यः) अन्य उसके साथ राज्य कार्यों में सहयोग देने वाले शासक जनों को भी (शम्) शान्ति सुख प्राप्त हो। अथवा (यजुर्भ्यः) यजुर्वेद के मन्त्रों में प्रतिपादित क्षत्रियोचित राज्य-कर्मों से शान्ति स्थापन करो।

गृहस्थपक्ष में—इस यज्ञ को सूर्य के प्रकाश में करो और उत्तम ज्ञान के प्राप्त करने के लिये (दिवि) सत्संग रूप यज्ञ करो। विद्वान् और याज्ञिकों को आदर करो और वेदमन्त्रों से सुख शान्ति प्राप्त करो।

अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥ १२ ॥

घर्मो देवता । आर्ची पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—हे (अश्विनौ) राज प्रजावर्गो! हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनो (अहर्दिवाभिः) दिन और रात सदा, (हार्द्वानं) हृदय को प्रिय लगने

वाले, हृदयग्राही (घर्मम्) तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् राष्ट्र को (ऊतिभिः) सब प्रकार के रक्षा साधनों से (पातम्) पालन करो, एवं उपभोग करो। (तन्त्रायिणे) शास्त्रों और कलाकौशल, शिल्पों के जानने वाले और कुटुम्ब और उसके समान समस्त राज्य तन्त्र के धारण करनेहारे गृहपति और राजा को और (द्यावापृथिवीभ्याम्) सूर्य और पृथिवी के समान राजा प्रजा वर्गों और स्त्री पुरुषों को (नमः) अधिकार, मान और अन्न प्राप्त हों।

अपा॑ताम॒श्विना॑ घ॒र्ममनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॑मᳬसाताम्। इ॒हैव रा॒तयः॑ सन्तु॥ १३॥

अश्विनौ देवते। निचृदुष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—हे राज प्रजावर्गो! आप दोनों (द्यावापृथिवी अनु) सूर्य और पृथिवी के समान एक दूसरे के अनुकूल परस्पर उपकारक होकर (घर्मम्) राष्ट्रपति का पालन और राष्ट्र-ऐश्वर्य को रस के समान (पातम्) पान करो, उसका पालन और स्वीकार करो, उपभोग करो। (अनु अमं-साताम्) उसी के समान एक दूसरे का आदर मान करो। (इह एव) यहां, उसके निमित्त ही (रातयः) विद्यादि सुखों और ऐश्वर्यों के दान भी (सन्तु) हों। स्त्री पुरुष भी अपने गृहस्थ रूप यज्ञ की रक्षा करें। इसी में नाना दान भी करें।

इ॒षे पि॑न्वस्वो॒र्जे पि॑न्वस्व॒ ब्रह्म॑णे पिन्वस्व क्ष॒त्राय॑ पिन्वस्व॒ द्यावा॑-पृथि॒वीभ्यां॑ पिन्वस्व। धर्मा॑सि सु॒धर्मा॒मेन्य॒स्मे नृ॒म्णानि॑ धारय॒ ब्रह्म॑ धारय क्ष॒त्रं धा॑रय॒ विशं॑ धारय॥ १४॥

धर्मो महावीरश्च देवते। अतिशक्करी। पञ्चमः॥

भा०—हे तेजस्वी पुरुष! तू (इषे) अन्न की वृद्धि के लिये प्रजा-वर्ग को (पिन्वस्व) पुष्ट कर। (ऊर्जे पिन्वस्व) बल पराक्रम के लिये पुष्ट कर। (ब्रह्मणे पिन्वस्व) ब्रह्म ... वेद ज्ञान और वेदज्ञ

वृद्धि के लिये पुष्ट कर। (क्षत्राय पिन्वस्व) क्षात्रबल और क्षत्रियों की वृद्धि के लिये पुष्ट कर। (द्यावापृथिवीभ्यां पिन्वस्व) सूर्य, पृथिवी और उनके समान स्त्री और पुरुषों की वृद्धि के लिये भी पुष्ट कर। हे महावीर राजन्! (धर्मा असि) समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होने से 'धर्मा' है। तू (सुधर्मा असि) उत्तम रीति से धारण में शक्तिमान् होने से 'सुधर्मा' है। तू (अमेनि असि) हिंसारहित हो। (अस्मे) हमें (नृम्णानि) मनुष्यों के हितकारी ऐश्वर्य (धारय) धारण करा। (ब्रह्म धारय) वेद और वेदज्ञ ब्राह्मण वर्ग को धारण कर (क्षत्रं) वीर्य वीर्यवान् वीर पुरुषों को धारण कर। (विशं धारय) वैश्य प्रजा को धारण कर।

स्वाहा॑ पू॒ष्णे शर॑से॒ स्वाहा॒ ग्राव॑भ्यः॒ स्वाहा॑ प्रति॒र॒वेभ्यः॑। स्वाहा॑ पि॒तृभ्य॑ ऊ॒र्ध्वब॑र्हिभ्यो घर्म॒पाव॑भ्यः॒ स्वाहा॒ द्यावा॑पृथि॒वीभ्या॒ꣳ स्वाहा॒ विश्वे॑भ्यो दे॒वेभ्यः॑ ॥ १५ ॥

रथादयो लिङ्गोक्ता देवताः। स्वराड् जगती। निषादः॥

भा०—(पूष्णे) अन्न और वायु के समान प्रजा के पोषण करने वाले (शरसे) और शत्रु को बाण के समान मारने वाले वीर पुरुष को (स्वाहा) उत्तम मान, आदर प्राप्त हो। (ग्रावभ्यः स्वाहा) मेघों के समान गर्जना करनेवाले वीरों और ज्ञानोपदेष्टा गुरुजनों को उत्तम मान और आदर प्राप्त हो। (प्रतिरवेभ्यः स्वाहा) गुरु के कहे वचनों को दोहराने वाले शिष्यों अथवा प्रतिस्पर्द्धियों के प्रति उत्तर देने वाले, राष्ट्र के प्राणों के समान वीर पुरुषों को उत्तम अन्न एवं मान प्राप्त हो। (ऊर्ध्ववर्हिभ्यः) प्राची दिशा की ओर उगे कुशादि काटने वाले, पालक, यज्ञशील सोमयाजी विद्वानों के समान उत्कृष्ट पदों तक वृद्धि प्राप्त करने हारे और (घर्मपावभ्यः) यज्ञ से और अपने प्रखर तेज से सबके हृदयों और देश के शासन को पवित्र करने हारे (पितृभ्यः) सबके गुरु जन, माता पिता के समान अथवा ऋतुओं के समान उत्तम विद्वानों को (स्वाहा) उत्तम

अन्न, आदर पद प्राप्त हो। (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा) सूर्य और अन्तरिक्ष या भूमि के समान राजा रानी, राज प्रजावर्ग और उत्तम स्त्री पुरुषों के लिये उत्तम मानसूचक वचन और अधिकार और अन्नादि पदार्थ प्राप्त हों। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) समस्त विद्वान, दानशील, विजयेच्छु पुरुषों को उत्तम आदर प्राप्त हो।

स्वाहा॑ रु॒द्राय॑ रु॒द्रहू॑तये॒ स्वाहा॒ सं ज्योति॑षा॒ ज्योतिः॑। अहः॑ के॒तुना॑ जुषता॑ᳪ सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑। रात्रिः॑ के॒तुना॑ जुषता॑ᳪ सु॒ज्योति॒र्ज्योति॑षा॒ स्वाहा॑। मधु॑ हु॒तमिन्द्र॑तमे॒ऽअ॒ग्नाव॒श्याम॑ ते देव घर्म॒ नम॑स्तेऽअस्तु॒ मा मा॑ हिᳪसीः॥ १६॥

रुद्रादयो देवताः। भुरिगतिधृतिः। षड्जः॥

भा०—(रुद्रहूतये) दुष्टों को रुलाने वाले, वीर पुरुषों को आह्वान करने वाले, उनके आज्ञापक, (रुद्राय) रुद्र रूप सेनापति को (स्वाहा) उत्तम आदर प्राप्त हो। (स्वाहा) सत्य वाणी से (ज्योतिः) ज्योति अर्थात् प्रकाश जिस प्रकार (ज्योतिषा) अपने से अधिक प्रबल प्रकाश से मिल कर एक हो जाता है उसी प्रकार वीर पुरुष वीर सेनापति से मिलकर एक हो जायं। (अहः केतुना) दिन जिस प्रकार उसके ज्ञापक प्रवर्त्तक सूर्य से युक्त होता है उसी प्रकार (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति, तेज वाला सेनापति (स्वाहा) उत्तम सत्य वचन द्वारा (ज्योतिषा) तेजस्वी वीर पुरुष से (संजुषताम्) सुसंगत हो, प्रेमयुक्त हो। (केतुना) रात्रि के ज्ञापक चन्द्र से जिस प्रकार (रात्रिः) सब प्राणियों को सुख देने वाली रात्रि युक्त होती है उसी प्रकार (ज्योतिषा) ज्योतिर्मय तेजस्वी, ज्ञानवान् पुरुष से (सुज्योतिः) उत्तम ज्योति वाली (रात्रि) सब प्रजा को सुखदायी राज्यव्यवस्था (स्वाहा) उत्तम, सत्य क्रिया द्वारा (जुषताम्) प्रेमपूर्वक संयुक्त रहे। (इन्द्रतमे) अति वीर्यवान् तेजस्वी

१६—०अग्ना अश्याम० इति काण्व०।

(अग्नौ) आग में (हुतम् मधु) आहुति किये हुए मधुर सुगन्ध युक्त अन्नादि पदार्थ को जिस प्रकार हम उपभोग करते हैं उसी प्रकार तुझ (इन्द्रतमे) सबसे अधिक बलवान् और ऐश्वर्यवान् (अग्नौ) शत्रु को आग के समान जला डालने वाले तेजस्वी राजा के अधीन (हुतम्) प्रदान किये (मधु) पृथिवी रूप राष्ट्र का हम (अश्याम) प्रजाजन भोग करें। हे (देव) विजिगीषो ! हे (घर्म) तेजस्विन् ! सूर्यवत् प्रकाशमान राजन् ! (ते नमः अस्तु) तुझे अन्न, आदर और बल वीर्य प्राप्त हो। (मा) मुझ प्रजावर्ग को तू (मा हिंसीः) मत मार, मत पीड़ित कर।

सामन्य जीवों के अक्ष में—(रुद्रहूतये रुद्राय) प्राणों की आहुति से जीने वाले जीव के लिये (ज्योतिषा ज्योतिः सम् जुषताम्) प्रकाश के साथ प्रकाश को संगत करो। (केतुना) बुद्धिपूर्वक (अहः रात्रिः) दिन और रात्रि को भी (ज्योतिषा ज्योतिः) ज्ञान से सद्गुणों को और मनन चिन्तन से धर्मादि तत्वों को संगत कर सेवन करो। अति तीव्र अग्नि में आहुति किये घृतादि मधुर पदार्थों को हम प्राप्त हों। हे परमेश्वर ! आपको नमस्कार है। आप हमें पीड़ित न कर पालन करें।

अभीमं महिमा दिवं विप्रो बभूव सप्रथाः। उत श्रवसा पृथिवीᳬं सᳬं सीदस्व महाँ२ऽ असि रोचस्व देववीतमः। वि धूममग्ने ऽअरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ १७ ॥

अग्निर्देवता। त्र्यवसाना शक्करी। पञ्चमः॥

भा०—हे वीर विद्वन् ! राजन् ! (महिमा) तेरा महान् सामर्थ्य (इमं दिवम्) इस तेजस्वी सूर्य को भी (अभि बभूव) मात करता है। वह (विप्रः) विविध प्रजाओं को पूर्ण करने वाला और (सप्रथाः) सर्वत्र एक साथ फैलने वाला है। (उत) और (श्रवसा) यश और ऐश्वर्य के बल से तू (पृथिवीम्) पृथिवी पर (सं सीदस्व) अच्छी प्रकार विराजमान हो। उस पर राजा अभिषिक्त होकर विराजे। तू (महान् असि)

वड़ा है, बड़े सामर्थ्य वाला है। (देववीतमः) दिव्य गुणों से अति अधिक प्रकाशमान् होकर (रोचस्व) सबको प्रिय हो। हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! हे (मियेध्य) शत्रुओं के नाश करने में समर्थ! जिस प्रकार अग्नि अन्धकार के समय अपने तेज से भभकते हुए लाल धूएं को छोड़ता है उसी प्रकार तू भी (अरुषम्) रोष रहित, प्रेमयुक्त एवं देदीप्यमान, लाल वर्ण के प्रतापशाली (दर्शतम्) दर्शनीय (धूमम्) शत्रुओं के कंपाने वाले सेनाबल को (वि सृज) विविध दिशाओं में प्रेरित कर, भेज और विजय कर।

'दिवं' अविद्यादिगुणप्रकाशमिति दया० तत् चिन्त्यम् ॥

या ते॑ घर्म दि॒व्या शुग्या गा॑य॒त्र्या॑ᳪं ह॑वि॒र्धाने॑। सा त॒ आप्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑। या ते॑ घर्मा॒न्तरि॑क्षे॒ शुग्या त्रि॒ष्टु॒भ्याग्नी॑ध्रे। सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑। या ते॑ घर्म पृथि॒व्या॑ᳪं शुग्या जग॑त्या॑ᳪं सद॒स्या। सा त॒ आ प्या॑यतां॒ निष्ट्या॑यतां॒ तस्यै॑ ते॒ स्वाहा॑ ॥ १८ ॥

घर्मो देवता। भुरिगाकृतिः। पञ्चमः ॥

भा०—हे (घर्म) तेजस्विन् राजन्! (या) जो (ते) तेरी (दिव्या) दिव्य पदार्थ सूर्य में रहने वाली दीप्ति के समान, उत्तम गुणों से उत्पन्न (शुक्) कान्ति, (गायत्र्या) वेदों के गान करने वाले ब्राह्मण विद्वानों के रक्षा करने वाली राज्य नीति में और (हविर्धाने) उत्तम संग्रह योग्य कर, अन्नादि पदार्थों के ग्रहण करने में है (सा) वह (ते) तेरी (आप्यातम्) खूब बढ़े, वह (निः स्त्यायताम्) खूब प्रबल हो और (ते) तेरे (तस्यै) उस शक्ति के लिये (स्वाहा) तुझे उत्तम यश प्राप्त हो।

हे (घर्म) वायु के समान तेजस्विन् बलवन्! राजन्! (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में वायु के समान या (शुक्) जो तेरी प्रचण्डशक्ति (आग्नीध्रे) अग्नियों के समान प्रदीप्त बलवान् तेजस्वी वीर पुरुषों को धारण पोषण

करने के कार्य में और (त्रिष्टुभि) विविध क्षात्रशक्ति में है (ते सा) वह तेरी (अप्यायताम्) खूब बढ़े। (निः स्त्यायताम्) दृढ़ हो। (ते तस्यै स्वाहा) उससे तुझे उत्तम यश प्राप्त हो।

हे (घर्म) अग्नि के समान तेजस्विन्! (जगत्यां) जंगम जीवों से युक्त इस सृष्टि में और (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (या) जो (ते) तेरी (सदस्या) राजसभा में प्रकट होने वाली (शुक्) शोभा, कान्ति और शक्ति है (सा ते आप्यायताम्) तेरी वह शक्ति खूब बढ़े।(निः स्त्यायताम्) खूब दृढ़ हो। (ते तस्यै स्वाहा) तेरी उस शक्ति से खूब कीर्त्ति हो।

क्षत्रस्य त्वा परस्पाय ब्रह्मणस्तन्वं पाहि।
विशस्त्वा धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे ॥१९॥

महावीरो घर्मो देवता। निचृदुपरिष्टाद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—हे राजन्! तू (परस्पाय) दूसरों को पालन करने के लिये प्रजा को शत्रु से बचाने और उत्तम रीति से पालन करने के लिये हो। अतः तू (क्षत्रस्य) क्षत्रियों के और (ब्रह्मणः) विद्वान् ब्राह्मणों के (तन्वं पाहि) शरीरों की रक्षा कर। अथवा (क्षत्रस्य) राष्ट्र के बल, वीर्य और (ब्रह्मणः) धनैश्वर्य और अन्न की (तन्वम्) विस्तृत सम्पत्ति की रक्षा कर। (विशः धर्मणा) प्रजाओं के कर्त्तव्य नियम और धर्म से (नव्यसे) नये से नये, अति उत्तम (सुविताय) शुभ पदार्थों के प्राप्त करने एवं उत्तम मार्ग चलने और राज्य शासन के कार्य के लिये हम (त्वा अनुक्रामाम) तेरा अनुगमन करें, तेरे पीछे २ चलें, तेरी आज्ञा पालन करें।

चतुःस्रक्तिर्नाभिर्ऋतस्य सप्रथाः स नो विश्वायुः सप्रथाः स नः सर्वायुः सप्रथाः। अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम ॥२०॥

घर्मो देवता। निचृत्त्रिष्टुप्। धैवतः॥

भा०—हे तेजस्वी पुरुष! राजन्! (चतुस्रक्तिः) तू चारों दिशाओं

में प्रबल हथियारों वाला हो। तू (ऋतस्य नाभिः) सत्य, न्यायव्यवस्था, धर्म मर्यादा और क़ानून का नाभि अर्थात् केन्द्र हो। तू (सप्रथाः) विस्तृत शक्तिवाला है। (सः) वह तू (सप्रथाः) अति विस्तृत यश और राष्ट्र वाला होकर (विश्वायुः) पूर्ण आयु होकर, जीवन भर (नः) हमारी रक्षा कर। और (सः) वह तू (नः) हमारे कल्याण के लिये (सर्वायुः सप्रथाः) पूर्ण जीवन को प्राप्त हो और विस्तृत कीर्त्ति वाला हो। हम लोग (द्वेषः) द्वेष करने वाले और (ह्वाः) कुटिल चाल वाले और (अन्यव्रतस्य) अन्य, भिन्न शत्रु के कर्मों वाले पुरुष को (अप सश्चिम) दूर करें। अथवा—(अन्यव्रतस्य ते द्वेषः दूरः च अपसश्चिम) अन्यों को पालन करने वाले तेरे शत्रुओं और कुटिल पुरुषों को दूर करें।

शत्रुवाच्यन्यशब्दः प्रायो वेदे दृश्यते। यथा 'अन्यांस्तपन्तु हेतयः०' इत्यादि।

घर्मैतत्ते पुरीषं तेन वर्द्धस्व चा च प्यायस्व।
वर्द्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि ॥ २१ ॥

घर्मो देवता। अनुष्टुप्। गान्धारः॥

भा०—हे (घर्म) मेघ के समान प्रजा पर सुख समृद्धि के वर्षक और सूर्य के समान तेजस्विन्! (ते) तेरा (एतत्) यह इतना बड़ा (पुरीषम्) ऐश्वर्य और राज्यपालन करने का सामर्थ्य है। तू (तेन) उससे (वर्धस्व) बढ़ और (आप्यायस्व च) खूब समृद्ध हो और प्रजा को भी पुष्ट कर। (वयम् च) हम भी (वर्धिषीमहि) बढ़ें और (आ प्यासिषीमहि) खूब लक्ष्मी से समृद्ध और तृप्त हों।

अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान्मित्रो न दर्शतः।
सꣳ सूर्येण दिद्युतदुदधिर्निधिः ॥ २२ ॥

आदित्यो घर्मो देवता। परोष्णिक्। ऋषभः॥

भा०—(वृषा) शत्रुओं को रोकने में समर्थ, प्रजाओं पर सुखों की

वर्षा करने वाला, मेघ के समान (अचिक्रदत्) गर्जन करता है। (हरिः) प्रजाओं के दुःखों को हरनेवाला, एवं सूर्य के समान प्रजा से कर लेने वाला होकर, (मित्रः न) सूर्य के समान सबके प्रति समान भाव से स्नेही, न्यायकारी, (दर्शतः) सब से दर्शनीय और सबका द्रष्टा है। वह ही (सूर्येण) सूर्य के समान तेज से (सं दिद्युतत्) अच्छी प्रकार चमके। शौर्य, वीर्य, बल, पराक्रम और उपकार आदि अपने गुणों को प्रकाशित करे। वह (उदधिः) सागर के समान गम्भीर हो और (निधिः) कोश, खज़ाने के समान सब ऐश्वर्यों का रक्षक हो।

सुमित्रिया न ऽआप ऽओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः ॥ २३ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० ६ । २२ ॥

उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्त ऽउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ २४ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २१ ॥

एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि ॥ २५ ॥

भा०—व्याख्या देखो अ० २० । २३ ॥

यावती द्यावापृथिवी यावच्च सप्त सिन्धवो वितस्थिरे ।
तावन्तमिन्द्र ते ग्रहमूर्जा गृह्णाम्यक्षितं मयि गृह्णाम्यक्षितम् ॥२६॥

इन्द्रो देवता । स्वराट् पंक्तिः । पञ्चमः ॥

भा०—(यावती) जितने बड़े (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि या सूर्य और भूमि और उनके समान स्त्री पुरुष, एवं राज प्रजावर्ग हैं और (यावत्) जहांतक (सिन्धवः) सातों समुद्र (वि तस्थिरे) विविध दिशाओं में फैले हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे लिये (तावन्तम्) वहां तक का (ग्रहम्) शासनाधिकार (ऊर्जा) बल,

पराक्रम से (गृह्णामि) ग्रहण करूं, स्वीकार करूं और वहांतक ही मैं (मयि) अपने में (अक्षितम् ग्रहम्) अक्षय, ग्रहण सामर्थ्य को (गृह्णामि) धारण करूं।

अथवा—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राष्ट्र-प्रजागण! आकाश भूमि के विस्तारक तक और समुद्रों के विस्तार तक के(ग्रहम्) अधिकार को मैं राजा (मयि) अपने अधीन (गृह्णामि) ग्रहण करता हूं।

मयि त्यदिन्द्रियं बृहन्मयि दक्षो मयि क्रतुः।
घर्मस्त्रिशुग्विराजति विराजा ज्योतिषा सह ब्रह्मणा तेजसा सह ॥२७॥

धर्मो देवता। पंक्तिः पञ्चमः॥

भा०—(मयि) मुझ प्रजावर्ग में (त्यत्) वह अलौकिक, अपूर्व, वाञ्छनीय (बृहत्) बड़ा भारी (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य बल प्राप्त हो (मयि दक्षः) मुझमें बल प्रज्ञा, बुद्धि और मुझ में विज्ञान प्राप्त हो। इसी प्रकार (मयि) मुझ राजा के अधीन (क्रतुः) बड़ा भारी ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रबल और राज्यकार्य विज्ञान प्राप्त हो। इस प्रकार (घर्मः) तेजस्वी राजा (त्रिशुक्) अग्नि, विद्युत्, सूर्य तीनों के समान तेजस्वी होकर (विराजा ज्योतिषा) विराट् प्रकाश, विविध राजोचित तेज और (ब्रह्मणा तेजसा) ब्रह्म, वेदमय तेज या बड़े भारी ऐश्वर्यमय तीक्ष्ण प्रताप के (सह) साथ (विराजति) विराजे शोभा को प्राप्त हो।

पयसो रेत आभृतं तस्य दोहमशीमह्युत्तरामुत्तराᳪं समाम्।
त्विषः संवृक् क्रत्वे दक्षस्य ते सुषुम्णस्य ते सुषुम्णाग्निहुतः।
इन्द्रपीतस्य प्रजापतिभक्षितस्य मधुमत ऽउपहूत ऽउपहूतस्य भक्षयामि॥ २८॥

घर्मो देवता। स्वराड् धृतिः। पञ्चमः॥

भा०—(पयसः रेतः आभृतम्) दूध से जिस प्रकार शरीर में वीर्य अच्छी प्रकार धारण किया जाता है। और जिस प्रकार (पयसः) वृष्टि के जल से (रेतः) पृथ्वी के ऊपर ओषधि और प्राणियों के उत्पादक बीज (आभृतम्) सर्वत्र पुष्ट होता और प्राप्त होता है उसी प्रकार मैं राजा (पयसः) राष्ट्र के पोषण करने वाले ऐश्वर्य के बल से (रेतः) उसमें उत्पादक सामर्थ्य अर्थात् प्रजा और ऐश्वर्य के पदार्थों के पैदावार के सामार्थ्य को (आभृतम्) प्राप्त कराऊं और पुष्ट कराऊं। और जिस प्रकार गौ को दोहन करके उसके दुग्ध का सभी उपभोग करते हैं और जिस प्रकार वृष्टि जल के द्वारा प्रभूत अन्न को प्रति वर्ष प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (तस्य) उस राष्ट्रैश्वर्य के (दोहम्) योग्य रीति से प्राप्त किये पूर्ण ऐश्वर्य को हम लोग (उत्तराम् उत्तराम् समाम्) उत्तरोत्तर आने वाले वर्ष में प्राप्त करें और उसका उपभोग करें। हे (सुषुम्ण) उत्तम सुखयुक्त प्रजाजन ! (ते क्रत्वे) तेरे कर्म और ज्ञान की वृद्धि के लिये (सुषुम्णस्य) उत्तम सुख से युक्त (ते) तेरे (दक्षस्य) बल और (त्विषः) कान्ति को (संवृक्) स्वीकार करने वाला होकर मैं (अग्निहुतः) अग्रणी, तेजस्वी नायक द्वारा स्वीकृत होकर (उपहूतः) आदरपूर्वक बुलाया जाकर ही मैं (इन्द्रपीतस्य) ऐश्वर्यवान् पुरुषों या प्रजाजन से युक्त या पालित और (प्रजापति भक्षितस्य) प्रजा के पालक माता पिताओं द्वारा खाये गये अर्थात् उपयुक्त, (मधुमतः) मधुर अन्नादि ऐश्वर्य से सम्पन्न राष्ट्र को मैं सेनापति और राजा (भक्षयामि) उपभोग करूं। महावीर का समस्त प्रकरण, ब्रह्मचर्य, परमेश्वरोपासना, योग द्वारा आत्म साधना और सूर्य चन्द्र आदि परक भी लगता है विस्तारभय से नहीं लिखा।

॥ इत्यष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभितश्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्य अष्टात्रिंशोऽध्यायः ॥

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

॥ ओ३म् ॥ स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वाहाग्नये स्वाहान्तरिक्षाय स्वाहा वायवे स्वाहा दिवे स्वाहा सूर्याय स्वाहा ॥ १ ॥

भा०—(साधिपतिकेभ्यः) अधिपति आत्मा या मन के सहित शरीर में विद्यमान प्राणों के समान राष्ट्र में अपने अधिपति, अध्यक्षों के सहित (प्राणेभ्यः) उत्तम जीवन वाले, राष्ट्र को चेतन बनाये रखने वाले प्रजाजनों को (स्वाहा) उत्तम रीति से अन्न आदि प्राप्त हो । (पृथिव्यै अन्तरिक्षाय अग्नये वायवे दिवे सूर्याय स्वाहा) पृथिवी और उस पर रहने वाले प्रजाजन को (स्वाहा) उत्तम अन्न प्राप्त हो । 'अन्तरिक्ष' को उत्तम आहुति और राजा प्रजा के बीच के मध्यस्थ कार्यकर्त्ता को आदर और अग्नि, वायु आकाश और सूर्य इनको (स्वाहा) उत्तम घृत आदि पुष्टिकारक पदार्थों की आहुति और उत्तम ज्ञानपूर्वक प्राप्ति हो । (वायवे स्वाहा) वायु को उत्तम आहुति प्राप्त हो । और वायु के समान सबको जीवन देने वाले एवं उसके समान शत्रु को उखाड़ देने वाले राजा को आदर प्राप्त हो । (दिवे स्वाहा) सब तेजस्वी सूर्य, चन्द्रादिक के आश्रय स्थान आकाश के समान सब तेजस्वी पुरुषों के आश्रय राजा को उत्तम अन्न, यश, ऐश्वर्य प्राप्त हो । (सूर्याय स्वाहा) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष का उत्तम अन्न और आदर प्राप्त हो ।

दिग्भ्यः स्वाहा चन्द्राय स्वाहा नक्षत्रेभ्यः स्वाहाद्भ्यः स्वाहा वरुणाय स्वाहा । नाभ्यै स्वाहा पूताय स्वाहा ॥ २ ॥

लिंगोक्ता देवताः ॥

भा०—(दिग्भ्यः स्वाहा) दिशाओं और उनके वासी प्रजाओं

को उत्तम आदर और अन्न प्राप्त हो। (चन्द्राय स्वाहा) चन्द्र के समान आह्लादक राजा को उत्तम ऐश्वर्य और आदर कीर्त्ति प्राप्त हो। (नक्षत्रेभ्यः स्वाहा) नक्षत्रों के समान अपने स्थान से विचलित न होने वाले वीर पुरुषों को यश प्राप्त हो। (अद्भ्यः स्वाहा) जलों के समान शीतल स्वभाव, मल, पाप के दूर करने वाले आप्त पुरुषों को उत्तम अन्न दान, यश, उत्तम वचन द्वारा आदर प्राप्त हो। (वरुणाय स्वाहा) मेघ और समुद्र के समान सर्वश्रेष्ठ राजा को उत्तम आदर एवं धनादि प्राप्त हो। (नाभ्यै) अपने में सबको बांध लेने वाले, नाभि के समान केन्द्रस्थ पुरुष को आदर प्राप्त हो, (पूताय स्वाहा) पवित्र करने वाले स्वयं पवित्र पुरुष का आदर हो।

अथवा—(१) मन सहित समस्त प्राणों को बलवान् करने के लिये उत्तम साधन करो। पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, आकाश और सूर्य इनको सुखकारी बनाने के लिये उत्तम साधन करो।

(२) दिशाएं, चन्द्र, नक्षत्र, जल, समुद्र, नाभि और शरीर की पवित्रता के लिये भी उत्तम साधनों का प्रयोग करो।

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा।
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा। श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा॥३॥

भा०—(वाचे) वाणी के सुधार और उसके उत्तम शिक्षा के लिये, (प्राणाय प्राणाय) दायें बायें प्राणों की स्वच्छता और बल के लिये (चक्षुषे चक्षुषे) दायें बायें आंखों के उत्तम शक्ति के लिये, (श्रोत्राय श्रोत्राय) दाये बायें कानों की श्रवण शक्ति के लिये (सु-आहा) उत्तम अन्न खाओ, उत्तम रीति से इनका उपयोग लो और उनको सन्मार्ग में चलावो।

मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय।
पशूनाᳬ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा॥ ४॥

कामादयो देवताः। निचृद् बृहती। मध्यमः॥

भा०—(मनसः) मन, मननशील अन्तःकरण की (कामम्) इच्छा और (आकूतिम्) अभिप्राय जतलाने की शक्ति और (वाचः) वाणी के (सत्य) यथार्थ, सत्य भाषण को मैं (अशीय) प्राप्त करूं, अर्थात् मनसे दृढ़ इच्छा और प्रबल अभिप्राय-ज्ञापन का अभ्यास करूं और वाणी से सत्य बोलूं। (पशूनां) पशुओं के (रूपम्) नाना प्रकार के (अन्नस्य) अन्न के (रसः) नाना सार रूप रस और (यशः श्रीः) यश और ऐश्वर्य ये सब (मयि) मुझ पुरुष में (स्वाहा) उत्तम कर्म और वाणी से (श्रयताम्) आवें और स्थिर हों।

प्र॒जाप॑तिः सम्भ्रि॒यमा॑णः स॒म्राट् सम्भृ॑तो वैश्वदे॒वः स॑ꣳस॒न्नो घ॒र्मः प्रवृ॑क्त॒स्तेज॒ उद्य॑त आश्वि॒नः पय॑स्यानी॒यमा॑ने पौ॒ष्णो वि॑ष्य॒न्दमा॑ने मारु॒तः क्लथ॑न्। मै॒त्रः शर॑सि सन्ता॒य्यमा॑ने वाय॒व्यो᳖ ह्रि॒यमा॑ण आग्ने॒यो हू॒यमा॑नो वाग्घु॒तः ॥ ५ ॥

महावीरो देवता । कृतिः । निषादः ॥

भा०—(संभ्रियमाणः) प्रजाएं जब राजा को नाना ऐश्वर्यों से पुष्ट करती हैं तब वह (प्रजापतिः) प्रजा का पालक होने से 'प्रजापति' कहाता है। ('सम्भृतः सम्राट्) वह अच्छी प्रकार परिपुष्ट हो जाता है तब वह प्रजा में उत्तम रीति से सर्वत्र ऐश्वर्य से प्रकाशित होने से 'सम्राट्' कहाता है। (संसन्नः वैश्वदेवः) अच्छी प्रकार राजसभा में विराज कर समस्त विद्वानों से आदर पाने के कारण 'वैश्वदेव' कहाता है। (प्रवृक्तः घर्मः) ऊंचे आसन को प्राप्त होकर वह तेजस्वी होने से 'घर्म' कहाता है। (उद्यतः तेजः) उन्नत पद पर स्थित होकर वह तेजस्वी एवं तीक्ष्ण स्वभाव होने से 'तेज' या सूर्य के समान कहाता है। (पयसि आश्विनः) जल द्वारा अभिषेक कर लेने पर स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के प्रजाओं अथवा

५—निष्कन्दयाव० इति काण्व० ।

राजवर्ग और प्रजा वर्ग दोनों द्वारा अभिषिक्त होने के कारण वह 'आश्विन' कहाता है। (विस्यन्दमाने पौष्णः) विशेष रूप से वेग से गमन करता हुआ हुए वह राजा पृथिवी के हित के लिये प्रवृत्त होने के कारण 'पौष्ण' कहाता है। (क्रुथन् मारुतः) जब वह शत्रुओं का नाश कर रहा होता है तब वह मारने वाले सैनिकों का स्वामी होने से 'मारुत' कहाता है। (शरसि संताय्यमाने मैत्रः) शत्रु नाशक सेनाबल के स्थान २ पर विस्तृत कर देने पर, अथवा जलाशय तड़ाग आदि कृषि के साधनों के फैला देने पर वह (मैत्रः) प्रजा के प्रति स्नेहवान् और प्रजा को भरण पोषण से रक्षा करने वाला होने से वह सूर्य के समान तेजस्वी राजा 'मित्र' कहाता है। (वायव्यः ह्रियमाणः) वेग से युद्ध क्षेत्र में रथादि साधनों से जाता हुआ वह वायु के समान तीव्र गामी होकर शत्रु की जड़ों को हिला देने वाला वायु के समान होने से 'वायव्य' है। (हूयमानः आग्नेयः) वह बराबर शत्रु के ऐश्वर्यों से उनके शरीर से मानो आहुति पाता हुआ, अग्नि के समान प्रचण्ड होने के कारण 'आग्नेय' है। (हुतः वाक्) सब प्रजाओं द्वारा अपना राजा स्वीकार कर लिया जाकर, सबको आज्ञा देने वाला होने से 'वाक्' स्वरूप है। वह सबको आज्ञा देता है। इस प्रकार ये १२ स्वरूप राजा के समझने चाहिये।

स॒वि॒ता प्र॑थ॒मेऽह॑न्न॒ग्निर्द्वि॒तीये॑ वा॒युस्तृ॒तीय॑ऽआदि॒त्यश्च॑तु॒र्थे च॒न्द्रमाः॑ पञ्च॒मऽऋ॒तुः ष॒ष्ठे म॒रुतः॑ सप्त॒मे बृह॒स्पति॑रष्ट॒मे। मि॒त्रो न॑व॒मे वरु॑णो द॒शम॒ऽइन्द्र॑ऽएकाद॒शे विश्वे॑ दे॒वा द्वा॑द॒शे ॥ ६ ॥

सवित्रादयो देवताः। विराड्धृतिः। धैवतः ॥

भा०—राजा के द्वादश रूपों का वर्णन। (प्रथमे अहनि) पहले दिन वह सूर्य के समान सबका प्रेरक, आज्ञापक और ऐश्वर्य का उत्पादक होने से 'सविता' है। (द्वितीये अग्निः) दूसरे दिन वह अग्नि के समान मार्ग प्रकाशक अग्रणी होने से 'अग्नि' है। (तृतीये वायुः)

तीसरे दिन वायु के समान बलवान् हो जाने से वह 'वायु' है। (चतुर्थ आदित्यः) चौथे दिन आदित्य के समान जलों के समान करों के ग्रहण करने से 'आदित्य' है। (चन्द्रमाः पञ्चमः) पाचवें दिन चन्द्र के समान आह्लादक होने से 'चन्द्रमा' है। (षष्ठे ऋतुः) छठे दिन सबको नाना पदार्थों के प्राप्त कराने और सबको नाना प्रकारों से सुखी करने वाला होने से 'ऋतु' है। (मरुतः सप्तमे) सातवें दिन सैनिकों के रूप में या प्रजा साधारण के रूप में विद्यमान होने से वह 'मरुत्गण' ही है। (अष्टमे बृहस्पतिः) बड़े राष्ट्र का पालक होने से 'बृहस्पति' है। (मित्रः नवमे) नवें दिन वह सर्वत्र स्नेहवान् होने से 'मित्र' है। (वरुणः दशमे) दसवें दिन वह सबसे वरण करने योग्य होने से 'वरुण' है। (एकादशे इन्द्रः) ग्यारहवें दिन विद्युत् के समान तेजस्वी होने से 'इन्द्र' है। और (विश्वे देवाः द्वादशे) बारहवें दिन समस्त विद्वानों के बीच में निष्पक्षपात होकर रहने से विश्व देवों अर्थात् विद्वानों से सम्मति में भिन्न न होने से 'विश्व देव मय है।

जीवपक्ष में—वह मरणोत्तर प्रतिदिन क्रम से सूर्य, आग, वायु, रश्मि, चन्द्र, ऋतु, वायु, प्राण, उदान और विद्युत् और शेष सब दिव्य पदार्थ इनमें उत्तरोत्तर प्राप्त होने से उस २ रूप का होकर विचरता है और कर्म फलों का भोग करता है।

उ॒ग्रश्च॑ भी॒मश्च॒ ध्वान्त॑श्च॒ धुनि॑श्च।
सा॒स॒ह्वाँश्चा॑भियु॒ग्वा च॑ वि॒क्षिपः॒ स्वाहा॑ ॥ ७ ॥

मरुतो देवताः। भुरिग् गायत्री। षड्जः॥

भा०—वह राजा (उग्रः च) भयंकर और सदा वायु के समान प्रचण्ड वेग से शत्रु पर आक्रमण करने से 'उग्र' है। (भीमः च) उनको भयप्रद होने से 'भीम' है। (ध्वान्तः च) अन्धकार के समान मूढ कर देने वाला होने से 'ध्वान्त' है। (धुनिः च) कंपा देने वाला होने से 'धुनि' है। (सासह्वान् च) बराबर पराजित करने में समर्थ होने से 'सास-

ह्वान्' है। (अभियुग्वा) उन पर आक्रमण करने से 'अभियुग्वा' है और उनको तितर वितर कर देने से 'विक्षिप' है। (स्वाहा) वह अपने ही उत्तम कर्मों के कारण उन नामों से मान पाने योग्य है।

जीवपक्ष में—जीव, तीव्र स्वभाव, भयंकर, तामस, कम्पमान, सहनशील, आसक्त विक्षिप्त और [चकारसे] शान्त, निर्भय, प्रकाशमान, स्थिर, असहनशील, विक्षिप्त, आदि अपने कर्म फलों से हो जाता है।

अग्निꣳ हृदयेनाशनिꣳ हृदयाग्रेण पशुपतिं कृत्स्नहृदयेन भवं यक्ना। शर्वं मतस्नाभ्यामीशानं मन्युना महादेवमन्तःपर्शव्येनोग्रं देवं वनिष्ठुना वसिष्ठहनुः शिङ्गीनि कोश्याभ्याम्॥ ८॥

उग्रं लोहितेन मित्रꣳ सौव्रत्येन रुद्रं दौर्व्रत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यान् प्रमुदा। भवस्य कण्ठ्यꣳ रुद्रस्यान्तःपार्श्व्यं महादेवस्य यकृच्छर्वस्य वनिष्ठुः पशुपतेः पुरीतत्॥ ९॥

उग्रादयो देवताः। (८) भुरिगष्टिः। मध्यमः। (९) आकृतिः। पञ्चमः॥
प्रजापतिर्ऋषिः॥

भा०—(१) राजा के सर्वदेवमय शरीर का वर्णन अलंकार रूप से करते हैं। वह (हृदयेन अग्निम्) हृदय से अग्नि को धारण करता है। (हृदयाग्रेण अशनिम्) हृदय के अगले भाग से वह विद्युत् को धारण करता है। (कृत्स्नं हृदयेन पशुपतिम्) समस्त हृदय के भाग से वह पशुओं के पालक प्राणवायु को धारण करता है। (यक्ना भवम्) यकृत् कलेजे से वह सर्वत्र विद्यमान आकाश को धारण करता है। (मतस्नाभ्यां

८, ९—'तत्राग्निं हृदयेन,' 'उग्रं लोहितेन' इति द्वेकाण्डके ब्राह्मणरूप देवताऽश्वरवयवसम्बन्धविधानादिति महीधरः। देवताश्वरवयवविधाना द्वेकाण्डके श्रुतिरिति उव्वटः। प्रक्रोष्ठेन० इति काण्व०।

शर्वम्) गुर्दों से वह जल को धारण करता है। (मन्युना ईशानम्) मननशील चित्त या मन्यु, क्रोध से सब पर शासन करने वाले ऐश्वर्यवान् विद्युत को धारण करता है। (अन्तः पर्शव्येन) भीतर के पंसुलियों से (महादेवम्) सबसे बड़े देव, अन्तर्यामी परमेश्वर को धारण करता है। (वनिष्ठुना) आंतों से (उग्रं देवम्) तीव्र देव, अग्नि को जाठर रूप से धारण करता है। (वसिष्ठहनुः) समस्त प्रजा को बसाने हारे लोगों में से सबसे श्रेष्ठ होकर शत्रु को हनन करने वाले साधनों से सम्पन्न होकर (कोश्याभ्याम्) कोश में रखने योग्य शस्त्रों और ऐश्वर्य से (शिङ्गीनि) समस्त प्राप्त करने योग्य कीर्तिजनक गुणों को हृदय कोश में धारण करता है।

इस मन्त्र में 'वसिष्ठहनुः शिङ्गीनी कोश्याभ्याम्' यह अंश संदिग्ध एवं अस्पष्ट है।

भा०—हे राजन्! तू (लोहितेन) तपे लोहे के समान तीक्ष्ण स्वभाव से (उग्रम्) अति उग्र, प्रचण्ड पुरुष को वश कर। (सौव्रत्येन मित्रम्) उत्तम २ व्रत और सुखकारी नियम कर्मों के पालन से (मित्रम्) मित्रों को अपने वश करे। (दौर्व्रत्येन) दुष्टों के प्रति दुःखदायी, कष्टप्रद कार्यों से (रुद्रम्) प्रजा को कष्टों से रुलाने वाले पुरुष को वश करे। (प्रक्रीडेन) उत्तम, मन को बहलाने वाले क्रीड़ा विनोद से (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुष को वश करे। (बलेन) बल से, सेनाबल के कार्य से (मरुतः) मारने हारे सैनिकों को, अथवा बल या सेना द्वारा मनुष्यों को वश करे। (प्रमुदा) अति हर्षकारी सुखप्रद उपाय से (साध्यान्) वश करने योग्य लोगों को वश करे।

अथवा अध्यात्म में—उग्र आदि नाना प्राणों के नाम भेद हैं। (कण्ठ्यं) कण्ठ में विद्यमान उत्तम स्वर गायन आदि (भवस्य) सत्तावान् प्रशंसा योग्य सामर्थ्यवान् प्राण का कार्य है। (रुद्रस्य) शत्रुओं को रुलाने वाले प्राण का स्थान (अन्तः पार्श्व्यम्) पसुलियों के भीतर का स्थान है। (यकृत् महादेवस्य) बड़े भारी दीप्ति वाले या

जाठर अग्नि ज्वाला से युक्त पित्त का स्थान (यकृत्) यकृत्, कलेजा है, (शर्वस्य वनिष्ठुः) भुक्त अन्न को सूक्ष्म २ अणु करके सर्वत्र अंगों में पहुंचाने वाले जाठर बल का स्थान (वनिष्ठुः) आंतें हैं। (पशुपतेः) दर्शनशील इन्द्रियों अथवा कर्मकर भृत्य के समान शरीर के काम करने वाले अंगों के पालक आत्मा का स्थान (पुरीतत्) पुरीतत् नामक हृदय की नाड़ी है।

लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा त्वचे स्वाहा त्वचे स्वाहा लोहिताय स्वाहा लोहिताय स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा मांसेभ्यः स्वाहा मांसेभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहास्थभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा। रेतसे स्वाहा पायवे स्वाहा ॥ १० ॥

भा०—(लोमभ्यः स्वाहा लोमभ्यः स्वाहा) रोमों को उत्तम अन्न बल प्राप्त हो। वे स्वच्छ रोग रहित रहें। (त्वचे स्वाहा) त्वचा के प्रत्येक भाग को उत्तम रीति से रक्खो। (लोहिताय स्वाहा) रक्त के प्रत्येक भाग को स्वच्छ रक्खो। (मेदोभ्यः स्वाहा मेदोभ्यः स्वाहा) मेद, धातु के प्रत्येक अंश को स्वच्छ और रोग रहित करो। (मांसेभ्यः स्वाहा मांसेभ्यः स्वाहा) देह में मांसों के प्रत्येक अंश को विकाररहित, नीरोग रक्खो। (स्नावभ्यः स्वाहा स्नावभ्यः स्वाहाः) प्रत्येक स्नायु बलवान्, अविकृत रक्खो। (अस्थभ्यः स्वाहा अस्थभ्यः स्वाहा) प्रत्येक हड्डी को बलवान् और दोष रहित रक्खो। (मज्जभ्यः स्वाहा मज्जभ्यः स्वाहा) मज्जा के प्रत्येक भाग को उत्तम, तथा अविकृत, स्वच्छ रक्खो। (रेतसे स्वाहा) वीर्य की वृद्धि के लिये भी उत्तम प्रयत्न करो और (पायवे स्वाहा) गुदा इन्द्रिय के मलशोधक अंग को स्वच्छ रक्खो। शरीर में विद्यमान उक्त धातुओं के समान राष्ट्र

१०—मेदसे स्वाहा मेदसे० इति काण्व०।

में भी घटक अवयवों को अच्छी प्रकार यत्नपूर्वक रक्खो उनको उत्तम अन्न आदि प्रदान करो।

आयासाय स्वाहा प्रायासाय स्वाहा संयासाय स्वाहा वियासाय स्वाहोद्यासाय स्वाहा। शुचे स्वाहा शोचते स्वाहा शोचमानाय स्वाहा शोकाय स्वाहा॥ ११॥

भा०—(आयासाय स्वाहा) अंगों के व्यापक श्रम के लिये (स्वाहा) उत्तम अन्न खाओ। (प्रायासाय स्वाहा) उत्तम कोटि के परिश्रम के लिये भी उत्तम अन्न खाओ। (संयासाय) मिल कर अंगों के एकत्र यत्न करने के लिये, (वियासाय) विविध अंगों के श्रम के लिये, (उद्यासाय) उठाने के परिश्रम के लिये भी (स्वाहा) उत्तम अन्न का ग्रहण करो। (शुचे स्वाहा) स्वच्छ रहने और शरीर की कान्ति के लिये उत्तम आहार करो। (शोचते) शुद्ध विचार करने वाले आत्मा के लिये (स्वाहा) उत्तम भोजन करो। (शोचमानाय स्वाहा) उत्तम तेजस्वी विचार प्रकाशित करने के लिये और (शोकाय) तेज के प्राप्त करने के लिये उत्तम आहार करो।

इसी प्रकार राष्ट्र में भी आयास, वियास आदि नाना यत्न और बलसाध्य कार्यों के लिये, तेज, बल के बढ़ाने के लिये और तेज बल बढ़ाने वाले विद्वान् जनों के लिये उत्तम २ रीति से यत्न किया जाय।

तपसे स्वाहा तप्यते स्वाहा तप्यमानाय स्वाहा तप्ताय स्वाहा घर्माय स्वाहा। निष्कृत्यै स्वाहा प्रायश्चित्यै स्वाहा भेषजाय स्वाहा॥ १२॥

भा०—(तपसे) धर्माचरण, तप का अनुष्ठान, (तप्यते) तपस्या करनेवाले पुरुष, (तप्यमानाय) विद्याभ्यासादि करनेवाले ब्रह्मचारी

१२—तपसे स्वाहा तप्यमानां० इति काण्व०।

(तप्ताय) सिद्ध तपस्वी, परिव्राजक आदि और (घर्माय) सूर्य के समान तेजस्वी सब पुरुषों के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से यत्न करो। धर्म कार्यों और धर्म के कार्य करने वालों के लिये उत्तम दान करो। (निष्कृत्यै) पापों के निवारण करने, (प्रायश्चित्यै) बिगड़े कार्यों और पाप आचरणों को सुधारने और (भेषजाय) शारीरिक कष्टों को चिकित्सा द्वारा दूर करने और सुख प्राप्त करने के लिये (स्वाहा) उत्तम रीति से यत्न किया जाय।

यमाय स्वाहान्तकाय स्वाहा मृत्यवे स्वाहा। ब्रह्मणे स्वाहा ब्रह्महत्यायै स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याᳬ स्वाहा ॥ १२ ॥

भा०—(यमाय स्वाहा) राष्ट्र का नियन्त्रण करने वाले राज्य-व्यवस्थापक और शरीर के नियामक वायु का उत्तम रीति से आदर और तर्पण करो अन्न और कर आदि प्रदान करके उसको अनुकूल रक्खो। सर्व-नियन्ता परमेश्वर का सदा स्मरण करें। (अन्तकाय स्वाहा) दुष्टों का अन्त करने वाले राजा को आदर और सब शरीरों के अन्त करने वाले मृत्यु का उपाय और परमेश्वर का स्मरण करें। (मृत्यवे स्वाहा) सबको मारने वाले वीर का आदर, मृत्यु का उपाय और सर्वदुष्ट मारक परमेश्वर की उपासना करें, उससे सत्य आत्म ज्ञान प्राप्त करें। (ब्रह्मणे स्वाहा) महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति का उपाय और विशाल राष्ट्र की रक्षा का उपाय करें, परमब्रह्म परमेश्वर की उपासना करें। (ब्रह्महत्यायै स्वाहा) वेद ज्ञान के विनाश के निवारण का उत्तम उपाय करो। अथवा ब्रह्म, अर्थात् महान् ऐश्वर्य के हत्या अर्थात् प्राप्ति का उपाय करो और ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर की प्राप्ति का सदुपयादि करो। (विश्वेभ्यः देवेभ्यः स्वाहा) राष्ट्र के सभी देव, शासक, विद्वानों का उचित आदर मान, पदाधिकार वेतनादि प्रदान करो। शरीर के सभी प्राणों की साधना करो, जगत् के सभी दिव्य पदार्थों का ज्ञानपूर्वक

सदुपयोग करो। (द्यावापृथिवीभ्याम् स्वाहा) राष्ट्र में राजा और प्रजा वर्ग, स्त्री और पुरुष दोनों को उत्तम साधन और अन्नादि ऐश्वर्य प्राप्त हों। आकाश और पृथिवी दोनों को उत्तम रीति से ज्ञान करो।

॥ इत्येकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्य एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

[अ० ४४] दध्यङ् आथर्वण ऋषिः । आत्मा देवता ।
अनुष्टुप् । धैवतः ॥

॥ ओ३म् ॥ ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥१॥

भा०—(जगत्याम्) इस सृष्टि में (यत् किंच) जो कुछ भी (जगत्) चर, प्राणी, जंगम संसार या गतिशील है (इदं) वह (सर्वं) सब (ईशा) सर्व शक्तिमान् परमेश्वर से (वास्यम्) व्याप्त है । (तेन त्यक्तेन) उस त्याग किये हुए, या (तेन) उस परमेश्वर से (त्यक्तेन) दिये हुए पदार्थ से (भुञ्जीथाः) भोग अनुभव कर । (कस्य स्वित्) किसी के भी (धनम्) धन लेने की (मा गृधः) चाह मत कर । अथवा (धनं कस्य स्वित् ?) धन किसका है ? किसी का भी नहीं । इस लिये (मा गृधः) मत लालच कर ।

'ईशा'—ईश्वरेण सकलैश्वर्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना' इति दया० । ईश ऐश्वर्ये । क्विप् । ईष्ट इतीट् । ईशिता परमेश्वरः । सहि-सर्व जन्तूनामात्मा सन् ईष्टे । इति महो० ।

'इदं सर्वं'—प्रकृत्यादिपृथिवीपर्यन्तं । इति दया० । प्रत्यक्षतो दृश्यमानं सर्वं इति मही० ।

'जगत्यां'—'गम्यमानायां सृष्टौ' इति दया० । लोकत्रये इति मही० । पृथिव्यामति उवटः ।

१—अथातो ज्ञानकाण्डम् ।

'तेन त्यक्तेन'—'तेन वर्जितेन तच्चित्तरहितेन' इति दया० । हे सर्वेण त्यक्तेन त्यक्तस्वस्वामिभावसम्बन्धेन इत्युवटः ।

अथवा—(त्यक्तेन तेन भुञ्जीथाः) अपना स्वामित्व और चित्त त्याग किये, अर्थात् ममता या संग से रहित इस भोग्य पदार्थ से भो अनुभव कर । इति दया० ।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः—तेन त्यागेन आत्मानं पालयेथाः इति शंकरः इस त्याग से अपना पालन कर ।

राष्ट्रपक्ष में—इस (जगत्यां) पृथ्वी पर जितना (जगत्) पदार्थ, पशु पक्षी आदि (इदं सर्वम्) यह सब जड़ पदार्थ हैं सब (वास्यम्) शक्तिमान् ऐश्वर्यवान् राजा द्वारा अधिकार करने योग्य हैं । उ छोड़े गये या प्रदान किये का तू प्रजावर्ग भोग कर और आपस में को एक दूसरे के धन की चाह मत कर । मत ललचा ।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ २ ॥

भा०—(इह) इस संसार में मनुष्य (कर्माणि) वेद में बतलाये हुए निष्काम कर्मों को (कुर्वन्) करता हुआ ही (शतं समाः) सौ वर्षों तक (जिजीविषेत्) जीना चाहे । हे मनुष्य (एवं) इस प्रकार (त्वयि) तुझ (नरे) कार्य करने वाले पुरुष में (कर्म न लिप्यते) कर्म का लेप नहीं होगा । (इतः अन्यथा) इससे दूसरे किसी प्रकार से (न अस्ति) कर्म का लेप लगे बिना नहीं रहता ।

'कर्म'-कर्माणि वेदोक्तानि निष्कामकृत्यानि इति दया० । मुक्तिहेतुकानि इति उवटः । कर्म अधर्म्यमवैदिकं मनोऽर्थसम्बन्धिकर्म । दया० ।

राष्ट्र पक्ष में—इस राष्ट्र में कर्म अर्थात् कर्त्तव्य पालन करते हुए सौ बरसों तक लोग जीना चाहें । हे पुरुष ! इस प्रकार तुझ नेत्रा पुरुष में कर्म का

अर्थात् दोष नहीं लगेगा। इससे दूसरा कोई और प्रकार नहीं, राष्ट्र में कोई निकम्मा नहीं रहे। सब अपना २ कर्त्तव्य पालन करें।

असुर्य्या नाम ते लोका ऽअन्धेन तमसावृताः।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे (लोकाः) लोक अर्थात् मनुष्य (असुर्याः) [असुर] कहाने योग्य, केवल अपने प्राण को पोषण करने हारे, पापाचारी [हैं] जो (अन्धेन) अन्धकार रूप (तमसा) आत्मा को ढक लेने [वाले] तमोगुण से (आवृताः) ढके हैं। (ये के च) जो कोई (जनाः) [लो]ग भी (आत्महनः) अपने आत्मा का घात करते हैं, उसके विरुद्ध आच[रण] करते हैं (ते) वे (प्रेत्य) मर कर (अपि) जीते हुए भी (तान्) [उ]न उक्त प्रकार के लोकों को ही (गच्छन्ति) प्राप्त होते हैं।

'लोकाः'—ये लोकन्ते पश्यन्ति ते जनाः। लोक्यन्ते दृश्यन्ते भुज्यन्ते कर्म[फ]लानि यत्रेति लोका जन्मानि।

राष्ट्रपक्ष में—वे सूर्य रहित स्थान गहरे अन्धकार से ढके हैं जो आत्मा अर्थात् जीवों के देहों का नाश करते हैं। वे उन स्थानों पर जीते भी रक्खे जाते हैं। और मरकरतो परलोक में वे तामस दशाओं का अनुभव करते ही हैं।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

भा०—(अनेजत्) अपनी अवस्था से कभी च्युत न होने वाला, परिणाम रहित, (एकम्) अद्वितीय, (मनसः जवीयः) मन से भी अधिक वेगवान् ब्रह्म है। (पूर्वम्) सबके पूर्व सबसे आगे, (अर्षत्) गति करते हुए (एनत्) उसको (देवाः) पृथिवी आदि तत्त्व और चक्षु आदि इन्द्रिय

३—०प्रेत्याभि० इति काण्व०।

गण (न आप्नुवन्) नहीं प्राप्त होते । (तत्) वह परब्रह्म (तिष्ठत्) अपने स्वरूप में स्थित, कूटस्थ स्थिर होकर भी (धावतः) विषयों के प्रति जाते हुए (अन्यान्) अपने से भिन्न अन्य, मन आदि इन्द्रियों को (अति एति) लांघ जाता है उनकी पहुंच से परे रहता है । (तस्मिन्) उस सर्वव्यापक में ही (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में गति करने वाला वायु और उसके समान जीव भी (अपः) कर्म (दधाति) करता है ।

आत्मपक्ष में—उस आत्मा के आश्रय पर (मातरिश्वा) प्राण गति करता है ।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ ५ ॥

भा०—(तत् एजति) वह क्रिया करता है (तत् न एजति) वह क्रिया नहीं करता । वह स्वयं कूटस्थ, निष्क्रिय होकर समस्त ब्रह्माण्ड को गति दे रहा है । (तत् दूरे) वह अधर्मात्मा, अविद्वान् पुरुषों से दूर है । (तत् उ अन्तिके) वह ही धर्मात्मा और विद्वानों के समीप है । (तत्) वह (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् और जीवों के (अन्तः) भीतर, (तत्) वह ही और (अस्य सर्वस्य) इस समस्त जगत् के (बाह्यतः) बाहर भी वर्त्तमान है । वह सर्वव्यापक है ।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति ॥ ६ ॥

भा०—(यः तु) जो पुरुष (सर्वाणि भूतानि) सब प्राणियों और प्राण रहित पदार्थों को भी (आत्मन् एव) परमात्मा पर ही आश्रित (अनु पश्यति) विद्याभ्यास, धर्माचरण और योगाभ्यास कर साक्षात् कर लेता है । और (सर्वभूतेषु च) समस्त प्रकृति आदि पदार्थों में

६—'विजुगुप्सते' इति काण्व० ।

(आत्मानं) परमेश्वर को व्यापक जानता है। (ततः) तब वह (न विचिकित्सति) संदेह में नहीं पड़ता।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। तस्मिन् दृष्टे परावरे। गी०

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ ७॥

भा०—(यस्मिन्) जिस ब्रह्मज्ञान की दशा में (सर्वाणि भूतानि) समस्त जीव, प्राणी (आत्मा एव अभूत्) अपने आत्मा के समान ही हो जाता है, अर्थात् समस्त जीव अपने समान दीखने लगते हैं उस (एकत्वम् अनु पश्यतः) एकता या समानता को प्रतिक्षण देखने वाले (विजानतः) विशेष आत्मज्ञानी पुरुष को (तत्र) उस दशा में फिर (कः मोहः) कौनसा मोह और (कः शोकः) कौनसा शोक रह सकता है? अर्थात् तब कोई शोक मोह नहीं रह जाता।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ ८॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (परि अगात्) सर्वत्र व्यापक है। वह (शुक्रम्) शुद्ध, कान्तिमय, अथवा तीव्र शक्तिमय शीघ्र गति देने वाला, (अकायम्) स्थूल सूक्ष्म और कारण नामक तीनों शरीरों से रहित, (अव्रणम्) व्रण, घाव आदि से रहित। (अस्नाविरम्) स्नायु आदि बन्धनों से रहित, शुद्ध अविद्यादि दोषों रहित, सदा पवित्र, (अपापविद्धम्) पापों से सदा मुक्त, (कविः) क्रान्तदर्शी, मेधावी, (मनीषी) सबके मनों को प्रेरणा करने वाला, (परिभूः) सर्वत्र व्यापक, सबका वशयिता, (स्वयम्भूः) स्वयं अपनी सत्ता से सदा विद्यमान, माता पिता द्वारा जन्म न लेने हारा है। वह (याथातथ्यतः) यथार्थ रूप से, ठीक

ठीक (शाश्वतीभ्यः) सनातन से चली आयीं (समाभ्यः) प्रजाओं के लिये (अर्थात्) समस्त पदार्थों को (विअदधात्) रचता है । और उनका ज्ञान प्रदान करता है ।

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसंभूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ॥ ९ ॥

भा०—(ये) जो (असंभूतिम्) सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों वाली अव्यक्त प्रकृति की (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धं तमः) गहरे अन्धकार में (प्रविशन्ति) चले जाते हैं । (ये उ) और जो (संभूत्याम्) महत् आदि विकारमय सृष्टि में (रताः) रमण करते हैं, उसी में मग्न हो जाते हैं (ते) वे (ततः) उससे भी (भूयः इव) अधिक गहरे (तमः) अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं । अर्थात् केवल प्रकृति के उपासक भी परमानन्द परमेश्वर की आनन्दमय परम ज्योति को प्राप्त नहीं करते । वे जड़ोपासना में मग्न रहते हैं । और जो प्रकृति विकारों की ही उपासना करते हैं वे भी सुख नहीं पाते ।

अथवा—(असम्भूतिम्) इस देह को छोड़ कर पुनः आत्मा अन्य देह में उत्पन्न नहीं होता, जो इसी प्रकार मानते हैं वे गहरे अज्ञान में रहते हैं और जो (सम्भूतिम्) आत्मा ही कर्मानुसार उत्पन्न होता है मरता है और ईश्वर कुछ नहीं है ऐसा मानते हैं वे उससे भी गहरे अन्धकार में पड़ते हैं ।

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

भा०—(सम्भवात्) उत्पन्न होने अर्थात् कार्यजगत् से (अन्यत् एव) अन्य ही फल (आहुः) कहते हैं । (असम्भवात्) नहीं उत्पन्न होने अर्थात् कारणरूप प्रकृति के ज्ञान से (अन्यत्) अन्य ही फल (आहुः) कहते हैं । (ये) जो विद्वान् पुरुष (नः) हमें (तत्) इस

तत्व का (विचक्षिरे) विशेष रूप से बतलाते हैं, उन (धीराणां) बुद्धि-मान् पुरुषों से (इति) इसी विषय का (शुश्रुम) श्रवण करें।

सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते ॥ ११ ॥

भा०—(सभूंतिम्) जिसमें नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं इस कार्य सृष्टि और (विनाशं च) जिसमें विनाश अर्थात् कारण में लीन होते हैं (उभयं) दोनों को (यः) जो (सह) एक साथ (वेद) जान लेता है। वह (विनाशेन) सबके अदृश्य होने के परम कारण को ज्ञान कर (मृत्युम्) देह को छोड़ने के धर्म के भय को (तीर्त्वा) पार करके, उसको सर्वथा त्याग कर (सभूत्या) कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्व को जान कर (अमृतम्) उस अमर अविनाशी मोक्ष को (अश्नुते) प्राप्त करता है।

संभूति = सम्भवैकहेतुः परं ब्रह्म। विनाशः विनाशधर्मकं शरीर-मिति उवटः।

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय ऽइव ते तमो य ऽउ विद्यायाꣳ रताः ॥ १२ ॥

भा०—(ये) जो लोग (अविद्याम्) अविद्या अर्थात् नित्य, पवित्र और आत्मा से भिन्न पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा (उपासते) करके जानते हैं, उसी मिथ्या ज्ञान में मग्न रहते हैं वे (अन्धं तमः) घोर अन्धकार में (प्रविशन्ति) प्रवेश करते हैं। वे बड़े अज्ञान में रहते हैं। और (ये उ) जो भी (विद्यायाम् रताः) विद्या अर्थात् केवल शास्त्राभ्यास में ही (रताः) लगे रहते हैं वे (ततः भूयः इव) उससे भी अधिक (तमः) अज्ञानान्धकार में कष्ट पाते हैं।

अन्यदेवाहुर्विद्याया ऽअन्यदाहुरविद्यायाः।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १३ ॥

भा०—(विद्यायाः) विद्या का फल और कार्य (अन्यत् एव आहुः) दूसरा ही बतलाते हैं। और (अविद्यायाः अन्यत् आहुः) अविद्या का फल और ही वतलाते हैं। (ये नः तद् विचचक्षिरे) जो हमें विद्या और अविद्या के स्वरूप का उपदेश करते हैं हम उन (धीराणाम्) बुद्धिमान् पुरुषों के मुखों से (इति शुश्रुम) इस तत्व का श्रवण किया करें।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥ १४ ॥

भा०—(विद्यां च अविद्याम् च) विद्या और अविद्या (यः) जो (तत् उभयं वेद) इन दोनों के स्वरूप को जान लेता है वह (अविद्यया) अविद्या से (मृत्यु तीर्त्वा) मृत्युं को पार करके (विद्यया अमृतम् अश्नुते) विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है।

अविद्यया—शरीरादि जड़ पदार्थ द्वारा पुरुषार्थ करके। (दया०)

विद्यया—शुद्ध चित्त से सम्यग् तत्व दर्शन करके। (दया०)

स्वर्गाद्यर्थानि कर्माणि आत्मज्ञान चेति उवटः। अविद्या अग्निहोत्रादि लक्षणा, इति मही०।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ओ ३ म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳ स्मर ॥ १५ ॥

भा०—(वायुः) वायु, प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, धनंजय आदि (अनिलम्) उक्त प्राणों के मूलकारण, वायु तत्व और (अमृतम्) अमृत आत्मा यह एक दूसरे के आश्रित हैं। वायु के आश्रय प्राण, प्राणों के आश्रय आत्मा जीवन धारण करता है। (अथ) और पश्चात् (इदम्) यह शरीर (भस्मान्तम्) राख हो जाने तक ही टिकता

१३—०विद्यया ०रविद्यया० इति काण्व०।

१५—ॐक्रतो स्मर कृतꣳ स्मर क्रतो स्मर कृतꣳ स्मर। इति काण्व०।

है। इसलिये हे (क्रतो) कर्म के कर्त्ता जीव ! और प्रज्ञावान् पुरुष ! अथवा हे संकल्पवान् जीव ! तू (ओ३म् स्मर) ओं३कार का स्मरण कर। 'ओ३म्' परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है। और (क्लिबे) अपने भरसक सामर्थ्य और प्रयत्न से साधे हुए लोक की प्राप्ति के लिये (स्मर) अपने अभीष्ट का स्मरण कर। और (कृतं स्मर) अपने किये हुए अच्छे बुरे कर्मों का स्मरण कर।

अग्ने नय॑ सुपथा॑ राये ऽअ॒स्मान्विश्वा॑नि देव व॒युना॑नि वि॒द्वान्।
यु॒यो॒ध्य॒स्मज्जु॑हुरा॒णमेनो॒ भूयि॑ष्ठां ते॒ नम॑ऽउक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

भा०—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप ! करुणामय प्रभो ! तू हमें (सुपथा) धर्म के उत्तम मार्ग से (राये) विज्ञान, धन और सुख प्राप्त करने के लिये (सुपथा) सन्मार्ग से (नय) ले चल। (विश्वानि वयुनानि) सब उत्तम ज्ञानों को और मार्गों और लोकों को (विद्वान्) जानता हुआ (अस्मत्) हम से (जुहुराणम्) कुटिल व्यवहार को (युयोधि) दूर कर। (ते) तेरे हम (भूयिष्ठां) बहुत २ (नमः उक्तिम्) स्तुति वचन (विधेम) करें।

हि॒र॒ण्मये॑न॒ पात्रे॑ण स॒त्यस्यापि॑हितं॒ मुख॑म्।
यो॒ऽसावा॑दि॒त्ये पुरु॑षः॒ सो॒ऽसाव॒हम्। ओ३म् खं ब्रह्म॑ ॥१७॥

भा०—(हिरण्यमयेन) सब के हृदयग्राही, हित और रमणीय ज्योतिर्मय (पात्रेण) पालक द्वारा (सत्यस्य) सत्य आत्मा और परमात्म तत्व का (अपिहितम्) ढका हुआ (मुखम्) मुख खोला जाता है। (यः) जो (असौ) वह (आदित्ये) सूर्य अर्थात् प्राण में (पुरुषः) पुरुष, शक्तिमान् प्रकाश कर्त्ता है (असौ अहम्) वह ही मैं हूं। (ओ३म्) सब संसार

१७—०मुखम्। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।
पूषन्नेकर्षेय सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह तेजो यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि ॥ इति काण्व०।

का रक्षा करनेहारा वह (खम्) आकाश के समान व्यापक, अनन्त और आनन्दमय है। और वही (ब्रह्म) गुण, कर्म, स्वभाव में सबसे बड़ा है।

अथवा, ढकने से जैसे वस्तु छिपी रहती है उसी प्रकार ज्योतिर्मय पदार्थों से मुख से परम शक्ति का सत् पदार्थों में विद्यमान सत्यस्वरूप छिपा है, दृष्टान्त के रूप से जो महान् शक्ति सूर्य में विद्यमान है वही मैं हूं।

यदादित्यगतं तेजो जगद् भासयतेऽखिलम्।
यच्चाग्नौ ......तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ गीता ॥

ओ३म् खं ब्रह्म

॥ इति चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

इति यजुर्वेदः समाप्तः ॥

इति मीमांसातीर्थ-प्रतिष्ठितविद्यालंकार-विरुदोपशोभित-श्रीमत्पण्डितजयदेवशर्मकृते यजुर्वेदालोकभाष्ये चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ इति समाप्तं यजुर्वेदालोकभाष्यम् ॥

ऋषिवस्वङ्कचन्द्रा (१९८७) ब्दे चैत्रे मासि सिते दले।
नवम्यां शशिवारे च यजुः शुक्लं समाप्यत ॥